सरस्वती

सचित्र

मासिक पत्रिका

भाग २९, खण्ड २

जूलाई-दिसम्बर

१९२८

सम्पादक—पदुमलाल पुन्नालाल बख़्शी, बी० ए०,

देवीदत्त शुक्ल

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

वार्षिक मूल्य साढ़े छः रुपये

लेख-सूची

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१	अख़बार का रिपोर्टर	श्रीयुत 'भारद्वाज'	६६७
२	अपनी बात	...	१२८, २७७, ५१७, ६३६, ७२४
३	अभिलाष (कविता)	श्रीयुत आशुतोष	३५८
४	अश्रुतर्पण	श्रीयुत नयनचन्द्र मुखोपाध्याय... ...	३५४
५	अश्रुपात (कविता)	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय	२६१
६	आकाश में मेरी पहली उड़ान ...	श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ...	५२६
७	आदर्श	श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह	५२
८	ओस (कविता)	श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, ... एल-एल० बी०	६६७
९	इंडियन प्रेस और चिन्तामणि (कविता) ...	श्रीयुत रामनाथ 'जोतिसी' अयोध्याराज-पुस्तकाध्यक्ष	३२६
१०	इंडियन प्रेस में दो वर्ष	श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ...	३३६
११	एक विभूतिमान् पुरुष का क्षणिक दर्शन ...	श्रीयुत गिरीशचन्द्र चौधरी, एम० ए० ...	३६२
१२	कथामाला	... ...	५८२
१३	कर्मयोगी के प्रति (कविता) ...	श्रीयुत विद्याभास्कर शुक्ल	३६६
१४	कर्मयोगी चिन्तामणि (कविता) ...	श्रीयुत 'गिरीश'	३६२
१५	कर्मवीर सोन्तोकू	श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल	६५८
१६	कान्त-कामना (कविता)	श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ...	५२८
१७	कालस्य कुटिला गतिः	श्रीयुत सुन्दरलाल द्विवेदी	३८२
१८	कृषि और व्यवसाय	श्रीयुत जी० एस० पथिक ...	२५०, ५७६, ७१८
१९	कृषि-शिक्षा	श्रीयुत गंगाप्रसाद अग्निहोत्री	३७
२०	कैसे बड़े हुए, किन गुणों से ...	श्रीयुत 'मुरलीधर'	२६३
२१	कोलम्बो की सैर	श्रीयुत रामोदार साधु	४७१
२२	कौतूहल (कविता)	श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी	६६२
२३	गेरी के सार्वजनिक स्कूल ...	श्रीयुत रघुवीरसिंह, बी० ए०	२०७
२४	चन्द्रलोक की यात्रा	श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए० ...	५४८
२५	चारु चयन	... ...	६१७, ६१७
२६	चिन्ता (कविता)	श्रीयुत 'गिरीश'	२३०
२७	चिन्तामणि (कविता)	श्रीयुत चन्द्रधर मालवीय	३४७

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
२८	चिन्तामणि (कविता) ...	... श्रीयुत श्रीनाथसिंह ...	... ३२०
२९	चिन्तामणि ...	... श्रीयुत हनूमान शर्मा ...	... ३०५
३०	चिन्तामणि-स्मृति ...	... श्रीयुत ज्ञानेन्द्रनाथ घटक ...	... ३६०
३१	जंगली जानवरों का क्रिया-कलाप	... श्रीयुत 'ज्ञ' ...	... ५२६
३२	ज़िन्दा पीर बदाउद्दीन शाह मदार	... श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०	... ४०२
३३	टर्की से अरबी लिपि का बहिष्कार	... श्रीयुत 'ज्ञ' ...	... ४१३
३४	डेन्मार्क ...	... श्रीयुत सूर्यवर्मा, बी० ए० ...	... ६१
३५	डेन्मार्क में सहयोग ...	... श्रीयुत रमेशप्रसाद, बी० एस-सी०	... १०७
३६	तक्षशिला और खैबर की घाटी	... श्रीयुत रायसाहब सोहनलाल बी० ए०, एल-टी०, एफ़० आर० जी० एस० ...	... ५५७
३७	तिलोदक ...	... श्रीयुत लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय ...	... ३६४
३८	त्याग (कविता) ...	... श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	... ८४
३९	दुखिया (कविता) ...	... श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	... ६४१
४०	देश की दो बातें ...	... श्रीयुत 'ज्ञ' ...	१२, १६५
४१	नीति (कविता)	... अनुवादक, श्रीयुत इक़बाल वर्मा 'सेहर'	... १११
४२	परिशिष्ट	... ...	... क
४३	पी० एल० एम० एक्सप्रेस	... अनुवादक, श्रीयुत भारद्वाज ...	... ४५२
४४	पुण्यस्मृति	... रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०	... २८९
४५	पुलिस के क्रियाकलाप की आलोचना	... श्रीयुत 'ज्ञ'	... ६४५
४६	पुस्तक-परिचय ...	... ...	१५५, २७४, ५१५, ६३३, ७५०
४७	प्रताप के पत्र	... श्रीयुत सुदर्शन	... २६
४८	प्रथम मेघ (कविता) ...	... श्रीयुत विश्वकर्मा ...	... २०७
४९	प्रेम का उपहार ...	... श्रीयुत गोपालशरणसिंह ...	... ५२१
५०	प्रेम-प्रदर्शन (उमर-ख़ैयाम की रुबाइयाँ)	अनुवादक श्रीयुत इक़बाल वर्मा "सेहर"	... ६८६
५१	फ़ीजी-द्वीपसमूह ...	... श्रीयुत मुकुन्दीलाल, बी० ए० (आक्सन), एम० एल० सी, बार-एट-ला ...	... ४१६
५२	बड़े बाबू ...	... श्रीयुत ज्वालादत्त शर्म्मा ...	... ३७४
५३	बदला ...	... श्रीयुत 'वर्मा'	... ६६३
५४	बर्फ़ के सञ्चरणशील पर्वत	... श्रीयुत 'द्विरेफ'	... ४१६
५५	बाबू चिन्तामणि घोष ...	... श्रीयुत मेजर वामनदास वसु, आई० एम० एस० (रिटायर्ड)	... ३३४
५६	बाबू चिन्तामणि घोष (स्मृति)	... पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ...	... २८२
५७	बाबू चिन्तामणि घोष के स्मरण में	... श्रीयुत देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०	... ३५६
५८	बेड़ा पार (कविता)...	... श्रीयुत रामचरित उपाध्याय ...	... ६४८

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
५९	भारत-नारद-सम्मिलन (कविता) ...	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	७०
६०	भारत में अकाल, उनके कारण तथा निवृत्ति के उपाय	श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार	६०
६१	भारतीय इतिहास के लेखन और शिक्षण की प्रणाली	श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए० ...	१९८
६२	भारतीय भाषाओं का अन्वेषण ...	श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी	४०८
६३	भारतीय शिक्षक-संघ	श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल-टी ...	४३०
६४	भारतीयों के प्रति	श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव ...	६०
६५	भारतवर्ष में हीरे की खानें	पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी	६४२
६६	भूल (कविता)	श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना 'साहित्यरत्न' ...	११८
६७	श्रम (कविता)	,, ,, ,, ,, ...	२२०
६८	मधुवन (कविता)	श्रीयुत सुमित्रानन्दन पन्त	१
६९	मरण-काल	श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए० ...	४३८
७०	महाकवि हरिचन्द्र	श्रीयुत शम्भुनाथ त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य ...	६८६
७१	मित्रवर चिन्तामणि घोष	महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट०, एल० एल० डी० ...	२८८
७२	मेरी दूसरी आकाश-यात्रा	श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ...	६५०
७३	मैं दुबारा जर्मनी कैसे पहुँचा ...	,, ,, ,, ,, ...	१७१
७४	राजनीति की कुछ समस्यायें ...	श्रीयुत रमाशङ्करप्रसाद, एम० ए०, एल-एल० बी०	८५
७५	रामायण-समालोचना	पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी ...	५२२
७६	राष्ट्र-शक्ति का जीवन-रस	श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ...	२
७७	रेशम	श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल	४३३
७८	लखनऊ की पशुशाला	श्रीयुत 'द्विरेफ'	६६७
७९	वन-फूल	...	१४६, २४१, ६०६, ७२७
८०	विचार-विमर्श	श्रीयुत कुँवर शिवनाथसिंह सेंगर ...	७१२
८१	विजय (कविता)	श्रीयुत वैद्यनाथप्रसाद मिश्र 'विह्वल' ...	४७०
८२	विधवा	श्रीयुत जगदीश झा 'विमल'	५४१
८३	वियोग में (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	४०१
८४	वीएना	श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक ...	४४५
८५	शिक्षा और जीवन-समस्या	श्रीयुत हरिशङ्कर द्विवेदी	७२
८६	शिक्षा और सेवा	...	२६२, ७२३
८७	शिशु (कविता)	श्रीयुत गोपालशरणसिंह	१६१
८८	शुक-संवाद (कविता) ...	श्रीयुत रामचरित उपाध्याय, ३३, १८४, ४२७,	५४५
८९	शैशुनाक और नन्द-वंश	श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल	६६३

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
९०	शोक-प्रकाश	श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ...	३४८
९१	शोकोद्गार (कविता)	रायबहादुर अवधवासी लाला सीताराम, बी० ए०	३०८
९२	शोकोच्छ्वास (कविता)	श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव ...	३५१
९३	श्रद्धाहार	'एक अकिञ्चन लेखक'	३६३
९४	श्रीकान्त	अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय,	११८, २३४, ४८७, ५६६, ७०५
९५	श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष ...	श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद शर्मा, एम० ए०, डी० लिट०	३२१
९६	संघशक्ति	श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव ...	१८७
९७	संसार की गति	श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्मा	१३७, २६६, ५०४, ६२१
९८	संसार का सबसे अधिक सम्पन्न देश ...	श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार	२३१
९९	सत् और असत्	श्रीयुत अवध उपाध्याय	२०
१००	सद्गुण-परिचय	श्रीयुत चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल-टी० ...	३४९
१०१	सभ्यता का प्रवाह	श्रीयुत रघुवीरसिंह	७०१
१०२	सन्देश (कविता)	श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त	२८१
१०३	सन्ध्या (कविता) ...	श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी	१०६
१०४	सन्ध्या (कविता)	श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना 'साहित्यरत्न' ...	५५५
१०५	सरकारी साहित्यालोचन	श्रीयुत 'द्विरेफ'	१६२
१०६	सापेक्ष्यवाद का दार्शनिक विचार ...	श्रीयुत अवध उपाध्याय	४५८
१०७	सुकुमारी (कविता)	श्रीयुत रत्नाम्बरदत्त चन्दोला	६७४
१०८	सुहृद्वर बाबू चिन्तामणि घोष ...	रायबहादुर बलदेवराम दवे, बी० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट	३०३
१०९	स्त्री का पत्र	अनुवादक श्रीयुत रामावतार शर्मा ...	२२१
११०	स्नेह-स्मृति...	श्रीमती चारुबाला सरस्वती	३६७
१११	स्मरण (कविता)	श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना 'साहित्यरत्न' ...	३८१
११२	स्मृति-तर्पण	श्रीयुत ज्ञानेन्द्रमोहनदास	३०९
११३	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष ...	श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि ...	३१९
११४	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष ...	श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय	३२७
११५	स्वर्गवासी चिन्तामणि (कविता) ...	श्रीयुत हरदत्त शर्म्मा	३३३
११६	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के प्रति (कविता)	श्रीयुत सुदर्शनाचार्य, बी० ए०	३३९
११७	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि और उनका जन्मपत्र	श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए० ...	३७६
११८	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष और उनका इंडियन प्रेस	श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल, बी० ए० ...	३४०
११९	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि और उनका महत्त्व ...	श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०	३८४
१२०	स्वास्थ्य और व्यायाम ...		२५६, ५९९, ७२१

नम्बर	नाम	लेखक	पृष्ठ
१२१	हा चिन्तामणि ! (कविता) ...	श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ...	२८७
१२२	हिन्दुओं की वैवाहिक समस्या ...	श्रीयुत श्रीनाथसिंह	११४
१२३	हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा	श्रीयुत कामताप्रसाद गुरु	६७४
१२४	हिमगिरि-शिखर पर	श्रीयुत श्रीगोपाल नेवटिया	६७७

चित्र-सूची

(रङ्गीन)

नम्बर	विषय		पृष्ठ	नम्बर	विषय		पृष्ठ
१	आलोक और छाया	[जुलाई]	मुखपृष्ठ	८	प्रातःस्नान	[जुलाई]	१४४
२	कृष्ण-जन्म	[अगस्त]	२३१	९	मानिनी	[अगस्त]	२४१
३	गुलाब	[नवम्बर]	मुखपृष्ठ	१०	मेघदूत-चित्रावली	[दिसम्बर]	मुखपृष्ठ
४	गोलकुण्डा का क़िला	[नवम्बर]	५४५	११	रूप का परिणाम	[नवम्बर]	६१७
५	परलोक से सम्बन्ध	["]	१११	१२	वियोग-चिन्ता	[आक्टोबर]	४५९
६	पुजारी	[आक्टोबर]	मुखपृष्ठ	१३	सिद्धार्थ और यशोधरा	["]	२१
७	प्रलोभन	[दिसम्बर]	७१२	१४	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष	[सितम्बर]	मुखपृष्ठ

[सादे चित्र]

नम्बर	विषय	पृष्ठ
१	अतीत-स्मृति	२७४
२-९	आकाश में मेरी पहली उड़ान-सम्बन्धी ८ चित्र	५३०-५३९
१०	आफ़सेट मैशीन-विभाग	३६०
११	आफ़िस-विभाग, इंडियन प्रेस लिमि०	३३६
१२	इंडियन प्रेस, कटरा की पुरानी इमारत...	३२४
१३	,, ,, कलकत्ता-शाखा	३९६
१४	,, ,, कलकत्ता-शाखा का कर्मचारी-मण्डल	३९७
१५	,, ,, का विहग-दर्शन चित्र	४००
१६	,, ,, का पुस्तक-भवन (बुकडिपो)	३३२
१७	,, ,, की वर्तमान इमारत	३२५
१८	,, ,, का अँगरेज़ी कम्पोज़िंग पीस-विभाग का एक दृश्य	३४९
१९	,, ,, के सिलाई (स्टिचिंग) विभाग का एक दृश्य	३६५
२०	,, ,, के फ़ोटो एचिंग-विभाग का एक दृश्य	३४४
२१	,, ,, के हिन्दी कम्पोज़िंग-विभाग का एक दृश्य	३४५
२२	,, ,, जिल्दसाज़ी (बैंडिग) विभाग का एक दृश्य	३६४
२३	,, ,, बनारस-शाखा	३८४
२४	,, ,, का कर्मचारी-मण्डल	३८५
२५	,, ,, पायनियर रोड की इमारत का एक दृश्य	३२०
२६	,, ,, की कोठी	३२१
२७	,, ,, के अँगरेज़ी कम्पोज़िंग विभाग का एक दृश्य	३३१
२८	,, ,, बनारस-शाखा का कर्मचारी-मण्डल	३५८
२९	इंडियन पबलिशिंग हाउस, कलकत्ता	३९२

नम्बर	विषय	पृष्ठ
३०	उन्मुक्ति	४६७
३१	उस पार	५८४
३२	कटरा की कोठी	३७६
३३	कैमेरा-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमि०	३४१
३४-५७	कोलम्बो की सैर-सम्बन्धी २४ चित्र	४७१-४८५
५८-७७	गेरी के सार्वजनिक-स्कूल-सम्बन्धी २० चित्र	२०८-२२०
७८	जार्ज टाउन की कोठी (वर्तमान निवास)	३०५
७९	टाइप फ़ाउंडरी विभाग, इंडियन प्रेस, लि०	३५२
८०	ट्रेडिल मैशीन-विभाग	३५६
८१	डिप्टी मैनेजर का दफ़र	३२८
८२-१०५	डेनमार्क-सम्बन्धी २४ चित्र ...	९२-१०४
१०६-११२	तक्ष-शिला और खैबर की घाटी की यात्रा-सम्बन्धी ७ चित्र ...	५५८-५६५
११३	पण्डित मदनमोहन मालवीय	३१८
११४	पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी	२८६
११५-११७	पश्चिमी चित्र-कला के उत्कृष्ट नमूने (१)	६८८
११८-१२०	पश्चिमी चित्र-कला के नमूने (२)	७४५
१२१	पावर-हाउस इंडियन प्रेस, लिमिटेड	३४४
१२२	पुरी की कोठी	३६३
१२३	पुस्तक-भवन का गोदाम-विभाग	३३३
१२४	पोस्टआफ़िस, इंडियन प्रेस, लिमिटेड	३२८
१२५	प्रिय-स्मृति	१६८
१२६	प्रेम-विह्वलता	४४०
१२७	प्रोफ़ेसर देवेन्द्रनाथ पाल, एम० ए० (अन्तरङ्गमित्र)	३०३
१२८	प्रोफ़ेसर सुरेन्द्रनाथ देव, एम० ए०	२६३
१२९	फ़ैक्टरी-विभाग के कर्मचारी, इंडियन प्रेस हेड आफ़िस	३५३
१३०-१३३	फ़ीजी-द्वीप-समूह-सम्बन्धी ४ चित्र	४२०-४२४
१३४-१४२	बाल-व्यायाम-सम्बन्धी ९ चित्र	२५६-२५९
१४३	बाबू चिन्तामणि घोष (प्रौढ़ावस्था)	२८६
१४४	,, ,, ,, (३५ वर्ष)	२८७
१४५	,, ,, ,, (७१ वर्ष)	२८७
१४६	,, ,, ,, (दफ़्तर की पोशाक में)	२९६
१४७	,, ,, ,, और उनका परिवार	२९५
१४८	,, ,, ,, (७२ वर्ष) और उनकी पौत्र-पौत्रियाँ ...	३०८
१४९	,, ,, ,, की धर्मप्राण भगिनी	२८३
१५०	,, भुवननाथ दे और बाबू चिन्तामणि घोष	३०४
१५१	,, रामानन्द चटर्जी	३०३
१५२	महाभारत-विभाग, इंडियनप्रेस, लिमिटेड	३२९
१५३	महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गानाथ झा, एम्० ए०, डी० लिट्०, एल-एल० डी० ...	३०३
१५४	मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि	३१९
१५५	मुद्रण-यन्त्र (लेटर प्रेस)-विभाग ?	३५०
१५६	मेजर वामनदास वसु, आई० एम० एस० (अवसर प्राप्त)	२८७
१५७-१६७	मेरी दूसरी आकाश-यात्रा-सम्बन्धी ११ चित्र	६५ ५५७

नम्बर	विषय	
१६८-१७४	मैं दुबारा जर्मनी कैसे पहुँचा-सम्बन्धी ७ चित्र	१७१
१७५	राय बहादुर पण्डित बलदेवराम दवे, बी० ए०, एल-एल० बी, एडवोकेट ..	८
१७६	रायसाहब प्रेफ़ेसर सतीशचन्द्र देव, एम० ए०	
१७७	रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदास, बी० ए०	२
१७८-१८६	राष्ट्र के जीवन-रस-सम्बन्धी ६ चित्र	२-९
१८७	ललितकला-विभाग	३३७
१८८	लाइनो टाइप-विभाग	३५३
१८९	लीथो-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमि०	३६१
१९०	वनश्री	६०
१९१-१९८	विश्व-विजयी हॉकी के खेलाड़ी-सम्बन्धी ८ चित्र	७३२-७३७
१९९-२०९	वीएना-सम्बन्धी ११ चित्र	४४५-४५०
२१०-२२८	शिक्षा और जीवन-समस्या-सम्बधी १९ चित्र	७३-८२
२२९	श्रीमती रेवा घोष (पौत्री)	३०९
२३०	श्रीयुत देवकुमार घोष (ज्येष्ठ पौत्र)	,,
२३१	श्रीमती मायालता घोष (पौत्री)	,,
२३२	,, शान्तिलता ,, ,, ...	,,
२३३	,, रेखाबाला ,, ,, ...	२९७
२३४	श्रीयुत हरिकेशव घोष	
२३५	,, हरिप्रसन्न घोष	
२३६	,, हरिसाधन घोष (डाइरेक्टर्स आफ़ इंडियन प्रेस, लि०,) ...	३०२
२३७	,, हरिनाथ घोष	
२३८	,, हरिभूषण घोष	
२३९	सरस्वती और बाल-सखा-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड	३२९
२४०	स्वर्गीय कविवर श्रीधर पाठक	६१५
२४१	स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के श्राद्ध-कृत्य का एक दृश्य	२८२
२४२	,, ,, हरिपद घोष	२८९
२४३	स्वर्गीय बाबू हीरालालदास (गृह-शिक्षक)	३०९
२४४	,, ,, लाला लाजपतराय	६३७
२४५	स्वर्गीय सर सुन्दरलाल दवे	क
२४६	स्वर्गीया गोलापमोहिनी घोष (पत्नी)	२८८
२४७	,, विन्दुवासिनी घोष (माता)	२८३
२४८	,, हरिप्रभा वसु (ज्येष्ठा कन्या)	२९४
२४९-२५१	स्वास्थ्य और व्यायाम-सम्बन्धी ३ चित्र	६०१-६०४
२५२	हरिपद इनफर्मरी	३६८
२५३	हरिपद ऐलोपैथिक दातव्य-औषधालय	२८४
२५४	,, होम्योपैथिक ,, ,, ,, ...	३६९
२५५	हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस	३७७
६-२६७	हिमि-गिरि-शिखर पर-सम्बन्धी १२ चित्र	६८१-६८५
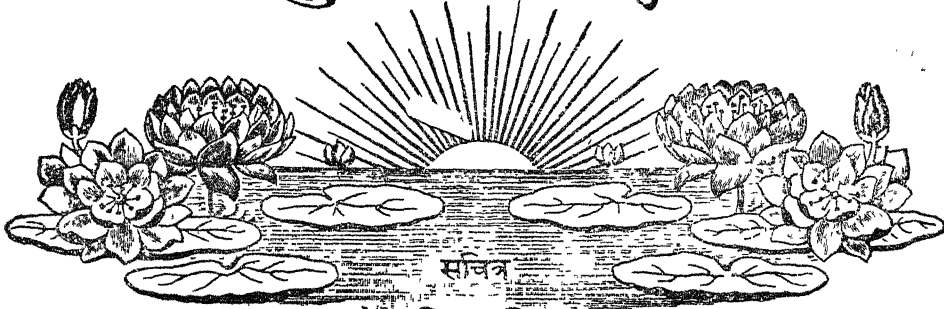
मासिक पत्रिका

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs 6-8] देवीदत्त शुक्ल [As 10 per copy.

भाग २९, खण्ड २] जुलाई १९२८—आषाढ़ १९८५ [सं० १, पूर्ण-संख्या ३४३

मधुवन

[श्रीसुमित्रानन्दन पन्त]

(१)

मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण !
मुसकुरा दी थी आज विहान ?

आज गृह, वन, उपवन के पास
लोटता राशि राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुन्द-कलियों की कोमल-प्रात;

मुसकुरा दी थी, बोलो, प्राण !
मुसकुरा दी थी तुम अनजान ?

आज छाया चहुँदिशि चुपचाप
मृदुल-मुकुलों का मौनालाप,
रजत-कलियों से, कुछ कुछ लाल,
लद गई पुलकित पीपल-डाल;

और, वह, पिक की मर्म-पुकार
बरसती आज, प्रिये, साभार—
लाज से गड़ी न जाओ, प्राण !
मुसकुरा दी क्या आज विहान ?

(२)

तुम्हारी आँखों का आकाश,
सरल-आँखों का नीलाकाश,—
खो गया मेरा खग अनजान,
मृगेक्षिणि ! इनमें खग अज्ञान !
देख इनका चिर-करुण-प्रकाश,
अरुण-कोरों में उषा-विकास;
खोजने निकला निभृत-निवास,
प्रिये ! पल्लव-प्रच्छाय-निवास;
अरे, जाने ले क्या अभिलाष,
खो गया बाल-विहग नादान !

तुम्हारी आँखों का आकाश,
सजल, श्यामल, अकूल आकाश,—
गूढ़, नीरव, गम्भीर प्रसार,
न गहने को तृण का आधार;
बसायेगा कैसे संसार,
प्राण ! इनमें अपना संसार ?
न इनका ओर-छोर, रे, पार,
खोगया वह नव-पथिक अजान ?

राष्ट्रशक्ति का जोवन-रस

[श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक]

ब कोई भारतीय आदर्शों का प्यारा योरप में सैर के लिए आता है और यहाँ के लोगों का रहन-सहन, आचार-व्यवहार तथा चाल-ढाल देखता है तब वह आश्चर्य्य से कह उठता है—"ये लोग शक्तिशाली क्यों हैं ?" कि आचार-भ्रष्ट जाति कभी बलवती नहीं हो सकती। पर यहाँ सब बुराइयाँ विद्यमान हैं। योरप में शराब साधारणतया सभी पीते हैं। मांस तो इनका नित्य का भोजन ही ठहरा। सिगरेट तो मुलाकात के समय भेंट की वस्तु हो गई है। सदाचार का यह हाल है कि ऐसे स्त्री और पुरुष बहुत विरले ही मिलेंगे, जो अपने
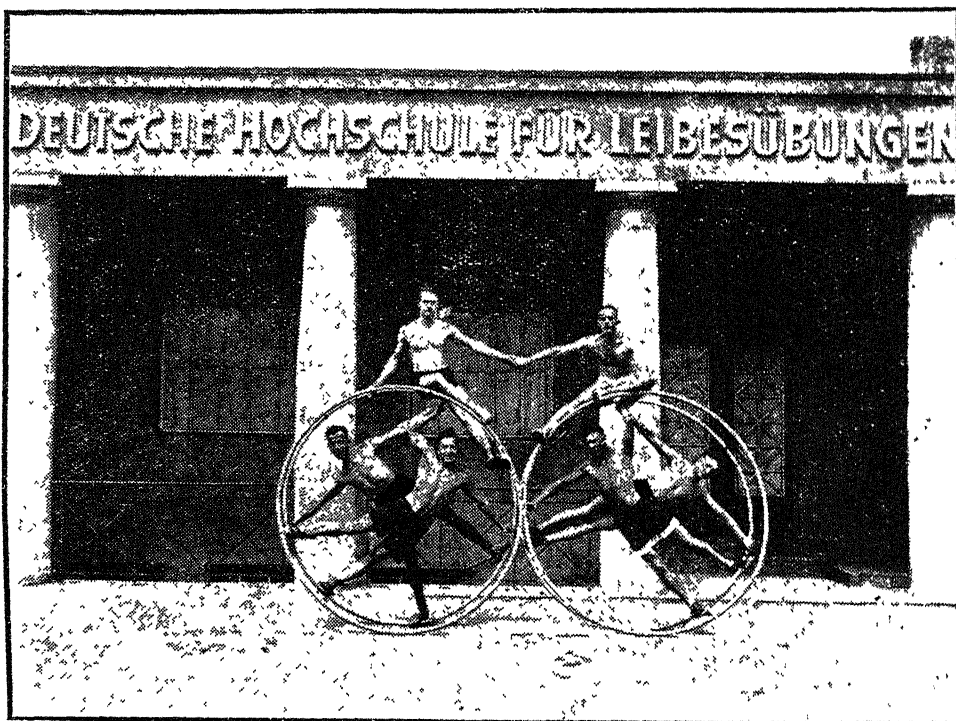
विद्यार्थी लोहे के चक्र को चला कर कसरत कर रहे हैं

हमारे शास्त्र हमें शराब, मांस, धूम्र-पान और अनाचार आदि बातों से मना करते हैं, और हमारे धर्मोपदेशक हमें बार बार कहते हैं विवाह के समय छाती पर हाथ रखकर यह कह सकें कि विवाह के पहले किसी पुरुष अथवा स्त्री के साथ उनका अनुचित सम्बन्ध न था।

सचमुच एक भारतीय आदर्शों के पुजारी के दिल पर, यह सब देखकर, बड़ी ठेस लगती है और वह बेइख़्त्यार कह उठता है—"व्यभिचारी योरप शक्तिशाली क्यों है ?"

एक सुडौल लड़का दूसरे को उठाकर शरीर को सुदृढ़ कर रहा है

जब हम रोम महाराष्ट्र के उत्थान और पतन का इतिहास पढ़ते हैं, या दुर्दमनीय तुर्की साम्राज्य की कथा बाँचते हैं तब यह बात बिलकुल स्पष्ट मालूम हो जाती है कि जो जातियाँ विषय-लोलुप होकर शराब के नशे में डूब गईं, जिन्होंने अपना चरित्र भ्रष्ट कर दिया, वे जातियाँ अपना जीवन-रस खोकर निर्बल हो गईं और उनका साम्राज्य नष्ट होगया। अच्छा

योरप का नाश क्यों नहीं होगया ? योरप-
माज के सङ्गठन और उसकी शक्ति के लिए
न सा स्तम्भ है जो उसे गिरने से बचा रहा है—
उसे रोके हुए है ? कौन सा वह महामन्त्र
जो इँग्लिस्तान की शक्ति को पतन से रोक रहा
जो दूसरे योरपीय राष्ट्रों को नाश से बचा रहा
नवभारत के निर्माणकों के निमित्त तथा भार-
आदर्शों के उपासकों की शान्ति के लिए हम
विषय पर प्रकाश डालते हैं।

जाता है। लड़के की भुजा के बल के अनुसार गेंद में गति आती है और जब उस बल की गति पूर्ण होजाती है तब गेंद निर्जीव होकर भूमि पर विश्राम करता है।

यह एक साधारण उदाहरण इस विषय को .खूब स्पष्ट करेगा।

पिछले पाँच सौ वर्षों के योरप के इतिहास पर दृष्टि डालिए। स्पेन की शक्ति ने कितने चमत्कार किये थे। दक्षिण अमरीका में
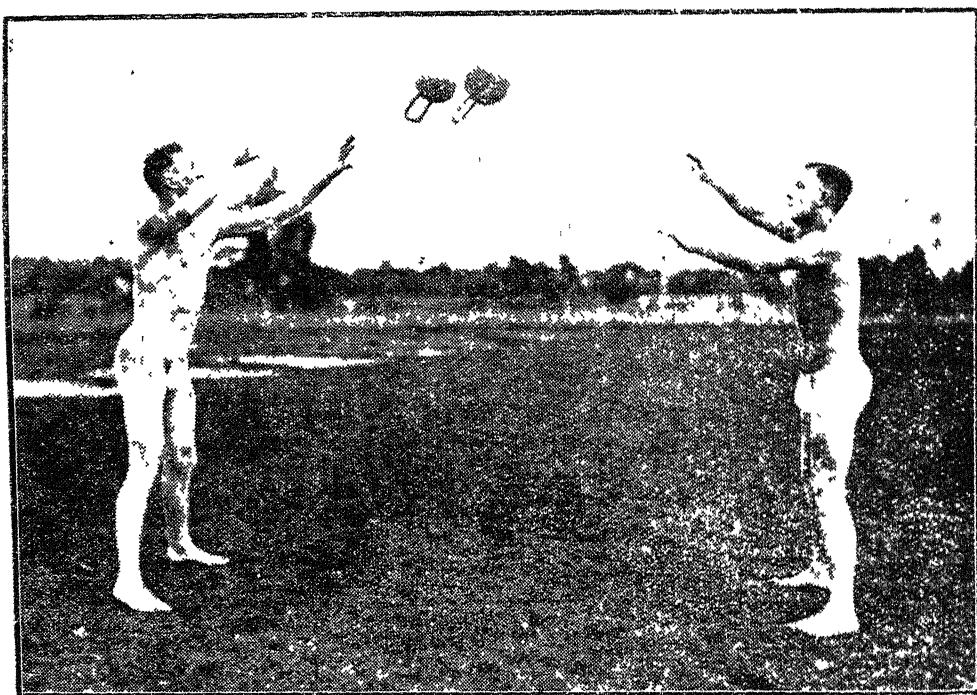
दो लड़के लोहे के गेंदों को एक दूसरे पर फेंक कर उसे पकड़ रहे हैं

यदि आप व्यायाम-शाला के किसी चौड़े
में उस दिन दर्शक के तौर पर खड़े हो जायँ,
द्यार्थियों की लोह-गेंद फेंकने की आज़मा-
ो तो आप यह देखेंगे कि कम या .ज्यादा
के अनुसार गेंद पीछे या आगे आकर ठहर

स्पेनिश भाषा का झंडा स्पेन की उसी साम्राज्य-शक्ति का द्योतक है। फ़्रांस की कितनी ज़बर्दस्त शक्ति रही और आज भी मौजूद है। आस्ट्रिया का साम्राज्य कैसा समृद्धिशाली था। वीएना एक समय योरप की राजनीति का केन्द्र था।

आज उसे छोटा सा इटली दाँत दिखा रहा है। ज्वालामुखी तुर्की-साम्राज्य नष्ट होकर आज एक चिन्गारी सा रह गया है। फ़्रांस अभी तक स्पेन जैसा क्यों नहीं होगया? फ़्रांस भी तो रोमन-केथोलिक है। इंग्लैंड अभी तक मार क्यों नहीं खा सका? उसकी शक्ति-वृद्धि क्यों होगई है? इतनी भारी मार खा कर जर्मनी फिर कैसे उठ रहा है? आस्ट्रिया क्यों सदा के लिए ख़तम होगया है? इन सब प्रश्नों को आज हमें जानना चाहिए, क्योंकि हम राष्ट्र-निर्माण में लगे हुए हैं और हमे भारत को एक प्रबल शक्तिशाली राष्ट्र बनाना है।

देखिए। यदि कोई समाज निर्जीव होकर मृत्यु को प्राप्त होना नहीं चाहता, यदि कोई राष्ट्र अपनी शक्ति को बराबर बनाये रखना चाहता है तो उसका मुख्य कर्तव्य है कि वह अपने जीवन-रस के स्रोत को न सूखने दे। जं वे स्रोत भी दो प्रकार के हैं—एक स्थायी त्मिक) जिनका सम्बन्ध अनादि ब्रह्म से दूसरे अस्थायी (प्राकृतिक) जो भूचाल निकल पड़ते हैं, या कभी खोदते हुए हैं। यहाँ इस समय हम योरप-राष्ट्रों

लड़कियाँ व्यायाम कर रही हैं। इस स्कूल में शिक्षा समाप्त कर ये खेलों की अध्यापिका बनेंगी

में लिख रहे हैं, इसलिए हम पहले दूसरे जीवन-रस-स्थायी की विवेचना करते हैं।

अठारहवीं सदी के अन्त में भयङ्क फ़्रांस में आया था, उसने योरप मे राष्ट्र-र मज़बूत आदर्श खड़ा कर दिया। उस जीवन-रस से योरप मे नवजीवन का सञ्च भूचाल द्वारा उत्पन्न हुए उस जीवन-रस का पता योरप-समाज को लगा है। उस विचित्र गति उत्पन्न हुई है, अद्भुत चेत

विस्मय-जनक सङ्गठन हुआ है। अब जो चेतनता को बराबर जारी रक्खेगा, जो उस न-रस-स्रोत को न सूखने देगा, जो भूचाल प्राप्त वेग में अपना नया वेग उत्पन्न कर उसे ा रहेगा, वह तो जीयेगा और जो उस वेग काम लेगा, वह वेग ख़तम होने पर स्वयं तम हो जायगा।

हैं और उसकी रक्षा के लिए लाखों-करोड़ों रुपये ख़र्च करते हैं।

राष्ट्र-जीवन के उसी जीवन-रस का रसा-स्वादन कराने के लिए हमने इतनी दूर बर्लिन से ये चित्र आपके अवलोकनार्थ भेजे हैं। आप इन्हें देखते हैं। लड़कियाँ-लड़के व्यायाम कर रहे हैं। जैसे लड़कों के लिए बृहत व्यायाम-

लड़कियाँ जिमनेस्टिक का अभ्यास कर सच्ची क्षत्राणियाँ बन रही है

र्मनी, फ्रांस और इंग्लेंड को यह बात होगई है। वहाँ का समाज यह बात र समझ गया है कि यदि वे अपने राष्ट्रों ा-रक्षा के लिए जीवन-रस पैदा न करते बहुत शीघ्र उनका नाश हो जाएगा। वेषय-भोग के सब दुर्गुणों को रखते हुए त सिद्धान्त को बड़ी दृढ़ता से पकड़े हुए

शालायें हैं वैसी ही लड़कियों के लिए भी हैं। जर्मनी के प्रत्येक नगर, क़स्बे और ग्राम में व्यायामशालाओं की धूम है। उछल-कूद, दौड़, तैरना, मुक्केबाज़ी, क़वायद, गतका, जिमनेस्टिक—जो जो लड़के सीखते हैं, सब लड़कियाँ बराबर वैसा ही अभ्यास करती हैं। पचीस पचीस हज़ार लड़कियाँ-लड़के जब ख़ास अवसरों पर

किसी बड़े मैदान मे क़वायद करते हैं तब सचमुच समा बँध जाता है और भारतीय आदर्शों का उपासक सैलानी कह उठता है—"ऐसी लड़कियाँ और लड़के रखनेवाले समाज को मनुष्य तो क्या, साक्षात् ब्रह्मा भी नहीं मार सकता।"

स्मरण रखिए, राष्ट्र की शक्ति बलवान् लड़के और लड़कियों पर निर्भर है। वह शक्ति,

और अमरीका मे व्यायाम के लि रुपया ख़र्च होता है। उनकी ल उनकी मर्ज़ी के विरुद्ध आप छेड़िए तो सिर फोड़ देती हैं। वे निर्भय, निर्द्व जङ्गलों, पहाड़ों में विचरती हैं। जर्म आज अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए कम तैयार हो रही हैं। उनका बदन फुर्त

लड़कियाँ खेल कर रही है

वह जीवन-रस उत्पन्न होता है व्यायाम से। जो राष्ट्र अपना धन सुन्दर व्यायामशालाओं के निर्माण में ख़र्च करता है, जो समाज अपना सोना-चाँदी अपनी कन्याओं के नाक-कानों में बेड़ियाँ डालने में ख़र्च न कर, उन्हें फ़ुर्तीली, सुडौल और वीर बनाने में ख़र्च करता है वह राष्ट्र—वह समाज—सदा जीवित रहता है। फ्रांस, इँग्लेड

प्रत्येक अङ्ग कसरती सुडौल। किसी ल मोटा पेट नहीं, किसी लड़के के बदन पर लोथे नहीं। माप का खाना, जल्दी हज़्म चीज़ें खाना, शरीर-रक्षा के सभी नियम बराबर ध्यान रखते हैं। यही कारण है वि में और बुराइयों के होते हुए जीवन-रस नहीं होने पाती। यही लड़कियाँ जब

होती हैं, उस समय उनके बच्चों को आप देखिए।

पिछले फ़रवरी मास में एक दिन बहुत बर्फ़ पड़ी। मेरा एक प्रेमी जर्मन मित्र मुझसे मिलने के लिए आया और बोला—"चलो घूमने चलें।"

हम चल पड़े। साथ में उसका एक छोटा सा लड़का था। मैंने समझा, आठ नौ वर्ष का अपना बोझा सम्हाले रखता था। बातचीत करते हुए मैंने अपने जर्मन मित्र से कहा—

"आप का लड़का है तो आठ नौ वर्ष का ही, पर मज़बूत है। सारा रास्ता पट्ठा दौड़ता ही आया है।"

वह मेरे मुँह की ओर विस्मित होकर देखने लगा और बोला—"यह तो चार वर्ष का लड़का
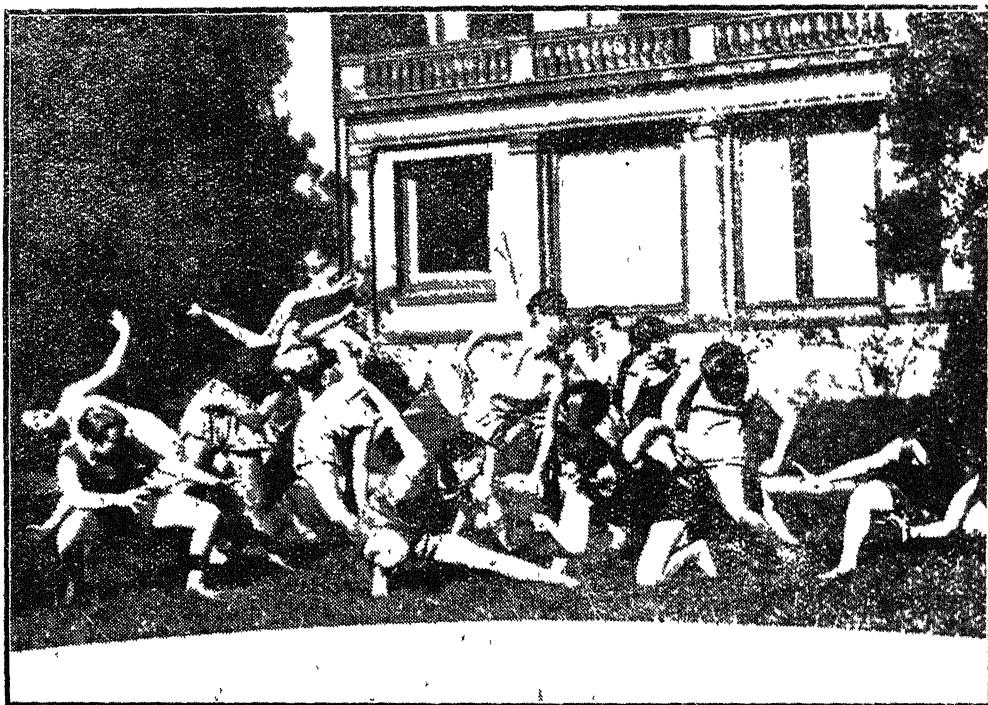
लड़कियाँ व्यायाम-शाला के सामने मैदान में खेल दिखा रही हैं

होगा। उस दिन हम लोग तीन चार मील बर्फ़ में घूमे। सारा रास्ता वह लड़का दौड़ दौड़ कर बर्फ़ पर अपने बूटों से ही स्केटिङ्ग करता चला जाता था। थोड़े थोड़े फासले पर छोटे छोटे टुकड़े भूमि के हिम से ढके थे। वह लड़का बराबर दौड़ कर उन पर फिसलता और बराबर है। अभी जनवरी में उसके चार वर्ष पूरे हुए हैं।"

मैं हैरान रह गया। मुझे सिएटल (अमरीका) के नाई का वह लड़का याद आगया, जो बाज़ार मे अख़बार बेचने आया करता था; जिसकी मा मुझ से कहा करती थी—"मेरा

बच्चा अभी पूरे चार वर्ष का नहीं हुआ।"

"व्यायाम! व्यायाम!" सचमुच यह राष्ट्र के जीवन-रस का स्रोत है। तन्दुरुस्ती का यह बीमा है। नीरोग विचारों का यह मित्र है। निर्भयता का यह ख़ज़ाना है। जीवनानन्द का यह मन्त्र है। यूनान के लोग जिस समय व्यायाम के प्यारे थे, उसी काल में उन्होंने दर्शन, कला, विज्ञान की नींव डाल दी थी। उनका उसी समय का आदर्श आज योरप को स्फूर्ति दे रहा है और उन्हीं प्राचीन नामों को अमर कर रहा है। यूनान की सङ्गतराशी के नमूने, उनके पहलवानों और वीरों की मूर्तियाँ आज भी उनकी उस निर्मल कीर्ति की याद दिलाती हैं। जाति जब तक अपने बच्चों को व्यायामशालाओं मे भेजती रहती है, जब तक वह बराबर उत्साह और उत्तेजना देकर अपने वीरों की वृद्धि करती रहती है, जब तक वह अपनी स्त्रियों को लड़कों की तरह तन्दुरुस्त, सुडौल और फुरतीला बनाने के लिए व्यायाम कराती रहती है, वह जाति अथवा राष्ट्र सदा स्वतन्त्र और बलशाली बना रहता है। जर्मनी ने उस तत्त्व को पा लिया है। लड़के नाचघरों में जाते हैं, लड़कियाँ कीनो-थिएटरों मे अपने प्रेमियों से मिलती हैं, शराब मांस का व्यवहार ख़ूब होता है, औरत-मर्द ख़ूब सिगरेट पीते हैं। पर ये सब करते हुए वे अपने शरीर को और व्यायामशाला को भूल नहीं जाते। वे जीवन-रस को उत्पन्न करने में बराबर प्रयत्नशील रहते हैं।
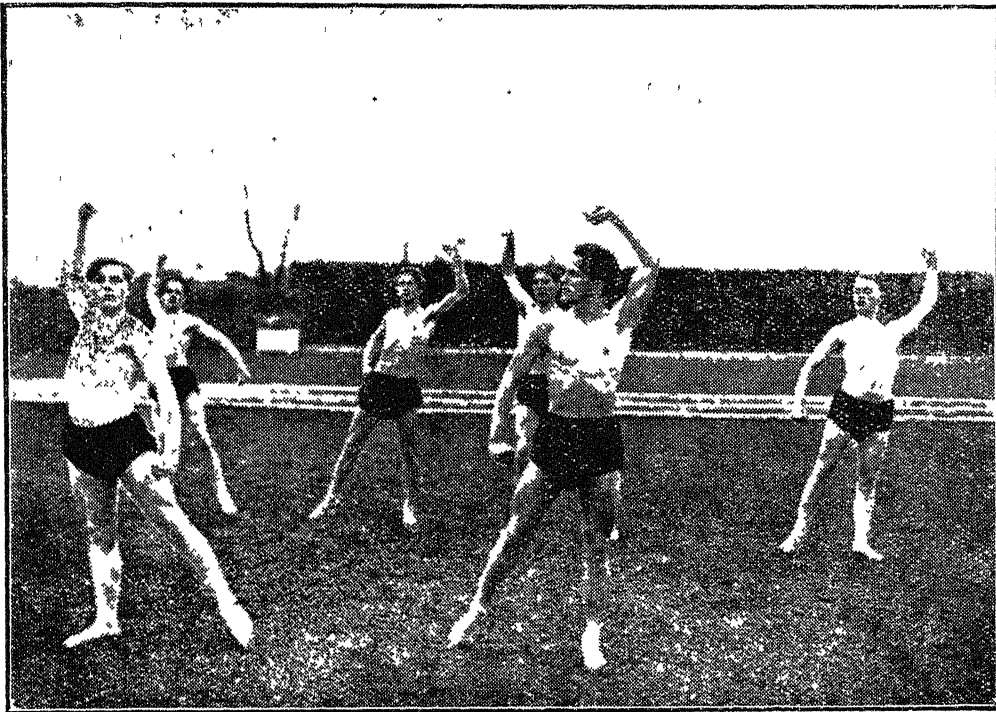
झील के किनारे जर्मन नवयुवक मातृ-भूमि का ध्यान धर व्यायाम कर रहे हैं

अगर कोई राष्ट्र ऐसा भाग्य-शाली हो, जो सच्चे सुखद सात्विक आदर्श को पा जाय, जिसे अखण्ड-जीवन-पुञ्ज का पता प्राप्त हो, जो जीवन-रस के स्थायी-स्रोत के सरस अमृत का रसास्वादन कर चुका हो, जिसे उसका शुद्ध मार्ग अवगत हो जाय और वह उस दिव्य-स्रोत

बर्लिन के सुप्रसिद्ध क्रीड़ा-भवन में लड़कियां पानी में कूद कर कसरत कर रही हैं।

छत्तीस फीट की ऊँचाई से कूद रही हैं

की ओर योरप के परमपुरुषार्थ को साथ लेकर चल पड़े तो फिर सचमुच सोना और सुगन्ध

वाली बात हो। पवित्र आदर्शों को रखनेवाले लड़के और लड़कियाँ, आध्यात्मिक भावों में पले हुए नागरिक जब हज़ारों की संख्या में, प्रातः और सायं, व्यायामशालाओं से निकलें, जब राष्ट्र की उन्नति के जय-नाद से ये वीर और वीराङ्गनायें चारों दिशाओं को गुँजा दें, तो उस समय संसार में एक नये—अभयदान के—युग का प्रादुर्भाव होगा। फ़्रांस की क्रान्ति ने जो राष्ट्रीय युग उत्पन्न किया था, वह भूचाल की भयङ्कर गति का परिणाम है। उसमें साम्राज्य-लोलुपता, इन्द्रिय-सुख-लालसा और प्रकृतिवाद भरा हुआ है। संसार राष्ट्रीयता के सात्विक स्वरूप की प्रतीक्षा कर रहा है। सभ्य-देशों के लाखों नर-नारी उस नये युग के आध्यात्मिक राष्ट्रवाद के लिए तड़प रहे हैं।

राष्ट्र-शक्ति के जीवन-रस के स्थायी स्रोत का दिव्य-दर्शन केवल भावी भारत-राष्ट्र ही करा सकता है। हमें केवल योरप के परम पुरुषार्थ की आवश्यकता है। योरप में आज जर्मनी उस परम पुरुषार्थ में सिरताज है। योरप के महा-समर ने जर्मनी के अहङ्कार को तोड़ दिया। यह बड़ा ही अच्छा हुआ। जर्मन तो अपने सिवा किसी दूसरे को कुछ समझते ही नहीं थे। अब भी बहुतों में वह निपट स्वार्थ की बू बाक़ी है। महासमर के बाद से जर्मनों में नम्रता आने लगी है। परम पुरुषार्थ में वे सारे योरप से आगे हैं। इसी लिए हमने जर्मनी के बालक-बालिकाओं के चित्र अपने देशवासियों के भेंट किये हैं। आज इस हिन्दू-सङ्गठन के युग में हमें जर्मनी के परम पुरुषार्थ को हृदयङ्गम कर लेना चाहिए। प्रत्येक ग्राम, क़स्बे और नगर में व्यायामशालायें स्थापित कर प्रत्येक बालिका तथा बालक को वहाँ भेजना चाहिए। ज़मीन में से गड़ा हुआ धन निकाल कर आज राष्ट्र-शक्ति का जीवन-रस उत्पन्न करना उचित है। लड़कियों को गहनों से न लाद कर उन्हें सुडौल, फ़ुर्तीली, निर्भय और वीराङ्गना बनाइए। ऐसी लड़कियाँ जो गुण्डों की मरम्मत कर सकें, स्टेशन, बाग़ों में बेखौफ़ घूम सकें। हमारा अध्यात्मवाद, हमारी उपनिषदें, व्यायाम-रूपी मन्दिरों के बिना, कोरे शब्द-जञ्जाल बनी रहेंगी।

परमात्मन्, क्या मैं भी अपने देश के हज़ारों लड़के और लड़कियों को खुले मैदानों में कवायद करते हुए देखूँगा। प्रभो, मेरी यह शुभ इच्छा पूर्ण कर।

सत्यदेव परिव्राजक

देश की दो बातें

[श्रीयुत ज्ञ]

१—खेती के महकमे की कुछ बातें

वैज्ञानिक खेती की बड़ी महिमा है। उसकी बदौलत अन्य देश मालामाल हो रहे हैं। विज्ञान-सम्मत ढङ्ग से खाद तैयार करके डालने, ज़मीन को जोतने, सुधरे हुए हलों, औज़ारों और कलों को काम में लाने, अच्छा बीज बोने वग़ैरह ही का नाम वैज्ञानिक खेती है। पर उसका यहाँ, इस देश में, प्रायः अभाव है। "प्रायः" इसलिए कि अब कहीं कहीं इस तरह की खेती का सूत्रपात होगया है। परन्तु इस सूत्रपात का सम्बन्ध राजे-रईसों और बड़े बड़े ज़मींदारों ही से अधिक है। और इस तरह के लोग इस देश में—विशेषतः अपने प्रान्त में—बहुत ही थोड़े हैं। फ़ी एक या दो हज़ार कृषकों पीछे यदि एक ज़मींदार या अन्य किसी धनी आदमी ने वैज्ञानिक ढङ्ग से कुछ कृषि की भी तो उससे सर्व-साधारण कृषकों की दशा नहीं सुधर सकती।

भारत के कृषक प्रायः अपढ़, अशिक्षित और निर्धन हैं। ऐसे आदमियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे विज्ञान-सम्मत खेती कर सकेंगे। फिर न उनके पास मौरूसी ज़मीन है; न उनको और उनके बच्चों को आधुनिक ढङ्ग की कृषि से सम्बन्ध रखनेवाली शिक्षा देने ही का कुछ प्रबन्ध है। कृषि-विषयक सरकारी रिपोर्टें और पुस्तकें जो निकलती हैं वे सब अँगरेज़ी में निकलती हैं। कृषकों में जो लोग थोड़ी बहुत अपनी भाषा जानते भी हैं वे अँगरेज़ी नहीं जानते। अतएव ये सारे प्रबन्ध या आडम्बर उनके लिए कुछ अर्थ नहीं रखते। जब तक सरकार देहाती मदरसों में—सर्वत्र नहीं तो ख़ास ख़ास मदरसों ही में—कृषि की शिक्षा दिलाने का प्रबन्ध नहीं करती और जब तक कृषकों को उनकी ज़मीन पर मौरूसी हक़ नहीं प्राप्त होता तब तक विशेष रूप से वैज्ञानिक ढङ्ग की खेती होना असम्भव है।

इन सब विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी प्रजावत्सल सरकार कृषकों के लाभ के लिए कुछ न कुछ प्रयत्न करही रही है। उसने कृषि का एक महकमा खोल रक्खा है और बड़ी बड़ी तनख़्वाह पानेवाले अफ़सर भी मुक़र्रर कर रक्खे हैं। हर ज़िले और कहीं कहीं हर तहसील में भी कृषि-शास्त्र के वेत्ता कर्म्मचारी भी उसने नियत कर दिये हैं। ये लोग कई प्रकार से सुधरी हुई कृषि की शिक्षा कुछ कृषकों को दिया करते हैं। जहाँ ये लोग रहते हैं वहाँ कई तरह के अच्छे बीज, हल, कृषि के औज़ार आदि भी रहते हैं। वे कृषकों के हाथ बेचे जाते हैं। उनसे होनेवाले लाभ भी उन्हें बताये जाते हैं। कृषि-विषयक नुमायशें भी की जाती हैं। मेले-ठेलों में कृषकों को जमा करके उन्हें उनके काम की बातें बताने का भी प्रबन्ध किया जाता है।

कृषि के महकमे के बड़े साहब को एक बात का बड़ा नाज़ है। अपनी पिछली वार्षिक रिपोर्ट में उस पर उन्होंने बहुत कुछ बहस की है। उस बहस का सम्बन्ध "फ़ार्मों" अर्थात् चकों से है। जिनके पास काफ़ी ज़मीन, काफ़ी रुपया और काफ़ी साधन हैं वे एक ही जगह सौ सौ, दो दो सौ, या इससे भी कम-बढ़ ज़मीन को चक का रूप देने और उसमें सुधरे हुए गेहूँ, जौ, चना, कपास, गन्ना आदि बोते हैं। बढ़िया औज़ारों से काम लेकर पम्पों वग़ैरह से सिँचाई भी करते हैं। इन कामों में सरकार उनके मालिकों को अनेक प्रकार की मदद भी देती है। किसी किसी को वह रुपया भी देने की कृपा करती है। बहुतों से वह इक़रारनामे लिखा लेती है। उनमें और और बातों के सिवा यह भी शर्त रहती है कि तुम्हारे चक में जो अनाज पैदा हो वह सरकार ही को दिया जाय, ताकि वह अन्य कृषकों को बोने के लिए बेचा जा सके। यह शर्त केवल उन लोगों के लिए होती है जो अपने निज के चक खोलते हैं। सरकारी चकों के लिए यह बात चरितार्थ नहीं। वे तो सर्व-साधारण के लाभ के लिए ही खोले गये और खोले जाते हैं। इस प्रबन्ध से कुछ न कुछ लाभ तो ज़रूर

पहुँचता है; परन्तु छोटे छोटे कृषक इससे बहुत ही कम लाभान्वित हो सकते हैं। निज की ज़मीन और रुपया पास न होने से वे चक नहीं खोल सकते। उनमें से अधिकांश को तो यह भी ख़बर नहीं कि चक क्या चीज़ है, उसमें होता क्या है और उसे खोलने के लिए क्या काररवाई करनी पड़ती है। जो कृषक किसी शहर या किसी चक के पास रहते हैं उन्हें इन बातों का कुछ ज्ञान अवश्य हो जाता है। ऐसे लोग कभी कभी और कुछ नहीं तो चकों से अच्छा बीज ही लेकर उससे कुछ लाभ उठा लेते हैं।

महकमे ज़िरात के डाइरेक्टर क्लार्क साहब ने अपनी रिपोर्ट में इन चकों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। उनका कथन है कि १९२३ ईसवी में ख़ास ख़ास आदमियों के ३६० चक, इन प्रान्तों में, थे। उनमें वैज्ञानिक किंवा सुधरे हुए ढङ्ग से खेती होती थी। उनकी निगरानी सरकार के कृषि-विद्या-विशारद कर्म्मचारियों के द्वारा होती थी। १९२७ के जून में इन चकों की संख्या बढ़कर ७५९ होगई थी। ये सब ४४ ज़िलों में फैले हुए थे। इनके सिवा कुछ कृषकों ने अपनी "सीर" ही को चक का रूप दे दिया था। ये चक छोटे छोटे थे और संख्या में १४३ थे। सो, जैसा कि ऊपर एक जगह लिखा जा चुका है, जिनके पास ज़मीन अधिक है या कम से कम जिनकी ज़मीन "सीर" लिखी जाती है वही, अर्थात् केवल तअल्लुक़ेदार या ज़मींदार ही, इस तरह के चक खोल सकते हैं। दस दस पाँच पाँच बीघे के बेचारे शिकमी या हक़दार काश्तकार इन्हें नहीं खोल सकते। फिर भी सरकार को इस बात का गर्व-सा है कि इन चकों की बदौलत वैज्ञानिक या सुधरे हुए ढङ्ग की खेती का प्रचार सूबे में दूर दूर तक हो रहा है। परन्तु इस नोट का लेखक देहात में बैठे हुए जहाँ यह नोट लिख रहा है वहाँ वैज्ञानिक खेती का प्रचार होना तो दूर, उसका नाम या किसी चक का पता तक, किसी साधारण कृषक को नहीं।

चक खोलने के लिए सरकार, बड़ी कृपा करके, खोलनेवालों को इमदाद भी देती है। १९२६-२७ में, इस मद में, उसने ३२ हज़ार रुपया दिया था और १९२७-२८ में वह ६३ हज़ार देनेवाली थी। यह पिछला रुपया उसने अब तक दे भी डाला होगा और वह २५ चकों के मालिकों को मिला होगा। मालूम नहीं हो सका कि ये भाग्यशाली चक कौन हैं और किस किसको कितना कितना रुपया मिला। जो चक इक़रारनामा लिख देते हैं कि चकों में पैदा हुआ अनाज वे सरकार के बीज-भाण्डारों ही के हाथ बेचेंगे उन्हीं को यह इमदाद ज़ियादह मिलती है। मगर चकवाले कभी कभी इस शर्त को पूरा नहीं कर सकते। चुनांचे १९२७-२८ में जितना बीज सरकार को मिलना चाहिए था उसका फ़ी सदी ७८ ही मिला। फ़सल की पैदावार कम होने या ख़राब जाने से शायद चकवाले इस शर्त की पाबन्दी न कर सके होंगे।

जिस मतलब से सरकारी चक खोले गये हैं उसी मतलब से सर्वसाधारण के निजी चक भी खोले गये हैं। परन्तु इन पिछले चकों से कृषकों को अधिक लाभ पहुँच सकता है। क्योंकि वे उन चकों में प्रायः बिना रोक-टोक के जा सकते और बीज, हल, पम्प, बोने और सींचने वग़ैरह का ढङ्ग आसानी से देख सकते हैं। जिन चकों को सरकार इमदाद देती है उनसे अब वह कुछ और शर्तें भी करानेवाली है। उन्हें बाहरी कृषकों को अपने हल और नये ढङ्ग के औज़ार दिखाने पड़ेंगे। जिन चकों में अमेरिका और विलायत के जैसे यंजिनों से चलनेवाले हल काम में लाये जाते हैं उन्हें सरकारी मुलाज़िमों की निगरानी में उनसे जुताई करनी पड़ेगी और ख़र्च तथा आमदनी का हिसाब भी रखना पड़ेगा। इससे यह मालूम हो जाया करेगा कि ऐसी जुताई से कृषकों को कितना लाभ हो सकता है। उन्हें उन कीड़ों या रोगों से फ़सल को बचाने का भी उपाय लोगों को बताना पड़ेगा जो गन्ने की काश्त को नुक़सान पहुँचाते हैं।

महकमा ज़िरात ने इस सूबे की २०२ तहसीलों में कृषि-विद्या-विशारद कर्म्मचारियों को नियत कर दिया है। वे काश्तकारों को सलाह-मशविरा देने के लिए तैनात किये गये हैं। सुधरी हुई कृषि के सम्बन्ध में जो कृषक उनसे कुछ पूछते हैं वह उन्हें बताया जाता है और यथाशक्ति उनकी मदद हर तरह की जाती है। इसके सिवा

हर ज़िले के सदर मुक़ाम में महकमे के अफ़सरों ने बीज-भाण्डार और अच्छे अच्छे हल, फाल वग़ैरह रखने की कोठियाँ खोल रक्खी हैं। वहां से काश्तकारों को ये चीज़ें मुनासिब क़ीमत पर मोल मिल सकती हैं। पहले तो अच्छा बीज कम तैयार होता था और बिकता भी कम था। पर अब उसकी आमदनी बढ़ गई है और काश्तकार ख़रीदने भी अधिक लगे हैं। क्योंकि उन्हें अच्छे बीज की महिमा मालूम हो गई है। चुनांचे रिपोर्ट के साल २ $\frac{1}{8}$ लाख मन से भी कुछ अधिक बीज कृषकों में बांटा गया था। यह तो सरकारी बीज-भाण्डारों या बीज की कोठियों की बात हुई। सर्वसाधारण के चकों में पैदा हुआ भी बहुत सा बीज लोगों ने ख़रीदा था।

दक्षिण में एक जगह कोयमबटूर है। वहां सरकार ने नई नई तरह के गन्ने पैदा किये हैं। उनका प्रचार वह देश भर में करना चाहती है। पहले वहा से २१३ नम्बर का एक गन्ना मँगाया गया था। इस प्रान्त में जो वह बोया गया तो उससे फ़ी एकड़ ८१ मन शकर बनी। पर अब जो २९० नम्बर का गन्ना आया है और कहीं कहीं बोया गया है उससे ११४ मन फ़ी एकड़ के हिसाब से शकर बनी है। महकमा ज़िरात के डाइरेक्टर साहब इस पर बहुत प्रसन्न हैं। उनकी राय शायद यह है कि यदि यही गन्ना सर्वत्र बोया गया तो बोनेवाले कृषक ज़रूर ही मालामाल हो जायँगे। तथास्तु।

सरकार ने कई जगह बढ़िया बढ़िया सांड़ रख छोड़े हैं। उनसे वह अच्छी नसल के बैल पैदा कराकर उन्हें कृषकों के हाथ बेचती है। १९२६-२७ में उसने इस तरह पैदा किये गये १६२ बैल बेंचे वह इनकी उत्पत्ति और बिक्री के दिन पर दिन बढ़ने की आशा रखती है। पर ये बैल ऐरे-ग़ैरे काश्तकारों के लिए दुर्लभ ही समझिए। इतना रुपया उनके पास कहां? उन बेचारों को यदि साठ-सत्तर रुपये ही की जोड़ी मिल जाय तो वे अपना सौभाग्य समझें।

सरकारी चकों से सरकार को पहले बहुत नुक़सान होता था। पर अब, बहुत कुछ रोने-पीटने पर, कुछ मुनाफ़ा होने लगा है। १९२६-२७ में, ख़र्च बाद देकर, कोई ९ हज़ार रुपया सरकार के पल्ले पड़ा।

२—कोर्ट आफ़ वार्ड्स की कारपरदाज़ी

रियाया को गवर्नमेंट अपनी सन्तति समझती है। अर्थात् वह हुई माँ-बाप और रियाया हुई उसके बाल-बच्चे। सरकार का यह दावा यों तो सभी साधारण जनों के विषय में है। तथापि अपढ़ों, अशिक्षितों और दीन-दुखियों के विषय में वह कुछ अधिक अर्थ रखता है। क्योंकि अपने वक्तव्यों और घोषणा-पत्रों में गवर्नमेंट का लक्ष्य अधिकतर इन्हीं लोगों ("Masses") की ओर रहता है। परन्तु कुछ लोग उसके इस दावे को दाद नहीं देते; वे इसमें मीन-मेख लगाते हैं। वे कहते हैं कि मा-बाप अपने बाल-बच्चों को यथाशक्ति अच्छे कपड़े पहनाते, अच्छा खाना खिलाते, अच्छी शिक्षा देते और बीमार पड़ने पर उनकी रोग-चिकित्सा का अच्छा प्रबन्ध करते हैं। पर सरकार यह कुछ नहीं करती और करती भी है तो बहुत थोड़ा। यदि वह अपने इस विषय के कर्तव्य का यथेष्ट पालन करती तो इस देश और विशेष करके इस प्रान्त में इतनी निरक्षरता, इतनी ग़रीबी, इतनी बीमारियाँ और इतनी मौतें न होतीं। ख़ैर। इस सम्बन्ध में सरकार का दावा सही हो या ग़लत, हम यहां इस पर बहस नहीं करना चाहते। हम माने लेते हैं कि सरकार का यह दावा या वक्तव्य या तो ठीक नहीं या इसमें बहुत कुछ अत्युक्ति है। परन्तु जन-समुदाय के एक अंश-विशेष के सम्बन्ध में उसका यह दावा बिलकुल सही है। इस समुदाय से हमारा मतलब राजों, महाराजों, रईसों तअल्लुक़ेदारों और ज़मींदारों से है। क्योंकि उनकी रक्षा-दीक्षा आदि के प्रबन्ध का भार उसने, कुछ विशेष स्थितियों में, अपने ही ऊपर ले रक्खा है। साधारण जन चाहे अपनी जायदाद और घर-द्वार नष्ट ही क्यों न कर दें; चाहे अनेक व्यसनों में फँसकर अपना सर्वनाश ही क्यों न कर डालें, चाहे कुमार्गगामी बनकर अपने बाल-बच्चों को दर दर भीख माँगने ही को मजबूर क्यों न करें; सरकार सदा तटस्थही रहेगी। पर यही बातें यदि किसी राजे-रईस में पाई जायँ और सरकार को ख़बर हो जाय तो वह तुरन्त उसकी रक्षा करने को दौड़ पड़ेगी। इसी से हम कहते हैं कि जन-समुदाय के इस अंश को वहा किसी

हद तक अवश्यही अपनी सन्तति समझती है। इसी से शायद ये लोग भी प्रायः सरकार के अनन्यभक्त देखे जाते हैं। ये उसके शासन-सम्बन्धी कामों की बहुतही कम मुख़ालिफ़त करते हैं; सदा उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करते हैं; साधारण प्रजा के नायकों के स्वर में स्वर मिलाकर उसकी त्रुटियों की आलोचना करने की कम हिम्मत दिखाते हैं।

अनेक कारणों से राजे-रईसों के राजपाट या जायदाद का प्रबन्ध ठीक ठीक नहीं होता या नहीं हो सकता। करोड़ीमल का करोड़ों का व्यवसाय, कुप्रबन्ध के कारण, बैठ जाय, सरकार की बला से। पर महाराज महाबलसिंह के राज्य को सरकार, इस कारण, हरगिज़ हरगिज़ नष्ट न होने देगी। वह स्वयंही उसके प्रबन्ध का भार अपने ऊपर ले लेगी। इसलिए उसने एक क़ानून बना रक्खा है। उसका नम्बर ४ है। वह १९१२ ईसवी में बना था। नाम है उसका—कोर्ट आव् वार्ड्स ऐक्ट—अर्थात् वार्डों का क़ानून। जो लोग अपना राज-पाट स्वयंही नहीं सँभाल सकते उन्हें सरकार अपने रक्षाधीन कर लेती है। अतएव अँगरेज़ी-शब्द वार्ड (Ward) का अर्थ हुआ—ऐसा मनुष्य जिसकी रक्षा या जिसकी देखभाल कोई और करे और वही कोई और उसकी जायदाद को भी सँभाले।

इस क़ानून की दफ़ा ८ में उन स्थितियों का निर्देश कर दिया गया है जिनके उपस्थित होने पर सरकार राजे-रईसों और उनके राज-पाट को अपनी छत्रच्छाया में ले लेने की कृपा करती है। उसने नीचे निर्दिष्ट किये गये लोगों को अपनी जायदाद का प्रबन्ध करने के अयोग्य क़रार दिया है—

(१) नाबालिग़।

(२) स्त्रियां, जो अपनी रियासत की देखभाल ख़ुद करने की योग्यता नहीं रखतीं।

(३) जिनका दिमाग़ ठीक नहीं अर्थात् जिनको किसी दीवानी अदालत ने पागल क़रार दिया है।

(४) जो लोग मानसिक या शारीरिक विकार या व्यङ्ग के कारण अपनी जायदाद का प्रबन्ध आप नहीं कर सकते, जिन्होंने कोई इतना बड़ा जुर्म किया है जिसमें ज़मानत नहीं, जिनका चाल-चलन अच्छा नहीं और जो बिला वजह अपना क़र्ज़ नहीं अदा कर सकते।

सो, आप देख लीजिए, इन लोगों की बहबूदी के लिए सरकार कितना कष्ट उठाने और अपने ऊपर कितना भार-वहन करने को तैयार रहती है। अतएव आप जान सकेंगे कि हमारा यह कथन कि इन लोगों के साथ सरकार का बर्ताव माता-पिता ही के सदृश है, कहाँ तक ठीक है।

रक्षाधीन रियासतों की निगरानी की ज़िम्मेदारी इस सूबे के बोर्ड आव् रेवेन्यू के ऊपर है। उसने ऐसी रियासतों का काम देखने के लिए हर ज़िले में एक एक मैनेजर और उसके मातहत बहुत से कर्म्मचारी रख छोड़े हैं। वे अपने अपने ज़िले के कलेक्टर या डिपुटी कमिश्नर की मारफ़त अपनी सालाना रिपोर्टें बोर्ड को भेजते हैं। उन सबकी जांच करके बोर्ड अपनी रिपोर्ट गवर्नमेंट को भेजती है। बोर्ड की पिछली रिपोर्ट, आक्टोबर १९२५ से सितम्बर १९२६ तक के १२ महीनों की, कोई १९ महीने बाद, अभी (अप्रेल १९२८ में) निकली है। काम बहुत अधिक होने के कारण बोर्ड के और गवर्नर साहब के भी दफ़्तरों में इस तरह की रिपोर्टों की आलोचना और तैयारी में योंही देर लगती है। उधर कोर्ट के अफ़सर भी समय पर अपनी रिपोर्टें नहीं भेजते। इसी से साल साल डेढ़ डेढ़ साल की बासी हो जाने पर लोगों को उनके दर्शन होते हैं। पर इसे आप कोई बड़ी बात न समझिए। सरकारी चक्की बहुत धीरे धीरे पीसती है, परन्तु पीसती खब बारीक है।

जिस साल की रिपोर्ट की आलोचना हो रही है उसमें १९२ रियासतें कोर्ट की ज़ेर-निगरानी रह गईं। उसके पहले १९७ थीं। १७ $\frac{1}{4}$ लाख सालाना आमदनी की १८ रियासतें उनके मालिकों को सौंपी गईं और १४ नई रियासतों के प्रबन्ध का भार कोर्ट ने अपने ज़िम्मे लिया। सुलतांपुर ज़िले में एक रियासत कुड़वार है। उसकी सालाना आमदनी २ $\frac{1}{2}$ लाख के क़रीब होने पर भी उस पर २५ हज़ार का क़र्ज़ है। इस समय एक स्त्री इस रियासत की मालिक है। उससे रियासत का प्रबन्ध

न होते देख सरकार ने इस रियासत को अपनाया है। यही हाल हरदोई ज़िले की भरांवां-रियासत का भी है। उसकी सालाना आमदनी डेढ़ लाख से अधिक होने पर भी उस पर तीन लाख के क़र्ज़ का बार है! इतनी आमदनी होने पर भी इतना क़र्ज़! कितने अफ़सोस की बात है। धन्यवाद है अँगरेज़ी गवर्नमेंट को। यदि उसका वात्सल्य-भाव इन रियासतदारों पर इतना अधिक न होता तो इनमें से अनेक रईस क़र्ज़ में डूबतेही चले जाते और धीरे धीरे अपनी सारी जायदाद बेंच खाते। यह हाल उन्हीं रियासतों का नहीं जिनकी मालिक स्त्रियां हैं। ऐसी भी कितनीही रियासतें हैं जिनके मालिक पुरुष हैं। पर वे भी उनका प्रबन्ध नहीं कर सकते। अतएव कभी ख़ुशी से, कभी नाख़ुशी से, उन्हें भी अपने राज-पाट का प्रबन्ध सरकार को सौंप देना पड़ता है। मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले में एक रियासत है। उसका नाम है—मुज़फ़्फ़रअलीख़ाँ की जायदाद। उसकी सालाना आमदनी तो सिर्फ़ ४३ हज़ार रुपया है, पर क़र्ज़ है उस पर ३ लाख का। ख़ुदा की मार तो देखिए। जो प्रबन्ध-निपुण हैं उनके पास तो अंगुल भर भी ज़मीन नहीं। पर जो निरे काठ के पुतले या अयोग्य हैं उनके पास लाखों की जायदाद। सरकारी मालगुज़ारी अदा करने पर भी जिन्हें साल में पच्चीस तीस हज़ार की बचत रहती है उनका गुज़र-बसर उतने से नहीं चलता। वे लाखों रुपया क़र्ज़ लेकर गुलछर्रे उड़ाते हैं और कुछ समय बाद सरकार से कहते हैं—हमसे अपनी रियासत का प्रबन्ध नहीं हो सकता। लीजिए, उसे सँभालिए और हमारा क़र्ज़ अदा कीजिए। मुज़फ़्फ़रपुर की पूर्वनिर्दिष्ट रियासत के मालिक ने एक ऐसीही दरख़्वास्त सरकार के दरबार में पेश करके अपने प्रबन्ध-कौशल का प्रमाण दिया है। कोर्ट आव् वार्ड्स ऐक्ट की दफ़ा १० के मुताबिक़ सरकार को उनकी यह दरख़्वास्त मंज़ूर करनी पड़ी है।

रायबरेली के ज़िले में एक रियासत है मुरारमऊ। उसके रईस राजा कहलाते हैं। उसकी दशा बहुतही दयनीय है। उसे कोर्ट की ज़ेर-निगरानी आये कोई ३० वर्ष हो चुके। पर अब तक भी उसका क़र्ज़ बेबाक़ नहीं हुआ। उसकी आमदनी कुछ कम डेढ़ लाख सालाना है। माल-गुज़ारी उसे ५५ हज़ार सालाना देनी पड़ती है। इसका यह अर्थ हुआ कि इस रियासत की सालाना बचत कम से कम अस्सी नब्बे हज़ार रुपया ज़रूर है। इसी इतनी अधिक आमदनी की रियासत पर १५ $\frac{1}{2}$ लाख रुपये के लगभग क़र्ज़ हो गया। यह बात १८६८ ईसवी की है। नतीजा यह हुआ कि इलाक़ा कोर्ट के अधीन हो गया। रियासत के मालिक राजा साहब जब मरे तब उनके पुत्र नाबालिग थे। अतएव १६११ ईसवी में क़ानून की एक नई दफ़ा के अनुसार इलाक़ा फिर भी कोर्ट ही में बना रहा। जब वारिस राजा बालिग़ हुए तब चाहिए था कि इलाक़े को कोर्ट छोड़ देती। मगर उसने नहीं छोड़ा। छोड़े कैसे? क़र्ज़ तब तक अदाही न हुआ था। इस कारण १६१८ ईसवी में उसने एक और ही दफ़ा की रू से इलाक़े को अपने ही क़ब्ज़े में रक्खा। राजा साहब को गवर्नमेंट शायद अपने इलाक़े का प्रबन्ध करने योग्यही नहीं समझती। तभी तो वह उसे अब तक अपने अधीन किये हुए है। ३० सितम्बर १६२६ को इस रियासत पर क़र्ज़ का बार घटते घटते ४ $\frac{1}{4}$ लाख के क़रीब रह गया था। मुमकिन है, इस समय वह तीनही लाख रह गया हो। पर छोड़ना न छोड़ना सर्वथा सरकार के ऊपर अवलम्बित है। यदि वह समझे कि रियासत के मालिक योग्य नहीं तो उसे अख़्तियार है कि क़र्ज़ अदा हो जाने पर भी वह रियासत को अपने ही प्रबन्ध में बनी रहने दे। सोचने की बात है कि लाख डेढ़ लाख साल की आमदनी होने पर भी, ३० साल में भी, १५ $\frac{1}{2}$ लाख का क़र्ज़ चुकता नहीं हो सका। क़र्ज़ जल्द अदा करने के लिए बहुत सुप्रबन्ध और किफ़ायतशारी की ज़रूरत होती है। समझदार और प्रबन्धकुशल होने से यह काम रियासतदारही अच्छी तरह और जल्द कर सकता है। कोर्ट तो अपने मुलाज़िमों से सब काम कराती है। अतएव रियासतों को यदि फ़ी सदी १२ से १५ तक प्रबन्ध का ख़र्च पड़े तो आश्चर्य्य की कोई बात नहीं। रियासतें अपने कर्म्मों का फल भोगें।

कोर्ट के प्रबन्ध में ख़र्च अधिक पड़ता है, इसमें सन्देह नहीं। पर रियासतें बरबाद या बिक जाने से तो बच जाती हैं। देर सबेर क़र्ज़ही नहीं अदा हो जाता, कोर्ट

की बदौलत आमदनी भी बढ़ जाती है। बोर्ड की रिपोर्ट में एक नक़्शा दिया हुआ है। उसमें उन रियासतों के तहसील-वसूल का हिसाब है जिन्हें कोर्ट ने, रिपोर्ट के साल, छोड़ा है। उससे मालूम हुआ कि रियासतें छोड़ने पर कोर्ट ने हज़ारों, किसी किसी रियासत को, लाखों रुपये बचाकर नक़द भी दिये। उदाहरण के लिए नानपारे को लीजिए। १६०५ ईसवी में वह कोर्ट की ज़ेर-निगरानी आया था। उस समय उस पर ८ लाख से भी अधिक क़र्ज़ था। बीस इक्कीस वर्ष बाद कोर्ट ने वह सब अदा करके ४ लाख रुपया बचत में दिखा दिया। कोर्ट होने के समय रियासत की आमदनी १ लाख ३ हज़ार थी। १६२६ में, छोड़ने पर, बढ़ कर वह १ लाख १७ हज़ार हो गई थी। यही हाल और भी कितनी ही रियासतों का समझिए।

जो कम-उम्र रियासतदार कोर्ट के अधीन होते हैं उनकी शिक्षा का प्रबन्ध भी वह करती है और पढ़ना छोड़ने पर उन्हें रियासत का काम भी सिखलाती है। पर कुछ लोग काम सीखने में मन नहीं लगाते। इस बात की शिकायत बोर्ड आफ़ रेवेन्यू कई दफ़े कर चुकी है।

कोर्ट आव् वार्ड्स की जो रिपोर्ट इस समय हमारे सामने है उसमें और भी कितनी ही बातें विचारणीय और आलोचनीय हैं। पर उन सब पर भी कुछ लिखकर इस नोट को अधिक लम्बा करना सरस्वती पर अन्याय करना होगा।

३—काग़ज़ातदेही के महकमे की रिपोर्ट

पृथ्वी का एक नाम वसुन्धरा भी है। संस्कृत में 'वसु' का अर्थ है धन और 'धरा' का है धारण करनेवाली। पृथ्वी का यह नाम बहुत ही अन्वर्थक है। यह सचमुच ही धनधारिणी है। उसके पेट में हीरे, पन्ने, लाल आदि रत्न और सोना, चाँदी, लोहा, अभ्रक आदि धातुएँ तो भरी हैं ही; उसके ऊपर जो उद्भिज्ज उत्पन्न होते हैं वे भी धन के दाता हैं। किम्बहुना जितने प्रकार के अन्न और शाक आदि पदार्थ हैं वे भी हमें उसी की बदौलत प्राप्त होते हैं। पृथ्वी की इसी धनधारकता के कारण उसे प्राप्त करने की इच्छा सबको होती है। ये युद्ध, मारकाट, लूट-खसोट आदि सभी कुछ इसी से होता है कि पृथ्वी अपने कब्ज़े में आ जाय और उससे हम ऐशो-आराम के सामान प्राप्त कर सकें। पृथ्वी की इसी बहु-मूल्यता के कारण सभ्य और शिक्षित नरेश तथा राज-पुरुष उसके चावल चावल का हिसाब रखते हैं। उसके कितने अंश में खेत-पात हैं, कितने में बाग़ात हैं, कितने में तालाब हैं; उसका कितना अंश उर्वरा, कितना रेतीला और कितना परिन्द पड़ा हुआ है, इसकी नाप-जोख वे समय समय पर किया करते हैं। किसके पास कैसी और कितनी ज़मीन है, उस पर उसका किस ढंग का कब्ज़ा है—वह उसकी मौरूसी जायदाद है या चन्दरोज़ ही के लिए उसने उसका ठेका-सा ले रक्खा है—उसके और गवर्नमेंट या ज़मींदार के दरमियान किस तरह की शर्तें हुई हैं; वह कभी बेदख़ल भी हो सकता है या नहीं—इन सब बातों का हिसाब और इन्दराज भिन्न भिन्न पुस्तकों और रजिस्टरों में रक्खा जाता है। यहाँ तक कि ज़मीन के छोटे से भी छोटे टुकड़े को नम्बर दे दिया जाता है और नक़्शों में उसकी लम्बाई-चौड़ाई और शकल-सूरत तक लिख ली जाती है। इन रजिस्टरों और नक़्शों में तरमीम होती रहती है। जो लोग ये काग़ज़ात बनाते और रखते हैं वे पटवारी कहाते हैं। उनके ऊपर क़ानूनगो और सदरक़ानूनगो आदि रहते हैं। सारे महकमे की निगरानी का काम एक डाइरेक्टर के सिपुर्द रहता है। इस सूबे में इस पद पर आज-कल बाबू व्रजलाल नाम के एक सज्जन प्रतिष्ठित हैं। जान पड़ता है, वे संस्कृत में एम० ए० और हिन्दी में सम्मेलन की सर्वोच्च परीक्षा पास हैं। इसी से वे अपना नाम व्रजलाल न लिखकर "व्रिजलाल" लिखा करते हैं। आप बी० ए० होने के सिवा "रायबहादुर" भी हैं।

ज़मीन की नाप-जोख रखने के विषय में ऊपर जो कुछ लिखा गया वह गवर्नमेंट ही के विषय में लिखा गया समझना चाहिए। अपने सूबे के राजे, महाराजे और तअल्लुक़ेदार साहबान अपने को इस झञ्झट से बरी समझते हैं या बरी किये हुए हैं। उनके भी इलाक़ों की माप-तोल सरकार ही करती है। अभी, इस प्रान्त

में, कहीं कहीं जो नया बन्दोबस्त हो रहा है उसकी समाप्ति में ये लोग बहुधा ज़िले के सदर मुक़ाम मे बुलाये जाते हैं। वहाँ इन्हें बताया जाता है कि आपकी रियासत के काग़ज़ात में अमुक अमुक तरह की तरमीम हुई है और अब से आपको बजाय इतने के इतना रुपया बतौर मालगुज़ारी के देना पड़ेगा। सरकार तो इतनी चुस्त है कि अपने प्राप्य अंश की एक कौड़ी भी नहीं छोड़ती। परन्तु इन धराधीशों में कितने ही ऐसे भी निकलेंगे जिन्हें यह भी ख़बर न होगी कि वे पृथ्वी पर रहते हैं या आकाश में। ज़मीन, बाग़, पेड़-पौधों आदि से जानकारी रखना तो दूर की बात है। अस्तु।

अच्छा तो जिस महकमे के सिपुर्द इस काम-काज की निगरानी है उसका नाम है—महकमे काग़ज़ातदेही। और महकमों की तरह वह भी अपनी सालाना रिपोर्ट सरकार के दरबार में पेश करता है। उसकी पिछली रिपोर्ट, सितम्बर १९२७ तक की, पुस्तकाकार निकले कुछ समय हुआ। उसकी कुछ बातें सुनने की इच्छा हो तो दो मिनट में सुन लीजिए—

इस महकमे के मेरुदण्ड या रीढ़ पटवारी साहबान हैं। उनके दौरदौरे की कुछ न पूछिए। तनख़्वाह तो आप बहुत ही क़लील पाते हैं, पर प्रभुता आपकी बेहद बढ़ी-चढ़ी है। सभी काश्तकार, यहाँ तक कि छोटे मोटे ज़मींदार तक, आपके अधिकारों का लोहा मानते और आपको ख़ुश रखने की चेष्टा करते रहते हैं। इन लोगों के हाथ में कुछ ऐसी कुंजियाँ या तलवारें रहती हैं कि जिसे चाहें मनमाना तङ्ग करें और ख़ुद कभी पेंच में न आवें। पर इतने प्रभुत्व के होने पर भी इनके अफ़सर इनका दम नाक में किये रहते हैं। पहले तो पटवारियों के स्कूल में कुछ समय तक पढ़ कर और इम्तहान पास करके तब कहीं इन्हें दस पन्द्रह रुपये माहवार की पटवारगिरी मिलती है। फिर इन्हें अपने छोटे छोटे अफ़सरों को अपनी कारपरदाज़ी से ख़ुश रखना पड़ता है। फिर ये हों चाहे कहीं के, अपने ही हल्के में इन्हें आबाद होना पड़ता है। फिर ज़रा ज़रा सी बातों के लिए भी इन्हें सदर और तहसील तक की दौड़ लगानी पड़ती है। जब कहीं नया बन्दोबस्त होता है तब तो इन पर क़यामत ही सी आ जाती है। बेचारे बरसों बन्दोबस्त के दफ़्तर में पकड़ बिठाये जाते हैं; पर भत्ते के नाम एक कौड़ी भी नहीं पाते। उलटा कभी कभी बड़े बड़े जुरमाने देते रहते हैं।

इन पटवारियों को पहले हर साल नये काग़ज़ तैयार करने पड़ते थे। अब कुछ समय से गवर्नमेंट और बाबू व्रजलाल (नहीं, नहीं, बिजलाल) की कृपा से काग़ज़ों की यह सालाना बदलाबदल बन्द हो गई है। यह काम अब, जैसा कि पञ्जाब में होता है, कई साल बाद हुआ करेगा। अतएव इन्हें दम मारने की अब कुछ फ़ुरसत मिला करेगी। यह प्रबन्ध अभी हाल ही में हुआ है। इस कारण इस नये काम को सिखाने, बताने या समझाने के लिए तीन चार महीने तक कुछ ज़ायद अफ़सरों की तक़र्रुरी करनी पड़ी थी। वे पटवारियों को सिखा पढ़ा कर दक्ष कर गये हैं।

संयुक्त-प्रान्त (आगरे के) क़ानूनकाश्तकारी में जो नया रद्दोबदल हुआ है उसके कारण पटवारियों का काम बहुत बढ़ गया। उन्हें नये ढंग से काग़ज़ रखने पड़े। काश्तकारों का मौरूसी हक़ छिन गया। वे केवल मृत्यु-पर्य्यन्त के हक़दार काश्तकार क़रार दिये गये। इस कारण, तथा और भी कुछ क़ानूनी तरमीमों के कारण, नये नये ख़ाने और नये नये नक़शे तैयार करने पड़े। इसकी निगरानी और जाँच के लिए छोटे-बड़े अफ़सरों को भी बहुत सिरखपी और जाँफ़िशानी उठानी पड़ी। फलस्वरूप इससे ये बातें मालूम हुईं—

(१) ४९ लाख एकड़ ज़मीन पर लोगों को मृत्यु-पर्य्यन्त काश्तकारी के हक़ मिले।

(२) ५ लाख एकड़ ज़मीन पर कब्ज़ेदारी के हक़ मिले।

(३) १८ लाख एकड़ ज़मीन पर ज़मींदारों को ख़ुदकाश्त के हक़ हासिल हुए।

पटवारी इस महकमे के हर तरह के काम से वाक़िफ़ रहते हैं। इस कारण सरकार उनकी हौसिला-अफ़ज़ाई करना चाहती है। जो पटवारी उसके अफ़सरों को लायक़ मालूम होते हैं उन्हें वे क़ानूनगोई के स्कूलों में भेज देते हैं। वहाँ कुछ समय तक पढ़ा-लिखाकर उन्हें वे नायब

सत् और असत्

[श्रीयुत अवध उपाध्याय]

(१)

सत् क्या है ? सदाचार की विवेचना कैसे की जानी चाहिए ? समाज की मर्यादा की रक्षा के लिए यह प्रश्न सबसे महत्त्व-पूर्ण है। परन्तु सत् और असत् का निर्णय करने के लिए व्यापक सिद्धान्तों का अनुसन्धान करना पड़ता है। प्राचीन काल से आज तक कितने ही विद्वानों ने इसी प्रश्न की मीमांसा करने की चेष्टा की है। उनकी इसी चेष्टा का फल है कि सदाचार-शास्त्र की उत्पत्ति हुई। यदि संसार के प्राचीन दर्शनों का विस्तृत अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि अति प्राचीन काल में सदाचार-शास्त्र दर्शन का ही एक अङ्ग समझा जाता था। वह उस काल में कोई स्वतन्त्र विषय नहीं समझा जाता था और न स्वतन्त्ररूप से उसका वर्णन ही होता था। यदि भारतवर्ष के ही सदाचार-शास्त्र के विषय में विचार किया जाय तो पता चलेगा कि इसका वर्णन दर्शन-ग्रन्थों में ही अधिक हुआ है। महर्षि पतञ्जलि ने अपने योग-दर्शन में सदाचार-सम्बन्धी विषयों की भी विवेचना की है। इसी लिए उन्हें यम और नियम को अष्टाङ्ग-योग के भीतर लिखना पड़ा है। इतना नहीं, प्रत्येक शास्त्र में, किसी न किसी रूप में, सदाचार-सम्बन्धी विषयों का वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार यदि यूनान के दर्शन-ग्रन्थों का अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि वहाँ भी सदाचार-शास्त्र की व्याख्या दर्शन-ग्रन्थों में ही की गई है।

भारत और यूनान, इन दोनों देशों में कई प्रकार के दर्शन-शास्त्र प्रचलित होगये थे और उनमें सदाचार-शास्त्र का भी समावेश था। इन दर्शन-ग्रन्थों में प्राचीन काल के पण्डितों ने केवल प्रसङ्गवश सदाचार-शास्त्र का उल्लेख किया है। परन्तु उस समय भी सदाचार पर अत्यन्त अधिक ज़ोर दिया जाता था और सदाचार-शास्त्र के उपदेशों का महत्त्व माना जाता था और सदाचार के नियमों की अवहेलना नहीं की जाती थी। उन दार्शनिकों ने उस प्राचीन काल में भी इस बात को भली भाँति समझ लिया था कि मनुष्य के भीतरी स्वभाव से सदाचार का बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। वे यह बात भली भाँति समझते थे कि सदाचार-भ्रष्ट मनुष्य किसी काम का हो ही नहीं सकता और वह आध्यात्मिक उन्नति भी नहीं कर सकता।

अधिक दर्शन-शास्त्रों में सदाचार-शास्त्र का वर्णन केवल प्रसङ्गरूप से ही आया है। परन्तु कुछ ऐसे भी दर्शन हैं जिनमें उसका वर्णन स्वतन्त्र रूप से हुआ है। उदाहरण के लिए हम यूनानी प्रकृति-वादियों (Naturalistic) की रचनाओं का उल्लेख कर सकते हैं। इन लोगों ने सदाचार-शास्त्र को एक स्वतन्त्र विषय मानकर उस पर विचार किया है। इन्होंने सदाचार-शास्त्र को अध्यात्म-विद्या से भी स्वतन्त्र माना है। परन्तु यूनान देश के इन प्रकृतिवादियों को हम अपवाद में रख सकते हैं, नियम में नहीं, क्योंकि अब भी बहुत लोग इन दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं स्वीकार करते। इसी से म्योरहेड लिखता है—"Recent writers even go out of their way to disown all connection between Ethics, and Metaphysics." अर्थात् वर्तमान काल के लेखक अपने मार्ग से विचलित हो जाते हैं और सदाचार-शास्त्र तथा अध्यात्म-विद्या में कोई सम्बन्ध नहीं स्वीकार करते।

इसमें सन्देह नहीं कि म्योरहेड के कथन में सत्य का बहुत कुछ अंश है। वर्तमान समय के कुछ लोग कहते हैं कि अध्यात्म-विद्या के स्थान पर भौतिक-विज्ञान का समावेश होना चाहिए। इनका यह भी कहना है कि अब दर्शन-शास्त्र के स्थान पर विज्ञान का समावेश होना चाहिए। इन लोगों का कथन है—"जैसे संसार में प्रकृति के सब काम होते हैं, इसी प्रकार मनुष्य का चाल-चलन भी है।
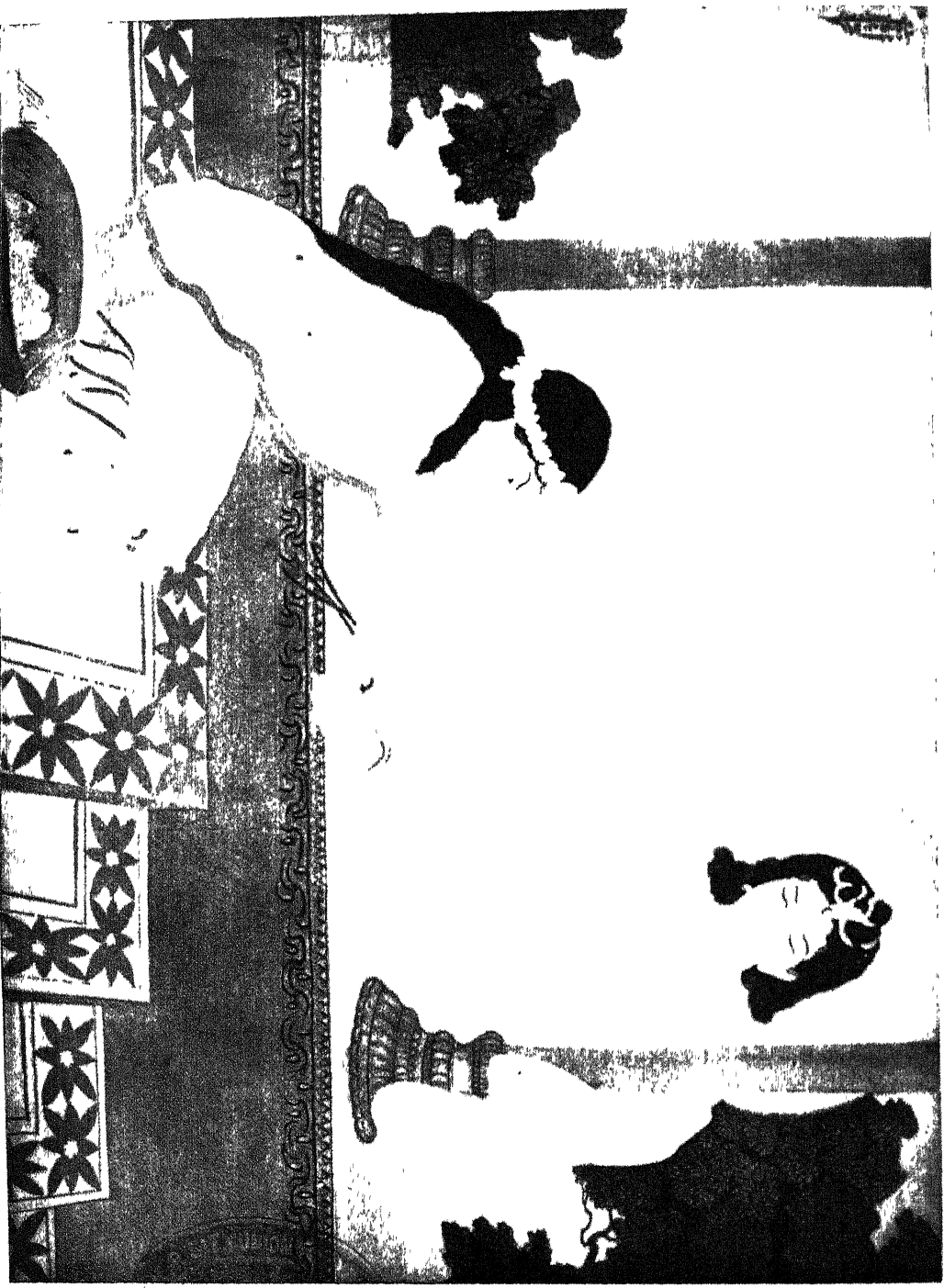
सिद्धार्थ और यशोधरा

[श्रीयुत वी० आर्यदास, मद्रास

देश का भविष्य देश के बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा पर निर्भर है इसी उद्देश्य से

"बालसखा"

बालक तथा बालिकाओं के पढ़ने योग्य बना दिया गया है

संसार के सम्मुख सबसे बड़ा प्रश्न यही था कि बालक तथा बालिकाओं की शिक्षा प्रारम्भ में एक ही सी होनी चाहिए या पृथक् पृथक्।

संसार के सबसे बड़े विद्वान् इस बात पर सहमत हैं कि किसी अवस्था तक दोनों की शिक्षा समान होनी चाहिए क्योंकि आरम्भ में जीवन का प्रश्न वर्तमान जाग्रति के कारण दोनों के लिए समान है।

अतः जूलाई से "सहेली" को भी बाल-सखा में सम्मिलित कर इसी मासिक पत्रिका में कन्याओं के लिए भी कुछ पृष्ठ रखे जायँगे और इसकी पृष्ठ-संख्या भी बढ़ा दी जायगी।

प्रत्येक घर में बालक व बालिकाएँ दोनों ही होते हैं। इस नये प्रबंध से दोनों को ऐसी अद्वितीय मासिक पत्रिका सुलभ हो जायगी और दोनों के लिए पृथक् पृथक् व्यय भी न करना पड़ेगा।

यदि वर्तमान मूल्य पर ही पत्रिका अपना निर्वाह कर सकी तो मूल्य वही रहेगा।

मैनेजर बाल-सखा,
इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

अतएव सदाचार के प्रश्नों का भी उसी प्रकार विचार किया जा सकता है, जैसे किसी भौतिक घटना का। कार्य-कारण का सम्बन्ध प्रत्येक घटना में अवश्य ही पाया जाता है और यही बात मनुष्यों के सदाचार के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है, क्योंकि यह उनका एक अनुभव है। जसे विज्ञान में प्रत्येक प्राकृतिक घटना कार्य-कारण के सिद्धान्त की सहायता से समझाई जाती है, इसी प्रकार मनुष्यों की चाल-चलन-सम्बन्धी बातें भी समझाई जा सकती हैं। कार्य-कारण का सिद्धान्त बड़ी सुगमता तथा सफलता से भौतिक संसार की सब उलझनों को सुलझा देता है और वही सदाचार-शास्त्र के प्रश्नों को भी हल कर देगा।"

इस कथन के आधार पर ये लोग इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं कि सदाचार-शास्त्र और अध्यात्म-विद्या में कोई सम्बन्ध नहीं है। परन्तु प्राकृतिक विज्ञान के द्वारा सत् की विवेचना करने पर, अध्यात्म-शास्त्र से उसका सम्बन्ध पृथक् कर देने पर सदाचार का आधार ही जाता रहेगा। इसी की विवेचना यहाँ हम सबसे पहले करेंगे।

सदाचार-शास्त्र और अध्यात्म-विद्या दोनों भिन्न भिन्न विषय हैं और ये दोनों विषय, लक्ष्य-भेद तथा विधि-भेद रखते हैं। अध्यात्म-विद्या में 'सत्य' के स्वभाव का वर्णन होता है। इसमें संसार के सब पदार्थों, उसकी सब स्थितियों तथा सत्ताओं के समझाने का प्रयत्न किया जाता है। अध्यात्म-विद्या में इस बात के सिद्ध करने का भी प्रयत्न किया जाता है कि शरीर से आत्मा की सत्ता अलग है। इसमें आत्मा के स्वरूप की भी विवेचना की जाती है। इसके विपरीत सदाचार-शास्त्र में सदाचार के सिद्धान्त का वर्णन किया जाता है। इस शास्त्र में सदाचार-सम्बन्धी एक सिद्धान्त नियत किया जाता है और तब यह देखा जाता है कि मनुष्य का कोई कार्य उक्त सिद्धान्त के विरुद्ध है अथवा नहीं। अध्यात्म-विद्या में इस बात की कोई आवश्यकता नहीं कि आत्म-निरीक्षण के साथ साथ अन्य आत्माओं के मानसिक व्यापारों का ज्ञान है या नहीं, परन्तु सदाचार-शास्त्र में यह भी एक बड़े महत्व की बात है। सदाचार-शास्त्र मनुष्यों के आदर्श कर्म की रचना तथा उनके विकास और ह्रास के नियमों की विवेचना करता है, परन्तु अध्यात्म-विद्या में इन विषयों का कोई विशेष स्थान नहीं है। इस सम्बन्ध में स्टेफेन लिखता है—"अध्यात्म-विद्या में अन्तिम तत्त्वों की विवेचना होती है। उनसे इन सब बातों से कोई मतलब नहीं कि मनुष्य का यह काम उचित है या नहीं।"

इसके अतिरिक्त इस मत के माननेवालों का यह भी कथन है कि यदि अध्यात्म-विद्या के सिद्धान्तों को न भी स्वीकार करें तो भी सदाचार-शास्त्र के ऐसे सिद्धान्त निकाले जा सकते हैं जिन्हें सब लोग केवल स्वीकार ही नहीं करेंगे, किन्तु पसन्द भी करेंगे। इन बातों से स्पष्ट है कि अध्यात्म-विद्या से सदाचार-शास्त्र का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है।

यदि अध्यात्म-विद्या तथा सदाचार-शास्त्र का विस्तृत अध्ययन किया जाय तो पता चलेगा कि ऐसे भी बहुत से लेखक हो गये हैं, जिन्होंने सदाचार-शास्त्र का आधार अध्यात्म-विद्या नहीं बनाया, तो भी उनका सदाचार-शास्त्र बिलकुल सुन्दर, नियमानुकूल तथा वैज्ञानिक निकला। इसके विरुद्ध जिन लोगों ने अपने सदाचार-शास्त्र का आधार अध्यात्म-विद्या को बनाया उन्हें कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। वास्तव में बात यह है कि सदाचार-शास्त्र का चाहे जो आधार बनाया जाय उसका आदर्श दार्शनिक आदर्श से अवश्य ही मिलना चाहिए। इन कारणों से ये लोग कहते हैं कि सदाचार-शास्त्र वास्तव में दर्शन का अङ्ग नहीं, विज्ञान है। ये कहते हैं कि यदि हम लोग सदाचार-शास्त्र को दर्शन का अङ्ग नहीं, किन्तु विज्ञान का मानें तो इसमें कई सुविधायें होंगी।

(२)

इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्यों का चरित्र भी एक घटना ही है, एक कार्य ही है। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या सब घटना समान तथा एक ही होती हैं? क्या इस भूमण्डल के सब कार्य एक ही होते हैं? क्या संसार के सब दृश्य, क्या संसार के सब कार्य एक ही प्रकार से समझाये जाते हैं या समझाये जा सकते हैं? क्या इस भूमण्डल के सब सिद्धान्तों की स्वयं सिद्धियाँ एक ही हैं? इसमें लेश-मात्र भी सन्देह नहीं है कि इन सब प्रश्नों का उत्तर अवश्य ही नकारात्मक

होगा। जब सब सिद्धान्तों की स्वयं सिद्धियां एक नहीं हैं तब सब दृश्यों की विवेचना भी अवश्य ही भिन्न भिन्न होगी। निस्सन्देह मनुष्यों के कर्म भी एक दृश्य ही हैं, परन्तु यह एक विचित्र दृश्य है। यह एक ऐसा दृश्य है जिसकी स्वयं-सिद्धियों के आधार अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धी हैं। इन स्वयं-सिद्धियों की भिन्नता से मनुष्यों के कर्मों के आदर्श में भी अवश्य ही अन्तर पड़ जायगा। भिन्न भिन्न स्वयंसिद्धियों के मानने से विज्ञान का रूप भी बदल जाता है। न्यूटन ने आकर्षण-शक्ति के सम्बन्ध में एक स्वयं-सिद्धि की कल्पना की थी। प्रकृति भी तथा प्रकृति के दृश्य भी उस स्वयं-सिद्धि का लगभग समर्थन करते हैं। अभी हाल में अल्बर्ट आएस्टीन ने इसी आकर्षण-शक्ति के सम्बन्ध में एक दूसरी स्वयं-सिद्धि की कल्पना की है। प्रकृति ने तथा प्रकृति के दृश्यों ने भी इसका समर्थन किया है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होगया है कि किसका सिद्धान्त अधिक ठीक है? न्यूटन का अथवा अल्बर्ट आएंस्टीन का? अल्बर्ट आएंस्टीन के सिद्धान्त का नाम सापेक्ष्यवाद पड़ गया है। इस बात के उल्लेख करने का आशय यह दिखलाना है कि स्वयं-सिद्धियों में थोड़ा भी हेर-फेर कर देने से सब बातों में बहुत अन्तर पड़ जाता है। इसलिए इन स्वयं-सिद्धियों के भिन्न भिन्न होने से विज्ञान भी भिन्न भिन्न रूप धारण कर लेते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि सब विज्ञान एक नहीं हैं और उन सब विज्ञानों के विषय, उनके नियम उनके लक्ष्य तथा विधि तथा उनकी स्वयं-सिद्धियाँ सब भिन्न भिन्न हैं। यदि यह बात सच है तो यह भी मानना पड़ेगा कि भौतिक विज्ञान और सदाचार-शास्त्र दो भिन्न भिन्न विज्ञान हैं। जिस प्रकार भौतिक विज्ञान विज्ञान है, ठीक उसी तरह सदाचार-शास्त्र भी विज्ञान नहीं है। जिस प्रकार भौतिक-विज्ञान में सब घटनायें तथा सब दृश्य, समझाये जाते हैं, ठीक उसी प्रकार सदाचार-शास्त्र की सब बातें नहीं समझाई जा सकतीं। वह केवल इसी अर्थ में एक विज्ञान है कि इसका अध्ययन क्रमबद्ध तथा नियमानुसार हो सकता है और इसमें सदाचार की कसौटियाँ हैं। इसी लिए सिजविक कहता है—"आचार-शास्त्र को हम लोग एक विषय कह सकते हैं, किन्तु विज्ञान नहीं।" यदि आचार-शास्त्र पर भलीभांति विचार किया जाय तो पता चलेगा कि इसमें उन साधारण नियमों की विवेचना नहीं होती जो मनुष्य के भिन्न भिन्न चरित्रों को समझा देने का सामर्थ्य रखते हैं। इसमें तो यह देखा जाता है कि इन भिन्न-भिन्न चरित्रों में कौन-सा ठीक और इन भिन्न भिन्न निर्णयों में कौनसा प्रामाणिक तथा सम्बद्ध है। सदाचार-शास्त्र तो 'चाहिए' का विज्ञान है, 'है' का नहीं।

(३)

हमें यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिए कि हम लोग संयोग (Chance) के हाथ के खिलौने ही नहीं हैं। भिन्न भिन्न परमाणुओं के मिल जाने से ही हम लोगों की उत्पत्ति नहीं हुई है। इस सिद्धान्त के स्वीकार करने पर तो हम लोग केवल एक वैसे ही यन्त्र रह जाते हैं, जैसे रेल का एंजिन अथवा घड़ी। यह बात जो सब लोग स्वीकार करेंगे कि हम लोग केवल यन्त्र नहीं हैं, यन्त्रों में तथा हम लोगों में अन्तर है। कोई भी यन्त्र हम लोगों की तरह सुख तथा दुःख का अनुभव नहीं कर सकता और न यन्त्रों में हम लोगों की तरह विकास ही होता है। जब मनुष्य और यन्त्रों में अन्तर है तब यह भी मानना पड़ेगा कि हम लोगों के कार्यों की यान्त्रिक व्याख्या भी अपूर्ण होगी। भौतिक संसार की सब बातें भौतिक विज्ञान समझा सकता है, किन्तु भौतिक विज्ञान मनुष्यों की सदाचार-सम्बन्धी सब बातें नहीं समझा सकता। मनुष्य इस प्रकृति का केवल एक अंश-मात्र नहीं है और न प्रकृति की आवश्यकताओं का एक अन्धा दास ही है, किन्तु मनुष्य को इस बात का भी पता रहता है कि वह प्रकृति का एक अंश है और उसे प्रकृति के नियमों का पालन भी करना पड़ेगा। परन्तु वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना-मात्र नहीं है और भौतिक शक्तियों से ढला हुआ एक यन्त्र ही है। उसमें जानने, सोचने, अनुभव करने तथा कार्य करने की शक्ति भी रहती है। मनुष्य यन्त्र की भांति सर्वदा स्थिर नहीं रहता, वह एक उन्नति करनेवाला प्राणी है।

यन्त्रों के सम्बन्ध में उनकी स्वतन्त्रता का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, परन्तु यही बात मनुष्यों के सम्बन्ध में नहीं कही जा सकती। मनुष्यों की स्वतन्त्रता का प्रश्न ही सदाचार-शास्त्र का एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। इसमें सन्देह नहीं कि मनुष्य भी प्रकृति के नियमों का उल्लङ्घन नहीं कर सकता और उसे इन नियमों को मानना ही पड़ेगा, परन्तु ये नियम कोई ऊपरी सिद्धान्त नहीं हैं, ये मनुष्य के भीतरी स्वभाव को ही प्रकट करते हैं। इन सब बातों को तथा इन सब नियमों के अनुकूल कार्य करने पर भी मनुष्य को बड़ी स्वतन्त्रता है। कोई भी एक ऐसा कार्य पहले ही से निर्धारित नहीं है जिसे सब मनुष्यों को अवश्य ही करना चाहिए। कभी कभी तो एक मनुष्य के सामने कई कार्य उपस्थित हो जाते हैं और इन कामों में उसे एक को चुनना पड़ता है। इसके चुनने में मनुष्य सर्वथा स्वतन्त्र रहता है। जब तक मनुष्य के सामने चुनने का प्रश्न नहीं आता तब तक उसके सदाचार तथा दुराचार का प्रश्न नहीं उठता। इन सब बातों से स्पष्ट है कि मनुष्यों को अपने कर्मों के करने में बड़ी स्वतन्त्रता है। यदि मनुष्यों को अपने कामों के करने में स्वतन्त्रता न होती तो उन पर उन कामों के लिए उत्तरदायित्व भी नहीं होता, क्योंकि जब मनुष्य अपने कामों के करने में स्वतन्त्र ही नहीं होता तब हम उसे उनके बदले अपराधी तथा निर्दोषी कैसे ठहरा सकते हैं?

मनुष्य को कई कामों में अपने लिए कुछ काम चुन लेने की स्वतन्त्रता तो है, परन्तु जब वह एक बार किसी काम को चुन लेता है तब उसका उत्तरदायित्व उसके माथे मढ़ जाता है। ऐसा करने में उसे काल्पनिक विषयों का सामना नहीं करना पड़ता, परन्तु सत्य पदार्थों का। यही कारण है कि एल० स्टेफेन कहता है—"हम लोगों को सदाचार-शास्त्र में वास्तविकता के साथ व्यवहार करना पड़ता है।" इस बात को तो सब लोग स्वीकार करते है कि सदाचार-शास्त्र में वास्तविकता (यथार्थता या सत्यता) का व्यवहार करना पड़ता है, परन्तु यह प्रश्न यह है कि वास्तविकता से स्टेफेन का क्या अभिप्राय है? क्या इस 'वास्तविकता' अथवा 'सत्यता' शब्द से उसका प्रयोजन स्वतन्त्र कर्त्ता से है अथवा क्या इस शब्द से उसका प्रयोजन सज्ञान कर्त्ता से है? स्टेफेन के वास्तविकता में सदाचारी साधक (कर्त्ता) का भी अभिप्राय सम्मिलित है या नहीं? यदि वास्तव में स्टेफेन का अभिप्राय 'वास्तविकता' से 'कर्त्ता' भी है तो वह ठीक नहीं, क्योंकि 'कर्त्ता' कोई भौतिक घटना नहीं है और 'कर्त्ता' प्रकृति के नियमों से जकड़ा हुआ भी नहीं है। यदि ऐसी बात होती तो उस दशा में मनुष्यों और यन्त्रों में कुछ अन्तर ही न रह जाता। उस दशा में मनुष्यों की सब बातें ठीक ठीक उसी तरह की हो जातीं जैसे प्रकृति की कोई साधारण भौतिक घटना। इसीलिए प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रीन कहता है—If it were that it would be un-meaning to require a being who is simply a result of natural forces to conform to their laws

अर्थात् यह बात ऐसी होती तो एक ऐसे जन्तु को जो केवल प्राकृतिक शक्तियों का फल-मात्र है, उनके बनाये हुए नियमों के अनुसार व्यवहार करने का कोई आशय ही नहीं होता।

यदि मनुष्य भी उसी प्रकार प्राकृतिक शक्तियों का केवल फल-मात्र होता जैसे कि वृक्ष तथा पत्थर आदि है तो वृक्षों तथा पाषाण आदि के सदाचार का भी प्रश्न अवश्य ही उठ खड़ा होता। जब वृक्ष तथा पाषाण आदि अपने स्वभाव के अनुकूल काम करते तब ये भी उसी प्रकार सदाचारी अथवा दुराचारी कहे जाते, जिस प्रकार मनुष्य प्रायः कहे जाते हैं। परन्तु इस बात को सब लोग स्वीकार करते हैं कि इन वृक्षों, पाषाणों तथा मनुष्यों में बहुत ही अन्तर है। इस अन्तर को भली भाँति समझने के लिए इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता पड़ती है कि पहले हम लोग यह अच्छी तरह समझ लें कि मनुष्य क्या है और उसका वास्तविक स्वभाव क्या है? यहीं अध्यात्म-विद्या की आवश्यकता होती है क्योंकि ये सब अध्यात्म-विद्या के प्रश्न हैं। अध्यात्म-विद्या तथा सदाचार-शास्त्र दोनों को इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ता है—मनुष्य क्या है? इस प्रकार आचार-शास्त्र और अध्यात्म-विद्या में एक प्रकार का सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और ये दोनों ही भाई भाई की तरह परस्पर मिलते हैं।

इन दोनों विज्ञानों (अध्यात्म-विद्या और सदाचार-शास्त्र) ने परस्पर इस कार्य को बांट लिया है। अध्यात्म-विद्या इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करता है—मनुष्य क्या है ?—और सदाचार-शास्त्र इस प्रश्न का उत्तर देता है—मनुष्य के आदर्श क्या है और उसे क्या होना चाहिए ?

यदि कोई कहे कि—मनुष्य क्या है ?—का उत्तर विज्ञान की सहायता से अच्छी तरह दिया जा सकता है तो मैं कहता हूँ—जिसे तुम विज्ञान कह रहे हो उसे मैं दर्शन कहता हूँ। दोनों का अभिप्राय एक ही है, केवल नाम में भेद है और यह शब्दों का झगड़ा है। वास्तव में देखा जाय तो बात यही है। यदि विचारा जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि अनुभव की बातों की क्रमबद्ध व्याख्या ही विज्ञान है और यही दर्शन भी है। दोनों के उद्देश तथा विधि में ही भेद है। दर्शन का विषय सम्पूर्ण अनुभव है और विज्ञान का अंशात्मक अनुभव। इस कथन से स्पष्ट है कि दर्शन का क्षेत्र अत्यन्त अधिक विस्तृत होता है और भिन्न भिन्न विज्ञानों का अनुभव परिमित तथा सङ्कुचित रहता है।

विकासवादियों ने सब बातों को विकास-वाद के सिद्धान्त की सहायता से समझाने का प्रयत्न किया है। इन लोगों ने सब बातों को कार्य-कारण के द्वारा समझाने का प्रयत्न किया है और यही बात इन लोगों ने सदाचार-शास्त्र में भी की है। उनके विरुद्ध पहले तो यह कहा जा सकता है कि वे लोग भली भांति सदाचार-शास्त्र को समझा ही नहीं सके हैं। यदि यह बात इन लोगों के लिए सम्भव होती तो भी ये लोग केवल इतना ही समझा सकते हैं कि किसी निर्दिष्ट दशा में अमुक मनुष्य ने कैसा काम किया। यह तो एक प्रकार की सदाचार-सम्बन्धी घटना है। परन्तु कोई विज्ञान इस बात का उत्तर नहीं दे सकता कि अमुक दशा में मनुष्य को कैसे काम करना चाहिए, क्योंकि यह एक आदर्श का प्रश्न है, किसी विशेष घटना का नहीं और इसी लिए यह किसी विज्ञान के क्षेत्र से बाहर का प्रश्न है। इसके अतिरिक्त सदाचार-सम्बन्धी बातों में निर्णय की भी आवश्यकता पड़ती है और निर्णय के साध्यों में कई स्वयं-सिद्धियों का, ज्ञात अथवा अज्ञात-रूप से प्रवेश हो जाता है। इन स्वयं-सिद्धियों की व्याख्या करना, इन्हें समझाना अध्यात्म-विद्या का काम है। इन स्वयं-सिद्धियों की व्याख्या करना किसी विज्ञान का कार्य नहीं है।

यदि कोई विज्ञान इसके समझाने की चेष्टा करे तो वह उसकी अनधिकार चेष्टा होगी क्योंकि इस आदर्श के समझने का अभिप्राय विश्व तथा ईश्वर का मनुष्य से सम्बन्ध समझना है और यह विषय अध्यात्म-विद्या का है। जब तक मनुष्य का ईश्वर से ठीक ठीक सम्बन्ध ज्ञात न होगा तब तक सदाचार-शास्त्र के प्रश्न हल ही नहीं हो सकते। यही कारण है कि जेम्स सेथ कहता है—A final and adequate view of morality itself is not reached, a satisfactory explanation of morality is not attained so long as we separate morality from nature or from God. अर्थात् जब तक हम लोग सदाचार को प्रकृति अथवा ईश्वर से भिन्न समझते रहेंगे तब तक हम लोग न तो सदाचार को भली भांति समझ सकते हैं और न उसका अन्तिम तथा पर्याप्त दृश्य ही देख सकते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि सदाचार-शास्त्र के प्रश्नों के हल करने के लिए यह अत्यन्त ही अधिक आवश्यक है कि हम लोग सबसे पहले ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्ध को भली भांति समझ लें और इस सम्बन्ध को समझना अध्यात्म-विद्या का प्रश्न है।

सदाचार-शास्त्र को भौतिक विज्ञान न मानने के लिए और भी अनेक कारण हैं। इनमें एक सदाचार के निर्णय का विषयाश्रित स्वभाव है। ये निर्णय बड़े महत्त्व के होते हैं। इनका निरपेक्ष्य होना भी अत्यन्त आवश्यक है। यदि ये सापेक्ष्य रहेंगे तो इनका महत्त्व बहुत कुछ घट जायगा और यह किसी को अभीष्ट हो ही नहीं सकता। यदि सदाचार-शास्त्र को केवल एक साधारण विज्ञान ही मान लें तो इनका महत्त्व केवल सापेक्ष्य रह जायगा। तब मनुष्य की इच्छा ही अधिक प्रधान हो जायगी और वह अपनी परिस्थितियों का खिलौना-मात्र रह जायगा। ऐसी दशा में मनुष्य सुखद तथा दुःखद बातों की अधिक चिन्ता

करेगा, और उचित तथा अनुचित का उतना नहीं। परन्तु ऐसा करना अनुभव के एक प्रधान अङ्ग को अस्वीकार करना होगा, उसकी व्याख्या नहीं। हम लोगों की सदाचार-सम्बन्धी चेतनता तो यही कहती है कि यह निरपेक्ष्य है, परिवर्त्तन-शीलता-रहित है, शाश्वत और नित्य है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जिसकी कसौटी पर सदाचार-सम्बन्धी सब प्रश्न कसे जा सकते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं कि भिन्न भिन्न अवस्थाओं में भिन्न भिन्न परिस्थितियों से हम लोगों के सदाचार भी बदलते रहते हैं। परन्तु यह परिवर्त्तन कोई स्वतन्त्र पदार्थ नहीं है। यह परिवर्त्तन एक ऐसे सिद्धान्त पर निर्भर रहता है जो स्वयं नहीं बदलता। यह सिद्धान्त कर्त्ता के आदर्श की चैतन्यता ही है। इस आदर्श से कर्त्ता सर्वदा अवगत रहता है। इस सिद्धान्त में अध्यात्म-विद्या के सिद्धान्तों का भी समावेश हो जाता है। परन्तु इतने ही से इसका अन्त नहीं हो जाता, किन्तु मृत्यु के बाद की दशाओं से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम लोगों में जो अध्यात्मवादी हैं, वे इस बात में भी विश्वास करते हैं कि मृत्यु के अनन्तर भी हम लोगों का अस्तित्व बना रहता है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि हम लोग इसी जन्म में अपने आदर्श का पूर्णरूप से अनुभव नहीं कर पाते, किन्तु मृत्यु के बाद उसका अनुभव करते हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि सदाचार-शास्त्र का अध्यात्म विद्या से बड़ा ही घनिष्ट सम्बन्ध है और सदाचार-शास्त्र की अन्तिम बातों के समझाने के लिए अध्यात्म-विद्या का आश्रय लेना केवल वाञ्छनीय ही नहीं, किन्तु आवश्यक भी है। एक प्रकार से सदाचार-शास्त्र की स्वयं-सिद्धियों के आधार अध्यात्म-विद्या के सिद्धान्त हैं। इस संसार में जितने विज्ञान हैं उनके अन्तिम प्रश्नों के आधार अध्यात्म-विद्या ही हैं और यह बात सदाचार-शास्त्र के लिए और भी अधिक सत्य है। म्योरहेड ने विज्ञान और अध्यात्म-विद्या के सम्बन्ध को तो नहीं स्वीकार किया है, किन्तु अध्यात्म-विद्या और सदाचार-शास्त्र के सम्बन्ध को स्वीकार किया है।

(४)

दर्शन-शास्त्र में मिथ्या विचारों के लिए कोई स्थान ही नहीं है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि अभी तक हम लोग पूर्ण नहीं हुए हैं और किसी भी मत का सदाचार-शास्त्र पूर्ण नहीं है। उन लोगों के सदाचार-शास्त्र-सम्बन्धी विचारो में ग़लती मिलती है जिनके आधार अध्यात्म-विद्या है और उन लोगों के सदाचार-शास्त्र मे भी ग़लतियाँ पाई जाती हैं जिनके आधार अध्यात्म-विद्या नहीं है। इसमें भी सन्देह नहीं है कि जिनके दर्शन भिन्न भिन्न होते हैं उनके सदाचार-शास्त्र भी भिन्न भिन्न होते हैं। इससे भी सिद्ध होता है कि सदाचार-शास्त्र और अध्यात्म-विद्या में सम्बन्ध होता है। यदि यह बात सच है, यदि अध्यात्मविद्या और सदाचार-शास्त्र में वास्तविक कोई सम्बन्ध है तो इन दोनों में एक का होना अत्यन्त ही अधिक आवश्यक है—(१) या तो अध्यात्म-विद्या-सम्बन्धी सत्य के आधार पर ही सदाचार-शास्त्र के सिद्धान्त निकाले जाते हैं अथवा (२) आचार-शास्त्र के आधार पर ही सत्य का रूप तथा उसके विचार निर्धारित किये जाते हैं।

जो लोग पहले मत का समर्थन करते हैं वे कहते हैं कि जब तक हम लोग सत्य के स्वभाव से भली भाँति परिचित न हों तब तक हम लोग सदाचार के बारे में कुछ भी नहीं कह सकते। इन लोगों का यह भी कहना है कि ज्ञान तत्त्व के विश्लेषण की सहायता से सदाचार-शास्त्र के नियम भी निर्धारित किये जा सकते हैं। ये लोग कहते हैं—"जब हम लोगों को सत्य का ज्ञान हो जायगा तब उसी के आधार पर सदाचार-शास्त्र का भी हम लोग निर्माण कर सकते हैं।" यूनान-देश के प्राचीन तथा प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो के भी यही विचार थे। अर्वाचीन काल का प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रीन भी इसी मत का समर्थन करता है।

दूसरे मत के समर्थक इस सिद्धान्त का विरोध करते हैं। इन लोगों का कथन है कि जिस सत्य का आधार ज्ञान होगा वह सत्य अवश्य ही अपूर्ण तथा दूषित होगा, क्योंकि उसमें अनुभव के सब अंशों का समावेश नहीं हुआ है। जब तक सम्पूर्ण अनुभव का विचार न किया जाय तब तक सत्य क्रमबद्ध नहीं कहा जा सकता। जो सिद्धान्त सत्य

का अन्वेषण करता है उसे सब अनुभवों की सहायता लेनी चाहिए। इस सिद्धान्त की सफलता के लिए तथा सत्य के यथार्थ रूप का निश्चय करने के लिए यह आवश्यक है कि वह मस्तिष्क-सम्बन्धी, सदाचार-सम्बन्धी, सौन्दर्य-सम्बन्धी तथा अध्यात्म-सम्बन्धी सभी अनुभवों के आधार पर बना हो। उस सिद्धान्त से हम लोगों की सब शक्तियों को सन्तोष होना चाहिए।

आज-कल हिन्दू-समाज में जो आन्दोलन हो रहे हैं उनका मूल कारण है सदाचार की मर्यादा। प्राचीन मर्यादा के विरुद्ध सुधारक नई मर्यादा स्थापित करना चाहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक है कि अध्यात्म-शास्त्र के आधार पर सदाचार की विवेचना की जाय और तब जो मर्यादा स्थापित होगी वह मनुष्य-मात्र के लिए श्रेयस्कर होगी।

प्रताप के पत्र

[श्रीयुत सुदर्शन]

(१)

रामनिवास, जालन्धर
१-जुलाई १९१९

मेरे प्यारे राधाकृष्ण !
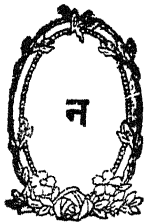
नमस्ते। आख़िर ब्याह हो गया, और बड़ी धूम-धाम से। हमारे गाव के बुड्ढे बुड्ढे आदमियों का कहना है कि यहाँ ऐसा ब्याह हमने होते नहीं देखा। पिताजी ने दिल खोल कर ख़र्च किया। ऐसा मालूम होता था, इस अवसर पर वह अपना सारा धन पानी के सदृश बहा देंगे, अपना सब कुछ ख़र्च कर देंगे। मैंने एक आध बार दबी ज़बान से कहा कि आप ज़्यादा ख़र्च कर रहे हैं, इस पर मुस्करा-कर बोले—तुम्हारा ब्याह है, तुम्हें बोलने का अधिकार नहीं, चुप-चाप देखते चलो, इस समय मैं किसी की न सुनूँगा। फिर मुझे मुँह खोलने का साहस नहीं हुआ। वे ख़र्च करते थे, और मैं चुप-चाप तमाशा देखता था। इसके बाद बारात पेशावर पहुँची। लड़की-वालों ने हमारे ठहरने का और ख़ातिर-तवाज़ो का ऐसा अच्छा प्रबन्ध किया था कि तुमसे क्या कहूँ, किसी को भी शिकायत का मौक़ा नहीं मिला। काश तुम आते, तो देखते कि शादी का प्रबन्ध कैसा किया जा सकता है। क्या मजाल कि किसी के मुँह से कुछ निकले, और वह चीज़ तत्काल हाज़िर न कर दी जाय।

परन्तु मुझे केवल एक ही ख़याल था। सोचता था, देखूँ, श्रीमतीजी कैसी हैं। दहेज़ मिले या न मिले, पर स्त्री अच्छी मिल जाय। कहीं कुरूपा न हो, काली न हो। हे भगवान्! बचा लेना, जीवन ही नष्ट हो जायगा। भावरें पड़ने का समय आया, तो हृदय इस प्रकार धड़क रहा था, जैसे विद्यार्थी का हृदय परीक्षा के समय धड़कता है। परन्तु मेरे अंदेशे निर्मूल सिद्ध हुए। मैंने उसका हाथ देखा, और शान्ति और संतोष की सांस ली—वह सुन्दरी थी। कम से कम काली न थी। स्त्री का हाथ देखकर उसकी शक्ल-सूरत का अन्दाज़ा किया जा सकता है, जैसे भाग्यवान् घर अपनी ड्योढ़ी ही से पहचाना जाता है। तुम हँसोगे, हँस लो, मगर मैं दावे से कह सकता हूँ, कि अपने ब्याह में तुम भी यही करोगे, एक ही महीना बाक़ी है। फिर पूछूँगा। परन्तु फिर भी मुझे बड़ी चिन्ता थी। यह चिन्ता उस समय तक दूर न हुई, जब तक मैंने घर पहुँच कर देवीजी के साक्षात् दर्शन न कर लिये। गांव भर की स्त्रियाँ कहती हैं, बहू क्या है, चन्द्रमा है। मैं तो मुग्ध हो गया।

बीस दिन हुए, हम दोनों यहाँ आगये हैं। बड़े आनन्द से कटती है। अब मालूम हुआ, जीवन किसे कहते हैं। लज्जा ने मुझ पर जादू कर दिया है। यही जी चाहता है, उसे आँखों से ओझल न होने दूँ। हर समय देखता रहूँ। बड़ी सरल-स्वभाव है, जब देखो,

मुस्कराती रहती है। कभी उदास नहीं होती। मुझे जी-जान से चाहती है। कचहरी से लौटता हूँ, तो द्वार पर खड़ी पाता हूँ। ज़रा भी देर हो जाय, तो घबरा जाती है। उसके नयनों से प्यार छलक छलक पड़ता है, गोया नयन क्या हैं, अमृत के लबालब भरे हुए कटोरे हैं। ऐसा नारी-रत्न पाकर मैं फूला नहीं समाता। कोई सौन्दर्य्य चाहता है, कोई प्यार, मुझे स्वर्ग की ये दोनों वस्तुएँ मिल गईं।

एक मनोरञ्जक घटना सुनो। कल संध्या-समय कुछ मित्र बैठे थे, और इधर-उधर की बातें हो रही थीं। इतने में एक साहब बोले—आज इँग्लिस्तान की एक बड़ी बढ़िया नाटक-कम्पनी आई है, तमाशा देखना चाहिए। सबने हां में हां मिलाई, मगर मेरा जी न चाहता था, मैंने इनकार कर दिया। बस जनाब! उन शुहदों ने ऐसे ऐसे ताने मारे कि तुमसे क्या कहूँ। विवश होगया, पर सोचता था, लज्जा अकेली है, कैसे आज्ञा लूँ। घबरा गया। मुझे किंकर्त्तव्यविमूढ़ देखकर एक महाशय बोले—क्यों, स्त्री से डरते हो क्या? अरे भाई! कोई बहाना बना दो। मैं बड़ा चकराया, झूठ कैसे बोल दूँ! दूसरे मित्र ने कहा—कचहरी में जज के सामने, और घर में स्त्री के सामने जो सच बोले, उससे ज़्यादह पागल कोई नहीं। इस पर सब हँसने लगे। लाचार झूठ बोलना पड़ा। कह दिया, आज समाज की मीटिङ्ग है, वहां देर हो जायगी। एक दो बजे से पहले न लौट सकूँगा, तुम सो रहना। उस ग़रीब को क्या पता था कि यहां कोई दूसरी ही मीटिंग है, कुछ उदास होकर बोली, मैं जागूँगी।

हम थियेटर में पहुँचे, नाटक शुरू हुआ। सब मित्र हँसते थे, मुस्कराते थे, एक्टरों के अभिनय पर टीका-टिप्पणी करते थे। परन्तु मुझे ऐसा मालूम होता था, जैसे किसी ने कंधों पर पत्थर रख दिये है, जैसे मेरा हृदय बैठा जाता है। नाटक की ओर ध्यान ही न था, आख़िर पहले ऐक्ट का अंतिम दृश्य आया। यह दृश्य बड़ा हृदय-बेधक था। एक बे-परवा शराबी शराबख़ाने में बैठा अपना धन, अपना स्वास्थ्य, अपना मनुष्यत्व अपने हाथों से नष्ट कर रहा था, और घर में उसकी नवयुवती प्रेममयी स्त्री पति-प्रेम में तन्मय होकर उसकी तसवीर से बातें कर रही थी, और समझती थी कि मेरा पति कार-बार की नई नीति के सम्बन्ध में अपने मालिक से बात-चीत कर रहा है। मैं चौंक पड़ा, जैसे किसी ने मेरी पीठ पर चाबुक मार दिया हो। यह काल्पनिक नाटक का काल्पनिक दृश्य न था। मैंने नाटक के दर्पण में अपना काला मुँह देखा, और तलमला कर खड़ा हो गया। मित्र-मंडली रोकती रह गई, मगर मैंने उनकी एक न सुनी, और चला आया। घर पहुँच कर देखा, तो ग़रीब लज्जा लालटेन सामने रक्खे बैठी है, और ऊँघ रही है। मैं कट गया, मुझे अपने आपसे घृणा होगई। मुझे उसके निकट जाते, उसे छूते, उसे हाथ लगाते संकोच हो रहा था। जैसे कीचड़ से भरे हुए पाँववाला ग़रीब आदमी क़ीमती ग़लीचा के पास जाते हुए डरता है। मैंने जीभ से कुछ न कहा, परन्तु दिल में प्रतिज्ञा कर ली है कि अब लज्जा से कभी झूठ न बोलूँगा।

तुम निश्चिन्त रहो, तुम्हारे ब्याह में ज़रूर आऊँगा।

तुम्हारा.........
प्रताप

(२)

रामनिवास, जालन्धर
१५ सितम्बर १९१५

प्यारे राधाकृष्णजी!

नमस्ते। पत्र मिला, पढ़कर आश्चर्य्य हुआ। आख़िर इसका क्या मतलब कि भाभीजी का हाल दो सतरों में समाप्त कर दिया। सुन्दरी है, क़द लम्बा है—ये बातें तो ब्याह ही में मालूम हो गई थीं। मैंने जो कुछ पूछा था, उसके बारे में एक भी शब्द नहीं लिखा, हां इधर-उधर की बातों से दो पृष्ठ काले कर दिये। मैंने पूछा था, भाभीजी का स्वभाव कैसा है? तुम्हारे साथ लड़ाई-दंगा तो नहीं करती रहतीं? सारा दिन क्या करती हैं? कुछ घर का काम-काज भी करती है, या केवल उपन्यास ही पढ़ने का शौक़ है। बताओ, इन प्रश्नों का तुमने क्या उत्तर दिया? एक हम हैं कि अपनी "मेम साहब" की एक एक बात लिख देते हैं और पूर्ण रूप से।

रसोई बनाने के लिए नौकर रक्खा था, देवी जी ने निकाल दिया। कहती हैं, हमारी स्वाधीनता में फ़र्क पड़ता है। हर समय सहमे सहमे रहो, कहीं कोई बात न सुन ले, कहीं कुछ देख न ले। यह रोग कौन पाले। फट पड़े सोना जो छेदे कान। मैंने बहुत कहा, कि तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ जायगा। मगर जनाब! कौन परवा करता है। अब सारा कामकाज अपने "श्रीहाथों" से करती है, और ज़रा भी नहीं थकती। और फिर लुत्फ़ यह कि क्या मजाल जो कोई भी काम रुक जाय। सारा घर शीशे की तरह चमकता है। जब नौकर था, ऐसी सफ़ाई उस ज़माने में भी न होती थी। मेरे दफ़्तर का चपरासी है, उससे भाजी आदि मँगवा लेती है, और सब काम ख़ुद करती है। यहाँ तक कि कमरों की सफ़ाई भी ख़ुद करती है। मैं रोकता हूँ, और वह हँसकर टाल देती है। कहती है, घर का काम करने में लाज कैसी, अपने पाँव तो रानियाँ भी धो लेती हैं। और फिर इन कामों को भी ऐसे श्रद्धा-भाव से करती है, मानों किसी उपास्य देवता की पूजा कर रही हो। एक दिन मैंने कहा—लज्जा! तुमको अब यह काम न करने दूँगा, मैं वकील हूँ, कहार नहीं हूँ। जो कहारियां भी न करें, तुम वह कर रही हो। इस पर जोश में आगई, और एक पूरा व्याख्यान दे डाला! भाई मुझ पर तो रोब पड़ गया। मैं समझता था, सीधी-सादी लड़की है। पर यह तो पूरी फ़िलासफ़र निकली। इसके विचार कैसे गम्भीर हैं, कितने पवित्र। ऐसी स्त्रियाँ मैंने अपने समाज में कम देखी हैं। लज्जा का गौरव मेरी दृष्टि में दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है। परमात्मा मुझे उसके योग्य बनाये।

तुम्हारा मित्र
प्रताप

(३)

रामनिवास, जालन्धर
२० दिसम्बर १९१९

भाई जान!

नमस्ते। पत्र आपका मिला, पढ़ कर आनन्द आ गया। मुझे स्वप्न में भी यह आशा न थी कि भाभीजी ऐसे स्वभाव की होंगी। मिसिज़ प्रतापचन्द बहुत देर तक हँसती रहीं। फ़रमाती हैं, ऐसा जवाब दूँगी, कि छट्टी का दूध याद आ जाय। हमने कहा—हम ऐसा जवाब देंगे कि सातवीं का दही याद आ जाय।

तुम क्रिसमिस की छुट्टियों में दिल्ली बुलाते हो, मगर हम वहाँ न आ सकेंगे। हमारी सैर यहीं होगी। लज्जा कहती है, इन छुट्टियों का रास्ता देखते देखते तो आँखें भी पक गईं, अब दिल्ली आने-जाने में कैसे उड़ा दें। तुमको भी असुविधा होगी। मुँह से शायद मुरौअत के मारे न कहो, मगर दिल में ज़रूर गालियां देते रहोगे। और जहां तक भाभीजी को मैंने तुम्हारे पत्रों से समझा है, वह तो स्पष्ट रूप से कह देंगी कि तुम दोनों अद्भुत आदमी हो। हमने हँसी-मज़ाक़ के तौर पर ख़त लिखा था, तुम झटपट टिकट लेकर गाड़ी में बैठ गये। इतना भी न हुआ, कि एक आध बार नाहीं कर दें। बताओ; उस समय क्या उत्तर दूँगा? तुम तो गरदन खुजलाते हुए ऊपर की ओर देखने लग जाओगे। परन्तु हमारी आँखें तो ऊपर न उठेंगी।

न भाई! यह नहीं होगा। छुट्टियों का पूरा सप्ताह यहीं बीतेगा। प्रातःकाल साहब बहादुर और मेमसाहबा कम्पनी बाग़ की सैर करेंगे; दुपहर को तास खेलेंगे, शाम को सिनेमा हाल में जाकर प्रेम, सौन्दर्य और यौवन के रसीले तमाशे देखेंगे, और रात को अपने घर जाकर उन तमाशों के ख़ास ख़ास भागों की नक़्ल उतारेंगे। कहो इससे अच्छी सैर और कहाँ होगी? दिल्ली में क्या पड़ा है, लाल क़िला और कुतब साहब की लाट! और छुट्टियों के रंगीन दिनों का गला घोटने के लिए एक नीरस भाई और एक कोतवाल भाभी! बाप रे बाप, ऐसी मूर्खता कौन कर सकता है? कम-से कम एक वकील तो नहीं, चाहे उसकी वकालत अभी तक न चली हो।

हाँ, एक बात का मुझे बड़ा भय है। लज्जा की छोटी बहन शान्ता यहाँ कन्या-महाविद्यालय में पढ़ती है। क्रिसमिस में उसे भी छुट्टियाँ होंगी। कहीं वह न आ जाय। परमात्मा उसे सुबुद्धि दें, वर्ना हमारी सकल शुभ इच्छायें मिट्टी में मिल जायँगी।

तुम्हारा, प्रताप

(४)

रामनिवास, जालन्धर
२८ दिसम्बर १९१९

माई डियर राधाकृष्ण !

नमस्ते। जिस बात का भय था, वही हुई। शान्ता २४ तारीख़ से यहां है। यदि पहले पता होता, तो भगवान् जानता है, तुम्हारा निमंत्रण ज़रूर स्वीकार कर लेता। और न होता, दिल्ली की सैर तो हो जाती। और फिर तुम्हारे यहाँ हमें उस लोक-लज्जा की ज़रूरत न थी, जिसका हमें आज-कल यहां ख़याल रखना पड़ता है। क्वांरी लड़की है, उसके सामने आँखें भी उठायें, तो शर्म आती है। एक दिन खाना खा रहे थे। मैं मना करता रहा, लज्जा ने थाल में और रोटी फेंक दी। मेरा पेट भर चुका था, एक ग्रास के लिए भी स्थान न था, मैंने पूछा—मुझे तो भूख नहीं, अब यह रोटी कौन खायगा ?"

लज्जा ने धीरे से उत्तर दिया—आप खायँगे।

मैं—"मुझे तो अब ज़रा भी भूख नहीं। जो खाना था, खा चुका।"

लज्जा—"खा कैसे चुके ? एक ज़रा सी रोटी है। खा जाओ।"

मैं—(प्यार से) नहीं मेरी रानी ! इस वक्त तो क्षमा ही कर दो।

बस इसी बात पर खफ़ा होगईं कि तुमने मेरी बहन के सामने यह शब्द कहे क्यों ? वह दिल में क्या कहती होगी, यही कि दोनों जने निर्लज्ज होगये। मेरे सामने भी मज़ाक़ करने से न रुके। और जो उसने विद्यालय में जाकर अपनी किसी सहेली से कह दिया, फिर तो ग़ज़ब ही हो जायगा। कहो, कैसा दुर्भाग्य है, अपने घर में भी पराये बनकर रहो। क्या सोचा था, क्या हो गया। और शान्ता इतनी भोली है, कि इन बातों को ज़रा नहीं समझती, रात को भी बहन के साथ ही सोती है। अब हमारी यह दशा है कि खीर का थाल सामने धरा है, खाने को मन ललचा रहा है, परन्तु आंख उठाकर देखते भी नहीं कि कहीं कोई यह न कह दे, भूखा है, देखते ही टूट पड़ा। हाथ बढ़ाते भी हैं, तो इस शान से जैसे श्रीमान्‌जी अनुरोध से खा रहे हैं। यद्यपि सत्य यह है कि पेट में चूहे दौड़ रहे हैं। यदि संसार, और संसार के व्यवहार का भय न होता, तो थाल ही को मुँह लगा देते, चमचे की भी प्रतीक्षा न करते, मगर अब···

तुम पूछोगे, दिन कैसे कटता है ? दफ़्तर में बैठा ला की पुस्तकें देखा करता हूँ। परन्तु केवल देखता हूँ, पढ़ने में किस मरदूद का मन लगता है। लेकिन शान्ता का आना मुझे ही नहीं अखरा, लज्जा को भी बुरा मालूम हुआ है। एक दिन शान्ता छत पर बैठी एक पुस्तक पढ़ रही थी, लज्जा ने मुझे इशारे से कमरे में बुलाया और मेरा हाथ प्यार से अपने हाथ में लेकर बोली—खफ़ा क्यों रहते हो ? क्या करूँ, छुट्टियों के दिन बड़े मज़े से गुज़रते, मगर शान्ता के मारे सिर नहीं उठाया जाता। मैंने एक आध बार कहा भी है कि तुम्हारी पढ़ाई में अड़चन होती होगी, विद्यालय चली जाओ। पर वह इतनी सरला है कि ज़रा नहीं समझती; कहती है, कोई बात नहीं। एक सप्ताह के लिए बहन मिली है, उसे तो न छोड़ूँगी।

मैं—(लज्जा की ठुड्डी को हाथ से ऊपर उठाकर) अगर यह न आती, तो ताश खेलते, प्यार मुहब्बत की बातें करते और········ ···

लज्जा मेरा संकल्प जानकर पीछे हट गईं, और हँस कर बोली—बड़े शरारती हो। दूर खड़े रहो।

मैं—क्यों लज्जा ! यह क्यों नहीं कहतीं कि हम तुम्हें मिलने को रोज़ विद्यालय आ जाया करेंगे।

लज्जा—(मुस्करा कर) यह तीर भी ख़ाली गया। वह कहती है, तुम मेरी बड़ी बहन हो, तुम्हें कष्ट न दूँगी।

बताओ, क्या किया जाय ? उधर तुम एक गोपी को साथ लिये मथुरा और वृन्दावन की सैर करते फिरते हो। कदाचित् तुम्हारा कहा मान लेते, तो इस संकट में काहे को फँसते ? •

परन्तु इतना ही नहीं। मेरे दिल पर एक बोझ-सा पड़ा रहता है। तुम मेरे परम मित्र हो, तुमसे क्या पर्दा है। मुझे लज्जा पर कुछ संदेह होगया है।

बहुत यत्न करता हूँ, मन को समझाता हूँ, परन्तु शान्ति प्राप्त नहीं होती, कल शाम को घर आया, तो लज्जा बैठी कुछ लिख रही थी, और ऐसी तन्मय होकर, कि उसे मेरे आने की भी ख़बर न हुई। शान्ता ऊपर थी। मेरे दिल में ख़याल आया कि आगे बढ़कर लज्जा की आंखों पर पीछे से हाथ रख दूँ। चौक उठेगी, मैं कहूँगा, तुम्हें मालूम भी न हुआ। यह सोच कर मैंने पांव से जूता निकाल दिया, और धीरे धीरे आगे बढ़ा। एका-एक वह चौंक पड़ी। उसने मुझे देखा, और कागज़ छिपा लिया। मैं कहता था, दिखाओ, क्या लिखती थी, और वह कहती थी, क्यों दिखाऊँ ? न दिखाऊँगी। मैंने प्यार से कहा, क्रोध से कहा, धमकी दी, अप्रसन्नता प्रकट की। मगर उस पर इनमें से किसी बात का भी असर न हुआ। राम जाने क्या लिख रही थी ? कोई ख़ास बात ही होगी, वर्ना मुझसे छिपाने की ज़रूरत ही क्या थी ? मैं हार कर चुप हो रहा, परन्तु सन्देह की आग दिल में धधक रही थी। सारी रात नींद नहीं आई।

अब ऐसा मालूम होता है, जैसे कोई बहुमूल्य वस्तु खो गई हो, या जैसे किसी अज्ञात भय से दिल कांप रहा हो। कई बार ख़याल आता है कि बात कुछ भी नहीं; अपने भाई या पिता को पत्र लिख रही होगी। मैं भी कैसा छोटे दिल का आदमी हूँ, ज़रा-सी चञ्चलता पर ऐसी सुशीला, प्रेममयी, पतिव्रता पर ऐसा सन्देह ! निश्चय मैं पागल हो गया हूँ। पर क्या करूँ, यह सन्देह साँप के विष की तरह पल पल बढ़ता जाता है। संसार की हर एक वस्तु बदली हुई देख पड़ती है। परमात्मा करे। यह वहम ही हो, परन्तु जब तक कागज़ देख न लूँगा, चैन न आयेगा।

तुम्हारा चिन्ता-ग्रस्त, प्रताप

(५)

रामनिवास,
जालन्धर
३ जनवरी १९१६

भाई जान !

तुम्हारा पत्र मिला, मगर अब मुझे समझाना निष्फल है। जो होना था, हो चुका। तुम्हारा ख़याल है, मेरा दिमाग़ चल गया है, तुम समझते हो, लज्जा सती-साध्वी है। मेरी भी ऐसी ही धारणा थी। मगर काश ऐसा होता, तो इस समय मैं इतना दुखी, अधीर, अशान्त न होता। तुम्हें यह सुनकर शोक होगा कि लज्जा कल इस दुनिया से चल बसी, परन्तु मुझे इसका ज़रा भी शोक नहीं, हां यदि न मरती, तो ज़रूर शोक होता।

वह पत्र मैंने पढ़ लिया। सन्ध्या का समय था, लज्जा शान्ता को छोड़ने के लिए विद्यालय गई हुई थी। मैंने मैदान साफ़ पाकर मेज़ की दराज़ खोल ली। पर मुझे आशा न थी कि ख़त वहां होगा। मैं समझता था, वह ऐसी अदूरदर्शी, इतनी मूर्खा न होगी। मगर कागज़ वहीं था, उसी तरह, न लपेटा हुआ, न तह किया हुआ। मैंने उसे पढ़ा, और मेरा सिर चकराने लगा। यह साधारण कागज़ न था, लज्जा की पापों की स्वीकृति थी। यह चिट्ठी न थी, मेरे प्रेमापमान की घृणा-पूर्ण कहानी थी। मैंने सिर पीट लिया। किसे ख़याल था कि लज्जा जैसी नेक, लजीली, प्यार करनेवाली स्त्री ऐसी भ्रष्टाचारिणी होगी। किसी दूसरे की ज़बान से मैं यही बात सुन कर उस पर कभी विश्वास न करता, मैं उसका मुँह नोच लेता, मैं उसकी गर्दन मरोड़ देता। किन्तु अब............यह सन्देह न था, लज्जा के अपने हाथ की लिखी हुई चिट्ठी मेरे सामने थी, और मैं उसे अपनी आँखों से पढ़ रहा था। यह प्रेम-पत्र किसी मनमोहन के नाम था—प्यारे मनमोहन ! व्याह होगया; पर मैं अब भी तुम्हारी हूँ। मेरा पति मुझे बहुत चाहता है, मेरी हर एक इच्छा को पूरी करना अपना धर्म्म समझता है। मगर तुम्हें कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मुझे उसकी शक्ल से भी घृणा है। उसे देखकर मेरी देह को आग-सी लग जाती है। अगर अपने बस की बात होती, तो एक दिन में भाग खड़ी होती, और तुम्हारे पास पहुँच जाती। पर अपनी और तुम्हारी बदनामी का भय है............।

राधाकृष्ण ! यह अधूरा पत्र पढ़कर मुझ पर बिजली-सी गिर पड़ी। मैं वहीं कुरसी पर बैठ गया। नहीं, बैठा नहीं, गिर पड़ा, और फूट फूट कर रोया। इस

तरह मैं अपने जीवन में आज तक नहीं रोया हूँगा। कितनी लज्जा, कैसे शोक की बात है, कि जिस स्त्री पर मैं अपनी जान निछावर करता था, जिसका प्रेम मेरे दिल का प्रकाश था, जिसकी मुसकान देखकर मेरे शरीर के रोम रोम में आनन्द की लहर दौड़ जाती थी, वही स्त्री किसी दूसरे को चाहती थी। और मैं कितना मूर्ख था, कि मुझे इसका ज़रा भी ज्ञान न था। वह द्वार पर खड़ी होकर मेरी प्रतीक्षा करती थी, वह मुझे देख कर ख़ुशी से झूमने लग जाती थी, उसकी आँखें चमकने लगती थीं, मगर प्यार की ये धोखेबाज़ियां केवल इसलिए थीं कि मैं उल्लू बना रहूँ। परमात्मा जाने, इसी छत-तले बैठकर उसने अपने अपवित्र हाथों से इसी प्रकार और कितने पाप से परिपूर्ण पत्र लिखे होंगे।

थोड़ी देर बाद वह आगई। उसके मुँह पर, इस समय भी वही सादगी थी, आँखों में वही प्रेम! परन्तु अब मैं पागल नहीं होगया। अब मैंने उसका दिल देख लिया था। ऊपर जल की लहरें क्रीड़ा करती थीं, नीचे भयानक घड़ियाल बैठा था। जब तक घड़ियाल न देखा था, तब तक धोखा खाता रहा, पर अब मैंने वह घड़ियाल देख लिया था। लज्जा ने मेरे बदले हुए तेवर देखे, और डर गई। उसने मुझे मनाना चाहा। उसने मेरे क्रोध का कारण पूछा, मगर मैंने उसे झिड़क कर परे हटा दिया। अब वह रो रही थी, और ऐसे, जैसे उस पर संसार की सबसे बड़ी मुसीबत टूट पड़ी हो। पता नहीं क्यों, उसकी आँखो में आँसू देखकर मेरा दिल घबरा गया, मुझे ऐसा अनुभव होने लगा कि मैं उसके साथ अन्याय कर रहा हूँ। मैं आगे बढ़ा कि उसे गले से लगा कर चुप करा दूँ। सहसा उसका पत्र याद आ गया। मैंने अपने आपको रोक लिया। उसका यह रोना भी उसके प्रेम के समान धोखा था। मैं पागलों की तरह उठ कर बाहर चला गया। वह रोकती रह गई, परन्तु मैंने उसे धक्का देकर गिरा दिया, और बाहर निकल गया। वह बड़े ज़ोर से ज़मीन पर गिरी, मगर मैंने ज़रा भी परवा न की। जैसे गले सड़े फलों को हम परे फेंक देते हैं।

रात को ग्यारह बजे मैं वापिस लौटा। लज्जा रसोई-घर में बैठी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी, पर मुझे भूख न थी। मैंने साफ़ साफ़ कह दिया, मैं कुछ न खाऊँगा। कितनी धोखेबाज़ थी, इस समय भी इस तरह फूट फूट कर रोई, जैसे उसका दिल फटा जा रहा है। मगर मैं उसके छल को ख़ूब समझता था। दूसरे दिन सोकर उठा, तो वह चारपाई पर मरी पड़ी थी। पता नहीं विष खा लिया, या राज़ खुल जाने के भय से दिल की धड़कन बन्द हो गई। मैंने परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उस ख़ूबसूरत बला से पीछा छूटा। ब्याह पर जितना ख़ुश हुआ था, उसकी मौत पर उससे भी ज़्यादा ख़ुश हुआ।

तुम्हारा
प्रताप

(६)

रामनिवास, जालन्धर
५ जनवरी १६१६

प्यारे भाई!

तुम्हारा ख़याल ठीक निकला। मैं सन्देह ही सन्देह में बरबाद होगया। मैंने अपने हाथों से अपनी सोने की लङ्का जला कर भस्म कर ली, वह नेक थी, वह सती-साध्वी थी, उसके मन में पाप की छाया भी न थी। मगर मेरी आँखों पर पत्थर पड़ गये थे। कदाचित् उस समय ज़रा भी सोच-समझ से काम लेता, तो आज यों रोना न पड़ता। परन्तु अब क्या हो सकता है? जो होना था, हो गया। पहले छिपाया था, पर अब न छिपाऊँगा। न छिपाने से कुछ लाभ है। लज्जा ने विष नहीं खाया, न उसे किसी साँप ने काटा था। उसका हत्यारा मैं हूँ, उसे स्वयं मैंने मारा है। मेरे ही पापी हाथों की निर्दयी अँगुलियों ने उसका गला घोंट दिया।

रात का समय था, वह दिन भर की चिन्ता और मनस्ताप से थक कर सोगई थी। उसके गुलाबी गालों पर उसके आंसुओं के चिह्न अभी तक बाक़ी थे। उसका एक हाथ सिर के नीचे था, दूसरा सीने पर था। चेहरे पर हार्दिक वेदना की गहरी छाया थी। मगर इस पर भी उसकी मोहनी छबि की शोभा से सारा कमरा जगमगा रहा था, जैसे चन्द्रमा की चांदनी बादलों के अन्दर से फूट फूट कर निकलती है। मगर जिसकी आँखें दुखती हों,

उसको रोशनी ऐसी चुभती है, मानो किसी ने उनमें लाल मिर्चें डाल दी हों। मेरी भी यही दशा थी, उसका सौन्दर्य उस समय मुझे सबसे बुरा मालूम हुआ। मेरा ख़ून उबल रहा था। मैं धीरे से उसके पलँग पर बैठ गया। उसकी आंख खुल गई। उसने मुझे प्यार की अध-खुली आखों से देखा, और अपने साथ लिटाने के लिए हाथ बढ़ा दिये। अब मैं क्रोध के वश में न रख सका, मैंने उसका गला पकड़ लिया, और उसे अपनी देह की पूरी शक्ति से दबाया। उसकी आंखें बाहर निकल आईं। परन्तु उनमें भय न था, आश्चर्य था। वह समझ न सकती थी कि ये क्या कर रहे हैं, और मेरा अपराध क्या है? वह गला छुड़ाने के लिए चेष्टा करती थी और मैं पागलों के समान उसे और भी ज़ोर से दबाता जाता था। यहां तक कि उसकी चेष्टा समाप्त हो गई; और इसके साथ ही उसकी जीवन-लीला का भी अन्त होगया। अब पलँग पर वह न थी, उसकी लाश थी। उस समय मैं ऐसा प्रसन्न था, जैसे कोई जुए-बाज़ बड़ा भारी दाव जीत ले। परन्तु वास्तव में यह मेरी जीत न थी, मेरे जीवन की सबसे बड़ी हार थी।

इसका ज्ञान मुझे आज ही दोपहर को हुआ। शान्ता की कुछ पुस्तकें मेरे यहां पड़ी थीं, वह लेने आई। बहन का घर था, मगर बहन न थी, शान्ता फूट फूट कर रोने लगी। उसे रोते देखकर मेरी आंखें भी सजल हो गईं। रूमाल निकाल कर मुँह पोंछने लगा, तो जेब से एक काग़ज़ गिर पड़ा। यह वही काग़ज़ था जिसने लज्जा का राज़ खोल दिया था। जिसे देख कर मैं पागल हो गया था। जो उसके पापों का जीता-जागता प्रमाण था। शान्ता ने उसे उठा लिया, और उचटती हुई दृष्टि से देखकर ठण्डी आह भरी।

मुझे आश्चर्य हुआ—तो क्या यह भी जानती है? मेरे हृदय में उथल-पुथल होने लगी। मैंने कांपते हुए कहा—"शान्ता"?

शान्ता ने अपनी आंसुओं से भरी हुई आंखें ऊपर उठाईं, और बेपरवाई से मेरी ओर देखा। मगर उनमें बहन की मौत के दुःख के सिवाय और कुछ भी न था।

"क्या तूने यह काग़ज़ देखा है?"

"हां, देखा है।"

और वह अब भी ऐसी शान्त थी, जैसे वह काग़ज़ केवल सादा काग़ज़ ही हो, मगर मेरा दिल बाज़ के पंजे में फँसे हुए कबूतर के सदृश तड़प रहा था।

"यह तुम्हारी बहन का पत्र है।"

"नहीं, यह उसकी पहली कहानी का पहला भाग है।"

मैंने शान्ता के ये शब्द सुने, मगर इनका अर्थ न समझ सका। पर इतना जान गया, कि मुझसे कोई भयानक भूल हो गई है। इस समय मेरा दिल बड़े ज़ोर ज़ोर से धड़क रहा था, और उसकी आवाज़ मेरे कानों तक आ रही थी।

मैंने घायल पंछी के समान तड़प कर पूछा—"शान्ता, तूने क्या कहा?"

शान्ता ने मेरी ओर देखा और अपनी बहन की याद में ठण्डी सांस भर कर कहा—जीजाजी! आपसे क्या कहूँ, बहनजी ने यह कहानी कैसे चाव से लिखनी शुरू की थी। वह इसे छः पत्रों में समाप्त करना चाहती थी। यह उसका पहला पत्र है, और वह भी अधूरा। मैंने कहा—जीजाजी से पूछ लो, तो कहानी और भी अच्छी बन जाय। मगर उन्होंने जवाब दिया दुर पगली! उनको मालूम हो गया, तो सारा मज़ा ही किरकिरा हो जायगा। मज़ा जब है, उनको पता भी न लगे, और कहानी किसी पत्रिका में छपकर सामने आ जाय। हैरान हो जायँगे, दङ्ग रह जायँगे। कहेंगे, लज्जा, मुझे बिलकुल पता न था कि तू कहानियां भी लिख सकती है। पर किसे ख़याल था कि मौत घात में है। कहानी समाप्त न हुई, आप समाप्त हो गईं।"

मैं तड़प कर खड़ा हो गया—तो वह निर्दोष थी, मैं ही अन्धा होगया था। अब मुझे उसकी एक एक बात याद आने लगी। वह भोला-भाला चेहरा, वह सादगी, वह अचरज में डूबी हुई सुन्दरता, वे सहमी हुई आंखें, आज सब कुछ स्वप्न होगया! कैसी स्त्री थी, जिस पर स्वर्ग की देवियों को भी डाह होता, मगर मैं उसके योग्य न था। मुझे उसकी पूजा करनी चाहिए थी, मगर मैंने अपने निर्दयी हाथों से उसका गला घोंट

कृष्ण-जन्म (३)
पथ पर

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग] [चित्रकार—सारदाचरण उकील

दिया और परमात्मा का न्याय संसार के इस सबसे बड़े अन्याय को चुप की आँखों से देखता रहा, और उसको ज़रा भी जोश न आया।

अब रात हो गई है। कमरे का लैम्प रोशन है, मगर मेरे अँधेरे हृदय का अमूल्य दीपक बुझ चुका है। किसी किसी वक्त ऐसा जान पड़ता है, कि वह रसोई-घर में खाना बना रही है। अभी आयेगी, अभी कुरसी के पीछे खड़ी हो जायगी। वही मधुर, वही सुकोमल, प्यार के अमृत में सना हुआ वही स्वर फिर सुनाई देगा। हृदय को विश्वास ही नहीं होता, कि वह मर चुकी है। मैं इस तरह चला, जैसे कोई स्वप्न में चल रहा हो, और रसोई-घर में जा पहुँचा। वहां प्रकाश था। तो क्या प्रकृति के न बदलनेवाले नियम बदल गये। मेरा दिल धड़कने लगा। मैं जल्दी से आगे बढ़ा। मगर......... वहां पहाड़ी नौकर रोटी बना रहा था, जो मेरे एक वकील मित्र ने भेज दिया था। मैं रोता हुआ लौट आया और मुझे विश्वास हो गया कि सचमुच मेरा सर्वस्व नष्ट होगया। यदि वह ज़िन्दा होती, तो वह अपनी रसोई में किसी ग़ैर को पाँव भी न धरने देती। हा विधाता! यह प्रेम का नाटक कितनी जल्दी समाप्त होगया।

कमरे में वह मेज़ उसी जगह पड़ा है। वह कुरसी भी वहीं धरी है, जिस पर बैठकर उसने वह पत्र-कहानी लिखनी शुरू की थी। क़लम, दावात, काग़ज़ सब कुछ वहीं है, केवल वह नहीं है। सन्दूकों में उसके हाथों के तह किये कपड़े उसी तरह पड़े हैं। खूँटी पर उसकी रेशमी सारी लटक रही है। मशीन में आधी सिली हुई क़मीज़ उसकी राह देख रही है। मगर वह कहाँ चली गई। साहित्य के साथ खेलने लगी थी। परन्तु उस ग़रीब को क्या मालूम था कि यह साहित्य-क्रीड़ा नहीं मृत्यु-क्रीड़ा है। मैं वकील हूँ। कचहरी में आकाश-पाताल की बातें करता हूँ, पर इतनी समझ न आई कि उससे पूछ लूँ, यह पत्र किसके नाम है। सच है, विनाश के समय बुद्धि विपरीत हो जाती है।

अब नौ बज गये हैं, दस बजे मेरे और मेरी लज्जा के माता-पिता आ रहे हैं। उनको अपना काला मुँह कैसे दिखाऊँगा? जब पूछेंगे, कि लज्जा कहां है, तो क्या उत्तर दूँगा? उसकी मृत्यु का कारण क्या बताऊँगा? हे भगवान्! वह समय कभी न आये। मगर दीवार-घड़ी टिक टिक कर रही है, और समय बीत रहा है, और थोड़ी देर बाद यह एक घण्टा भी बीत जायगा। उस समय मैं क्या करूँगा? मगर नहीं, यह असम्भव है। यह नहीं होना चाहिए। यह नहीं हो सकता। यह नहीं होगा।

यह दीवार-घड़ी उस रात भी इसी तरह टिक टिक कर रही थी। मैंने उसका गला दबाया और यह टिक टिक करती रही। वह तड़प कर ठण्डी हो गई, और यह टिक टिक करती रही। आज रात भी यह उसी तरह टिक टिक कर रही है। और एक घण्टा के बाद भी जब कि मेरे और उसके अभागे माता-पिता हम दोनों की रहस्यमयी मृत्यु पर ख़ून के आँसू बहा रहे होंगे, इसकी टिक टिक इसी तरह जारी रहेगी।

तुम्हारा अभागा मित्र
प्रताप

शुक-संवाद

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(३७)

शुक! हाँ मुझे कहना अभी है,
बहुत कुछ अवधान दे।
जो कह रही हूँ तू उसे,
अविकल सुनाना जा वहाँ॥

(३८)

हे वीर! सुन तेरी प्रिया ने,
जो कहा सन्देश है।
मैं कह रहा हूँ, पर समझना,
तू वही है कह रही॥

(३९)

क्या है स्मरण, रण के लिए,
जब तुम चले होकर बिदा।
तब खड्ग को मैंने दिया,
तुमको लगाकर कण्ठ से॥

(४०)

तुमने कहा तब "वीरभार्य्ये,
धैर्य्य को धारण करो।
पाकर समर में मैं विजय,
अति शीघ्र आऊँगा यहाँ"॥

(४१)

आये नहीं तो क्या हुआ?
निज वृत्त को तो भेजते।
तो भी यही है प्रार्थना,
कर्त्तव्य को मत भूलना॥

(४२)

हे वीर! जो फल तीर्थ-सेवन—
से न मिल सकता कभी।
वह फल समर के सेवियों के,
साम्हने रहता खड़ा॥

(४३)

जो लाभ ब्रह्मज्ञानियों को,
भाग्य से होता कभी।
वह लाभ रण में वीर को,
निःशंक होता है स्वयम्॥

(४४)

गो-रत्न-भू-अन्नादि के
जो दान का भी फल नहीं।
वह फल समर के रसिक के,
करतल सदा है खेलता॥

(४५)

यदि मृत्यु हो तो मुक्ति हो,
यदि हो विजय तो यश मिले।
फिर क्यों न ऐसे युद्ध की—
हो वीर के मन कामना?

(४६)

है यज्ञ का फल स्वर्ग, पर—
अक्षय उसे मत मानना।
अक्षय त्रिदिव मिलना उसे,
रण-यज्ञ का जो है व्रती॥

(४७)

होना उऋण यदि है तुम्हें
हे वीर! मा के दूध से।
तो शत्रु-शोणित से मही—
को तृप्त करना चाव से॥

(४८)

लड़ते समय भट-भाल का,
यदि रक्त-कण मुख में पड़े।
तो सोम का भी पान उसके—
तुल्य है मख में नहीं॥

(४९)

तन-मन-धनादिक हैं सभी—
नश्वर, तुम्हें भी ज्ञात है।
पर वीर का यश है अमर,
यह ध्यान रखने योग्य है॥

(५०)

रण को तुम्हारे स्वर्ग से,
होंगे पितर सब देखते।
करना न लज्जित तुम उन्हें,
होकर विमुख संग्राम से।

(५१)

जग में अमित उत्सव बने—
हैं पामरों के योग्य जो।
पर है रणोत्सव एक ही,
बस धीर-वीरों के लिए॥

(५२)

यदि हो विजय तो आ मुझे,
प्यारे! लगाना कण्ठ से।
पर वीरवर! है वीरगति,
शोभा पराजित वीर की॥

(५३)

भगते समर से जो उन्हें—
क्या मृत्यु है खाती नहीं?
फिर क्यों अयश को लीजिए,
इस क्षुद्र जीवन के लिए॥

(५४)

मरते समुद जो युद्ध में,
मिलती अमर-पदवी उन्हें।
क्या रुग्ण होकर वीर भी—
है खाट पर मरता कहीं?

(५५)

रण से विमुख पति के वदन,
वीराङ्गना लखती नहीं।
है भीरु-पत्नी से कहीं,
विधवा सुखी संसार में॥

(५६)

रण में तुम्हारी भीरुता यदि,
ख्यात भू पर होगई।
तो मैं न सखियों को वदन,
दिखला सकूँगी स्वप्न में॥

(५७)

डरता उसी से विश्व है,
जो मृत्यु से डरता नहीं।
यमराज को भी दासता,
उसकी पड़ेगी माननी॥

(५८)

विजयी सुभट से भी अधिक,
वर वीरवर संस्तुत्य है।
जिसने समर में अग्रसर—
होता हुआ मस्तक दिया॥

(५९)

सार्थक उसी स्त्री की हुई,
सिन्दूर-शोभा भाल में।
हो नाथ जिसका जग-जयी,
या वीरगति संप्राप्त हो॥

(६०)

है साथ में उसके विजय,
है हाथ में उसके मही।
जो नर समर में प्राण रहते,
पीठ है देता नहीं॥

(६१)

विजयी हुए तो मैं मिलूँगी,
वीरवर! तुमसे यहीं।
विधिवश विजित यदि तुम हुए,
तो भेंट होगी स्वर्ग में॥

(६२)

देही अमर, अज है, किसी—
विधि भी न मर सकता कभी।
फिर क्यों समर से वीरवर—
कोई डरेगा स्वप्न में?

(६३)

सुर भी समर में साम्हने,
आ जायँ तो हटना नहीं।
फिर कौन असुरों की कथा ?
रण की प्रथा, भट ! है यही॥

(६४)

रामा रमा को भोगने को,
हैं मनुज प्राकृत बने।
पर वीर पाता जन्म है,
रण में मरण के हेतु ही॥

(६५)

असमय कभी नर का कलेवर,
है बदल सकता नहीं।
त्रयकाल में भी इसलिए,
डरते न योद्धा काल से॥

(६६)

रण में न प्रण को छोड़ना,
है प्राण जब तक देह में।
यश-देह मिलती है उसे,
जिसको समर से प्रेम है॥

(६७)

यह पाञ्चभौतिक देह नर को,
है मिली जिस देश में।
उस देश पर होना निछावर,
देह का कर्त्तव्य है॥

(६८)

हैं विविध पूजायें बनीं,
धर्मज्ञ भक्तों के लिए।
रण में मरण-मारण कथित—
है वीरपूजा वीर की॥

(६९)

आज्ञा मिले यदि नाथ ! तो,
मैं भी चली आऊँ नहीं।
दिखला समर के कृत्य कर दूँ—
व्यर्थ अबला नाम को॥

(७०)

मैं भी रहूँ यदि साथ तो,
फिर क्यों न हो जय आपकी ?
है शक्ति विस्फूर्जित जहाँ,
विक्रम वहाँ पर क्यों न हो ?

(७१)

है भीत यम से जग तभी,
जब मृत्यु उसके हाथ है।
घन-रव भयावह है तभी,
उसके तडित् जब साथ है॥

(७२)

मेरे कथन का तत्त्व तुम,
मन में समझ लेना यही।
जिससे सुयश जग में रहे,
करना उसी सत्कृत्य को॥

[क्रमशः

कृषि-शिक्षा

[श्रीयुत गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री]

षट् कर्म्मसहितो विप्रः कृषिकार्य्यं च कारयेत् ।

पराशरः ।

अमेरिका के मनस्वी कार्य्यार्थी लोगों ने अपने देश की कृषि की बड़ी उन्नति कर ली है । ई० स० १८६८ में अमेरिका के कैलीफोर्निया नामक प्रदेश में गेहूँ की उपज चार गुनी होती थी । पर आज दिन वहाँ गेहूँ की उपज तीस-बत्तीस गुनी से अधिक होती है । इसी अनुपात में वहाँ के देश-भक्तों ने अन्यान्य सात्विक भोज्यान्नों और गव्य-पदार्थों की उन्नति की है । इस आशातीत उन्नति का एक-मात्र कारण किसानों में विज्ञान-मूलक कृषि तथा गवायुर्वेद-गर्भित गो-परिपालन की शिक्षा का यथेष्ट प्रचार ही है । इस प्रचार में वहाँ की जनता और सरकार का सहयोग विशेषरूप से प्रशंसनीय और अनुकरणीय है ।

अमेरिका के विद्वान् इस बात को पूर्णतया समझ चुके हैं कि जो किसान अपने देश की जनता के अस्तित्व के मूलाधार भोज्यान्नों को पैदा करने में लगे रहते हैं वे निःसन्देह देश के प्रतिष्ठा और आदर के भाजन हैं । इसलिए देश के सब श्रेणी और सम्प्रदाय के प्रत्येक समर्थ और समझदार जन का यह कर्त्तव्य है कि वह व्यष्टि और समष्टि रूप से अपने देश के किसानो में उस शिक्षा का सहायक बना रहे जिसकी सहायता से किसान लोग अपनी धरती को उपजाऊ बनाये रखकर उससे देश की माँग के अनुसार उपज लेते रहें । इस धारणा को कार्य्य का रूप देने के लिए अमेरिका की संयुक्त सरकार तथा भिन्न भिन्न राज्यों की सरकारों ने कृषि की शिक्षा के लिए प्राथमिक पाठशालाओं से लेकर कृषि-विद्यालयों तक की स्थापना की है । उनके पीछे वे प्रति वर्ष लाखों नहीं करोड़ों रुपये खर्च करती रहती हैं ।

ग्रामीण पाठशालाओं में पढ़नेवाले किसानों के लड़के और लड़कियों में कृषि और कृषि-कार्य में प्रधान रूप से सहायता देनेवाले पशु-पक्षियों के परिपालन-विज्ञान की शिक्षा के प्रचारार्थ वहाँ जो उद्योग किया जाता है, उसका संक्षिप्त वर्णन आज यहाँ दिया जाता है । आशा है कि सरस्वती के मनस्वी पाठक इस वर्णन को पढ़कर वैसी व्यवस्था अपने यहाँ भी करने की चेष्टा करेंगे ।

अमेरिका के साक्षर लोगों को अब इस बात का ज्ञान हो गया है कि किसानों के बालकों को पाठशालाओं में वही शिक्षा दी जानी चाहिए जो उनके गृहजीवन से सामञ्जस्य रखती हो, क्योंकि जो शाला-शिक्षा उनके गृहजीवन से सम्बन्ध नहीं रखती वह उनके लिए लाभदायक नहीं होती । इस कथन को एक उदाहरण ही स्पष्ट कर देगा । भारत की सभी प्राथमिक पाठशालाओं में विद्यार्थियों को लघूत्तम पढ़ाया जाता है । पर उन्हें यह नहीं बताया जाता कि वे लघूत्तम के ज्ञान से अपने घर के किस काम को अधिक हित और सुविधा के साथ कर सकते हैं । समय, धन तथा परिश्रम का नाश करनेवाली ऐसी शिक्षा का अन्त करने के लिए अमेरिका के लोगों ने पूरा पूरा प्रबन्ध किया है ।

प्रतिवर्ष ग्रामीण पाठशालाओं में पढ़ाई आरम्भ होते ही, अमेरिका के डिस्ट्रिक्ट् बोर्ड, शिक्षा-विभाग और पाठशाला-समिति के सदस्य मिल कर प्रत्येक पाठशाला में एक छात्र-समिति का सङ्गठन कर देते हैं । उसके सञ्चालनार्थ पदाधिकारी नियत कर दिये जाते हैं । साथ ही नियम भी बना दिये जाते हैं । उन नियमों के अनुसार पाठशाला के बालक और बालिकाएँ काम कर अपने पाठशाला और गृह-जीवन में सामञ्जस्य पैदा करनेवाली शिक्षा प्राप्त करते रहते हैं ।

प्रतिमास उन्हें जो शिक्षा दी जाती है उसका संक्षिप्त
ान (२८१ संख्यक पुस्तिका से) नीचे दिया जाता है।
से सरस्वती के पाठक जान सकेंगे कि अमेरिका के
द्वान् अपने अन्नदाता किसानों के बालकों को देश-सेवा
ाय बनाने में कितना ध्यान देते रहते हैं। यह उनके
वत परिश्रम करने का ही मीठा फल है कि वहाँ
किसान देश की माँग के अनुसार उत्तमोत्तम सात्त्विक
ज्यान्नों तथा गव्य पदार्थों को पैदा करना सीखते हैं और
स-शिक्षानुसार काम करके उन्हें पैदा करते हैं। भारत
साक्षर और सधन लोग ठीक इसके विपरीत करते रहते
, अर्थात् वे अपने किसानों तथा ग्वालों को शिक्षा
े की बिन्दुमात्र भी चिन्ता नहीं करते। इसका परि-
ाम यह हो रहा है कि भारत के आर्य्यों ने भारत की
रती को उर्वरा बनाये रखने के लिए जो उपाय खोजे थे
नके न जानने के कारण भारतीय किसान भारतीय कृषि
ी उपज को दिनोंदिन घटाते जाते हैं। इसी का नाम
वर का धान पयार में मिलाना'।

सितम्बर—खेत में चल फिर कर करने के काम।
इस मास में छात्रों को खेतों में चल फिर कर खड़ी हुई
क्का की फसल से उन बीजों को चुन लेना चाहिए जो
आगामी वर्ष बोने के योग्य हों। बीजों को चुन लेने के
पश्चात् उन्हें एक कमरे में यथाविधि सुखाना चाहिए।
जो लोग बचे हुए टमाटों को पीपों में बन्द करते हों
उन्हें सहायता देनी चाहिए। आस पास के गाँवों में
जहाँ मेले लगते हों वहां छात्रों को लेकर शिक्षक-गण
जायँ। वहाँ प्रदर्शित की हुई कृषि की उपज की सब
चीज़ें उन्हें सावधानी-पूर्वक दिखावें और घर लौटने
पर उनसे देखी हुई चीज़ों के वर्णन लिखवावें। छात्रों
को साथ लेकर शिक्षक खेतों में जायँ। वहाँ उनसे बीज,
कूड़ा, कचरा, घास-पात और कृषि-नाशक कीड़ों को
चुनवावें। साथ ही उन अन्यान्य वस्तुओं का उन्हें ज्ञान
करा देवें जिनसे लाभ होने की सम्भावना हो। खेत
में खड़ी हुई फ़सल अच्छी दशा में है या बुरी दशा में
है, इसका निर्णय करना इसी समय छात्रों को सिखाया
जाय। साथ ही कूड़े, कचरे और घास-पात को पहचानना
और उसे नष्ट करना भी सिखाया जाय। छात्रों ने
अपने अपने घरों में जो प्रत्यय-क्षेत्र बोये हों, वे भी इसी
समय, यथासम्भव देखे जायँ। छात्रों ने जो चीज़ें
पैदा की हों उनकी प्रदर्शिनी पाठशाला में की जाय।
कुछ चीज़ें अन्यत्र प्रदर्शिनियों में भी भेजी जायँ।

भाषा-पाठ—खेतों का निरीक्षण करते समय हर एक
छात्र अपने पास एक नोटबुक रक्खा करे। उसमें वह
अपनी देखी हुई वस्तुओं का वर्णन लिखता जाय। वसन्त
ऋतु के समय की फ़सलों का पूरा पूरा अनुभव लिखा
जाय। पश्चात् भाषा-सुधार की दृष्टि से वह सुधारा
जाय। कृषि-विभाग-द्वारा प्रकाशित जिन छोटी पुस्तकों
की आवश्यकता छात्रों को हो, उनकी माँग के पत्र उनसे
लिखवाये जायँ। अन्यान्य सूची-पत्रों की माँग के भी पत्र
लिखवाये जायँ। प्रत्यय-क्षेत्रों में छात्रों ने जो कुछ देखा हो
उसका वह वर्णन उनसे लिखाया जाय जो इस समय प्राप्त
हो सकता हो। तात्पर्य्य खेत में जो जो काम होता जाय
उसका वर्णन उसी क्रम से लिखवाया जाना चाहिए।

पढ़ाई और अक्षरौटी—इस काम के लिए पाठक को उन
पुस्तकों को चुनना चाहिए जिन्हें सरकार तथा अन्य
विद्वानों ने लिखा और प्रकाशित किया हो। साथ ही
उनका विषय उनके स्थान तथा ऋतु से घना सम्बन्ध रखता
हो। ऐसी पुस्तकें पाठक स्वयं पढ़ कर अपने छात्रों को
सुनाया करें। इन पुस्तकों में जो किसानी-विषयक नये
नये शब्द आवें उनका उच्चारण और उनकी अक्षरौटी
(spelling) छात्रों को भली भाँति समझा दी
जाय। उन्होंने अपने नोट-बुक में अक्षरौटी की जो भूलें
की हों, वे उनसे ठीक कराई जायँ।

गणित—वसन्त-ऋतु की फ़सलों के हिसाब-किताब
से इस विषय की पूर्ति की जानी चाहिए। छात्रों को
खेतों के क्षेत्रफल, फ़सलों की उपज, प्रति एकड़ उपज का
अनुपात, प्रति एकड़ ख़र्च का अनुपात, बीज से उपज
कितनी अधिक हुई, ख़र्च जाकर कुल और एकड़ पीछे
लाभ कितना हुआ, सब पूँजी पर व्याज किस अनुपात से
देना पड़ा, स्टेट भर की उपज को अनुलक्षित कर अपने
खेत की उपज का अनुपात क्या रहा, टमाटो की खेती में
ख़र्च जाकर बचत कितनी रही, पीपों में बन्द कर जो
टमाटो विदेश भेजे गये उनमें लाभ किस अनुपात से हुआ,

बस इसी प्रकार के प्रश्नों से छात्रों को गणित सिखाया जाना चाहिए।

भूगोल—छात्रों को चाहिए कि वे अपने ज़िले तथा नगर के नक़्शों की कई प्रतियाँ बना लेवें। एक प्रति पर उन स्थानों में उन चीज़ों के नाम लिखे जायँ जिनकी उत्तमता पर प्रदर्शकों ने पुरस्कार पाया हो। अच्छे बीज की खोज इस नक़्शे से शीघ्र लग जायगी। दूसरी प्रति में उन स्थानों में तुषारादि दैवी आपत्तियों का उल्लेख किया जाय जहाँ कि फ़सलों को उनसे अधिक हानि पहुँची हो। स्टेट के नक़्शे पर भिन्न भिन्न स्थानों में पैदा होनेवाली मुख्य मुख्य चीज़ों के नाम लिखे जायँ। उस पर लड़के-लड़कियों की उन समितियों के नाम भी लिखे जायँ जहाँ की समितियों ने कृषि-कार्य्य में विशेष सफलता पाई हो। कहाँ किस चीज़ की उपज अधिक होती है, उसके अधिक होने के कारणों के साथ यथास्थान उसका उल्लेख किया जाय। अन्तर्राष्ट्रीय फ़सलें भी इसी प्रकार नक़्शे पर यथास्थान लिखी जायँ। कृषि-विषयक सामयिक साहित्य से जो बातें ज्ञात हों, वे भी यथास्थान नक़्शों पर लिखी जायँ। छात्रों के यहाँ और अन्यत्र एकड़ पीछे जो उपज हुई है उस पर उनसे टीका-टिप्पणी लिखवाई जाय।

इतिहास—तुम्हारी कक्षा में जिस समय का इतिहास पढ़ाया जाता हो, उस समय, किसानी उद्योग-धन्धे और सामाजिक अवस्था जिन दशाओं में हों उनका भली भाँति अध्ययन करो। तुम्हारे इलाक़े में जिन जिन धान्यों, तन्तुओं, कन्दों और फल-फूलों की खेती की जाती है, वे तुम्हारे इलाक़े में कब और किसके द्वारा लाये गये, किसने कहाँ तक उनकी उन्नति की आदि बातों को जानने का यत्न करो। जहां स्थानिक इतिहास न लिखा गया हो, वहां सामयिक पत्रों के सङ्ग्रह से इतिहास का काम लो।

इतिहास और भूगोल की पुस्तकों को पढ़ विद्यार्थियों को चाहिए कि आपस में उन विषयों पर वादानुवाद किया करें। वादानुवाद करने के लिए विद्यार्थियों को आपस में विषय-विभाग कर लेना चाहिए। इस विषय की बहुतेरी पाठ्य-पुस्तकों में कृषि, उद्योग-धन्धे और सामाजिक सुधार पर स्वतन्त्र अध्याय रहा करते हैं। विद्यार्थियों को उचित है कि वे उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ा करें। भूगोल की आधुनिक पुस्तकों में उद्योग-धन्धों के अध्याय में नीचे लिखे हुए विषयों की चर्चा रहा करती है—

उपजाऊ धरती की बनावट, फ़सलें, कृषि में सहायता देनेवाले पशु-पक्षी, भोज्यान्नों की उपज। सामाजिक पुस्तकालयों में उक्त विषयों पर बहुत पुस्तकें रहा करती हैं। पाठकों को चाहिए कि उन्हें वहाँ से मँगा कर विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए दिया करें और उनके भावों को विद्यार्थियों के हृदयों पर अङ्कित कर दिया करें। उक्त संस्थाओं के सिवा हाई स्कूलों से भी उक्त विषय की पुस्तकें मिल सकती हैं।

चित्रण-कला—इस कला को सिखाते समय नाना प्रकार के धान्यों, तन्तुओं, कीड़ों और कूड़ा-करकटों के चित्र बनाना विद्यार्थियों को सिखाना चाहिए। साथ ही उनकी उत्पत्ति और वृद्धि आदि का इतिहास भी उन्हें सिखाना चाहिए। कीड़ों में जो हानिप्रद होते हैं उनका परिचय विशेष रूप से करा देना चाहिए। साथ ही उनसे फ़सलों की रक्षा के उपाय भी बता देने चाहिए।

प्राणि-विद्या—किसानी की उपज को बढ़ाने में जिन गौ आदि पशुओं तथा मुर्गी आदि पक्षियों की सहायता आवश्यक और लाभप्रद होती है, उनके परिपालन की विधि विद्यार्थियों को भली भाँति पढ़ानी चाहिए। गौ के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग की रक्षा और वृद्धि जिन उपायों से की जा सकती है, वे उपाय छात्रों के हृदयस्थ करा देने चाहिए, क्योंकि गो-वंश को उन्नत किये बिना कोई देश उन्नत नहीं हो सकता। गोपरिपालन की जिस विधि से गौ के दूध और मक्खन की मात्रा बढ़ सकती है उसे जानने और काम में लाने की इच्छा प्रत्येक बालक और बालिका में उत्पन्न कर देनी चाहिए।

हस्त-कौशल—किसानी के कामों में टोकनी आदि जो चीज़ें, और घर में चटाई आदि जो वस्तुएँ काम में लाई जाती हैं उनका सुन्दर और टिकाऊ रूप में बनाना छात्रों को सिखाना चाहिए। जिन गमलों में बीज बोये जाते हैं, उनका बनाना भी छात्रों को सिखाया जाना चाहिए।

अक्टूबर—खेतों में चल फिर कर करने के काम। इस मास में उस खेत को जाकर देखना चाहिए जिसकी

उपज की विपुलता और उत्तमता वाद-ग्रस्त हो। वहाँ पहुँच कर खेत के क्षेत्रफल और उपज की नाप जोख करके उपज की उत्तमता का निर्णय करना चाहिए। खेत के भिन्न भिन्न गुण-धर्म्मवाली मिट्टी को भिन्न भिन्न पात्रों मे एकत्र कर लो। आगामी मासों में जब धरती की उर्वरा शक्ति पर पाठ पढ़ाये जायँगे तब उन भिन्न भिन्न गुण-धर्म्मवाली मिट्टियों से बहुत सहायता मिलेगी। अपनी संस्था के सदस्यों को उनके वार्षिक विवरण प्रस्तुत करने में सहायता दो। पड़ोस के गाँवों में जाकर कृषि के नूतन औज़ारों की देख-भाल करके उनकी उपयोगिता को समझो और सीखो। बाग़ की उपजों को एकत्र करो। खेतों में जो कूड़ा-कचरा बढ़ता है, जिसमें शस्य-नाशक कीड़े छिपे रहा करते हैं, उन्हें नष्ट करो। जिन खेतों में आगामी वर्ष में बीज बोना हो उनकी जुताई इस मास में आरम्भ कर देनी चाहिए।

गत मास में कृषि की उपज की प्रदर्शिनी नहीं की जा सकी हो तो उसे इस मास में करना चाहिए। इस मास का बहुत सा काम घर पर ही किया जा सकता है। शिक्षकों को उचित है कि कृषि-साहित्य मँगा कर स्वयं पढ़ें और अपने छात्रों को उसका मर्म समझावें।

भाषा-पाठ—प्रत्यय और वाद-ग्रस्त क्षेत्रों की उपज के जो काम पूरे होगये हों, उनके विवरण लिखे जायँ। मक्का, आलू और टमाटो की उपज पर जो टिप्पणियां लिखी गई हों, उन्हें पुस्तिका के आकार में अब लिखो। जो प्रत्यय-काम निकट भविष्य में करने हों उनका निश्चय कर लो। स्थानिक पत्र में भेजने के लिए पाठशाला-प्रदर्शिनी का विवरण लिखो। विवरण लिखने के सिवा छात्रों को कृषि के भिन्न भिन्न अङ्गों पर अपने अपने अनुभव-जन्य ज्ञान के अनुसार वाद-विवाद भी करना चाहिए। पाठशाला की कृषि-प्रदर्शिनी में जिन सज्जनों को बुलाना हो या जहाँ से कृषि-साहित्य की पुस्तकें मँगाना हो उनके नाम छात्रों से चिट्ठियाँ लिखवाना चाहिए।

पढ़ाई और अक्षरौटी—कृषि पर पाठ्य-ग्रन्थों के सिवा जो नूतन साहित्य प्रस्तुत किया गया हो, उसे छात्रों को पढ़ना चाहिए। किसानों की धन-सम्पत्ति आदि पुस्तकों को अवश्य पढ़ना चाहिए। जिन शब्दों की अक्षरौटी अशुद्ध होगई है उन्हें ठीक कर लेना चाहिए। धन्य हैं वे विद्वान् जो अपने देश के किसानों के बालकों के लिए उपयोगी ग्रन्थों को लिखा करते हैं और धन्य हैं वे धनवान् जो उनको छपवा कर उनका प्रचार किया करते हैं। भारत में गीता के भक्त ज्ञान-यज्ञ की चर्चा का पाठ प्रति दिन किया करते हैं। पर किसानी के लिए जिस ज्ञान-यज्ञ की अत्यन्त आवश्यकता है, उसे हृदयङ्गम करने की बात उन्हें न तो स्वयं सूझती है और न सुझाने पर ही वे उसका आदर करते हैं।

गणित—छात्रों की संस्था-द्वारा जो किसानी की गई है उसकी आय-व्यय के वार्षिक नक़शे बनाओ। ध्यान रहे कि नक़शों के अंक सुन्दर, सुवाच्य और सही होने चाहिए। ये नक़शे वार्षिक विवरण के साथ रहेंगे। भिन्न भिन्न प्रकार की फ़सलों के अङ्कों के आधार पर उन सिद्धान्तों को निश्चित करो जो छात्रों की उन्नति से सम्बन्ध रखते हैं।

भूगोल—ज़िले भर की फ़सलों का निरीक्षण पूरा करो। निरीक्षण का फल नक़शे पर अङ्कित करो। छात्रों को चाहिए कि वे उन स्थानों को जान लेवें जहां उनके देश भर की किसानी की उपज की चीज़ें अन्त में बिका करती हैं। साथ ही वे उन धान्यों और अन्यान्य वस्तुओं के उत्पत्ति-स्थानों को भी जान लेवें जो उनके यहाँ बाहर से आती हैं। धान्यों की उपज पर जो पुस्तकें लिखी गई हों उन्हें भी देख लेना चाहिए। छात्रों को चाहिए कि वे अपने ज़िले भर का एक नक़शा बनावें और उसके हर एक स्थान में वहाँ की उपज को उसके चित्र द्वारा अङ्कित करें। यह नक़शा छोटे बालकों को शिक्षा देने मे बहुत उपयोगी होगा। इसी समय ज़िले भर का एक बड़ा नक़शा और बनवा लिया जाय। यह नक़शा आगामी वर्ष की उपज का परिणाम लिखने के लिए उपयोगी होगा।

इतिहास—प्रान्त भर की छात्रों की संस्थाओं-द्वारा जिन धान्यों और फलों की खेती की जाती है, उनकी उन्नति का इतिहास छात्रों को जान लेना चाहिए। अर्थात् किस प्रक्रिया से किस स्थान में किस धान्य की खेती करने से उसके गुण, धर्म्म और आकार-प्रकार में कितनी वृद्धि की गई है आदि सब बातों को जान लेना चाहिए और

उनका यथार्थ विवरण लिख लेना चाहिए। अपने प्रान्त के उन नगरों का पता लगा लो जिनकी उन्नति धान्यों, फलों और गव्य पदार्थों की उन्नति के कारण हुई हो। यह भी जान लेने का प्रयत्न करो कि जहाँ जहाँ उर्वरा धरती लोगों को निष्कर दी गई थी, वहाँ वहाँ के लोगों ने इस मिथ्या भ्रम में पड़ कर उसे किस प्रकार ऊसर बना डाला है कि धरती की उर्वरा शक्ति अनन्त रहा करती है। इन बातों का भी पता लगा लो कि कहाँ कहाँ के राष्ट्रीय सङ्घों और सरकारों ने अपने अपने यहाँ के किसानों को उन्नत करने के लिए और उसके बाधक कारणों को दूर करने के लिए कौन कौन सी और कितनी सहायता दी है। यह नहीं मान लेना चाहिए कि एक जन-सङ्घ सब प्रकार की उन्नति कर सकता है। भिन्न भिन्न सङ्घों को भिन्न भिन्न कामों को अपने हाथों में लेना चाहिए। तुम्हारे इलाक़े में, कटनी, मँडनी और उड़ावनी आदि के नूतन यन्त्रों ने जो सुधार और सुविधा पैदा कर दी हो उस पर अपनी समझ के अनुसार टीका-टिप्पणी लिखो।

चित्रण-कला—अपनी पुस्तिकाओं के आवरण-पृष्ठों पर देने के लिए चित्र बनाओ। तुम्हारी पुस्तिकाओं को पूर्ण करने में जिन अन्यान्य चित्रों की आवश्यकता हो, उन्हें बनाओ। जिस धान्य या फल का रङ्गीन चित्र बनाना हो उसके प्राकृतिक रङ्गों को मनोनिवेश-पूर्वक समझ कर हृदयङ्गम कर लो। कृषि के पशु-पक्षियों के रहने के घरों की, उपज को सुरक्षित रखनेवाले स्थानों और फ़सलों को जहाज़ द्वारा विदेश भेजनेवाले सुविधा-जनक पात्रों की प्रतिमूर्त्तियाँ बनाना भी सीखो।

प्राणि-विद्या—मनुष्यों को जो भोज्यान्न शक्तिशाली और दीर्घ-जीवी बनाते है, उनके भरण-पोषण और पाचन-शक्ति के विषय में जो ज्ञान तुमने प्राप्त किया है उसकी सहायता से कृषि के पशु-पक्षियों के उस दाने-चारे के भरण-पोषण और पाचन-शक्ति का पता लगाओ जिसे तुमने अपने प्रत्यय-क्षेत्रों में पैदा किया है।

हस्त-कौशल—किसानी के पशु-पक्षियों के रहने के घर, और उन्हें जिन पात्रों मे चारा-दाना दिया जाता है उन्हें पूरे आकार के बनाओ। लड़कियों को चाहिए कि वे नाना प्रकार के भोजनों और शाकों का बनाना, फलों को पकाना और भोजनों का यथाविधि परोसना सीखें। साथही वे फलों को पात्रों में भर कर रखना और उन्हें जहाज़ों पर भेजना आदि भी सीखें। छात्र-संस्था की कृषि-द्वारा जो चीज़ें पैदा की गई हैं, उनकी सहायता से उन्हें ऐसे सुन्दर और सुडौल सूप, टोकनी आदि चीज़ें बनानी चाहिए जिन पर उन्हें प्रदर्शिनी में पुरस्कार अवश्यही प्राप्त हो सके। सारांश वे जितनी चीज़ें बनावें, बड़ी सावधानी और दक्षता के साथ बनावें। उन चीज़ों से उनकी पुस्तिकाओं की उपयोगिता और सफलता बढ़नी चाहिए।

नवम्बर—खेतों में चल फिर कर करने के काम। तुम्हारे आस-पास के किसी गाँव में धान्य या फल-फूल रखने की नये ढङ्ग की ढोलियाँ कोठियाँ हों तो वहाँ जाकर उनको देखो और उनसे प्राप्त होने वाले लाभों और हितों पर विचार करो। उन खेतों पर जाकर शुद्ध-कुल-सम्भूत गौ आदि कृषि-कर्मोपयोगी पशुओं को देखो जहाँ वे उचित रीति से पाले-पोसे जाते हैं। तुम्हारे ज़िले में यदि कहीं फल-फूलों के बाग़ हों तो वहाँ जाकर उन्हें भी देखो। तुषार से लता तथा वृक्षों की रक्षा करने के लिए जो जो उपाय किये जाते हैं उन्हें भली भाँति समझ लेने की चेष्टा करो। जहां कहीं बाहर भेजने के लिए फल पिटारे में बन्द किये जाते हों, वहा जाकर उस काम को बड़ी चतुराई और दक्षता के साथ देखो और समझो। इस मास में कृषि-कर्म्मोपयोगी पशु-पक्षियों के स्थानों की मरम्मत करके उन्हें ठीक करलो। उनका कूड़ा-कचरा नष्ट कर डाला जाय। अंगूरादि की लताओं को तुषार से बचाने का प्रबन्ध करो। अंगूर आदि की लताओं को काटने छांटने से जो कलमें निकली हों, उन्हें रेत में दबा कर वसंत-ऋतु आने तक उनकी रक्षा करो। शिक्षकों को उचित है कि वे अपने विद्यार्थियों को उक्त सब काम भली-भाति दिखावें और समझावें। शरद्-ऋतु में जिन बीजों आदि की आवश्यकता हुआ करती है उनका सङ्ग्रह इसी मास में कर लिया जाना चाहिए।

भाषा-पाठ—उक्त प्रकार के खेतों में चल फिर कर जो ज्ञान प्राप्त किया हो, उसका विवरण बड़ी सावधानी से लिखो। उसमें जो बातें प्रत्यय-क्षेत्रों से सम्बन्ध रखती हों उन्हें अपनी पुस्तिकाओं में सम्मिलित करो। तात्पर्य्य जिन प्रतिमूर्त्तियों

ा छात्रों ने देखा हो या जो जो काम उन्होंने देखे हों, त सबके वर्णन उन्हें लिखने चाहिए। शिक्षकों को चाहिए ; वे अपने छात्रों की देखी हुई वस्तुओं पर शुद्ध और न्दर भाषा में वाद-विवाद करना भी सिखाते रहें।

कृषि-विषयक पुस्तिकाएँ, सूचीपत्र और औज़ारों ा मँगाने के लिए पत्र लिखना आदि भी छात्रों को ाखाया जाय। किसानी के सब कामों से सम्बन्ध रखने ले एक समाचार-पत्र का छात्रों से सम्पादन कराया ाय। यह पत्र कक्षा में पढ़ा जाय। उसमें जो लेख उत्तम ार उपयोगी हों, वे किसी स्थानिक पत्र में प्रकाशनार्थ भेजे ायँ। किस प्रसंग पर, किस काम के लिए, किस प्रकार ा धन्यवाद देना चाहिए, ये लाभदायक बातें विद्यार्थियों ा बड़ी मार्मिकता के साथ सिखानी चाहिए। उनके ज्ञान ार उचित उपयोग से उनका बड़ा हित होता है।

पढ़ाई और अक्षरौटी—पाठ्य-पुस्तकों के सिवा उन ्तकों को भी पढ़ो जिन्हें देश के नामी ग्रन्थकारों ने षि-सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों पर लिखा है। पाश्चात्य-गत् के विद्वान् वर्त्तमान भारतीय विद्वानों की नाईं कृषि ा उपेक्षा नहीं करते। वे भारत के प्राचीन आर्य्य-विद्वानों ा अनुकरण कर कृषि का यथेष्ट आदर करते हैं। उसकी ्नति के उपायों पर सदा उपयोगी ग्रन्थ लिखते रहते हैं।

अक्टूबर मास की पढ़ाई के कार्य्य-क्रम में जिन ्स्तकाओं का उल्लेख किया गया है उनका पाठ प्रचलित ो। उनके साथ अन्यान्य नूतन पुस्तकें भी पढ़ो। कृषि-भाग-द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के अतिरिक्त कृषि-विषयक ामयिक साहित्य को भी पढ़ा करो।

पाठ्य ग्रन्थों में कृषि-विषयक जो पारिभाषिक शब्द ाते हैं उनकी एक सूची बना कर उसे सदा अपने समीप ्खा करो। उन शब्दों की अक्षरौटी तथा उच्चारण में तुम ा भूलें करते हो, उनकी पुनरावृत्ति मत होने दिया रो। अशुद्ध अक्षरौटी और उच्चारण के विषय पर सदा ाद-विवाद करते रहा करो। ऐसा करते रहने से वे दोष ्र हो जायँगे।

गणित—कृषि-विषयक पुस्तिकाओं और पाठ्य-्स्तकों में जो अङ्क दिये गये हैं उनके आधार पर गणना ्रके इस बात का लेख तैयार करो कि वर्षा-ऋतु में जो धान्य एकत्र कर रखे गये थे उनमें कितनी घटती-बढ़ती हुई, बाज़ारों में जो मक्का पहुँचाई गई उसमें कितनी कमीबेशी हुई। किस धान्य में कितने पोषक तत्त्व हैं, आलू और अन्यान्य फलों की फ़सलों के पकाने और उन्हें बाज़ार में ले जाने आदि में जो ख़र्च पड़ता है उसका लेखा लगाओ और आस-पास के बाज़ारों में उनकी बिक्री का जो भाव हो, उसके अनुसार बिक्री की जमा जोड़ कर लाभ-हानि का चिट्ठा तैयार करो। प्रत्यय-क्षेत्रों में जो पशु काम करते हैं उनके दाने-चारे का लेखा तैयार करो। प्रत्यय-क्षेत्रों की उपज की चीज़ें जब घर ख़र्च में लाई जायँ तब बाज़ार भाव से उनका भी लेखा तैयार कर लो। गौ के दाने-चारे के ख़र्च का तथा उनसे पैदा किये जाने-वाले गव्य पदार्थों की बिक्री का लेखा लगा कर हानि-लाभ का लेखा तैयार करो।

भूगोल—तुम्हारे प्रान्त की कृषि की उपज के न्यूनाधिक और गुण-दोषों पर वहाँ की जल-वायु का जो प्रभाव पड़ता है उसे समझ लेने का यत्न करो। उन स्थानों का पता लगाओ जहाँ जो चीज़ प्राकृतिक रूप से अधिक उपज देती है। तुम्हारे प्रान्त के बाग़ों की फ़सलों को जो कीट-पतङ्ग हानि पहुँचाते हैं उनके जन्म लेने, बढ़ने, मरने आदि के वृत्तान्तों का अपने पाठ्य-ग्रन्थों की सहायता से पता लगाओ। अपने ज़िले के गोधन की सम्प्रवृद्धि के परिणामों को ज़िले के नक़्शे पर अङ्कित कर लो। शुद्ध कुल-सम्भूत तथा वर्ण-सङ्कर गो-धन के सुधार और सुप्र-वर्द्धन में जो अन्तर पाया जाय, उसे भी तद्भेद-दर्शक चिह्नों-द्वारा अपने नक़्शे पर अङ्कित कर लो। जिन मार्गों से सर्व साधारण जनता जाती-आती हो, माल बाज़ारों में पहुँचाया जाता हो, जो ख़राब हो गये हों, उन सबको अपने नक़्शे पर भिन्न भिन्न चिह्नों द्वारा अङ्कित कर लो।

इतिहास—तुम्हारे ज़िले में जिस जिस वंश की दुधार गौएँ हों, उनके इतिहास को पढ़ कर इस बात का पता लगाओ कि उनका जन्मस्थान कहाँ है, वे पहले कितना दूध देती थीं, अब कितना दूध देती हैं, उनके दूध की मात्रा किन उपायों से बढ़ाई गई है, दूध की मात्रा बढ़ाने में चारा-दाना कहाँ तक सहायक होता है और लक्षण-सम्पन्न साँड़ की कितनी आवश्यकता रहा करती है।

क्या अकेले दाने-चारे की विपुलता गौओं के दूध की मात्रा बढ़ा सकती है ? तुम्हारे यहाँ जो फल काम में लाये जाते हैं वे सर्व-प्रथम कहाँ से लाये गये हैं, उनकी वर्तमान उन्नति किस प्रकार की गई है, इन बातों का पता लगाओ। उसी प्रकार इस बात का पता लगाओ कि तुम्हारी किसानी की उपज बाज़ारों में पहुँचाने के लिए कौन कौन से सुभीते कब से काम में लाये जाने लगे हैं। इस बात का पता लगाओ कि किन किन विदेशी चीज़ों ने तुम्हारी कृषि को कौन कौनसा लाभ या हानि पहुँचाई है।

चित्रण-कला—अधिक दूध देनेवाली गौओं तथा अण्डे देने वाली मुर्गियों के चित्र बनाओ। भिन्न भिन्न रङ्गों के फलों के चित्र बनाओ। ज़िले में जो अच्छे और बुरे मार्ग हों, उनके चित्र बनाओ। उन चित्रों में, बैल-गाड़ी, घोड़ा-गाड़ी और नौकादि के मार्ग स्पष्ट रूप से अङ्कित करो। इनकी बनावट ऐसी होनी चाहिए जिससे पुराने और नये मार्गों के भेद स्पष्ट रूप से जाने जासकें।

प्राणि-विद्या—जिस प्रकार मनुष्यों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए उनके रहने के घरों में स्वच्छ वायु और प्रकाश का आवश्यक मात्रा में रहना आवश्यक है उसी प्रकार गौ आदि कृषि-कर्म्मोपयोगी पशुओं की स्वास्थ्य-रक्षा और तज्जन्य उपयोगिता के लिए यह बात भी अत्यन्त आवश्यक है कि उनके रहने के घरों में वायु और प्रकाश का यथेष्ट आवागमन होता रहे। वहाँ उनके बैठने-उठने, सोने और व्यायाम के लिए उन्हें पर्य्याप्त स्थान मिलता रहे। ऋतु-परिवर्तन के साथ साथ जिस प्रकार पशु-पक्षियों के दाने-चारे में हेर-फेर किया जाना चाहिए, उसे छात्रों को भली भाँति समझ लेना चाहिए। मांसाहार की अपेक्षा गव्य पदार्थों का आहार मनुष्यों के लिए जिस प्रकार हितकर है उस पर तुलनात्मक विचार प्रकट करो।

दिसम्बर—चल-फिर कर और देख-भाल कर सीखने के काम। पाठकों को चाहिए कि वे इस मास में अपने छात्रों को उन दुग्धालयों में (डेरी-फ़ार्मों में) ले जायँ जो ख़ासी सफलता प्राप्त कर चुके हों। वहाँ ले जाकर उन्हें पयस्विनी गौ के प्रत्येक अङ्ग-प्रत्यङ्ग का यथेष्ट ज्ञान करा देना चाहिए, जिसकी पर्याप्त सेवा और विकास से गौ के दूध की मात्रा बढ़ती है। साथ ही छात्रों को उस दुग्धालय की गो-परिपालन-विषयक विशेषताएँ भी मनोनिवेशपूर्वक देख-भाल कर समझ लेनी चाहिए।

यदि सम्भव हो तो दूध की परीक्षा करना पाठशाला में ही आरम्भ कर देना चाहिए। उसी प्रकार पाठशाला में सङ्ग्रह करके रखे हुए मिट्टी के भिन्न भिन्न नमूनों की परीक्षा का काम भी प्रारम्भ कर देना चाहिए। मिट्टी के नमूनों को देख या सूँघ कर उनकी रेत, काली मिट्टी, चुनखड़ी और जलधारक (घुमस) पदार्थों को पहचानने का अभ्यास छात्रों को करना चाहिए।

मिस्टर वीड और अन्य ग्रन्थकारों ने शरद्-ऋतु के पक्षियों के विषय में जो पुस्तकें लिखी हैं उन्हें पढ़कर यह जान लेने का यत्न करो कि कौन पक्षी कहाँ रहता है, क्या खाता है, अपनी सन्तति कैसे बढ़ाता है और फ़सलों को किस प्रकार लाभ या हानि पहुँचाता है। कृषि-विभाग की ओर से जो अनेक पुस्तिकाएँ इस विषय पर प्रकाशित की गई हैं, उन्हें भी पढ़ो।

भाषा-पाठ—छात्रों ने दुग्धालयों की जो देख-भाल की है, उसका विवरण, उनसे सावधानीपूर्वक लिखाया जाय। मक्का के खेत में जो आदर्श भुट्टा मिला हो या दुग्धालय में जो आदर्श गौ देखी हो उसका वर्णन विशेषरूप से लिखा जाना चाहिए। जिस चारे और दाने के खाने से गौ के दूध की मात्रा बढ़ती है उसके चुनाव के विषय में एक चातुर्य्य-पूर्ण योजना लिखो। वैब काक नामक यन्त्र द्वारा दूध के गुण-दोषों की परीक्षा जिस प्रकार की जाती है उसका विवरण संक्षेप में लिखो। इस वर्ष कृषि-सम्बन्धी जो जो काम तुमने स्वयं किये हैं या देखे हैं उनके विवरण सावधानीपूर्वक लिखो और उन्हें यदा कदा देखते रहो। जो छात्र इन विवरणों के लिखने में लिपि की सुन्दरता, अक्षरौटी की शुद्धता, उचित शब्दों का यथास्थान प्रयोग और भाषा की सरलता आदि पर यथेष्ट ध्यान देते हैं, उनके लेख उन्हें कृत-कार्य्य बनाते हैं।

पढ़ाई और अक्षरौटी—गोदुग्ध की शुद्धता, पवित्रता, प्रचुरता, कीटाणु से रक्षा आदि विषयों पर, पाठ्य-पुस्तकों के सिवा, जो अन्यान्य पुस्तकें अधिक प्रकाश डाल सकती

हैं उनका पठन-पाठन बहुत सावधानी से करना चाहिए। इन पुस्तकों के सिवा 'कौन बालक विश्वनाथ बन सकते हैं?' नामक पुस्तकों के सदृश अन्य पुस्तकों को भी पढ़ना चाहिए। दुग्ध-परीक्षक यन्त्र तुम्हारे नगर मे न मिल सकता हो तो उसे अन्यत्र से मँगाकर, उसका उपयोग सीखना चाहिए।

विद्यार्थियों को चाहिए कि वे जब दुग्ध के विषय में आपस में बातचीत करें या लिखें तब पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया करें। लिखते समय उनकी अक्षरौटी की शुद्धता पर विशेष ध्यान रखा करें।

गणित—गौत्रों के चारे-दाने के व्यय तथा उनके द्रव्य-पदार्थों की आय का लेखा तैयार करो। लेखा लगाकर बताओ कि एक एकड़ में बोई हुई मक्का के प्रत्येक भुट्टे की प्रत्येक पंक्ति में यदि एक दाना बढ़ जाय तो समूचे एकड़ के सब भुट्टों की मक्का की उपज में कितनी वृद्धि होगी। शरद्-ऋतु में आनेवाले पक्षी जिन कीड़ों और कूड़ा-करकट के बीजों को खा जाया करते हैं, उनकी गणना कर तुमने जो लेखा बनाया है, उसकी सहायता से हिसाब लगाकर बताओ कि किसान को अपने खेत की उपज में कितनी बचत होगी। नागरिक या सरकारी पुस्तकालयों मे मनुष्य-गणना के विवरण या किसानों के वार्षिक विवरण रखे रहते हैं। उनमें जो अङ्क दिये जाते हैं उनसे छात्रों को उक्त विषय में पर्य्याप्त सहायता मिल सकती है। छात्र-गण गणना करके बतावें कि बत्तीस सेर मक्का अनुमानतः कितने भुट्टों से निकलती होगी। एक सौ या हज़ार दानों को तोलकर, बत्तीस सेर (एक बुशल) दानों के भुट्टों की संख्या का अनुमान किया जा सकता है।

भूगोल—किसानी से प्रत्यक्ष या परोक्ष सम्बन्ध रखनेवाले जो धन्धे तुम्हारे नगर या ज़िले में किये जाते हों, उनका पता लगाकर उन्हें अपने नगर तथा ज़िले के नक़्शे में यथास्थान अङ्कित कर लो। जिन निकट या दूर के बाज़ारों में गव्य पदार्थ तथा भोज्यान्न बेचे जाते हैं उनका भी पता लगाकर उन्हें भी उक्त नक़्शों में अङ्कित कर लो। पता लगाकर एक सूची बनाओ और उसमें यह दिखलाओ कि किसानी की उपज मनुष्य के काम में आने के पूर्व कितने मध्यस्थ व्यापारी लोगों के हाथों में जाती रहती है। जो पक्षी शरद्-ऋतु में तुम्हारे यहां आकर रहा करते हैं उनके रहने के स्थानों का पता लगाओ। पता लगाओ कि तुम्हारे ज़िले के किस स्थान में अधिक या न्यून शीत, तुषार, वर्षा, ओले और गरमी पड़ती है। तुलना करके बताओ कि उनका तुम्हारे यहाँ की और अन्यत्र की कृषि पर क्या प्रभाव पड़ता है। ज़िले भर के दुग्धालयों पर जाकर देखो कि प्रत्येक दुग्धालय में किस वंश की कितनी गौएँ हैं, कितने साँड़ हैं, उनका परिपालन किस प्रकार किया जाता है, परिपालन की सावधानी और उपेक्षा का, उनके दूध, मक्खन तथा सन्तति पर क्या प्रभाव पड़ता है, उनके रहने के कोठे किस प्रकार साफ़-सुथरे रखे जाते हैं, उन्हें दाना, चारा कितना और किस प्रकार का दिया जाता है और वह कहाँ और किस प्रकार दिया जाता है, घर पर पैदा किया हुआ दाना, चारा, लाभदायक होता है या मोल का।

इतिहास—दुग्धालय-सञ्चालकों की समिति के मन्त्री को पत्र लिखकर यह बात ज्ञात करो कि तुम्हारे प्रान्त में गवायुर्वेद-मूलक गो-परिपालन कब से आरम्भ किया गया है और देश की उन्नति में वह कहाँ तक सहायक हुआ है। पता लगाकर बताओ कि पुराने ढर्रे से किसानी करने में जो अधिक व्यय और कम आय होती है उसके स्थान में किस परिवर्त्तन के करने से व्यय कम होगा और आय बढ़ेगी। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर बताओ कि अमेरिका के कौन कौन नामी सज्जन कृषि की कृपा से नामी हुए हैं। प्रबल प्रमाणों-द्वारा सिद्ध करो कि राष्ट्र की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके किसानों में विज्ञान-मूलक कृषि की शिक्षा का विस्तार यथेष्ट मात्रा में किया जाता है। जिस प्रान्त के लोगों ने अच्छे बीज के चुनाव तथा शुद्ध दूध की परीक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया है, उनकी कृषि तथा गो-धन की सम्प्रवृद्धि पर उनका जो प्रभाव पड़ा है उसका वर्णन लिखो।

चित्रण-कला—मक्का के आदर्श भुट्टों और दानों के चित्र छात्रों से बनवाये जायँ। दूध-परीक्षक यन्त्र-द्वारा जिन कीटाणुओं का पता लगता है, उनके चित्र बनाये जायँ। एक आदर्श पयस्विनी गौ का चित्र बनाओ।

उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग को इस प्रकार चित्रित करो कि जिससे उनकी क्रिया पर भली भाँति छात्रों को शिक्षा दी जा सके। शरद्-ऋतु में खेतों पर जो पक्षी आते हैं उनके, तथा उस समय के खेत के दृश्यों के चित्र बनाओ। घर पर किये जानेवाले किसी काम की योजना को चित्रित करो।

प्राणिविद्या—शारदीय गो-परिपालन के विषय में जो जो बातें तुमने सीखी हैं, तदनुसार गो-परिपालन करो। इस बात को प्रदर्शित करो कि अनुचित गो-परिपालन के कारण गौएँ नाना प्रकार के रोगों से व्यथित होकर दूध कम देने लगती हैं और उनका वंश नीच हो जाता है, अन्त में वे वध-योग्य होकर क़साइयों के हाथ पड़ती हैं। साथ ही जनता उनके उपकारों से वञ्चित हो जाती है। जिन गौओं के रहने के कोठों में पर्य्याप्त प्रकाश तथा उष्णता नहीं पहुँचती वे स्वस्थ नहीं रह सकतीं। अस्वस्थ गौओं का दूध और घी उनको खानेवाले मनुष्यों के लिए कभी स्वास्थ्यकर नहीं हो सकता। एक तुलनात्मक लेख लिख कर यह प्रदर्शित करो कि जो बालक बाल्यावस्था में जितनी अधिक गवायुर्वेदमूलक शिक्षा पाते हैं वे उतने ही अधिक चतुर गो-परिपालक होकर अपने राष्ट्र को शुद्ध और पवित्र गव्य पदार्थ यथेष्ट मात्रा में पहुँचा कर उसे सबल और सुखी बना सकते हैं।

हस्त-कौशल—किसानी से सम्बन्ध रखनेवाली जिन वस्तुओं का पिछले महीनों की पढ़ाई में उल्लेख किया गया है, उन्हें अधिक सुघरता के साथ बनाओ।

जनवरी—खेतों में चल-फिरकर सीखने और करने के काम—दूध और धान्यों की परीक्षा करने में जब तक छात्रगण यथेष्ट मात्रा में दक्ष न हो जायँ, तब तक उनसे वे काम निरन्तर कराये जायँ। इस मास में प्रत्येक छात्र को यह निश्चय कर लेना चाहिए कि आगामी ऋतु में वह गो-परिपालन का काम करेगा या मुर्ग़ी पालने का। यदि तुम्हारे यहाँ शरद्-ऋतु में खाद का फैलाना और उसे नीचे ऊपर करना लाभदायक समझा जाता है तो इस काम को सब छात्रों को मिलकर करना चाहिए। तुम्हारे ज़िले में जहाँ किसानी औज़ारों के कारख़ाने और दूकानें हों, वहाँ अपने छात्रों को लेकर जाओ और उन्हें उनके बनाने तथा काम करने की क्रिया से परिचित करो।

भाषा-पाठ—शारदीय कृषि-कर्म्म और तदर्थ किये हुए परिभ्रमण से, लिखने तथा वार्त्तालाप के लिए छात्रों को बहुत सी सामग्री मिल सकती है। उससे उन्हें पर्य्याप्त लाभ उठाना चाहिए। गो-परिपालन के विषय में छात्रों ने जो ज्ञान प्राप्त किया है, उसकी सहायता से उन्हें निबन्ध लिखने चाहिए।

पढ़ाई और अक्षरौटी—पाठ्य पुस्तकों के सिवा, छात्रों को उन पुस्तकों को भी पढ़ना चाहिए जिनमें वर्त्तमान ऋतु में किये जानेवाले कृषि-कर्म्मों का उल्लेख हो। ऐसी अनेक पुस्तकें विद्यमान हैं। छात्रों के हितचिन्तक पाठकों को उचित है कि वे उनका पता लगाकर उन्हें मँगावें और अपने छात्रों को उन्हें पढ़ने के लिए देवें। भोज्यान्नों में गव्य पदार्थों की श्रेष्ठता और हितैषिता पर बहुत से ग्रन्थ लिखे गये हैं। वे जितने अधिक मिल सकें उतने ही अधिक वे पढ़े जाने चाहिए।

पारिभाषिक संज्ञाओं के उच्चारण और उनकी अक्षरौटी में छात्रगण बहुधा भूल किया करते हैं। जब तक वे उन्हें निश्चयात्मक रूप से न समझ लें, तब तक पाठकगण उन्हें उनका अभ्यास सदा कराते रहें।

गणित—पिछले महीनों में छात्रों ने दूध की जो परीक्षा की थी, दूध की उपज के जो अङ्क एकत्र किये थे, गौओं के चारे-दाने के ख़र्च के जो अङ्क एकत्र किये थे, उन सबकी सहायता से लेखा तैयार कर उन्हें यह प्रदर्शित करना चाहिए कि यथोचित गो-परिपालन कितना लाभदायक है। कृषि-सहायक पशु-पक्षियों के रहने के लिए जो घर बनाये जाते हैं उनके ख़र्च के हिसाब भी वे बनावें।

भूगोल—तुम्हारे खेतों में इस समय जिन कृत्रिम खादों का प्रयोग किया जाता है, उनके तैयार करने में जो जो चीज़ें काम में लाई जाती हैं, वे जहाँ से प्राप्त की जाती हैं उनका पता लगाओ। साथ ही इस बात का पता लगाओ कि कृत्रिम खादों के स्थान में तुम अपने अपने घर पर पाले हुए गौ आदि प्राणियों के गोबर और मूत्र का प्रयोग कर कितना अधिक लाभ उठा सकते हो। तुम अपनी स्टेट तथा अमेरिका की अन्यान्य स्टेटों तथा संसार के अन्यान्य राष्ट्रों की गोशालाओं के अङ्कों की सहायता से एक तुलनात्मक लेखा बनाकर देखो कि तुम्हें अपनी स्टेट

के गोधन की उन्नति करने के लिए अभी कितना अवकाश और क्षेत्र पड़ा हुआ है। तुम्हारी पाठशाला में जो छात्र पढ़ते हैं, उनके खेत नक़्शे पर दिखाओ। उनके खेतों की उर्वरा-शक्ति के भिन्न भिन्न अंश भिन्न भिन्न रङ्गों द्वारा प्रदर्शित करो। अमेरिका की संयुक्त स्टेटों की सरकार ने उक्त प्रकार के नक़्शे प्रकाशित किये हैं। उन्हें मँगाओ और उनसे शिक्षा ग्रहण करो। तुमने गो-परिपालन में जो अनुभव प्राप्त किया है, उसकी सहायता से बताओ कि गव्य पदार्थों को विदेश भेजने में बर्फ़ कहां तक सहायक होती है।

इतिहास—पता लगाकर बताओ कि तुम्हारे प्रान्त में लकड़ी के व्यापार की उन्नति कब से हुई है। साथ ही यह भी बताओ कि जङ्गल को नष्ट न कर उसकी रक्षा करना लाभदायक है, यह भावना कब से पैदा हुई है। इस भावना को जनता में फैलाने के लिए जङ्गल-विभाग के कर्म्मचारियों ने किस किस प्रकार के विज्ञापन जनता में बाँटे हैं। बताओ कि पहले जङ्गल को बरबाद करने की भावना लोगों में क्यों फैली हुई थी। तुम्हारे इलाक़े में जो ऐतिहासिक महत्त्व के बड़े बड़े जङ्गल हों उनकी नामावली बताओ। जिस इलाक़े में कृत्रिम खाद और पशुओं के लिए पौष्टिक दाना-चारा पैदा किया जाता है उसके इतिहास का संक्षिप्त वर्णन लिखो। अब किसान लोग किन चीज़ों को बेंच कर उक्त चीज़ें ख़रीदा करते हैं। क्या ऐसा करने से उन्हें लाभ होता है? अर्थात् उन्हें ख़रीदना लाभदायक है या अपने घर पैदा करना? अपने इलाक़े के प्राचीन इतिहास और जन-श्रुति के आधार पर बताओ कि किसानी का धन्धा प्राचीन काल में कितना स्वावलम्बी था। किसानी के कौन कौन से वर्तमान ढङ्ग लाभदायक हैं? क्या उनमें कोई विपरीत भी हैं?

चित्रण-कला—विद्यार्थियों के प्रत्यय-क्षेत्रों में गौ आदि जिन पशुओं से लाभदायक काम लिया जाता है उनके चित्र बनाओ। जिन वृक्षों की लकड़ी से किसानी के औज़ार बनाये जाते हैं, उन लकड़ियों के पेड़ों तथा औज़ारों के चित्र बनाओ।

प्राणि-विद्या—अग्रलिखित विषयों पर ऐसे निबन्ध लिखो जिनसे उनमें तुम्हारी प्रगल्भता का परिचय मिले—इस समय पशुओं में कौन कौन से रोग अधिकतर पाये जाते हैं। कौन कौन से रोग ओषधियों से रोके जा सकते हैं। रोगिन गौ के दूध और मलाई के खाने से जनता में रोग फैलता है, अर्थात् वे रोग फैलानेवाले हैं, सङ्क्रामक रोगों को रोकनेवाले उपाय, दूध के कीटाणु, शुद्ध, पवित्र और पुष्टिकर दूध की उपज क्योंकर बढ़ाई जा सकती है।

हस्त-कौशल—आगामी मास में मक्का के दानों की परीक्षा करने के लिए जिन यन्त्रों की आवश्यकता होगी उन्हें बनाकर तैयार कर लो। गोशाला, अजाशाला और शूकरशाला आदि की प्रतिमूर्तियाँ बनाओ। ध्यान रहे कि उनमें वायु तथा प्रकाश के आने-जाने के लिए पूरा-पूरा अवकाश रहना चाहिए। लड़कियों को नाना प्रकार के भोजनों को बनाने तथा परोसने की शिक्षा इस मास में दी जानी चाहिए।

फ़रवरी—खेतों में सक्रिय शिक्षा—इस मास में बग़ीचों की तथा अन्यान्य फ़सलों की निश्चित और विस्तृत योजना बना ली जानी चाहिए। बीज की माँग इतनी मात्रा में भेजना चाहिए जो परीक्षा तथा बोनी के लिए पुर जाय। भिन्न भिन्न प्रकार की परीक्षाओं से पाठशाला में मक्का और अन्यान्य धान्यों की परीक्षा करके बोने योग्य बीजों को निश्चित कर लो। छात्रों से यह परीक्षा घर पर भी कराई जाय और उनसे परीक्षाओं के परिणाम-द्योतक विवरण प्रस्तुत कराये जायँ। वनस्पति-शास्त्र की पाठ्य-पुस्तकों में छोटे पौधों का जो वर्णन दिया गया है उसका अध्ययन सावधानी से किया जाय। पौधे ठीक समय पर तैयार हो जायँ, इस अभिप्राय से बीज इसी महीने में गमलों या छोटे-छोटे सन्दूक़ों में, जो खिड़कियों में रक्खे जा सकते हैं, बो दिया जाय। जिन कार्य्यालयों में विदेश भेजने के लिए गव्य पदार्थ प्रस्तुत किये जाते हैं उनमें जाकर उन्हें प्रस्तुत करने की प्रक्रिया देखो और उसे सीखो। दूध और धान्यों की परीक्षा करने में छात्रों ने जो योग्यता प्राप्त की हो उसके निदर्शनार्थ सार्वजनिक सम्मेलन यदा कदा करते रहा करो। ऐसा करते रहने से छात्र उन बीजों को चुनने में पटु हो जायँगे जो भली-भाँति उगते और पनपते हैं। अखरौटी के विषय में

वाद-विवाद करने के लिए यह मास हुत ही उपयुक्त है। पक्षियों का आवागमन शीघ्र ही आरम्भ होगा। उनका निरीक्षण बहुत सावधानी से करो और उनकी सूची बनाओ।

भाषा-पाठ—बीज मँगाने के लिए छात्र-गण जो चिट्ठियाँ लिखते हैं पाठक उनका निरीक्षण करें। छात्रों ने दूध और मक्का आदि धान्यों की जो परीक्षाएँ की हों, उनके परिणामों के विवरणों को वे सुवाच्य अक्षरों और सुबोध भाषा में बहुत चतुराई से लिखें। उनके इन विवरणों का प्रधान उद्देश प्रसाद-गुण होना चाहिए। थोड़े से उत्तम विवरणों की नक़लें कराके उन्हें किसानी के अन्यान्य साहित्य के साथ रखना चाहिए। छात्रों के वाद-विवाद-सम्मेलनों में आनेवाले सज्जनों के नाम पत्र लिखाये जायँ। जो नया काम सर्व-प्रथम किया गया हो, उसका विवरण पर्य्याप्त सावधानी से लिखाया जाय।

पढ़ाई और अक्षरौटी—जिन सज्जनों ने अपने राष्ट्र और देश की कृषि के उत्कर्ष के लिए अपनी विद्या का दान निम्न-लिखित कृषि-साहित्य के रूप में किया है, उनकी कृतियों का पठन-पाठन किया जाना चाहिए—'सुखी मनुष्य', 'गृह्यगीत', अश्व और उसका बछेरा, 'मूषक को'। कृषि-विषयक नूतन क़ानून की कुल पुस्तकें पढ़ो।' ध्यान रहे कि कृषि-सम्बन्धी पत्रों में शुद्ध अक्षरौटी लिखी जाय और वाद-विवाद में कृषि-विषयक पारिभाषिक शब्दों का उच्चारण यथावत् किया जाय।

गणित—किसानी के औज़ार, बीज और खाद आदि चीज़ों के ख़रीदने और उपज के बेचने में जिन रसीदों, हुंडी-पुर्ज़े आदि की आवश्यकता हुआ करती है, उनका अभ्यास छात्रों को बढ़ाते रहना चाहिए। आगामी ऋतु में जितने क्षेत्र में जो शाक-भाजी बोनी हो, उसकी नाप इसी मास में कर लेनी चाहिए। किसानी तथा गव्य पदार्थों की उपज पैदा करने, उसे बाज़ार में पहुँचाने आदि में जो ख़र्चा लगा हो, उसकी बिक्री से जो आय हुई हो, उन सबका लेखा लगाकर देखो कि तुम्हारे कृषि-कर्म्म में तुम्हें कितनी आय हुई है। थोड़ी सी गौओं के दाने-चारे के व्यय तथा उनके गव्य पदार्थों की बिक्री की आय के अलग अलग हिसाब बनाकर बताओ कि प्रति गौ से आप का अनुपात क्या है?

भूगोल—ज़िले भर का एक नक़शा तैयार करो और उसमें यह दिखलाओ कि किस स्थान में किस धान्य या फल-फूल या शाक-भाजी के बीज विशेष सावधानी के साथ तैयार किये जाते हैं। विचार करके निश्चय करो कि क्या वैसे बीज तुम अपने खेतों में पैदा कर सकते हो? छात्र लोग पता लगाकर बतावें कि उनके ज़िले में कौन-कौन से धान्य, किसानी की सहायता बिना, पैदा होते हैं। ऐसी कौन-सी बग़ीचों की फ़सलें हैं जिनकी बिक्री निकट के बाज़ारों में अधिक हो सकती हैं और उनसे ख़ासा लाभ उठाया जा सकता है। तुम्हारे सहपाठी जिन वस्तुओं की खेती करना चाहते हैं उनकी माँग और खपत का पता लगाओ और बताओ कि उनकी उपज निकट के नगरों में जहाज़-द्वारा कितनी भेजी जा सकेगी। बताओ कि धरती या वातावरण की वे कौन-सी प्रतिकूलताएँ हैं जो प्रत्यय-क्षेत्रों की फ़सलों को हानि पहुँचा सकती हैं।

इतिहास—छात्रों से कहो कि वे अपने घर की अथवा पुस्तकालय की ऐतिहासिक पुस्तकों की सहायता से इस बात का पता लगावें कि इस समय जो धान्य-फल और शाक-भाजी खाने के काम में लाई जाती है उनका जन्म-स्थान कहाँ है और मनुष्य कब से उन्हें अपने खाने के काम में लाने लगा है। उनकी वर्त्तमान उन्नति का पता लगाकर बताओ कि इस समय उनकी अधिक और उत्तम उपज कहाँ प्राप्त की जाती है। नई शाक की चीज़ें किस प्रकार व्यवहार में लाई जाती हैं? ऐसा कौन सा शाक है जो अन्यत्र बहुत प्रचलित है पर तुम्हारे यहाँ उसकी खेती नहीं की जाती; और वह क्यों नहीं की जाती?

चित्रण-कला—द्विदल-धान्यों के कई चित्र बनाकर उनके पौधों के उगने तथा पत्ती लगने तक की दशा दिखाओ। बीज बोने के गमलों और सन्दूक़ों के चित्र बनाओ। साथ ही बीज-परीक्षक यन्त्रों के भी चित्र बनाओ। जिन पात्रों में भरकर चीज़ें जहाज़-द्वारा अन्यत्र भेजी जाती हैं, उनके चित्र बनाओ। उनमें कोई ऐसा सुधार दिखाओ, जो अभी तक किसी को सूझा न हो।

प्राणि-विद्या—जल, स्वच्छता, सङ्क्रामक रोगों की रुकावट और शुद्ध दूध के विषय में स्थानिक तथा बड़ी

क़ार ने जो क़ानून बनाये हैं, उनका भली भांति मनन के बताओ कि उनमें कौन-सी त्रुटियां हैं और उनकी र्ण किस प्रकार की जानी चाहिए। भारत के जिन रों में सरकारी रिसाले रहते हैं, वहा के ग्वाले घोड़ों लीद ख़रीद कर अपनी दूध देनेवाली गौओं को ख़ाते हैं। लीद के समान अपवित्र चीज़ खानेवाली का दूध सुधार के शिखर पर 'ताण्डवनृत्य' करनेवाले रतीय चाय में पीते हैं, और सनातन धर्म्म तथा हिन्दू र्म की डींग मारनेवाले लोग उसी दूध का भोग ठाकुरजी लगाकर अपनी भक्ति का परिचय देते हैं। ऐसे रतीय म्युनिसीपालिटी के मेम्बरों को उक्त पाठ से क्षा लेनी चाहिए। पता लगाकर बताओ कि नगरों जो क़ानून उक्त पदार्थों की शुद्धता और पवित्रता की ा करते हैं क्या वे ग्रामों में भी उनकी रक्षा करते हैं ? जनता स्वास्थ्य-रक्षा के लिए आवश्यकतानुसार समय समय पर क़ानून बनाये जाते हैं उन पर टीका-टिप्पणी करो।

हस्त-कौशल—जिन सन्दूक़ों में बीज बोये जाते हैं नकी प्रतिमूर्त्तियाँ बनाओ।

मार्च—खेतों में सक्रिय शिक्षा—लेटूस और टमाटों ादि के पौधे जितने शीघ्र तैयार किये जा सकें उन्हें तैयार रो। जिन पेड़ों को काटना है, जिन पर कलम बांधना , उन पर ये काम इस मास में चतुराई से करो। इस ाषय के सरकारी विभाग के दक्ष लोगों से प्रार्थना करो क वे आकर इन कामों में तुम्हें पर्य्याप्त सहायता देवें। रती के तैयार कर लेने पर, उसमें शीघ्र फलों के पौधों को ामा दो। जिस कृत्रिम यन्त्र द्वारा मुर्गी के अण्डे सेये ाते हैं, उसे तैयार करो और उसके काम सीखो।

भाषा-पाठ—संस्था की सदस्यता, बीजखाद और औज़ार की मांग आदि से सम्बन्ध रखनेवाले आवश्यक त्रों को लिखो और उन्हें डाक से रवाना करो। खेतों में भ्रमण करके वहां किसानी के जिन जिन कामों को करते हुए सावधानीपूर्वक देखा है, उनके विवरण चतुराई के साथ लिखो। तुम जिन बीजों को शीघ्र ही बोनेवाले हो उनकी लिखित या मौखिक योजना प्रस्तुत करो।

पढ़ाई और अक्षरौटी—ग्रामीण लोगों के जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली, आगे लिखी हुई पुस्तकें पढ़ो—'लोगों के घर', 'हलग्राही किसान', 'बीज बोनेवाले की कहानी' इत्यादि किसानी से सम्बन्ध रखनेवाली अन्यान्य पुस्तकें और सामयिक पत्र जो मिल सकें उन्हें पढ़ो। उनमें जो नये शब्द आवें उनके उच्चारण और उनकी अक्षरौटी याद कर लो।

गणित—किसानी के औज़ार, खाद और बीज आदि के जो बीजक आये होंगे उनकी जांच-पड़ताल करने में गणित के लिए बहुत सामग्री मिल जायगी। उस सामग्री से गणित का काम निकालो। दुग्धालय के अङ्कों से गव्य पदार्थों से होनेवाली आय को भलीभांति समझो और गव्य पदार्थों की मात्रा को बढ़ाने की चेष्टा करो। चुक़न्दर से बनाई जानेवाली शर्करा के अङ्कों को एकत्र कर उस व्यवसाय से होनेवाली आय को समझो और उसे प्राप्त करने का यत्न करो। तुम्हारे इलाक़े की खेती पर जिस अनुपात से कर लगाया जाता है, उसके तत्त्व को समझो और उसका किसानों को जो परिणाम भोगना पड़ता है, उस पर मनन करो। अपने प्रत्यय-क्षेत्रों के आय-व्यय का लेखा तैयार करने में तुमने यदि कोई भूल की है तो उसको ढूँढ़ कर ठीक करो और लाभ का अनुमित अङ्क निश्चित करो।

भूगोल—वसन्त-ऋतु के प्रारम्भ होने पर किसानी के जो काम किये जाते हैं, उन पर स्थानिक वायुमण्डल का जो प्रभाव पड़ता है उससे होनेवाले लाभों और हानियों को सोचो और समझो। तुम्हारे यहाँ किसानी से जो नाना प्रकार की चीज़ें पैदा की जाती हैं, उनमें जो जिस बाज़ार में बिक सकती हो, उसका अन्तर दिखानेवाली रेखाएँ अपने नक़शे पर खींचो। खेती के काम की जो जो चीज़ें स्थानिक बाज़ारों में मिल सकती हों, उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार की स्याही से नक़शे पर यथास्थान अङ्कित करो। स्टेट के मान-चित्र पर उन 'कोआपरेटिव' संस्थाओं को यथास्थान अङ्कित करो जो, भलाई, गोसंवर्धन और कृषि-कर्म्मोन्नति के कामों को अपना दायित्व मान कर बड़े प्रेम और चाव से करती हों। उन तारीख़ों का पता लगाओ जिनमें पौधे लगाने के समय तुषार की सम्भावना नहीं होती। छात्रगण अपनी कक्षा में जब पाठ्य-पुस्तकें और अन्यान्य पुस्तकें पढ़ चुकें तब इनसे कहो कि

वे निम्नलिखित विषयों पर वाद-विवाद करें—(१) भोज्यान्नों की पूर्त्ति और उनकी उपज की सम्प्रवृद्धि। भोज्यान्नों को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुँचाने के साधनों की सुगमता। (२) प्राक्काल में स्थानिक कृषि की उपज भोज्यान्नों की पूर्त्ति किस मात्रा तक करती थी और वह किन किन बाज़ारों में मिलती थी। (३) खेती की उपज और अन्यान्य धन्धों ने राज्य के किस अंश पर क्या प्रभाव डाला है। (४) अमेरिका के लोगों ने अपने भोज्यान्नों की माँग को पूर्ण करने के लिए बहुत से यन्त्रों का आविष्कार कर उनका उत्कर्ष क्यों किया है? योरप की अपेक्षा अमेरिका में मानव-शक्ति पर यन्त्र-शक्ति जिस तीव्र गति से अपना अधिकार जमाती जाती है उस पर टीका-टिप्पणी करो।

चित्रण-कला—कोमल कोमल पौधों, विकसित होनेवाली कलियों, शकर बनानेवाले कार्य्यालयों और पात्रों के चित्र बनाओ। छात्रगण अपने क्षेत्रों में जिन अन्यान्य औज़ारों को काम में लाते हैं उनके चित्र वे बनावें। साथ ही उन चित्रों को भी बनावें जिन्हें वे अपनी पुस्तिकाओं में देना चाहते हों।

प्राणि-विद्या—बग़ीचों और खेतों में जो चीज़ें पैदा की जाती हैं, उनकी योजना सोचते समय, भोज्यान्नों, फल-फूल और शाक-भाजी की उपज की वाञ्छनीयता पर भी विचार करो। प्रमाणित करो कि जिस प्रकार मनुष्यों की जठराग्नि, पाचक रसों को पैदा करती है, उसी प्रकार उगनेवाले पौधों को बढ़ानेवाली शक्ति उनमें कैसे पैदा होती है।

घर में और घर के आसपास जो कूड़ा-कर्कट जमा हो गया हो, जिसमें मक्खियाँ और मच्छर अपने अण्डे रखा करते हैं, उसे झाड़-बुहार कर साफ़ करो। ऐसा करने से वसन्त-कालीन कामों में बाधा पहुँचानेवाले रोगों के पैदा होने में रुकावट होगी।

हस्त-कौशल—किसानों के पशु-पक्षियों के रहने के घरों में जो अंश टूट फूट गये हों, उनकी मरम्मत करो। जो टोकरियाँ टूट गई हों उनके स्थान में नई बना लो।

अप्रैल—कृषि कीसक्रिय शिक्षा—देर से बोई जानेवाली फ़सलों को छोड़ कर, अन्य फ़सलों के लिए छात्रों से संस्था के खेतों में हल और बखर चलवाये जायँ। ज़िले के बाग़ों और खेतों की फ़सलें छात्रों को दिखाई जायँ। जो पक्षी लौटकर आ रहे हों, उनकी आदतें, उनके भोज्य-पदार्थ और उनकी संख्या आदि का पता लगाकर वे लिखी जायँ। पाठशाला के पास की धरती का सुधार किया जाय। छात्रगण अपने घरों और पाठशाला-भवन के पास फल और छाया-वृक्षों को लगावें। बोनी के पहले पतझड़ के समय की प्रदर्शिनी में प्रदर्शित की जानेवाली चीज़ें तैयार की जायँ।

भाषापाठ—छात्रों की संस्था किसानी के जो जो काम इस मास में करती हो, उनके विवरण छात्रगण लिखें। विवरण लिखने के लिए गो-परिपालन, टमाटो की खेती, घर के आसपास रहनेवाले पक्षी आदि अच्छे विषय हैं। पेड़ों के पौधों का एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान में लगाना, विवरण लिखने के लिए ख़ासी सामग्री दे सकता है। ज़िले के लोगों को किन-किन भोज्यान्नों की किस मात्रा में आवश्यकता रहा करती है, और वह किन उपायों से पूर्ण की जा सकती है, इस विषय पर छात्रों से मौखिक और लिखित वाद-विवाद कराया जाय।

पढ़ाई और अक्षरौटी—कृषि-विषयक अच्छी पुस्तकें छात्रों को पढ़ने को दी जायँ।

गणित—छात्रगण जब ज़िले के अन्यान्य किसानों की फ़सलों को देखने जायँ तब उनसे कहा जाय कि वे देखी हुई भिन्न भिन्न प्रकार की फ़सलों के क्षेत्रफल के अङ्क जोड़ते जायँ, फ़सलों को दी हुई कृत्रिम खाद की मात्रा के अङ्क जोड़ते जायँ और साथ ही उपज के अनुमान के अङ्क भी लिखते जायँ। छात्रों को चाहिए कि इसी समय वे इस बात का भी पता लगाते जायँ कि जो कीड़े फ़सल को हानि पहुँचाया करते हैं उनको खा जानेवाले पक्षियों ने फ़सलों की किस सीमा तक रक्षा की है। जिन धान्यों की खेती की तुम अपने छात्रों को शिक्षा देते हो, उनकी खेती के स्टेट भर के अङ्क एकत्र कर छात्रों को अपने अनुभव के अनुसार उनकी सहायता से उपज का अनुमित लेखा प्रस्तुत करने को कहो। छात्रों से कहा जाय कि वे लोग अपने घर की खेती और गोधन के चारे-दाने तथा दूध-मक्खन का ठीक ठीक लेखा रखा करें।

भूगोल—छात्रों को सामयिक पत्रों तथा निज की जांच-पड़ताल से इस बात का पता लगाना चाहिए कि उनके पड़ोस के किस बड़े बाज़ार में किस चीज़ की अधिक खपत होती है। उनके गांव में पैदा की हुई चीज़ें गाव-वालों की माग को पूरी करने के पश्चात् किस मात्रा तक कितने दूर के बाज़ार में कितने लाभ के साथ बेची जा सकती हैं। अपनी संस्था के मान-चित्र पर उन स्थानों को यह अङ्कित करो जहा टमाटो के पौधे, पके हुए टमाटो और अन्यान्य भोज्य धान्य और फल पैदा किये जाते हों और जिन बाज़ारों में वे अधिक बेंचे जाते हों। साथ ही इस बात को भी समझते जाओ कि किस गांव में उनकी तुम्हारे गांव से अधिक और उत्तम उपज होती है। क्या वैसी उत्तम और अधिक उपज तुम्हारे गाव में भी की जा सकती है? उसके उपाय और साधन कौन कौन-से हैं? क्या उन उपायों—साधनों—को तुम काम में ला सकते हो?

इतिहास—पता लगाकर प्रकट करो कि जब से क़ानून किसानों की सहायता करने लगा है, तब से आज तक किसानों को कितना प्रोत्साहन दिया है। अर्थात् कृषि-शिक्षा और कृषि-साहित्य का कितना विस्तार किया गया है। आरम्भ से लेकर आज तक का इतिहास बता कर दिखाओ कि स्टेट और राष्ट्र ने कृषि की शिक्षा देने के लिए कहां कहां और कितने स्कूल तथा कालेज और आदर्श कृषि-क्षेत्र स्थापित किये हैं। किसानों के बालकों को शिक्षा देने में देश की जो जनता सोत्साह सहायक हो रही है उसका संक्षिप्त परिचय दो। अङ्कों द्वारा प्रमाणित करो कि क्रिमि-नाशक पक्षियों के ह्रास के कारण कीड़ों ने फ़सल को कितनी अधिक हानि पहुँचाई है।

चित्रण-कला—छोटे पौधों और फल-वृक्षों को एक स्थान से उखाड़ कर दूसरे स्थान में लगाने की विधि चित्रित करके दिखाओ। निकट भविष्य में पक्षियों के जो घर, बाग़ या अन्य वस्तुएँ बनानी हों, उनके चित्र बनाओ।

प्राणि-विद्या—ज़िले की सफ़ाई की देख-भाल करो। इस देख-भाल में पीने के जल का सङ्ग्रह, कूड़ा-कचरा हटाना, मक्खियों और मच्छरों को अधिकार में रखना आदि सम्मिलित रहने चाहिए। साथ ही भोज्यान्न और गव्य पदार्थ जिस सावधानी से रक्खे जाते हैं, उसकी भी देख-भाल करो। दुग्धालयों का साफ़-सुथरापन विशेष चतुराई के साथ देखो।

आक्सिजन और कार्बन से वनस्पति, प्राणिवर्ग और भोज्यान्नों में जो अन्तरङ्ग सम्बन्ध है उस पर भी एक पाठ छात्रों को पढ़ाओ। मक्खियों और मच्छरों का विषय चलते रहने दो।

हस्त-कौशल—पक्षियों के लिए घर बनाओ और उनकी मरम्मत करो। पौधे रखने की टोकनिया बनाओ और किसानों के जो अन्यान्य औज़ार खो गये हों उन्हें बनाओ, जो बिगड़ गये हों उनकी मरम्मत करके किसी नामी सज्जन के नाम पर पेड़ लगाओ और उनकी रक्षा के लिए कठघरा बनाओ। जो मार्ग टूट-फूट गये हों, उन्हें ठीक करो और इन पर घसीटा चला कर उनकी परीक्षा करो।

मई और जून—कृषि की सक्रिय-शिक्षा—सेब और नासपाती आदि के पेड़ों में जब फूल लगे हों, तब उनके बाग़ों में जाकर देखो कि फूलों को नष्ट करनेवाले पतिङ्गे किस प्रकार नष्ट किये जाते हैं। छात्रों की संस्था के खेतों में और पाठशाला के बाग़ में जो फ़सलें और पौधा प्रथम बार या दूसरी बार लगाना हो, उन्हें यथास्थान बो दो और लगा दो। खड़ी फ़सल में हल चला कर कीड़ों को नष्ट करना अनुभवी किसानों से सीखो। खेतों की फ़सलों को कीड़े जिस प्रकार लाभ या हानि पहुँचाते हों, उनकी उस क्रिया का बड़ी सावधानी से निरीक्षण करो।

भाषा-पाठ—छात्रों से कहो कि वे आरम्भिक बोनी पर लेख लिखें। खड़ी फ़सलों के खेतों में चल फिरकर उन लोगों ने वहा जो कुछ देखा हो, उसका विवरण उनसे लिखाया जाय। गर्मी के दिनों में खेती के जो नये काम करने को हों, उनकी सूची छात्रों से प्रस्तुत कराई जाय। किसानों के कामों पर उनमें मौखिक वाद-विवाद कराया जाय।

पढ़ाई और अक्षरौटी—गर्मी की ऋतु में ग्रामीण जीवन पर बहुत साहित्य प्रस्तुत है। पाठक को उचित है कि वह उत्तमोत्तम पुस्तकों को चुन कर उन्हें अपने छात्रों को पढ़ने के लिए दिया करें।

जिन छात्रों का अभ्यास बढ़ा हुआ है, उन्हें उचित है कि वे अक्षरौटी में एक भी भूल नहीं होने दें। गर्मी

की किसानी में जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उनकी शुद्ध अक्षरौटी को छात्रगण सीखें।

गणित—कितने समय में कितने खेत में हल चलाया जा सकेगा, या बक्खर चलाया जा सकेगा, बीज बोया जा सकेगा, आदि का हिसाब लगा लिया जाय। अब तक जो जुताई और बोनी की गई है, उसका और खेत में बोये हुए बीज का, खाद का, खेत के लगान और मजूरी का लेखा तैयार करो। पाठकों को चाहिए कि वे देखते रहें कि प्रत्येक छात्र अपने प्रत्यय-क्षेत्र का लेखा सुवाच्य अक्षरों में रखता है और वह सही सही है। सेव के बाग़ों का लेखा भी ठीक ठीक बनवाया जाय। पेड़ों की शाखाओं के काटने, पेड़ों पर ओषधि-जल छिड़कने और उनके नीचे की धरती में हल चलाने आदि में जो व्यय हुआ हो, उसका लेखा अलग अलग और सही होना चाहिए।

भूगोल—पाठ्य और अन्यान्य पुस्तकों से सहायता लेकर बताओ कि तुम्हारे खेतों की फ़सलों को जिन कीट-पतङ्गों ने हानि पहुँचाई वे तुम्हारे यहाँ के निवासी हैं, या बाहर से आये हैं? बाहर से आये हैं तो वे कब आये और कहाँ से आये? ऐसी खोज की बातों और घास-पात के विषय में टिप्पणी लिखो। जिन औज़ारों से जिस प्रकार खेती की जाती है, उनके चित्रों का सङ्ग्रह करो। किस विदेशी धान्य, फल या शाक की खेती तुम्हारे यहाँ लाभ के साथ की जा सकती है? इस विषय पर अपनी सम्मति निश्चित करो।

इतिहास—किसानी के हल और बक्खर आदि जो सुसंस्कृत औज़ार हाथ से चलाये जाते हैं, उनके द्वारा जो जुताई और कटनी आदि का काम किया जाता था उसके स्थान में अब जो काम यन्त्रों द्वारा किया जाता है, उसका तुलनात्मक इतिहास लिख कर बताओ कि किस काम में कौनसा लाभ या हानि है। उद्योग-धन्धों के सम्पादन में जो नये नये आविष्कार और सुधार किये गये हैं, उनके इतिहासों को पढ़ कर बताओ कि उनसे देश को कौनसा लाभ कहाँ तक हुआ है और किस चीज़ की बोनी का क्षेत्र-फल कहाँ तक बढ़ा या घटा है। साथही उसकी सम्पादन-विधि में कौन कौन-से लाभदायक हेर-फेर किये गये हैं। गोधन के सुधार का इतिहास बड़ा महत्त्व-पूर्ण है। इस विषय पर अनेक विद्वानों ने जो ग्रन्थ लिखे हैं उनसे छात्रों को ख़ासी सहायता मिल सकती है।

चित्रण-कला—सेव आदि फलों के बाग़ जिस समय फूलते हैं उस समय की उसकी भिन्न भिन्न अवस्थाओं के चित्र बनाकर बताओ कि किस अवस्था में ओषधि-मिश्रित जल का सींचना लाभदायक हो सकता है। फूलों को लाभ पहुँचाने वाले पतिङ्गों का चित्र बनाओ। तुम्हारे यहां जिन यन्त्रों से काम लिया जाता है उनके पुर्ज़ों के चित्र बनाओ। जिन खेतों या बाग़ों में जुताई की जा रही हो, वह जिस प्रकार पूरी होती जाय, उस प्रकार वह मान-चित्र पर दिखलाई जाती रहे।

प्राणि-विद्या—धूपों के दिनों में जिन कामों की अत्यन्त आवश्यकता रहा करती है, उन्हें पहले सँभाल लो। विषैली वनस्पतियों से बीमार होनेवाले पशुओं की चिकित्सा करना छात्रों को सिखाओ। पशु-शाला में बँधे हुए पशुओं को जो डाँस और मक्खियाँ कष्ट देती हैं उनसे उनकी रक्षा के उपाय छात्रों को सिखाओ। गर्मी की ऋतु में जिस प्रकार का चारा-दाना पशुओं में छुतही बीमारी रोकता है, उसका अध्ययन करो।

हस्त-कौशल—इन महीनों में बहुतेरे काम खेतों में ही किये जाने चाहिए। यदि समय मिल जाय तो वह चूल्हा बना लेना चाहिए जो बिना आग के काम देता है। साथही उसका उपयोग भी छात्रों को सिखाते रहना चाहिए। फलों के जो पीपे बन्द करके जहाज़ पर भेजे जाते हैं, उन्हें बनाने में लड़कियों को इतनी सुघरता प्राप्त कर लेनी चाहिए कि यथार्थ काम के समय उनसे भूल नहीं होने पावे। कृषि-संस्थाओं का जो काम जहाँ तक हो चुका हो उसका वर्णन उस विषय की पुस्तिका में पूर्ण-रूप से लिख लिया जाय।

भारत की कृषि और गोधन का सुधार तभी होगा जब प्रत्येक भारतवासी के गले यह बात उतारी जायगी कि जिन सात्विक भोज्यान्नों और गव्य पदार्थों पर उसका जीवन अवलम्बित है, उनकी उपज को बढ़ाने के लिए उनके पैदा करनेवाले किसानों और ग्वालों में कृषि-विज्ञान और गवायुर्वेद की आधुनिक शिक्षा को फैलाना उसका सर्व-प्रधान धर्म्म है। कपड़े, सोना, चाँदी आदि

के बेचनेवाले को यह भावना दूर कर देनी चाहिए कि मैं तो कपड़े आदि बेंच कर धन कमाता हूँ। मैं किसानों और ग्वालों को ज्ञान-दान देने में अपना धन क्यों खर्च करूँ ? नौकरी-द्वारा पर्य्याप्त धन कमानेवाले भारतीयों को भी यह घातक भावना दूर कर उसके स्थान में उदारता से काम लेनेवाली भावना धारण कर आत्महित और देश-हित के काम में मनसा, वाचा और कर्मणा सहायक होना चाहिए।

खेद का विषय है कि इस समय जिन भारतीय साक्षर, सधन और साधिकार जनों के हाथों में, अपने अन्नदाता किसानों और गव्य पदार्थ-दाता ग्वालों में कृषि और गोधन के सुधार की शिक्षा फैलाने के अधिकार हैं उन्हें अपने उन अधिकारों को कार्य्य में परिणत करने की बिन्दु-मात्र भी चिन्ता नहीं है। इससे भी अधिकतर खेद की बात यह है कि वे लोग हिन्दी की पत्रिकाओं में छपे हुए इन विषयों के लेखों को पढ़ना अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल मानते हैं। यह सब भारत के खोटे दिनों का ही कड़ुआ फल है। जो पुण्यश्लोक भारतीय, भारत की किसानी तथा उसके मूलाधार गोधन के सुधार और वृद्धि में अपनी विद्या और अपने धन का व्यय करेगा वही भारत का सच्चा सपूत माना जायगा।

आदर्श

[श्रीयुत राजेश्वरप्रसादसिंह]

(१)

नाई के हथियारों में छुरे का जो स्थान है समाज-सुधारक के अस्त्रों में उसकी ज़बान का वही स्थान है! सुधारक में चाहे और कोई गुण हों या न हों, वाक्-शक्ति अत्यधिक होनी चाहिए। बाबू चोखेलाल इस लोक-प्रिय सिद्धान्त से भली भाँति परिचित थे। बाबू साहब के जीवन का अन्तिम ध्येय समाज-सुधार ही था। इसी लिए दफ़्तर के काम से जो समय बचता उसे आप अपनी तर्क-शक्ति बढ़ाने में ही लगाते थे। मित्र-मंडली में आपकी ज़बान खुलते ही दूसरों की बंद हो जाती थी। अपनी बातों से आप अपने मित्रों को मुग्ध कर रखते थे। आपको इस बात का गर्व था कि वाद-विवाद में आपको कभी कोई पराजित नहीं कर सका। इस बात पर किसी को संदेह न था, संदेह करने का किसी को अधिकार भी न था। किन्तु बाह्य संसार का यह विजयी योद्धा घर के सीमा-प्रान्त में पैर रखते ही भीगी बिल्ली बन जाता था। घर में तर्क-वितर्क से काम न चलता, यहाँ न उक्ति काम देती, न प्रमाण। पशु-बल का भी यहाँ गुज़र न था। विनय का जवाब व्यंग्य में मिलता, टेढ़ी नज़र का आसुओं में। बाबू साहब पर व्यंग्य का तो कुछ असर न होता, क्योंकि इससे निश्चय में दृढ़ता आती थी; किन्तु आँसू देखते ही आप घबड़ा उठते थे क्योंकि ये निर्दिष्ट पथ से विचलित करते थे।

संध्या का समय था। बाबू साहब स्त्रियों को मेले-ठेलों में ले जाने की कुरीति पर बहस करके अभी घर लौटे थे। आपकी सहधर्मिणी रामप्यारी देवी रसोई-घर में तरकारी बना रही थीं, पति को देखते ही कलछुली चलाती हुई बोलीं—कल दसहरा है।

चोखेलाल ने अन्यमनस्कता से कहा—सुनता तो हूँ।

"सुन तो तुम हमेशा लेते हो। हाँ, याद रखना नहीं जानते। एक कान से सुना दूसरे से निकाल दिया।"

बाबू साहब समझ गये कि यह किस प्रसंग की भूमिका है। उन्होंने सतर्क होकर दृढ़ता से कहा—तो क्या हर बात की माला जपता रहूँ कि याद रहे ?

"माला तुम क्या जपोगे। भगवान् का नाम लेने के लिए तो जपते ही नहीं, यह तो मामूली बात है। अब तो धरम-करम दुनिया से उठ ही गया। अब क्या है ?"

चोखेलाल को दम्पति-जीवन से केवल एक शिकायत थी, और वह थी रामप्यारी की मानसिक संकीर्णता। जिस विषय पर देवीजी के अपने स्वतंत्र विचार थे, उस पर बाबू साहब को अपने निजी विचार रखना परेशानी में पड़ना था। स्त्री का दृष्टि-क्षेत्र विस्तीर्ण करने के लिए पतिदेव ने अकसर प्रयत्न किये, किन्तु कभी सफल नहीं हुए। धर्म के विषय पर चोखेलाल रामप्यारी से आज तक किसी प्रकार का समझौता नहीं कर सके थे, इसलिए यह प्रसंग छिड़ते ही उनके हृदय मे रामप्यारी के प्रति अप्रसन्नता का भाव उठा था। अब रामप्यारी के व्यंग्य-वाक्यों ने अप्रसन्नता को क्रोध में परिणत कर दिया। चोखेलाल ने चिढ़कर कहा—मैं तुमसे धर्म का सबक़ पढ़ने नहीं आया हूँ।

आग में जल का एक छींटा पड़ा! रामप्यारी ने झमक कर कहा—तुम्हें क्या पढ़ायेगा कोई, तुम तो आप ही सब पढ़े बैठे हो।

बाबू साहब झल्लाकर बोले—तुम्हारे मारे नाक में दम है। तुम्हारी जो बातें है सब बे-सिर-पैर की। न इधर चलती हो न उधर।

"मेरी बातें तो सब बे-सिर-पैर की होती है! और तुम्हारी तो सब अजूबा होती हैं?"

"भई, जी न खाया करो, कहो घर में आया करूँ, कहो न आया करूँ।"

"हां, घर में क्यों आओगे? यहां तुम्हारा बैठा ही कौन है?"

चोखेलाल ने लालटेन उठाई, और बाहर जाकर अपने कमरे में प्रवेश किया। लालटेन एक ओर रखकर उन्होंने एक लम्बी सांस ली, कपड़े उतारे और तख़्त पर पड़ी हुई चटाई पर लेटकर छत की ओर शून्य दृष्टि से ताकने लगे। आज उन्हें नवयौवन के उन दिनों की बात याद आने लगी जब वे एक ऐसी संगिनी की कल्पना करते थे जो जीवन-पथ पर उनके कंधे से कंधा मिलाकर चल सके! जिन स्वप्नों की सृष्टि में यौवन की सारी शक्ति खर्च हो जाती है और कदाचित् जिनकी पूर्ति के द्वारा मनुष्य को अक्षय आनंद प्राप्त हो सकता, वे इतने अनित्य क्यों हैं? उस आत्म-वेदना की दशा में इस प्रश्न पर विचार करते करते उन्हें ऐसा ज्ञात होने लगा मानों संसार में उनका जन्म व्यर्थ हुआ। उनके अन्तर्देश में जीवन के प्रति उदासीनता का तिमिर छा गया।

कार्य-सिद्धि के लिए रामप्यारी ने जिस उपाय की शरण ली थी उसके अनौचित्य का अब उसे ज्ञान हुआ। किन्तु अपनी भूल से उसे पश्चात्ताप नहीं हुआ, पति पर क्रोध आया। विजयी सैनिक पराजित शत्रु की किसी अवहेलना पर ध्यान नहीं देता, किन्तु असफल एक एक बात याद करता है और खीझ उठता है! क्या स्त्री की मान-रक्षा करना पति का धर्म नहीं? फिर वे पग पग पर उसकी अवहेलना क्यों करते हैं, सीधे-मुँह बात क्यों नहीं करते? रामप्यारी रोटी सेंक रही थी। कुछ रोटियां जल गई, कुछ कच्ची रह गईं। जैसे-तैसे खाना बनाकर वह रसोई से बाहर निकली, स्नान किया, साड़ी बदली, और सहन में पड़ी हुई चौकी पर बैठकर पति की प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु जब इस तरह पन्द्रह मिनट बीत गये और शत्रु की ओर से संधि का कोई प्रस्ताव न हुआ तब स्वयं दबना उचित जान पड़ा। उसे भय हुआ कि कहीं वे बिना खाये ही न सो जायँ। एक मिनट में वह बाहरी बैठक में थी।

"आज खाना न खाओगे, क्या?"

"नहीं," दीवार की ओर मुख किये हुए चोखेलाल ने उत्तर दिया।

"क्यों?"

"भूख नहीं है,"

"क्यों भूख नहीं है?"

"ऐसे ही।"

"तो क्या बिलकुल न खाओगे?"

"नहीं।"

"अच्छी बात है न खाओ।"

आवेश में आकर रामप्यारी कमरे से बाहर चली गई। वह जानती थी कि भूख न होने की बात एक-दम झूठ है, किन्तु इस समय अनुनय-विनय न कर सकी। इस समय विशेष नम्रता दिखाना अपनी हेठी कराना होता। क्या उसे पति से शिकायत का मौक़ा न था? उसे ऐसा जान पड़ने लगा माने इस समय उसका घोर अपमान किया

गया। रामप्यारी की आँखों में आँसू छलक आये। वह शयनागार में गई, पलँग पर गिर पड़ी और तकिये में मुख छिपाकर फफक-फफककर रोने लगी। उसके प्रताड़ित हृदय पर रोष और गर्व के भाव चोटें करने लगे। वे उसे कौन-सा सुख दे रहे हैं, जिसका ऐसा कुटिल मूल्य लेते हैं? आज तक एक छल्ला भी नहीं दिया, जो गहने मायके से लाई थी उन्हें भी तो नहीं पहनने पाती! फिर उन्हें किस बात का तमतमा है? उसे ऐसे पति को सौंपकर उसके माता-पिता ने उस पर कैसा घोर अन्याय किया!

चोखेलाल का विचार था कि रामप्यारी अनुनय करेगी, इसी लिए उन्होंने अन्यमनस्कता का भाव धारण किया था। यह बात न थी कि उन्हें भूख न रही हो, पेट में चूहों की दौड़ बराबर जारी थी। किन्तु, रूठा हुआ बालक बिना मनाये कैसे घर जाय? पाँसा उलटा पड़ा। उसने विनय न की, यों ही चली गई। तब उन्हें स्त्री के अन्तिम वाक्य याद आये, "अच्छी बात है, न खाओ।" इन वाक्यों में जो चेतावनी छिपी हुई थी उसमें संधि-स्थापन की इच्छा नहीं, बल्कि पुनर्द्वन्द्व की चुनौती थी। चोखेलाल उन आनेवाले दिनों की कल्पना करके घबरा उठे। जब वे एक ही घर में बेगानों की तरह रहेंगे, जब रामप्यारी एक ओर जायगी और वह दूसरी ओर, जब इच्छा रहते हुए भी वे एक दूसरे से वार्तालाप न कर सकेंगे, जब घर की शांति-श्री उठ जायगी और गृहस्थी एक-दम चौपट हो जायगी।

दस मिनट के बाद चोखेलाल शयनागार के सामने गये। रामप्यारी का ध्यान आकृष्ट करने के लिए कमरे में प्रवेश करते समय उन्होंने खुले हुए किवाड़ को धक्का दिया, किन्तु वह दीवार की ओर मुख किये हुए लेटी ही रही, हिली भी नहीं। चोखेलाल समझ गये कि वह सो नहीं रही है। वह एक क्षण कमरे के मध्य में खड़े खड़े पलँग पर मुँह के बल पड़ी हुई रामप्यारी की ओर देखते रहे, फिर धीरे धीरे मुस्कराते हुए उस पलँग की ओर बढ़े जिस पर नन्हा शिशु रमेश बाल्यकाल की मीठी नींद के मज़े ले रहा था। पलँग के निकट पहुँचकर चोखेलाल ने चुटकी काटी। रमेश चीख़ उठा। रामप्यारी फिर भी जैसी की तैसी पड़ी रही। रमेश को गोद में लेकर चोखेलाल उसे चुमकारने और थपकियां देने लगे, फिर रामप्यारी की पलँग पर जा बैठे। रमेश पिता की गोद से उतरकर माता की ओर रोता हुआ लपका और मा की पीठ से लिपटकर उछलने लगा। रामप्यारी ने दीवार की ओर करवट ली और दाहिना हाथ पीछे ले जाकर रमेश को सामने खींच लिया। मा के पास जाते ही रमेश शांत हो गया। स्त्री के कंधे पर हाथ रखकर पतिदेव ने पूछा—खाना न खिलाओगी, रमेश की माँ?

पति का हाथ झिटककर रामप्यारी ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा—मुझे तुम्हारे खाने की ज़रूरत नहीं है।

रामप्यारी को बलपूर्वक अपनी ओर खींचकर चोखेलाल ने देखा, उसकी आंखों से अश्रुधारायें बह रही हैं। तब उन्होंने उसे हृदय से लगा लिया, और अपनी धोती के कोर से उसके आंसू पोंछते हुए बोले—तुम तो ज़रा ज़रा-सी बात में रोने लगती हो।

रामप्यारी ने सिसकते हुए कहा—आद-मी इत...नी हँसी कर...ता है कि हँसी आ...ये न कि......!

"छेड़ा तो पहले तुम्हीं ने था?"

रामप्यारी चिटककर तीव्र स्वर में बोली—मैंने तो नहीं तुमने पहले छेड़ा था।

मामला फिर बढ़ता देखकर चोखेलाल ने नीति से काम लिया—ख़ैर, जाने दो, मेरा ही क़सूर सही। इन बातों में क्या रक्खा है?

"मैं तो कुछ नहीं कह रही हूँ। तुम्हीं फिर छेड़ रहे हो, और अभी फिर मुझी को दोषी ठहराओगे।"

"अच्छा बाबा, मैं अपना क़सूर माने लेता हूँ। सारा दोष मेरा है, तुम बिलकुल निर्दोष हो। अब तो .ख़ुश हुई?"

विजय-गर्व से रामप्यारी की आंखें चमकने लगीं, और उसके मुखमण्डल पर एक दिव्य मुसकान नृत्य करने लगी। समझौता होगया!

घर में फिर शान्ति राज्य करने लगी। भोजन हो चुका था, चोखेलाल बैठक में बैठे हुए हुक्का पी रहे थे। इस समय उनकी दशा उस जवान मांझी की-सी थी जो अपनी छोटी-सी डोंगी में बैठा हुआ डाँड़ चलाता और

मलार गाता हो! उनके चेहरे से आनंद और संतोष की रेखायें प्रस्फुटित हो रही थीं। रामप्यारी रमेश को लेकर आई, और उसे पति की गोद में बिठा दिया। चोखेलाल बच्चे के साथ खेलने लगे, कभी उसे चूमते, कभी उछालते, कभी हँसाते। रमेश भी कभी हुक्के की निगाली के सहारे खड़े होने की कोशिश करता, कभी पिता की मूँछें पकड़ कर खींचता, कभी किलकारियां मारता हुआ माता की ओर लपकता। रमेश को अंचल में ढँककर रामप्यारी ने कहा—कल मेला देखने के लिए क्या कहते हो? लिवा चलोगे न?

फिर वही बात छिड़ गई! किन्तु सांप का काटा रस्सी से भी डरता है। चोखेलाल ने इस बार नम्रता से कहा—लिवा चलने को तो मैं तैयार हूँ, लेकिन मेरी समझ में औरतों का मेलों में जाना ठीक नहीं होता। और फिर इस साल झगड़ा हो जाने का भी डर है।

"सभी तो जा रहे हैं। प्यारेलाल का सारा घर जा रहा है। कोई मेरा ही झब्बा नोच लेगा?"

"अगर दूसरे भाड़ में कूदें, तो तुम भी कूदो! यह कहाँ की बुद्धिमानी है?"

"चाहे जो हो, मैं तो ज़रूर जाऊँगी।"

"अच्छी बात है, चलो। तुम तो हमेशा अपने मन की करती ही हो।" रामप्यारी की इच्छा-शक्ति से युद्ध करने के लिए चोखेलाल के पास न तो अब साहस था न बल।

चोखेलाल बड़े धर्म-संकट में पड़ गये। एक ओर चिर-सञ्चित सिद्धान्त था, दूसरी ओर स्त्री की मान-रक्षा का विचार। एक से फिरने में जग-हँसाई थी, दूसरे से मुँह मोड़ने में नित्य की बमचख, आये दिन के ताने और उलहने। बाह्य संसार में परास्त होने पर घर में शरण मिल सकती है, किन्तु घर के निर्वासित को बाहर कोई नहीं पूछता। वे कोई ऐसा सुगम उपाय सोचने लगे जिससे न सिद्धान्त की अवहेलना हो, न रामप्यारी की।

(२)

विजयादशमी का दिन था। दिन के तीन बजे थे। इक्कों के अड्डे पर बाबू चोखेलाल एक इक्केवाले से किराया तय कर रहे थे। इक्केवाले ने कहा—बाबू साहब, बारह आने से कम न होगा। जी चाहे चलिए, न जी चाहे न चलिए।

"बारह आने तो, भाई, बहुत होते हैं। आठ आने लो।"

"नहीं, बाबू, आज बारह आने से कम नहीं हो सकता।"

इतने में एक साहब दूर ही से "इक्केवाले, चौक चलोगे? चौक चलोगे?" की हाक लगाते हुए आते दिखाई दिये। निकट पहुँचकर आगन्तुक सज्जन ने चोखेलाल को नमस्कार किया। चोखेलाल ने नमस्कार का उत्तर दिया। तब आगन्तुक महाशय ने दांत निकालकर पूछा—कहाँ की तैयारी है, जनाब?

चोखेलाल ने मुँह बनाकर उदासीनता से कहा—ज़रा हकीमजी के यहाँ जाना है।

"क्यों, क्यों? भई, ख़ैरियत तो है?"

"घर में कुछ तबीयत ख़राब हो गई है"।

चोखेलाल की ओर एक बार अविश्वास से देखकर वे महाशय आगे बढ़े, और एक दूसरे इक्केवाले से बातें करने लगे। चोखेलाल की जान छूटी। एक दीर्घ निःश्वास छोड़कर वे इक्के पर सवार हुए, और घर की ओर चले। वे नवयुग के क्रान्तिकारी विचारों के अनुयायी अवश्य थे, किन्तु इस समय उनके हृदय में शक जगह करने लगा। इस मुठभेड़ में उन्हें भावी अमङ्गल की सूचना दिखाई देने लगी।

× × × ×

राम-दल निकलने का समय होगया था। सबज़ीमण्डी के आस-पास कुछ गुण्डे बुल्ले बदले, लट्ठ लिये, पान चबाते हुए कानाफूसी करते दिखाई देते थे। जिन सड़कों पर होकर दल निकलनेवाला था उन पर इस समय ऐसी भीड़ थी कि दुर्बल मनुष्य एक बार उसमें फँस कर न हिल-डोल सकता था, न बाहर ही निकल सकता था। नगर के हिन्दुओं की सारी धार्मिकता सिमिट कर इस भीड़ में आ गई थी। जो हिन्दू मत-भेद के कारण इसमें सम्मिलित न थे वे, इन धर्मावलम्बियों की दृष्टि में, या तो पक्के नास्तिक थे या 'किरस्टान'!

जब प्रतीक्षा करते करते दर्शकों की शांति का अंत हो
ाया, तब दल निकला। जयकारों की गगन-भेदी ध्वनि
ारों ओर गूँजने लगी। इस वर्ष कोई नई बात न थी।
ही घोड़े थे, वही ऊँट थे, वही चौकियां, वही बाजे, वही
ाथी। जिस हाथी पर रामचन्द्रजी सवार थे उस पर
ारों ओर से निरन्तर पुष्प-वर्षा हो रही थी। फूलों की
ा छड़ियां भाग्यवश महाराज के श्री-चरणों से ढुलककर
ीचे गिर पड़तीं उन पर भक्त-वृन्द इस प्रकार गिरते थे
ानों रत्नों पर टूट रहे हों।

दल निकल गया। रामप्यारी का हाथ पकड़े हुए
ाबू चोखेलाल हकीम निहालचन्द की ऊँची छत से नीचे
ड़क पर उतर आये। यहां अभी काफ़ी भीड़ थी। इक्का
ाने की गुंजाइश न थी, न देर हो जाने पर सवारी पाने
ी आशा, इसलिए इसी समय अड्डे की ओर चलना
ा पाया। आगे आगे भीड़ चीरते हुए चोखेलाल चले
ाते थे और पीछे पीछे रमेश को गोद में लिये, पति का
ाथ पकड़े हुए रामप्यारी। दोनों धक्के पर धक्का खा रहे
। अभी वे सौ क़दम गये होंगे कि सहसा उन्हें सैकड़ों
ादमी गलियों से निकल निकल कर इधर-उधर भागते हुए
खाई देने लगे। इन्हीं भागते हुए आदमियों में वे लोग
ा दिखाई देते थे जो अभी थोड़ी देर पहले दल के साथ
ट्ठ उछालते, अकड़ते चले जाते थे! चारों ओर चिल्ला-
ट शुरू हो गई—

"भागो, भागो!" "चल गई, चल गई!" "हिन्दू
ुसलमान में चल गई!" पीछे से भीड़ का रेला आया
ौर रामप्यारी के हाथ से पति का हाथ छूट गया।
ाते हुए तैराक का सहारा छिन गया।

रामप्यारी मसल उठी, उसके पैर लड़खड़ाने लगे,
ाकर-सा आने लगा, और निकट था कि नीचे गिर जाय
ौर सहस्रों बदहवास पैरों के नीचे पड़कर कुचल जाय,
सहसा उसे एक दीवार का सहारा मिल गया। वह
ीवार से सटकर खड़ी हो गई और भयातुर नेत्रों से
ागते हुए मनुष्यों में पति को खोजने लगी। उसके सूखे
ुए मुख से बार बार निकल रहा था, "हाय राम! अब
ा करूँ?" शिशु रमेश जग पड़ा, और माता के गले
लिपट कर आश्चर्य से इधर-उधर देखने लगा। इस
प्रकार के धार्मिक झगड़ों में अबलाओं पर बदमाशों-द्वारा
किये गये अत्याचारों की भयोत्पादक कथायें रामप्यारी
सुन चुकी थी। आज ऐसी शोचनीय परिस्थिति में पड़कर
उसकी दुष्कल्पना जाग्रत हो गई और उन अतीत दुर्घटनाओं
के भयावह दृश्य उसके नेत्रों के सम्मुख फिरने लगे।

चोखेलाल का कहीं पता न था। हताश होकर, हृदय
को मज़बूत करके, मन-ही-मन ईश्वर से प्रार्थना करती
हुई, रामप्यारी बचाव का उपाय सोचने लगी। सामने
सेठों की कोठियां थीं, किन्तु वहां शरण मिलने की आशा
न थी, सबके फाटक बन्द थे। सहसा उसकी बाईं ओर
दृष्टि गई, एक पतली सूनी गली दिखाई दी। उसे ऐसा
ज्ञात हुआ मानों ईश्वर ने उसके दुःख-निवारणार्थ मार्ग
निकाल दिया हो। उसके हृदय से एक बोझ-सा उठ गया,
पैरों में पर लग गये। भीड़ अब छँट गई थी। वह
शीघ्रता से गली में घुसी। थोड़ी दूर पर उसे रोशनी
दिखाई दी। वह ठिठक गई। आगे बढ़ना ठीक है या
नहीं? न जाने शत्रु हों कि मित्र। किन्तु न बढ़ने में भी
भलाई न थी, गली में कोई बदमाश घुस आया तब?
फिर वह जी कड़ा करके धीरे धीरे आगे बढ़ने
लगी।

(३)

भीड़ के रेले में पैर उखड़ जाने पर कठिनाई से जमते
हैं। बाबू चोखेलाल ने जब होश सँभाला तब मण्डी के
पास थे। उन्होंने देखा, सड़क की मोड़ पर कुछ मुसल-
मान गुण्डे खड़े हुए हैं, और जो इक्के-दुक्के आदमी घब-
राहट में उधर निकल पड़ते हैं उन पर लाठियों की वर्षा
होने लगती है। बाबू साहब उल्टे पैर भागे और बड़ी
कठिनाइयों के बाद किसी तरह उस स्थान पर पहुँचे
जहां रामप्यारी से साथ छूट गया था। किन्तु इस समय
रामप्यारी वहाँ कहीं न थी। वे भय और दुविधा से काँप
उठे। उनका दिल बैठने लगा, आँखों के सामने अँधेरा छा
गया। वह वहीं ज़मीन पर बैठ गये।

सहसा एक ओर घोड़े के टापों का शब्द हुआ।
चोखेलाल ने सिर उठाकर देखा, मुंशी दीनदयाल जो
अभी दल के आगे आगे थे भागे जा रहे थे। चोखेलालने

चिल्ला कर कहा—महाशय ! ज़रा सुनते जाइए। मैं बड़ी मुसीबत में हूँ, मेरी मदद कीजिए।

मुंशीजी ने एक बार मुड़कर देखा, और घोड़ा तेज़ कर दिया। किसी ने पीछे से कहा—यह है हमारे नेताओं का हाल ! अभी ज़रा देर पहले कैसे जोश में थे, लेकिन झगड़ा होता देखा और दुम दबाकर भाग निकले ! भइया ! वह रुकनेवाले नहीं हैं, अब यहां लीडरी थोड़े ही करनी है।

चोखेलाल ने पीछे फिर कर देखा, एक दीर्घकाय, कसरती आदमी, सिर से पैर तक खद्दर पहने, लट्ठ लिये खड़ा हुआ है। उसके दाहिने और बायें कई जवान बड़ी बड़ी लाठियां लिये खड़े हुए थे। उनके चेहरों से शौर्य, आत्मविश्वास और दृढ़ संकल्प टपक रहा था। उस टोली के सरदार ने कहा—क्या है, महाशय ! मुझसे कहिए।

चोखेलाल एक दीर्घ-निःश्वास छोड़कर बोले—भाई ! क्या पूछते हो ? स्त्री की हठ का मारा हुआ इनसान हूँ। घर में मेला देखने के लिए ज़िद कर रही थी। मैंने बहुत समझाया, लेकिन वह अपनी ज़िद पर अड़ी रही। लाचार, और कोई उपाय न देख दल दिखाने लाया था। लौटते समय मैं भीड़ के रेले में पड़ गया, और वह पीछे छूट गई। अब उसका कहीं पता नहीं चलता। कहां ढूँढ़ूँ, क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता।

"नारायन ! नारायन ! यह तो बड़ा अनर्थ हुआ। इस समय सारे शहर में आग धधक रही है। ऐसे बुरे समय एक असहाय हिन्दू अबला का यों अकेली रह जाना तो बहुत बुरा हुआ।"

"भाई ! मै तो लुट गया, कहीं का न रहा।"

सरदार ने सान्त्वना दी—खैर, आप चिन्ता न करें। इन वीरों को देखिए। यह मेरे पसीने की जगह खून गिरानेवालों में हैं। आपकी इज्ज़त हमारी इज्ज़त है। अगर एक भी हिन्दू स्त्री का सतीत्व नष्ट हुआ तो सारी हिन्दू-जाति की लाज गई। और यह धर्म पर मर मिटनेवाले वीर जाति की लाज जाते नहीं देख सकते। बहादुरो ! आओ।"

होरीलाल और उसके वीर अनुयायी चोखेलाल को साथ लिये हुए सारी रात गलियों में चक्कर काटते रहे। जहां कहीं आहट मिलती छिप कर सुनने लगते। कई स्थानों पर मुसलमानों ठभेड़ हुई। इन अवसरों पर वे ऐसे ऐसे हाथ दिखाते कि विपक्षियों के छक्के छूट जाते थे। उनके द्वारा कितने ही भूले-भटके पथिकों की प्राण-रक्षा हुई, कितने ही घर लुटते लुटते बचे। किन्तु उनका कार्य सिद्ध न हुआ, इस तरह सारी रात खोजने पर भी रामप्यारी का कहीं पता न लगा।

सबेरा हुआ। पूर्वाकाश में सूर्य ने लाल आंख निकाली, मानों कोई स्नेही पिता अपने बच्चों को व्यर्थ झगड़ते देखकर क्रोध प्रकट कर रहा हो ! हताश, मनोवेदना से आन्दोलित चोखेलाल होरीलाल के घर गये। इस समय वे अपने घर जाने का साहस न कर सके। मित्रों और पड़ोसियों से कैसे आखें मिलायेंगे, उनके प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे, उस घर में कैसे पैर रखेंगे जिसका सब कुछ लुट गया ? यह बाधायें कम न थीं। स्त्री और बच्चे की भोली भोली सूरतें उनकी आंखों में फिरकर कलेजे पर चोटें करने लगीं।

शाम होते होते सारे शहर में सशस्त्र सैनिकों का पहरा बैठ गया। अधिकारियों की ओर से नगर भर में मुनादी हो गई कि कहीं भीड़ जमा न हो, और सायङ्काल छः बजे के बाद कोई घर से न निकले। लेकिन हिन्दू-मुसलमान तो एक दूसरे के ख़ून के प्यासे हो रहे थे, उन्हें इस मुनादी की क्या पर्वा थी। यदि सड़कों पर न लड़ पाते, तो गलियों मे हाथ चलाते थे। वर्षों की ज़ङ्ग-खाई हुई तलवारें और छुरियां निकाली जा रही थीं। कोतवाली में शव पर शव चले आते थे, किन्तु कुछ पता न चलता था कि किसने मारा, कहां मारा।

तीन दिन लड़ाई का बाज़ार गर्म रहा। दोनों पक्षों ने जी खोलकर हौसला निकाला, पुराने झगड़े नये किये गये, मुद्दतों के बदले चुकाये गये। इस विकट हत्याकाण्ड में कितने मनुष्य जान से मारे गये, कितने ज़ख़्मी हुए इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन था। इस बीच में चोखेलाल बराबर होरीलाल के घर ठहरे रहे। होरीलाल रामप्यारी को ढूँढ़ निकालने में अभी तक असफल

, किन्तु निराश नहीं हुए थे। वे चोखेलाल को नित्य
श्वासन देते—बाबू साहब! आप निश्चिन्त रहिए।
ऽ एक बदमाश का घर खोद कर फेंक दूँगा, या तो
का पता लगाऊँगा या प्राण दे दूँगा।

चौथे दिन की बात है। दिन का तीसरा पहर था।
र दिनों की तरह आज भी चोखेलाल होरीलाल को
र कोतवाली पहुँचे। विचार था, कदाचित् आज कुछ
ा लगे। कोतवाली में इस समय भी फ़रयादियों की
ड़ लगी हुई थी। चोखेलाल और होरीलाल भी एक
ने में खड़े होगये। सबकी शिकायतें रोज़नामचे में
की जाती थीं, किन्तु उन्हें यह देखकर आश्चर्य और
ख होता था कि इन शिकायतों पर कोई विशेष कार्यवाही
ीं की जा रही थी और कर्मचारियों के पास उन अन्याय-
ड़ित फ़रयादियों के लिए व्यंग्य के अतिरिक्त और कुछ
था। इस प्रकार आधा घण्टा बीत गया। चोखेलाल
नैराश्य घेरने लगा। सहसा उन्होंने देखा, एक बूढ़ा
सलमान, सामान्य वस्त्र पहने, एक छोटे-से बच्चे को
धे पर बैठाले हुए फाटक के भीतर घुसा। उसके पीछे पीछे
ऽ स्त्री सिर से पैर तक एक सफ़ेद चादर ओढ़े हुए चली
रही थी। चोखेलाल ने एक क्षण नवागन्तुकों
ध्यान से देखा, फिर उनकी ओर वेग से
के।

बूढ़े मियाँ ने रमेश को चोखेलाल की गोद में देकर
कराते हुए कहा—जनाब! ये तीन रोज़ मेरे मेहमान
, आपको एहसास नहीं हो सकता कि अपने मेहमान
रुख़सत करने में मुझे किस क़दर रूहानी तकलीफ़ हो
ी है। लेकिन मुझे इस बात की ख़ुशी है कि आपकी
ानत आपको सुपुर्द कर रहा हूँ।

चोखेलाल की आँखों में आँसू छलक आये। होरीलाल
टे और बड़े मियाँ के गले से लिपट गये, फिर कण्ठावरुद्ध
र बोले—मियाँ साहब! इतने बड़े नगर में आप ही एक
दमी हैं जिसने धर्म का असली मतलब समझा है।
प सच्चे मुसलमान हैं! आपको धन्य है!

वहाँ सैकड़ों आदमी खड़े थे, सभी के मुख में प्रशंसा
—वाह, वाह! शराफ़त इसे कहते हैं—दूसरे की बहन
ी को अपनी बहन-बेटी समझना!

सबके पीछे अलग, खड़ी हुई रामप्यारी चादर के भीतर ही भीतर आँखें पोंछ रही थी। इस समय उसके हृदय में आह्लाद था, कृतज्ञता थी, पश्चात्ताप था।

बूढ़े मियाँ ने यह बयान दिया—"मेरा नाम रमज़ान-अली है। मैं क़रीब ही रहता हूँ, जिल्दबन्दी का काम करता हूँ। जिस दिन झगड़ा शुरू हुआ उस दिन शाम को मैं अपने घर में बैठा हुआ सितार बजा रहा था। एकाएक बाहर शोर-गुल सुनाई देने लगा। मैंने सितार बन्द कर दिया और लालटेन लेकर बाहर निकला। मैं बाहर चबूतरे पर आया ही था कि एक शरीफ़ घराने की औरत बग़ल में एक बच्चा लिये हुए सहमी हुई गली में दाख़िल हुई। वह औरत थोड़ी दूर पर रुक गई। मैं चबूतरे से नीचे उतरा और क़रीब जाकर पूछा—"किसे ढूँढ़ती हो?' उसने कुछ जवाब नहीं दिया। तब मैंने कहा, 'बेटी! डरो नहीं, बताओ क्या मामला है?' उसने डरी हुई आवाज़ में कहा—'मैं अपने पति के साथ मेला देखने आई थी। हम लोग घर लौटे जा रहे थे। इतने में झगड़े का शोर सुनाई दिया, फिर भीड़ में उनका साथ छूट गया।' वह नकज़ात ख़ातून यही बाबू चोखेलाल साहब की बीवी मुसम्मात रामप्यारी देवी थीं। "मैं इन्हें समझा-बुझाकर अपने घर लिवा ले गया। मेरे घर में तीन दिन रहीं। मैंने अपने एक हिन्दू दोस्त के ज़रिये इनके खाने-पीने का इन्तज़ाम करा दिया। वह हिन्दू साहब इन्हें अपने घर में जगह देने के लिए तैयार थे, लेकिन इन्होंने मेरे यहाँ ही रहना पसन्द किया। मैंने और मेरी बीबी ने इनके मज़हबी ख़यालात की पूरी इज़्ज़त की। झगड़े की वजह से अभी तक मैं इत्तला नहीं कर सका था"।

सन्ध्या समय बाबू चोखेलाल की मित्र-मण्डली उनके घर पर जमा हुई। सबने बाबू साहब के प्रति सहानुभूति प्रकट की। बड़ी रात तक रमज़ान की प्रशंसा होती रही, और राज-कर्मचारियों के कुप्रबन्ध की कड़ी आलोचना। मित्रों को बिदा करके दस बजे के लगभग चोखेलाल अन्दर गये। रामप्यारी लोटे में जल लेकर समीप आईं। हाथ-मुँह धोकर चोखेलाल ने रसोई-घर में प्रवेश किया। रामप्यारी खाना परोसने लगीं।

चोखेलाल ने मुस्कराते हुए पूछा—फिर मेला देखने जाओगी ?

रामप्यारी ने पति के मुख की ओर घूरकर देखा, फिर दृढ़ता से बोली—हाँ, जाऊँगी, ज़रूर जाऊँगी, अगर ऐसे देवता से फिर भेंट हो सके।

वार ख़ाली गया ! एक क्षण चुप रहकर चोखेलाल ने एक दीर्घ-निःश्वास छोड़ा, फिर सिर हिलाते हुए कहा—ऐसे साधु-चरित्र आदमी नित्य नहीं मिलते।

"तो फिर मेरा मेला भी हो चुका। इन तीन दिनों में मैंने वह देखा है जो फिर देखने को आँखें तरस जायेंगी। मुझे तो यह तअज्जुब होता है कि कोई ग़ैर के साथ कैसे इतनी मुहब्बत दिखा सकता है। उन लोगों ने मेरी कितनी ख़ातिर की, मेरे लिए घर का एक हिस्सा ख़ाली कर दिया, एक हिन्दू पड़ोसी के यहाँ से बर्तन ले आये, हर वक़्त पूछते रहते थे, किसी चीज़ की ज़रूरत तो नहीं है बेटी ? इतनी ख़ातिर कोई अपना कुटुम्बी भी न कर सकता।"

चोखेलाल सिर झुकाकर भोजन करने लगे।

(४)

रमज़ानअली चोखेलाल के घर के-से आदमी हो गये। वे उनके यहाँ सप्ताह में दो बार अवश्य जाते और जब जाते तो रमेश के लिए कोई न कोई खिलौना अवश्य लेते जाते। रामप्यारी बहुत मना करती, किन्तु वे न मानते। खिलौनों का एक अच्छा ढेर लग गया था।

आज चोखेलाल के घर जाते समय रमज़ान ने बाज़ार में एक नया जापानी खिलौना देखा, चट ख़रीद लिया।

दरवाज़े के बाहर से रमज़ान ने आवाज़ लगाई—रमेश ! भइया रमेश !

रामप्यारी ने अन्दर से कहा—चले आइए, अब्बा, दरवाज़ा खुला है।

रमज़ान ने घर में प्रवेश किया। जल्दी से सहन में पलँग बिछाकर रामप्यारी रमज़ान के पैर छूने को बढ़ी।

"यह क्या करती हो, बेटी ?"

रामप्यारी ने इस आपत्ति पर कुछ ध्यान न दिया। तब आशीर्वाद देकर रमज़ान पलँग पर बैठ गये। खिलौने की ओर देखकर रामप्यारी ने कहा—अब्बा ! क्यों फ़िज़ूल पैसा बर्बाद करते हो ? खिलौने तो ढेरों रक्खे हैं।

रमज़ान ने कुछ उत्तर न दिया। रामप्यारी ताड़ गई कि उसका बार बार मना करना उन्हें बुरा लगता है। वह कमरे में गई और रमेश को उठा लाई। रमज़ान को देखते ही रमेश उनकी गोद में उतर पड़ा और उनकी सफ़ेद डाढ़ी से खेलने लगा। फिर खिलौना देखते ही उनकी गोद से उतर कर वह उसकी ओर लपका।

रामप्यारी ने सकुचाते हुए पूछा—अब्बा, एक बात पूछूँ, बताओगे ?

"क्या है, बेटी ?"

रामप्यारी ने दीवार के सहारे खड़ी खड़ी कहा—आपने उस दिन हमारी मदद क्यों की थी ? आपके जात-वाले तो हम लोगों से कीना रखते हैं।

रमज़ान ने रमेश को अपनी गोद में ले लिया, और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—बेटी, इसका जवाब तो रमेश ही दे सकता है। मेरे इस नन्हें बादशाह से पूछो। इसी ने उस दिन मेरे ऊपर जादू डाला था। इसी ने मुझे शराफ़त का सबक़ दिया, वर्ना मैं तो बुराइयों में फँसा हुआ आदमी हूँ। बेटी, तुम समझती हो मैं पैसा बर्बाद करता हूँ। लेकिन तुम्हारा यह ख़याल ग़लत है। मैं तो अपने बादशाह को नज़रें देता हूँ। बीस साल हुए मेरा हामिद मुझसे छीन लिया गया था। लेकिन मैं ख़ुशनसीब हूँ कि मेरा खोया हुआ बादशाह उस दिन मुझे फिर वापस मिल गया। मेरे जादूगर ! मेरे बादशाह !

स्नेह-विह्वल होकर रमज़ान रमेश को बार बार चूमने लगे। अनन्त पथ पर भटकता हुआ बटोही अपने खोये हुए साथी को पाकर स्वर्गिक आह्लाद से आन्दोलित हो उठा। कल और आज का मध्यवर्ती समय आज की सत् प्रेरणा से प्रभावान्वित होकर विस्मृति के वक्ष में विलीन होगया।

रामप्यारी का हृदय कृतज्ञता से भर गया। उसकी आँखों में श्रद्धा और भक्ति के आँसू छलकने लगे। उसे ऐसा ज्ञात होने लगा मानों रमज़ान इस संसार का नहीं, किसी दूसरे दिव्य लोक का निवासी है।

फिर रमज़ान की ओर देखते देखते उसे ऐसा जान पड़ा मानों वृद्धावस्था के उस विकृत रूप में सरल निर्बोध शैशव किलकारियां मार रहा है। उस समय उसका नारी-हृदय अगाध मातृ-वात्सल्य लेकर रमज़ान और रमेश की ओर वेग से प्रवाहित हो चला।

भारत में अकाल, उनके कारण तथा निवृत्ति के उपाय

[श्रीयुत चन्द्रगुप्त, विद्यालङ्कार]

भारतवर्ष के प्राचीन से प्राचीन साहित्य में दुष्कालों का वर्णन उपलब्ध होता है। ऋग्वेद के दशम मण्डल में एक मन्त्र है—"अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम्। तदारभस्व दुर्हणो......." अर्थात्—"हे दुष्काल, समुद्र के परे यह जो निर्जन स्थान दिखाई दे रहा है, तुम यहां से चलकर वहां चले जाओ।" पुराणों में एक गाथा मिलती है, उसमें कहा गया है कि एक समय यहां निरन्तर बारह बरस तक वर्षा नहीं हुई, इस कारण इतना भयङ्कर अकाल पड़ा कि कहीं पत्तों का भी नाम या निशान न रहा। इस अकाल के कारण सर्वत्र मानों प्रलय का राज्य हो गया। उन दिनों ऋषि विश्वामित्र ने एक चाण्डाल के हाथ से मांस लेकर खाया था। इसी प्रकार बौद्ध-जातक-ग्रन्थों में महात्मा बुद्ध के पूर्वजन्मों का परिचय देते हुए एक कहानी आती है—एक समय इतना भयङ्कर दुष्काल पड़ा कि कहीं पानी मिलना भी लगभग असम्भव होगया। शहर के शहर उजड़ गये। जङ्गली हिंसक जीव शहरों की गलियों में चक्कर लगाने लगे। ऐसे समय में एक ब्राह्मण ने जङ्गल में जाते हुए देखा कि कहीं एक शेरिनी प्यास के कारण बेहोश-सी होकर पड़ी है, उसके पास ही उसके दो बच्चे भूख के कारण करुण स्वर में चिल्ला रहे हैं। ब्राह्मण को यह दशा देखकर इतनी दया आई कि वह स्वयं उस शेरिनी के सम्मुख जाकर लेट गया। शेरिनी उसका मांस खाकर अपने तथा दोनों बच्चों के जीवन की रक्षा कर सकी। यही ब्राह्मण अगले जन्म में महात्मा बुद्ध के रूप में पैदा हुआ। सर एडविन आर्नोल्ड ने अपने "दी लाइट आफ़ एशिया" नामक ग्रन्थ में भी इस कहानी का वर्णन किया है।

'राजतरङ्गिणी' में काश्मीर के एक अकाल का ऐतिहासिक तथा विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। ईसवी सन् ६०७ और ६०८ में वहां बहुत भयङ्कर अकाल पड़ा। इतना भयङ्कर अकाल काश्मीर में उससे पूर्व कभी न पड़ा था। इस अकाल के कारण कितने ही आदमी मौत की भेंट हुए। लोग भूख के कारण इतने तङ्ग आ गये थे कि वे जानबूझ कर जेहलम नदी में कूद कर आत्मघात करने लगे थे। परिणाम यह हुआ कि जेहलम नदी अकाल-पीड़ितों की लाशों से भर गई।

प्राचीन साहित्य में इसी प्रकार अन्य अकालों का वर्णन भी उपलब्ध होता है। कथासरित्सागर तथा आचार्य विष्णुशर्माकृत पञ्चतन्त्र में भी बहुत वर्षों तक वर्षा न होने के कारण अकाल फैल जाने की बात कई बार कही गई है। परन्तु प्राचीन काल के ये अकाल ऐतिहासिक नहीं हैं। राजतरङ्गिणी को छोड़कर अन्य साहित्य में अकालों का जो वर्णन उपलब्ध होता है, उसका उद्देश ऐतिहासिक दृश्य अङ्कित करने का प्रतीत नहीं होता। परन्तु उन वर्णनों-द्वारा इतना अवश्य जाना जा सकता है कि तत्कालीन भारतवर्ष अकालों से सर्वथा अपरिचित नहीं था।

मुसलमानों के शासन-काल में भी कभी कभी भारत-वर्ष में साधारण या भयङ्कर अकाल पड़ते रहे। परन्तु इनमें से अधिकांश अकाल बहुत घातक न होते थे। प्राचीन काल के अकालों का कहानियों के रूप में जो वर्णन प्राप्त होता है उसमें साहित्यिक स्वाद लाने के लिए अत्युक्ति अवश्य प्रतीत होती है। परन्तु मुग़लकालीन अकालों का वर्णन पूर्ण रूप से ऐतिहासिक है।

ईसवी सन् १२९० में—अलाउद्दीन खिलजी के समय—एक भयङ्कर अकाल पड़ा। उसके बाद १३४३ में दिल्ली

वन-श्री

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

तथा उसके आस-पास के प्रान्तों में एक भयङ्कर अकाल पड़ा। इस अकाल के बाद लगभग २०० वर्ष तक भारत में कोई स्मरणीय अकाल नहीं पड़ा। सन् १४२७ में सिन्ध में भयङ्कर अकाल पड़ा। सिन्ध के इस अकाल की भयङ्करता में वहां के राजा की मूर्खता ही मुख्य कारण थी। उस वर्ष सिन्ध में फ़सल अच्छी न हुई थी। अतः बादशाह ने अकाल के भय से प्रान्त भर में उत्पन्न हुए अनाज का बहुत बड़ा भाग ख़रीद कर अपने पास जमा कर लिया। परिणाम यह हुआ कि अनाज और भी अधिक महँगा हो गया। लोग भूखों मरने लगे। परन्तु बादशाह ने इस सम्बन्ध में कोई उचित व्यवस्था न की। इसके लगभग ३० वर्ष बाद सन् १४५५ में प्रायः सम्पूर्ण उत्तर-भारत में अकाल पड़ा, परन्तु यह अकाल बहुत भयङ्कर न था। सन् १५७४ में गुजरात-प्रान्त में अकाल पड़ा। इसके साथ ही वहा महामारी भी फूट निकली। अतः इस अकाल की भयंकरता और भी अधिक बढ़ गई। १६८५ में दक्षिण में भयंकर अकाल पड़ा। इन अकालों के अतिरिक्त बीच बीच में और भी अकाल पड़ते रहे, परन्तु वे उतने भयंकर न थे।

मुग़ल बादशाहों के समय जो अकाल पड़े वे प्रायः बहुत सीमित क्षेत्र तक ही व्याप्त होते थे। उन दिनों अनाज एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में ले जाने का कोई सरल और सस्ता साधन नहीं था। अतः जिस प्रान्त में फ़सल कम होती थी वहीं अकाल पड़ जाता था। कई बार ऐसा दृश्य भी उपस्थित हुआ है कि एक प्रान्त में अनाज बहुतायत से उत्पन्न हुआ है और वहां अनाज का दाम पिछले वर्षों की अपेक्षा सस्ता हो गया है। परन्तु साथ ही लगे हुए दूसरे प्रान्त में फ़सल अच्छी न होने के कारण भयंकर अकाल फैला हुआ है। इसका यह परिणाम होता था कि अकाल पड़ने पर लोग अपना प्रान्त छोड़कर अन्य समीपस्थ प्रान्तों में भाग जाते थे। इसके अतिरिक्त मुग़ल बादशाह भी अकाल-पीड़ितों की अच्छी सहायता किया करते थे। यह सहायता प्रायः दो रूपों में की जाती थी। अकाल-पीड़ित प्रान्त में या उसके आस-पास सरकार की ओर से कोई ऐसा कार्य शुरू कर दिया जाता था जिसमें हज़ारों मज़दूरों की दरकार हो। ये काम सड़क बनवाना, नहर खुदवाना आदि होते थे। इन कामों में जितने व्यक्ति सम्मिलित होने के लिए आते थे उनमें से कोई वापिस नहीं किया जाता था। सहायता का दूसरा रूप होता था, अनाज या रुपया बांटना। इसके साथ ही किसानों का भूमि-कर या तो माफ़ कर दिया जाता था या उसमें बहुत कमी कर दी जाती थी। सम्राट् शाहजहाँ के समय एक अकाल पड़ा था। इसमें अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए प्रति सप्ताह ५० हज़ार रुपया बांटा जाता था। ध्यान रखना चाहिए कि उन दिनों एक रुपये की क्रय-शक्ति आज-कल की अपेक्षा कम से कम चौगुनी थी।

भारतीय अकालों का वास्तविक इतिहास ईस्ट इंडिया कम्पनी के इतिहास के साथ ही प्रारम्भ होता है। जब हम कम्पनी-काल तथा इँग्लेंड-सम्राट् के शासन-काल में पड़े अकालों के इतिहास का अध्ययन करते हैं तब भारत के प्राचीन अकालों का इतिहास सुकाल के समान प्रतीत होने लगता है। इन अकालों की भयंकरता के सम्मुख अकाल-सम्बन्धी पौराणिक गाथाओं के हृदयद्रावक वर्णन भी मात हो जाते हैं। सन् १७५७ के प्लासी के युद्ध के बाद कम्पनी के पैर भारतवर्ष में स्थिरता से टिक गये। धीरे धीरे कम्पनी के अधिकारियों पर से बङ्गाल के नवाब का प्रभुत्व उठता चला गया। बङ्गाल में दोहरा शासन स्थापित हो गया। प्रान्त की मालगुज़ारी वसूल करना कम्पनी का कार्य था और शासन-प्रबन्ध का उत्तरदायित्व नवाब पर था। यह दोहरे शासन की प्रणाली बहुत अधिक हास्यास्पद थी। शीघ्र ही इसका भयंकरतम परिणाम बंगालियों को १७६९ के संसार-प्रसिद्ध अकाल के रूप में उठाना पड़ा। १७६९ के इस अकाल के समान प्रलयकारी अकाल संसार के इतिहास में कभी कहीं और भी पड़ा है, इसमें हमें पूरा सन्देह है। इस अकाल के वर्णन में एक लम्बा-चौड़ा ग्रन्थ लिखा जा सकता है। इस अकाल में एक करोड़ से ऊपर मौतें हुईं। उन दिनों गांवों और शहरों की सड़कें प्रति दिन लाशों से भर जाती थीं। यह अकाल प्रलय-काल के समान भयंकर था। इस अकाल में बङ्गाल के सैकड़ों गाँव बिलकुल उजड़ गये। बङ्गाल की ३० प्रतिशत जन-संख्या मृत्यु का ग्रास बन गई। प्रति १६ मनुष्यों में ५ मनुष्य मरे। सड़कें, मकान, खेत, सभी

स्थानों पर मनुष्यों की लाशें ही लाशें नज़र आती थीं। इतना भयंकर अकाल पड़ने पर भी कम्पनी ने मालगुज़ारी की एक पाई भी माफ़ नहीं की। कम्पनी के कर्मचारियों का कथन था कि इस अकाल का ज़िम्मेदार नवाब है, हम नहीं। शासन का कार्य उसी के हाथ में है, हम तो केवल मालगुज़ारी वसूल करते हैं। अकाल की भयंकरता को देखकर कम्पनी के बहुत से नरपिशाच कार्यकर्ता भी सहम गये। अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए कम्पनी ने केवल ४ हज़ार पाउंड ही व्यय किये। यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि उस प्रलयकारी साल में कम्पनी की वार्षिक आय पिछले वर्षों की अपेक्षा भी बढ़ गई!

इस अकाल का परिणाम कम्पनी के लिए और भी अधिक लाभदायक हुआ, क्योंकि तब से वह बङ्गाल की सम्पूर्ण रूप से मालिकिन बन गई। शासन का कार्य भी कम्पनी के हाथ में चला गया। इस परिवर्तन के बाद तो भारतवर्ष और अकालों में गहरी दोस्ती होगई। दुष्काल इस देश में बार बार आने लगे। स्थानाभाव से हम यहाँ केवल मुख्य मुख्य अकालों का दिग्दर्शन-मात्र ही करा सकेंगे—

सन् १७८३ में—संयुक्त-प्रान्त में भयंकर अकाल पड़ा। इसका असर पञ्जाब तक व्याप्त था।

,, १७८८ में—मद्रास में अकाल पड़ा।

,, १८०३ में—गुजरात और महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा। इस वर्ष वेल्ज़ली महोदय मराठों से लड़ाई कर रहे थे। इस अकाल में पहली बार कम्पनी की सरकार ने भूमि-कर में कमी की।

,, १८०७ में—चार वर्ष बाद ही गुजरात और महाराष्ट्र में दुबारा अकाल पड़ा।

,, १८३७ में—सम्पूर्ण भारत में भयंकर अकाल पड़ा। भारतवर्ष के इतिहास में यह पहला अकाल है जो सम्पूर्ण देश में व्याप्त था। विशेष कर मद्रास प्रान्त में इस अकाल से बहुत क्षति हुई। कुल मिलाकर ८ लाख भारतीय इस अकाल की भेंट हुए।

सन् १८५४ में—पुनः सम्पूर्ण भारत में अकाल पड़ा। १८३७ और १८५४ के बीच में भी अनेक छोटे-मोटे अकाल पड़े थे। इस १८५४ के अकाल को रोकने के लिए कम्पनी के कर्मचारियों ने सचमुच प्रयत्न किया। इतना प्रयत्न उसने इस अकाल से पूर्व कभी न किया था। परन्तु अकाल रुक न सका। हाँ, इसकी भयङ्करता कुछ कम अवश्य हो गई।

सन् १८५४ के ३ वर्ष बाद ही भारत का शासन कम्पनी के हाथ से निकल कर सीधा इँगलेंड की सरकार के हाथ में चला गया। अतः इस अकाल को कम्पनी-काल का अन्तिम अकाल समझना चाहिए। कम्पनी के शासन में मुग़ल-काल की अपेक्षा बहुत अधिक अकाल पड़े। इन अकालों की एक विशेषता यह थी कि इनका क्षेत्र बहुत विस्तृत होता था। कुछ अकाल तो सम्पूर्ण भारतव्यापी ही थे, अन्य अकाल भी कम से कम दो प्रान्तों में अवश्य व्याप्त होते थे। सबसे अधिक खेदजनक बात यह है कि कम्पनी के शासक भारतवर्ष का शासन-सूत्र अपने हाथ में लेकर भी अपने उत्तरदायित्व से पूरी तरह पराङ्मुख रहे। उन्हें कम्पनी की वार्षिक आय बढ़ाने की ही चिन्ता रही। गवर्नर-जनरलों में केवल लार्ड कार्नवालिस ने ही भारतीय जनता की आर्थिक दशा सुधारने के लिए कुछ कार्य किया। यह कार्य स्थिर-लगान-विधि के रूप में था।

सन् १८५७ के स्वातन्त्र्य-युद्ध—जिसे सभी ऐतिहासिक 'ग़दर' कहा करते हैं—के बाद भारत का शासन सम्राज्ञी विक्टोरिया के हाथ में आगया। भारतवर्ष सम्राज्ञी के हाथ में क्या गया, मानो दुष्काल बाक़ी संसार से दीर्घावकाश लेकर इस देश में आकर बस गया। इस काल में बहुत अधिक अकाल पड़े। इन अकालों की भयङ्करता भी बहुत बढ़ गई।

सन् १८५८ में—सम्राज्ञी के शासन-काल का प्रथम वर्ष ही अपशकुन से प्रारम्भ हुआ। इस वर्ष सम्पूर्ण भारत में अकाल पड़ा। परन्तु यह अकाल बहुत अधिक भयङ्कर न था। शासकों का कहना है कि ग़दर के कारण उत्पन्न अव्यवस्था ही इस अकाल के लिए उत्तरदायी है।

,, १८६० में—संयुक्त-प्रान्त में भयङ्कर अकाल पड़ा। इस अकाल में ५ लाख मौतें हुईं।

,, १८६४ में—उड़ीसा में हृदयद्रावक अकाल पड़ा। इस छोटे से प्रान्त में १३ लाख आदमी इस अकाल की भेंट चढ़े।

,, १८६५ में—अगले वर्ष ही बङ्गाल और बिहार में अकाल पड़ा। ५ लाख मौतें हुईं।

,, १८७१ में—बङ्गाल और राजपूताना में अकाल पड़ा। इससे १० लाख मौतें हुईं।

,, १८७३ में—तीसरी बार फिर अकेले बङ्गाल मे अकाल पड़ा। इसमें ३ लाख बङ्गाली अकाल की भेंट चढ़े।

,, १८७६ में—बम्बई-प्रान्त में भयङ्कर अकाल पड़ा। ६ लाख मौतें हुईं।

,, १८७७ में—मद्रास और बम्बई में भयङ्कर अकाल पड़ा। इस अकाल का प्रभाव मैसूर, हैदराबाद और अवध तक व्याप्त था। यह अकाल भारतवर्ष के सबसे बड़े अकालों में से एक है। इसमें ६१ लाख भारतवासी भूख के कारण पितृलोक को प्रयाण कर गये। इन ६१ लाख में से ४० लाख मौतें अकेले मद्रास में, ११ लाख बम्बई में और १० लाख अवध में हुईं। अकाल-पीड़ितों के लिए सहायता का कार्य किया तो गया, परन्तु बहुत देर में। सहायता-कार्य की स्वीकृति प्राप्त करने के लिए पत्र-व्यवहार में ही बड़ा समय निकल गया। इस अकाल की भयङ्करता से सरकार के कान भी खड़े हुए। अगले ही वर्ष अकाल के कारणों की जांच-पड़ताल करने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया। इस कमीशन ने तक़ावी देने की प्रथा प्रचलित करने तथा नहरों की संख्या बढ़ाने की सिफ़ारिश की।

सन् १८७८ मे—अगले ही वर्ष फिर मद्रास, युक्तप्रान्त और बीकानेर में अकाल पड़ा।

,, १८८८ में—पुनः एक सम्पूर्ण भारतव्यापी अकाल पड़ा। यह अकाल १८७७ के अकाल के समान ही भयङ्कर था। इस प्रलयकारी अकाल का आंखों-देखा वर्णन सुनानेवाले व्यक्ति आज भी पर्याप्त संख्या में जीवित हैं। इस अकाल मे लगभग ८० लाख भारतवासी अकाल की बलि बने।

,, १८९२ मे—एक और भारतव्यापी अकाल पड़ा। परन्तु यह उतना भयङ्कर न था।

,, १८९७ मे—पुनः एक भयङ्कर अकाल पड़ा। इस अकाल का प्रभाव ६ करोड़ मनुष्यों तक व्याप्त था। इस अकाल में ३२ लाख मौतें हुईं।

इस प्रकार १९ वीं सदी समाप्त होती है। १९ वीं सदी के उत्तरार्ध के ये अकाल बहुत ही भयङ्कर थे। इनका वर्णन पढ़ते ही दिल कांप उठता है। १९ वीं सदी के सम्पूर्ण अकालों का विवरण इस प्रकार है—

	अकालों की संख्या.		मृत्यु-संख्या.
१८०१ से १८२५—	५	—	६ लाख.
१८२६ से १८५०—	२	—	५ लाख.
१८५० से १८७५—	६	—	५० लाख.
१८७६ से १९००—	१८	—	२६० लाख.
	३१		३२४ लाख.

सन् १८७७ से १९०१ तक औसत प्रति मिनट २ भारतवासियों की मृत्यु भूख के कारण होती रही! सम्पूर्ण

उन्नीसवीं सदी के सम्पूर्ण युद्धों में कुल मिला कर लगभग ५० लाख मौतें हुईं, परन्तु इस अभागे देश में १९ वीं सदी के अकेले अन्तिम चतुर्थांश भाग—अर्थात् १८७६ से १९०० तक—में ही अकालों के कारण जो मौतें हुईं उनकी संख्या क़रीब २६० लाख है! स्मरण रखना चाहिए कि संसार के इतिहास में उन्नीसवीं सदी युद्धों की शताब्दी है। वीरवर नैपोलियन तथा नैल्सन के सम्पूर्ण युद्ध इसी शताब्दी में हुए।

उन्नीसवीं सदी के ये अकाल बहुत ही भयङ्कर होते थे। ऊपर मृत्युओं की जो संख्या हमने दी है, वे मौतें बीमारी के कारण नहीं, केवल 'भूख' के कारण हुईं। पिछले १०० वर्षों में इन करोड़ों व्यक्तियों ने भूख से तड़प तड़प कर प्राण दिये। जिन प्रान्तों में ये अकाल पड़ते थे उनमें अकाल-पीड़ितों की लाशें जलाना या गाड़ना भी कठिन हो जाता था। इन भयङ्कर दृश्यों का वर्णन हम विस्तार-भय से नहीं कर सकते। परन्तु सन् १८६५ में बङ्गाल से एक अँगरेज़ ने अपने इँग्लेंड स्थित मित्र के नाम जो चिट्ठी लिखी थी उसका कुछ अंश यहाँ हम उद्धृत करते हैं। १८६५ में बङ्गाल में अकाल पड़ा था। उस समय वह अँगरेज़ कलकत्ते के बाहर एक क़िले में रहता था। यह पत्र उसने वहीं से अपने मित्र के पास भेजा था—

प्रिय मित्र,

आज-कल सर्दियों के दुखदायी दिन हैं। यह दुःख यहाँ की असानुपीय भयङ्कर परिस्थितियों के कारण और भी असह्य हो गया है। यहाँ एक प्रकार से मृत्यु का राज्य है। चारों ओर के प्रान्त में भयङ्कर दुर्भिक्ष है। हम लोग एक क़िले में रहते हैं। चारों ओर चलती-फिरती ठठरियों के समान अकाल-पीड़ित नर-कंकाल घूमते दिखाई देते हैं। उनकी ओर देखने से भी भय प्रतीत होता है। प्रति सायङ्काल हम लोग पिस्तौल भर कर सैर के लिए क़िले से बाहर निकलते हैं। उस समय सड़क पर भूख के कारण हाल ही में मरे हुए लोगों की लाशें मिलना साधारण बात है। इस दशा में हम अपने को भी सुरक्षित नहीं समझते।......

"कल सायंकाल सैर के समय हमें एक कल्पनातीत भयङ्कर दृश्य देखने को मिला। हमारे क़िले से एक अभागा टट्टू बंधन तुड़ा कर बाहर भाग गया। वह मानों जान बूझ कर मौत के मुख में गिरा। उसके पीछे सैकड़ों अकाल-पीड़ित ठठरियाँ दौड़ीं। वह उनसे चारों ओर से घिर गया। अपनी दुलत्तियों से उसने कुछ लोगों को घायल भी किया। जो लोग घायल हुए थे उनका ख़ून भी दूसरे अकाल-पीड़ित चाट गये! वह टट्टू उन अकाल-पीड़ितों से अपना जीवन बचा न सका। थोड़ी ही देर में भूखे भेड़िये के समान उन लोगों ने उस अभागे जानवर को काट गिराया। उसका मांस पकाने की आवश्यकता भी नहीं समझी गई। वे लोग उसी समय उसका कच्चा मांस ही खा गये। देखते ही देखते उस लम्बे-चौड़े जानवर का कहीं नामोनिशान न रहा।" इत्यादि।

यह दृश्य कितना हृदयद्रावक है। पिछली सदी में इस बदनसीब देश को एक बार नहीं, ३१ बार ऐसे दृश्य देखने पड़े हैं। पर-दुःख-कातर मि० डिग्बी (Mr Digbi,) इन भयङ्कर अकालों का वर्णन करते हुए अपनी पुस्तक में मानों रो उठे हैं। उन्होंने अपनी "फलता फूलता अँगरेज़ी भारत" व्यङ्ग्यनामात्मक पुस्तक में इन अकालों की भेंट हुए निस्सहाय भारतीयों की स्मृति में कुछ बहुत ही करुण पृष्ठ लिखे हैं। अन्त में उन्होंने भारत की आत्मा की ओर से एक कविता दी है, जिसकी पहली तीन पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—

If blood be the price of England's rule,
If blood be the price of England's rule
Lord God! we have paid in full!

अर्थात्—"यदि इँगलेंड के शासन का मूल्य अपने ख़ून से भी चुकाया जा सकता हो तो भी, ऐ पर्वरदिगार परमेश्वर! हमने यह मूल्य पूरी तरह से चुका दिया है!"

१९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में जो अकाल पड़े, उनके निवारण के लिए सरकार ने कम्पनी की अपेक्षा बहुत अधिक यत्न किया, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु 'मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की', क्योंकि अकालों के वास्तविक कारण की ओर सरकार ने ध्यान नहीं दिया। अतः अकालों की संख्या और भयङ्करता क्रमशः बढ़ती ही गई। इस समय तक रेलगाड़ी का प्रचार हो चुका था। अतः ये अकाल प्रायः सम्पूर्ण देश-व्यापी होते थे।

ऊपर हमने भिन्न भिन्न तिथियों के अकालों के साथ भिन्न भिन्न प्रान्तों के नाम दिये हैं, इसका अभिप्राय यही है कि सम्पूर्ण देश में साधारण अकाल होते हुए इन प्रान्तों में उसका रूप विशेष भयङ्कर होता था। किसी विशेष प्रान्त में अकाल पड़ने का अभिप्राय यह नहीं होता था कि उस प्रान्त में अनाज का भाव अन्य प्रान्तों की अपेक्षा बहुत महँगा है, इसका अभिप्राय यही होता था कि उस प्रान्त में उस वर्ष फ़सल अच्छी न होने के कारण वहाँ के ग़रीब लोगों के पास इतना धन नहीं रहा जिससे कि वे लोग अनाज ख़रीद कर अपनी भूख का निवारण कर सकें।

इन अकालों की करुण-कथायें समय समय पर दूसरे देशों में भी पहुँचती रहीं। सरकार ने अकाल-पीड़ित प्रान्तों के लिए एक विशेष फ़ण्ड खोला। अन्य देशों—विशेष कर अमेरिका और फ़्रांस—के धनी पुरुषों ने इस फ़ण्ड में अच्छी मदद दी। आज-कल १०, १२ करोड़ रुपया अन्य देशों से प्राप्त दान के रूप में भारत-सरकार के पास इस फ़ण्ड के लिए जमा पड़ा है। इसी सम्बन्ध में नहरें खुदवाना, तक़ावी देना आदि का प्रबन्ध भी सरकार की ओर से होता रहा है। सरकार ने अकाल-पीड़ितों की सहायता के लिए जो कार्य किये हैं उनका विवरण तथा उनकी आलोचना हम स्थानाभाव के कारण नहीं दे सकते।

इस सभ्यता और विज्ञान की सदी में भारत में पड़नेवाले अकाल भी सभ्य और वैज्ञानिक बन गये हैं। अब उनका रूप ही बदल गया है। इस सदी में सन् १९०६, १९१८, १९२१ और १९२५ में क्रमशः सम्पूर्ण भारत, गढ़वाल, सम्पूर्ण भारत और मालाबार में अकाल पड़े। बाढ़-पीड़ित प्रान्तों का विवरण इनमें सम्मिलित नहीं है। परन्तु ये अकाल बहुत भयङ्कर न थे। इनमें मृत्यु-संख्या हज़ारों तक भी नहीं पहुँची। इसका कारण यही है कि अब अकाल भी वैज्ञानिक बन गये है! अकालों ने बीमारी का रूप धारण कर लिया है। भारतवर्ष की दयनीय दरिद्रता का जो नग्न रूप १९ वीं सदी में 'अकाल' था, वह अब २० बीसवीं सदी में 'साङ्क्रामिक बीमारी' के रूप में परिवर्तित होगया है। १९ वीं सदी के अकालों की तरह से अब हैज़ा, प्लेग, मलेरिया और इन्फ़्लूएन्ज़ा पड़ने लगे हैं। इस सदी के इन २७ सालों में इन बीमारियों के कारण हुई मौतों का जोड़ १९ वीं सदी के सम्पूर्ण अकालों की मृत्युओं के जोड़ से कहीं अधिक बढ़ गया है। प्रतिवर्ष लाखों भारतीय इन साङ्क्रामिक बीमारियों की भेंट हो जाते हैं। अकेले सन् १९१८ में ही केवल इन्फ़्लूएन्ज़ा के कारण इस देश में ८० लाख से ऊपर मौतें हुई थीं।

भारतीय अर्थशास्त्र के विदेशी पण्डितों की सम्मति में इस देश में अकाल पड़ने के मुख्यतया चार कारण हैं—

१—**वर्षा की कमी और बाढ़**—भारतवर्ष की कृषि मुख्यतया वर्षा पर निर्भर है। बहुत साल ऐसे गुज़रते हैं जब वर्षा पर्याप्त नहीं होती अथवा बेमौसमी वर्षा हो जाती है। इस कारण फ़सल ठीक नहीं हो पाती। इसी प्रकार बाढ़ों द्वारा भी फ़सल को बड़ा नुक़सान पहुँचता है। ये बाढ़ें हर दूसरे चौथे साल भारत के किसी न किसी प्रान्त में अवश्य प्रलय मचाये रहती हैं। सन् १९२४ में तो मानों सम्पूर्ण भारत में ही बाढ़ आ गई थी। कावेरी, सिन्ध, गगा, यमुना, इन सबमें भयंकर बाढ़ आई थी। इस वर्ष भी गुजरात अभी तक बाढ़-पीड़ित है।

२—**खेत के कीड़े**—भारत कृषि-प्रधान देश है। परन्तु यहाँ के निवासी अभी तक कृषि को वैज्ञानिक ढङ्ग से करना नहीं सीखे। उनके साधन और उपाय सभी पुराने ढङ्ग के हैं। फ़सल का नाश करनेवाले कीड़ों से कृषि का बचाव करने का कोई उत्तम उपाय उन्हें अभी तक ज्ञात नहीं है। अतः भारतवर्ष की फ़सल बहुत बार कीड़ों द्वारा ही मारी जाती है।

३—**ओले**—किसानों के लिए पकी हुई तैयार फ़सल पर ओले की वर्षा हो जाने से बढ़कर हानिकर और कोई बात नहीं है। ओलों-द्वारा उनकी सम्पूर्ण फ़सल झड़ जाती है, या सीली हो जाती है। परिणाम दोनों अवस्थाओं में लगभग एक समान ही होता है। दुर्भाग्य-वश इस देश मे फ़सल के दिनों में ओले पड़ जाना भी असाधारण बात नहीं है।

४—**भारतवर्ष का इतिहास**—दुष्कालों का एक मुख्य कारण इस देश का विविध घटना-पूर्ण इतिहास भी है। इस लम्बे-चौड़े भारतीय साम्राज्य

में पिछले एक हज़ार वर्षों से पूर्ण शान्तिमय शासन के काल निरन्तर रूप में कम उपस्थित हुए हैं। कुछ शताब्दियों बाद कहीं न कहीं युद्ध छिड़ जाना, विद्रोह हो जाना, साधारण बात रही है। इन युद्धों के कारण फ़सल को प्रायः नुक़सान पहुँचता रहा है। युद्धों की इस सांघातिकता को देखकर ही भारत के प्राचीन स्मृतिकारों ने युद्ध में किसानों की हत्या तथा फ़सल को नष्ट करना नियम-विरुद्ध कर दिया था।

इसी प्रकार अन्य भी कतिपय छोटे-मोटे कारणों का निर्देश विदेशों के भारतीय अर्थशास्त्रज्ञ करते हैं। परन्तु वास्तव में ये कारण असली कारण नहीं हैं। उपर्युक्त चारों कारण फ़सल ख़राब होने के सम्बन्ध में ही है। हम स्वीकार करते हैं कि इनमें से पहले तीन कारणों-द्वारा भारतवर्ष की फ़सल कई बार अवश्य ख़राब या नष्ट हो जाती है। परन्तु ये कारण अपरिहार्य नहीं। देश की सरकार आसानी से इनका प्रतीकार कर सकती है। फिर, एक बार किसी स्थान पर फ़सल के थोड़ा सा ख़राब हो जाने के कारण इतना भयंकर अकाल क्यों फैल जाता है? चौथा कारण तो बिलकुल उथला है। १६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष में अँगरेज़ी राज्य पूरी तरह स्थिर हो चुका था परन्तु सबसे अधिक अकाल उन्हीं दिनों में ही पड़े हैं। अतः ये चारों कारण वास्तविक कारण नहीं हैं।

भारतवर्ष के अपने अर्थशास्त्रज्ञों की सम्मति में इन अकालों का कारण कुछ और है। स्वर्गीय रमेशचन्द्र दत्त की सम्मति में इन अकालों का वास्तविक कारण भारतवर्ष के किसानों से वसूल किये जानेवाले भूमि-कर का अत्यधिक भारी होना है। उन्होंने अपने 'इकानामिक हिस्ट्री आव् इंडिया' नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ में बड़े विस्तार के साथ इस प्रश्न पर विचार किया है। उनका कथन है कि वास्तव में मुग़ल-काल की उपेक्षा आज-कल भूमिकर की दर बहुत अधिक है। उस पर भी मुग़ल-काल में किसानों पर जो भूमि-कर लगाया जाता था उसे वसूल करते हुए बड़ी नर्मी से काम लिया जाता था। यदि किसी किसान की फ़सल अच्छी न होती थी तो उस पर लगाये लगान का बहुत सा भाग माफ़ कर दिया जाता था। यही कारण है कि उन दिनों सरकारी ख़ज़ाने में एस्टिमेट के अनुसार भूमि-कर की पूर्ण मात्रा नहीं पहुँच पाती थी, परन्तु आज-कल भूमि-कर पूरी कड़ाई से वसूल किया जाता है। इसके अतिरिक्त आज-कल वंशपरम्परा में चले आने के कारण भूमि बहुत छोटे छोटे भागों में विभक्त हो गई है। उसकी उपजाऊ शक्ति भी पहले की अपेक्षा निरन्तर कम होती चली जा रही है। ग्रामीण पञ्चायतों के नष्ट हो जाने से ग्रामीण किसान सर्वथा शक्ति-हीन हो गये हैं, उनकी संगठित शक्ति का नाश होगया है। ज़मींदार और सरकारी कर्मचारी उन्हें बेतरह दबाते हैं। अदालतों का ख़र्च अलग बढ़ गया है। ग़रीब किसानों में मुक़द्दमे लड़ने का मर्ज़ तपेदिक की तरह बढ़ता चला जा रहा है। दूसरी ओर ग्रामीण शिल्प भी नष्ट कर दिये गये हैं। विदेशी व्यवसाय की टक्कर में ग्रामीण व्यवसाय बैठते चले जाते हैं। अतः बेकारी बढ़ रही है। इस पर तुर्रा यह है कि इस दरिद्रता की हालत में भी विलासिता के विदेशी माल व्यापारी ग्रामों में बहुत महँगा बेच कर उनका बचा-खुचा धन भी लूट लाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि किसान बहुत ग़रीब हो गये हैं। सुकाल में भी उन्हें पेट भर भोजन नसीब नहीं होता। दुर्भाग्य से जब फ़सल ख़राब हो जाती है तब तो उनके कष्टों का कहना ही क्या। सब कुछ बेंचकर वे मालगुज़ारी पटाते हैं और तब धन न होने के कारण कुत्ते-बिल्लियों की तरह भूख से मरने को लाचार होते हैं।

मिस्टर डिग्बी और स्वर्गीय दादा भाई नौरोजी की सम्मति में अकालों का कारण भारतवर्ष में प्रतिवर्ष होनेवाला आर्थिक शोषण है। हम देखते हैं कि प्रतिवर्ष भारतवर्ष की आयात उसके निर्यात की अपेक्षा कम होती है। अर्थात् भारतवर्ष का व्यापार उसके अनुकूल (favourable balance) होता है। तालिकाओं के अनुसार प्रायः प्रतिवर्ष कम से कम ३५ या ४० करोड़ रुपयों की क़ीमत का सोना भारतवर्ष में अवश्य आ जाना चाहिए। परन्तु इस देश के गौराङ्ग महाप्रभुओं की कृपा से ऐसा नहीं होने पाता। इस धन के बड़े भाग का स्टेशनरी सामान या इसी क़िस्म का कुछ और सामान इँगलेंड से ख़रीद कर भारत-सरकार के व्यवहार के लिए यहाँ भेज

दिया जाता है। कुछ धन इँग्लेंड में बँटने-वाली तनख़्वाहों और पेंशनों में व्यय हो जाता है। परिणाम यह होता है कि निर्यात अधिक होते हुए भी भारतवर्ष धनी नहीं हो पाता, भारतीयों की क्रय-शक्ति बढ़ने नहीं पाती। इसी का दूसरा नाम ग़रीबी है। आर्थिक शोषण के कारण उत्पन्न हुई यह ग़रीबी ही अकालों का मुख्य कारण है।

वास्तव में उपर्युक्त दोनों कारणों का परिणाम एक ही है, वह है भारतवर्ष की बढ़ती हुई ग़रीबी। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष के अकालों का मुख्य कारण एक है, अनेक नहीं। भारतवर्ष यदि ग़रीब न होता तो किसी एक बार तो क्या, निरन्तर बीसियों बार फ़सल ख़राब हो जाने पर भी यहाँ अकाल कभी न पड़ सकता। यदि फ़सल का घटिया होना या पर्याप्त न होना ही अकालों का कारण है तो इँग्लेंड में अकाल क्यों नहीं पड़ते? फ़्रांस और स्विटज़रलेंड के निवासी अकालों की भेंट क्यों नहीं चढ़ते? इँग्लेंड के लिए वर्ष भर में जितने अनाज की आवश्यकता होती है उसका अधिक से अधिक ¼ भाग ही वहाँ उत्पन्न होता है। इस पर भी यह कभी नहीं सुना जाता कि अमुक वर्ष इतने अँगरेज़ भूख से मर गये। कारण यही है कि वहाँ के निवासियों की जेबें ख़ाली नहीं हैं। उनमें इतना सामर्थ्य है कि वे अपने खाद्य पदार्थों का बाक़ी ¾ भाग मनचाहे दामों पर अन्य देशों से मँगवा सकते हैं। उनका व्यापार-व्यवसाय इतना उन्नत है कि उनका धन कम होने ही नहीं पाता। यही हाल फ़्रांस और स्विटज़रलेंड इत्यादि का है। रूस, आस्ट्रेलिया, अमेरिका आदि उपजाऊ देशों से प्रतिवर्ष लाखों टन अनाज योरप पहुँचता है। फिर भारतवर्ष तो स्वयं भी एक अच्छा उपजाऊ देश है। इस देश को वर्ष भर में जितने गेहूँ की ज़रूरत होती है, साधारणतया उससे कुछ ही कम गेहूँ यहाँ ही पैदा हो जाता है। इस कमी के एवज़ में चावल अपनी स्थानीय आवश्यकताओं से भी अधिक उत्पन्न होता है। परन्तु फिर भी इस अभागे देश को भयंकर से भयंकर दुष्कालों का सामना करना पड़ता है।

भारतवर्ष की ग़रीबी का मुख्य कारण उसकी राजनैतिक पराधीनता है। यदि भारत स्वाधीन होता तो हमारा विश्वास है कि वह धन-धान्य की दृष्टि से अमेरिका का मुक़ाबला कर सकता था। परन्तु आज भारतवर्ष की कृषि बहुत अवनत हो चुकी है, किसान लोग ग़रीब तथा अशिक्षित होने के कारण कृषि के नये वैज्ञानिक उपायों का लाभ भी नहीं उठा सकते। सरकारी नौकरियों का सर्वोत्तम भाग विदेशियों के हाथ में ही है। इस देश का व्यापार नष्ट कर दिया गया है। कम्पनी के कर्मचारियों ने भारतवर्ष के वस्त्र-व्यवसाय को कितनी पाशविकता से कुचला है, इसका वर्णन करना असंगत होगा। अभिप्राय यह है कि अब राष्ट्र-द्वारा संरक्षण पाये बिना भारतवर्ष का कोई भी व्यवसाय पुनर्जीवित नहीं हो सकता। इस पर भी देश की जन-संख्या बढ़ रही है। रेलगाड़ी के प्रचार के कारण अब सम्पूर्ण देश की क़ीमतों में कोई विशेष अन्तर नहीं आने पाता। अतः सभी प्रान्तों का लगभग एक ही हाल हो रहा है। इसका परिणाम यह हुआ है कि खाद्य पदार्थों की जो कमी पहले कभी कभी किसी एक प्रान्त को उठानी पड़ती थी अब सम्पूर्ण भारत ही उसका शिकार हो गया है। कुछ न कुछ रूखा-सूखा प्राप्त हो जाने के कारण लोग भूख से तो नहीं मरते, परन्तु उनका शारीरिक स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन अवनत होता चला जा रहा है। भारतवासियों की रोग-प्रतिरोधक शक्ति नष्ट होती चली जा रही है। शरीर का यथेष्ट पोषण न होने से गाँवों के निवासी बचपन के बाद ही बूढ़े होने लगते हैं। शहरों में तपेदिक़ बेतरह फैल रहा है। लोगों के क़द छोटे होते चले जाते हैं, आय की औसत कम हो रही है। किसानों की शक्ति तथा स्वास्थ्य दोनों का ह्रास हो गया है। यह सब भारतवर्ष की बढ़ती हुई ग़रीबी का परिणाम है।

गत महायुद्ध के दिनों में इस देश के आन्तरिक व्यापार को पुनरुज्जीवित करने का एक अवसर हमें प्राप्त हुआ था। परन्तु उसका यथेष्ट उपयोग नहीं उठाया जा सका। यहाँ तक कि उन दिनों इस देश से जितना निर्यात हुआ था, उसके एवज़ में भी बहुत कम सोना यहाँ पहुँच सका। उन दिनों इस ग़रीब देश का १ अरब रुपया युद्ध की सहायता के रूप में इँग्लेंड को दान दे दिया गया।

फ़सल के साथ अकालों का सीधा सम्बन्ध है। भारतवर्ष में सदैव उसी वर्ष अकाल पड़ा है जिस वर्ष कि किसी दैवी कारण से किसी प्रान्त अथवा सम्पूर्ण देश मे फ़सल मारी जाती थी अथवा ख़राब हो जाती थी। फ़सल ख़राब होने के मुख्य कारण, वर्षा की कमी या अधिकता, खेत के कीड़े अथवा ओले पड़ जाना हैं। वर्षा की कमी से फ़सल फूलने-फलने नहीं पाती और अधिकता से बाढ़ आ जाती है। इन दोनों विपत्तियों से बचाव करने का एक ही उपाय है। यह उपाय है नहरें खुदवाना, और नदियों को गहरी करना। नदियों में से बड़ी मात्रा मे नहरें निकालने के लिए नदियों को गहरा करना भी आवश्यक होता है। साथ ही नदी का पानी नहरों में बँट जाने के कारण बाढ़ का भय स्वयं ही कम हो जाता है। इस अवस्था में यदि बाढ़ें आती भी हैं, तो बहुत कम। सौभाग्य से इस सुजला भारत-भूमि में नदियों की कमी नहीं है। भारतवर्ष के थोड़े से मैदान-भाग (राजपूताना) को छोड़कर और सभी समतल मैदानों में यथेष्ट नदियाँ विद्यमान हैं। इन नदियों का जल सिंचाई के लिए है भी अतीव उपयुक्त। इंजीनियरों का कथन है कि बड़ी आसानी से पञ्जाब की नदियों का उपयोग लेकर सम्पूर्ण राजपूताने का उत्तर-पश्चिमीय भाग शस्य-श्यामल बनाया जा सकता है। कुछ अधिक यत्न करने से शेष भाग मे भी पानी पहुँचाया जा सकता है। अन्य प्रान्तों में तो इस सम्बन्ध में कोई समस्या ही नहीं है। हाल ही में बीकानेर-प्रान्त में जो नई नहर खोली गई है, उसके द्वारा उस मरुभूमि की लाखों एकड़ भूमि शीघ्र ही उपजाऊ बन जायगी।

एक और बात है। भारतवर्ष के राजनैतिक नेताओं की सदैव से यह मांग रही है कि इस देश में रेलगाड़ी के प्रचार की अपेक्षा नहरों का प्रभूत-मात्रा में खोदना अधिक मितव्ययिता-पूर्ण और लाभकर है। यह बात भारतीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से सर्वथा सत्य है। रेलवे का अब और अधिक विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है। यदि इस देश में अब प्रभूत-मात्रा में नई नहरें खोदी जायँ तो इनसे जहाँ कृषि को लाभ होगा, वहाँ आवागमन (transportation) की समस्या भी हल हो जायगी। भारतवर्ष की नदियां आवश्यकतानुसार इतनी गहरी कर दी जायँ कि उनमें जहाज़ों द्वारा आवागमन भले प्रकार हो सके, नई नहरें इतनी चौड़ी और गहरी बनाई जायँ कि उनमें स्टीमर चल सकें। इस समय तक बङ्गाल और आसाम में रेलों की अपेक्षा नदियों-द्वारा आवागमन करना अधिक सस्ता सिद्ध हुआ है। साथ ही इन नहरों के प्रपातों द्वारा आसानी के साथ इतनी बिजली प्राप्त की जा सकेगी जिससे कि सम्पूर्ण देश की बिजली की मांग बख़ूबी पूरी की जा सकेगी। इस प्रकार सभी दृष्टियों से ये नहरें रेलवे की अपेक्षा अधिक उपयुक्त सिद्ध होंगी। परन्तु सरकार भारत-वासियों की इस माग को पूरी नहीं करती। परन्तु हमारा तो यह दृढ़ विश्वास है कि इस देश की कृषि उन्नत होने से स्वयं इँग्लेड को भी लाभ ही है। एक तो उसे अपने कच्चे माल की मांग पूरी करने के लिए दूसरे देशों के सामने हाथ नही पसारना पड़ेगा; इस देश-द्वारा ही वह यथेष्ट रूप मे रुई, अनाज आदि प्राप्त कर सकेगा। दूसरी ओर यदि भारतवासियों को किसी भी उपाय से सोना या चांदी नहीं प्राप्त होगी तो वे क्या देकर इँग्लेड का पक्का माल ख़रीदेंगे? यदि उनमें कुछ भी ख़रीदने को क्रय-शक्ति ही न हुई तो वे क्या देकर इँग्लेड का पक्का माल ख़रीदेंगे?

कृषि को उन्नत करने तथा कीड़ों से बचाने के लिए किसानों को शिक्षित करने की आवश्यकता है। उन्हें कृषि के नये उपाय व्यावहारिक रूप में बताने तथा अच्छे बीजों को देने की आवश्यकता है। हमें हर्ष है कि स्वयं सरकार ने भी अब इस ओर थोड़ा बहुत ध्यान देना शुरू किया है। महायुद्ध के बाद अमेरिका से व्यापारिक संघर्ष में रगड़ खाकर अँगरेज़ राजनीतिज्ञ अब इस बात को समझ गये हैं कि भारतवर्ष मे कृषि को उन्नत करने से स्वयं इँग्लेंड को भी लाभ ही है। इसी कारण गत वर्ष कृषि पर शाही कमीशन की नियुक्ति की गई थी।

हमारा विश्वास है कि भारतवर्ष की केवल कृषि उन्नत करने से इस देश के अकालों की समस्या हल न की जा सकेगी। भारतवर्ष की आबादी इस समय तक इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि अब यत्न

करने पर भी सम्पूर्ण भारतवासी कृषि को ही अपनी आजीविका का साधन नहीं बना सकते। इस समय ७० प्रतिशत भारतीय कृषि पर निर्वाह करते हैं। परन्तु इन ७० प्रतिशत में से भी एक बहुत बड़ी संख्या ऐसे लोगों की है जो आजीविका का कोई अन्य साधन उपस्थित न होने के कारण ही अपनी वंशपरम्परा से आनेवाली ७ या ८ बीघा भूमि को ही जोत कर अपना निर्वाह करने का यत्न कर रहे है। ये लोग थोड़ी बहुत मज़दूरी भी कर लेते हैं, कुछ न कुछ ख़रीद-फ़रोख़्त भी कर लेते हैं। हमारे समीप ही 'कांगड़ी' नाम का एक छोटा सा गाँव है। इस गांव के अन्तर्गत कृषि-योग्य जितनी भूमि है, उसे अमेरिका के २५ व्यक्ति आराम के साथ जोत और बो सकते है। परन्तु इस गांव के सम्पूर्ण निवासी अर्थात् ४७० व्यक्ति, इस ज़मीन में व्यर्थ ही अपना श्रम व्यय करते रहते हैं। इस प्रकार लगभग ४४५ व्यक्तियों—जिनमें बच्चे आदि शामिल हैं—का श्रम यों ही सर्वथा बेकार जा रहा है। यही हाल सम्पूर्ण भारत-वर्ष का है। यदि इन लोगों को आजीविका का कोई और अच्छा साधन प्राप्त हो सके तो इनसे अपने बाप-दादा की ज़मीन आसानी के साथ छुड़वाई जा सकती है।

हमें इस बात का पूर्ण विश्वास है कि अधिक से अधिक भारतवर्ष की ५०/० जन-संख्या का श्रम कृषि के कार्य के लिए पूरी तरह से पर्याप्त है। शेष ५०/० भारतीयों में से अधिकांश लोगों को व्यापार-व्यवसाय का आश्रय लेना चाहिए। परन्तु बिना सरकारी मदद प्राप्त किये यहाँ का व्यवसाय उन्नत भी किस प्रकार हो। इस ग़रीब देश का कोई भी व्यवसाय अब पूर्ण संरक्षण प्राप्त किये बिना पुनर्जीवित नहीं हो सकता।

भारतवर्ष का व्यवसाय तो अब सरकार का पूर्ण सहयोग प्राप्त किये बिना उन्नत हो ही नहीं सकता। परन्तु इस देश के गृह-व्यवसाय की इस समय तक भी रक्षा की जा सकती है। विदेशी व्यवसाय की टक्कर में वह नष्ट तो अवश्य होता चला जा रहा है, परन्तु 'स्थानीय स्वराज्यों' के कार्यकर्ता तथा देश के अग्रगण्य नागरिक यदि इसके लिए कुछ भी यत्न करें तो वे आसानी के साथ ग्रामों के गृह-व्यवसायों को ठीक राह पर लाकर उनकी रक्षा तथा उन्नति कर सकते हैं। इस सम्बन्ध में प्रो० राधाकमल मुकर्जी-द्वारा प्रदर्शित मार्ग देश के लिए सचमुच बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

यदि भारतवर्ष की कृषि और उसका गृह-व्यवसाय ही उपर्युक्त स्वरूप में पुनरुज्जीवित हो उठे तो हमें विश्वास है कि भारतवर्ष में अकालों का पड़ना असम्भव हो जायगा। हमें ज्ञात है कि उपर्युक्त उपायों-द्वारा भारत-वर्ष की आर्थिक दशा उतनी उन्नत न हो सकेगी, जितनी कि भारत के समान भौगोलिक परिस्थितियोंवाले एक स्वतन्त्र देश के लिए सम्भव है, तथापि इस देश की अर्थ-शास्त्रीय आवश्यकताओं की पूर्त्ति इन उपायों-द्वारा अवश्य हो सकेगी। कम से कम दुष्काल और बीमारी का आज-कल के समान उग्ररूप तब दिखाई न देगा। वह अवस्था न केवल भारतवासियों के लिए ही सन्तोषप्रद सिद्ध होगी, किन्तु ब्रिटेन की आर्थिक उन्नति तथा व्यापार-वृद्धि के लिए भी वह लाभकर सिद्ध होगी।

भारत-नारद-सम्मिलन

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

बैठकर भारत ! अँधेरे में अकेले यहाँ,
　　अविरल अश्रु-धार क्यों तुम बहाते हो।
किसलिए मित्र ! इतना हो शरमाते तुम,
　　क्यों न सब हाल तुम हमें बतलाते हो॥
परम गँभीर धीर वीर तुम थे सदैव,
　　फिर क्यों अधीर भाव आज दिखलाते हो।
किस भाँति तुम इस भाँति दीन हीन हुए,
　　ऐसे हो मलीन पहचाने भी न जाते हो॥

(२)

अपने पुराने मित्र नारद को आया देख,
　　भारत ने आदर दिखाया उठ करके।
कुछ काल योंही चुपचाप वह बैठा रहा,
　　अपने विशाल लोचनों में जल भरके॥
कण्ठ भर आया मुख और भी उदास हुआ,
　　फिर वह बोला कुछ धीरज-सा धरके।
पूछते क्या मित्र हो ! हमारा हाल आज हम,
　　जीते भी मरे हैं और जीवित हैं मरके॥

(३)

होगया शिथिल है हमारा अंग अंग हाय,
　　अब हम जीवित हैं क्लेश ही उठाने को।
निज दुख हमसे सहा है नहीं जाता जब,
　　रोने लगते हैं हम मन बहलाने को॥
कैसे समझावें और कैसे रोक रक्खें उन्हें,
　　आतुर सदैव रहते हैं प्राण जाने को।
कैसे ममता हो हमें दुखमय जीवन से,
　　मिलता नहीं है हमें पेट भर खाने को॥

(४)

कैसे हो हमारे मूढ़ पुत्रों की भलाई भला,
　　चिन्ता है न उनको स्वदेश की भलाई की।
देश की बड़ाई का न ध्यान रहता है उन्हें,
　　धुन रहती है बस अपनी बड़ाई की॥
अब एक पाई भी मुहाल रहती है उन्हें,
　　दौलत गमाई बाप-दादों की कमाई की।
घर की लड़ाई का न हाल कुछ पूछो यार,
　　भाई खोदता है जड़ नित्य निज भाई की॥

(५)

रखते न आपस में मेल हैं हमारे सुत,
　　हर-दम वे हैं एक दूसरे से जलते।
जिनसे सदा ही हम आशा रखते हैं बड़ी,
　　वे भी अहो अन्त में निकम्मे हैं निकलते॥
जिन पर हमको भरोसा रहता है बड़ा,
　　वे भी सब काल हमें बार बार छलते।
शासक हैं प्यारे शुभचिन्तक हमारे किन्तु,
　　उनके सँभाले भी न हम हैं सँभलते॥

(६)

निज प्रिय पुत्र भी न देते हैं हमारा साथ,
　　कहो हम जग में भरोसा करें किनका॥
है समाज का न ध्यान देश-दशा का न ज्ञान,
　　आन है न इनको बुरा है हाल इनका॥
कैसे ये हटावेंगे हमारा दुख-भार भला,
　　उठता न आज इनसे है एक तिनका।
भगवान कैसे भला उनका करेंगे कभी,
　　भाई के रुधिर से रँगा है हाथ जिनका॥

(७)

भोग चुके भारत-निवासी हैं विशेष क्लेश,
तो भी देश का वे कभी ध्यान हैं न धरते।
जन्म इस युग में लिया है किन्तु कुछ लोग,
दसवीं सदी में हैं निवास सदा करते॥
पलते हमीं से हैं सदैव पर कुछ लोग,
दम हरदम ही अरेबिया का भरते।
सुत हैं हमारे पर जीते न हमारे लिए,
और न हमारे लिए वे कदापि मरते॥

(८)

घर के कलह का न तार कभी टूटता है,
फिर किस भाँति सुख-शान्ति रहे धाम में।
हम क्या बतावें ज़रा जाकर तुम्हीं मुनीश,
देखो लोग कैसे रहते हैं यहाँ ग्राम में॥
कैसे उस देश की भलाई हो जहाँ सदैव,
देती दिखलाई है ढिलाई सब काम में।
होते हैं अनेक नित्य हिन्दू-धर्म में अधर्म,
है यहाँ न सच्चा धर्म-भाव इसलाम में॥

(९)

देखकर हिन्दुओं की विविध कुरीतियों को,
जान सकते तुम हमारी दशा आज की।
दुधमुँहे बच्चों का विवाह यहाँ होता नित्य,
हालत बुरी है इस पतित समाज की॥
बाल-विधवाओं का न हाल कुछ पूछो मित्र,
वह है हमारे लिए बात बड़ी लाज की।
अपने सगे भी हैं अछूत कहलाने लगे,
आई है विनाश-घड़ी जाति के जहाज़ की॥

(१०)

शोचनीय हालत हमारी पुत्रियों की सदा,
उर में हमारे और शोक उपजाती है।
जनती नहीं हैं अब जननी सपूत यहाँ,
गृह में कभी न गृह-देवी मान पाती है।
जाल में फँसी मलीन मीन के समान दीन,
नारियों को देख आँख भर भर आती है॥
यदि अबलाओं की सुधरती नहीं है दशा,
लाज ही समाज की हमारे अब जाती है॥

(११)

क्या क्या बतलावें हम देख लो तुम्हीं मुनीश,
काल ने हमारा हाल कैसा कर डाला है।
देखकर हीनता अभागी निज सन्तति की,
जलती हमारे उर में कराल ज्वाला है॥
क्या करें किसी प्रकार मिटता कसाला नहीं,
कर दिया शोक ने हमारा गात काला है।
ऐसी घनघोर घटा छाई है विपत्तियों की,
दीखता मुझे न किसी ओर भी उजाला है॥

(१२)

कहो मुनिदेव ! राम-कृष्ण तो कुशल से हैं,
क्या नहीं यहाँ वे एक बार फिर आवेंगे।
हमको नहीं थी यह आशा उनसे कदापि,
इस भाँति वे भी जन्म-भूमि को भुलावेंगे॥
हम मिट जावेंगे विशेष क्लेश पाकर जो,
क्या नहीं भला वे फिर पीछे पछतावेंगे।
उनसे हमारा यह प्रश्न पूछ लेना ज़रा,
क्या नहीं विपत्तियों से वे हमें छुड़ावेंगे॥

(१३)

सुनो मुनि-पुङ्गव ! हमारा यह कण्ठ-कीर,
रटता सदैव राम-सीता राम-सीता है।
मुरली मनोहर को भूलें हम कैसे कभी,
दी हमें जिन्होंने यह ग्रन्थ-रत्न गीता है॥
दिन-रात प्यार से उन्हीं की याद कर कर,
हृदय हमारा दिव्य प्रीति-सुधा पीता है।
जीवित उन्हीं की कल कीर्ति रखने के लिए,
परम अभागा यह देश अभी जीता है॥

(१४)

हैं कहाँ प्रसिद्ध रण-धीर वरवीर भीष्म,
उर में हमारे अब भी है मान जिनका।
शूरों के शिरोमणि कहाँ हैं धनु-धारी पार्थ,
करते सभी है दिव्य गुण-गान जिनका॥
मुनिदेव ! हैं कहाँ हमारे शिवराज आज,
हमको सदैव रहता है ध्यान जिनका।
किस शुभ लोक में प्रताप हैं प्रतापवान,
हमको सदा है बड़ा अभिमान जिनका॥

(१५)

कई सदियों तक रमा ने किया वास यहाँ,
अब क्या उन्होंने हमें सर्वथा भुलाया है।
रूठकर हमसे चली वे जब से हैं गई,
तब से ज़रा भी सुख हमने न पाया है।
भूल गई भारती भी भाग्यहीन भारत को,
उसके बिना ही यह अन्धकार छाया है।
क्या रहा हमारे पास हमने गमाया सब,
रह गई काया और मोह-मद-माया है॥

(१६)

सुनकर भारत के मुख से व्यथा की कथा,
अतिशय शोक हुआ नारद के मन में।
बोले प्रेम-पूर्वक वे, मत घबराओ मित्र,
आयेगा नया बल तुम्हारे कृश तन में॥
होगी पूर्व जैसी फिर उन्नति तुम्हारी शीघ्र,
विद्या-बुद्धि-पौरुष में जीवन में धन में।
देकर प्रबोधन सभी प्रकार भारत को,
दूसरे दिवाकर-से वे गये गगन में॥

शिक्षा और जीवन-समस्या

[श्रीयुत हरिशङ्कर द्विवेदी]

बालक की प्रकृति कैसी है, उसकी प्रवृत्ति किस ओर है, उसके जन्मगत संस्कार कैसे हैं, आदि बातों की विवेचना शिक्षा-विज्ञान का प्रारम्भिक एवं प्रधान विषय है। बालकों में शिक्षा ग्रहण करने की जैसी शक्ति हो उसी के अनुकूल भिन्न भिन्न पाठ्य-विषयों की रचना की जाती है। पाठ्य-प्रणाली सदैव बालकों की प्रकृति का अनुसरण करती है। किन्तु हमारे देश की आधुनिक शिक्षा-प्रणाली बालकों की स्वाभाविक शक्ति, स्वाधीन प्रवृत्ति तथा जन्म-गत संस्कारों की ओर कम ध्यान देती है। वह तो केवल समय-विभाग, पाठ्य-क्रम एवं पुस्तकों के निर्वाचन पर ही विचार करती है। शिक्षा-विभाग के द्वारा पुस्तकों की जो सूची निर्दिष्ट की जाती है, शिक्षकों को उसमें ज़रा भी हेर-फेर करने का अधिकार नहीं रहता। हमारे देश के अध्यापकों की दृष्टि केवल पाठ्य विषयों पर ही लगी रहती है, किन्तु पाश्चात्य देश के अध्यापकों का ध्यान विषयों पर नहीं, विद्यार्थियों पर है। अमेरिका के कालेजों में अब विद्यार्थियों का ही साम्राज्य है, अध्यापकगण मानो उनके मन्त्री हैं। आज-कल वे शिक्षा-प्रणाली को इस ढाँचे पर लाने के लिए तुले हैं कि वह विद्यार्थियों की सहज प्रवृत्ति और रुचि के सर्वथा अनुकूल हो। अब वे बालकों पर अपनी इच्छा, अपना कर्तृत्व तथा अपना शासन चलाकर उनकी स्वाधीन प्रकृति की उन्नति के मार्ग में रोड़े अटकाने के लिए तैयार नहीं हैं। उनके विचार से वर्तमान ढङ्ग की शिक्षा से बालकों के हृदय में स्वाधीन भावों के अङ्कुर उत्पन्न होने की ज़रा भी सम्भावना नहीं है। जिस व्यक्ति को भविष्य में स्वावलम्बी होकर जीवन-सङ्ग्राम में विजय प्राप्त करनी हो, उसे ऐसी स्थिति में रखना कि वह बात बात के लिए अध्यापक का मुँह ताकता फिरे, कदापि कल्याणकारक नहीं हो सकता। बालक को यथासम्भव अपने ही उद्योग से सब बातों का ज्ञान प्राप्त करने का उद्योग करना चाहिए। अध्यापक का कर्तव्य केवल इतना ही है कि वह दूर से सब बातें देखता रहे और आवश्यकता पड़ने पर सुगम मार्ग सुझा दे। बालक को ही शिक्षा का केन्द्र बनाकर अमेरिकावाले आज-कल नई नई शिक्षाओं का प्रचार कर रहे हैं। अपने इस ढङ्ग का नाम उन लोगों ने रक्खा है—Paidocentricism.

शिक्षा के साम्राज्य में बालकों को पूर्णरूप से स्वाधीन होकर विचरण करने के पक्ष में प्रायः डेढ़ सौ वर्ष से संग्राम हो रहा था। उसी का फल है कि आज वे एकच्छत्र राज्य कर रहे हैं। जन्म लेते ही बालक के स्वभाव पर तीन क्रियायें कार्य करने लगती हैं। प्रकृति
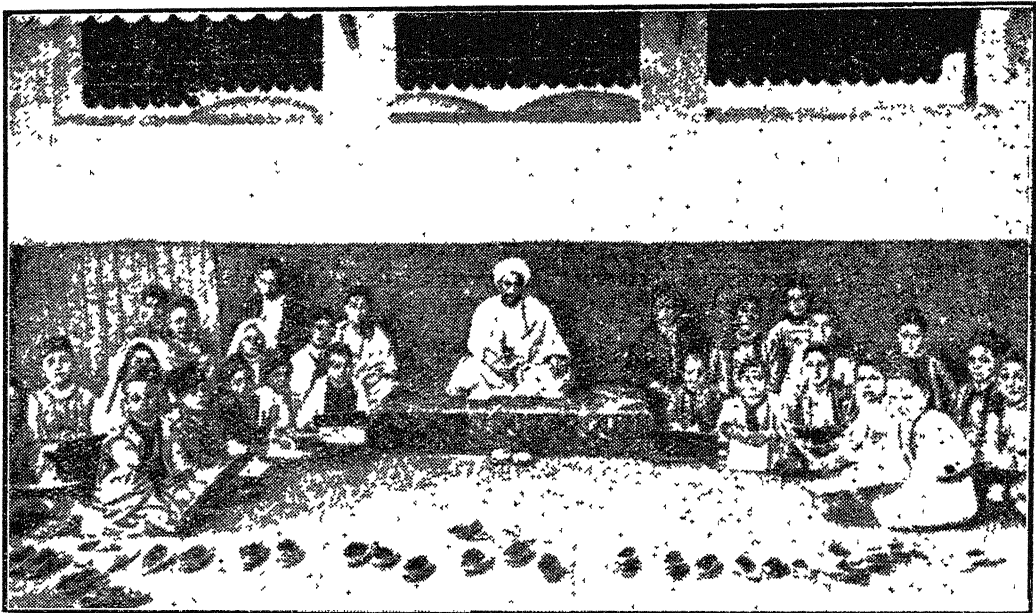
टर्की में शिशु-छात्रों को कुरान की शिक्षा

स्तम्बोल के कुछ शिशु-छात्र बालकों में आनन्द की ओर स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है

देवी समस्त संसार को लेकर बालक के सम्मुख उपस्थित होती हैं, और बालक उसे बाह्य इन्द्रिय एवं मन की सहायता से ग्रहण करने के लिए उतावला हो उठता है। माता-पिता, भाई-बहन, तथा दूसरे सम्बन्धी और कुटुम्बी अपने हृदय की सारी मोह-ममता तथा स्नेह लेकर उसका स्वागत करने के लिए दौड़ते हैं, और बालक भी अपने हृदय के द्वारा उनको स्वीकार करने का प्रयत्न करता है। वह अपनी अन्तरात्मा के द्वारा भगवान् की उस शक्ति का भी, जो चराचर जगत् में सर्वत्र गुप्त रूप से विराजमान रहती है, अनुभव करने का प्रयत्न करता है। प्रकृति के प्रति बालक का जो एक स्वाभाविक आकर्षण है,

बच्चों की एक दौड़

उसकी ओर सबसे पहले ध्यान गया रूसो का। इसी लिए उन्होंने यह निश्चय किया था कि पुस्तकों का आश्रय छोड़कर केवल अङ्ग-सञ्चालन की ही सहायता से संसार के सम्बन्ध में वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। सबसे पहले पेस्टालाजी ने यह सिद्धान्त स्थिर किया था कि अन्य पाँच ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा छठी इन्द्रिय अर्थात् मन ही ज्ञान प्राप्त करने का सबसे बड़ा साधन है। उनका मत है कि गुरु यदि हृदय-हीन एवं निष्ठुर हुआ और विद्यार्थी में उसकी तन्मयता न हुई तो उसकी शिक्षा से विद्यार्थी को कोई भी लाभ नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि हृदय की शक्ति अन्तःकरण की शक्ति से भी कहीं बलवती होती है, और उसे केवल सहृदयता ही पराजित कर सकती है, कठोर शासन नहीं।

फ्रीबेल का मत है कि बालकों की अवलोकन-शक्ति, उनकी क्रियाशीलता तथा आत्मप्रकाश की चेष्टा आदि के प्रभाव से शिक्षा और भी अधिक फलवती होती है। बालकों में आत्मसम्मान बहुत प्रबल होता है और अपनी शक्ति में उन्हें विश्वास भी अधिक होता है। वे याचक के रूप में जाकर किसी से कुछ सीखना भी नहीं पसन्द करते, बरन अपने उद्योग, अध्यवसाय तथा आत्मशक्ति के प्रभाव से ही सब कुछ

मिस्र में बालकों की शिक्षा

जानने का प्रयत्न करते हैं और अपने ही अनुभव को कार्य-रूप में परिणत करना चाहते हैं।

भिन्न भिन्न विद्वानों के लगातार डेढ़ सौ वर्ष तक आन्दोलन करने का परिणाम यह हुआ कि अब कुछ समय से शिक्षा के विषय में बालकों को अपना न्याय-सङ्गत तथा पूर्ण अधिकार मिल गया है। अब उन्हें न तो शिक्षकों की छाया बन कर चलने की आवश्यकता है और न उन्हें पाठ्य-विषयों का ही बन्धन है। अब अध्यापकों का कर्तव्य है कि विद्यार्थियों की रुचि के अनुसार ज्ञान का पथ निर्दिष्ट करना और पाठ्य-पुस्तकें हैं उनके मनोरञ्जन की सामग्री। पहले शिक्षा के क्षेत्र में सबसे उच्च स्थान अध्यापक का था, किन्तु आज-कल इसमें विद्यार्थियों की ही प्रधानता है। पाठ्य-विषय तथा

अध्यापक उनके सहायक-मात्र माने जाते हैं। यों तो इस सुधार में अनेक विद्वानों का हाथ था, किन्तु वास्तव में श्रेय दो ही को है—माण्टेसरी और कुमारी पार्कहार्स्ट। डाकृर माण्टेसरी छोटे छोटे बच्चों के कालेज में काम करती हैं और कुमारी पार्कहार्स्ट किशोरावस्था के बालकों को शिक्षा देती हैं।

वर्तमान सभ्य-समाज में माण्टेसरी-द्वारा स्थापित किये हुए कालेज ने जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त की है वैसी गत शताब्दी में फ्रीबेल के कानन-विद्यालय को ही मिली थी। यह कालेज रोम में है। बहुत से शिक्षा-प्रेमी भिन्न भिन्न देशों से यहाँ की शिक्षा-पद्धति देखने के लिए आया करते हैं।
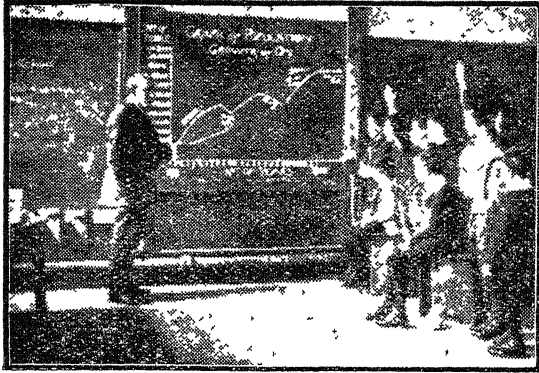
इँग्लेंड में नई शिक्षा-पद्धति

माण्टेसरी ने अपने कालेज में न तो श्रेणी-विभाग का नियम रक्खा है और न पुस्तकें ही निर्दिष्ट की हैं। उनके सिद्धान्त के अनुसार हमारे देश का श्रेणी-विभाग विज्ञान-सम्मत नहीं है। वे सभी बालकों को उनकी मनोवृत्ति, स्वभाव या रुचि की ओर ध्यान न देकर नियत समय पर नियत विषय के पढ़ाने के भी विरोधी हैं। उनका सिद्धान्त है कि प्रायः सभी बालकों की प्रकृति एवं रुचि भिन्न होने के कारण एक ही विषय की शिक्षा सबके लिए नहीं लाभ-दायक हो सकती, बालकों की चित्त-वृत्ति सदा एक-सी नहीं रहती। अतएव समय समय पर शिक्षा-पद्धति भी बदलती रहती है। विद्यार्थी की मनोवृत्ति के विरुद्ध किसी प्रकार की शिक्षा देना उनके सिद्धान्त के अनुसार निष्फल है। उनके कालेज के अध्यापकगण बालकों के शिक्षक के रूप में ही नहीं, किन्तु केवल संरक्षक के रूप में नियत हैं। वे ज़बर्दस्ती किसी भी बालक को किसी प्रकार की शिक्षा देने का प्रयत्न नहीं करते, बालक स्वयं अपनी रुचि और शक्ति के अनुसार भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त किया करते हैं। जब उनके मार्ग में किसी प्रकार की कठिनाई पड़ती है और वे सहायता की आशा से अध्यापकों की ओर देखने लगते हैं तभी वे उन्हें उचित शिक्षा दिया करते हैं। अध्यापकों का यह भी कर्तव्य है कि पढ़ने-लिखने की सारी सामग्री को वे लोग इस रूप में सजा कर रक्खें कि पढ़ने की ओर बालकों का आग्रह स्वयं बढ़े।
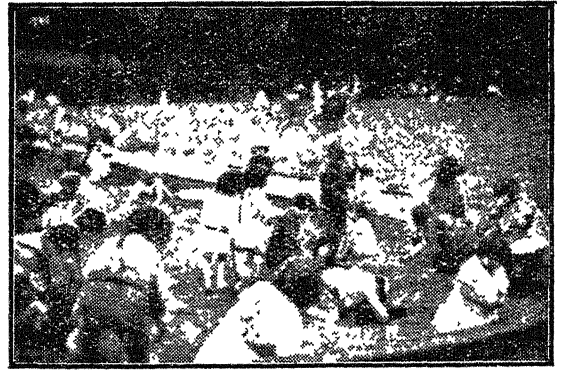
शिशुओं का विनोद

माण्टेसरी के शिक्षा-सम्बन्धी दो सिद्धान्तों से इस शताब्दी में एक आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है। उनमें से एक तो वह है कि एक बालक का स्वभाव दूसरे से सर्वथा भिन्न होता है और यह भी बदलता रहता है और उसमें नवीनता आती रहती है। अतएव एक कक्षा के समस्त विद्यार्थियों को समान रूप से शिक्षा देने का प्रयत्न करना व्यर्थ है। दूसरा यह कि अपनी प्रवृत्ति के अनुसार इन्द्रियों का सञ्चालन करके बालक-गण जो कुछ सीखते हैं वही ज्ञान के भाण्डार में स्थायी रहता है। जिस विषय के सीखने की ओर बालक का स्वाभाविक आकर्षण नहीं रहता, अध्यापक के नाना प्रकार के प्रयत्न करने पर भी उसमें वह स्थायी ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता। वास्तविक ज्ञान तो तभी प्राप्त हो सकता है जब कि मनुष्य स्वयं अनुभव करके कुछ सीखे, किसी से पूँछ कर किसी का

अनुकरण कर सीखे हुए विषय का पूर्ण ज्ञान कदापि सम्भव नहीं है।

इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार माण्टेसरी के कालेज में तीन से लेकर सात वर्ष तक के बालकों को शिक्षा दी जाती है। इस प्रयत्न में सफलता देखकर कुमारी पार्केहार्स्ट ने भी शिक्षा की उन्नति में ही अपने जीवन को उत्सर्ग किया। उन्होंने सोचा कि माण्टेसरी के सिद्धान्त यदि ३ वर्ष से लेकर सात वर्ष तक की अवस्था के बालक बालिकाओं के लिए उपयोगी है तो वे आठ वर्ष से लेकर अठारह वर्षवालों के लिए क्यों न लाभदायक होंगे। अन्त में वे अपने इस विचार को कार्यरूप में परिणत

बच्चों का क्रिकेट

करने के लिए तत्पर होगई। यही आज-कल Daltan Laboratory Plan के नाम से प्रसिद्ध हैं।

पार्केहार्स्ट की शिक्षा-प्रणाली के पक्षपाती अमेरिका की अपेक्षा इँग्लैंड में अधिक हैं। वहां "डाल्टन एसोसियेशन" नामक एक संस्था है। वह इनकी शिक्षा-प्रणाली का प्रचार करने के उद्देश से छोटे छोटे ट्रैक्ट् प्रकाशित करवा रही है। उनमें उक्त श्रीमतीजी के सुधारों का उद्देश तथा उनकी उपयोगिताओं का वर्णन है। मिस हेलेन पार्केहार्स्ट ने अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करने के लिए सन् १९२० ई० मे डाल्टन में एक विद्यालय स्थापित किया। वहां के अध्यापकों ने उनके विचारों की बड़ी प्रशंसा की। इस विद्यालय की कक्षायें Laboratory या प्रयोगशाला के रूप में परिणत हुई। वैज्ञानिक प्रयोगशालाओं की भांति इनमें भी पढ़ने-लिखने के उपयोग की प्रायः सभी वस्तुएँ सुसज्जित रहती हैं, जिनकी सहायता से विद्यार्थीगण अपनी अपनी रुचि के अनुसार स्वयं सभी विषयों का अध्ययन किया करते हैं। पहले लिखा जा चुका है कि आठ से लेकर अठारह वर्ष तक के विद्यार्थियों की ही शिक्षा का आयोजन इस विद्यालय में किया गया है। यह नवीन आयोजना ही डाल्टन-शिक्षा-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। इसका मुख्य उद्देश है पढ़ने-लिखने के सम्बन्ध में विद्यार्थियों को पूर्णरूप से

मिस्र में शिशु-शिक्षा

स्वतन्त्र करना। साथ ही साथ यहां उनमें परस्पर भ्रातृ-भाव का प्रचार करने की भी चेष्टा की जाती है। विद्यालय के विद्यार्थियों-द्वारा समाज-सुधार का भी यथेष्ट उद्योग किया जाता है। यों तो किसी भी कक्षा के विद्यार्थी किसी विशेष नियम का पालन करने या किसी पुस्तक के पढ़ने के लिए बाध्य नहीं हैं किन्तु प्रबन्ध की सुविधा के लिए कुछ कक्षायें नियत कर दी गई हैं और उनमें आवश्यक सामग्रियां इस रूप से सजाकर रख दी गई है कि विद्यार्थीगण स्वयं उनका उपयोग कर सकें।

पार्केहार्स्ट ऐसी शिक्षा का प्रचार करने के लिए उद्योग कर रही हैं, जिसके द्वारा विद्यार्थियों के हृदय में विचार-स्वातन्त्र्य, कर्तव्य-निष्ठा आदि का सञ्चार हो और वे अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहकर स्वावलम्बी बन सकें। उन्हें इस बात का दृढ़ विश्वास है कि इन गुणों से भूषित होकर

युवकगण चाहे किसी भी क्षेत्र में प्रवेश करें, अपने प्रयत्न में वे अवश्य कृतकार्य होंगे। किन्तु अध्यापकों के सिखाने से विद्यार्थियों में इन गुणों का विकास सम्भव नहीं है। अतएव यह आवश्यक है कि विद्यार्थीगण यदि सभी विषयों में अपने स्वाधीन विचारों, आत्मबल तथा इच्छानुकूल
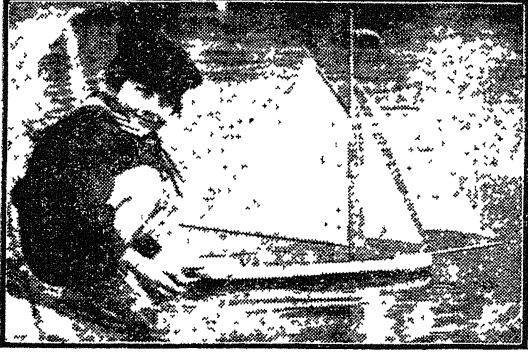
इँग्लेंड का एक होनहार कप्तान

रुचि का अनुसरण किया करें और सभी कार्यों में आत्म-निर्भरता प्रदर्शित करते रहें तो वे जीवन-संग्राम में अवश्य विजय प्राप्त करने के सर्वथा योग्य होंगे।

वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के अनुसार एक कक्षा के सभी विद्यार्थियों को, चाहे वे जैसे हों, प्रत्येक विषय साथ ही साथ पढ़ने पड़ते हैं। वास्तव में यह पद्धति वैज्ञानिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है। कारण यह है कि जिन विद्यार्थियों की धारणा-शक्ति अधिक होती है और जो थोड़े ही समय में अधिक बातें सीख सकते हैं, उन्हे अन्य बालकों के साथ व्यर्थ पीछे पड़े रह जाना पड़ता है और जिन विद्यार्थियों की बुद्धि मन्द होती है उन्हें भी अपने अन्य सह-पाठियों का अनुसरण करने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अतएव वे सदा पीछे ही पड़े रह जाते हैं। अध्यापकों का ध्यान केवल मध्यम श्रेणी के ही विद्यार्थियों की ओर रहता है। वे लोग जितना पढ़ सकते हैं, अध्यापकगण उतना ही पढ़ाते हैं। इस प्रकार उन दोनों प्रकार के विद्यार्थियों का, जिनकी बुद्धि बहुत तीव्र या मन्द होती है, व्यर्थ ही समय नष्ट होता है। मन्दबुद्धिवाले विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए विशेष ढङ्ग की शिक्षा-पद्धति आवश्यक है। परन्तु संयुक्त-शिक्षा-प्रणाली में यह कदापि सम्भव नहीं है। अधिकांश विद्यार्थी कालेजों की भिन्न भिन्न कक्षाओं में लगातार कई बार अनुत्तीर्ण होते रहते हैं। उनमें से प्रायः पचहत्तर प्रति सैकड़ा उपर्युक्त पद्धति के ही कारण हताश हो जाते हैं। जो विषय जितनी मात्रा में उनकी धारणा-शक्ति से परे है उनके मस्तिष्क पर उसका भार लादने से कहाँ तक उपकार की आशा की जा सकती है? यही कारण है कि परीक्षा के समय बहुत से विद्यार्थियों को अनुचित उपाय का आश्रय लेकर अध्यापकों को धोखा देने के लिए विवश होना पड़ता है। इस प्रकार उनका नैतिक पतन तो होता ही है, साथ ही बार बार असफल होने के कारण उनका हृदय शीघ्र ही उत्साह-शून्य हो जाता है और उन्हे अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं रह जाता। इस प्रकार बहुत से युवक बेकार होकर यावज्जीवन दूसरों का मुँह ताका करते हैं। अन्त में वे समाज के लिए अनिष्टकर सिद्ध होते हैं।

इन दुष्परिणामों से विद्यार्थियों की रक्षा करने के ही लिए श्रीमती पार्कहार्स्ट ने अपने कालेज में ऐसे नियम बनाये

बालकों का विनोद

है कि अध्यापकगण विद्यार्थियों के मस्तिष्क एवं हृदय पर ज़रा भी भार नहीं डाल सकते। वे उन्हें अपनी शक्ति एवं रुचि के अनुसार अध्ययन करने के लिए सदा उत्साहित किया करते है, अतएव जिस विषय में जिस

विद्यार्थी की प्रवृत्ति एवं उसकी रुचि अधिक होती है वे स्वतन्त्ररूप से उसका अध्ययन किया करते हैं, अध्यापक-गण केवल पथ-प्रदर्शक के रूप मे रहते हैं।

कुमारी पार्कहार्स्ट उसी शिक्षा को महत्त्व देती हैं जिसे प्रत्येक विद्यार्थी स्वावलम्बी होकर व्यक्तिगत रूप से ग्रहण

सङ्गीत से ड्रिल

करे। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उन्हें एक विद्यार्थी का दूसरे के साथ मिलकर काम करना पसन्द नहीं है। वे इस बात को भली भाँति जानती हैं कि विद्यालय और पाठशाला ही सामाजिक भावों की शिक्षा के सर्वश्रेष्ठ स्थान हैं। मनुष्य को जिस प्रकार व्यावहारिक जीवन में व्यक्तिगत स्वार्थ की रक्षा करके परस्पर एक दूसरे की सहायता करनी पड़ती है ठीक वैसे ही पढ़ने-लिखने के सम्बन्ध में भी अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता की रक्षा करके एक विद्यार्थी को दूसरे की सहायता करना आवश्यक है। सामाजिक जीवन में रहने के लिए अपने व्यक्तिगत स्वार्थों को सङ्कुचित करके भी हमें दूसरों की सहायता करनी पड़ती है। अतएव पार्कहार्स्ट के विद्यालय में सभी विद्यार्थी परस्पर सहायता का आदान-प्रदान करने के लिए स्वतन्त्र हैं। वहाँ सामाजिकता की वृद्धि के लिए भिन्न भिन्न प्रकृति एवं अवस्थावाले विद्यार्थियों को एक श्रेणी में बैठकर काम करने का अवसर मिलता है।

आज-कल अमेरिका में शिक्षा के सुधारकों का एक और भी बड़ा भारी दल खड़ा हुआ है। उसका कथन है कि पाठ्यविषयों ने विद्यार्थियों के न्याय-सङ्गत अधिकारों को तो हड़प ही लिया, उनमे भी पारस्परिक प्रधानता के पीछे युद्ध हो रहा है। किसी भी स्कूल या कालेज के कार्य-क्रम पर विचार करने से यह बात स्पष्ट रूप से मालूम हो जाती है। सभी विषयों के पढ़ने के लिए अलग अलग अध्यापक होते हैं, वे सदा अपने ही विषय का सिक्का जमाने के लिए प्रयत्न किया करते हैं, दूसरे विषयों की ओर उनका ज़रा भी ध्यान नहीं रहता। साहित्य का अध्यापक इतिहास, भूगोल या अन्य विषयों की चर्चा तक क्लास में नहीं करना चाहता, वह यह कभी नहीं समझता कि साहित्य के साथ अन्य विषयों का भी एक घनिष्ट सम्बन्ध है। इस प्रकार अध्यापकों की सङ्कीर्णता के कारण भिन्न भिन्न विषयों में बहुत भेद होगया है। यदि एक जाति दूसरी जाति के प्रति सहानुभूति न दिखलाये, परस्पर एक दूसरे की उन्नति के लिए प्रयत्न न करे, यदि एक व्यक्ति दूसरे के साथ उदारतापूर्वक मिलता-जुलता न रहे तो पूर्ण-रूप से सामाजिकता का विकास सम्भव नहीं है। ठीक इसी प्रकार विद्यार्थी को इस बात का ज्ञान हुए बिना कि अमुक विषय का अमुक विषय से क्या सम्बन्ध है, अमुक विषय की ज्ञान-वृद्धि

अमेरिका में बच्चों के सुधार के लिए 'जूवेना इल कोर्ट'

के लिए अमुक विषय से कहाँ तक सहायता ली जा सकती है, उसके ज्ञान में न तो गम्भीरता आ सकती है और न पूर्ण रूप से उसका विकास ही हो सकता है। इसी लिए अमेरिका के अध्यापकगण पूर्ण

ज्ञान प्राप्त करने का मार्ग ढूँढ़ने में व्यस्त है। उनका कथन है कि जिस ज्ञान का व्यावहारिक जीवन में पूर्ण-रूप से उपयोग न हो सके वह अधूरा एवं निरर्थक है। स्थूल दृष्टि से भिन्न भिन्न विषयों का ज्ञान एक दूसरे से भिन्न होने पर भी उन सबों का अन्तिम उद्देश एक ही है और वह है मानव-शक्ति का विकास करके विद्यार्थी को स्वावलम्बन तथा देश-सेवा के योग्य बनाना।

स्विटज़रलेंड में बच्चों की शिक्षा
(प्रारम्भिक शिक्षा के लिए यह देश प्रसिद्ध है)

आज-कल स्कूलों तथा कालेजों में जो शिक्षा दी जाती है, उससे कुछ विषयों का ज्ञान चाहे भले ही हो जाय किन्तु व्यावहारिक जीवन में कुछ भी उपयोग नहीं है। कितने ही विश्वविद्यालय के उपाधिधारी अपने जीवन की अधिकांश समस्याओं के सुलझाने में निरे कोरे ही रह जाते हैं। उस दशा में उनके सारे परिश्रम निरर्थक मालूम पड़ने लगते हैं और उन्हें फिर से नवीन ज्ञान का उपार्जन करने की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी दशा में वही शिक्षा सर्वथा उपयुक्त हो सकती है जो सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन की समस्याओं पर निर्भर हो। जब विद्यार्थी को भविष्य जीवन-यात्रा की ही चिन्ता करनी है तब उसी के उपयुक्त शिक्षा भी होनी चाहिए। अतएव पाठ्य-विषय ऐसे रक्खे जाने चाहिए जो कि जीवन की गूढ़ से गूढ़ समस्याओं को सुलझाने के लिए उपयुक्त हों। इस प्रकार स्कूलों तथा कालेजों में पाठ्य-विषय गौण होने चाहिए। अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे जीवन की भिन्न भिन्न समस्याओं को ही माध्यम बनाकर उच्च विषयों की शिक्षा देने का प्रयत्न करें।

ऐसे विचारवालों की पद्धति को Project-Method कहते हैं। इस सिद्धान्त के पक्षपाती Projectors कहे जा सकते हैं। इन लोगों की शिक्षा का मुख्य उद्देश है जीवन की समस्याओं के आधार पर शिक्षणीय विषयों में समता का भाव स्थापित करना, अर्थात् Socialising the Subjects। कुछ विषयों का ज्ञान करा देने से ही बालकों की मानसिक शक्ति नहीं बढ़ती। वास्तव में जब तक वह पूर्ण रूप से ज्ञान-राज्य का अधिकारी नहीं हो जाता, तब तक उसका किसी प्रकार का भी उपकार नहीं होता। दूसरे के दिये हुए ज्ञान से बालक का हृदय कदापि ऐश्वर्यशाली नहीं हो सकता। यदि वह स्वयं किसी समस्या के हल करने का प्रयत्न करे तो उसके लिए जिन जिन बातों की आवश्यकता पड़ेगी, वह उन सब पर अपनी बुद्धि दौड़ावेगा। ऐसी दशा में उसकी मानसिक शक्ति का अधिक मात्रा में विकास होना स्वाभाविक है।

अमेरिका के एक स्कूल के बच्चों की दन्त-परीक्षा

इस प्रकार विद्याभ्यास से मनुष्य में अपने को पहचानने की शक्ति आती है और तभी उसको तत्त्वों का भी ज्ञान होता है। तत्त्वज्ञानी पुरुष के चित्त को सन्तोष मिलता है। मनुष्य उन्हीं बातों को पसन्द करता है,

जो उसके स्वभाव के अनुकूल हो। जो शिक्षा बालक के स्वभाव के अनुकूल न होकर कुछ गढ़े हुए कठोर नियमों का अनुसरण करती है, उससे न तो विद्यार्थी के हृदय में किसी प्रकार की स्फूर्ति आती है, न आशा की तरङ्गें

स्पेन में गृह मे बच्चों की शिक्षा

उठती हैं और न इच्छा-शक्ति ही प्रबल रूप से उत्तेजित होती है। उस शिक्षा से न तो विद्यार्थी का आत्म-बल बढ़ता है और न उसके हृदय का ही विकास होता है। शिक्षा में सजीवता तो तभी आ सकती है जब उसमें कोई ऐसी शक्ति भर दी जाय जिससे कि बालक के हृदय में आनन्द की वृद्धि हो। तात्पर्य यह है कि शिक्षा से आत्मसुख की प्राप्ति होनी चाहिए।

यदि खेल-कूद के साथ साथ बालकों को ऐसी बातें सिखलाई जायँ जिनका मानव-जीवन के प्रतिदिन के सुख-दुःख की घटनाओं से घनिष्ठ सम्बन्ध हो तो पढ़ने-लिखने में बालकों की रुचि अधिक बढ़े। बालक को जब अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने का अवसर मिलता है तभी उसको सन्तोष होता है। नियमों की श्रृङ्खला से मुक्ति प्राप्त करना ही उसके सुख का कारण है। जब तक पाठ्य-विषय, शिक्षा-पद्धति तथा शिक्षा-सम्बन्धी अन्य नियमों की श्रृङ्खला किसी मात्रा में शिथिल न की जायगी, तब तक बालकों के लिए वास्तविक शिक्षा का मार्ग न खुलेगा। अपनी स्वाभाविक क्रियाशीलता का उपयोग करने तथा मानसिक शक्ति को स्वतन्त्रता-पूर्वक प्रकाशित करने का अवसर पाये बिना बालकगण दूसरों की दी हुई शिक्षा को ग्रहण करके कदापि न सन्तुष्ट होंगे।

पढ़ाई-लिखाई को पूर्णरूप से खेलवाड़ बना देने से भी काम नहीं चलेगा, क्योंकि खेल-कूद में न तो कोई उद्देश रहता है और न भविष्य की ही ओर उसकी दृष्टि रहती है। संसार के झंझटों से भी उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह तो खेल के मैदान तक ही है। किन्तु पढ़ाने-लिखाने में जिन खेलों का आश्रय लेना होगा उनका कुछ दूसरा उद्देश होना चाहिए। सांसारिक जीवन में सहायता करने की उनमें जितनी शक्ति होगी, उतना ही उनका मूल्य है और उसी मात्रा मे वे उपयोगी भी हैं। अतएव खेल के मैदान के आमोद-प्रमोद से वह सर्वथा भिन्न है। वे खेल केवल मनोरञ्जन के लिए नहीं हैं, वरन उन्हें इस रूप मे सङ्गठित करना चाहिए कि उनके द्वारा मनोरञ्जन के साथ ही साथ बालकगण ऐसी शक्ति प्राप्त कर सकें, जिसके द्वारा वे जीवन-सङ्ग्राम में विजयी हों। स्कूलों तथा कालेजों में ऐसी ही पद्धति आवश्यक है। शिक्षा-प्रेमियों को इस ओर विशेष दृष्टि
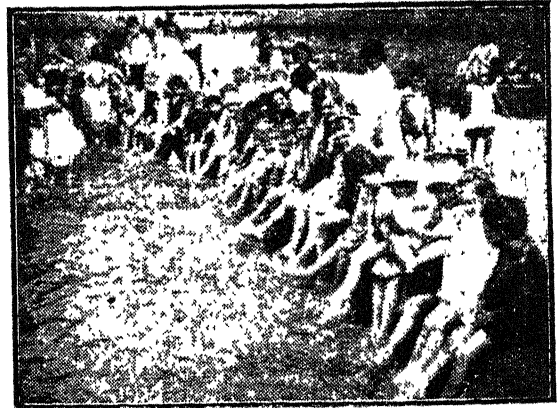
हाइड पार्क में बच्चों की क्रीडा

रखनी चाहिए कि वहाँ के खेलों में क्रिया-शीलता के साथ ही साथ आनन्द की धारा का भी प्रवाहित होना आवश्यक है।

स्वीडन में एक ग्राम्य स्कूल में बालिकाओं की शिक्षा
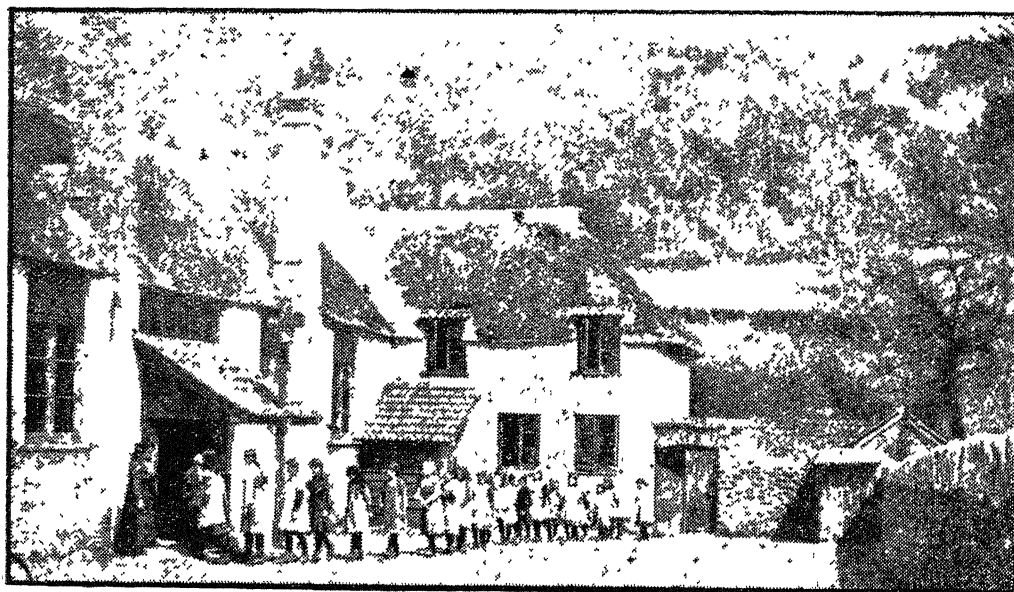
इंग्लैंड का एक ग्रामीण-स्कूल

मनोरञ्जन के साथ पढ़ाने का यह उद्देश नहीं है कि विद्यार्थियों को पढ़ाई-लिखाई में जो कठिन परिश्रम करना पड़ता है, वह कम हो जाय। इसका उद्देश केवल यह है कि विद्यार्थी परिश्रम को परिश्रम ही न मानें, वे कार्य की ओर उत्साहपूर्वक बढ़ते जायँ। यदि उत्साह और लगन के साथ कार्य किया जाय तो सरलता से सिद्ध होनेवाले कार्यों की अपेक्षा कष्ट-साध्य कार्यों में ही अधिक आनन्द आता है। वास्तव में उत्तम कार्य के सिद्ध करने पर मनुष्य के हृदय में जो आनन्द आता है वही सर्वोच्च आनन्द है। इच्छा स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो, उसमें किसी प्रकार की बाधा न डालकर यथासम्भव पढ़ाई-लिखाई के सम्बन्ध के सभी कार्य उनसे करवा लेना अधिक लाभदायक है। साथ ही साथ नियमों में भी ऐसी कठोरता न होनी चाहिए जिससे कि विद्यार्थियों की स्वतन्त्रता में व्याघात पहुँचे।

किसी किसी बात में तो मनुष्य के हृदय में स्वभाव से ही उत्साह का सञ्चार होता है और किसी विषय में उत्साह का उत्पादन करने के लिए अभ्यास करना पड़ता

अमरिका के एक स्टेट-स्कूल में बालकों शिक्षा
(स्टेट-स्कूल में १० वर्ष की उम्र के बालकों को शिक्षा दी जाती है)

है। ऐसे बहुत से विषय हैं जो मनोरञ्जक तो हैं ही नहीं बरन उनसे विरक्ति होती है, और बहुत से ऐसे कार्य होते हैं, जो बहुत ही कठिनता से सिद्ध किये जा सकते हैं। ऐसे कार्यों के लिए विद्यार्थियों के हृदय में उत्साह का सञ्चार करना ही अध्यापकों का प्रधान कर्तव्य है। अन्यथा उन कार्यों की ओर विद्यार्थियों का ध्यान ही नहीं जा सकता और यदि जायगा भी तो वह क्षण-मात्र के लिए। भिन्न भिन्न कारणों से विद्यार्थियों का चित्त बटा

बालकों के हृदय में उत्साह का सञ्चार करने के लिए सबसे आवश्यक बात यह है कि जो विषय उन्हें रोचक मालूम पड़ें और उनके स्वभाव के अनुकूल हों, उन्हीं विषयों का अध्ययन कराना चाहिए, किन्तु बालकों की शक्ति से अधिक कार्य लेने का कदापि न प्रयत्न करना चाहिए। जिन विषयों का सम्बन्ध वास्तविक जगत् से न हो उनसे पहले जहाँ तक हो सके उन्हें दूर ही रखना चाहिए। विद्यार्थियों के हृदय में कार्य करने की जो

रहता है, उसे बटोर कर एक स्थान पर जमाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। परन्तु जब तक उन विषयों में विद्यार्थी के हृदय में उत्साह न हो, तब तक वे किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं कर सकते। उस दशा में अध्यापकों का कर्तव्य है कि वे कोई ऐसा उपाय सोचें जिससे नीरस विषय पर भी विद्यार्थी का चित्त जम जाय।

शिक्षा-प्रणाली को सरस एवं हृदयग्राही बनाने के लिए शिक्षा के क्षेत्र में तरह तरह के उपाय किये गये हैं। कुमारी एच० फ़िनले जानसन ने नाटक के रूप में शिक्षा देने का जो नियम निकाला है वह उन सब में बढ़कर है। उन्होंने अपनी (The Dramatic Method of Teaching) नामक पुस्तक में नाटक के द्वारा सभी विषयों की शिक्षा देने की सम्मति दी है। नाटक के द्वारा साहित्य और इतिहास की तो बहुत ही अच्छी शिक्षा मिल सकती है, परन्तु अन्य विषयों के पठन-पाठन में इस पद्धति से कहाँ तक सहायता मिल सकती है, यह बात विचारणीय है। विलायत में पार्स स्कूल के मिस्टर कोल्डवेल कुक ने नाटक के अतिरिक्त और भी कई ढङ्ग से शिक्षा के साथ साथ विद्यार्थियों के मनोरञ्जन का प्रबन्ध किया है। उनके कालेज में अपनी शक्ति प्रदर्शित करने के लिए विद्यार्थी पूर्ण रूप से उत्साहित किये जाते हैं। वे लोग कभी परस्पर वाद-विवाद किया करते हैं, कभी छोटे-छोटे व्याख्यान देते हैं, कभी कविता करते हैं और कभी तरह तरह के काल्पनिक मैप खींचा करते हैं।

इस प्रकार के और भी तरह तरह के शिक्षा-सम्बन्धी बहुत से सिद्धान्तों का आविष्कार करके पाश्चात्य संसार ने शिक्षा के सम्बन्ध में एक नवयुग उपस्थित कर दिया है। वास्तव में इसका सबसे अधिक श्रेय अमेरिका को ही प्राप्त है। वहाँ के अध्यापकगण प्रजातन्त्र के पक्षपाती एवं स्वतन्त्रता के प्रेमी हैं। अतएव वे लोग शिक्षा में भी स्वतन्त्रता का प्रचार करने पर तुले हैं। वह विचारधारा अटलांटिक तथा प्रशान्त महासागर के विशाल वक्षःस्थल को भेदती हुई इँग्लेंड तथा एशिया के भी कुछ भागों में हलचल मचा चुकी है। किन्तु अभी तक वह भारत में पहुँची है या नहीं, इसमें सन्देह है और पहुँचने पर भी यहां के निवासीगण अपने स्वाभाविक आलस्य तथा उदासीनता के कारण यथोचित रूप से उसका स्वागत नहीं कर सकते। आज तक वे अपने प्राचीन गौरव का स्वप्न ही देख रहे हैं। संसार में इतने वेग से जो परिवर्तन हो रहा है उसकी सीमा से वे कितनी दूर हैं, इसका भी उन्हें ज्ञान नहीं है। वास्तव में अपने प्राचीन गौरव पर श्रद्धा रखना तो बहुत ही अच्छी बात है किन्तु क्या हमारे *वर्णाश्रम, ज्ञानपिपासा, सामाजिकता तथा धार्मिक भावों* को फिर से जागृत करने का कोई आयोजन हो रहा है? वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार यह सत्य के रूप में स्वीकार किया जा चुका है कि प्रत्येक बालक अपने पूर्व जन्म के संस्कारों को लेकर उत्पन्न होता है। जिस प्रकार संस्कार के ही अनुसार प्रत्येक बालक का एक व्यक्तित्व है, वैसे ही प्रत्येक जाति में भी एक संस्कारगत धर्म है। जिस प्रकार बालक की स्वतन्त्र प्रकृति की उपेक्षा करने से व्यक्तिगत जीवन का संगठन नहीं हो सकता वैसे ही जातीय विशेषता की उपेक्षा करने से सामाजिक जीवन का भी सङ्गठन सम्भव नहीं है। यह जातीय सत्ता जातीय आचार-विचारों से पूर्णरूप से स्वतन्त्र है। आचार-विचार जाति के बहिरङ्ग (Forms) हैं और जातीय सत्ता जाति की अन्तरात्मा है। जाति की अन्तरात्मा अक्षय, अमर एवं सनातन है। किन्तु देश, काल तथा पात्र के भेद से आचार-विचार में परिवर्तन होता है। देशाचार, लोकाचार एवं युगधर्म आदि शब्द ही इसके प्रमाण हैं। परन्तु वह जातीय सत्ता आज भी स्थायी है। भारत के धर्म, दर्शन, साहित्य तथा कला आदि में वही जातीय सत्ता प्रतिफलित हो रही है।

हमारे देश की शिक्षा पद्धति के असफल होने का मूल कारण यही है कि जातीय सत्ता के प्रति उचित सम्मान एवं निष्ठा नहीं प्रदर्शित की गई। जो लोग हमारी शिक्षा-रूपी नौका के कर्णधार हैं, जिन लोगों ने हमारे देश में वर्तमान शिक्षा-पद्धति का प्रचार किया है और शिक्षा-नीति का नियन्त्रण कर रहे हैं, उनके जातीय संस्कार हमारे जातीय संस्कारों से सर्वथा भिन्न हैं। अतएव वे लोग शुभ कामना रखने पर भी हमारी जातीय शिक्षा की विशेषता का अनुभव नहीं कर सकते। वे यह भी नहीं निर्णय कर पाते कि हमारे जातीय जीवन के गठन के लिए कौन-सी शिक्षा उपयोगी है। यदि इस विषय में

शिक्षित-समाज उदासीन न रहता और अमेरिका तथा योरप के उद्योगशील अध्यापकों के समान जातीय शिक्षा को उन्नतिशील बनाने का प्रयत्न करता तो जातीय शिक्षा का प्रवाह आज दूसरे ही मार्ग मे बहता।

समाज के सुधारकों और देश के नेताओं को अब शिक्षा-द्वारा समाज और देश की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए। तभी सच्ची उन्नति होगी।*

त्याग

[श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय, "हरिऔध"]

भयङ्कर-भाव-विभव-अभिभूत।
स्वार्थ-तम-तोम-आवरित-ओक।
लाभ करता है ललित-विकास।
त्याग-रवि-तेज-पुञ्ज अवलोक॥ १॥

गृह-कलह-वेलि कठोर-कुठार।
जाति-गत-वैर-पयोद समीर।
निवारण-हित समाज-सन्ताप।
त्याग है सुर-सरि-शीतल-नीर॥ २॥

कालिमा-मय है जिसका अङ्क।
तिमिर-मज्जित है जिसका गात।
उस कुमति-रजनी का है त्याग।
राग-अनुरञ्जित-दिव्य-प्रभात॥ ३॥

हो रहा है जिसके प्रतिकूल।
काल का प्रबल-प्रवाहित-स्रोत।
दुख-जलधि-निपतित है जो देश।
त्याग है उसका अनुपम-पोत॥ ४॥

सुजनता-सरसी-सुन्दर-वारि।
सन्त-मत-कलित-कपाल सुअङ्क।
त्याग है सु-रुचि-कमलिनी-भानु।
साधुता-राका-निशा-मयङ्क॥ ५॥

मुग्ध होता है मानस-भृङ्ग।
मिले उसका कमनीय-सुबास।
बनाता है उर-सर को मञ्जु।
त्याग सरसिज का सरस-विकास॥ ६॥

सदा सुख-पय करता है पान।
चल अवनि-जन-मन-रञ्जन-चाल।
चुग रुचिर-गौरव मोती-चारु।
नारि-मानस-गत त्याग-मराल॥ ७॥

बरसता है गृह-सुख-वर-वारि।
प्राणि-शिखि-कुल को वितर विनोद।
पति-प्रमुद-सर को कर रस-धाम।
नारि-जीवन-नभ त्याग-पयोद॥ ८॥

बना दम्पति-सुख-तरु को कान्त।
कर कलह-पीत-विपुल-दल अन्त।
सजाता है सनेह-उद्यान।
नारि-उर-विलसित त्याग-वसन्त॥ ९॥

मुक्ति-मय सुन जिसकी झङ्कार।
बने कितने वर-तन्त्र स्वतन्त्र।
भरित जिसमें है पर-हित-नाद।
त्याग वह है वर-वादन-यन्त्र॥ १०॥

सफलतामय है साधन-सूत्र।
अभाविकता है जिसका तन्त्र।
मुग्ध जिस पर है सिद्धि-समस्त।
त्याग वह है जग-मोहन-मन्त्र॥ ११॥

विमल-तम-भाव-मयङ्क निकेत।
भूति-मय-पूत-विभव-रविधाम।
है रुचिर-चिन्तन-तारक ओक।
त्याग का नभ-तल लोकललाम॥ १२॥

*सङ्कलित।

प्रकाशित उससे है पाताल।
प्रभा-मय है उससे मृत-लोक।
सुर-सदन का है रत्न-प्रदीप।
त्याग है तीन-लोक-आलोक ॥ १३ ॥

वे समझते हैं उसको वन्द्य।
लोक-हित जिनका है अपवर्ग।
देव-पूजित-दधीचि से सिद्ध।
त्याग पर होते हैं उत्सर्ग ॥ १४ ॥

देश-हित-पथ का प्रिय-पाथेय।
समुन्नति-निधि का सहज-निजस्व।
भव-विपुल-विभव परम-अवलम्ब।
त्याग है जन-जीवन-सर्वस्व ॥ १५ ॥

राजनीति की कुछ समस्यायें

[श्रीयुत रमाशङ्कर प्रसाद, एम० ए० एल-एल० बी०]

समय के परिवर्तन ने समस्त संसार में राजनीति की कठिन समस्यायें उपस्थित कर दी हैं। सभ्यता का प्रवाह सङ्घ-जीवन (Corporate life) की ओर है, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने अधिकारों से सुपरिचित रहना अत्यावश्यक है। राजनीति संसार को बड़े वेग से प्रजातन्त्र की ओर ले जा रही है। इस समय हर एक स्त्री-पुरुष के लिए शासन की नीति और उसके नियमों का ज्ञान आवश्यक है। विज्ञान नित्य नये सम्बन्ध स्थापित कर रहा है। युद्ध और शान्ति की समस्याओं को हल करने की चेष्टा करना सब का धर्म हो गया है। स्वदेश-प्रेम और मनुष्यत्व-रक्षा के विचारों ने हर एक के कान खड़े कर दिये हैं। वर्तमान परिस्थितियाँ भारत को भी राजनैतिक निद्रा से जगा रही हैं।

इन सब धाराओं को प्रवाहित करने में योरप ने सब से बड़ा भाग लिया है। अतः वहाँ के राजनैतिक और सामाजिक विचारों का अध्ययन करना हमारे लिए परमावश्यक है। राजनीति के अध्ययन में निम्नलिखित ४ बातों पर विशेष ध्यान देना चाहिए—(१) राज्य की उत्पत्ति और उसका स्वरूप, (२) राज्य के कर्तव्य और उसके अधिकार, (३) प्रजा के कर्तव्य और उसके अधिकार और (४) शासन-प्रबन्ध।

हाब्स इँग्लेंड का प्रथम राजनैतिक विचारक है। इसकी गणना संसार के बड़े बड़े शास्त्रकारों के साथ की जा सकती है। सन् १५८८ में इसका जन्म एक अशिक्षित और क्रोधी स्वभाव के पादरी के घर हुआ था। यह वही वर्ष था जब महारानी एलिज़बेथ ने स्पेन की सामुद्रिक शक्ति को विध्वंस करके पहले पहल संसार में इँग्लेंड का सिर ऊँचा किया था और अपनी प्रजा के हृदय में अपने लिए, अपने वंश के लिए तथा शासक या राष्ट्र के लिए प्रेम और सम्मान का भाव उत्पन्न किया था। किन्तु ट्यूडर-वंश का अन्त होने पर, जब स्टुअर्ट्-वंश का राज्य स्थापित हुआ तब अनेक प्रकार के विघ्न उठने लगे। जिस नीति-निपुणता और चातुर्य से पहले के शासकों ने प्रजा को अपनाकर राज्य-विद्रोह का नाम मिटा दिया था उसका इन नये शासकों में अभाव था। राजा और प्रजा में अन्तर बढ़ता गया, धर्म और शासन-सम्बन्धी झगड़े दिन-प्रति-दिन भयङ्कर होते गये। अन्त में ऐसी विकट अवस्था आ पहुँची कि राजा और प्रजा में गृह-युद्ध छिड़ गया। उस समय धार्मिक और राजनैतिक विचारों में ऐसा परिवर्तन हो रहा था कि एक ओर धर्म-निष्ठ प्युरिटन लोगों ने स्वतन्त्रता का डङ्का बजा दिया, दूसरी ओर पार्लिमेंट ने प्रजाधिकार का झण्डा उठाया। राजा की मान-मर्यादा तथा शक्ति घटने लगी। सर्व-साधारण के हृदय में राजा के प्रति आदर और

प्रेम के स्थान पर घृणा और वैर के भाव उत्पन्न हो गये। ऐसी ही कठिन अवस्था में हाब्स ने अपने महत्त्व-पूर्ण विचारों को प्रकाशित किया। विचारधारा पर परिस्थितियों का जैसा प्रभाव पड़ता है उसका यह उदाहरण है।

प्रजातन्त्र-वादियों ने वैयक्तिक स्वतन्त्रता और प्रजा के अधिकार का प्रश्न एक स्वाभाविक नियम के आधार पर उठाया था। विपक्षियों को यह आवश्यकता हुई कि इनके विरुद्ध राजाधिकार के सिद्धान्त भी किसी वैसेही दृढ़ आधार पर रक्खे जायँ, और साथही क्रान्ति और अराजकता की सम्भावना भी मिटा दी जाय। फ़िल्मर और हॉब्स ने इस काम को उठाया और बहुत कुछ सफलता प्राप्त की। फ़िल्मर ने तो स्वाभाविक समता और समझौता दोनों को ही उड़ा दिया, परन्तु हॉब्स ने यह चतुरता की कि स्वाभाविक समता और सामाजिक समझौते (Social contract) के आधार पर ऐसे तर्कसिद्ध सिद्धान्त बनाये जिनका सारे योरप पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

हॉब्स की शैली अन्य अँगरेज़-लेखकों की अपेक्षा तर्क-युक्त है। इसका प्रधान कारण सुप्रसिद्ध तत्त्ववेत्ता बेकन और डेकार्टे की मित्रता है। इन लोगों की सङ्गति के प्रभाव से हॉब्स का चित्त विज्ञान (विशेषतः गणित) की ओर अधिक आकर्षित हो गया। अतः उसके विचारों और ग्रन्थों में वैज्ञानिकता विशेषरूप से झलकती है। गणितज्ञ के समान कुछ मूल-सिद्धान्तों और परिभाषाओं को मान कर उसने तर्क-द्वारा परिणाम निकालते हुए अपने विचारों को सिद्ध किया है। परन्तु उसने ऐतिहासिक दृष्टान्त, इतिहास की शिक्षा, पूर्व-लेखकों के विचार इत्यादि की ओर ध्यान नहीं दिया।

प्रारम्भ में हॉब्स ज्ञान और आनन्द-सम्बन्धी अपने सिद्धान्त का उल्लेख करता है। उसके मतानुसार ज्ञान केवल इन्द्रिय-द्वारा उपलभ्य है। वह कहता है कि किसी वस्तु के इन्द्रिय-ज्ञान से दो प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं—रुचि अथवा अरुचि। हृदय उस वस्तु की ओर आकर्षित होता है या उससे घृणा उत्पन्न होती है। प्रथम प्रकार की वस्तु अच्छी है और दूसरे प्रकार की बुरी। हॉब्स के विचारानुसार अच्छे-बुरे की यही पहचान है और इसी पर उसका आनन्द का सिद्धान्त निर्भर है। उसकी समझ में इन्द्रिय-जनित इच्छाओं की पूर्ति में ही आनन्द है। इस आनन्द की प्राप्ति शक्ति-द्वारा हो सकती है, और सबसे बड़ी शक्ति राष्ट्र है।

हॉब्स का कथन है कि स्वाभाविक अवस्था में मनुष्य सदा एक दूसरे से लड़ा करता है, क्योंकि (१) अपनी इच्छाओं को पूरी करने की चेष्टा, (२) दूसरों के अधिक बलवान् होजाने का भय और उनसे ईर्ष्या और (३) सबसे अधिक बलवान और प्रतिष्ठित होने की अपनी प्रबल आकांक्षा के कारण आपस में विरोध बढ़ता है, वैरभाव उत्पन्न होता है और अशान्ति फैलती है। स्वाभाविक समता के सिद्धान्त के अनुसार सबकी इच्छायें समान होती हैं, और इसी लिए लड़ाई-झगड़े होते रहते हैं। हाब्स की दृष्टि में मनुष्य स्वार्थी है। उसका जीवन उच्च आदर्शों और कलाओं से रहित, निःसङ्ग, अपकृष्ट, गर्हित, पाशव और अचिरस्थायी है। ऐसी अवस्था में उचित-अनुचित, न्याय-अन्याय इत्यादि का विचार होना असम्भव है। वह यह तो नहीं कहता कि ऐसी दशा किसी समय में अथवा किसी स्थान पर रही है। वह इसकी वास्तविकता पर जोर नहीं देता। किन्तु यह सोचने की बात है कि युद्ध-काल में बिना विचारे हत्या करना, अविवेकी के समान लूट-मार करना, असभ्य देशों में केवल बल-नीति का प्राधान्य होना तथा सभ्य देशों में और शान्ति के समय ताला लगाकर घर के बाहर निकलना, हथियार लेकर रास्ता चलना, अन्तर्राष्ट्रीय वैरभाव रखना—आदि बातों से क्या इस कथन की थोड़ी बहुत यथार्थता प्रकट नहीं है? क्या इन सबसे उक्त अवस्था की वास्तविकता नहीं सूचित होती? हॉब्स के मनुष्य-स्वभाव-सम्बन्धी इन विचारों की सङ्कीर्णता प्रत्यक्ष है। वह समझ नहीं सका कि मनुष्य का हृदय केवल उपर्युक्त इच्छाओं से ही नहीं भरा है। सामाजिक प्रवृत्ति शुद्ध प्रेम, सहज प्रीति, देश-भक्ति, परमार्थ-परायणता इत्यादि के लिए इस विचारक ने कोई स्थान नहीं रक्खा, प्राचीन तत्त्ववेत्ताओं के सारपूर्ण विचारों तथा ऐतिहासिक घटनाओं से उसे कुछ शिक्षा ग्रहण कर लेनी चाहिए थी।

अशान्ति और सङ्घर्ष से सुरक्षित रहने के लिए सब लोग एकत्र होकर समाज स्थापित करते हैं।

हरएक व्यक्ति प्रत्येक दूसरे व्यक्ति से कहता है कि देखो, मैं अपने ऊपर शासन करने का अपना सर्वाधिकार इस एक व्यक्तिको अथवा अनेक व्यक्तियों को, जो हम लोगों-द्वारा चुने जायँ समर्पण करता हूँ, किन्तु मैं इसी शर्त पर ऐसा करता हूँ कि तुम भी अपना अधिकार इसी प्रकार समर्पण करो। इस तरह समाज तैयार हुआ और शासक नियत किया गया। अधिकतर हॉब्स एक ही शासक (अर्थात् राजा) का वर्णन करता है। ज्ञात होता है कि उसके विचार के अनुसार स्वाभाविक अवस्था पूर्व-सामाजिक (pre-social) भी थी और पूर्व-राजनैतिक (pre-political) भी और एकही समझौते से समाज भी तैयार हुआ और राष्ट्र (State) भी। अतः यदि स्थिर राज्य-बन्धन तोड़ा जायगा, तो उससे समाज-बन्धन भी टूट जायगा। इससे प्रकट है कि राजा के विरुद्ध खड़ा होना अनुचित है। सब लोगों ने मिलकर समाज स्थापित किया और राजा बनाकर अपना अपना सब अधिकार उसको दे दिया। इस प्रतिज्ञा का पालन करना ही चाहिए, यद्यपि उस अविवेक के समय प्रतिज्ञा-पालन का औचित्य सिद्ध करना हॉब्स के लिए भी कठिन हो गया। लोगों का कर्तव्य तो स्पष्ट है पर उनका अधिकार सब चला गया। अब राजा की आज्ञा का पालन करना उनका धर्म है। किन्तु राजा का कोई उत्तर-दायित्व नहीं, क्योंकि उसने किसी प्रकार की प्रतिज्ञा नहीं की। यहां तक कि उसने रक्षा करने का भी वचन नहीं दिया और न यह काम उसको किसी श्रेष्ठ शक्ति ने सौंपा। अतः उससे विद्रोह करना किसी भी दशा में उचित नहीं है। वह तो अन्याय ही नहीं कर सकता; जो वह कहे अथवा करे वही न्याय है और उसके विरुद्ध अन्याय (injustice)। किन्तु उस समय हॉब्स ने यह नहीं सोचा कि मनुष्य को वास्तविक यथार्थता का इतना ज्ञान तथा अनुभव हो चुका है कि वह केवल एक विचारक-मात्र के कहने से ही अयथार्थता को अन्याय से अलग नहीं कर सकता। मान लिया कि राजा अन्याय नहीं करता। किन्तु यदि वह प्रजा की रक्षा न करे तो? हाब्स का उत्तर है तो कुछ नहीं, करे अथवा न करे, प्रजा का उस पर कुछ अधिकार नहीं, क्योंकि प्रजा ने तो अपना सारा अधिकार उसको पहले ही समर्पण कर दिया है यदि यह कहा जाय कि अल्प-मत को यह अधिकार है कि विद्रोह करे तो हाब्स उत्तर देता है कि उसका कैसा अधिकार? क्योंकि समझौते के समय अगर उस दल ने बहुमत को मान लिया तो वह समझौते के बन्धन में आ गया और यदि न माना तो वह अभी स्वाभाविक दशा में है और उसे कुछ अधिकार नहीं है। फिर यदि ऐसी अवस्था आ पहुँचे कि क़ानून के अर्थ में सन्देह उत्पन्न हो तो राजा ही का अर्थ मानना चाहिए, शास्त्रकारों और विचारकों का नहीं। इस बात में हॉब्स बोडिन ग्रोटियस और मैकियावेली से भी बढ़ गया है। मैकियावेली ने तो केवल यहीं तक कहा था कि धर्म और धार्मिक नीति से राजनीति को स्वतन्त्र रहना चाहिए। किन्तु हॉब्स ने यह सिद्धान्त बना दिया कि राजनीति धर्म-नीति से ऊपर है। उसकी राज-नीति में धर्म को स्थान नहीं। वह कहता है कि धार्मिक संस्थायें अशान्ति फैलाती हैं। वास्तव में ये शरीर की अँतड़ियों के कीड़े हैं। ग्रोटियस की तरह हॉब्स भी मानता था कि आचार और विधान-सम्बन्धी अधिकार विचार-सङ्गत हैं, किन्तु विचार किसका? यहाँ हॉब्स ग्रोटियस से बढ़ गया। वह उत्तर देता है—शास्त्रकारों और ईसाई-धर्मवेत्ताओं का विचार नहीं, बल्कि शासन-कर्त्ता का।

इस प्रकार राज्य स्थापित होने से राजा का कर्त्तव्य बहुत कम हो जाता है। अधिक से अधिक उसे अपनी प्रजा को युद्ध से और लड़ाई-झगड़ों से बचाना चाहिए, और इसके लिए भी वह उत्तरदायी नहीं है। अतएव प्रकट है कि शिक्षा और सभ्यता इत्यादि की ओर ध्यान देना हॉब्स राज्य का एक परम धर्म नहीं समझता। यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो हॉब्स के समझौते का सिद्धान्त कुछ ठीक नहीं जँचता। राजा जान-बूझ कर उससे अलग रक्खा गया है। इसका कोई विशेष कारण नहीं दिखाई देता। केवल उसको ज़िम्मेदारी से बचाने के लिए ऐसा किया गया है। किन्तु ऐसा मानते हुए भी यह पूछा जा सकता है कि पैत्रिक राज्य-प्रणाली कहां से आई, अथवा क्रॉमवेल जैसे आदमी यदि राजा हों तो इनकी न्याय्यता क्या है। वास्तव में प्रजा ने न तो प्रथम चार्ल्स को, न

द्वितीय चार्ल्स को और न क्राम्वेल को ही समझौता-द्वारा राजा बनाया था।

हॉब्स के बाद महान् विचारक लॉक आता है। इन दोनों के बीच में अँगरेज़ी-विचारकों में फिल्मर, सिडनी और हैलिफान्स के नाम विख्यात हैं। किन्तु इनमें कोई भी इन दोनों की योग्यता का न था।

जॉन लॉक का जन्म सन् १६३८ में हुआ था। इसी साल जर्मनी में पुफेंडाफ़ का भी जन्म हुआ। दूसरे चार्ल्स ने इसे देश से निर्वासित कर दिया था तो यह हालेंड में रहने लगा। दूसरे जेम्स के निर्वासित होने पर जब हालेंड-निवासी विलियम और उसकी पत्नी मेरी का राज्य इँगलेंड में स्थापित हुआ था तब यह अपने देश को लौटा।

हॉब्स ने राज-विद्रोह का विरोध करके राजा का अधिकार सर्वश्रेष्ठ ठहराया। अब लॉक की बारी आई कि राजा के अधिकार को प्रजा के अधिकार से नीचा दिखलाकर सन् १६८८ के राज्य-विद्रोह का औचित्य सिद्ध करे। हॉब्स की तरह इसने मनुष्य की एक स्वाभाविक दशा की कल्पना की। किन्तु अन्तर यह था कि इसकी समझ में वह दशा युद्धमय नहीं थी। युद्ध के स्थान में शान्ति और विचार को महत्त्व दिया गया था। इस अवस्था में मनुष्य का यह स्वाभाविक अधिकार था कि वह अपने जीवन, अपने धन और अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा करे।

वह स्वाभाविक दशा अधिकांश लोगों के दौर्बल्य और पाप-परायणता के कारण असह्य हो गई। अतएव एक समझौते की आवश्यकता हुई। तब सब लोगों ने मिलकर पूरे समाज को—हॉब्स की तरह एक अथवा अनेक को नहीं—अपने अपने अधिकारों को समर्पण कर दिया—और हॉब्स की तरह कुल अधिकारों को नहीं, बल्कि केवल अपराध-निर्णय और दण्ड के अधिकार को, जो स्वाभाविक दशा में हर एक व्यक्ति को अलग अलग था। इसलिए हर एक मनुष्य का धर्म है कि वह शासन करने के लिए अपनी सब शक्ति समाज को दे दे, और समाज के अधिकांश लोगों की राय के अनुसार कार्य करे। लॉक समझता है कि वास्तव में यह समझौता ऐतिहासिक है। इस से प्रकट है कि राज्य की सब शक्ति समाज ही की है। अतएव यदि किसी समय में शासन समाज की राय के विरुद्ध हो तो वह हटा दिया जाय और दूसरा स्थापित किया जाय।

लॉक के अनुसार शासन का प्रधान कर्तव्य विधि-विधान बनाना है इसलिए इसी पर राज्य-प्रणाली निर्भर है। लॉक ने संविधान और प्रबन्ध को अलग अलग करके राजनीति को एक नया सिद्धान्त बतलाया। एक और विशेषता उसकी यह है कि उसने स्वाभाविक अधिकारों का सिद्धान्त बतलाया, अर्थात् जीवन, स्वतन्त्रता और सम्पत्ति मनुष्य के स्वाभाविक अधिकार हैं। लॉक के सम्बन्ध में यह स्मरणीय है कि तर्क करते करते यह हॉब्स की तरह अंत तक नहीं पहुँचता। या यों कह लीजिए कि इसके राजनैतिक सिद्धान्त केवल कार्य-रूप में परिणत करने ही के लिए दिये गये हैं। बिलकुल शुद्ध परिभाषा, अधिकारों की सूक्ष्म सीमा इत्यादि से यह कम सम्बन्ध रखता है। हाब्स इसके विपरीत था। वास्तव में हॉब्स में इँग्लैंड-निवासियों की विशेषताओं का अभाव था।

हॉब्स और पुफेंडाफ़ ने राजनैतिक तथा सामाजिक समवाय, संयोग, संन्धि, समझौता से शासन को सर्वाधिकारसम्पन्न सिद्ध किया। लॉक ने उसी से शासन के अधिकारों को सार्वजनिक दिखलाया। उसने बतलाया है कि जो कुछ अधिकार है वह सब लोगों का है, किसी एक अथवा अनेक शासनकर्ताओं का नहीं।

हाब्स और लॉक के समझौते का अन्तर समझना आवश्यक है, क्योंकि वह काल ही समझौते का था। समकालीन विचारकों ने इसी के आधार पर राज-नैतिक सिद्धान्त बनाये। आगे चलकर रूशो ने भी इसी से बड़ा काम लिया, यहाँ तक कि अपने एक ग्रन्थ का नाम ही उसने सोशॅल कॉन्ट्रैक्ट रख दिया। हॉब्स के समझौते ने समाज और राष्ट्र दोनों स्थापित किये। लॉक के समझौते ने वास्तव में केवल राष्ट्र को ही स्थापित किया, क्योंकि उसकी स्वाभाविक दशा पूर्वसामाजिक नहीं, बल्कि पूर्व-राजनैतिक है। हॉब्स के समझौते में सब लोगों ने अपने अधिकार एक अन्य व्यक्ति को दे दिये।

लॉक के समझौते में सबने अपने अपने व्यक्ति-गत अधिकार को मिलाकर पूरे समाज का अधिकार बना दिया है। अतएव समाज जब और जैसे चाहे तब और तैसे उसका दुरुपयोग करे। इसी तर्क पर लॉक ने १६८८ का विद्रोह उचित बतलाया था। वास्तव में लॉक का समझौता हॉब्स के समझौते से कहीं अधिक तर्क-सङ्गत है। अब इन्हीं बातों पर अर्थात् स्वाभाविक दशा, समाज तथा राज्य की उत्पत्ति और समझौते के सम्बन्ध में भारतीय राजनीति की ओर ध्यान दीजिए।

ऐतरीय ब्राह्मण में राजा की उत्पत्ति की कथा यों है—सुरासुर-संग्राम में जब देवता लोग हार गये तब उन्होंने विचार किया कि हम लोगों के पराजय का कारण यही है कि हमारा कोई राजा नहीं है, अतएव आओ हम लोग एक राजा बना लें। सो सबकी राय से राजा बनाया गया। तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार इन्द्र को, जो सब देवताओं में छोटा था, सब ने शक्तियाँ प्रदान कीं।

याज्ञवल्क्यस्मृति की एक टीका में बतलाया गया है कि जब देवताओं तथा मनुष्यों की उदारता-परोपकारिता से सर्वसाधारण वश में नहीं आते थे तब प्रजापति ने पूछा कि इनको वश में कौन ला सकता है? देवताओं ने उत्तर दिया कि हम लोग भिन्न भिन्न गुणों को मिलाकर एक नररूप राजा बनायेंगे।

महाभारत में शासन की उत्पत्ति दो प्रकार से बतलाई गई है। एक तो यह है कि आदि-काल में मनुष्य देवताओं के बराबर थे और अपनी इच्छानुसार स्वर्ग अथवा पृथ्वी पर रहते रहे, किसी को कुछ कष्ट न था, सभी प्रसन्न थे, न राज्य की आवश्यकता थी, न राजा की, न दंड की। किन्तु धीरे धीरे इस दशा का लोप होता गया। मनुष्य पापों में फँसने लगे, काम, क्रोध इत्यादि का समय आया, देवता डरे और विष्णु से जाकर प्रार्थना की। तब विष्णु ने एक राजा बनाया। स्मरण रहे कि राजा को स्वयं विष्णु ने बनाया। इसमें लोगों का भाग न था, समझौता न था।

दूसरी उत्पत्ति इस प्रकार है। स्वाभाविक दशा भयङ्कर अराजकता की है, जिसमें मनुष्य एक दूसरे से लड़ा करते थे। जब यह दशा असह्य होगई तब सब लोगों ने समझौते कर निश्चय किया कि जो मनुष्य कोई अत्याचार करे उसे सब लोग छोड़ दें, अर्थात् उसका सामाजिक बहिष्कार कर दें। कुछ समय तक तो यह प्रथा चली, किन्तु अन्त में राजा की आवश्यकता मालूम पड़ी। तब सब लोग मिलकर परम पिता के पास पहुँचे और कहा कि आप हम लोगों में किसी योग्य आदमी को राजा बना दें। तब मनु राजा बनाये गये। शर्त यह रक्खी गई कि राजा प्रजा की रक्षा करेगा और प्रजा उसको कर देगी। याद रहे कि दोनों राजा और प्रजा बन्धन में हैं—दोनों की जिम्मेदारी है, न कि एक ही की।

महाभारत ने राज-विद्रोह करना भी उचित बतलाया है। यदि राजा प्रजा की रक्षा न करे और धर्म-पथ को त्याग अधर्मी हो जाय तो प्रजा उसे सकुटुम्ब मार डाले।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र में भी राष्ट्र की उत्पत्ति समझौते से बतलाई गई है। जब सब लोग स्वाभाविक दशा की नीति से व्याकुल हो गये तब उन्होंने मनु को राजा चुना। राजा ने उनकी रक्षा और हित का भार उठाया। प्रजा ने उसको कर देना स्वीकार किया। अतः उत्तर-दायित्व दोनों का रहा।

बौद्ध-ग्रन्थों ने समझौते के सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन किया है। पहले लोगों के सूक्ष्म शरीर थे। हर एक की सौन्दर्यमय दिव्य मूर्ति आकाश में फिरा करती थी। फिर पृथ्वी बनी, सूर्य और चन्द्रमा प्रकट हुए, मनुष्यों में लिङ्ग-भेद उत्पन्न हुआ, प्रेम और काम की इच्छा हुई, भोजन इत्यादि प्रारम्भ हुआ। इन कारणों से कष्ट भी होने लगे, और चोरी इत्यादि भी शुरू हुई। तब सब लोगों ने मिल कर समझौते किये। अपनी अपनी सम्पत्ति का निश्चय हुआ, और तब एक राजा चुना गया जो उनमें सबसे बड़ा, बलवान् और सुन्दर था। इस समझौते में राजा से कहा गया कि हम लोग तुमको अपनी आमदनी का एक अंश देंगे, और तुम हम लोगों को हमारे कर्मों का उचित फल देना। हममें से जो दण्ड-योग्य हो उसको दण्ड देना, जो उपहार-योग्य हो उसको उपहार देना। इससे प्रत्यक्ष है कि दोनों को अपना अपना कर्तव्य करना है। दोनों इस समझौते को निवाहने

के लिए जिम्मेदार है। दूसरी बात यह है कि राजा की स्थिति लोगों की सम्मति से ही है। जातक ग्रन्थों से यह भी मालूम होता है कि अत्याचारी राजा को मार डालना और राज-विद्रोह करके किसी को गद्दी पर बैठाना प्रजा के लिए उचित है। उपर्युक्त भारतीय विचारों से स्पष्ट होता है कि—

(१) वैदिक ग्रन्थों, स्मृतियों और महाभारत के अनुसार राजा को ईश्वर ने बनाया है। उसका कर्तव्य प्रजा की रक्षा करना, अशान्ति दूर करना और युद्ध में सफलता प्राप्त करना है। प्रजा का कर्तव्य कर देना है। अतः दोनों की ज़िम्मेदारी है और यदि राजा अपना कर्तव्य पूरा न करे तो महाभारत के अनुसार वह मार डाला जा सकता है।

(२) अर्थ-शास्त्र और बौद्ध-ग्रन्थों में राज्य की उत्पत्ति समझौता-द्वारा बतलाई गई है। समझौतों में राजा और प्रजा दोनों सम्मिलित हैं। राजा प्रजा की रक्षा, हित और कर्म-फल-प्रदान का भार उठाता है, प्रजा कर देने का भार उठाती है—दोनों उत्तरदायी हैं। यदि राजा अपना धर्म पालन न करे तो प्रजा उसे हटा सकती है।

(३) व्यक्ति के अधिकारों की ओर ध्यान नहीं दिया गया है।

(४) महाभारत और बौद्ध-ग्रन्थों में अनेक समझौते पाये जाते हैं। राज्य के समझौते के पहले ही समझौतों-द्वारा सामाजिक नियम नियत कर दिये गये हैं। अतः राज्य-बन्धन समाज-बन्धन से अलग कर दिया गया है, जो हॉब्स न कर सका। समाज भी केवल एक समझौते पर स्थिर नहीं है, बल्कि अनेक पर।

(५) राजा के धर्म और कर्तव्य पर अधिक ध्यान दिया गया है। प्रजा केवल कर देने के लिए ज़िम्मेदार है।

भारतीयों के प्रति

[श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

आदि-शक्ति की हम सन्तति हैं, करना नहीं शक्ति-सञ्चय,
कौन शक्ति है जो सदैव ही यों हम पर पा सके विजय !
भारतीय वीरो ! जागृत हो, पहनो तुम सब वीर-वलय,
बोलो गद्गद-मुग्ध-कण्ठ से, जननी-जन्म-भूमि की जय !
फड़कें त्रिंश कोटि बाहु-द्वय,
जयति जन्मभू जयति जयति जय।

भय का बन्धन तोड़ अबाधित त्रिंश कोटि हो जावें मन,
दिव्य दमकते आत्मिक बल से होवें त्रिंश कोटि आनन,
जन्म-भूमि का हित-चिन्तन हो त्रिंश कोटि मस्तक का काम
षष्टि कोटि कर लगे हुए हों उसकी रक्षा में अविराम !
सुदृढ़ आत्म-विश्वास उदित होकर विनष्ट सारा संशय,
मन्द भाग्य में हो भाग्योदय,
जयति भरत भूखंड जयति जय !

त्रिंश कोटि सुस्थिर स्वर गाते हों स्वतन्त्रता-भैरव-गान,
वज्राघातों के सम्मुख भी रक्खें हृदय-देश का मान !
पशुबल को पद से दल कर ही, भारतीय पद ले विश्राम,
हो भारत के भव्य भाल पर फिर स्वतन्त्रता-तिलक ललाम !
फिर उसकी छत्रच्छाया में हो जावे सब जग निर्भय।
कहे विश्व हो परम-प्रेममय,
जयति जगद्गुरु देश जयति जय !

देश-व्याप्त करुणा-सागर से निकल वीरता रमा अनूप,
दिखलावे वह सारे जग को निज सुन्दर, दुर्धर्ष स्वरूप !
जिससे जग के अहंभाव का हो जावे बस सत्वर क्षय,
पर हो हर्षित वही हृदय में आये चरणों पर सविनय,
जगरोमाञ्चित कर कर गूँजे उसका विनय-स्वर अक्षय,
दक्षिणाब्धि से कहे हिमालय,
जयति महाबल देश जयति जय !

धन्य चरण धोकर प्रसिद्ध हो सागर का विस्तार अतल,
रहे चरण-सेवक सा बनकर वश्य विनीत वायु-मण्डल।
लिखा हुआ हो यूतअनिल की बृहत् पताका के ऊपर
पद-विनीत होगा न कौन, यह किसका साहस है भूपर,
स्वर्णाक्षर से लिखा हुआ हो भारत-नभ पर "विश्वविजय",

हो चिह्नित भारत-चरणद्वय—
सद्विवेक साधना जयति जय !

कहती है माता, 'न वत्स ! तुम करना कभी काल का भय।'
भगिनी क्या कहती है करके समुत्साह से दृग जलमय,
भ्रातः, इस रण-नाटक में तुम करना कुछ ऐसा अभिनय,
जिसे देखकर सब जग पावे कायरता के ऊपर जय।'
पत्नी कहती है, 'कर दे यह भुजा तुम्हारी नष्ट अनय,

सत्य, प्रजा-स्वत्वों का आलय,
सब देशों का देश जयति जय !

डेन्मार्क

[श्रीयुत सूर्य वर्मा, बी० ए०]

डेन्मार्क योरप में एक बहुत छोटा-सा देश है। तो भी उसने कृषि में इतनी उन्नति की है कि सारे संसार में उसका नाम हो गया है। भारत-वासियों के लिए उसकी उन्नति की कथा बड़ी शिक्षाप्रद है। इसी से आज उसके सम्बन्ध में कुछ बातें लिखी जाती हैं।

डेन्मार्क जटलैण्ड प्रायद्वीप, ज़ीलैण्ड तथा फ़िन द्वीपों के मिलने से बना है। इनके अतिरिक्त समुद्रतट पर छोटे छोटे अनेक द्वीपसमूह और हैं जिन्हें इसी देश के अन्तर्गत समझना चाहिए। डेन्मार्क का प्रकृति-सौन्दर्य किसी देश से कम नहीं है। किन्तु न तो यहाँ कोई पहाड़ है और न कोई बड़ी नदी ही। आबादी ३७ लाख के लगभग है जिसमें ६ लाख केवल कोपेनहेगन ही में रहते हैं।

यहूदियों की तरह डेन लोग भी संसार के सभी देशों में पाये जाते हैं। डेन बड़े बातूनी होते हैं। ये लोग बड़े हँसमुख भी होते हैं। ख़ुद तो हँसते ही हैं पर दूसरों को हँसाने में भी ये चतुर होते हैं। डेन अपनी तीक्ष्ण बुद्धि के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। अँगरेज़ी, जर्मन, और फ्रेंच भाषाओं को ये लोग भली प्रकार लिख-पढ़ सकते हैं। इन भाषाओं के साहित्य से भी ये परिचित हैं। डेनिश भाषा जर्मन भाषा से बहुत मिलती-जुलती है। उसका कोई व्याकरण नहीं है।

डेन्मार्क में छोटे-बड़ों के बीच में बहुत कम भेद है। अमीर-ग़रीब सब आपस में प्रेम से रहते हैं और एक दूसरे से बराबरी का बर्ताव करते हैं। ग़रीबों की दशा अच्छी है। उनको भर पेट खाना मिलता है जिससे वे सदैव सन्तुष्ट रहते हैं। उनका सामाजिक आचार-व्यवहार भी शुद्ध है। तलाक़ की प्रथा यहाँ अवश्य प्रचलित है। परन्तु वह इस रीति से किया जाता है कि लोगों को कानों-कान ख़बर भी नहीं मिलती। पति-पत्नी जब दोनों राज़ी होते हैं तभी आपस में तलाक़ हो सकता है। अँगरेज़ों की तरह यहाँ तलाक़ का समाचार पत्रों में नहीं छपता। डेन लोगों को अँगरेज़ों की यह नीति बिलकुल पसंद नहीं है। इनका वैवाहिक जीवन सुखद होता है। पति पत्नी का सदैव आदर करता है, हर तरह की बातों में उसकी राय लिया करता है। इसी प्रकार स्त्री भी अपने पति से बड़ा स्नेह रखती है और उसके हित की कामना करती रहती है। ये सदाचारी होते हैं।

डेन्मार्क वैज्ञानिकों का घर है। विज्ञान के प्रत्येक विभाग में यहां के सुप्रसिद्ध विद्वानों ने खोज की है। कुछ तो ऐसे है जो संसार में प्रसिद्ध है। आधुनिक ज्योतिषी टीको ब्रेट को कौन नहीं जानता ? वह यहीं का निवासी था। इसी प्रकार बिजली के तार का अन्वेषण करनेवाला आर्स्टेड, फ़िन्सन-किरणों का अन्वेषणकर्त्ता नील्स फ़िन्सेन और बेतार का तार की कला में कुशल पोल्सेन—ये सब इसी देश में

कोपेनहेगन में नृत्य-शिक्षा

डेन्मार्क के प्रसिद्ध अश्वारोही

हो गये है। भाषा-विज्ञान-विशारद विल्हेल्म टामसेन की जन्म-भूमि यही देश है। इसी देश मे जेस्पर्सन ने भी जन्म लिया है जिसने 'Language, its nature and development नामक ग्रन्थ लिखकर अपनी विद्वत्ता से संसार को चकित कर दिया है। आज-कल

डेन्मार्क के गर्ल-स्काउट

भी डेन्मार्क में विद्वानों की कमी नहीं है। सोरेन कर्कगार्ड जैसे दार्शनिक, ऐन्डर्सन जैसे आख्यायिका-लेखक और ब्रैन्ड जैसे शेकस्पियर के समालोचक योरप में भी कम सुनने में आते हैं। ये सब डेन्मार्क के ही विद्वान् हैं।

डेन्मार्क में ललित-कलाओं की भी ख़ूब उन्नति हो रही है। चित्रकारों की तो इसे जन्म-भूमि ही कहनी चाहिए। स्कोवगार्ड यहाँ का एक प्रसिद्ध चित्रकार हो गया है। इसी प्रकार यहाँ कई सुप्रसिद्ध और श्रेष्ठ संगीतज्ञ भी हो गये हैं। वहाँ की कलाओं के सम्बन्ध में एक बात कहनी है। और वह यह कि डेन्मार्क की कलाओं में भावों और विचारों का अभाव बहुत खटकता है। उनकी सीमा बहुत सङ्कुचित है।

डेन्मार्क के लोगों में राष्ट्रीयता से वह प्रेम नहीं दिखाई पड़ता जो कि अन्य योरपीय देशों में है। जिस देश ने जर्मनों के विरुद्ध सन् १८६४ में आन्दोलन किया था, जिस देश में उस समय देशभक्ति की उमंगों से भरे हुए नवयुवक मरने-मारने के लिए सदैव उद्यत रहते थे, उसी देश के लोगों में आज राष्ट्रीयता और देश-भक्ति की उन भावनाओं का अभाव है! कैसे आश्चर्य की बात है! तथापि डेन्मार्क में शायद ही ऐसा कोई आदमी मिले जो अपने राष्ट्रीय झंडे के प्रति स्नेह और अभिमान न रखता हो। इस देश की यह एक विलक्षण रीति है।

डेन्मार्क की राजनीति में आर्थिक समस्याओं को अधिक महत्त्व मिलता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय विषयों के सम्बन्ध में बहुत कम विचार किया जाता है। राजनीति और राजनीतिज्ञों से यहाँवाले बड़े उदासीन रहते हैं। यही नहीं, उन पर उनका विश्वास भी नहीं है। डेन्मार्क की चाहे जिस राजनैतिक सभा में जाइए, वहाँ उत्साह नहीं दीख पड़ेगा। धार्मिक विषयों में भी उन लोगों का अनुराग नहीं है।

इन लोगों का प्रधान खेल फुटबाल है। यह खेल गर्मी और जाड़ा दोनों ऋतुओं में खेला जाता है। इस खेल में इँग्लेंड को छोड़ कर योरप में यह देश सबसे बढ़ा-चढ़ा हुआ है। कभी कभी तो यह इँग्लेंड से भी बाज़ी मार ले जाता है। इधर कुछ दिनों से यहाँ क्रिकेट की ओर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ था। परन्तु अब उसकी लोकप्रियता वैसी नहीं रही। डेन्मार्क के लोग प्रथम श्रेणी के नाविक हैं। उनके बराबर संसार में अन्य कहीं तेज़ और निपुण

डेन्मार्क के स्काउट

तैराक नहीं हैं। कुछ लोग तो ऐसे भी हैं जो जाड़ों के दिनों में भी बर्फ़ीले समुद्र में बराबर स्नान करते रहते हैं।

डेन्मार्क में जिमनास्टिक का बहुत अच्छा प्रबन्ध है। बचपन ही से हर एक लड़के-लड़की को इसकी शिक्षा दी

जाती है। डंबल का उतना प्रचार नहीं है। शरीर के गठन की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है, केवल उसको मोटा बनाने से इन्हें संतोष नहीं। इसी का प्रभाव है जिससे ये लोग बड़े फुर्तीले हैं। प्राचीन ग्रीस-देश में जिस प्रकार जिमनास्टिक का उद्देश्य केवल मनुष्य के शरीर-गठन को
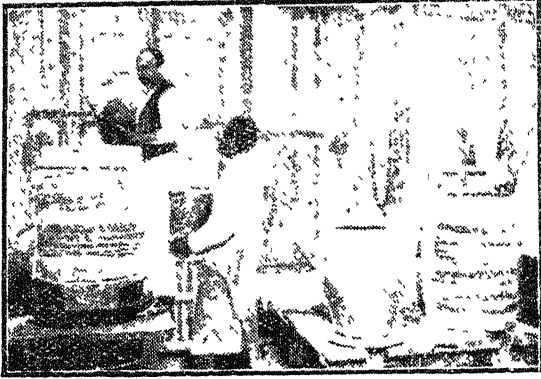
बर्तन तैयार किये जा रहे हैं

उत्तम बनाना था, उसी प्रकार यहां भी है। जिमनास्टिक करने ही से ये लोग हर तरह के खेलों में हमेशा सफलता प्राप्त करते हैं। सुबह होते ही बच्चे, बूढ़े, जवान सभी व्यायामशाला में उपस्थित होकर कसरत करते हैं। डेन लोगों के स्वस्थ होने का एक कारण व्यायाम तो है ही, परन्तु इस देश का जलवायु भी इस सम्बन्ध में कुछ कम लाभप्रद नहीं है।

डेन्मार्क दो बातों में सारे संसार का आदर्श बन गया है। पहली बात है यहां के हाई-स्कूल के पठन-पाठन का नियम तथा कार्यप्रणाली और दूसरी यहाँ की सहयोग-समितियां। इन्हीं के अन्तर्गत डेन्मार्क की वैज्ञानिक खेती को भी समझना चाहिए। यों तो डेन्मार्क की ज़मीन अधिक उपजाऊ नहीं है; लेकिन डेन लोगों ने अपनी मिहनत और बुद्धि के बल से उसको इतनी ऊपजाऊ बना दिया है कि अन्य देशवासी आश्चर्य करते हैं। ५० लाख वर्ग एकड़ की धरती से जो अनाज आदि पैदा होता है उससे यहांवालों का निर्वाह तो होता ही है, ऊपर से बहुत-सा अंश बाहर भी भेजा जाता है। वास्तव में जितना दूध, मक्खन और अण्डा यहां से बाहर भेजा जाता है उतना संसार में शायद और किसी देश से न भेजा जाता हो। इसीलिए दुनिया के सभी देशों से कृषि में निपुण लोग आकर डेन्मार्क की कृषि का निरीक्षण करते हैं और उससे लाभ उठाते हैं।

बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओं का तीन-चौथाई अंश खेती से सम्बन्ध रखता है। डेन्मार्क में छोटे छोटे खेतों के ही द्वारा किसान लोग खेती करते हैं। इतने ही से उनका काम चल जाता है और वे भूखों नहीं मरने पाते।

पहले यहां के किसान अपना अपना प्रबन्ध अलग अलग कर लिया करते थे। एक को दूसरे से कोई मतलब नहीं था। हर एक किसान अपने लिए मक्खन बनाता और उसको बाहर भेजता था। परन्तु जब से वहाँ सहयोग-समितियां चल निकली हैं तब से कृषि के व्यवसाय की ख़ूब उन्नति हुई है। बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में ८३ प्रतिशत के खेत सहयोग-समितियों के अधिकार में थे। इसी प्रकार ८१ प्रतिशत पशु भी इन्हीं समितियों के अधीन थे। इस देश में क़रीब १० लाख गौएँ रहती हैं, जिनमें आधी काली या सफ़ेद रङ्ग की है और आधी लाल रङ्ग की।

बर्तन तैयार किये जा रहे हैं

यहाँ की गौएँ बड़ी दुधारू होती हैं। हर एक पैदावार के लिए यहां अलग अलग समितियां हैं। पैदावार के अतिरिक्त यहाँ सहयोगी-बैंक भी हैं। बीज, चारा, अनाज, मशीन, कोयला, खाद प्रस्तुत करने के लिए भी यहाँ सहयोग-समितियां बनी हैं। डेन्मार्क का व्यापार भी उन्नति

कर रहा है। परन्तु खेती की तरह व्यापार में सहयोग से काम नहीं लिया जाता। लड़ाई के बाद से योरप के व्यापार में डेन्मार्क ने भी एक महत्त्व-पूर्ण स्थान पा लिया है। डेन्मार्क के व्यापारी अधिक संख्या में अमेरिका में आबाद हैं और वहाँ अपने देश के व्यापार को तरक्क़ी देने का प्रयत्न कर रहे है।

डेन्मार्क की कला-निपुण स्त्रियाँ चीनी-बर्तनों पर काम कर रही है

डेन्मार्क का हाई-स्कूल संसार की एक असाधारण संस्था है। उसको ग्रंडट्विग ने कोई ८० वर्ष हुए स्थापित किया था। ग्रंडट्विग का पिता दक्षिण ज़ीलैण्ड में पादरी का काम करता था। उसी के यहाँ सन् १७८३ में ग्रंडट्विग का जन्म हुआ। ग्रंडट्विग उस समय हुआ था जब इँग्लेंड से लड़ाई में डेन्मार्क हार चुका था और स्वीडन डेन्मार्क की अधीनता से स्वतन्त्र होगया था। इनके कारण डेन्मार्क को जो क्षति पहुँची उससे डेन्मार्क की अवस्था बुरी हो रही थी। देश में असन्तोष और अविश्वास ने घर कर लिया था। ग्रंडट्विग ने इस अवस्था से लाभ उठाया और अपने स्कूल को राष्ट्रीयता की नींव पर खड़ा किया। उद्देश तो उसको मिल गया, अब केवल पाठन-रीति को खोजना बाक़ी था। अन्त में पाठन-रीति और शिक्षा-प्रणाली भी उसको सूझ गई। डेनिश हाई-स्कूल में लड़के वहां पुस्तकों के कीड़े नहीं बनाये जाते, और न उनको यही सिखाया जाता है कि जो कुछ पुस्तकों में लिखा गया है, वही सत्य है। वहाँ बालकों को देश-भक्ति का पाठ पढ़ाया जाता है। उनको बताया जाता है कि यहाँ के स्त्री-पुरुष डेनिश क्यों हैं, उनके देश का सन्देश क्या है, उनका देश किन विचारों और आचारों पर खड़ा है। सारांश यह कि बालक-बालिकाओं को वास्तविक जीवन की शिक्षा दी जाती है, न कि गूढ़, कठिन और ठोस बातों की शिक्षा, जिनके समझने में बालकों को कठिनाई पड़े। इसी शिक्षा-प्रणाली के द्वारा डेन्मार्क में जाग्रति हुई है और इसी के द्वारा यहां के बच्चे शीलता और सदाचार का पाठ पढ़ते हैं। परीक्षा में सफल और असफल होने से उनके भाग्य का निपटारा नहीं होता।

डेनिश स्कूलों में किन किन विषयों की शिक्षा दी जाती है और किस रीति से दी जाती है, इसको भी जान लेना चाहिए। कुल विषयों को हम इन दो भागों में बांट सकते हैं—(१) इतिहास, (२) विज्ञान। इतिहास के अन्दर स्कैन्डिनेविया का इतिहास, संसार का इतिहास, साहित्य का इतिहास, धर्म का इतिहास तथा सभ्यता का इतिहास आ जाते है। विज्ञान के अन्तर्गत ज्योतिष, रसायन, भूगर्भ और वनस्पति-शास्त्र आ जाते है। गणित को भी इन्हीं के साथ समझना चाहिए।

कला-निपुण स्त्रियाँ

विज्ञान में प्रयोगशालाओं से सहायता ली जाती है। परन्तु इतिहास के पठन-पाठन में वार्तालाप ही प्रधान साधन है। शिक्षक और विद्यार्थी आपस में बात-चीत और प्रश्न करके अपने पाठ को समाप्त करते हैं।

विद्यार्थी अपने अध्यापक से सीखने की कोशिश करता है। उसी प्रकार अध्यापक अपने विद्यार्थियों की बातचीत से भी लाभ उठाता है।

पाठशाला प्रतिदिन प्रातःकाल और तीसरे पहर खुलता है। इसी समय पढ़ाई होती है। प्रत्येक विषय

चीनी के बढ़िया बर्तन

डेनिश भाषा में ही पढ़ाया जाता है, क्योंकि जिस देश में मातृ-भाषा के माध्यम से शिक्षा नहीं होती उस देश को ये लोग देश नहीं समझते और उनकी दृष्टि में वह देश कभी राष्ट्रीयता की भावनाओं से युक्त नहीं हो सकता। डेनिश भाषा काम चलाने के लिए नहीं सिखलाई जाती। बालकों को अपनी मातृ-भाषा का अच्छा ज्ञान हो जाता है। कहीं कहीं विदेशी भाषाओं (अर्थात् अँग-रेज़ी, जर्मन और फ्रेंच) को पढ़ाने के लिए भी प्रबन्ध है। परन्तु सब जगह समाज-शास्त्र का विषय भी अब पाठ्य-क्रम में सम्मिलित कर लिया गया है। इस शास्त्र की शिक्षा भी ऐतिहासिक ढङ्ग पर की जाती है।

एक समय डेन्मार्क के लोग उपनिवेश क़ायम करने में भी व्यस्त थे। विषुवत्‌रेखा और आर्कटिक रेखाओं के पार तक इन्होंने यात्रा की थी। उसी के द्वारा ये लोग वेस्ट इण्डीज़ और आइसलैण्ड में अपने उपनिवेश क़ायम करने में सफल हुए थे। डेनिश वेस्ट इण्डीज़ को तो इन्होंने संयुक्त-राज्य अमेरिका के हाथ बेच दिया और आइसलैण्ड को स्वतन्त्रता दे दी है। केवल ग्रीनलैंड ही इनके अधीन अब बच रहा है। आज से कोई ३०० वर्ष पहले हैन्स एज नामक व्यक्ति सबसे पहले डेनिश-उप-निवेश क़ायम करने के लिए यहाँ से निकला था और सफल हुआ।

ग्रीनलैंड और एस्किमों लोगों की तरह डेन्मार्क के निवासी भी मङ्गोल जाति के हैं। उनका माथा चौड़ा फैली हुई आँखें, शरीर दुबला और बाल काले होते हैं, स्त्री-पुरुष सभी लोमड़ी और रेनडियर की खाल का पाय-जामा पहिनते हैं। स्त्रियाँ रङ्ग-बिरङ्गी और भड़कीली पोशाक पहनना बहुत पसंद करती हैं, यहाँ तक कि उनके जूते भी गहरे रङ्गों में रँगे होते हैं। ये लोग कच्चा मांस खाने में तनिक भी नहीं हिचकते। अगर ज़रूरत हुई तो कभी कभी उसे उबाल भी लेते हैं। जाड़े और गर्मी के लिए इनके मकान अलग अलग हैं। गर्मी के मकान तो थोड़े ही दिनों के लिए होते हैं, क्योंकि यहाँ गर्मी बहुत कम पड़ती है। मछली पकड़ने या शिकार खेलने के लिए जब ये गर्मियों में निकलते हैं तब अपने साथ कुछ लकड़ी के डण्डे आदि लेते जाते हैं और जहाँ ठहरना होता है वहाँ इन्हीं की मदद से घर तैयार कर
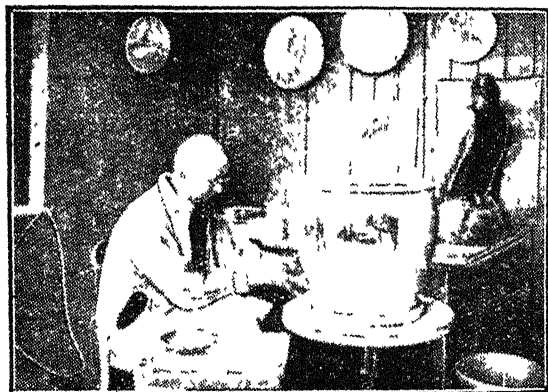
एक कला-निपुण पुरुष

लेते हैं। जाड़ों की बात ही दूसरी है। जाड़ों में ये लोग ज़मीन के नीचे पत्थरों के घर में रहते हैं। घरों की छत घास-फूस से बनती है। प्रकाश के लिए तेल का दिया भी जलाते हैं। एक एक घर में दो-तीन कुटुम्ब के लोग रहते हैं।

मछली फँसाने के लिए ये लोग लोहे के कांटे तैयार करते हैं। रेनडियर और अन्य जानवरों की खाल से जो चीज़ें बनाते है वे बहुत अच्छी होती हैं। स्लेजगाड़ियों का खींचने-वाला कुत्ता तो संसार भर मे प्रसिद्ध है। ये तो देश की बातें हुईं।

डेन्मार्क की स्त्रियों को व्यायाम से बड़ी रुचि है। यहाँ वे नाव चला रही है

डेन्मार्क के इतिहास से भी हम लोग अनेक शिक्षायें ले सकते हैं।

आठवीं सदी में जब स्वीडनवाले पूर्व और दक्षिण की ओर बढ़े तब डेन्मार्क के लोगों ने भी पश्चिम की ओर धावा मारा। इसी शताब्दी से डेन्मार्क और डेन्मार्क के रहनेवालों का इतिहास प्रारम्भ होता है।

नवीं और दसवीं सदियों में ये लोग पश्चिम की ओर बढ़ते-बढ़ते इँग्लेंड में पहुँच गये। पहले पहल इनका विचार इस देश में बसने का नहीं था। ये केवल लूट-मार करना चाहते और इसी से सन्तुष्ट रहते थे। इसी लिए झुण्ड के झुण्ड जहाज़ों मे चढ़कर यहां आया करते और लूट-मार मचाते और घर-द्वार जलाते हुए अँगरेज़ों को तङ्ग कर वापस चले जाते थे। धीरे धीरे इन्होंने इँग्लेंड में अपनी हुकूमत जमानी शुरू की और समयान्तर मे यहीं बस गये। इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान अँगरेज़ जाति में इनका भी ख़ून सम्मिलित है।

इसके बाद कैन्यूट महान् का उदय हुआ। यह जाति का तो डेन था; लेकिन इसने इँग्लेंड का भी शासन किया। इँग्लेंड के अतिरिक्त उसके साम्राज्य में स्काटलेंड, डेन्मार्क और नार्वे तक शामिल थे। बाल्टिक-सागर के दक्षिण तटवाला वेन्डिश देश भी इसी के अधीन था। इसने इस दृढ़ता और शान्ति से राज्य किया कि कोई उसको तोड़ने का साहस नहीं कर सका। कैन्यूट के शासन-काल में डेनिश-साम्राज्य की ख़ूब उन्नति हुई। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद ही वह नष्ट-भ्रष्ट हो गई। तथापि डेन लोगों के दिमाग़ से फिर से साम्राज्य स्थापित करने का निश्चय नहीं निकला। इस ओर वे बराबर प्रयत्न करते गये और इँग्लेंड को किसी न किसी प्रकार अपने हाथ में लाने का बहाना ढूँढ़ते गये। यहाँ तक कि चौदहवीं शताब्दी मे वल्डेमार चतुर्थ के समय में (१३४०-७५) उन्होंने इँग्लेंड पर धावा करने का पूरा पूरा प्रबन्ध भी कर लिया था।

कैन्यूट की मृत्यु होते ही नार्वे और इँग्लेंड डेन्मार्क-वालों के हाथ से निकल गये। इस पर भी तेरहवीं शताब्दी तक योरप में इन्हीं का बोल-बाला रहा। स्कैन्डेनेविया में सबसे पहले यही ईसाई धर्म में दीक्षित हुए थे। इनके राज्य का विस्तार होल्स्टीन से रीगा की खाड़ी और वेनर झील से एल्ब झील तक था। जन-

डेन्मार्क की एक साइकिल-दौड़
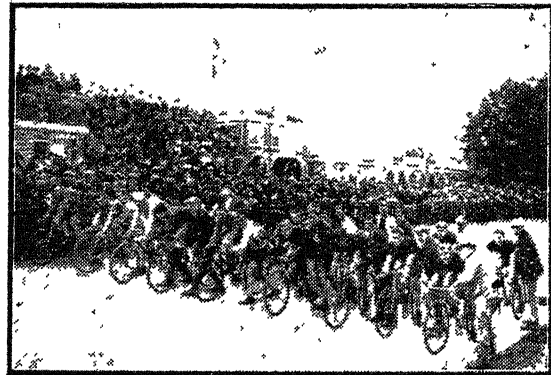
श्रुति है कि १२१९ ई० में रेवल के पास इस्थोनियावालों से इनका युद्ध छिड़ा था जिसमें इनकी हार हुई। इस युद्ध में इन लोगों का झण्डा छिन गया और इनको बड़ी क्षति उठानी पड़ी। युद्ध के समाप्त होने के थोड़ी ही देर

बाद यकायक आकाश से लाल रङ्ग का एक झण्डा पृथ्वी पर गिरा जिसके बीच में सफ़ेद रङ्ग में 'क्रास' का चिह्न बना हुआ था। डेन लोग इसी झण्डे के नीचे एकत्र हुए और इस वीरता से शत्रुओं का सामना किया कि उनको परास्त करने में देर न लगी। आगे चलकर इसी

डेन्मार्क के ग्रामीण स्त्री-पुरुष

को उन्होंने अपना राष्ट्रीय झण्डा बनाया। आज भी उनका झण्डा इसी रङ्ग का है।

विजयी वेल्डरमार द्वितीय की मृत्यु के बाद सन् १२४१ में मध्यकालीन डेन्मार्क के गौरव का अन्त हुआ। एक बार वेल्डरमार द्वितीय जर्मनी के एक राजा के यहां गया था जो उसी के अधीन था। बाद में उस राजा ने छल से वेल्डरमार को एल्ब के क़िले में बन्द कर दिया। बेचारा वेल्डरमार इस क़िले में तीन वर्ष तक तड़पता रहा। अन्त में जब किसी तरह मुक्त होने की आशा न रही तब उसको विवशतः डेन्मार्क के अन्तर्गत समस्त राज्यों को छोड़ना पड़ा। इस तरह पचास वर्ष में डेन्मार्क के साम्राज्य की जितनी वृद्धि हुई थी वह सब हाथ से निकल गई। वेल्डरमार की मृत्यु के बाद ही डेन्मार्क में क्रान्ति मची। इसके बाद प्रायः एक शताब्दी तक का डेनिश राष्ट्रीय इतिहास लुप्त है। उसके सम्बन्ध में कुछ नहीं लिखा जा सकता।

तेरहवीं शताब्दी में हैम्बर्ग, ल्यूबक और बाल्टिक सागर के तटस्थ कुछ और नगर मिलकर स्वतन्त्र हो गये। धीरे धीरे इनका एक सम्मिलित पृथक् राज्य बन गया जो योरप में प्रसिद्ध हुआ। इस तरह सोलहवीं सदी तक इनका यह संयुक्त-राज्य उन्नति करता रहा परन्तु पुर्तगीज़ और स्पेनिश लोगों की खोज से जब योरपीय व्यापार में बहुत कुछ परिवर्तन हुआ तब इन का महत्त्व घटने लगा। इसके पहले सन् १३४० में डेन्मार्क के राजा वेल्डरमार चतुर्थ ने इन नगरों की शक्ति को क्षीण करने का उद्योग भी किया था, परन्तु उसमें वह सफल न हो सका। परन्तु उसी की बदौलत डेन्मार्क फिर से एक राष्ट्र हुआ। उसी की बदौलत उसका प्राचीन गौरव जगा और वह एक प्रबल राज्य हो गया।

उसकी मृत्यु के बाद उसकी पुत्री मार्गरेट डेन्मार्क की रानी हुई। उसने १३७६-से-१४१२ ई० तक राज्य किया। उसके शासन-काल में देश की ख़ूब उन्नति हुई, पुराना बल, पुराना गौरव और पुराना भाग्य फिर से उदित हुआ। मार्गरेट विदुषी और राजनीति के दांव-पेंच

डेन्मार्क अपने मक्खन के लिए प्रसिद्ध है। मक्खन विदेशों में भेजा जा रहा है

से अभिज्ञ थी। उसने बड़ी कुशलता से राज्य किया। सत्रहवीं शताब्दी के पूर्व डेन्मार्क में यदि कोई प्रबल शासनकर्ता हुआ है तो वह यही रानी मार्गरेट ही है।

सच तो यह है कि उसके आगे धनी ज़मींदारों और बड़े लोगों की एक न चलती थी। सभी उसके नाम से थर्राते थे। उसके शासन-काल की सबसे महत्त्व-पूर्ण बात वह है जिसे इतिहास में कालमर की एकता कहते हैं। यह २० जुलाई १३९७ ई० में हुई थी। अनेक राजनैतिक चालों के बाद मे यह एकता स्थापित हुई थी। मार्गरेट की

डेन्मार्क का एक कुम्हार

सफलता का इससे बढ़कर और क्या प्रमाण हो सकता है? इस समय से नारवे, स्वीडन और डेन्मार्क मिलकर एक राज्य हो गये। कहने को तो यह एकता सन् १५२३ तक स्थापित रही, परन्तु उसके टूटने के लक्षण मार्गरेट के बाद से प्रकट होने लगे थे और कुछ समय में तो वे नाम-मात्र के लिए ही एक रह गये थे। तीनों राज्य राज-नैतिक दृष्टि में तो एक थे, परन्तु उनका क़ानून-क़ायदा और रीति-नीति अलग अलग ही थी। इसके अतिरिक्त राजा की अनुपस्थिति के कारण डेन्मार्क और स्वीडन में धीरे धीरे शासकवर्ग का अधिकार भी बढ़ने लगा और राजा नाम-मात्र ही के लिए रह गया।

मार्गरेट के बाद क्रिश्चियन द्वितीय एक शक्तिशाली सम्राट् हुआ। वह बड़ा साहसी और विद्वान् था।
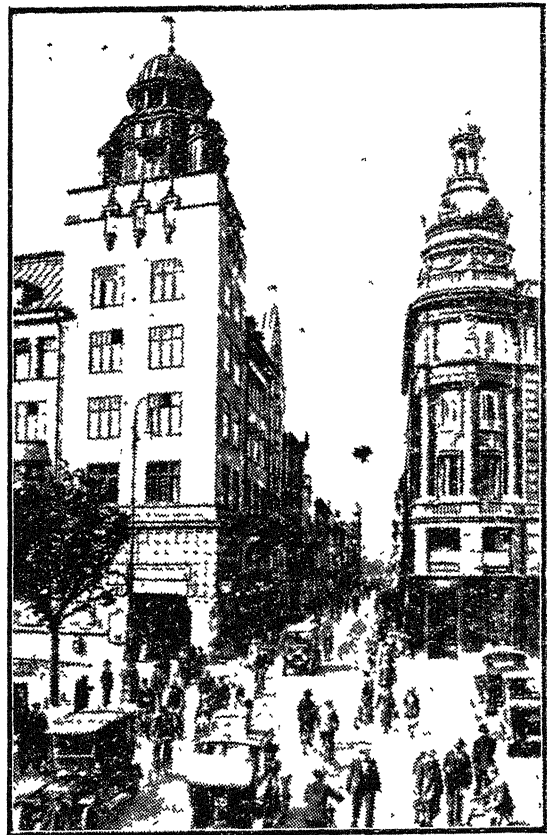
कोपनहेगन की एक सड़क

उसने शासक-वर्ग की शक्ति और अधिकारों की तीव्र आलोचना की और कहा कि इन्हें सम्राट् के सामने शासन-कार्य में कोई हक़ नहीं है। इसी घोषणा के द्वारा उसने अपने साम्राज्य को एक करने में ज़ोर दिया। साथ ही साथ उसने ग़रीबों का भी पक्ष लिया और उनकी ओर से भी उसने शासक-वर्गों की निन्दा की। वह चाहता था कि इनके शिकञ्जों से प्रजा का शीघ्र ही उद्धार हो।

इसके बिना प्रजा को स्वतन्त्रता कदापि नहीं मिल सकती। क्रिश्चियन के विचार निस्सन्देह उत्तम थे और यदि वह ज़रा उचित ढंग और सहन-शीलता से काम लेता तो कुछ न बिगड़ता। परन्तु जिस ढंग से उसने काम लिया उससे फल अच्छा नहीं निकला। लाभ के स्थान पर हानि ही हुई। स्वयं तो वह डूबा ही पर साथ ही सारे डेन्मार्क को भी ले डूबा।

ग़रीबों की सहायता करना, उनसे सहानुभूति दिखलाना तो टेढ़ी खीर थी। दुर्भाग्य से अमीर लोगों की मनोकामना पूर्ण हुई, इन्हीं की अंत में जीत हुई और १५२३ ई० में क्रिश्चियन गद्दी पर से उतार दिया गया। बेचारे को जीवन का शेष काल बड़ी बेचैनी से क़ैदख़ाने में बिताना पड़ा।

इसके बाद डेन्मार्क की दशा दिन-प्रति-दिन ख़राब होती गई। डेढ़ सौ वर्षों के भीतर अन्याय और अत्याचार ने यहाँ घर कर लिया। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत चरितार्थ होने लगी। राजा का अब यहाँ चुनाव होने लगा, पहले वह जन्मसिद्ध अधिकार से सिंहासन पर बैठता था। राजा नाम-मात्र के लिए राजा था, लेकिन वास्तव में उसकी एक न चलती थी। अमीरों के हाथों की वह कठपुतली बन गया। अमीरों की धाक जम गई। अपने प्रभुत्व और अहंकार के आगे वे किसी की एक नहीं सुनते थे। न तो एक पैसा कर देते और न उनके लिए कोई क़ानून-क़ायदा था। मनमाना ऊधम मचाने और ग़रीबों को तंग करते थे।

डेन्मार्क की गर्ल-ग्रेजुएट

क्रिश्चियन की उग्र नीति के कारण कुछ काल के लिए स्वीडन में राष्ट्रीयता की लहर उमड़ती रही। गस्टेवस वासा के नेतृत्व में वहाँ एक बड़ा राष्ट्रीय आन्दोलन खड़ा हुआ जिसने अंत में डैनिश-अध्यक्षता को देश से निकाल कर ही दम लिया। इसी समय से स्वीडन स्वतन्त्र हुआ और फिर कभी परतन्त्रता की बेड़ी में नहीं जकड़ा जा सका। स्वीडन की देखा देखी डेन्मार्कवालों ने भी विद्रोह का झंडा खड़ा किया, पर उनका विद्रोह राष्ट्रीय विद्रोह नहीं था। वह विद्रोह केवल कुलीन ज़मीन्दारों का ही था। ग़रीब प्रजा का उससे कोई प्रयोजन नहीं था। अपने हक़ों को मज़बूत करने के लिए ही अमीरों ने प्रयत्न किया,

डेन्मार्क की स्त्रियां

डेन्मार्क का एक शान्तिमय दृश्य

आशा थी कि 'रिफ़ार्मेशन' के द्वारा यहाँ की काया पलट जायगी, परन्तु उसका और भी ख़राब प्रभाव पड़ा। जहां अन्य देशों में प्रोटेस्टेन्ट-धर्म के प्रचार होने से धार्मिक सहिष्णुता और स्वतन्त्रता की उन्नति हुई वहाँ डेन्मार्क में उसका तनिक भी प्रभाव न पड़ा। ग़रीबों का जो एक सहारा राजा था, वह भी यहां से जाता रहा। वे बेचारे अब पिसने लगे। उनकी पुकार सुने तो कौन सुने। इधर अमीरों ने अपनी सत्ता को क़ायम करने के लिए ज़मीन-आसमान एक कर दिया।

जितना अंधेर डेन्मार्क में सन् १५२३ से १६६० तक रहा उतना शायद ही इस देश में कभी पहले हुआ हो। आपस के द्वेष और फूट के मारे सारा देश तबाह हो गया। जिधर देखो उधर ही मार-काट और लड़ाई-झगड़ा मचा हुआ था। इनके अतिरिक्त विदेशी राज्यों और विशेषतया स्वीडन से युद्ध करने में उसका धन स्वाहा होने लगा। इधर डेन्मार्क का राजा अपनी स्वेच्छा-चारिता बढ़ाता ही जाता था। यही नहीं, स्वीडन को हथियाने की वह फिर से फ़िक्र करने लगा। उसकी अभि-

डेन्मार्क के सुखी बच्चे

मठों को वे दिन-दहाड़े लूटते थे। ऊपर हम लिख चुके हैं कि सन् १५२३ में स्वीडन डेनिश-साम्राज्य से पृथक् होकर स्वतन्त्र हो गया। नार्वे में नेताओं की कमी थी। जो थे वे भी निरे निकम्मे और डरपोक थे। न तो देश में उनकी कुछ चलती थी और न उनको कोई पूछता ही था। उनके अनुयायी उँगलियों में गिने जा सकते थे। इसी प्रकार अमीर भी यहाँ प्रबल नहीं थे। इन सब कारणों से ही नार्वेवाले स्वतंत्र न हो सके और क़रीब तीन शताब्दी तक उन्हें डेन लोगों की अधीनता में रहना पड़ा।

लाषा थी कि मैं डेन्मार्क का प्रभुत्व बाल्टिक और उत्तर सागर पर स्थापित करूँगा। इसी उद्देश से 'साउन्ड' में जानेवाले प्रत्येक जहाज़ से वह चुङ्गी वसूल करने लगा और स्वीडन से खटपट मचानी शुरू कर दी। स्वीडन इस समय योरप में, एक बड़ा देश समझा जाता था। उसकी सैन्यशक्ति सबसे लोहा लेने को तैयार रहती थी। डेन्मार्क ने जब उससे अंड-बंड शर्तें पेश करना शुरू किया तब उससे न रहा गया। वह भला इन्हें कब गवारा कर सकता था? दोनों में युद्ध ठन गया।

डेन्मार्क में ग्राम का एक दृश्य

खेत का एक दृश्य

फल यह हुआ कि इस लड़ाई में स्वीडन और डेन्मार्क दोनों को बड़ी क्षति उठानी पड़ी। स्वीडनवालों ने रुपया पानी की तरह बहाया। इधर डेन्मार्कवाले अपने जीवन की पर्वा न कर कमर कसकर मैदान में आ डटे और इस मुस्तैदी से युद्ध किया कि उनके शत्रु चकित हो गये। सबसे अधिक कमाल तो डेन्मार्क के नाविकों ने किया। पर यह सब होते हुए भी वे लोग स्वीडनवालों को नहीं हरा सके। स्वीडन की सुसंगठित सैन्य-शक्ति के सामने वे नहीं ठहर सके। डेन्मार्क के एक राजा के शब्दों में इसका कारण यही हो सकता है कि अमीरों ने देश, नरेश और महेश की पर्वा न करके अपने अपने स्वार्थ के लिए देश को आघात पहुँचाया।

इस तरह एक एक करके सब बड़े बड़े प्रान्त डेन्मार्क के हाथ से निकल गये। फलतः सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में डेन्मार्क योरप में निम्नश्रेणी का एक देश रह गया।

इसके बाद सन् १६६० में यहां फिर विप्लव हुआ। उससे डेन्मार्क के अमीरों का बल तो घट गया परन्तु प्रजातन्त्र-राज्य क़ायम नहीं हो सका। डेन्मार्कवाले फ़्रेडरिक तृतीय को राजा बनाकर सन्तुष्ट हो गये। हां, उन्होंने शासन-व्यवस्था में समयानुकूल कुछ विशेष परिवर्तन भी किये। फ़्रेडरिक के समय से इस देश के भाग्य फिर खुले और हर प्रकार से इसकी उन्नति होने लगी। कृषि-सम्बन्धी कई महत्त्वपूर्ण कार्य हुए जिनसे किसानों की स्थिति में बहुत कुछ सुधार हुआ। सन् १८०१ में जब अँगरेज़ों ने जहाज़ों की तलाशी का नियम क़ायम करना चाहा था तब डेन्मार्क ने स्वीडन का साथ दिया। इसके फलस्वरूप कोपेनहेगन की लड़ाई में डेन्मार्क की पराजय हुई। छः वर्ष बाद कोपेनहेगन की दूसरी लड़ाई भी हुई इसमें भी डेन्मार्कवालों की ही क्षति हुई। इधर फ़्रांन्स में नेपोलियन की तूती बोल रही थी। अँगरेज़ लोग उसके शत्रु थे, इस लिए डेन्मार्कवालों ने नेपोलियन से मित्रता कर ली। अन्त में सन् १८१४ में जब नेपोलियन की शक्ति चूर्ण हुई तब डेन्मार्क को ऐसी ऐसी अपमानपूर्ण शर्तें स्वीकार करनी पड़ीं कि इसी समय से वह एक बहुत छोटा राष्ट्र समझा जाने लगा। यह अवसर देखकर नार्वे ने अपनी स्वन्त्रता की अलग घोषणा कर दी। इधर हेलिगोलैंड को अँगरेज़ों ने ले लिया। १८४८ में इस देश के निवासियों को शासन में काफ़ी हाथ मिला। १९१५ में जनता के लिए शासन-व्यवस्था में फिर सुधार किया गया। १९१५ में स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार मिल गया। इस तरह १८४९ ई० से डेन्मार्क की बराबर उन्नति हो रही है। परराष्ट्र-नीति में यहां के लोग नार्वे-स्वीडन से राय ले कर काम करते हैं। ऐसे मामलों में स्कैन्डेनेविया के प्रायः तीनों देश एक ही नीति को ग्रहण करते हैं। तीनों देशों में एक ही सिक्का चलता है और एक ही डाक प्रचलित है। इसके अतिरिक्त तीनों देशों की पार्लिमेन्टों के मेम्बरों की सम्मिलित बैठक भी प्रायः हुआ करती है।

योरोपीय महायुद्ध में इन लोगों ने न तो जर्मनीवालों का पक्ष लिया और न अँगरेज़ों का ही। वे इस युद्ध से उदासीन रहे। परन्तु इनके सामने सबसे बड़ा प्रश्न स्लेस्विग और हाल्स्टीन का था। लड़ाई का अन्त होने पर जब पेरिस में संसार के राजनीतिज्ञों का जमघट हुआ तब उन्होंने इस प्रश्न को वहां के निवासियों की सम्मति के लिए छोड़ दिया। अन्त में जब इन स्थानों में जनता की वोट ली गई तब स्लेस्विग के मध्य भाग ने तो जर्मनी में जाना पसन्द किया पर उत्तरी भाग ने जर्मनों की अधीनता स्वीकार करने से इनकार कर दिया। हाल्स्टीन तो पहले ही से जर्मनी का था। अतः वह उसीको मिल गया।

इस तरह आज डेन्मार्क में नियंत्रित राज-सत्ता स्थापित है। शासन की व्यवस्था सन् १९१५ और १९२० वाले क़ानूनों पर निर्भर है। राज्य का प्रबन्ध राजा और डीट (पार्लिमेण्ट) के हाथ में है। डीट में दो सभायें हैं—एक साधारण सभा और दूसरी सेनेट। २५ वर्ष की उम्र से ऊपरवाले स्त्री-पुरुष दोनों को वोट देने का अधिकार है। साधारण सभा का निर्वाचन ४ वर्ष के लिए होता है, पर सेनेट का ८ वर्ष के लिए। पार्लिमेंट के प्रत्येक सदस्य को मासिक वेतन मिलता है। हर एक काउन्टी में एक एक कौन्सिल है, जिन्हें भारतवर्ष की
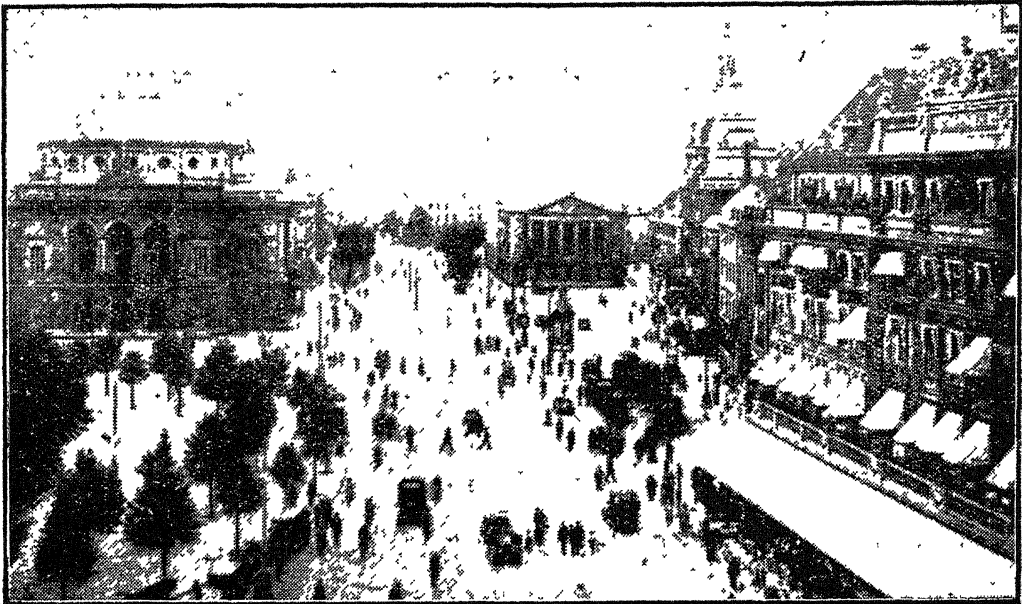
कोपेनहेगन का एक दृश्य
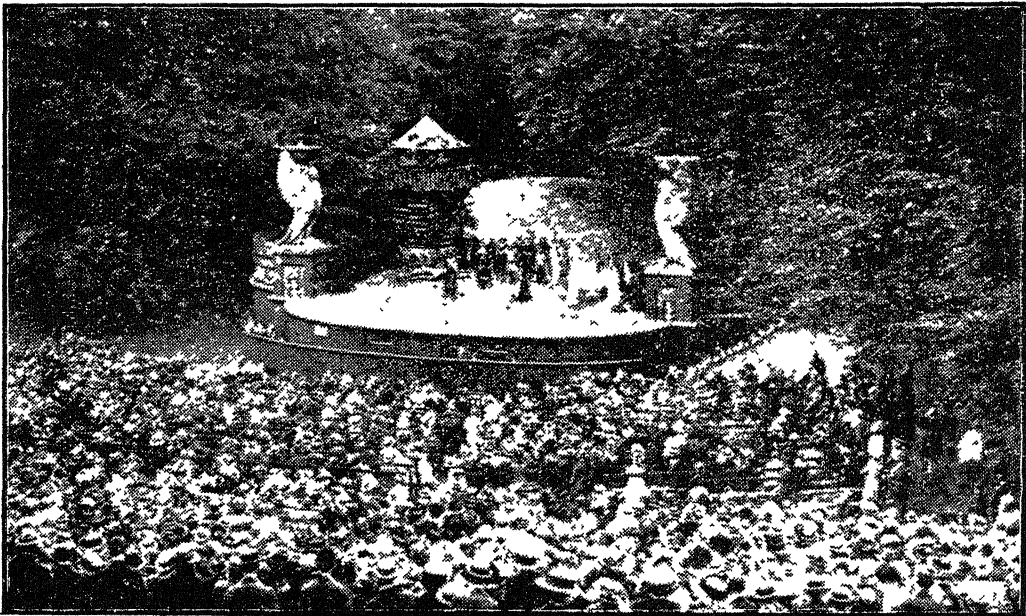
कोपेनहेगन के मैदान में एक नाटक का अभिनय

प्रान्तीय कौन्सिलों की ही तरह समझना चाहिए। इसी तरह यहाँ ८५ नागरिक और १,३०० ग्रामीण-सभायें (बोर्ड) है। कोपेनहेगन एक पृथक् नगर है, उसकी शासन-प्रणाली भी भिन्न और पृथक् है।

संध्या*

[श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी]

(१)

रवि ने जब पकड़ा सुहागिनी संध्या के कर को।
पहुँचा कर चेतन जग मानों लौट चला घर को॥
लगीं छोड़ने हिम-शृङ्गों को क्षण पर क्षण किरनें।
आहा! लगीं जलद-नौका पर वे नभ में तिरनें॥

(२)

रजत-राशि-सम उज्ज्वल हिम है ढके हुए जिसको।
वह गिरि क्यों खिलखिला रहा है देख-देख किसको?
मानों कोई उदधि शापवश बहु लहरोंवाला।
जमकर फेन-समेत बन गया हिम-पर्वत-माला॥

(३)

इस विशाल तरुवर चिनार की अति शीतल छाया।
देखो छूने लगी दूर के गिरिवर की काया॥
दृष्टि उठा कर देख रहा हूँ सुख की संकुलता।
बिखरी है मैदानों में यह कितनी मञ्जुलता!

(४)

हरियाली में रङ्ग-बिरङ्गे फूलों की अवली।
पाकर कैसा मन हरती है विस्तृत वनस्थली॥
देख यकायक भ्रम होता है विविध रङ्ग इतने।
लाकर यहां साड़ियां किसकी फैला दीं किसने॥

(५)

झुके हुए मल्लाह खींचते हुए चले गुन को।
खींच रहा है स्मृति में आकर अहो! कौन उनको॥
सरिता क्यों इतनी आतुर है? किसकी लगन लगी!
मुग्धा-सी घर छोड़ जा रही है यह कहां भगी!!

(६)

मैदानों की ओर वादियों में से द्रुत गति से।
हांक रहा है पवन घनों को किसकी अनुमति से॥
हिम-शिखरों को जो देती है स्वर्ण-मुकुट पहना।
कैसा मन हरती है रवि की यह मनोज्ञ रचना॥

(७)

निर्झरिणी के तीर बैठकर सुस्थिर कर तन को।
दृग के अर्द्ध कपाट बन्द कर साथ लिये मन को॥
मैं नीरव विचार-सरिता के तट पर मृदु पद से।
लगा विचरने हिम-आच्छादित गिरि पर नीरद-से॥

(८)

चित्रित है अवनीतल पर यह किसकी मधुर कथा।
नभ के उर में छिपी हुई है किसकी मनोव्यथा॥
ओतप्रोत जीवन-धारा में सचराचर सारा।
किसके मधुर खिलौनों का है भव्य भवन प्यारा॥

(९)

बार बार अंकित करता है रवि किसकी छवि को।
कौन विमोहित कर लेता है दृश्य दिखा कवि को॥
किसके गान-यंत्र हैं पक्षी नभ निकुञ्ज सर में।
विविध तान छेड़ा करते हैं निर्झर के स्वर में॥

(१०)

मुक्ता से भर कर प्रभात में तृण के भी कर को।
कौन खड़ा करता है प्रतिदिन किसके आदर को॥
प्राभातिक समीर ले जाता है कर सुरभि जहाँ।
वह राजाधिराज करता है स्वयं निवास कहाँ॥

*"स्वप्न" नामक अप्रकाशित पद्य-पुस्तक से।

(११)

मानव-जग को जिसने अर्पण की है विविध दशा।
है वह कौन रचयिता अद्‌भुत-कर्मा प्रथित-यशा॥
हर्ष-विषादों के उठते हैं विविध निनाद जहाँ।
उनका कौन मज़ा लेता है ? है वह रसिक कहाँ ?

(१२)

विविध कल्पनायें जब मन में हैं उठने लगतीं।
जब सुख-दुख की घटनाओं की स्मृतियाँ हैं जगतीं॥
या मनुष्य को जब लगने लगता है जग सपना।
तब किसको प्यारा लगता है यह प्रपंच अपना॥

(१३)

विविध उपायों से अभिमानी विस्मृत कर दुख को।
शाश्वत समझ गर्व करता है सांसारिक सुख को॥
पर क्षणभङ्गुरता जब उसको देती है पीड़ा।
होती है किसके विनोद का कारण यह क्रीड़ा॥

(१४)

पता नहीं इस अद्‌भुत जग की क्या है परिभाषा।
क्या कह सकती है मनुष्य की मर्यादित भाषा॥
जग में एक समान व्याप्त है सुख की अभिलाषा।
कहाँ खींच कर लिये जा रही है हमको आशा॥

डेन्मार्क में सहयोग

[श्रीयुत रमेश प्रसाद, बी० एस-सी०]

डेन्मार्क के अधिक लोग खेती पर अपना जीवन बिताते है। कुछ लोगों का ऐसा विश्वास है कि जिस जाति के अधिक लोग खेती-द्वारा अपना जीवन-यापन करते हैं उस देश के लोगों की मानसिक उन्नति कम होती है। मगर जब डेन्मार्क की अवस्था पर हम विचार करते हैं तब ऊपर की धारणा भूल जानी पड़ती है। वहाँ के किसानों के विषय में एक व्यक्ति ने लिखा है कि डेनिश किसान संसार के सब देशों के किसानों से अधिक पढ़े-लिखे होते हैं। वे दुनिया के प्रायः सब प्रकार के समाचारों से अभिज्ञ होते हैं। मामूली किसान एक वक्त खाकर भी दैनिक पत्र पढ़ेगा। अपने देश की राजनीति, अर्थनीति, इतिहास आदि विषयों को तो वह जानता ही है मगर खेती-सम्बन्धी नई नई बातों को जानने की उसे बड़ी इच्छा रहती है। इस विषय पर यदि कहीं कोई लेक्चर होगा तो वह कष्ट उठाकर भी वहाँ जायगा। डेनिश-सरकार और देश के कृषि-संघ-द्वारा जो कृषि-विद्यालय खोले गये हैं उनमें डेनिश-कृषक बराबर पढ़ने जाते हैं। डेन्मार्क के हर एक लाख लोगों में सिर्फ़ दो आदमी अपढ़ हैं। डेन्मार्क में बड़े बड़े शहर नहीं हैं, इसलिए वहाँ बड़े बड़े गगनचुम्बी कारख़ाने भी नहीं हैं। महाजनों की अर्थात् उन लोगों की भी संख्या कम है जो सूद पर रुपया चलाकर मालामाल हो जाते हैं। वहाँ के किसान या मज़दूर अस्वास्थ्यकर स्थान में रह कर जीवन नहीं बिताते। उन्हें भर पेट खाने को मिलता है और वे सुखी हैं।

पचास-साठ वर्ष पीछे डेन्मार्क की ऐसी दशा नहीं थी। सिर्फ़ इतने ही सालों में डेन्मार्क ने इतनी उन्नति की है। इसके और और कारण भी हो सकते हैं मगर एक साधन सहयोग, सहकार या समवाय भी है। डेन्मार्क की सहयोग-समितियां आदर्श हैं। डेन्मार्क के सहयोग के विषय में कुछ लिखने के पहले इतिहास की थोड़ी-सी बातें कह देना आवश्यक जान पड़ता है। क़रीब पचास साल हुए कि डेन्मार्क के एक गिर्जे में एक पादड़ी एक धार्म्मिक वक्तृता दे रहे थे। वे श्रोताओं को धर्म्म की शक्ति इत्यादि की बातें समझा रहे थे। इसी बीच श्रोताओं में से एक किसान खड़ा होकर बोला—"धर्म्म के विषय में आप जो कुछ कह रहे हैं वह सच हो सकता है, किन्तु धर्म्म से ज़्यादा ज़रूरत इस समय हमें एक मुट्ठी अन्न की है।" इस समय डेन्मार्क की अवस्था बड़ी ख़राब थी। जर्मनी

ने उसके एक अच्छे भाग को अपने हाथ में कर लिया था और चुँगी बैठा कर वहाँ के मालों का अपने यहाँ आना बन्द कर दिया था। इँग्लेंड के साथ उसका जो व्यापार होता था उसकी हालत भी अच्छी नहीं थी। अमेरिका में रेल का प्रचार होने से उसने योरप के सभी बाज़ार को अपने हाथ मे कर लिया था। डेन्मार्क की ज़मीन किसी समय अच्छी नहीं थी। अमेरिका की प्रतियोगिता के सामने डेन्मार्क को हट जाना पड़ा। किन्तु डेनिश जाति निश्चेष्ट होकर हाथ पर हाथ रखकर बैठी न रही। उन्होंने अपनी चेष्टा और अध्यवसाय-द्वारा पुनः अपने देश में सौभाग्य का दिन उदय कराया। सारी जाति ने एकान्त मन से जाति-सेवा में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया।

डेन्मार्क में सहयोग-आन्दोलन के नेता एक पादड़ी सोन साहब थे। राकड़ेल के ढंग पर आपने कई सहयोग-समितियां डेन्मार्क के भिन्न भिन्न नगरों में खोलीं। यद्यपि ये समितियां अल्पायु थीं अर्थात् थोड़े ही दिनों के बाद बन्द हो गईं तथापि इन्हीं के द्वारा आपने सहयोग की आवाज़ डेन्मार्क-वासियों को सुनाई। इसके कुछ साल बाद डेनिश-सरकार और डेनिश-कृषि-समिति-द्वारा नियुक्त कुछ वैज्ञानिकों ने दूध से बनी हुई वस्तुओं की छान-बीन की। उस समय भी डेन्मार्क में दूध की वस्तुएँ बनाने के लिए कोई सहयोग-समिति स्थापित नहीं हुई थी। प्रत्येक ग्वाला अपने घर में मक्खन बनाता और बाज़ार में बेंच आया करता था मक्खन बनाने, बेंचने आदि कामों में बहुत-सी त्रुटियाँ थीं। इस लिए योरप के बाज़ार में डेन्मार्क के मक्खन की बड़ी बदनामी थी। सन् १८८२ ई० में स्टिलर ऐन्डरशन ने पहले-पहल सहयोगी ढंग पर दूध की वस्तुएँ तैयार करने का एक कारख़ाना खोला। दक्षिण जटलैण्ड के कुछ ग्वालों ने मिल कर यह सहयोगी कारखाना खोला। इसके बाद तीन और कारख़ाने भिन्न भिन्न स्थानों में स्थापित किये गये। ये सभी कारख़ाने छोटे थे। समिति के सभ्य अपने घर के व्यवहार के लिए दूध रख कर बाक़ी समिति के यहाँ बेच आते थे। समिति का जो कुछ देना था उसके लिए उसका हर एक मेम्बर ज़िम्मेदार था और उससे जो कुछ लाभ होता था वह मेम्बरों में उस हिसाब से बाँट दिया जाता था जिस हिसाब से वे समिति के हाथ दूध बेंचते थे।

दस वर्षों में ऐसी समितियां बढ़कर आठ सौ हो गईं। इसके बाद १९१४ ई० में उनकी संख्या हो गई १,१९०। आज-कल डेन्मार्क मे जो दूध पैदा होता है उसका तीन-चौथाई इन कारख़ानों में व्यवहृत होता है। इन कारख़ानो की बढ़ती का कारण यह है कि साधारण ग्वाले जो मक्खन तैयार करते हैं उससे समिति-द्वारा तैयार किया हुआ मक्खन कहीं अच्छा होता है। इसके अतिरिक्त समितियों ने मक्खन बेंचने का ऐसा अच्छा इन्तजाम किया है कि ग्वाले कई प्रकार के झंझटों से बच जाते है। मक्खन के व्यापार में ज्यों ज्यों उन्नति होती गई त्यों त्यों डेन्मार्क के पशुओं की भी उन्नति होती गई। डेन्मार्क के किसानों को जिस दिन यह मालूम होगया कि अच्छी गाय, भेड़, बकरी रखने से नफ़ा है उसी दिन से उन्होंने पशुओं की उन्नति की चेष्टा आरम्भ कर दिया। १८८१ ई० में डेन्मार्क में ९ लाख गायें थीं, १९१४ ई० में १३ लाख गायें हो गईं। इसके साथ ही हर एक गाय पहले की अपेक्षा अधिक दूध भी देने लगी।

इस देश में जैसे गांव की सुसाइटियों का सरोकार सेन्ट्रल बैङ्कों से है, उसी प्रकार डेन्मार्क के दूध के कारख़ानों का सम्बन्ध एक एक केन्द्र-संस्था से है। एक एक जगह की सुसाइटियों को लेकर इस प्रकार की संस्थाएँ गठित हुई हैं। ऊपर से देखने पर इन केन्द्र-संस्थाओं का रहना अच्छा नहीं जान पड़ता। किन्तु डेन्मार्क की इन संस्थाओं की अधिकता से किसी प्रकार का नुक़सान नहीं हुआ है। अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए तथा उसमें उन्नति करने के लिए इन संस्थाओं के अध्यक्ष आपस में बात-चीत करते और एक दूसरे की मदद करते हैं। इसके अतिरिक्त, ख़ास ख़ास बातों की खोज के लिए जातीय संस्थाएँ भी हैं। इनकी मदद ज़रूरत पड़ने पर ली जाती है। ऐसी एक समिति १९०१ ई० में बनी थी जिसने सहयोगी कारख़ानों को ज़रूरी कल ख़रीदने में मदद की थी। स्थानीय संस्थाओं को मामूली बातों में सलाह देने के लिए डेनिश डेयरी-समि-

तियों का एक साधारण संघ है। डेन्मार्क में जो मक्खन तैयार होता है उसका अधिक भाग विदेशों में भेजा जाता है। इसलिए विदेशी बाज़ारों की हालत का ज्ञान रखना डेनिश-समितियों के लिए ज़रूरी है। इस काम का भार एक सहयोग-समिति पर दिया गया है। डेन्मार्क में तैयार किये हुए मक्खन के नाम पर जिसमें धक्का न लगे इसका भी ख़याल डेनिश-सहयोग-समितियों को रहता है। १६०० ई० में "डेनिश-बटर-ब्रैण्ड-ऐसोशियेशन" नाम की एक समिति स्थापित हुई। इस समिति का एक ख़ास "मार्का" है। प्रत्येक कारख़ाने का मक्खन जब विदेश को भेजा जाता है तब उस पर इस समिति का एक "मार्का" लगा दिया जाता है। यदि किसी समिति का मक्खन अच्छा नहीं होता तो वह उस समितिवालों को लौटा दिया जाता है और अच्छा मक्खन तैयार करने की सलाह दी जाती है। मक्खन के कारबार में जो कुछ करना था उसे डेन्मार्क की सहयोग-समितियों ने कर डाला है। वे जानती है कि सिर्फ़ उपदेश और परामर्श देने ही से कुछ नहीं होता। जिन लोगों पर इस कारबार का भार है उन्हें इस विषय में सुशिक्षित होना चाहिए। इसलिए डेन्मार्क के उच्च विद्यालयों और कृषि-विद्यालयों में मक्खन के कारबार की शिक्षा दी जाती है। सहयोग ने उन्नति के जिन जिन रास्तों को दिखाया है उन पथों पर चल कर डेन्मार्क-वासी सफलता प्राप्त कर रहे हैं।

मक्खन का कारबार तो सहयोगी ढङ्ग से होता ही है, इसके अतिरिक्त डेन्मार्क में एक और प्रकार की सहयोग-समितियाँ हैं। १८६५ ई० के पहले डेन्मार्क से जर्मनी को सूअर भेजे जाते थे। इस साल जर्मनी और डेन्मार्क से खटपट हुई। फल यह हुआ कि डेन्मार्क का यह व्यवसाय बन्द हो गया। तब डेन्मार्कवालों को अपना सामान बेचने के लिए दूसरा बाज़ार खोजना पड़ा। डेन्मार्क ने अपनी नज़र इँग्लेंड की ओर फेरी। इँग्लेंड सूअर के मांस का ख़रीदार अवश्य था, किन्तु वह सूअर नहीं ख़रीदता था। इसलिए सूअर का मांस ही इँग्लेंड के बाज़ार में खप सकता था। मास बनाने के लिए कारख़ानों की ज़रूरत पड़ी। पहले-पहल जो कारख़ाने डेन्मार्क में खुले वे ख़ास ख़ास मनुष्यों-द्वारा खोले गये थे। इसलिए इस कारबार से जो लाभ होता था उसका अधिक भाग किसानों को नहीं मिलता था। धनी लोग उससे होनेवाले लाभ से मालामाल हो रहे थे। किन्तु डेन्मार्क के किसान ऐसी व्यवस्था को चुपचाप सहनेवाले नहीं थे। मक्खन के कारबार में सफलता पाकर वहाँ के किसानों ने सहयोगी ढङ्ग पर सूअर का मांस बनाने के कारख़ाने खोले। इससे धनी लोगों के कारबार में धक्का लगा। उन लोगों ने सहयोग-समिति के कारखानों को जड़ से उखाड़ डालने की भरपूर चेष्टा की, किन्तु उनकी एक भी न चली। अब तो इन समितियों के मांस आदर की दृष्टि से देखे जाते हैं। इस समय, इस प्रकार के ४६ कसाईख़ाने हैं।

सहयोग-समिति की स्थापना के बाद डेन्मार्क में सूअर का व्यापार बड़ी तेज़ी से फैलने लगा। १८८२ ई० में २३,००० सूअर मारे गये थे, अब उनके स्थान पर २० लाख मारे जाते है। उस देश के किसान ही अधिकांश में ऐसी सहयोग-समितियों के मेम्बर हैं। दिन दिन इन समितियों के मेम्बर और उनके काम बढ़ रहे हैं। इसलिए उनकी साधारण स्वार्थ-रक्षा के लिए एक संघ स्थापित हुआ है।

मक्खन और मांस के व्यापार की व्यवस्था कर डेन्मार्क के सहयोगियों ने अण्डे के कारबार को भी अपने हाथ में लेने का निश्चय किया। १८८० ई० के पहले यह कारबार कुछ दलालों के हाथ में था। वे गांवों में आदमी भेज कर किसानों के यहाँ से अण्डे ख़रीदा करते थे। इसके बाद अपनी सुबिधा के अनुसार विदेशों में अण्डों का चालान करते थे। मुनाफ़े का बड़ा हिस्सा दलालों की थैली भरने केलिए जाता था। केवल इतना ही नहीं, बनियों की असावधानता के कारण अण्डे भी अच्छी अवस्था में नहीं रहते थे और अन्त में नुकसान होता था डेनिश किसानों का। १८६३ ई० में इस प्रथा का अन्त करने के लिए कोपेनहेगन के दो बड़े बड़े व्यवसायियों ने अण्डों के चालान करनेवालों का एक संघ स्थापित किया। किन्तु उनकी चेष्टा सफल नहीं हुई। इसका कारण यह था कि ये व्यापारी नियमित रूप से

अच्छे अण्डे जमा नहीं कर सकते थे। १८६५ ई० में सहयोगी ढङ्ग पर अण्डा बेचने के लिए एक समिति स्थापित हुई। विदेश में अण्डा भेजने के लिए एक संघ की भी स्थापना इसी समय हुई। इस संघ के मातहत में स्थानीय संस्थायें हैं। उनका काम है अपने स्थान के किसानों के यहाँ से अण्डा इकट्ठा कर बड़े संघों में भेज देना। जो किसान उनके सभ्य होते हैं उन्हें भर्ती होने के समय सिर्फ़ अच्छा अण्डा देने की प्रतिज्ञा करनी पड़ती है। हर रोज़ वे अपने अण्डों पर अपनी मुहर लगा कर समिति में भेज देते है। हर स्थानीय समिति की ख़ास मुहर है। कोपेनहेगन के बड़े संग्रह-केन्द्र में अण्डा भेजने के समय समितियाँ अपनी मुहर लगाती हैं। इस प्रकार मुहर लगाने का उद्देश यह जानना है कि कोई ख़ास अण्डा किस किसान का है अथवा वह किस समिति-द्वारा भेजा गया है। विदेश में भेजने के पहले अण्डों की अच्छी तरह जाँच कर ली जाती है और वे गुणानुसार भिन्न भिन्न श्रेणियों में बाँट दिये जाते हैं। इस प्रकार बहुत थोड़े ही समय में डेन्मार्क का अण्डे का व्यापार संसार में चमकने लगा है। कोपेनहेगन की केन्द्र-समिति की इस समय ६०० शाखाएँ हैं और उनके मेम्बरों की संख्या ४५,००० है। डेन्मार्क से आज इँग्लेंड को पहले से सात गुणा अधिक अण्डे भेजे जाते हैं अण्डे का दाम भी बढ़ गया है। अण्डे का व्यापार पहले दलालों के हाथ में था, अब उनके हाथ मे न रहा।

डेन्मार्क में सहयोगी संस्थाओं का भी ख़ूब प्रचार हुआ है। १६१६ ई० में, डेन्मार्क में १,६६१ सहयोगी संस्थायें थीं। १८६६ ई० में वहाँ एक सहयोगी संस्था खोली गई। इस समिति ने संयुक्त समितियों के लिए आवश्यकीय चीज़ों को ख़रीदने के अतिरिक्त हर रोज़ काम में आनेवाली कुछ चीज़ों को तैयार करने के लिए एक कारख़ाना भी खोल दिया। इसके अधिक हिस्से गाँव में हैं और उसके अधिक मेम्बर किसान हैं। डेन्मार्क ने अपनी अधिक उन्नति इस प्रकार सहयोग-द्वारा की है।

डेन्मार्क में क़र्ज़ देनेवाली सहयोग-समितियों का प्रचार नहीं हुआ है। इसका कारण यह नहीं है कि वहाँ के किसानों को रुपये की ज़रूरत नहीं रहती या वे क़र्ज़ देनेवाली समितियों को खोलने में कृतकार्य्य नहीं हुए हैं। इसका प्रधान कारण है डेनिश-सरकार का दूसरे तरह से किसानों को रुपये देकर सहायता करना। ज़मीन जोतनेवाला ही जिसमें ज़मीन का मालिक रहे, इस उद्देश से डेनिश-सरकार छोटे छोटे ज़मीन के टुकड़ों को ख़रीदने के लिए किसानों को रुपया क़र्ज़ देती है। १६११ ई० में, डेन्मार्क में एक सहयोगी-बैङ्क स्थापित हुआ था। इसके हिस्से केवल सहयोग समितियाँ ही ख़रीद सकती हैं। १५ साल में १,७०० सहयोग-समितियों ने इस बैङ्क से अपना सम्बन्ध जोड़ा है।

जिन प्रकार की सहयोग-समितियों की चर्चा ऊपर की गई है उन्हें छोड़ कर और भी अनेक प्रकार की समितियाँ डेन्मार्क में हैं। खेती के प्रायः सभी विभागों में, किसानों के प्रायः सभी कामों में सहयोग के सिद्धान्त का अनुकरण कर डेनिश-किसानों ने अपनी आर्थिक उन्नति की है। पहले पहल जिन लोगों ने सहयोग का प्रचार किया था उन लोगों का लक्ष्य था सहयोग-द्वारा सामाजिक व्यवस्था को इस प्रकार गढ़ना जिससे हर एक मनुष्य अपना पूर्ण विकास कर सके। यद्यपि इस उद्देश की पूर्ति अभी बहुत दूर है तथापि इसी सहयोग के प्रचार से डेन्मार्क के किसानों में आत्मशक्ति आगई है। देश के सभी कामों में डेनिश-किसान शामिल हो रहे हैं और उन्हीं की बदौलत आज डेन्मार्क इस पद पर पहुँचा है जिस पद पर हम उसे आरूढ़ देखते हैं। क्या इस देश के किसान अपने डेनिश-किसान भाइयों से शिक्षा ग्रहण कर अपनी तथा अपने देश की अवस्था को उन्नत बनावेंगे?

परलोक से सम्बन्ध [श्रीयुत शारदाचरण उकील

ब्याह होते ही वह खूँटा बन कर गड़ जाती है और जिस आधे अङ्ग को वह एक बनाती है उसको भी गमले के पौधे की जड़ों के समान किसी तरफ़ एक निश्चित सीमा से आगे नहीं बढ़ने देती। अब सोचने की बात है कि एक बनने की वह कोशिश किस काम की जिसमें मनुष्य अपना आधापन भी खो बैठे।

महात्मा गान्धी स्वराज्य की लड़ाई लड़ने के लिए अविवाहित युवक-युवतियों की सेना क्यों आवश्यक समझते हैं? इसी लिए कि विवाहितों पर उनका विश्वास नहीं है। उनमें उन्हें किसी प्रकार का बल, पौरुष या जीवन नहीं दिखाई पड़ता। विवाह क्या हुआ मानों मृत्यु होगई। जिस संस्कार से मनुष्य जीवन-संग्राम में निर्भय होकर आगे बढ़ने से मुख मोड़ ले वह एक प्रकार की मृत्यु ही है। उसके जीने से क्या जो कुछ कर नहीं सकता। क्योंकि हिन्दुओं में बाल-विवाह अधिक है, इसलिए बचपन से ही यह जाति मुर्दा और हतोत्साह दिखाई पड़ने लगती है।

हिन्दू-समाज को इस बात का अभिमान है कि उसका वैवाहिक आदर्श बहुत ऊँचा है। उसमें पति देवता और स्त्री देवी है। वह दो प्राणों को जन्म-जन्मान्तर के लिए मिला कर एक कर देता है। उसने राम और सीता का विवाह देखा है। उसकी गोद में शिव-पार्वती जैसे दम्पती विहार कर चुके हैं। सम्भव है, यह किसी युग में रहा हो। आज-कल तो यह कुछ नहीं है। अब तो पार्वती चाहे जितनी तपस्या करें, प्राण ही क्यों न दे दें, माता-पिता उन्हें अपना वश चलते शङ्कर के पास नहीं जाने देंगे। वे अपने मन का वर चुनेंगे। यदि आज शिव-पार्वती भारत में जन्म लें तो परस्पर विवाह कर पायेंगे या नहीं, इसमें सन्देह है। हाँ, यह हो सकता है कि शिव को 'पत्तो' मिल जायँ और पार्वती को 'शिवदास'। दिल किसी और को चाहता है, ब्याह किसी और के साथ होगा, यही सनातन-धर्म है। और यदि इस युग में जन्म लेनेवाले ये शिव-पार्वती परस्पर विवाह-सूत्र में बँधना ही चाहेंगे तो इन्हें हिन्दू-समाज की आँखें बचा कर रातोरात हिमालय को प्रस्थान करना पड़ेगा। आधुनिक जनक धनुष तोड़ने की घोषणा नहीं कर सकते। कोई ग़ैर-विरादरी धनुष तोड़ डालेगा तो क्या करेंगे? इसका फल यह होता है कि राम से सीता की भेंट नहीं होती। भवानी गिरिजा की वे चाहे जितनी पूजा करें, उन्हें लम्बोदर की ही शरण में जाना पड़ेगा। आधुनिक सावित्री पिता की इच्छा के विरुद्ध विवाह करने का हठ करेगी तो सिर पर लट्ठ पड़ने लगेंगे। हिन्दुओं में जितना आदर्शवाद है उतना शायद संसार की किसी भी जाति में न होगा। फिर भी, पुराण और इतिहास के सैकड़ों आदर्श उपस्थित होते हुए भी, हिन्दू-ललनाओं को मा-बाप की बेतुकी मर्ज़ी के ही मुताबिक़ ब्याह करना पड़ेगा। ज़बान तक खोलने की उसे इजाज़त न दी जायगी।

वर्तमान हिन्दू-विवाहों में सबसे बड़ी बुराई यही है कि जाति की बालाओं को अपना जीवन-सङ्गी चुनने का बिलकुल अधिकार नहीं है। कुछ तो बचपन के कारण और कुछ वंश-परम्परा से चले आते हुए रवाज के कारण इस सम्बन्ध में कुछ कहने का साहस भी नहीं करतीं। यह जानते हुए भी कि पति मूर्ख है, नालायक है, उन्हें अपने आपको उसके हाथों में सौंप देने के लिए विवश होना पड़ता है। एक उदाहरण लीजिए। श्रीयुत 'क' अपने को पूरा समाज-सुधारक समझते हैं। स्त्रियों को पढ़ाने और उन्हें पर्दे से बाहर निकालने में वे नहीं झिझकते, पर अपनी पढ़ी-लिखी पुत्री का विवाह श्रीयुत 'ख' के मूर्ख पुत्र के साथ वे सिर्फ़ इसलिए कर देते हैं कि उन्हें अपनी बिरादरी में उससे अच्छा लड़का नहीं मिलता। 'ख' का पुत्र 'क' की पुत्री को पीट रहा है, सता रहा है, अपना दूसरा ब्याह भी करने की तैयारी कर रहा है पर मिस्टर 'क' यही कहते हैं—"पुत्री धीरज धरो तुम्हारा जन्म कष्ट सहने के ही लिए हुआ है।" अब यहाँ यह देखना है कि इस सुधारक ने जनता के सामने आदर्श क्या रक्खा? स्त्रियों के उद्धार का कौन-सा तरीका निकाला? बिरादरी में अच्छा लड़का न मिलने से वह बिरादरी के बाहर सम्बन्ध स्थापित करता तो हम समझते कि हाँ, उसने कुछ करके दिखाया है। ऐसे सुधारक से तो घीसू चमार अच्छा जो अपनी प्यारी पुत्री को नालायक़ पति के अत्याचारों से निकाल कर खुले आम

घोषणा करता है कि बेटी चाहेगी तो उसका दूसरा विवाह कर दूँगा और नहीं तो वह भी हमारे साथ मज़दूरी करके कमा खायगी। जो लोग बिरादरी में अच्छे लड़के न मिलने से अपनी पुत्रियों को कुमारी रखते हैं वे यद्यपि उचित रास्ते पर नहीं हैं तो भी उनसे अच्छे हैं जो केवल विवाह कर देने की इच्छा से अपनी सुकुमार बच्चियों की सब स्वतन्त्रता हरण कर उन्हें बिरादरी के किसी बैल के गले में बाँध देते हैं।

यदि हम वास्तव में अपनी लड़कियों के मङ्गलाकांक्षी हैं तो हमें बिरादरी के सवाल को ताक़ में रख कर जहाँ योग्य वर मिले वहाँ उनकी शादी करनी चाहिए। योग्य वर से हमारा मतलब ऐसे वर से नहीं है जो उन्हें भोजन कपड़ा और गहना दे, बल्कि ऐसे वर से है जो उन्हें साथ लेकर जीवन-सङ्ग्राम में अग्रसर हो। स्त्रियाँ केवल गहना-कपड़ा और सुन्दर घर-द्वार ही नहीं चाहतीं, उनके भी हृदय है, वे सीता के समान राम के साथ वन वन विचरना चाहती हैं और जीवन के प्रत्येक विभाग में अपने पति की सहायता करना चाहती हैं। उन्हें ऐसा मौक़ा देने के लिए जात-पाँत की सङ्कुचित दीवालों को तोड़ना ही पड़ेगा। हमारा तो यहाँ तक कहना है कि आवश्यकता पड़ने पर हिन्दू-धर्म से बाहर भी स्त्री-पुरुषों का वैवाहिक सम्बन्ध होना चाहिए और विशाल हिन्दू-धर्म के भीतर तो इस प्रकार की आपत्ति ही न होनी चाहिए। जब तक जात-पाँत का भेद-भाव दूर न होगा, तब तक हिन्दुओं की वैवाहिक समस्या हल नहीं हो सकती और न तब तक 'हिन्दू-सङ्गठन' से कोई लाभ ही हो सकता है।

यदि हम वास्तव में हिन्दू-जाति का कल्याण चाहते हैं और गिरे हुए राष्ट्र को उठाने की हमारे हृदय में सच्ची लगन है तो हमें वैवाहिक क्रान्ति करनी ही पड़ेगी। किनारों से जैसे नदी को बहाव में सहायता मिलती है वैसे ही विवाह से जीवन-सङ्ग्राम में अग्रसर होने के लिए शक्ति मिलनी चाहिए। हिन्दू-समाज में चारों तरफ़ दलदल ही दलदल इसलिए दिखाई पड़ रहे हैं कि उसकी सामाजिक उन्नति की महानदी के सामने वर्तमान विवाह-प्रणाली हिमालय के समान आकर डट गई है। आज यह बाँध तोड़ दीजिए, कल से देखिए हिन्दू-समाज किस वेग के साथ आगे बढ़ता है।

उस दिन एक हिन्दू युवक ने कहा—"हमारे पैर वैवाहिक बेड़ी से जकड़े हुए हैं, नहीं तो हम भी संसार में कुछ करके रहते।" इस पर समाज-सुधारकजी बिगड़ खड़े हुए और कहने लगे—"मूर्ख, तू स्त्री को पैर की बेड़ी कह रहा है इसी से सिद्ध है कि तू संसार में कुछ नहीं कर सकता। अरे, स्त्री गले का हार है, पैर की बेड़ी नहीं।" खेद है कि हमारे उपदेशक और समाज-सुधारक भी स्त्री-पुरुषों के वैवाहिक सम्बन्ध पर कुछ सोचने की तकलीफ़ नहीं करते। उन्हें नहीं मालूम कि इस प्रकार जो हार तैयार हो रहे हैं वे फाँसी के समान कसते चले जा रहे हैं। ऐसा हार कौन पहनेगा जो गला ही घोट डाले। पर ये बेड़ी या हार बचपन में ही पहना दिये जाते हैं और पहननेवालों में अधिकांश उनके ऐसे आदी हो जाते हैं कि उतार फेंकने का बल उनमें नहीं होता। यदि कोई हिन्दू युवक इस वैवाहिक बन्धन को तोड़ने का यत्न करता है तो वह कायर के नाम से पुकारा जाता है। पर हमारे युवक और युवतियों को इससे घबड़ाने की आवश्यकता नहीं है। बचपन की बेहोशी में, या समाज के भुलावे में आजाने से जो विवाह होगया है और जो जीवन को चारों तरफ़ से जकड़े हुए है उसको तोड़ देने में ही भलाई है। अगर ऐसे विवाहों के विरुद्ध देश में आन्दोलन खड़ा हो जाय, एक बड़ी तादाद में युवक और युवतियाँ अज्ञानावस्था में जो विवाह होगया है उसे अनुचित कहकर उससे इनकार कर दें तभी समाज की आँखें खुल सकती हैं और तभी वह इस सम्बन्ध में उनकी भी राय लेने की बात सोच सकता है, जिनका विवाह किया जा रहा है। हम यह जानते हैं कि हिन्दुओं में विवाह-विच्छेद तथा स्त्रियों के पुनर्विवाह की प्रथा न होने से एक भी युवक इस काम को करने का साहस न कर सकेगा। जब ऐसी स्थिति उपस्थित हो जाती है तब प्रत्येक युवक के हृदय में बार बार यही प्रश्न पैदा होता है कि माता-पिता की भूल का दण्ड बेचारी अबोध बाला को क्यों दिया जाय? वह जीवित पति की विधवा क्यों बना दी जाय? पर यदि सच्चे हृदय और

पूर्ण सुधार की आशा से यह कार्य्य किया जाय तो इस वैवाहिक सम्बन्ध-त्याग में स्त्री के पूर्ण त्याग का प्रश्न पैदा ही नहीं हो सकता। हम यह नहीं कहते कि आप अपनी स्त्री को त्याग दीजिए। हमारा तात्पर्य्य केवल इतना ही है कि आप अपने स्वामित्व का अधिकार छोड़कर अपनी पत्नी को जीवन-सङ्ग्राम में अग्रसर होने के लिए शिक्षित कीजिए। जब वह अपना एक स्वतन्त्र विचार बना ले तब आप और वह दोनों मिलकर अपनी अपनी स्वतन्त्र राय के अनुसार फिर से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं और यदि मन न मिले तो जिसकी इच्छा में जो आवे उसको वह करने की स्वतन्त्रता होगी ही। इस प्रकार आप वह काम करेंगे जो आपकी पत्नी के और आपके पिता मिलकर नहीं कर सके। हिन्दू-विवाहों में यही सर्वश्रेष्ठ सुधार है जिसकी इस समय अत्यन्त आवश्यकता है। ऐसे विवाह बन्धन नहीं, प्रत्येक दृष्टिकोण से सहायक प्रतीत होंगे। ऐसे ही विवाह दो अधूरे अङ्गों को मिलाकर एक कर सकेंगे।

कुछ लोग ऐसे भी मिलेंगे जो मा-बाप के किये विवाह का केवल इसलिए विरोध करते है कि उन्हें जो स्त्री मिली है वह उनकी रुचि के अनुसार सुन्दरी नहीं है। ऐसे लोग सामाजिक स्वतन्त्रता के ख़याल से नहीं बल्कि इस ख़याल से वैवाहिक बन्धन तोड़ना चाहते हैं कि जिसमें वे बँध गये है वह सुन्दर नहीं है। किसी दूसरे में बँधते तो ज़्यादा अच्छा होता। खेद है कि ऐसे लोगों के साथ हम सहानुभूति नहीं प्रकट कर सकते। ये अपना गुणहीन चेहरा दर्पण से नहीं देखते, केवल वर्तमान विवाह-प्रणाली के विरोधियों की आड़ में सुन्दर बधुओं की तलाश करते हैं और पा जाते है तो विरोध बन्द कर देते है। समाज के ऐसे शत्रुओं की मरम्मत करने के लिए यह ख़ास तौर से आवश्यक है कि अपने विवाह-सम्बन्ध में हमारी देवियों को राय देने का अधिकार प्राप्त हो जाय। जिस दिन से यह होने लगेगा उसी दिन से ऐसे लोगों की मुश्किल आ जायगी, क्योंकि ऐसों को कोई स्त्री पसन्द न करेगी। तब इन आलसियों को अपना रूप-गुण और पौरुष सभी कुछ विकसित करने की सूझेगी और क्योंकि अधिकांश हिन्दू इसी श्रेणी में हैं, इसलिए और किसी उद्देश से नहीं, तो कम से कम विवाह हो जाने के उद्देश से ही ये आलस्य छोड़कर गुणवान्, सुन्दर, बली और चतुर बनने का प्रयत्न करेंगे। इसलिए इस प्रकार का वैवाहिक सुधार भी राष्ट्र की उन्नति में सहायक होगा।

पढ़ी-लिखी विवाहिता स्त्रियों को भी अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिए। यदि उन्हें जान पड़े कि जीवन में उन्होंने जो सङ्गी पाया है वह उनके स्वतन्त्र विचारों को दबानेवाला है तो तुरन्त उसका त्याग करके वे दूसरे सङ्गी की तलाश करें और यदि वह ऐसा करना उचित न समझें तो आजन्म ब्रह्मचारिणी रहकर अपने उद्देश की पूर्ति में लगें। सती-धर्म का यह अर्थ नहीं है, कम से कम इस युग में यह अर्थ न होना चाहिए, कि एक नालायक़ पति के पीछे अपने जीवन की सारी उमङ्गों और अभिलाषाओं को स्त्री मिट्टी में मिला दे।

जिन युवक और युवतियों के दिल में कुछ करने की इच्छा है पर जो भूगर्भ की उष्णता के समान अपनी समस्त इच्छाओं को वैवाहिक बन्दी-गृह में भरे बैठे हैं उन्हें ज्वालामुखी के समान प्रज्वलित हो उठने की आवश्यकता है। वे ऐसे दम्पतियों की सृष्टि करें जो इस बात की घोषणा कर सकें कि विवाह से हममें दूनी शक्ति आगई है और अब हम आँख मूँद कर कर्त्तव्य के समुद्र में कूद सकते हैं।

भूल

[श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना, साहित्यरत्न]

(१)

पलक-पाँवड़े डाल दिये थे,
खोल दिये थे दृग के द्वार।
भक्ति-भावना को सगर्व ले,
जा बैठा था मैं उस पार॥

(२)

बिछा दिया था हृदयासन फिर,
सचमुच दृढ़ निश्चय के साथ।
समझा था अविलंब करोगे,
चरण-रेणु से मुझे सनाथ॥

(३)

दिवस नहीं, सदियाँ बीतीं पर,
हुआ न आने का अनुमान।
अतुल उपेक्षा पर सखेद तब,
खीझ उठा था मैं म्रियमाण॥

(४)

तुमको स्वेच्छाचारी कहकर,
लौट पड़ा जिस पथ की ओर।
वहीं लिये थे करकमलों में,
तुम दरिद्र का अञ्चल-छोर॥

श्रीकान्त

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

आठवाँ परिच्छेद

लिखने बैठ कर अक्सर आश्चर्य के साथ मैं यह सोचता हूँ कि ये सब बिखरी हुई अस्त व्यस्त घटनायें मेरे मन में इस तरह श्रृङ्खला के साथ सुन्दर रूप से किसने सजा रक्खी थी? जिस तरह, जिस क्रम से मैं लिख रहा हूँ उस तरह तो वे एक के बाद एक घटित नहीं हुई थीं, उनकी श्रृङ्खला का यही क्रम तो नहीं था और फिर क्या उस श्रृङ्खला की सभी कड़ियाँ मौजूद हैं? यह बात भी तो नहीं है। मुझे मालूम पड़ता है कि उस श्रृङ्खला की कितनी ही कड़ियाँ तो खो गई हैं; किन्तु फिर भी तो वह श्रृङ्खला टूटती नहीं! तो फिर कौन नई करके इन सब कड़ियों को जोड़ रखता है?

और भी एक आश्चर्य की बात है। पण्डित लोग कहते हैं, बड़े के दबाव से छोटे चूर-चूर हो जाते हैं। किन्तु अगर यह बात ठीक है तो फिर जीवन की प्रधान और मुख्य घटनायें ही तो केवल याद रहनी चाहिए। मगर यह भी तो नहीं देखता। लड़कपन की बातों के प्रसंग में एकाएक कभी देख पाता हूँ, स्मृति के मन्दिर में अनेक तुच्छ-क्षुद्र घटनायें भी न जाने किस तरह बहुत बड़ी बन कर शान के साथ बैठ गई हैं, और बड़ी घटनायें छोटी होकर न जाने कब कहाँ ग़ायब हो गई हैं। अतएव कहने के समय भी ठीक वैसा ही होता है। तुच्छ बड़ी होकर देख पड़ती है, बड़ी याद भी नहीं आतीं। ऐसा क्यों होता है, इसका जवाब मैं पाठकों को न दे सकूँगा। केवल जैसा होता है, वह मैंने उनको जता दिया।

इसी तरह का एक तुच्छ विषय मन के भीतर इतने दिनों में चुपचाप धीरे धीरे गुप्त रूप से इतना बड़ा होगया था, आज उसकी खबर पाकर मैं बहुत ही विस्मित हो गया हूँ। पाठकों को आज वही सुनाता हूँ। किन्तु वह वस्तु क्या है, इसका सम्पूर्ण परिचय दिये बिना वह विषय साफ़ कभी न पहचाना जा सकेगा। कारण, अगर शुरू से ही कहूँ कि यह प्रेम का इतिहास है, तो भी मिथ्या-भाषण का पाप तो बेशक न होगा; किन्तु वह मामला अपनी चेष्टा से जितना बड़ा हो उठा है, मेरी भाषा

शायद उससे भी आगे निकल जायगी। इसलिए अत्यन्त सावधान होकर कहने की आवश्यकता है।

यह बहुत दिन बाद की बात है। उस समय दीदी (अन्नदा) की स्मृति भी धुँधली हो गई थी। जिनके मुख का स्मरण करते ही क्या जाने क्यों प्रथम यौवन की उच्छृंखलता आप ही से सिर नीचा करके दब जाती थी, उन दीदी की याद उन दिनों उतनी स्पष्ट नहीं रह गई थी। नीचे लिखी घटना उसी समय की है।

एक राजकुमार का निमन्त्रण पाकर उनकी शिकार-पार्टी में जाकर शामिल हुआ था। स्कूल में इन कुँअर के साथ बहुत दिन पढ़ा-लिखा था। छिपाकर अनेक बार इनके हिसाब के प्रश्नों का उत्तर लिख दिया था—मैथेमेटिक के सवाल हल कर दिये थे—इसी से उन दिनों मेरे साथ इनकी बड़ी दोस्ती थी।

उसके बाद एंट्रेंस में आकर हम दोनों अलग अलग हो गये। मैं जानता हूँ, राजों के लड़कों की स्मृति-शक्ति कम होती है। किन्तु ये राजकुमार मुझे याद रखकर इतने दिनों बाद चिट्ठी-पत्री लिखना शुरू कर देंगे, यह मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था। एक दिन एकाएक इनसे भेंट हो गई। उन्हीं दिनों ये बालिग़ हुए थे। बहुत-से जमा किये हुए रुपये इनके हाथ लगे थे। बहुत-सी बातें हुईं। राजकुमार के कानों तक बात पहुँची थी—अतिरञ्जित होकर ही पहुँची थी कि बन्दूक़ का निशाना लगाने में मैं बड़ा उस्ताद हूँ, मेरे बराबर कोई नहीं है। और भी न जाने कितनी तरह के गुण मुझमें पैदा हो गये हैं, जिनसे इन बालिग़ राजकुमार का अन्तरङ्ग मित्र होने के योग्य मैं हूँ। किन्तु असल बात यह है कि आत्मीय बन्धु-बाँधव लोग अपने आदमी की प्रशंसा कुछ बढ़ाकर ही करते हैं, नहीं तो यह अहङ्कार करना मुझे किसी तरह नहीं सोहता कि इतनी अवस्था में सचमुच ही इतनी विद्यायें इतने अधिक परिमाण में मैं प्राप्त कर चुका था। कम से कम कुछ विनय का भाव रहना अच्छा है।

ख़ैर, इस बात को जाने दो। शास्त्रकारों का कहना है कि राजा-महाराजों के सादर निमन्त्रण या बुलावे की कभी उपेक्षा न करनी चाहिए। हिन्दू का लड़का मैं शास्त्र की बात तो टाल नहीं सकता। लाचार जाना ही पड़ा। स्टेशन से १०-१२ कोस तक हाथी की पीठ पर चढ़ कर गया। देखा, हाँ, राजपुत्र के बालिग़ होने के लक्षण देख पड़ते हैं! पाँच तम्बू पड़े हुए थे। एक ख़ास राजकुमार का था। एक दोस्तों का था। एक नौकरों का था। एक में खाने-पीने का प्रबन्ध था। और एक कुछ फ़ासले पर था। उसके दो हिस्से थे— जिनमें दो रंडियाँ और उनके साजिन्दे अड्डा जमाये हुए थे।

उस समय सन्ध्या हो चुकी थी। राजपुत्र के ख़ास कमरे में बहुत देर से सङ्गीत की बैठक जमी हुई है, यह वहाँ प्रवेश करते ही मुझे मालूम होगया। राजपुत्र ने अत्यन्त आदर से मुझे ग्रहण किया। यहाँ तक कि आदर की अधिकता से आप एक बार उठ खड़े होने को हुए, किन्तु एकदम धम-से बैठकर मसनद के सहारे लेट गये। बन्धु-बान्धवों ने विह्वल-अस्पष्ट स्वर से मेरा स्वागत किया। मैं उन लोगों के लिए सम्पूर्ण रूप से अपरिचित था। किन्तु उन लोगों की जो हालत थी उसमें किसी अपरिचित प्रभु-मित्र का स्वागत करने में कुछ हिचकिचाहट नहीं हो सकती।

जो बाईजी गा रही थीं वे पटने से, काफ़ी रुपये लेकर, दो हफ़्ते के लिए यहाँ आई थीं। यहाँ यह स्वीकार करना ही होगा कि इस मामले में राजकुमार ने बुद्धि और विवेचना का परिचय दिया था। बाईजी देखने में ख़ूबसूरत थीं। उनका गला बहुत मीठा और सधा हुआ था और वे गाने की कला में निपुण थीं।

मेरे प्रवेश करते ही गाना थम गया था। उसके बाद समयोचित बातचीत और अदब-क़ायदा समाप्त होने में कुछ देर लग गई। राजकुमार ने अनुग्रह करके मुझसे यह अनुरोध किया कि मैं बाईजी से गाने की कोई फ़रमाइश करूँ।

राजा की आज्ञा सुनकर पहले तो मैं अत्यन्त सङ्कुचित और कुंठित हो उठा, लेकिन थोड़ी ही देर में मैंने समझ लिया कि इस सङ्गीत की मजलिस में मैं ही कुछ समझदार हूँ, और सब गँवार-गोविन्द हैं!

बाईजी खिल उठीं। पैसे के लोभ से अनेक काम किये जा सकते हैं, यह मैं जानता हूँ; लेकिन ऐसे मूर्खों के दरबार में गाना-बजाना सचमुच बड़ा कठिन काम है। इतनी देर तक बाईजी न जाने किस तरह भैंस के आगे बीन बजा रही थीं। अब एक समझदार को पाकर उसको बड़ी प्रसन्नता हुई। इसके बाद बहुत रात बीते तक वह केवल मेरे ही लिए अपनी सारी शिक्षा, सारे सौन्दर्य और स्वर की मधुरता से मेरे चारों ओर के उस सम्पूर्ण घृणित मतवालेपन को ढक कर अपने गुण का परिचय देती रहीं। अन्त को मुजरा ख़तम हुआ।

बाई जी पटने की रहनेवाली थीं—नाम था पियारी जान। उस रात को उसने ऐसा मन लगा कर मुझे गाना सुनाया कि जान पड़ता है, और कभी कहीं किसी को न सुनाया होगा। मैं मुग्ध होगया था। गाना थमने पर मेरे मुख से केवल इतना ही निकला—वाह!

पियारी ने मुख नीचा करके हँस दिया। इसके बाद दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से लगाकर प्रणाम किया, सलाम नहीं किया। उस रात को मजलिस बर्ख़ास्त हो गई।

उस समय राजकुमार के मसाहबों में कोई सो गया था, कोई ऊँघ रहा था। उनमें से अधिकांश को होश न था। अपने

तम्बू में जाने के लिए जब बाईजी साजिन्दों को साथ लेकर वहाँ से जाने लगीं तब मैं आनन्द की अधिकता के मारे हिन्दी में कह उठा—बाईजी, मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो यहाँ दो हफ़्ते तक तुम्हारा गाना सुन पाऊँगा।

बाईजी पहले ठिठककर खड़ी हो गईं। उसके बाद ज़रा मेरे पास खिसक आकर बहुत ही कोमल स्वर में साफ़ बँगला-भाषा में उसने कहा—रुपये लिये हैं, इसलिए मुझे तो गाना ही पड़ेगा; किन्तु आप क्यों १५-१६ दिन तक इस नर-पशु की मुसाहबी करेंगे? जाइए, कल ही अपने घर चले जाइए।

उसकी यह बात सुन कर मैं तो हत-बुद्धि हो गया, मुझे जैसे काठ मार गया! मैं इसका क्या जवाब दूँ, यह सोचने के पहले ही पियारी वहाँ से चली गई। सवेरे ख़ूब हल्ले-गुल्ले के साथ राजकुमार ने शिकार के लिए यात्रा की। मद्य-माँस का आयोजन ही सबसे अधिक था। साथ में लगभग १० शिकारी अनुचर थे। १५ बन्दूकें थीं, उनमें ६ राइफ़लें थीं। स्थान एक अर्द्धशुष्क नदी का किनारा था। इस पार कोस भर तक बड़े बड़े सेमर के पेड़ थे। उस पार बालू के ऊपर जगह-जगह पर कुश और काश के झुण्ड थे। इसी जगह १५ बन्दूकें लेकर शिकार करना होगा। सेमर के पेड़ों पर कुछ घुग्घू-पक्षी देख पड़े। उस सूखी हुई नदी के मोड़ के पास भी दो चकोर-चकोरी जैसे उड़ते जान पड़े।

कौन किधर जायगा, इस बारे में अत्यन्त उत्साह के साथ सलाह करते करते सभी ने दो-एक पात्र शराब पीकर देह और मन को वीरत्व-पूर्ण कर लिया। मैंने बन्दूक़ रख दी। एक तो बाईजी की रात की बात सुनकर मन यों ही विकल हो रहा था, उस पर शिकार की जगह देख कर देह में और भी आग लग गई।

कुमार ने प्रश्न किया—क्यों जी कान्त, तुम तो बिलकुल चुप्पी साधे हुए हो? बात क्या है? यह क्या, बन्दूक़ क्यों रख दी?

मैंने कहा—मैं चिड़िया वग़ैरह का शिकार नहीं करता।

राजकु०—यह क्या जी? क्यों—क्यों?

मैंने कहा—मैंने मूछें निकलने के बाद से छर्रेवाली बन्दूक़ कभी नहीं छोड़ी। उसे चलाना मैं भूल गया हूँ।

कुमार साहब तो हँसते हँसते लोट-पोट हो गये। किन्तु उस हँसी में दौलत का ज़ोर कितना था, यह बात दूसरी है।

सरजू का चेहरा तमतमा उठा और आँखें लाल हो गईं। वही इस दल के प्रधान शिकारी और राजकुमार के प्यारे मुँह लगे मुसाहब थे। मैंने आते ही उनके अचूक निशाने की शोहरत सुनी थी। उन्होंने रुष्ट होकर कहा—चिड़िया का शिकार करना क्या कुछ शरम की बात है?

मेरा भी मिज़ाज कुछ अच्छा न था। मैंने भी जवाब दिया—सबके लिए न हो, मेरे लिए तो है।

ख़ैर मैं अपने तम्बू में लौट आया। कुँअरजी से मैंने तबीयत न अच्छी होने का ही बहाना किया था। यह सुनकर कौन हँसा, किसने आँख मटकाई, किसने मुँह बनाया, इधर मैंने ध्यान ही नहीं दिया।

वैसे ही लौटकर मैं तम्बू के भीतर फ़र्श के ऊपर चित होकर लेटा था, और एक प्याली चाय लाने की आज्ञा देकर सिगरेट सुलगा कर पीने लगा था, इतने में बैरे ने आकर अदब के साथ जनाया कि बाईजी मुझसे मिलना चाहती हैं।

ठीक इसी की मैं भी आशा कर रहा था, आशंका भी हो रही थी।

पूछा—क्यों मिलना चाहती हैं?

उसने कहा—यह तो मैं नहीं जानता।

मैंने कहा—तुम कौन हो?

वह—मैं बाईजी का ख़ानसामा हूँ।

मैं—तुम बङ्गाली हो?

वह—जी हाँ, परामानिक (नाई) हूँ। नाम है रतन।

मैं—बाईजी हिन्दू हैं?

रतन ने हँसकर कहा—नहीं तो मैं कैसे रह सकता था बाबूजी?

मुझे साथ ले जाकर तम्बू का दरवाज़ा दिखा कर रतन हट गया। पर्दा उठाकर भीतर घुसकर देखा, बाईजी अकेली बैठी मेरी राह देख रही हैं। कल रात को पेशवाज़ और ओढ़नी के पहनावे में ठीक तौर से मैं पहचान नहीं सका था। आज देखते ही पहचान लिया कि बाईजी और चाहे जो हों, बङ्गाली औरत ही हैं। एक क़ीमती कार्पेट के ऊपर गरदे की सारी पहने बाईजी बैठी हैं। भीगे हुए बिखरे बाल पीठ पर फैले हुए हैं। हाथ के पास पानदान रक्खा है, सामने गुड़गुड़ी पर चिलम जमी है।

मुझे देखते ही उठकर हँसते हुए मुख से स्वागत कर सामने का आसन दिखाकर उन्होंने कहा—बैठिए। आपके सामने तमाखू नहीं पियूँगी। ओ रे रतना, यह

गुड़गुड़ी यहाँ से उठा ले जा।—यह क्या आप खड़े क्यों हैं, बैठिए न।

रतन आकर गुड़गुड़ी उठा ले गया। बाईजी ने कहा—आप तमाखू पीते हैं, यह मैं जानती हू। किन्तु दूँ काहे में? और जगह चाहे जो करो, मैं तो जान-बूझकर अपनी गुड़गुड़ी तुम्हें पीने को नहीं दे सकती। अच्छा चुरुट मँगाये देती हूँ।—अरे ओ—

मैंने कहा—रहने दो; चुरुट की ज़रूरत नहीं है। मेरी जेब में है।

पियारी ने कहा—है? अच्छी बात है, तनिक ठण्डे होकर बैठो, बहुत-सी बातें कहनी हैं। भगवान् कब किससे भेंट करा देंगे, यह कोई नहीं कह सकता। खैर, शिकार को गये थे, एकाएक लौट क्यों आये?

मैं—अच्छा नहीं लगा।

पियारी—अच्छा न लगना ही चाहिए। वह मर्दों की जाति कैसी निठुर है! बेकार जीव-हत्या करके उसमें मर्दों को क्या मज़ा मिलता है, यह वे ही जानें। बाबूजी अच्छे हैं?

मैं—बाबूजी (मेरे पिता) का तो स्वर्गवास हो गया।

पियारी—स्वर्गवास होगया! माताजी तो है?

मैं—वे पिताजी से भी पहले चल बसी थीं।

"ओह, इसी से..." इतना कहकर ही बाईजी ने एक लम्बी सांस छोड़ते हुए मेरे मुख की ओर देखा। मुझे यह भी जान पड़ा कि उसकी आँखों में जैसे आंसू भर आये। किन्तु वह शायद मेरे मन की भूल हो। पर उसके बाद ही जब वह बोली तब मुझे इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा कि इस ढीठ बाईजी का चञ्चल और परिहास-तरल स्वर सचमुच ही धीमा और भारी हो गया है।

उसने कहा—तो यह कहो कि तुम्हें देखने-भालने-वाला अब कोई नहीं है। बुआजी के ही पास तो हो न? नहीं, और रहोगे ही कहाँ? ब्याह हुआ ही नहीं, यह तो देख ही रही हूँ। पढ़ते-लिखते हो या वह भी साथही समाप्त कर दिया?

अब तक इस औरत के कौतूहल और प्रश्नों को भरसक मैं बरदाश्त करता गया था, किन्तु उसकी यह आखिरी बात मुझे एकाएक जैसे असह्य हो उठी। मैंने खीझ से भरे रूखे स्वर में कहा—अच्छा, तुम हो कौन? मुझे तो याद नहीं पड़ता कि मैंने इस जीवन में पहले कभी तुमको देखा है। मेरे बारे में इतनी बातें तुम क्यों जानना चाहती हो? यह सब जानकर तुम्हें लाभ ही क्या होगा?

बाईजी इस पर कुछ भी नाराज़ न हुईं। उन्होंने हँसकर कहा—लाभ-हानि ही क्या संसार में सब कुछ है? माया-ममता, स्नेह-प्यार क्या कुछ भी नहीं है? मेरा नाम पियारी है, लेकिन मेरा मुख देखकर भी जब तुम नहीं पहचान सके तब मेरे लड़कपन में पुकारने के नाम को सुनकर भला क्या पहचान सकोगे! इसके सिवा मैं तुम्हारे—उस गांव की लड़की भी नहीं हूँ।

मैंने कहा—अच्छा, तुम्हारा घर कहाँ है, बतलाओ।

पियारी—न, यह मैं नहीं बतलाऊँगी।

मैं—अच्छा अपने बाप का नाम ही बतलाओ।

बाईजी ने दाँतों से जीभ काटकर कहा—वे स्वर्ग गये। छी-छी, उनका नाम भला मैं इस पापी मुँह से निकाल सकती हूँ?

मैं अधीर हो उठा। मैंने कहा—अगर यह कुछ नहीं कह सकतीं तो यही बतलाओ कि तुमने मुझे पह-चाना किस तरह? शायद यह बतलाने में तो कोई दोष न होगा।

पियारी मेरे मन के भाव को ताड़कर फिर मुस-किरा दी।

उसने कहा—न, इसके बतलाने में दोष नहीं है। लेकिन तुम क्या उस पर विश्वास कर सकोगे?

मैंने कहा—कहकर देख ही न लो।

पियारी ने कहा—तुमको पहचाना था महराज, दुर्बुद्धि की प्रेरणा से और किस तरह! तुमने मेरी आँखों से जितने आंसू गिराये थे उन्हें सौभाग्य से सूर्यदेव ने सोख लिया; नहीं तो मेरे आंसुओं से एक तालाब भर जाता। बतलाओ, विश्वास कर सकते हो क्या?

सत्य ही उसकी इस बात पर मैं विश्वास नहीं कर सका। किन्तु यह मेरी ही भूल थी। उस समय किसी तरह यह बात मेरी समझ में नहीं आसकी कि पियारी

के होठों की गढ़न ही इस तरह की थी कि जान पड़ता था, वह हर बात व्यंग्य करके कह रही है, और मनही-मन हँसती है।

मैं चुप हो रहा। वह भी कुछ देर चुप रहकर अबकी सचमुच ही हँस उठी। किन्तु इतनी देर पर, न जाने किस तरह, मुझे सहसा यह जान पड़ा कि उसने अपनी लज्जित अवस्था को जैसे सँभाल लिया। पियारी ने मुसकिरा कर कहा—न देवता, मैंने तुमको जितना बुद्धिहीन समझा था, उतने नहीं हो। तुमने ठीक ही समझा है, यह मेरा बात कहने का ढङ्ग ही है। लेकिन यह भी मैं कहूँगी कि तुमसे अधिक बुद्धिमान् लोग भी मेरी इस बात पर अविश्वास नहीं कर सके। सो अगर इतने बुद्धिमान् हो तो फिर यह मुसाहबी का पेशा क्यों पकड़ा है? यह नौकरी तो तुम्हारे-जैसे आदमी से नहीं हो सकती। जाओ, चटपट यहाँ से खिसक जाओ।

क्रोध के मारे सारे शरीर में आग-सी लग गई। लेकिन उसे मैंने ज़ाहिर नहीं होने दिया। सहज भाव से ही उत्तर दिया—नौकरी जब तक चले तभी तक अच्छा। बैठे न रहे, बेगार की, यह कहावत जानती हो न? अच्छा, अब चलता हूँ। बाहर के आदमी शायद कुछ और समझ बैठेंगे।

पियारी ने कहा—समझ बैठेंगे तो वह तो तुम्हारे लिए सौभाग्य होगा देवता? यह क्या कोई अफ़सोस की बात है?

इसका उत्तर कुछ न देकर जब मैं दरवाज़े के पास पहुँच गया तब वह हँसी का फुहारा छोड़कर कह उठी—लेकिन देखो भाई, मेरी वह आँसुओं की बात कहीं भूल न जाना! दोस्तों में, कुँअर साहब के दरबार में उसे जाहिर कर दोगे तो बहुत संभव है, तुम्हारी तक़दीर खुल जाय।

मैंने इसका भी कुछ उत्तर नहीं दिया और बाहर चला आया। किन्तु इस निर्लज्ज स्त्री की यह हँसी और नीच दिल्लगी मेरे सारे शरीर में बिच्छू के डंक मारने की-सी जलन पैदा करने लगी।

अपने डेरे पर आकर एक प्याला चाय पीकर एक सिगरेट सुलगाकर मस्तक को यथासंभव ठंडा करके मैं सोचने लगा—यह औरत कौन है? अपनी पाँच वर्ष की अवस्था तक की घटनाओं को मैं स्पष्ट याद कर सकता हूँ। किन्तु अतीतकाल में जहाँ तक नजर पहुँचती थी, वहाँ तक मैंने खूब ग़ौर से देखा, कहीं इस पियारी का पता नहीं लगा। अथच यह मुझे खूब अच्छी तरह जानती-पहचानती है, यह निश्चित है। मेरी बुआजी तक का हाल जानती है। मैं ग़रीब हूँ, यह भी इससे छिपा नहीं। अतएव इसका मुझसे मिलने में—घनिष्ठता बढ़ाने में और कोई मतलब नहीं हो सकता। अथच जिस तरह हो, यह मुझे यहाँ से भगा देना चाहती है। किन्तु किस लिए? मेरे यहाँ रहने या न रहने से इसकी हानि या लाभ क्या है? उस समय बातों ही बातों में इसने कहा था कि संसार में हानि-लाभ ही क्या सब कुछ है? स्नेह-प्यार कुछ नहीं है? मैंने जिसे पहले कभी आँख से भी नहीं देखा उसके मुख की यह बात सोच कर भी मुझे हँसी आने लगी। किन्तु उसकी अन्य सब बातों को दबाकर उसका आखिरी व्यंग्य मेरे हृदय में तीव्र रूप से बिंधने लगा।

संध्या के समय शिकारियों का दल लौट आया। नौकर के मुँह से सुना, आठ घुग्घू-पक्षी मार कर लाये गये हैं। कुँअर साहब ने मुझे बुला भेजा। पर मैं तबीयत ठीक न होने का बहाना करके बिस्तर पर ही पड़ा रहा। बहुत रात गये तक पियारी का गाना और शराबियों की वाह-वाह वहीं पड़े-पड़े सुनता रहा।

उसके बाद ३-४ दिन प्रायः इसी एक ही ढंग से कट गये। प्रायः कहने का कारण यह है कि एक शिकार को छोड़कर और सब कार्यक्रम नित्य एक ही प्रकार का रहा। पियारी का शाप शायद फल गया—प्राणियों की हत्या के लिए फिर किसी में अधिक उत्साह मैंने नहीं देख पाया। कोई जैसे तंबू के बाहर निकलना ही नहीं चाहता। अथच मुझे भी कुँअर साहब नहीं छोड़ते। मेरे वहाँ से भागने का कोई विशेष कारण हो, यह बात न थी। किन्तु इस बाईजी के ऊपर मेरे मन में घोर घृणा अथवा अप्रीति का भाव उत्पन्न हो गया था। वह मजलिस में जब हाज़िर होती थी तब मुझे जान पड़ता था, उसकी हर एक हरकत जैसे मेरे कोड़े मार रही है। मैं वहाँ से जब उठ जाता था तभी मुझे चैन पड़ता था, शांति मिलती थी। अगर वहाँ से न उठने पाता था तो कम से कम दूसरी ओर मुँह फिराकर, और किसी से बातचीत करके, अन्यमनस्क होने की, दूसरी ओर मन लगाने की चेष्टा करता था। लेकिन वह बाईजी हर घड़ी मुझसे चार आँखें करने के हज़ारों कौशल करती थी, यह भी मुझे विदित हो जाता था। पहले दो-एक दिन उसने मुझे लक्ष्य करके दिल्लगी करने की चेष्टा की थी, किन्तु मेरा भाव देखकर वह भी एक दम सन्नाटे में आ गई।

उस दिन शनिवार था। मुझसे किसी तरह न रहा गया। मेरे खा-पीकर वहाँ से रवाना हो जाने का निश्चय हो जाने के

कारण आज सवेरे ही से गाने-बजाने की महफ़िल बैठ गई थी। थककर बाईजी ने गाना बन्द कर दिया था। एकाएक सबसे बड़ी कहानी—भूत की चर्चा—शुरू हो गई। पल भर में जो जहाँ था वह वहाँ से आकर आग्रह के साथ वक्ता को घेर कर बैठ गया।

पहले तो मैं लापर्वाही से सुनता रहा, लेकिन अंत को मेरा वह भाव नहीं रहा—मेरी उत्सुकता बढ़ गई। यह चर्चा करने वाले वक्ता थे एक उसी गाँव के बिहारी बुड्ढे आदमी। कहानी किस तरह कहनी चाहिए, यह कला वे अच्छी तरह जानते थे। वे कह रहे थे—प्रेत-योनि में अगर किसी को संशय हो तो वह इसी शनिवार को, अमावस के दिन, इस गाँव में आकर अपनी आँखों और कानों के झगड़े को मिटा जाय। वह चाहे जिस जाति का हो, चाहे जो हो, चाहे जितने आदमियों को साथ लेकर जाय, महाश्मशान में उसका जाना निष्फल न होगा। इस घोर रात्रि में उस श्मशानचारी प्रेतात्मा को केवल आँखों से देखा ही नहीं जाता, उसका शब्द भी सुन पड़ता है, और इच्छा करने से उसके साथ बातचीत भी की जा सकती है।

मैं अपने बचपन की बातें याद करके हँस पड़ा। वृद्ध ने इधर लक्ष्य करके कहा, आप मेरे पास आइए।

मैं उनके पास खिसक गया। उन्होंने पूछा—आप नहीं विश्वास करते क्या?

मैंने कहा—नहीं।

वह—क्यों नहीं करते? विश्वास न करने का क्या कोई विशेष कारण है?

मैंने कहा—नहीं।

वह—तो फिर? इसी गाँव में ऐसे दो-एक सिद्ध साधक हैं जिन्होंने प्रेतों को आँखों से देखा है। तब भी आप लोग विश्वास नहीं करते, मुँह पर ही हँसते हैं, यह केवल दो सफ़े अँगरेज़ी पढ़ लेने का फल है? खास कर बंगाली तो नास्तिक—म्लेच्छ हो गये हैं।

किस बात में कौन बात आ पड़ी, यह देखकर मैं तो अवाक् हो गया।

मैंने कहा—देखिए, इस बारे में मैं बहस करना नहीं चाहता। मेरा विश्वास मेरे लिए है। मैं चाहे नास्तिक होऊँ, चाहे म्लेच्छ, मगर भूत को नहीं मानता। जिन्होंने भूत आँखों से देखा है, यह कहते हैं, वे या तो ख़ुद धोखा खा गये हैं और या वे मिथ्यावादी हैं—मेरी धारणा यही है।

उस भले आदमी ने चट मेरा दाहना हाथ पकड़कर कहा—आप आज आधी रात को मसान जा सकते हैं?

मैंने हँसकर कहा—जा सकता हूँ। मैं बचपन से ही अनेक रातों को अनेक बार मसान में गया हूँ।

वे वृद्ध क्रुद्ध हो उठे। बोले—आप शेख़ी मत करिए बाबूजी।

इतना कह कर सब श्रोताओं की मंडली को विस्मित, स्तंभित करते हुए वे उस महाश्मशान का महाभयानक वर्णन करने लगे। यह मसान ऐसी-वैसी जगह नहीं है—महाश्मशान है। यहाँ हज़ारों नरमुंड गिन लिये जा सकते हैं। इस मसान में महाभैरवी अपने साथियों को लेकर हर रात को नर-मुंडों से कंदुक-क्रीड़ा करती हैं, नाचती हैं, विचरती हैं। उनके खिलखिलाकर हँसने के विकट शब्द से कितनी ही बार कितने ही अविश्वासी अँगरेजों—जजों और मजिस्ट्रेटों—तक के हृदय का स्पन्दन थम गया है। ऐसी ही सब रोंगटे खड़े कर देने-वाली बातें इस तरह वे कहने लगे कि इतने लोगों के बीच दिन में तम्बू के भीतर बैठे रहने पर भी बहुतों के सिर के बाल तक खड़े हो गये।

मैंने तिरछी नजर से देखा, पियारी न जाने किस समय खिसक आकर उन वृद्ध महाशय से सटकर बैठ गई है। और उनकी बातें जैसे सारे शरीर से पिये जा रही है।

इस तरह उस महाश्मशान का इतिहास जब समाप्त हुआ, तब कहनेवाले उन वृद्ध महाशय ने घमंड की दृष्टि से मेरी ओर देखकर प्रश्न किया—क्यों बाबू साहब, आप जायँगे?

मैंने कहा—जाऊँगा क्यों नहीं।

वृद्ध ने कहा—जायँगे? अच्छा, आपकी ख़ुशी। मगर जान चली जाय तो—

मैंने हँसकर कहा—न बाबूजी, ऐसा नहीं हो सकता। और अगर जान भी चली जायगी तो आपको दोष न दिया जायगा। आपके लिए कोई भय नहीं है। किन्तु अज्ञात-अपरिचित स्थान में मैं भी ख़ाली हाथ न जाऊँगा—बन्दूक़ मेरे साथ होगी।

उस समय इस विषय की आलोचना को कुछ अधिक मात्रा में बढ़ते देखकर मैं वहाँ से उठकर चला आया। तब इस तरह की आलोचना होने लगी—मैं चिड़िया का शिकार तो कर नहीं सकता; लेकिन बन्दूक की गोली से भूत को मारूँगा! बंगाली लोग अँगरेज़ी पढ़कर हिन्दू-शास्त्र को नहीं मानते? वे मुर्ग़ी खाते हैं। वे मुख से अपनी चाहे जितनी बड़ाई करें, काम करके दिखाने के वक्त् भाग खड़े होते हैं। उनका पीछा करने से उनकी बत्तीसी बन्द हो जाती है, उनमें हिम्मत का नाम भी नहीं होता—इत्यादि-इत्यादि। अर्थात् जिन सब सूक्ष्म युक्ति-तर्कों की अवतारणा करने से हमारे राजा-महा-राज लोगों को मज़ा आता है, और जो बातें उनके मस्तिष्क की गति के बाहर नहीं होतीं, यानी जिनके बारे में वे भी दो बातें कह सकते हैं, वे ही, उसी तरह की, बातें होने लगीं।

इनके दल में केवल एक ऐसा आदमी था जिसने स्वीकार किया था कि वह शिकार करना नहीं जानता। बातचीत भी वह साधारणतः कुछ कम ही करता था। शराब-क़बाब का शौक़ भी उसे बहुत कम था। उसका नाम था पुरुषोत्तम। उसने संध्या-समय आकर मुझसे कहा कि वह भी मेरे साथ मसान चलेगा। कारण, अब तक उसने कभी कोई भूत नहीं देखा था। अतएव जब आज ऐसी सुविधा हाथ लगी है तब उसे वह छोड़ नहीं सकता। यह कहकर वह ख़ूब हँसने लगा। वह एक तरह से मेरे गले ही पड़ गया।

मैंने उससे पूछा—तुम भूत नहीं मानते ?

उसने कहा—बिलकुल नहीं।

मैंने कहा—क्यों नहीं मानते ?

"नहीं मानता, इसी लिए"—यह कह कर वह इस विषय में प्रचलित तर्क उठाकर बारबार भूत के अस्तित्व को अस्वीकार करने लगा।

लेकिन मैं इतने सहज में उसे साथ ले चलने को राज़ी नहीं हुआ। कारण, बहुत दिनों की अभिज्ञता से मैंने यह जान पाया था कि ये बातें केवल युक्ति-तर्क की चीज नहीं हैं। यह एक प्रकार का संस्कार होता है। बुद्धि के द्वारा विचार करके जो लोग भूत आदि को बिलकुल नहीं मानते वे भी मौक़ा आ पड़ने पर ऐसी जगह भय से बेहोश हो जाते हैं।

लेकिन पुरुषोत्तम पीछे ही पड़ गया। दुलंगी बाँध कर पके बाँस की एक मोटी लाठी कंधे पर रख कर बोला—श्रीकान्त बाबू, आपका जी चाहे बन्दूक़ ले लीजिए, लेकिन हाथ में यह लाठी रहते चाहे भूत हो चाहे प्रेत, किसी को मैं पास तक नहीं फटकने दूँगा।

मैंने कहा—लेकिन वक़्त पर लाठी हाथ में रहेगी ?

उसने कहा—ठीक इसी तरह रहेगी बाबूजी, उस वक़्त आप देख लीजिएगा। एक कोस राह है। रात ग्यारह बजे के भीतर ही चल देना चाहिए।

मैंने देखा, उसका भूत देखने का आग्रह जैसे कुछ बढ़ा-चढ़ा हुआ था।

यात्रा में उस समय भी लगभग एक घंटे की देर थी। मैं तम्बू के बाहर टहलकर इसी विषय पर मन में विचार कर देख रहा था कि वास्तव में क्या बात हो सकती है। इन सब मामलों में ऐसे आदमी का चेला हूँ कि मुझे भूत का भय तो रत्ती भर भी नहीं था। बचपन की बात याद आती है। वही जिस रात को इन्द्र ने कहा था—"श्रीकान्त, मन में राम का नाम ले; वह लड़का मेरे पीछे ही बैठा है"। उसी दिन केवल भय के मारे मैं बेहोश हो गया था; उसके बाद फिर कभी इसकी नौबत नहीं आई। इसलिए इसका भय तो नहीं था। किन्तु आज का वर्णन अगर सच ही हो तो यह बात क्या है? यह भूत पदार्थ क्या है? इन्द्र ख़ुद तो भूत पर विश्वास करता था; लेकिन उसने भी भूत को कभी आँख से नहीं देखा। मैं भी अपने मन में चाहे जितना अविश्वास करूँ, स्थान और काल के प्रभाव से मेरे भी रोंगटे खड़े न हो आते हों, यह बात न थी। सहसा सामने के इस अमावस के दुर्भेद्य अन्धकार की ओर देखकर मुझे और एक अमावस की रात याद हो आई। उस दिन भी यही शनिवार था।

पाँच-छः साल पहले हमारी पड़ोसिन बदनसीब निरुपमा दीदी बाल-विधवा होकर भी जब प्रसूति-रोग में छः महीने तक कष्ट भोग कर मरीं तब उनकी मृत्युशय्या के पास मेरे सिवा और कोई नहीं था। बाग़ के बीच एक कच्चे घर में वह अकेली रहा करती थीं। सबके सब तरह के रोग में, शोक में, सम्पत्ति में, विपत्ति में, सुख में, दुःख में वह शरीक होती थीं। इतनी बड़ी सेवा करनेवाली, सो भी निःस्वार्थ भाव से, मैंने और स्त्री नहीं देखी। परोपकार करना उनके जीवन का व्रत था। कितनी ही लड़कियों को उन्होंने लिखना-पढ़ना, कसीदा, और गिरस्ती के सब काम करना सिखाकर आदमी बना दिया था। अत्यन्त स्नेहपूर्ण, शान्त स्वभाव और निर्मल चरित्र के लिए वह प्रसिद्ध थीं और उनकी इन्हीं विशेषताओं के कारण टोले-महल्ले के लोग उन्हें बहुत चाहते थे।

किन्तु उन्हीं निरुपमा दीदी का जब ३० वर्ष की अवस्था में एकाएक पैर फिसल गया और भगवान् ने पूर्वोक्त कठिन व्याधि के आघात से उनका जन्म भर का ऊँचा मस्तक एक-दम नीचा कर दिया तब महल्ले के किसी भी आदमी ने उस बदनसीब पर तरस खाकर उसकी सहायता के लिए अपना हाथ नहीं बढ़ाया। दोष-स्पर्श-लेश-हीन सुनिर्मल हिन्दू-समाज ने उस अभागिन की आँखों के सामने ही अपने सब द्वार और खिड़कियाँ एक-दम बन्द कर लीं। उस महल्ले में, गाँव में शायद ऐसा एक भी आदमी नहीं था जिसने किसी न किसी प्रकार से निरुपमा दीदी के हाथ की सेवा न पाई हो। किन्तु उसी गाँव और महल्ले के एक किनारे अन्तिम शय्या बिछाकर वह अभागिन स्त्री घृणा और लज्जा के मारे चुपचाप, सिर नीचा किये एक-एक दिन करके लंबे छः महीने तक बिना चिकित्सा और सेवा के अकेले अपने पदस्खलन का प्रायश्चित्त करती रहीं। और, अंत को सावन की एक गहरी रात को इस लोक से बिदा होकर वह जिस लोक को चली गईं उसका ठीक ठीक सच्चा ब्योरा चाहे जिस पंडित से पूछने से जाना जा सकता था।

मेरी बुआजी बहुत ही गुप्त रूप से उनकी सहायता करती थीं। इस बात को मेरे या एक बूढ़ी दासी के सिवा इस जगत् में और कोई नहीं जानता।

बुआजी ने एक दिन दोपहर के मुझे एकान्त में बुलाकर कहा—बेटा श्रीकान्त, तुम लोग तो अब अनेक ऐरे-ग़ैरों के रोग-शोक में जाकर शरीक होते हो, उनकी देख-भाल करते हो। इस छोकरी को भी एक-आध दफ़े जाकर देख न आया करो।

उसी दिन से बीच बीच में जाकर उन्हें मैं देख आता था और बुआजी के पैसों से ज़रूरत की कुछ चीज़ें भी खरीद कर पहुँचा देता था। उनकी मृत्यु के समय अकेला मैं ही उनके पास था।

मरने के समय ऐसा परिपूर्ण घोर विकार और उसके साथ ही परिपूर्ण ज्ञान मैंने और कभी नहीं देखा। विश्वास न करने पर भी भय से आदमी के रोंगटे खड़े हो जाते है, मैं यही बात कह रहा हूँ।

उस दिन सावन की अमावस थी। रात के बारह बजे के बाद आँधी और पानी का इतना ज़ोर हुआ कि जान पड़ता था, पृथ्वी उलट-पलट जायगी। सब खिड़कियाँ और दरवाज़े बंद थे। मैं रोगिणी की खटिया के पास ही बहुत पुरानी आधी टूटी एक आराम कुर्सी पर लेटा हुआ था। निरू दीदी ने स्वाभाविक कोमल स्वर से मुझे अपने पास बुलाकर हाथ उठाकर मेरा कान अपने मुँह के पास ले जाकर बहुत धीरे से कहा—श्रीकान्त, तू घर जा।

मैंने कहा—यह क्या निरू दीदी, इस आँधी-पानी में?

उन्होंने कहा—होने दो आँधी-पानी। जान पहले है।

मैंने समझा, यह प्रलाप बक रही है। बोला—अच्छा, जाता हूँ; पानी तनिक थम जाय।

निरु दीदी बहुत ही व्यस्त होकर कह उठीं—न, न, श्रीकान्त, तू जा, जा, भाई, जा—अब तनिक भी देर न कर—तू भाग!

अब कीउनका स्वर ऐसा था कि उसे सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। मैंने कहा—मुझसे जाने के लिए क्यों कहती हो?

इसके उत्तर में मेरा हाथ खींचकर बंद खिड़की की ओर लक्ष्य करके वह चिल्ला उठीं—जायगा नहीं तो क्या अपनी जान देगा? देखता नहीं, मुझे ले जाने के लिए ये काले काले सिपाही आये हैं? तू यहाँ बैठा है, इसीलिए इस खिड़की की राह से मुझे धमका रहे है!

इसके बाद उन्होंने बकना शुरू कर दिया—ये खटिया के नीचे हैं! वे सिर के ऊपर हैं! वे मुझे मारने आ रहे हैं! वे पकड़ रहे है! वे लिये जाते है!

यह उनकी बकझक और चिल्लाहट पिछली रात को जाकर थमी, जब उनकी जीवनी-शक्ति भी प्रायः समाप्त हो आई थी।

वह घटना आज भी मेरे हृदय के भीतर वैसी ही अंकित है, जैसी उस दिन देखी थी। उस रात को डरा तो था ही, अधिकतु जान पड़ता है, दीदी के बतलाये हुए सिपाहियों के विकट चेहरे भी देख पाये थे। इस समय इन बातों की याद करके अवश्य ही हँसी आती है, लेकिन उस दिन अमावस के उस घोर दुर्योग को भी तुच्छ मान कर शायद मैं भय के मारे वहाँ से भाग खड़ा होता, अगर निस्सन्देह रूप से मन में यह विश्वास न होता कि किंवाड़े खोल कर बाहर निकलते ही निरू दीदी के वे काले-काले सिपाहियों की भीड़ के भीतर जा फँसूँगा। अथच यह भी मैं जानता था कि यह सब कुछ नहीं है, उस समय भी कुछ न था। यह भी मैं समझ गया था कि मरणासन्न दीदी केवल दारुण विकार के ज़ोर से यह सब अनाप-शनाप बक रही है। लेकिन—

इस बीच में सुन पड़ा—बाबूजी?

मैं चौंककर घूम कर देखा, रतन था।

पूछा—क्या है रे?

रतन ने कहा—बाईजी ने प्रणाम भेजा है, और आपको याद किया है।

मैं जितना विस्मित हुआ उतना ही खीझ उठा। बाईजी का इतनी रात को अकस्मात् बुला भेजना केवल अत्यन्त अपमानकर स्पर्धा ही न जान पड़ी, बल्कि गत तीन-चार दिन के दोनों ओर के व्यवहार-बरताव को याद करके यह प्रणाम भेजना अत्यन्त असंगत प्रतीत हुआ।

किन्तु नौकर के सामने किसी तरह की उत्तजना न कहो प्रकट हो जाय, इस आशंका से अपने को प्राणपण से सँभाल कर मैंने कहा—आज मेरे पास समय नहीं है रतन। कल मुझे जाना है। कह देना, कल ही मुलाक़ात होगी।

रतन ख़ूब सिखा-पढ़ा पुराना नौकर था, अदब-क़ायदे में दुरुस्त और पक्का था। उसने बहुत ही अदब की आवाज़ में कहा—बड़ी ज़रूरत है बाबूजी, अभी एक बार तनिक हो आइए। नहीं तो बाईजी ख़ुद यहाँ आयेंगी—उन्होंने यह कह दिया है।

कैसा सर्वनाश! इस तम्बू में, इतनी रात को, इतने आदमियों के सामने! मैंने कहा—तुम जाकर समझाकर कहो रतन, आज नहीं, कल सवेरे ही भेंट होगी। आज मैं किसी तरह वहाँ नहीं जा सकूँगा।

रतन ने कहा—तो फिर लाचारी है, वे ख़ुद ही आयँगी। मैं बराबर पाँच साल से—जब से नौकर हुआ—देखता आ रहा हूँ बाबूजी, बाईजी जो कह देती हैं उसमें तनिक भी रद्दोबदल नहीं होता। आप न जायँगे तो निश्चय वही आयेंगी।

इस अनुचित असङ्गत हठ को देखकर एँड़ी से चोटी तक मेरे आग लग गई। मैंने कहा—अच्छा खड़े रहो, मैं आता हूँ।

तम्बू के भीतर घुसकर देखा, मदिरा देवी की कृपा से कोई होश में नहीं है, सब सो रहे हैं। पुरुषोत्तम भी गहरी नींद में खर्राटे ले रहा था। नौकरों के तम्बू में अवश्य दो-चार आदमी जाग रहे थे।

चटपट बूट पहन कर एक कोट गले में डाल लिया। राइफ़ल ठीक की हुई रक्खी ही थी। उसे हाथ में लेकर रतन के साथ साथ बाईजी के तम्बू में प्रवेश किया। पियारी सामने ही खड़ी थी। मुझे सिर से पैर तक बार बार देखकर, कुछ भी भूमिका न करके, क्रुद्ध स्वर में कह उठी—मसान-वसान में तुम्हारा किसी तरह जाना न हो सकेगा—किसी तरह नहीं।

मैंने बहुत ही आश्चर्य के साथ पूछा—क्यों?

पियारी—क्यों क्या? भूत-प्रेत क्या सचमुच नहीं है, जो तुम शनीचर के दिन अमावस को आधी रात के समय मसान में जाओगे।

यह कह कर ही पियारी अकस्मात् रोने लगी, आँसुओं की धारा बहाने लगी। मैं विह्वल की तरह चुपचाप खड़ा रह गया। क्या करूँ, क्या उत्तर दूँ, यह न सूझ पड़ा। यह न सूझ पड़ने में आश्चर्य ही क्या है? जिसको न जानता हूँ, न पहचानता, वह अगर उत्कट हित-कामना से आधी रात को अपने पास बुला भेजकर सामने खड़े होकर इस तरह बेमतलब रोने लगे तो इसे देखकर कौन हतबुद्धि, किं-कर्तव्य-विमूढ़ न हो जायगा?

मेरा कुछ उत्तर न पाकर पियारी ने आँसू पोंछते पोंछते कहा—तुम क्या कभी शान्त, सुबोध न होगे? उसी तरह ज़िद्दी रहकर सारी उमर बिता दोगे? अच्छा देखती हूँ, तुम किस तरह जाते हो—तुम जाओगे तो मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।

यह कह कर शाल उठा कर वह उसे ओढ़ने का उपक्रम करने लगी।

मैंने संक्षेप में कहा—अच्छी बात है, चलो न।

मेरे इस प्रच्छन्न व्यङ्ग्य से एक-दम जल उठ कर पियारी ने कहा—आहा! तब तो देश-विदेश में सब जगह ख़ूब नामवरी होगी! लोग तारीफ़ करेंगे कि बाबूजी शिकार के लिए आकर एक बाईजी को साथ लेकर आधी रात को मसान में भूत देखने गये थे! मैं पूछती हूँ, घर से क्या एक-दम अलग हो गये हो? शरम-लिहाज़ क्या अब कुछ भी नहीं रह गया?

यह कहते कहते उसका तीव्र स्वर भीग कर जैसे भारी हो उठा। उसने कहा—पहले तो कभी तुम ऐसे नहीं थे। किसी ने सोचा भी न था कि तुम इतना नीचे गिर सकते हो!

उसकी इस आख़िरी बात को सुन कर और समय शायद मैं बहुत ही खीज उठता, मेरे क्रोध की हद न रहती, लेकिन इस समय क्रोध नहीं हुआ। जान पड़ा, जैसे मैंने पियारी को इतनी देर बाद पहचान लिया। क्यों ऐसा जान पड़ा, यह आगे चल कर बतलाता हूँ।

मैंने कहा—लोगों के सोचने का मूल्य कितना है, यह तो तुम ख़ुद भी जानती हो। तुम्हारा ही इतना अधःपतन होगा, यही कितने आदमियों ने सोचा होगा?

दम भर के लिए पियारी के मुख के ऊपर शरद्-ऋतु की बदली की चाँदनी के समान सजल हँसी की आभा दिखाई पड़ी, किन्तु वह एक पल भर के लिए। उसके बाद ही डरे हुए स्वर में उसने कहा—तुम क्या मुझे जानते हो? मैं कौन हूँ, बतलाओ तो भला?

मैंने कहा—तुम पियारी जान हो।

उसने कहा—यह तो सभी जानते हैं।

मैं—सभी जो नहीं जानते वह मैं जानता हूँ—सुनकर क्या तुम ख़ुश होगी? अगर ख़ुश होतीं तो आप ही अपना परिचय देतीं। जब तुमने आप अपना परिचय नहीं दिया तब मेरे मुँह से कोई बात न सुन पाओगी। इस बीच में सोचकर देखो, अपने को ज़ाहिर करोगी कि नहीं। किन्तु इस समय मुझे अब समय नहीं है। मैं जाता हूँ।

पियारी ने बिजली की तेज़ी से मेरी राह रोककर कहा—अगर मैं तुमको जाने न दूँ तो क्या जबरदस्ती चले जाओगे?

मैंने कहा—लेकिन यह तो बताओ, जाने क्यों न दोगी।

पियारी ने कहा—जाने ही क्यों दूँ? क्या सचमच भूत-प्रेत नहीं है, जो तुम्हारे जाने को कहने से ही मैं चले जाने दूँ? सच कहती हूँ, चिल्लाकर लोगों को जमा कर दूँगी, यह मैं कहे देती हूँ।

इतना कह कर ही वह मेरे हाथ से बन्दूक़ छीन लेने की चेष्टा करने लगी। मैं एक पग पीछे हट गया। कुछ देर से खीझ के बदले मुझे हँसी ही आ रही थी। अब की मैं हँस पड़ा। बोला—सचमुच भूत-प्रेत हैं या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; किन्तु झूठ-मूठ के भूत अवश्य हैं, यह मैं ठीक जानता हूँ। वे सामने खड़े होकर बातें करते हैं, रोते हैं, राह रोक कर खड़े हो जाते हैं, इस तरह की अनेक बातें करते हैं और ज़रूरत होने पर गरदन मरोड़कर ख़ून भी पीते हैं।

पियारी का मुख मलिन हो गया। क्षण भर के लिए जान पड़ता है, वह कुछ कह भी नहीं सकी। उसके बाद उसने कहा—तो यह कहो कि तुमने मुझे पहचान लिया? लेकिन यह तुम्हारा खयाल ग़लत है। ऐसे भूत बहुत कुछ नाम करते हैं, ढोंग रचते हैं। यह सच है, लेकिन गर्दन मरोड़ कर ख़ून पीने के लिए ही राह रोककर नहीं खड़े होते। उनको भी अपने-पराये का ज्ञान रहता है।

मैंने फिर हँसकर प्रश्न किया—यह तो तुम अपने बारे में कह रही हो। लेकिन तुम क्या भूत हो?

पियारी ने कहा—भूत नहीं तो और क्या हूँ! जो मरकर भी नहीं मरते, वे ही भूत हैं, यहीतो तुम्हारे कहने का मतलब था न?

तनिक ठहर कर फिर वह कहने लगी—यह सच है कि एक हिसाब से मैं मर गई हूँ। किन्तु सच हो, चाहे झूठ, अपने मरने की बात मैंने ख़ुद नहीं प्रसिद्ध की थी। यह काम मेरी मा ने मामा के ज़रिये कराया था। सब हाल सुनोगे?

उसके मरने की बात सुन कर इतनी देर बाद मेरा सब संशय दूर हो गया। मैंने ठीक पहचान लिया, यह वही राजलक्ष्मी है। बहुत दिन पहले यह अपनी मा के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए गई थी, फिर लौट कर गाँव नहीं आई। इसकी मा ने गाँव में आकर यह प्रसिद्ध कर दिया कि उसकी लड़की काशी में एकाएक हैज़े की बीमारी से मर गई। पहले पियारी को देखकर यह तो बेशक मैं नहीं सोच सका था कि इसे पहले मैंने कभी कहीं देखा है, लेकिन उसके एक अभ्यास पर पहले ही से मैं जब अपने गाँव के मनसा पण्डित की पाठशाला में पढ़ता था, सब लड़कों का सरदार था, उस समय इस राजलक्ष्मी के दो पीढ़ी के कुलीन बाप ने अपना और एक ब्याह करके राजलक्ष्मी की मा को घर से निकाल दिया था। स्वामी की त्यागी हुई मा सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी नाम की दोनों लड़कियों को लेकर बाप के घर चली आई। उस समय राजलक्ष्मी की अवस्था ८-९ वर्ष की और सुरलक्ष्मी की १२-१३ वर्ष की थी। राजलक्ष्मी का रङ्ग गोरा था; किन्तु मलेरिया और पिलही के कारण पेट मटके की तरह और हाथ-पैर सींक की तरह थे। सिर के बाल ताँबे की सलाई की तरह थे, वे गिनकर बतला दिये जा सकते थे।

मेरी माता के भय से यह लड़की बैंचि[1] के वन में घुसकर नित्य उसके पके फलों की माला बनाकर लाती और मुझे देती थी। वह किसी दिन अगर छोटी होती थी तो पुराना पाठ पूछ कर इसके जी भर कर मैं थप्पड मारता था। मार खाकर यह लड़की होंठ चबाती हुई गुम होकर बैठ जाती थी। किन्तु यह किसी तरह न कहती थी कि नित्य बैंचि के पक्के फल लाना उसके लिए कितना कठिन है।

ख़ैर, वह चाहे जो हो, इतने दिन तक मैं यही जानता था कि मार के भय से ही वह इतना क्लेश स्वीकार करती है, किन्तु आज एकाएक जैसे इस बारे में मुझे कुछ सन्देह हुआ। ख़ैर, इस प्रसङ्ग को जाने दो। उसके बाद राजलक्ष्मी का ब्याह हुआ। वह भी एक अच्छी दिल्लगी रही। दोनों बहनों का ब्याह नहीं होने पाता था। इनका अभिभावक मामा चिन्ता के मारे व्याकुल हो रहा था। दैव-संयोग से मालूम हुआ कि विरञ्चिदत्त का रसोई बनानेवाला ब्राह्मण भङ्ग-कुलीन की सन्तान है। इस कुलीन-सन्तान को दत्त बाबू बाँकुड़े से बदल कर आते समय साथ लेते आये थे। विरञ्चिदत्त के दरवाज़े पर राजलक्ष्मी का मामा धरना देकर पड़ गया—ब्राह्मण की जाति-रक्षा करनी ही होगी। इतने दिन तक सभी जानते थे कि दत्त बाबू का पाचक ब्राह्मण एक सीधा-सादा भला आदमी है। किन्तु काम पड़ने पर प्रयोजन के समय देखा गया, ठाकुर की सांसारिक बुद्धि किसी से कम नहीं है।

५१) रुपये दहेज की बात सुन कर उसने ज़ोर से सिर हिला कर कहा—इतने सस्ते में यह काम न होगा बाबू साहब। बाज़ार जाँच कर देख लीजिए। पचास और एक रुपये में दो अच्छे बकरे भी नहीं मिलते, आप इतने में दामाद खोज रहे हैं। एक सौ एक रुपये दीजिए, एक बार इस पाटे पर बैठ कर और एक बार उस पाटे पर बैठ कर दो फूल छोड़ दूँगा। एक साथ दोनों बहन पार हो जायँगी और आप एक सौ रुपये, दो बैल खरीदने के दाम भी न देंगे?

बात कुछ असङ्गत न थी। तथापि बहुत कुछ कह-सुन कर, बड़ी सही-सिफ़ारिश के बाद ७०) रुपये में मामला तय हुआ। एक रात को उसी ब्राह्मण के साथ सुरलक्ष्मी और राजलक्ष्मी, दोनों बहनों का ब्याह हो गया।

दो दिन बाद ७०) रुपये नक़द लेकर दो पुश्त का कुलीन दामाद बाँकुड़े चला गया। फिर किसी ने उसे हमारे गाँव में नहीं देख पाया। लगभग डेढ़ वर्ष के बाद प्लीहा-ज्वर में भुगतकर सुरलक्ष्मी मर गई और डेढ़-दो वर्ष के बाद राजलक्ष्मी भी काशी में जाकर मुक्ति को प्राप्त हो गई। पियारीबाई का यही संक्षिप्त इतिहास है।

पियारी ने कहा—तुम क्या सोच रहे हो बतलाऊँ?

मैंने कहा—क्या सोच रहा हूँ?

पियारी ने कहा—तुम सोच रहे हो, आहा! लड़कपन में इसे बहुत कष्ट दिया है। कँटीले जङ्गल में भेजकर नित्य इससे बैंचि के फल तुड़वाये हैं, और उसके बदले में केवल मार-पीट की है। यह मार खाकर चुपचाप केवल रोती रही है, कभी कुछ मांगा नहीं। आज अगर कुछ कह रही है तो मान ही न लूँ। हर्ज क्या है? न मसान जाऊँ। यही न?

मैं हँस दिया।

पियारी ने भी हँसकर कहा—यह तो होना ही चाहिए। लड़कपन में एक बार जिसे प्यार की नज़र से देखा जाता है उसे क्या फिर कभी भुलाया जा सकता है?

---

[1] बंगाल का एक वृक्ष-विशेष।

वह अगर किसी बात के लिए अनुरोध या आग्रह करे तो क्या कभी वह पैरों से ठेला जा सकता है ? संसार में ऐसा निठुर कौन होगा ? चलो, चलकर ज़रा बैठो। बहुत-सी बातें कहनी हैं।—रतन, बाबू के बूट की डोरी खोल तो जा आकर।—यह क्या, तुम हँस रहे हो ?

मैंने कहा—हँसता मैं यह देखकर हूँ कि तुम लोग आदमी को किस तरह बातों में उलझाकर वश में कर लेती हो !

पियारी भी हँस दी। बोली—इसमें क्या शक है। ग़ैर को बातों में बहलाकर वश किया जा सकता है; लेकिन होश सँभालने के बाद से ही जिसके वश मे .ख़ुद रही हूँ उसे मैं भला किस तरह बातों से वश में कर सकती हूँ ? अच्छा, आज भला मैं ये सब बातें कह रही हूँ, तुमसे बोल रही हूँ; लेकिन जब नित्य काँटों से क्षत-विक्षत होकर बैंचि की माला तुम्हें बनाकर देती थी तब कब मैं बोलती थी—कितनी बातचीत करती थी ? वह माला क्या मैं तुम्हारी मार के भय से बना देती थी ? यह तुम भूल कर भी न समझना। राजलक्ष्मी ऐसी औरत ही नहीं है। किन्तु छिः ! तुम मुझे बिलकुल भूल ही गये थे ?—देख कर भी न पहचान सके ?

यों कहकर हँसकर सिर हिलाते ही उसके दोनों कानों के हीरे तक हिलकर मानो हँस उठे।

मैंने कहा—तुमको मैंने याद ही कब कर रक्खा था, जो भूल न जाता ? बल्कि आज मैंने तुमको पहचान पाया, यह देखकर मैं खुद आश्चर्य-चकित हो रहा हूँ। अच्छा, अब बारह बजना चाहते हैं—चलता हूँ।

पियारी का हँसी से उज्ज्वल मुख सहसा एकदम विवर्ण-मलिन हो गया। उसने दम भर स्थिर रहकर कहा—अच्छा, तुम भूत-प्रेत न मानो, लेकिन वन-जङ्गल में अँधेरी रात में साँप-बिच्छू, बाघ-भालू, जङ्गली सुअर वग़ैरह का होना तो मानना चाहिए।

मैंने कहा—हाँ, इन सबका होना मैं अवश्य मानता हूँ और इनसे होशियार होकर चलता भी हूँ।

मुझे जाने के लिए उद्यत देखकर पियारी ने धीरे धीरे कहा—तुम जिस प्रकृति के आदमी हो उससे मुझे यह पूरा भय था कि मैं तुमको न रोक सकूँगी। तो भी सोचा था, रो-धोकर हाथ-पैर पकड़ने से अन्त तक शायद न जाने के लिए राज़ी ही कर सकूँ। किन्तु देखती हूँ, रोना ही मेरे हाथ लगा !

मुझे कुछ उत्तर न देते देखकर उसने फिर कहा—अच्छा, जाओ। रोककर अब असगुन, अमङ्गल नहीं करूँगी। किन्तु याद रक्खो, इस विदेश में तुम्हारे दुश्मनों पर अगर कुछ आफ़त आई तो वे राजे-रजवाड़े या बन्धु-बान्धव कोई काम न आयँगे। तब मुझे ही भोगना पड़ेगा। तुम मेरे मुँह पर मुझे न पहचानने की डींग हाँककर मर्दानगी दिखाये जाते हो; लेकिन मैं स्त्री की जाति ठहरी, मेरा मन तो इतना निठुर हो नहीं सकता। विपत्ति के समय मैं तो तुम्हारी तरह यह न कह सकूँगी कि इन्हें नहीं पहचानती।

इतना कहकर वह निकल रही लम्बी साँस को दबा गई।

मैं जाते-जाते रुककर खड़ा हो गया, घूमकर उसकी ओर देखा और हँस दिया। मगर न जाने क्यों, मन में एक तरह के क्लेश का अनुभव होने लगा। मैंने कहा—अच्छा तो है बाईजी, वह भी तो मेरे लिए बड़ा लाभ होगा। मेरा अपना कहीं कोई नहीं है। तो भी मुझे यह मालूम हो जायगा कि एक आदमी ऐसा भी है जो मुझे छोड़कर न जा सकेगा।

पियारी ने कहा—यह क्या तुम अभी नहीं जानते ? एक बार नहीं, एक सौ बार बाईजी कहकर चाहे जितना अपमान क्यों न करो, राजलक्ष्मी तुमको विपत्ति में छोड़कर नहीं जा सकेगी, यह क्या तुम मन-ही-मन नहीं समझते ? लेकिन मैं अगर तुमको छोड़कर चली जा सकती तभी अच्छा होता। तुम्हें एक नसीहत हो जाती। मगर कैसी बदनसीब यह औरतों की जाति है। अगर एक बार प्यार किया तो जाना, जन्म भर के लिए मर चुकी।

मैंने कहा—पियारीजान, जानती हो, भलामानस संन्यासी भी भिक्षा क्यों नहीं पाता ?

पियारी ने कहा—जानती हूँ। लेकिन तुम्हारे इस खोंचे में इतनी धार नहीं है कि तुम मुझे चोट पहुँचाओ। यह प्यार मेरा ईश्वर का दिया हुआ धन है। जब संसार की भलाई-बुराई का ज्ञान तक मुझे नहीं था, उस समय का यह है, आज का नहीं है।

मैंने नरम पड़कर कहा—अच्छी बात है। आशा करता हूँ, आज मुझ पर कुछ-न-कुछ आफ़त अवश्य आयगी। आयगी तो तुम्हारे इस ईश्वर-दत्त धन की हाथों हाथ एक परीक्षा हो जायगी।

पियारी ने कहा—दुर्गा! दुर्गा! छिः! ऐसी बात ज़बान से न निकालो। अच्छी तरह कुशल से लौट आओ। इसकी सचाई की जाँच की कोई ज़रूरत नहीं है। मेरे ऐसे नसीब कहां कि अपने हाथों से सेवा-शुश्रूषा करके दुःसमय मे तुम्हे सुस्थ-सबल करूँ! ऐसा होता तो मैं जानती, इस जन्म का एक ज़रूरी काम मैंने पूरा कर लिया।

यह कहकर मुँह फेरकर उसने आसू छिपाये और यह बात मुझे लालटेन के धीमे प्रकाश में भी दिख गई।

"अच्छा, भगवान् तुम्हारी इस साध को शायद एक दिन पूरा कर देंगे"—यह कहकर और देर न करके मैं चट तम्बू के बाहर निकल आया। दिल्लगी में एक प्रचंड सत्य मुँह से निकल रहा है, यह उस समय कौन जानता था।

तम्बू के भीतर से अश्रु-विकृत कंठ से निकली हुई दुर्गा! दुर्गा! की कातर पुकार मेरे कानों में आकर पहुँची। मैं तेज़ी के साथ मशान की राह में आगे बढ़ने लगा।

सारे मन में पियारी की ही बातें बसी हुई थीं—मस्तिष्क मे वही घूम रही थीं। कब आम के बग़ीचे के भीतर होकर लम्बी अँधेरी रात को मैं नाँघ गया, कब नदी-किनारे के सरकारी बांध के ऊपर आ पहुँचा, इसकी कुछ ख़बर ही मुझे नहीं हुई। रात भर केवल यही बात सोचता हुआ मैं आया कि इस नारी का मन कैसा एक विराट अचिन्तनीय व्यापार है। कब इस पिलही-रोग से पीड़ित औरत ने अपने मरने-से पेट और सेंठे-से हाथ-पैर लेकर पहले-पहले मुझे प्यार की नज़र से देखा और बैंचि-फल की माला देकर अपनी ग़रीबी के अनुरूप पूजा को चुपचाप सम्पूर्ण करती रही, इसकी उस समय मुझे कुछ ख़बर ही नहीं हुई। जब ख़बर हुई तब मेरे विस्मय की सीमा नहीं रही। विस्मय इस प्रेम के लिए भी नहीं हुआ। उपन्यासों और नाटकों में ऐसे बाल्य प्रेम की अनेक कहानियां पढ़ी हैं। किन्तु इस वस्तु को, जिसे ईश्वर-दत्त धन कहकर गर्व करने मे भी वह नहीं हिचकी, उसने इतने दिन तक अपने घृणित जीवन के सैकड़ों-करोड़ों मिथ्या प्रेमाभिनयनों के बीच किस जगह कैसे जिला रक्खा था? वह इसकी ख़ूराक कहा से जुटाती थी? किस राह से उसके पास पहुँच कर उसका लालन-पालन करती थी? आश्चर्य यही सब सोचकर हो रहा था।

इतने में सुन पड़ा—"बाप!"

मैं चौंक उठा। सामने आंख उठाकर देखा, धूसर बालू का लम्बा-चौड़ा मैदान था, और उसी को विदीर्ण करके दुर्बल नदी की क्षीण नक्र रेखा टेढ़ी-मेढ़ी गति से जाकर न जाने किस सुदूर प्रदेश में ग़ायब हो गई है। उस मैदान भर मे जगह जगह कास के पेड़ों के झुण्ड उगे थे। अन्धकार में एकाएक जान पड़ा, ये जैसे एक-एक मनुष्य है, आज अमावस की भयङ्कर रात को प्रेतों का नाच देखने का निमन्त्रण पाकर उपस्थित हुए हैं और बालू के बिछौने पर बैठे चुपचाप नाच शुरू होने की राह देख रहे हैं।

सिर के ऊपर निविड़ कृष्णवर्ण आकाश में असंख्य ग्रह-नक्षत्र भी जैसे आग्रह के साथ आखें खोले इधर ही ताक रहे हैं। हवा नहीं है, कोई शब्द नहीं है; अपने हृदय के भीतर के सिवा, जहां तक दृष्टि जाती है, कहीं प्राणों की आहट का अनुभव नहीं होता।

जो रात को विचरनेवाली चिड़िया एक बार "बाप!" यह शब्द करके चुप हो गई थी वह भी फिर दुबारा नहीं बोली।

मैं पश्चिम ओर धीरे धीरे चला—इसी ओर वह महाश्मशान था।

एक दिन शिकार मे आकर बहुत से सेमर के पेड़ यहाँ देख गया था। कुछ दूर चलते ही उनकी डालियां और तने देख पड़े। ये ही इस महाश्मशान के द्वारपाल हैं। इन्हें नांधकर जाना होगा।

अबकी अत्यन्त अस्फुट रूप से प्राणों की आहट मिटी; किन्तु वह प्रसन्न करनेवाली नहीं थी। और भी कुछ आगे बढ़ने पर वह आहट स्पष्ट मालूम पड़ी। जैसे कोई माता बिलकुल बेहोश सो रही हो, और उसका छोटा बच्चा रोते-रोते अन्त को मुर्दा-सा होकर जैसे रह-रह कर रिरियाता

है—रोता है, ठीक उसी तरह उस श्मशान में एक ओर जैसे कोई रोने लगा। जो कोई इस रुदन का हाल नहीं जानता, जिसने इसके रहस्य को पहले कभी नहीं सुना, वह इस सन्नाटे की अँधेरी अमावस की रात को इस ओर अकेले एक पग भी बढ़ना न चाहेगा—वह चाहे जितना बड़ा निडर और वीर क्यों न हो—यह मैं बाज़ी लगाकर कह सकता हूँ। वह किसी मनुष्य का बच्चा नहीं है, किसी पक्षी का बच्चा है—अन्धकार मे मा को न देख पाकर रो रहा है, यह बात पहले से जाने बिना किसी की मजाल नहीं कि केवल इस शब्द को सुनकर यह अन्दाज़ करके कह सके।

और भी पास आकर देखा, ठीक यही बात थी। काले-काले झोली के समान लटके हुए असंख्य चमगादड़ सेमर की डालों में बसेरा किए हुए हैं और उन्हीं का कोई दुष्ट बच्चा इस तरह आर्तस्वर से रो रहा है।

पेड़ के ऊपर वह बराबर रोता ही रहा; मैं उसके नीचे होकर आगे बढ़कर महाश्मशान के एक छोर पर आकर खड़ा हुआ। सवेरे वृद्ध वक्ता ने जो कहा था कि मसान में हज़ारों नरमुण्ड गिन लिए जा सकते है, सो उनका यह कथन कुछ अत्युक्ति न था। सारी जगह मे ही नर-कङ्काल पड़े हुए थे। महाभैरवी की कंदुक-क्रीड़ा के लिए सचमुच असंख्य नर-कपाल पड़े हुए थे। मगर हां, खिलाड़ी अभी तक कोई आकर उपस्थित नहीं हुआ था। मेरे सिवा और कोई अशरीरी दर्शक वहां उपस्थित था या नहीं, यह मैं इन दोनों भौतिक नश्वर आखों से देखकर नहीं जान सका। उस समय घोर अमावस थी। सुतरां कंदुक-क्रीड़ा शुरू होने में और अधिक विलम्ब न होने की आशा करके एक बालू के ढूह के ऊपर मैं बैठ गया। बन्दूक को खोल कर उसके टोटे की एक बार और जाँच करके फिर उसे उसकी जगह पर लगाकर बन्दूक को अपनी गोद में रखकर मैं तैयार होकर जमकर बैठ गया। हाय रे टोटा! मगर विपत्ति के समय वह कुछ भी सहायता न कर सका।

पियारी की बात का ख़याल आया। उसने कहा था—अगर निष्कपट भाव से, सच्चे जी से विश्वास ही नहीं करते तो फिर कर्म-भोग करने जाते ही क्यों हो? और, अगर विश्वास में ज़ोर नहीं है तो भूत-प्रेत चाहे हों चाहे न हों, मैं तुमको किसी तरह नहीं जाने दूँगी।

सत्य ही तो है। यहां क्या देखने आया हूँ? मन से तो कोई पाप छिपा नहीं है। मैं कुछ भी देखने नहीं आया; केवल यह दिखाने आया हूँ कि मुझमें कितना साहस है। सवेरे जिन लोगों ने कहा था कि डरपोक बङ्गाली काम के वक्त, मौक़े पर भाग जाते है, उनके निकट मुझे यही प्रमाणित करना था कि बङ्गाली बड़े वीर और साहसी होते हैं। यहां मेरे आने का असल मे यही उद्देश था।

मेरा यह बहुत दिनों का दृढ़ विश्वास है कि मनुष्य के मरने पर फिर उसका अस्तित्व नहीं रहता; और अगर रहता भी है तो मसान में, जहा उसके शरीर पर भारी अत्याचार किया जाता है, लौट आकर अपने ही कपाल में लातें मार-मार कर उसे लुढ़काते फिरने की इच्छा होना न तो उसके लिए स्वाभाविक ही है और न उचित ही। कम से कम अपने लिए तो मैं ऐसा ही समझता हूँ। यों तो प्रत्येक मनुष्य की रुचि और इच्छा भिन्न भिन्न होती है। अगर किसी की ऐसी इच्छा हो तो ऐसी अँधेरी रात में रात भर जाग कर मेरा इतनी दूर आना शायद निष्फल न होगा। किन्तु आज उन वृद्ध व्यक्ति ने यही दृश्य देखने की आशा मुझे दी थी।

एकाएक एक हवा का झोंका कुछ धूल-बालू उड़ाकर मेरे शरीर के ऊपर से चला गया और उसका आक्रमण समाप्त होने के पहले ही दूसरा झोंका भी आकर चला गया। मन में आया, यह क्या है? अभी तक तो हवा का कहीं नाम-लेश भी न था। मैं अपने मन को चाहे कितना ही क्यों न समझाऊँ, यह संस्कार हमारे हाड़-मांस में व्यापा हुआ है कि मरने के उपरान्त भी अवश्य कुछ रहता है, जिसके बारे मे हम विशेष कुछ नहीं जानते। जब तक यह हाड़-मांस है तब तक उक्त संस्कार भी है, फिर उसे हम चाहे स्वीकार करें चाहे न करें। उस हवा के झोंके ने केवल धूल और बालू ही नहीं उड़ाई, मेरे मज्जागत उस गुप्त संस्कार को भी जाकर जाग्रत् कर दिया।

क्रमशः धीरे धीरे .खूब वेग के साथ हवा चलने लगी। बहुत लोगों को शायद यह मालूम न होगा कि मुर्दे की खोपड़ी के भीतर से होकर हवा के निकलने से ठीक दीर्घ श्वास छोड़ने का-सा शब्द होता है। देखते-ही-देखते आस-

पास, सामने, पीछे ऐसी दीर्घ श्वासों की भरमार हो गई। ठीक जान पड़ने लगा, कितने ही लोग जैसे मुझे घेर कर लगातार हाय-हाय करके लम्बी सासें छोड़ने लगे, और अँगरेज़ी में जिसे uncanny feeling कहते हैं, ठीक उसी तरह की अस्वस्ति (बेचैनी) मेरे सारे शरीर को जैसे दो बार झकझोर गई। वह चिड़िया का बच्चा उस समय भी चुप नहीं हुआ था। वह जैसे पीछे की ओर और भी अधिक रिरियाने लगा।

मुझे मालूम हुआ कि भय का शिकार हो रहा हूँ। बहुत दिनों की अभिज्ञता के फल से मैं अच्छी तरह जानता था कि मैं जिस जगह आया हूँ वहाँ इस भय को न दबा सकने से मौत तक हो जाना कुछ असम्भव नहीं। वास्तव में बात यह थी कि ऐसे भयानक स्थान में अकेले आज से पहले मैं कभी नहीं गया था। ऐसे स्थान मे अकेले बेखटके आने-जाने की शक्ति मुझमें नहीं, इन्द्र में ही थी। अनेक बार उसके साथ बहुत-सी भयानक जगहों में जाने से मेरे मन में भी यह धारणा उत्पन्न हो गई थी कि इच्छा करने से मैं भी इन सब स्थानों में अकेले जा सकता हूँ। किन्तु यह मेरी कितनी बड़ी ख़ामख़याली थी, कैसा भारी भ्रम था, और मैं केवल धुन में आकर उसकी नक़ल करने चला था, यह पल भर में ही मुझे स्पष्ट अनुभव हो गया। मेरी छाती उतनी चौड़ी कहाँ है? मेरे हृदय में वैसा अटल विश्वास कहाँ है? मेरे पास राम-नाम का वह अभेद्य कवच कहाँ है? मैं इन्द्रनाथ थोड़े ही हूँ कि इस प्रेतभूमि में अकेले खड़े होकर आंखें फैलाकर प्रेतों की कन्दुक-क्रीड़ा देखूँ!

उस समय जान पड़ने लगा, अगर जीवित बाघ या भालू भी यहाँ कोई दिखाई दे जाय तो मुझे बहुत कुछ सहारा हो।

एकाएक जान पड़ा, जैसे किसी ने पीछे खड़े होकर मेरे दाहने कान पर सास छोड़ी। वह ऐसी ठंडी थी कि बर्फ़ की तरह जैसे उसी जगह जम गई। गरदन न उठाकर भी मैंने स्पष्ट देख पाया, यह सांस जिस नाक के भारी छिद्र से निकली है, उसमें न चमड़ा है न मांस, एक बूँद रुधिर का संसर्ग तक नहीं है—केवल हाड़ है और छेद। सामने, पीछे, दाहने, बायें, सर्वत्र अंधकार है। सन्नाटे की आधी रात सायँ-सायँ करने लगी। आसपास की हाय-हाय और लम्बी सासें जैसे क्रमशः मेरे हाथ के पास आकर पहुँचने लगीं। कान के ऊपर वैसी ही बेहद ठण्डी सांस लगातार पड़ने लगी। यही मुझे सबसे अधिक जड़ और विवश करने लगी। जान पड़ने लगा, जैसे सारे प्रेतलोक की ठंडी हवा इसी छिद्र के द्वारा आकर मेरे शरीर में लग रही है।

लेकिन इतने कांड के भीतर भी यह बात मैं नहीं भूला कि किसी तरह अगर मेरे होश-हवास ठीक न रहे तो कुशल नहीं। ऐसा हुआ तो मेरा मरण अनिवार्य है। मैंने देखा, मेरा दाहना पैर ठक-ठक करके कांप रहा है। उसका काँपना रोकने की चेष्टा की, पर रुका नहीं। वह जैसे मेरा पैर ही नहीं है—उस पर मेरा कुछ ज़ोर ही नहीं है।

ठीक इसी समय बहुत दूर पर बहुत से कंठों की मिली हुई पुकार मेरे कानों मे पहुँची—बाबूजी! बाबू साहब!

सारे शरीर के रोएँ खड़े होगये। ये कौन लोग पुकार रहे हैं? फिर पुकार कर किसीने कहा—गोली न चलाइयेगा!

शब्द क्रमशः आगे बढ़ने लगा। तिरछी नज़र से मैंने देखा, प्रकाश की दो क्षीण रेखायें भी देख पड़ीं। एक बार जान पड़ा, इस पुकार के भीतर रतन की आवाज़ भी है। दम भर बाद ही मालूम हुआ, मैंने ठीक अनुभव किया था।

और कुछ दूर आगे बढ़कर उसने एक सेमर के पेड़ की आड़ में खड़े होकर चिल्लाकर कहा—बाबूजी, आप चाहे जहा हो, बन्दूक़ न छोड़िएगा। मैं रतन हूँ।

रतन सचमुच छत्तीसा नाई है, इसमें सन्देह नहीं।

उल्लास के मारे चिल्लाकर उत्तर देना चाहा, लेकिन मुँह से आवाज़ नहीं निकली। एक कहावत है कि भूत-प्रेत जाते समय कुछ नष्ट कर जाते हैं। जो मेरे पीछे खड़े होकर ठंडी सास छोड़ रहा था वह मेरी आवाज़ या बोलने की शक्ति को ही नष्ट कर गया।

रतन और अन्य तीन आदमी दो लालटेनें और लाठी-सोंटा वग़ैरह हाथ में लिए मेरे पास आकर उपस्थित

हुए। इन तीन आदमियों में एक छोटेलाल था। यह पियारी के साथ तबला बजाता था। एक पियारी का दरबान था और एक गांव का चौकीदार था।

रतन ने कहा—चलिए, तीन बजने को हैं।

"चलो" कहकर मैं आगे बढ़ा।

रास्ते में जाते-जाते रतन ने कहा—बाबूजी, धन्य है आपकी हिम्मत! हम चार आदमी थे, लेकिन कितना डरते हुए आये हैं, कह नहीं सकता।

मैंने कहा—आया क्यों?

रतन ने कहा—रुपयों के लोभ से। हम सब एक महीने की तनख़्वाह नक़द इनाम पा गये हैं।

यह कहकर मेरे पास आकर आवाज़ धीमी करके कहने लगा—बाबूजी, आप जब चले आये तब मैंने जाकर देखा, माजी बैठी रो रही हैं। मुझे देखकर कहा—रतन, क्या होगा भैया? तुम लोग पीछे पीछे जाओ। मैं तुम सबको एक एक महीने की तनख़्वाह इनाम देती हूँ। मैंने कहा—छोटेलाल और गनेस को साथ लेकर मैं जा सकता हूँ माजी। लेकिन राह तो मुझे मालूम नहीं। इसी समय चौकीदार पहरा देता हुआ निकला। माजी ने कहा—इसे बुला ला रतन। यह निश्चय ही राह जानता होगा। मैं चौकीदार को बुला लाया। चौकीदार ने नक़द छः रुपये हाथ में पाकर साथ आना स्वीकार कर लिया। वही राह दिखाकर हमें यहां ले आया है। अच्छा बाबूजी, आपने छोटे बच्चे का रोना सुना है?

यह कहकर रतन कांप उठा और उसने मेरे कोट का कोना भय के मारे पकड़ लिया। बोला—हमारे ये गनेस पाँड़े ब्राह्मण हैं। ये साथ थे, इसी से हम सबकी जान बच गई, नहीं तो—

मैं कुछ बोला नहीं। प्रतिवाद करके किसी का भ्रम दूर करने के योग्य अवस्था उस समय मेरी थी ही नहीं। आच्छन्न, अभिभूत की तरह चुपचाप रास्ता चलने लगा।

कुछ दूर आने पर रतन ने फिर प्रश्न किया—आज कुछ देख पाया बाबूजी?

मैंने कहा—नहीं।

मेरे इस संक्षिप्त उत्तर से क्षुब्ध होकर रतन ने कहा—हम लोगों के आने से क्या आप नाराज़ होगये बाबूजी? लेकिन माजी का रोना देखते तो—

मैं चटपट कह उठा—नहीं रतन, मैं तनिक भी नाराज़ नहीं हुआ।

तम्बू के पास पहुँचकर चौकीदार अपने काम पर चला गया। गनेस और छोटेलाल नौकरों के तम्बू की ओर चल दिये।

रतन ने कहा—माजी ने कहा था, डेरे पर जाते समय ज़रा उनसे मिल लीजिएगा।

ठिठक कर खड़ा होगया। आंखों के सामने जैसे स्पष्ट देख पड़ने लगा, पियारी चिराग़ के सामने अधीर आग्रह से आंखों मे आंसू भरे मेरी राह देख रही है और मेरा मन उसी की ओर वेग से दौड़ा जा रहा है।

रतन ने नम्र भाव से फिर कहा—आइए।

घड़ी भर के लिए आंखें मूँदकर अपने हृदय के भीतर ग़ोता लगाकर मैंने देखा, वहां कोई प्रकृतिस्थ—होश-हवास मे—नहीं था। सभी गले-गले तक मदिरा पीकर मतवाले हो उठे थे, छी-छी! इन मतवालों को साथ लेकर पियारी से मिलने जाऊँ? यह तो मुझसे न होगा।

विलम्ब देखकर विस्मित होकर रतन ने कहा—वहां अँधेरे मे क्यों खड़े होगये बाबूजी—आइए न?

मैं चटपट कह उठा—न रतन, इस समय नहीं—मैं जाता हूँ।

रतन ने कुंठित होकर कहा—माजी लेकिन बैठी आपकी राह देख रही हैं—

"राह देख रही हैं? देखने दो? उनसे मेरे असंख्य नमस्कार कहकर कहना, कल यहाँ से जाने के पहले मुलाक़ात होगी—इस समय नहीं। मुझे बड़ी नींद लगी है रतन, जाता हूँ।"—यह कह कर विस्मित, क्षुब्ध रतन को उत्तर देने का समय न देकर तेज़ी के साथ उधर से अपने तम्बू की ओर मैं चला गया।

नवाँ परिच्छेद

मनुष्य के अन्तःकरण को पहचान कर, उसके विचार का भार अन्तर्यामी पर न छोड़कर मनुष्य जब स्वयं विचार करने बैठता और कहता है, मैं ऐसा हूँ, मैं वैसा हूँ, यह काम मुझसे कभी न होता, वह काम मैं मर जाने पर भी न करता, तो यह सुनकर मैं लज्जा के मारे जैसे मर जाता हूँ। फिर केवल अपने मन के ही सम्बन्ध में नहीं, पराये मन के सम्बन्ध में भी अपने ज्ञान के बारे में मनुष्य के अहङ्कार की सीमा नहीं देख पड़ती। एक बार ऐसे किसी समालोचक के लेख को पढ़ कर देखो, हँसते-हँसते लोटपोट हो जाओगे। कवि से आगे बढ़कर वे उसके काव्य के चरित्र को पहचान लेते है। ज़ोर देकर कहते है, यह चरित्र किसी तरह ऐसा नहीं हो सकता, वह चरित्र कभी वैसा नहीं कर सकता—इसी तरह की कितनी ही बाते। लोग वाहवाही देकर कहते हैं—वाह रे वाह ! यही तो क्रिटिसिज़्म है ! इसी को तो चरित्र की समालोचना कहते है ! सत्य ही तो है ! अमुक समालोचक की मौजूदगी में अंट-संट जो मन में आया वही लिख देने से ही कैसे चल सकता है ? किताब की जितनी भूलें और भ्रान्तियाँ थीं, सब पकड़कर दिखा दीं !

मैं कहता हूँ, वे दिखा दें। त्रुटि किसमें नहीं है ? तो भी मैं अपने जीवन की आलोचना करके और ये सब समालोचनाये पढ़कर लज्जा के मारे सिर नहीं उठा सकता ! मन ही मन कहता हूँ—हाय रे जले नसीब ! यह क्या केवल कहने भर की ही बात है कि मनुष्य का हृदय जिस वस्तु को कहते है, वह असीम है, अनन्त है ? दंभ प्रकट करने के समय क्या इस प्रवाद का कानी कौड़ी भी मूल्य नहीं ? यह बात क्या एक बार भी समालोचना करते समय तुम्हारे मन मे नहीं आती कि तुम्हारे कोटि-कोटि जन्मों के कितने ही असंख्य करोड़ संस्कार इस अनन्त हृदय मे डूबे या सोये रह सकते हैं और एकाएक जाग्रत होकर तुम्हारे बहु-दर्शन को, तुम्हारी विद्या और शिक्षा को, तुम्हारे मनुष्य को पहचानने के अनन्त ज्ञान-भांडार को पल भर मे चूर्ण-विचूर्ण कर सकते है ! यह भी क्या तुम नही सोचते कि यह हृदय असीम आत्मा का आसन है !

मैं अपने ही को कहता हूँ। मैंने अपनी आंखों से अन्नदा दीदी को देखा है। उनकी अम्लान दिव्य मूर्ति अभी तक मैं नहीं भूला। दीदी जब चली गईं तब कितनी ही गहरी सन्नाटे की रातों को मैंने आंसुओं से बिछौने और तकिये को भिगो दिया है, और मन ही मन कहा है—दीदी, मैं अपने लिए अब कुछ चिन्ता नहीं करता; तुम पारस थीं, तुम्हारे स्पर्श से मेरा भीतर-बाहर सब लोहा सोना हो गया है, कहीं की भी किसी आब-हवा के उपद्रव से उसमें ज़ंग लगने का ख़ौफ़ नहीं है। लेकिन तुम कहा गईं दीदी ? दीदी ! मैं और किसी को तो इस सौभाग्य का भाग नहीं दे सका। और कोई तो तुम्हें देख नही पाया। यदि लोग तुम्हें देख पाते तो हर एक देखनेवाला साधु, सच्चरित्र हो जाता, इस बारे में मुझे तनिक भी संदेह नहीं। उस ज़माने में, जब दीदी के दर्शन हुए थे, मैं किस तरह यह सम्भव हो सकता, इसी विषय को लेकर रात-रात भर जागकर बच्चों की-सी कल्पनायें लगातार किया करता था। कभी सोचता था, देवी चौधरानी की तरह अगर मुझे कहीं सात घड़े मोहरों से भरे मिल जाते तो अन्नदा दीदी को एक बहुत बड़े सिंहासन पर बिठाता। जंगल काटकर जगह साफ़ करके देश के लोगों को जमा करके उनके सिंहासन के चारों ओर जमा करता। कभी सोचता था कि एक बड़े भारी बजड़े में उन्हें बिठाकर बैंड बजवाता हुआ देश-विदेश में उन्हें घुमाता फिरूँ। इसी तरह की कितनी ही उद्भट कल्पनायें करके आकाश-कुसुमो की माला गूँथता। अब उन बातों का ख़्याल आता है तो हँसी आती है, और आँखों से आंसू भी कम नहीं गिरते।

उस समय यह विश्वास मेरे मन में हिमाचल की तरह अटल था कि मुझे विचलित या मोहित करनेवाली स्त्री इस लोक में तो है ही नहीं, परलोक में भी शायद न होगी। मै सोचता था, जीवन मे अगर कभी किसी के मुख में ऐसी ही कोमल बातें, होठों में ऐसा ही मधुर हास्य, ललाट मे ऐसी ही अपरूप आभा, आंखों में ऐसी ही सजल करुण-दृष्टि देखूँ, तो उसकी ओर देखूँगा। जिसे अपना मन दूँगा वह भी जैसे ऐसी ही सती, ऐसी ही साध्वी हो। प्रत्येक बार चरण रखने पर उसकी भी ऐसी

ही अनिर्वचनीय महिमा प्रकट हो उठती हो, इसी तरह वह भी जैसे संसार के सब सुख-दुःख, सब भले-बुरे और सब धर्म-अधर्म को निर्लिप्त होकर ग्रहण कर सके।

वही तो मैं हूँ! तो भी आज सवेरे आँखें खुलने के साथ ही साथ किसके मुख की बातें, किसके होठों की हँसी, किसके आँखों के आँसू याद करके हृदय के एक एकान्त प्रान्त में कुछ व्यथा का अनुभव हुआ? मेरी उन संन्यासिनी अन्नदा दीदी के साथ इस स्त्री का कहाँ पर किस अंश में रत्ती भर भी सादृश्य था? अथ च बात ऐसी ही हुई! छः दिन पहले स्वयं मेरे अन्तर्यामी आकर अगर यह बात कह जाते तो मैं हँसकर उनकी बात उड़ा देता और कहता—हे मेरे अन्तर्यामी, तुम्हारी इस शुभ कामना के लिए मैं तुम्हें सहस्र धन्यवाद देता हूँ! लेकिन तुम अपना काम देखो, मेरे लिए चिन्ता करने की तुम्हें कोई आवश्यकता नहीं। मेरे हृदय की कसौटी में पक्के खरे सोने की लकीर खिँची हुई है। वहाँ पीतल की दूकान तोलने से उसका कोई ख़रीदार नहीं जुट सकता।

तो भी ख़रीदार जुट ही गया। मेरे हृदय के भीतर, जहाँ अन्नदा दीदी के आशीर्वाद से खरे सोने की भरमार थी, वहाँ भी एक बदनसीब पीतल के लोभ को सँभाल नहीं सका, ख़रीद ही बैठा, यह क्या कुछ कम आश्चर्य की बात है!

मैं .खूब समझता हूँ, जो लोग .खूब कड़े और बड़े समझदार हैं वे मेरी इस आत्मकथा के बीच इसी जगह अधीर होकर कह उठेंगे—भैया, इतनी भूमिका बाँधकर तुम कहना क्या चाहते हो? अच्छी तरह .खुलासा करके कह न दो, वह तुम्हारा वक्तव्य क्या है? आज आँखें खुलते ही पियारी के मुख का स्मरण करके तुम व्यथित हुए थे—यही न? जिसे तुम मन के दरवाज़े पर से ही झाड़ू मारकर बिदा किये देते थे, आज उसी को आपसे बुलाकर घर में बिठाना चाहते हो—यही न? सो अच्छी बात है। यह अगर सत्य है तो इसके भीतर अपनी अन्नदा दीदी का नाम अब मत लेना। कारण, तुम चाहे जिस तरह बनाकर चाहे जितनी बातें क्यों न कहो, हम मनुष्य-चरित्र समझते हैं। हम ज़ोर देकर कह सकते हैं कि वह सती-साध्वी पत्नी का आदर्श तुम्हारे मन में स्थायी नहीं हुआ—उसे तुम अपने समग्र मन से किसी समय भी ग्रहण नहीं कर सके। ग्रहण कर सकते तो यह झूठा मुलम्मा तुमको कभी मोहित, विचलित न कर सकता।

यह ठीक है। किन्तु अब और तर्क की आवश्यकता नहीं। मुझे अच्छी तरह मालूम हो गया है कि मनुष्य अन्त तक किसी तरह अपना—अपने हृदय का—सम्पूर्ण परिचय नहीं पाता। वह जो नहीं है, वही अपने को जान रखकर और बाहर उसका प्रचार कर केवल अपने लिए विडम्बना की ही सृष्टि करता है। और, इसके लिए उसे जो दंड भोगना पड़ता है वह भी बिलकुल साधारण नहीं होता। ख़ैर, जाने दो। मै तो .खुद, जानता हूँ, इतने दिन तक किस नारी के आदर्श पर क्या व्याख्यान देता फिरा हूँ। सुतरां आज मेरी इस दुर्गति के इतिहास को पढ़-सुनकर जब लोग कहेंगे कि श्रीकान्त कैसा धोखेबाज़ है—हिपोक्रिट् है तब मुझे यह सब चुप होकर सुनना ही पड़ेगा। अथ च मैं हिपोक्रिट् न था; धोखा देना मेरा स्वभाव नहीं है। मेरा अपराध केवल इतना ही है कि मेरे भीतर जिस दुर्बलता ने अपने को छिपा रक्खा था उसकी ख़बर मैं नहीं रख सका। आज जब समय पाकर वह सिर उठाकर खड़ी हो गई और उसने अपने ही समान और एक दुर्बलता को सादर बुलाकर एकदम ले जाकर हृदय के अन्तस्तल के भीतर बिठा दिया तब असत्य विस्मय से मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। किन्तु 'जा' कह कर उस दुर्बलता को मैं दुतकार नहीं सका। मुझसे यह भी छिपा नहीं रहा कि अब मुझे ससीम लज्जा का बोध सिर पर लादना होगा; किन्तु हृदय का पात्र जो पुलक से परिपूर्ण हो रहा है! नुक़सान जो होना हो सो हो; हृदय अब इसे त्याग करना नहीं चाहता!

"बाबू साहब!" कहकर कुँअर साहब के नौकर ने आकर पुकारा। पलँग पर सीधा होकर बैठ गया। उसने सम्मान-पूर्वक निवेदन किया कि कुँअर साहब तथा अन्य बहुत-से लोग कल रात की मेरी कहानी सुनने के लिए उत्सुकता के साथ मेरी राह देख रहे हैं।

मैंने पूछा—उनको मेरे वहाँ जाने और सकुशल लौट आने का हाल मालूम कैसे हुआ?

भृत्य ने कहा—तम्बू के दरबान ने बतलाया कि आप भोर होने के पहले ही लौट आये हैं।

हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदल कर मैं गया। बड़े तम्बू के भीतर प्रवेश करते ही एक शोर-गुल सा मच गया। एक साथ ही लाखों प्रश्न सुन पड़े। देखा, कल के वे वृद्ध महाशय भी विराजमान हैं। और, एक तरफ़ पियारी भी अपने साथियों को लिये चुपचाप बैठी है। रोज़ की तरह आज उससे मेरी चार आँखें नहीं हुईं! वह जैसे जान-बूझ कर दूसरी ओर आँखें फेरे बैठी थी।

उच्छ्वसित प्रश्नों की लहर शान्त होने आने पर मैंने जवाब देना शुरू किया।

कुँअरजी ने कहा—धन्य है तुम्हारा साहस श्रीकान्त! कितनी रात गये तुम वहाँ पहुँचे थे?

मैंने कहा—बारह से एक बजे के भीतर।

उन वृद्ध व्यक्ति ने कहा—घोर अमावस थी। साढ़े ग्यारह बजे के बाद अमावस लग गई थी।

चारों ओर से विस्मय-सूचक ध्वनि उठ कर जब क्रमशः शान्त हो गई तब कुँअर साहब ने फिर प्रश्न किया—उसके बाद? क्या देखा?

मैंने कहा—बहुत से हाड़-गोड़ और मुर्दों की खोपड़ियाँ।

कुँअर साहब ने कहा—ओह! कैसा भयंकर साहस है! मसान के भीतर गये थे या बाहर ही खड़े रहे थे?

मैंने कहा—भीतर घुसकर एक बालू के ढूह पर जाकर बैठ गया।

कुँअर—उसके बाद? फिर? बैठकर क्या देखा?

मैं—दूर तक, जहाँ तक नज़र जाती थी, केवल बालू ही थी।

कुँअर—और?

मैं—सेमर के पेड़ वग़ैरह थे।

कुँअर—और?

मैं—नदी का जल था।

कुँअर साहब ने अधीर होकर कहा—यह सब तो मैं जानता ही हूँ जी! अजी, मैं पूछता हूँ, वह सब कुछ—

मैं हँस पड़ा। कहा—और दो-एक निशाचर चमगादड़ों को पंख फटफटा कर अपने ऊपर से उड़ जाते देखा था।

तब उन वृद्ध व्यक्ति ने स्वयं आगे बढ़कर प्रश्न किया—और कुछ नहीं देखा?

मैंने कहा—नहीं।

उत्तर सुनकर तम्बू भर के आदमी जैसे निराश हो पड़े।

तब वे वृद्ध व्यक्ति एकाएक क्रुद्ध होकर कह उठे—ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। आप वहाँ गये नहीं।

उनका क्रोध देखकर मैं केवल हँस दिया। कारण, उनके क्रुद्ध होने की बात ही थी। कुमार बहादुर ने मेरा हाथ पकड़ कर विनय के स्वर में कहा—तुम्हें क़सम है श्रीकान्त, क्या देखा, सच कहो।

मैंने कहा—सच कहता हूँ, कुछ नहीं देखा।

कुअँर—अच्छा, वहाँ कितनी देर तक रहे?

मैं—तीन घंटे के लगभग।

कुअँर—अच्छा देखा न सही, कुछ सुना भी नहीं?

मैं—हाँ, सुना अवश्य था।

दमभर में ही सबके मुख उत्साह से प्रदीप्त हो उठे। मैंने मसान में क्या सुना, यह सुनने के लिए लोग और भी मुझसे आकर सट गये।

तब मैं कहने लगा, किस तरह रास्ते में ही एक रात को फिरनेवाली चिड़िया मुझे देखते ही "बाप!" कहकर उड़ गई; किस तरह छोटे बच्चे के-से स्वर में एक चिड़िया का बच्चा एक सेमर के पेड़ पर रिरिया-रिरिया कर रोने लगा, किस तरह एकाएक आँधी उठी और मुर्दों की खोपड़ियों में भर कर हवा के निकलने से दीर्घ श्वास का भ्रम होने लगा; किस तरह अंत को जैसे कोई अशरीरी प्राणी मेरे पीछे खड़े होकर लगातार बर्फ़-सी ठंडी साँसें मेरे दाहने कान पर छोड़ने लगा।

मेरा वक्तव्य समाप्त हो गया, किन्तु बहुत देर तक किसी के मुख से कोई शब्द न निकल सका। तम्बू भर में सन्नाटा पड़ गया।

अन्त को उन वृद्ध पुरुष ने एक लम्बी साँस छोड़कर मेरे कंधे पर एक हाथ रखकर धीरे-धीरे कहा—बाबूजी, आप सच्चे ब्राह्मण के बच्चे हैं, इसी से जीते-जागते सकुशल लौट आये। और कोई होता तो कभी ज़िन्दा न लौट

पाता। किन्तु आज से आपको इस बूढ़े की क़सम है बाबूजी, और कभी ऐसा दुस्साहस न कीजिएगा। आपके माता-पिता के चरणों में मेरे कोटि-कोटि प्रणाम हैं—अबकी बार केवल उन्हीं के पुण्य-प्रताप से आप बच गये।

इतना कहकर अपनी ही धुन में उन्होंने मेरे पैर छू ही तो लिये।

मैं पहले कह चुका हूँ, यह आदमी बात करने में बड़ा निपुण था। अब उसने बोलना शुरू किया। भौंहें और आंखों की पुतलियां कभी संकुचित, कभी प्रसारित, कभी बुझी हुई और कभी प्रज्वलित करके उसने पक्षी-शिशु के रोने से शुरू करके मेरे कान पर वह दीर्घ-श्वास पड़ने तक की ऐसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्या की कि दिन के समय, इतने आदमियों के बीच में बैठकर भी, मेरे तक सिर के बाल खड़े हो आये।

कल सवेरे की तरह आज भी पियारी चुपचाप खिसककर न जाने कब वृद्ध के निकट आ बैठी थी। मैंने इस बात पर लक्ष्य नहीं किया था, यद्यपि वृद्ध के समीप ही था। एकाएक एक सांस छोड़ने के शब्द से गर्दन घुमाकर देखा, पियारी ठीक मेरे पीठ के पास आ बैठी है, और एकटक वक्ता के मुख की ओर देखती हुई उसकी बातें सुन रही है। मैंने यह भी लक्ष्य किया कि उसके दोनों स्निग्ध-उज्ज्वल कपोलों पर गिरी हुई अश्रुधारा सूखकर स्पष्ट व्यक्त हो रही है। कब किस लिए उसके आंसू बहे थे, यह शायद उसे ख़बर भी नहीं हुई, नहीं तो वह उन्हें अवश्य पोंछ डालती। किन्तु वह अश्रु-कलुषित तल्लीन मुख एक बार के दृष्टिपात से ही मेरे हृदय में अग्नि-रेखाओं-द्वारा जैसे अंकित हो गया। मसान का क़िस्सा ख़तम होते ही पियारी उठ खड़ी हुई और कुँअर साहब को एक सलाम करके, आज्ञा लेकर, धीरे-धीरे वहां से चल दी।

विदेश

१—अमेरिका और मेक्सिको

क्सिको संयुक्त-राज्य अमेरिका के दक्षिण मे बड़ा धनी देश है, रुपये-पैसे मे नहीं—खानों में। पृथ्वी रत्नगर्भा है। उसके भीतर तेल के बड़े बड़े स्थायी सोते हैं और सोने की अमूल्य खदानें हैं। जब मेक्सिको-निवासी अपने देश की इस सम्पत्ति से अपरिचित थे, अमेरिकन वहाँ गये और उन्होंने भूमि ख़रीद ली। खेती करते करते उनके सौभाग्य से तेल का एक सोता भी उन्हें मिल गया। बस, फ़िर क्या था। अमेरिकन भूमि ख़रीद ख़रीद कर तेल के सोते निकालने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सम्पूर्ण तेल के सोते इन्हीं के हाथ में आ गये। जब तक मेक्सिकन जागृत न थे, जब तक उनके शासन मे अमेरिकनों का पर्याप्त हस्तक्षेप था, तब तक तो कोई बात न थी। परन्तु जब मेक्सिकन-सरकार चेती, अमेरिकन प्रभुत्व कम हुआ, तब उसने उन तेल के सोतों पर अपना प्रभुत्व घोषित करना चाहा। उनकी सबसे बड़ी दलील यह थी कि संसार में कोई भी राज्य ऐसा नहीं है जहाँ सरकार का अधिकार पृथ्वी के नीचे की वस्तु पर न हो। भूमि पर किसी का अधिकार हो जाने से यह नहीं सूचित होता कि उसके नीचे के पदार्थ पर भी उसी का अधिकार होगा। वह तो सरकार की चीज़ होगी। अतः तेल के सब सोते सरकारी होने चाहिए। अमेरिकन-सरकार को जब यह पता चला तब उसने बड़ा विरोध किया तथा यह स्पष्ट घोषित किया कि अमेरिकन-सरकार उन सोतों पर मेक्सिकन सरकार का अधिकार अस्वीकार करती है।

१९१६ में मेक्सिको के राष्ट्रपति सेनानायक कैरेंज़ा थे। कैरेंज़ा इस बात पर तुले हुए थे कि मेक्सिको का तेल-व्यवसाय राष्ट्रीय बना दिया जायगा। अमेरिकन सरकार ने जब इसका तीव्र प्रतिवाद किया तब कैरेंज़ा ने इसे निराधार कहा। शीघ्र ही, १ ली मई १९१७ में जो मेक्सिकन विधान बना उसमें यह स्वीकार किया गया कि ज़मीन पर अधिकार ज़मीन के नीचे भी अधिकार नहीं दिला देगा। उस समय राष्ट्रपति विल्सन (Wilson) का अमेरिका में शासन था। आपने इस धारा का तीव्र प्रतिवाद किया। परन्तु कोई परिणाम न निकला। कैरेंज़ा अपनी बात पर अटल रहा। सन् १९१८ की १९ फ़रवरी को उसने एक फ़रमान निकाल कर यह घोषित कर दिया कि ज़मीन के नीचे मेक्सिकन-सरकार का अधिकार है। २ अप्रैल १९१८ को राष्ट्रपति विल्सन ने पुनः प्रतिवाद किया, पर परिणाम कुछ न हुआ।

मेक्सिको की इस दृढ़ता का कारण यह था कि उस समय संयुक्त-राज्य योरप के महासमर मे फँसा हुआ था। परन्तु संयुक्त-राज्य ने मेक्सिकन-सरकार को ही उस समय तक मानना अस्वीकार कर दिया जब तक वह अमेरिकन के अधिकारों को न मान ले।

कैरेंज़ा-सरकार अधिक दिन न टिकी। इस सरकार का शीघ्र ही पतन होगया तथा अदोल्फ़ो दी ला हुयेर्ता अस्थायी राष्ट्रपति बने। परन्तु इनके भी विचार बहुत कुछ कैरेंज़ा से मिलते जुलते थे—कम से कम तेल के विषय

में। इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिकन-सरकार ने इनका भी शासन स्वीकार न किया। हुयेर्ता का शासन भी अधिक दिन न चला। इस समय से मेक्सिको में ख़ून-ख़राबी, लड़ाई-दङ्गे तथा वैर-विरोध का प्रारम्भ हुआ। सैनिक-शक्ति के बल-द्वारा जनरल ओब्रेगैन १ ली दिसम्बर सन् १९२० में मेक्सिकन-राष्ट्रपति हुए। उसी समय प्रसिद्ध हाज़ साहब संयुक्त-राज्य अमेरिका के राज्य-सचिव नियुक्त हुए। दोनों ही व्यक्ति बड़े प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ थे। अत ऐसी आशा की जाती थी कि यह प्रश्न हल हो जायगा। परन्तु संयुक्त-राज्य अभी तक शक्ति-प्रदर्शन पर न तुला था। राष्ट्रपति विल्सन तो इसके बिलकुल विरुद्ध थे, पर इतना वे अवश्य चाहते थे कि साधारण धाक से काम निकल जाय। हाज़ कोई समझौता न करा सके।

झगड़े का कोई अन्त होते न देख कर मेक्सिको-सरकार ने अपने कमीश्नरों को संयुक्त-राज्य से बात चीत करने के लिए नियुक्त किया। संयुक्त-राज्य ने भी दूसरी मई १९२३ को चार्ल्स बीचर वैरेन तथा जज जॉन बार्टन पेयनी को मेक्सिको नगर में मेक्सिकन-प्रतिनिधियों से बात करने के लिए नियुक्त किया। इस समय हार्डिञ्ज अमेरिका में राष्ट्रपति थे। इनकी धमकी का यह परिणाम हुआ कि घरेलू झगड़ों से परेशान जनरल ओब्रेगन इनकी बात मानने को तैयार हो गये। दोनों राष्ट्रपतियों ने आपस में मिल कर यह समझौता किया कि मेक्सिकन-सरकार पहली मई १९१७ के पूर्व अधिकृत भूमि के नीचे अमरीकनों का अधिकार स्वीकार करती है। साथ ही, दो कमेटियाँ बनाई गईं जो उन कम्पनियों या व्यक्तियों के अधिकारों का निर्णय करें।

अमेरिका ने मेक्सिकन-सरकार को केवल इसी कारण स्वीकार नहीं किया था कि वह अमेरिकन-अधिकारों का निरादर कर रही थी। ज्योंही यह बाधा टली, ३ सितम्बर १९२५ को राष्ट्रपति ओब्रेगैन की सरकार स्वीकार कर ली गई। मेक्सिकन-राष्ट्रपति का कार्यकाल, अमेरिकन-राष्ट्रपति की भाँति केवल चार वर्ष का होता है। यद्यपि ओब्रेगैन अपनी सैनिक-शक्ति के बल पर राष्ट्रपति हुए थे तथापि कहने के लिए तो वे प्रजा के प्रतिनिधि थे ही। १९२४ में आपका कार्यकाल समाप्त हो गया। अतः आपका स्थान दूसरा अवश्य ही ग्रहण करता। इसी समय मेक्सिको में नवीन शासन-प्रणाली आविर्भूत हुई थी। उसके अनुसार सर्व-प्रथम सार्वजनिक-निर्वाचन-द्वारा राष्ट्रपति चुनना था। परन्तु ओब्रेगैन ने अपना उत्तराधिकारी कॉलेस को बनाया, अपनी सैनिक सहायता उन्हें दी तथा उन्हीं को राष्ट्रपति बनवा दिया। ३० नवम्बर १९२४ को कैलेस राष्ट्रपति हुए। कैलेस ओब्रेगैन के पदानुगामी हैं। इसी से नीति में कोई अन्तर नहीं हुआ।

राष्ट्रपति कैलेस ने ओब्रेगैन-हार्डिञ्ज समझौते को स्वीकार कर लिया। अमेरिकन-सरकार ने भी उनकी सरकार को स्वीकार कर लिया। परन्तु कैलेस के सामने बड़े विचित्र मसले थे। पहली बात तो यह थी कि मेक्सिको में क्रान्तिकारी दल की शक्ति बढ़ती ही जाती थी। क्रान्तिकारी दल को मिलाने के लिए प्रत्येक मेक्सिकन-राष्ट्रपति को यह घोषित करना पड़ता है कि वह भी क्रान्तिकारी दल का है। यदि वह यह न कहे तो दूसरे दिन उसका शासन उलट जाय। परन्तु हृदय से तो वह इस दल की उन्नति नहीं चाहता। दूसरी विपत्ति यह थी कि देश भर के कैथलिक सम्प्रदायवाले, विशेषतः पादरी, उसे विश्वास-घाती तथा काफ़िर समझते थे। वे साफ़ कह रहे थे कि हम उसके विरुद्ध बलवा करेंगे। एक बार उन्होंने ट्रेनों को उलट देने और सशस्त्र क्रान्ति करने का प्रयत्न भी किया। कितने ही पकड़े गये और मारे गये तथा कितने को देश-निकाला हुआ। तीसरी बात यह थी कि मेक्सिको अपने देश में आकर संयुक्त-राज्य का ज़बर्दस्ती धन अर्जन करना न देख सका। राष्ट्रीय मेक्सिको अमेरिकन प्रभुत्व के विरुद्ध था। उसने बार बार यह चेष्टा की कि मेक्सिको-अमेरिका का सम्बन्ध टूट जाय।

कैलेश को अपनी सरकार सँभालनी थी। उन्हें संयु[illegible] राज्य से कोई विशेष प्रेम न था। स्वदेशवासियों की इच्[illegible] पूर्ति-द्वारा उन्हें अपनी ओर मिलाने का प्रयास आर[illegible] हुआ। दूसरी ओर उत्तेजित मेक्सिकनों ने अमेरिक[illegible] खाइयों पर हमला कर दिया। कई स्थान पर अमेरिकनों के प्रति घृणा-प्रदर्शन हुए। कैलेस इसे रोक न सके। यह अवस्था देखकर वर्तमान अमेरिकन राज्य-सचिव के लोगों

ने यह घोषित कर दिया—"इस समय कैलेस सरकार की संसार के सम्मुख परीक्षा हो रही है।" सारांश यह कि, यदि कैलेस उचित प्रतिशोध करने में असमर्थ रहे तो संसार के सम्मुख उनको ज़िम्मेदार होना पड़ेगा।

कैलेस वस्तुतः कुछ भी न कर सके। अवस्था बिगड़ती गई। इस समय अमेरिका में राष्ट्रपति कूलिज का शासन था। १७ नवम्बर १९२५ से १७ नवम्बर १९२६ तक राजनैतिक पत्र-व्यवहार दोनों सरकारों में होता रहा और परिणाम यह हुआ कि दिसम्बर १९२६ में मेक्सिकन-महासभा ने विदेशी भूमि तथा पेट्रोलियम के ऐसे क़ानून बनाये जो मेक्सिको-स्थित अमेरिकन अधिकारियों के लिए बिलकुल घातक थे। इन क़ानूनों के बन जाने से अमेरिकन-सरकार फिर विरोध करने लगी।

अमेरिका मेक्सिको के तेल के पीछे परेशान था। कैलेस-सरकार यह कहती थी कि इस विषय में स्पेन का क़ानून देखो। सदियों पूर्व जब अमेरिका स्पेन के शासन में था उसी समय शाही फ़रमान-द्वारा यह तय हो गया था कि पृथ्वी के नीचे की सम्पत्ति स्वयं बादशाह की होती है। यह कोई नया नियम नहीं है जिसे क्रान्तिकारियों ने बनाया हो। मेक्सिकन-सरकार यहाँ तक स्वीकार करती है कि यदि किसी आदमी के पास भूमि है तथा उसके नीचे तेल है तो केवल इसी लिए वह तेल उसका नहीं हो जायगा, हाँ, यदि उस तेल को निकालने के लिए उसने पूरी चेष्टा की है तो वह उसका हो सकता है। संक्षेप में संयुक्तराज्य का विरोध इस प्रकार था:—

१—ज़मीन के नीचे के तेल का स्वामी होने के लिए मालिक के लिए जो शर्त थी, वह बड़ी संकुचित थी। साथ ही १९२३ के वारेन-पेयनी समझौते के विरुद्ध थी। मेक्सिकन-सरकार ने यह स्वीकार किया था कि जिसने निकालने का प्रयत्न कर लिया है, वह ज़मीन के उस का अधिकारी हो सकता है। जिसने प्रयत्न नहीं किया र यह जानता है कि नीचे तेल है, वह अधिकारी नहीं सकता।

२—मेक्सिकन-सरकार ने नवीन विधान के (१९२६ के) अनुसार भूमि के स्थायी स्वामित्व को केवल ५० वर्ष तक परिमित कर दिया है।

३—संयुक्त-राज्य की सरकार का तीसरा विरोध यह था कि मेक्सिको-सरकार ज़मीन के स्वामी के अधिकार को स्वीकार न करके उसके अधिकार को छीनकर फिर रियायत के तौर पर देना चाहती है, यह क़ानूनी तौर से आपत्तिजनक है।

इसी समय मेक्सिको की सबसे बड़ी अदालत में अमेरिकनों ने पेट्रोलियम-क़ानून तथा विदेशी भूमि-धारा के कारण मुक़द्दमा चला दिया। बड़े विचार के बाद अदालत ने यह फ़ैसला किया:—"मेक्सिको का १९१७ का विधान इस प्रकार अनूदित नहीं हो सकता कि १९१७ के पूर्व अधिकृत भूमि में कुछ हस्तक्षेप करे"—

इसी समय मेक्सिको में मोरो (Morrow) राजदूत बनाकर अमेरिका से भेजे गये। इन्होंने ख़ूब नीचा-ऊँचा समझा कर कैलेस को मना लिया। अन्त में सन् १९२८ के प्रारम्भिक काल में समझौता हो गया।

संयुक्त-राज्य की सरकार ने मेक्सिकन-सरकार का यह सिद्धान्त स्वीकार कर लिया कि ज़मीन पर प्रभुत्व उसके नीचे के पदार्थों के स्वामित्व से सम्बन्ध नहीं रखता। इस सिद्धान्त को मान लेने पर मेक्सिकन-सरकार ने भी अपने क़ानून में तीन संशोधन किये। अमेरिकन-सरकार ने भी इसी आशय की विज्ञप्ति निकाली।

२—राष्ट्र-परिषद् की दुरवस्था

दिन-दिन राष्ट्र-परिषद् की शाखा-समितियाँ खुलती जा रही हैं तथा उसका कार्य-क्षेत्र बढ़ता जा रहा है। पर उसकी असफलता भी अधिक स्पष्ट होती जा रही है। अभी तक राष्ट्र-परिषद् ने किसी भी महत्त्व-पूर्ण विषय का निपटारा नहीं किया है। इसी कारण स्पेन ऐसे राज्य उससे उदासीन होकर त्यागपत्र देने को तुले हुए हैं।

कुछ ही मास पूर्व परिषद् ने संसार के आर्थिक प्रश्नों को सुलझाने का बीड़ा उठाया था। उसके आर्थिक विभाग ने एक आर्थिक सम्मेलन की आयोजना की थी। इस सम्मेलन का प्रधान कार्य संसार के सभी पथो में मुक्त व्यापार—कर-रहित व्यापार—की नीति प्रचलित करना था। धूम से सम्मेलन ने कार्य आरम्भ

किया। सुन्दर वक्तृतायें हुईं परन्तु अभी तक इस विषय में स्वीकृत प्रस्तावों को किसी सरकार ने कार्य-रूप में परिणत नहीं किया है और न इसकी आशा है। जिन राज्यों का व्यापारिक बन्धनों से नुक़सान हो रहा है वे आजकल इस विषय में तीव्र आन्दोलन कर रहे हैं कि परिषद् अपने प्रस्ताव को कार्यान्वित करे, परन्तु परिषद् ने अपनी असमर्थता घोषित कर दी है।

परिषद् ने रुमानिया-हंगरी के झगड़े का निपटारा करना चाहा। पाठकों को ज्ञात होगा कि हंगरी की सीमा पर कुछ तोपें तथा बम इत्यादि पकड़े गये थे। इस विषय में रुमानिया पर सन्देह था और वही पुराना झगड़ा अभी तक चला आ रहा है। अमेरिकन-पत्रों का यह कहना है कि योरप का बालकन प्रायद्वीप संसार का सबसे अशान्त देश है। अवस्था भी ऐसी है। परिषद् ने जिस प्रकार पोलैण्ड तथा रुमानिया के बीच अस्थायी शान्ति करा दी थी उसका शतांश भी वह रुमानिया-हंगरी के विषय में नहीं कर सकी है। इसका एक प्रधान कारण है। महासमर के बाद ही हंगरी इँग्लेंड का मित्र तथा अनुयायी हो गया है। इँग्लेंड भी अपनी मित्रता निभाने के लिए हंगरी का सदैव समर्थन करता है। ऐसी अवस्था में फ्रांस के मित्र रुमानिया का प्रश्न विकट हो जाता है। परिषद् न तो फ्रांस को नाराज़ कर सकती है और न ब्रिटेन को। रुमानिया के प्रिंस कैरोल का प्रभाव विदेशों में इतना प्रबल होता जाता है कि प्रतिदिन रुमानिया पर उनके अधिकार की आशंका बनी रहती है। इधर रुमानिया में ही राष्ट्रीय दल तथा प्रधान मन्त्री ब्रैटियानो में कोई समझौता होने की सम्भावना नहीं दीख पड़ती। रुमानिया की आन्तरिक दुर्बलता और उसके सहायक के प्रभाव से परिषद् यह निर्णय नहीं कर सकती कि कौन अधिक सबल है, अतः किसका समर्थन किया जाय। इसी से प्रश्न अभी तक ज्यों का त्यों बना हुआ है।

परिषद् का अन्तिम कार्य योरप को निश्शस्त्र कर देने की चेष्टा है। उसने यह घोषित किया कि वह एक बड़ा निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन आमन्त्रित करेगी। परन्तु इसके पूर्व यह अधिक उचित समझा गया कि निश्शस्त्रीकरण सम्मेलन के लिए कार्य-क्षेत्र तैयार कर दिया जाय। इसके लिए एक कमीशन बना। उसी से एक और दूसरा कमीशन बना जिसका नाम सेक्यूरिटी कमीशन (Security Commission) था। मार्च में इस कमीशन की बैठकें हुईं। इनमें बहुत-सी आदर्श सन्धियों के मसविदे तैयार हुए। परन्तु राष्ट्र-परिषद् के समर्थकों ने भी इस विषय में सन्देह प्रकट किया है कि इनके आधार पर सन्धियां होंगी या नहीं।

सेक्यूरिटी कमीशन के बाद ही प्रिपरेटरी कमीशन की बैठकें प्रारम्भ हो गईं। इसकी क्या अवस्था हुई, यह पाठक सरस्वती के गत अङ्क में पढ़ चुके होंगे। यद्यपि जर्मनी-टर्की तथा सोवियेट ने पूर्ण निश्शस्त्रीकरण के उपरान्त अशतः निश्शस्त्रीकरण का प्रस्ताव उपस्थित किया था पर सोवियेट के मूल प्रस्ताव से लार्ड कशेंडेन ऐसे सुविज्ञों को इतनी घृणा हो गई थी कि उन्होंने उन पर पूरा विचार तक न किया। बिना आगामी बैठक की तिथि निश्चित किये बैठक समाप्त हो गई।

ऐसी अवस्था में जर्मनी की स्थिति सबसे विचित्र है। सोवियेट रूस के पास, एक प्रकार से, इस समय संसार में सबसे अधिक सेना है। परन्तु जब जर्मनी का निःशस्त्रीकरण १९१९ में हुआ था, उसका आधार या कारण यही बताया और बतलाया गया था कि समस्त योरप अपना हथियार रख देनेवाला है, समस्त योरप अपना निश्शस्त्रीकरण करनेवाला है। अतएव जर्मनी अकेला ही निश्शस्त्र न रहेगा।

उस समय दुर्बल जर्मनी ने यह स्वीकार कर लिया था। जर्मनी कितना निराश है, यह जर्मन-प्रतिनिधि कौंट बर्नस्टार्फ़ के कथन से विदित हो जाता है। अधिवेशन समाप्त होने पर कौंट ने कहा था—

अन्य राष्ट्र सोवियेट प्रस्ताव को रद करने के लिए इतने तुले हुए थे कि हमें ऐसी आशा हो रही थी कि सम्मे[illegible] की नियुक्ति पर ही वे सन्देह न प्रकट करने ल[illegible] दो वर्ष पूर्व यह कहा जाता था कि परिषद् से रूस [illegible] असहयोग ही निश्शस्त्रीकरण के प्रश्न को हल करने [illegible] बाधक था। परन्तु अब जब रूस इतने उत्साह से भाग ले रहा है तब यह कहा जाने लगा है कि रूस का सहयोग ही किसी प्रकार निर्णय नहीं होने देता। हम चाहते थे

कि समिति को अधिकार दिया जाता कि वह स्वयं निरश-स्त्रीकरण-सम्मेलन आमन्त्रित करे। परन्तु कमीशन यह भी स्वीकार न कर सका। इसका एक मात्र कारण यह है कि जर्मनी तात्कालिक कार्य चाहता है पर अन्य राज्य टाल रहे हैं।

जर्मनी की यह निराशा अकारण नहीं है। वार्सेले-सन्धि ने उसे पंगु बना रखा है। वह अन्य सैनिक राष्ट्रों के सम्मुख अपनी व्यापारिक हानि देखकर अति दुःखी है। परन्तु कमीशन की असफलता का एक विशेष कारण है। उसे भी जान लेना आवश्यक है।

परिषद् के सर्वस्व फ्रांस और इँग्लैंड हैं। इँग्लैंड और फ्रांस में ही निरशस्त्रीकरण के प्रश्न पर बड़ा विरोध और मनोमालिन्य हो रहा है। फ्रांस चाहता है कि जब तक इँग्लैंड यह न स्वीकार करले कि नाविक निरशस्त्रीकरण में पूर्ण टनेज़ की ही सीमा निर्धारित करनी चाहिए तब तक फ्रांस किसी प्रकार रियायत न करेगा। पर ब्रिटेन की इच्छा है कि प्रति श्रेणी में, क़द, संख्या आदि में भी सीमा निर्धारित कर दी जाय। इस विषय में किसी प्रकार भी समझौता नहीं हो रहा है। परन्तु कौंट क्लाज़ल की घोषणा है कि बातचीत हो रही है।

यही एक प्रधान कारण हो सकता है कि सम्मेलन में ब्रिटेन तथा फ्रांस के पारस्परिक विरोध के कारण कोई निश्चित बात न कही जा सकी। स्पष्ट परिणाम यह है कि परिषद् इस प्रश्न को भी न निपटा सकी।

३—जर्मनी की गुप्त सेना

फ़्रांसीसी पत्रों में यह सूचना प्रकाशित हुई है कि यद्यपि जर्मन-सरकार निरशस्त्रीकरण का शोर कर रही है तो भी वह गत ९ वर्षों से गुप्त रीति से एक मज़बूत सेना तैयार कर रही है। इसी युक्ति के कारण जर्मन-पत्रों को सफ़ाई का बड़ा कष्ट उठाना पड़ा था। जर्मनी की इस समय की मनोवृत्ति तथा अवस्था कैसी है, यह नीचे दिया जाता है।

यह अवश्य है कि जर्मनी में, केवल जोश के कारण लोग अपने को लड़ने के लिए तैयार करते हैं, स्वयं कवायद तथा कसरतें करते हैं तथा कुछ हथियार चलाने का भी अभ्यास करते हैं। परन्तु जर्मनी की कोई गुप्त सेना नहीं है। जर्मनी ने इधर वर्षों से ऐसी शान्त मनोवृत्ति बना ली है कि एकाध जहाज़ी बेड़े बनाने की इच्छा के अतिरिक्त उसने कभी भी स्थल-सेना बढ़ाना नहीं चाहा है। सन्धि-द्वारा स्वीकृत केवल **एक लाख** स्थल-सेना उसके पास है। इसको भी पूर्णतः सशस्त्र करने तथा योग्य बनाने के लिए सरकार के पास रुपया नहीं है। जर्मनी के समर-सचिव ने प्रकट कर दिया है कि यदि जर्मनी गुप्त सेना रखना चाहे भी तो उससे कोई लाभ न होगा। वर्तमान युद्ध-प्रणाली में गुप्त सेना बिलकुल बेकार सिद्ध होती है।

जर्मनी ने अनिवार्य सैनिक भर्त्ती बन्द कर दी है। अपनी सीमा पर से भी सेना घटा कर शान्त उपायों-द्वारा कार्य किया जा रहा है। हाल में ही जर्मन-समर-सचिव बदल गये हैं। उनके स्थान पर जनरल ग्रोनर नियुक्त हुए हैं। इन्होंने पद-ग्रहण के पूर्व ही शान्त तथा निरशस्त्रीकरण के विषय में ख्याति प्राप्त कर ली है। इनकी नियुक्ति से जर्मनी की सैनिक नीति में और भी परिवर्त्तन की सम्भावना है।

४—एक नवीन सन्धि

एशिया तथा योरप के पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद के अभिलाषियों को जिस प्रकार एँग्लो-ईराक़ सन्धि का समाचार सुन कर दुःख हुआ था उसी प्रकार एक और सन्धि उनके लिए बड़ी दुःखद है। यह है ट्रांस-जोर्डिनिया और ग्रेट-ब्रिटेन के बीच सन्धि। ट्रांस-जोर्डिनिया का राज्य अकाबा की खाड़ी से लेकर लालसागर तक विशाल रेगिस्तान के रूप में फैला हुआ है। दमिश्क और मदीना के बीच की सड़क इसी राज्य में से होकर गई है। इसी सड़क के किनारे मां और अमाँ नामक दो नगर बसे हुए हैं जिनके चारों ओर कुछ उपजाऊ भूमि भी है। परन्तु इस राज्य का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान वह सड़क ही है जो अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व रखती है।

यहाँ का शासक 'अमीर' होता है तथा राष्ट्र-परिषद् के फ़रमान के अनुसार यहां ब्रिटिश-नियन्त्रण है। अब ब्रिटिश-सरकार ने अमीर से एक नवीन सन्धि की है।

सन्धि-द्वारा राज्य के चारो ओर अन्य शासक-राज्यों के साथ ट्रांस-जोर्डिनिया के सम्बन्ध का नियन्त्रण ब्रिटिश-सरकार के हाथ में रहेगा। **न्याय, सेना** तथा महसूल पर भी ब्रिटिश सरकार का अधिकार रहेगा। अमीर को यह अधिकार रहेगा कि वह अपना कर लगावे। शासन का व्यय वह स्वयं देगा तथा इसके लिए ब्रिटिश-सलाहकारों की सहायता से बजट बनायेगा। केवल आन्तरिक शासन छोड़कर अन्य किसी विषय में भी वह स्वतन्त्र न होगा।

इस सन्धि से सिरिया का संरक्षक फ्रांस भी सन्तुष्ट नहीं है। वह फ़ारस तथा तुर्किस्तान में ब्रिटेन का प्रभाव नहीं देखना चाहता।

५—जापान की नवीन महासभा

जापान की नवीन महासभा का निर्वाचन हो गया। इस निर्वाचन का सबसे बड़ा महत्त्व यह था कि १९२५ के 'मैनहुड सफ़रेज' (Manhood Suffrage) अर्थात् युवावस्था-प्राप्त सभी मनुष्य को निर्वाचनाधिकार-विधान के अनुसार यह प्रथम चुनाव था। २० फ़रवरी १९२८ को निर्वाचन हुआ था और परिणाम यह निकला:—

सेयुकाई (Seiyukai)—२२१
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व—१८९-लाभ-३२)
मिनसेटो (Minseito)—२१४
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व—२२३-हानि-९)
शिनशे क्लब (ShinseiClub)—३
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व-२६-हानि-२३)
ज़ित्सुको दोशिकाई (Jitsuko Doshikai)—४
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व-९-हानि ५)
मज़दूर-दल (Labour)—८
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व-०-लाभ-८)
स्वतन्त्र (Independents)—१६
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व-१४-लाभ-२)
वेकन्सस (Vacansus)— ०
(सभा-भङ्ग होने के पूर्व-३-हानि-३)
पूर्ण संख्या नवीन महासभा—४६६—
" " विगत "—४६४
२ अधिक

जापानी महासभा के नवीन निर्वाचन के कारण जापानी राजनैतिक परिस्थिति में गड़बड़ी हो गई है। इसका कारण यह है कि यद्यपि सियुकाई सरकारी दल है तथा उसकी संख्या अन्य दलों से तुलना में सबसे अधिक है परन्तु उसका बहुमत इतना नहीं है कि अकेले काम कर जाय। अपने उग्र विरोधी मिनसेटो-दल से उसका केवल ७ सदस्यों का बहुमत है अतएव यदि वह इन छोटे दलों को अपनी ओर न मिला लेगा तो कदापि शासन-भार नहीं सँभाल सकता। इसी कारण वह अन्य दलो के समर्थन की आशा पर टिका हुआ है। बहुत आशा है कि ज़ित्सुको दोशिकाई तथा स्वतन्त्र दल उसका समर्थन करेगा। शिनशे तथा मज़दूर-दल विरोधी दल मिनसेटो का समर्थन करेंगे, यह निश्चित है।

अतः यह निश्चित है कि सरकारी दल उतना सबल नहीं है जितनी उसे आशा थी। परन्तु प्रधान मन्त्री बैरन तनाका ने घोषित कर दिया है कि वे अभी पद-त्याग न करेंगे तथा निर्वाचन-परिणाम देखकर मन्त्रिमण्डल को यह विश्वास है कि देश उसके साथ है। परन्तु यह निश्चित है कि तनाका-मन्त्रि-मण्डल उतनी स्वाधीनता-पूर्वक अपनी नीति नहीं चला सकता जितना वह पहले करता था। चीन के प्रति इस समय मिनसेटो-दल की अधिक सहानुभूति है, इसी कारण मज़दूर-दल उसका साथ देगा। तनाका ने चीन के राष्ट्रीय अभ्युत्थान मे जो अड़ङ्गा लगाना प्रारम्भ किया है तथा चीन पर पूर्ण जापानी शासन की जो नीति चलानी शुरू कर दी है वह उनकी पूर्व-नीति के बिलकुल विपरीत है। सम्भव है इस नीति-परिवर्त्तन मे.. ही इस दल के शासन का पतन हो जाय। य की

इस वर्ष जापानी निर्वाचकों ने निर्वाचन में लों क रोचकता दिखलाई वह अभूतपूर्व थी। जापान अतएव रजिस्टर्ड वोटरों की संख्या १,१९,८७,००० है, [illegible] से ९७,११,००० निर्वाचकों ने निर्वाचन में भाग लि[illegible] इस प्रकार ८१ प्रतिशत जनता ने मत दिया।

मिनसेटो-दल की शिकायत है कि सरकार सियुका[illegible] दल के उम्मीदवारों को निर्वाचन में मदद दे रही थी। उसने स्थान स्थान पर विरोधी दल के उम्मीदवारों को बहुत परेशान किया। सरकारी पुलिस कितने ही विरोधी

वक्ताओं को बोलने तक न देने देती थी। एक सभा में १८० पुलिसवाले पहरा देने के लिए तैनात किये गये थे। हर सभा में पुलिस की भीड़ लगी रहती। कहीं कहीं वक्ताओं से अधिक पुलिसवाले हो जाते थे। जापान के दो प्रमुख पत्र 'असाई' तथा 'मियाको की कड़ी शिकायत है कि इस बार के निर्वाचन में पुलिस से विरोधी दल को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। यह अवश्य था कि अन्य निर्वाचनों की भांति इस वर्ष वोट खरीदने तथा घूस देने के विरुद्ध कड़ी देख-रेख रक्खी गई थी।

नवीन सभा में पढ़े-लिखे सदस्य अधिक हैं। सभा में ३१८ पेशेवार आदमी हैं जिनमें २४३ विश्वविद्यालयों के ग्रेजुयेट हैं। शेष ७९ सदस्यों में से कोई डाक्टरी का पण्डित, क़ानून का पण्डित तथा विज्ञान का पण्डित है। सभी विद्वान् हैं।

निर्वाचन से यह स्पष्ट हो गया है कि तनाका की नीति बदल जायगी। इसमें अवश्य सन्देह है कि यह मंत्रि-मण्डल कितने दिन चलेगा। निर्वाचन होते ही, नवीन सभा की बैठक होते ही, मंत्रिमण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव मिनसेटो-दल ने अप्रैल में उपस्थित कर दिया। विरोधी दल की शक्ति का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि तनाका महोदय को अपने विशेषाधिकार से तीन दिन के लिए अधिवेशन स्थगित करना पड़ा। यद्यपि अविश्वास का प्रस्ताव अपना कार्य न कर सका तथा मंत्रिमण्डल बना ही रहा तो भी मिनसेटो-दल ...ज्ञप्ति है कि वह शीघ्र ही इस शासन को हटा कर ...गा।

६—नॉरवे की नवीन सरकार

...छ ही मास पूर्व नारवे में मज़दूर-दल का शासन ...स हुआ था। अनुदार-दल के मंत्रिमण्डल का पतन ...कर मज़दूर-दल के सर्वेसर्वा हॉन्स्वुड ने अपना ...मण्डल बनाया था। इस दल का सिद्धान्त ...-रूस की भांति योरप का सम्पूर्ण निश्शस्त्रीकरण था। इसी उद्देश से प्रेरित होकर इसने नारवे का निश्शस्त्रीकरण भी प्रारम्भ कर दिया था। इनके शासन के पूर्व नारवे में अनिवार्य सैनिक-क़वायद हुआ करती थी। इस दल ने १९२८ के लिए यह क़वायद बन्द कर दी तथा पूर्ण निश्शस्त्रीकरण की घोषणा कर दी। राष्ट्र के पुनर्निर्माण के लिए नवीन कर लगाये गये तथा अमीर-ग़रीब सबसे बराबर कड़ाई से वसूली की जाती थी।

परन्तु नॉरवे की व्यवस्थापक महासभा में इस दल का विशेष बहुमत न था। दूसरे, इनके कार्यों से अन्य दल के वे सदस्य जो इनके साथ सहयोग करते थे, विपरीत हो गये। इसका परिणाम यह हुआ कि जनवरी में रैडिकल दल की ओर से जे० एल० माविंकेल ने हॉन्स्वुड मंत्रि-मण्डल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया। प्रस्ताव स्वीकृत हो गया। मज़दूर-मंत्रि-मण्डल का पतन हो गया तथा नॉरवे-नृपने माविंकेल को नवीन मंत्रिमण्डल निर्माण करने की आज्ञा दी।

माविंकेल महोदय सन् १९२४ में भी प्रधान मंत्री थे। इस नवीन सरकार में भी वे प्रधान मंत्री रहे। १३ फ़रवरी सन् १९२८ को इसने कार्य-भार ग्रहण किया तथा प्रथम कार्य सैनिक क़वायदों का ज़ारी करना—नवीन करों को तोड़ देना तथा एक बहुत बड़ा क़र्ज़ लेना था। इस सरकार ने विदेश में ३,००,००,००० डॉलर अथवा १२,००,००,००० क्रोनेन (नारवे का सिक्का) क़र्ज़ लेना निश्चय किया है। क़र्ज़ विशेषतः संयुक्त-राज्य (अमेरिका) में लिया जायगा तथा ४ बड़े अमेरिकन बैङ्कों को ठीका भी दे दिया गया है। २७ फ़रवरी को महासभा ने इस रक़म की मञ्जूरी दे दी।

इस समय, सरकार के इस विशाल क़र्ज़ के कारण नॉरवे में बड़ा असन्तोष फैल रहा है। मज़दूर-दल की शक्ति कम नहीं है। वह मंत्रिमण्डल को गिराने की चेष्टा कर रहा है पर उसकी सदस्य-संख्या देखकर यह आशा नहीं की जाती कि वह कुछ मास तक कुछ कर सकेगा।

—

स्वदेश

१—"इण्डियन मार्डनिस्ट लीग"।

सर हरीसिंह गौड़ की अध्यक्षता में भारतीय आधुनिकों का सङ्घ हाल ही में स्थापित हुआ है। इस संस्था के उद्देश ये हैं—

(१) अँगरेज़ी को ही बोलचाल की भाषा बनाना।

(२) भोजनालयों को नये फ़ैशन पर चलाना तथा भोजन का समय निश्चित करना।

(३) मर्दानी पोशाक को योरपियन ढङ्ग की बना देना।

(४) पर्दा-प्रथा को एक-दम दूर कर देना।

(५) धर्म को एक वैयक्तिक विश्वास की वस्तु मानते हुए जाति की प्रथा बिलकुल ही नष्ट कर देना।

लीग के उपर्युक्त प्रधान कार्य हैं। इन कार्यों पर भारतीय समाचार-पत्रों में यथेष्ट टीका-टिप्पणी निकल चुकी है।

२—भारतीय श्रमिकों में अशान्ति।

इस समय अल्प वेतन तथा अधिक कार्य के प्रश्न ने भारतीय श्रमिकों में बड़ी अशान्ति उत्पन्न कर दी है और प्रतिवाद-स्वरूप जगह जगह वे हड़ताल कर रहे हैं।

हड़ताल का पहला प्रवाह ई० आई० आर० कम्पनी के लिलुआ के कारख़ाने से प्रारम्भ हुआ। इस हड़ताल से सम्बन्ध रखनेवाली क्या घटनायें थीं तथा साधारण पिकेटिंग के कारण बात बढ़ जाने से लिलुआ के हड़तालियों तथा पुलिस में कितनी गहरी मुठभेड़ हो गई, यह समाचार-पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। परन्तु कम्पनी के एजेंट तथा अधिकारियों के प्रयत्न पर भी मामला ठण्ढा न हुआ। लिलुआ-हड़तालियों के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए रेलवे कम्पनी के अन्य कारख़ानों के श्रमिकों ने भी हड़ताल कर दी। कलकत्ते के चारों ओर अशान्ति फैल गई। २०,००० मज़दूर, जो रेलवे-कम्पनी के कारख़ानों में काम करते थे, हड़ताल कर बैठे। इन हड़तालियों में इतना ऐक्य है तथा बङ्गाल-व्यवसाय-सङ्घ इतनी योग्यता से इनके युद्ध का सञ्चालन कर रहा है कि इनकी पराजय अभी निकट नहीं दीख पड़ती।

हड़ताल के सूत्रपात का प्रभाव पहले से ही हो चुका था। जमशेदपुर में, ताता-मिल में पारस्परिक विरोध बढ़ रहा था। वहां भी काम बन्द हो गया। अभी तक 'की-मेन' (Keymen) के काम न करने से उत्पत्ति में बाधा पड़ रही है। श्रमिक मिल के मालिकों की शर्तें मानने के लिए तैयार नहीं हैं। ऐसी अवस्था बतलाई जाती है कि ताता-कम्पनी स्वयं काम बन्द कर श्रमिकों को दण्ड देगी।

हड़ताल का प्रभाव कानपुर पर भी पड़ा। एलगिन कारख़ाने में कम वेतन तथा अधिक कार्य के कारण श्रमिकों ने काम बन्द कर दिया था। परन्तु मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने मिल के मालिकों से बातचीत करके कुछ समय के लिए झगड़ा तय करा दिया और कार्य कुछ ही घण्टे बाद पूर्ववत् होने लगा। परन्तु श्रमिकों के असन्तोष का सबसे प्रबल प्रदर्शन दक्षिण में हो रहा है। बम्बई में हड़ताल ने उग्र रूप धारण कर लिया है। वस्त्र-व्यवसायियों तथा वस्त्रोद्योग के श्रमिकों का झगड़ा बड़ा पुराना है। कलकत्ते की भारतीय चैम्बर आव् कामर्स (Indian Chamber of Commerce) का कथन है कि इस विरोध का मूल कारण भारत-सरकार है। यदि उसने टैरिफ़-बोर्ड (Tarriff Board) की सिफ़ारिशों को अच्छी तरह कार्यान्वित किया होता तो वस्त्र-व्यवसाय की यह दशा न होती। अधिक आय होने पर मिलों के मालिक अवश्य ही श्रमिकों की मज़दूरी बढ़ाते। अतएव यदि भारत-सरकार चाहती है कि इस व्यवसाय के मालिकों तथा नौकरों का विरोध दूर हो तो वह टैरिफ़-बोर्ड की सिफ़ारिशों को मान ले। परन्तु बम्बई के व्यवसाय-संघ का कथन है कि यह दलील बिलकुल निर्बल है कि मिल-मालिकों के पास वेतन बढ़ाने के लिए रुपया नहीं है। यह तो इँगलैंड के पूँजीपतियों की दलील है।

बम्बई में भी, अप्रैल के महीने में बड़ी भयङ्कर हड़ताल हो गई। अनेक मिलों में काम बन्द हो गया।

हड़ताली अपनी मांग पूरी कराने पर डटे हुए हैं। लगभग ८०,००० आदमी बेकार हैं। जो काम पर जाना चाहता है वह पिकेटिङ्ग द्वारा रोका जाता है। यद्यपि हड़ताली बड़े शान्त हैं फिर भी उपद्रव हो जाने की बड़ी आशङ्का बनी रहती है। हड़ताल के ही विषय में गरम तथा नरम दल के श्रमिकों के नेताओं में विरोध हो गया था। पर अब उन्होंने पारस्परिक विरोध को मिटा कर एक होकर अपनी मांग पेश की है। बम्बई के व्यवसाय-सङ्घों ने श्रीयुत जोशी, गिनवाला तथा झबवालाजी आदि के प्रयत्न से मज़दूरों की एक मांग तैयार की है जो मिलों के मालिकों के सम्मुख उपस्थित की गई है। उस माँग का मुख्य अंश नीचे दिया जाता है।

(१) निश्चित अवधि तक वेतन न मांग लेने पर उसे ज़ब्त कर लेने के क़ायदे तोड़ दिये जायँ।

(२) वाडिया के मिलों में रोज़ मशीन साफ़ करने की तथा हाज़िरी के टिकट दिखलाने की प्रथा बन्द हो जानी चाहिए।

(३) नौकरी छोड़ने के पहले दोनों तरफ़ से एक महीने का नोटिस देना चाहिए।

(४) मिल के मालिकों की संस्था अपने सदस्यों के लिए ऐसे निश्चित नियम बना दे जिसके अनुसार वे मज़दूरों को छुट्टियाँ दिया करें।

इसके साथ ही एक ख़ास मांग यह भी है कि कम से कम ३०) मासिक पारिश्रमिक रक्खा जाय तथा आठ घण्टे का दिन माना जाय।

एक मिल को छोड़कर सभी कारख़ाने बन्द हैं। अवस्था की भीषणता के कारण बम्बई के लाट महोदय अपनी ग्रीष्म-राजधानी महाबलेश्वर से उतर कर बम्बई आये। परन्तु बम्बई-सरकार किसी प्रकार भी समझौता न करा सकी।

हड़ताल फैलती जा रही है। जमशेदपुर की, ताता मिल की हड़ताल उत्पत्ति के कार्य में बड़ी बाधक हो रही है। बम्बई की ६० मिलों में काम बन्द है। प्रभाव शोलापुर तक पहुँच गया है। कलकत्ते में लिलुआ की हड़ताल का नेतृत्व प्रधानतः कम्यूनिस मि० फ़िलिप स्प्रैट के हाथ में है। उनका कहना है कि हड़तालियों की अवस्था बड़ी दयनीय है। एक समय वह आनेवाला है जब उन्हें भूखों मरना पड़ेगा। लिलुआ के हड़तालियों ने मास्को (रूस) से सहायता माँगी है।

बम्बई में हड़तालियों की संख्या बढ़ती जा रही है। हड़ताली-समाज के प्रतिनिधियों ने डिपुटी सुपरिंटेंडेंट पुलिस से शान्तिमय पिकेटिंग करने की आज्ञा माँगी। आज्ञा मिल गई। परिणाम यह हुआ कि शान्तिमय पिकेटिंग-द्वारा ३० मिलों के मज़दूर काम से हट जाने के लिए तैयार कर लिये गये। उन्होंने भी काम छोड़ दिया। दियासलाई के कारख़ाने में भी हड़ताल हो गई। १३,००० श्रमिक बेकार हो गये। शोलापुर की मिलों की अवस्था भी ज्यों की त्यों रही। जमशेदपुर की हड़ताल भी फिर बढ़ गई तथा वहाँ के अधिकारियों ने लगभग १,००० मिल-मज़दूरों को नौकरी से भी निकाल दिया। बम्बई के हड़तालियों की आर्थिक अवस्था देखकर हड़ताल-समिति ने अधिकांश हड़तालियों से आग्रहपूर्वक अनुरोध किया कि वे अपने अपने ग्राम को लौट जायँ। इस प्रकार २०,००० से ऊपर आदमी घर लौट गये। जो रह गये हैं उनकी सहायता के लिए बम्बई-कारपोरेशन में एक सदस्य द्वारा यह प्रस्ताव उपस्थित कराया गया कि उन्हें सहायता दी जाय। परन्तु अधिकांश सदस्य मिल के मालिक पूँजीपति थे। उनके विरोध से प्रस्ताव अस्वीकृत हो गया। परन्तु मास्को के एक महाशय मोशिये वोनोफ़ ने २०,९१६ रुपये श्री एन० एम० जोशी के पास सहायतार्थ भेजे हैं। परन्तु बम्बई की हड़ताल नया रुख़ पकड़ रही है। वहाँ के जी० आई० पी० रेलवे के मज़दूरों में भी बड़ी उत्तेजना फैली। उन्होंने एक महती सभा करके एजेंट के पास एक अल्टीमेटम भेजा है, उसमें अपनी मांगें लिखी हैं—उन्हें पूरी न होने पर वे 'जो उचित समझेंगे' करेंगे, मांग पूरी करने के लिए केवल आठ दिन की मुहलत दी गई है। वे माँगें ये हैं:—

(१) मज़दूरों की डाक्टरी परीक्षा तोड़ दी जाय।

(२) ४१), ६०) या ७४) पर ही कितने सालों से जिन कर्मचारियों की वेतन-वृद्धि रुकी हुई है, उनके वेतनों में उचित वृद्धि कर दी जाय।

(३) सभी सरकारी छुट्टियों के दिन सवेतन छुट्टी दी जाय।

(४) प्रतिवर्ष १० प्रतिशत वृद्धि हो।

(५) जी-आई० पी० रेलवे के कार्यकर्त्ताओं का सङ्घ जायज़ मान लिया जाय।

ये तो बम्बई के मज़दूरों की मांगें हुईं। मिल के मालिकों ने इस हड़ताल-सङ्घ से इस बुनियाद पर समझौते की बातचीत करना भी अस्वीकार कर दिया है कि वह एक अमान्य सङ्घ तथा रजिस्टर्ड व्यवसाय-सङ्घ नहीं है।

कलकत्ते के हड़ताली बम्बईवालों से अधिक उग्र हैं। पर रुपये की उनके पास अधिक कमी है। बाहरी सहायता केवल उन्हें इतनी ही मिली है कि ब्रिटिश व्यवसाय-सङ्घ ने २५० पौं० भेजे हैं। मास्को से सहायता-प्रार्थना का उनका तार हवड़ा के पोस्ट मास्टर जेनरल ने आपत्ति-जनक समझ कर रोक लिया। लिलुआ के हड़तालियों ने ११ मई के बाद से अधिक उपद्रव करना प्रारम्भ कर दिया था। चलती ट्राम-गाड़ियों को वे रोक लेते हैं! उग्रता का प्रारम्भ इस प्रकार हुआ कि लिलुआ के हड़तालियों ने ई० आई० आर० के एजेंट से निम्न-लिखित मांगें की थीं तथा उन्हें न मिलने पर हवड़ा-अदालत में सत्याग्रह करने की धमकी दी थी—

(१) काम से निकाले हुए दो कर्मचारी फिर से ले लिये जायँ अथवा प्रकाश्य रूप से उनके मामले के सम्बन्ध में जांच की जाय।

(२) कम से कम १६) मासिक वेतन दिया जाय।

(३) प्रत्येक को प्रतिवर्ष १० प्रतिशत के हिसाब से तरक़्क़ी दी जाय।

(४) मज़दूरों को बिना किराये, रहने के घर दिये जायँ अथवा तनख़्वाह में से १० प्रतिशत के हिसाब से मकान का अलाउंस दिया जाय।

(५) रविवार और दूसरी छुट्टियाँ दी जायँ तथा उनका वेतन दिया जाय।

(६) रेलवे की ओर से श्रमिक-सङ्घ मान्य संस्था मान ली जाय।

(७) हड़ताल के कारण जो मज़दूर घर चले गये हैं उन्हें कारख़ाना खुलने पर वापस आने का दस दिन का समय दिया जाय।

(८) प्रत्येक मज़दूर को प्राविडेंट फंड से एक महीने का वेतन दिया जाय। बाद में ६ महीने में वह रुपया कम्पनी मज़दूर के वेतन से वसूल कर ले।

(९) हड़ताल के समय का वेतन मिले।

(१०) सभी हड़तालियों को क्षमा दी जाय। किसी को दण्ड न दिया जाय।

९ मई को जब हड़तालियों को यह पूरी तौर से मालूम हो गया कि एजेंट ने कोरा जवाब दिया है तब १,००० हड़ताली डलहौज़ी स्कायर में एकत्र हुए। उन्होंने सभा में १० तारीख़ से हड़ताल करना निश्चय किया। १० तारीख़ को सुबह एक हज़ार हड़ताली हवड़े के मैदान में जमा हुए तथा ट्राम, मोटर आदि के चलने में बाधा डाली। कहते हैं कि कई यात्रियों को ट्राम तथा मोटर पर से उतरने के लिए उन्हें मज़बूर भी किया। अवस्था बुरी होते देखकर एक पुलिसवाले ने हड़तालियों को रोकना चाहा तथा उनके नेता शिवनाथ बैनर्जी को मना किया। किसी के न सुनने पर बैनर्जी को पकड़ कर उसने थाने पर पहुँचाया। हड़तालियों ने उन्हें छुड़ाना चाहा। इस पर गड़बड़ी मच गई। ईंट-पत्थर भी फेंके गये। गड़बड़ में १९ हड़ताली तथा कुछ पुलिसवाले घायल हुए। १३ हड़ताली गिरिफ़्तार कर लिये गये, पर ट्राम और मोटरों का रोका जाना जारी रहा। अभी हड़ताल की ऐसी स्थिति है। आगे जो परिणाम हो।

३—सत्याग्रह-सङ्ग्राम

एक ओर श्रमिकों की हड़ताल है और दूसरी ओर बारदोली का सत्याग्रह-सङ्ग्राम है।

कुछ मास पूर्व इस तालुके में भूमि का सरकारी लगान बढ़ गया। तालुका-वासियों ने इसका बड़ा विरोध किया तथा सरकार से प्रार्थना की कि वह लगान घटा दे। इसी आशय का एक प्रस्ताव बम्बई-कौंसिल में भी उपस्थित कराया गया, परन्तु बम्बई-कौंसिल तथा बम्बई सरकार दोनों ने ही इसे मानना अस्वीकार

कर दिया। इससे बारदोली-निवासी अत्यन्त असन्तुष्ट हो गये तथा उन्होंने शान्तिमय सत्याग्रह की घोषणा की अर्थात् सरकार को कर न देने का निश्चय किया।

सरकार को लगान जब समय पर न मिला तब उसने ज़ब्ती के नोटिस निकाले। ग्रामीणों के माल कुर्क होने लगे। जिसकी दूकान थी उसकी दूकान का माल कुर्क होने लगा। मई ने यह कुर्की बहुत बढ़ गई। कार्य में कुछ ढिलाई करने के कारण बारदोली का मामलतदार (तहसीलदार) बदलकर एक मुसलमान भेजा गया तथा ज़ब्ती के नये अफ़सर भेजे गये। परन्तु बारदोली-निवासी श्रीवल्लभ भाई पटेल की अध्यक्षता में इतने सङ्गठित हो गये हैं कि सरकार को कुर्की का माल उठानेवाला भी कोई नहीं मिलता। शराब की दूकानों में पीपे कुर्क कर लिये जाते हैं पर उसे ढोकर ले जाने वाला कोई नहीं मिलता। दोराब सेठ नामक एक पारसी दूकानदार की २०००) की शराब ६४) में नीलाम हो गई। ग्रामीणों के मवेशी कुर्क कर लिये गये तथा ३३ भैंसें कुछ ही सौ रुपये में कसाइयों के हाथ बेच दी गईं। कुर्की के ५०० से ऊपर नोटिस अब तक निकल चुके हैं। सत्याग्रही श्रीरविशङ्कर को ५ मास २० दिन कठिन कारावास तथा सूरत-कांग्रेस-समिति के मन्त्री श्री चिम्मनलाल चिनाय को ८ महीने की सख्त कैद की सज़ा अब तक हो चुकी है। तीन और अभी तक गिरफ़्तार हैं। यह अवश्य है कि लोग अड़े हुए हैं। ८४) के लगान के लिए ३०,०००) तक की ज़मीन कुर्क कर ली गई है। जिनकी अफ़ीम आदि की दूकानें थीं, वे जब सरकार के यहाँ अफ़ीम वग़ैरह का दाम चुकाने जाते हैं तब उसमें से ज़बर्दस्ती लगान वसूल कर लिया जाता है।

इस आन्दोलन की शक्ति का पता बारदोली के कलक्टर तथा पुलिस सुपरिंटेंडेंट की निम्नलिखित सूचना से लगता है—

"न तो कोई बेगार या बैलगाड़ी यहाँ मिलती है और न तो कुर्की का माल ले जाने के लिए साधन। हमें नित्य अपने ही आदमियों पर सन्देह बना रहता है कि कहीं यही हमें न छोड़कर चले जायँ।

४—उत्तरी पश्चिमीय सीमाप्रान्त में सुधार

उत्तरी पश्चिमीय सीमा-प्रान्त में इस समय 'पिछड़े प्रान्तों' के समान शासन हो रहा है। जिस समय भारत-सरकार ने शासन-सुधार १९१९ में चलाया उस समय दो एक प्रान्त ऐसे रक्खे गये जिन्हें अन्य प्रान्तों के समान स्वायत्त-शासन, व्यवस्थापक-समिति इत्यादि की स्वाधीनता न दी गई। इसका कारण उन प्रान्तों की अयोग्यता तथा 'पिछड़ापन' बतलाया गया था। अजमेर-मारवाड़, दिल्ली तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेश में हाई-कमिश्नरी स्थापित कर दी गई।

परन्तु दिल्ली तथा अजमेर-प्रान्त के समान सीमान्त-प्रदेश अपने आपसे सन्तुष्ट न रहा। सभा, समितियों, प्रस्तावों तथा मुसलमानी सदस्यों द्वारा उसने बार बार व्यवस्थापक-महासभा द्वारा अपने यहाँ भी सुधार प्रचलित कराना चाहा। परन्तु सैनिक-नीति, सीमा के वहाबियों के आक्रमण तथा हिन्दुओं के अत्यन्त अल्पमत के कारण भारत सरकार ने वहां सुधार देना स्पष्टतः अस्वीकार कर दिया। वहाँ के हिन्दू भी कहते थे कि यदि यहाँ सुधार हो जायगा तो हमारी बड़ी हानि होगी। कोहाट-काण्ड के बाद पारस्परिक भेद और भी बढ़ गया। इसके उपरान्त ही, वर्तमान महासभा (व्यवस्थापक) के पूर्व की असेम्बली में, सरकार के स्पष्ट अस्वीकार कर देने पर भी मुसलमानी सदस्यों ने सीमान्त-प्रदेश में सुधार के लिए आग्रह किया। उस समय स्वराज्य-दल तथा मुसलमान दोनों मिलकर सरकार से सुधार स्वीकार कराना चाहते थे। सरकारी होम-मेम्बर ने साफ़ कह दिया कि तुम प्रस्ताव पास कर लो, हम उसे स्वीकार न करेंगे। महामना मालवीयजी ने भी हिन्दुओं के हित की दृष्टि से बड़े तीव्र शब्दों में सुधार देने का विरोध किया। लालाजी तथा अन्य हिन्दू-नेता भी सुधार के विरोधी थे।

परन्तु प्रश्न समाप्त न हुआ। हिन्दू-मुसलमान-एकता का यह एक अङ्ग हो गया। सायमन-कमीशन के आगमन से देश में जो जागृति हुई उसी ने एकता-सम्मेलन, सर्व-दल-सम्मेलन, को जन्म दिया। यद्यपि इस सम्मेलन ने कोई विशेष कार्य अभी तक नहीं किया तो भी इसकी सबसे बड़ी विजय इस बात की है कि थोड़े ही समय में इसने

हिन्दू-मुसलमानों के बीच ऐक्य-स्थापन में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है। इसी सम्मेलन के प्रयत्न का यह परिणाम हुआ है कि हिन्दू-सभा के नेता, मालवीयजी तथा लाजपतिरायजी ने भी यह स्वीकार कर लिया कि सीमान्त-प्रदेश में सुधार प्रचलित होना चाहिए। भले ही इससे कुछ हिन्दुओं को असुविधा हो, पर पारस्परिक प्रेम तथा सौहार्द्र उसे दूर कर देगा।

आपस में ऐक्य-स्थापन कर, व्यवस्थापक-महासभा के सदस्यों ने सीमान्त प्रदेश को सुधार देने का प्रस्ताव पुनः सभा के फ़रवरी-मार्चवाले अधिवेशन में उपस्थित किया। मालवीयजी ने इसका समर्थन किया। व्यवस्थापक-महासभा ने इस प्रस्ताव को बहुमत से स्वीकार कर लिया। परन्तु भारत-सरकार ने कह दिया है कि सायमन-कमीशन की जाँच के पहले कुछ नहीं हो सकता।

काँग्रेस बहुत पहले से ही सीमान्त-प्रदेश को सुधार दिलाने का निश्चय कर चुका है। जब उसके नेता, जिनमें पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा श्रीनिवास ऐयंगर का नाम विशेष उल्लेखनीय है, सीमान्त-प्रदेश का भ्रमण करने गये थे। तब वहाँ के हिन्दू-मुसलमानों ने बड़े उत्साह से इनका स्वागत किया। ये लोग ख़ैबर की रेलवे देखने गये थे। यद्यपि इनसे ऐसे भी हिन्दू मिले जिनका दृढ़ विश्वास है कि सुधार से हिन्दुओं को कष्ट मिलेगा तो भी अधिकांश जन-समुदाय सुधार की आशा से प्रसन्न दीख पड़ा।

काँग्रेस तथा खिलाफ़त-कमिटियों ने मिल कर एक सम्मिलित समिति बना ली है। इसका कार्य पूर्ण सुधार के लिए आन्दोलन करना तथा ज़िला और नगर बोर्डों में स्वप्रतिनिधि-निर्वाचन की प्रणाली प्रचलित करना है। इस संयुक्त-समिति ने अपना कार्य आरम्भ कर दिया है।

५—लखनऊ-महिला-सम्मेलन

अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन के प्रस्तावों को कार्यान्वित करने के लिए गत २९ अप्रैल को लखनऊ में जो महिला-सम्मेलन हुआ था वह अपने प्रस्तावों के कारण बड़ा महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। सम्मेलन ने निम्न प्रस्ताव स्वीकार किये थे—

(१) बाल-विवाह के कारण शिक्षा पर जो कु-प्रभाव पड़ता है उसके प्रति यह सम्मेलन अत्यन्त दुःख प्रकट करता है। बालक-बालिकाओं को अपरिपक्व अवस्था में ही माता-पिता बना देने के प्रयत्न की निन्दा की जाती है। बड़ौदा, मैसूर, राजकोट, काश्मीर, लिम्बकी, मण्डी और गण्डोल आदि देशी रियासतों का पथावलम्बन कर बड़ी व्यवस्थापक तथा प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओं से आग्रह किया जाता है कि वे विवाह की उम्र बढ़ा दें। इस सभा की माँग है कि विवाह की क़ानूनी उम्र बालक-बालिकाओं के लिए क्रमानुसार २१ तथा १६ कर दी जाय। बाल-विवाह को क़ानून-द्वारा रोकने की राय हरविलास शारदा की चेष्टाओं की प्रशंसा करते हुए उनकी १४ और १६ की प्रस्तावित अवस्था के प्रति यह सम्मेलन तीव्र विरोध प्रकट करता है तथा 'सलेकेट कमिटी' से प्रार्थना करता है कि प्रस्तावानुसार बिल में संशोधन किया जाय। इस कार्य के लिए यह सर हरीसिंह गौड़ की 'स्वीकृति की अवस्था' बिल का हृदय से समर्थन करता है।

(२) समाज की स्वास्थ्यपूर्ण वृद्धि के लिए प्रत्येक प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय वा अन्तर्जातीय युद्ध हानिकर होने के कारण स्त्रियों को अपने प्रभाव-द्वारा उन्हें रोकना चाहिए क्योंकि पुरुषों से इन विषयों में उनका अधिक सम्बन्ध है।

(३) दारिद्र्य और दुःख के विनाश के लिए स्वदेशी वस्तुओं, विशेषतः स्वदेशी वस्त्रों, का उपयोग तथा विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करना चाहिए।

(४) सम्मेलन सरकार से आग्रह करता है कि प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभा में दो स्थान स्त्रियों के लिए नियत रक्खे। इन स्त्री-प्रतिनिधियों में एक सरकार-द्वारा मनोनीत तथा दूसरा निर्वाचित हो।

परिपूर्णानन्द वर्मा

१—कामना

यदि होता मैं वन-विहंग करता स्वच्छन्द विहार।
ऐसा गाता मधुर राग होता विमुग्ध संसार॥

निर्जन वन में बहने लगती स्वर-सरिता की धार।
हो उठता झंकृत जिसको सुन हृत्तन्त्री का तार॥

कोमल-कुसुम-डाल पर बैठा करता मैं आनन्द।
झूला मुझे झुलाता मारुत सुरभित-शीतल-मन्द॥

कलिकाओं के संग प्रेम से करता मनोविनोद।
करता कूजित निज सुकण्ठ से वनस्थली की गोद॥

यदि होता मैं मधुकर करता सदा पुष्प-रस पान।
निज प्रेमी सरसिज-हित जीवन करता मैं बलिदान॥

करता अपने लिए सृजन मैं अभिनव सुख-संसार।
कली-सुन्दरी का मुख-चुम्बन कर लहता सुख-सार।

यदि होता मैं सुमन सदा करता सुरभित उद्यान।
निज सुगन्ध से प्रमुदित कर सुनता विहंग-कल-गान॥

किसी कामिनी के सुकण्ठ का बनता सुन्दर हार।
या कोई युवती मुझको चुन करती निज शृङ्गार॥

निज प्रीतम को इस प्रकार वह करती मोद प्रदान।
पुरस्कार में निज जीवन-धन से वह पाती मान॥

अथवा चढ़कर देव-शीश पर हो जाता मैं धन्य।
मुझसा भाग्यवान फिर होता कभी न कोई अन्य॥

मणिराम गुप्त

२—उर्दू

यों तो प्राच्य विद्या-विशारद कहते हैं कि किसी समय में भारत के आर्य और ईरान के आर्य एक ही जगह रहते थे परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इनको अलग हुए भी हज़ारों वर्ष बीत गये और मुसल्मान होने से बहुत पहले से ईरानी अपने को हमसे भिन्न समझते हैं। ईरान में बड़े बड़े बादशाह हुए जिन्होंने अपना सिक्का योरप पर जमा दिया था। यूनान में प्रसिद्ध थरमापिली का युद्ध ईरानी आक्रमण को रोकने के लिए हुआ था। ईरानियों ने एक बार यूनान की राजधानी अथेन्स को भी भस्मसात् कर दिया था। परन्तु उस समय में भारत पर उनके सफल आक्रमण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। पचीस सौ वर्ष हुए बहमन नाम के किसी बादशाह ने भारत पर चढ़ाई की परन्तु गान्धार देश के आगे न बढ़ा, जिसके अन्तर्गत न केवल कन्दहार था जो गान्धार का अफ़गानी रूपान्तर है किन्तु सिन्धु महानद के आस पास का भी प्रान्त था। उस आक्रमण में सिन्धु नद सामने आया। पारसी भाषा में संस्कृत का स बदलकर ह हो जाता है जैसे सप्ताह से हफ़्ता। उसमे ध नहीं है। इससे सिन्धु हिन्द हो गया और यही नाम उस महानद के इस पार के देश का पड़ गया। यहाँ के रहनेवाले हिन्दू कहलाये। भारत को पश्चिमदेश-वासी अब तक हिन्द कहते हैं। यूनानी भाषा में ह का अभाव है। इस कारण हिन्द का इंड अर्थात् इंडिया हो गया। पारसी हम लोगों की अपेक्षा अधिक गोरे होते हैं इससे "हिन्दू" काले के अर्थ

बढ़ती है जल्दी जल्दी, परन्तु घटती है धीरे धीरे। प्रकाश के घटने-बढ़ने का ऐसा अचल नियम है कि इनको पहचानना ज्योतिषियों के लिए सरल और संशय-रहित है। इनमें कई एक की दूरी उसी साधारण रीति से निकाली गई है, जिस रीति से कोई अमीन किसी दूरस्थ और अगम्य बिन्दु की दूरी का पता लगाता है। दूरी जान लेने पर इस बात का पता बड़ी आसानी से लग सकता है कि अमुक तारा की वास्तविक चमक क्या है, अर्थात् यदि उस तारे को सूर्य के समीप खींच लायें तो वह सूर्य की अपेक्षा कितना चमकीला जान पड़ेगा। इसकी गणना इस जानी हुई बात पर निर्भर है कि यदि दूरी दूनी होगी तो प्रकाश घट कर एक चौथाई होगा और यदि दूरी तिगुनी होगी तो प्रकाश पहले का केवल नवाँ भाग ($\frac{1}{3} \times \frac{1}{3}$) होगा इत्यादि। प्रकाश के घटने-बढ़ने के चक्र में कितना समय लगता है, यह तो तारे की परीक्षा से ज्ञात हो गया, और इसकी वास्तविक चमक कितनी है, यह इसकी दूरी जान कर उक्त गणना से जान ली। इस प्रकार इस जाति के कई तारों के चक्र-काल और वास्तविक चमक का ज्ञान करने से एक नई बात का पता हमको लगता है। वह यह है कि चक्र-काल और वास्तविक प्रकाश में सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, यदि चक्र-काल २४ घण्टे के बराबर होगा तो तारा सूर्य से १०० गुना अधिक चमकदार होगा। चक्र-काल अधिक होने से वास्तविक चमक कम, और कम होने से वास्तविक चमक अधिक होगी।

नीहारिका की दूरी नापने में ज्योतिषियों ने इसी जाति के तारों का उपयोग किया है। ऐन्ड्रोमिडा नामके तारा-मण्डल में जो नीहारिका है उसमें संसार की सबसे बड़ी दूरबीन* से जाँच करने पर पता चला कि इस नीहारिका में भी ऊपर बताई गई जाति के कुछ तारे हैं। बस, इतना ही पर्याप्त था। उन तारों के चक्र-काल से तो उनकी वास्तविक ज्योति का पता चल गया और फिर यह देख कर कि वे देखने मे इतने फीके लगते हैं, तुरन्त पता चल गया कि वे कितनी दूर होंगे। आश्चर्य और सन्तोष की बात यह है कि इस नीहारिका के प्रत्येक ऐसे तारे की, जिसका प्रकाश घटता-बढ़ता है, दूरी एक ही (लगभग ६० शङ्ख मील) मिली। इसलिए नीहारिका स्वयं इस दूरी पर होगी।

ऊपर के तर्क में एक त्रुटि जान पड़ती है। कौन जाने वे तारे जिनकी ऊपर चर्चा की गई है, नीहारिका के पीछे हों और उनका कुछ प्रकाश नीहारिका में समा जाता हो, जिससे वे इतने फीके लगते हों और न कि इससे कि वे सचमुच बहुत दूर है। परन्तु ध्यान देने से पता चल जाता है कि इसकी बहुत सम्भावना नहीं है। यदि नीहारिका के कारण इन तारों के प्रकाश में कमी पड़ती तो किसी तारे में कम और किसी में अधिक पड़ती, क्योंकि नीहारिका सब जगह एक-सी घनी नहीं है, और इसलिए उन तारों की दूरी एक समान न निकल कर, किसी की दूरी बहुत कम और किसी की बहुत अधिक निकलती। परन्तु हम देख चुके हैं कि बात ऐसी नहीं है। इसलिए हम इस विचार को छोड़ देंगे और इसको निश्चित समझेंगे कि नीहारिका सचमुच ६० शङ्ख मील की दूरी पर है।

६० शङ्ख मील की दूरी! और वहाँ जो नीहारिका है उसका व्यास हमें यहाँ से २ अंश (सम कोण का पैंतालिसवाँ भाग) जान पड़ता है। मान-चित्र बनाकर देख लीजिए, नीहारिका का व्यास २ शङ्ख मील अवश्य होगा। यदि प्रकाश की सवारी कर और अमृत-पान कर उस नीहारिका की प्रदक्षिणा आप कर सकें तो केवल प्रदक्षिणा करने में ही आपको १ लाख वर्ष लग जायँगे!

गोरखप्रसाद

५—कृष्ण की वंशी

बजिबो करत बर बाँसुरी तिहारी
विश्वमाहिं हियहारी श्याम! सुषमा सुधा के ऐन,
चाहै जो सुनहि जाय नीरव निसर्ग माहिं,
सरस सँगीत ताको अतुल प्रमोद देन॥
ललित प्रशान्ति राग गावत नछत्रवृन्द
सुनि सुनि रस माहिं भींजत सुमन-सेन।
उदधि-जुन्हाई बीच आनँद हिलोरन में
थिरकि थिरकि ताल देत जहँ चन्द्र-फेन॥

बलदेवप्रसाद मिश्र

---

*यह अमरीका में है। इसका व्यास ८८$\frac{1}{3}$ फ़ुट और लम्बाई लगभग १०० फ़ुट है।

६—जैनी और समुद्र-यात्रा !

सरस्वती के एक अङ्क में एक विद्वान् ने प्राचीन भारत के हिन्दुओं की समुद्र-यात्रा पर एक महत्त्व-पूर्ण लेख लिखा था। उसमें वैदिक एवं बौद्ध शास्त्रों के आधार से इस विषय की पर्य्यालोचना समुचित रीति से की गई है। यहा जैन-साहित्य के आधार पर इसके विषय की कुछ बातें लिखी जाती है। यह तो अब सर्वमान्य है कि जैन-साहित्य अपनी कतिपय अन्यतम विशेषताओं के कारण भारतीय इतिहास के लिए बड़े काम की चीज़ है।

जैनियों का विश्वास है कि संसार-परिभ्रमण के इस युग में कर्मक्षेत्र की सर्वप्रथम सृष्टि मनु नाभिराम के सुपुत्र भगवान् ऋषभदेव-द्वारा हुई थी, जिनका समय वैदिक-काल से भी बहुत प्राचीन ठहरता है। इन्होंने जनता को अनेक विद्याओं और कलाओं का ज्ञान कराया था। इन कलाओं मे जल-तरण और जलवाहन विद्याये भी थीं। इनको भगवान् ने सर्वप्रथम अपने एक पुत्र को सिखला दिया था, जिन्होंने निष्णात होकर जन-साधारण में इनका बहुत प्रचार किया था[१]। इन विद्याओं का पूर्ण विवरण "विद्यानुवादपूर्व" नामक ग्रन्थ में मौजूद था, जो इस समय उपलब्ध नहीं है[२]। अतएव इस उल्लेख से यह स्पष्ट है कि जैन-धर्मानुयायियों के लिए भी समुद्र-यात्रा का केवल विधान ही नहीं, बल्कि उसके सब साधनों को तैयार करने की विद्या का उपदेश भी जैनियों के प्रथम तीर्थङ्कर-द्वारा हुआ था। इस प्रकार जैन-शास्त्रों से भी यह प्रकट है कि ऋग्वेद के समय अथवा उससे भी पहले से भारत-वासी समुद्र-यात्रा करने लगे थे और बड़े बड़े जहाज़ भी बना लेते थे।

जैन-शास्त्रों में ऐसे अनेक महापुरुषो के उदाहरण मौजूद हैं जिन्होंने समुद्र के मार्ग-द्वारा भारतेतर देशो का भ्रमण किया था। श्वेताम्बराम्नाय के 'उत्तराध्ययनसूत्र' के २१ वें व्याख्यान में चम्पा के श्रेष्ठी समुद्रपाल की कथा है। ये समुद्र के मध्य में जहाज़ पर पैदा हुए थे, इसलिए इनका नाम समुद्रपाल था। इनके पिता पालितकामक थे जो व्यापार के निमित्त जहाज़ पर बैठकर पिहंडनगर को गये थे। वहीं इन्होंने एक विदेशी रमणी से विवाह किया था। लौटते समय इसी के गर्भ से समुद्रपाल का जन्म हुआ था, जो अपनी आयु के अन्तिम भाग में जैन मुनि हुए थे और निर्वाणपद को पहुँचे थे[३]। इस कथा से उस समय की सामाजिक और धार्मिक उदारता का ख़ासा पता चलता है।

इसी सूत्र की अन्य कथाओ में से एक में आयाल-नामक व्यक्ति के पारस्य देश में .खूब धन कमाकर जहाज़ों द्वारा बेन्नायद नगर मे आने का उल्लेख है[४]। यह आयाल कांपिल्य के ब्रह्मदत्त सम्राट् के समय विद्यमान था, जो ईसा से पूर्व आठवीं या नवीं शताब्दी में हुए माने जाते हैं[५]। दिगम्बराम्नाय के कथा-ग्रन्थों में स्वयं इन सम्राट् ब्रह्मदत्त का समुद्र-यात्रा करते हुए एक कांतरदेव द्वारा बीच समुद्र में मारे जाने का उल्लेख मिलता है। इस समय अर्थात् सम्राट् ब्रह्मदत्त के पहले के अनेक जैन पुरुष भी जहाज़ों में बैठकर विदेशों की सैर कर चुके थे। कांपिल्य नगर के राजा नरसिंह के मन्त्री का पुत्र कड़ारपिङ्ग था। उसकी कुदृष्टि वहां के प्रसिद्ध धनिक कुबेरदत्त की स्त्री पर जा पड़ी थी। हठात् उसने प्रपंच रचकर कुबेरदत्त को रत्नद्वीप से राजा के लिए एक ख़ास प्रकार के पक्षियों को लाने का आयोजन किया था। इसी तरह सिंहपुर के समुद्रदत्त सेठ अपने धन को श्रीभूति नामक व्यक्ति को सौंपकर रत्नद्वीप को गये थे। वहां .खूब वाणिज्य करके जब धन-सम्पदा लिये वे लौट रहे थे, तो मार्ग में उनका जहाज़ फट गया था। इसी प्रकार पद्मखंडपुर के एक सेठ को भी व्यापारार्थ जाते हुए, बीच समुद्र में जहाज़ फट पड़ने का उल्लेख है।

गीता के श्रीकृष्णजी के समकालीन २२ वें तीर्थङ्कर श्रीनेमिनाथजी भगवान् थे[६]। इनके तीर्थ में चारुदत्त नामक प्रसिद्ध सेठ हुए थे। चारुदत्त सेठ की कथा वेश्या

१ आदिपुराण पर्व १६।
२ तत्त्वार्थसूत्रम् (S B J) पृ० ३५।
३ जैनसूत्र (S B E) भाग २ पृ० १०८।
४ मेयर्स, हिन्दूटेल्स पृ० २१५।
५ कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया भाग १ पृ० १८०।
६ इपीग्रेफिया इंडिका भा० १ पृ० ३८९।

के पीछे सारा धन गँवा देने के कारण बहुत प्रसिद्ध है। वे अपनी सम्पदा गँवाकर कई बार पवनद्वीप और रत्नद्वीप आदि देशों में धनोपार्जन करने के भाव से गये थे। आठवीं शताब्दी के जिन सेनाचार्य के 'हरिवंश-पुराण' में भी इनका वर्णन मिलता है। ऐसे ही भविष्यदत्त सेठ की कथा धनपाल कवि ने (१० वीं श०) अपभ्रंश प्राकृत भाषा में "भविसयत्त कहा" नाम से लिखी है जो बरौदा की "गैकवाड़ ओरियंटल सीरीज़" से प्रकाशित भी हो चुकी है। उसमें भविष्यदत्त को द्वीपान्तरो में वाणिज्य के लिए जहाज़ों में माल असबाब भरकर, अन्य व्यापारियों के समूह के साथ, जाते हुए लिखा है। इन द्वीपों में मैणाकद्वीप और तिलकद्वीप उल्लेखनीय है। यह सेठ आठवें तीर्थङ्कर श्रीचन्द्रप्रभ स्वामी के समय में हुए थे[1]।

उपरान्त अन्तिम तीर्थङ्कर भगवान् महावीर स्वामी के समय में भी जैनी व्यापारी मुख्यतः समुद्र-यात्रा करते थे। जिस समय परमजिनेन्द्रभक्त राजा उदायन कच्छदेश की वीतभय नगरी में राज्य कर रहे थे, उस समय किन्हीं व्यापारियों का जहाज़ लगातार छः महीने तक समुद्र के तूफान में पड़ा मँडराता रहा। आखिर व्यापारीगण वीतभय नगर पहुँचे थे[2]। इतना ही नहीं कि जैन व्यापारी ही विदेशों में समुद्र-मार्ग-द्वारा गये हो, प्रत्युत जैन साधुओं और राजाओं के भी विदेश जाने के उल्लेख मिलते हैं। जैन साधुओं ने लङ्का, अरब, ईरान, ग्रीस, अबीसीनिया, नार्वे आदि सुदूर देशों में जैन-धर्म का प्रचार किया था, यह आज विद्वानों को मान्य है[3]। ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में भृगुकच्छ से एक दिगम्बर जैनाचार्य यूनान को गये थे और वहीं इन्होंने समाधि-मरण किया था। इन श्रमणाचार्य की निषधिका यूनान की राजधानी अथेन्स में मौजूद है[4]। इसी प्रकार ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी में प्रसिद्ध जैनराज खारवेल महामेघवाहन जावा आदि द्वीपों को गये थे। उस समय कलिङ्गदेश का व्यापार ख़ूब समृद्धि पर था। इस राजा ने उसकी पूर्ण रक्षा की थी। इन सब बातो का ख़ासा विवरण पण्डित नीलकंठदासजी के एतद्विषयक उड़ियाकाव्य में ख़ूब मिलता है।

इन उल्लेखो को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जैन-धर्मानुयायी बहुत ही प्राचीन काल से समुद्र-यात्रा करते आये है।

कामताप्रसाद जैन

१ G. O. S. No. XX संधि ३ और ४।
२ मेयर्स, हिन्दूटेल्स पृ० १०३।
३ देखो 'भगवान् महावीर और म० बुद्ध' नामक पुस्तक पृ० ६६-६७।
४ इंडियन हिस्टारीकल क्वार्टरली भाग २ पृ० २९३-२९४।
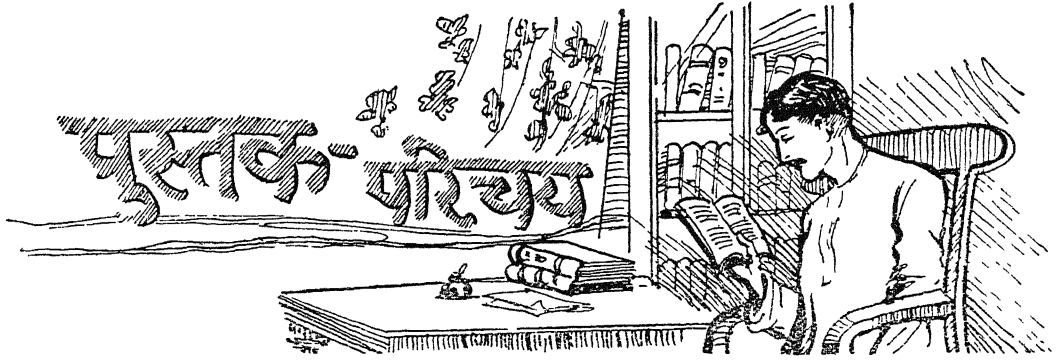
१—न्याय-वैद्यक और विषतन्त्र—अँगरेज़ी भाषा के मेडिकल जूरिसप्रुडेंस (Medical Juris prudence) का अनुवाद हिन्दी-लेखकों क्यों, हमारे वैद्यवरों, ने न्याय-वैद्यक किया है और टाक्सीकोलाजी का विषतन्त्र। अँगरेज़ी भाषा में लिखी गई इन्हीं विषयों की पुस्तकों के आधार पर प्रस्तुत पुस्तक की रचना हुई है। अपने आयुर्वेदिक ग्रन्थों में जहाँ जो बात काम की पाई गई है वहाँ से उद्धृत करके वह भी लिख दी गई है। डूबने से मृत्यु, जलने से मृत्यु, गर्भपात, भ्रूणहत्या, आत्महत्या, विष या विषाक्त वस्तु खाने से मृत्यु—इस तरह की वारदातों के मुक़द्दमे जब कचहरियों में आते हैं तब डाक्टरों की शहादत की ज़रूरत हुआ ही करती है। मेडिकल कालेजों में इसी से ये सब विषय पढ़ाये जाते हैं। पर हमारे वैद्यक में इस सम्बन्ध में जो कुछ इधर-उधर बिखरा हुआ पड़ा है वह बहुत थोड़ा है और उसके आकलन से सब बातों का ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकता। इसी अभाव की पूर्त्ति के लिए "कविराज श्रीअत्रिदेव विद्यालङ्कार भिषग्रत्न" ने इस पुस्तक का लेखन और कराची के आरोग्य-[illegible]धु-कार्य्यालय के संचालक ने इसका प्रकाशन किया [illegible] मध्यम आकार की इस पौने चार सौ सफ़हों की [illegible]क का मूल्य बहुत नहीं, सिर्फ़ ४) रक्खा गया है। [illegible] इसलिए नहीं, क्योंकि वैद्य लोग फ़ीस भी तो अपने [illegible]यों से ख़ूब डटकर लिया करते हैं। इस पुस्तक की लेखन-शैली कुछ कुछ वैसी ही है जैसी कि पुराने सूत्र-[illegible] में पाई जाती है। मामूली पाठक तो इससे शायद ही कुछ लाभ उठा सकें। वैद्य भी वही इससे विशेष लाभ उठा सकेंगे जो अँगरेज़ी जानते हैं तथा अँगरेज़ी औषधों के नाम और गुण आदि से भी परिचय रखते हैं। अनाटमी (शरीर-शास्त्र) का भी कुछ ज्ञान होने से वे इसकी कितनी ही बातें समझने में समर्थ हो सकेंगे। अन्यथा नहीं। भाषा इस पुस्तक की बेतरह संक्षिप्त (सूत्रमय) है। इससे तो व्यवहारायुर्वेद-विषयक वे लेख वैद्यों के विशेष काम के हैं जो कानपुर के "चिकित्सक" मे निकला करते हैं। फिर भी इस विषय की एक पुस्तक हिन्दी में भी हो गई यही ग़नीमत है—

निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।

२—जैनलेख-संग्रह, द्वितीय खण्ड—जैन-धर्म्म बहुत पुराना है। कोई कोई उसे बौद्ध-धर्म्म के भी पहले का समझते हैं। इस धर्म्म के अनुयायी साधु-महात्मा किसी समय बड़े विद्वान्, बड़े त्यागी, बड़े उदारचरित और बड़े विद्याव्यसनी होते थे। अब भी इसके अनुयायियों में कितने ही अच्छे अच्छे लेखक और सच्चरित्र सज्जन पाये जाते हैं। इस धर्म्म को मानने-वाले विशेष धर्म्म-निष्ठ होते आये हैं। उन्होंने आज तक अनन्त मन्दिरों और मूर्त्तियो की प्रतिष्ठा की है। इनमें एक बात बड़ी अच्छी थी। ये प्रायः सर्वत्र ही अपनी मूर्त्तियों और मन्दिरों मे उनके निर्माताओं या संस्थापकों आदि के सम्बन्ध के लेख उत्कीर्ण कराना न भूलते थे। ये लेख अब भी हज़ारों की संख्या में पाये जाते हैं। इन्हीं लेखों का संग्रह प्रकाशित करने का बीड़ा बाबू पूर्णचन्द्र नाहर, एम०

ए०, बी० एल० (वकील, हाई कोर्ट, ४८ इंडियन मिरर स्ट्रीट, कलकत्ता) ने उठाया है। इस संग्रह का पहला खण्ड प्रकाशित हुए कई वर्ष हो चुके। प्रस्तुत पुस्तक इसका दूसरा खण्ड है, पहले खण्ड की तरह इसमें भी १,००० लेख संग्रहीत हैं। कोई कोई तो बहुत छोटे हैं, कोई बड़े। भाषा संस्कृत और लेखों के समय की प्राकृत भी है। इनसे अनेक ऐतिहासिक बातें भी जानी जा सकती हैं। इतिहास-प्रेमियों के लिए तो यह पुस्तक बड़े ही महत्त्व की है। इसके कुछ संस्कृत लेखों की कविता सचमुच ही कविता कही जाने योग्य है। पुस्तक में अनेक चित्र हैं। कई तालिकायें भी हैं। आकार बड़ा, काग़ज़ मोटा और टाइप जैनियों की प्राचीन शैली का है। कई प्राचीन लेखों का फ़ोटो-चित्र भी दिया गया है। मूल्य ५) है। संग्रहकर्त्ता ही से शायद इसकी प्राप्ति हो सकती है।

३—प्राचीन जैन-स्मारक—इस तरह की एक पुस्तक का परिचय ऊपर दिया जा चुका है। उसमें भारत के सभी प्रान्तों के जैन-शिलालेखों की नक़ल और उन पर टिप्पणियाँ हैं। इस प्रस्तुत पुस्तक में केवल मदरास-प्रान्त और मैसूर में प्राप्त लेखों का उल्लेख है। मदरास में जैन-धर्म्म का प्रचार बहुत पहले ही हुआ था। सम्भव है, सन् ईसवी के भी पहले इस धर्म्म की जड़ वहाँ जम गई हो। वहाँ तो पांड्य, चोल, कादम्ब, पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट आदि वंशों के कितने ही नरेश तक इसी धर्म्म के अनुयायी थे। इस कारण इस धर्म्म की वहाँ बड़ी उन्नति हुई। सहस्रावधि मन्दिर और मूर्त्तियाँ वहाँ प्रतिष्ठित हुईं। उनका अधिकांश तो नष्ट हो गया, पर, फिर भी अभी बहुत कुछ शेष है। केवल श्रवणबेलगोला से ५०० के लगभग शिलालेख पाये जाते हैं। एपीग्राफिया करणाटिका नामक पुरातत्त्व-सम्बन्धिनी पत्रिका में आज तक न मालूम कितने जैन-लेख प्रकाशित हो चुके होंगे। प्रस्तुत पुस्तक में ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद ने मदरास और मैसूर-प्रान्त के जैन-लेखों पर जो प्रकाश डाला है वह बड़े काम का है। अब तक ये लेख इधर-उधर पुस्तकों में बिखरे हुए पाये जाते थे। अब इतिहास-प्रेमियों को इन सबका पता इस पुस्तक में, एक ही जगह, मिल जायगा। अतएव इतिहास-संशोधन और इतिहास-रचना के काम में इनसे बहुत सहायता मिलेगी। संग्रहकर्ता ने इस पुस्तक में जैन-तीर्थों, जैन-मन्दिरों और जैनों की पुरानी बस्तियों तथा इमारतों आदि का भी वर्णन किया है। अतएव इस संग्रह का महत्त्व और भी बढ़ गया है। कुछ ही लेखों की नक़लें इसमें दी गई हैं, औरों के केवल हवाले या उल्लेख-मात्र इसमें है। पुस्तक का आकार मध्यम, पृष्ठ-संख्या ३५० और मूल्य १=) है। मिलने का पता जैन-पुस्तकालय, चन्दावाड़ी, सूरत।

४—ब्राह्मधर्म (दूसरा भाग)—महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर ब्रह्म के उपासक एवं तत्त्वद्रष्टा थे। ऐश्वर्यशाली माता-पिता की गोद में जन्म लेकर भी सांसारिक विषयों से वे आजीवन मुक्त रहे, धर्म के निमित्त अपना सर्वस्व अर्पण करने के लिए वे सदा कटिबद्ध रहते थे। ऐसे लोग संसार में कम देखने में आते हैं। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं महर्षि की कृति का हिन्दी-रूपान्तर है। मनुष्य का धर्म क्या है, परिवार तथा अपने सम्बन्धियों एवं इष्ट-मित्रों के प्रति उसका क्या कर्तव्य है, गार्हस्थ्य जीवन में रहकर भी वह किस प्रकार ईश्वर की प्राप्ति कर सकता है, इत्यादि बातें इस पुस्तक में बड़े अच्छे ढङ्ग से समझाई गई हैं। क्या ही अच्छा होता कि संस्कृत के श्लोकों का प्रूफ़ देखने में कुछ अधिक सावधानी से काम लिया जाता। पुस्तक उपयोगी एवं शिक्षाप्रद है। पृष्ठ-संख्या ८४, मूल्य ॥), ब्राह्मसमाज, लाहौर से प्राप्य।

५—मानस-मञ्जूषा (प्रथम भाग)—इस पुस्तक में रामचरित-मानस के काव्य-सम्बन्धी गुण, रस, अलङ्कार तथा उसके रहस्यों का दिग्दर्शन कराया गया है। पुस्तक परिश्रम के साथ लिखी गई है। रामायण काव्य-प्रेमियों के लिए उपयोगी है। इसके लेखक हैं श्री शोभाराम धेनुसेवक, प्रकाशक तुलसीग्रन्थमाला, लखनादौन (सिवनी) सी० पी०, पृष्ठ-संख्या २[illegible] और मूल्य १॥)

६—हिन्दुस्तान की प्रजा के कर्तव्य कर्म की प्रश्नोत्तरी टिप्पणी-सहित—इस पुस्तक के रचयिता हैं श्रीयुत रघुनाथप्रसाद मिश्र, शारदाभवन कार्यालय,

पुराना शहर इटावा। पृष्ठ-संख्या ११४ और मूल्य।) यह The Citizen of India नामक अँगरेज़ी पुस्तक की कुञ्जी है, मिडिल क्लास के विद्यार्थियों को इससे सहायता मिल सकती है।

७—**भर्तृहरि शतक**—महाराज भर्तृहरि ने नीति, श्रृङ्गार तथा वैराग्य-सम्बन्धी संस्कृत में प्रायः तीन सौ कवितायें लिखी है। विद्वानों में इन कविताओं का बड़ा आदर है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं कविताओं की मूल-सहित हिन्दी टीका दी गई है। टीकाकार हैं श्रीयुत रामजी शर्मा 'मधुबनी' और प्रकाशक श्रीयुत श्यामलाल वर्मा, आर्यपुस्तकालय, बरेली, पृष्ठ-संख्या ११२, मूल्य ॥)

८—**महाराणा प्रतापसिंह**—लेखक मास्टर चन्द्रिकाप्रसाद वाथम, प्रकाशक आर्यपुस्तकालय, बरेली, पृष्ठ-संख्या ६५, छपाई-काग़ज़ अच्छा नहीं—मूल्य ।=)

आरम्भ के बीस-बाईस पृष्ठ व्यर्थ से ही हैं। वास्तव में कहानी सातवें अध्याय से शुरू होती है। इसमे महाराणा प्रतापसिंह का ऐतिहासिक वर्णन है। पुस्तक साधारण है। 'अतालीकी' आदि उर्दू के शब्दों का प्रयोग हिन्दी के पाठकों के लिए उलझन पैदा करनेवाला है।

९—**शाहवार मोती**—सन्त नाम की ग्रन्थमाला का परिचय सरस्वती के किसी अङ्क में प्रकाशित हो चुका है। यह उसी सन्त का ५१ वाँ ग्रन्थ है। इसके भी लेखक महर्षि शिवव्रतलालजी हैं। दीवान वंशधारीलाल जी मैनेजर, सन्त, चौक इलाहाबाद से यह प्राप्त हो सकता है। मूल्य ॥=) है।

यह एक उपन्यास है। इसमें प्राचीन काल की धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सभ्यता का विलक्षण दृश्य अङ्कित हुआ है। कथा मे यथेष्ट रोचकता है। इसमें सन्देह नहीं कि लेखक ने एक विशेष उद्देश्य से इसकी रचना की है। इसमे अहिंसा की महत्ता वर्णित हुई है और बौद्धमत और वेदान्त-धर्म की विवेचना की गई है। तो भी कथा की सरसता में कोई हानि नहीं हुई है। उपन्यास-प्रेमियों के लिए इसमें मनोरञ्जन की यथेष्ट सामग्री है और ज्ञान-पिपासुओं के लिए भी।

१०—**सरस्वती-तेल**—श्रीयुत सूबेदार डाक्टर महादेवप्रसाद (पेंशनर, मुट्ठीगंज, बेगमबाग, इलाहाबाद) ने तेल की कुछ शीशियाँ भेजने की कृपा की है। इस तेल का नाम है **सरस्वती-तेल**। तेल मे मन्द सुगन्ध है। पर सिर पर लगाने से लाभ होता है। कुछ दिनों तक हमने भी उसका उपयोग किया है और हमें यथेष्ट लाभ हुआ है। तेल के सम्बन्ध में कहा गया है कि इससे केश के सभी रोग दूर हो जाते हैं। सिर के दर्द और आँखों की जलन में भी इससे लाभ होता है। चार औंस की शीशी का दाम १) है, दो औंस की ॥-) और १ औंस की ।-)। जिन्हें ऐसे तेलों की आवश्यकता है उन्हें इसको भी एक बार मँगाकर देख लेना चाहिए। मूल्य भी अधिक नहीं है।

११—**विनय**—यह ३६ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक पण्डित रामवचन द्विवेदी "अरविन्द" की प्रार्थना तथा भक्ति-सम्बन्धी १७ कविताओं का संग्रह है। मूल्य ≡) राजराजेश्वरी पुस्तकालय, गया से प्राप्य।

१२—**चाँद (पत्राङ्क)**—इलाहाबाद से चांद नाम का मासिक-पत्र निकल रहा है। वह बड़ा लोक-प्रिय होगया है। विशेष कर नवयुवकों में कदाचित् उससे अधिक लोक-प्रिय पत्र दूसरा पत्र न होगा। यह उसी का पत्राङ्क है। इसी के सभी लेख और कवितायें पत्रों के रूप में हैं। इस अङ्क के सम्पादक हैं पण्डित नन्दकिशोर तिवारी। कई रङ्गीन चित्र हैं। छपाई-सफ़ाई भी ख़ूब अच्छी है। पृष्ठ-संख्या १६० है। मूल्य १)।

ह सरस्वती का विशेषाङ्क है। हमें आशा है कि वार्षिकाङ्क की भाँति यह अङ्क भी हमारे पाठकों को सन्तोष-प्रद होगा। देश की जितनी समस्यायें हैं—आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और शिक्षा-सम्बन्धी—उन सब पर सरस्वती के इस अङ्क में लेख प्रकाशित हुए हैं। स्वामी सत्यदेव जी के लेखों से सरस्वती के पाठक अपरिचित नहीं हैं। राष्ट्र के जीवन-रस की पुष्टि किससे होती है, यह स्वामीजी के लेख से पाठकों को मालूम हो जायगा। पण्डित गङ्गाप्रसाद अग्निहोत्री जी का लेख बड़ा अवश्य है, पर उपादेय है। ग्रामीण स्कूलों में कैसी शिक्षा दी जानी चाहिए, यह उससे अच्छी तरह ज्ञात हो जाता है। अमेरिका ने कृषि में जो उन्नति की है उसका कारण यही शिक्षा-पद्धति है। भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ तो ऐसी ही शिक्षा-पद्धति की विशेष आवश्यकता है। राजनीति, शिक्षा और समाज पर जो लेख निकले हैं उनकी महत्ता पढ़ने पर प्रकट होगी। इस अङ्क की आख्यायिकाओं और कविताओं से भी पाठकों को बड़ा सन्तोष होगा। हिन्दी के उदीयमान आख्यायिका-लेखक श्रीयुत राजेश्वरप्रसाद सिंह ने देश के सबसे बड़े प्रश्न—हिन्दू-मुसलमान-विद्वेष—का सबसे अच्छा उत्तर दिया है। जहाँ मनुष्यत्व है वहाँ विद्वेष के लिए स्थान नहीं है। हिन्दू और मुसलमान को सबसे पहले सच्चे मनुष्य बनने की चेष्टा करनी चाहिए। इस अङ्क में सुदर्शन जी की भी एक कहानी है। यों तो सुदर्शनजी की सभी कहानियाँ रोचक होती हैं। पर इस अङ्क में उनकी जो कहानी प्रकाशित हुई है उसमें प्रेम, लालसा, विद्वेष और प्रतिहिंसा का बड़ा ही स्वाभाविक चित्र है। जब प्रेम में एक-मात्र उद्दाम वासना रहती है तभी उसमें सन्देह और प्रतिहिंसा के उग्रभाव प्रकट होते हैं। ऐसे प्रेम में त्याग नहीं रहता है। वहाँ पुरुष अपने स्वामित्व का अधिकार छोड़ नहीं सकता। प्रेमिका होने पर भी स्त्री दासी ही बनी रहती है। बङ्किम बाबू की रोहिणी की तरह उसको पुरुष जब चाहे तब हृदय-पर स्थान दे और जब चाहे तब उसे दूर कर दे। ऐसे प्रेम पर स्त्री का अधिकार नहीं होता है। वह तो उसे भिक्षा के रूप में पुरुष से प्राप्त करती है।

× × ×

समाज की सबसे बड़ी समस्या है स्त्रियों और पुरुषों का पारस्परिक सम्बन्ध। सभी उन्नत देशों के साहित्य में ऐसे कुछ उपन्यास हैं जो इनकी चर्चा करते हैं। हिन्दी के तो एक-मात्र उपन्यास-कार प्रेमचन्द जी हैं। उन्होंने देश, जाति और समाज की समस्याओं पर विचार किया है। पर बँगला में दो एक उपन्यासकार और भी हैं जिन्होंने समाज की समस्याओं पर विचार किया है। वङ्ग-साहित्य के एक विद्वान् का कथन है कि जब समाज के भीतर से आघात एक-दम से आकर हमारे हृदय पर पड़ता है और उसकी प्रतिक्रिया के रूप में जब हमारा मन लौटकर उस पर आघात करने के लिए पुरातन संस्कारों को लेकर कुछ समझना बूझना चाहता है उस समय इसी द्वन्द्व को लेकर समस्या-मूलक उपन्यासों की रचना की जाती है।

× × ×

समाज का सबसे बड़ा प्रश्न स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध, दाम्पत्य-प्रेम है। इसी एक भित्ति पर समाजरूपी

अट्टालिका खड़ी है। हिन्दू-समाज ने उस प्रेम की रक्षा के लिए एक मर्यादा निश्चित कर दी है। पर कई कारणों से वह मर्यादा टूट जाती है। प्रेमचन्दजी की एक कहानी कुछ समय पहले किसी मासिक-पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। उसकी कथा यों थी। एक हिन्दू-दम्पती में बड़ा स्नेह था। स्त्री पुरुष को चाहती थी और पुरुष स्त्री को। किसी मुसलमान की कुदृष्टि उस हिन्दू-स्त्री पर पड़ी। उसने स्त्री को बहकाने के लिए एक मेहतर की सहायता ली। मेहतर ने बड़ी धूर्त्तता से पति के हृदय में स्त्री के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया और स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति विद्रोह-भाव। फल यह हुआ कि अन्त में स्त्री अपने पति के घर को छोड़ कर मुसलमान के घर चली गई। उस हिन्दू-स्त्री का यह पतन किसी सामाजिक दोष से नहीं हुआ। इसका कारण है मानसिक प्रवृत्ति। परन्तु यही बात सेवा-सदन की सुमन के लिए नहीं कही जा सकती। वहाँ समाज का भी दोष है। सुमन को सबसे बड़ा आश्चर्य यह देख कर हुआ था कि देव-स्थानों में भी अच्छे लोगों के द्वारा वेश्याओं का यथेष्ट सत्कार किया जाता था। पुरुष जब सन्देहवश अपनी स्त्री को घर से बाहर निकाल देता है तब उसका कारण यह नहीं है कि उसे व्यभिचार के प्रति घृणा हो। यदि यह बात होती तो वेश्या का आदर न होता। उसे तो अपना प्रभुत्व का गर्व है। उसे यह सह्य नहीं है कि स्त्रियाँ उसके प्रभुत्व को स्वीकार न करें। योरप में भी समाज की यही समस्या है। उपन्यास-कार उसी को व्यक्त करना चाहते हैं। वे सामाजिक सदाचार की परीक्षा करना चाहते हैं। 'यही कारण है कि आज-कल चारों ओर से हमारे जीवन के सत्य को आवृत करके जो संस्कार फूल की पँखुरियों के समान विकसित हुए हैं, उन्हें नोच कर, फेंक कर उज्ज्वल सत्य को ग्रहण करने की शक्ति की परीक्षा हो रही है।'

जो लोग कल्पना के रङ्गीन प्रकाश में संसार को देखा करते हैं, उन्हें संसार के वर्ण-वैचित्र्य में आनन्द अवश्य मिलता है किन्तु वास्तविक जगत् से उनका परिचय कभी नहीं होता। गांव के हरे-भरे खेतों और सरल और शान्त ग्रामीणों ने हमारे साहित्य में स्थायी आसन अवश्य पाया है किन्तु कल्पना के इस चित्र के साथ देहात के वास्तविक चित्र की विषमता कितनी अधिक है, यह जिन लोगों ने देहात का दृश्य देखा है, वे बड़ी सरलता से समझ सकते हैं। ग्राम-वासियों के सरल जीवन का मधुर सौन्दर्य हमारे हृदय में सुख का सञ्चार अवश्य करता है किन्तु देहाती समाज का यथार्थ स्वरूप देखने पर वेदना ही होगी। देहात का यथार्थ दृश्य प्रेमचन्दजी के सङ्ग्राम नामक नाटक में है। उसमें एक ओर सरलता और प्रेम है, दूसरी ओर लालसा, अन्याय और कुसंस्कार है।

एक विद्वान का कथन है—हम लोग बड़े गर्व से कहते हैं कि हमारे जीवन में दाम्पत्य-प्रेम एक तपस्या की सामग्री है। स्त्री-जाति की ओर से इस दाम्पत्य सम्बन्ध की पवित्रता की रक्षा होने पर भी पुरुषों की ओर से यह सम्बन्ध कितना पवित्र बना रहा है, यह कहना भले ही कठिन हो, पर जानते सभी हैं। केवल भाव के नशे में बैठे रहने से निद्रा या आवेश तो आता है और उससे पारमार्थिक तत्त्वों का ज्ञान भी हो सकता है किन्तु यह तो दृढ़तापूर्वक कहा जा सकता है कि पार्थिव वस्तुओं के जानने के लिए यह अवस्था ज़रा भी वाञ्छनीय नहीं है। देखने में आता है कि समाज की निम्न-श्रेणी में विधवा स्त्रियों को बहुत कम आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना पड़ता है, क्योंकि उनमें पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित है। इधर हमारे देश के विपत्नीक पुरुष समाज-शासकों की दृष्टि में अलङ्कार-शास्त्र के कवियों के समान निरङ्कुश हैं। पत्नी की मृत्यु के बाद पुरुष का अन्य विवाह करना तो हमारे समाज में इतना स्वाभाविक एवं साधारण हो गया है कि जो लोग स्त्री के साथ उन्नीस-बीस वर्ष तक जीवन बिता कर उसकी मृत्यु के दो-तीन महीने बाद अन्य स्त्री का पाणिग्रहण करके उसकी स्मृति को सर्वथा नष्ट कर देते हैं उनका काम कितना गर्हित है, इस बात का अनुभव करना आज तक हमने नहीं सीखा। हमारे समाज में इस प्रकार की घटनायें प्रति-दिन हुआ करती हैं। विपत्नीक ही नहीं, जो सपत्नीक हैं वे भी अधेड़ अवस्था में नवयुवती के प्रेम का आस्वादन करने के लिए दूसरा विवाह कर लेते हैं। अभिप्राय यही है कि यदि पति-पत्नी में दाम्पत्य-प्रेम की जड़ पूर्णरूप से जम जाती तो क्या पति के लिए अन्य स्त्री या

पत्नी के लिए अन्य पुरुष का ग्रहण करना सम्भव होता! केवल स्त्री के ही अपरिसीम अनुराग से दाम्पत्य प्रेम नहीं होता, बरन पति-पत्नी दोनों का परस्पर एक दूसरे के प्रति स्वाभाविक अनुराग ही दाम्पत्य-प्रेम है।

× × ×

सरस्वती के इस अङ्क में श्रीयुत श्रीनाथसिंहजी ने हिन्दू-समाज की वैवाहिक समस्या पर विचार किया है। उसके भी मूल में यही दाम्पत्य प्रेम का अभाव है। परन्तु हमें यह न भूल जाना चाहिए कि प्रेम मे सदैव त्याग की महत्ता रहती है। जहाँ केवल उद्दाम वासना है वहाँ प्रेम स्थायी नहीं रहेगा। जब दाम्पत्य-प्रेम में स्थायित्व नहीं है तब समाज की कोई भी मर्यादा स्थिर नहीं रह सकती।

× × ×

आज-कल हिन्दी-साहित्य में और हिन्दू-समाज में कुछ ऐसे विचार फैल रहे हैं जिन्हें कितने ही वयोवृद्ध विद्वान् उच्छृङ्खल कहेंगे। इसमें सन्देह नहीं कि नवयुवकों की यह विचार-धारा पाश्चात्य-शिक्षा का परिणाम है। परन्तु आधुनिक साहित्य को पाश्चात्य शिक्षा का कुपरिणाम कह देने से काम नहीं चलेगा। साहित्य और समाज में स्वतन्त्रता का जो भाव आया है वह युग-धर्म का फल है।

कोई ऐसा देश नहीं है जो युग-धर्म के प्रभाव से अपने को बचा कर चल सके। पहले जब पृथ्वी की एक जाति के साथ दूसरी जाति का, एक देश के साथ दूसरे देश का मेल-जोल इतनी सरलता और गम्भीरता के साथ नहीं हुआ करता था, उस समय भिन्न-भिन्न देशों में भिन्न-भिन्न प्रकार के युग-धर्म प्रकट होते थे। फ़्रांस की राज्य-क्रान्ति के समय योरप के साहित्य में जिस भाव की बाढ़ आई थी, क्या वह हमारे तत्कालीन समाज या साहित्य में अपना कुछ प्रभाव डाल सकी है? किन्तु आज-कल यदि किसी भी सभ्य देश में ऐसी भयङ्कर घटना हो तो यह कदापि सम्भव नहीं है कि उसका प्रभाव हमारे ऊपर न पड़े। जैसे जैसे सभ्यता का विस्तार होता जा रहा है, ठीक वैसे ही समस्त देशों में भावों का आदान-प्रदान हो रहा है। कालिदास के समय में उनकी रचनायें रघुवंश, मेघदूत, कुमारसम्भव, शकुन्तला आदि एक-मात्र भारत की सम्पत्ति थीं, किन्तु इस युग के श्रेष्ठ कवि किसी देश-विदेश कवि के नहीं है, वे समस्त देश और समस्त जाति के है। इस प्रकार समस्त पृथ्वी ही एक विशाल परिवार या गृह के रूप में परिवर्तित हो रही है। यही कारण है कि पाश्चात्य विचार-धारा को हम लोग अपना रहे हैं और इसी लिए पाश्चात्य और प्राच्य साहित्य में भावों की एकता है। वह युगधर्म का ही फल है।

× × ×

समाज एक बड़ी भारी शक्ति है। जहाँ शक्ति है, वहीं गति है। युग पर युग जा रहा है, मनुष्य भी विचार-धारा के परिवर्तन के साथ ही साथ तरह तरह की अवस्थाओं में होकर अपने को प्रकाशित कर रहा है। आज देश में जो नवीन प्रकाश फल रहा है, उसे दीपक बुझने के पूर्व ज्योति-शिखा का भ्रम करने का कोई भी कारण नहीं है। यह सचमुच नव जागृति है।

आज भारतवासी स्वाधीनता के लिए व्यग्र हैं। स्त्री-शिक्षा, विधवा-विवाह, असवर्ण-विवाह के प्रचार का प्रयत्न तथा और भी कई प्रकार के परिवर्तन आज इस देश में सम्भव हो रहे हैं। यह क्या जागृति के अतिरिक्त और भी कुछ कहा जा सकता है? अब हम समझ गये हैं कि वर्तमान युग के साँचे में अपनी जाति या समाज को ढाले बिना हम लोगों की रक्षा कठिन हो जायगी। यही कारण है कि आज हम में प्राचीन संस्कारों को ज्ञान और विचार की कसौटी पर परखने की इच्छा जागृत हुई है।

× × ×

इस युग का आदर्श सब प्रकार की स्वाधीनता प्राप्त करना है—विचार-स्वाधीनता और कर्म-स्वाधीनता। जिस दिन प्राचीन आदर्श ज्ञान और विचार की कसौटी पर हमारे जीवन के लिए अनुपयोगी प्रमाणित हो जायँगे, उस दिन उन्हें तोड़ कर फेंक देने में हमें ज़रा भी कष्ट न होगा। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि प्रकृति के ध्वंसावशेष से नवीन आदर्श की सृष्टि होगी। परम्परागत विचार-[illegible] एवं युक्तिहीन संस्कारों की हमें आवश्यकता नहीं है। ह[illegible] आवश्यकता है केवल स्वतन्त्र, सरल और उदार हृदय की। स्त्री-पुरुष के दाम्पत्य सम्बन्ध की परीक्षा करने के [illegible] विचार हमारे हृदय में जागृत हुए हैं, उनसे डरने [illegible] कोई बात नहीं है।

Printed and Published by K. Mittra at The Indian Press, Ltd, Allahabad.

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष

जन्म

१० अगस्त, १८५४ ई०

निधन

११ अगस्त, १९२८ ई०

श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष का स्वर्गवास !

इंडियन-प्रेस के स्वामी, सरस्वती के सञ्चालक और हिन्दी मे नव-प्रकाशन-युग के प्रवर्तक श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष अब इस संसार मे नही रहे ! अपने नव-युवक पुत्रों, पुत्रवधुओं और बहुसंख्यक आश्रितों को शोक-सागर में निमग्न कर परमधाम को सिधार गये ! इधर कई महीने से आप बीमार थे। नाना प्रकार के औषधोपचारादि किये गये, परन्तु काल की कुटिल गति से सारे प्रयत्न निष्फल हुए। अन्त में इसी श्रावण अधिक मास की कृष्णा एकादशी के निशाकाल में आपका स्वर्गवास हो गया। इस समय आप ७४ वर्ष के थे।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष असाधारण पुरुष थे। इंडियन-प्रेस और उसका प्रकाशन कार्य आपकी असाधारणता का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इंडियन-प्रेस खोल कर आपने जिस प्रकाशन-कला का इन प्रान्तों में प्रवर्तन किया तथा जो बहुसंख्यक लोकोपयोगी महत्त्वपूर्ण ग्रन्थरत्न प्रकाशित किये उन सबसे आपने विपुल सम्पदा तो प्राप्त की ही, साथ ही हिन्दी के क्षेत्र में आपने एक नूतन युग का भी आविर्भाव कर दिया। आपकी रुचि संयत और कलात्मक थी। इसी से आपने हिन्दी के साहित्य में एक ऐसे प्रकरण की उद्भावना की जिससे उसकी रूप-रेखा में आवश्यक और सामयिक परिवर्तन ही नही हुआ है, किन्तु उसका महत्त्व और मूल्य भी बढ़ गया है। आज हिन्दी-साहित्य की जो समुन्नत दशा है उसके प्रादुर्भाव का श्रेय अधिकांश में आपको ही है।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष पुरुषसिंह थे। आपने अपने जीवन-काल में जो सफलता प्राप्त की है वह आप जैसे महान् व्यक्तियों के लिए विशेष महत्त्व नहीं रखती। आपकी आत्मा बहुत ऊँची थी, और इस बात का परिचय उन लोगों को तत्काल मिल गया है जो आपके सम्पर्क में आये हैं। इन पंक्तियों का लेखक आपकी सेवा में आठ वर्ष से रहा है। कार्यवश जब जब उसे आपके पास जाने का अवसर प्राप्त हुआ तब तब वहाँ से कुछ न कुछ सीखकर ही लौटा है। अपने जीवन-काल में उसे कतिपय प्रतिभाशाली तथा योग्यतम लोगों के सम्पर्क मे रहने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका है, तो भी स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष की सी शालीनता और कार्यपटुता अन्यत्र उसके देखने में नहीं आई। आपके सम्पर्क मे जो आगया उसके लिए आप वस्तुतः चिन्तामणि होगये।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष का स्वभाव गम्भीर और सरल था। कर्तव्य-निष्ठा की दृढ़ता आपकी मुखाकृति से बराबर टपकती रहती थी। आपमे मनुष्य के पहचानने की विलक्षण शक्ति थी। हिन्दी, बँगला और अँगरेज़ी के आज के कतिपय प्रतिष्ठा-प्राप्त विद्वान् अपने जीवन के प्रारम्भ-काल में आपका प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता पाकर सफलता प्राप्त करने में सफल हुए हैं। आप गुणग्राही थे और गुणियों का आदर-सत्कार करने मे सदा तत्पर रहते थे। अपनी ऐसी ही महान् भावना की बदौलत आप अपने जीवन-काल मे गौरव के शिखर पर आरूढ़ होने मे समर्थ हुए।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष ने विशाल सम्पत्ति अर्जन करने में ही अपना पुरुषार्थ नहीं प्रकट किया है, किन्तु उसके सद्व्यय मे भी आपने तादृश पुरुषार्थ दिखलाया है। दीन-दुखियों की सहायता करने में आप सदा मुक्तहस्त रहे। यही क्यों, इलाहाबाद की कतिपय शिक्षा-संस्थाओं की आपने पुष्कल धन से बराबर सहायता की है। और अपने स्वर्गीय ज्येष्ठ पुत्र के नाम पर जो अभिनव अस्पताल खोला है उससे दीन-दुखियों का बहुत ही हित हुआ है।

ऐसे नर-रत्न का स्वर्गवास हो जाने से घोष-परिवार की जो हानि हुई है सो तो है ही, परन्तु उससे इस नगर की भी खासी क्षति हुई है। उसका एक गौरवशाली नागरिक उठ गया है। यद्यपि बाबू चिन्तामणि घोष अब हमारे बीच में नहीं हैं, तथापि आपकी आत्मा आपके योग्य पुत्रों में मौजूद है, जिससे आशा है कि आपकी कीर्ति-कौमुदी दिन दिन उज्ज्वल होती जायगी।

सम्पादक
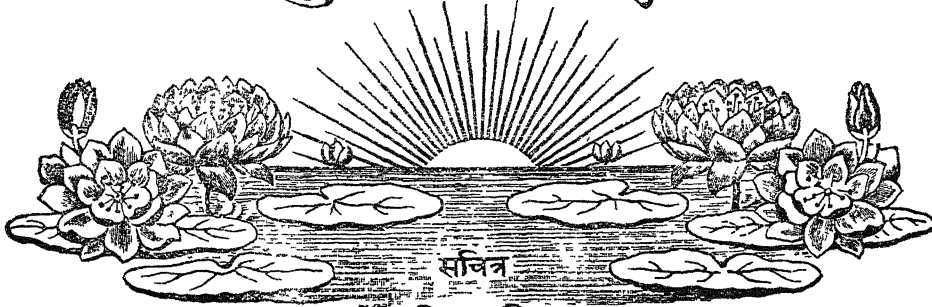
वार्षिक मूल्य ६।।)] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ।।=)
Yearly Subscription, Rs 6-8] देवीदत्त शुक्ल [As 10 per copy.

भाग २९, खण्ड २] अगस्त १९२८—श्रावण १९८५ [सं० २, पूर्ण-संख्या ३४४

शिशु

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

माना सदा जाता रजनीश है खिलौना वहाँ,
बनता तमाशा वहाँ नित्य अंशुमाली है।
डाले हुए पैर का अँगूठा मुख में मनोज्ञ,
आता वहाँ याद शिशु-रूपी वनमाली है॥
लाली अनुराग की सदैव रहती है वहाँ,
रखती उजाला वहाँ चन्द्र-मुखवाली है।
बनते मनुज भी हैं हाथी और घोड़ा वहाँ,
शिशु, सचमुच तेरी दुनिया निराली है॥

(२)

छाई रहती है सदा सुख की घटा यों वहाँ,
होती कभी चित्त से न दूर हरियाली है।
चिन्ता दुख शोक वहाँ आने नहीं पाते कभी,
करती सदैव वहाँ माता रखवाली है॥
मोह मद मत्सर का होता न प्रवेश वहाँ,
रहता न कोई वहाँ कपटी कुचाली है।
राजा है न कोई वहाँ रानी है न कोई वहाँ,
शिशु, सब भांति तेरी दुनिया निराली है॥

सरकारी साहित्यालोचन

[श्रीयुत द्विरेफ]

करका काम है कि वह, समय समय पर, अपनी कारगुज़ारी की रिपोर्ट मालिक को दिया करे। इस देश की गवर्नमेंट यद्यपि अपने काम के लिए रियाया के सामने जवाबदेह नहीं, तथापि वह ठहरी सभ्य। अतएव सभ्य देशों की नक़ल उतारने के लिए वह मजबूर-सी है। और तो, जहां ज़िम्मेदारी नहीं वहा कारगुज़ारी की रिपोर्ट करना और न करना बराबर है। क्योंकि काम ठीक न होने पर भी रियाया गवर्नमेंट का बाल तक नहीं बाँका कर सकती। अस्तु। जैसे और प्रान्तों की गवर्नमेंटें अपनी सालाना रिपोर्टें प्रकाशित करतीं और उनमें शासन-सम्बन्धी हर महकमे के काम की आलोचना आप ही करती हैं वैसे ही इस प्रान्त की गवर्नमेंट भी करती है। उसकी १९२६-२७ साल से सम्बन्ध रखनेवाली शासन-रिपोर्ट में साहित्यालोचना भी है। इस आलोचना की कर्त्री स्वयं गवर्नमेंट है। इसे लिखा तो किसी सरकारी मुलाज़िम ने होगा, पर नाम से सरकार ही के यह प्रकट हुई है। पुस्तकों, प्रेसों और सामयिक पत्रों इत्यादि के विषय में इसमें जो कुछ लिखा गया है या जो नुक्ताचीनी की गई है उसकी "बानगी" नीचे दिखाई जाती है।

पुस्तकें

१९२६ ईसवी में इस प्रान्त में केवल २,६५३ पुस्तकें निकलीं या दर्ज रजिस्टर हुई थीं। परन्तु १९२७ में उनकी संख्या बढ़कर २,८४० हो गई। अर्थात् कोई सवा दो सौ पुस्तकों की वृद्धि हुई। साल में इतनी बाढ़ को आप कम न समझिए। पर इस सुख में दुःख की बात इतनी ही है कि सरकार की सरस समझ में महत्त्व की कोई पुस्तक नहीं प्रकाशित हुई। जितनी और जिन भाषाओं की पुस्तकें निकलीं उन्हें अब आप १०० समझ लीजिए और देखिए कि प्रत्येक भाषा की पुस्तकें फ़ी सदी कितनी प्रकाशित हुईं—

(१) हिन्दी की ४९·२
(२) उर्दू की १५·३
(३) अँगरेज़ी की ६६
(४) अन्य भाषाओं की १८·९

सो आप देखिए, जिस उर्दू या हिन्दुस्तानी महारानी का राज्य, न्यायनिपुण सरकार की अदालतों में, है और जिसकी कृपा से बेचारे देहातियों को समन और परवाने पढ़ाने के लिए कोसों की दौड़ लगानी पड़ती है, पुस्तकों की संख्या के लिहाज़ से, उसका प्रचार इस प्रान्त में हिन्दी का केवल एक चतुर्थांश है। मगर इससे क्या? रियाया उसे लिख-पढ़ सके या न सके, सरकार को तो वही पसन्द है। उस पर उसका निरतिशय प्रेम है और प्रेम गुण-दोष का दर्शक थोड़े ही होता है! वह तो जहाँ जड़ीभूत हो गया वहीं हो गया। भारवि ने इसी से कह रक्खा है—

वसन्ति हि प्रेम्णि गुणा न वस्तुनि।

अच्छा, और भाषाओं की पुस्तकें कितनी कितनी निकलीं, यह भी देख लीजिए। उसका हिसाब इस प्रकार है—

(१) संस्कृत में ९९
(२) नेपाली में २५
(३) बँगला में १९
(४) फ़ारसी में १८
(५) अरबी में ८
(६) गुजराती में
(७) गढ़वाली में
(८) मराठी में
(९) मारवाड़ी में
(१०) मैथिली में } १९

ऐसी भी ३४६ पुस्तकें प्रकाशित हुईं जिनमें कई भाषाओं का प्रयोग हुआ था। इस ऊपर की तालिका में अरबी-फ़ारसी की पुस्तकों की संख्या २६ है। पर संस्कृत की पुस्तकों की ९९। बात यह है कि यहाँ भी उर्दू की प्रपितामही भाषायें हिन्दी की प्रपितामही, संस्कृत, के मुक़ाबले में प्रायः एक चतुर्थांश हिस्से से अधिक की हक़दार नहीं हो सकीं। और होतीं भी कैसे? हमारे मुसल्मान भाइयों और दो चार उदारहृदय हिन्दुओं को छोड़कर और कोई उनका पुरसां भी हो।

पुस्तकों मे गद्य का दौरदौरा तो रहा ही; प्रणेता महाशयों ने पद्य में भी अपने अपने क़लम की ख़ूब ज़ोर-आज़माई की। राजनैतिक और धार्म्मिक विषयों ही पर नहीं, स्वराज्यसेवी बोर्डों और कौंसिल के चुनावों तक पर कवितायें—हां हां कवितायें, पद्य या तुकबन्दी नहीं—लिख लिख कर कितने ही सरस्वती-सुत कविता-कामिनी-कान्त बन बैठे। हमारी राय तो यह है कि गद्य लिखने की क़ानूनन मुमानियत हो जानी चाहिए; क्योंकि गद्य की अपेक्षा पद्य लिखना अब अधिक सहल हो गया है। देखिए न, केंचुवा किंवा रबड़ छन्द भी अब जायज़ हैं; बे-तुकापन भी जायज़ है; निरर्थकता भी जायज़ है; और सबसे अधिक जायज़ है प्रलाप-प्राबल्य। फिर क्यों हम लोग गद्य लिखकर पाठकों का वक्त ज़ाया करें? सभी लेखक पद्य ही क्यों न लिखें? पद्य की क़दर भी ख़ूब हो रही है। प्रमाण लीजिए। एक पद्यप्राण कविजी, ऐन शाम को, यमुनाजी की छाती पर जलविहार करने गये। वहीं आपके वीणा-विनिन्दित कण्ठ-रव के रूप में सरस्वती देवी इस प्रकार आविर्भूत हुईं—

श्रीयमुना के वक्षस्थल (?) पर लेकर नाव,
संध्या समय चले हम कुछ जन हो तैयार।
गगन-लोक में नाच रहा था शुभ मार्तण्ड,
दिखा रहा था दिवस सफलता के उद्गार॥

वक्त शाम का ज़रूर था। मगर सूर्य-नारायण न अस्तप्राय थे, न अस्तङ्गत थे। थे वे कहां और कैसे? वे आकाश ही में विराज रहे थे—गगन-लोक ही में नाच रहे थे। डूबने का समय होता तो उन्हें नाचने की कैसे सूझती। विनाश या अन्तकाल में भी क्या किसी को नाचने की सूझती है? तबला, सारङ्गी और मञ्जीर-युग्म भी उस समय बज रहे थे या नहीं, यह लिखना कविजी भूल ही गये। हां सूर्य देवता नाच ही न रहे थे, एक बात और भी कर रहे थे। वे सफलता के उद्गार दिखा रहे थे! किसकी सफलता के? दिवस-सफलता के! दिवस बेचारा तो मर रहा था; पर सूर्य उसकी सफलता के गीत गा रहा था! और वह अपने उद्गारों को प्रकट भी न करता था, उन्हें दिखाता था। उद्गारों को खोल कर दिखा देने की यह नई प्रक्रिया श्रीमान् कविजी की बदौलत अभी हालही में अस्तित्व में आई है। यह परम रम्य, अद्भुत रसवती और अनोखी कविता सुनकर एक काव्यमर्म्मज्ञ समालोचक लोटपोट हो गये। आप बोले—क़लम तोड़ दी; दावात फोड़ दी; साहित्य-शास्त्र की पोथी मोड़ दी; रसिकता की छाती गोड़ दी! इसी से हम लेखकों से प्रार्थना करते हैं कि गद्य का पीछा एक-दम ही छोड़ कर पद्य ही का पल्ला पकड़ा कीजिए और मार्तण्ड-महाराज को सदा "शुभ"-ग्रह ही माना कीजिए। ज्योतिषियों ने उसे झूठ ही पाप-ग्रह लिख मारा है।

जितनी पुस्तकें निकलीं प्रायः महत्त्वहीन—अधिकांश भरती की—निकलीं। शायद ही कोई पुस्तक ऐसी निकली हो जो भविष्यत् में कुछ दिन जीती रहे। खोज और नवीनता से पूर्ण एक भी पुस्तक नहीं। फिर कोई कैसे कह सकता है कि रिपोर्ट के साल इस प्रान्त के साहित्य की कुछ भी वृद्धि हुई। सरकारी रिपोर्ट के लेखक की तो यही राय है, औरों की चाहे जो कुछ हो। इंडियन प्रेस, ज्ञानमण्डल प्रेस, गङ्गापुस्तकमाला आदि के स्वामी नामी प्रकाशक हैं और हर साल अनेक पुस्तकें प्रकाशित करते हैं। परन्तु उनकी भी प्रकाशित पुस्तकों में से एक भी पुस्तक रिपोर्ट के लेखक को दीर्घजीवी नहीं मालूम हुई! हमारी प्रार्थना तो यह है कि लेखक ने ज़रूर भूल की है या उसे भ्रम हो गया है। गवर्नमेंट प्रेस से ये जो क़ानूनों के बढ़िया से भी बढ़िया अनुवाद, उर्दू और हिन्दी में, निकलते हैं वे तो दीर्घजीवी क्या अमर समझे जाने योग्य हैं। कम से कम उन्हें तो महत्त्वपूर्ण समझना ही चाहिए था। ख़ैर उन्हें न सही तो "मवेशी की मुहलिक बीमारियां" आदि के ढँग की जो पुस्तकें सरकारी प्रेस से निकलीं और निकला करती हैं उन्हें तो ज़रूर ही दाद देना चाहिए था।

धर्म्म-सम्बन्धिनी पुस्तकें सदावत् सबसे अधिक प्रकाशित हुईं। हिन्दुओं ने अपने धर्म्म की उच्चता के गीत गाये, मुसलमानों ने अपने की। जब इन रागों को अलापते अलापते दोनों दल थक गये तब दोनों ही ने ईसाई-धर्म्म को अपने आक्रमण का निशाना बनाया। मतलब यह कि आक्रमण, आक्षेप और प्रत्याक्षेप के सदृश सुन्दर विषय को छोड़कर और विषयों की तरफ़ इन लोगों का ध्यान कम गया। संगठन, शुद्धि, तबलीग़ की चर्चा ने कमाल

कर दिया। शिया-सुन्नियों में भी ख़ूब चली। अहमदिया मुसलमानों और इब्न साद की भी ख़ूब ख़बर ली गई।

राजनैतिक विषयों पर लिखनेवालों ने आंख उठाकर आगे नहीं देखा; सिंहावलोकनपूर्वक पीछे ही देखते और भारत के भूतपूर्व गौरव के गीत गाते रहे। उसकी वर्तमान दुर्गति पर उन्होंने बे तरह आंसू बहाये। चर्ख़ा-प्रचार, शिक्षा-प्रचार, उद्योग-वृद्धि, एकता-वृद्धि ही को उन्होंने इस दुर्गति के दूरीकरण का इलाज बताया। किसी किसी ने बल-प्रयोग की भी सिफ़ारिश कर डाली। एक हिन्दू लेखक ने तो भारत की निर्धनता का कारण नन्दकुमार का अधःपात बताने की कृपा कर दी। इस लेखक के एक मुसलमान साथी भी निकल आये। आपने एक बिलकुल ही नई खोज करके यह साबित करने की कोशिश की कि अरस्तू, यूक्लिड और ईसा—ये सभी मुसलमान थे।

सरकारी समालोचना में ऐसी ऐसी और भी कितनी ही अनोखी अनोखी बातें हैं। पर उन सबके उल्लेख के लिए जगह कहां?

अख़बार

अच्छा, अब, आप सामयिक पत्रों के सम्बन्ध की सरकारी समालोचना की चाशनी चखिए।

पत्रों और पत्रिकाओं में वृद्धि हुई ज़रूर; परन्तु केवल १२ की। पहले उनकी संख्या ५८० थी, रिपोर्ट के साल ५९२ हो गई। बेचारे दैनिक पत्रों का साल अच्छा नहीं गया। उनमें से तीन ने—"राम-नाम सत्य है"—का नज़ारा दिखा दिया। मासिक पत्रों और पत्रिकाओं की संख्या सदाही औरों से अधिक रही है। इस साल उसने और भी तरक्क़ी की—वह २३४ से बढ़ कर २५१ हो गई। साप्ताहिक पत्र १६० से १७० और हफ़्ते में दो दफ़े निकलनेवाले ११ से १२ हो गये। किस शहर से कितने पत्र आदि निकलते रहे, इसका हिसाब नीचे मुलाहज़ा फ़रमाइए—

लखनऊ ८४	मेरठ ३९
इलाहाबाद ७६	अलीगढ़ २१
बनारस ५०	मुरादाबाद १७
कानपुर ४७	बिजनौर १२
आगरा ४५	

सो जिस लखनऊ पर प्रान्त की सरकार फ़िदा है और जिसकी तरक़्क़ी देख कर इलाहाबादवालों की आंखों में दर्द होता है उसने अख़बार निकालने में भी इलाहाबाद को मात कर दिया।

हिन्दी और अँगरेज़ी के पत्रों की संख्या घट गई। पहले २४६ से २३७ ही रह गये और पिछले ९९ से ९३ ही। उर्दू के पत्रों की संख्या बढ़ी, वह १९६ से २१९ हो गई। यह क्या बात है? कहीं प्रयाग के सम्मेलन-कार्यालय के किसी मन्त्री की ग़फ़लत से तो ऐसा नहीं हुआ! जांच की ज़रूरत है। भाई, हिन्दी के हितचिन्तको, सँभलो।

रिपोर्ट के साल दुभाषिये पत्रों की संख्या २४ और त्रिभाषियों की १० रही।

दैनिक पत्रों में ८ इतने भाग्यशाली निकले कि उनकी कापियां दो हज़ार और उससे भी अधिक संख्या में निकलती या बिकती रहीं। नहीं मालूम, क्या समझ कर बात सन्दिग्ध रक्खी गई है; यह नहीं बताया गया कि इन आठ में से कितने हिन्दी के, कितने उर्दू के और कितने अँगरेज़ी के थे। साप्ताहिक पत्रों में कानपुर के "प्रताप" का प्रचार अधिक रहा। पर कितना, यह बताने की भी कृपा नहीं की गई। हां, चांद और माधुरी की एक विशेषता का वर्णन करने की कृपा ज़रूर की गई है। वह यह कि ये दोनों सामयिक पुस्तकें सबसे ज़ियादह पढ़ी गईं (Most wadely reod)! ज़रा इस फ़िक़रेबाज़ी पर अच्छी तरह ग़ौर कर लीजिए। सरकारी समालोचक का यह कहना नहीं कि इनकी इतनी कापियां निकलतीं, छपतीं या बेची जाती हैं। कहना यह है कि पढ़ी जाती हैं! जैसे हर पढ़नेवाले के पास समालोचकजी उपस्थित रहते हों और इसका हिसाब रखते जाते हों कि देवदत्त या सरकार-बहादुर के नाम की कापी इतने आदमियों ने पढ़ी। ऐसी उड़ती हुई वाक्यावली के प्रयोक्ता की बात पर जिसका जी चाहे विश्वास करे, जिसका जी न चाहे न करे।

उर्दू के पत्रों में "मदीना" का प्रचार सबसे अधिक रहा।

रिपोर्ट के साल १९ पत्र बन्द हो गये। उनके सिवा कुछ और भी चन्दरोज़ चमक कर न मालूम कहां चल दिये। चुनाव के कारण ही उनका जन्म हुआ था। उसका ख़ातमा होते ही उनका भी ख़ातमा होगया।

पायनियर पुराणप्रेमी (Conservative) पत्र है। सूबे में और सूबे के बाहर भी वह पढ़ा गया। साधारण तौर पर उसने सरकार की तरफ़दारी की; पर अपने ही सूबे के सम्बन्ध में उसने कम क़लम उठाई; सारे देश की व्यापक बातों ही की ओर उसने अधिक ध्यान दिया। "लीडर" के सम्पादक मदरासी हैं और इस सूबे के एक नामी राजनीतिज्ञ है। हिन्दुस्तानी अख़बारों में इस पत्र का सम्पादन सबसे अच्छा होता है। वह सरकारी काम-काज की ख़ूब आलोचना करता है—नुक़ताचीनी करने में वह सिद्धहस्त है। उसकी राय है कि स्वराज्य-विषयक और भी अधिक अधिकार हिन्दुस्तानियों को मिलने चाहिए, और बड़े बड़े ओहदों पर योरपवालों का नियत किया जाना बन्द हो जाना चाहिए। इंडियन डेली टेलिग्राफ़ की कोई पक्की नीति नहीं। जब जो उसका मालिक या सम्पादक हुआ तब तैसी ही नीति उसने अख़्तियार की। यह ढंग ख़ूब रहा। सम्पादक या स्वामी राजभक्त हुआ तो राजभक्ति की गाथा गाई गई; बिगड़ैल हुआ तो बेपर की बातें उड़ाई गईं। अभ्युदय कांग्रेस के स्वतन्त्र दल का पत्र है। मसजिदों के सामने तारो पीटने और असहयोग के गुण गाने के सम्बन्ध में लेख पर लेख लिखने ही में उसने देश या प्रान्त का भला समझा। प्रताप ने तो संयत भाषा में स्वराज्य-प्राप्ति के दावे की ताईद की; पर सैनिक ने सार्वजनिक कामों के सम्बन्ध में कड़ी टीकायें कीं और संयमशीलता को पास नहीं फटकने दिया।

बहुत से पत्रों ने आलोचना की उचित सीमा का उल्लंघन तक कर दिया। तर्क को बालाय ताक़ रखकर उन्होंने गवर्नमेंट और गवर्नमेंट के अफ़सरों पर खुल्लम-खुल्ला गालियां बरसाईं। गवर्नमेंट चाहती तो इन सब पर फ़ौजदारी मुक़द्दमा चला देती; पर उसने बहुत बड़ी सहनशीलता दिखाई और उन्हीं को फ़ौजदारी सिपुर्द किया जिन्होंने सबसे अधिक सख़्तकलामी की थी और क़ानून की सीमा से बहुत अधिक दूर निकल गये थे। "वर्तमान" के सम्पादक ने माफ़ी माग कर अपनी जान बचाई। एक सरकारी अफ़सर की हतकइज़्ज़ती के इल-ज़ाम में मेरठ के "आवाज़" नामक पत्र के सम्पादक को सज़ा हो गई। तीन पत्रों के सम्पादक, चेतावनी देकर ही छोड़ दिये गये।

❦ ❦ ❦

देश की दो बातें

[श्रीयुत ज्ञ]

१—संयुक्त-प्रान्त में शिक्षा

इस प्रान्त की गवर्नमेंट ने, अपनी १९२६-२७ ईसवी की शासन-रिपोर्ट में, शिक्षा-प्रचार-विषयक जो कैफ़ियत दी है उसमें और सालों की अपेक्षा कुछ अधिक माधुर्य्य है। अथवा यह कहना चाहिए कि गवर्नमेंट उसे अधिक सन्तोषप्रद समझती है। सरकारी समालोचना का दिग्दर्शन नीचे देखिए—

१९२६ ईसवी में कुल शिक्षालयों की संख्या २४,२५२ थी। १९२७ में वह २४,८२० हो गई। अर्थात् ५०० से भी अधिक स्कूलों या मदरसों की वृद्धि हुई। छात्र भी ख़ूब बढ़े। वे १२ लाख ९३ हज़ार से १३ लाख ४६ हज़ार हो गये। सो ५० हज़ार से भी अधिक छात्रों की वृद्धि हो गई। क्यों, साहब, यह वृद्धि सन्तोषजनक है या नहीं? सुनने में ५० हज़ार की वृद्धि कम नहीं, बहुत अधिक मालूम होती है। इसमें सन्देह करने के लिए गुंजायश नहीं। परन्तु सरकार ने, लगे हाथ, एक हिसाब और भी ख़ुद ही पेश किया है। उसका कहना है कि १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार, ऊपर दी गई छात्र-संख्या फ़ी सदी २·८९ से केवल २·९७ हो गई।

अर्थात् इतनी वृद्धि होने पर भी सौ मनुष्यों में से कुछ कम तीन ही मनुष्य, १९२७ ईसवी में, शिक्षा पाते थे। सरकार ने यह नहीं बताया कि इस प्रान्त में, पिछले साल, स्कूल जाने योग्य उम्र के कितने बच्चे थे। यदि वह बता देती तो यह मालूम हो जाता कि उनमें से फ़ी सदी कितने बच्चे मदरसे जाते और कितने गिल्ली-डण्डा खेलते, खेत रखाते या मवेशी चराते हैं। अगर चार करोड़ की आबादी में ६ से लेकर १२ वर्ष तक की उम्र के ६० लाख भी बच्चे मान लिये जायँ तो भी यह साबित होता है कि फ़ी ५ बच्चों में से सिर्फ़ १ स्कूल जाता है, और शेष ४ घर बैठे रहते हैं। ऊपर जो हिसाब दिया गया है उसमें लड़के और लड़कियाँ दोनों शामिल हैं। लड़कियों का हिसाब लगाकर सरकार ने बताया है कि आबादी के लिहाज़ से फ़ी सौ स्त्रियों में कुछ अधिक आधी ही लड़की (अर्थात् ०·५७) शिक्षा पाती थीं! अतएव यह कहना चाहिए कि इस प्रान्त में स्त्री-शिक्षा की बहुत ही कमी है; वह न होने ही के बराबर है और प्रान्तों के मुक़ाबले में इस प्रान्त में लड़कों और लड़कियों दोनों की शिक्षा की बड़ी ही अधोगति है। यों तो सारे देश ही में शिक्षा-प्रचार का यथेष्ट प्रबन्ध नहीं, तिस पर भी इस प्रान्त में उसकी और भी बुरी दशा है। शिक्षा ही सब सुखों और उन्नतियों की जड़ है। उसी की जब यह दशा है तब अन्य विषयों में उन्नति हो कैसे सकती है और देश की सुख-समृद्धि बढ़ कैसे सकती है? डिस्ट्रिक्ट बोर्डों और म्यूनीसिपैलिटियों को अधिकार दिया गया है कि जहाँ वे चाहें लड़कों को जबरन स्कूल भेज सकते हैं। परन्तु इन अधिकारों का उपयोग अब तक बहुत कम बोर्डों ने किया है। सरकार यदि किसी कारण से शिक्षा-प्रचार में दिलचस्पी न ले या उसके लिए अधिक ख़र्च न करे तो उसकी ज़िम्मेदार वह है। बोर्डों को तो चाहिए कि वे इस विषय को सबसे अधिक महत्त्व का समझें और ख़ूब ख़र्च करके शिक्षा-वृद्धि करें। परन्तु देश और प्रान्त का दुर्भाग्य है जो वे भी इस सम्बन्ध में शिथिलता प्रदर्शित करते हैं।

यहाँ पर यह प्रश्न हो सकता है कि सरकार जब करोड़ों नहीं अरबों रुपया इस देश की रिआया से वसूल करती है तब और मदों में ख़र्च कम करके शिक्षा-प्रचार की मद में अधिक क्यों नहीं करती, क्योंकि यह तो सबसे अधिक महत्त्व का काम है। उत्तर यह हो सकता है कि प्रश्नकर्ता की दृष्टि में यह काम औरों से अधिक महत्त्व का चाहे भले ही हो, पर सरकार उसे उसी दृष्टि से देखने को मजबूर थोड़े ही है। वह फ़ौज-फाटा न रक्खे और रूस इस देश पर आक्रमण कर बैठे तो? और ये बड़ी बड़ी तनख़्वाह पानेवाले हज़ारों विदेशी अफ़सर न रक्खे और देश का शासन चौपट हो जाय तो? है हिन्दुस्तानियों में इतनी तमीज़ जो उसे सँभाल सकें? एक बात और भी तो है। जितनी शिक्षा भारतवासियों को मिल चुकी है या मिल रही है वही क्या कम ग़ज़ब ढा रही है जो उसकी तरक़्क़ी के लिए हम लोग आकाश-पाताल एक कर रहे हैं? जगह जगह हड़ताल हो रहे हैं या नहीं? असहयोग कर करके लोग सरकार की नाकों दम कर रहे हैं या नहीं? आज यहाँ कल वहाँ, ज़रा ज़रा सी बातों पर बलवे बरपा किये जा रहे हैं या नहीं? साइमन-सप्तक के सामने "लौट जावो, लौट जावो" के नारे लगाये गये हैं या नहीं? यह किसकी करामात है? शिक्षा ही की न? फिर किस बिरते पर इस देश के शिक्षा-प्रेमी उसकी बाढ़ के लिए इतना हो-हल्ला मचावें? शिक्षा आप उतनी ही प्राप्त कीजिए जितनी आसानी से हज़म हो जाय। जिससे शान्ति भङ्ग हो वह शिक्षा किस काम की। याद रहे यह पिछला कोटि-क्रम इस नोट के लेखक का है, सरकार का नहीं। सरकार बेचारी तो इतनी भली और इतनी बुर्दबार है कि भारतवासियों के ये सारे ऊधम और सारे नाज़ोनख़रे बरदाश्त करके भी शिक्षादान में कुछ न कुछ वृद्धि हर साल करती ही चली जा रही है और साथ ही ख़र्च कम न करके उसमें कुछ न कुछ इज़ाफ़ा भी करती जा रही है। देखिए—

पिछले साल शिक्षा-दान में २४½ लाख रुपया अधिक ख़र्च किया गया। इस मद में कुल ख़र्च ३ करोड़ ३८ लाख रुपया हुआ। इस इतने रुपये में से कुछ ही कम ६० फ़ी सदी सरकार ने अपनी निज की तिजोरी खोल कर गिन दिया। केवल ४० फ़ी सदी और ज़रियों से प्राप्त हुआ। और आप चाहते क्या हैं?

और प्रान्तों में मुश्किल से एक या दो विश्वविद्यालय हैं। इस प्रान्त में हैं पाँच—आगरा, अलीगढ़, लखनऊ, इलाहाबाद और बनारस। फिर भी शिकायत! इनकी छात्र-संख्या का हिसाब भी देख लीजिए—

(१) इलाहाबाद में १,३५३
(२) लखनऊ में १,४१६
(३) बनारस में १,६३६
(४) अलीगढ़ में १,१७४

आगरे का विश्वविद्यालय जुलाई १६२७ से अस्तित्व में आया है। उसमें वे सब कालेज सम्मिलित कर दिये गये हैं जो उस तारीख़ के पहले इलाहाबाद-विश्वविद्यालय में सम्मिलित थे। इस विश्वविद्यालय में छात्रों को शिक्षा-दान का अलग प्रबन्ध नहीं। इसी से उसके छात्रों की संख्या नहीं दी गई। उसके अधीन वे सभी छात्र समझने चाहिए जो उसमें सम्मिलित कालेजों में शिक्षा पाते हैं।

इलाहाबाद-विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में ६२ हज़ार, लखनऊ में ३२ हज़ार और बनारस में २३ हज़ार पुस्तकें हैं

१६२२ ईसवी के पहले एफ० ए० की कक्षाओं की पढ़ाई विश्वविद्यालयों के अधीन थी। मगर उस साल एक और संस्था को जन्म दिया गया। उसका नाम पड़ा, बोर्ड आव् इंटरमीडियट और हाई स्कूल एग्ज़ामिनेशन। अब कुछ स्कूलों को कालेज की पदवी दे दी गई है। उनमें मैट्रीकुलेशन तक तो शिक्षा दी ही जाती है, इंटरमीडियट अर्थात् मध्यम कक्षाओं की भी शिक्षा दी जाती है। यही कक्षायें पहले एफ० ए० कक्षायें कहाती थीं। ऐसे स्कूलों, नहीं कालेजों, की संख्या इस प्रान्त में २७ है और उनमें ४,२३५ छात्र, रिपोर्ट के साल, शिक्षा पाते थे। माध्यमिक शिक्षा देनेवाले स्कूलों की संख्या, सब मिलाकर, ८८६ थी अर्थात् उसमें ३७ की वृद्धि हो गई थी। पहले उनमें १,२१,३२६ छात्र थे। १६२७ में उनकी संख्या बढ़कर १,३२,३६६ हो गई थी। अर्थात् एक ही साल में कोई ११ हज़ार छात्र बढ़ गये थे। ख़ूब बाढ़ आई, क्यों न? इस बाढ़ को देखकर घबरानेवाले घबरायँ तो क्या आश्चर्य! सभी अँगरेज़ी-दां होकर बाबू बनने की फ़िक्र करेंगे तो देहात उजड़ेंगे या नहीं और खेत-पात बे-जोते बोये रह जायँगे या नहीं? मगर इस बात को कोई नहीं सोचता। सरकार ही सोचे और इस बाढ़ को किसी हिकमत अमली से रोके तो रोक सकती है। देखिए, इस बाढ़ के कारण ख़र्च में २ लाख ११ हज़ार की वृद्धि होकर वह ३७½ लाख से भी अधिक हो गया है। अब तो कुछ समय से एक नई बात भी हो गई है। देशी भाषाओं के स्कूलों में भी अँगरेज़ी भाषा सिखाने का प्रबन्ध हो गया है और अँगरेज़ी के स्कूलों के लिए यह क़ायदा कर दिया गया है कि वहां के छात्र चाहें तो प्रश्न-पत्रों के उत्तर अपनी ही भाषा में दें। यही नहीं, उन्हें सब विषय (एक आध छोड़कर) उन्हीं की भाषा में समझा देने का भी हुक्म हो गया है। शायद यह इन्हीं सब सहूलियतों का नतीजा है जो माध्यमिक स्कूलों में छात्रों की इतनी बाढ़ आ गई है।

हाई और मिडिल स्कूलों की संख्या भी २२८ से २३६ और उनमें शिक्षा पानेवाले छात्रों की ६२,४०६ से ६७,६७८ हो गई। सो यहाँ भी ५ हज़ार से भी अधिक की बाढ़ आई। ये लोग पढ़ जायँ तो अच्छा ही है। मगर सभी पढ़ लिखकर मुहर्रिरी, क्लर्की, मास्टरी और अन्य प्रकार की बाबूगेरी ढूँढ़ते फिरेंगे तो क्या होगा? होगा यही कि न घर के रहेंगे, न घाट के। क्योंकि इन लोगों से दूकानदारी, कारीगरी और मिहनत-मज़दूरी के काम तो होंगे ही नहीं। हां, इनमें से बहुतेरे कवि, महाकवि, सम्पादक और लेखक बन जायँ तो बन सकते हैं। क्योंकि इन पेशेवालों के लिए किसी तरह की रोक टोक नहीं।

एक बात अच्छी हो रही है। कहीं कहीं किसी किसी हाई स्कूल में गाने-बजाने और तन्दुरुस्ती तथा सफ़ाई की भी शिक्षा दी जाने लगी है।

देशी भाषाओं के मिडिल स्कूलों की संख्या भी बढ़ी। २८ और नये खुले। अब उनकी संख्या ६२६ और उनमें

पढ़नेवालों की ६० हज़ार से भी अधिक हो गई है। ख़र्च भी कोई १ लाख बढ़ा है। बढ़ना ही चाहिए। अब वह १४½ के लगभग हो गया है। मगर अफ़सोस, इन स्कूलों के बोर्डिङ्ग-हौसों में काफ़ी जगह नहीं कि वहां रहने के इच्छुक सभी छात्रों को स्थान मिल सके। इन स्कूलों में कहीं कहीं खेती करने, टोकरी-रस्सी आदि बनाने, तथा लुहार-बढ़ई का काम सीखने की भी शिक्षा देने का प्रबन्ध कर दिया गया है। बड़ी बात हुई है। इतना रोने-पीटने का कुछ तो असर हुक्काम पर हुआ।

इस प्रान्त में २६ म्युनीसिपेलिटियां ऐसी हैं जिन्होंने अपनी हद के भीतर, कहीं कहीं, ६ से १२ वर्ष तक के लड़कों को ज़बरन स्कूल जाने के लिए मजबूर किया है। कुछ डिस्ट्रिक्ट बोर्डों ने भी ऐसा ही किया है। एक क़ानून ही ऐसा बन गया है जिसकी रू से इन स्वराज्य-सेवी संस्थाओं को अधिकार है कि जहा चाहें वहां के लड़कों को मदरसे जाने के लिए वे मजबूर कर सकें।

प्रारम्भिक मदरसों की संख्या पहले १८,२२० थी। अब वह १८,८१७ हो गई है। छात्र भी बढ़कर ९,९८,९९२ से १०,३८,४०६ हो गये हैं। कोई ४० हज़ार की वृद्धि! और ख़र्च? ७५ लाख २० हज़ार से ७८ लाख १३ हज़ार! फिर भी शिक्षाधिकारियों पर कंजूसी का इलज़ाम! याद रहे, यह जो ७८ लाख रुपया ख़र्च हुआ है उसमें से कोई ५६ लाख रुपया सरकार के ख़ज़ाने से आया था।

अब स्त्री-शिक्षा का हाल सुनिए। लड़कियों के स्कूलों की संख्या १,९३७ से १,९८४ हो गई। बहुत तो नहीं, पर हाँ कुछ तो वृद्धि अवश्य ही हुई। कोई ५० स्कूल नये खुल गये। छात्रों की संख्या भी ७६,३५५ से ८१,२८५ हो गई। मगर ख़र्च घटकर १४ लाख ४७ हज़ार से १४ लाख ४२ ही हज़ार रह गया। क्यों ऐसा हुआ, इसकी कैफ़ियत सरकारी रिपोर्ट के लेखक ने देने की कृपा नहीं की। स्कूल बढ़े, छात्र बढ़े; पर ख़र्च घटा! यह तो एक गोरखधन्धा ही सा है। इन स्कूलों में किस जाति की कितनी लड़कियां पढ़ती थीं, इसका हिसाब लीजिए—

किरानियों की ४,४३७
हिन्दुओं की ५७,११०
मुसलमानों की १२,६४३

हिन्दू लड़कियों की जो संख्या ऊपर दी गई है उसमें रज़ील क़ौमों की २,२२१ लड़कियां शामिल समझना चाहिए। सो अब ये लोग भी अपने लड़कों ही को नहीं, लड़कियों को भी मदरसे भेजने लगे हैं। सरकार ने मुसलमानों के लिए एक ख़ुशख़बरी सुनाई है। वह यह कि पिछले ५ वर्षों में उनकी लड़कियों की संख्या ५३ फ़ी सदी अधिक हो गई है। ख़ूब हुआ। रज़ील क़ौमों की लड़कियां तो अब पहले से पँचगुनी हो गई हैं। अर्थात् हमारे मुसलमान भाई, इस विषय में, हमारी रज़ील क़ौमों से भी बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं। क्या करें, पर्दा जो मारे डालता है।

रज़ील क़ौमों के लड़कों की संख्या उनके निज के तथा सर्व-साधारण मदरसों में कुछ कम ९२ हज़ार थी।

२—डाक के महकमे की कारपरदाज़ी

प्रजा के सुभीते की दृष्टि से डाक का महकमा बड़े महत्त्व का है। शासकों ने इस देश में और जितने महकमे क़ायम कर रक्खे हैं उनसे सभी को काम नहीं पड़ता। परन्तु डाक का महकमा ऐसा है जिससे अमीर-ग़रीब सभी को, सदा न सही, कभी कभी तो, अवश्य ही काम पड़ता है। अतएव इस महकमे से सम्बन्ध रखनेवाले ख़र्च का जितना ही कम बोझ प्रजा पर पड़े उतना ही अच्छा। अन्य सभी देश प्रायः इस बात का ख़याल रखते हैं और चिट्ठियों, पोस्टकार्डों, पारसलों, पैकटों और अख़बारों आदि पर जहां तक सम्भव होता है कम महसूल लगाते हैं। योरप के गत युद्ध के कारण वहां ख़र्च बढ़ गये थे। अतएव कुछ देशों ने इस तरह के भी महसूल में कुछ

इज़ाफ़ा कर दिया था। परन्तु युद्ध समाप्त होने और स्थिति बदलने पर वह इज़ाफ़ा उठा दिया गया। बात यह है कि वहाँ के अधिकांश देशों का शासन वहीं के निवासी करते हैं। अतएव वे न्याय-अन्याय और हानि-लाभ का विचार करके प्रजा पर कर लगाते हैं। अगर वे ऐसा न करें—अगर वे अपने अधिकार का दुरुपयोग करें—तो प्रजा उनसे वह अधिकार ही छीन ले। क्योंकि अधिकारियों अर्थात् शासकों को प्राप्त हुआ अधिकार प्रजा ही से उन्हें मिलता है।

कई साल हुए, खर्च की अधिकता हो जाने के कारण, उसकी पूर्ति के लिए भारत में भी डाक से भेजी जानेवाली कुछ चीज़ों का महसूल बढ़ा दिया गया था। दो पैसे के बदले चार पैसे चिट्ठी का और एक पैसे के बदले दो पैसे पोस्टकार्ड का महसूल कर दिया गया था। पारसल वग़ैरह के महसूल के निर्ख़ में भी इज़ाफ़ा किया गया था। वह अभी तक ज्यों का त्यों बना हुआ है। और अनेक देशों ने तो बढ़ी हुई दर को घटा कर प्रायः वही कर दिया है जो युद्ध के पहले थी। परन्तु भारत के शासकों ने वैसा करना मुनासिब नहीं समझा। प्रजा के प्रतिनिधियों में से कुछ ने बहुत ज़ोर लगाया भी कि और नहीं तो पोस्टकार्डों का महसूल तो दो से एक पैसा कर दिया जाय। पर उनकी एक न चली। शासकों ने जवाब दिया—खर्च बढ़ रहा है; नये नये डाकखाने खोलना है; आमदनी कम हो जायगी तो काम कैसे चलेगा। सो, प्रतिनिधियों की सूचना व्यर्थ गई। अन्य देशों की शासन-प्रणाली से भारत की शासन-प्रणाली में जो अन्तर है वह इस एक ही बात से अच्छी तरह मालूम हो जाता है।

शासन की इस व्यवस्था या दुरवस्था में भी डाक के महकमे से प्रजा को सबसे अधिक सुभीता है। इस महकमे में एक ख़ूबी और भी है। इसके अधिकांश अधिकारी भारतवासी ही हैं। कर्म्मचारी तो प्रायः सभी इसी देश के निवासी हैं। अतएव इसकी कारगुज़ारी अच्छी होने से भारतवासियों की प्रबन्ध-निपुणता और योग्यता का यथेष्ट परिचय मिलता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि और महकमों में भी इसी देश के निवासियों का आधिक्य हो तो वहाँ भी वे अपने कार्य्य-कौशल और प्रबन्ध-चातुर्य्य का दृश्य अच्छी तरह दिखा सकते हैं।

इस महकमे के प्रधान अफ़सर, डाइरेक्टर जनरल, ने १९२६-२७ ईस्वी की जो वार्षिक रिपोर्ट प्रकाशित की है उसके पाठ से यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है कि इस महकमे के कर्म्मचारियों ने अपना काम बड़ी ही योग्यता से किया। और इस महकमे को इतना काम करना पड़ता है जितना शायद ही और किसी महकमे को करना पड़ता होगा। फिर भी किसी को काम की गड़बड़ की शिकायत का बहुत ही कम मौक़ा मिलता है। अरबों-खरबों चिट्ठियाँ, कार्ड, रजिस्ट्रियाँ और अख़बार साल में डाक से रवाना होते हैं। परन्तु उनमें से बहुत ही थोड़ी चीज़ें गुम जातीं या पानेवालों तक नहीं पहुँचतीं। इस महकमे की एक शाखा ऐसी है जहाँ वे सब चीज़ें जाती हैं जिनके पानेवालों का पता नहीं लगता। उसका नाम है—डेड लेटर आफ़िस। यह आफ़िस हर प्रान्त में जुदा जुदा होता है। पिछले साल (१९२५-२६ में) १ अरब ३० करोड़ से भी अधिक चिट्ठियाँ और मनीआर्डर वग़ैरह डाक से रवाना हुए थे। पर रिपोर्ट के साल (१९२६-२७ में) उनकी संख्या बढ़कर १ अरब ३३ करोड़ हो गई थी। ख़ूबी यह कि इतनी चीज़ों में से फ़ी सदी १ से भी कम तक़सीम होने से रह गईं। बाक़ी सब जिसकी थीं उसे पहुँच गईं। मामूली तौर पर जब कोई चीज़ तक़सीम नहीं होती तब पानेवाले का पता लगाने के लिए वह डेड लेटर आफ़िस को भेज दी जाती है। रिपोर्ट के साल इस तरह भेजी गई चीज़ों की संख्या १ करोड़ से कुछ अधिक थी। उनमें से ४२ फ़ी सदी पानेवालों का पता लगा कर उन्हें तक़सीम कर दी गईं और ४८ फ़ी सदी भेजनेवालों को लौटा दी गईं। बाक़ी की सिर्फ़ १० फ़ी सदी अर्थात् कोई ११ लाख लापता पड़ी रह गईं। यह संख्या बहुत ही थोड़ी है; दाल में नमक के बराबर भी नहीं। अतएव इस महकमे के कर्म्मचारी प्रशंसा के सर्वथा पात्र हैं।

१९२६-२७ के १२ महीनों में पौने ४ करोड़ के लगभग मनीआर्डर रवाना हुए। इन सबकी मालियत ९० करोड़ रुपये के लगभग थी! इन्हीं महीनों में व्यवसायियों

तथा अन्य आदमियों ने जो क़ीमत-तलब पारसल या पैकेट वग़ैरह भेजे उनकी क़ीमत के मद में कोई २७ करोड़ रुपया वसूल करके डाकख़ाने ने उनके घर पहुँचाया। इससे यह अच्छी तरह ध्यान में आ सकता है कि यह महकमा कितना काम करता है और इससे सर्व-साधारण को कितना लाभ पहुँचता है।

जो महकमा इतना काम करता है उसके कर्म्मचारियों से भूलें और भ्रम हो जाना सर्वथा सम्भव है। तथापि पूरे १२ महीनों में उनके ख़िलाफ़ केवल १,४७,४३१ शिकायतें हुईं। उनमें से सिर्फ़ ३० फ़ी सदी शिकायतें ठीक समझी गईं। बाक़ी शिकायतें बेजड़ साबित हुईं।

इस महकमे के कर्म्मचारियों को रुपये-पैसे रखने और देने-लेने का काम सदा ही पड़ता है और रुपया देखकर बड़े बड़े धर्म्मध्वजियों तक का चित्त चलायमान हो जाता है। ऐसे चञ्चल चित्तवाले सभी कहीं होते हैं। डाक के महकमे में भी हैं। इस तरह के ४१८ मुलाज़िमों पर अमानत में ख़यानत वग़ैरह करने के मुक़द्दमे चलाये गये। उनमें से २६४ को तो अदालतों से सज़ायें मिलीं। बाक़ी को महकमे के अफ़सरों ही ने सज़ायें दीं। सब मिला कर कोई ६५ हज़ार रुपये की ठोकर इस महकमे को लगी। उसमें से ७२ हज़ार रुपये की रक़म वसूल हो गई। रिपोर्ट के साल ४८१ मुलाज़िम, भिन्न भिन्न प्रकार के जुर्म करने के कारण, बरख़ास्त कर दिये गये। उनमें से लगभग आधे के चिट्ठीरसां थे।

डाकख़ाने को डाक के मुलाज़िम ही धोखा नहीं देते। और लोग भी धोखा देते और माल मारते हैं। ऐसे जुर्मों की तफ़सील नीचे देखिए—

(१) ११ मामले रुपया उड़ा लेने के हुए।
(२) ४७ मामले मनीआर्डरों के सम्बन्ध में धोखेबाज़ी के हुए।
(३) १३ मामले दूसरों के सेविंग बैंक से रुपया निकाल लेने के हुए।
(४) ८४ हादसे डाक की थैलियों और डाकख़ानों से चोरी करने के हुए।

राह में डाक लूट ली जाने के भी १८ हादसे हुए। दो हरकारों को बाघों ने जान से मार डाला और एक की मौत बिजली गिरने से हुई।

डाकख़ाने के कुल मुलाज़िमों की संख्या, पिछले साल, १ करोड़ ६ लाख थी।

मैं दुबारा जर्मनी कैसे पहुँचा

[श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक]

यों तो 'सरस्वती' के पाठकों के साथ मेरा सन् १६०३ से सम्बन्ध है, पर भले प्रकार परिचय सन् १६०७ से हुआ था जब कि मैंने अमरीका के शिकागो-विश्वविद्यालय से लेख भेजने आरम्भ किये थे। तब से अब तक कितना पानी पुल के नीचे से निकल गया, समय का कितना परिवर्तन हुआ है, इस बीच मे 'सरस्वती' ने कितने लेखक और लेखिकायें उत्पन्न कर दीं, कितनी नई पत्रिकायें सरस्वती से प्रोत्साहन पाकर पुष्पवत् विकसित हुई और मुरझा गई, कितनों की सरस्वती पथ-प्रदर्शिका बनी और कितने इसके अत्यन्त ऋणी हैं, यह तो कोई भावी सत्यशोधक हिन्दी-लेखक ही बतलाएगा।

स्वामी सत्यदेव के इसी फ़ोटो पर हस्ताक्षर करने पर जस्टिस आफ़ दी पीस मिस्टर अंडरउड, पोर्चगीज कौंसल, को बम्बई सरकार ने फटकारा था। यह सन् १६२५ के जनवरी मास का फ़ोटो है।

मगर मुझे तो आज अपने हृदय की पीड़ा सरस्वती के पाठकों से कहनी है। आगे कई बार इस घुमक्कड़ संन्यासी ने अपनी दर्द-दास्तान इसी पत्रिका के कालमों में वर्णन की है। आज कई वर्षों के बाद फिर उसे देवी सरस्वती के चरणों में बैठ कर अपने दिल का बोझ हलका करने का अवसर मिला है।

× × × ×

सन् १६२४ के मार्च मास में मैं जर्मनी से पहली बार लौट कर भारत पहुँचा था। समाचार-पत्रों के पाठकों को यह बात भले प्रकार विदित है कि मुझे बम्बई-पासपोर्ट-विभाग ने सन् १६२२ के अप्रेल मास में केवल इँग्लेंड का पासपोर्ट दिया था और देश-नेताओं के कौंसिल में प्रश्न करने पर भी सरकार ने मुझे जर्मनी का पासपोर्ट नहीं दिया था। परन्तु पासपोर्ट के नियमों से अनभिज्ञ मैं उसी पासपोर्ट से जर्मनी, आस्ट्रिया, स्वीडन,

एक्विलेया स्टीमर में भारतीय पोशाक में स्वामी सत्यदेव।

फ़्रांस और इटली घूम आया था। इँग्लैंड में मुझे कोई काम नहीं था, इसलिए मैं वहाँ नहीं गया। जब जाने का विचार किया तब पासपोर्ट का समय ख़तम होने पर आ गया था।

जर्मनी और आस्ट्रिया जाकर मैंने कोई बड़ा अपराध कर डाला है, यह बात स्वप्न में भी मेरे ध्यान में नहीं आई। मैं उस जर्मन-यात्रा से भारत-सरकार की दृष्टि में बड़ा गुनाहगार बन गया हूँ, इसका ख़याल मेरे पितरों को भी नहीं था। मैंने योरप के अत्यन्त प्रसिद्ध आँखों के डाकृरों की खोज की और उनकी सलाह लेकर आँख का आपरेशन कराकर चला आया। हा, इतनी बात राह चलते हुए लगे हाथ मैंने ज़रूर की कि बर्लिन, फ़्रांस तथा स्वीडन में जो दुखी भारतीय ग़रीबी के दिन व्यतीत कर रहे थे उनको भारत लौटने की प्रेरणा की और ख़ास कर बर्लिन में बैठे हुए जो भारतीय केवल ब्रिटिश-गवर्नमेंट को गालियाँ देकर समय बिताते थे उनको आग्रहपूर्वक इस व्यर्थ के कार्य से हटाने की कोशिश की। मेरी प्रेरणा और सहायता से उस पार्टी का सिरमौर त्यागी देशभक्त पाण्डुरङ्ग खानखोजे मेक्सिको चला गया और वहाँ जाकर कृषि-कालिज में प्रोफ़ेसर बन गया और डाकृर दत्त कलकत्ते आ गये। अब वे देश की सेवा कर रहे हैं। यदि भाई खानखोजे तथा भ्राता हरदयालजी को पासपोर्ट मिल जाता तो मैं उन्हें भारत पहुँचने तक का सैकंड क्लास का टिकट ले देता। इतना रुपया मैं अपने साथ ले गया था।

बस, यदि कोई भी पोलीटिकल या इन्सानियत का काम सन् १९२३ की जर्मन-यात्रा के समय मैंने किया तो केवल इतना ही, जो ऊपर लिखा है। इसके अतिरिक्त मुख्य काम मैंने अपनी आँख का इलाज करवाया।

प्यारे पाठक, अब आप समझ सकते हैं कि सन् १९२४ के मार्च मास में जब मैंने भारत में पैर रक्खा तब भला मुझे इस बात का ज्ञान कैसे हो सकता कि भारत-सरकार की मेरे ऊपर अत्यन्त वक्र दृष्टि हो गई है?

ख़ैर, मैं अपने सङ्गठन के कार्य्य में लग गया। जब अप्रेल में पासपोर्ट की अवधि पूरी होने का समय आया तब साधारण तौर पर मैंने उसके (Renewal) नई अवधि बढ़वाने की अर्ज़ी बम्बई-पासपोर्ट-विभाग के पास भेज दी। वहाँ से एक फ़ार्म उन्होंने भेज दिया और लिख दिया—"इसे भर कर भेज दो। साथ ही पुराना पासपोर्ट और नया करवाने की फ़ीस भी रवाना करो।" बिलकुल अनजान बच्चे की तरह मैंने उस चिट्ठी पर विश्वास कर लिया और अपना पासपोर्ट बम्बई भेज दिया।

ठीक जैसे चूहा पिँजरे में बन्द हो जाता है, जैसे वह उस समय बेचैन होता है, वैसे ही बेचैन मैं उस समय हुआ, जब बम्बई-गवर्नमेंट ने मेरा पासपोर्ट धोखे से ले लिया और मुझे नया पासपोर्ट देने से साफ़ इनकार कर दिया। कोई कारण नहीं बतलाया। अनुनय-विनय करने पर भी कुछ नहीं बतलाया। मैंने सरकार के विरुद्ध कोई भी बात नहीं की थी, इसलिए पासपोर्ट-विभाग के इस कुटिल व्यवहार पर मेरे अन्दर आग लग गई।

लेकिन दुर्बल कर क्या सकता है—केवल सद्विश्वास-पूर्वक उद्योग। मैंने अपने जीवन में बहुत ठोकरें—बहुत उतार-चढ़ाव—देखे हैं। बहुत बार निराशा के समुद्र में डूबते समय करुणामय प्रभु ने मेरी बाँह गही है। इसलिए मैंने हिम्मत नहीं हारी और देश-सेवा में लगा रहा।

सन् १९२४ के अन्त में मैं बेलगाम-कांग्रेस पर बम्बई गया। उस समय मैंने फिर पासपोर्ट के लिए दौड़-धूप की। बम्बई-पासपोर्ट-विभाग के पास अर्ज़ी भेज कर इँग्लैंड का पासपोर्ट माँगा। मिस्टर एडवर्ड अंडरवुड पोर्चुगीज़ कौंसिल बम्बई में जस्टिस आफ़ दी पीस थे। उनसे अपनी अर्ज़ी और फ़ोटो पर हस्ताक्षर करवा लिये। मिस्टर अंडरवुड ने बड़े बल-पूर्वक मुझसे कहा—

"वेल, तुम खातिरी रक्खो। हमारा नाम देख कर ही मिस्टर अराटून, पासपोर्ट आफ़िसर, तुमको पासपोर्ट दे देगा।"

वह बेचारा क्या जानता था कि उसके नाम की अपेक्षा स्वामी सत्यदेव का नाम, मिस्टर अराटून के लिए, ज़्यादा प्रभावोत्पादक है। बम्बई सरकार के दफ़्तर से उस पोर्चुगीज़ कौंसल के पास ऐसी सख़्त लताड़ की चिट्ठी

आई कि वह घबरा उठा। ख़ैर, किसी प्रकार समझा-बुझा कर उसे शान्त किया और उसका उस बला से पीछा छुड़वाया।

मेरी आँख अभी तक बहुत ख़राब नहीं हुई थी अतएव मैं फिर अपने काम मे लग गया। सन् १९२५ के सितम्बर मास में जब मैंने 'सङ्गठन का बिगुल' छपवाया तब उसके प्रूफ़ देखने मे मेरी आंख बिलकुल बिगड़ गई—आंख बन्द-सी हो गई। मुझे हस्ताक्षर करना भी कठिन हो गया। इसी वर्ष दिसम्बर में मुझे हिन्दू-सभा के निमन्त्रण पर फिर बम्बई जाना पड़ा। तब मैंने तीसरी बार भाई शिवदास चापसी तथा श्रीजमुनादास मेहता की सहायता से पासपोर्ट के लिए हाथ-पैर मारने शुरू किये। अर्ज़ी के साथ मेडिकल सर्टीफ़िकेट की ज़रूरत थी। बम्बई के प्रसिद्ध तीन हिन्दू और जैनी आंखो के डाक्टरों के पास गये, अनुनय-विनय की, पर वे सी० आई० डी० से ऐसे भयभीत हुए कि उन्होंने सर्टीफ़िकेट देने से साफ़ इनकार कर दिया।

अब क्या किया जाता? मुझे आंख से सूझता नहीं था। आंख के आपरेशन का समय आ गया। डाक्टर सर्टीफ़िकेट तक नहीं देते ताकि पासपोर्ट मिल सके। "हारिये न हिम्मत बिसारिये न राम नाम"-वाले महामन्त्र का सहारा लिया। भाई बरजोरजी फ्रामजी भरूचा कानपुर कांग्रेस पर आये। कांग्रेस समाप्त होने पर मेरी बाह पकड़ कर कानपुर के प्रसिद्ध आंखों के पारसी डाक्टर वरियावा के पास ले गये। भला करे भगवान् इस पारसी डाक्टर का, उसने आंख देख कर मेडिकल सर्टीफ़िकेट दे दिया।

उसे लेकर हम दोनों दिल्ली आये। यहाँ किसी ने सुझाया कि यदि किसी गोरे डाक्टर का सर्टीफ़िकेट होता तो बड़ा अच्छा होता। यह भी किया। भाई देशबन्धु गुप्त ने दौड़-धूपकर मुझे दिल्ली के सिविलसर्जन को दिखलाया। उस भले आदमी ने देखते ही सर्टीफ़िकेट दे दिया और लिख दिया कि स्वामी को फ़ौरन आंख बनवाने के लिए योरप जाना चाहिए।

इन दो सर्टीफ़िकेटों के मिल जाने से मैंने समझा कि अब मैदान मार लिया। अब तो फ़ौरन पासपोर्ट मिल जायगा। लेकिन वह राहु खड़ा हँसता था और कहता था—"ये सर्टीफ़िकेट कुछ नहीं कर सकते। अभी योरप-यात्रा का मुहूर्त ही नहीं खुला है।"

× × × ×

जनवरी का महीना था। दिल्ली मे उस समय एसेम्बली की मीटिंगें हो रही थीं। अपने सब लीडर वहा मौजूद थे। लेकिन कोई मदद करे तब न। स्वराज्यपार्टी के मन्त्री मिस्टर आइङ्गर के बँगले पर दौड़े गये। उन्होंने बातों में ही टरका दिया। निर्भीक देशभक्त पटेलजी के यहा पहुँचे। उन्होंने ठीक रास्ता बता दिया। लेकिन उस पर चलने के लिए भी कुछ सिफ़ारिश—कुछ हस्ताक्षर—दरकार थे। मैं बे-आखवाला यह नहीं कर सकता था—अकेला घूम नहीं सकता था। एक अच्छे प्रभाववाले व्यक्ति ने कहा कि उनका कमिश्नर के यहा ख़ूब आना-जाना है, यहीं देहली के कमिश्नर से ही पासपोर्ट दिला देते है। वैसा ही किया। लेकिन वहाँ से जवाब मिला—"केवल पंजाब गवर्नमेंट ही एक पंजाबी को पासपोर्ट दे सकती है।"

क्या करें, राज्य तो अँगरेज़ो का है। वे यह तो समझते नहीं कि संन्यासी का जन्मस्थान से मतलब नहीं रहता। उसका घर सब जगह है। वे संन्यासी नाम को स्वीकार ही नहीं करते—वे उसे alias अल्यास कह कर पुकारते हैं।

अब क्या किया जाय। लौटकर घर चलो। जिस जन्मस्थान को छः वर्ष की अवस्था में छोड़ दिया था, अब उसके कारण पंजाब-गवर्नमेंट हमारा मा-बाप हो गई। वह पंजाब गवर्नमेंट कैसी है? उसका गवर्नर कैसा है? वहा की पुलिस कैसी है? ये सब बातें सारा हिन्दुस्तान जानता है। उस गवर्नमेंट से पासपोर्ट ले लेना वन्ध्या से पुत्रोत्पत्ति की आशा करना है। वह सत्यदेव को पासपोर्ट देगी? राम राम! शिव शिव!!

परन्तु नामुमकिन शब्द तो पुरुषार्थी आदमी की डिक्शनरी में है नहीं, फिर हिम्मत क्यों छोड़ी जाय। 'कार्य्यं साधयेत धीमान्' वाले नीति के वचन को गांठ में बांध कर मैंने शिमले पर धावा बोल दिया। जून में वहाँ पहुँचा। रायसाहब गंगारामजी के यहां ठहरा।

उन बेचारों ने पासपोर्ट दिलाने की प्रतिज्ञा की। शिमले के डिस्ट्रिक् मेजिस्ट्रेट की सिफ़ारिश करवा, दोनों डाक्टरों के दिये हुए सर्टीफ़िकेट साथ नत्थी कर अर्ज़ी पंजाब-गवर्नमेंट के दफ़्र को भेजी। मिस्टर एन्ड्रयूज़ महोदय ने भी चिट्ठी-तार भेज कर मेरी सुस्त गाड़ी को धक्का लगाया। पंजाब-गवर्नमेंट के सेक्रेटरी महाशय ने सिफ़ारिश भी कर दी। मैंने समझा कि पासपोर्ट की हत्या निकल गई। मेरे जैसे तुच्छ प्राणी के पासपोर्ट के झमेले में स्वयं गवर्नर महोदय दिलचस्पी रखते हैं, यह मैं न जानता था। यदि मुझे ज़रा भी इसका पहले पता होता कि ख़ास हिज़ एक्सलेन्सी सर मेलकम हेली भी मुझे पहचानते हैं और मेरे पासपोर्ट के देने न देने के सम्बन्ध में आख़िरी फ़ैसला उनका रहेगा, तो मैं उसका पहले से प्रबन्ध कर लेता। मैंने कभी अपने आप को ख़ास आदमी नहीं समझा, इस कारण ख़ास इलाजों की ओर ध्यान नहीं दिया। नहीं तो माननीय पटेलजी का नुसख़ा काम में लाता।

पंजाब-गवर्नर ने पासपोर्ट की अर्ज़ी पर 'इनकार' की मुहर लगा दी। धर्मराज के यहाँ का फ़ैसला हो गया। अब विधाता की रेखा कौन मिटाये? यह समस्या उपस्थित हो गई।

मैंने तो भी हिम्मत नहीं हारी। गवर्नर के फ़ैसले पर अपना वक्तव्य लिख कर सब बातें साफ़ साफ़ कहीं और पूछा कि आख़िर कौन से गधे को हाथ लगाने से यह दण्ड—राज्य-व्यवस्था—मेरे भाग्य में आई है। पंजाब-गवर्नमेंट के सेक्रेटरी महाशय ने टेलीफ़ोन देकर मुझे बुलाया। मैं आपके दफ़्र में उपस्थित हुआ।

प्यारे पाठक, जिस समय मैं उस दफ़्र में पहुँचा, तो क्या देखता हूँ कि फ़र्श पर इधर-उधर अख़बार पड़े हैं। सेक्रेटरी महाशय मिस्टर डाबसन ने मुझे सत्कार से बिठलाया। उनका मैं धन्यवाद करता हूँ। जब उन्होंने मुझे गवर्नर महोदय का सन्देश दिया और पासपोर्ट न देने के कारण बतलाये तब मैं क्रोध से उत्तेजित हो गया। एक निरपराध आदमी पर इस प्रकार के आरोप! मुझे बड़ी ठेस लगी। घर आकर जब मेरा मन ठिकाने आया तब मैंने उन आरोपों के मिथ्या होने का उत्तर लिख कर भेज दिया और चेलेंज किया कि मैं उस आदमी को पांच हज़ार रुपया दूँगा जो मेरे कथन को असत्य सिद्ध करे। मैं सब अफ़सरों का सामना करने को उद्यत हूँ।

लेकिन वहां तो अरण्यरोदनवाली बात थी। जो लोग साम्राज्यवादी होते हैं उनके हृदय नहीं होता। हृदय-शून्य

एक्विलेया स्टीमर पर के भारतीय यात्री

व्यक्ति ही साम्राज्यवाद के उपासक होते है। मेरा वह पत्र भी रख लिया गया। दफ़्तरवाले चुप्पी साध गये।

× × × ×

अगस्त मे मैं शिमले से लौटा। गाड़ी में बैठा था और विचारों में निमग्न था। गाड़ी पहाड़ से नीचे उतर रही थी। मैंने उस समय प्रभु का ध्यान किया। मैंने प्रार्थना में कहा—"प्रभो! मेरी इतनी बड़ी उम्र में मुझे याद नहीं कि जब मैंने कुछ चाहा हो, साथ ही उसके लिए उद्योग किया हो, और वह वस्तु मुझे न मिली हो। मुझे १९२७ में अवश्य योरप पहुँचना चाहिए। क्या मेरा वचन झूठा जायगा।" सन् १९२३ के दिसम्बर मास में, जर्मनी छोड़ते समय, मैं अपने एक-दो मित्रों से कह आया था कि सन् १९२७ मे मैं आंख सुधरवाने के लिए लौट कर फिर जर्मनी आऊँगा। वह वचन उस समय रेल में मुझे बार बार याद आता था। आख चार वर्ष के अन्दर बननी ही चाहिए। यदि पाँचवां वर्ष निकल जायगा तो ग़ज़ब हो जायगा। मैं यह सोचते सोचते बेचैन हो गया।

क्या उपाय करूँ? सर मेलकम हेली स्काच है। वे 'न' कह कर अब जल्दी 'हां' कहेंगे नहीं। इनसे किसको भिड़ाऊँ। लोहे को लोहा काट सकता है। हेली जैसे दबङ्ग से कोई दबङ्ग ही टक्कर ले सकेगा। साधारण आदमी का काम नहीं। आख़िर सोचते सोचते मेरे मन में एक बात उठी। मैंने मुस्करा दिया। मुझे किनारा दिखाई देने लगा। मुझे इलाज मिल गया। हँसकर मैंने दिल मे कहा—"सर मेलकम हेली से टक्कर मारनेवाला भारत मे एक ही पुरुष है और वही विधाता की इस उलटी रेखा को मिटा सकता है। और वह वीर पुरुष है पण्डित मोतीलाल नेहरू।"

देश के थोड़े इने-गिने पढ़े-लिखे लोगों तथा देश-सेवकों के अतिरिक्त अधिकांश भारतवासी पण्डित मोतीलालजी नेहरू के गुणों को नहीं जानते। उनके साथ काम करनेवाले बड़े बड़े लीडर तो उनकी अहंमन्यता तथा उच्च व्यक्तित्व के कारण उनसे ख़फ़ा हो जाते हैं; साधारण जनता उन्हें, मांस-शराब सेवन करने के कारण, धर्मात्मा नहीं समझती। हां, उनके त्याग को सब कोई पहचानते हैं। लेकिन पण्डित नेहरूजी में जो दूसरे राजनीतिक गुण हैं, जो प्रखर बुद्धि है, जो इरादे की दृढ़ता है, जो हृदय की विशालता है, जो देश की आज़ादी की उच्च भावना है—और सबसे बढ़कर जो अँगरेज़ी कुटिल राजनीति का व्यापक ज्ञान है, वह दूसरे किसी नेता को नहीं है। एसेम्बली मे जब वे बोलने को खड़े होते है तब उनके दुश्मन भी कांप उठते हैं। बाक़ी लीडरों की नब्ज़ दुश्मन पहचान लेते हैं, पर यह Mysterious Pandit रहस्य-पूर्ण पण्डित, कुशल राजनीतिज्ञ क्या कर देगा, इसका पता लगना मुश्किल है। ऐसा पुरुषसिंह ही सर मेलकम हेली की कही हुई 'न' को—पासपोर्ट देने के इनकार को—'हां' में बदल सकता है। गवर्नर होने से पहले हेली महाशय एसेम्बली की विरोधी पार्टी के लीडर थे। उनको कौन नहीं पहचानता। ज़बर्दस्त स्मरण-शक्ति, बोलने का ईश्वरदत्त गुण, चुभती हुई मसख़री और भयङ्कर साम्राज्यवादिता—ये सर मेलकम की ख़ास ख़सूसियतें हैं। उनके गुणों के साथ ही बदला लेने की गहरी भावना उनमें भरी हुई है। ऊँचे दरजे के पुरुषों में जो उदारता—जो क्षमता—होती है उसका लेशमात्र भी उनमें नहीं है। यह बड़े शोक की बात है! बदला लेने की भावना उनके सारे शरीर में व्यापक होकर उनके दिव्यगुणों को कलुषित कर देती है।

ऐसे पुरुष के फ़ैसले के विरुद्ध यदि मैं भारतीय सरकार से अपील भी करता, तो भला क्या सुनाई हो सकती थी? सर मेलकम के फ़ैसले के विरुद्ध जाने में तो एक बार वायसराय भी हिचकिचा जायँ। ऐसे पुरुष के विरुद्ध पण्डित नेहरूजी ही हो सकेंगे; वे ही मेरी लड़ाई को जीत सकेंगे। यह बात मेरे ध्यान मे आ गई।

लेकिन मोतीलालजी मेरी वकालत क्यों करेंगे? उनकी पार्टी एसेम्बली की मीटिंगों तक में नहीं जाती। उनका ठहरा सरकार से असहयोग—वे भला एक मामूली पासपोर्ट के लिए भीख क्यों मांगने लगे। मैं पुराना असहयोगी किस मुँह से उनको अपनी बात सुनाऊँ। हां, यह सच है कि यदि वे एक बार मेरा मुक़द्दमा ले लेंगे—एक बार 'हां' कह देंगे तो सर मेलकम हेली के नाक

में दम कर उससे पासपोर्ट ले देंगे। यह शक्ति इस वयोवृद्ध पण्डित में है। इस प्रकार उधेड़बुन में कई दिन निकल गये।

मैं शिमले से प्रयाग आया। यहा आकर फिर एक बार मैंने सर मेलकम के सेक्रेटरी महाशय के पास तार भेज कर निवेदन किया कि सर मेलकम से कहिए, बीमार आदमी के साथ अन्याय न करें। लेकिन पंजाब-गवर्नमेंट, न्याय-अन्याय, इन शब्दों को पागलों की परिभाषा समझती है। सर मेलकम सभ्यता के युद्ध पर विश्वास नहीं करते। स्काटलेंड के भूमिपतियों के दलों मे जैसा पुराने ढङ्ग का युद्ध होता था—"We ask no quarter and we give none. अर्थात् न हम पनाह देते है और न मांगते है"—इस पर विश्वास करते हैं। मेरा तार भी रद्दी की टोकरी में फेक दिया गया।

× × × ×

पाठक, अब आगे सुनिए। आप जानते है कि मैं सेठ-साहूकारों के दरवाज़ो पर भीख माँगने नहीं जाता। मैंने सदा अपनी आत्मा के अनुकूल काम करने की कोशिश की है। मज़दूरी करके विद्या पढ़ी है। देश में भी मज़दूरी करके गुज़ारा किया है। अपनी हिन्दी की पुस्तकों का प्रचार मैंने मज़दूरों की तरह किया है। केवल अपने स्वत्वाभिमान के ख़ातिर। लेकिन इस आंख के दुख ने मुझे उन लोगों का दरवाज़ा दिखलाया—उन लोगों की अनुनय-विनय कराई—जिनके सामने मुझे कदापि नहीं जाना था। आज वाएना में इस लेख को लिखते समय मुझे अपने ऊपर कितनी ग्लानि, कितनी लज्जा—उत्पन्न होती है। यह जो अपनी आत्मा के विरुद्ध, अपने सिद्धान्तों के विपरीत तथा अपने आत्म-गौरव के बरख़िलाफ़ मैंने पाप किया है, इसका प्रायश्चित्त मुझे करना पड़ेगा।

× × × ×

सन्ध्या का समय था। जबलपुर के सेठ गोविन्ददासजी के साथ मैं दुबारा शिमले जा रहा था। कालका से हम लोग मोटरगाड़ी में बैठ कर रवाना हो गये। शिमले पहुँच कर पण्डित मोतीलालजी के निवास-स्थान पर जा धमके। पण्डितजी बड़े दयालु, बड़े उदार हैं। आपने मेरी बाह पकड़ ली। मुस्कराकर बोले—

"देखो, हमें हैरान तो करना मत। हम मौक़े पर तुम्हारा काम कर देंगे।"

बस, मेरा काम हो गया। भारी बोझा पीठ पर लादे हुए कोई मनुष्य सड़क पर जाता हो और उसे कोई मोटरवाला मिल जाय, और वह दयावश उसका बोझा मोटर पर लाद कर कह दे—"लो बाबा, आपका बोझा हम निश्चित स्थान पर पहुँचाते जायँगे।" जैसे उस पुरुष को उस समय सुख मिलता है, मुझे वैसा ही आनन्द उस समय हुआ। मेरा बोझा पण्डित नेहरूजी ने उठा लिया। मैं निश्चिन्त होकर प्रचार-कार्य्य करने लगा।

× × × ×

सन् १९२७ के आरम्भ में असेम्बली के दिन आ गये। पण्डित नेहरूजी ने तीर मार दिया। मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार) के बाबू गयाप्रसादसिंहजी ने असेम्बली में मेरे पासपोर्ट के सम्बन्ध मे प्रश्न किया। नेहरूजी को अवसर मिल गया। उन्होंने तीर चला दिया। मैं संयुक्त प्रान्त के गवर्नर, स्वर्गीय सर अलेग्ज़ेन्डर मुडीमेन, से भेंट करने गया। आप उस समय होम मेम्बर थे। इन हँसमुख अँगरेज़ ने पांच मिनट में मेरी कथा सुनकर फ़ैसला कर दिया। एक विशाल हृदय आदमी के लिए कुछ बात नहीं थी। उन्होंने समझ लिया कि ये सफ़ेद बालोंवाला, आंखों से लाचार मनुष्य, योरप जा कर ब्रिटिश सरकार का कुछ नहीं बिगाड़ सकता। पासपोर्ट की स्वीकृति के लिए हुक्म निकल गया।

यह हुक्म क्या निकला, पंजाब-गवर्नमेंट के दफ़्र पर मानो बिजली गिर गई। पण्डित नेहरूजी की टक्कर खाकर सर मेलकम उद्विग्न हो गये। कमज़ोर, आखों से लाचार, बीमार सत्यदेव की विनय को ठुकरा देने में क्या कोई बहादुरी थी? उसको नीचा दिखाने में क्या कोई शौर्य्य था? लेकिन सर मेलकम को कमज़ोरों के मारने में ही मज़ा आता है। अब जब ज़बर्दस्त से वास्ता पड़ा, उसकी टक्कर लगी, तब पासपोर्ट देना ही पड़ा।

मगर वह पासपोर्ट दिया कैसे? यदि सर एलग्ज़ेंडर के सहमत हो जाने के बाद पंजाब-सरकार बिना किसी रोक-टोक के पासपोर्ट दे देती तो मैं समझ लेता कि यहाँ टक्कर लगने की कोई बात नहीं, सर मेलकम हेली के दिल में भी उदारता आ गई थी। लेकिन नहीं, वहाँ तो उस वस्तु की गन्ध भी नहीं है।

कहते हैं कि एक सेठ के दरवाज़े पर कोई भिखारी भीख माँगने आया। बेचारा बहुत गिड़गिड़ाया, मगर मुनीमजी को कुछ भी दया न आई। अचानक सेठजी बाहर आ गये। भिखारी ने उनसे अपना दुःख कहा। दयालु सेठ ने मुनीमजी से कहा—"इस ग़रीब को पाँच रुपये दे दो।" वे तो कहकर चले गये। मुनीमजी महाकंजूस थे। सोचने लगे, पांच रुपये भिखारी को! दो घंटे रुलाकर उन्होंने उस ग़रीब को तीन ही रुपये दिये—दो रख लिये।

ठीक यही बात सर मेलकम हेली ने की। भारत-सरकार का हुक्म मिलने पर पासपोर्ट दिया, लेकिन रोकर। उस पर लिख दिया—"यह आदमी फ्रांस, इटली और स्विटज़रलैंड केवल दो दो दिन—बम्बई से इँग्लेंड जाते और वापसी भारत लौटते हुए—ठहर सकता है। सेक्रेटरी आफ़ स्टेट की आज्ञा के बिना इँग्लेंड से दूसरे देश में नहीं जा सकता। इस दूसरी शर्त में तो कुछ तत्त्व (Sense) भी है, लेकिन उस दो दो दिनवाली शर्त में क्या तत्त्व है? यदि रास्ते में मुसाफ़िर बीमार हो जाय, आँख से लाचार पुरुष रास्ता न पाने से कहीं भटक जाय, या उसकी गाड़ी ही छूट जाय तो क्या हो? पर अनुदार और छोटे दिल के लोग बुद्धि खोकर काम कर बैठते हैं। मैंने समझ लिया कि टक्कर की चोट से झुँझला उठे हैं, अब उनसे जो मिले, जैसे मिले, ले लेना चाहिए। भगवान् आगे भी सहायता करेंगे।

× × × ×

आँख का इलाज कराने के बाद बर्लिन में स्वामी सत्यदेव योरपीय पोशाक में

आख़िर पासपोर्ट मिला। मैंने योरप-यात्रा की तैयारियां शुरू कीं। न जाने कब तक इँग्लेंड में ठहरना पड़ेगा, कितना ख़र्च होगा, क्या क्या कठिनाइयां आयेंगी, ये सब सोच कर काफ़ी रुपया साथ ले लिया। आँखोंवाले पुरुष आंख के दुःख को नहीं समझ सकते। ऐसी ख़राब आँखों से अकेले, बिना साथी-संगी के, इतनी दूर विदेश में जाना, और वह भी ऐसी शर्तों के साथ—इस परिस्थिति की गंभीरता का वर्णन लेखनी से नहीं हो सकता।

× × ×

बम्बई की अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी के मैनेजर मिस्टर ह्वीलर ने बड़ी सहानुभूति कर मेरे लिए स्टीमर में ऐसा केबिन दिला दिया जिसमें मैं ही अकेला मुसाफ़िर था। आक्टोबर की १२ तारीख़ को मैं उसी इक्वीलेया जहाज़ पर सवार हुआ जो मुझे सन् १९२४ में भारत वापस लाया था। इस स्टीमर में कई हिन्दुस्तानी थे, इसलिए मुझे कोई विशेष कष्ट नहीं हुआ। हाँ, यह देखकर बड़ा रंज हुआ कि जो लड़के इँग्लेंड पढ़ने के लिए जाते हैं उन्हें अपने धर्म, साहित्य और अपने देश की संस्कृति का कुछ भी ज्ञान नहीं

होता है। अमीर हिन्दुस्तानी मा-बाप हज़ारों रुपये इन लड़कों की पढ़ाई में फूँक देते हैं। ये लड़के विलायत में जाकर सीखते क्या हैं?—विलायत में रहनेवालों की बुराइया, उनका भ्रष्टाचार—शराब पीना, अँगरेज़ी भाषा की गन्दी गालियाँ बकना, लड़कियों के पीछे भागना और मा-बाप का पैसा पानी की तरह ख़र्च करना। यदि कोई देश-हितैषी उनको समझाये तो काट खाने को दौड़ते हैं और कहते हैं—"जनाब यह आज़ादी का ज़माना है।"

इस स्टीमर पर ऐसे कई नवयुवक थे जो विलायत में विलायती बनने जा रहे थे। यदि विलायत के लोग इन्हें अपने साथ बराबर का दर्जा देकर विलायती बना लें तो सचमुच ये नालायक़ कभी हिन्दुस्तान लौटने का नाम न लें—अपने को हिन्दुस्तानी कहलाना ही छोड़ दें। लेकिन जब वहाँ इनकी बेइज़्ज़ती होती है, गोरे इन कालों को ब्लेकी (Blackees) कहकर इनका तिरस्कार करते हैं उस समय इन्हें अपना वतन—अपनी मातृ-भूमि—याद आती है। यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि जो पंजाब इतना अधिक हिन्दुत्व का अभिमानी है, जहाँ इतना अधिक आर्य्यसमाज का प्रचार है, जहाँ वेदों के मंत्रों की बड़ी डींगें हांकी जाती हैं, उस अभागे पंजाब के लड़के विलायत जाकर बहुत ज़्यादा विलायती बनने का यत्न करते है। वे अत्यन्त उद्दण्ड, बड़े झगड़ालू, बड़े बे-अदब हो जाते हैं। बस, अँगरेज़ी बोलने में अपना बड़ा बड़प्पन समझते है। हिन्दी का तिरस्कार करते हैं। अँगरेज़ों की नक़ल करने में बड़े चतुर बन जाते हैं। उनकी तरह खाने में, उनकी तरह पहनने में और उनकी तरह हिन्दुस्तानी शब्द बिगाड़ कर बोलने में बडा गौरव मानते है। पंजाब के लोगों को अपनी सन्तान तथा अपने देश के भावी हित का विचार कर इधर ध्यान देना चाहिए। अपनत्व के बिना देश-सेवा की भावना जागृत नहीं हो सकती। जिन लोगों को अपनी भाषा, अपने साहित्य और अपनी संस्कृति का अभिमान नहीं है वे कभी स्वाधीन नहीं हो सकते—वे सदा दूसरों की लकड़ियाँ चीरने और पानी भरने के ही लायक़ बने रहते हैं।

अतएव विलायत भेजने से पहले अपने बच्चों को देशभक्ति, स्वभाषाभिमान और आत्मगौरव की ठोस शिक्षा दीजिए। वे कहीं भी जायँ, किसी देश में घूमें, लेकिन अपनी सभ्यता, अपना शिष्टाचार तथा अपना आत्माभिमान न छोड़ें। पिछले साठ-सत्तर वर्षों से हमारे नौजवान विलायत जा रहे हैं। हर वर्ष उनकी संख्या बढ़ ही रही है। हमारे देश को क्यों उनसे कुछ लाभ नहीं पहुँचा—वे विलायत जाकर विलायतियों की तरह कट्टर देशभक्त क्यों नहीं बन जाते? कारण स्पष्ट है। उनको भारत में मा-बाप पहले से वैसी शिक्षा नहीं देते। वे उन्हें रुपये पैदा करनेवाली मशीन बनाना चाहते है। इसी अभिप्राय से वे उन्हें विलायत भेजते हैं। सैकड़ों नवयुवक विलायत से पढ़कर आये है और देश के भिन्न भिन्न भागों में सरकारी कामों तथा बैरिस्टरी आदि में लगे हुए हैं। यदि उनका ढाँचा पहले से ठीक होता तो वे जागृति का केन्द्र बन जाते। जहा उनमें से एक भी बैठ जाता, वह सारे ज़िले को देशभक्ति से भर देता। क्योंकि विलायत में यदि कोई वस्तु सबसे अधिक है, यदि कोई ख़ास गुण ब्रिटिश-जाति में है, तो वह अनन्य देशभक्ति ही है। यही उनका धर्म है। इसी की बदौलत उन्होंने इतना विशाल साम्राज्य खड़ा कर लिया है। उसी गुण से हमारे नवयुवक—विलायत में पढ़नेवाले नौजवान—वञ्चित रह जाते हैं। यह सारा दोष स्वार्थी माता-पिता का है।

× × × ×

अरबसागर ने हमें कुछ कष्ट नहीं पहुँचाया। लाल-सागर हमेशा दुःख देता है। भूमध्यसागर में पहुँच कर तो शीत आरम्भ हो जाता है। स्टीमर थोड़ा-सा भूमध्य-सागर में डोला था, सो भी इसलिए, क्योंकि कई हिन्दुस्तानी मुसाफ़िर कहते थे—"हमने समुद्र में जहाज़ का डोलना-नाचना तो देखा ही नहीं।" जब स्टीमर डोलने लगा तब नानी याद आ गई—खाना-पीना सब भूल गया।

२९ आक्टोबर को हम जीनोवा (इटली) पहुँच गये। दूसरे दिन लन्दन-नगरी के दर्शन किये। मैं यहाँ मिस्टर कोछर के घर पर चला गया। वे किराया

लेकर विद्यार्थियों को रखते हैं। उनका घर हेमस्टेड में है और अच्छी नीरोग जगह में है। यहां हिन्दुस्तानी भोजन मिल जाता है। यहाँ मैं एक सप्ताह ठहरा। अब यहाँ से पासपोर्ट की कथा फिर आरम्भ होती है। पाठक, ध्यान से पढ़िए।

× × × ×

पंजाब गवर्नमेंट ने एक शर्त यह भी लगाई थी और जिसे मैंने स्वीकार किया था कि लन्दन पहुँचकर हाई कमिश्नर के दफ़्र में अपने लन्दन पहुँचने की सूचना दूँ। सो मैंने सूचना दे दी।

हिन्दुस्तान के लिए जो हाई कमिश्नर अँगरेज़ी सरकार की ओर से नियुक्त है उसका दफ़्र विक्टोरिया-स्टेशन के पास ग्रोवनेर गार्डनस्, नंबर बयालीस, की इमारत में है। एक दिन सवेरे मैं इस दफ़्र में पहुँचा। मिस्टर मांटगुमरी महाशय से भेंट हुई। आप हाई कमिश्नर साहब के सेक्रेटरी हैं। आप मुझसे बड़ी अच्छी तरह मिले। सब बातें हुईं। पंजाब-गवर्नमेंट की ओर से भेजा हुआ मेरा "आमालनामा" इनके पास पहुँच गया था। आपके कहने के अनुसार मैंने इनके दफ़्र में जर्मनी और आस्ट्रिया जाने के सम्बन्ध में अर्ज़ी भेज दी।

यहाँ आंखों की लाचारी के कारण मुझे एक नौजवान की आवश्यकता थी, जो मुझे इधर-उधर ले जाने, घुमाने और किताब आदि पढ़ने में सहायता देता। मैंने अख़बार में सेक्रेटरी की आवश्यकता का विज्ञापन दे दिया। बस आदमियों का ताँता लग गया। मैं बड़ा हैरान हुआ। इतने आदमी यहाँ भी नौकरी की तलाश में! पर यह मेरा कई बार का अनुभव है कि अधिकांश ऐसे आदमी बिलकुल अयोग्य, आलसी और कामचोर होते हैं। वे पैसा, बिना मेहनत किये, प्राप्त करना चाहते हैं। योग्य और पुरुषार्थी आदमी के लिए सभी द्वार खुले हैं। उसे काम की कभी कमी नहीं होती।

ख़ैर, मूअर नामक एक नवयुवक को मैंने पकड़ लिया। सस्ता मिल गया—दो पौंड साढ़े सात शिलिङ्ग सप्ताह पर। मिस्टर कोछर का घर छोड़कर मैं पास ही एक दूसरे मकान में चला गया। यहाँ ख़र्च कम था। खाने और कमरे के लिए प्रति सप्ताह दो पौंड देने पड़ते थे। खाना साधारणतया अच्छा था। इसी मकान में मिस्टर ग्रेविल नाम के एक सज्जन रहते थे। वे मुझे और मूअर को अपने मोटर में सैर कराने ले गये।

यह रविवार की बात है। मैं ज़रा विस्मित हुआ। पहले दिन नये मकान में मोटर की सैर! मूअर की उनसे ख़ास दोस्ती नहीं थी—पहली मुलाक़ात—मेरी केवल एक घंटे की भेंट। ख़ैर, मिस्टर ग्रेविल लन्दन शहर के बाहर मोटर ले गये। मुझे लार्ड क्लाइव का घर दिखलाया। वारेन हेस्टिंग्स की झोंपड़ी बतलाई। मैंने सब देखा—जितना मेरी आँख देख सकती थी। लौटती बार रास्ते में अँगरेज़ी इतिहास के ख़ास ख़ास स्थान बतलाये। मुझे रात को थियासाफ़ीकल सोसाइटी की मीटिंग में जाना था। मिस्टर ग्रेविल ने कहा—"मैं आप लोगों को मोटर में छोड़ आऊँगा। मुझे वहाँ से दूसरी जगह काम पर जाना है।" मैंने धन्यवाद-पूर्वक स्वीकार कर लिया। जब थिआसाफ़ीकल सोसाइटी की मीटिंग से निकले तब मिस्टर ग्रेविल झट कोने से मोटर लेकर आ गये। मेरी हैरानी और भी बढ़ गई। मैंने समझ लिया कि लन्दन में मेरे पीछे मोटरवाला टिकटिकी है। ख़ैर।

शेरिफ़ रोड नम्बर २४ के इस मकान में मैं तीन सप्ताह रहा। पता लगा कि मिस्टर ग्रेविल, मेरे लिए अपना कमरा ख़ाली कर, स्वयं नीचे के ख़राब कमरे में जा रहे थे और मेरे इस मकान में आने से एक सप्ताह पहले वे इस कमरे में आये थे। मैंने समझ लिया, यह सब पहले से तैशुदा मुआमला है। और मिस्टर मूअर भी पार्टी का ही आदमी है।

भला मुझे उसका क्या डर था? उलटा मुझे एक नया अनुभव प्राप्त करने की सामग्री मिल गई। खाने के बाद रोज़ मिस्टर ग्रेविल से मेरी बातचीत होती थी। बड़ा वाक़िफ़कार आदमी, हिन्दुस्तानी राजनीति से परिचित, हमारे लीडरों के नामों-कामों का जानकार। मेरे पासपोर्ट के विषय में ख़ास दिलचस्पी आपको थी। मुझसे सब बातें पूछीं। मुझे कुछ छिपाना तो था नहीं। पंजाब-गवर्नमेंट के अत्याचारों की सब बातें

मैंने कहीं। मिस्टर ग्रेविल ने आख़िर एक दिन मुझसे कहा—"पासपोर्ट आपको मिल जायगा, पर जर्मनी जाकर बोलशेविकों से मत मिलिएगा। बोलशेविक लोग उन आदमियों की तलाश में है जो रूस का हिन्दुस्तान से सम्बन्ध करा दें। हमारी गवर्नमेंट को यही ख़ौफ़ है।" मैं बोलशेविकों के विरुद्ध हूँ ही। मैं उनके सिद्धान्तों को नहीं मानता। मैंने उससे कहा कि मैं तो कट्टर नेशनलिस्ट हूँ, बोलशेविज़्म के पास नहीं खड़ा होता।

इधर तो घर में मिस्टर ग्रेविल मेरे साथ खिचड़ी पकाते, उधर मैं इंडिया आफ़िसवालों के पीछे हाथ धोकर पड़ा। वहाँ एक मिस्टर सिलवर नाम के व्यक्ति से भेंट हुई। आपने मेरी सारी कथा सुन कर मेरे साथ सहानुभूति दिखलाई। उन्होंने जर्मनी जाने का ख़ास कारण पूछा। मैंने कह दिया कि इँग्लेंड में बेशक डाक्टर हैं, मगर जिस डाक्टर ने मेरा पहले इलाज किया था मैं उसी के पास जाऊँगा, दूसरे डाक्टर से इलाज नहीं करवाना चाहता। उनकी सम्मति के अनुसार एक चिट्ठी इसी ढंग की लिखकर सेक्रेटरी आफ़ स्टेट के दफ़्तर में भेज दी।

सत्यदेव परिव्राजक

अब तमाशे की बात सुनिए। तीन वर्षों से मैं पासपोर्ट माँग रहा था। दो अच्छे डाक्टरों के सार्टीफ़िकेट मौजूद थे। भारत के अच्छे से अच्छे ख़ुफ़िया पुलिसवाले ने मुझे जांच लिया था कि आँखें सचमुच ख़राब है, तिस पर भी अभी इंडिया आफ़िस को तसल्ली नहीं होती थी। मिस्टर ग्रेविल एक दिन मुझे घर से इस बहाने से ले गये कि चलो, हाई कमिश्नर से पासपोर्ट का तक़ाज़ा करें। मैं प्रसन्न हो गया। रास्ते में वे कभी कहते—"देखते हैं इस इमारत को। कैसी उमदा बनी हुई है।" मैं आह भर कर उत्तर देता—"अफ़सोस मुझे अच्छी तरह दीखता नहीं।" फिर चलते चलते फ़ौरन बोल उठते—"देखिए! वह सिप ही खड़ा है।" मैं जवाब देता—"भाई, मुझे उतनी दूर का आदमी सूझता नहीं।" ब्रिटिश नेवी (British Navy) की इमारत के पास जाकर बोले—

"पांच मिनट के अन्दर ब्रिटिश जंगी जहाज़ चीन की तरफ़ रवाना हो सकते हैं।"

मैंने कहा—"मेरे प्यारे, अँगरेज़ों की शक्ति बहुत बड़ी है। इनका मुक़ाबिला कौन कर सकता है?"

इस प्रकार घुमाते हुए एक स्थान पर ले गये। उन्होंने मुझसे कहा—

"आप यहाँ ठहरें, मैं आता हूँ।"
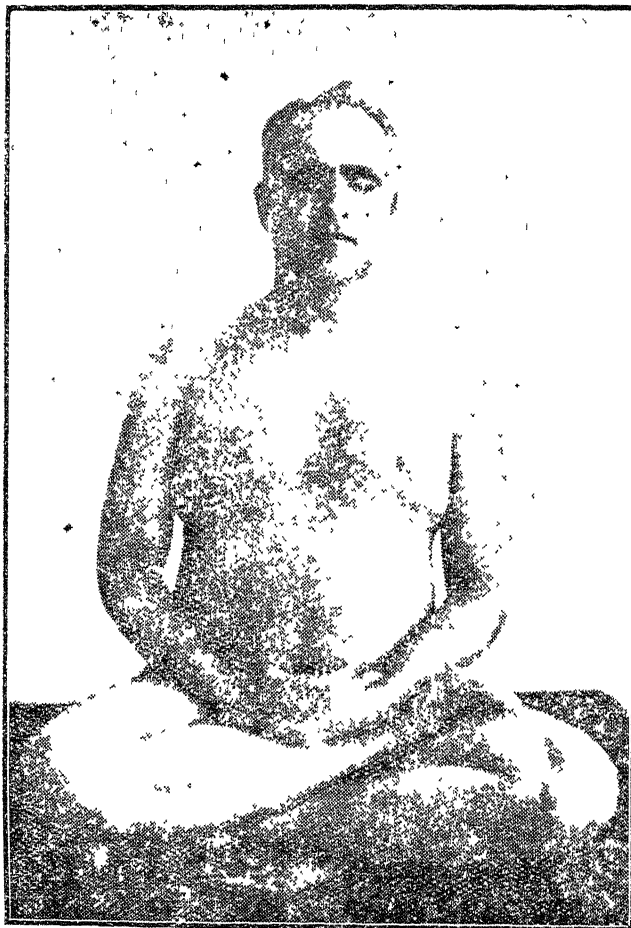
वे चले गये। कड़ी सरदी के समय मैं लाचारी-से वहाँ टहलता रहा। सड़क पर लोग आ जा रहे थे। मेरी टाँगें सर्द हो गईं। बड़ी देर के बाद ग्रेविल साहब आये और बोले—

"माफ़ कीजिएगा। देर हो गई। चलिए विक्टोरिया-होटल में चलें" मैंने कहा—"मेरी तो टाँगें भी सर्दी से अकड़ गई हैं।" मिस्टर ग्रेविल ने हँसकर कहा—"विक्टोरिया-होटल में आग के पास बैठेंगे।"

मैं बड़ा खुश हुआ। उस चौड़ी सड़क के पास कुछ मिनट चलने से विक्टोरिया-होटल आजाता है। लन्दन-नगरी का यह बड़ा अच्छा होटल है। रास्ते में चलते-चलते मैंने भाँप लिया कि दो आदमी हमारे पीछे लगे हैं। मैंने समझ लिया कि मिस्टर ग्रेविल ने उनकी तसल्ली कराने के लिए टेलीफ़ोन देकर उन्हें बुलाया है। वे कौन थे, सो प्रभु जानें।

विक्टोरिया-होटल के सजे हुए गर्म कमरे में पहुँचकर मैं सन्तुष्ट हुआ। दो बड़ी मुलायम गद्देदार कुर्सियों पर हम दोनों आग के सामने बैठ गये। नये आगन्तुक सज्जन हमारे पीछे सट गये—इतने फ़ासले पर जहां से उन्हें हमारी बातचीत साफ़ सुनाई दे।

मिस्टर ग्रेविल ने मुझसे बड़े प्रेम से कहा—"मिस्टर देवा, आपको पासपोर्ट एक-दो रोज़ में ज़रूर मिल जायगा। आप चिन्ता न करें। पर यह तो बताइए, आज शुक्रवार है, यदि कल मिल गया और हमें रविवार को जाना हुआ तो आप रुपये का प्रबन्ध कैसे करेंगे?"

मैं (ज़रा हैरानी से) बोला—"आप भी चलेंगे।" मिस्टर ग्रेविल—"हाँ, मुझे लिपज़िक (जर्मनी) जाना है। आपको बर्लिन में छोड़ता जाऊँगा।"

मैं (खुश होकर)—"यह तो बड़ा अच्छा हुआ।"

मिस्टर ग्रेविल—"रुपये का प्रबन्ध?"

मैं—"इसकी आप चिन्ता न करें। दस-बारह पौंड मैं मिस्टर कोछर से उधार माँग सकता हूँ।"

तब मिस्टर ग्रेविल गम्भीरता से बोले—"रास्ते में आपको कहाँ कहाँ उतरना है? किससे मिलना है?"

मैंने ज़रा विस्मित होकर उत्तर दिया—"उतरना-पुतरना कहीं नहीं। मैं सीधा बर्लिन जाऊँगा। मुझे किसी से मिलना नहीं है।"

मिस्टर ग्रेविल ने बड़ी सहानुभूति-पूर्वक कहा—"कुछ आपको खरीदना है? हिन्दुस्तान भेजना हो तो मैं रास्ते में ओस्टेंड (बेलजियम) या दूसरे किसी शहर से सस्ते में दिला सकता हूँ।"

मैंने अपने क्रोध को खूब रोक कर कहा—"नहीं भाई, मुझे कुछ नहीं लेना, मैं तो केवल आँख के इलाज के लिए योरप आया हूँ। मैं कोई व्यापारी तो हूँ नहीं।"

मिस्टर ग्रेविल ने खोद खोद कर उलट-फेर कर बहुत-से सवाल पूछे, मैंने सब साफ़ सीधे उत्तर दे दिये। मुझे कुछ छिपाना नहीं था और मेरा कोई दूसरा प्रोग्राम नहीं था। जब उसने सब प्रकार से तसल्ली कर ली तब उठकर उन दो व्यक्तियों के सामने खड़ा होकर कुछ इशारे से बातें कीं। मैं अपना ओवरकोट पहनने लगा। मेरा चित्त खिन्न था। मेरे मन में रह रहकर उबाल उठता था। शोक की तरङ्गें मेरी आँखों में उमड़ी आती थीं। मैंने चित्त में कहा—

"इतने बड़े विशाल धन-धान्य-पूरित देश की हम सन्तान, वह हमारे पूर्वजों की मिलकियत। इस सुन्दर रत्नगर्भा माता के तेंतीस करोड़ बच्चे और उनकी यह दुर्गति! मैं चोर नहीं हूँ, डाकू नहीं हूँ। ईमानदारी से जीवन व्यतीत करता हूँ। आंखों के इलाज के लिए जर्मनी में डाक्टरों के पास जाना चाहता हूँ। ये लोग कौन होते हैं मेरी इस प्रकार परीक्षा करनेवाले? इनको क्या हक़ है मेरी इस प्रकार जांच-पड़ताल करने का?"

दिल कड़ाकर मैंने उमड़े हुए दुख-प्रवाह को थामा और मुस्कराता हुआ मिस्टर ग्रेविल के साथ होटल से बाहर आया।

× × ×

पाठक, इस दुखी लेखक ने कैसे कैसे अत्याचार सहे हैं, कभी उनकी कथा विस्तार से मैंने अपने देशवासियों को नहीं सुनाई, क्योंकि मुझसे कई गुना अधिक कष्ट दूसरों ने भोगा है और भोग रहे हैं। इस कारण अपना दुःख, अपना दर्द जितना थोड़ा कहा जाय उतना ही अच्छा है।

उस सुबह जब मिस्टर डाबसन ने शिमले में मुझे बुलाया था और मुझ पर झूठे आरोप लगाये थे, जिनके कारण मैं उत्तेजित होकर दफ़र से निकला था, मिस्टर ग्रेविल की विक्टोरिया-होटलवाली जिरह मे उनकी गन्ध बराबर आ रही थी। मेरे योरप आने के इसी लिए तीन बड़े कारण थे—

१. अपने ऊपर लगाये गये आरोपों की तहक़ीक़ात, भारत-मन्त्री के इंडिया-आफ़िस-द्वारा करवाना।
२. आँखों का जर्मनी में इलाज।
३. पासपोर्ट मिलने मे जो बाधायें उठती हैं उनका फ़ैसला भारत-मन्त्री से करवाना।

उपर्युक्त तीनों उद्देशो के सम्बन्ध में जब मैंने मिस्टर मांटगुमरी से चर्चा की तथा जब उनके विषय में मिस्टर सिलवर (इंडिया-आफ़िस) को लिखा तब फ़ैसला यही हुआ कि मैं पहले जर्मनी जाकर अपनी आँख का इलाज करवाऊँ, इसके बाद जब इलाज हो जाय तब फिर दूसरी बातों को उठाऊँ। यदि पहले से वे बातें उठाई जायँगी तो जर्मनी जाने में शायद बाधा पड़ जाय। मैंने यह भी सोचा कि जर्मनी जाना प्रत्येक अवस्था में अत्यावश्यक है, क्योंकि वहीं से तो सारा झगड़ा आरम्भ होता है।

आख़िर इंडिया-आफ़िस ने यह फ़ैसला किया कि मैं तीन महीने के लिए जर्मनी और आस्ट्रिया जाऊँ। यदि वहाँ अधिक ठहरने की आवश्यकता पड़े तो डाक्टर का सर्टीफ़िकेट भेजूँ, तब वहां ठहरने की अवधि बढ़ सकेगी। मरता क्या न करता। मैंने स्वीकार कर लिया और मिस्टर मांटगुमरी को इसी विषय की चिट्ठी लिख दी। मगर यह भी मैंने साफ़ कह दिया कि यदि जर्मनी में आंख बनने के बाद मुझे जाड़ा सतायेगा तो मैं फ़्रांस अथवा इटली जाऊँगा। इंडिया-आफ़िसवालों को कोई बाधा नहीं देनी होगी। मिस्टर मांटगुमरी ने कहा—"आवश्यकता पड़ने पर आप लिखिएगा। हम लोग प्रबन्ध करेंगे।"

इस प्रकार सब बातें तय कर मैंने अपने पासपोर्ट पर जर्मनी और आस्ट्रिया की मोहर लगवा ली। दो या तीन दिसम्बर सन् १९२७ को यह सब हुआ और चार दिसम्बर रविवार को मैंने लन्दन छोड़ने का निश्चय कर लिया।

यहा पर थोड़ा-सा लन्दन का अनुभव लिख देना अनुचित न होगा।

मुझे इस थोड़े से अनुभव से पता लगा, आगे भी ख़ूब सुन रक्खा था कि यहा के अँगरेज़ों में और भारत में शासन-हेतु जानेवाले अँगरेज़ों में बड़ा अन्तर है। यहाँ अँगरेज़ बड़े सभ्य स्वतन्त्रताप्रिय तथा सहानुभूति रखनेवाले होते हैं। मुझे कई बार आंखो की लाचारी से मार्ग पूछना पड़ा, मोड़ पर मोटरों की भीड़ से सड़कें पार करना कठिन होगया, ऐसे अवसरों पर जिस किसी से मैं सहायता मांगता वह अपना काम छोड़कर मेरा हाथ पकड़ कर मुझे सड़क के ख़तरे से बचाता। कई बार तो कुछ फ़ासले तक लोग मुझे पहुँचाने गये।

एक बार शहर से लौटते हुए न जाने क्यों बिजली की गाड़ी में मुझे बेहोशी-सी होने लगी। मैं रूमाल से ज़ोर ज़ोर से अपने को हवा करने लगा। जब मैं ट्रेन से उतरा तब एक भले आदमी ने मेरे पास आकर कहा—

"क्या मैं आपकी कुछ मदद कर सकता हूँ?"

ये बातें सामाजिक सङ्गठन की हैं। ट्रेनवाले सब बड़े शिष्टाचार से बोलते-जवाब देते थे। इस गुण का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा। अँगरेज़-जाति में व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा की भावना बड़ी ज़बर्दस्त है।

लेकिन एक दूसरी विचित्र बात देखने में आई। अँगरेज़ अपने में मस्त हैं। अपने देश से सम्बन्ध रखनेवाली बातों में दिलचस्पी ख़ूब लेते हैं, बाक़ी देशों की कुछ परवा नहीं। हिन्दुस्तान के विषय में इनके समाचार-पत्रों में कुछ छपता ही नहीं और न इनके अख़बार हिन्दुस्तानियों के लेखों को ही छापते हैं। कोई ख़ास बड़ा आदमी कुछ लिखे तो मुश्किल से छापते है। जर्मनी और आस्ट्रिया के समाचार-पत्रों में भारत के विषय में अधिक छपता है। इँग्लेंडवाले अपने खेलों, अपने नाच-तमाशों, अपने प्यार-चकारों और अपने राजनीति में मस्त हैं।

एक बात और भी मैंने देखी। अँगरेज़ों, स्काटलेंडवालों और वेल्ज़वालों में बड़ा फ़र्क है। अँगरेज़ अधिक

उदार, राजनीतिकुशल और स्वतन्त्रताप्रिय हैं। बेल्ज़वाले तथा स्काच मज़हब में कट्टर और (Sentimental) होते हैं। इँग्लेंडवालों ने आयर्लेंड, वेल्ज़ और स्काटलेंड इन तीन भिन्न प्रकार के लोगों को क़ाबू में रखने, उन पर हुकूमत क़ायम करने तथा उनकी सहायता से अपना साम्राज्य बढ़ाने में बड़ा अनुभव प्राप्त किया है। यही इनकी राजनीति का ख़ज़ाना है। (Divide and Rule) द्वयीकरण-नीति-शास्त्र की शिक्षा इन्हें यहीं सदियों से मिली है। यह भी इनका बड़ा सौभाग्य रहा

भारत के इसी निर्भीक राष्ट्रीय नेता, पण्डित मोतीलालजी नेहरू, ने स्वामी सत्यदेव को पासपोर्ट दिलाने में बड़ी सहायता की और पंजाब गवर्नमेंट से मोर्चा लिया

है कि इन्हें उस प्रकार की चोटें नहीं खानी पड़ीं जैसी कि फ़्रांस ने सन् १८७० में खाई थीं अथवा जैसी जर्मनी को पिछले महासमर में लगीं। यदि इँग्लेंड को एक बार भी ऐसी टक्कर, ऐसी भयङ्कर पराजय, मिल जाती तो इँग्लेंड कभी खड़ा न हो सकता। क्योंकि फ़्रांस और जर्मनी में बहुत अधिक ठोस राष्ट्रीयता की सामग्री है। इँग्लेंड तो ईश्वरीय कृपा से इस ऊँचे दर्जे पर पहुँच गया है। पहले जब छोटे छोटे युद्ध होते थे तब इँग्लेंड के लोग अपने अदम्य उत्साह, अपने सङ्गठन, अपने प्राकृतिक सुरक्षित देश के कारण विजयी होते रहे। जब बड़ी लड़ाइयों का समय आया तब इँग्लेंड ने अपने साथी-सङ्गी अपने उपनिवेश ऐसे खड़े कर लिये जो इस छोटे से देश के झंडे की रक्षा करें। परन्तु यह मैं अपने राजनैतिक अनुभव से कहता हूँ कि यदि एक बार भी इँग्लेंड को किसी महायुद्ध में गहरी टक्कर लग जायगी तो सभ्य

संयुक्तप्रान्त के स्वर्गीय गवर्नर सर एलक्ज़ेंडर मुडीमैन, जिन्होंने स्वामी सत्यदेव को पासपोर्ट देकर अपने दयालु स्वभाव और विशाल हृदय का परिचय दिया

संसार को अत्यन्त विस्मयजनक बातें देखने में आयेंगी। क्योंकि इँग्लेंड और फ़्रांस से जर्मनी अधिक पुरुषार्थी है। वहाँ के लोग बहुत अधिक सहनशील, बड़े कार्य-निपुण और सङ्घप्रिय हैं। जर्मनी में अद्भुत वीर्य है। मार खा कर, भयङ्कर मार खाकर, जर्मनी बड़ी फ़ुर्ती से उभर रहा है। जर्मनी की आबादी इन दोनों देशों से अधिक है और ठोस आबादी है। सदियों से

बादशाहों की हुकूमत के नीचे रहनेवाले जर्मनों ने चट रिपबलिक खड़ी कर ली, और उसको बड़े परिश्रम से चला रहे हैं। दूसरे देशों में अब तक कई विप्लव हो गये होते। यह बात सच है कि जर्मनों में अहंमन्यता और स्वार्थ खूब है। यदि महासमर में जर्मन जीत जाते तो फ़्रांस को शायद मिटा ही देते।

× × ×

पांच दिसम्बर सन् १९२७ को सबेरे साढ़े आठ बजे मैं बर्लिन-नगरी के फ़्रीड्रिक स्ट्रासा स्टेशन पर पहुँचा। प्लेटफ़ार्म पर अमरीकन ऐक्स कम्पनी का एजेंट मेरा रास्ता देख रहा था। उसको लन्दन से तार-द्वारा सूचना दी गई थी। उसने मेरा सब सामान अच्छी तरह से उतरवा कर मुझे स्टेशन के पास ही होटल अटलस में आठ मार्क (आठ शिलिङ्ग) रोज़ पर कमरा किराये पर दिला दिया। बड़े अच्छे साफ़ कमरे में पहुँचकर मैं निश्चिन्त हुआ। देशभक्त भाई कर्तारराम को मेरा पता लगा तो बेचारे दौड़े दौड़े आये और आकर प्रेम से मेरे खाने-पीने का प्रबन्ध किया। पास ही वेजीटेरियेन होटल हैं। वहाँ भोजन का प्रबन्ध सन्तोषजनक है।

पूरे चार वर्षों के बाद, भारी बाधाओं का सामना कर, सर मेलकम हेली-द्वारा दी हुई सब कठिनाइयों पर विजय प्राप्त कर आख़िर मैं जर्मनी पहुँच गया। दिसम्बर सन् १९२३ के इन्हीं दिनों में बर्लिन से चला था और इन्हीं दिनों फिर चार वर्षों के बाद लौटकर आगया। ये चार वर्ष भारत में कैसे बीते? किस किस दरवाज़े पर दौड़ना पड़ा। इन सबका सिंहावलोकन कर मैंने प्रभु को धन्यवाद दिया। उद्योग बड़ी चीज़ है। पुरुषार्थ में बड़ी करामात है। पुरुष कभी हिम्मत न हारे। लोहे की मूर्ति को चूमने से कई वर्षों के बाद उसमें भी उस चुम्बन का असर दिखाई देता है, और उसमें गड्ढा पड़ जाता है। कभी कैसी ही रुकावटें हों, कैसे ही रोड़े अटके हुए हों, कैसी ही निराशा का सामना हो, मगर मनस्वी और कार्य्यार्थी पुरुष अपने उद्देश में सफलता प्राप्त कर ही लेता है। उद्योग में अद्भुत शक्ति है। बलवती इच्छा में बड़ा चमत्कार है। असम्भव शब्द केवल कायरों और हीजड़ों के लिए है। उसके लिए सब कुछ सम्भव है जो अपने ध्येय की प्राप्ति में अपनी सब शक्तियों को लगा देता है।

प्यारे पाठक, जर्मनी में मैं दुबारा कैसे पहुँचा? इस प्रश्न का उत्तर मैंने सविस्तर दे दिया है। जर्मनी की इस दुबारा यात्रा में मुझे क्या अनुभव हुआ, आँख में क्या फ़ायदा हुआ, इत्यादि बातों को किसी दूसरे लेख में बतलाऊँगा।

शुक-संवाद

उत्तरार्द्ध

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(१)

सन्देश सुनकर सुन्दरी के,
शुक वहाँ से चल पड़ा।
अविराम गति पहुँचा तुरत,
लड़ता जहाँ वह वीर था॥

(२)

वह राह चलने से थका था,
एक तरु पर बैठ कर।
संग्राम क्या लखने लगा,
लखने लगा कल्पान्त को॥

(३)

नर-रक्त से संसिक्त थी,
किस भांति वह युद्ध-स्थली।
जैसे मघा की वृष्टि से,
कर्दममयी होती मही॥

(४)

सुनता किसी का कौन था?
कल-कल मचा इस भांति था।
जैसे प्रलय के काल में,
निर्घोष होता वज्र का।

(५)
चिंघाड़ करते थे कहीं, गज,
तीक्ष्ण शर से विद्ध हो।
परुषाक्षरों से भट परस्पर,
थे कहीं ललकारते॥

(६)
बाजे जुझाऊ बज रहे थे,
वीर कड़खे गा रहे।
जय-शब्द था होता कहीं,
कोई कहीं था चींखता॥

(७)
हुंकार वीरों का कहीं,
झंकार शस्त्रों का कहीं।
अनुपम तुमुल था हो रहा,
कोई वहाँ कायर न था॥

(८)
असि से किसी के शीस को,
ज्यों काटने कोई चला।
त्यों अन्य ने उसकी भुजा,
आकर कहीं से काट दी॥

(९)
सिर-हीन हो कोई सुभट,
असि को लिये था लड़ रहा।
ललकारता था दौड़कर,
कोई कहीं कर-हीन हो॥

(१०)
सुर-संघ होकरके नभस्थित,
था समर को देखता।
वीराङ्क-लगने के लिए,
सुरनारियाँ उत्सुक रहीं॥

(११)
वर वीर हत हो भूमि पर—
गिर भी न पाये, त्यों तुरत,—
सुरनारियों से आत्मा,
उनकी समुद स्वर में मिली॥

(१२)
शुक ने लखा इस भाँति रण,
देखा न पर निज नाथ को।
वह व्यग्र हो चिन्ताग्नि से,
यों चित्त में कहने लगा॥

(१३)
देखे असंख्यक वीर मैंने,
हन्त दोनों ओर के।
देखा न पर अब तक उन्हें,
जिनके लिए आया यहाँ॥

(१४)
रण छोड़ कर यदि भग गये,
तो नीचता का अन्त है।
उनको नरक में भी मिलेगा,
स्थान रहने को नहीं॥

(१५)
यदि वीरगति को पा गये,
तो धन्य उनका जन्म है।
पर हाय मैं जाऊँ कहाँ,
किससे कहूँ सन्देश को॥

(१६)
कुछ सोच करके शुक उड़ा,
झटपट शिविर में वह गया।
देखा उन्हें तैयार थे,
संग्राम-यात्रा के लिए॥

(१७)
बैठा निकट करके नमस्कृति,
प्रेम से पूछा कुशल।
आरम्भ से सन्देश को,
दे मुद्रिका कहने लगा॥

(१८)
उर से लगा कर मुद्रिका को,
चूम कर फिर वीर वह।
शुक के वदन से शान्त हो,
सन्देश को सुनने लगा॥

(१९)

रोमाञ्च होता था उसे,
तन था फड़क उठता कभी ।
प्रेमाश्रु भी बहता रहा,
सन्देश सुनकर वीर का ॥

(२०)

ज्यों ही हुआ चुप कीर त्यों,
वह वीर यों कहने लगा ।
हे कीर ! तू है धन्य सेवक,
बोल क्या स्वागत करूँ ?

(२१)

शुक ने कहा आज्ञा मिले,
मैं लौट जाऊँ गेह को ।
कहिए उसे जो आपको,
कहना प्रिया के हेतु हो ॥

(२२)

मैं रुक नहीं सकता यहाँ,
पत्नी व्यथित है [illegible] ।
जब तक न मैं जाऊँ वहाँ,
उसको मिले क्यों सान्त्वना ?

(२३)

प्रेमार्द्र हो सस्मित वदन,
फिर वीर बोला टोम से ।
शुक ! शोक करना व्यर्थ है,
मरना समर में है भला ॥

(२४)

हूँ वीर विरोचित करूँगा,
कीर ! कर से कर्म को ।
अभिमान से हूँ मानता,
सर्वस्व अपना धर्म को ॥

(२५)

चाहे नरक में वास हो,
या स्वर्ग-सिंहासन मिले ।
पर दुर्जनों की बंक भौंहें,
देख सकता मैं नहीं ॥

(२६)

अपकीर्ति यदि जग में हुई,
तो व्यर्थ जीवन होगया ।
चाहे मरण हो कीर ! पर,
परिभव न हो निज शत्रु से ॥

(२७)

कायर कपूतों से कभी,
माता न होती पुत्रिणी ।
त्राता नहीं जो देश का,
वह कोख में आता वृथा ॥

(२८)

जो दासता के पाश से,
उन्मुक्त है संसार में ।
है जीव जीवित बस वही,
सेवित न जिससे शत्रु हो ॥

(२९)

नरता मिली तो क्या मिला ?
यदि दासता भी है मिली ।
परतन्त्रता में सुख जिसे,
उसको न क्यों पशुता मिली ?

(३०)

खेलाड़ियों के हाथ पड़,
जो कठघरे में बन्द है ।
उस सिंह से शूकर सुखी,
जो घूमता स्वच्छन्द है ॥

(३१)

वह कौन-सा है दुःख जो,
परतन्त्रता से घोर है ?
परतन्त्र नर से क्या बड़ा—
पापी कहीं कोई हुआ ?

(३२)

परतन्त्रता के तत्त्व को,
तुमसे कहूँ शुक ! और क्यों ?
परतन्त्रता के क्लेश का,
अनुभव तुम्हे क्या है नहीं ?

(३३)
सन्देश का अब कीर ! उत्तर—
दे रहा हूँ सुन उसे।
सम्पूर्ण कह देना प्रिया से,
बात कोई रह न जा ॥

(३४)
वीराङ्गने ! बातें तुम्हारी,
सब सही हैं, सत्य हैं।
तुमने निवाहा धर्म निज,
मैं भी उन्हें हूँ जानता ॥

(३५)
वह वीर ही क्या जो समर की—
प्राप्ति से हर्षित न हो।
रण में मरण-मारण कभी,
पाते अभागे हैं नहीं ॥

(३६)
उपदेश जो तुमने दिया—
मुझको, उसे मैंने सुना।
पर है तुम्हारा धर्म भी कुछ,
ध्यान से उसको सुनो ॥

[क्रमशः

संघ-शक्ति

[श्रीयुत रामानुजलाल श्रीवास्तव]

ड़कपन से ही मेरी यह धारणा थी कि मुझमें एक धुरन्धर लेखक के सभी गुण विद्यमान हैं। परन्तु मेरा दुर्भाग्य समझिए या जन-साधारण की अरसिकता, बहुमत कुछ कुछ मेरे विपक्ष में जान पड़ता था। इसमें सन्देह नहीं कि मेरे कुछ विशेष प्रेमी या अत्यन्त निकट सम्बन्धी मेरी रचनाओं को देख कर कह उठते थे कि "ऐसी ख़राब तो नहीं है" अथवा "इसे किसी पत्र में ज़रूर भेज दो"। परन्तु अपने प्रेमियों और सम्बन्धियों से यह कहने का आत्मबल मुझमें नहीं था कि प्रस्तुत रचना, कविता या कहानी हिन्दी के सभी प्रमुख और साधारण पत्रों के सम्पादकों-द्वारा लौटा दी गई है और यह चक्करदार सफ़र इस पुलिन्दे ने इतनी फुर्ती से किया है कि इसके लिए डाक-विभाग की प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जाता।

पुराने ज़माने में लोग एक प्रकार से बाण चलाते थे जो निशाने को मार कर फिर तरकस में लौट आता था। यह मैं नहीं जानता कि निशाना ख़ाली जाने पर भी वह तरकस में लौटता था या नहीं। पर यदि तीर लौट आता था तो उससे मेरे लेखों की उपमा दी जा सकती है। क्या आपको इसका अनुभव है कि जब पोस्टमैन लेखक को उसकी आ[illegible]ओं से भरा पैकेट वापस लाकर देता है तब उसे कैसा मालूम पड़ता है? सच मानिए, सिवा अफ़ीम की दूकान के उस वक़्त उसे और कुछ नहीं सूझता। सम्पादक को क्या.. ...उँह ! सम्पादक की बात जाने दीजिए। एक शब्द यदि आप सीख जायँ तो आप भी सम्पादक हो जायँ। वह शब्द है 'स्थानाभाव'। जान पड़ता है, स्वर्ग-नरक मे यही शब्द सुन सुनकर ये महाशय पृथ्वी-माता का आश्रय लेते है और जन्म लेते ही पपीहा की-सी रट आरम्भ कर देते हैं। 'सम्पादक' इस लेख का विषय नहीं है, अतएव इस प्रसङ्ग को बढ़ाना व्यर्थ है, यों कहना तो बहुत कुछ था।

हां, तो सत्रह-अठारह साल की उम्र से तेईस-चौबीस साल तक इस साहित्यिक मस्तिष्क की भीषण ज्वालामुखी लगातार आग और पत्थर उगला करती थी। कविता और कहानी पर तो मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार था। क़लम पकड़ी नहीं और चट एक कहानी निकल गई। बाज़ार में सौदा तक कविता के माध्यम से हुआ करता था। रात-दिन इसी व्यसन

में कटते थे। मेरे स्वभाव में एक प्रकार की तन्मयता-सी आगई थी। कभी अपने किसी उपन्यास के नायक की बहादुरी के मारे तने जा रहे हैं, तो कभी अपनी किसी कहानी की नायिका के दुख में आँसू बहा रहे हैं। कभी अपने किसी नाटक के दुष्ट पात्र की दुष्टता पर दाँत पीस रहे हैं, तो कभी अपने किसी प्रहसन के मसख़रे के मज़ाक पर खिलखिला रहे हैं। एक रोज़ ऐसी ही किसी हालत में पिताजी ने देख लिया। उन्होंने दो-एक दिन बाद बुलवाया और बहुत-सा चुमकार-पुचकार कर कहने लगे—"देखो बेटा! तुम्हारे लक्षण बहुत अच्छे नहीं हैं। हम नहीं चाहते कि तुम्हारे कारण बेचारी ब्रिटिश सरकार व्यर्थ एक झमेले में पड़ जाय। इसलिए हमने तुम्हारे निर्वाह का सब प्रबन्ध कर लिया है। एक नौकरी पक्की कर ली है। तुम फ़ौरन उसे मंज़ूर कर लो और काम पर चले जाओ"। ग़ुस्सा तो मुझे बहुत आया, पर क्या करता? गुणग्राही पिता का पुत्र होना तो अपने हाथ में न था।

मैं नौकरी पर चला गया। अपने सब काग़ज़-पत्र और हिन्दी-साहित्य के प्रति अपना अथाह प्रेम भी साथ ही लेता गया। घर में सिवा बाल-बच्चों तथा माता-पिता के और कुछ नहीं छूटा। पहुँचते ही मैंने अपना दफ़्तर खोल दिया और चार्ज लेते न लेते एक कहानी चट से निकल गई, जैसे छोटे-मोटे स्टेशनों से डाकगाड़ी निकल जाय। चार्ज लेने पर मुझे मालूम हुआ कि यह विकट कवि पूर्वजों के अभिशाप से किसी कपड़े के कारख़ाने में क्लार्क हो गया है। पर इससे क्या मैं हतोत्साह हो सकता था? कारख़ाने के पत्र-व्यवहार में मैंने ऐसे ऐसे विचार, ऐसी ऐसी उक्तियाँ, ऐसी ऐसी कल्पनाओं का उपयोग आरम्भ किया कि स्वयं सेठजी दिन में दो-चार बार मेरे पास आ-आकर नोटिस की धमकी देने का कष्ट करने लगे। मुझे इसकी परवा ही क्या थी? नौकरी ले लेंगे, मेरी सूझ, मेरी कल्पना तो नहीं छीन लेंगे। और, हाँ, नोटिस तो वे बेचारे क्या देते! एक काम तो उनका मुझसे ऐसा निकलता था कि दस-पाँच लट्ठधारी भोजपुरिए कुछ नहीं थे और मैं अकेला सब कुछ था। वह काम था वसूली बक़ाया। अपने पत्रों में मैं ऋण की ऐसी कठोर समालोचना करता था, ऋणी के प्रति ऐसा घातक व्यङ्ग्य करता था, ऐसी निर्दय चोट करता था, इहलोक, परलोक और ख़ासकर परलोक के एक नामी मुहल्ले का ऐसा भीषण चित्र खींचता था कि बड़े बड़े दिवालिये-दास और पचाऊराम तिलमिला तिलमिला कर कौड़ी कौड़ी भेज दिया करते थे। मेरा ध्येय यह था कि व्यापार-संसार में भी साहित्य को उचित स्थान दिया जाय। इसी सदुद्देश को सामने रख कोठी के एक ट्रैवलिंग एजेन्ट को चिट्ठी लिखने लगा तब झट से एक कविता निकल गई।

एजेन्ट महोदय भला यह क्या समझते? कुल बी० ए० तक तो पढ़े ही थे। झट सेठजी के सामने मेरी उत्कृष्ट रचना रख दी, जैसे सेठजी के ख़ानदान में कविता ही होती चली आई हो। चिट्ठी लिये सेठजी मेरे पास पहुँचे और एक ही साँस में न मालूम किस पुराण का कौन-सा अध्याय बक गये। कथा समाप्त होते होते इतना मेरी समझ में आया कि मेरे इस महीने की तनख़्वाह का कुछ हिस्सा सेठजी की सर्वव्यापी तोंद में समा जायगा। सोच लिया कि इन मारवाड़ियों के हिस्से तो बस रोकड़ पड़ी है।

इसी तरह दिन पर दिन बीतने लगे। पिताजी के परलोक-वास के बाद सारी सम्पत्ति मेरे हाथ आई। नौकरी छोड़ कर मैंने एक एकान्त स्थान में डेरा डाल दिया। निश्चय कर लिया कि अब जीवन के महदुद्देश को पूर्ण करने के लिए जी तोड़ परिश्रम करूँगा, जैसे हमारे देश में जीर्ण बैल सूखा खेत जोतने के लिए करता है। कोई महाकाव्य न रच सका तो एक कथासरित्-सागर लिख कर फेंक ही दूँगा। बहुतेरी क़लमें, दावातें, काग़ज़ वग़ैरह ख़रीद कर रख लिये। ऐसा न हो कि इधर खड़ाऊँ की आवाज़ की तरह खटाखट कहानियाँ निकलने लगें और इधर स्टेशनरी कम पड़ जाय। फिर लिखने का लुत्फ़ ही क्या रहा। घरवालों से कह दिया कि कोई मेरी समाधि न भङ्ग करे। भोजन के समय मैं स्वयं उठ कर चला आया करूँगा। पर बड़ों का कहना न मानने में ही लड़कों का लड़कपन है, इसलिए वे जब तब कमरे में आही जाते थे और 'आप' तो आप ही हैं,

आप को क्या कहें ? मैं कवि हूँ और कट्टर कवि हूँ। और कहानी-लेखक भी कोई मामूली दर्जे का नहीं हूँ। पर मेरे स्वभाव में क्रान्ति नहीं है। बात ज़रा आश्चर्य की है, पर है सच। श्रीमतीजी न कवि हैं, न कहानी-लेखक। फिर भी स्वभाव बोल्शेविक है। इसलिए मैं श्रीमतीजी से ज़रा घबराया-सा ही रहता था।

मैंने लिखना आरम्भ कर दिया, अर्थात् सब स्वर, व्यञ्जन, मात्रा और पूर्णविराम के साथ साफ़ साफ़ 'श्रीगणेश' लिख डाला। फिर क़लम का उल्टा सिरा मुँह में डाल, कभी आँखें आसमान पर चढ़ा और कभी बन्द कर, कभी क़लम दावात में डाल और काग़ज़ पर चित्र-विचित्र धब्बे गिरा गिरा पूर्ण साहित्यिक रूप से मैंने सोचना आरम्भ किया। बहुत देर के बाद निश्चय किया कि 'श्रीगणेश' के नीचे एक लकीर खींच देनी चाहिए, ताकि भगवान् के बैठने को कुछ सहारा तो हो जाय। इस चमत्कार-पूर्ण भाव को लिपिबद्ध करने के लिए ज्योंही मैं प्रस्तुत हुआ कि देखता क्या हूँ कि मेरी उँगलियों में स्याही है, कपड़ों पर स्याही है, टेबल पर स्याही है, काग़ज़ पर स्याही है, दावात के बाहरी हिस्से में बहुत-सी स्याही है, पर अभी अभी मैंने दावात भर कर रक्खी और उसमें बिलकुल स्याही नहीं है। बड़ा अचरज हुआ कि स्याही सब पी कौन गया ? इधर-उधर देखा तो एक चूहा भागा चला जा रहा था। मैंने सोचा कि हंडी की तरफ़ से घूम-फिर कर टेबिल पर चढ़ गया होगा। सुषुप्तावस्था में किसको क्या ख़बर ? यह तो ग़नीमत समझिए कि मेरी स्वाभाविक अग्र-शङ्का आड़े आगई और फ़ौरन नई दावात टेबिल पर शोभा देने लगी, नहीं तो इतना विचित्र भाव बिना लिपिबद्ध हुए रह जाता। मैंने 'श्रीगणेश' के नीचे लकीर खींच ही दी।

द्विगुणित उत्साह से मैंने फिर सोचना आरम्भ किया। स्याही का जैसे ध्यान ही भूल गया हो। दो-एक बार क़लम भी तालू में लग गया, पर मैं तो विचार-मग्न था। एकाएक देखता क्या हूँ कि सामने की दीवार कुछ पीछे सरक गई, टेबिल फैल कर बड़ा हो गया, दस-बारह कुर्सियाँ टेबिल के आसपास लग गईं और कोने कोने से विचित्र विचित्र सज्जन निकलने लगे और आ आकर कुर्सियों पर विराजने लगे। सबके बैठ जाने पर एक महाशय ने कहना आरम्भ किया—"आप लोग जानते ही हैं कि मैं हिन्दी-प्रेमी ही नहीं; देश-प्रेमी भी हूँ। मैंने काशी में भरत को जीवन प्रदान किया है। (मैं, मनही मन, रामकृष्ण वर्मा !) मैं साहित्य-प्रेमी भी हूँ, क्योंकि मैंने अनेक उपन्यास इत्यादि लिख कर फेंक दिये हैं। यदि यह कहा जाय कि हिन्दी में मैं उन्नत कथा-शैली का पति पिता हूँ तो मैं इसका जवाब यही दूँगा कि इस सम्मान के योग्य मैं हूँ तो नहीं, पर जब आप सब लोगों की ऐसी ही राय है तब मेरी भी स्वीकृति ही समझिए। अस्तु। अब मतलब की बात सुनिए। हमीं लोगों के समान एक साहित्य-रत्न गर्भवास से लेकर आज तक ख्याति-प्राप्ति के लिए लगातार परिश्रम कर रहा है। उसी सज्जन का गृह आज इस महासभा का पण्डाल बना हुआ है। मैंने इस साहित्य-सेवी को कहानी-कष्ट में तड़फते हुए देखा और अपनी स्वाभाविक उदारता के कारण भक्त की सहायता के लिए आगया हूँ। प्रयोग करने से मालूम हुआ कि इस बेचारे को मेरे ब्रह्मास्त्र अर्थात् स्मरणशक्ति, विचारशक्ति, कल्पनाशक्ति, कोई फ़ायदा नहीं पहुँचा सकते। अतएव कलियुग में संघ-शक्ति की उपादेयता का विचार कर मैंने आप लोगों का स्मरण किया और धन्यवाद पूर्वक मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग इस शीघ्रता से उपस्थित हो गये, जैसे मिठाई बँटती हो। अस्तु, मेरी यह राय है कि हम सब मिल कर इस भक्त के लिए एक सुन्दर कहानी तैयार कर दें, जिससे इस बेचारे का कहानी-ज्वर कुछ तो हलका हो जाय। सबने इस प्रस्ताव का समर्थन किया और सर्व-सम्मति से कथा आरम्भ करने का भार सभा-नायक पर ही जा पड़ा।

बाबू रामकृष्ण वर्माजी ने इस तरह कथा आरम्भ की—"जहाँ न जल की कमी है न जल के जीव-धारियों की, न फल की कमी है न छिलकों की और न पवन की कमी है न पवनवंशियों की, ऐसी सुन्दर सुरम्य वङ्ग-भूमि में एक गाँव के एक घर के एक पोखर के किनारे एक दिन एक सर्वाङ्ग सुन्दरी बैठी बरतन माँज रही थी। सुन्दरी का नाम वङ्गलता था। उसका ध्यान कभी बरतनों पर,

कभी पानी पर और कभी पानी में पड़ते हुए अपने प्रति-बिम्ब पर चला जाता था। अभी बरतनों का मांजना ख़तम नहीं हुआ था कि एक दस-बारह साल का बालक दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा और कहने लगा कि "मामी, मामी, तुम्हारे भाई तुम्हें लेने आये हैं"। यह संवाद सुन कर वङ्गलता उठ खड़ी हुई और हाथ धो कर घर के अन्दर चली गई। वङ्गलता ने अपने भाई का क्या स्वागत-सत्कार किया, यह तो मालूम नहीं, पर दूसरे दिन सन्ध्या के समय उसे पोखरे पर न देख और न घर के सामने यात्रा के लिए डोली-कहार तैयार देख, यह अनुमान कर लेना बहुत सहज था कि अपने भाई को अधिक दिन रोक कर उनका सत्कार करने की अपेक्षा उनके साथ मायके जाने की वह ज़्यादा इच्छुक है। लगभग आठ बजे रात को वह डोली पर आ बैठी और कहार चल पड़े। उसके भाई भी कभी डोली के आगे, कभी पीछे यात्रा तय करने लगे। तीन-चार घण्टे के बाद डोली एक भयानक जङ्गल से होकर गुज़री। एक नाले के किनारे चिलम-पानी के लिए कहारों ने डोली उतार दी और वे ख़ुद नाले में उतर कर हाथ-मुँह धोने लगे। वङ्गलता के भाई उसके समीप पहुँच कर कुछ बातचीत करना ही चाहते थे कि पीछे की ओर बहुत-से आदमियों के पैरों की आहट सुन कर वे चौंक पड़े। फिर कर देखा कि लगभग दस-बारह हथियारबन्द जो सूरत-शकल से डाकू-लुटेरे मालूम होते थे, डोली की तरफ़ बढ़ते चले आ रहे हैं... ..."

यह सुन कर खत्रीजी ने पास ही बैठे हुए गोस्वामीजी से पूछा—"क्यों साहब, बङ्गाल में चोर-लुटेरे बहुत हैं क्या?" इसके जवाब में गोस्वामीजी ने धीरे से कहा—"मालूम तो ऐसा ही पड़ता है"। गोपालरामजी बीच ही में बोल उठे—"हाँ, हाँ मुझसे पूछिए, बङ्गाल में चोर-लुटेरे तो नहीं ख़ूनी अधिक हैं। बल्कि यह समझिए कि एक-दम वही वही है। मैंने पाँचकौड़ी दे से यह ज्ञान प्राप्त किया है। इसी से हमारे अक्षयबाबूजी को अपना हेड आफ़िस कलकत्ते में रखना पड़ा था"।

वर्माजी कहते चले गये—"डाकुओं को आते देख वङ्गलता के भाई ने कहारों को आवाज़ दी। कहार डोली की ओर दौड़ पड़े, परन्तु डकैतों का झुंड देख कर, जातीय अभिमान के कारण उन्होंने अपनी गति की दिशा बदल दी और शीघ्र ही दृष्टि-पथ के बाहर हो गये। वङ्गलता के भाई जोशीली भाषा में उन्हें रण में योग देने के लिए एक स्पीच तैयार कर ही रहे थे कि वे शब्द-पथ के भी बाहर हो गये। इधर एक डाकू ने सभ्यता और शिष्टाचार के नियमों के विरुद्ध क़रीब चार हाथ का एक लट्ठ बाबू साहब की नङ्गी खोपड़ी के बीचोबीच मांग पर कस दिया। बाबू साहब भी कपड़े मैले हो जाने की कोई परवा न कर ज़मीन पर लेट रहे। डाकू डोली उठा कर अन्धकार में भयानक जङ्गल के भीतर घुस पड़े। वङ्गलता मारे भय के मूर्छित हो गई थी। होश आने पर मालूम हुआ कि डाकू उसे लिये हुए जङ्गल जङ्गल चले जा रहे हैं। सवेरा होते होते डोली एक पहाड़ की तराई पर जा पहुँची और डाकू डोली के सहित पहाड़ की एक गुफा में घुस पड़े। कुछ दूर चलने पर वे गुफा के दूसरे मुँह पर जा निकले और एक बीहड़ स्थान पर डोली उतार दी। वङ्गलता ने देखा कि गुफा के मुँह से एक विस्तृत मैदान फैला हुआ है। मैदान के चारों ओर पहाड़ों की चहारदीवारी है और जहाँ तहाँ डाकुओं के रहने के स्थान बने हुए हैं। मैदान के एक किनारे पर मन्दिर है, जिसके सामने एक योगी भभूत लगाये ध्यान-मग्न बैठा हुआ है। उसके समीप पहुँच कर डाकुओं ने आवाज़ दी—"जय, भवानी की जय"। योगी का ध्यान भङ्ग हुआ। वह धीरे धीरे डोली की ओर बढ़ा। पास पहुँच कर उसने वङ्गलता को सिर से पैर तक देखा और फिर ज़मीन पर लेटकर उसे साष्टाङ्ग प्रणाम किया। साथ ही साथ दूसरे डाकू भी माथा टेक टेक वङ्गलता की अभ्यर्थना करने लगे। इस बार योगी ने भवानी की जय-घोषणा की और उसके गिरोह ने उच्च स्वर से उसे दुहराया। वङ्गलता आश्चर्य-चकित खड़ी रही। अन्त में योगी ने हाथ जोड़ कर धीरे धीरे कहना आरम्भ किया—"भद्रे! भवानी के आदेशानुसार आज से आप इस राज्य की रानी हुईं। स्वप्न में मुझे यही आज्ञा मिली थी कि आज प्रातःकाल जो स्त्री यहाँ लाई जा सके वही हम लोगों की अधीश्वरी होकर यहाँ का राज्य करे। भवानी का कहना था कि जब तक

आदिशक्ति की सजीव प्रतिमा महा सबला अबला का आधिपत्य यहाँ न होगा तब तक हम लोगों का कल्याण नहीं हो सकता। इसी कारण आपको यह कष्ट दिया गया है। चलिए, मन्दिर में चल कर अभिषेक ग्रहण कीजिए और हम लोगों को अपना अनुचर समझ अपनी गुप्त शक्ति के प्रभाव से हमें माँ के कठिन कार्य में अग्रसर कीजिए"।

किसी सज्जन ने धीरे से कहा—"मुझे तो यह किसी बँगला उपन्यास का छायानुवाद जान पड़ता है"। मालूम पड़ता है कि वर्माजी ने सुन लिया। वे सहसा रुक गये। खिन्न दृष्टि से उक्त सज्जन की ओर देखा और कुछ सोच कर बोले कि "मैंने कहानी आरम्भ कर दी। अब कोई और महाशय इसे आगे बढ़ायें"। सर्व-सम्मति से खत्रीजी ने इस प्रकार कथा प्रारम्भ की—

"वङ्गलता क्षण-मात्र इस विचित्र परिस्थिति पर विचार करती रही और उसके अनुकूल आगे का कार्यक्रम मन ही मन निश्चित कर डाकुओं से बोली—"जब तुम लोग मुझे यहाँ खींच ही लाये हो तब भवानी की सेवा करने में मुझे क्या संकोच हो सकता है। हाँ, मेरे भाई को इस कार्य में कुछ आपत्ति हो सकती—"

बात काट कर एक डाकू ने कहा—"रानी मा, आप अपने भाई की कुछ फ़िक्र न करें। हाथ हल्का ही पड़ा था। उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए हमारे साथी वहाँ रह गये हैं। वे लखलखा सुँघा कर उन्हें होश में ले आये होंगे और कुशलपूर्वक उन्हें घर पहुँचा देंगे।"

वङ्गलता ने कहा—"अच्छा, आपत्ति तो दूर हो गई पर विपत्ति अभी बाक़ी है। अर्थात् पतिदेव को छोड़कर मेरा यहाँ रहना—"

अब की योगीजी ने बात काटी। उसने कहा—"रानीजी, इसकी भी आप कोई चिन्ता न करें। मैं अभी कुछ आदमियों को उन्हें आदरपूर्वक ले आने के लिए भेजता हूँ। यदि वे न आना चाहेंगे तो भी भवानी के प्रताप से मेरे ऐयार उन्हें किसी न किसी युक्ति से खींच ही लायँगे।"

वङ्गलता ने कहा—"इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं है।"

योगी कहता गया—"परन्तु, रानी मा, यहां रहकर उन्हें भी देश-काल की रीति के अनुसार चलना पड़ेगा, अर्थात् पति होने पर भी रानी के ऊपर उनका कोई आधिपत्य न होगा और मामूली प्रजा के समान उन्हें हर बात में रानी की आज्ञा माननी होगी।"

वङ्गलता बोली—"इसमें तो मुझे मतमतान्तर के लिए कोई स्थान नहीं दीखता, बल्कि मैं तो यह कहूँगी कि यदि ऐसा ही है तो पति के साथ मेरी सास-ननद को भी ले आने में कोई हानि नहीं।"

योगी—"पर यहां रानी के अतिरिक्त कोई स्त्री स्थान जो नहीं पा सकती?"

वङ्गलता—"तब जाने दो। तुम्हारे समान आज्ञाकारिणी प्रजा के रहते सास-ननद से दूसरी तरह भी निबटा जा सकता है। अस्तु, अब मैं यहाँ का शासन अपने हाथ में लेने के लिए तैयार हूँ।"

"यह सुन कर सब लोग मन्दिर की ओर चल पड़े। पुजारी ने पट खोल दिया। वङ्गलता ने देखा कि भवानी की एक पुरानी पर सुन्दर अष्टभुजी मूर्ति एक पैर राक्षस और दूसरा सिंह पर रक्खे हुए खड़ी है। समस्त प्रजा की उपस्थिति में योगी ने वङ्गलता का अभिषेक किया। भवानी की जय! रानी की जय! इत्यादि शब्दों से मन्दिर गूँज उठा। इसके बाद योगी रानी को साथ ले एक गुफा की ओर बढ़ा, जो सामान्य ढङ्ग से सजी हुई थी। रानी के निवास के लिए वह स्थान निर्मित कर योगी चला गया। वङ्गलता एक चौकी पर बैठ कर अपनी स्थिति पर विचार करने लगी।

"जब तक वङ्गलता विचार-सागर में गोते लगा रही है तब तक आइए हम आप लोगों को पुनः उसी पहाड़ी रास्ते में ले चलें जहाँ का सफ़र करके वङ्गलता यहाँ तक पहुँची है और चार घुड़सवारों का जो कि गर्मी की कड़ी धूप में तेज़ी से घोड़ा बढ़ाये चले जा रहे हैं, पीछा करें। मैं जानता हूँ कि आप लोगों को चलने-फिरने या दौड़ने का अभ्यास बहुत कम है और घोड़ों के पीछे दौड़ने में आपमें से कुछ सज्जन तो कदाचित् अपना अपमान भी समझेंगे। परन्तु कथा को रोचक बनाये रखने के लिए बयानों का बदलना बहुत ज़रूरी है। इसलिए लाचार आप

लोगों को कुछ कष्ट देना पड़ता है। मैं दिलासे के साथ कहता हूँ कि मेरा स्वभाव सभी बातें संक्षेप में कहने का है अतएव दो-चार सौ बयानों से ज़्यादा मेरा साथ देने की ज़रूरत आप लोगों को न पड़ेगी। संतोष की बात यह है कि आज-कल के लेखकों में भी सवारी की कोई कमी नहीं है। अतएव आप लोग भी अपने अपने हवाई जानवर तैयार कर लीजिए और मुस्तैदी के साथ मेरे पीछे पीछे चले आइए।

"सवार सभी नौजवान हैं और सभी के चेहरों से दिलेरी और बहादुरी टपक रही है। सभी की पोशाकें एक-सी हैं। सिर पर साफ़ा, बदन पर फ़ौजी कोट, चुस्त पायजामा, बूट और कमरबन्द। कमर से एक ओर तलवार लटक रही है और दूसरी ओर ऐयारी का बटुआ बँधा हुआ है। ग़रज़ यह कि ये चारों सभी कील-काँटों से बिलकुल लैस हैं। शाम तक ये लोग बराबर सफ़र मारे चले गये और रात होते होते एक सघन अमराई में जा पहुँचे। पास ही एक टूटा-फूटा पुराना खँडहर था। यहाँ पहुँच इन्होंने घोड़ों की पीठ ख़ाली की और नित्य-नियम से छुट्टी पा अपने अपने बटुओं से कुछ फल निकाल भोजन करने लगे। भोजन के उपरान्त चारों ने यह सलाह की कि रात को यहीं डेरा डाल दिया जाय और सवेरे उठ कर एक निश्चित रूप से कार्य आरम्भ किया जाय।

"इन्हें गाढ़ी नींद में छोड़कर हम आप लोगों को वज्रलता के महल की सैर कराना चाहते हैं, जिससे आप लोग कुछ कुछ परिचित भी हैं। अभी सुबह के आठ बजे होंगे। वज्रलता के पति वीरेन्द्र दीवानख़ाने में बैठे हुक़्क़ा पी रहे हैं। इतने में ही उसके भाई तेजकुमार हाँफते हुए आ पहुँचे और घबराई आवाज़ में कहने लगे—"बड़ा ग़ज़ब होगया था, पर ईश्वर ने ही कुशल की। हम लोग यहाँ से रवाना हो क़रीब आधी रात में एक जंगल से होकर गुज़र रहे थे कि डाकुओं ने हमला कर दिया। हम लोगों ने दिलेरी से उनका सामना किया। जी खोलकर लड़ाई होने लगी। क़रीब घण्टे भर बराबर तलवारों की चोटें होती रहीं। आख़िर डाकुओं के पैर उखड़ गये। हम लोगों ने उनका पीछा किया, परन्तु अँधेरे के सबब ज़्यादा आगे न बढ़ सके। डाकुओं ने भागते हुए पालकी उठा ले जाने की कोशिश की, पर कुछ तो मेरे भाले के शिकार हुए और कुछ जान लेकर भाग गये। इस घमासान में वज्रलता को भी चोट पहुँच गई है। मैं उसे पास ही एक सुरक्षित स्थान में छोड़ आया हूँ और दवा-पानी का भी बन्दोबस्त कर आया हूँ, पर सहायता के लिए आपका फ़ौरन चले चलना निहायत ज़रूरी है। अतएव आप जल्द तैयार होकर आजाइए। मैं तब तक घोड़े कसवाता हूँ।" वीरेन्द्र क़रीब दस मिनट में तैयार होकर आगये और दोनों ने तेज़ी से घोड़े छोड़ दिये। दस-बारह मील निकल जाने पर ये लोग उसी खँडहर के पास जा पहुँचे, जहाँ हमारे पूर्व-परिचित बहादुरों ने डेरा डाला था। एकाएक किसी ने पीछे से कमन्द फेंककर वीरेन्द्र को घोड़े पर से गिरा दिया और उनकी छाती पर सवार हो हाथ-पैर मज़बूती से कस दिये। आँख झपकते यह सब काम हो गया। यह देख तेजकुमार खिलखिला कर हँस पड़े। हाथ-मुँह धोकर वे उन्हीं चार सवारों में से एक हो गये जिनका पीछा आप लोग कर चुके हैं। यह सब ऐयारी वीरेन्द्र को वज्रलता के पास ले जाने के लिए खेली गई थी। इन सबने ज़बरदस्ती वीरेन्द्र को बेहोशी की दवा सुँघा दी और गठरी बाँध, पीठ पर रख, वापस चुनारगढ़ की ओर रवाना हो गये।"

खत्रीजी की कथा सुन सुनकर सभा-मण्डप में इशारेबाज़ी शुरू हो गई थी। बहुतेरे वयोवृद्ध ऊँघने भी लगे थे। जँभाइयों का बाज़ार भी गर्म होता जाता था।

इसकी कुछ परवा न कर खत्रीजी कहते चले गये—"इधर वज्रलता अकेली बैठी बैठी ऊब कर गुफा के बाहर निकली और इधर-उधर घूमने लगी। घूमते हुए वह क़रीब मील भर निकल गई। सामने एक नाला बह रहा था। नाले के किनारे कई प्रकार के फलों के वृक्ष लगे थे, जो फलों के बोझ से झुके जा रहे थे। वज्रलता ने कुछ फल खाकर क्षुधा निवृत्त की और झरने से पानी पिया। इसके बाद पास ही एक खँडहर को देखने के लिए वह आगे बढ़ी। खँडहर का दरवाज़ा टूट-फूट गया था, पर भीतर का एक कमरा अब भी काफ़ी अच्छी हालत में था। उस कमरे में वज्रलता ने देखा कि पत्थर की एक स्त्री लेटी हुई दोनों हाथों से सङ्गमर्मर की एक किताब थामे ध्यानपूर्वक पढ़ रही

है। उसके सिर की तरफ़ जाकर ज्योंही वङ्गलता ने उसके हाथ से किताब लेने की कोशिश की, त्यों ही घड़घड़ाहट के साथ वह पत्थर जिस पर वङ्गलता खड़ी थी, नीचे धँसने लगा। वङ्गलता का सिर घूमने लगा। वह मूर्च्छित हो गई। जब होश में आई तब अपने को एक निर्जन, बीहड़ और बहुत ऊँची पहाड़ी की चोटी पर पाया।"

मिश्रजी से न रहा गया। व्यङ्ग्य करते हुए आपने कहा—"अब हुई मदकख़ाने की शुरू।" मालूम पड़ता है, खत्रीजी ने सुन लिया। बिगड़ कर बोले—"झूठ है? कौन कहता है, तिलस्म की बात झूठ है? क्या कोहेकाफ़ झूठ है? क्या 'दीवार क़हक़हा' झूठ है? देखिए अफ़-ग़ानिस्तान में खोज करते हुए कुछ अँगरेज़ों ने एक तिल-स्माती बँगले के बारे में क्या लिखा है? फिर भी आप लोग तिलस्म को झूठा समझें तो हम भी झूठे हैं, आप भी झूठे हैं, सारी दुनिया झूठी है।" इतना कहकर वे अपने स्थान में बैठ गये। लोगों ने बहुतेरा समझाया, पर वे फिर कथा कहने को न तैयार हुए। अस्तु, सर्वसम्मति से गोस्वामीजी ने यों आरम्भ किया—

"वङ्गलता पहाड़ की चोटी पर बैठी हुई बड़ी देर तक अपनी दशा पर आँसू बहाती रही। नीचे वह अपनी प्रजा को इधर-उधर घूमते-फिरते देखती थी। उसने चिल्ला कर उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करना चाहा, परन्तु एक धीमी-सी प्रतिध्वनि पैदा करने के अतिरिक्त उसकी चिल्लाहट का और कोई फल न हुआ। थोड़ी देर में उसने देखा कि डाकू उसकी तलाश में उसकी गुफा की ओर गये, पर उसे वहाँ न पा इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। आख़िर पत्थर की स्त्रीवाली कोठरी में भी वे लोग पहुँचे और वहाँ से निकल चारों ओर पहाड़ों पर नज़र दौड़ाने लगे। योगी की नज़र उस चोटी पर जा पहुँची जहाँ वङ्गलता बैठी अपने भाग्य को कोस रही थी। यह हाल देख योगी ने सिर पीट लिया और मूर्च्छित होकर ज़मीन पर गिर पड़ा। होश आने पर अपने साथियों से कुछ सलाह करता हुआ मन्दिर की ओर चल पड़ा।

इधर वीरेन्द्र को लिये हुए चारों घुड़सवार भी पहुँच गये और गठरी खोल उन्हें होश में लाये। अपने को ऐसे विचित्र स्थान में देख वीरेन्द्र बहुत घबराये, पर धीरे धीरे पिछली घटनायें याद हो आईं और परिस्थिति कुछ कुछ समझ में आने लगी। योगी ने आगे बढ़कर आदि से अन्त तक सब कथा कह सुनाई और क्षमा-प्रार्थना करते हुए बोला—"विचार तो हम लोगों का यह था कि रानीजी यहाँ राज्य करें और आप हम लोगों के स्तुत्य अतिथि होकर आनन्द से रहें और जब-तब हम लोगों के कार्य में हाथ बटायें, परन्तु भवानी की माया कुछ समझ में नहीं आती। पिछली घटनाओं से दुखी होने से अब कोई लाभ नहीं। कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि रानीजी शीघ्र इस विपत्ति से छुटकारा पायें। मैंने पूर्वजों से सुना है कि पत्थर की स्त्रीवाली कोठरी में कुछ ऐन्द्रजालिक माया है। इसलिए हम लोगों का उसमें आना-जाना वर्जित है। दुर्भाग्यवश रानीजी को इसकी सूचना मैं नहीं दे सका और वे आते ही इस बला में जा फँसीं। पूर्वजों से मैंने यह भी सुना है कि इस कोठरी का कुछ सम्बन्ध लखनऊ के पास गोमती के किनारे एक पुराने खँडहर से है। वहाँ से एक सुरङ्ग सीधी इस पहाड़ की चोटी तक आई है। उसी रास्ते से रानीजी की मुक्ति हो सकती है। मैं अपने साथियों को उस खँडहर का पता लगाने के लिए भेजता हूँ। तब तक आप विश्राम करें और इस क़िले को अपना ही घर समझें। यह सामनेवाला झरना उसी पहाड़ पर से आता है जिसमें रानीजी बन्दी हैं। फल-फूल की इस स्थान में कहीं कमी नहीं है। अतएव इसमें सन्देह नहीं कि जब तक हम लोग उनके छुटकारे का प्रयत्न करते हैं तब तक वे किसी प्रकार जीवन निर्वाह अवश्य कर लेंगी।"

डाकुओं की इस मूर्ख गाथा को सुन कर अपने को इस विचित्र सङ्कट में पड़े हुए देख वीरेन्द्र मनही मन दाँत पीस रहे थे, पर लाचारी के कारण कुछ कहने-करने में असमर्थ थे। बहुत प्रयत्न करने पर भी अपनी स्त्री की मुक्ति के लिए दुश्चरित्र डाकुओं की सहायता लेना उनकी आत्मा ने न स्वीकार किया। अतएव अकेले ही लखनऊ जाने तथा सुरङ्ग का पता लगाने का निश्चय कर वे डाकुओं से बिदा ले चल पड़े।

लखनऊ पहुँच कर वीरेन्द्र ने सारे शहर की ख़ाक छानी और अन्त में खडहर का पता लगा ही लिया। सन्ध्या हो

चुकी थी। दिन भर के थके मांदे वीरेन्द्र आज और आगे न बढ़ उसी खँडहर में एक पुरानी क़ब्र के पास लेट रहे और रात वहीं काट सवेरे सुरङ्ग की खोज करने का निश्चय किया। देर तक अपनी मुसीबतों की उधेड़बुन में उन्हें नींद नहीं आई। पिछली रात जैसे ही आंख लगने जाती थी कि एक खटके की आवाज़ सुन कर वे चौंक उठे। आँख फाड़ फाड़ कर चारों ओर देखने लगे कि यह शब्द कहां से हुआ। थोड़ी देर में क़ब्र के ऊपर का हिस्सा तहख़ाने के दरवाज़े की तरह खुल गया और ऐसा मालूम हुआ कि ज़ीने पर चढ़ता हुआ कोई ऊपर चला आ रहा है। ये चुपचाप एक खम्भे की आड़ में छिप गये और यह निशाचरी लीला देखने लगे। एक काला कुरूप हब्शी एक नवयुवती का हाथ पकड़े क़ब्र से बाहर निकला। स्त्री की आँखों में पट्टी बँधी हुई थी। बाहर निकल हब्शी ने दरवाज़ा ढांक दिया और युवती को लिये एक ओर चल पड़ा। वीरेन्द्र ने भी चुपचाप इनका पीछा किया। क़रीब मील भर निकल जाने के बाद ये लोग एक खुली जगह पर पहुँचे। हब्शी ने ज़ोर से सीटी बजाई, जिसे सुन चार कहार एक पालकी लिये हाज़िर हो गये। युवती को पालकी में बैठा हब्शी वापस लौट पड़ा। वीरेन्द्र उसके कुछ पहले ही खँडहर में आ पहुँचे और चुपचाप क़ब्र का दरवाज़ा खोल अन्दर दाख़िल हो गये। ज़ीने के दरवाज़े की आड़ में साँस रोक कर खड़े खड़े ये हब्शी के निकल जाने का रास्ता देखने लगे। जब वह काफ़ी दूर चला गया तब ये भी अँधेरे में टटोल टटोल कर आगे बढ़े। सुरङ्ग बहुत कम चौड़ी थी। दो आदमी मुश्किल से उसमें एक साथ चल सकते थे। दोनों ओर पत्थर की दीवारें थीं और नीचे पत्थर का फ़र्श, जो जगह जगह टूट गया था। रास्ता तय करते करते ये कई बार गिरे, उठे, सँभले। क़िस्सहकोताह, ये किसी न किसी तरह सुरङ्ग के मुँह पर जा पहुँचे। एक रोशनदान से सुबह का उजेला धीरे धीरे इस पातालपुरी में घर कर रहा था। सुरङ्ग के मुँह से चार रास्ते चारों ओर गये हुए थे। क्या करें, किधर जायँ, किस रास्ते से कहां पहुँचेंगे, यह सब सोचने का मौक़ा नहीं था। कोई साइन बोर्ड भी नहीं दिखता था, जिससे निश्चय करने में कुछ सहूलियत हो जाती। इधर हब्शी की भयंकर मूर्ति रह रहकर हृदय में हलचल मचा रही थी। अगर उसके पंजे में जा फँसे तो फिर छुटकारा नहीं। क़िस्सहकोताह भगवान् का नाम लेकर ये एक ओर चल पड़े। थोड़ी दूर जाकर एक महल के सामने जा पहुँचे। बनावट से यह ज़नानख़ाना मालूम होता था। ये चाहते ही थे कि शीघ्र चौमुहानी पर वापस पहुँच कर दूसरे किसी रास्ते को आज़मायें कि सामने के दरवाज़े पर एक परी जमाल नींद से उठ, अँगड़ाइयां लेते और दोनों हाथों से बाल सँभालते आ खड़ी हुई। चार आँखें होते ही इन्होंने बिना आज्ञा अन्तःपुर में चले आने के लिए क्षमा-प्रार्थना करनी चाही, पर हसीना ने होठों पर उँगली रखकर चुप रहने का इशारा किया और हाथ से अपने पीछे पीछे चले आने का आदेश किया। एक सुन्दर सजे-सजाये कमरे में ले जाकर हसीना ने इन्हें मख़मली फ़र्श पर आसन दिया और बड़े मनोमोहक स्वर से और कुछ थोड़ा-सा मुस्कराकर इनसे प्रश्न किया कि 'ऐ अजनबी! तू कौन है? क्या नाम है? किसके साथ यहाँ आया है और किस लिए आया है।' वीरेन्द्र ने सोचा कि इसे अपना असली परिचय देना ठीक न होगा, बरन किसी प्रकार इसे फाँस कर अपना असली मतलब निकाल लेने में ही बुद्धिमानी है। अतएव एक लम्बी सांस लेते हुए उन्होंने उत्तर दिया कि 'ऐ माहेलक़ा, मैं इन्सान हूँ, मेरा नाम यूसुफ़ है। मैं अपनी वहशत के साथ यहां आया हूँ और एक ऐसी बुते बेपीर के लिए आया हूँ जो एक तरफ़ तो बे-इख़्तियार इन्सान को अपने क़दमों में खींचती है और दूसरी तरफ़ भोली बनकर सवाल करती है कि ओ ज़ाहिद, तू किस लिए यहाँ आया है।"

अब तो मेहताजी से न रहा गया। आवाज़ में आवाज़ मिलाकर चिल्ला पड़े—"हो गोसाईंजी महाराज, आप किसलिए यहाँ आये हैं। 'लखनऊ की क़ब्र' तो जगह जगह बिकती है। उससे दस-पाँच सफ़े फाड़ कर यह कहानी-लेखक अपनी गल्प में चस्पा कर लेगा। आप किसलिए व्यर्थ कष्ट कर रहे हैं?"

गोस्वामीजी ने घूम कर मेहताजी पर ऐसी नज़र फेंकी कि यदि आँख में कारतूस भरे होते तो अब तक पुलिस

आ धमकती। फिर सभा को सम्बोधन कर कहने लगे—"सज्जनो, मेरा विचार इस कहानी-लेखक के नाम कुछ ऐतिहासिक सम्पत्ति लिख देने का था। आप लोग जानते हैं कि मुसलमानों का राज्य-काल भारतवर्ष के इतिहास में कितना प्रमुख स्थान ग्रहण करता है और मुग़लों का पतन तथा अवध के नवाबों का उत्थान कितना रोचक, मनोरञ्जक एवं घटनापूर्ण है। यह भी आप लोगों से छिपा नहीं है कि नवाबों की नवाबी लखनऊ से ख़तम ही हो गई है। जब कहानी इस शहर तक पहुँच ही गई थी तब परिस्तान का एक चक्कर काट देने में क्या हर्ज था? कहानी में कुछ तो जान पड़ ही जाती। परन्तु जहाँ विद्वानों पर ऐसे अनुचित आक्षेप होते हैं, वहाँ मैं अब एक शब्द बोलना भी महापाप समझता हूँ।"

यह कहकर गोस्वामीजी बैठ गये। सभा-नायक की दृष्टि चारों ओर इस आशा से घूमने लगी कि कोई सज्जन सामने बढ़ कथा को आगे बढ़ायें। पर किसकी हिम्मत थी जो होश-हवास रहते क़ब्र में पांव डाल देता और गड़े मुर्दे उखाड़ उखाड़ बाहर घसीटता? बहुत कोशिश के बाद गोपालरामजी इस प्रकार आगे बढ़े—

"वीरेन्द्र का ऐसा चटपटा जवाब सुन हसीना का दिल तो एक-दम पोलजम्प करने लगा। उसने सोचा, घर बैठे सोने की चिड़िया फँस गई। अब क्या है? राग-रंग में जो कुछ कसर है वह भी पूरी हो जायगी। घुल घुल कर बातें करने लगी। वीरेन्द्र ने भी ऐसा जाल फैलाया कि हसीना का हृदय भूकम्प का अनुभव करने लगा। इस हलचल में हज़रते दिल ने ऐसी छलांग मारी कि 'मुल्के हसीना' छोड़ वे एक-दम 'वीर-धाम' को प्राप्त हो गये। ख़ूब ख़ातिर-ख़ुशामद होने लगी। दासी के दौड़ते दौड़ते नाक में दम आ गया। फिर भी हसीना डाँट डाँट कर उससे काम ले रही थी। कभी कभी एकाध चपत भी कस देती थी। बेचारी गूंगी थी, बहरी थी, अन्यथा या तो इस दौड़-धूप और मार-पीट से तंग आ छुट्टी की प्रार्थना करती या इस्तीफ़ा ही पेश कर देती। परन्तु शारीरिक हीनता के कारण ही उसे शाही महलसरे में दासी का पद प्राप्त हो सका था। इस कारण सब कुछ सहती जाती थी। इधर वीरेन्द्र के दोनों हाथ घी में थे और सिर कढ़ाई में। दिन रंगरेलियों में कट गया। शाम को हसीना बन-ठन कर एक बहाने से बाहर चली गई और शीघ्र वापस आने का वादा करती गई। वीरेन्द्र पिछली रात सोये नहीं थे। चारपाई पर जा लेटे और लम्बी तानी। दासी ख़िदमत के लिए दरवाज़े पर बैठी हुई थी। इन्हें सोते देख वह भी चलती बनी और कई घंटे ग़ायब रही। क़रीब आधी रात गये वीरेन्द्र की नींद खुली। बरामदे में आकर देखा, दासी एक कोने में बैठी कुछ लिख रही है। इन्हें देख उसने काग़ज़ को छिपा लेने की कोशिश की, पर इन्होंने झपट कर पुर्ज़ा छीन लिया। इनके आश्चर्य का कोई ठिकाना न रहा, जब गूंगी दासी का मुँह एक-दम फूट पड़ा और मिन्नत करते हुए उसने कहा, "हुज़ूर वह काग़ज़ आपके किसी काम का नहीं है। वापस दे दीजिए।" ये काग़ज़ लिये कमरे में चले गये और पीछे पीछे दासी भी वहाँ आ पहुँची। बिना किसी प्रश्न के उसने कहा—"हुज़ूर मैं गूंगी, बहरी कुछ नहीं हूँ। इस पातालपुरी में बहुत कुछ ख़ून-ख़राबी हुआ करती है। सरकार इसकी खुफ़िया जाँच कर रही है। मैं कल-कत्ते के प्रसिद्ध जासूस अक्षय बाबू की ओर से यहाँ आख रखने व उन्हें ख़बर पहुँचाने के लिए तैनात की गई हूँ। अपना काम साधने के लिए ही मैंने गूंगी-बहरी होने का स्वाँग रचा है। यह सारा हाल मैं आपसे इसलिए कर रही हूँ कि मैंने आपका भी पता लगा लिया है और मुझे मालूम हो गया है कि आप भी अपने मतलब से यहाँ आये हुए हैं। बाहर क़ब्र पर लेटे लेटे आप नींद में अपना हाल कहते रहे हैं और हमारा साथी, जो आप और हब्शी दोनों पर नज़र रक्खे हुए था, सब सुन चुका है। इसलिए हमको एक दूसरे से डरने की कोई ज़रूरत नहीं। बेहतर यह है कि अपना सब क़िस्सा साफ़ साफ़ कह जाइए, ताकि मैं यह जान सकूँ कि मेरा यहाँ का अनुभव किस हद तक आपके काम आसकता है और आपको मदद पहुँचाने की कोशिश करूँ।" वीरेन्द्र ने सब कच्चा चिट्ठा दासी को कह सुनाया। सब हाल सुनकर वह विचार में पड़ गई। फिर उसने कहा—"यहाँ आपका काम निकलना बहुत

मुश्किल है। उल्टे हर घड़ी जान जोखिम में समझिए। ज़रा भी किसी को आपका पता लग गया तो मुसीबत ही मुसीबत है। इसलिए मेरी राय में तो आप अक्षय बाबू के पास चले जाइए और वे जैसी सलाह दें उसी के अनुसार काम कीजिए। आप चाहें तो मैं इसी वक्त आपको खैरियत से बाहर पहुँचा सकती हूँ।" दासी की बात वीरेन्द्र को जँच गई। वे उसके साथ क़ब्र के बाहर निकल आये।

दूसरे ही दिन वीरेन्द्र डाकगाड़ी से कलकत्ता रवाना होगये और अक्षय बाबू के सामने जाकर उपस्थित हुए। इन्हें देख अक्षय बाबू हँस पड़े और बोले—"आइए वीरेन्द्र बाबू। आप तो एक बहुत मामूली बात के पीछे पृथ्वी-पाताल एक किये डाल रहे हैं और असल उपाय की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देते।" वीरेन्द्र अचरज मे पड़ गये कि अक्षय बाबू इन्हें पहचान कैसे गये और उनकी बात का मतलब क्या है। प्रश्न करने पर अक्षय बाबू ने जवाब दिया—"अगर यही न जान पाता तो मैं जासूस कैसे होता?" उनकी बुद्धि की तारीफ़ करते हुए वीरेन्द्र ने पूछा—"आख़िर आपने इस विपत्ति से मेरे उद्धार का भी कोई उपाय निश्चित किया या नहीं?" अक्षय बाबू ने हँस कर कहा—यह कितनी बड़ी बात है? लीजिए, अभी आपके देखते देखते सब प्रबन्ध किये देता हूँ। उन्होंने टेलीफ़ोन उठा लिया और डाइरेक्टरी से एक नम्बर देखकर घंटी बजाई। कनेक्शन मिल जाने पर बाबू अक्षयकुमारजी ने बातचीत आरम्भ की—"हलो, कौन है? कैप्टेन वेन्सकाट? अच्छा! मैं हूँ अक्षयकुमार, महकमा खुफ़िया पुलिस। एक स्त्री एक पहाड़ की चोटी पर जा फँसी है। कैसे? यह पूछने की आपको कोई ज़रूरत नहीं। उसको वहाँ से उतारना है। एक हवाई जहाज़ तैयार रखिए। और सुनिए! एक लम्बा-सा मज़बूत रस्सा भी साथ रख लीजिएगा। उसी के सहारे पहले एक चिट्ठी उतार दी जायगी, फिर युवती को उसी से लटका कर नीचे रख दीजिएगा। ठीक होगा? अच्छा तो उस स्त्री के पति आपके पास आते हैं। आप अपनी तरफ़ से सब तैयारी रखिए। धन्यवाद।" वीरेन्द्र हैरान रह गये। व्यवहार-शिष्टाचार पूरा कर ये एयर-ड्रोम की ओर चल पड़े। उचित समय पर हवाई जहाज़ पहाड़ की चोटी पर चक्कर मारने लगा। रस्से के सहारे चिट्ठी उतारी गई। वीरेन्द्र की ओर से लिखी गई थी। वङ्गलता को बहुतेरा दम-दिलासा दिया गया था और रस्से को मज़बूती से पकड़ कर उतर आने की तरकीब लिखी थी। वङ्गलता ने कस कर रस्सा पकड़ लिया। हवाई जहाज़ ऊपर उठा। समभूमि की ओर बढ़ा। स्पीड में आने पर वङ्गलता की छाती धड़कने लगी। उसने जो नीचे नज़र फेंकी तो अपने को हज़ारों फ़ुट की ऊँचाई पर लटकते पाया। उसका सिर चक्कर मारने लगा। हाथ-पैर ढीले पड़ गये। रस्सा छूट गया। वह वेग के साथ नीचे गिरने लगी।"

इतना कह गोपालरामजी चुप हो गये। कुछ दम लेकर वे बोले—"मैंने क़ब्र का क़िस्सा आसमान पर चढ़ा दिया। अब जिसकी हिम्मत हो इस गिरती हुई देवी का उद्धार करे।"

यह ललकार सुन जौहर जी चिहुँक उठे। तुरन्त उठकर उन्होंने कहा—"बाबू साहब, इस युवती का उद्धार करना है कितनी बड़ी बात जो आप इस तरह छाती तान रहे हैं? मैंने तो सैकड़ों स्त्रियों को सीधी राह लगा दिया है। बूढ़ा हो गया हूँ, पर अब भी मेरे पास वह हिकमत है कि चाहूँ इसे जवान से बुढ़िया कर दूँ और बुढ़िया से जवान, चाहूँ तो इसके चार जन्म का इतिहास इसी के मुँह से कहला डालूँ, चाहूँ तो इसी पर नाटक बना डालूँ। पर अभी मैं देश-काल की अवस्था के ही अनुसार कहूँगा। अच्छा, लीजिए सुनिए—

हज़ारों फ़ुट की ऊँचाई से वङ्गलता नीचे गिरी जैसे भारत की पवित्र नारियाँ समाज के कुसंस्कारों के कारण अपने आदर्श से नीचे गिर जाती हैं। परन्तु सौभाग्यवश जिस स्थान पर वायुयान उड़ रहा था उसके नीचे सर्व-व्यापी सुधार-क्षेत्र की तरह एक विस्तृत सरोवर लहरें मार रहा था। सरोवर के एक घाट में अछूतों को पानी भरने की मनाई थी। इस अपमान से पीड़ित हो उन लोगों ने सत्याग्रह कर दिया था। देश के कोने कोने से स्वयंसेवकों के दल उनकी सहायता के लिए आकर तालाब के किनारे डेरा डाले पड़े थे। युवती

को पानी में गिरते देख कई स्वयंसेवक कूद पड़े और बात की बात में उसे किनारे खींच लाये। इन स्वयंसेवकों में स्त्रियां भी थीं। इनमें से दो-चार वङ्गलता को होश में लाने का प्रयत्न करने लगीं। आँख खोलते खोलते वङ्गलता ने पूछा—"मैं कहाँ हूँ।" एक युवती ने जवाब दिया—"आप रणभूमि में हैं, युद्धक्षेत्र में हैं। आंखें खोलिए, देखिए, चारों ओर कैसी त्राहि त्राहि मची हुई है! दीन-दुखियों पर कैसा अत्याचार हो रहा है? बहुत सो चुकीं, उठिए इस सत्याग्रह में हाथ बँटाइए, इस पवित्र युद्ध में जीवन उत्सर्ग करने के लिए तैयार हो जाइए।" वङ्गलता समझी कि वह मर कर किसी दूसरे लोक में पहुँच गई है, जहां किसी कारण बलवा फैला हुआ है। डर के मारे उसकी आंखे फिर बन्द हो गईं। इस ख़ून-ख़राबे में उसके पति भी न फँस गये हों, यह सोच कर आंखें बन्द किये किये उसने पूछा—"मेरे पतिदेव कहां और किस हालत में हैं?" यह प्रश्न सुन कर युवती तड़प गई। अब की कठोर स्वर में उसने जवाब दिया—"अफ़सोस! यहां सैकड़ों पत्नियां पति से, बच्चे माताओं से और भाई भाइयों से रोज़ अलग किये जा रहे हैं, हज़ारों ग़रीब निष्ठुर सरकार के हाथ, स्वार्थी पूँजीपतियों के हाथ और विलासी राजा-महाराजाओं के हाथ मौत के घाट उतारे जा रहे हैं और आप अपने ही पति के पीछे व्याकुल हैं? क्या इन ग़रीबों के हृदय में प्रेम नहीं है? क्या इनकी आत्मा दुःख का अनुभव करना नहीं जानती? जब देश में घर घर वियोग हो रहा है, घर घर अत्याचार हो रहा है, तब आपको केवल अपने सुख की, अपनी उन्नति की चिन्ता में लगी रहने का क्या अधिकार है? पति के साथ शान्ति-निवास करने का समय नहीं है। गृहस्थ-जीवन व्यतीत कर कुल-लक्ष्मी बनी रहने का समय नहीं है। समय है असहयोग करने का, खद्दर पहनने का, रूखा-सूखा खाने का अथवा महीनों उपवास कर जाने का, सत्याग्रह के लिए कमर कसने का। तभी देश का उद्धार हो सकता है, अन्यथा यह पुण्यभूमि भारत रसातल में समा जायगी।" वङ्गलता के ज्ञान-चक्षु खुलने लगे। वह उठ बैठी। उसने कहा—"यदि ऐसा ही है तो मैं आपके साथ सत्याग्रह करने को तैयार हूँ।

होगा?" युवती ने गंभीर स्वर से जवाब।

हो, तुम्हारे ही समान देवियों के कारण इस पतित में भी भारत का मुख उज्ज्वल है। तुमसे हम लोगों को ऐसी ही आशा थी। करना कुछ नहीं होगा। सहना होगा। बन्दूक की गोली छाती पर झेल लेनी पड़ेगी, तलवार का वार सिर झुकाकर सह लेना होगा, भाले की नोक सिर-माथे चढ़ा लेनी होगी। पराया दुख अपना लेना पड़ेगा। ममत्व को त्याग अमरत्व को प्राप्त करना होगा। कहिए, हो सकेगा?" वङ्गलता ने कहा—"यदि आप लोगों से हो सकता है तो मुझसे भी हो सकेगा।"

अस्तु। उन लोगों के साथ वङ्गलता डेरे पर पहुँची। दिन स्वयंसेवकों की दौड़-धूप देखने में व्यतीत हुआ। वह बड़े फेर मे थी कि आख़िर मामला क्या है? कुछ ग़रीब किसान तालाब के किनारे पड़े हुए हैं। न जल से भेंट है, न अन्न से। क्षीण, हीन, मलीन, बेचारे तड़फ तड़फ कर करवटें बदलते हैं। झुंड के झुंड अछूत पानी लेने के लिए घाट की ओर बढ़ते हैं और पुलिस के डंडे खा खाकर ज़मीन पर लेट रहते हैं। स्वयंसेवक इनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाते हैं। वङ्गलता कुछ निश्चय न कर सकी कि वह कौन-सा मार्ग ग्रहण करे, कौन-सा व्रत निर्वाह करे। वह सोचने लगी कि देश-प्रेम उच्च है अथवा पतिप्रेम, सेवा-व्रत की महत्ता अधिक है अथवा पातिव्रत की?

"हवाई जहाज़ पर से गिरती हुई स्त्री को बचा लेना कठिन नहीं है"। जौहरजी ने कहा—"कठिन है। इन राष्ट्रीय तथा सामाजिक समस्याओं को हल करना। इस सभा में अनेक विद्वान् बैठे हुए हैं। मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे प्रस्तुत प्रश्न पर प्रकाश डालने की कृपा करें।" इतना कह जौहर जी बैठ गये।

कुछ देर सब लोग संदिग्ध भाव से बैठे रहे। फिर सब लोगों के कहने पर प्रेमचन्दजी ने यों कहना आरम्भ किया—

वङ्गलता ने यह निश्चय कर लिया कि सत्याग्रह करना ही उचित है। उसी दिन प्रिंस आव् वेल्स का स्वागत करने के लिए बड़ी बड़ी तैयारियाँ की जा रही

थीं। इधर कांग्रेसवालों ने वङ्गलता के कहने से शहर में हड़ताल मनाने की सूचना दे दी। एक ओर सड़कों पर झंडियाँ लगाई जा रही थीं और दूसरी ओर फ़ौज और पुलिस के सिपाही सड़कों पर क़वायद करते फिरते थे। अक्षय बाबू के साथ वङ्गलता के पति वीरेन्द्र बाबू भी बड़ी कोशिश कर रहे थे कि हड़ताल न हो। आख़िर अक्षय बाबू को एक युक्ति सूझी। उन्होंने मोटेराम शास्त्रीजी को बुलवाया। ठाट से पण्डित जी आये। वीरेन्द्र बाबू ने उन्हें देखकर कहा—कहिए, पण्डितजी, मिजाज़ तो अच्छे हैं। आपका वज़न दस मन से कम तो न होगा।

अक्षय बाबू ने कहा—एक मन इल्म के लिए दस मन अक़्ल चाहिए। उसी क़ायदे से एक मन अक़्ल के लिए दस मन जिस्म ज़रूरी है। नहीं तो उसका बोझ कौन उठाये।

यह सुनते ही किसी ने कहा—यह तो पुरानी कहानी जान पड़ती है। उसके उत्तर मे किसी ने धीरे से कहा—मुझे तो इटरनल सिटी का अनुवाद जान पड़ता है।

प्रेमचन्दजी ने बिगड़ कर कहा—कौन कहता है कि यह अनुवाद है।

उनके बिगड़ते ही सभा भंग हो गई। सब लोग उठ उठ कर जाने लगे।

मैंने उठ कर उन लोगों को रोकना चाहा। पर इसी समय श्रीमतीजी ने ज़ोर से हाथ झटकते हुए कहा—"यह क्या कर रहे हो? सोना हो तो जाकर कमरे में सोओ न। मेज़ पर पैर फैलाये ऊँघ रहे हैं! अभी लैम्प गिर पड़े तो!" ग़ुस्सा तो बहुत आया। पर क्या करता? एक कहावत है न कि किससे तो कौन तक डरता है। तमाम मज़ा ही किरकिरा हो गया। सबसे बड़ा दुःख यह है कि कहानी अधूरी रह गई, पर मुझे उम्मीद है कि फिर किसी दिन यह मंडली मेरा झोपड़ा फिर पवित्र करेगी और कहानी को समाप्ति तक पहुँचायेगी।

भारतीय इतिहास के लेखन और शिक्षण की प्रणाली

[श्रीयुत गोपाल दामोदर तामस्कर, एम० ए०]

योरपीय और विशेषकर अँगरेज़ विद्वानों ने हमें जो थोड़े बहुत लाभ पहुँचाये हैं उनमें एक यह है कि हमारे देश के इतिहास की ओर भिन्न भिन्न उपायों-द्वारा हमारी दृष्टि उन्होंने आकर्षित की है। 'इतिहास-पुराण' का विषय हमारे यहाँ भी कदाचित् पढ़ाया जाता था। पर जिस शास्त्रीय रीति से भारतवर्ष के इतिहास की छान-बीन योरपीय लोगों ने शुरू की वह बिलकुल नई है। इस कार्य के लिए योरपीय लोग वास्तव में हमारे धन्यवाद के पात्र हैं। तथापि हमें यह भी कहना होगा कि उन्होंने हमारे देश के इतिहास को एक बार जिस साँचे में ढाल दिया और उसे जो स्वरूप दे दिया वह अब तक बिना सोचे-विचारे निभाया जा रहा है। ऐसे बहुत थोड़े लोग हैं कि जिन्हें इस बात की ख़बर है कि भारतीय इतिहास का स्वरूप इतना विकृत हो चुका है कि उसे इतिहास कहना ही भूल है। यदि लोग कुछ जानते हैं तो इतना ही कि हमारे इतिहास की कई बातें आज-तक मालूम नहीं हुई अथवा मुसलमान-काल और ब्रिटिश-काल की कुछ बातें तोड़-मरोड़ कर अथवा झूठी भी लिखी जाती हैं और सत्य पर परदा डालने का प्रयत्न किया जाता है। हमारा मत है कि उपरि लिखित दोष तो हमारे इतिहास में देख पड़ते हैं ही, पर सबसे भारी बात यह है कि उसका स्वरूप ऐसा बिगड़ गया है कि उससे हमें बहुत कम लाभ होता है। और जो दोष हमारे इतिहास के लेखन के ढङ्ग में आ गया है वही उसके पठन-पाठन के ढङ्ग में भी देख पड़ता है। यहाँ उसी के सम्बन्ध में कुछ बातें लिखी जाती हैं।

सबसे पहले यह जान लेना आवश्यक है कि भारतवर्ष का इतिहास बहुधा किस ढङ्ग से लिखा जाता है। जिस काल में जिन लोगों का प्रभुत्व रहा या स्थापित हुआ उसके

प्रिय-स्मृति

तुम मेरे पास होते हो गोया ।
जब कोई दूसरा नहीं होता ।—मोमिन

न प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग]

अनुसार हमारे देश के इतिहास के तीन भाग किये जाते है। वे है (१) हिन्दूकाल, (२) मुसलमानकाल और (३) ब्रिटिशकाल। पंद्रह-बीस साल पहले तक तो मरहठे, राजपूत और सिक्खो का बहुत ही कम वृत्तान्त पाठ्य-पुस्तको में मिलता था। पर इन थोड़े से वर्षों मे जो राष्ट्रीय जागृति हुई और हमारे देश के इतिहास पर और विशेष कर उपरि लिखित जातियो के इतिहास पर जो प्रकाश डाला गया उसके कारण अब कहीं इन लोगों के राजाओं का थोड़ा बहुत वृत्तान्त पुस्तको में संकलित होने लगा है। परन्तु अब भी वही तीन विभाग पाठ्य-पुस्तकों में देख पड़ते हैं। अब इनमे से प्रत्येक विभाग की ओर दृष्टि डालिए। सबसे पहले हिन्दूकाल आता है। कुछ काल से लोगों को यह बात जँचने लगी है कि इतिहास पर देश की भौगोलिक स्थिति का बहुत परिणाम होता है। इसलिए अब भारतवर्ष के इतिहास की पुस्तकों मे इस देश की भौगोलिक परिस्थिति का कुछ परिचय और उसके कुछ छोटे-मोटे परिणाम प्रारम्भ में दे दिये जाते है। तदनन्तर यहाँ की वर्तमान भिन्न भिन्न जातियों (यानी क़ौमों) का संक्षिप्त परिचय दिया जाता है। इसके बाद आर्यों के आगमन का वृत्तान्त और उनकी सभ्यता का कुछ स्वरूप बताया जाता है। यह ख़याल में रखने की बात है कि यहाँ तक तो लोगों के इतिहास के भिन्न भिन्न स्वरूपों का परिचय कराया जाता है, पर इससे आगे कुछ समय तक हमारे देश का इतिहास धार्मिक इतिहास का स्वरूप धारण कर लेता है। बौद्ध-धर्म और जैन-धर्म के इतिहास के समय और सब बातें भुला दी जाती है। माना कि इस काल की कई बातें बहुत कम मालूम हुई है। तथापि हम यह कह सकते है कि कुछ अंश तक यह दोष 'लकीर के फ़क़ीर' बने रहने के कारण भी चला जा रहा है। अब यह कोई नहीं कह सकता कि लोगों को इस काल में इतिहास के अन्य स्वरूपों का ज्ञान बिलकुल ही नहीं हुआ है। बहुत कुछ खोज-ढूँढ़ के बाद लोगों के सम्बन्ध की कई अन्य बातें भी मालूम हुई है, पर इस काल का केवल धार्मिक इतिहास बताने की प्रणाली जो एक बार चल निकली उसे लेखक लोग और इस कारण शिक्षक लोग भी अब तक चलाये जा रहे हैं। इस धार्मिक इतिहास के बाद जाति-भेद के विकास की कुछ बातें बताकर सिकन्दर के आक्रमण का हाल विस्तारपूर्वक दिया जाता है। प्रसङ्गवश हम यह प्रश्न करना चाहते है कि जिस चढ़ाई का भारतवर्ष के इतिहास पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा, उसका विस्तृत हाल जानकर हमें लाभ ही क्या है? परन्तु विन्सेंट स्मिथ साहब ने (Early History of India) नामक अपनी पुस्तक में इसका हाल ख़ूब विस्तारपूर्वक दिया है। इस कारण अन्य लेखक लोग भी उसका हाल विस्तारपूर्वक बताया करते हैं और पाठकगण उसी प्रकार उसे अपने विद्यार्थियों को पढ़ाया करते है तथा परीक्षकगण उसके सम्बन्ध के प्रश्न पूछा करते है। बात यह है कि 'गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः'। सिकन्दर की चढ़ाई के बाद मौर्य-वंश का इतिहास शुरू होता है। उसमे पहले चन्द्रगुप्त की शासन-प्रणाली का वृत्तान्त मेगेस्थनीज़ के वृत्तान्त के आधार पर लिखे विन्सेंट स्मिथ साहब के कथन के अनुसार दिया जाता है। तदनन्तर अशोक के बौद्ध-धर्म के प्रचार के प्रयत्नों का हाल रहता है। इसके बाद शकों के आक्रमणो का हाल आता है। इसके बाद बौद्ध-काल में लोगों की जो स्थिति रही उसके कुछ स्वरूप का कुछ संक्षिप्त परिचय कुछ पुस्तकों में अब दिया जाने लगा है, परन्तु बहुधा वह संतोषप्रद नहीं रहता। फिर गुप्तवंश का इतिहास हमें पढ़ना होता है, और कुछ पुस्तकों में इस काल के लोगो की स्थिति का वर्णन भी मिलता है। तदनन्तर हर्ष के साम्राज्य का वर्णन रहता है। इसके बाद कुछ पुस्तकों मे इस काल से लगा कर राजपूत-काल के अन्त तक जो जो धार्मिक परिवर्तन हुए उनका हाल रहता है। फिर कुछ पुस्तकों में हम राजपूत-वंशों का बहुत संक्षिप्त परिचय पाते है। यत्र-तत्र दक्षिण के राजघरानों का हाल भी दिया जाता है। कहीं कहीं अन्त में हिन्दूकाल का अथवा राजपूत-काल का 'सिंहावलोकन' रहता है। इस प्रकार प्रथम भाग समाप्त होता है।

ऊपर दी हुई वर्णन-प्रणाली में कुछ सामान्य दोष देख पड़ते है। पहले तो समस्त भारत का इतिहास हमें पढ़ने को नहीं मिलता। जो कुछ इतिहास मिलता है वह उसके भिन्न भिन्न भागों का ही रहता है। इस दोष

का पहला और प्रधान कारण यह है कि हमें सम्पूर्ण भारतवर्ष का उस प्राचीन काल का इतिहास अब तक भरपूर प्राप्त नहीं हुआ है। तथापि यह मानना होगा कि कुछ अंश तक यह दोष अपरिहार्य है। उस प्राचीन काल में समस्त भारतवर्ष पर बहुत ही कम शासकों का शासन रहा। वास्तविक बात यह है कि सम्पूर्ण भारतवर्ष को एक ही देश समझने की कल्पना बहुत कुछ अर्वाचीन है। ऐसी स्थिति में सम्पूर्ण भारत का धारा-वाहिक इतिहास होना अशक्य है। दूसरा दोष जो देख पड़ता है वह यह है कि इतिहास के सब अङ्गों का साङ्गोपाङ्ग वर्णन इतिहास की पुस्तकों में नहीं मिलता। अब लोग समझने लगे हैं कि किसी देश के इतिहास का यह अर्थ नहीं कि केवल राजवंशों के अस्तोदय का वर्णन दे दिया जाय, किन्तु यह अर्थ है कि उसमें लोगों की स्थिति में जो परिवर्तन हुए उनका परिचय कराया जाय। तथापि अब भी हम कह सकते हैं कि लोगों को इतिहास का सच्चा अर्थ भली भाँति नहीं ज्ञात हुआ। माना कि इतिहास के वृत्तान्त के अभाव के कारण उसके भिन्न भिन्न अङ्गों का वर्णन हमें भली भाँति अब तक नहीं बताया जा सकता। तथापि यह कहने में हम नहीं हिचकते कि इतिहास के अर्थ के अज्ञान के कारण भी राजवंशों के वृत्तान्तों पर जितना ज़ोर दिया जाता है, उतना ज़ोर लोगों की स्थिति के वर्णन पर नहीं दिया जाता। इस कारण पुस्तकों में लोक-स्थिति का जितना और जिस प्रकार का वर्णन किया जा सकता है, उतना नहीं दिया जाता। एक तीसरा दोष यह भी देख पड़ता है कि लोक-स्थिति का जो कुछ वर्णन रहता है वह भले प्रकार सम्बद्ध नहीं रहता, वह बहुत ही टूटा-सा रहता है। इस कारण हम यह नहीं जान पाते कि लोक-स्थिति में किस क्रम से परिवर्तन हुआ।

अब मुसलमान-काल के इतिहास-लेखन पर दृष्टि डालिए। यहाँ आपको मुसलमान विजेताओं तथा शासकों की विजयों का और कहीं कहीं उनके राज्यशासन का हाल तो मिलेगा, परन्तु लोगों का हाल बहुत ही कम। इतना ही नहीं, हिन्दूराजाओं अथवा लोगों का जो कुछ हाल मिलेगा वह बहुधा मुसलमान विजेताओं और शासकों की विजयों के सम्बन्ध में—उनका स्वतन्त्र वर्णन बहुत ही कम रहता है। हाँ, जैसा ऊपर कह चुके हैं, अब मरहठों, राजपूतों और सिक्खों का थोड़ा-बहुत वर्णन हमें भारतवर्ष के इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों में पढ़ने को मिलने लग गया है। कहीं कहीं मुसलमान-काल के अन्त में इस काल का 'सिंहावलोकन' भी दे दिया जाता है, जिसमें थोड़े से धार्मिक या सामाजिक परिवर्तन बता दिये जाते हैं।

यही हाल ब्रिटिश-काल के इतिहास का है। यहाँ तो लोगों की स्थिति का कुछ भी पता नहीं मिलता, हिन्दू और मुसलमान राजाओं का भी जो कुछ हाल मिलता है वह केवल अँगरेज़ों की विजयों के सम्बन्ध में ही। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि भारतवर्ष के इतिहास की पुस्तकों में ब्रिटिश-काल का जो वर्णन रहता है वह वास्तव में भारतवर्ष में ब्रिटिश-राज्य-स्थापना का इतिहास ही है, उसे भारतवर्ष का इतिहास कहना इतिहास की हँसी करना है।

इस प्रकार के वर्णन को इतिहास कहना और उससे लाभ होने की आशा करना वृथा है। पाठकगण इस पर हमसे पूछेंगे कि आप इतिहास का क्या अर्थ करते हैं। इस पर हमारा यह उत्तर है कि इतिहास का अर्थ और उसके लाभों को समझने के लिए उसके उपयोग पर कुछ दृष्टिपात करना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए हम यहाँ संक्षेप में बतावेंगे कि इतिहास का क्या मूल्य है, उसका हमारे लिए क्या उपयोग है, उससे हमें कौन कौन से लाभ हो सकते हैं। एक दृष्टि से यह है तो विषयान्तर, पर इतिहास का स्वरूप समझने के लिए इस बात का विचार करना आवश्यक है।

इतिहास से हमें जो सबसे भारी लाभ होता है वह प्राकृतिक शास्त्रों के लाभों से मिलता-जुलता ही है। प्राकृतिक शास्त्रों में हम देखते हैं कि किसी विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट कारणों के विशिष्ट ही परिणाम होते हैं। हमें मालूम है कि आक्सीजन और हैड्रोजन के संयोग से पानी बनता है। जब कभी हैड्रोजन किसी तरह जमाया जाय तो पानी ही पैदा होगा। उसी प्रकार हमें मालूम हो सकता है कि अमुक परिस्थिति में अमुक कारणों के क्या परिणाम होंगे। इतिहास के द्वारा हम

जो भविष्य की बात का अन्दाज़ा लगाते हैं वह उपरि-लिखित नियम के अनुसार ही। सब जानते हैं कि इस रीति का उपयोग सब मनुष्य रोज़ किया करते हैं। कोई मनुष्य विशिष्ट परिस्थिति में कैसा बर्ताव करेगा, कौन सा कार्य करेगा, यह हम उसके बारे में अपने ज्ञान यानी उसके जीवन के इतिहास से जाना करते हैं। इस प्रकार के कार्य-कारण सम्बन्ध का विचार करके हम-तुम कितने ही "भविष्य" इतिहास के आधार पर रचा करते हैं। इतिहास में हम केवल घटनाओं का वर्णन नहीं, किन्तु उनकी परिस्थिति और परिणाम भी पढ़ा करते हैं। और उपरि-लिखित नियम के अनुसार हम देखते हैं कि जब कभी वैसी ही परिस्थिति पैदा हुई और उस समय घटनाकारक कारण वे ही रहे तो परिणाम भी वे ही हुए हैं। इसी के आधार पर हम यह भविष्य कह सकते हैं कि जब कभी वही परिस्थिति पैदा होगी और वे ही कारण उस समय होंगे तब परिणाम भी वही होगा।

परिणामों को पहले से ही जान लेना कुछ कम लाभ-दायक नहीं है। जिस प्रकार प्राकृतिक शास्त्रों में भावी परिणाम पूर्व से ही ज्ञात होने से हमें उचित कार्य करने का अवसर मिलता है, हम अपने कार्यों को ऐसा रच सकते कि उनके विशिष्ट परिणाम हों, उसी प्रकार इतिहास के ज्ञान से लाभ होता है। इस विधि से हम जब थोड़ा-बहुत 'भविष्य' जानकर तदनुसार आचरण किया ही करते हैं। अपने कार्यों के परिणामों को सोच कर ही हम बहुधा प्रतिदिन अपने कार्यों का निश्चय किया करते हैं। यह कार्य इतिहास के ज्ञान से और अच्छा हो सकता है। रोज़ के जीवन के अनुभव के आधार पर यदि हम अपने कार्यों की प्रणाली रच सकते हैं तो सैकड़ों वर्षों के सामाजिक और वैयक्तिक अनुभवों के आधार पर हम अपने कार्यों को क्यों नहीं रच सकेंगे? 'अधिकस्याधिकं फलम्' के अनुसार अधिक अनुभवों का फल हमें लाभकारी ही होगा। ठोकर खाकर ज्ञान सीखने की अपेक्षा दूसरे के ज्ञान यानी अनुभव का उपयोग हम-तुम सदा करना चाहते हैं। और ऐसा करना उपयुक्त भी है। उससे समय, श्रम और हानि तीनों की बचत होती है। इतिहास अनुभवों का भाण्डार है। उसमें मनुष्य-जीवन के अनेक प्रकार के सैकड़ों अनुभव भरे पड़े हैं। जीवन के अनुभव की पाठशाला एक तो स्वयं जीवन है, दूसरी है इतिहास। जीवन की पाठशाला में अनुभव प्राप्त करते बैठने से श्रम और समय व्यर्थ खोना पड़ता है और बहुत हानि उठानी पड़ती है। परन्तु हमारा जीवन इतना बड़ा नहीं कि पहले हम अनुभव प्राप्त कर लें और फिर अपनी कार्य-प्रणाली निश्चित करें। गया समय फिर से आता नहीं। इसलिए प्रथम ही सोच-समझ कर कार्य करना होता है। इसलिए दूसरी पाठशाला में अनुभव का ज्ञान प्राप्त करना सब दृष्टि से लाभकारी है। सारांश, इतिहास के ज्ञान से हमारा श्रम और समय बच सकता है और हानि होने का डर कम हो जाता है। जिस प्रकार किसी व्यक्ति के लिए किये जानेवाले कार्यों के लिए उस व्यक्ति का इतिहास जानना ज़रूरी है, उसी प्रकार किसी समाज के लिए किये जानेवाले कार्यों के लिए समाज का इतिहास जानना आवश्यक है। अन्यथा सैकड़ों भूलें हो सकती हैं। हमारे कार्यों के अनपेक्षित परिणाम होते हैं और सबको अनेक प्रकार की हानि उठानी होती है।

परन्तु इतिहास और प्राकृतिक शास्त्रों के कार्य-कारणों की तुलना पूरी पूरी नहीं हो सकती। इतिहास में और प्राकृतिक शास्त्रों में एक बड़ा भारी अन्तर है। प्राकृतिक शास्त्रों में पदार्थ-विज्ञान, रसायन-शास्त्र इत्यादि बहुत कुछ और वनस्पति-शास्त्र, जीवन-शास्त्र इत्यादि थोड़े-बहुत अंशों में प्रयोगात्मक शास्त्र हैं, उनका प्रयोग कर सकते हैं और परिणामों को बहुत कुछ प्रत्यक्ष देख सकते हैं। पर इतिहास में यह बात नहीं है। इतिहास में प्रयोग के अनुभव नहीं देख सकते। मनुष्य-जीवन में स्वाभाविकतया जो अनुभव मिलते हैं उनका इतिहास में संग्रह रहता है, और हमें उन्हीं का उपयोग करना होता है। इतिहास में मनुष्य-जीवन के प्रयोग नहीं किये जा सकते। जहाँ कहीं ऐसे कृत्रिम अनुभव करने का प्रयत्न हुआ, वहाँ लोग नहीं सफल हुए। सारांश, प्राकृतिक शास्त्रों के सिद्धान्तों की सत्यता कई बार प्रयोग करके जांच सकते हैं, पर इतिहास में उसमें संगृहीत अनुभवों पर ही निर्भर रहना होता है। हम उन अनुभवों की आलोचना करके सिद्धान्त निकाला करते हैं। प्राकृतिक शास्त्र प्रयोगात्मक है, इति-

ह्रास आलोचनात्मक है। इससे निकलनेवाला एक भेद इन दोनों में और है। जिन शास्त्रों में प्रयोग की संभावना अधिक है उनमें प्रयोगों की परिस्थिति का नियन्त्रण हम कर सकते हैं, यानी जितनी चाहिए उतनी गर्मी दे सकते हैं, उचित परिमाण में वस्तुएँ ले सकते हैं, और उन्हीं यन्त्रों का उपयोग हम बार बार कर सकते हैं। इस प्रकार परिस्थिति को हम प्रयोग के उपयुक्त बना सकते हैं। पर आलोचनात्मक शास्त्रों में परिस्थिति बदला करती है। निर्जीव पदार्थों पर जहा प्रयोग होता है, वहाँ परिस्थिति क़रीब क़रीब एक-सी रहती है, उसका हम इच्छानुसार उचित नियन्त्रण कर सकते हैं। वनस्पति-शास्त्र में परिस्थिति का नियन्त्रण भरपूर नहीं हो सकता, और इसलिए उसमें प्रयोग के लिए स्थान भी कुछ कम रहता है। जीव-शास्त्र में परिस्थिति का नियन्त्रण और प्रयोग की संभावना और भी कम हो जाती है, और मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में तो और भी कम। सामाजिक जीवन में तो इसके लिए स्थान प्रायः नहीं के बराबर है। जो कुछ अनुभव देख पड़ें उनमें बहुत समान कौन से हैं, कब कब क़रीब क़रीब समान परिस्थिति रही, क़रीब क़रीब समान कारण कौन रहे और क़रीब क़रीब समान परिणाम कौन हुए, यह देखकर अपने सिद्धान्त हमें स्थिर करने पड़ते हैं। बिलकुल यही परिस्थिति इतिहास में दो बार मिलना प्रायः असंभव है। ऐतिहासिक परिस्थितियों में थोड़ी-बहुत समानता हो सकती है, पर पूरी एकता कभी नहीं। इस कारण हमारे ऐतिहासिक सिद्धान्त प्रयोगात्मक शास्त्रों की भाँति अटल नहीं रह सकते। उनमें थोड़ा-बहुत परिवर्तन हो सकता है। कभी कभी परिस्थिति, कारण और परिणाम का ज्ञान भी इतिहास में पूर्णतया ठीक नहीं रहता। इस कारण सिद्धान्तों की सत्यता थोड़ी और कम हो जाती है।

इतने दोष रहने पर भी इतिहास का यह लाभ बड़ा भारी ही है। जीवन के अनुभवों को जानने का यदि कोई अन्य उपाय होता तो इतिहास का आधार ढूँढ़ने की आवश्यकता न रहती। पर इसके सिवा जब कोई दूसरी अनुभव-शाला है नहीं तब इसका उत्तम उपयोग कर लेना अत्यावश्यक है।

ऊपर बताये लाभ से मिलता-जुलता एक और लाभ है। कार्यों से जिस प्रकार किसी की मनःप्रवृत्ति मालूम हो जाती है और इसके लिए जिस प्रकार उसके कार्यों की आलोचना करनी पड़ती है, उसी प्रकार समाज की मनःप्रवृत्ति जानने के लिए समाज के कार्यों की आलोचना करनी होती है। कोई कार्य होने के पहले मन में पहले भावनायें उठती हैं, फिर तदनुसार कार्य होता है। हमारे कार्य हमारी भावनाओं के बहिः-परिणाम हैं। इस प्रकार कार्यों से भावनाओं का ज्ञान होता है। इसी प्रकार किसी के मन को हम जानते हैं। यही बात राष्ट्र के मन के विषय में चरितार्थ होती है। एक दृष्टि से देखा जाय तो इतिहास मनःप्रवृत्तियों का बहिःस्वरूप ही है। उसमें समाज और व्यक्ति का मन बहुत कुछ पढ़ा जा सकता है। और यह ज्ञान हमें अपने कार्यों को निश्चित करने के लिए सहायक होता है।

इतिहास से यह भी बात मालूम होती है कि किसी बात को बनने के लिए बहुत काल चाहिए। सुधार धीरे धीरे ही होता है। कोई भी बात एक दिन में नहीं बन जाती। अँगरेज़ी में कहावत है कि रोम एक दिन में नहीं बना। इस कहावत में शनैः शनैः सुधार का तत्त्व भरा पड़ा है। इस कारण सच्चा इतिहासज्ञ कार्य और विचार में उतावला नहीं होता। वह किसी भी सुधार का ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करता है और उसके लिए वह उचित समय भी देता है। उतावलेपन से काम बनने की अपेक्षा बिगड़ने की सम्भावना अधिक रहती है। विशेष कर समाज पर कोई भी सुधार एक-दम लाद देना अनुपयुक्त होता है। मनुष्य की परिस्थिति और कार्यों में भूत, वर्तमान और भविष्य नितान्त जकड़े रहते हैं। आज की बात वर्तमान में है, कल के लिए वह भविष्य में थी। और आज का दिन बीत जाने पर वह भूत में चली जायगी। मनुष्य के समाज में ऐसी अवस्था बहुधा कम आती है कि जब भूत से वर्तमान का या वर्तमान से भविष्य का सम्बन्ध पूर्णतया टूट जाता है। परिवर्तन धीरे धीरे ही होता है। सुधार के लिए जब तक समाज तैयार न होगा तब तक ज़बरदस्ती या उतावलेपन से कोई लाभ नहीं।

इतिहास के जो उपर्युक्त तीन उपयोग हमने बताये हैं वे परस्पर बहुत सम्बद्ध हैं और इतिहास के पठन-पाठन के महत्त्व को स्थापित करने के लिए पर्याप्त हैं। सारांश यह है कि जिस किसी समाज से जिस किसी का किसी भी दृष्टि से सम्बन्ध पड़ता है उस समाज का पूर्व चरित्र यानी इतिहास उस व्यक्ति को अपने कार्यों के लिए जान लेना अत्यन्त आवश्यक है।

परन्तु इतिहास के लाभ इतने में परिमित नहीं होते। उससे उपरिलिखित व्यावहारिक लाभ तो हैं ही, पर कुछ नैतिक और मानसिक लाभ भी हैं। इतिहास से एक बड़ा भारी नैतिक लाभ यह है कि उससे स्वदेशाभिमान की जागृति होती है। अपने पूर्वजों के विषय के ज्ञान से उनके विषय में अपना पूज्यभाव बढ़ता है और उनके वंशज होने का, उन्हीं के देश में पैदा होने का हमें अभिमान होता है। हिन्दुस्तानियों को तो यह बात और भी अधिक लागू होती है। गत कुछ काल से हिन्दुस्तान के इतिहास की खोज, लेखन और मनन की मात्रा बहुत कुछ बढ़ गई है। वह इसी प्रवृत्ति का परिणाम है। स्वदेशाभिमान का परिणाम कार्य के रूप में होता है। मनुष्य अनुकरणशील प्राणी है, और फिर यह भी बात है कि दूसरों की अपेक्षा वह अपने ही लोगों की नक़ल अधिक करता है। इस तरह पूर्वजों के उदाहरणों से हममें कार्यशक्ति का संचार हुआ करता है और उनसे भी बढ़कर कार्य कर दिखाने की इच्छा हममें पैदा होती है। इसलिए प्रत्येक राष्ट्र का इतिहास होना श्रेयस्कर है। जिस किसी को महाराष्ट्र का इतिहास मालूम हो उसे यह बात तुरन्त जँच जायगी। मृत्यु के बाद भी शिवाजी के किये कार्य ठीक ठीक चलते रहे और जिस कारण औरङ्गज़ेब जैसे बादशाह को हार खानी पड़ी वह कारण था शिवाजी के विषय का महाराष्ट्रियों का अभिमान। परन्तु सच्चे इतिहास के ज्ञान से अंध अभिमान दूर हो जाता है। उचित ज्ञान होने से, पूर्वजों के दोष और गुण जानने से, और अनेक समान दाहरण देखने से हमारे अभिमान के कारण युक्तियुक्त हैं अथवा नहीं, यह हम जान जाते हैं। इस तरह वृथाभिमान दूर हो जाता है। परन्तु इस प्रकार वह अभिमान कम होने पर भी पक्का हो जाता है। उसी से उपरिनिर्दिष्ट की हुई कार्य-शक्ति उत्पन्न होती है।

इतिहास से एक और नैतिक लाभ है। इतिहास के अन्वेषण, पठन और मनन से सत्य बातें जानने की इच्छा पैदा होती है। यह इच्छा इतनी बढ़ जा सकती है कि फिर सत्यता से प्रेम हो जाता है और असत्यता से घृणा मालूम होती है। हाँ, केवल पठन और मनन से यह लाभ होने की सम्भावना कम रहती है। उसके साथ अन्वेषण की भी प्रवृत्ति होनी चाहिए। सत्य बातों की खोज करते करते सत्य से प्रेम हो जाता है। फिर सत्य ढूँढ़ निकालने में चाहे जैसे कष्ट उठाये जा सकते हैं।

अब हम मानसिक लाभ बताये देते हैं। ऊपर बतला चुके हैं कि हमारे ऐतिहासिक सिद्धान्त घटनाओं की परिस्थिति. कारण और कार्यों (परिणामों) की आलोचना पर गढ़े जाते हैं। इस कारण हमें बार बार पृथक्करण, आलोचना और समान परिस्थिति के कार्य-कारण का संयोग करना होता है। इस प्रकार हमें बार बार अपनी निर्णयशक्ति का उपयोग करना पड़ता है और इस तरह उसका विकास होता जाता है। इतिहास के पठन और मनन से निर्णयशक्ति विकसित होती जाती है।

कल्पना-शक्ति का भी विकास साथ ही साथ होता जाता है। पढ़ते समय अनेक घटनाओं का चित्र आँखों के सामने आता जाता है। जो भावनायें हमें प्रथम मिल चुकी हैं उन्हें भिन्न भिन्न प्रकार से जोड़ कर अपने मन में भिन्न भिन्न चित्र पैदा करने होते हैं। इस तरह मानसिक चित्रों के द्वारा कल्पना-शक्ति का विकास हो सकता है।

इतिहास पढ़ते पढ़ते मन की प्रवृत्ति ही इतिहास-मूलक बन जाती है। सब बातों को हम ऐतिहासिक दृष्टि से देखने लगते हैं। किसी भी बात पर विचार करने के पहले उसके इतिहास को जानना चाहते हैं और उस दृष्टि से उसके सम्बन्ध के निर्णय हम स्थिर करते हैं। आगे चल कर यह लाभ होता है कि मन उदार हो जाता है। अनेक अनुभवों के ज्ञान से मन संकुचित नहीं रह जाता। हमें मालूम रहता है कि ऐसी बातें इतिहास में हुई हैं, मनुष्य के अमुक मन या विचार रहने स्वाभाविक हैं,

अमुक अमुक कार्य मनुष्य-स्वभाव के विरुद्ध नहीं हैं। हम पहले ही बता चुके है कि इतिहास से मनुष्य-स्वभाव का ज्ञान होता है। यह ज्ञान होने पर यह संभव नहीं कि हमारा मन पहले जैसा ही संकुचित बना रहे—वह अवश्य उदार होगा।

इतिहास से एक छोटा सा यह लाभ भी होता है कि उससे हमारे कुतूहल की पूर्ति होती है। मनुष्य-स्वभाव कुतूहल-पूर्ण है। मनुष्य के विषय की बातें जानने की इच्छा हमें होना स्वाभाविक है। इतिहास के पढ़ने से यह कुतूहल पूर्ण होकर हमें आनन्द प्राप्त होता है। कैसा भी रूखा मनुष्य क्यों न हो, उसे भी इतिहास की दो-चार बातें जानने की इच्छा होती ही है। बालकों में कहानी सुनने की जो स्वाभाविक इच्छा होती है वह इसी अन्तःप्रवृत्ति का मूलस्वरूप है। ऐसा मानसिक आनन्द जिस विषय से प्राप्त होता है उसका इस दृष्टि से भी कुछ महत्त्व है। शिक्षा के अनेक उद्देशों में से एक यह भी है कि हम अपना ख़ाली समय उच्च रीति से, श्रेष्ठ आनन्द का लाभ प्राप्त करते हुए, बिता सकें। इतिहास से इस उद्देश की भी पूर्ति होती है।

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि इतिहास केवल राजवंशों के उत्थान-पतन का वर्णन नहीं है। कार्लाइल जैसे विद्वान् ने भले ही कहा हो कि इतिहास यानी महापुरुषों के जीवन-चरित का वर्णन है। इस दृष्टि से इतिहास में लोगों के कार्यों का आश्रय उन पर होनेवाले परिणामों का वर्णन बिलकुल नहीं आ सकता। और इस प्रकार के वर्णन से हमें कुछ भी लाभ नहीं हो सकता। इतिहास का यह अर्थ आज तक किसी अन्य ने लेखन या शिक्षण में नहीं माना। आज-कल इतिहास का जो अर्थ लेखन और शिक्षण मे विशेष प्रचलित है वह यह है कि इतिहास लोगों और राजाओं के राजकीय उत्थान-पतन का वर्णन है। ये लोग या तो एक भौगोलिक देश के निवासी रहे अथवा एक ही राज्य-शासन में रहे। परन्तु यह स्पष्ट है कि राजकीय सम्बन्ध मनुष्य-जीवन का केवल एक अङ्ग है—उसमें हमारे जीवन का समस्त स्वरूप नहीं आ जाता। इसलिए राजकीय वर्णन को ही इतिहास कहना भूल है। माना कि राजकीय सम्बन्ध हमारे जीवन का बड़े महत्त्व का भाग है। उसका हमारे जीवन के अन्य अंगों पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु उतने से ही इतिहास का वर्णन समाप्त नहीं हो सकता। हमारे जीवन में धर्म, अर्थ, सामाजिक सम्बन्ध, साहित्य, कला आदि अनेक बातों का प्रभाव देख पड़ता है। इसलिए इन समस्त अङ्गों का विवेचन होना, इन सब दृष्टियों से मनुष्य-जीवन के उत्थान और पतन का वर्णन होना, अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए राजकीय घटनाओं के वर्णन में इतिहास का वर्णन समाप्त करना बड़ी भारी भूल है। उसमें मानव-जीवन के सब अङ्गों के, सभी सम्बन्धों के उत्थान और पतन का वर्णन होना चाहिए। यहां तक कि भौगोलिक परिस्थिति का भी परिणाम दिखाना आवश्यक है। परन्तु बकल नामक इतिहासज्ञ की नाईं मनुष्य-जीवन को भौगोलिक स्थिति का परिणाम बना देना भी भूल है। मनुष्य विचारशील प्राणी है। उसमें कुछ 'स्वतन्त्र' बुद्धि है। वह केवल प्रकृति का दास नहीं है। उसे प्रकृति का दास बना देने से मानवोन्नति की आशा रह ही नहीं जाती। फिर इतिहास के पढ़ने से किसी लाभ की आशा करना वृथा है। परन्तु कोई भी समझदार पुरुष अब नहीं मानता कि मनुष्य प्रकृति का निरा दास है। इतिहास की यह दृष्टि निराशाजनक और अनीतिवर्धक है। इसलिए इसे भी हमें त्यागना ही होगा। इसलिए इतिहास को उपरिलिखित दोनों दोषों से बचाना होगा और उसका स्वरूप ऐसा निश्चित करना होगा जिससे उसमें मानवजीवन के उत्थान और पतन का परिपूर्ण विवेचन आ जाय। इसी प्रकार के इतिहास से हमें ऊपर बताये व्यावहारिक लाभ होंगे, हममें स्वदेशाभिमान जागृत होगा और हम उदार बन सकेंगे तथा हमारे मानसिक विकास के लिए उसका उपयोग हो सकेगा। राजाओं के, अथवा थोड़े बहुत अंश में, लोगों के उत्थान-पतन के वर्णन से हमें बहुत कम लाभ हो सकेगा। हां, इससे कहानी सुनने का हमारा कुतूहल अवश्य पूर्ण होगा, परन्तु एक बार उन कहानियों को सुनने पर फिर उन्हें पढ़ने की इच्छा न होगी और न उनसे अन्य कोई लाभ ही हो सकेगा।

प्रारम्भ में हम बता चुके हैं कि भारतवर्ष का इतिहास बहुधा किस ढङ्ग से लिखा जाता है। तदनन्तर

हमने बताया है कि इतिहास से हमें कौन से लाभ हो सकते हैं। इस पर से हमने यह निश्चित किया कि इतिहास का स्वरूप क्या होना चाहिए। अब पाठक समझ सकते हैं कि भारतवर्ष के इतिहास के लेखन और पाठन में कितने अधिक दोष हैं। हम यह बता ही चुके हैं कि उसमें लोगों के जीवन के भिन्न भिन्न अङ्गों के उत्थान और पतन का वर्णन बहुत कम रहता है। इससे यह स्पष्ट हो सकता है कि भारतवर्ष के वर्तमान ढङ्ग के इतिहास से हमें कितना कम लाभ पहुँच सकता है। ऐसी स्थिति में कोई आश्चर्य नहीं कि इतिहास से विद्यार्थी डरा करें और लोग यह पूछा करें कि वह पढ़ाया ही क्यों जाता है। फिर कोई आश्चर्य नहीं कि इतिहास के विषय में बहुत से विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हुआ करें। प्रश्नों के उत्तर देने मे यदि सबसे अधिक बुद्धि और तैयारी की किसी विषय में ज़रूरत है तो वह इतिहास में है। क्योंकि थोड़े समय के भीतर लम्बे-चौड़े वर्णन को संक्षेप मे लिख देना, पूर्वापर यथार्थ कारण-सम्बन्ध दिखलाते हुए विवेचन करना, कुछ मामूली काम नहीं है। इसी कारण इतिहास के प्रश्नों के उत्तर कभी सन्तोषप्रद नहीं रहते। उत्तर देने का काम जितना टेढ़ा है, उतना ही उनको जांचने का भी काम है। गणित की भांति उन पर शीघ्र निर्णय देना सरल नहीं है। जितने विद्यार्थी रहते हैं, उतने ही उत्तरों के प्रकार रहा करते है। किन्हीं भी दो विद्यार्थियों के उत्तर पूरी तौर से मिलना असम्भव है। इसलिए यदि परीक्षक निष्पक्षपात से निर्णय करना चाहे तो उसे अपनी निर्णय-शक्ति को ख़ूब कसना होगा। तब कहीं वह थोड़ा-बहुत निष्पक्षपात निर्णय कर सकेगा। इस कष्ट से बचने के लिए परीक्षक लोग बहुधा राजाओं के उत्थान-पतन अथवा लड़ाइयों के सम्बन्ध के ही प्रश्न अधिक किया करते हैं। परीक्षा की रीति देखकर शिक्षक लोग उस प्रकार पढ़ाया करते हैं। परिणाम यह होता है कि जो इतिहास पहले ही बहुत नीरस रहता है वह और भी नीरस हो जाता है—विद्यार्थी उससे वास्तव में घृणा करने लगते हैं।

इसी के साथ एक दूसरा बड़ा भारी दोष भारतवर्ष के इतिहास के लेखन और शिक्षण के सम्बन्ध मे यह है कि प्रारम्भ से अन्त तक क़रीब क़रीब वही ढर्रा रहता है—इतिहास के पढ़ने का दृष्टिकोण बहुत कम बदलता है। अब कहीं भारतवर्ष के इतिहास के अन्य अङ्गों पर थोड़ा-बहुत प्रकाश डाला जाने लगा है और उसके विशिष्ट अङ्गों का विवेचन करनेवाली कुछ पुस्तकें भारतवर्ष के इतिहास के पाठन-क्रम में रक्खी जाने लगी हैं अथवा सामान्य इतिहास की पुस्तकों में उन अङ्गों का थोड़ा-बहुत विवेचन रहने लगा है। परन्तु यह विवेचन इतना कम और सदोष रहता है कि उसका रहना और न रहना एक ही सा है। हम मानते हैं कि कुछ अंश तक यह दोष अपरिहार्य है, क्योंकि भारतवर्ष के इतिहास के भिन्न भिन्न अङ्गों का ज्ञान अभी भरपूर नहीं हुआ है। परन्तु यह भी कह सकते है कि इतिहास की पाठन-पद्धति मे सुधार के लिए यथेष्ट स्थान है। हमारी सम्मति मे इतिहास के पाठन का निम्न-लिखित क्रम-विशेष ग्राह्य है—

१ प्रायमरी स्कूल—पौराणिक कथायें—एक या दो वर्ष तक

२ मिडिल स्कूल—(क) ऐतिहासिक चरितावलि—एक वर्ष

(ख) सामान्य तारीख़वार राजकीय इतिहास—तीन वर्ष।

३ मैट्रिक्यूलेशन—भारतवर्ष का काल-क्रम-विषयानुसार सामान्य इतिहास, इँग्लैंड का काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास। दोनों मिलाकर दो या तीन वर्ष।

'काल-क्रम विषयानुसार' का अर्थ समझा देना आवश्यक है। सामान्य पुस्तकों में बहुधा राजकीय उत्थान-पतन का वर्णन काल-क्रम के अनुसार रहता है। यदि कहीं अन्य अङ्गों का वर्णन रहा ही तो वह बहुत संक्षेप में कुछ अध्यायों के अन्त में दे दिया जाता है। हम कह ही चुके हैं कि इस रीति से इतिहास से भरपूर लाभ नहीं होता। इसलिए राजकीय उत्थान-पतन के वर्णन के अलावा किसी उचित क्रम से मानव-जीवन के अन्य अङ्गों का भी वर्णन रहना आवश्यक है। हमने अब तक इस प्रकार की एकही पुस्तक देखी है। वह है

Lay कृत English People यह पुस्तक कई प्रान्तों में पढ़ाई भी जाती है। परन्तु हमारा मत है कि जब तक विद्यार्थी किसी देश का काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास नहीं पढ़ लेते तब तक 'काल-क्रम विषयानुसार' सामान्य इतिहास पढ़ने से कोई काम नहीं होता। क्योंकि इस दूसरे प्रकार के इतिहास में पूर्वापर उल्लेख बहुत रहते हैं। उन्हें मोटे तौर से भी जो नहीं जानता यानी काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास जो नहीं पढ़ा रहता वह काल-क्रम के अनुसार लिखे या नवजीवन के भिन्न भिन्न अङ्गों के इतिहास के वर्णन को नहीं समझ सकता। इसी लिए हमने मिडिल स्कूल में भारतवर्ष का काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास रक्खा है। उसी के बाद या नवजीवन के भिन्न भिन्न अङ्गों का काल-क्रमानुसार विवेचन करनेवाला इतिहास आ सकता है। परन्तु मैट्रिक्यूलेशन के पहले किसी विदेश का इतिहास नहीं पढ़ाया जा सकता, इस लिए मैट्रिक्यूलेशन में हमने इँग्लेंड का काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास ही रक्खा है।

४ इण्टर मीडियेट परीक्षा—

(क) इँग्लेंड का काल-क्रम-विषयानुसार सामान्य इतिहास।
(ख) योरप का काल-क्रमानुसार सामान्य इतिहास।
(ग) रोम और ग्रीस का प्राचीन इतिहास।

५ बी० ए० की परीक्षा—

(क) इँग्लेंड के शासन-विकास का इतिहास।
(ख) भारतीय जीवन के भिन्न अङ्गों का सविस्तर इतिहास।
(ग) सब प्राचीन देशों का इतिहास—जिन देशों पर भारतवर्ष का प्रभाव पड़ा हो उनका इतिहास कुछ विस्तारपूर्वक।

६ एम्० ए० की परीक्षा—

(क) सामान्य योरपीय इतिहास विस्तार-पूर्वक, साथ ही योरपीय सभ्यता का इतिहास।
(ख) प्राचीन सभ्यता का इतिहास—किसी एक देश का विशेषरूप से।
(ग) भारतवर्ष के इतिहास का कोई विशेष अङ्ग और उसके समय की सभ्यता। इस विषय में कुछ अनुसन्धान तथा मौलिक विवेचन।
(घ) राजकीय तत्त्व विचार और संसार की वर्तमान शासन-व्यवस्थायें।

आज-कल स्कूलों और कालेजों में इतिहास का जो पाठन-क्रम है उसमें न तो अच्छा पूर्वापर सम्बन्ध और क्रमशः विकास देख पड़ता है और न उससे इतिहास का स्वरूप ही अच्छी तरह समझ में आता है। इस कारण इतिहास-विषय विद्यार्थी अच्छी तरह नहीं समझ सकते, उसमें उनकी रुचि नहीं रहती और उससे उन्हें बहुत कम लाभ होता है। एम० ए० की पदवी पाने पर भी संसार के इतिहास से ये पदवीधारी नहीं परिचित रहते और इसलिए इतिहास की गति को नहीं समझ पाते। एम० ए० की पदवी आचार्य की पदवी पाने के बराबर है। जो पुरुष आचार्य की पदवी पाये वह संसार के इतिहास से और उसकी गति-विधि से अनभिज्ञ हो, यह अत्यन्त खेद की बात है। आज-कल इतिहास के पाठन-क्रम में यह दोष भी देख पड़ता है कि मैट्रिक्यूलेशन के बाद लोग भारतवर्ष का सविस्तर इतिहास पढ़े बिना ही एम० ए० की पदवी पा सकते हैं। जो दूसरे देशों का इतिहास जानता हो, पर अपने देश के सविस्तर इतिहास से अनभिज्ञ हो, उसका इतिहास पढ़ना और न पढ़ना एकही सा है—उसे हम इतिहासाचार्य नहीं मान सकते। केवल स्वदेशाभिमान की दृष्टि से नहीं, किन्तु इतिहास से लाभ उठाने के लिए तथा अपने समाज को लाभ पहुँचाने के लिए अपने लोगों का सविस्तर इतिहास पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। आज-कल की परीक्षाओं के पाठन-क्रम में यह भी दोष देख पड़ता है कि कोई पुरुष कुछ ऐतिहासिक अनुसन्धान या मौलिक विवेचन कर सके, या न कर सके, पर वह कुछ पुस्तकों को पढ़कर और उन पर किये जानेवाले प्रश्नों का उत्तर देकर ही एम्० ए० की पदवी पा सकता है। इस उच्च पदवी का पाना इतना सुलभ न होना चाहिए। जो पुरुष कुछ भी मौलिक विवेचन नहीं कर सकता उसे एम० ए० की पदवी देना

उचित नहीं कहा जा सकता। हमने जो पाठन-क्रम ऊपर बताया है उसमें बहुतेरे दोष दूर हो जाते है और इतिहास के पठन से हमारे विद्यार्थी भरपूर लाभ उठा सकते हैं। हमें आशा है कि इतिहास के लेखन और पाठन में हमने जो दोष बताये है उन्हें इतिहास के लेखक और पाठक दूर करने का प्रयत्न करेंगे।

प्रथम मेघ

[श्रीयुत विश्वकर्मा]

सुन पड़ता है रह रह कर,
प्रथम मेघ का जब प्रिय स्वर,

तब मेरे इन डैनो में मा;
आजाती है शक्ति अपार;
नील गगन मे उड़ जाने को
पा जाती हूँ कुछ आधार!

नहीं फुदकने का है ज्ञान,
तब कैसे होगा अनुमान,
उड़ जाऊँगी इतने ऊपर!
शक्ति अल्प है, पथ अज्ञात,
तोभी उड़ जाने दे मुझको,
चिन्ता करने की क्या बात।

गहन मेघ मे छिप अनजान,
सुन लूँगी मैं उसका गान;
उतर पड़ूँगी पृथ्वी-तल पर,
जब उतरेगा वह छविमान;
तुझे सुनाऊँगी तब आकर,
मा, उसका वह अभिनय-गान!

गेरी के सार्वजनिक स्कूल

[श्रीयुत रघुवीरसिंह, बी० ए०]

संसार में ज्यों ज्यों मानव-समाज का विकास होता जा रहा है, ज्यो ज्यों उसके राजनैतिक, सामाजिक तथा नैतिक आदर्शों में परिवर्तन होता जाता है, त्यों त्यों मनुष्य को इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि वह नूतन आदर्शों के अनुसार अपने जीवन को सङ्गठित करे। मनुष्य सर्वदा से अपनी अवस्था से असन्तुष्ट रहा है। वह अपने को उन्नत करने के लिए निरन्तर उन कारणों को ढूँढ़ता रहता है जो उसकी उन्नति तथा सुख में बाधक होते हैं। मनुष्य की भविष्य उन्नति का सबसे बाधक उसके प्रारम्भिक जीवन की अपूर्ण शिक्षा है। शिक्षा-पद्धति की त्रुटियों ही के कारण मनुष्य को प्रारम्भ में यह नहीं जान पड़ता कि उन्नति का पथ कौन-सा है। मनुष्य के जीवन के विकास के साथ ही शिक्षा का आदर्श भी विकसित हो रहा है। पहले स्कूलों में सिर्फ़ पढ़ना-लिखना तथा अन्य कुछ विषयों का ज्ञान करा देना ही यथेष्ट समझा जाता था, किन्तु अब यह भी आवश्यक समझा जाता है कि प्रत्येक पाठशाला में बालकों के मानसिक विकास के साथ ही साथ शारीरिक तथा सामाजिक जीवन के विकास की ओर भी ध्यान देना चाहिए। आधुनिक काल में बालकों को कैसी शिक्षा दी जानी चाहिए,इस पर पाश्चात्य विद्वान् बहुत ध्यान दे रहे हैं। ऐसे ही एक विद्वान्, प्रोफ़ेसर हेनुस का कथन है कि—"आधुनिक प्रजातन्त्र समाज में ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो प्रत्येक युवकों को, अपनी भौतिक तथा आध्यात्मिक उन्नति में, आनेवाली अनिवार्य कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना करने योग्य बना सके। जो अतीव हितकारी वातावरण तथा यथायोग्य शारीरिक शिक्षण की

गेरी की सुन्दर सड़क

गेरी के निर्धन मनुष्यों के महल्ले का चित्र

सहायता से युवकों के प्राकृतिक तथा शारीरिक विकास की गति को बढ़ाये, जो उनके मस्तिष्क के बन्द द्वारों को खोल कर निरीक्षण तथा समीकरण की शक्ति की सहायता से उन्हें संसार का पूर्ण ज्ञान करा सके, जो उनकी शारीरिक तथा मानसिक शक्ति को बढ़ा सके, प्रकृति तथा कला की सुन्दरता को जानने योग्य बना सके, तथा उन्हें अपने और अन्य के प्रति अपने कर्तव्यों की प्रतीति करा सके, उसी शिक्षा की आज आवश्यकता है। शिक्षा युवावस्था तथा प्रौढ़ावस्था के प्रारम्भिक कार्यों के विचारपूर्वक गुण-दोष जानने की शक्ति प्रदान करती है। मनुष्य को उस जीवन की ओर ले जाती है जिसमें मस्तिष्क या शरीर या दोनों की सहायता से सर्वदा सफलता ही होती है। वह प्रत्येक मनुष्य को अपने काल के राजनैतिक तथा आर्थिक प्रश्नों को समझने तथा अपनी और समाज की उन्नति के लिए सफलतापूर्वक उनका सामना करने योग्य बनाती है, ऐसी ही शिक्षा आधुनिक आवश्यकताओं को पूर्ण कर सकती है। जो शिक्षा मनुष्य को यह बताती है कि उपयोगी होने ही से वह धन, संस्कृति, सुख, आदर आदि जीवन के बहुमूल्य फल पा सकता है, तथा सफलतापूर्वक उनका उपभोग कर सकता है, उन्नति तथा सेवा से रहित जीवन उपभोग करने योग्य नहीं है, वही शिक्षा मनुष्य के लिए उपयोगी होती है।"

शिक्षा का यह उद्देश नहीं है कि स्कूलों में सिर्फ़ लिखना, पढ़ना और अन्य विषयों का कुछ ज्ञान करा दिया जाय। छात्रों के समस्त जीवन को ही सुसंस्कृत करने तथा उनको एक सुपथ की ओर ले जाने को ही आधुनिक विद्वान् 'सच्ची शिक्षा' कहते हैं। किन्तु यह नवीन शिक्षा छात्रों को किस प्रकार दी जा सकती है, यही प्रश्न विचारणीय है। कई स्थानों में इस नवीन शिक्षा-पद्धति की परीक्षा हो रही है। अमेरिका में गेरी नामक स्थान में भी यह पद्धति प्रचलित है। वहां शिक्षा कैसे दी जाती है, प्रबन्ध कैसा है तथा भिन्न भिन्न विषय किस प्रकार पढ़ाये जाते हैं, संक्षेप में इसी की विवेचना यहाँ की जायगी।

इमरसन स्कूल

गेरी शिकागो से दक्षिण-पूर्व कोई २७ मील पर बसा हुआ है कोई बीस साल पहले यहाँ दलदल, बालू और जङ्गलों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं था। किन्तु आज-कल यह अमेरिका का एक बड़ा औद्योगिक केन्द्र हो गया है। यहाँ कितने ही कारख़ाने हैं। सारे शहर में अधिपति, उच्च पदस्थ राज-कर्मचारी और मज़दूर ही रहते हैं। यहाँ आस्ट्रिया, हंगरी, रूस, इटली, यूनान, जर्मनी, ग्रेटब्रिटन, आयर्लैंड, स्वीडन, नार्वे, डेनमार्क केनेडा आदि सभी देशों के निवासी पाये जाते हैं। इन सबमें आस्ट्रिया, हंगरी तथा रूस के निवासियों की संख्या बहुत

फ्रोबेल स्कूल
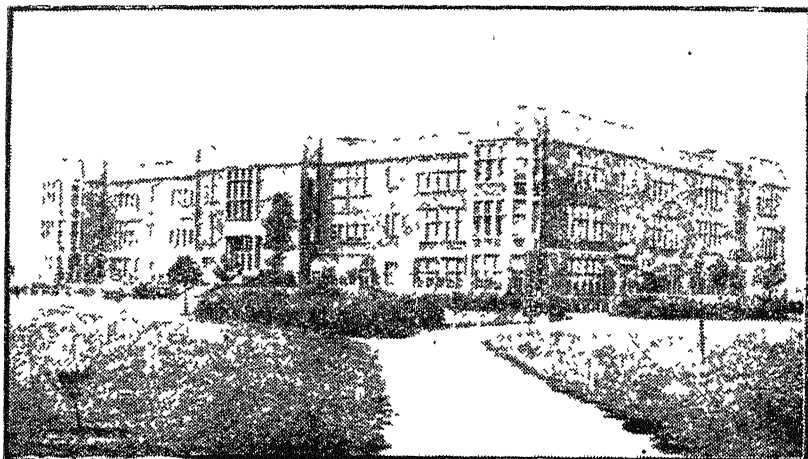
जेफ़रसन स्कूल

है। ऐसे तो अमेरिका के प्रायः सब शहर विदेशियों से पूर्ण हैं, किन्तु गेरी में इनकी संख्या बहुत है, और यह संख्या दिन दिन बढ़ती ही जाती है।

धनिकों और दरिद्र मज़दूरों का निवास-स्थान होने के कारण गेरी में एक ओर सुख तथा ऐश्वर्य की झलक पाई जाती है, और दूसरी ओर गन्दगी तथा दुःख का प्रभाव देखा जाता है। गेरी के भिन्न भिन्न स्कूलों में यह भेद स्पष्टतया दिखाई देता है। इमर्सन तथा जेफ़रसन स्कूलों में प्रायः सब अमेरिकन ही पढ़ते हैं और ये सब सुखी घरों के पुत्र होते हैं। किन्तु फ़ोबेल स्कूल मज़दूरों के बालकों के पढ़ने का है, और इसमें विदेशियों की ही संख्या बहुत है।

आधुनिक शिक्षा को कार्यरूप में परिणत करना ही गेरी के स्कूलों का आदर्श है। इन स्कूलों में बालकों को सामाजिक, मानसिक तथा शारीरिक शिक्षा दी जाती है। इस कारण यहाँ के विद्यार्थी अन्य स्कूलों के विद्यार्थियों से दो बातों में भिन्न हैं।

(१) इन स्कूलों में साधारण विषयों के अतिरिक्त अन्य विषय भी पढ़ाये जाते हैं।

(२) इन स्कूलों में ऐसी चतुरता के साथ दैनिक कार्यक्रम रक्खा गया है कि थोड़े से अधिक ख़र्च में ही नवीन बातों का समावेश करना शक्य हो गया है।

ग्लेन पार्क स्कूल का बग़ीचा

गेरी में विदेशियों और औद्योगिक धन्धों में लगे हुए पुरुषों के ही बालक प्रायः पढ़ते हैं। यहाँ नवीन शिक्षा-पद्धति की परीक्षा के लिए यथेष्ट सुविधा है। यहाँ न तो पहले के कोई स्कूल हैं, न पुराने शिक्षक ही, जिनकी शिक्षण-पद्धति में परिवर्तन सम्भव नहीं है। यह एक नया शहर है, और इसी कारण यहाँ यह सम्भव है कि पुरानी पद्धति का त्याग कर नवीन पद्धति का प्रयोग किया जाय। यहाँ के भिन्न भिन्न स्कूलों में एक नवीन पद्धति का अनुसरण किया जा रहा है, और यह आशा की जाती है कि इससे शिक्षा का आधुनिक आदर्श पूर्ण हो सकेगा।

गेरी के प्रारम्भिक स्कूलों में निम्न-लिखित चार बातों का समावेश है।

(१) साधारण विषय पढ़ना, हिज्जे करना, व्याकरण, लेखन, गणित, भूगोल और इतिहास।

(२) विज्ञान, औद्योगिक तथा गृहकार्य की शिक्षा, चित्रकारी, बढ़ईगीरी, सीना-पिरोना, पाक-क्रिया शिक्षा, जूते बनाना, छपाई आदि विषय भी इस विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

(३) आडिटोरियम में कार्य।

(४) शारीरिक शिक्षा तथा खेलकूद।
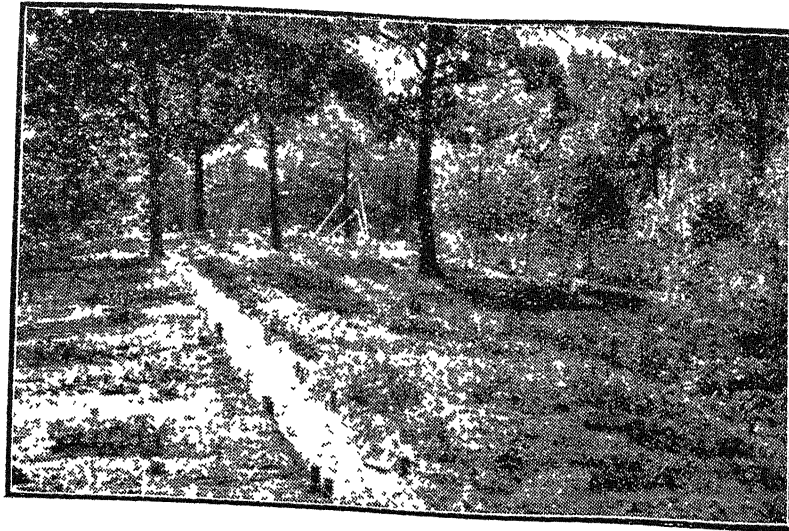
वेस्ट गेरी स्कूल का उपवन

इमरसन स्कूल का "एक्सप्रेशन रूम"—यहां बच्चों को भाषण करने तथा सु-साहित्य की गुणग्राहकता और उसके आस्वादन की शिक्षा दी जाती है

अब हम यहा की शिक्षा-पद्धति का वर्णन करते हैं। विशेष विषयो के अध्ययन में पहला स्थान विज्ञान का है। विज्ञान-शिक्षा को हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) प्रकृति-ज्ञान और उद्यान-निर्माण जो प्रारम्भिक स्कूल मे पढ़ाये जाते हैं; (२) विज्ञान के अन्य विभाग, भौतिक विज्ञान, रसायन-शास्त्र आदि जो मझले तथा हाईस्कूलों के दरजो में पढ़ाये जाते हैं। जब प्रकृति-ज्ञान के पाठ उच्च कक्षाओं में दिये जाते हैं तब भिन्न भिन्न वस्तुओं का ज्ञान कराया जाता है। उदाहरणार्थ केमेरा, मोटर का इञ्जिन आदि। अन्य विषयों से हुआ है। इन कार्यों से बालको की शारीरिक उन्नति मे भी सहायता मिलती है, यह आशा की जाती है कि इससे मस्तिष्क तथा हाथ से कार्य करनेवालों मे जो भेदभाव है वह कम हो जायगा। इनसे बालकों के विचार भी संकीर्ण नहीं रहते हैं। प्रारम्भिक कक्षाओं में तो छोटे बच्चे "सहायक" का काम करते हैं, क्योंकि यह कहा जाता है कि इस तरह देखकर वे बहुत अधिक सीख सकते है। जैसे "उद्योग-धन्धे" लड़कों के लिए लाभदायक होते है, उसी प्रकार "गृहकार्य" का बहुत कुछ ज्ञान लड़कियों के लिए अत्यावश्यक है। पाक-क्रिया की शिक्षा
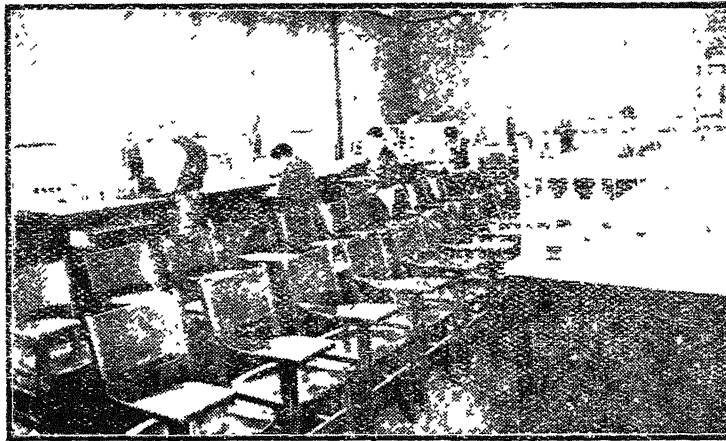
इमरसन स्कूल की रसायन-शास्त्र की प्रयोग-शाला

के पढ़ाने में भी भिन्न भिन्न स्कूलो का कार्यक्रम भी भिन्न भिन्न है। इमरसन स्कूल में प्राणिशास्त्र का अध्ययन करने की सुविधा है, और फ्रोबेल स्कूल में वनस्पति-शास्त्र पढ़ाने की अच्छी व्यवस्था है। विज्ञान-सम्बन्धी पाठ कई बार आडिटोरियम में भी मेजिक लैंटर्न की सहायता से दिये जाते हैं। विज्ञान के पढ़ाने में गेरी मे एक और विशेषता यह है कि यहां ऊँची कक्षाओं की सहायता के लिए छोटे क्लासों के बच्चे से काम लिया जाता है, और ये हेल्पर्स अर्थात् सहायक कहलाते हैं।

गेरी में उद्योग-धन्धे के विषय भी पढ़ाये जाते हैं। इनका स्कूल के कार्यक्रम मे समावेश करना कई कारणों प्रारम्भिक कक्षाओं मे सबको दी जाती है, किन्तु ऊँची कक्षाओं में यह सिर्फ एक वैकल्पिक विषय है। सीने-पिरोने की शिक्षा का कार्यक्रम निश्चित नहीं है, उतनी ही शिक्षा दी जाती है, जितनी आवश्यक प्रतीत होती है। यह भी ऊँची कक्षाओं मे एक वैकल्पिक विषय रह जाता है।

इसके बाद कसरत, खेल-कूद तथा अन्य शारीरिक शिक्षाओं का भी प्रबन्ध है। आडिटोरियम में बालकों को मेजिक लैंटर्न की सहायता से शिक्षा दी जाती है, संगीत सिखाया जाता है। जीवन के विकास की एक विशेष दशा में कुछ बालकों को विशेष कार्यों के करने के लिए एकत्र करना ही आडिटोरियम का प्रथम उद्देश है। बालकों का दैनिक

प्रकृति अध्ययन का कमरा

इमरसन स्कूल का "आर्ट स्टूडिओ"

जीवन नीरस होता है, उसको मनोरञ्जक बनाना भी दूसरा उद्देश है। इस आडिटोरियम का उपयोग वादविवाद, किसी विशेष बात पर व्याख्यान, उद्योग-सम्बन्धी सिनेमा, बाहर से आये हुए विद्वानों के भाषण, संगीत-शिक्षा या नाटक के अभिनय में होता है। इस आडिटोरियम की सफलता इसको उपयोगी बनाने पर ही निर्भर है।

कई स्कूलों में पुस्तकालय-विषयक कुछ बातें भी बताई जाती हैं। इन स्कूलों में या तो सार्वजनिक पुस्तकालय की शाखायें हैं या सार्वजनिक पुस्तकालय ही इनके समीप हैं। प्रायः मास में दो-तीन बार

	प्राथमिक कक्षा	ऊपरी कक्षा ४थी
८-१५ से ९-१५	भाषा तथा अंक	मामूली विषय
९-१५ से १०-१५	कला-कौशल, नेचर स्टडी आदि	विशेष विषयों (विज्ञान आदि) का अध्ययन
१०-१५ से ११-१५	खेलकूद, कसरत	साधारण विषय
११-१५ से १२-१५	छुट्टी	खाना खाने की
१२-१५ से १-१५	कलाकौशल आदि	साधारण विषय
१-१५ से २-१५	भाषा, अंक	विशेष विषय
२-१५ से ३-१५	आडिटोरियम	खेलकूद, कसरत
३-१५ से ४-१५	खेलकूद, कसरत	आडिटोरियम
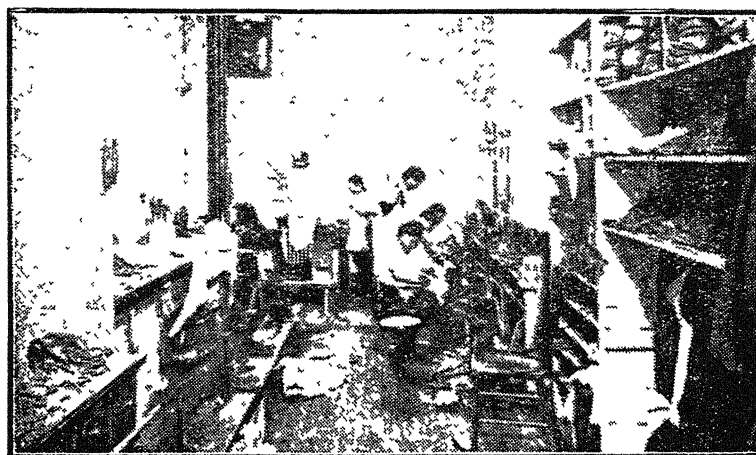
फ्रोबेल स्कूल के जूते बनाने का स्थान

पुस्तकालय का घंटा होता है। बालकों को यह बताया जाता है कि कौन अच्छी पुस्तकें हैं। सुसाहित्य पढ़ने की रुचि उनमें पैदा की जाती है।

गैरी की पाठशालाओं के व्यवस्थापकों ने पठन के कार्यक्रम में ही नूतनता का समावेश नहीं किया है। अपने दैनिक कार्यक्रम को निर्धारित करने में भी उन्होंने प्राचीन पद्धति का त्याग किया है। उदाहरणार्थ हम यहाँ इमरसन स्कूल की दो भिन्न भिन्न कक्षाओं का कार्यक्रम उद्धृत करते हैं। पढ़ाई प्रातःकाल में ८-१५ से आरम्भ होकर सन्ध्या को ४-१५ तक होती रहती है।

इन दैनिक क्रमों में समय यों विभक्त किया गया—

	प्राथमिक कक्षा	ऊपरी कक्षा
(१) साधारण विषय	२ घंटे	३ घंटे
(२) विशेष विषय	२ घंटे	२ घंटे
(३) खेलकूद आदि	२ घंटे	१ घंटे
(४) आडिटोरियम	१ घंटे	१ घंटे
	७ घंटा	७ घंटा

पुरानी पद्धति के स्कूलों में प्रत्येक कक्षा के लिए एक क्रम होता है। प्रायः वही शिक्षक उस क्लास में सब विषय पढ़ाता है, और एक ही कमरे में

जेफ़रसन स्कूल का "हैंडवर्क रूम"

इमरसन स्कूल की पाकशाला
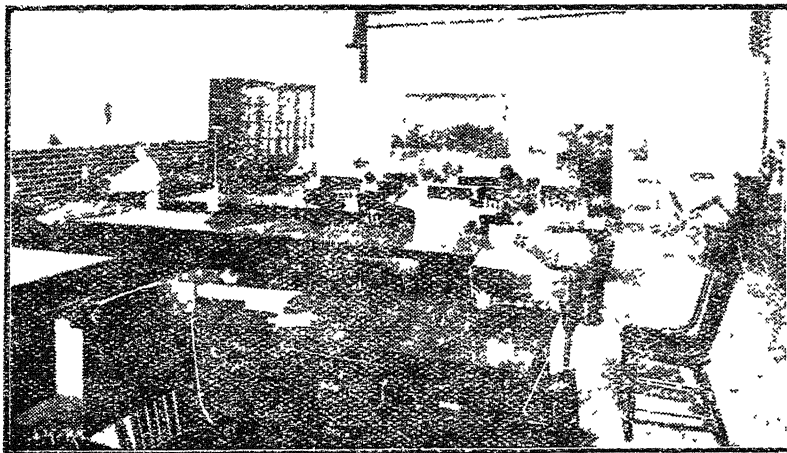
फ्रोबेल स्कूल में सीने-पिरोने का कमरा
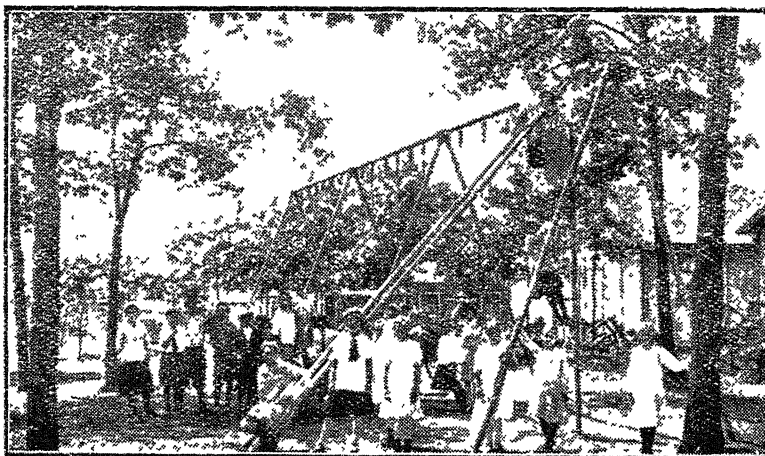
ग्लेन पार्क स्कूल का खेल-कूद का मैदान

वे बालक दिन भर पढ़ते हैं। किन्तु मनोविज्ञान के विद्वान् इस बात पर बहुत ज़ोर देते हैं कि एक ही कमरे में दिन भर पढ़ना अरुचिकर होता है तथा इसका बाल-मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है। इसी कारण गेरी के स्कूलों में यह व्यवस्था की गई है कि प्रतिदिन प्रत्येक कक्षा एक या दो भिन्न भिन्न कमरों में या प्रयोगशाला में या उद्योग-भवन में या कसरत के स्थान में (Gymnasium) या खेलकूद के मैदान पर या आडिटोरियम में अपना समय बिताती है।

प्रारम्भिक स्कूलों में भी विभाग-विच्छेदन का प्रचार करके गेरी के स्कूलों ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया

पद्धति के स्कूलों में पढ़ाये जाते हैं उन पर भी पूर्ण ध्यान दिया जाता है, भिन्न भिन्न विषयों की अधिकता तथा उनके ज्ञान की विशेष व्यवस्था करना ही गेरी की नूतनता है।

सारे शासन-विभाग के मुख्य पद पर "सुपरिंटेंडेंट" होता है। अमेरिकन शहरों में स्कूलों का सुपरिंटेंडेंट ही शिक्षा-विभाग का निरीक्षण करता है और प्रबन्ध-कार्य भी करता है। वह अपने सहायकों की मदद से शासन-प्रबन्ध-विषयक "जनरल एजुकेशन बोर्ड" की आज्ञाओं को कार्य-रूप में परिणत करता है तथा उसी तरह स्कूलों की शिक्षा-नीति को भी निर्धारित करता है; किन्तु इनमें से प्रथम कार्य बहुत ही कम होता है। निरीक्षण का कार्य सहायक
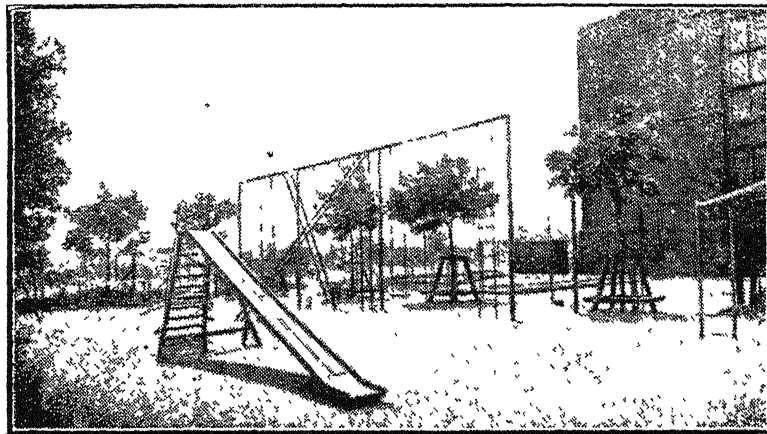
इमरसन स्कूल की लड़कियों के खेलने का स्थान

है। इसका एक परिणाम कक्षाओं के दैनिक कार्यक्रम पर यह हुआ है कि प्रत्येक कक्षा में भिन्न भिन्न विषयों के पढ़ान का कार्यक्रम भिन्न भिन्न है। अगर एक कक्षा में एक कक्षा का कार्यक्रम साधारण विषयों के पठन से आरम्भ होता है और उसका अन्त खेलकूद तथा कसरत से होता है तो दूसरी कक्षा का कार्यक्रम इसके बिलकुल विपरीत होता है। इन कार्यक्रमों को सुविधानुसार निश्चित करना कुछ कठिन है और इसमें विशेष विचार तथा प्रबन्ध-योग्यता की आवश्यकता होती है। इस कार्यक्रम से भी यह स्पष्टतया मालूम हो जायगा कि यद्यपि नवीन विषयों का भी पठन के कार्यक्रम में समावेश किया है, तो भी जो विषय प्राचीन

सुपरिंटेंडेंट ही करते हैं; यही रात्रि के स्कूलों तथा प्रारम्भिक स्कूलों का निरीक्षण करते हैं। ये सब निरीक्षक नई नई बातें सोच कर तथा यह देखकर कि वे गेरी की नीति के विरुद्ध नहीं हैं, प्रयोगार्थ शिक्षकों के सम्मुख रखते हैं। इन आदर्शों तथा नवीन विचारों का प्रयोग किया जाना चाहिए, यह कार्य शिक्षकों ही पर छोड़ दिया जाता है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि निरीक्षक स्कूल की शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते; ये निरीक्षक साल में तीन-चार बार शिक्षकों की सभायें करते हैं, कक्षाओं का निरीक्षण करते हैं, शिक्षण पद्धति की त्रुटियों को देखकर उनके सुधार का उपाय बताते हैं।
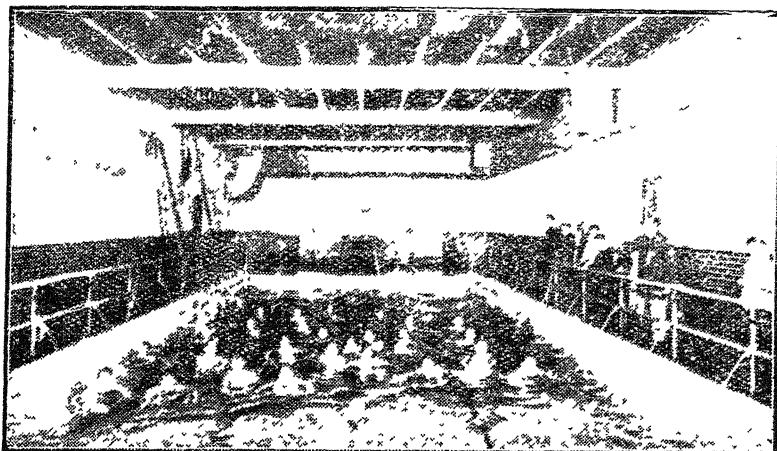
फ्रोबेल स्कूल में तैरने का हौज़
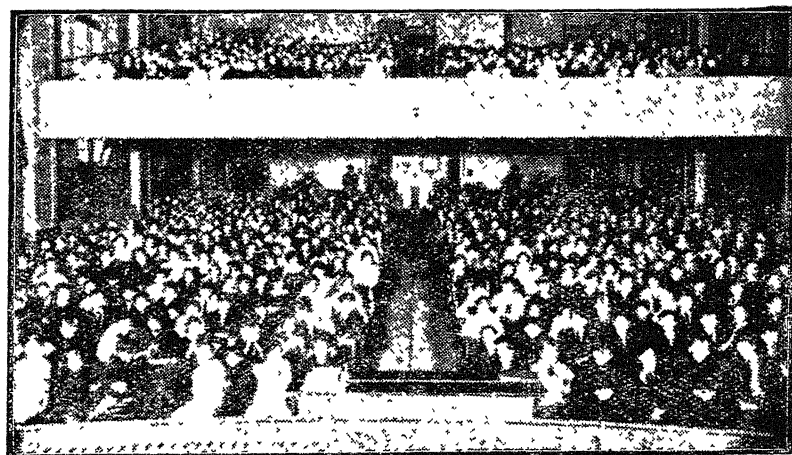
इमरसन स्कूल का "आडिटोरियम" (Auditorium)—यहाँ लड़कों को सिनेमा, मेजिक लैंटर्न आदि की सहायता से पढ़ाते हैं

विशेष विषयों की शिक्षा का निरीक्षण करने के लिए "विशेष निरीक्षक" नियत किये जाते हैं, उदाहरणार्थ अक्षरों का निरीक्षक सिर्फ़ बालकों के हस्ताक्षरों ही का निरीक्षण करता है, वह केवल यही देखता है कि "बालकों के अक्षरों की ओर कहां तक ध्यान दिया जा रहा है। जैसे एक एक विषय का एक एक अध्यापक होता है, उसी तरह प्रत्येक विषय का एक एक निरीक्षक होता है।

प्रत्येक स्कूल का प्रधान प्रिन्सिपल शासन-प्रबन्ध की ही ओर ध्यान देता है। वह निरीक्षण का कार्य नहीं करता है। स्कूल के समस्त कार्यों को प्रारम्भ करके वह सिर्फ़ स्कूल के मकान, मैदान आदि का निरीक्षण करता है, बालकों के माता-पिताओं से मिलता है, तथा बालकों के झगड़ों पर अपना निर्णय देता है।

एम्बिज स्कूल में "पोर्टेबल" का एक समुदाय। ये पोर्टेबल (Portabled) लकड़ी के मकान होते हैं और सुविधानुसार इधर-उधर हटाये जा सकते हैं। इनका नाम ही कहता है कि ये आसानी से हटाये जा सकते हैं

भ्रम

[श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना, साहित्यरत्न]

(१)

रम्य उषा में उस दिन आकर,
बैठे थे जब पहली बार;
बिछे हुए हृदयासन पर तुम,
देव! भूल कर किसका द्वार?

(२)

सुदिन समझ कर झुका दिया था,
मैंने चरणों में मस्तक—
हार गया कर कर प्रयत्न पर,
छू न सका उनकी रज तक।

(३)

गर्वोन्नत-मस्तक के नीचे,
—बहुत दूर पदपद्म-ललाम;
किसी अछूत भक्त का लेते,
अश्रु-अर्घ्य-मय विनत प्रणाम।

स्त्री का पत्र

[अनुवादक, श्रीयुत रामावतार शर्मा]

चरणकमलेषु,

हम लोगों का विवाह हुए आज पन्द्रह वर्ष हुए, आज तक तुम्हें पत्र नहीं लिखा। सदा से साथ ही साथ रही—पत्र लिखने का अवसर नहीं पड़ा।

आज मैं तीर्थ करने के लिए श्रीक्षेत्र आई हूँ, तुम आफ़िस में अपना काम कर रहे हो। कलकत्ते के साथ तुम्हारा जन्मगत सम्बन्ध है। वह तुम्हारे तन-मन के साथ जुड़ गया है। इसी से तुमने छुट्टी के लिए आफ़िस में दरख़्वास्त नहीं दी। विधाता की यही इच्छा थी, उन्होंने मेरी छुट्टी की अर्ज़ी मंज़ूर कर ली है।

मैं तुम लोगों की मँझली बहू हूँ। आज पन्द्रह वर्ष के बाद इस समुद्र के तट पर खड़ी होकर यह जान पाई हूँ कि जगत् और जगदीश्वर के साथ मेरा और भी सम्बन्ध है। यही कारण है कि आज मैं साहस करके यह पत्र लिख रही हूँ, यह तुम्हारी मझली बहू का पत्र नहीं है।

बाल्यावस्था में मुझे और मेरे भाई को साथ ही साथ सन्निपात होगया था। मेरा भाई मर गया, मैं बच गई। मुहल्ले की सब स्त्रियाँ कहने लगीं, मृणाल लड़की है न, इसी से बच गई, अगर वह लड़का होती तो बचना कठिन था। चोरी करने में यम बड़े पक्के हैं, महँगी ही चीज़ों में वे हाथ लगाते हैं।

मेरे लिए मृत्यु नहीं है। इसी बात को समझा कर बताने के लिए मैं यह पत्र लिखने बैठी हूँ।

जिस दिन तुम्हारे दूर के सम्बन्ध के मामा तुम्हारे मित्र नीरद को लेकर कन्या देखने आये थे, उस समय मेरी अवस्था बारह वर्ष की थी। दुर्गम उजाड़ गांव में मेरा घर था, वहाँ दिन में ही श्रृगाल हुआ-हुआ करते थे। स्टेशन से सात कोस बैलगाड़ी पर आने के बाद बाक़ी तीन मील पालकी से हमारे गांव में जाना होता है। उस दिन तुम लोगों को कितनी हैरानी थी, तिस पर हमारे बङ्गाल की रसोई, उस रसोई की हँसी मामा को आज भी नहीं भूली।

तुम्हारी बड़ी बहू के रूप की कमी को मझली बहू से पूर्ण करने के लिए तुम्हारी मा बिलकुल तुली हुई थीं, नहीं तो इतना कष्ट सहकर तुम लोग हमारे गांव में क्यों जाते? बंगाल में यकृत, प्लीहा, आमवात और कन्या के लिए तो किसी को खोज करनी नहीं पड़ती—ये अपने आपही घर दाबते हैं, किसी तरह छोड़ना नहीं चाहते।

पिताजी का हृदय थरथर कांपने लगा, माताजी देवी-देवता मनाने लगीं। शहर के देवता को गांव का पुजारी क्या देकर सन्तुष्ट करेगा? कन्या के रूप का भरोसा है, किन्तु उस रूप का अभिमान तो कन्या को नहीं है—जो व्यक्ति देखने आया है वह उसे जो कुछ भी दे वही उसका दाम है। इसी से तो हज़ार रूप-गुण होने पर भी स्त्रियों का सङ्कोच किसी तरह कम नहीं होता।

सारे घर का, यहाँ तक कि सारे मुहल्ले का आतङ्क मेरे हृदय को पत्थर के समान दबा बैठा। उस दिन के आकाश का सारा प्रकाश और संसार की सारी शक्ति मानो बारह वर्ष की एक देहाती कन्या को दो परीक्षकों की आँखों के सामने ज़ोर से पकड़ रखने के लिए पहरा दे रही थी, मुझे छिपने के लिए कहीं भी स्थान नहीं था।

समस्त आकाश को रुलाकर बंसी बजने लगी। तुम्हारे घर आ पहुँची। मेरे दोषों की सविस्तर आलोचना करने पर भी सब स्त्रियों ने इस बात को स्वीकार कर लिया कि कम से कम मैं सुन्दर हूँ। उस बात को सुन कर मेरी जेठानी का मुँह बहुत गम्भीर होगया। किन्तु मुझे रूप की क्या आवश्यकता थी? रूप को यदि कोई प्राचीन ढङ्ग के पण्डित गङ्गाजी की मृत्तिका से गढ़ते तो उसका आदर होता। किन्तु उसे तो विधाता ने केवल अपनी ही इच्छा से गढ़ा है, इसी से तुम्हारे धार्मिक परिवार में उसका मूल्य नहीं है।

मेरा जो रूप है उसे भूलने मे तुम्हें देरी नहीं लगी, किन्तु मेरी बुद्धि को तुम्हें पद पद पर स्मरण करना पड़ा है। मेरी यह बुद्धि इतनी स्वाभाविक है कि तुम्हारे घर में इतने दिन बिताकर भी आज तक टिकी है। मेरी इस बुद्धि के लिए मेरी मा बहुत उद्विग्न थीं। स्त्रियों के लिए यह एक जञ्जाल ही है। जिसे दूसरे के हांक-दाब में चलना हो वह यदि अपनी बुद्धि की सहायता से चलना चाहे तो ठोकर खाते-खाते उसका सिर टूटेगा ही, किन्तु करूँ क्या ? तुम्हारे घर की बहू को जितनी बुद्धि की आवश्यकता थी, विधाता ने असावधानी से उससे कहीं अधिक मुझे दे दी। अब मैं उसे लौटा कर किसे दूँ ?

मेरी एक वस्तु तुम्हारे घर के बाहर थी। उसे तुम कोई भी नहीं जानते। मैं छिपा कर कविता लिखा करती थी। वह कुछ भी हो, वहां तुम्हारे अन्तःपुर की दीवार नहीं उठी, वहीं मैं मुक्त थी, वहीं 'मैं' थी। तुम्हारी मझली बहू को छोड़कर मैं जो कुछ हूँ उसे तुमने पसन्द ही नहीं किया, पहचान ही नहीं सके। इस पन्द्रह वर्ष में भी तुम्हें नहीं पता चल सका कि मैं कवि हूँ।

तुम्हारे घर की प्रथम स्मृति में जो कुछ मेरे हृदय में सबसे अधिक जागृति होती है वह तुम्हारी पशु-शाला है। अन्तःपुर के ज़ीने के ठीक बगलवाले घर में ही तुम्हारे पशु रहते हैं। सामनेवाले दालान को छोड़ कर उनके उठने-बैठने का कहीं भी ठिकाना नहीं है। उस दालान में ही उनको सानी देने के लिए हौदे भी गड़े थे। सवेरे नौकरों को बहुत सा कामकाज करना पड़ता था—तब तक गाय-बछड़े भूखे ही हौदों को चाटा करते। यह देखकर मेरे हृदय को बड़ा कष्ट होता। मैं देहाती लड़की थी—तुम्हारे घर में जिस दिन आई, उस दिन ये ही दो गायें और तीन बछड़े मेरे चिरपरिचित आत्मीय-से मुझे मालूम पड़े। जब तक मैं नई बहू थी, स्वयं न खाकर छिपाकर उन्हें खिलाया करती थी, जब कुछ अधिक दिन तक रह चुकी, तब गायों की ओर प्रकट रूप से मेरी ममता देखकर जिन लोगों का हँसी का सम्बन्ध था वे मेरे गोत्र के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट करने लगे।

मेरी लड़की पैदा होते ही मर गई। जाते समय उसने मुझे भी साथ ले जाने का प्रयत्न किया था। यदि वह जीवित रहती तो वही मेरे जीवन में जो कुछ महान् है, जो कुछ सत्य है, सब ला देती। तब मैं मझली बहू से मा हो जाती। मा एक परिवार में रहकर भी विश्व-संसार की है। मा होने का कष्ट तो पाया, किन्तु उससे जो मुक्ति मिलती है वह मेरे भाग्य में नहीं थी।

मुझे याद है कि अँगरेज़ डाक्टर मेरा घर देखकर चकित होगया था और रोष से बड़बड़ाने लगा था। तुम्हारे दरवाज़े पर एक बग़ीचा है। घर मे साज-सामान और असबाब की कमी नहीं है। परन्तु भीतर मानो कोई लज्जा नहीं है, श्री नहीं है, सजावट नहीं है।

वहां दीपक टिमटिमा कर जलता है, हवा चोर के समान प्रवेश करती है, दालान का कूड़ा-करकट हटना ही नहीं चाहता, दीवार और फ़र्श का कलङ्क अक्षय होकर विराजमान है। परन्तु डाक्टर ने एक भूल की थी। उसने सोचा था कि शायद यह रात-दिन मुझे कष्ट देता है। यह ठीक उल्टी बात थी। अनादर राख के समान है। वह राख अग्नि को शायद भीतर ही भीतर जमा कर रखती है, किन्तु बाहर से उसकी ताप को नहीं बुझने देती। आत्म-सम्मान जब घट जाता है तब अनादर अपमान-सा नहीं मालूम पड़ता। इसी लिए उसमें वेदना नहीं रहती। इसी से तो स्त्री को दुःख मानने में ही लज्जा आती है। इसी से मैं कहती हूँ कि यदि तुम लोगों की यही व्यवस्था हो कि स्त्रियों को दुख ही भोगना है तो जहां तक सम्भव हो, उन्हें अनादर में ही रखना अच्छा है। आदर में केवल दुख की व्यथा ही बढ़ती है।

इसी से किसी दिन मन मे दुःख की कल्पना तक नहीं हुई। प्रसूति-गृह में मृत्यु आ कर मस्तक के पास खड़ी हो गई, मन में भय का भी सञ्चार नहीं हुआ। जीवन ही हम लोगों का क्या है जिससे मरने से डरें ? आदर-सत्कार से जिनके प्राण के बन्धन कड़े हो गये हैं उनके लिए मरने में रुकावटें हैं। उस दिन यदि यम मुझे पकड़ कर खींचते तो जैसे मिट्टी से घास का चक्का जड़ों-समेत बड़ी आसानी से उखड़ आता है, वैसे ही मैं भी उठ आती। बङ्गाली-रमणी तो बात

बात में मरने को तैयार रहती हैं। परन्तु ऐसे मरने में बहादुरी क्या है? मरने में लज्जा आती है—मेरे लिए भी वह उतनी ही स्वाभाविक है।

मेरी लड़की तो सन्ध्या के तारे के समान क्षण भर के लिए उदित होकर ही अस्त हो गई। फिर मैं नित्यकर्म और घर के धन्धे के पीछे पड़ी। जीवन इसी तरह लुढ़कते लुढ़कते अन्त समय तक कट जाता, आज तुम्हें यह पत्र लिखने की आवश्यकता ही न पड़ती। किन्तु जिस प्रकार वायु एक छोटे से बीज को पक्के दालान की दीवार पर उड़ा ले जाकर पीपल के पेड़ का अंकुर उत्पन्न करता है, अन्त में उसी वृक्ष के प्रभाव से दीवार चूर चूर हो जाती है, उसी प्रकार हमारे परिवार के पक्के बन्दोबस्त में एक छोटा-सा जीवन-कण न जाने कहां से उड़ आया तभी से उथल-पुथल मची।

विधवा मा की मृत्यु के बाद मेरी जेठानी की बहन विन्दु ने अपने चचेरे भाइयों के अत्याचार से पीड़ित होकर हमारे घर में आकर अपनी दीदी के पास आश्रय लिया, उस दिन तुम लोगों ने सोचा था कि यह कहां की आफ़त आ पड़ी। मेरा स्वभाव ही ऐसा बुरा है, मैं करूँ क्या? जब देखा कि तुम सब लोग मन ही मन रुष्ट हो तब इस निराश्रय बालिका के लिए मैं उद्विग्न हो उठी। दूसरे के घर में उसकी अनिच्छा से आकर आश्रय लेना कितना अपमान है। दुर्भाग्य की ठोकरें खाकर यदि वैसी अवस्था किसी को स्वीकार भी करनी पड़े तो वह एक किनारे ठेल दी भी नहीं जा सकती।

इसके बाद मैंने अपनी जेठानी की दशा देखी। वे नितान्त दुखी होकर बहन को अपने पास लाई थीं, परन्तु जब उन्होंने स्वामी की अनिच्छा देखी तब ऐसा भाव दिखाने लगीं, मानो वह उनके लिए जञ्जाल थी। मानो उसे यदि किसी प्रकार हटा सकतीं तो निश्चिन्त होतीं। उन्हें इतना साहस न था कि उस अनाथ बहन के प्रति प्रकट रूप से स्नेह कर सकें। वे पतिव्रता हैं।

जेठानी का यह कष्ट देखकर मेरा हृदय और भी दुखी हुआ। मैंने देखा कि उन्होंने सब लोगों को कुछ विशेष रूप से दिखा-दिखा कर विन्दु के भोजन-वस्त्र का ऐसे मोटे ढङ्ग का प्रबन्ध किया है, और सब प्रकार के दासी-कर्म में उसे इस प्रकार से नियुक्त कर रक्खा है कि मुझे केवल दुःख ही नहीं बरन लज्जा भी मालूम पड़ने लगी। वे इस बात को प्रमाणित करने के लिए व्यस्त रहतीं कि विन्दु से हमारे परिवार का व्यय की अपेक्षा कहीं अधिक कार्य निकलता है। वह काम अधिक करती है और उसके लिए व्यय कम करना पड़ता है।

मेरी जेठानी के पितृ-कुल में कुलीनता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था। न तो रूप था और न धन था। हमारे श्वसुर से हाथ-पांव जोड़ने पर किसी प्रकार तुम्हारे घर में उनका विवाह हुआ, यह तो सभी कुछ जानते हो। वे अपने विवाह को इस वंश के प्रति गुरुतर अपराध ही सदा समझती आई हैं। इसी लिए सभी विषयों में जहां तक हो सकता है, अपने को बहुत सङ्कुचित करके बहुत थोड़ी जगह में रहती हैं।

परन्तु उनके इस साधु दृष्टान्त से मुझे बड़ी कठिनता हुई। जिसे मैं अच्छा समझती हूँ उसे किसी दूसरे की समालोचना के अनुसार नीचा समझना मेरी नीति के विरुद्ध है—तुम्हें भी इसके बहुत से प्रमाण मिल चुके हैं।

विन्दु को मैंने अपने कमरे में खींच लिया। दीदी ने कहा कि मझली बहू ग़रीब के घर की लड़की का दिमाग़ खाने बैठी हैं। वे इस प्रकार सबसे शिकायत करने लगीं, मानो मैंने बड़ा झञ्झट खड़ा कर दिया। मैं यह निश्चित रूप से जानती हूँ कि वे मन ही मन प्रसन्न हो गईं। अब दोष का भार मेरे ही ऊपर पड़ा। वे स्वयं तो बहन के प्रति स्नेह प्रकट ही नहीं कर सकती थीं, मेरे द्वारा उस स्नेह को प्रकट करा पाने पर उनका मन हल्का होगया। जेठानीजी विन्दु की अवस्था कुछ घटा कर बताने की चेष्टा करती थीं। परन्तु उसकी अवस्था चौदह वर्ष से कम न थी, इस बात को छिपा कर कहने में अन्याय नहीं होता था। तुम तो जानते हो कि देखने में वह इतनी बदसूरत थी कि गिर कर यदि वह सिर तोड़ लेती तो घर के फ़र्श के लिए लोग उद्विग्न हो जाते। माता-पिता के अभाव में उसका विवाह करनेवाला कोई था ही नहीं और उसके साथ विवाह करने के लिए आत्मा में बल ही कितने लोगों को था।

विन्दु बहुत डरती डरती मेरे पास आई, माने मेरे शरीर में उसके काँटे लग जाते और मैं न सह सकती। माने संसार में उसके जन्म लेने की कुछ शर्त ही नहीं थी, इसी से वह केवल बग़ल होकर आंख बचा कर चलती। नैहर में उसके चचेरे भाई ऐसा भी कोई एक कोना नही छोड़ना चाहते थे कि वहीं वह अनावश्यक वस्तु पड़ी रहती। निरर्थक कूड़ा-कर्कट घर के आस-पास अनायास ही स्थान पा जाता है, क्योंकि मनुष्य उसे भूल जाता है। किन्तु अनावश्यक स्त्री एक तो निरर्थक है, दूसरे उसे भूलना भी कठिन है, इसलिए कोने में भी उसे स्थान नहीं है। इधर विन्दु के चचेरे भाई संसार में परमावश्यक पदार्थ हैं, यह बतलाने की आवश्यकता ही नहीं है। परन्तु वे अच्छे हैं।

इसी से विन्दु को जब मैं अपने कमरे में बुलाकर ले गई तब उसका हृदय कापने लगा। उसका भय देखकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। इस बात को मैंने उसे बड़े प्यार से समझा दिया कि मेरे घर में उसके लिए थोड़ा-सा स्थान है।

किन्तु मेरा कमरा तो केवल मेरा ही न था। इससे मेरे कार्य में कठिनता होना स्वाभाविक था। दो ही चार दिन मेरे पास रहने से उसके शरीर में न जाने क्या लाल-लाल निकल आया—तुम लोगों ने कहा कि चेचक है। क्योंकि वह विन्दु थी। तुम्हारे पड़ोस के एक अनाड़ी डाक्टर ने आकर कहा कि दो-एक दिन और बीते बिना ठीक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु वहाँ दो-एक दिन का धीरज किसे था? विन्दु तो अपनी बीमारी से लज्जा ही के मारे मरी सी जा रही थी। मैंने कहा कि चाहे चेचक ही हो, मैं उसे अपने घर में लिये रहूँगी। और किसी को कुछ भी नहीं करना पड़ेगा। इसी बात पर जब तुम सब लोगों की भ्रुकुटि मुझ पर गड़ गई, यहाँ तक कि विन्दु की दीदी ने भी अत्यन्त विरक्ति के साथ उस अभागी लड़की को अस्पताल में भेजने का प्रस्ताव किया, इतने ही में उसके शरीर के सारे दाग़ एक-दम से मिट गये। इससे तुम लोग और भी व्यस्त हो उठे थे। तुम कहने लगे कि अवश्य चेचक बैठ गई है, क्योंकि वह विन्दु थी।

मनुष्य का अनादर होने में एक बड़ा भारी गुण है, इससे शरीर एक-दम अजर-अमर हो जाता है। बीमार होना भी नहीं चाहता, मृत्यु का फाटक तो एक-दम बन्द हो जाता है। रोग भी उससे हँसी करके चला गया, उसे कुछ भी न हुआ। यह भी मालूम होगया कि निरर्थक मनुष्य को आश्रय देना ही सबसे कठिन है। जितनी ही उसे आश्रय की आवश्यकता है, उतनी ही उसे आश्रय पाने में बाधा भी विषम है।

मेरे सम्बन्ध में जब विन्दु का भय छूटा तब उसे एक दूसरे रोग ने धर दाबा। मुझे वह ऐसा प्यार करने लगी कि मुझे ही डर मालूम पड़ने लगा। प्रेम की ऐसी मूर्ति संसार में तो मैंने कभी नहीं देखी। पुस्तक में पढ़ी अवश्य है, वह भी पुरुष और स्त्री के मध्य में। इस बात को समझने के लिए कि मैं रूपवती हूँ, बहुत दिनों तक कोई भी कारण नहीं उपस्थित हुआ—इतने दिनों के बाद इस रूप के पीछे पड़ी वह कुरूप बालिका। मेरा मुख देख कर उसे तृप्ति ही न होती। वह कहती कि दीदी, मुझे छोड़ कर और कोई भी तुम्हारे इस मुँह को नहीं देख पाया। जिस दिन मैं अपने बाल स्वयं बाँधती, उस दिन उसे बड़ा अभिमान होता। मेरे बालों को दोनों हाथों में लेकर सँभालने में उसे बड़ा अच्छा मालूम पड़ता। कहीं निमन्त्रण में जाने के समय को छोड़ कर और तो कभी सजने-बजने की आवश्यकता ही न पड़ती, किन्तु विन्दु मेरी नाक में दम करके थोड़ी बहुत रोज़ ही सजा देती। मेरे पीछे वह लड़की एक-दम पागल-सा हो उठी।

तुम्हारे अन्तःपुर में कहीं इञ्च भी खुली ज़मीन नहीं है। उत्तर की ओर नाबदान के पास कीचड़ में एक पेड़ उगा है। जिस दिन देखती कि उस पेड़ में नई नई लाल रंग की कोमल पत्तियाँ निकली हैं, उसी दिन मालूम पड़ता कि पृथिवी पर वसन्त आया है। मेरे घर में उस अनादृत बालिका का चित जिस दिन आदि से अन्त तक रङ्गीन हो उठा, उसी दिन मैंने समझ लिया कि हृदय के संसार में भी एक वसन्ती हवा है—वह किसी स्वर्ग से आती है, गली की मोड़ से नहीं आती। विन्दु के प्रेम के दुःसह वेग ने मुझे अस्थिर कर डाला था। यह

मैं मानती हूँ कि कभी कभी उसके ऊपर क्रोध आता था, किन्तु उसके इस प्रेम में मैं अपने एक ऐसे स्वरूप को देखा करती थी जिसे कभी नहीं देखा था। वही मेरा मुक्त स्वरूप है।

इधर बिन्दु जैसी लड़की को मैं इतना चाहती थी, यह तुम लोगों को नहीं सुहाता था। इसके लिए बक-बक झक-झक का अन्त नहीं था। जिस दिन मेरे कमरे से बाज़ू-बन्द चोरी गया, उस दिन इस बात का इशारा करने में तुम लोगों को भी लज्जा न आई कि इस चोरी में बिन्दु का भी कुछ हाथ है। जब स्वदेशी-आन्दोलन में लोगों के घरों की तलाशी होने लगी तब तुम लोगों ने समझ लिया कि बिन्दु पुलिस से मिली हुई स्त्री-गुप्तचर है। इसका और कोई प्रमाण नहीं था, इतना ही प्रमाण था कि वह बिन्दु थी।

तुम्हारे घर की दासियां इसका किसी प्रकार का काम करने में आपत्ति करती थीं। उन सबको जब उसका कुछ काम करने की आवश्यकता पड़ती तब वह बालिका भी सङ्कोच से दब जाती। इन्हीं सब कारणों से उसके पीछे मेरा व्यय भी बढ़ गया। मुख्य तौर से उसी के लिए मैंने एक और दासी भी रक्खी। तुम लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। बिन्दु को पहनने के लिए मैं जो कुछ कपड़े देती थी उन्हें देख कर तुम इतना नाक-भौंह सिकोड़ते थे कि मेरा जेब-खर्च का रुपया ही बन्द कर दिया। उसके दूसरे दिन से मैं बीस आना जोड़ा की मोटी धोती पहनने लगी। और जब मोती की माँ मेरी थाली लेने को आई तब मैंने उसे रोक दिया और नल के पास ले जाकर स्वयं उसे माँज डाला। एक दिन इस दृश्य को देख कर तुम कुछ अप्रसन्न हुए थे। मेरे हृदय में यह सुबुद्धि आज तक न आई कि हम लोगों के अप्रसन्न रहने में भी कोई हानि नहीं है, किन्तु तुम्हारी प्रसन्नता के बिना निर्वाह नहीं है।

इधर जैसे जैसे तुम्हारा क्रोध बढ़ रहा था, वैसे ही बिन्दु की अवस्था भी बढ़ रही थी। इस स्वाभाविक व्यापार में अस्वाभाविक रूप से तुम लोग उद्विग्न हो उठे थे। इस बात को सोच कर मुझे आश्चर्य होता है कि तुम लोगों ने बिन्दु को ज़बरदस्ती अपने घर से क्यों नहीं निकाल दिया। मैं अच्छी तरह समझती हूँ कि तुम लोग मन ही मन मुझसे डरते हो। विधाता ने मुझे बुद्धि दी है, गुप्त रीति से उसकी कदर किये बिना तुम लोग नहीं रह सकते।

अन्त में जब तुम लोग अपनी शक्ति से बिन्दु को नहीं निकाल सके तब भगवान् प्रजापति की शरण गये। बिन्दु का वर ठीक हो गया। जेठानीजी ने कहा कि मैं मुक्त हो गई। भगवती ने हमारे वंश की लज्जा रख ली।

वर कैसा था, यह मैं नहीं जानती थी, तुम लोगों से सुना था कि वह हर तरह से अच्छा है। बिन्दु मेरे पैरों में लिपट कर रोने लगी।

मैंने उसे बहुत कुछ धीरज देकर कहा कि बिन्दु तुम घबराओ मत। मैंने सुना है कि तुम्हारा वर बहुत अच्छा है।

बिन्दु ने कहा कि इससे मुझे क्या लाभ है? वह मुझे पसन्द ही क्यों करेगा?

वर-पक्षवालों ने बिन्दु को देखने आने का नाम तक न लिया। इससे जेठानीजी निश्चिन्त हो गईं।

इधर रात-दिन बिन्दु के आंसू ही नहीं थमते थे। उसे किस बात का कष्ट था, यह मैं जानती थी। बिन्दु के लिए घर में मैंने कितना लड़ाई-झगड़ा किया था, किन्तु उसका विवाह रोकवाने के सम्बन्ध में एक शब्द भी मुँह से निकालने का साहस न हुआ। मैं कहती ही किस बूते पर? यदि मैं मर जाती तो उसकी क्या दशा होती?

एक तो लड़की तिस पर भी काली—किसके घर जायगी, उसकी क्या दशा होगी—इन सब बातों को न सोचना ही अच्छा था। सोचने से हृदय कांप उठता था।

बिन्दु ने कहा—दीदी विवाह के पांच दिन और हैं। क्या इस बीच में मेरी मृत्यु नहीं होगी?

इसके लिए मैंने उसे डांटा अवश्य था, किन्तु भगवान् जानते हैं कि यदि किसी सरल उपाय से उसकी मृत्यु हो सकती तो मुझे शान्ति ही मिलती।

विवाह से एक दिन पहले विन्दु ने अपनी दीदी के पास जाकर कहा—दीदी, मैं तुम्हारी पशु-शाला में ही पड़ी रहूँगी, मुझे जो कुछ कहोगी वही करूँगी. मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, मुझे इस तरह न फेंक देना।

कुछ दिनों से छिपा-छिपा कर दीदी आसू बहाया करती थीं। उस दिन भी उन्हें बहाने पड़े थे, किन्तु केवल रोने से ही तो काम चलता नहीं, शास्त्र भी मानना पड़ता है। उन्होंने कहा—जानती तो है विन्दु कि पति ही तो स्त्री का सर्वस्व है। भाग्य में यदि दुःख ही लिखा होगा तो उसे कोई मेट नहीं सकता।

सच बात तो यह है कि किसी ओर कोई रास्ता ही नहीं था। विन्दु को विवाह करना ही पड़ेगा, उसके बाद जो कुछ होना होगा वह होता रहेगा।

मैं चाहती थी कि विवाह हमारे ही घर पर हो, किन्तु तुम लोगों ने कहा कि वर ही के यहाँ होगा. क्योंकि यह उनके कुल की रीति है।

मैं समझ गई कि विन्दु के विवाह के लिए तुम्हारे गृह-देवता एक पाई का भी व्यय नहीं सह सकेंगे। इससे चुप रहने के अतिरिक्त और दवा ही क्या थी, किन्तु एक बात तुम में से किसी को भी नहीं मालूम है। दीदी से बताना चाहती थी, किन्तु बताया नहीं, क्योंकि मालूम पड़ने पर डर ही के मारे वे मर जातीं। मैंने अपने कुछ गहने विन्दु को पहना दिये थे। सम्भवतः दीदी की दृष्टि उस पर पड़ी भी होगी, किन्तु देख कर भी उन्होंने अनदेखी कर दी थी। दुहाई धर्म की, इसके लिए उन्हें क्षमा करना।

जाते समय विन्दु मुझसे लिपट कर रोने लगी। उसने कहा, तब क्या दीदी तुमने मुझे बिलकुल ही छोड़ दिया।

मैंने कहा—नहीं विन्दु, चाहे कुछ भी हो, मैं जीवन पर्यन्त तुझे न छोड़ूँगी।

तीन दिन बीत गये। तुम्हारे तालुक़े के असामियों ने खाने के लिए जो भेड़ा दिया था उसे तुम लोगों की जठराग्नि से बचा कर मैंने नीचे के हिस्से में कोयलेवाले कमरे में बाँध रक्खा था। सवेरे उठते ही मैं स्वयं जाकर उसे दाना खिला आती थी। दो-तीन दिन तुम्हारे नौकरों का भरोसा करके देखा कि उसे खिलाने की अपेक्षा खाने की ही ओर लोगों की रुचि अधिक है।

उस दिन उसी कमरे में जाकर देखा कि विन्दु एक कोने में सिकुड़ी हुई बैठी है। मुझे देखते ही वह पैरों में लिपट कर रोने लगी।

विन्दु का पति पागल है।

"सचमुच विन्दु ?"

"क्या ऐसी बड़ी झूठ मैं तुमसे बोल सकती हूँ दीदी ? वे पागल हैं। मेरे श्वसुर का विचार इस विवाह के विरुद्ध था, किन्तु वे मेरी सास से यम के समान डरते हैं। वे विवाह के पहले ही काशी चले गये थे। सास ने हठ करके अपने लड़के का विवाह किया।

मैं उसी कोयले की ढेर पर बैठ गई। एक स्त्री को दूसरी स्त्री पर दया नहीं आती !

विन्दु का पति एकाएक पागल नहीं मालूम पड़ता, किन्तु कभी कभी ऐसा उन्माद चढ़ आता है कि उसे ताले में बन्द करके रखना पड़ता है। विवाह की रात को वह अच्छा था, किन्तु रात में जागने या अन्य किसी प्रकार के व्यतिक्रम से दूसरे दिन से उसका दिमाग़ एक-दम ख़राब होगया। दोपहर के समय विन्दु पीतल की थाली में भोजन कर रही थी, एकाएक उसके पति ने भोजन-सहित थाली उठाकर आँगन में फेंक दी। एकाएक उसे ऐसा मालूम पड़ा कि विन्दु स्वयं रानी रासमणि है, महराजिन ने अवश्य उसकी सोने की थाली चुरा कर रानी को अपनी थाली में भोजन दिया है। इसी से उसे क्रोध आया था। विन्दु तो डर ही के मारे मर गई। तीसरी रात को जब सास ने उससे पति के कमरे में सोने को कहा तो विन्दु का हृदय कांप उठा। उसकी सास बड़ी प्रचण्ड है, किन्तु पूरी पागल न होने के कारण वह और भी भयङ्कर है। विन्दु को कमरे में जाना ही पड़ा। उस दिन उसके पति का मिजाज़ कुछ ठण्डा था, किन्तु डर के मारे विन्दु का शरीर मानो काठ-सा हो गया। बड़ी रात को जब उसका पति सो गया तब वह बड़ी चतुरता से भाग आई, उसका विस्तृत विवरण लिखने की आवश्यकता नहीं है।

घृणा और क्रोध से मेरा शरीर जलने लगा। मैंने कहा कि ऐसे धोखे का विवाह विवाह ही नहीं है। विन्दु तू जैसे रहती थी, वैसे ही मेरे साथ रह। देखें तुझे कौन ले जा सकता है?

तुम लोगों ने कहा कि विन्दु झूठ बोल रही है।

मैंने कहा कि वह कभी नहीं झूठ बोलती।

तुम लोगों ने कहा—तुम्हें कैसे मालूम है?

मैंने कहा—मैं निश्चित रूप से जानती हूँ।

तुम लोगों ने धमकी दी कि विन्दु की ससुराल के लोग यदि कहीं मुक़द्दमा दायर कर देंगे तो बड़ा झञ्झट उठ खड़ा होगा।

इसके उत्तर में मैंने कहा—क्या अदालत इस बात पर ध्यान नहीं देगी कि धोखा देकर पागल के साथ उसका विवाह करा दिया है!

तुम लोगों ने कहा—तो क्या इसके पीछे अदालत करते फिरेंगे, हम लोगों को क्या पड़ी है?

मैंने कहा कि अपने गहने बेंच कर मैं जो कुछ कर सकूँगी, करूँगी।

तुम लोगों ने कहा—तो क्या वकीलों के यहा दौड़ती फिरेगी?

इस बात का उत्तर नहीं है। अपना सिर पीटने के अतिरिक्त और क्या करूँ?

उधर विन्दु की ससुराल से उसका जेठ आकर बड़ा झञ्झट मचा रहा था। वह कहता था कि हम थाने में रिपोर्ट करेंगे।

मेरी कितनी शक्ति है, इस बात का तो मुझे पता न था, किन्तु कसाई के भय से जो गौ अपने प्राण लेकर भाग कर मेरी शरण में आई थी उसे पुलिस के भय से फिर उसी कसाई को अर्पण करने के लिए मेरा हृदय नहीं गवाही देता था। मैंने साहस करके कहा—आप कीजिए रिपोर्ट।

ऐसा कह कर मैंने सोचा कि विन्दु को अपने कमरे में लेकर भीतर से ताला बन्द कर लूँ। खोल कर जब देखा तब वह नहीं थी। तुम लोगों के साथ जब वाद-विवाद हो रहा था, उस समय वह स्वयं जाकर अपने जेठ के पास उपस्थित होगई। वह समझ गई कि घर में उसके रहने से मुझे बड़ी विपत्ति में फँसना पड़ेगा।

रात में भाग आकर विन्दु ने अपना दुःख और भी बढ़ा लिया। उसकी सास का कहना था कि मेरा लड़का उसे खाये नहीं जाता था। संसार में कितनी स्त्रियों के पति इससे भी कहीं गये गुज़रे हैं। उन सबों से तो मेरा लड़का लाख दर्जे अच्छा है।

जेठानीजी ने कहा—उसका कर्म ही फूटा है तब उसके पीछे कहां तक रोते फिरेंगे? पागल हो या रोगी, स्वामी तो है!

कोढ़ी को गोद में लेकर उसकी स्त्री ने वेश्या के घर अपने आप पहुँचाया था, सती-साध्वी का वही दृष्टान्त तुम लोगों के हृदय में जागृत था। संसार में अधम से अधम कायरता की इस कहानी का प्रचार करते आने में आज तक तनिक भी सङ्कोच नहीं मालूम पड़ा, यही कारण है कि मनुष्य का जन्म धारण करके भी विन्दु के व्यवहार से तुम लोगों को क्रोध आया है. तुम्हारा मस्तक झुका नहीं। विन्दु की दशा से मेरा हृदय विदीर्ण हो गया, किन्तु तुम लोगों के प्रति मेरी लज्जा की सीमा न थी। मैं एक तो देहाती लड़की हूँ, तिस पर भी तुम लोगों के घर में पड़ी। भगवान् ने न जाने कैसे मुझे यह बुद्धि दी! तुम्हारी यह धर्म की बात मुझसे किसी प्रकार भी न सही गई।

मैं निश्चितरूप से जानती थी कि विन्दु मरने पर भी अब हमारे घर नहीं आयेगी। किन्तु मैंने विवाह के पहले ही उसे आशा दी थी कि अन्त तक तुम्हें न त्यागूँगी। मेरा छोटा भाई शरत् कलकत्ते में कालेज में पढ़ता है। तुम जानते ही हो कि देश-सेवा से उसे कितना प्रेम है, रोगियों तथा दीन-दुखियों की सेवा में ही लगे रहने के कारण वह लगातार दो वर्ष से एफ़० ए० में फेल हो रहा है. तो भी उसका उत्साह किसी प्रकार कम नहीं हुआ है। मैंने उसे बुला कर कहा कि शरत्, तुम्हें ऐसा कोई प्रबन्ध करना चाहिए जिससे मुझे विन्दु का समाचार मिल जाय। विन्दु मुझे पत्र लिखने का साहस न करेगी—लिखने पर मैं पाऊँगी भी नहीं।

इस कार्य की अपेक्षा यदि उसे मैं विन्दु को ज़बरदस्ती उठा लाने या उसके पागल स्वामी का मस्तक तोड़ देने को कहती तो वह अधिक प्रसन्न होत

शरत के साथ आलोचना कर रही थी, इतने में तुमने घर में आकर कहा—अब क्या हङ्गामा मचा रक्खा है ?

मैंने कहा— वही जो पहले मचा रक्खा था, तुम्हारे घर में आई थी—किन्तु वह तो तुम्हारी ही कीर्ति है।

तुमने पूछा—विन्दु को फिर लाकर कहाँ छिपाया है ?

मैंने कहा—यदि विन्दु आती तो उसे अवश्य छिपा रखती। परन्तु वह नहीं आयेगी, तुम्हें डरने की कोई बात नहीं है।

मेरे पास शरत् को देखकर तुम्हारा सन्देह और भी बढ़ गया। मैं जानती थी कि हमारे घर में शरत् का आना-जाना तुम्हें पसन्द नहीं है। तुम्हें भय था कि उसके ऊपर पुलिस की दृष्टि रहती है, किसी दिन यदि वह किसी राजनैतिक मामले में फँस गया तो हमें भी झञ्झट से फँसना पड़ेगा। इसी लिए मैं उसे भैयादूज का सामान तक किसी के हाथ से भेज देती थी, उसे अपने घर नहीं बुलाती थी।

तुमसे मालूम हुआ कि विन्दु फिर कहीं भाग निकली। उसका जेठ खोजने के लिए आया है। सुनकर मेरे हृदय में बाण-सा लगा। मैं समझ गई कि उस अभागी को कितना कष्ट है, किन्तु उसे दूर करने का कोई भी उपाय नहीं है।

शरत् पता लगाने के लिए दौड़ा। साँझ को लौट आकर उसने कहा कि विन्दु अपने चचेरे भाइयों के यहाँ गई थी, किन्तु वे लोग उसे देखते ही आग-बबूला हो गये और उसे तुरन्त ही उसकी ससुराल भेज गये।

तुम्हारी चाची पुरी जाने के लिए तुम्हारे यहाँ आई थीं। मैंने तुम लोगों से कहा कि मैं भी जाऊँगी।

एकाएक धर्म में मेरी ऐसी रुचि देख कर तुम लोग इतने प्रसन्न हुए कि ज़रा भी आपत्ति न की। इधर यह भी समझते थे कि कलकत्ते में रहने से विन्दु के पीछे किसी दिन फिर न कोई झंझट खड़ा कर दूँ, इसी से मेरा रहना और खलता था।

बुध को हमारी यात्रा का मुहूर्त था। रविवार को सब ठीक-ठाक होगया। मैंने शरत् को बुलाकर कहा कि चाहे कैसे भी हो, बुध को विन्दु को पुरी की गाड़ी पर तुम्हें चढ़ा ही देना पड़ेगा।

शरत् का चेहरा खिल उठा। उसने कहा, "कोई चिन्ता नहीं है दीदी, उसे गाड़ी पर बैठा कर पुरी तक उसी के साथ साथ मैं भी चला चलूँगा. इसी बहाने जगन्नाथजी के दर्शन भी हो जायँगे।"

उसी दिन साँझ को शरत फिर आया। उसका मुख देखते ही मेरा कलेजा कांप उठा। मैंने कहा, "क्यों शरत्, मालूम होता है कि सुविधा नहीं हुई।"

उसने कहा—नहीं।

मैंने कहा—क्या राज़ी नहीं कर सके ?

उसने कहा—अब आवश्यकता भी नहीं है। कल रात को कपड़े में आग लगा कर उसने आत्महत्या कर ली। उसके जेठ के लड़के से मैंने मित्रता कर ली थी, उससे मालूम हुआ कि तुम्हारे नाम वह पत्र लिख गई थी, किन्तु उन लोगों ने उसे फाड़ डाला।

अस्तु, शान्ति हो गई।

सारा देश आवेश में आगया। कहने लगा, कपड़े में आग लगा कर मरना स्त्रियों का फ़ैशन हो गया है।

तुम लोगों ने कहा—यह सब नाटक है! ख़ैर, यही सही। परन्तु नाटक का अभिनय केवल बङ्गाली-स्त्रियों की साड़ियों में ही क्यों होता है, और बङ्गाली-पुरुषों के चादरों में क्यों नहीं होता, यह भी तो सोचना चाहिए!

विन्दु का ऐसा फूटा कर्म ही था! जब तक वह जीवित थी, रूप-गुण में किसी प्रकार भी यश नहीं पा सकी। मरने के समय भी वह कुछ सोच-समझ कर ऐसे नये ढङ्ग से मरती कि देश के पुरुषगण प्रसन्नता-पूर्वक तालियाँ पीटते। यह भी उसके भाग्य में नहीं बदा था। मर कर भी उसने लोगों को चिढ़ा दिया।

दीदी छिपकर घर के भीतर रोने लगीं, किन्तु उस रोने में एक सान्त्वना थी। ख़ैर, उसके मरने ही में अच्छा था। यदि जीती रहती तो न जाने क्या हो जाता!

मैं तीर्थ में आई हूँ। विन्दु को यहाँ आने की आवश्यकता नहीं पड़ी, किन्तु मुझे आना ही था।

दुःख कहने से लोग जो कुछ समझते हैं, तुम्हारे परिवार में वह मुझे नहीं था। तुम्हारे यहाँ भोजन-वस्त्र का कष्ट नहीं है। तुम्हारे भैया का चरित्र चाहे कैसा ही हो, तुम्हारे चरित्र में ऐसा कोई भी दोष नहीं है जिसके लिए

में भाग्य को दोष दे सकूँ। यदि कहीं तुम्हारा स्वभाव भी तुम्हारे भैया के ही समान होता, तो भी किसी प्रकार मेरा दिन ऐसे ही बीत जाता और अपनी सती-साध्वी जेठानीजी के समान पति-देवता को दोष न देकर विश्व-देवता को ही दोष देने की चेष्टा करती। अतएव मैं किसी प्रकार से तुम्हारी शिकायत नहीं करना चाहती। मेरी यह चिट्ठी इसलिए नहीं है।

किन्तु मैं फिर तुम्हारे यहा लौट कर न आऊँगी। मैंने विन्दु को देखा है। संसार में स्त्री-जाति की जैसी स्थिति है, वह मुझे मालूम है। अब मुझे आवश्यकता नहीं है।

मैंने यह भी देखा है कि स्त्री-जाति को भी भगवान् ने नहीं त्यागा है। उस पर तुम्हारी चाहे कितनी ही शक्ति क्यों न हो, उस शक्ति का अन्त है। वह अभागे मानव-जीवन से बढ़कर है। तुम्हीं लोगों के पैर तो इतने लम्बे है नहीं कि जैसे चाहोगे, अपने नियम से उसके जीवन को सदा पैरों के नीचे ढँक रक्खोगे। मृत्यु तुम लोगों से बढ़कर है। उसी मृत्यु में वह महान् है। जहाँ विन्दु केवल बङ्गाली रमणी नहीं है, केवल चचेरे भाइयों की बहन नहीं है, केवल अपरिचित पागल स्वामी की प्रवञ्चिता स्त्री नहीं है, वहाँ वह अनन्त है।

उसी मृत्यु की वंशी उस बालिका के भग्न-हृदय से होकर मेरे जीवन के यमुना-पार जिस दिन बजी, उस दिन पहले-पहल मानो मेरे हृदय में बाण चुभ गया। मैंने विधाता से पूछा कि संसार में जो कुछ सबसे तुच्छ है वही सबसे कठिन क्यों है? इस गली के मध्य का चहारदीवारी से घिरा हुआ निरानन्द का अति साधारण बुद्बुद इतनी भयङ्कर बाधा क्यों है? तुम्हारा जगत् अपने छः ऋतुओं का सुधा-पात्र हाथ मे लेकर चाहे कैसे ही क्यो न पुकारे, क्षण भर के लिए भी मैं अन्तःपुर की ज़रा-सी चौखट को क्यों नहीं पार कर सकती? तुम्हारे ऐसे भवन में अपने ऐसे जीवन को लेकर इस अति तुच्छ ईंट-काठ के पर्दे में ही मुझे क्यों घुलघुल कर मरना ही होगा? कितनी तुच्छ है यह हमारी प्रतिदिन की जीवन-यात्रा, कितने तुच्छ हैं इसके समस्त बँधे हुए नियम, बँधा अभ्यास, बँधी भाषा, किन्तु अन्त तक उसी दीनता के ब्रह्म-फाँस की ही विजय होगी और पराजय होगी सृष्टि के आनन्दलोक की।

किन्तु मृत्यु की वंशी बजने लगी, कहा है राजमिस्त्री की बनाई हुई दीवार, कहाँ है तुम्हारे घोर क़ानूनों से गढ़ा हुआ काँटों का बेड़ा! किस दुख मे, किस अपमान में मनुष्य बन्दी बनाकर रख दिया जा सकता है। देखो, यह मृत्यु के हाथ में जीवन की विजय-पताका उड़ रही है! अरे मझली बहू, तुम्हें भय नहीं है! तुम्हारी 'मझली बहू की' केंचुल बदलने में एक क्षण भी न लगेगा।

अब मैं तुम्हारी गली से नहीं डरती। आज मेरे सम्मुख नीला समुद्र है और मस्तक पर आषाढ़ का मेघ-पुञ्ज।

तुम लोगों ने अपने अभ्यस्त अन्धकार में मुझे ढँक रक्खा था। विन्दु ने क्षण भर के लिए आकर उस आवरण के छिद्र से मुझे देख लिया था। वह बालिका ही अपने आत्म-बलिदान से मेरे आवरण को आद्योपान्त छिन्न कर गई। आज बाहर आकर देखती हूँ कि मेरे गौरव रखने का और स्थान नहीं है। मेरा यह अनादृत रूप जिसे अच्छा लगा है वही सुन्दर समस्त आकाश से मुझे निहार रहे हैं। इस बार मरी है मझली-बहू।

तुम समझते होगे कि मैं मरने जा रही हूँ। घबराने की बात नहीं है। ऐसी पुरानी हँसी मैं तुम्हारे साथ न करूँगी। मीराबाई भी तो मेरे ही समान स्त्री थीं। उनकी शृङ्खला भी तो कम दृढ़ नहीं थी। उसे तो बचने के लिए मरना नहीं पड़ा।

मैं भी बचूँगी, मैं बच गई।

तुम्हारे चरणों के आश्रम से बिछुड़ी हुई—

मृणाल*।

---

* रवीन्द्र बाबू की एक कहानी का अनुवाद।

चिन्ता

[श्रीयुत गिरीश]

वृन्दावन के कलित कुञ्ज में
बैठी गोप-कुमारी ।
है सोचती बड़ा नटखट है
श्याम निकुञ्ज-विहारी ।

इसके संग नहीं खेलूँगी
चाहे जो हो जावे ।
चाहे जितनी पीड़ा मेरा
रस-लोलुप मन पावे ।

सब लोगों को ठगनेवाला
है यह श्याम खिलाड़ी ।
इसके साथ वही खेले जो
होवे बड़ा अनाड़ी ।

जो खेलो तो दाँव-पेंच से
नाना नाच नचावे ।
डाल बड़े भारी चक्कर में
चारों ओर भ्रमावे ।

और न खेलो तो विपदा है
कभी नहीं बोलेगा ।
रस के छिपे स्रोत को अपने
कभी नहीं खोलेगा ।

कभी नहीं बाँसुरी बजेगी
नहीं नाचना-गाना ।
हाव-भाव का दृश्य न होगा
मन्द मन्द मुसकाना ।

यही विचार अनेक रसिक जन
क्रीड़ा-हित आते हैं ।
और अन्त में प्रवञ्चना से
हार हार जाते हैं ।

विजयी होकर हरि हँसता है
वे रोते-गाते हैं ।
रसिक खिलाड़ी परम अनाड़ी
बन पीड़ा पाते हैं ।

उदासीन होकर बैठो तो
अति उदास हो जावे ।
साहस करके खेलो तो
मुख में मसि खूब लगावे ।

ऐसे के सँग प्रेम बढ़ाना
विपद मोल लेना है ।
जीवन भर के लिए वेदना-
द्वार खोल देना है ।

वृन्दावन को छोड़ कहीं अब
शीघ्र चली जाऊँ मैं ।
जहाँ निरङ्कुश नन्दलाल के
छल से बच पाऊँ मैं ।

× × × ×

कवि गिरीश कहता है बाले
जहाँ कहीं जाओगी ।
खेले बिना संग मोहन के
नहीं चैन पाओगी ।

कृष्ण-जन्म

[चित्रकार श्रीयुत शारदाचरण उकील]

संसार का सबसे अधिक सम्पन्न देश

[श्रीयुत चन्द्रगुप्त, विद्यालङ्कार]

न्यूयार्क की मैकमरी एण्ड पार्कर कम्पनी-द्वारा प्रकाशित एलिमेंटरी जिओग्रेफ़ी नामक भूगोल की पुस्तक के सन् १९२८ के संस्करण में संयुक्त-राज्य अमेरिका के वैभव-सम्बन्धी कुछ नवीन तथ्य तथा गणनायें सम्मिलित की गई हैं। यद्यपि यह पुस्तक अमेरिका के हाईस्कूलों के पाठ्यक्रम में है, तथापि इसमें दी गई गणनायें इतनी आकर्षक और नवीन हैं कि अमेरिका के सर्वश्रेष्ठ पत्रों ने भी उन्हें अपने पाठकों की जानकारी के लिए उद्धृत किया है। आशा है, 'सरस्वती' के पाठकों को ये गणनायें अरुचिकर न प्रतीत होंगी। हम पुस्तक के कुछ स्थलों का भावानुवाद यहाँ उद्धृत करते हैं—

"ऐसा वर्ष कभी शायद ही गुज़रता हो जब संसार के किसी न किसी भाग में कोई अकाल न पड़े। चीन और हिन्दुस्तान में प्रतिवर्ष हज़ारों मनुष्य भूख के कारण ही मरते हैं। इन देशों में ऐसे लोगों की संख्या बहुत अधिक है जिन्हें पेट भर कभी आहार ही नहीं प्राप्त होता। परन्तु हमारे देश (संयुक्त-राज्य, अमेरिका) के लिए अकाल एक सर्वथा अज्ञात वस्तु है। हमारे यहाँ मात्रा और क़िस्म दोनों दृष्टियों से, भोज्यान्न अधिक और उत्तम पैदा होते हैं। शक्कर का व्यवहार अमेरिका में और सब देशों की अपेक्षा अधिक होता है। इसका अभिप्राय यही है कि अमेरिकन लोग स्वाद और क़िस्म दोनों दृष्टियों से संसार के अन्य देशवासियों की अपेक्षा उत्तम भोजन करते हैं। शक्कर की तरह मांस भी भोजन का एक मुख्य भाग है। हमारे देश में मांस-भक्षण भी संसार के अन्य सम्पूर्ण देशों की अपेक्षा बहुत अधिक होता है। आगे दी हुई तालिकाओं से यह बात स्पष्ट हो जायगी। कहा जाता है कि जिस देश में मांस की जितनी अधिक खपत है, वह देश उतना ही सम्पन्न है।

"सन् १९२७ के प्रारम्भ में सम्पूर्ण संसार में कुल मिला कर २७० लाख मोटर-गाड़ियाँ थीं। इनमें से २२० लाख से अधिक—अर्थात् प्रति ५ में से ४—अमेरिका में ही थीं। आगे दी हुई तालिकाओं से ज्ञात होता है कि यदि अमेरिका के संयुक्त-राज्य में वहाँ के सम्पूर्ण निवासी एक साथ ही मोटरों पर बैठ कर सैर करना चाहें तो वे प्रत्येक मोटर में ५ व्यक्तियों के हिसाब से, जिनमें ड्राइवर भी शामिल है, एक ही समय ऐसा कर सकते हैं। परन्तु यदि इटली में लोग ऐसा करना चाहें तो उन्हें प्रत्येक मोटर में २९३ व्यक्ति सवार कराने होंगे, और यदि चीनी जनता एक ही समय अपने देश में मोटरों पर सैर करना चाहे तो २३,००० चीनियों को एक साथ एक ही मोटर में बैठना पड़ेगा!

"रेडियो-स्टेशनों की दृष्टि से भी हमारा ही देश संसार के सब देशों का अग्रणी है। यदि हम सम्पूर्ण अमेरिकन एक ही साथ अपने राष्ट्रपति का भाषण सुनना चाहें तो प्रत्येक रेडियो-सेट के सम्मुख इस देश में १८ व्यक्तियों को खड़ा होना पड़ेगा, परन्तु यदि अँगरेज़ लोग एक ही समय अपने सम्राट् का भाषण सुनना चाहें तो वहाँ ३८ व्यक्ति एक रेडियो-सेट के सम्मुख आ खड़े होंगे।

"संसार के सम्पूर्ण टेलीफ़ोनों में से ⅗ टेलीफ़ोन केवल अमेरिका में ही हैं। वर्ष भर में औसत के हिसाब से प्रत्येक अमेरिकन के पास २०० संदेश टेलीफ़ोन-द्वारा आते हैं, जहाँ जर्मनी, इँग्लेंड और फ़्रांस में यह संख्या क्रमशः ३०,२५ और २२ है।"

अमेरिका की समृद्धि के सम्बन्ध में कुछ अङ्क नीचे उद्धृत किये जाते हैं—

"१. संसार के कतिपय देशों के मज़दूरों की दैनिक औसत आय—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	...	५ डालर
इँग्लेंड	...	३⅛ "
बेल्जियम	...	२ "

जापान	...	१ ३/४ ५ डालर
फ़्रांस	..	१ १/३ ”
आस्ट्रिया	...	१ ”
जर्मनी	...	१ ”

२. कुछ देशों में प्रतिवर्ष शक्कर की औसत खपत—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	...	५० सेर
इँग्लैंड	...	३५ ”
फ़्रांस	...	२६ ”
जर्मनी	..	२३ १/४ ”
इटली	...	७ १/८ ”

३. कुछ देशों में प्रतिवर्ष खाये जानेवाले मांस की औसत खपत—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	...	१८३.
इँग्लैंड	...	१२७.
फ़्रांस	...	११५.
जर्मनी	..	९५.
नार्वे	..	६५.
स्पेन	.	६३.
इटली	...	४८.
जापान	...	५.

४. कतिपय देशों में १ मोटर के पीछे औसत व्यक्ति—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	.	५.
इँग्लैंड	...	४३.
अर्जेन्टाइन	...	४५.
फ़्रांस	...	४६.
जर्मनी	..	१९६.
चिली	...	२२१.
इटली	...	२९३.
चीन	...	२३,०००.

५. कतिपय देशों में १ रेडियो-सेट के पीछे औसत व्यक्ति—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	...	१८.
इँग्लैंड	...	२८.
स्वीडन	...	३३.
जर्मनी	...	४५.
फ़्रांस	.	५०.
आस्ट्रिया	...	५७.
अर्जेन्टाइन	...	६५.

६. कतिपय देशों में १ टेलीफ़ोन के पीछे औसत व्यक्ति—

संयुक्त-राज्य अमेरिका	...	७.
जर्मनी	..	२६.
इँग्लैंड	...	३६.
फ़्रांस	...	५९.
जापान	...	१११.

"हमारे देश के इस प्रकार सम्पन्न होने का एक कारण इस देश की कृषि की उत्तमता और अधिकता है। अमेरिका शीत उत्तर से उष्ण दक्षिण तक फैला हुआ है। इसके पूर्वी भाग में नमी की अधिकता है और पश्चिमी भाग शुष्क है। अमेरिका में खेतों के आकार का औसत १५० एकड़ है। केवल कैनाडा, आस्ट्रेलिया और अर्जेन्टाइन जैसे संसार के कुछ नये देश इस बात में अमेरिका का मुक़ाबला करते हैं। अन्य सम्पूर्ण पुरानी दुनिया से हमारे खेत बड़े हैं। खेतों के इस बृहद् आकार के कारण हम लोग कृषि में मैशीनों का उपयोग आसानी के साथ कर सकते हैं। अतः हमारी उपज और भी अधिक होती है। अमेरिका में प्रत्येक किसान के पीछे—इनमें खेतों में काम करनेवाले मज़दूर भी शामिल हैं—प्रतिवर्ष ३२४ मन उत्पन्न होता है, जहाँ शेष संसार में यह औसत ३८ मन प्रतिवर्ष है।

"अमेरिका में प्रत्येक किसान की खेती का औसत ३० एकड़ है, जहाँ जर्मनी और फ़्रांस में केवल ७ एकड़, रूस में ९ एकड़ और जापान में केवल डेढ़ एकड़ है। वस्तुतः अमेरिका में प्रत्येक किसान या खेतों में काम करनेवाला मज़दूर अपने देश के ९ अन्य व्यक्तियों और विदेशों के १ व्यक्ति को भोजन देता है। कुछ अन्य देशों में प्रति एकड़ उपज तो अमेरिका की अपेक्षा अवश्य अधिक है, परन्तु प्रति किसान उपज की दृष्टि से संसार का कोई अन्य देश अमेरिका का मुक़ाबला नहीं करता।

"हमारी सम्पन्नता का दूसरा कारण हमारा अपने पालन में स्वयं समर्थ होना है। केवल शक्कर को छोड़ कर अन्य कोई भोज्य पदार्थ हमें बाहर से मँगवाने की आवश्यकता नहीं है।

"हमारे मज़दूरों की आय सम्पूर्ण संसार के मज़दूरों से अधिक है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि अमेरिका में प्रत्येक मज़दूर ४ घोड़ों की औसत ताक़त की मशीन से काम करता है। इँग्लेंड का प्रत्येक मज़दूर २ घोड़ों की औसत ताक़त से और जापान का मज़दूर केवल १ घोड़े की औसत ताक़त से काम करता है।

"अमेरिका में न केवल मशीनों की अधिकता है, किन्तु यहाँ की मशीनें संसार के और सब देशों की अपेक्षा अधिक उत्तम हैं। उदाहरण के लिए हम कोयले या पत्थर से भरा हुआ एक जहाज़ बिना एक भी फावड़ा चलाये ख़ाली कर सकते हैं। हमारे कुछ बन्दरगाहों पर रेलगाड़ी के कोयले से भरे हुए डिब्बे लिफ़्ट की मदद से ऊँचे उठाये जाकर जहाज़ में उलट दिये जाते हैं। इसी प्रकार हमारी खानों में कोयला भी प्रायः मशीन के द्वारा ही निकाला जाता है। हमारे यहाँ ऐसी मशीनें हैं जिनमें एक आदमी एक ओर से लोहे के बेढङ्गे छड़ घुसेड़ता है और दूसरी ओर उससे बन बन कर सुन्दर डिब्बों में एक ढङ्ग से बन्द होकर सुइयाँ बाहर निकलती हैं। शीशे का सामान भी इसी प्रकार बिना झंझट के तैयार किया जाता है। मज़ा तो यह है कि बहुत से खाद्य पदार्थ और मिठाइयाँ भी केवल मशीन की सहायता से तैयार की जाती हैं। दफ़्तरों में हिसाब भी अब प्रायः मशीनों की सहायता से किया जाने लगा है। हाल ही में हमारे यहाँ एक ऐसी मशीन तैयार हुई है जो अङ्कगणित के कठिन से कठिन प्रश्नों को स्वयं हल कर दिया करेगी!

"हमारे कपड़े के कारख़ानों में प्रायः २० से लेकर ३० करघों पर केवल एक ही मज़दूर काम करता है। योरप में एक मज़दूर प्रायः ६ से अधिक करघों को नहीं सँभाल सकता। सुना है कि हिन्दुस्तान में एक जुलाहा एक करघे पर भी बिना किसी लड़के की मदद के काम नहीं कर सकता!

"मशीनों की इस उत्तमता का यह परिणाम है कि संयुक्त-राज्य में संसार की कुल आबादी का सोलहवाँ भाग आबादी होने पर भी संसार के अन्य देशों के मुक़ाबले में हमारे देश की उत्पत्ति का अनुपात बहुत अधिक है। नीचे की तालिका-द्वारा यह बात स्पष्ट हो जायगी—

७ संसार की कतिपय वस्तुओं का वह भाग जो अमेरिका उत्पन्न करता है—

आबादी	...	१/१६
कच्चा लोहा	.	५/८
स्टील (पक्का लोहा)	.	५/८
रुई	...	९/१६
गेहूँ	.	१/४
कोयला	...	७/१६
मिट्टी का तेल	..	३/४
बिजली	...	५/१२
ताँबा	..	१९/३०

८ अमेरिका की कतिपय वस्तुओं की सम्पूर्ण उत्पत्ति का वह भाग जो वह दूसरे देशों को भेजता है—

रुई	...	१/२
अनाज	...	५/१६
मांस	...	५/१६
मोटर	...	३/३३
रबर का सामान	...	५/१६
टाइपराइटर	...	७/१६

९. संसार की कतिपय वस्तुओं का वह भाग जो अमेरिका में उत्पन्न होता है या वहाँ इस्तेमाल होता है—

आबादी	...	१/१६	
खाँड़	...	१/४	(इस्तेमाल)
रबर	...	३/४	(उत्पत्ति)
टेलीफ़ोन	. .	५/८	(इस्तेमाल)
रेलवे लाइन	...	३/८	(अमेरिका में विस्तार)
मिट्टी का तेल	...	२५/३२	(उत्पत्ति)
मोटर	...	२५/३२	(,,)
कहवा	...	५/८	(,,)
कच्चा रेशम	...	३/४	(,,)

"हमारे देश का परिमाण और अवस्थिति, हमारा काम करने का ढङ्ग और हमारे यथेष्ट खनिज—मुख्यतया इन्हीं कारणों के प्रभाव से हमारा देश संसार के अन्य सब देशों से अधिक सम्पन्न है।

"परन्तु इनके अतिरिक्त हमारी सम्पन्नता के कुछ और कारण भी हैं। अपने देश के क्षेत्रफल की दृष्टि से हमारे देश की जन-संख्या अभी बहुत कम है। योरप और संयुक्त-राज्य के क्षेत्रफल में क्रमशः ४ और ३ का अनुपात है, जहाँ दोनों देशों की आबादी में क्रमशः ४ और १ का अनुपात है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल हमारे देश के आधे क्षेत्रफल से कुछ ही अधिक है, परन्तु उसकी आबादी हमारे देश की अपेक्षा ३ गुना है। इस प्रकार अमेरिका और भारतवर्ष में क्षेत्रफल की दृष्टि से आबादी का अनुपात क्रमशः १ और ६ हुआ। जिन देशों में आबादी इतनी घनी हो उनमें स्वभावतः एक एकड़ में अधिक अन्न उत्पन्न करने की कोशिश की जाती है। अतः वहाँ अधिक व्यय और अधिक श्रम पड़ता है; इस प्रकार भूमि की उपजाऊ शक्ति कम होती चली जाती है। संसार के प्रायः सभी प्राचीन देशों का यही हाल है।

"कहा जा सकता है कि रूस, चीन और हिन्दुस्तान अमेरिका के समान बड़े तथा उपजाऊ देश होते हुए भी इतने सम्पन्न क्यों नहीं हैं। सम्भवतः इसका कारण इन देशों के निवासियों का अशिक्षित होना है। हिन्दुस्तान में ९० प्रतिशत व्यक्ति अपना नाम तक नहीं लिखना जानते।

हमारे देश की सम्पन्नता का एक और कारण हमारे यहाँ श्रेणी-व्यवस्था (class system) और वर्ण-व्यवस्था (caste system) का पूर्ण अभाव है। हमारे यहाँ सभी की यह दृढ़ धारणा है कि प्रत्येक मनुष्य को उन्नति करने का पूरा अधिकार है। हम अमेरिकन लोगों की व्यक्तिगत उन्नति पूरी तरह से हमारे वैयक्तिक श्रम और योग्यता पर ही आश्रित है। हम लोग जानते हैं कि किसी व्यक्ति के वैभव और प्रतिष्ठा की सीमा किसी ने पहले से नहीं बाँध रक्खी है; अतः हम लोग खूब अध्यवसाय करते हैं। हमारे यहाँ कोई भी मनुष्य भूमि के छोटे से टुकड़े या इसी प्रकार कोई और ज़रा सी चीज़ को लेकर काम आरम्भ कर सकता है। यदि वह ईमानदार और सफल होगा तो हम सब उसका सम्मान करेंगे, यदि वह योग्य होगा तो उसे अपना राष्ट्रपति निर्वाचित करने में भी हम अपना गौरव समझेंगे।"

अमेरिका के स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली इस पुस्तक के उपर्युक्त अन्तिम उद्धरण से हम भारतवासी बहुत कुछ सीख सकते हैं।

श्रीकान्त

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

आज सवेरे ही मेरे बिदा होने का समय था। किन्तु शरीर अस्वस्थ रहने के कारण, कुँअर साहब के अनुरोध को स्वीकार कर तीसरे पहर जाने का ही निश्चय करके मैं अपने तम्बू में लौट आया।

इतने दिनों में आज यही मैंने पियारी के आचरण में भावान्तर देख पाया। इतने दिन तक उसने परिहास किया, व्यंग्य किया, उसकी दृष्टि में कलह का आभास तक मैंने कभी कभी अनुभव किया; किन्तु इतनी उदासीनता कभी नहीं देखी। यह औदासिन्य देखकर व्यथित होने के बदले मैं प्रसन्न ही हुआ। क्यों हुआ, यह जानता हूँ। यद्यपि किसी युवती नारी के मन की गति को लेकर माथा-पच्ची करना मेरा पेशा नहीं, इसके पहले यह काम

मैंने कभी किया भी नहीं, किन्तु मेरे मन के भीतर कई जन्मों की जो अखंड धारावाहिकता या परम्परा गुप्त रूप से विद्यमान है. उसके बहुदर्शन की अभिज्ञता से रमणी-हृदय का यह निगूढ़ तात्पर्य मुझसे छिपा नहीं रहा—उसे मैंने ठीक पकड़ लिया। मेरा मन पियारी के इस भाव को उपेक्षा समझ कर कुंठित नहीं हुआ, बल्कि इसे प्रणय-अभिमान जानकर पुलकित हो उठा। जान पड़ता है, इसी मन के गुप्त इशारे से मैंने अपनी इस श्मशान-यात्रा के वर्णन में इस बात का उल्लेख तक नहीं किया कि पियारी ने कल मसान से मुझे लौट आने के लिए आदमी भेजे थे। और, वह भी वर्णन समाप्त होतेही वैसेही चुपचाप चली गई। समझा, इसी के लिए यह रूठना था! कल रात को मसान से लौटकर मैंने मुलाक़ात नहीं की और न यह बतलाया कि वहाँ क्या हुआ, क्या देखा, क्या सुना। जो बात सबसे पहले अकेले बैठकर उसे सुनने का अधिकार था, वही आज सबके पीछे बैठकर उसने जैसे अकस्मात् सुनने को पाई! किन्तु रूठना इतना मधुर होता है, यह जीवन में आजही मैंने जाना। पहले पहल जो यह अपूर्व स्वाद पाया, उसे निर्जन में बैठकर, बालक की तरह, धीरे-धीरे उपभोग करने लगा।

आज दोपहर को मुझे सो जाना चाहिए था। बिस्तर पर लेटा तब कुछ कुछ तन्द्रा भी आने लगी। किन्तु रतन के आने की आशा बराबर हिला-डुलाकर उस तन्द्रा को रह-रह कर तोड़ देती थी। इसी तरह दिन ढल गया, किन्तु रतन न आया। वह अवश्य आयगा, यह विश्वास मेरे मन में इतना पक्का था कि बिस्तरे से उठकर बाहर आकर जब देखा कि सूर्यदेव पश्चिम की ओर बहुत अधिक ढल गये हैं तब निश्चित रूप से यह जान पड़ा कि मैं किसी समय तन्द्राभिभूत हो गया था, और उसी समय रतन भीतर आकर, मुझे सोया हुआ जानकर, लौट गया। मूर्ख! एक बार आवाज़ दे लेता तो क्या होता!

दोपहर का सन्नाटे का समय व्यर्थ चला गया, यह सोचकर मैं क्षुब्ध हो उठा। तो भी इसमें मुझे रत्ती भर भी संशय न था कि सन्ध्या के बाद वह फिर आयगा—एक अनुरोध या कुछ लिखी हुई सतरें अवश्य मुझ तक पहुँचायगा। किन्तु अब इतना समय किस तरह बिताऊँ? सामने आंख उठाते ही कुछ दूर पर बहुत-सा जल एक साथ झिलमिला उठा। यह किसी विस्मृति के गर्भ में लीन ज़मींदार की बड़ी भारी कीर्ति थी! यह तालाब मील भर के लगभग लम्बा होगा। उत्तर ओर पट गया था—वहाँ घना जङ्गल हो आया था। गांव के बाहर होने के कारण गांव की औरतें इसके जल का व्यवहार नहीं कर पाती थीं। बातों ही बातों में सुना था कि यह तालाब कितने दिन का और किसका बनवाया हुआ है, यह कोई नहीं जानता। इसका एक पुराना टूटा हुआ घाट था; उसी के एक छोर पर जाकर बैठ गया।

किसी समय इस तालाब को घेरकर चारों ओर एक समृद्ध ग्राम बसा हुआ था। एक बार हैज़े के कोप से वह उजड़ गया और अब उसकी बस्ती दूसरी जगह—वर्तमान स्थान में—खिसक गई है। यह अनुभव करके भी कि अब यहीं से उठ चलने का समय हो गया—जितना समय बिताने की गरज़ से यहाँ आया था, वह बीत गया—मैं वहाँ से नहीं उठ सका। वह टूटा घाट जैसे ज़बरदस्ती मेरे पैर पकड़कर मुझे वहाँ बैठाये रहा।

जान पड़ा, यह जिस जगह पैर रखकर बैठा हूँ, यहाँ कितनी ही बार कितने ही आदमी आये-गये हैं। इसी घाट में वे नहाते थे, हाथ-पैर धोते थे, धोती छाँटते थे, पानी भरते थे। अब वे कहाँ के किस जलाशय में ये सब नित्य के काम पूरे करते हैं? यह गाँव जब बसा हुआ था तब वे निश्चय ही इस समय यहाँ आकर बैठते, गा-बजाकर, बातचीत करके दिन भर की थकान दूर करते थे। उसके बाद अकस्मात एक दिन जब महाकाल ने महामारी के रूप में दिखलाई देकर सारे गाँव को अपने मुँह का कौर बना लिया तब कितनेही मरणासन्न रोगी शायद प्यास से व्याकुल होकर दौड़े आकर इसी घाट के ऊपर आख़िरी साँस छोड़ गये होंगे। शायद उनकी प्यासी आत्मायें आज भी इसी जगह घूमती फिरती हैं। यह बात कौन ज़ोर देकर कह सकता है कि जो हमें आँखों से देख नहीं पड़ता उसका अस्तित्व ही नहीं है? आज सवेरेही उस वृद्ध व्यक्ति ने कहा था—बाबूजी, मृत्यु के

उपरान्त कुछ नहीं रहता, असहाय प्रेतात्मायें हम लोगों ही की तरह भूख-प्यास से पीड़ित होकर विचरण नहीं करतीं, यह हरगिज़ न समझना। इतना कहकर उस वृद्ध ने राजा विक्रमादित्य की कथा, ताल-वेताल सिद्ध होने की कथा तथा और भी कितने ही तान्त्रिक साधु-संन्यासियों की बातें कह सुनाई थीं। उन्होंने यह भी कहा था कि समय और सुयोग होने पर, प्रेतात्मायें दिखलाई नहीं दे सकतीं या बातचीत नहीं कर सकतीं—यह भी न सोचना। मैं तुमसे फिर कभी मसान में जाने के लिए नहीं कहता, किन्तु जो लोग ऐसे दुस्साहस का काम कर सकते है उनका सारा दुःख-कष्ट कभी सार्थक नहीं होता, इस पर कभी विश्वास न करना।

उस समय प्रातःकाल के प्रकाश में जो बातें केवल निरर्थक हँसी की सामग्री बन रही थीं वही इस समय सन्नाटे के गहरे अन्धकार में दूसरा ही रूप रखकर सामने उपस्थित हुईं। जान पड़ने लगा, जगत् में प्रत्यक्ष सत्य अगर कुछ है तो वह मरण ही है। यह जीवन भर की भली-बुरी, सुख-दुःख की अवस्थायें जैसे आतशबाज़ी की तरह केवल एक किसी ख़ास दिन जलकर भस्म होने के लिए ही इतने यत्न और इतने कौशल से घटित हो रही हैं। तब मृत्यु के उस पार का इतिहास यदि किसी उपाय से सुन लिया जासके तो फिर उससे बढ़कर और लाभ क्या है? वह इतिहास चाहे जो कहे और चाहे जिस तरह कहे, इससे क्या!

एकाएक किसी के पैरों की आहट से ध्यान उचट गया। घूम कर देखा, केवल अन्धकार नज़र आया—कहीं कोई न था। शरीर सिहर उठा। मैं सँभलकर उठ खड़ा हुआ। गत रात्रि की बातों को याद करके अपने मन में हँसकर मैंने कहा—न, अब और बैठे रहना ठीक नहीं। कल दाहने कान पर ठंडी साँस छोड़कर चला गया, आज अगर आकर बाएँ कन्धे पर वही हरकत शुरू कर दे तो मुश्किल ही होगी।

कितनी देर तक मैं वहाँ बैठा रहा या उस समय कितनी रात होगी, यह कुछ मैं ठीक-ठीक निश्चय न कर सका। जान पड़ता है, आधी रात के लगभग होगी। किन्तु यह क्या? चलना शुरू किया तो बराबर चला ही जा रहा हूँ। वह तंग पगडंडी किसी तरह ।। नहीं होने आती? इतने तम्बू पड़े हैं, उनमें से एक की भी रोशनी नज़र नहीं आती! बहुत देर से एक बाँस के पेड़ों का झुरमुट दृष्टि की गति को रोके खड़ा था। अचानक जान पड़ा कि आते समय तो इसे मैंने नहीं देखा था। दिग्भ्रम तो नहीं हो गया? भूलकर दूसरी ओर तो नहीं चला आया?

और कुछ दूर आगे बढ़ते ही मालूम पड़ा, वह बांस के पेड़ों का झुरमुट नहीं है, कुछ इमली के पेड़ एक में सटे हुए दूर तक फैले हुए अन्धकार को और भी घना किये हुए खड़े हैं। उन्हीं के नीचे होकर वह पगडंडी टेढ़ी-मेढ़ी चली गई है, और कुछ दूर पर जाकर अदृश्य हो गई है।

उस जगह ऐसा अन्धकार था कि अपना हाथ तक न सूझता था। हृदय भीतर से धड़क उठा। यह मैं कहाँ जा रहा हूँ? आँख-कान मूँदकर किसी तरह उस इमली के पेड़ों के झुरमुट को नाघकर देखा, सामने जहाँ तक नज़र जाती है वहा तक अनन्त नील आकाश फैला हुआ है।

किन्तु सामने यह ऊँची-सी जगह क्या है? नदी के किनारे का सरकारी बाध तो नहीं है? हाँ, बाँध ही तो है! दोनों पैर जैसे जोड़ से टूट जाने लगे। तो भी किसी तरह उनको खींच खाचकर बांध के ऊपर चढ़ा। खड़े होकर देखा, जो सोचा था, ठीक वही है! ठीक नीचे ही वही कल का महाश्मशान है!

फिर जैसे किसी के पैरों की चाप मेरे सामने से होकर नीचे महाश्मशान में जाकर ग़ायब होगई। अबकी लुढ़कते-पुढ़कते किसी तरह उसी मिट्टी और बालू के ऊपर बेहोश की तरह जाकर धम-से बैठ गया। अब मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं रहा कि कोई मुझे रास्ता दिखाता हुआ एक महाश्मशान से दूसरे महाश्मशान में पहुँचा गया है। वही जिसके पैरों की चाप पाकर मैं टूटे घाट पर उठ खड़ा हुआ था उसी के पैरों की चाप इतनी देर बाद महाश्मशान मे जाकर ग़ायब हो गई है।

—

दसवाँ परिच्छेद

जिस अवस्था में सभी घटनाओं का कारण दिखाने की ज़िद मनुष्य में रहती है वह अवस्था मैं पार कर चुका हूँ। अतएव किस तरह इस सूचीभेदन अन्धकार से परिपूर्ण आधी रात में अकेले रास्ता पहचान कर पूर्वोक्त तालाब के उस टूटे घाट से इस मसान के समीप में आकर उपस्थित हुआ, अथवा वह किसके पैरों की चाप मुझसे आने का इशारा करके अभी-अभी सामने जाकर ग़ायब हो गई, इन सब प्रश्नों की मीमांसा करने योग्य बुद्धि मुझमें नहीं है—यह अपनी कमी या दैन्य पाठकों के आगे स्वीकार करने में अब मुझे लज्जा नहीं मालूम पड़ती।

यह रहस्य आज भी मेरे निकट वैसे ही अन्धकार में है। किन्तु इसके माने यह नहीं कि मैं प्रच्छन्न रूप से प्रेत-योनि के अस्तित्व को स्वीकार कर रहा हूँ। कारण, मैंने अपनी ही आँखों से देखा है—हमारे गाँव में एक घोर पागल था; वह दिन को घर-घर जाकर रोटी-भात वग़ैरह माँग-माँग कर खाता था, और रात को एक छोटी-सी लकड़ी के ऊपर धोती का एक सिरा टाँग कर और उसे सामने की ओर उठाये हुए सड़क-किनारे के बाग़ में पेड़ों के नीचे-नीचे घूमता फिरता था। उसे देख कर अन्धकार में कितने लोगों के दाँत बैठ गये, कितने बेहोश गये, इसकी कुछ गिनती नहीं। इसमें उसका कुछ स्वार्थ नहीं था; किन्तु अँधेरे में यही उसका नित्य कृत्य था। लोगों को निरर्थक डराने के और भी न जाने कितने अद्भुत ढंग वह किया करता था। कभी सूखी लकड़ियों का गट्ठा पेड़ की डाल में बांध कर उसमें आग लगा देता था; कभी मुँह में स्याही पोत कर विशालाक्षी देवी के मन्दिर में बड़े क्लेश से उतनी खड़ी चढ़ाई चढ़ कर जाता और बैठा रहता था; कभी गहरी रात में घर के अगल-बग़ल से नक्की स्वर में गृहस्थ किसानों के नाम लेकर पुकारता था। लेकिन मज़ा यह कि किसी दिन कोई उसे ऐसा उपद्रव करते पकड़ नहीं सका, और दिन के वक़्त उसके स्वभाव-चरित्र को देख कर किसी तरह उस पर ऐसा शक करने की बात भी मन में कोई नहीं ला सकता। फिर ये सब हरकतें वह केवल हमारे ही गाँव में नहीं करता था—आस-पास के आठ-दस गाँवों में जाकर यही सब करता फिरता था! लोग इन कांडों को भूतों का काम ही समझते रहे। किन्तु मरते समय वह पागल ख़ुद यह स्वीकार कर गया कि ये बदमाशियाँ मैं ही करता था। सचमुच उसकी मृत्यु के उपरान्त फिर कभी "भूत का उपद्रव" नहीं हुआ। यहाँ भी सम्भव है, ऐसी ही कोई चाल थी, या न हो, मैं कुछ ठीक कह नहीं सकता। ख़ैर, इस विषय को जाने दो।

मैं कह रहा था कि उस धूल-मिट्टी और बालू से भरे बाध पर मैं मूर्च्छित-सा होकर बैठ गया और उसके साथ ही वह पैरों की हलकी चाप मसान में धीरे धीरे जाकर लीन हो गई। जान पड़ा, उसने जैसे स्पष्ट करके यह जताया कि "छी-छी, यह तूने क्या किया? तुझे इतनी दूर राह दिखा कर मैं क्या वहां बैठ जाने के लिए ले आई थी? आ, आ, एक-दम हम लोगों के भीतर चला आ! यों अपवित्र, अस्पृश्य की तरह इस मैदान के एक किनारे मत बैठ; हम सबके बीच में आकर बैठ।"

ये बातें मैंने कानों से सुनी या इनका हृदय से अनुभव हुआ, यह आज मैं स्मरण नहीं कर सकता। तो भी जो उस समय चेतना बनी रही, इसका कारण यह है कि चैतन्य (होश) को इस तरह ज़बरदस्ती पकड़े या रोके रहने से वह इसी तरह कुछ-कुछ बना रहता है, बिलकुल ही ग़ायब नहीं हो जाता। मैंने यह अच्छी तरह अनुभव किया है।

इसी से मैं दोनों आखें खोल कर ताकता अवश्य रहा, लेकिन वह जैसे तन्द्रा की अवस्था की दृष्टि थी, जाग्रत की नहीं। वह न सोना था, न जागना। उस में न निद्रा का विश्राम था, न जागते रहने का उद्यम ही—इस तरह की एक अद्भुत अवस्था थी।

तथापि यह बात मुझे नहीं भूली थी कि रात बहुत हो गई है, मुझे डेरे को लौटना होगा। इसके लिए मैं कम से कम एक आध बार उठने की चेष्टा भी करता; लेकिन जान पड़ा, सब उद्योग वृथा है। यहाँ मैं अपनी

उपरान्त कुछ नहीं रहता, असहाय प्रेतात्मायें हम लोगों ही की तरह भूख-प्यास से पीड़ित होकर विचरण नहीं करतीं, यह हरगिज़ न समझना। इतना कहकर उस वृद्ध ने राजा विक्रमादित्य की कथा, ताल-वेताल सिद्ध होने की कथा तथा और भी कितने ही तान्त्रिक साधु-संन्यासियों की बातें कह सुनाई थीं। उन्होंने यह भी कहा था कि समय और सुयोग होने पर, प्रेतात्मायें दिखलाई नहीं दे सकतीं या बातचीत नहीं कर सकतीं—यह भी न सोचना। मैं तुमसे फिर कभी मसान में जाने के लिए नहीं कहता, किन्तु जो लोग ऐसे दुस्साहस का काम कर सकते हैं उनका सारा दुःख-कष्ट कभी सार्थक नहीं होता, इस पर कभी विश्वास न करना।

उस समय प्रातःकाल के प्रकाश में जो बातें केवल निरर्थक हँसी की सामग्री बन रही थीं वही इस समय सन्नाटे के गहरे अन्धकार में दूसरा ही रूप रखकर सामने उपस्थित हुईं। जान पड़ने लगा, जगत् में प्रत्यक्ष सत्य अगर कुछ है तो वह मरण ही है। यह जीवन भर की भली-बुरी, सुख-दुःख की अवस्थायें जैसे आतशबाज़ी की तरह केवल एक किसी ख़ास दिन जलकर भस्म होने के लिए ही इतने यत्न और इतने कौशल से घटित हो रही हैं। तब मृत्यु के उस पार का इतिहास यदि किसी उपाय से सुन लिया जासके तो फिर उससे बढ़कर और लाभ क्या है? वह इतिहास चाहे जो कहे और चाहे जिस तरह कहे, इससे क्या!

एकाएक किसी के पैरों की आहट से ध्यान उचट गया। घूम कर देखा, केवल अन्धकार नज़र आया—कहीं कोई न था। शरीर सिहर उठा। मैं सँभलकर उठ खड़ा हुआ। गत रात्रि की बातों को याद करके अपने मन में हँसकर मैंने कहा—न, अब और बैठे रहना ठीक नहीं। कल दाहने कान पर ठंडी सांस छोड़कर चला गया, आज अगर आकर बाएँ कन्धे पर वही हरकत शुरू कर दे तो मुश्किल ही होगी।

कितनी देर तक मैं वहाँ बैठा रहा या उस समय कितनी रात होगी, यह कुछ मैं ठीक-ठीक निश्चय न कर सका। जान पड़ता है, आधी रात के लगभग होगी। किन्तु यह क्या? चलना शुरू किया तो बराबर चला ही जा रहा हूँ। वह तंग पगडंडी किसी तरह ख़त्म नहीं होने आती? इतने तम्बू पड़े हैं, उनमें से एक की भी रोशनी नज़र नहीं आती! बहुत देर से एक बाँस के पेड़ों का झुरमुट दृष्टि की गति को रोके खड़ा था। अचानक जान पड़ा कि आते समय तो इसे मैंने नहीं देखा था। दिग्भ्रम तो नहीं हो गया? भूलकर दूसरी ओर तो नहीं चला आया?

और कुछ दूर आगे बढ़ते ही मालूम पड़ा, वह बांस के पेड़ों का झुरमुट नहीं है, कुछ इमली के पेड़ एक में सटे हुए दूर तक फैले हुए अन्धकार को और भी घना किये हुए खड़े हैं। उन्हीं के नीचे होकर वह पगडंडी टेढ़ी-मेढ़ी चली गई है, और कुछ दूर पर जाकर अदृश्य हो गई है।

उस जगह ऐसा अन्धकार था कि अपना हाथ तक न सूझता था। हृदय भीतर से धड़क उठा। यह मैं कहा जा रहा हूँ? आँख-कान मूँदकर किसी तरह उस इमली के पेड़ों के झुरमुट को नांघकर देखा, सामने जहाँ तक नज़र जाती है वहा तक अनन्त नील आकाश फैला हुआ है।

किन्तु सामने यह ऊँची-सी जगह क्या है? नदी के किनारे का सरकारी बांध तो नहीं है? हाँ, बाँध ही तो है! दोनों पैर जैसे जोड़ से टूट जाने लगे। तो भी किसी तरह उनको खींच खाचकर बांध के ऊपर चढ़ा। खड़े होकर देखा, जो सोचा था, ठीक वही है! ठीक नीचे ही वही कल का महाश्मशान है!

फिर जैसे किसी के पैरों की चाप मेरे सामने से होकर नीचे महाश्मशान में जाकर ग़ायब होगई। अबकी लुढ़कते-पुढ़कते किसी तरह उसी मिट्टी और बालू के ऊपर बेहोश की तरह जाकर धम-से बैठ गया। अब मुझे रत्ती भर सन्देह नहीं रहा कि कोई मुझे रास्ता दिखाता हुआ एक महाश्मशान से दूसरे महाश्मशान में पहुँचा गया है। वही जिसके पैरों की चाप पाकर मैं टूटे घाट पर उठ खड़ा हुआ था उसी के पैरों की चाप इतनी देर बाद महाश्मशान में जाकर ग़ायब हो गई है।

———

दसवाँ परिच्छेद

जिस अवस्था मे सभी घटनाओं का कारण दिखाने की ज़िद मनुष्य में रहती है वह अवस्था मैं पार कर चुका हूँ। अतएव किस तरह इस सूचीभेदन अन्धकार से परिपूर्ण आधी रात मे अकेले रास्ता पहचान कर पूर्वोक्त तालाब के उस टूटे घाट से इस मसान के समीप में आकर उपस्थित हुआ, अथवा वह किसके पैरो की चाप मुझसे आने का इशारा करके अभी-अभी सामने जाकर ग़ायब हो गई, इन सब प्रश्नो की मीमांसा करने योग्य बुद्धि मुझमे नही है—यह अपनी कमी या दैन्य पाठकों के आगे स्वीकार करने में अब मुझे लज्जा नही मालूम पड़ती।

यह रहस्य आज भी मेरे निकट वैसे ही अन्धकार में है। किन्तु इसके माने यह नहीं कि मैं प्रच्छन्न रूप से प्रेत-योनि के अस्तित्व को स्वीकार कर रहा हूँ। कारण, मैंने अपनी ही आँखो से देखा है—हमारे गांव मे एक घोर पागल था; वह दिन को घर-घर जाकर रोटी-भात वग़ैरह माँग-माँग कर खाता था, और रात को एक छोटी-सी लकड़ी के ऊपर धोती का एक सिरा टाँग कर और उसे सामने की ओर उठाये हुए सड़क-किनारे के बाग़ मे पेड़ों के नीचे-नीचे घूमता फिरता था। उसे देख कर अन्धकार में कितने लोगों के दाँत बैठ गये, कितने बेहोश गये, इसकी कुछ गिनती नहीं। इसमें उसका कुछ स्वार्थ नहीं था; किन्तु अँधेरे में यही उसका नित्य कृत्य था। लोगों को निरर्थक डराने के और भी न जाने कितने अद्‌भुत ढंग वह किया करता था। कभी सूखी लकड़ियों का गट्ठा पेड़ की डाल में बाँध कर उसमें आग लगा देता था; कभी मुँह में स्याही पोत कर विशालाक्षी देवी के मन्दिर में बड़े क्लेश से उतनी खड़ी चढ़ाई चढ़ कर जाता और बैठा रहता था; कभी गहरी रात में घर के अगल-बग़ल से नक्की स्वर में गृहस्थ किसानों के नाम लेकर पुकारता था। लेकिन मज़ा यह कि किसी दिन कोई उसे ऐसा उपद्रव करते पकड़ नही सका, और दिन के वक़्त उसके स्वभाव-चरित्र को देख कर किसी तरह उस पर ऐसा शक करने की बात भी मन में कोई नहीं ला सकता। फिर ये सब हरकतें वह केवल हमारे ही गांव में नहीं करता था—आस-पास के आठ-दस गाँवों में जाकर यही सब करता फिरता था! लोग इन कांडो को भूतों का काम ही समझते रहे। किन्तु मरते समय वह पागल ख़ुद यह स्वीकार कर गया कि ये बदमाशियाँ मैं ही करता था। सचमुच उसकी मृत्यु के उपरान्त फिर कभी "भूत का उपद्रव" नहीं हुआ। यहां भी सम्भव है, ऐसी ही कोई चाल थी, या न हो, मैं कुछ ठीक कह नहीं सकता। ख़ैर, इस विषय को जाने दो।

मैं कह रहा था कि उस धूल-मिट्टी और बालू से भरे बाध पर मैं मूर्च्छित-सा होकर बैठ गया और उसके साथ ही वह पैरों की हलकी चाप मसान मे धीरे धीरे जाकर लीन हो गई। जान पड़ा, उसने जैसे स्पष्ट करके यह जताया कि "छी-छी, यह तूने क्या किया? तुझे इतनी दूर राह दिखा कर मैं क्या वहां बैठ जाने के लिए ले आई थी? आ, आ, एक-दम हम लोगों के भीतर चला आ! यों अपवित्र, अस्पृश्य की तरह इस मैदान के एक किनारे मत बैठ; हम सबके बीच में आकर बैठ।"

ये बातें मैंने कानों से सुनीं या इनका हृदय से अनुभव हुआ, यह आज मैं स्मरण नहीं कर सकता। तो भी जो उस समय चेतना बनी रही, इसका कारण यह है कि चैतन्य (होश) को इस तरह ज़बरदस्ती पकड़े या रोके रहने से वह इसी तरह कुछ-कुछ बना रहता है, बिलकुल ही ग़ायब नहीं हो जाता। मैंने यह अच्छी तरह अनुभव किया है।

इसी से मैं दोनों आंखें खोल कर ताकता अवश्य रहा, लेकिन वह जैसे तन्द्रा की अवस्था की दृष्टि थी, जाग्रत की नहीं। वह न सोना था, न जागना। उस में न निद्रा का विश्राम था, न जागते रहने का उद्यम ही—इस तरह की एक अद्‌भुत अवस्था थी।

तथापि यह बात मुझे नहीं भूली थी कि रात बहुत हो गई है, मुझे डेरे को लौटना होगा। इसके लिए मैं कम से कम एक आध बार उठने की चेष्टा भी करता; लेकिन जान पड़ा, सब उद्योग वृथा है। यहाँ मैं अपनी

इच्छा से नहीं आया, यहाँ आने की तो मेरे मन में कल्पना भी नहीं थी। अतएव जो कोई मुझे इस बीहड़ मार्ग में पथ-प्रदर्शक बन कर ले आया है उसका कोई ख़ास काम ज़रूर है। वह मुझे ख़ाली-ख़ाली लौटने न देगा। पहले सुना था, अपनी इच्छा से इन (भूत-प्रेतों) के हाथ से छुटकारा नहीं पाया जा सकता। चाहे जिस रास्ते से चाहे जिस तरह ज़ोर कर के बाहर क्यों न निकलो, सभी रास्ते गोरखधन्धे या भूल-भुलैया की तरह उसी पुरानी जगह में घुमा-फिरा कर तुम्हें पहुँचा देंगे!

इस कारण चञ्चल या अधीर होकर छटपटाना बिलकुल बेकार समझ कर, किसी तरह गति की चेष्टा-मात्र न करके, जब मैं स्थिर हो कर बैठ गया तब अकस्मात् जो चीज़ मेरी नज़र में पड़ गई उसे मैं कभी आज तक नहीं भूला।

यह जैसे पहले-पहल आज ही मुझे सूझ पड़ा कि रात्रि का भी एक अलग रूप है; वह पृथ्वी के पेड़-पत्तों, पहाड़, जङ्गल, जल-मिट्टी आदि सभी दृश्यमान वस्तुओं से अलग करके विशेषरूप से देखा जा सकता है। मैंने देखा, अनन्त नील आकाश के नीचे पृथ्वी-मण्डल भर के विस्तृत आसन पर बैठी हुई गंभीर रात्रि आँखें मूँदे ध्यान लगाये है, और यह सचराचर विश्व चुपचाप साँस रोके अत्यन्त सावधानी से स्तब्ध होकर इस अटल शान्ति की रक्षा कर रहा है।

एकाएक आँखों के सामने जैसे सौन्दर्य की लहर खेल गई। जान पड़ा, किस मिथ्यावादी ने यह प्रचारित कर दिया है कि प्रकाश ही रूप है, अन्धकार के रूप नहीं है? इतने बड़े भ्रम या धोखे को मनुष्य ने कैसे चुपचाप मान लिया? यह आकाश, वायु-मण्डल, स्वर्गलोक और मनुष्य-लोक को व्याप्त करके दृष्टि के भीतर और बाहर अन्धकार की बढ़िया-सी बही जा रही है! वाह-वाह! ऐसा सुन्दर रूप का झरना और कब मैंने देखा है! इस ब्रह्मांड में जो जितना गहरा है, जितना अचिन्त्य है, जितना सीमाहीन है, वह तो उतना ही अन्धकार है। अथाह सागर स्याही के समान काला है; दुर्गम गहन वन भयानक अन्धकारमय है। सब लोकों का आश्रय, प्रकाश का प्रकाश, गति की गति, जीवन का जीवन, सकल सौन्दर्य का प्राण-पुरुष भी मनुष्य की दृष्टि में बना अन्धकार ही है! किन्तु वह क्या रूप के अभाव से अन्धकार है? जिसे हम समझते नहीं, जानते नहीं, जिसके भीतर प्रवेश का मार्ग नहीं देख पाते, वह उतना ही हमारे लिए अन्धकारमय है! इसी से मृत्यु मनुष्य की दृष्टि में इतनी काली है इसी से उसका परलोक का मार्ग ऐसे दुस्तर अन्धकार में डूबा हुआ है। इसी से राधा के दोनों नेत्रों में भरे हुए जिस रूप ने प्रेम की बाढ़ से सारे जगत् को प्लावित कर दिया वह भी घनश्याम है!

कभी मैंने ये सब बातें सोची-विचारी न थीं, कभी इस मार्ग से चला न था। तो भी, नहीं जानता, किस तरह इस भयपूर्ण महाश्मशान के एक छोर में बैठ कर, अपने इस निरुपाय निःसंग अकेलेपन को नाघ कर, आज हृदय भर मेरी दृष्टि में एक अकारण रूप का आनन्द लहराने लगा। अकस्मात् जान पड़ा, काले में इतने रूप के अस्तित्व का तो किसी दिन मैंने अनुभव नहीं किया था।

तो शायद मृत्यु भी काली होने के कारण कुत्सित नहीं है? एक दिन जब वह मुझे दिखाई पड़ेगी तब शायद उसके ऐसे ही अक्षय सुन्दर रूप से मेरी दोनों आँखें ठण्डी और तृप्त हो जायँगी। और, वह मृत्यु की भेंट का दिन आज ही आ गया हो तो हे मेरे काले! हे मेरे आगे चलनेवाली पैरों की चाप! हे मेरे सब दुःख, भय और व्यथा को हरनेवाले अनन्त सुन्दर! तुम अपने अनादि अन्धकार से सब अङ्ग परिपूर्ण करके मेरी इन दोनों आँखों की दृष्टि के आगे प्रत्यक्ष हो जाओ, और मैं तुम्हारे इस अन्धतमसावृत निर्जन मृत्यु-मन्दिर के द्वार पर निर्भय भाव से तुम्हारा स्वागत करके—वरण करके—महान् आनन्द के साथ तुम्हारा अनुसरण करूँ।

सहसा जान पड़ा, ठीक तो है! उसके उस मौन आह्वान की उपेक्षा करके अत्यन्त हीन, बस्ती के बाहर रहनेवाले अस्पृश्य की तरह, यहाँ बाहर किसलिए बैठा हूँ? एक-दम भीतर, बीच में जाकर क्यों न बैठूँ!

उतरकर ठीक मध्य-स्थल में जाकर जमकर बैठ गया। कितनी देर तक उस जगह इस तरह बैठा रहा, इसको उस समय कुछ होश न था। होश होने पर देखा, अब वैसा गहरा अंधकार नहीं है। आकाश का एक सिरा जैसे साफ़-स्वच्छ हो गया है और उसी के पास शुक्र का तारा दमक रहा है।

धीमी आवाज़ से बातचीत होने का शब्द सुन पड़ा। ध्यान देकर देखा, दूर पर, सेमर में पेड़ों की आड़ में, बाँध के ऊपर से जैसे कुछ लोग जा रहे हैं। उनके आस-पास लटकती हुई जा रहीं दो-एक लालटेनों का उजियाला भी नज़र पड़ रहा है।

फिर बाँध के ऊपर उसी प्रकाश में मैंने देखा, दो बैलगाड़ियों के आगे-पीछे कई आदमी इसी ओर आगे बढ़ते चले आ रहे हैं! समझ गया, कुछ लोग इस रास्ते से स्टेशन जा रहे हैं।

मस्तिष्क में सुबुद्धि आ गई कि रास्ता छोड़ कर मेरे दूर हट जाने की आवश्यकता है। कारण, आनेवालों का दल चाहे जितना साहसी और बुद्धिमान् क्यों न हो, एकाएक अँधेरी रात में ऐसी जगह पर अकेले भूत की तरह खड़े मुझे देखकर वे और चाहे कुछ न करें, लेकिन शोर-गुल ज़रूर मचा देंगे, इसमें शक नहीं।

लौट आकर फिर पहले की जगह खड़ा हुआ। थोड़ी ही देर बाद सिर्की के पाल से छाई हुई दो बैलगाड़ियाँ और उनकी चौकसी करनेवाले ५-६ आदमी सामने आकर उपस्थित हो गये। एक बार जान पड़ा, इनमें से आगे चलनेवाले दोनों आदमी मेरी ओर देखकर पल भर के लिए ठिठक गये और बहुत धीमे स्वर में न जाने क्या आपस में बात-चीत करके आगे बढ़ गये।

देखते ही देखते सारा दल बाँध के किनारे एक बहु-विस्तृत पेड़ की आड़ में अदृश्य हो गया। रात अब अधिक नहीं है, यह जानकर मैं लौटने का उपक्रम कर ही रहा था कि इतने में उसी पेड़ की आड़ से ऊँचे स्वर से किसी ने पुकारा—बाबूजी! श्रीकान्त बाबू!

मैंने उत्तर दिया—कौन है, रतन?

रतन ने कहा—जी हाँ, बाबू साहब, मैं हूँ। ज़रा आगे बढ़ आइए।

तेज़ी के साथ बाँध के ऊपर चढ़ कर मैंने पुकारा—रतन! तुम लोग क्या घर जा रहे हो?

रतन ने उत्तर दिया—हाँ बाबूजी, घर जा रहा हूँ। माजी भी गाड़ी में है।

निकट पहुँचते ही पियारी ने पर्दे के भीतर से सिर निकाल कर कहा—मैंने दरबान के मुँह से ख़बर पाते ही समझ लिया था कि तुम्हारे सिवा और कोई नहीं है। आओ, गाड़ी पर सवार हो लो; कुछ कहना है।

मैंने और पास आकर पूछा—क्या कहना है?

पियारी ने कहा—चढ़ आओ, कहती हूँ।

मैंने कहा—न, मैं गाड़ी पर न आ सकूँगा, समय नहीं है। सवेरा होने के पहले ही मुझे अपने तम्बू में पहुँचना है।

पियारी ने हाथ बढ़ाकर चट से मेरा दाहना हाथ भरपूर पकड़ लिया, और कड़ी ज़िद के स्वर में कहा—नौकर-चाकरों के सामने ऐसी बातें न करो, जिसमें बद-नामी हो। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ—चले आओ।

उसकी अस्वाभाविक उत्तेजना देखकर मैं जैसे हतबुद्धि होकर ही गाड़ी पर सवार हो गया। पियारी ने गाड़ी चलाने की आज्ञा देकर कहा—आज फिर यहाँ तुम क्यों आये?

मैंने सत्य बात ही कही। कहा—जानता नहीं।

पियारी अभी तक मेरा हाथ पकड़े थी। बोली—जानते नहीं? अच्छा, अच्छी बात है। लेकिन लुक-छिप कर क्यों आये थे?

मैंने कहा—मेरे यहाँ आने की बात कोई नहीं जानता, यह ठीक है; लेकिन मैं छिपकर कभी नहीं आया।

पियारी ने कहा—झूठ कहते हो।

मैंने कहा—हर्गिज़ नहीं।

पियारी—इसके माने?

मैं—माने अगर ख़ुलासा करके कहूँ तो तुम विश्वास करोगी? मैं छिपाकर भी नहीं आया, और मेरी यहाँ आने की इच्छा भी नहीं थी।

पियारी ने व्यंग्य के स्वर में कहा—तो यह कहो कि तंबू से भूत तुम्हें उड़ा लाये। क्यों, यही शायद तुम कहना चाहते हो?

मैं—नहीं, यह मैं नहीं कहना चाहता। उड़ाकर कोई मुझे नहीं लाया, मैं अपने पैरों ही से चल कर

आया हूँ, यह ठीक है; किन्तु क्यों आया, कब आया, यह मैं नहीं कह सकता।

पियारी चुप हो रही।

मैंने कहा—राजलक्ष्मी, नहीं जानता, तुम विश्वास कर सकोगी कि नहीं, किन्तु वास्तव में जो हुआ, वह आश्चर्य की बात है।

इतना कहकर मैंने आदि से अन्त तक सब हाल उसे सुना दिया।

सुनते-सुनते मेरे हाथ के भीतर उसका दाहना हाथ बार-बार काप उठने लगा। किन्तु उसने मुख से एक बात भी नहीं कही। पर्दा उठाया हुआ था, पीछे घूम कर देखा, आकाश साफ़ हो गया था। मैंने कहा—अब मैं जाता हूँ।

पियारी ने स्वप्नाविष्ट की तरह कहा—न।

मैंने कहा—न कैसे? इस तरह तुम्हारे साथ मेरे चले जाने का अर्थ क्या होगा, जानती हो?

"जानती हूँ—सब जानती हूँ। लेकिन ये लोग तो कुछ तुम्हारे अभिभावक नहीं हैं, जो तुम्हें मान के लिए जान देनी होगी?"—यह कहकर पियारी ने मेरा हाथ छोड़कर पैर पकड़ लिये, और रुँधे हुए स्वर में कह उठी—कान्तदादा, वहाँ लौटकर जाने से तुम्हारा जीवन नहीं बचेगा। तुम मेरे साथ न जाओ, लेकिन मैं तुम्हें वहाँ भी लौट कर जाने नहीं दूँगी। तुम्हारे लिए टिकट ख़रीदे देती हूँ, तुम घर चले जाओ, या जहा तुम्हारी ख़ुशी हो, वहाँ जाओ; लेकिन वहाँ अब एक घड़ी भी न ठहरो।

मैंने कहा—मेरे कपड़े-लत्ते जो वहीं हैं!

पिआरी ने कहा—पड़े रहने दो। उनका जी चाहेगा तो भेज देंगे तुम्हारे पास, नहीं तो वहीं रह जायँगे। उनके दाम कुछ बहुत अधिक नहीं हैं।

मैंने कहा—उनके दाम अधिक नहीं है, यह सच है; लेकिन जो झूठी बदनामी फैल जायगी उसका मूल्य भी तो कुछ कम नहीं है!

पियारी मेरे पैर छोड़ कर चुप होकर बैठ रही।

इसी समय गाड़ी मोड़ में फिरी और पीछे का हिस्सा मेरे सामने आ पड़ा। एकाएक जान पड़ा, सामने के पूर्व-आकाश के साथ इस पतित नारी के सुख का कुछ निगूढ़ सादृश्य है। दोनों के भीतर से जैसे एक विराट् अग्नि पिंड अंधकार को फोड़कर निकला आ रहा है। उसी का यह आभास दिखाई दे रहा है।

मैंने कहा—तुम चुप क्यों रह गईं?

पियारी ने कुछ मलिन हँसी हँसकर कहा—जानते हो कान्त दादा, जिस क़लम से जीवन भर केवल काग़ज़ात लिखे हैं, उसी क़लम से आज दानपत्र लिखने के लिए हाथ नहीं चलता। जाओगे? अच्छा, जाओ। किन्तु यह वचन दिये जाओ कि आज बारह बजे के पहले ही वहाँ से चल दोगे।

मैंने कहा—अच्छा।

पियारी ने कहा—किसी का कोई अनुरोध सुनकर आज वहाँ रात बिताओगे?

मैंने कहा—नहीं बिताऊँगा।

पियारी ने दाहने हाथ की उँगली से अँगूठी उतारकर मेरे पैरों पर रख दी और गले में आंचल डाल कर मुझे प्रणाम किया। फिर मेरे पैरों की धूल मस्तक से लगा कर वह अँगूठी मेरी जेब में डाल दी।

फिर कहा—अच्छा जाओ। जान पड़ता है, डेढ़ कोस के लगभग राह तुम्हें अधिक चलनी पड़ेगी।

मैं बैलगाड़ी से उतर पड़ा। उस समय सवेरा हो गया था। पियारी ने अनुनय करके पुनः कहा—मेरी और एक बात तुम्हें माननी होगी। घर जाकर एक चिट्ठी लिख देना।

मैं स्वीकार करके वहाँ से चल दिया। एक बार भी पीछे फिर कर नहीं देखा कि यह दल अभी वहाँ खड़ा है या आगे बढ़ गया। किन्तु बहुत दूर तक मैं यही अनुभव करता रहा कि दो नेत्रों की सजल करुण-दृष्टि मेरी पीठ के ऊपर बार-बार पछाड़ें खा रही है।

अड्डे पर पहुँचने में लगभग आठ बज गये। रास्ते के किनारे पियारी के उजड़े हुए तम्बू की छिंकी-बिखरी हुई चीज़ें सामने पड़ते ही एक निष्फल क्षोभ जैसे मेरे हृदय के भीतर हाहाकार कर उठा। मुँह फेरकर तेज़ी से अपने तम्बू के भीतर घुस गया।

पुरुषोत्तम ने पूछा—आप बहुत सवेरे ही आज टहलने चले गये थे?

मैं हाँ या न कुछ न कह कर अपने बिस्तर पर आँखें मूँदकर लेट रहा। [क्रमशः

मानिनी

१—तितली

(श्रीयुत दामोदरसहायसिंह, कविकिङ्कर)

(१)

उत्तर के आई परियों साथ
स्वर्ग के घर से प्यारी भरी।
पहन सारियाँ अनोखी साज
लाल बैगनी पीली हरी॥

(२)

कहाँ किस पर न्योछावर हुई
चमकती जाती हो हे बाल ?
हवा भीनी भीनी बह रही
लिये मानो पूजा की थाल॥

(३)

सभी के मन को लेती मोल
थिरकती सुन्दरता का सार।
कहो किस बड़भागी के पास
किया है यह अद्भुत अभिसार ?

(४)

छबीली शर्मीली सी भली
रसीली अलबेली उन्मनी।
सभी की आँखें बरबस छीन
बनी है शोभा की मलकिनी॥

(५)

नहीं हैं ऐसी लोकों बीच
कहीं कोई नायिका ललाम।
करे जो तुम से दो दो बात
रूप पर गरबीली गुणधाम॥

(६)

अछूती कोरी कारीगरी
नहीं किसका मन लेती लूट ?
भरी है इसमें स्वर्गीयता
मनोरमता भावुकता कूट॥

(७)

अगर कोई भी है इस योग्य
त्रिलोकी में शुभगुण की खान।
तुम्हारा आगत स्वागत करे—
कुसुम ही केवल एक सुजान॥

(८)

विधाता नहीं बनाते तुम्हें
कहो तब हे तितली सविलास।
रसिकवर फूलों की किस भाँति
बुझाती कौन प्रेम-रस-प्यास ?

(९)

कुसुम के कानों में चुपचाप
कहो क्या कहती अमृत बोल ?
कौन सा वह सन्देश महान्
खोलती भेदों को जी खोल ?

२—मोती का मूल्य

"मा !" आधी रात को एकाएक जागकर बच्चा चिल्ला उठा—"मा ! मा !!"

मा की आँखें उचट गईं। दिन-रात जागने के बाद—कई दिनों पर—आज, बरबस उसकी आँखें लग गई थीं। बच्चे की धीमी आवाज़ सुनतेही—घबराकर वह उठ बैठी। बच्चे को कलेजे से लगाकर बोली—"बेटा !"

"उफ़—" बच्चे के मुँह से एक हलकी-सी साँस निकल गई। उसने धीरे से करवट बदली।

"बेटा !" मा ने फिर पुकारा—"बेटा ! लाल !!

"मा !" बच्चे ने काँपती आवाज़ में उत्तर दिया—"बड़ा डर लगता है मा !"

"डर ?" दिलासा देती हुई मा ने कहा—"डर ? डर किसका बेटा ?"

"मौत का।" बच्चे की आवाज़ और भी धीमी हो गई। वह कहने लगा—"मौत से बड़ा डर लगता है, मा। सबको ऐसेही लगता होगा ? बाबूजी को भी लगा होगा ?"

अतीत की दुख देनेवाली स्मृति ने मा का कलेजा बींध दिया। उसकी आँखें छलछला आईं; हृदय सौ-सौ टुकड़े हो गया।

"मा !" बच्चा फिर बोल उठा—"मैं मर जाऊँगा, मा ?"

उसकी आवाज़ में वेदना का विषम अनुभव था, निराशा की अनुभूति !

"कौन कहता है बेटा ? तुम जल्दी अच्छे हो जाओगे। कोई ऐसी असगुन की बात मुँह से निकालता है ?" अपने हृदय के उच्छ्वसित वेग को सँभालते हुए मा एक साँस में सारी बातें कह गई, पर स्वयं उसका हृदय भी इन बातों को स्वीकार न कर सका था।

"रो मत मा—" स्वाभाविक सरलता से, आँसू से भरी मा की आँखों पर अपना दुर्बल हाथ रखते हुए बच्चा कहने लगा—रो मत मा ! मुझे डर लगता है तो क्या हुआ ? मैं बच्चा जो हूँ !

बच्चा थक गया। दो घूँट जल पीकर वह फिर कहने लगा—किन्तु, यह क्या मा ! ये काली-काली डरावनी सूरतें कैसी दिखाई देती हैं ? ओह ! इनसे तो बड़ा डर लगता है मा ! इनकी आँखें लाल हैं, शरीर पर काँटे-से रोएँ खड़े हैं। यही क्या मृत्यु है, मा ?

बेचैनी से बच्चा करवटें बदलने लगा, और विवश नयनों से मा उसकी ओर देखती रही।

मृत्यु के सम्मुख किसी का वश नहीं चलता। जीवन बेच कर मनुष्य मृत्यु मोल लेता है, क्योंकि मृत्यु ही जीवन का मूल्य है।

× × ×

उस समय रात्रि का अंधकार दूर हो चुका था। प्रकाश की पीली किरणों से भूमण्डल जगमगा उठा !

बच्चा अपनी अन्तिम साँस गिन रहा था। मा के हृदय का बाँध टूट चुका था। उसकी आँखों से आँसुओं की अजस्र धारायें बह चलीं।

वे मा की आँखों के मोती थे, किन्तु विश्व में दुखिया के उन मोतियों का मूल्य ही क्या था ?

मुक्त

३—अभिलाषा

कुटिया एक बनी हो मेरी,
सूने निर्जन वन में।
प्रेम-देव का ध्यान करूँ मैं,
नित निज हृदय-भुवन में॥

ले प्रेमी को गोद मोद से,
रहूँ देखता मुख को।
इस सुख के आगे ठुकरा दूँ,
जग के सारे सुख को॥

स्नेह-सुसीकर से चुम्बन को,
अधरों पर सरसाऊँ।
मद-मय लोचन-मधु पी-पीकर,
क्षण भर को सो जाऊँ॥

अर्ध निमीलित नयन युग्म हों,
रहे हृदय में स्नेह स्फूर्ति ।
मूर्ति सदृश मैं भी हो जाऊँ,
लखते लखते मंजुल मूर्ति ॥

पद्मकान्त मालवीय

४—हिन्दी में कोष्ठक की भूलें

हिन्दी-रचना के समानाधिकरण वाक्यों मे कोष्ठक ( ) का उपयोग गत पच्चीस वर्षों से पाया जाता है। इस समय के पूर्व-लेखों में कोष्ठक का प्रचार न था। हमारी भाषा में यह नवीनता अँगरेज़ी के संसर्ग से आई है। आरम्भ में कुछ लेखकों ने इस प्रकार की रचना का उपयोग अँगरेज़ी के अनुकरण पर किया था; पर अब तो अँगरेज़ी न जाननेवाले हिन्दी-लेखक भी बेजाने-बूझे इसका उपयोग करने लगे हैं। भाषा-रचना में बहुधा अनुकरण का प्रभाव पाया जाता है; पर यह प्रभाव हिन्दी मे आज-कल इतना बढ़ गया है कि प्रायः सभी लेखक कोष्ठक का अन्धाधुन्ध उपयोग कर रहे है। ऐसी अवस्था मे कोष्ठक के उपयोग के नियमों पर कुछ विचार करना आवश्यक है।

जिस अँगरेज़ी की रचना के अनुकरण पर हिन्दी में कोष्ठक की प्रथा चली है, उसमें हिन्दी की-सी अराजकता नहीं है। अँगरेज़ी व्याकरण का नियम है कि "Parantheses, or curves of parantheses, are used to enclose explanatory matter that is quite independent of the grammatical structure of the sentence" (अर्थात कोष्ठक के भीतर अर्थ समझानेवाला विषय आता है जो वाक्य के अन्वय से स्वतन्त्र रहता है)। अब अँगरेज़ी का एक उदाहरण लीजिए—

"John Wilkes was (I state a matter of common knowledge) a man who was willing to sacrifice any principle for the sake of popularity.'

अब इसी के साथ हिन्दी के एक वाक्य का मिलान कीजिए—

"धर्मात्मा पुरुष सत्यव्रत (यह उनका नाम था) को जो लोग जानते थे उन्होंने तो उनके कहने से मान लिया"। इस वाक्य मे अँगरेज़ी-रचना का अनुकरण तो किया गया है, पर इस बात का ध्यान नहीं रक्खा गया कि इससे मुख्य वाक्य के अन्वय मे बाधा आती है। बात यह है कि अँगरेज़ी जाननेवाले जिस स्वतन्त्रता से अँगरेज़ी मे समानाधिकरण वाक्यों का उपयोग करते है उसी स्वतन्त्रता को वे हिन्दी मे चलाना चाहते हैं; और उनके साथ उनकी देखा-देखी करने में केवल हिन्दी जाननेवाले भी गढ़े में गिरते है। ऊपर के वाक्य में (जो एक प्रतिष्ठित कहलानेवाले मासिक-पत्र से लिया गया गया है) लेखक ने इस बात का विचार नहीं किया कि कोष्ठकवाला वाक्य शब्द और विभक्ति के बीच मे आ गया है। अँगरेज़ी मे भी ऐसी वाक्य-रचना नहीं होती। कोई अँगरेज़ी जाननेवाला (या बोलनेवाला) ऐसा वाक्य कभी न लिखेगा कि—

"I went into (it is a fact) the room.

हिन्दी मे समानाधिकरण शब्दों और वाक्यों के विषय में यह नियम है कि वे मूल शब्द अथवा वाक्य की ही अवस्था मे हों। नीचे कोष्ठक के शुद्ध उपयोग के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

(१) सेनापति युद्ध के बाद (**सन् १६५८ में**) लौट आया।

(२) एक बड़े पेड़ की आड़ मे (**हमारे अनुमान से**) एक छिपकली बैठी थी।

(३) उसको अरई (**नोकदार डंडा**) मारने से भी कुछ लाभ नहीं होता।

(४) उन (**ताम्रपत्रों**) की मुहरो मे सिंह का स्थान गरुड़ ने ले लिया है।

(५) आत्मा के विषय में भेद मानना (**जैसे मनुष्य को नीच समझना**) आश्चर्य की बात है।

(६) उसने प्रत्यक्ष और अनुमान को श्रुति और स्मृति के अर्थ में लिया है (स्वभावतः हम

माने लेते हैं कि श्रीशङ्कर ने इनका ठीक ठीक अर्थ किया है)।

अब कोष्ठक के दूषित योग के कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

(१) हमने जितने उदाहरण दिये हैं (**वे ऐसे हैं जो**) सर्व-साधारण की समझ में आ सकें।

(२) लड़के का ससुर राब (गुड़ **का** शीरा) और रुई का व्यापार करता था।

(३) पहले कृति (**मौलिक रचनाओं से अभिप्राय है**) का काल आता है।

(४) प्रयाग की श्रीमती कमला नेहरू (**जिनके घर में अपने पति के साथ यह कुछ मास रही थीं**) से इनकी खासी मित्रता थी।

(५) जब राजकुमार सिद्धार्थ (गौतम बुद्ध का पहला नाम) २६ वर्ष के हुए।

(६) गत वर्ष का (सन् १९१५) हिसाब।

ऊपर के वाक्य इस प्रकार शुद्ध रूप में लिखे जायँगे—

(१) हमने जो उदाहरण दिये हैं वे ऐसे हैं जो सर्व-साधारण की समझ में आ सकें (कोष्ठक न चाहिए।)

(२) लड़के का ससुर राब (गुड़ के शीरे) और रुई का व्यापार करता था। (कोष्ठक के भीतर 'का' के बदले 'के' चाहिए।)

(३) पहले कृति (मौलिक रचना) का काल आता है। (कोष्ठक के भीतर 'कृति' का समानाधिकरण शब्द आवश्यक है।)

(४) प्रयाग की श्रीमती कमला नेहरू से (जिनके घर में अपने पति के साथ यह कुछ मास रही थीं) इनकी खासी मित्रता थी। ('से' विभक्ति कोष्ठक के पहले आनी चाहिए।)

(५) जब राजकुमार सिद्धार्थ (यह गौतम बुद्ध का पहला नाम है) २६ वर्ष के हुए। (यहाँ 'सिद्धार्थ' का समानाधिकरण शब्द देने के बदले एक वाक्य में अतिरिक्त आशय प्रकट करना चाहिए।)

(६) गत वर्ष (सन् १९१४) का हिसाब। ('का' विभक्ति कोष्ठक के बाद आनी चाहिए, क्योंकि 'सन् १९१४' वर्ष का समानाधिकरण है)।

ऊपर के संशोधन से पाठकों के ध्यान में कोष्ठक-सम्बन्धी रचना के नियम आगये होंगे। तथापि उन्हें यहाँ संक्षेप में लिख देना अनावश्यक न होगा।

(१) जब कोष्ठक के भीतर आया हुआ शब्द या वाक्यांश पूर्ववर्त्ती शब्द का समानाधिकरण होता है, तब विभक्ति कोष्ठक के पश्चात् आती है; जैसे, "उनके विचार में दोनों (छूत-अछूतों) का ही मङ्गल है"। "हमने तिकर्वापुर (ज़िला कानपुर) में इसका पता चलाया"।

(२) जब कोष्ठक के भीतर का वाक्य या वाक्यांश अतिरिक्त आशय के लिए आता है, तब विभक्ति कोष्ठक के पूर्व आती है; जैसे, "धर्मात्मा पुरुष सत्यव्रत को (यह उनका नाम था) जो लोग जानते थे"। "किसी स्टेट में (घटना सत्य होने के कारण स्टेट का नाम नहीं लिया गया) एक बंगाली सज्जन नौकर थे"। गत वर्ष आश्रम में ३०-४० लोगों को (मलेरिया की फ़सल में) ज्वर आया।"

कोष्ठक के उपयोग में रचना-सम्बन्धी और भी कई बातों का विचार रखना पड़ता है जिनके विषय में स्वतन्त्र रूप से (अलग लेख) लिखा जा सकता है। ऊपर जो विवेचन किया गया है उसका उद्देश्य यही है कि हिन्दी के लेखक ऐसी शिथिल रचना न करें जिससे हिन्दी-भाषा को दूसरे लोग हीन समझें। हर एक विषय में व्यवस्था की आवश्यकता होती है, और भाषा में स्पष्टता के लिए इसकी और भी आवश्यकता है। खेद है कि हमारे अधिकांश हिन्दी-भाषी भाई समझते हैं कि "अर्थेरि तु प्रयोजनं न तु शब्दरि"।

कोष्ठक के दुरुपयोग का एक दूषित उदाहरण यह है कि जिसमें मूल वाक्य तो एक पंक्ति का और अतिरिक्त वाक्य (कोष्ठक में) दस पंक्तियों का रहता है; जैसे,

"जब आनुवंशिक संस्कारों से पवित्रता उत्पन्न हो गई हो, तब जाकर दिल की कांपती हुई सुई ध्रुव की ओर होकर रह सकती है। (कर्म, गुण और स्वभाव भी आवश्यक है; पर लोग भूल जाते हैं कि सिर्फ़ ख़ानदानी नहीं, बल्कि मुल्की, मज़हबी इत्यादि प्रत्येक प्रकार के संस्कारों अथवा कर्म और गुण से स्वभाव बनता है। कर्म, गुण, स्वभाव केवल वैयक्तिक बातें नहीं हैं, चाहे उनका बहुत बड़ा अंश वैयक्तिक ही क्यों न हो। अब पश्चिमी जगत् भी उत्पत्ति एवं वंश-परम्परा का प्रभाव मानने लगा है")। कामताप्रसाद गुरु

५—चितानल

(१)

हे चितानल ! देख तेरा रूप क्या विकराल है,
अभय निर्दय हृदय से जलती निठुर तव ज्वाल है।
सृष्टि की सुन्दर मनोरम वाटिका जो है खिली,
सतत तेरे रोष से ही धूलि में जाती मिली॥

(२)

सुमन चुन चुन के सभी ले जा रहा है तू कहाँ,
कौन-सा वह स्थान है एकत्र करता तू जहाँ।
गूँथता किसके गले के हार को उपहार में,
दे रहा किस मूर्ति को सत्कार से उपचार में॥

(३)

रंग-रूप स्वरूप पर कुछ भी न है तुझको दया,
रंक भूप अनूप अगणित तू यहाँ से ले गया।
गूजता आकाश फटती मेदिनी है आह से,
प्रबल सरिता बह रही अनिरुद्ध अश्रु-प्रवाह से॥

(४)

धूम-पथ से जा गगन में बन रहे नक्षत्र वे,
या किसी स्वर्गीय गृह में हो रहे एकत्र वे।
वृत्त तक मिलता नहीं उनकी बिदाई का कभी,
सत्य वारिज के मधुप क्या हो गये हैं वे सभी॥

(५)

विहँसता जो आज है भव के विभव के मोद में,
कल वही सोता अकेला निरख तेरी गोद में।
जा रहा है छोड़ के प्रिय-वृन्द नाता नेह को,
कर रहा तुझको समर्पण विवश अपनी देह को॥

(६)

गोद में ले अतिथि, तू जाता वियोगी हृदय में,
निठुर हो जीवित जलाता है उसे हर समय में।
आज यद्यपि रो रहे हम विरह से दृग मीच के,
ले चलेगा तू हमें भी एक दिन कर खींच के॥

(७)

योगियों के योग-बल से है न तू रुकता कहीं,
वीरवर के धनुष-कर से भी कभी झुकता नहीं।
दानियों का दान भी तेरे निकट निष्प्रभ हुआ,
मानियों को मान पाना भी अमित दुर्लभ हुआ॥

(८)

प्रेमियों के प्रेम-तरु पर वज्र-सा तू छूटता,
वैरियों का वैर-बंधन भी तुझी से टूटता।
दग्ध-हृदया हा अनेकों कर रही सन्ताप हैं,
रो रहीं सुख खो रहीं करती विलाप प्रलाप हैं॥

(९)

भक्त-कवि-कोविद अनेकों भूरि भावों से भरे,
एक पीछे एक तेरी गोद में लाकर धरे।
दीप-माला सृष्टि की निर्वाण होती जा रही,
रो रही म्रियमाण हो प्रिय-प्राण के दुख से भरी॥

(१४)

कृष्ण से योगीन्द्र योद्धा भीष्म द्रोणाचार्य से,
राम अर्जुन कर्ण से नररत्न के कृत-कार्य से।
कर सका विचलित नहीं तू कुलिश-सा अपना हिया;
दीख है उत्साहपूर्वक रुधिर का प्यासा दिया॥

(११)

अकथ थीं सीता अहिल्या और सावित्री सती,
थीं हुईं जिनसे सुशोभित भारतीया वसुमती।
भस्म सब तूने किया हा ! चिह्न तक मिलते नहीं,
क्रूरता की भी इयत्ता क्या अधिक होगी कहीं॥

(१२)

कुसुम की जो सेज में थे चरण रखते सभय हो,
सो रहे तृण-काष्ठ-शय्या में सदा को अभय हो।
पा रहे हैं नींद तेरी ही हिलोरों से वहां,
नयन के तारे दुलारे अब मिलेंगे वे कहां॥

(१३)

खेलते कैसी जगत् में नित्य लीला तुम हरे,
सुन रहे हो क्या हमारे ये वचन दुख से भरे।
शक्ति-संयुत सृष्टि है जब क्यों रचा संहार को,
क्या मिटाना है तुम्हें इस भांति भू के भार को॥

(१४)

कह रहे निःस्वार्थ तुमको स्वार्थ से पर हो सने,
कर हमें यों नाश-मय अविनाश तुम अपने बने।
यह चितानल भी चलेगा नाशमय इस सृष्टि से,
बुझ चलेगी ज्वाल इसकी प्रलय की जल-वृष्टि से॥

(१५)

है प्रभो अनभिज्ञ हम तेरी निराली चाल से,
नाचते रवि सोम तारक व्योम तेरी ताल से।
जगत-जीवन अन्त में अनिवार्य है जब रोहिता,
है विनय हमको मिले प्रह्लाद ध्रुव की-सी चिता॥

हर्षदेव ओली

६—ग्राम्य गीत

रमैया

हमारे सुयोग्य मित्र पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ग्राम्य गीतों का संकलन कर रहे हैं। चालीस बरस हुए मिस्टर नेस्फ़ील्ड ने, जो पहले शिक्षा-विभाग के इन्सपेक्टर थे और पीछे डायरेक्टर हो गये थे, बहुत से ग्राम्य गीत इकट्ठा किये थे। उनमें से एक विशाल ग्रन्थ "रमैया" था, जो लखनऊ जेल के एक क़ैदी चैत चमार ने सुनाया था। यह रमैया बैसवाड़ी बोली में है और इसमें रामायण की कथा है। इसके दो नमूने सरस्वती के पाठकों को भेंट किये जाते हैं। पहले में सीताहरण के पीछे जब श्रीहनूमान्‌जी लंका गये तब एक मालिन की नाक काटने की घटना है। दूसरे में लक्ष्मणजी का घायल होना, श्रीहनूमान्‌जी का संजीवनी न पाकर पर्वत ही को उठा लाना, सुषेण (हुसेनी) वैद्य का बुलाया जाना और मेघनाद का मारा जाना वर्णन किया गया है।

(१)

जोड़ी हरि लायो रामचन्द की
लङ्कापुरी मा आज,
ठाकुर अवधपुरी के।
ढुँढ़िया एरिगैं कटक दलन मा,
जोड़ी नहीं भगवान,
ठाकुर अवधपुरी के।
बड़े बड़े जोधा कटक दलन मा
जोड़ी नहीं भगवान,
ठाकुर अवधपुरी के।
हुँआ ते कोप महावीरजी.
मैं कौन करौं परकार,
ठाकुर अवधपुरी के।
मोरी रखवारी है दुनिया की
जोड़ी नहीं भगवान,
ठाकुर अवधपुरी के।
कोई दुसरिहा उपजा धरती पर
जोड़ी लैगा भगवान,
ठाकुर अवधपुरी के।
चाद सुरज ऋषि मुनि मुनि ते बूझैं
कोइ न बतावै आज,
ठाकुर अवधपुरी के।
तब मुख ब्वालैं महावीरजी
सुनु धरती मोरे ब्वाल,
ठाकुर अवधपुरी के।
पता बताओ श्रीराम की जोड़ी
हमको देहु बताइ,
ठाकुर अवधपुरी के।
तब मुख ब्वालैं धरती माता
सुनौ, पुत्र, दनु ब्वाल,
वोही रावन जोड़ी हरि लैगा
लंकापुरी मां आज,
ठाकुर अवधपुरी के।

इतनी सुनि के महावीरजी
बिना आगि जरि जांहिं,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
करैं तयारी महावीरजी
कटक दलन मां आज,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
हुँआं ते चलिभे महावीरजी
लंकपुरी का जाहि
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
जाइ के पहुँचे महावीरजी
जहां देबी को अस्थान,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
देबी क दाबि दें महावीरजी
सकत पतालै जाहिं,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
रूप बनावैं महावीरजी
धरि देबी का रूप,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
मालिन चालैं लंकपुरी से
जहां देबी के अस्थान,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
सेवा लगावैं जब देबी के
बोलै मालिन लागि,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
तुम्हरी सेवा बहुत दिन कीन्ही
एक बालक दै देहु,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
इतनी सुनि के महावीरजी
बिना आगि जरि जांहिं,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
इतने दिन देबी की सेवा लागे
इन बालक मांगिन आज,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
आज तो आयन हम लंका का
बालक मांगै बनाय,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
नाक काटि लीन महावीरजी
जी मालिन की आज,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
हुँआ ते भाजै जब वह मालिन
लंकपुरी का जाहि,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।

(२)

हुँआ ते चलिभे महावीरजी
राम दलन का जाहिँ,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
हुआ ते धावै श्रीरामचन्द
पूत अंजनी क्यार,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
मूर सजीवन ना उन पाइन
परबत लाये उठाइ,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
तब मुख ब्वालैं सिरी रामचंद
पूत अंजनी क्यार,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
मूर सजीवन जल्दी ढूँढ़ौ
लछिमन का दै देव,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
तब मुख ब्वाले महावीरजी
सुनौ सिरी भगवान,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
बैद हुसेनी* स्वावैं परबत पर
तिन का लावौ उठाइ,
　　　ठाकुर अवधपुरी के।
जाइ जगावैं महावीरजी
सुनौ बैद दनु ब्वाल.
　　　ठाकुर अवधपुरी के।

---

*रामायण में वैद्य का नाम सुषेण है। हुसेनी पढ़ कर कुछ लोग अनुमान करेंगे कि रावण के दरबार में अरब का एक हकीम था।

सकती बान लाग लछिमन के
देव सजीवन मूर,

ठाकुर अवधपुरी के।

तब मुख ब्वालैं बैद हुसेनी
सुनौ महावीर ब्वाल,

ठाकुर अवधपुरी के।

हम तो बसित हं एहि रावन के
हम ना देव सजीवन मूरि

ठाकुर अवधपुरी के।

जो जबि पैहै गरबी रावन
हमका डारिहै मारि,

ठाकुर अवधपुरी के।

चांद सुरज सब ऋषि मुनि देवता
कैद मां परे बनाइ,

ठाकुर अवधपुरी के।

इतनी सुनि के महावीरजी
बिना आगि जरि जांहिं,

ठाकुर अवधपुरी के।

जल्दी जियाओ तुम लछिमन का
नाहीं तुमका डरिहैं मारि,

ठाकुर अवधपुरी के।

रहंव भरोसे ना रावन के
इहां बैठे अवध के राव,

ठाकुर अवधपुरी के।

इतनी सुनि गा बैद हुसेनी
ढूंढै सजीवन मूरि,

ठाकुर अवधपुरी के।

मूर सजीवन उन लै लीन्हा
देइ लछिमन का प्याय,

ठाकुर अवधपुरी के।

जल्दी जियाइ देइ लछिमन का
बैद हुसेनिया नाम,

ठाकुर अवधपुरी के।

तब मुख ब्वालैं गर[illegible]गरबी रावन
सुन बेटा मोरे ब्वाल[illegible]ल,

ठाकुर अवधपुरी के।

तुम ता जाओ रामद[illegible]मदलन का
तपसी बांधि लाओ [illegible] जाइ,

ठाकुर अवधपुरी के।

इतनी सुनि कै मेघन[illegible]नाद जब
चलत न लागै देर,

ठाकुर अवधपुरी के।

हुआं ते धावैं जर्ती [illegible] लछिमन
सुनु दादा मोरे ब्वाल[illegible]ल,

ठाकुर अवधपुरी के।

कोई आवै हुइ लंका [illegible] ते
हमका देहु बताइ,

ठाकुर अवधपुरी के।

तब मुख ब्वालैं सिरी [illegible] रामचंद
सुनु लछिमन मोरे भा[illegible] भाइ,

ठाकुर अवधपुरी के।

मेघनाद रावन का बेटा [illegible]
जिन छोड़े सकती बान, [illegible]न,

ठाकुर अवधपुरी के।

इतनी सुनि के जर्ती [illegible] लछिमन
बिना आगि जरि जाहिं [illegible]हिं,

ठाकुर अवधपुरी के।

अगिनी बान लछिमन [illegible] छोड़ैं
मेघनाद के लाग,

ठाकुर अवधपुरी के।

भुजा उखान मेघनाद के [illegible] के
गिरे बंगला तीर जाइ, [illegible],

ठाकुर अवधपुरी के।

सीस गिरे हैं रामदलन [illegible] मां
जहं बैठे त्रिलोकीनाथ, [illegible],

ठाकुर अवधपुरी के।

श्रीअवधवासी सीताराम

७—प्रेम-संगीत

नेह-नीर के पथिक पियासे !
सुनते जाओ तान।
राग-हीन वह राग छिड़ेगा ;
होगी दूर थकान।

आहों की आंधी-सी बहती—
नैन-निलय से धार।
विकल हृदय से, हूक उठेगी ;
बन कर राग-मलार।

"बात यही है, इस दुखिया की ;
मेरे प्राणाधार !
हाथ पकड़ कर, लेते जाओ ;
जगती के उस पार।"

आंसुन के सब साज सजाये ;
बंशी, बीन, सितार।
पौष-मास की शरद् चाँदनी ;
गूँज उठी झंकार—

"जीवन-वन के श्रान्त बटोही !
ले जाओ उपहार।
खुली पड़ी, तिमिरावृत कुटिया ;
विश्रृंखल से उद्धार।

निराशा का यह घोर निनाद ;
स्वर का मीठा तार।
करुणा हो या करुण-रागिनी ;
मौन हुआ संसार।

इसी राग की, इसी तान में ;
विलय हो जाने दो।
नाम प्रेम का, अब दुनिया से ;
जल्दी मिट जाने दो।

—कुँवर व्रजेन्द्रसिंह, 'साहित्यालंकार'।

१—कलकत्ते के बाड़े जुआड़खाने हैं ?

आक्टोबर को श्रीयुत श्यामलाल अग्रवाल ने कलकत्ते के बैंक शाल स्ट्रीट के पुलिस-कोर्ट में—चीफ़ प्रेसीडेंसी मजिस्ट्रेट के इजलास में इस आशय की दरख्वास्त दी है कि कलकत्ते के बाड़े जुआड़खाने हैं और सीधे-सादे निर्दोष मनुष्यों के रुपये हड़पकर उन्हें रास्ते का भिखारी बना देते हैं। प्रार्थी ने उन सब बाड़ों के नाम भी दिये हैं। इसके पूर्व पुलिस भी कलकत्ते के कई बाड़ों पर चढ़ाई कर चुकी है, जिनमें से दो तीन बंद हो चुके हैं। अनेक व्यक्तियों को जुर्माना भी हो चुका है। ये बाड़े जूट-पाट, हेशियन और तीसी के हैं। रुई का बाड़ा बंद हो चुका है। चाँदी के भी एक बाड़े का मामला चल रहा है। इन बाड़ों में बारह सौ—तेरह सौ आदमी हैं। इन बाड़ों के प्रति जुआ खेलने (Gambling) का अभियोग बड़ा ज़बर्दस्त है। मामला अदालत के सामने होने से हम उस सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखेंगे।

जो लोग व्यापार नहीं करते हैं और व्यापारिक सिद्धान्तों से अपरिचित हैं, वे अर्थ-शास्त्र के विद्वान् होने पर भी अनेक अवसरों पर व्यावहारिक अर्थ नहीं प्रकट करते हैं। इसके अतिरिक्त साधारण व्यक्ति भी सट्टे को जुआ मान बैठते हैं। हम भी इस सट्टे के एक-दम विरोधी हैं। पर हम उस सट्टे के विरोधी हैं जिससे मनुष्य की उत्पादन-शक्ति नष्ट हो जाती है। सट्टे से मूल्य के निर्धारण और उत्पादन में वृद्धि के अलावा दूसरा कोई काम नहीं लेना चाहिए। पर आज भारतवर्ष की सभी मंडियों में लोग सट्टे और दलाली के सिवा उत्पादनशील व्यवसाय में कम ध्यान देते हैं। कारण, सट्टे और दलाली से अल्पकाल में करोड़पति और लक्षाधिपति बनने की उत्कट अभिलाषा रहती है। इसी से आज बहुत से लोग कहते हैं कि हम पढ़े-लिखे नहीं हैं तो क्या हुआ। हमारे पास रुपये कमाने की ऐसी योग्यता है जिससे गद्दी पर बैठे बैठे तेज़ी-मंदी के फाटके में लाखों रुपये कमा सकते हैं। यह बड़े अभिमान से कहा जाता है कि हम लाखों रुपये की हार-जीत प्रतिदिन सिरहाने पर रखकर सोते हैं। इन फाटकियों की जो अवस्था हमने बड़े बड़े व्यापारिक नगरों में देखी है वह अत्यन्त शोचनीय है। बेचारों को रात में सोना भी कठिन होता है। पलँग पर भी टेलीफ़ोन का रिसीवर रक्खा रहता है। अपनी शारीरिक अ[illegible] और घर के अन्य कामों की कोई भी चिन्ता नहीं रहती है। दिन-रात उसी में लीन रहते हैं। इन बाड़ों में बे-मन का धन कर लेते हैं। एक का धन दूसरे के पास चला जाता है। आज एक लखपति-करोड़पति है तो दूसरा दिवालिया—रास्ते का भिखारी। जो लोग इस फाटके में पड़ जाते हैं उनमें मेहनती व्यवसाय नहीं होता।

बाड़ों में रात को दस-ग्यारह बजे तक सबके सब इस प्रकार शोर-गुल करते हैं, मानो कहीं का हल्ला आ रहा है। अनेक नवयुवकों को तो इस फाटके के कारण

गंगा में प्राण विसर्जन करने पड़ते हैं। इस सट्टे से व्यापारी-समाज का शिल्प और पैदावार की उन्नति की ओर से ध्यान हट गया है। लोग निरुद्यमी और आलसी हो गये हैं। जिनके पास लाखों और करोड़ों रुपये हैं वे भी देश के व्यवसाय को लाभ नहीं पहुँचाते। उनसे तो एक किसान ही अच्छा है। बड़ी ही करुणाजनक अवस्था है! व्यापारी-समाज के जो युवक और अनुभवी वृद्ध पुरुष बड़े बड़े उद्योग और व्यवसाय के संचालक होते वे आज चौपड़ी लिये बाड़ों में मारे मारे फिरते हैं। स्वाभिमान और राष्ट्र-निर्माण करनेवाले शिल्प की ओर ज़रा भी ध्यान नहीं रहता। जो इस काम में गये हैं उन्हें अन्त में पछताना पड़ा है। समाचार-पत्रों के पढ़नेवाले पाठक जानते हैं कि एक बार इंदौर के दानवीर सेठ सर हुकमचंदजी ने सर्वसाधारण में यह प्रकट किया था कि आगे से वे सट्टा नहीं करेंगे। सट्टे के कारण वे तङ्ग आ गये। आज व्यापारी-समाज की सभी सामाजिक संस्थायें इस सट्टे को बुरा बताती हैं, उसके लिए प्रस्ताव करती हैं। पर हमारे देखने में आया है कि उनके सञ्चालक ही फाटकिये होते हैं। इस फाटके से सामाजिक पतन भी लोगों का हो रहा है। बाबू घनश्यामदासजी बिड़ला ने योरप से लौटकर व्यापारी-समाज के नवयुवकों से कहा है कि वे उद्योग की ओर लगें और अपने पार्टियों का योरप के ढंग पर सुधार करें। पर कौन उस निवेदन को सुनेगा? एक बाड़े के बंद हो जाने पर इधर हेशियन और पाट के कई बाड़े खुले हैं। उन बाड़ों के खोलने में किसी न किसी बड़े आदमी का हाथ है। सर्वसाधारण से यह भी कहा जाता है कि अमुक बाड़े में अमुक गांठों तक के सौदे हों ऐसा नियम है और उसमें उतनी गांठों की डिलेवरी होगी। पर यह सब अपनी रक्षा के लिए है। डिलेवरी की बात कोसों दूर है। आज फाटकिये ये कहते सुने जाते हैं कि हमारे फाटके से बंगाल के किसानों को और संयुक्त-प्रान्त और विहार के तीसी (अलसी) पैदा करनेवालों किसानों को ख़ूब लाभ होता है। किसान अपना माल तभी बेचते हैं जब बाज़ार में ऊँचा सट्टा होता है। हम कहते हैं कि ऊँचे सट्टे के समय बाज़ार में तैयारी का काम-काज नहीं-सा होता है। चालानी भी रुक जाती है। लेनेवाला मिलता है तो बेचनेवाला नहीं, और बेचनेवाला मिलता है तो लेनेवाला नहीं। फाटकिये अपने बाड़ों में ही एक दूसरे को पछाड़ डालते हैं। कहा जाता है कि कलकत्ते के मेयर ने भी कहीं यह कह डाला कि इन बाड़ों के व्यवसाय से बंगाल के किसानों को लाभ पहुँचता है।

कारण वे भी एक बाड़े को खोल चुके हैं। यदि सरकार सख़्ती से काम ले तो या तो ये बाड़े बंद हो जायँगे अथवा इनका वास्तविक सुधार हो जायगा। जहां हमने बाड़ों का यह बीभत्स रूप पाठकों के सामने रक्खा है, वहां हम एक-दो बाड़ों की आवश्यकता भी समझते हैं। कुछ समय पूर्व बाबू देवीप्रसाद खेतान ने कलकत्ते के बाड़ों के सुधार के लिए एक प्रस्ताव बंगाल-कौंसिल में पेश किया था कि बाड़ों में इतनी ऊँची रक़म से कम के सौदे न हों। उनका इससे यह इरादा था कि छोटे लोग इन बाड़ों से निकल जायँ। बड़े लोग ही फाटका लड़ाया करें। अब फिर प्रयत्न हो रहा है। व्यापारी-समाज के एक सदस्य कांग्रेसियों की सहायता से पुनः उस रूप में अपना प्रस्ताव उपस्थित करना चाहते हैं। हम इन प्रस्तावों के पक्ष में नहीं हैं। हम यह चाहते हैं कि बाड़ों में इतने दलालों की आवश्यकता नहीं है और न इतने बाड़ों का ही प्रयोजन है। जितने भी बाड़े हों उनमें तैयारी का व्यवसाय हो। यह शर्त बाड़ों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। कारण, किसानों की पैदावार अच्छे से अच्छे ऊँचे भाव में बेचने के लिए तैयारी का व्यवसाय करनेवाले सट्टा करने का अधिकार रखते हैं। सट्टे के इतने रूप को हम व्यापारिक दृष्टि से अत्यावश्यक समझते हैं। तैयारी माल के व्यापारियों को सट्टे करने का पूरा अधिकार मिलना चाहिए। इसलिए बाड़ों में वे ही लोग प्रवेश पायें जो तैयारी माल के व्यापारी हों। फिर एक कारख़ाने का उद्योग चलाने के लिए अनेक श्रमजीवियों की आवश्यकता होती है, किन्तु बाड़े का एक ही दलाल थोड़े समय में अनेक सौदे कर सकता है। इसलिए दलालों की योग्यता और प्रवेश आदि के सम्बन्ध में ख़ूब कड़ी शर्तें रक्खी जायँ। यह न हो कि जिसे कहीं कोई काम न मिले वही सफ़ेद कपड़ा पहन और गले में दुपट्टा डाल कर बाड़ों का दलाल बन जाय। इन बाड़ों की असंगठित अवस्था योरप से घूमकर आये हुए श्रीबिड़ला जी ने भी प्रकट

की है। हम चाहते हैं कि भारतीय व्यापारी-समाज के तैयारी माल के व्यापारी अपने शक्तिशाली बाड़े खोलें। उनमें जुआ खेलनेवाले सटोरिये प्रवेश न पा सकें। कारण यहां का योरपीय व्यापारी और इँग्लेंड का व्यापारी-समाज भी हमारे बाड़े नहीं चाहता है। यदि हम पाट और हेशियन के अपने नम्बर और मार्क क़ायम कर बंगाल का माल अपने अधिकार में मँगावें तो भारतीय व्यापारी-समाज को भी लाभ होगा और बंगाल के किसानों को भी दो पैसे ज़्यादा मिलेंगे। उस समय विदेशी व्यापारी हम पर निर्भर रहेंगे। यह होने पर ही आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय जैसे महान् पुरुष को यह कहने का अवसर नहीं मिलेगा कि अँगरेज़ ही नहीं, दूसरे प्रान्तों के व्यापारी भी यहां के किसानों का धन छीनते हैं। व्यापारियों में प्रतिस्पर्धा और सभ्यता न होने से उनकी ओर से कोई सुधार होना कठिन दिखाई देता है। पर समाज के सच्चे शुभचिन्तकों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे इस सम्बन्ध में ख़ूब आन्दोलन करें। तैयारी माल के सच्चे व्यवसायी सरकार की सहायता से भी क़ानून-द्वारा सुधार कर सकते हैं।

२—भारतीय होज़ापरी का व्यवसाय

लुधियाना का होज़ापरी का उद्योग अकेले पञ्जाब के लिए नहीं, बल्कि सारे भारतवर्ष का केन्द्रस्थान हो रहा है। पञ्जाब-सरकार ने अभी हाल में प्रान्तीय उद्योग-धन्धों की जो रिपोर्ट निकाली है उससे पता चलता है कि इस उद्योग ने बड़ी उन्नति की है। लुधियाना के मोज़े आदि आज देश भर में प्रसिद्ध हैं। १९०४ में लुधियाना में केवल पचास हज़ार रुपये के मोज़े तैयार होते थे, वहाँ आज १९ लाख रुपये का माल तैयार होने का अनुमान है। लुधियाने के मोज़े सारे भारतवर्ष में बिकते हैं, ब्रह्म-देश और सीलोन में भी उनका निर्यात होता है। होज़ापरी के उद्योग में मोज़ों के अलावा असली रेशम, नक़ली रेशम और सूत के रूमाल और बनियान तथा इसी प्रकार की और भी वस्तुएँ तैयार होती हैं। विदेशी होज़ापरी का आयात प्रतिवर्ष कई करोड़ रुपये का होता है। इस समय यह उद्योग हिन्दुओं के हाथ में नहीं है। दूसरी दूसरी जातियाँ इस व्यवसाय को करती हैं। दूसरी जातियां ही बाहर से माल मँगाकर यहां बेचती हैं चीन होज़ापरी-माल बहुत सस्ता तैयार करता है। इससे यहां के व्यापारी सङ्कट में पड़ गये हैं कि वे चीन की प्रतिद्वन्द्विता से कैसे अपनी रक्षा कर सकेंगे? यह अच्छा हुआ कि पञ्जाब के कारखानेवालों ने नक़ली रेशम का व्यवहार करना शुरू कर दिया है। इससे उद्योग की बहुत रक्षा हुई है। पञ्जाब-सरकार इस उद्योग में वैज्ञानिक सुधार भी करना चाहती है। उसने होज़ापरी के उद्योग की शिक्षा देने के लिए एक सरकारी होज़ापरी इंस्टीट्यूट खोलना निश्चित किया है, जिससे साधारण लोग इस उद्योग को सीखकर गृह-शिल्प की वृद्धि करें। संयुक्त-प्रान्त में भी इस उद्योग की ऐसी ही अवस्था है। सूती मोज़े तो चीन के मुक़ाबले में बाज़ार में नहीं टिकते हैं; केवल रेशमी मोज़े आदि चलते हैं। आवश्यकता है कि भारत-सरकार संयुक्त-प्रान्त के इस गृह-शिल्प के लिए चीनी माल पर चुंगी लगाये। यहां की प्रान्तीय सरकार का भी ध्यान इस ओर गया है और उसने कई स्थानों में स्पेशल होज़ापरी क्लास खोले हैं। बड़ी बड़ी कलों के व्यवहार से इस व्यवसाय को चलाने से अच्छा मुनाफ़ा हो सकता है। कानपुर के सरकारी टेक्सटाइल स्कूल में कलें आदि रखने का प्रबन्ध किया गया है। संयुक्त-प्रान्त के किसानों के लिए यह उद्योग अत्यन्त लाभदायक है। यदि प्रान्तीय सरकार और धनी व्यापारी क़िश्तरूप में उन्हें कलें और माल आदि देने की सुविधा कर दें तो प्रान्त में इस उद्योग की वृद्धि हो सकती है। संयुक्त-प्रान्त के किसानों के लिए कृषि के साथ साथ अन्य उद्योगों की अत्यन्त आवश्यकता है। इधर तो ज़मींदार और तालुक़ेदारों ने उन्हें बांध रक्खा है, उधर दुष्काल और सामाजिक कठिनाइयां और भी बाधक होती हैं। यही कारण है कि संयुक्त-प्रान्त के कृषक अपनी ज़मीनों को छोड़कर कलकत्ता, बम्बई और करांची में दस-पन्द्रह रुपये की नौकरी के लिए मारे मारे फिरते हैं। यदि संयुक्त-प्रान्त के धनी व्यापारी विदेश से नक़ली रेशम और कलें मँगा कर कृषकों को क़िश्त-पद्धति से या दूसरे सुविधाजनक उपायों से देने का प्रबन्ध करें तो संयुक्त-प्रान्त में कृषि और गृह-शिल्प दोनों की उन्नति हो सकती है। मंदरास में भी यह उद्योग

चल रहा है। वहा सूत, ऊन और रेशम तीनों वस्तुओं का व्यवहार होता है। मदरास के विद्यार्थी इस उद्योग में अत्यन्त निपुण पाये जाते है। इस प्रान्त में इस उद्योग की उन्नति होने की आशा है। १९२६-२७ में १४७ लाख रुपये के मोज़े विदेश से भारतवर्ष में आये थे। होज़ापरी-व्यवसाय की दूसरी वस्तुओं का आयात अलग है। १०,७७,१०० दर्जन मोज़े और २९,८३,३९९ दर्जन दूसरे प्रकार के मोज़े भारतवर्ष में आये। ११७ लाख रुपये के मोज़े जापान से आये, इँग्लेंड और अमेरिका से तीन और पाँच लाख रुपये के मोज़े आये, ऊनी मोज़ों का आयात १८ लाख रुपये का हुआ था।

३—संयुक्त-प्रान्त के कम्बल

संयुक्त-प्रान्त के कम्बलों का उद्योग प्रायः नष्ट हो गया है। योरप के सस्ते कम्बलों ने भारतीय बाज़ारों में संयुक्त-प्रान्त के मज़बूत कम्बलों की विक्री नष्ट कर दी है। कानपुर की ऊलन मिल भी विदेशियों का कारबार है। अकेले नजीबाबाद और मुज़फ़्फ़रनगर मे किसी प्रकार यह उद्योग चल रहा है। पर वहाँ भी, आज के ज़माने में उसी पुराने ढङ्ग की शकल-सूरत के कम्बल तैयार होते है, आवश्यकता है कि अब अच्छा माल तैयार हो। बाज़ार में माँग होने से उनके कम्बल बिक जाते हैं, परन्तु यह उद्योग एक-दम गिरी हुई अवस्था में है। कम्बलों के अच्छे सूत और ऊन तथा अन्य सामयिक साधनों की ओर कारख़ानेवालों का ध्यान जाना चाहिए। कर्घों में ये कम्बल तैयार होते है। गांवों के कृषक इन कर्घों को अपने अपने घर में रखकर इस उद्योग की सहज ही में उन्नति कर सकते हैं। काम चाहे मानसिक हो या शारीरिक सब आदरणीय है। किसी भी उद्योग और व्यवसाय के करने से गौरव नष्ट नहीं होता। इसलिए प्रान्त के लोगों को इस उद्योग को अपनाना चाहिए।

४—व्यापारिक नाविक-विषय की शिक्षा

इस देश की सन्तानों को व्यापारिक नाविक-शिक्षा देने की स्कीम का काम आरम्भ हो गया है। इसकी शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को बम्बई, कलकत्ता, लखनऊ, लाहौर, मदरास और रंगून में प्रवेश-परीक्षा देना पड़ती है। प्रवेश-परीक्षा के तीन प्रश्न-पत्र अँगरेज़ी, हिसाब और साधारण ज्ञान के होते है। इस वर्ष जिन्होंने परीक्षा दी उनमें से केवल ११ विद्यार्थी चुने गये, जिनमे दस हिन्दू और एक मुसलमान हैं। इन विद्यार्थियों को तीन वर्ष तक "डफ़रिन रायल इंडियन मेरीन स्टीमर" मे सीखना पड़ेगा। यह जहाज़ इसीलिए रक्खा गया है। अभी ये ग्यारह विद्यार्थी कलकत्ते के पोर्ट कमिश्नर के यहां चुनाव-परीक्षा दे रहे हैं। डफ़रिन जहाज़ के कमांडर डिग्बी बेस्ट बम्बई के पोर्ट अफ़सर चुने गये हैं, लेफ़्टिनेन्ट कमांडर केम्पबेल और मिस्टर डेविड चीफ़ अफ़सर होंगे। इस ज़हाज की कमेटी के सदस्य सर पुरुषोत्तम-दास ठाकुरदास, श्रीरतनसी मुरारजी, इंडियन चैम्बर आफ़ कामर्स के मास्टर और सर हारमसजी कावसजी, आडनवाला आदि कई व्यक्ति हैं। बम्बई-प्रान्त का एक मुसलमान कलक्टर भी सदस्य है। इन विद्यार्थियों के शिक्षा प्राप्त करने पर भारत-सरकार की सलाह से पी० एण्ड ओ० स्टीम नेवीगेशन कम्पनी, इंडिया चाइना स्टीमर, ब्रिटिश-इंडियन एस० एन० कम्पनी, सिंधिया एस० एन० कम्पनी, एशियाटिक एस० एन० कम्पनी, नोर्स लाइन, अपकर लाइन, मुग़ल लाइन, परशियन गल्फ़ एस० एन० कम्पनी, ईस्टर्न एस० एन० कम्पनी, मेसर्स कावसजी दीन ब्रदर्स और एडन एंड दिहलाल शिपिंग कम्पनी ने काम देना स्वीकार किया है। भारतवर्ष के सभी बन्दरगाहों में भी उच्च नौकरियाँ मिलेंगी। सबसे बड़ी बात तो यह है कि व्यापारिक दृष्टि से इस शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। यदि नवयुवक व्यापारी शिक्षा प्राप्त कर अग्रसर हों तो भारतीय व्यापार विदेशों मे बढ़ सकता है। व्यापारी-समाज के नवयुवकों को व्यापारिक नाविक-शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिए। कट्टर से कट्टर गुजराती और धर्म-प्राण मारवाड़ी जातियों के व्यापारी-समाज में भी विदेश-यात्रा का अब प्रतिबन्ध टूट गया है। वस्तुतः यह प्रतिबन्ध सभी दृष्टि से अनावश्यक है। मारवाड़ी-समाज के प्रमुख नेता बाबू घनश्यामदासजी बिडला, बाबू नारायणदासजी बाजोरिया बी० ए० और बाबू पद्मराजजी जैन ने अनुभव प्राप्त करने के लिए विदेश-यात्रा की। उन्होंने वहाँ से आकर यह प्रकट किया कि हम जहाज़ों में और

योरप के किसी भी नगर में अपना आचार-विचार कायम रख सकते हैं। अपना भोजन स्वयं तैयार कर सकते हैं, हमें भ्रष्ट होने की कोई भी ज़रूरत नहीं। प्रत्येक जहाज़ में भोजन तैयार हो सकता है। श्रीविट्ठलजी ने श्रीरामचन्द्रजी के एक मन्दिर और धर्मशाला की भी लन्दन में नींव दी है और इस उपयोगी कार्य के लिए बीकानेर के सुप्रसिद्ध व्यापारी सेठ रामगोपालजी मेहता ने पचास हज़ार रुपये दान दिये हैं। इस काम में दरभङ्गा-नरेश को भी आगे बढ़ना चाहिए। व्यापारिक दृष्टि से योरप, अमेरिका और जापान के प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में हिन्दू धर्मशालाओं और मन्दिरों का स्थापित होना अत्यन्त अनिवार्य है। सर्वत्र ये धर्मशालायें खुलने पर और जहाज़ कम्पनियों से ख़ूब आन्दोलन कर कट्टर हिन्दुओं के खान-पान में और भी सुविधा दिलाने पर विदेश-यात्रा एकबारगी खुल जायगी। इस विदेश-यात्रा के बन्द होने से भारतीय व्यापार चौपट होता जा रहा है। मुसलमान व्यापारी निश्चय ही लाभ उठा रहे हैं। हेमबर्ग में उनकी अनेक दूकानें हैं। योरप के दूसरे दूसरे स्थानों में भी उनके कारबार हैं, पर हिन्दू-व्यापारी दूसरों के आश्रय पर हैं, हिन्दू-व्यापारियों की अवस्था अत्यन्त शोचनीय है।

५—भारतीय पटुआ की खेती

भारतीय पटुआ की खेती के लिए संयुक्त-प्रान्त अत्यन्त प्रसिद्ध है। पटुये के व्यापारियों ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया था कि वह अच्छे पटुये की पैदावार के सम्बन्ध में खोज करे। भारत-सरकार के कृषिविभाग ने पूसा में प्रयोग-द्वारा इस सम्बन्ध का कुछ अन्वेषण किया है। उसका कहना है कि पौधों के धड़ सड़ा कर सन तैयार हो सकता है, और बाक़ी का हरा हिस्सा खाद के लिए अच्छा होता है। इस खाद से पैदावार ख़ूब बढ़ती है। संयुक्त-प्रान्त में पटुआ के १२ नम्बर के बीज सर्वत्र किसानों को मिलते हैं। कृपकों को "कानपुर १२"—बीज खेती के लिए ख़रीदने चाहिए। ढाका में भी पटुआ सन की खेती बढ़ रही है।

६—बुने हुए वस्त्रों में पक्का रङ्ग

इस देश के बुने हुए कपड़े के लिए यह सबसे बड़ी शिकायत है कि उनका रङ्ग पक्का नहीं होता है। पञ्जाब में बुनाई का गृहशिल्प अच्छी रँगाई न करने से उन्नति नहीं कर पाता है। अभी तक तेज रङ्ग देने के लिए अनेक उपाय सोचे गये, किन्तु व्यापारिक दृष्टि से वे उपयोगी नहीं हुए। अभी हाल में शाहदारा के रँगाई के स्कूल ने कई प्रकार के रङ्ग तैयार करके प्रान्त भर के कारख़ानेवालों के पास भेजे हैं। यह कहा जाता है कि रङ्ग के नमूने लोगों को पसन्द आये हैं। कारख़ानेवालों ने शाहदारा के स्कूल में तीन व्यक्तियों को सूत-रँगाई की शिक्षा पाने के लिए भेजा है। पञ्जाब के सभी कारख़ानों की ओर से इस स्कूल को सहयोग प्राप्त हो रहा है। लुधियाने में भी रँगाई की शिक्षा देने के लिए प्रबन्ध किया गया है। पर शाहदारा के सरकारी स्कूल में १९१६ से १९२५ तक ३२८ विद्यार्थी रँगाई का उद्योग सीख चुके हैं। इनमें से कुछ विद्यार्थियों ने अपना काम खोल दिया है, और बाक़ी कारख़ानों में तथा औद्योगिक स्कूलों में प्रवेश पा गये हैं। संयुक्त-प्रान्त में रँगाई का उद्योग अच्छी उन्नति कर रहा है। कानपुर में रँगाई के कई कारख़ानों ने वृद्धि की है। फ़र्रुख़ाबाद और मथुरा में अच्छी पक्की छपाई होने लगी है। किन्तु लखनऊ में छपाई का उद्योग गिर रहा है। पर वहाँ के लोगों का ध्यान इस ओर गया है। लखनऊ में फिर से इस उद्योग को बढ़ाने के लिए बुलन्दशहर में रँगाई का एक स्कूल खोलने का प्रयत्न हो रहा है।

७—भारतीय रेशम

संयुक्त-प्रान्त में रेशम बुनने का उद्योग अच्छी उन्नति कर रहा है। बनारस इस उद्योग का केन्द्र-स्थान है। आज बनारस चीन के मुक़ाबले में इस उद्योग को चला रहा है। बनारस में रेशम बुनने के विद्युत् से चलनेवाले कारख़ानों में अत्यन्त वृद्धि हुई है। अन्य छोटे छोटे कारख़ाने भी ख़ूब बढ़ रहे हैं। गत वर्ष दो कारख़ानों से साढ़े आठ लाख रुपये का माल तैयार हुआ था। ये दो कारख़ाने नये ढङ्ग का रेशमी कपड़ा बुनते हैं। जो छोटे कारख़ाने पुराने ढङ्ग का रेशमी कपड़ा तैयार करते हैं उनका उद्योग गिरता हुआ दिखाई दिया है। बनारस में इस उद्योग की अत्यधिक वृद्धि हो सकती है, यदि अच्छी पूँजी से कारख़ाने खुलें और वे नक़ली रेशम और वेस्ट रेशम

बुनाई के लिए व्यवहार करें। मैसोर में राज्य की सहायता से "बङ्गलोर सिल्क फ़िलेचर" एक-दम नये ढङ्ग का कारख़ाना है। इसमें सब नई कलें हैं। इस कारख़ाने से बढ़िया से बढ़िया रेशमी कपड़ा तैयार होगा। सिल्क फ़िलेचर का भारतवर्ष में व्यवहार होना चाहिए, बजाय इसके कि वह योरप भेजा जाय। मैसोर में इस उद्योग की उन्नति होने की पूर्ण आशा है। बनारस के उद्योग-प्रेमियों को भी इस ओर अग्रसर होना चाहिए। मदरास में ऊँचे दर्जे का सिल्क रीलिङ्ग होता है, पर उस माल की खपत मदरास में ही हो जाती है। इटली की कलें इस उद्योग के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। अभी हाल में इटली के दो सिल्क रीलिङ्ग कलें मदरास के टेक्सटाइल इँस्टीच्यूट में मँगाकर रक्खी गई हैं। ये कलें बड़े दाम की हैं। रेशम के इस श्रेणी के उद्योग में धनी पूँजीपति ही पड़ सकते हैं। किन्तु बुनाई आदि का उद्योग ऐसा है जिसमें सभी श्रेणी के लोग परिश्रम कर उन्नति कर सकते हैं। भारतवर्ष में इस उद्योग की वृद्धि करने की आवश्यकता इसी से प्रतीत होगी कि प्रतिवर्ष कच्चा रेशम और रेशमी वस्त्र का आयात ४५६ लाख रुपये का होता है। यह रक़म १९२६-२७ की है। प्रतिवर्ष यह आयात बढ़ता ही जाता है, क्योंकि १९२५-२६ में ३७४ लाख रुपये का माल विदेश से आया था। १९२६-२७ में एक करोड़ ९० लाख गज़ रेशमी कपड़ा विदेश से आया, जो १९२५-२६ में एक करोड़ ६० लाख गज़ आया था। ९० लाख गज़ जापान से और ९० लाख गज़ चीन से कपड़ा आया और बाक़ी दूसरे देशों से आया। १९२५-२६ में ५ लाख पौंड रेशमी सूती विदेश से आया था; किन्तु १९२६-२७ में यह सूत दुगुने से भी अधिक आया। दूसरी वस्तुओं से बुने हुए रेशमी वस्त्र २० लाख गज़ के आये, जिसमें आधा माल जापान से आया।

८—ऊनी सूत

अलमोड़ा में पश्मीना बुनने का उद्योग अच्छी उन्नति कर रहा है। सरकार कई स्थानों पर पश्मीने की शिक्षा के लिए कताई के स्कूल खोल रही है। इस सम्बन्ध में एक कठिनाई यह है कि अच्छा धागा नहीं मिलता। सरकार ने इस सम्बन्ध में एक नई कल कानपुर के सरकारी टेक्सटाइल स्कूल में रक्खी है। इस कल से अच्छे से अच्छा सूत तैयार होता है। मैसोर-राज्य में अच्छा ऊनी सूत न मिलने की कठिनाई अनुभव की जा रही है। वहा की सरकार ने सूत तैयार करने के लिए अभी हाल में एक छोटा सा कारख़ाना खोला है, जहा से सब स्थानों के कर्घेवाले ऊनी सूत पा सकेंगे। अलमोड़ा और कानपुर में भी ऐसे कारख़ाने खुलने चाहिए। यहा के लोग यदि ऊन विदेश न भेज कर यहीं कम्बल और पश्मीना तैयार करें तो देश का व्यवसाय बढ़ सकता है। १९२६-२७ में ३९३ लाख रुपये का कच्चा ऊन विदेश गया। यह ऊन वज़न में ४ करोड़ ५० लाख पौंड था। इससे विदित होता है कि भारतवर्ष में यह उद्योग कितनी उन्नति कर सकता है। भारतवर्ष के कुल निर्यात में से ४ करोड़ पौंड ऊन इँग्लैंड और बाक़ी अमेरिका ख़रीद लेता है। अमेरिका में भारतवर्ष के गलीचे और कम्बलों की भी खपत होती है। पर भारतवर्ष में दिन पर दिन यह उद्योग नष्ट हो रहा है। हिन्दू-व्यापारी-समुदाय के हाथ में यह व्यापार नहीं है। दूसरी ही जातियाँ गलीचे आदि तैयार करती हैं। हिन्दू-शिल्पियों को यह उद्योग शीघ्रातिशीघ्र अपनाना चाहिए। सरकार भी शिल्पियों को हर प्रकार का सहयोग देने के लिए तत्पर है। संयुक्त-प्रान्त का दरी और फ़र्श का व्यवसाय गिरता हुआ चला जा रहा है। आगरा और मिर्ज़ापुर आदि के कारख़ाने आज अच्छी अवस्था में इसलिए नहीं चल रहे हैं कि उनमें अच्छा माल नहीं लगाया जाता। अच्छे आकार और रूप के फ़र्श और गलीचे तैयार होने की अत्यन्त आवश्यकता है। ऊँची श्रेणी के जो गलीचे आदि तैयार भी होते हैं वे टर्की की हुंडिया मन की दर से बाज़ार में मँहगे पड़ते हैं। कारण, टर्की ने अपने हुंडिया मन की दर गिरा कर अपना ऊँची श्रेणी का माल सस्ते भावों में बेचकर भारतीय उद्योग को नष्ट करने की ठान ली है।

जी० एस० पथिक

की रीढ़ की हड्डियाँ झुक जाती हैं। इसके लिए व्यायाम की यहाँ दी गई विधि लाभदायक है।

यदि पैर कमज़ोर हों तो पैर की कसरत करनी चाहिए। परन्तु यदि पैर में कुछ ख़राबी न हो तो भी इस प्रकार के व्यायाम से वह मज़बूत होता है। यह व्यायाम जूते और मोज़े आदि उतार कर नङ्गे पैर करना चाहिए। दोनों पैरों को जोड़ कर खड़े हो जाओ, फिर पैर की उँगलियों पर ज़ोर देकर एँड़ी को ऊपर उठाओ। इस प्रकार छः, आठ अथवा दस बार करो। फिर पैर
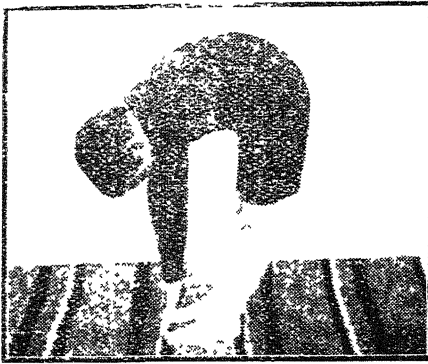
नं० ४—झुक कर पैर के अँगूठे छुओ

की उँगलियों के सहारे कमरे में कई बार फिरो। इसके अनन्तर एक ओर से झुके हुए टेढ़े तख़्ते पर चलो। तख़्ते के एक सिरे को ज़रा ऊँची चीज़ पर रख लेना चाहिए।

चित्र नं० ७ में दिखलाई गई व्यायाम की विधि से टाँगें तथा कूल्हे मज़बूत होते हैं। सुगमता-पूर्वक जितना मुड़ सको उतना मुड़ कर फिर सीधे हो जाओ। इसी प्रकार छः बार करो।

चित्र नं० ८ में दी हुई व्यायाम की विधि शरीर के ऊपरी भाग, टांगों तथा बांह के लिए है। पहले दोनों पैरों को पास पास रख कर सीधे खड़े हो जाओ। फिर दाईं बांह को जितना फैला सको फैला कर दाईं तरफ़ एक क़दम बढ़ो। फिर सीधे हो जाओ। फिर बाईं ओर इसी प्रकार करो। बांह कन्धे की सीध में रहे। दस बार इसी तरह करो।

बहुत से बालकों की जो स्कूल में खेल खेलते हैं, बाहें और सीने तो मज़बूत हो जाते हैं, पर जांघें तथा कूल्हे के जोड़ कमज़ोर रह जाते हैं। निम्नलिखित व्यायाम की विधियों से ये सुदृढ़ होते हैं।

१—सीधे लेट जाओ, फिर बिना हाथ के सहारे उठो।

२—सीधे खड़े होकर बाहों को नीचे लटका दो। पहले दाहनी ओर, फिर बाईं ओर झुको।

३—इसी प्रकार खड़े होकर पहले आगे और फिर पीछे की ओर झुको।

नं० ५—रीढ़ की हड्डी के लिए व्यायाम

आगे हम सांस के व्यायाम की कुछ और विधियां देते हैं—

१—पैरों को जोड़ कर सीधे खड़े हो जाओ। दोनों हाथों को छाती पर रक्खो। मुँह बन्द करके गहरी सांस लो। चार सेकंड तक सांस को रोको, फिर धीरे धीरे निकाल दो। १२ बार इसी प्रकार करो।

२—एँड़ियों को पास पास रख कर दोनों हाथों को कूल्हे पर रक्खो। पैर की उँगलियों पर ज़ोर देकर एँड़ियाँ

नं० ६—पैरों के लिए व्यायाम
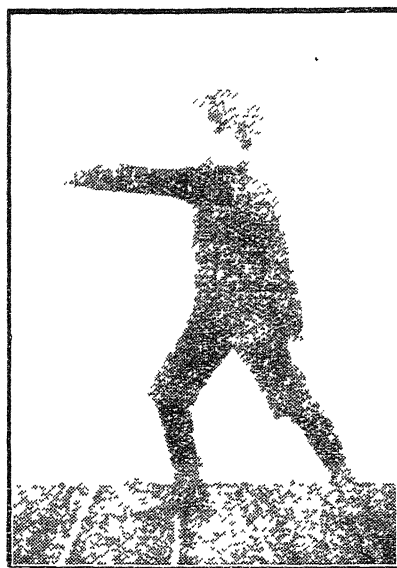
नं० ८—शरीर के ऊपरी भाग, टांगों तथा बांहों के लिए व्यायाम की विधि

नं० ७—टांगों तथा कूल्हे के लिए व्यायाम
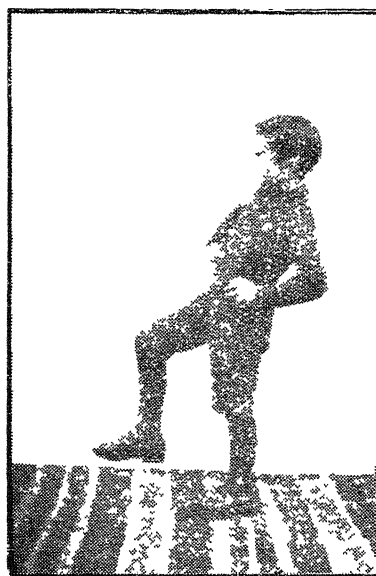
नं० ९—कूल्हे और पैरों का व्यायाम

को ऊपर उठाओ और गहरी साँस लो। साँस को कुछ देर रोके रक्खो। फिर साँस को धीरे धीरे निकाल दो और एँड़ियों को ज़मीन पर पूर्ववत् रख लो।

३—मुँह बन्द करके बाँहों को लटका कर और सिर को सीधा रख कर गहरी साँस लो। साथ ही बाहों को सिर के ऊपर सीधा उठाओ। दो-तीन सेकंड तक साँस रोक रक्खो। धीरे धीरे साँस निकाल दो और बाहें नीचे कर लो।

परन्तु ऊपर दी हुई प्रत्येक प्रकार की कसरत को नित्य करने की आवश्यकता नहीं है। दिन में दो बार पांच पाच मिनट इनमें से कोई सी कसरत करना पर्याप्त है। नित्य पाच या दस मिनट करना लाभदायक है। परन्तु ऐसा न हो कि किसी रोज़ बिलकुल न करे और किसी रोज़ अधिक करे।

साँस की कसरतें ऐसे बालकों के लिए अधिक उपयुक्त है जो मुँह के द्वारा साँस लेते हों अथवा जिन्हें ज़ुकाम तथा गले और छाती की बीमारी हो। अधिक सर्दी के दिनों को छोड़ कर सदा खुली जगह में ऐसे व्यायाम करने चाहिए।

दुर्गादेवी

२—बुढ़ापे का रहस्य

ऐसा शायद ही कोई आदमी हो जो बुढ़ापे से न घबराता हो। जो बूढ़े हैं वे तो बस यह समझ बैठे है कि बुढ़ापा इस संसार से चलने की तैयारी है, जो जवान है वे बुढ़ापे से इतना डरते है कि मरने को तैयार है, पर बूढ़ा नहीं होना चाहते। बुढ़ापे के कारण जवानी मे लोग कुछ न कुछ भले कर्म सञ्चित करने की ओर अवश्य ध्यान देते है—कुछ और न सही तो इसी ख़याल से कि बुढ़ापे मे हाथ-पैर चलेंगे नहीं, जवानी में जो कुछ बन पड़े कर लो। यदि बुढ़ापे का डर छूट जाय तो जवानी की रङ्गरेलियां मचाने के सिवा कोई क्यों ईश्वराराधन का ध्यान करे? पर बुढ़ापे में भी है कुछ सौन्दर्य अवश्य। बुढ़ापा वह समय है जब मनुष्य ज्ञान और शक्ति का सञ्चय करने के बाद संसार की तृष्णाओं से तृप्त होकर अपने परलोक सुधारने और परमार्थ-साधन के काम में लग जाता है। यह तो हुआ हमारे देश के उपयुक्त विचार। अब और सुनिए। कुछ पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने बुढ़ापे में एक नया ही सौन्दर्य्य देखा है। हम लोग तो समझते हैं कि बुढ़ापे में संन्यासी होकर संसार त्याग देना चाहिए—इस दुनिया से नाता तोड़ ईश्वर से नाता जोड़ने की तैयारी करनी चाहिए। उधर पाश्चात्यों को धुन है तो सांसारिक आनन्द की। बुढ़ापे में भी सौन्दर्य और आनन्द क्यों न ढूँढ़ निकाला जाय? बुढ़ापे को इस प्रकार क्यों न बिताया जाय कि सांसारिक सुख का उपभोग हो सके? इसी विचार से लोगों ने इस सम्बन्ध मे आविष्कार आरम्भ कर दिया है। पहले तो यह पता लगाने का उद्योग किया गया कि बुढ़ापा है क्या चीज़, तथा बुढ़ापे में वास्तविक आनन्द कैसे प्राप्त हो सकता है। डाक्टर हाल ने 'बुढ़ापा' नामक एक किताब बूढ़ों को सान्त्वना देने के लिए लिखी है। जिनकी अवस्था पैंतालीस वर्ष से ऊपर है उन सबके लिए यह किताब बड़े मज़े की है। इस पुस्तक में डाक्टर हाल महोदय ने पश्चिम के लिए नवीन और विचित्र, पर हमारे लिए एक अत्यन्त साधारण और सरल सिद्धान्त उपस्थित किया है। वे कहते है कि केवल उन्हीं लोगों को अपनी अवस्था अरुचिकर होती है जिनके आभ्यन्तरिक जीवन में कुछ तत्त्व और सार नहीं है और जो यह बात स्पष्ट रीति से नहीं देखते कि उनके सुख और आनन्द की समस्त सामग्री उनके अन्दर ही विद्यमान है। लड़कपन में लड़कपन के उपयुक्त, जवानी मे जवानी के तथा बुढ़ापे मे बुढ़ापे के उपयुक्त आनन्द के साधन अवस्था के परिवर्तन के साथ स्वयं मनुष्य के अन्दर उपस्थित हो जाते हैं। जीवन की प्रत्येक अवस्था में उसी अवस्था के उपयुक्त तथा उसी अवस्था से सम्बन्ध रखनेवाले भाव मनुष्य में आ जाते है। जैसे वृक्षों में वसन्त-ऋतु के अनुकूल पुष्प अपने आप आ जाते हैं, वैसे ही जीवन की हर एक अवस्था के लिए ईश्वर आप से आप सुख के साधन उपस्थित कर देता है।

इन लेखक महोदय के मन्तव्यानुसार बुढ़ापे की आदर्श अवस्था किसी मनुष्य को तभी प्राप्त होती है जब उसके अन्दर सत्य के लिए एक अत्यन्त बलवान् भाव उत्पन्न हो जाता है और जब सत्य का पीछा उसी ज़ोर और हार्दिक आह्लाद के साथ करता है, जिस भाव के साथ वह जवानी में सौन्दर्य की ओर आकर्षित होता था। जवानी में मनुष्य को जैसे सुन्दर स्त्रियों के लिए एक अनिर्वचनीय और अत्यन्त प्रबल आकर्षण अपने अन्दर दिखलाई पड़ता है, इस आकर्षण में उसे एक विचित्र आनन्द प्राप्त होता है। यह उसकी शक्ति के बाहर है कि इस आनन्द की सीमा से बाहर निकल निस्पृह-भाव से स्त्रियों के सौन्दर्य का दर्शन केवल दर्शक के रूप में ही कर सके। इस आकर्षण के आनन्द को ही वह 'जवानी' समझता है। इसी प्रकार बुढ़ापे के सत्य के लिए भी इसी प्रकार का आकर्षण जब मनुष्य में उत्पन्न हो जाय तब समझना चाहिए कि मनुष्य वस्तुतः 'बूढ़ा' हुआ।

लेखक महोदय कहते हैं कि कितने ही ऐसे काम हैं जिसको स्त्रियां प्रायः जवानी में करने में असमर्थ रहती हैं, पर बाल सफ़ेद हो जाने पर, बुढ़ापा आ जाने पर, वही काम उन्हीं स्त्रियों के लिए अत्यन्त सुगम हो जाते हैं। कारण क्या है? शायद यही कि बुढ़ापा आने पर मनुष्य का दृष्टि-कोण बदल जाता है। बहुत से सिद्धान्त और अनेक सांसारिक कृतियां जो पहले आवश्यक और उपयोगी मालूम होती थीं, बुढ़ापे में उतनी आवश्यक नहीं मालूम होतीं। जवानी में मनुष्य के विचार में जो बातें बड़े महत्त्व की मालूम पड़ती हैं वही बुढ़ापे में निरर्थक तथा महत्त्वहीन दीखने लगती हैं। यह भाव-परिवर्तन ही असल में 'बुढ़ापा' है।

डाक्टर हाल लिखते हैं कि अच्छा और तेज़ काम करनेवाले ही प्रायः अधिक दिन जीते हैं। उनका कहना है कि इतिहास इस बात की गवाही देता है कि अधिकांश कार्य्य-कुशल विख्यात मनुष्य ज़्यादा उम्र तक जिये। कहते हैं कि न्यूटन ८५ वर्ष तक जिया और मरते दम तक नये नये वैज्ञानिक आविष्कार करता गया, वाशिंग्टन जिसने अमरीका को स्वतन्त्र किया, वेलिंगटन जिसने नैपोलियन को परास्त किया, गेटे—जर्मनी का विद्वान् कवि—हम्बोल्ट, जिसे विज्ञान का विश्व-कोष ही कह सकते हैं, ये सब बड़ी उम्र में मरे। ग्लैडस्टन इँग्लेंड का प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ ८३ वर्ष की अवस्था में समस्त अँगरेज़ी राज्य का शासन कर रहा था और उसी ने ये शब्द कहे थे कि 'इँग्लेंड के नव-जवानों और इँग्लेंड की आशाओं का मैं प्रतिनिधि हूँ'। आप लोग भूतकाल के प्रतिनिधि हैं। वर्तमान समय के प्रश्नों को हल करने का अधिकार हमीं लोगों को है जो भविष्य के प्रतिनिधि हैं—अर्थात् ग्लैडस्टन ८३ वर्ष की अवस्था में अपने को जवानों में गिनता था। ये तो हुए पाश्चात्य देशों के उदाहरण, अब भारतवर्ष की ओर निगाह डालकर देखिए। अभी श्रीसुरेन्द्रनाथ बनर्जी ८० वर्ष की अवस्था में मरे हैं। कितना अधिक और कितना तेज़ काम करनेवाले वे थे, मिसाल गिनाने की आवश्यकता नहीं। कहने का तात्पर्य केवल इतना है कि जितना ही अधिक आप शक्ति का उपयोग करेंगे, उतनी ही अधिक शक्ति आप में आयेगी, साथ ही अधिक काल तक आप शक्ति का उपयोग करने के लिए जीवित रहेंगे।

यह मन्तव्य हम भारतवासियों के लिए बड़े महत्त्व का है। शिथिल पड़े रहना आज-कल हम लोग सुख और आनन्द की निशानी समझने लगे हैं। 'अमीराना ठाठ' इसी में समझा जाने लगा है कि पैर हिलाना तो दूर रहा, हाथ हिलाकर पानी भी न पिया जाय। फल क्या हुआ? हमारे देशवासियों की उमरें घट गईं। ४०—४५ वर्ष के भीतर ही इस संसार से कूच करना पड़ता है। यदि हम ईश्वरप्रदत्त शक्ति का सदुपयोग सीख लें, परिश्रम और जीवन को पर्य्यायवाची शब्द मान लें, यह मान लें कि परिश्रम जीवन की निशानी नहीं, जीवन का बाह्य रूप नहीं, बरन स्वयं जीवन है, तो निस्सन्देह हम में वास्तविक जीवन की ज्योति प्रज्ज्वलित हो जाय, देश में नव जीवन का संचार हो जाय, जो मुर्दनी छाई हुई है नष्ट हो जाय, देवताओं को फिर इस देश में आ बसने की लालसा सताने लगे, तेंतीस कोटि भारतवासी तेंतीस कोटि देवताओं में परिणत हो जायँ।

व्रजराज, एम० ए०, बी० एस-सी०, एल-एल० बी०

१—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाएँ

खिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन-द्वारा प्रति वर्ष प्रथमा, मध्यमा, उत्तमा, अरायज़नवीसी और मुनीमी की परीक्षायें ली जाती हैं। इनमें परीक्षार्थियों की संख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और परीक्षाकेंद्रों की संख्या भी बहुत बढ़ गई है। इन परीक्षाओं में देवनागरी-लिपि और हिंदी-भाषा का ही व्यवहार होता है और स्त्रियों से शुल्क नहीं लिया जाता। इन परीक्षाओं की एक विशेषता यह भी है कि यदि कोई परीक्षार्थी किसी विषय या विषयों में उत्तीर्ण न हो तो उसे अगले वर्ष केवल उसी विषय या विषयों में परीक्षा देने का अधिकार रहता है। भारत के भिन्न भिन्न भागों में हिंदी-प्रचार के कार्य में इन परीक्षाओं-द्वारा बड़ी सहायता मिल रही है। इस लेख में हम यह बतलाने का प्रयत्न करते हैं कि इन परीक्षाओं का महत्त्व और उपयोगिता और भी अधिक कैसे बढ़ाई जा सकती है।

परीक्षाओं का महत्त्व और उपयोगिता उनके पाठ्यक्रम की उत्तमता और परीक्षाओं की सुव्यवस्था पर निर्भर रहती है। ये दोनों कार्य परीक्षासमिति के अधीन हैं और इसी समिति के आदेशों के अनुसार परीक्षामंत्री को सब कार्य करना होता है। परीक्षासमिति का चुनाव प्रतिवर्ष सम्मेलन की स्थायी समिति करती है। परीक्षासमिति के सदस्यों की संख्या परिमित है, इसलिए परीक्षा के सब विषयों के विशेषज्ञों का इसमें समावेश नहीं हो सकता। इस कारण इस समिति को सब विषयों के एक स्टैंडर्ड का पाठ्यक्रम बनाने में बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। कभी कभी परीक्षासमिति किसी विषय पर पाठ्यक्रम तैयार करने में सहायता देने के लिए दो-तीन सज्जनों की उपसमिति बना देती है, परन्तु तिस पर भी यह कार्य काफ़ी संतोषप्रद नहीं होता। परीक्षासमिति में सब विषयों के विशेषज्ञ न होने के कारण समिति के सदस्यों को सब विषयों की नवीन पुस्तकों के संबंध में भी ज्ञान नहीं रहता, और इससे कुछ विषयों में पाठ्यग्रंथ निर्धारित करने में भी बड़ी असुविधा होती है। इन सब असुविधाओं को दूर करने के लिए प्रतिवर्ष प्रत्येक विषय के लिए कम से कम पाँच विशेषज्ञों की एक एक पाठ्यक्रम-समिति परीक्षा-समिति-द्वारा नियुक्त की जाय और उसका कार्य यह हो कि वह अपने विषय की परीक्षाओं का पाठ्यक्रम और पाठ्य-पुस्तकों की सूची तैयार कर परीक्षासमिति के पास विचारार्थ भेज दिया करे।

सम्मेलन की परीक्षाओं का महत्त्व बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रथमा, मध्यमा और उत्तमा परीक्षाओं में साहित्य के अतिरिक्त अन्य विषयों का स्टैंडर्ड जहाँ तक हो सके, क्रमशः मेट्रिक, बी० ए० और एम० ए० से कम न

हो। साहित्य का स्टैंडर्ड तो इनसे भी ऊँचा होना चाहिए। मध्यमा-परीक्षा में आज-कल प्रत्येक परीक्षार्थी को साहित्य और इतिहास के साथ दो वैकल्पिक विषयों से परीक्षा देनी होती है। वैकल्पिक विषयों में केवल एक ही प्रश्नपत्र होता है। जब इस परीक्षा के प्रत्येक विषय का स्टैंडर्ड बी० ए० के बराबर हो जायगा तब एक प्रश्नपत्र से काम न चलेगा। विश्वविद्यालयों की बी० ए० या इंटरमीडियेट की परीक्षाओं में भी प्रत्येक विषय में कम से कम दो प्रश्नपत्र होते हैं। हमारी समझ में मध्यमा-परीक्षा के प्रत्येक वैकल्पिक विषय में दो प्रश्नपत्र रखना बहुत आवश्यक है। परन्तु साथ ही साथ हम इतिहास को इस परीक्षा में अनिवार्य विषय रक्खे जाने के पक्ष में भी नहीं हैं। किसी भी विश्वविद्यालय के बी० ए० या इंटरमीडियेट की परीक्षाओं के लिए इतिहास अनिवार्य विषय नहीं है। मध्यमा परीक्षा में जो विद्यार्थी सम्मिलित होंगे वे मानो प्रथमा-परीक्षा उत्तीर्ण होने पर इतिहास का साधारण ज्ञान प्राप्त कर चुके होंगे या प्रथमा के बराबर अन्य कोई ऐसी परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो चुके होंगे जिनमें इतिहास भी एक विषय रहा होगा। यदि उनकी विशेष रुचि इतिहास की ओर हो तो वे उसे वैकल्पिक विषय रक्खे जाने पर भी ले सकेंगे। इससे इतिहास के ज्ञान के प्रचार में बाधा न पड़ेगी। इतिहास को वैकल्पिक विषय बना देने पर और प्रत्येक वैकल्पिक विषय में दो प्रश्नपत्र रखने पर प्रत्येक परीक्षार्थी को उतने ही प्रश्नपत्रों का उत्तर देना होगा, जितने उसे आज-कल देना होता है। आशा है, सम्मेलन के अधिकारी और परीक्षासमिति के सदस्यगण इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार करेंगे।

सम्मेलन-द्वारा प्रत्येक विषय में आचार्य की परीक्षा भी ली जानी चाहिए। इसमें वही परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकें जो उस विषय में रत्न की परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हैं। इस परीक्षा का स्टैंडर्ड विश्वविद्यालयों की पी-एच० डी० डी० लिट० या डी० एस-सी० की परीक्षाओं के बराबर होना चाहिए। प्रत्येक परीक्षार्थी को अपने विषय पर एक गवेषणापूर्ण मौलिक पुस्तक लिखना आवश्यक होना चाहिए और उसकी परीक्षा इसी पुस्तक के आधार पर मौखिक ली जानी चाहिए। इस परीक्षा-द्वारा साहित्य की भी वृद्धि होगी।

परीक्षाओं की सुव्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि परीक्षा-मन्त्री का पद वैतनिक कर दिया जाय। परीक्षा-संबंधी कार्य अब इतना अधिक बढ़ गया है कि कोई भी व्यक्ति उसे अपना पूरा समय दिये बिना अच्छी तरह से नहीं कर सकता। ऐसा कोई व्यक्ति परीक्षामन्त्री के पद के लिए मिलना कठिन है जो अवैतनिक रूप से अपना पूरा समय परीक्षा के कार्य के लिए दे सके। यदि परीक्षा-मन्त्री का वेतन कम से कम १४०) मासिक रक्खा जाय तो इस काम के लिए योग्य व्यक्ति आसानी से मिल जायगा। वैतनिक परीक्षामन्त्री परीक्षाओं का और भी अधिक प्रचार कर सकेगा। परीक्षार्थियों की संख्या और भी अधिक बढ़ेगी और इससे परीक्षा शुल्क की जो वृद्धि होगी उससे थोड़े ही समय के बाद सम्मेलन परीक्षामन्त्री के वेतन की आर्थिक ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जायगा।

परीक्षामन्त्री का यह प्रधान कर्तव्य होना चाहिए कि वह परीक्षाओं की सुव्यवस्था का पूरा प्रबंध करे। परीक्षा के किसी भी केन्द्र में किसी प्रकार का गड़बड़ नहीं होना चाहिए। परीक्षाओं के केन्द्र खूब सोचविचार कर बनाये जाना चाहिए। केन्द्रों के संबंध में परीक्षासमिति ने जो नियम बनाये हैं उनका पालन भी पूरी तरह से होना चाहिए।

परीक्षाओं का महत्त्व परीक्षकों के ज़िम्मेदारी के साथ काम करने पर भी बहुत कुछ निर्भर है। ऐसे ही व्यक्ति किसी विषय में परीक्षक नियुक्त किये जायँ जो उस विषय के विशेषज्ञ हों, अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हों और मातृ-भाषा की सेवा करने को तैयार हों। परीक्षकों का कार्य आज-कल अवैतनिकरूप से किया जाता है। कुछ सज्जनों की राय है कि परीक्षकों को प्रश्न-पत्र बनाने और उत्तर-पुस्तकें जांचने के लिए बिना फ़ीस दिये परीक्षक का कार्य उतनी ज़िम्मेदारी के साथ नहीं किया जा सकता, जितनी परीक्षकों से आशा की जा सकती है। सम्मेलन की आर्थिक दशा इस समय इतनी अच्छी नहीं है कि वह परीक्षा-शुल्क को बिना बढ़ाये परीक्षकों को कुछ दे सके। परीक्षा-शुल्क बढ़ाने से ग़रीब परीक्षार्थियों को बहुत कष्ट

होगा। भारतवासी बहुत ही ग़रीब हैं। कई परीक्षार्थियों को परीक्षा-शुल्क देने में आज-कल भी बहुत कठिनता पड़ती है। यदि परीक्षा-शुल्क बढ़ा दिया जाय तो कई परीक्षार्थी परीक्षा में सम्मिलित न हो सकेंगे फिर परीक्षा-शुल्क बढ़ाने पर भी सम्मेलन परीक्षकों को उतनी फ़ीस न दे सकेगा जो विश्वविद्यालयों के परीक्षकों के फ़ीस के चतुर्थांश भी हो। फिर भी यह कहा जा सकेगा कि फ़ीस की कमी के कारण परीक्षक परीक्षा का कार्य उतनी ज़िम्मेदारी से नहीं करते, जितनी उनसे आशा की जाती है। हमारी समझ में ऐसे व्यक्तियों को परीक्षक नियुक्त करने से कुछ लाभ नहीं जो अपनी ज़िम्मेदारी फ़ीस मिलने पर ही महसूस करते हैं। प्रयत्न करने पर अभी ऐसे परीक्षक हमें काफ़ी संख्या में मिल सकते हैं जो अपना कार्य अवैतनिक रूप से ज़िम्मेदारी के साथ करने को तैयार हों। हां, यह आवश्यक है कि उनको एक सौ से अधिक उत्तर-पुस्तकें जाचने का कष्ट न दिया जाय। इसलिए प्रत्येक प्रश्नपत्र के लिए उतने परीक्षक नियुक्त किये जाया करें जितने सौ विद्यार्थियों ने उसमें परीक्षा देने के लिए आवेदन-पत्र भेजे हों। परंतु साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि किसी प्रश्नपत्र की सब उत्तर-पुस्तकें एक ही स्टेंडर्ड से जाची जायँ। इसके लिए प्रत्येक प्रश्नपत्र में एक प्रधान परीक्षक नियुक्त होना चाहिए जिसका यह कार्य होगा कि वह प्रश्नपत्र निर्माण करे, कुछ उत्तर-पुस्तकें जाच कर उस प्रश्नपत्र के प्रत्येक परीक्षक के पास शीघ्र भेज दे, और जब सब परीक्षक उत्तर-पुस्तकें जांच कर उसके पास भेज दें तो प्रत्येक परीक्षक की कुछ उत्तर-पुस्तकें वह फिर से जाँचे और यदि उसे यह मालूम हो कि सब उत्तर-पुस्तकें एक स्टेंडर्ड से नहीं जांची गई हैं तो परीक्षकों-द्वारा दिये गये अंकों में वह घटाने-बढ़ाने की सिफ़ारिश परीक्षामन्त्री के पास भेज दें।

इस लेख में दिये गये तरीक़ों के अनुसार कार्य करने से हमारी समझ में सम्मेलन की परीक्षाओं का महत्त्व और उपयोगिता बहुत बढ़ जायगी।

दयाशंकर दुबे

२—प्रयाग-विश्वविद्यालय का एक प्रशंसनीय कार्य

युक्तप्रान्त के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों की बी० ए० या एम० ए० की परीक्षाओं के लिए हिन्दी वैकल्पिक विषय मान लिया गया है। परन्तु हिन्दी लेनेवालों की संख्या अभी बहुत कम है। अन्य सब विषयों का अध्ययन अँगरेज़ी-द्वारा ही होता है और परीक्षाओं में उत्तर भी अँगरेज़ी में ही देने होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि इन विश्वविद्यालयों के अधिकांश विद्यार्थी अपनी मातृ-भाषा में किसी विषय के सम्बन्ध में न तो कुछ लिख सकते हैं और न किसी को कुछ समझा ही सकते हैं। यही कारण है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षाप्राप्त नवयुवकों-द्वारा जनता में ज्ञान का काफ़ी प्रचार नहीं हो रहा है। इस कमी को कुछ अंशों में दूर करने के लिए प्रयाग-विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने हिन्दी या उर्दू को कुछ विषयों की परीक्षाओं में स्थान देने का श्रीगणेश किया है। आगामी वर्ष से अर्थशास्त्र में बी० ए० आनर्स लेनेवाले प्रत्येक परीक्षार्थी को पांच प्रश्न-पत्रों में से एक प्रश्न-पत्र का उत्तर हिन्दी या उर्दू में देना होगा। इस प्रश्न-पत्र के उत्तर में परीक्षार्थियों को अर्थशास्त्र के किसी विषय पर हिन्दी या उर्दू में एक निबन्ध लिखना होगा। इसके लिए प्रत्येक परीक्षार्थी को हिन्दी या उर्दू तथा अर्थशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का काफ़ी ज्ञान प्राप्त करना होगा। अब भविष्य में इस विश्वविद्यालय से अर्थशास्त्र लेकर जो विद्यार्थी बी० ए० आनर्स परीक्षा उत्तीर्ण होंगे उनमें अर्थशास्त्र-विषय पर हिन्दी या उर्दू में लिखने की साधारण योग्यता अवश्य होगी और यह आशा की जाती है कि इन नवयुवकों से अर्थशास्त्र-सम्बन्धी हिन्दी या उर्दू-साहित्य-वृद्धि और जनता में अर्थशास्त्र के ज्ञान के प्रचार में बड़ी सहायता मिलेगी। इस प्रशंसनीय कार्य के लिए हम प्रयाग-विश्वविद्यालय के

अधिकारियों और ख़ास कर उसके वाइसचैन्सेलर डाक्टर गंगानाथ झा को बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि अर्थ-शास्त्र के समान इतिहास, राजनीति, विज्ञान इत्यादि अन्य विषयों की आनर्स परीक्षाओं में भी हिन्दी को शीघ्र स्थान मिलेगा। हम युक्तप्रान्त के अन्य विश्वविद्यालयों के अधिकारियों से—ख़ास कर काशी-विश्वविद्यालय के अधिकारियों से और महामना पण्डित मदनमोहन जी मालवीय से—अनुरोध करते हैं कि वे भी बी० ए० आनर्स या एम० ए० के प्रत्येक विषय की परीक्षा में हिन्दी को शीघ्र स्थान देने की कृपा करें।

एक शिक्षा-प्रेमी

विदेश

१—कनाडा में जन-संख्या-वृद्धि

कनाडा समृद्धि-सम्पन्न उपनिवेश है। उसमें प्राकृतिक सम्पत्ति आवश्यकता से अधिक है। यदि उसका पूरा उपयोग किया जाय तो कनाडा संसार के बड़े समृद्धि-शाली देशों में से हो सकता है। परन्तु कनाडा में जन-संख्या बहुत कम है। आदिम-निवासी 'लाल-भारतीय' तो कभी के नष्ट हो चुके है, बीच में एशिया से जो लोग वहाँ जाकर बस गये थे तथा जिन्होंने अपने बाहु-बल से कनाडा को उन्नत किया उनकी उन्नति गोरे लोग न देख सके और कनाडा में भारतीयों, चीनियों तथा जापानियों का आगमन रोकने के लिए नाना प्रकार के कड़े विधान बनाये गये। फल यह हुआ कि वहाँ जन-संख्या में यथेष्ट वृद्धि न हो सकी।

जन-संख्या की कमी के कारण राष्ट्रीय क्षति होने लगी। इसी से कनाडा ने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि जब तक वह अपनी आबादी न बढ़ायेगा तब तक उसकी-उन्नति होने की नहीं। किस प्रकार आबादी बढ़ाई जाय, किस प्रकार बाहरी लोगों को कनाडा में बसा कर वहाँ की बेकाम पड़ी अच्छी भूमि से काम लिया जाय, यह प्रश्न कनाडा के राजनीतिज्ञ बहुत दिनों से सोच रहे थे। इस विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव 'वैनकोवर नार्थ' से कनाडा की औपनिवेशिक पार्लीमेंट के अनुदार सदस्य ब्रिगाडियर जेनरल मेकरेई का है। समस्त संसार के लिए यह प्रस्ताव आदर्श माना जाता है। ऐसा अनुमान है कि यदि यह प्रस्ताव कार्यान्वित हो जायगा तो दस वर्ष के भीतर कनाडा की ५,००,००,००० एकड़ भूमि बस जायगी तथा २,५०,००० और ३,००,००० किसान तथा उनके कुटुम्बियों में बँट जायगी और कनाडा की जन-संख्या में कम से कम २०,००,००० की बढ़ती (स्थायी) हो जायगी।

कनाडा में लाखों एकड़ हलके शहतीरों के जङ्गल हैं। मैकरापे का प्रस्ताव है कि सरकार अपने खर्च से उन एकड़ों को साफ़ कराये। उन पर मामूली किसानों के काम भर खेतों के अलग बँटवारे करके उनके रहने योग्य साधारण मकान बनवा दे। इस प्रकार खेत साफ़ कराने में सरकार को १२'५० डालर फ़ी एकड़ या एक आदमी के खेत के लिए १,००० डालर खर्च होंगे। लट्ठे के मकान तथा 'बार्न' बनाने में और ५०० डालर व्यय होंगे। सरकार ५ वर्ष के लिए कर से मुक्त कर यह भूमि बसनेवाले को देगी तथा उसे साधारण व्यय के लिए खेत वग़ैरह को उपयोग में लाने के लिए अधिक से अधिक २० डालर फ़ी एकड़ के हिसाब से देगी। खेती प्रारम्भ हो जाने पर उस भूमि का मूल्य सरकार अपने सब व्यय के हिसाब से २५ डालर फ़ी एकड़ लगायेगी। किसान को तीस वर्ष के भीतर ११४.७५ डालर वार्षिक के हिसाब से भूमि का दाम सरकारी रुपया मय सूद के (पाँच वर्ष का

कर माफ़ रहेगा) चुकता कर देना होगा। उसके बाद भूमि सरकार की न होकर उसी की हो जायगी। इस कार्य के लिए सरकार को ३,००,००,००० डॉलर वार्षिक सहायता के रूप में ख़र्च करने पड़ेंगे, परन्तु इस रक़म को वह ज़मीन के ख़ास पट्टे लिख कर उगाह सकती है और नये बसनेवालों से रुपया मिलने पर अदा कर देगी। नवीन निवासियों की सामाजिक आवश्यकता-पूर्ति की भी गुञ्जायश की गई है। अननुपातिक-जनसंख्या वृद्धि रोकने तथा सामाजिक दूषण उत्पन्न होने के भय से बाहर से स्त्री-संख्या बढ़ाने की भी पूरी चेष्टा की जायगी तथा निवासियों को सामाजिक व्याख्यान तथा उपदेश देने और उनकी कृषि-शिक्षा तथा अध्ययन के लिए सरकार की ओर से सामुदायिक क्लब भी खोले जायँगे।

अस्तु अपनी उर्वरा भूमि को उपयोग में लाकर राष्ट्रीय धन बढ़ाने का यह प्रस्ताव बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

२—पोर्टोरिको की नवीन कामना

स्पेनिश-महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप सन् १८९८ में पोर्टोरिको का छोटा द्वीप अमेरिका के संयुक्त राज्य को मिला था। १९१७ में इस द्वीप को नागरिकता के अधिकार मिले। १९१७ के 'ऑरगेनिक एक्ट' के अनुसार अमरीकन विधान की सम्पूर्ण सुविधायें तथा अधिकार उसे मिल गये। एक व्यवस्थापक सभा की स्थापना हो गई। एक मंत्रणा-परिषद् भी बना। इस समय मंत्रणा-परिषद् में १९ तथा व्यवस्थापक महासभा में ३९ सदस्य हैं। संयुक्त-राज्य ने इन पर यह नियन्त्रण अवश्य रक्खा कि गवर्नर चुनने का अधिकार न देकर अमरीकन राष्ट्रपति स्वयं अपना गवर्नर इनके लिए नियुक्त कर देता है, जो व्यवस्थापक सभा के किसी निर्णय को रद कर सकता है। उसके विरुद्ध अमरीकन राष्ट्रपति से अपील की जा सकती है।

परन्तु पोर्टोरिको-निवासी इन अधिकारों से कभी सन्तुष्ट न रहे। वे निरन्तर आन्दोलन करते रहे। गत हवाना-(Havana) सम्मेलन में उन्होंने यह प्रार्थना की कि ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत कनाडा की भाँति उन्हें भी स्वाधीनता मिले। उनके असन्तोष का सबसे बड़ा कारण अमरीकन आय-कर है। द्वीप के शासन-प्रबन्ध में पूरे ग्यारह सौ लाख डॉलर ख़र्च होते हैं। इसमें से नौ सौ लाख (९ करोड़) डालर संयुक्त-राज्य की सरकार आय-कर के रूप में वसूल कर लेती है, पोर्टोरिको-वासी इसके विरुद्ध हैं। उन्होंने कई बार चेष्टा की कि यह कर न लिया जाय तथा पोर्टोरिको अपने शासन में पूर्ण स्वतन्त्र रहे। अब उन्होंने एक पत्र अपनी मंत्रणा-परिषद् तथा व्यवस्थापक महासभा के अध्यक्षों की ओर से कर्नल लिंडबर्ग-द्वारा अमेरिकन राष्ट्रपति के पास भिजवाया है कि 'हम जनता-द्वारा जनता का शासन चाहते हैं, अतः हमें यह अधिकार मिले कि हम अपना गवर्नर स्वयं चुनें'। वे यह भी चाहते हैं कि वे पूरी तरह से स्वतन्त्र मान लिये जायँ तथा उन्हें यह अधिकार रहे कि अपनी चुंगी को वे कम करें या बढ़ायें।

द्वीपवासियों की इस माँग का राष्ट्रपति कूलिज ने जो उत्तर दिया है वह वाशिंग्टन के 'न्यूज़' समाचार-पत्र के अनुसार 'व्हाइट हाउस के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण काग़ज़ है'। राष्ट्रपति ने जो पत्र भेजा है उसका सारांश यह है—

"पोर्टोरिको की सरकार संयुक्त-राज्य के अन्तर्गत किसी भी राज्य से अधिक प्रभुत्व का भोग कर रही है। वहाँ के नागरिकों को अमेरिकन नागरिकों के समान अधिकार प्राप्त है। जब हमने पोर्टोरिको पर अधिकार किया था तब वहा की जनता अशिक्षित, दरिद्र, अकाल-पीड़ित, अज्ञान, रुग्ण तथा शासनाधिकार से वञ्चित थी। हमने रोग हटाया, दरिद्रता दूर की और सारी विपत्तियां हटाकर प्रजातन्त्र-शासन की स्थापना कराई। संयुक्त-राज्य के साथ स्वतन्त्र व्यापार-अधिकार के कारण वहाँ का रोज़गार नौगुना बढ़ा है। जो लोग उसे हमसे अलग कराना चाहते हैं उन्हे समझ लेना चाहिए कि हमसे उनका अहित ही होगा।"

परन्तु स्वाधीनता-प्रेमी पोर्टोरिकोवासियों का कहना है कि हम पहले जितने दरिद्र थे उतने अब भी हैं। पोर्टोरिको की व्यवस्थापक-महासभा के आर्थिक कमिश्नर लुई मुनोज़मारिन ने न्यूयार्क के 'वर्ल्ड' पत्र के एक प्रतिनिधि से कहा है—

"संयुक्त-राज्य की सरकार पोर्टोरिको की सरकार के प्रति उदार अवश्य है, पर पोर्टोरिको की सरकार से भी

विदेश

१—कनाडा में जन-संख्या-वृद्धि

नाडा समृद्धि-सम्पन्न उपनिवेश है। उसमें प्राकृतिक सम्पत्ति आवश्यकता से अधिक है। यदि उसका पूरा उपयोग किया जाय तो कनाडा संसार के बड़े समृद्धिशाली देशों में से हो सकता है। परन्तु कनाडा में जन-संख्या बहुत कम है। आदिम-निवासी 'लाल-भारतीय' तो कभी के नष्ट हो चुके हैं. बीच में एशिया से जो लोग वहां जाकर बस गये थे तथा जिन्होंने अपने बाहु-बल से कनाडा को उन्नत किया उनकी उन्नति गोरे लोग न देख सके और कनाडा में भारतीयों, चीनियों तथा जापानियों का आगमन रोकने के लिए नाना प्रकार के कड़े विधान बनाये गये। फल यह हुआ कि वहां जन-संख्या में यथेष्ट वृद्धि न हो सकी।

जन-संख्या की कमी के कारण राष्ट्रीय क्षति होने लगी। इसी से कनाडा ने यह अच्छी तरह समझ लिया है कि जब तक वह अपनी आबादी न बढ़ायेगा तब तक उसकी उन्नति होने की नहीं। किस प्रकार आबादी बढ़ाई जाय, किस प्रकार बाहरी लोगों को कनाडा में बसा कर वहां की बेकाम पड़ी अच्छी भूमि से काम लिया जाय, यह प्रश्न कनाडा के राजनीतिज्ञ बहुत दिनों से सोच रहे थे। इस विषय में सबसे महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव 'वैनकोवर नार्थ' से कनाडा की औपनिवेशिक पार्लीमेंट के अनुदार सदस्य ब्रिगेडियर जेनरल मेकरेई का है। समस्त संसार के लिए यह प्रस्ताव आदर्श माना जाता है। ऐसा अनुमान है कि यदि यह प्रस्ताव कार्यान्वित हो जायगा तो दस वर्ष के भीतर कनाडा की ५,००,००,००० एकड़ भूमि बस जायगी तथा २,५०,००० और ३,००,००० किसान तथा उनके कुटुम्बियों में बँट जायगी और कनाडा की जन-संख्या में कम से कम २०,००,००० की बढ़ती (स्थायी) हो जायगी।

कनाडा में लाखों एकड़ हलके शहतीरों के जङ्गल हैं। मैकरापे का प्रस्ताव है कि सरकार अपने ख़र्च से उन एकड़ों को साफ़ कराये। उन पर मामूली किसानों के काम भर खेतों के अलग बँटवारे करके उनके रहने योग्य साधारण मकान बनवा दे। इस प्रकार खेत साफ़ कराने में सरकार को १२'५० डालर फ़ी एकड़ या एक आदमी के खेत के लिए १,००० डालर ख़र्च होंगे। लट्ठे के मकान तथा 'बार्न' बनाने में और ५०० डालर व्यय होंगे। सरकार ५ वर्ष के लिए कर से मुक्त कर यह भूमि बसनेवाले को देगी तथा उसे साधारण व्यय के लिए खेत वग़ैरह को उपयोग में लाने के लिए अधिक से अधिक २० डालर फ़ी एकड़ के हिसाब से देगी। खेती प्रारम्भ हो जाने पर उस भूमि का मूल्य सरकार अपने सब व्यय के हिसाब से २५ डॉलर फ़ी एकड़ लगायेगी। किसान को तीस वर्ष के भीतर ११४.७५ डॉलर वार्षिक के हिसाब से भूमि का दाम सरकारी रुपया मय सूद के (पांच वर्ष का

कर माफ़ रहेगा) चुकता कर देना होगा। उसके बाद भूमि सरकार की न होकर उसी की हो जायगी। इस कार्य के लिए सरकार को ३,००,००,००० डॉलर वार्षिक सहायता के रूप में ख़र्च करने पड़ेंगे, परन्तु इस रक़म को वह ज़मीन के ख़ास पट्टे लिख कर उगाह सकती है और नये बसनेवालों से रुपया मिलने पर अदा कर देगी। नवीन निवासियों की सामाजिक आवश्यकता-पूर्ति की भी गुञ्जायश की गई है। अननुपातिक-जनसंख्या वृद्धि रोकने तथा सामाजिक दूषण उत्पन्न होने के भय से बाहर से स्त्री-संख्या बढ़ाने की भी पूरी चेष्टा की जायगी तथा निवासियों को सामाजिक व्याख्यान तथा उपदेश देने और उनकी कृषि-शिक्षा तथा अध्ययन के लिए सरकार की ओर से सामुदायिक क्लब भी खोले जायँगे।

अस्तु अपनी उर्वरा भूमि को उपयोग में लाकर राष्ट्रीय धन बढ़ाने का यह प्रस्ताव बड़ा महत्त्वपूर्ण है।

२—पोर्टोरिको की नवीन कामना

स्पेनिश-महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप सन् १८९८ में पोर्टोरिको का छोटा द्वीप अमेरिका के संयुक्त राज्य को मिला था। १९१७ में इस द्वीप को नागरिकता के अधिकार मिले। १९१७ के 'ऑरगेनिक एक्ट' के अनुसार अमरीकन विधान की सम्पूर्ण सुविधायें तथा अधिकार उसे मिल गये। एक व्यवस्थापक सभा की स्थापना हो गई। एक मंत्रणा-परिषद् भी बना। इस समय मंत्रणा-परिषद् में १९ तथा व्यवस्थापक महासभा में ३९ सदस्य हैं। संयुक्त-राज्य ने इन पर यह नियन्त्रण अवश्य रक्खा कि गवर्नर चुनने का अधिकार न देकर अमरीकन राष्ट्रपति स्वयं अपना गवर्नर इनके लिए नियुक्त कर देता है, जो व्यवस्थापक सभा के किसी निर्णय को रद कर सकता है। उसके विरुद्ध अमरीकन राष्ट्रपति से अपील की जा सकती है।

परन्तु पोर्टोरिको-निवासी इन अधिकारों से कभी सन्तुष्ट न रहे। वे निरन्तर आन्दोलन करते रहे। गत हवाना-(Havana) सम्मेलन में उन्होंने यह प्रार्थना की कि ब्रिटिश-साम्राज्यान्तर्गत कनाडा की भाँति उन्हें भी स्वाधीनता मिले। उनके असन्तोष का सबसे बड़ा कारण अमरीकन आय-कर है। द्वीप के शासन-प्रबन्ध में पूरे ग्यारह सौ लाख डॉलर ख़र्च होते हैं। इसमें से नौ सौ लाख (९ करोड़) डालर संयुक्त-राज्य की सरकार आय-कर के रूप में वसूल कर लेती है, पोर्टोरिको-वासी इसके विरुद्ध हैं। उन्होंने कई बार चेष्टा की कि यह कर न लिया जाय तथा पोर्टोरिको अपने शासन में पूर्ण स्वतन्त्र रहे। अब उन्होंने एक पत्र अपनी मंत्रणा-परिषद् तथा व्यवस्थापक महासभा के अध्यक्षों की ओर से कर्नल लिंडबर्ग-द्वारा अमेरिकन राष्ट्रपति के पास भिजवाया है कि 'हम जनता-द्वारा जनता का शासन चाहते हैं, अतः हमें यह अधिकार मिले कि हम अपना गवर्नर स्वयं चुनें'। वे यह भी चाहते हैं कि वे पूरी तरह से स्वतन्त्र मान लिये जायँ तथा उन्हें यह अधिकार रहे कि अपनी चुंगी को वे कम करें या बढ़ायें।

द्वीपवासियों की इस माग का राष्ट्रपति कूलिज ने जो उत्तर दिया है वह वाशिंग्टन के 'न्यूज़' समाचार-पत्र के अनुसार 'व्हाइट हाउस के इतिहास में सबसे महत्त्वपूर्ण कागज़ है'। राष्ट्रपति ने जो पत्र भेजा है उसका सारांश यह है—

"पोर्टोरिको की सरकार संयुक्त-राज्य के अन्तर्गत किसी भी राज्य से अधिक प्रभुत्व का भोग कर रही है। वहाँ के नागरिकों को अमेरिकन नागरिकों के समान अधिकार प्राप्त है। जब हमने पोर्टोरिको पर अधिकार किया था तब वहां की जनता अशिक्षित, दरिद्र, अकाल-पीड़ित, अज्ञान, रुग्ण तथा शासनाधिकार से वञ्चित थी। हमने रोग हटाया, दरिद्रता दूर की और सारी विपत्तियां हटाकर प्रजातन्त्र-शासन की स्थापना कराई। संयुक्त-राज्य के साथ स्वतन्त्र व्यापार-अधिकार के कारण वहाँ का रोज़गार नौगुना बढ़ा है। जो लोग उसे हमसे अलग कराना चाहते हैं उन्हें समझ लेना चाहिए कि हमसे उनका अहित ही होगा।"

परन्तु स्वाधीनता-प्रेमी पोर्टोरिकोवासियों का कहना है कि हम पहले जितने दरिद्र थे उतने अब भी हैं। पोर्टोरिको की व्यवस्थापक-महासभा के आर्थिक कमिश्नर लुई मुनोज़मारिन ने न्यूयार्क के 'वर्ल्ड' पत्र के एक प्रतिनिधि से कहा है—

"संयुक्त-राज्य की सरकार पोर्टोरिको की सरकार के प्रति उदार अवश्य है, पर पोर्टोरिको की सरकार से भी

अधिक चिन्तनीय उसकी जनता है। अमेरिकन-टैरिफ़ के कारण पोर्टोरिको को अमेरिकन बाजारों में निश्चित क़ीमत पर अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ ख़रीदनी ही पड़ती है। दरिद्र जनता को इस ऊँची क़ीमत के बदले तम्बाकू तथा चीनी के व्यवसाय में हक़ मिले हैं। इनके मालिक अधिकतर परदेशी हैं, जिनके लाभ का अंश रुपयों के रूप में कभी पोर्टोरिको नहीं लौटता। इसी से जनता में उतनी ही दरिद्रता है, जितनी ३१ वर्ष पूर्व थी"।

क्लीवलैंड के 'प्लेन लीडर' पत्र का कहना है कि अमेरिकनों तथा पोर्टोरिकनों में वंश, सभ्यता, आचार-विचार सभी में भेद है। अतः उन्हें स्वतन्त्र कर दो। राष्ट्रपति-निर्वाचन-युद्ध में पोर्टोरिको की समस्या भी काम करेगी।

३—दासता का अभिशाप

सभ्यता तथा उन्नति और स्वाधीनता तथा समानता के इस युग में भी संसार के कितने भागों में दासता का प्रचार बना हुआ है। ग़ुलामों का व्यापार अब भी होता है। जहाँ दासता का विशेष नाम नहीं है, वहाँ उसके विशेष रूप हैं। दक्षिण-अमेरिका के राज्यों में क़र्ज़ लेकर ग़ुलामी करनी अब भी प्रसिद्ध है। चीन में गोद लेने के नाम पर घर घर बच्चे ग़ुलाम बनाये जाते हैं। बेगार जो सरकारी तौर पर ग़ुलामी का कर ही है, राज्यों में जारी है। ठीके की मज़दूरी भी उसी श्रेणी में गिनी जाती है। लन्दन के 'डेली-मेल' पत्र से पता चलता है कि अबिसीनिया में दास रखना साधारण बात है, यद्यपि नाम के लिए वहाँ ग़ुलामों को पकड़ना या उनका व्यवसाय करना क़ानून के अनुसार निषिद्ध है। वहाँ के ग़ुलाम प्रायः भाग कर ब्रिटिश राज्य की सीमा केनिया में चले आते हैं, जिससे अधिकारियों को बड़ी चिन्ता होती है। सूदान में बहुत से भाग कर आते हैं, जिनके बसने का प्रबन्ध सूदान-सरकार कर देती है तथा अपराधियों को छोड़ किसी को वापस नहीं करती।

अफ़्रीका में सहारा-रेगिस्तान की सीमा पर भी दास-व्यापार ख़ूब होता है। यहाँ से ग़ुलाम पकड़ पकड़ कर दक्षिण मोरक्को, दक्षिण ट्रिपोली और कुफ़्रा ओसस में बेंचे जाते हैं। इनके अतिरिक्त चीन, एरिनिया, सुदूर पूर्व, हेजाज, लिबरिया, मोरक्को, रिओ डि ओरो तथा दक्षिण-पूर्व सहारा में भी यह व्यवसाय प्रचलित है। हेजाज में तथा अरब के और भागों में भी यह व्यवसाय बिलकुल खुला होता है।

दासत्व-प्रथा दूर करने के प्रयत्न लगातार हो रहे हैं। राष्ट्रपरिषद् ने १९२६ में दासत्व के विषय में अपना एक सम्मेलन किया था, जिसके प्रस्ताव को तत्काल ही २६ शक्तियों ने स्वीकार कर लिया था। औपनिवेशिक शक्तियों ने भी उसको स्वीकार किया था। १९२६ में उक्त परिषद् के सदस्यों ने एक दासत्व-कमीशन बनाया था। उसकी एक रिपोर्ट भी छपी है। उससे पता चलता है कि इस समय कम से कम ४० लाख तथा ५० लाख के भीतर ग़ुलाम संसार में अब भी हैं। दासत्व-निवारिणी समिति के सभापति चार्ल्स राबर्ट्स ने हाल में ही विज्ञप्ति-द्वारा सूचित किया है कि महासमर के बाद से २,५०,००० ग़ुलामों को ग्रेट ब्रिटेन मुक्त करा चुका है। टांगानायिका के शासित प्रदेश में महासमर के पूर्व १,८५,००० ग़ुलाम थे। मालिकों को बिना कुछ हर्जाना दिये यह प्रथा एक-दम तोड़ दी गई। नेपाल के महाराज ने इस प्रथा का अन्त कर ५३,००० दासों को मुक्त कर दिया। उत्तरी बर्मा से इस प्रथा को नाश करा कर सर हारकोर्ट बटलर ने ६,००० दास मुक्त कराये। सियरा लियोन की अदालत ने वहीं दासत्व-प्रथा को न्यायानुरूप स्वीकार किया। इससे बड़ी हलचल मची। ब्रिटिश-सरकार ने हस्तक्षेप किया तथा इसकी व्यवस्थापक-सभा से यह स्वीकृत करा लिया कि यह प्रथा एक-दम अन्यायमूलक है। १ ली जनवरी से २,१५,००० दास छूट गये। ब्रिटिश-सरकार ने राष्ट्र-परिषद् के सम्मुख यह भी प्रस्ताव किया था कि समुद्र के द्वारा ग़ुलामों का व्यापार करना 'डकैती' मान लिया जाय। पर अन्य शक्तियों की पूर्ण सम्मति न मिलने के कारण यह प्रस्ताव अभी पड़ा हुआ है।

४—चीन की राज्यक्रान्ति

चीन के राष्ट्रीय दल ने अद्भुत साहस का परिचय देते हुए जापान का सामना किया और घरेलू विरोध तथा अन्तर्राष्ट्रीय बदनामी के डर से जापान को भी अपना विरोध रोकना पड़ा। यद्यपि जापान ने यह घोषित कर दिया था कि उसे उत्तरी या दक्षिणी किसी दल की विजय से सरोकार

नहीं है, तो भी आत्म-रक्षा के नाम से उसने पेकिङ्ग के पास अपनी सेना बढ़ाने में कमी न की। दूसरी ओर राष्ट्रीय सेना ने उत्तरी सेना को शान्ति से न बैठने दिया। केवल अपनी दुर्बलता के कारण ही चांग-सो-लिन ने गृह-युद्ध स्थगित किया था। राष्ट्रीय दल यह समझ गया और वह पेकिंग पर चढ़ दौड़ा। फल यह हुआ कि चांग-सो-लिन को सीधे पेकिंग में जाकर शरण लेनी पड़ी। वहाँ से भी राष्ट्रीय सेना के आक्रमण होने पर वह ४ थी जून को पेकिंग छोड़ कर भागा। राह में किसी ने उसकी गाड़ी पर बम फेंका, जिससे एक डिब्बा साफ़ उड़ गया। कई आदमी मरे तथा चांग-सो-लिन को गहरी चोट आई। समाचार-पत्रों में अफ़वाह उड़ी कि वे मारे गये, पर पीछे समाचार का खण्डन हुआ और उनके पुत्र ने विज्ञप्ति निकाली कि वे अच्छे हो रहे हैं। एक सप्ताह के बाद किसी चीनी ने उन्हें मार डालने की चेष्टा की, पर वह असफल रहा। दूसरी ओर ५ वीं जून तक पेकिंग पर राष्ट्रीय सेना का पूरा अधिकार हो गया और नर-संहार समाप्त हो गया। राष्ट्रीय सेना ने पेकिंग पर अधिकार करके फङ्ग-हू-साङ्ग (राष्ट्रीय सेना के उप-प्रधान) ने वाङ्ग-शि-चीन को वहा का गवर्नर बना दिया। चार दिन बाद ही उप-प्रधान ने पेकिंग को राष्ट्रीय-शासन में लेना घोषित किया और विदेशियों की रक्षा करना स्वीकार किया। १५ दिन के भीतर ही उत्तरी सेना पूरी तरह बन्दी कर ली गई। तोंस्तीन पर भी चीनी राष्ट्रीय दल का अधिकार हो गया। इस अवसर पर कुछ जापानी मरे, जिनकी मृत्यु से जापान पुनः उग्र हो उठा और उसने चीन को धमकी दी। परन्तु राष्ट्रीय दल जापान से विरोध करने के लिए प्रस्तुत नहीं दीखता। चीन के राष्ट्रीय-निर्माण के इस अत्यन्त महत्त्व-पूर्ण सु-अवसर को वह छोड़ना नहीं चाहता! इसी कारण वह चुपचाप उत्तरी सेना के पूर्ण विच्छेद में लगा हुआ है।

५—योरप का राजनैतिक वायुमण्डल

इस मास योरप में सबसे महत्त्व-पूर्ण कार्य जर्मनी की रीशटॉग-महासभा का नवीन निर्वाचन था, जिसके परिणाम से यह प्रमाणित हो गया कि जर्मन अधिकतर गणतन्त्र के पक्ष में है—वे शाही-दल का जो पुनः राजसत्ता स्थापित करना चाहता है, समर्थन नहीं कर सकते। सरकारी दल का अल्पमत रहा तथा साम्यवादी सोशलिस्ट दल की विजय रही। यद्यपि विजय पूर्ण नहीं, पर आनुपातिक दृष्टि से पूर्ण कही जा सकती है। इसका कारण जर्मनी में बढ़ती हुई बेकारी, पूँजीपतियों की कुचेष्टा तथा निर्वाचन के दिन सरकार-द्वारा १०० आदमियों की गिरफ़्तारी बतलाई जाती है। दूसरी बात मध्ययोरप की डावाडोल स्थिति है। पोलेंड-लिथुआनिया के विरोध की बात पहले कही जा चुकी है। अब लिथुआनिया ने अपने नवीन विधान में विलना नगर को अपनी राजधानी बनाया है। यह नगर महासमर के बँटवारे के कारण पोलेंड के अधिकार में है। पोलेंड ने इसे ज़बर्दस्ती अपने अधिकार में कर लिया था तथा महाशक्तियों ने इसे मान भी लिया था। इँग्लेंड ने इस विषय में मध्यस्थता करना चाहा, पर अपनी नीति के कारण यह स्पष्ट कर दिया कि वह पोलेंड के पक्ष में है। राष्ट्र-परिषद् में यह प्रश्न विचारार्थ आया था तथा इँग्लेंड की धमकियों के बाद भी निर्णय न हो सकने के कारण सितम्बर की बैठक के लिए स्थगित किया गया। दूसरी ओर दक्षिणी टिरोल में आस्ट्रो-स्लाव जनता के साथ घोर कुव्यवहार के कारण हंगरी, आस्ट्रिया तथा इटली का मनोमालिन्य बढ़ रहा है। ट्रान्स-सिलवानिया में हंगरियन जनता के साथ रूमानियन सरकार के अत्याचार के कारण दोनों सरकारों में बड़ा मनोमालिन्य हो गया है। राष्ट्र-परिषद्, बराबर चेष्टा करने पर भी किसी प्रकार निर्णय या समझौता न करा सका! फ़्रान्स में यद्यपि नवीन निर्वाचन के कारण सरकारी-पक्ष ही प्रबल रहा, तो भी पॉयनकेयर-मन्त्रि-मण्डल अस्थिर दीख पड़ता है। इँग्लेंड में नवीन-निर्वाचन होनेवाला है। स्त्री-मताधिकार के कारण अब लाखों स्त्रियों को वोट देने का अधिकार हो गया है। इसलिए चुनाव में प्रतिद्वन्द्विता और भी बढ़ जायगी।

स्वदेश

१—भारतीय नौ-सेना

यद्यपि भारतीय व्यवस्थापक-महासभा ने भारतीय नौ-सेना के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था, ब्रिटेन-मज़दूर-दल ने इसका विरोध किया था तो भी अपने विशेष अधिकार से ब्रिटिश-मंत्रिमण्डल ने भारतीय शाही नौ-सेना (सामुद्रिक) की रचना कर दी। इस सेना में प्रति-वर्ष एक भारतीय लिया जायगा। भारतीय व्यवस्थापक-महासभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह ब्रिटिश नेवल डिसिप्लिन एक्ट के कुछ अंशों को छोड़कर अवशिष्ट धाराओं को कार्यरूप में लाये। पर महासभा ने इस धारा को अस्वीकार कर दिया है। इस सेना में एक विशेष बात यह रक्खी गई है कि आवश्यकता पड़ने पर इसे ब्रिटिश-सरकार अपने काम से कहीं भी भेज सकती है। उस समय भी उसका व्यय उठाने का वह ज़िम्मा नहीं लेगी। इस नवीन रचना से भारतीय कर-दाता तथा सार्वजनिक लोक-मत अत्यन्त असन्तुष्ट है।

२—मैसूर की आर्थिक उन्नति

मैसूर-राज्य का आर्थिक वर्ष समाप्त हो गया। आय-व्यय के विवरण से पता चलता है कि 'सरकार ने अधिक आय होते हुए भी इस बात की चेष्टा की कि आय कम हो, ज़रूरी सार्वजनिक कामों में व्यय अधिक हो,' इसीलिए बजट में सिर्फ़ एक लाख की ही बढ़ती रही। १९२७-२८ के संशोधित (पुनरावृत्त) अनुमान से पता चलता है कि आय में ९ लाख की वृद्धि हुई, पर उतना ही व्यय में बढ़ा दिया गया। १९२८-२९ में पूरी आमदनी का अनुमान ३५६ लाख रुपये है। यह रक़म अब तक की 'आय की रक़मों में सबसे अधिक है।' व्यय भी ३६५ लाख रुपये का अनुमान किया जाता है। इसमें पूरे साढ़े दस लाख रुपये मैसूर-सरकार ने प्रारम्भिक शिक्षा की वृद्धि तथा उन्नति के लिए अलग रख दिये हैं। प्रतिनिधि सभा में व्याख्यान देते समय दीवान महोदय ने कहा था 'हम रुपये बटोरने से अच्छे कार्यों में व्यय करना अच्छा समझते हैं।' सरकारी सूचना है कि वर्षों पूर्व मैसूर के सरकारी नौकरों की—दीवान की भी—जितनी तनख़्वाह थी, उतनी ही आज भी है। आय बढ़ने पर भी वेतन नहीं बढ़ाया गया है।

३—संयुक्त-प्रान्तीय पबलिक हेल्थ बोर्ड के निश्चय

जून में नैनीताल में संयुक्त प्रान्तीय पबलिक हेल्थ बोर्ड की बैठक हुई थी। उसकी कितनी ही स्वीकृतियाँ बड़ी महत्त्वपूर्ण हैं। वे ये हैं—

(१) देहरादून में ४६,६२१) के अनुमानित व्यय से संक्रामक रोगों का एक अस्पताल खोला जाय।

(२) अलीगढ़ के जल-कल की व्यवस्था जिसका अनुमानित व्यय ७,४९,६४३) है, स्वीकृत की गई।

(३) मथुरा की पुलिस लाइन के पीछे गड्ढों को सुखाने और बहाने के लिए ७,९६३) का ख़र्च मंज़ूर किया गया।

(४) ८,१४,७४८) के अनुमानित व्यय से हरिद्वार में पनाले बनाने की तजवीज़ स्वीकृत की गई।

(५) २,२००) लगा कर परीक्षा के लिए 'लिक्वेफ़ाइंग टैंक लैट्रीन' ख़रीदा जायगा।

(६) क्षयी, प्लेग, हैज़ा, मलेरिया, बाल-कल्याण आदि के लिए सिनेमा फ़िल्म दिखाकर जन-साधारण का अज्ञान दूर करने के लिए १२,०००) रुपये की और मंज़ूरी मिली।

(७) नोटिफ़ाइड टाउन एरिया, ग्रामों तथा पञ्चायत और ग्राम की सफ़ाई की धारा के अन्तर्गत स्थानों की सफ़ाई तथा "सैनिटेशन" के लिए १,२६,०५२) की और मंज़ूरी मिली।

(८) लखनऊ को मलेरिया के प्रकोप से बचाने के लिए यह प्रस्ताव है कि गोमती में पक्के नाले बनवा दिये जायँ जिससे होकर शहर की गन्दगी सब उसी में आये। लखनऊ को 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट', म्यूनिसिपलबोर्ड तथा पबलिक हेल्थ

विभाग के सुपरिंटेंडिंग इंजीनियरों ने मिलकर एक व्यवस्था सिविल लाइन में पनाले बनाने के विषय में पेश की थी। इसमें कम व्यय से बहुत लाभदायक काम होता। इस विषय मे यह आज्ञा हुई कि बोर्ड के इंजीनियर इसको दूसरी सभा में विचारार्थ पेश करें।

४—देशी नरेशों के अधिकार

देशी नरेशों के अधिकार तथा उनके साथ सम्बन्ध-निर्णय के लिए ब्रिटिश-सरकार ने जो बटलर-कमेटी बैठाई है वह भारत में अपना आधा काम समाप्त कर गर्मी के कारण विलायत चली गई है और वहाँ वह अब अपना अवशिष्ट काम करेगी। देशी नरेशों के अधिकारों के लिए लड़नेवाले नरेश भी क्रमशः वहाँ पहुँच गये हैं। नरेन्द्र-मण्डल के प्रधान पटियाला-नरेश, काश्मीर-नरेश आदि इँग्लेंड पहुँच गये हैं। उनकी ओर से कमिटी के सम्मुख वकालत करने के लिए सर लेसली-स्कॉट तथा दो और प्रसिद्ध वकील नियुक्त हुए हैं। सर लेस्ली-स्काट ने कमिटी के सम्मुख पेश करने के लिए एक मसविदा बनाया था। उस पर अप्रैल में बम्बई मे 'प्रिंसेज़-सम्मेलन' करके विचार हुआ। उस समय बैठक की कारवाई का पत्रों को पता न दिया गया। पीछे—हाल में—जब सम्मेलन की कारवाई का पता चला तब उससे ज्ञात हुआ कि विचार के बाद सर स्कॉट के मसविदे मे बहुत कुछ काट-छांट हो गई। यह भी आशा की जाती है कि इँग्लेंड में भी कुछ काट-छाँट हो। स्कीम पहले तीन ज़रूरतों को पूरा किया चाहती है।

(१) राज्यों को अपने आर्थिक तथा राजनैतिक अधिकारों के पालन में स्वातन्त्र्य मिले जिससे वे अपने साधनों-द्वारा अपने राज्य की उन्नति कर सकें।

(२) साम्राज्य तथा सम्पूर्ण भारत के हित की दृष्टि से एक संस्था को जन्म देना।

(३) अत्यन्त अनुचित कुशासन के समय ब्रिटिश-हस्तक्षेप के लिए नियम बनाना।

स्कीम के अनुसार तीन नवीन संस्थायें बनाई जानी चाहिए।

(क) 'इंडियन स्टेट्स कौंसिल—इस कौंसिल मे वायसराय सभापति होंगे, राज्यों के तीन प्रतिनिधि—जिनमें या तो मन्त्री या नरेश होंगे—रहेंगे। भारत से बिलकुल सम्बन्ध रखनेवाले दो अँगरेज होंगे और राजनैतिक विभाग का अध्यक्ष होगा। इस संस्था का कार्य राज्यों के हितों की रक्षा करना होगा। यह संस्था भारत-सरकार तथा देशी राज्यों की सरकारों के बीच जो प्रश्न उठेगा उसे सुलझायेगा।

(ख) यूनियन कौंसिल—पारस्परिक-सम्बन्धी बातों पर विचार करने के लिए इंडियन स्टेट्स कौंसिल और गवर्नर जेनरल की कौंसिल की सम्मिलित बैठक ही यूनियन कौंसिल कहलायेगी। ऐसे विषयों पर जिनमें देशी नरेशों तथा ब्रिटिश भारत के कर्त्तव्य निश्चित नहीं हैं तथा जो भारत की रक्षा और विदेशी नीति आदि के विषय हैं, यही सम्मिलित कौंसिल विचार करेगी।

(ग) यूनियन सुप्रीम कोर्ट—

देशी नरेशों मे 'पञ्चायत' या समझौते की एक अदालत स्थापित करने की पूर्व-भावना का परिणाम यह संस्था है। इसमें एक चीफ़ जस्टिस (प्रधान न्यायाधीश) तथा दो आजीवन-नियुक्त, बहु-वेतनभोगी, ग्रेट-ब्रिटेन से चुने निष्पक्ष न्यायाधीश होंगे। इनको मिला कर एक सर्वोच्च कोटि का न्यायालय बनेगा, जिसमें किसी भी न्याय-सङ्गत विषय पर विचार होगा। भारत-सम्राट् तथा देशी नरेशों के बीच में किसी सन्धि या अधिकार के सम्बन्ध से विरोध होने पर भी समझौते करने के लिए या कार्यक्षेत्र निर्दिष्ट करने के लिए यही अदालत निर्णय करेगी। इंडियन स्टेट्स कौंसिल तथा सम्राट् मे यदि विरोध की कोई बात होगी तो वह भी इसी न्यायालय के सम्मुख आयेगी। यदि ब्रिटिश-भारत का कोई क़ानून या देशी राज्य का कोई क़ानून एक दूसरे की उन्नति या

अधिकार में बाधक होता होगा तो इस सम्बन्ध में यही न्यायालय न्याय करेगा। किसी राजनैतिक मत-भेद में यहीं से निश्चय होगा। यह बात ध्यान में रखने की है कि यह न्यायालय जो निर्णय करेगा उसके विरुद्ध प्रिवी-कौंसिल में अपील की जा सकती है।

नरेन्द्र-मण्डल के अधिकार भी बढ़ाये जायँगे। इस संस्था को यह अधिकार देने का प्रस्ताव है कि यह किसी देशी राज्य के सम्बन्ध में उठनेवाले प्रश्न को, उस राज्य की सम्मति से, इंडियन स्टेट्स कौंसिल के सम्मुख विचारार्थ भेज दे तथा कौंसिल के निर्णयों पर प्रस्ताव पास करे।

राजनैतिक विभाग के विषय में यह निश्चय है कि वह इंडियन स्टेट्स कौंसिल के अन्तर्गत काम करे तथा देशी नरेशों के आन्तरिक मामलों में उनके हस्तक्षेप करने का अधिकार परिमित कर संकुचित कर दिया जाय। देशी नरेशों को यह अधिकार रहे कि वे इस विभाग के विरुद्ध इंडियन स्टेट्स कौंसिल तथा सुप्रीम कोर्ट में मामला चला सकें। स्टेट्स कौंसिल पोलिटिकल विभाग के कर्मचारियों के कार्य-क्षेत्र के विषय में एक नया मैनुअल तैयार करे जिसके अनुसार वे कार्य करें।

बम्बई में देशी राज्य-प्रजा-सम्मेलन मई के तृतीय सप्ताह में हुआ था। इसमें मणिलाल कोठारी ने कहा था कि इस डर से कि स्वराज्य-सरकार हो जाने पर देशी नरेशों का पद गिर जायगा वे भारत से नाता तोड़ कर सीधे ब्रिटिश-सम्राट् से सम्बन्ध जोड़ना चाहते हैं। पण्डित मोतीलाल नेहरू ने कहा था—"ब्रिटिश-भारतीय जनता जब तक देशी जनता को अपने साथ न लेगी, दोनों की राजनैतिक उन्नति नहीं हो सकती। देशी नरेश बटलर-कमेटी के सामने पेश करने के लिए अर्ज़ियाँ तैयार करा रहे हैं, पर उनकी प्रजा की आवाज़ सुनने का कोई साधन नहीं है। अगर भारत में स्वराज्य होगा तो देशी नरेशों को उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना होगा जैसा ब्रिटिश-भारत सरकार के साथ था। भारत देशी राज्यों को सेना, विदेशी नीति तथा पुलिस में स्वाधीनता न देगा। बटलर-कमेटी देशी राज्यों की प्रजा तथा ब्रिटिश-भारत में दुर्भेद्य दुर्ग खड़ा करने के लिए बनी है, जिससे उनका सम्बन्ध एक-दम टूट जाय। इनके विषय में कोई स्कीम या जाँच-पड़ताल करने के लिए देशी नरेश, देशी राज्यों की प्रजा, ब्रिटिश-भारत-सरकार तथा ब्रिटिश भारत-प्रजा—इस प्रकार चार दलों के सम्मिलित सम्मेलन की ज़रूरत है। बम्बई में नरेशों ने पारस्परिक मतभेद मिटाने के लिए जिस कौंसिल वा कोर्ट की स्थापना स्वीकार की है वह मामले को और उलझा देगा। उन्हें अपने अधिकार भारतीय जनता, अपनी प्रजा से प्राप्त करना चाहिए, न कि क़ानून या वार आफ़िस से।"

५—सत्याग्रह तथा हड़ताल

बारदोली-सत्याग्रह तथा मज़दूरों की अशान्ति के विषय में सरस्वती के पिछले अङ्क में सविस्तर लिखा जा चुका है। यहाँ इतना ही जान लेना पर्याप्त होगा कि हड़तालों की समाप्ति न होकर वृद्धि होती जा रही है। लिलुआ की हड़ताल ज्यों की त्यों बनी है। एजेन्ट ने २८ मई को कारखाना इसलिए खुलवा दिया कि जिसे काम पर लौटना हो, आ जाय। इस पर कई सौ चीनियों ने काम शुरू किया, पर हड़ताली भीतर घुस गये और उन्होंने बड़ा गड़बड़ मचा दिया। मध्यस्थों ने उन्हें शान्त कर बाहर किया। हड़तालियों ने आसनसोल-कारखाने में भी सहानुभूति के रूप में हड़ताल करा दी। कानपुर में भी श्रम-पूँजी के पूर्ववर्ती विवाद के कारण हड़ताल हो गई। बम्बई के हड़तालियों तथा मिलों के मालिकों में समझौते की नौबत आ पहुँची थी।, पर हड़तालियों का कथन है कि मिलों के मालिकों के हठ के कारण समझौते की बातचीत टूट गई और समझौता-समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित की गई। हड़ताल की यही दशा है। बारदोली-सत्याग्रह में भी नित्य नवीनता उत्पन्न होती जा रही है। बारदोली-सत्याग्रह के लिए एक फंड खोला गया है, जिसमें ८०,०००) रुपये से अधिक इकट्ठे हो गये। १२ जून को महात्मा गांधी की प्रेरणा से कांग्रेस के सभापति डाक्टर अन्सारी के आदेशानुसार समस्त भारत में स्थान स्थान पर सत्याग्रह दिवस मनाया गया। कहते हैं कि सत्याग्रह में कृषकों पर अत्याचार के कारण सरकारी पटेलों और पटवारियों के अनेक इस्तीफ़े आ

चुके है। सत्याग्रह को दबाने के लिए पठानों की जो टोली सरकार ने बुलाई थी उसके असभ्य व्यवहार, स्त्रियों के प्रति अशिष्ट आचरण की बड़ी शिकायत हुई है। सरकार की तरफ़ से उन्हें हटा लेने का वचन दिया गया है। 'मालगुज़ारी लगाने में सरकार की उद्दण्डता' का कारण बतलाकर बम्बई-कौंसिल से अनेक सदस्यों ने इस्तीफ़े दे दिये हैं।

६—किसानों और मज़दूरों का सम्मेलन

जून के द्वितीय सप्ताह में नागपुर में मध्यप्रान्त और बरार के किसान और मज़दूर सम्मेलन की सम्मिलित बैठक मिस्टर बी० टी० ब्रैडले के सभापतित्व में हुई थी। सभापति की वक्तृता में कहा गया कि पूँजीपति देश-प्रेम की दृष्टि से कृषक तथा श्रमिक का कल्याण कभी नहीं कर सकता। आपने कहा कि पूँजीवाद किसी देश का प्रेमी नहीं। स्व-देश में बेकारी इतनी बढ़ी होने पर भी यहां की पूँजी विदेश को बही चली जा रही है। भारत में बम्बई से लेकर कलकत्ते या रङ्गून तक हड़ताल की जो लहर बह रही है वह भारतीय श्रमिकों की जागृति का परिणाम है। नव स्थापित 'कण्ट्री-लीग' का ध्यान न करना चाहिए। कांग्रेसवालों को चाहिए कि श्रमिक तथा कृषकों के दुख-सुख में हाथ बटायें। आपके व्याख्यान के बाद जो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए है उनका सारांश यहाँ दिया जाता है।

(१) साम्राज्यवाद के विरुद्ध होने के कारण सम्मेलन सायमन-कमीशन का बहिष्कार चाहता है तथा उसका समर्थन करता है।
(२) अवस्था-प्राप्त को मताधिकार मिलना चाहिए।
(३) मज़दूरी ज़रूरत के बराबर होनी चाहिए।
(४) काम करने का दिन आठ घण्टे का होना चाहिए।
(५) बारदोली-सत्याग्रह का समर्थन, मज़दूरों के कल्याण की संस्था (Worker's Welfare League) के कार्यों का समर्थन, जोनाल्ड केम्पबेल साहब के निर्वासन का विरोध, मिस्टर फ़िलिप स्प्रैट के प्रति सरकारी व्यवहार की तीव्र निन्दा, पूर्ण मद्य-निषेध के लिए विनय आदि कई अन्य प्रस्ताव स्वीकृत किये गये।

७—जैन-पालिताना-कलह

वर्षों से जैनियों ने अपने पवित्र तीर्थ-स्थान पालिताना की यात्रा करना छोड़ दिया था। इसका कारण यह था कि पालिताना के ठाकुर साहब यात्री जैनियों पर कर बैठाना चाहते हैं। यद्यपि जैनियों की यात्रा से पालिताना के ठाकुर साहब की प्रजा को काफ़ी आय हो जाती थी, तो भी उनके नवीन कर प्राप्त करने के प्रयत्न के विरोध में जैनियों ने एकमत होकर सत्याग्रह कर दिया था, तथा यात्रा करना स्थगित कर दिया था। इससे पालितानावालों की भी बड़ी आर्थिक हानि हुई। अन्त में वायसराय महोदय ने मध्यस्थता स्वीकार की और शिमले में ठाकुर साहब, जैनियों के प्रतिनिधि तथा वायसराय महोदय के सम्मुख विचार आरम्भ हुआ। अन्त में, मई के अन्तिम सप्ताह में होनेवाली इस समिति ने समझौता कर लिया तथा जैनियों की ओर से सेठ आनन्दजी कल्यानजी ने समझौते की शर्तें स्वीकार कर लीं। जैन-समाज ने भी समझौते को मान लिया है। समझौते की विशेष बातें ये है—

(१) शत्रुञ्जय-शैल पर जितनी ज़मीन, पेड़ और इमारतें गढ़ में है वे सब श्वेताम्बर मूर्त्ति-पूजक जैन काम में ला सकेंगे। (२) यात्रियों के प्रबन्ध के नियम जैनी ही बनायेंगे। (३) समस्त सम्पत्ति का प्रबन्ध करने में जैनी पूर्णतया स्वतन्त्र होंगे। इस मामले में दरबार को किसी प्रकार का हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं। देहरी, छत्री, पहाड़ी, कुण्ड, विशाप ये सब जैनियों के प्रबन्ध में रहेंगे। उनकी रक्षा-मरम्मत आदि उन्हीं का काम होगा। (४) कोई झगड़ा पैदा होने पर पालिताना-दरबार में फ़रियाद होगी। यदि फ़ैसला अस्वीकार होगा तो गवर्नर-जनरल के एजेंट से अपील की जा सकेगी। (५) पालिताना-दरबार को आम सड़क तथा कुण्डों के उन सोतों की जिनसे पानी आता है, मरम्मत करानी होगी। (६) जैन-यात्रियों से वे कोई कर न ले सकेंगे। (७) इन सब रियायतों के लिए जैन-सभा ६० हज़ार रुपया पालिताना-दरबार को प्रति वर्ष दिलायेगी। पैंतीस वर्ष बाद भारत-सरकार फिर समझौता करायेगी।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा
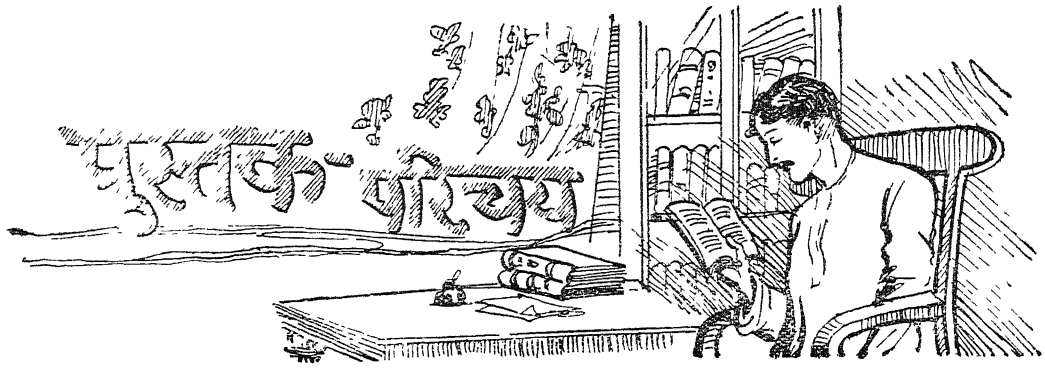
१—जैन दर्शन—हरिभद्र-सूरि नाम के एक उद्भट विद्वान् हो गये हैं। वे जैन-धर्म्म के आचार्य्य थे। सुनते हैं, उन्होंने सौ डेढ़ सौ ग्रन्थों की रचना की थी। उनमें से कुछ अब भी प्राप्य हैं। वे ईसा की आठवीं शताब्दि में विद्य-मान थे। उनका एक ग्रन्थ है—षड्दर्शन-समुचय। उस पर कई जैन-पण्डितों की टीकायें हैं। उनमें से गुणरत्न सूरि की टीका बहुत प्रसिद्ध है। उसमें ६ अधिकार हैं। एक अधिकार का नाम है—जैन-दर्शन। इसी जैनदर्शन का गुजराती-भाषानुवाद श्रीयुत बेचरदास ने किया है। प्रस्तुत पुस्तक में उसी अनुवाद का हिन्दी-भाषानुवाद है। इसके अनुवादक हैं मुनि श्रीतिलक-विजयजी। अनुवाद की भाषा प्रायः अच्छी है। अनुवादक का आशय झट समझ में आ जाता है। इस पुस्तक के अवलोकन से जैनदर्शन का तत्त्व अच्छी तरह ज्ञात हो सकता है। उसमें और हम लोगों के वेदान्तादि अन्य दर्शनों में क्या भेद है, यह बात इस पुस्तक के पाठ से सहज ही जानी जा सकती है। पुस्तक की छपाई और काग़ज़ स्पृहणीय है। पृष्ठ-संख्या २२५ है। मूल्य पुस्तक पर लिखा नहीं।

प्रकाशक—चिमनलाल लखमीचन्द शाह, ६९, रविवार पेठ, पूने, को लिखने से शायद इसकी प्राप्ति हो सकती है।

२—ब्रह्मनिरूपणम्—महात्मा कबीरदास ने अपने अनुभव की जो बातें अपने समय में, अपने शिष्यों आदि के सामने, कहीं थीं और जो उपदेश उन्होंने दिये थे वे सब उसी समय की अपनी निज की भाषा में दिये थे। उसका अधिकांश, साखी आदि के रूप में, प्रकाशित भी हो गया है। कबीरदासजी की ब्रह्मनिरूपण-सम्बन्धिनी उसी वाणी का विवेचन किसी ने संस्कृत-पद्यों में किया है। पर विवेचक के नाम का पता नहीं। यह निरूपण किसी धर्म्मदास नामक शिष्य को सम्बोधन करके किया गया है। उसी मूल संस्कृत-पुस्तक की हिन्दी-टीका (टीका नहीं, विस्तृत विवृत्ति) महन्त भजनदासजी ने लिखी है और संस्कृत-श्लोकों का अन्वय भी लिख दिया है। प्रस्तुत पुस्तक में मूल-सहित उसी का प्रकाशन हुआ है। पुस्तक पर सुन्दर जिल्द है, टाइप बड़ा है, काग़ज़ मोटा है। पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० के है। मूल्य है २ रुपया। मिलने का पता है—दीवान बालकदासजी, कबीर साहब का मन्दिर, सियाबाग, बड़ोदा। कबीरपन्थियों के सिद्धान्तों और कबीर साहब के द्वारा निरूपित आत्म-तत्त्वों के जिज्ञासुओं के लिए यह पुस्तक बहुत अच्छी है।

३—मेघमहोदय (अर्थात्) वर्ष-प्रबोध—इसका आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या ५०० के ऊपर और मूल्य ४) है। मिलने का पता—सेठिया जैन-प्रिंटिंग प्रेस, बीकानेर। कोई दो ढाई सौ वर्ष पूर्व मेघविजय नाम के एक जैन-विद्वान् होगये हैं। वे महा-पण्डित थे। उनके बनाये हुए एक दर्जन से भी अधिक ग्रन्थ इस समय पाये जाते हैं। धार्म्मिक विषयों के ग्रन्थों के सिवा कई काव्यों क्या महाकाव्यों तक की रचना उन्होंने की। माघ
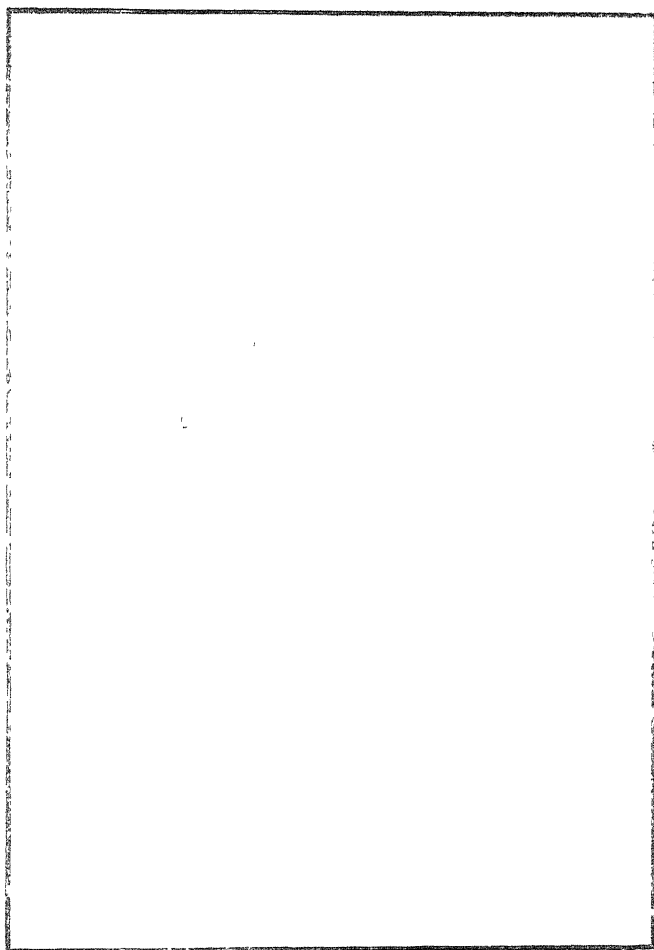
अतीत स्मृति

ख़्वाब था जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफ़साना था—दर्द

काव्य के श्लोकों के एक एक चरण को समस्या मान कर उन्होंने एक सप्त-सर्गीय देवानन्दाभ्युदय-काव्य लिख डाला। इसी तरह नैषधचरित के श्लोकों की पादपूर्ति करके शान्तिनाथ-चरित महाकाव्य की रचना कर डाली। कालिदास के मेघदूत का अवलम्बन करके भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी। व्याकरण पर भी आपने ग्रन्थ-रचना की। ये इतने चतुरस्र विद्वान् थे कि ज्योतिष-शास्त्र में भी इनकी अबाध गति थी। यह मेघ महोदय ग्रन्थ इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके १३ अधिकारों में कोई ३½ हज़ार श्लोक हैं। ज्योतिष-शास्त्र से सम्बन्ध रखनेवाली और और बातों के सिवा इसमें कुछ विशेष बातों का भी वर्णन है—यथा, हवा कब कैसी चलेगी? कब कितनी वर्षा होगी? सुकाल होगा या दुष्काल? सोने, चाँदी, सूत, कपास, धान्य आदि कब किस भाव बिकेंगे? चूँकि इस पुस्तक का प्रणेता सुकवि था। अतएव इसकी रचना में यथेष्ट सरसता भी है। ऊपर मोटे टाइप में मूल श्लोक देकर नीचे उनका भावार्थ हिन्दी में प्रकाशित किया गया है। अतएव संस्कृत कम या बिलकुल ही न जाननेवाले ज्योतिषी भी इससे लाभ उठा सकते हैं। हिन्दी-भावार्थ के कर्ता का नाम है—पण्डित भगवानदास जैन। वृष्टि आदि के सम्बन्ध में इसमें जो भविष्यद्वाद है उसमें सत्यांश कितना है, और कुछ है भी या नहीं, इसका विचार और परीक्षा ज्योतिषी चाहे न करें, पर फलित ज्योतिष में श्रद्धा रखनेवालों को ज़रूर करना चाहिए।

४—A Primer of An W-Bhassya—बादरायण व्यास के बनाये हुए जो ब्रह्मसूत्र हैं वही वेदान्त-शास्त्र के आधार-स्तम्भ हैं। शङ्कराचार्य्य, माधवाचार्य्य, रामानुजाचार्य्य और निम्बार्काचार्य आदि ने उनका भावार्थ समझाने के लिए बड़े बड़े ग्रन्थ या भाष्य रचे हैं। वे पुष्टि-मार्ग ा शुद्धाद्वैत-सम्प्रदाय के प्रवर्तक श्रीवल्लभाचार्य को पसन्द नहीं आये। अतएव उनको एक और सम्प्रदाय की संस्थापना करनी पड़ी। उसका नाम उन्होंने रक्खा निर्गुण-भक्ति-मार्ग। ब्रह्म-सूत्रों का भावार्थ उन्होंने अपने इसी मार्ग के सिद्धान्तों पर घटा कर व्यक्त करने की कृपा की है। वह संस्कृत में है। अतएव उस तक अँगरेज़ी जाननेवालों की पहुँच होना असम्भव जानकर अहमदाबाद के निवासी श्रीयुत जेठालालजी शाह, एम० ए०, ने इस छोटे आकार-वाली, कोई २०० सफ़े की, पुस्तक की रचना की है।

इसमें आपने वल्लभाचार्य्यजी के सिद्धान्तों को, थोड़े में, बड़ी ख़ूबी से समझाया है। यद्यपि आपके विवेचन में कहीं कहीं जटिलता आगई है, तथापि ऐसे गहन विषय को, इतनी भी स्पष्टता से समझा कर दूसरों के गले उतार देने की चेष्टा कम प्रशंसनीय नहीं। आपके वक्तव्य से सूचित होता है कि आप अन्य दर्शन-शास्त्रों और प्रस्तुत दर्शन पर लिखे गये अन्य भाष्यों पर भी काफ़ी अधिकार रखते हैं। पुस्तक का मूल्य सिर्फ़ १० आने है।

५—बालवार्तावलि—अच्छी जिल्द बँधी हुई, मोटे काग़ज़ पर बड़े टाइप में छपी हुई इस सचित्र पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ७२ है। छोटे छोटे बच्चों के लिए, सरल भाषा में, इसमें एक दर्जन कहानियाँ हैं जो मनोरञ्जक भी हैं और उपदेशजनक भी। यह सौभाग्यवती हंसा मेहता, बी० ए०, की रचना है। कुमार-कार्यालय, अहमदाबाद से मिलती है। मूल्य डेढ़ रुपया है, जो कुछ अधिक जान पड़ता है।

६—जीवन और चिन्तन—दो पुस्तकें एक ही जिल्द में हैं—नाम है दादी। जिल्द सुन्दर है। पहली (जीवन) में कोई ८० और दूसरी (चिन्तन) में कोई १५० पृष्ठ हैं। पहली पुस्तक में लेखक, गोपाशङ्कर वेणीशङ्कर मचेच (रिटायर्ड डे० कलेक्टर और दीवान, जामनगर) ने अपनी जीवन-चर्य्या या जीवन-चरित आपही लिखा है। यह काम उन्होंने दूसरों के लाभ के लिए नहीं, अपने निज के लाभ के लिए किया है। लड़कपन से लेकर बुढ़ापे तक उन्होंने किस तरह जीवन व्यतीत किया यही आपने संक्षेप में बताया है। यह सब इस दृष्टि से आपने लिखा है कि आपका जीवन कहाँ तक सारवान् और कहाँ तक असार रहा। दूसरी पुस्तक चिन्तन में आपके रचे हुए पारमार्थिक गीतों का सङ्ग्रह है। इस सङ्ग्रह के गीत बिगड़ी हुई हिन्दी-भाषा में हैं। लिपि भी उनकी देवनागरी है। हाँ, उनका

आशय या भावार्थ गुजराती भाषा और गुजराती ही लिपि में भी लिख दिया गया है। मचेचजी ने काशी में शिक्षा पाई है। इसी से आपको हिन्दी का भी कुछ ज्ञान है। पर यह ज्ञान इतना कम है कि भाषा बेढङ्गी होगई है। तथापि आप इस कारण धन्यवाद के पात्र हैं कि गुजराती होकर भी आपने हिन्दी-भाषा के द्वारा ही परमात्म-चिन्तन किया है। पुस्तक युग्म का मूल्य १।) है। नागर-भगत की पोल, रायपुर, अहमदाबाद के पते पर लेखक ही को लिखने से पुस्तक मिल सकती है।

७—आदर्श दृष्टान्त माला—इसका प्रकाशक सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्य्यालय, अहमदाबाद है। उसी से यह मिल सकती है। पृष्ठ-संख्या ३५० से कुछ ऊपर होने पर भी मूल्य केवल १।) है। पुस्तक सजिल्द है। आकार मँझोला और छपाई अच्छी है। यह इस पुस्तक का दूसरा भाग है। पहला भाग पहले ही कभी निकल चुका है। इसमें ४०५ दृष्टान्तों का सङ्ग्रह है। सङ्ग्रह बड़े महत्त्व का है। इसके पाठ से अनेक अलौकिक गुणों का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। दृष्टान्तों का सम्बन्ध सभी देशों; सभी जातियों और सभी भाषाओं से है। दृष्टान्तों के कुछ नाम सुनिए—

(१) गदाधर महाचार्य का अपूर्व अन्त
(२) बंकिम बाबू की निरभिमानता
(३) सत्यवादी का सम्मान
(४) थियेडर पार्कर का पश्चात्ताप
(५) दधीचि का आत्मत्याग
(६) महात्मा गांधी की वीरोचित क्षमा

इन दृष्टान्तों का सङ्ग्रह कोटानिवासी पण्डित शिवप्रसाद दलपतराम ने किया है।

८—श्रीमद्बुद्धिसागर-सूरि-स्मारक ग्रन्थ—यह पुस्तक मँझोले आकार की है। पृष्ठ-संख्या २०० के कुछ ऊपर है। बिना जिल्द की है। मूल्य सिर्फ़ १२ आने है। प्रकाशक इसके हैं—हाईकोर्ट वकील, मोहनलाल हीमचन्द, पादरा। बुद्धिसागर-सूरि नाम के एक प्रसिद्ध विद्वान्, कवि और साधु हो गये हैं। आप जैन-धर्मावलम्बी थे। आपकी लिखी हुई अनेक पुस्तकें हैं। उनका देहान्त हुए कुछ समय हुआ। देहान्त होने पर, सूरिजी के सम्बन्ध में, अनेक सज्जनों ने सभायें करके, व्याख्यान देकर, लेख और कविता लिखकर तथा पत्र-द्वारा उनका जो गुणगान आदि किया है उसी सब सामग्री का सङ्ग्रह इस पुस्तक में किया गया है। सूरिजी के कई चित्र भी इसमें हैं, तथा और भी कई चित्रों से पुस्तक अलङ्कृत की गई है।

अपनी बात

न्दी-साहित्य की उन्नति और प्रचार के लिए प्रतिवर्ष हिन्दी-साहित्य-सेवियों का एक सम्मेलन होता है। उसमें हिन्दी-साहित्य की उन्नति के लिए कितने ही उपाय सोचे जाते हैं और उन उपायों को कार्य्य-रूप में परिणत करने के लिए एक स्थायी समिति और मन्त्रि-मण्डल का निर्वाचन होता है। इस वर्ष पंडित पद्मसिंह शर्म्माजी के सभापतित्व में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन मुज़फ़्फ़रपुर में हुआ, उसमें कुछ प्रस्ताव पास किये गये, नई स्थायी-समिति चुनी गई और नया मंत्रि-मंडल बनाया गया।

कुछ लोगों का यह विश्वास हो गया था कि साहित्य-सम्मेलन का काम शिथिल होता जा रहा है, उसमें सुयोग्य कार्य्य-कर्ताओं का अभाव है। इसीलिए इस वर्ष इस सम्बन्ध में आन्दोलन भी ख़ूब हुआ। हिन्दी के पत्रों में साहित्य-सम्मेलन की दुरवस्था बताने के लिए कितने ही लेख निकले और कितनी ही टिप्पणियाँ निकलीं। इस आन्दोलन का यह परिणाम हुआ कि इस बार स्थायी समिति के सदस्यों और मन्त्रियों के चुनाव में प्रतिनिधियों ने विशेष उत्साह प्रदर्शित किया, स्थायी समिति और मन्त्रि-मण्डल का सङ्गठन तो हो चुका, अब हमें यही आशा करनी चाहिए कि इस नवीन निर्वाचन से हिन्दी-साहित्य की विशेष वृद्धि होगी।

× × ×

कुछ वर्षों से सभापतित्व-पद के लिए हिन्दी के पत्रों में कटुतापूर्ण लेख नहीं निकलते थे। भिन्न भिन्न व्यक्तियों के सम्बन्ध में प्रशंसापूर्ण उद्गारों और कटूक्तियों का अभाव देखकर ऐसा जान पड़ता था कि सचमुच हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रति लोगों का अनुराग कुछ कम होगया है। इस वर्ष कम से कम यह अभाव नहीं रहा। कितने ही विद्वानों के पक्ष में लोगों ने कितने ही लेख लिखे, जिनमें केवल प्रशंसा ही नहीं, कटुता भी थी। इसमें सन्देह नहीं कि जो विद्वान् हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का सभापति चुना जाता है उसे एक बड़ी संस्था का उत्तरदायित्व स्वीकार करना पड़ता है। परन्तु कुछ लोग यह समझते हैं कि विद्वानों के प्रति अपनी अगाध भक्ति और अनुराग प्रदर्शित करने का एक-मात्र साधन हिन्दी-साहित्य-सेवियों के लिए कदाचित यही है कि वे वर्ष भर के लिए उनको सभापति का गौरव-पूर्ण स्थान दे दें। इसी से हिन्दी के कुछ पत्रों को यह देखकर बड़ा खेद होता है कि हिन्दी-साहित्य के कितने ही वयोवृद्ध विद्वान् इस गौरव-पूर्ण स्थान को प्राप्त किये बिना ही परलोक-यात्रा कर देते हैं। वे यह चाहते हैं कि चुन चुनकर वयोवृद्ध विद्वानों को सभापति बनाने की चेष्टा की जाय, जिससे पीछे पश्चात्ताप करने के लिए अवसर न आये। किन्तु कुछ ऐसे नव-युवक साहित्य-सेवी भी हैं जो हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के पद को साहित्य-सेवा का सर्वोच्च पुरस्कार नहीं मानते। उनका कथन है कि साहित्य-सेवियों का सबसे बड़ा आदर उनकी कृतियों का आदर करना है। साहित्य-सम्मेलन के सभापति को वर्ष भर तक साहित्य-सम्मेलन का कार्य्य-भार सँभालना पड़ता है। इसके लिए उसे यथेष्ट चिन्ता करनी पड़ती है और परिश्रम भी

करना पड़ता है। सभापति का यह काम साहित्य-सेवियों की महत्ता नहीं प्रकट करता, हां, उनकी कार्य्य-कारिणी क्षमता अवश्य प्रकट करता है। इसीलिए हिन्दी के कुछ नव-युवकों ने इस बार यह चेष्टा की कि सभापति ऐसे सज्जन हों जो साहित्य-सम्मेलन में कार्य्य करने की क्षमता रखते हों, चाहे वे साहित्य के गौरव-शिखर पर पहुँचे हों या न पहुँचे हों कुछ भी हो, पर इसमें सन्देह नहीं कि पंडित पद्मसिंह शर्म्मा के सभापति हो जाने से सभी हिन्दी-साहित्य-सेवियों को विशेष सन्तोष हुआ है।

× × ×

सभापति के भाषण के लिए लोग विशेष उत्सुक रहते हैं। पंडित पद्मसिंह शर्म्मा साहित्य-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् हैं। उर्दू, फ़ारसी और संस्कृत में उनकी अगाध गति है। बिहारीसतसई पर समालोचनात्मक टीका लिख कर उन्होंने विशेष ख्याति अर्जन की है। तुलनात्मक समालोचना के वे जन्मदाता माने जाते हैं। ऐसे विद्वान् के भाषण में साहित्य की चर्चा होनी ही चाहिए। शर्म्माजी के भाषण का विषय था कविता। हिन्दी में आज-कल छायावाद के नाम से जो कवितायें प्रकाशित हो रही हैं उनकी आपने आलोचना की है। उनकी यह आलोचना छाया-वादियों के लिए विशेष अनुकूल नहीं है। इसी से सुना जाता है कि हिन्दी के कुछ छायावादी कवियों को उनके भाषण से विशेष सन्तोष नहीं हुआ।

× × ×

भाषण का कुछ अंश यहां उद्धृत किया जाता है—

हिन्दी के पद्य-भाग में इस समय सर्वाङ्गीण परिवर्तन हो रहा है, प्रत्येक भाषा का पद्य भाग महत्त्वपूर्ण और स्थायी समझा जाता है, उसके परिवर्तन का प्रभाव साहित्य के दूसरे अंगों पर भी पड़ता है इसलिए उसकी रक्षा और सुधार पर भारतीय भाषाओं में ख़ास कर संस्कृत और हिन्दी-उर्दू में जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं उतने गद्य के सम्बन्ध में नहीं। यह परिवर्तन और क्रान्ति का युग है। सब विषयों में नित्य नये परिवर्तन हो रहे हैं, कविता में भी क्रान्ति हो रही है और बड़े वेग से हो रही है, हिन्दी-कविता का तो एक-दम काया-कल्प हो रहा है, दूसरी भाषाओं की कविताओं में भी परिवर्तन हुआ है पर हिन्दी में परिवर्तन का ढँग कुछ निराला ही है। मैं परिवर्तन का विरोधी नहीं हूँ, पर परिवर्तन सोच-समझ कर करना चाहिए, मनमाने प्रकार से नहीं, मेरे इस निवेदन का यही तात्पर्य है।

× × × ×

"हिन्दी की नवीन कविता में भाषा, भाव, शैली सभी कुछ नया है—अपरिचित है। वह कुछ कह रहे हैं, यह तो सुन पड़ता है, पर क्या कह रहे हैं, यह समझ में नहीं आता।

वह कहते हैं—"बुलबुल बोलती है, मस्ती में गाती है, कोई समझे न समझे, इससे उसे मतलब नहीं, वह अपने भावों की व्याख्या नहीं करती फिरती।"—ठीक है, पर बुलबुल अपने गीतों को छपाती भी तो नहीं, उसके सचित्र और विचित्र संस्करण नहीं निकालती, न किसी से प्रशंसा या दाद ही चाहती है, न समझनेवालों को कोसती भी नहीं—अपने प्रतिपक्षी शुक, सारिका और कोकिल आदि पक्षियों पर व्यङ्ग्य-बाण भी नहीं छोड़ती, उनका उपहास भी नहीं करती। फिर कवि तो 'हैवाने-नातिक़'—व्यक्तवाक्—प्राणी है, वह तो जो कुछ कहता है दूसरों को समझाने के लिए—अपने भाव दूसरों तक पहुँचाने के लिए कहता है, वह 'स्वान्तः-सुखाय' के उद्देश से भी जो रचना करता है उससे भी और लाभ उठाने के अधिकारी हैं, भाषा का प्रयोजन भी तो शायद यही है—दूसरों तक अपने भाव पहुँचाने का साधन ही भाषा की सर्वसम्मत परिभाषा है। जो बात किसी की समझ में ही न आयेगी उसका प्रभाव ही क्या पड़ेगा! अज्ञेयता तो कविता का एक प्रधान-दोष है, प्राचीन आचार्यों ने पहेली की गणना इसी लिए कविता में नहीं की—

× × × ×

"मैं नवीनता का विरोधी नहीं, समर्थक हूँ। कोई सज्जन मेरे इस निवेदन को 'रहस्यवाद' पर आक्षेप न समझें, मैं रहस्यवाद का परम प्रेमी हूँ, उसकी खोज में रहता हूँ, कहीं मिल जाता है तो भावावेश की-सी दशा में पहुँच जाता हूँ, सिर धुनता हूँ और मज़े ले लेकर पढ़ता हूँ, जी खोल कर दाद देता हूँ, दूसरों को सुनाता हूँ। पर हिन्दी की नवीन रचनाओं में ऐसा रहस्यवाद

कम—पैसे में पाई से भी बहुत कम—सो भी कभी किसी की रचना में मिलता है, और वह भी उस दर्जे का नहीं जैसा उर्दू में तसव्वफ़ का रंग है। मैं हिन्दी में हृदय-स्पर्शी उच्च कोटि के रहस्यवाद का इच्छुक हूँ, पहेलियों से बेशक पहलू बचाता हूँ और काग़ज़ के पत्ते को पारिजात का पुष्प नहीं कहता।"

× × × ×

सिद्धान्त एक बात है और सिद्धान्त का अनुसरण करना दूसरी बात है। किसी सिद्धान्त की प्रशंसा या निन्दा करने से यह नहीं कहा जा सकता कि जो लोग अपने को उस सिद्धान्त के अनुयायी कहते हैं उनके कार्य्य प्रशंसनीय या निन्दनीय हैं। ब्रह्मचर्य्य प्रशंसनीय है, परन्तु क्या इसी से यह कहा जा सकता है कि जो लोग अपने को ब्रह्मचारी कहते हैं वे जो कुछ करें सभी प्रशंसनीय है। क्या ब्रह्मचारी का नाम उनके कुत्सित आचरण को छिपा सकता है? इसी प्रकार ब्रह्मचारी नामधारियों के कुत्सित आचरण को देखकर क्या ब्रह्मचर्य्य की निन्दा की जा सकती है? ब्रह्मचर्य्य की महत्ता देखने के लिए हमें उन व्यक्तियों का चरित्र देखना चाहिए जिनमें ब्रह्मचर्य्य का पूर्ण विकास हुआ है। यदि उनके चरित्र में महत्ता है तो यह दृढ़ता-पूर्वक कहा जा सकता है कि ब्रह्मचर्य्य में महत्ता है। यही बात साहित्य-शास्त्र के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। अँगरेज़ी में कितने ही साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्त प्रचलित हैं, Idealism, Romanticism, Realism, Mysticism इत्यादि। यदि हमें इन सिद्धान्तों की परीक्षा करनी है तो हम उन्हीं रचनाओं की परीक्षा करेंगे जिनमें इन सिद्धान्तों का पूर्ण विकास हुआ है। यदि कोई व्रज-साहित्य का माधुर्य्य लेना चाहे तो वह निकृष्ट कवियों की रचनाओं को नहीं पढ़ेगा। वह श्रेष्ठ कवियों की ही रचनाओं को पढ़ेगा और तभी उसे व्रज-साहित्य के गौरव का बोध होगा। यह तो स्पष्ट है कि श्रेष्ठ रचनायें बहुत कम होती हैं। अधिकांश रचनायें हीन श्रेणी की ही होती हैं। जो श्रेष्ठ कवि हैं उनकी भी सभी रचनायें अच्छी नहीं कही जा सकतीं। अतएव छायावाद के नाम से हिन्दी में जितनी कवितायें प्रकाशित हो रही हैं उनमें यदि एक भी अच्छी कविता है तो उसी एक कविता से हमें छायावाद की परीक्षा करनी चाहिए। यदि उसमें कुछ विशेषता है तो यह दृढ़ता-पूर्वक कहा जा सकता है कि छायावाद में कुछ विशेषता है। परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि छायावाद में विशेषता मान लेने पर भी हम यह नहीं कह सकते कि छायावाद के नाम से आज-कल जो कुछ कविताएँ निकल रही हैं वे सभी विशेषताओं से युक्त हैं।

छायावाद की विशेषता से हम अनभिज्ञ हैं। इसलिए उसके सम्बन्ध में हम कुछ कहने का साहस नहीं कर सकते। परन्तु पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने अपने भाषण में जिस 'पल्लव' का उल्लेख किया है उसकी अधिकांश कवितायें सरस्वती में हम प्रकाशित कर चुके हैं। हम यह तो नहीं जानते कि पल्लव के रचयिता श्रीसुमित्रानन्दन पन्त अपने को छायावादी कवि मानते हैं या नहीं। परन्तु यदि छायावाद मिस्टिसिज़्म का द्योतक है तो हमने उन कविताओं में उसकी झलक नहीं देखी है। पन्तजी की रचनाओं में सर्वत्र विस्मय का भाव है। जान पड़ता है, प्रकृति के सौन्दर्य पर कवि मुग्ध तो अवश्य हो गया है, पर वह उसे समझ नहीं सकता। वह विस्मय से अभिभूत हो गया है। "यह कौन है, यह क्या है, यह तो ऐसा जान पड़ता है, यह तो बड़ा विचित्र है, यह तो इससे मिलता-जुलता है, कौन जाने यह क्या कहना चाहता है," यही भाव प्रकृति की भिन्न भिन्न लीलाओं को देखकर कवि के हृदय में उठा करते हैं। जब वह उन भावों को पद्यों में व्यक्त करना चाहता है तब कभी तो उसे यह सन्देह होता है कि लोग हँसेंगे, कभी वह यही सोचकर स्वयं हँस पड़ता है, कभी वह यह सोचता है कि कब तक इन्हें छिपायें। कभी प्रकृति की भयंकरता से वह घबरा भी जाता है। पन्तजी की कविताओं में हमारी समझ से तो यही भाव हैं और ये ठीक उनकी अवस्था के अनुरूप हैं। प्रारम्भिक अवस्था में कल्पना की प्रधानता रहती है। इसी से पन्तजी की रचनाओं में अनुभूति की नहीं, कल्पना की प्रधानता है। मिस्टिसिज़्म की कविताओं में जो अस्पष्टता जान पड़ती है उसका भी कारण है अनुभूति। पन्तजी की रचनाओं

में जहां अस्पष्टता है, वहां कल्पित चित्र को ठीक रूप देने में कठिनता होने के कारण ही अस्पष्टता आई है। उसका कोई गुप्त अभिप्राय नहीं है। यदि पाठक अपनी कल्पना-शक्ति से पन्तजी के कल्पित चित्रों को देखने का प्रयास स्वीकार करें तो उनके लिए वे अस्पष्ट चित्र भी स्पष्ट हो जायँगे। छायावाद के कई समर्थक पन्त-जी और भारतीय आत्मा दोनों की रचनाओं को छायावाद के अन्तर्गत मानते हैं। भारतीय आत्माजी की रचनाओं में भावुकता है। उनमें (Fancy) अर्थात् कल्पना का सर्वथा अभाव है। इसके विपरीत पन्तजी की कविताओं में भावुकता का सर्वथा अभाव है। वे सब 'कल्पना (Fancy) के नादान शिशु' हैं। इसी से छायावाद के सम्बन्ध में कुछ निश्चित बात कहना बड़ा कठिन हो जाता है। हमारी समझ में तो छायावाद के नाम से प्रचलित कविताओं में न तो भावों की एकता है, न विचारों की और न शैली की। अधिकांश रचनाओं में तो वही भावोन्माद है जो युवावस्था के विकृत प्रेम का सूचक है। उनमें मिस्टिसिज़्म तो नहीं, कुछ रोमैन्टिसिज़्म अवश्य है। उर्दू में जिस भाव की प्रेरणा से दिल पर छुरी फिर जाती है, हिन्दी की अधिकांश छायावादात्मक रचनाओं में उसी भाव के कारण हृत्तन्त्री के तार बज उठते हैं। ये प्रियतम अनन्त पथ में अभिसार-यात्रा की कल्पना अवश्य करते हैं, पर इनकी दृष्टि पृथ्वी के बहुत छोटे स्थान में ही अवरुद्ध रहती है। हिन्दी के कुछ लेखकों ने वर्तमान युग को हिन्दी का पुनरुत्थानकाल माना है। अँगरेज़ी साहित्य में एलिज़ाबेथ का शासनकाल पुनरुत्थानकाल के अन्तर्गत है। उस समय भी हिन्दी की इन्हीं 'प्रियतमाओं' की तरह कितनी ही 'लौरा' और 'बीट्रिस' की सृष्टि हो चुकी है। प्रत्येक नवयुवक कालेज छोड़ते ही किसी 'लौरा' या 'बीट्रिस' के लिए कुछ पद्यों की रचना करता था। आज-कल हिन्दी में भी कुछ ऐसी ही प्रवृत्ति हो गई है। ऐसी कविताओं की लोक-प्रियता का भी यही कारण है। उनमें रस नहीं, सस्ती भावुकता है। यह भावुकता केवल पद्यों में नहीं, गद्य में भी प्रकट हो रही है। राजनैतिक लेखों में भी विवेचना की अपेक्षा भावुकता का प्रचार बढ़ रहा है। परन्तु यह अवस्था चिरस्थायी नहीं होती। यह सच है कि यह नवीन युग की सूचना देती है। बाढ़ आने पर मलिनता आती ही है। अतएव यह न तो चिन्ता की बात है और न आशङ्का की। छायावादियों के लिए भी यही बात कही जा सकती है। जिनमें सचमुच कवित्व-शक्ति है उनकी रचनाओं में कुछ विशेषता होनी ही चाहिए। समालोचकों के विरोध से उनकी यह विशेषता और भी स्पष्ट हो जायगी। जिन रचनाओं में गुण है वे साहित्य में अपना स्थान बना ही लेती हैं।

Printed and published by K Mittra at The Indian Press Ltd., Allahabad

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष

श्राद्धाङ्क

सितम्बर १९२८

सन्देश

[श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त]

मिट्टी में मिला हूँ या उठा हूँ उच्च अम्बर में !
हो गया विशाल,—लघु होकर था आया मैं ।
मेरे लाख पत्रों में लिखा है इतिहास मेरा,
धन्य मातृ-मन्दिर के आँगन में छाया मैं ।
प्रभु की कृपा से फला, फूला और फैला आज ।
तो भी त्यागता हूँ सब लोभ, मोह-माया मैं ॥
फूलें, फलें, फैलें मुझ बीज-सम नित्य सब ।
आपमें समावें आप आपमें समाया मैं ॥

बाबू चिन्तामणि घोष

[स्मृति]

[पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी]

—भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्—

कालिदास
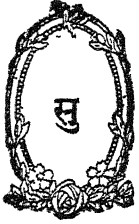
सुख और दुःख के युग्म का अनुभव सभी को करना पड़ता है। कोई उससे बच नहीं सकता। यह सम्भव ही नहीं कि किसी को सदा एकही का अनुभव करना पड़े। हाँ, यह बात अवश्य है कि इस युग्म की अवस्थिति में न्यूनाधिकता रहती है। किसी को अपनी जीवित दशा में सुख अधिक मिलता है, किसी को दुःख। ये सुख-दुःख यद्यपि एक दृष्टि से काल्पनिक हैं—क्योंकि जिसे एक मनुष्य सुख समझता है उसी को दूसरा, कभी कभी, दुःख मान लेता है—तथापि, इस दृष्टि से इस युग्म पर विचार करनेवाले, संसार में, विरल ही हैं। मैं उन लोगों में नहीं। इष्ट वस्तु की अप्राप्ति और आत्मीयों के वियोग से जैसे अन्य साधारण मनुष्य दुःखानुभव करते हैं वैसे ही मैं भी करता हूँ। आज तक मुझे आत्मीयों की वियोग-जन्य बड़ी ही मर्मकृन्तक व्यथायें सहनी पड़ी हैं—एक दफ़े नहीं, कई दफ़े। यहाँ तक कि आज तक मेरे सभी कुटुम्बी, एक एक करके, मुझे छोड़ गये। मैं ही अकेला कूलद्रुम बना हुआ अपने अन्तिम श्वासों की राह देख रहा हूँ। परन्तु, यह सब होने पर भी, कभी मैंने "सरस्वती" में अपना रोना नहीं रोया; कभी दुःख-जनित विलाप नहीं किया; अदृष्ट ने मुझ पर कसे कैसे प्रहार किये, इस पर कभी कुछ नहीं लिखा। बात यह थी कि मेरी उस कष्ट-कथा से सरस्वती का कुछ भी सम्बन्ध न था। अतएव उसे सरस्वती के पाठकों को सुनाकर उनका समय नष्ट करना मैंने अन्याय समझा।

परन्तु, आज, मुझे एक ऐसे पुरुष की निधन-वार्ता का उल्लेख करना ही पड़ेगा जो भिन्न होकर भी मुझसे अभिन्न थे, पर-जन होकर भी मेरे स्वजन थे, और अन्य-कुटुम्ब-भुक्त होने पर भी मेरे कुटुम्बी-से थे। यह इसलिए करना पड़ेगा, क्योंकि उनका सम्बन्ध सरस्वती से था। वही उसके जनक, वही उसके पालक और वही उसके उन्नायक थे। हतोत्साह किये जाने पर भी, हज़ारों रुपये का घाटा उठाने पर भी, और समय समय पर, अनेक विघ्न-बाधाओं का आविर्भाव होने पर भी उन्होंने सरस्वती को जीवित ही नहीं रक्खा; उन्होंने उसे दिन पर दिन अधिकाधिक उन्नत करके औरों के लिए वह आदर्श उपस्थित कर दिया जिसे देख कर इस समय हिन्दी-साहित्य में और भी कितनी ही अच्छी अच्छी मासिक पुस्तकें अपने प्रकाश का प्रसरण कर रही है। वङ्गवासी होकर भी उन्होंने इसी प्रान्त को अपना देश या प्रान्त समझा और मातृभाषा बँगला होने पर भी उन्होंने अधिकतर हिन्दी ही भाषा को अपने आश्रय का पात्र जाना। अनेक अल्पज्ञ और अप्रसिद्ध मसिजीवियों को अपनी छत्रच्छाया में रखकर उनको उन्होंने बहुत कुछ बहुज्ञ और बहुजनादृत बना दिया। ऐसे पुरुष-पुङ्गव, बाबू चिन्तामणि घोष, ने गत ११ अगस्त की रात को अपने कीर्त्ति-कलेवर को यहीं छोड़ कर, ७४ वर्ष की उम्र में, उस

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के श्राद्ध-कृत्य का एक दृश्य
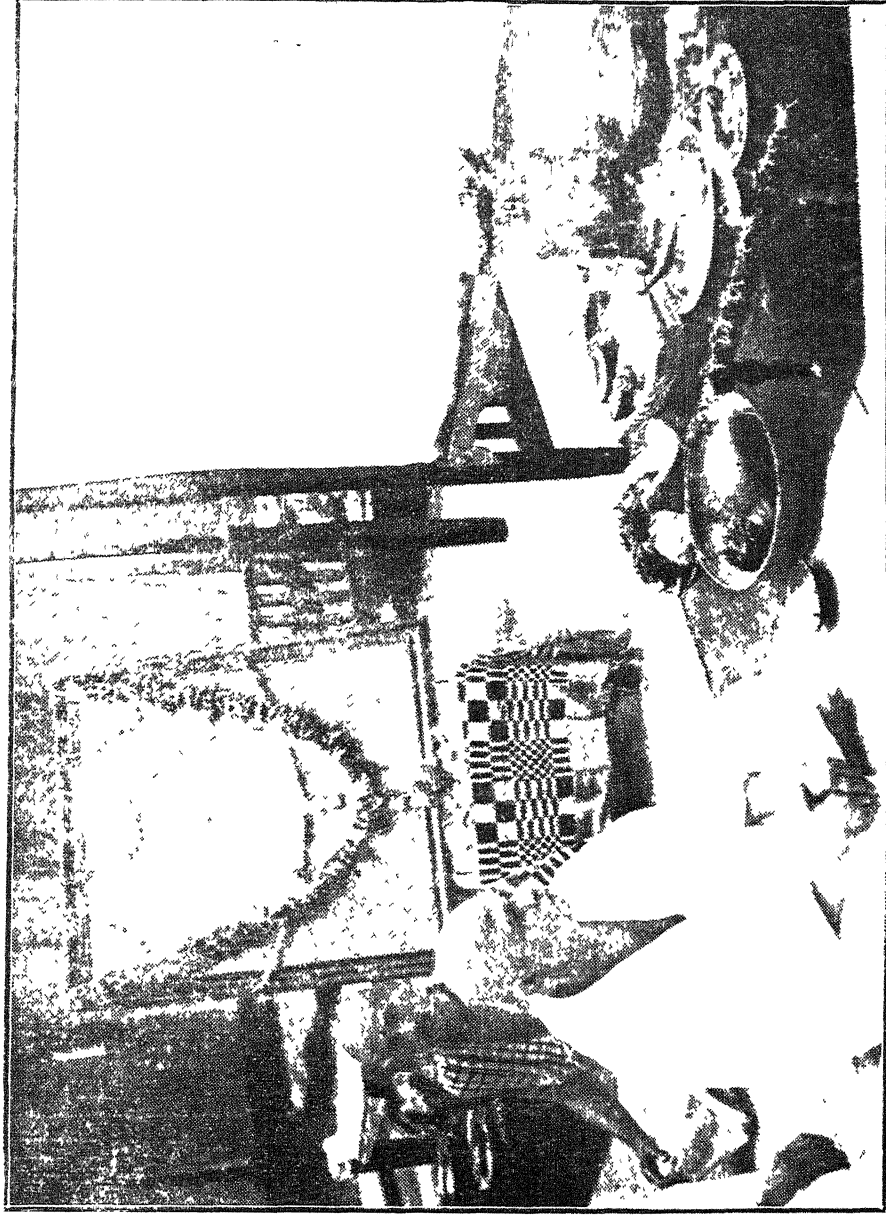
स्वर्गीया विन्दुवासिनी घोष (माता)
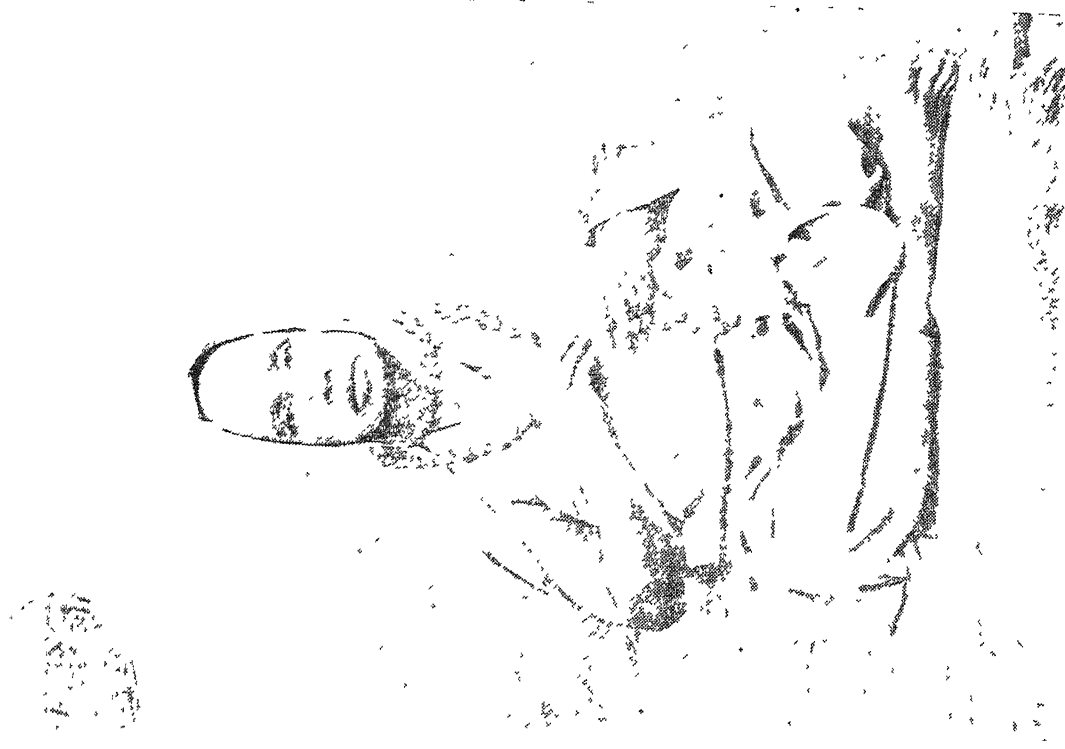
बाबू चिन्तामणि घोष की धर्मप्राण भगिनी

धाम की यात्रा कर दी जहां से लौटकर नहीं आना पड़ता।

घोष बाबू का प्रायः समग्र जीवन इसी प्रान्त में व्यतीत हुआ। पिता की मृत्यु हो ग । घर में कुछ विभूति थी ही नहीं। इससे वे अपनी जन्मभूमि को भी नहीं जा सक्ते थे। वहा कोई अवलम्ब था भी नही। अतएव प्रयाग मे नौकरी ही करना उन्होंने मुनासिब समझा। चिन्तामणि बाबू पहले पहल १०) मासिक वेतन पर पायोनियर प्रेस मे नौकर हुए। उस समय आप १३ वर्ष के थे। वहा आप छः सात वर्ष तक रहे और पिछले दिनों ६०) पाने लगे थे। वहा का काम छोड़ कर आप रेलवे मेल सर्विस में दो तीन दिन रहे। फिर आप हवा-घर अर्थात् मेटे-ओरोलाजिकल आफ़िस में नौकर हुए। उस समय आप १९ वर्ष के थे। मेटेओरोलाजिकल महकमे के दफ़्तर मे, हेड क्लर्क के पद पर, पन्द्रह-सोलह वर्ष तक काम किया। यह वह महकमा है जो वायुचक्र, वर्षा, विद्युद् और भूकम्प आदि की स्थिति और आगमन की सूचना देता है। थोड़ी सी पेंशन के मुस्तहक़ होते ही आपने वह मुलाज़िमत छोड़ दी। तब आपके मन में प्रेस करने की सूझी। यह इरादा पक्का हो जाने पर आपने अपने एक मित्र को अपना साझीदार बनाया और घर ही पर हाथ से चलाया जानेवाला एक छोटा सा प्रेस खोला। कितनी पूँजी से, आपको सुनकर आश्चर्य्य होगा, सिर्फ़ २५०) की पूँजी से! आपके मित्र तो कुछ ही दिन बाद अलग होगये, आप अकेले रह गये। आपने अपनी व्यवसाय-बुद्धि, सत्यपरता, उद्योग-शीलता और कर्तव्यनिष्ठा की बदौलत उसी छोटे से प्रेस को कुछ ही वर्षों में एक अच्छे प्रेस का रूप दे दिया। पहले तो आपको कुछ योंही सा सटपट काम मिलता रहा, पर वह दशा बहुत समय तक न रही। आपने हिन्दी की कुछ ऐसी रीडरें प्रकाशित कीं जो स्कूलों में जारी होगई। बस, फिर तो जन-साधारण और शिक्षा-विभाग के अधिकारियों का ध्यान इंडियन प्रेस की ओर इतना आकृष्ट होगया कि उसकी बराबर उन्नति ही होती गई। यह उन्नति अब यहां तक पहुँची है कि इस देश में देशवासियों के कुछ इने ही गिने प्रेस ऐसे होंगे जो इंडियन प्रेस की समकक्षता कर सकेंगे।

बात कोई ३५ वर्ष पहले की है। मुझे कारणवश उन रीडरों की समालोचना प्रकाशित करनी पड़ी जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। उस समालोचना से उन रीडरों के लेखकों की आत्मा को कष्ट पहुँचा। उस समय मुझे उनमें से एक लेखक ने कड़ी कड़ी चिट्ठियां तक लिखीं। पर मुदर्रिसों की तरह मैं उनका मुलाज़िम तो था नहीं, जो जानु-पाणि हो जाता। वे मेरा तो कुछ बिगाड़ न सके, पर शायद उन्हें उन रीडरों में कुछ परिवर्तन अवश्य करना पड़ा। चाहिए तो था कि उन रीडरों की प्रतिकूल आलोचना करनेवाले मुझसे घोष बाबू भी नाराज़ हो जाते। पर वे थे बड़े उदार और बड़े कार्य्यकुशल। उन्होंने उलटा मुझे बधाई दी। अपने मैनेजर बाबू गिरिजाकुमार घोष को बुँदेलखण्ड की पहाड़ियां पार करके मेरे पास झाँसी भेजा। मैं उस समय परतन्त्र था; अवकाश बहुत कम मिलता था। मैंने बहुत कहा सुना। पर चिन्तामणि बाबू के सज्जनोचित व्यवहार ने मुझ पर विजय पाई। मैंने शिक्षासरोज नाम की एक पुस्तकमाला, कई भागों में, लिख दी। वह छपी भी। परन्तु मेरी कृतपूर्व आलोचना से कुछ लोग ऐसे विचलित हो गये थे कि उन्होंने रीडरों की भाषाही बदल दी। मेरी पुस्तकें यथापूर्व प्रचलित भाषा में लिखी गई थीं। अतएव उनका लिखा जाना ही एक प्रकार से व्यर्थ गया। तब दूसरी पुस्तकें लिखी गईं और उन्हें और लोगों ने लिखा। किस तरह, आप सुनेंगे? एक गौरकाय साहब बहादुर ने पहले उन्हें अँगरेज़ी

में लिखा। फिर दूसरे ने उनका अनुवाद "सरकारी शैली" (हिन्दी) में किया। मैं इस झंझट से दूर ही रहा।

अस्तु, रीडरों की मेरी उस समालोचना की कृपा से मेरा परिचय चिन्तामणि बाबू से होगया। शिक्षा-सरोज लिखे जाने के बाद सरस्वती-सम्पादन के काम के लिए मैं चुना गया। मैंने अपनी अयोग्यता और असमर्थता प्रकट की। मैंने कहा—यह काम मैंने कभी नहीं किया; मुझे कुछ भी अनुभव नहीं। घोष बाबू ने बड़े प्रेम से, पर गर्ज कर, कहा—मैंने प्रेस का काम कब और किससे सीखा था? उनके प्रणयानुरोध की फिर जीत हुई। उन्होंने मुझे आदि से अन्त तक बड़ी ही उदारता से निबाहा। मेरे साथ इस तरह का व्यवहार किया जैसा कि भाई अपने भाई के साथ करता है।

सरस्वती का सम्पादन-कार्य्य मुझे मिलने पर कुछ लोगों ने बड़ा कोलाहल मचाया। उन्होंने घोष बाबू से कहा—यह मनुष्य बड़ा घमण्डी, बड़ा कलहप्रिय, बड़ा तुनुकमिज़ाज है। इससे तुम्हारी कभी न पटेगी। तुमने बड़ी भूल की। साल के भीतरही यह महाभारत मचा देगा। परन्तु यह सारा भय निर्मूल साबित हुआ। १८ वर्ष के दीर्घ काल में कभी एक बार भी ऐसा मौका न आया जिसमें इस तरह की कोई बात हुई हो। घोष बाबू ने अपना फ़र्ज़ अदा किया, मैंने अपना। किसी ने भी इसमें त्रुटि न होने दी। विवाद, वितण्डा और कलह हो कैसे? यह कुछ तो हुआ नहीं, घोष बाबू ने मुझे यह सर्टिफ़िकट अवश्य दिया—हिन्दुस्तानी सम्पादकों में मैंने वक़्त के पाबन्द और कर्त्तव्य-पालन के विषय में दृढ़-प्रतिज्ञ दो ही आदमी देखे हैं; एक तो रामानन्द बाबू, दूसरे आप। उनकी इस सम्मति से मैंने अपने को कृतार्थ समझा।

एक दफ़े इलाहाबाद के कलेक्टर ने सरस्वती के सम्पादक तथा मुद्रक और प्रकाशक को, समन के ज़रिये, तलब किया; पर समन में यह न लिखा कि किसलिए तलबी हुई है। वह ज़माना धर-पकड़ का था। प्रेस-ऐक्ट से सम्बन्ध रखनेवाले जुर्मों का दौर-दौरा था। मैं कानपुर से बुलाया गया। पिछले तीन-चार महीने की सरस्वती की कापियाँ बड़े ग़ौर से पढ़ी गईं। कोई लेख या नोट उनमें क़ाबिल-एतराज़ न दिखाई दिया। फिर भी सम्भावना यही हुई कि हम लोगों पर राजद्रोह का मुक़द्दमा चलाया जायगा। मैंने कहा, कानपुर से बार बार आने से तो बड़ा झंझट होगा। इस पर चिन्तामणि बाबू ने फ़रमाया—अगर हम लोगों की सम्भावना सही निकली तो आज से आप और आपके कुटुम्बी मेरे कुटुम्बी हो जायँगे और इंडियन-प्रेस की सारी विभूति इस मुक़द्दमे की पैरवी में खर्च कर दी जायगी। उनका यह अभिवचन सुनकर मेरा कण्ठ भर आया और शरीर पुलकित हो उठा। दस बजे हम लोग कलेक्टर के बँगले पर हाज़िर हुए। मैंने अपना कार्ड भेजा। उसे भेजते ही मैं तुरन्त भीतर बुलाया गया। उस समय कलेक्टर शायद मेकनेयर साहब थे। उन्होंने मुझे एडिटर जानकर कोई १० मिनट तक साहित्य-सम्बन्धिनी चर्चा की। किसलिए हम लोग बुलाये गये थे, इसका कुछ भी ज़िक्र न किया। तब मैंने समनों की याद दिलाई। इस पर दफ़्तर से उन्होंने मिसल मँगाई। उससे मालूम हुआ कि लाहौर के किसी आदमी ने लाटरी से सम्बन्ध रखनेवाला कोई विज्ञापन सरस्वती में छपाया था। उसी के विषय में चेतावनी देनी थी। वह चेतावनी प्रिंटर और पब्लिशर को दी गई। मेरा उससे कोई सम्बन्ध न था। हम लोग क़रीब २ बजे दिन के इंडियन प्रेस वापस आये। देखा तो चिन्तामणि बाबू निराहार बैठे हुए मेरी राह देख रहे हैं। मुझसे कलेक्टर साहब की मुलाक़ात का हाल सुनकर बोले—A Tumult in a Teapot—आपने पहले

पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी।

हरिपद एलोपेथिक दातव्य औषधालय
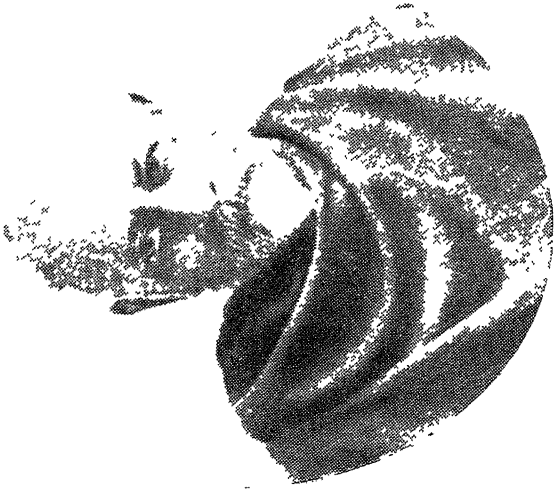
मेजर वामनदास वसु, आई० एम० एस०
(अवसर प्राप्त)
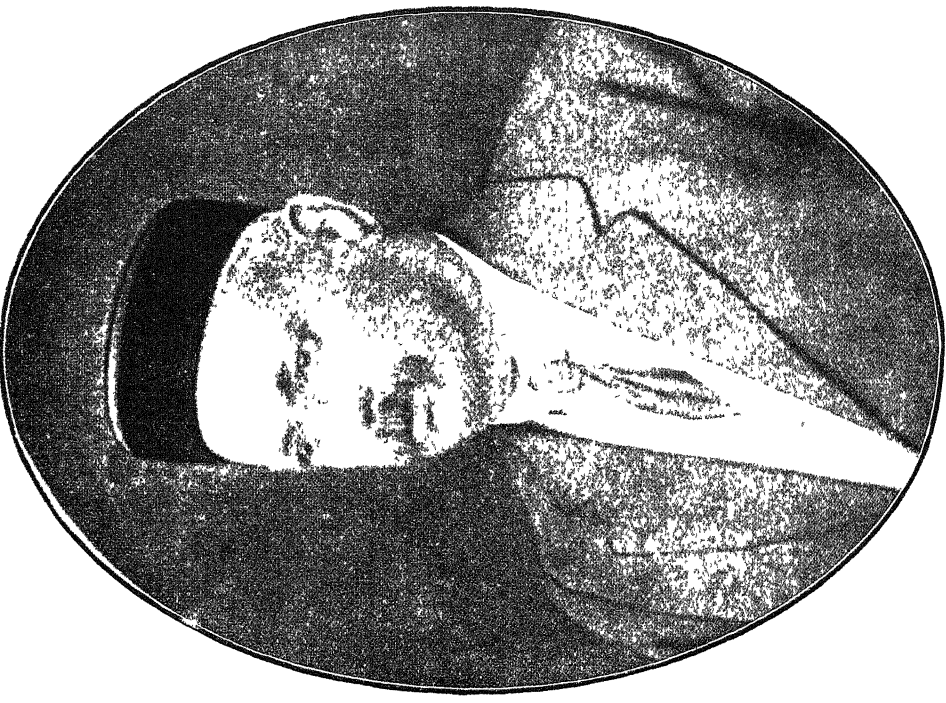
रायसाहब बाबू श्यामसुंदरदास, बी० ए०

मुझे भोजन कराया, पीछे आपने किया। ऐसे सज्जन और ऐसे उदाराशय पुरुष-पुङ्गव को लोगों ने डराया था कि मुझसे और उनसे एक दिन भी पटने की नहीं।

उस समय हिन्दी में अच्छी पत्रिकायें कम थीं। जो थीं भी उनका प्रचार कम था। इससे अनेक ग्रन्थकारों और प्रकाशकों की इच्छा रहती थी कि यदि सरस्वती की समालोचनाओं में उनकी पुस्तकों की प्रशंसा निकल जाय तो कुछ कापियां ज़रूर बिक जायँ। इस कारण लोग बहुधा चिन्तामणि बाबू से सिफ़ारिश कराने आते थे। परन्तु, जहां तक मुझे याद है, उन्होंने कभी इस तरह की कोई सिफ़ारिश मुझसे नहीं की। अपने मित्रों और परिचित जनों तक से उन्होंने सदा यही कहा कि सम्पादक की स्वतन्त्रता हरण करने का हक़ हमें नहीं। मुझ पर उनके इन विचारों का बड़ा असर पड़ता था। मैं उन्हें सदा याद रखता था। उन्हीं की प्रेरणा से मैं अन्याय से यथाशक्ति बचने की चेष्टा करता था।

मेरी समालोचनाओं से कितने ही सज्जन उद्विग्न हो उठते थे। वे उनका खण्डन करते थे। कटूक्तियों से काम लेते थे। मुझ पर तरह तरह के इलज़ाम लगाते थे। उन्हें सुनकर चिन्तामणि बाबू कभी कभी ख़ूब हँसते, मज़ाक करते और कहते—आपकी उम्र बढ़ जायगी। इन्हें आप आशीर्वाद समझिए। इन खण्डनात्मक लेखों से इंडियन प्रेस और सरस्वती का अच्छा विज्ञापन हो रहा है। इस तरह की प्रत्यालोचनाओं पर उन्होंने कभी अप्रसन्नता नहीं प्रकट की। परन्तु जिस तरह मैं इंडियन प्रेस और सरस्वती को अपनी ही मिलकियत समझ कर उनकी सेवा में दत्तचित्त रहता था उसी तरह उन दोनों ने भी कभी मुझे अपने से भिन्न नहीं समझा। कई दफ़े कुछ लोगों ने चिढ़ कर मेरे लेखों के उत्तर में कटूक्तियों और कुत्साओं से पूर्ण लेख मेरे पास भेजे। मैंने उन्हें चिन्तामणि बाबू के पास भेज दिया और पूछा कि प्रेस की कोई हानि न हो तो ये छाप दिये जायँ। उत्तर मिला—हरगिज़ नहीं। जिसे सरस्वती-सम्पादक की कुत्सा और निन्दा करनी हो वह उनका प्रकाशन ख़ुशी से अन्यत्र करे। इंडियन प्रेस ऐसा कदापि न होने देगा। सरस्वती-सम्पादक इंडियन प्रेस का एक अंश है। उसकी अकारण निन्दा के प्रकाशन की आज्ञा प्रेस का प्रोप्राइटर दे! ऐसा अधर्म्म उससे न हो सकेगा।

एक दफ़े मैं एकाएक बीमार पड़ गया। जिगर बहुत बढ़ गया। हलके से भी हलका भोजन न पचने लगा। डाक्टरों ने डरा दिया। उनकी बातचीत से सूचित हुआ कि शायद मेरी परमायु समाप्ति की सीमा के निकट है। इस पर मैंने तीन-चार दिन में धीरे धीरे सामग्री एकत्र करके सरस्वती की अगली तीन संख्याओं का मसाला एक ही साथ प्रेस को भेज दिया। मैंने लिखा कि यदि डाकुरों का अनुमान सही निकले तो मेरे बाद भी तीन महीने तक सरस्वती समय पर निकलती रहे—यह सूचना न देनी पड़े कि सम्पादक के मर जाने से वह देर से निकल सकी या बन्द रही। तीन महीने में कोई दूसरा सम्पादक मिल ही जायगा। इस चिट्ठी को पाते ही चिन्तामणि बाबू ने अपने मैनेजर गिरिजा बाबू को दूसरी ही गाड़ी से कानपुर रवाना किया। वहां उतरते ही उन्होंने दूसरे दर्जे की गाड़ी का एक कमरा "रिज़र्व" कराने के लिए स्टेशन-मास्टर को दरख़्वास्त दे दी। मेरे स्थिति-स्थान पर आकर उन्होंने मुझे इलाहाबाद ले जाना चाहा। कहा—बड़े बाबू आपका इलाज वहां एक नामी डाकुर (शायद अविनाश बाबू) से करावेंगे। गाड़ी "रिज़र्व" करा आया हूँ। सबको साथ लेते चलिए। यह सुनकर मेरे नेत्रों से आनन्दाश्रु टपक पड़े, जिन्हें गिरिजा बाबू ने अपने रूमाल से पोंछा। कुटुम्बियों ने

मुझे इलाहाबाद न जाने दिया। अन्न का सर्वथा त्याग और केवल बकरी के दूध के थोड़े थोड़े ग्रहण से मैं अच्छा हो गया। चिन्तामणि बाबू से मिलने गया तो मुझसे लिपट कर उन्होंने अलौकिक प्रेम का प्रदर्शन किया। बोले, सरस्वती और इंडियन प्रेस के हितचिन्तकों के आप शिरोरत्न हैं। उनके ऐसे विचार केवल उनकी उदारता के सूचक थे। मैंने उनकी इतनी कृपा का मुस्तहक़ अपने को तो कभी समझा नहीं। मैंने जो कुछ किया, सिर्फ़ इतनाही कि सरस्वती की कापी सदा समय पर भेजी; कभी एक दफ़े भी इसमें त्रुटि नहीं होने दी। बस।

चिन्तामणि बाबू की कृपाओं का कहाँ तक उल्लेख करूँ। मुझे अस्वस्थ देख, बिना दरख़्वास्तही के, उन्होंने मुझे दो दफ़े एक एक साल की रियायती छुट्टी दे दी। इस सम्बन्ध में मैं पण्डित देवीप्रसाद शुक्ल का भी अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। क्योंकि मेरा काम उन्होंने बड़ीही लगन के साथ निबाहा, और, विश्वास कीजिए, बदले में उन्होंने हम लोगों की केवल कृतज्ञता ही ग्रहण की। सरस्वती का काम छोड़ने पर भी इंडियन प्रेस की कृपा मुझ पर जो पूर्ववत् बनी हुई है, इसका कारण चिन्तामणि बाबू और उनके उत्तराधिकारियों की उदारता के सिवा और कुछ नहीं।

चिन्तामणि बाबू के विशाल हृदय में औदार्य्य का तो निःसीम वास था। उसका व्यवहार वे मेरेही विषय में नहीं, अपने विपक्षियों तक के विषय में करते थे। कुछ लोगों की सहायता उन्होंने हज़ारों रुपये देकर की थी। पर उन्होंने कृतघ्नता की। प्रेस की कुछ पुस्तकें स्कूलों में पाठ्य-पुस्तकें नियत थीं। वैसीही दूसरी पुस्तकें तैयार करके उन लोगों ने प्रेस को अपदस्थ करने की बड़ी चेष्टा की। परन्तु वे असफल रहे। सुनकर आप आश्चर्य्य करेंगे, वही लोग जब फिर चिन्तामणि बाबू की शरण आये तब उन्होंने, उलाहने का एक शब्द भी मुँह से न निकाल कर, उन्हें पुनरपि अपना लिया। इसी तरह सरस्वती को हानि पहुँचाने की चेष्टा करनेवाले भी कुछ सज्जनों की सहायता, उनके दुष्कृत्यों की कुछ भी परवा न करके, उन्होंने टाइप, मैशीन तथा प्रेस का अन्यान्य सामान देकर की। पूछने पर कहा—मेरा यही व्यवहार इन लोगों के लिए सबसे बड़ी सज़ा है!

चिन्तामणि बाबू की तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी थी। उनका विस्तृत ललाट और प्रकाण्ड शीर्ष उनके हृदय की महत्ता और श्रीसम्पन्नता की सूचना देता था। जब से उनके नेत्रों की ज्योति जाती रही तब से उन्हें कष्ट का अनुभव होने लगा। भावी प्रबल होती है। एक अनभिज्ञ नेत्र वैद्य (योरपीय डाक्टर) की असफल शस्त्रक्रिया से उनकी दृष्टि सदा के लिए जाती रही। इसके अनन्तर उन्हें अपनी पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र और ज्येष्ठ कन्या के चिर-वियोग का दुःख वहन करना पड़ा। तथापि मिलने पर कभी उन्होंने, इन कारणों से, कातरता अथवा नैराश्य नहीं प्रकट किया। अगर कभी कुछ कहा तो केवल इतनाही कि मेरी माता अभी तक जीवित हैं। उन्हें ये सब दुर्घटनायें अपनी आँखों देखनी पड़ीं। माता का भी, अभी कुछ समय पूर्व ही, शरीर छूटा है। अत्यन्त जराजीर्ण और शिथिल-शरीर होने पर भी उन्होंने स्वयं ही उनका सारा अन्त्येष्टि-कर्म्म, बड़े ही भक्ति-भाव से, किया। वे परम मातृभक्त थे।

ऐसे सुजन, ऐसे पर-दुःख-कातर, ऐसे उदाराशय और ऐसे व्यवसायदक्ष पुरुष के किन किन गुणों का स्मरण किया जाय। उन्होंने अपने ही बाहुबल और अपने ही कार्यकौशल से इंडियन प्रेस को उन्नति के चरम सोपान तक पहुँचा दिया। उसकी बदौलत आज सैकड़ों, हज़ारों, आदमियों का पालन हो रहा है। हिन्दी-साहित्य की अभिवृद्धि करने का सबसे अधिक श्रेय, इस प्रान्त में, इसी प्रेस को है। मेरी तो यह धारणा है कि इस सम्बन्ध

बाबू चिन्तामणि घोष (प्रौढ़ावस्था)
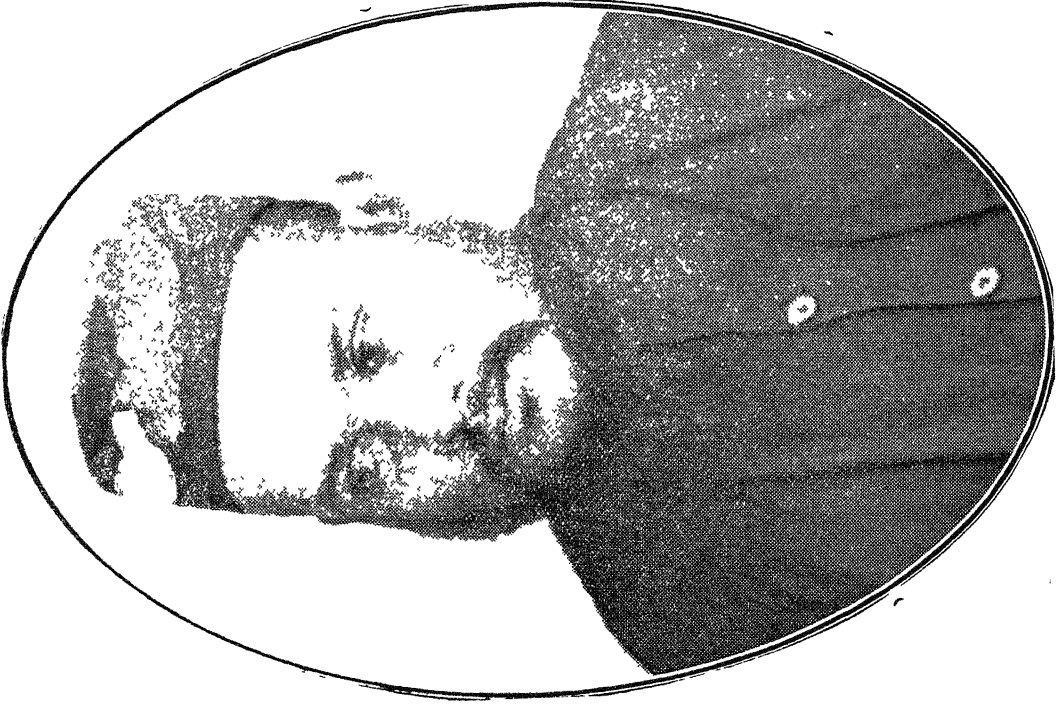
बाबू चिन्तामणि घोष (३५ वर्ष)
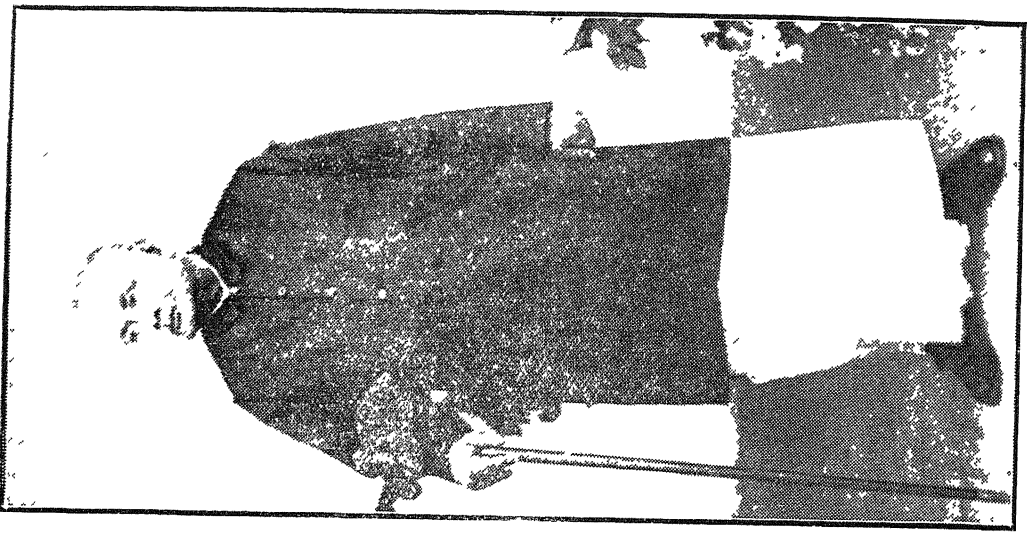
बाबू चिन्तामणि घोष (७१ वर्ष)

में शायद ही इस देश में किसी और प्रेस ने इतनी नामवरी हासिल की हो। सौभाग्य से चिन्तामणि बाबू के आत्मज भी उन्हीं के सदृश—किंबहुना उनसे भी अधिक—कर्म्मठ, उद्योगशील, व्यवहार-निपुण और उदारचेता हैं। जब से उन्होंने प्रेस का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया है तब से उसकी और भी अधिक उन्नति हुई है और दिन पर दिन होती जाती है।

यह स्वल्प लेख चिन्तामणि बाबू का जीवन-चरित नहीं। उसे लिखने की योग्यता ही मुझमें नहीं। यह तो उनके सम्बन्ध की मेरी कुछ स्मृतियों का चित्रण-मात्र है।

हा चिन्तामणि !

[श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०]

पंचतत्त्व-पींजड़े को छोड़, गया पंछी उड़,
साथ उसके ही उठ आसरा हमारा गया;
व्यवसाय-कुशल, गुणीजन का सखा सौम्य,
अति ही विनम्र वह लक्ष्मी का दुलारा गया;
सर्वस 'सरस्वती' का, हिन्दी का हितैषी गया,
नागरी-प्रचारिणी सभा का हा सहारा गया,
चिन्तामणि गये, गई लेखकों की चिन्तामणि,
स्वजन कुटुम्बियों का आज प्राणप्यारा गया।

मित्रवर चिन्तामणि घोष

[महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डि० लिट, एल-एल० डी०]

१९०२ के नोवेम्बर में मैं म्योर कालेज में संस्कृत का अध्यापक होकर आया। और १९०३ के फ़ेब्रुअरी मास में मेरा परिचय बाबू चिन्तामणि घोष से हुआ। उन दिनों इंडियन प्रेस अच्छी तरह ख्यात हो चला था। पर था एक गलित-पलित बँगले में कचहरी रोड पर। वह बँगला जल गया। फिर वहाँ पण्डित राजनाथ साहब ने नया बँगला बनाया, जो अभी वर्तमान है। वहाँ से इंडियन प्रेस कटरे में आया—चिन्तामणि बाबू के अपने मकान के सामने। कुछ ही दिनों के अनन्तर पायनियर रोड नं० ३ का बँगला ख़रीदा गया। वहीं चिन्तामणि बाबू रहने लगे और छापाख़ाना भी वहीं आया। मैं उन दिनों उसी के बग़ल मे नं० १ बँगले में रहता था (जहाँ अब यूनिवर्सिटी का नया छात्रावास बना है)। उन्हीं दिनों १९०७ में डाक्टर टिबो के साथ मैंने इंडियन थाट (Indian Thought) नाम के त्रैमासिक पत्र का सम्पादन प्रारम्भ किया। यह पत्र दो साल तक इंडियन प्रेस में छपा।

मेरे इलाहाबाद आने के साथ ही बाबू चिन्तामणि घोष से मित्रता हुई। और मेरे भाग्यवश कालक्रम से यह मित्रता बढ़ती ही गई और यावज्जीवन उनकी कृपा मुझ पर बनी रही।

हिन्दी के लिए जितना चिन्तामणि बाबू ने किया, उतना कोई भी एक व्यक्ति आज तक नहीं कर सका है। यह कहना अत्युक्ति नहीं होगी कि चिन्तामणि बाबू आधुनिक काल में हिन्दी के जन्मदाताओं में एक हुए। मुझे स्मरण है, जब उन्होंने रविवर्मा का जीवनचरित सचित्र निकाला था, मुझे एक प्रति देकर उन्होंने कहा कि (उन दिनों के असिस्टेंट डायरेक्टर) मिस्टर डेलाफ़ोस का कथन है कि आप लोगों की छपाई विलायती छपाई को नहीं पा सकती। इसी बात की ज़िद पर उन्होंने यत्नवान् होकर उस पुस्तक को छपवाया था, जिसे देख कर उक्त साहब को अपनी बात वापस लेनी पड़ी थी। तब से मरण-दिन-पर्यन्त हिन्दी की सर्वाङ्ग उन्नति ही चिन्तामणि बाबू का मुख्य उद्देश रहा। इस उद्देश की कैसी सिद्धि हुई सो किसी से छिपी नहीं है।

आशा है, चिन्तामणि बाबू के पुत्र उनके कार्य को उसी तरह निभायेंगे। इससे बढ़कर उनके आत्मा की पूजा और नहीं हो सकती।

स्वर्गीया गोलाप मोहिनी घोष (पत्नी)
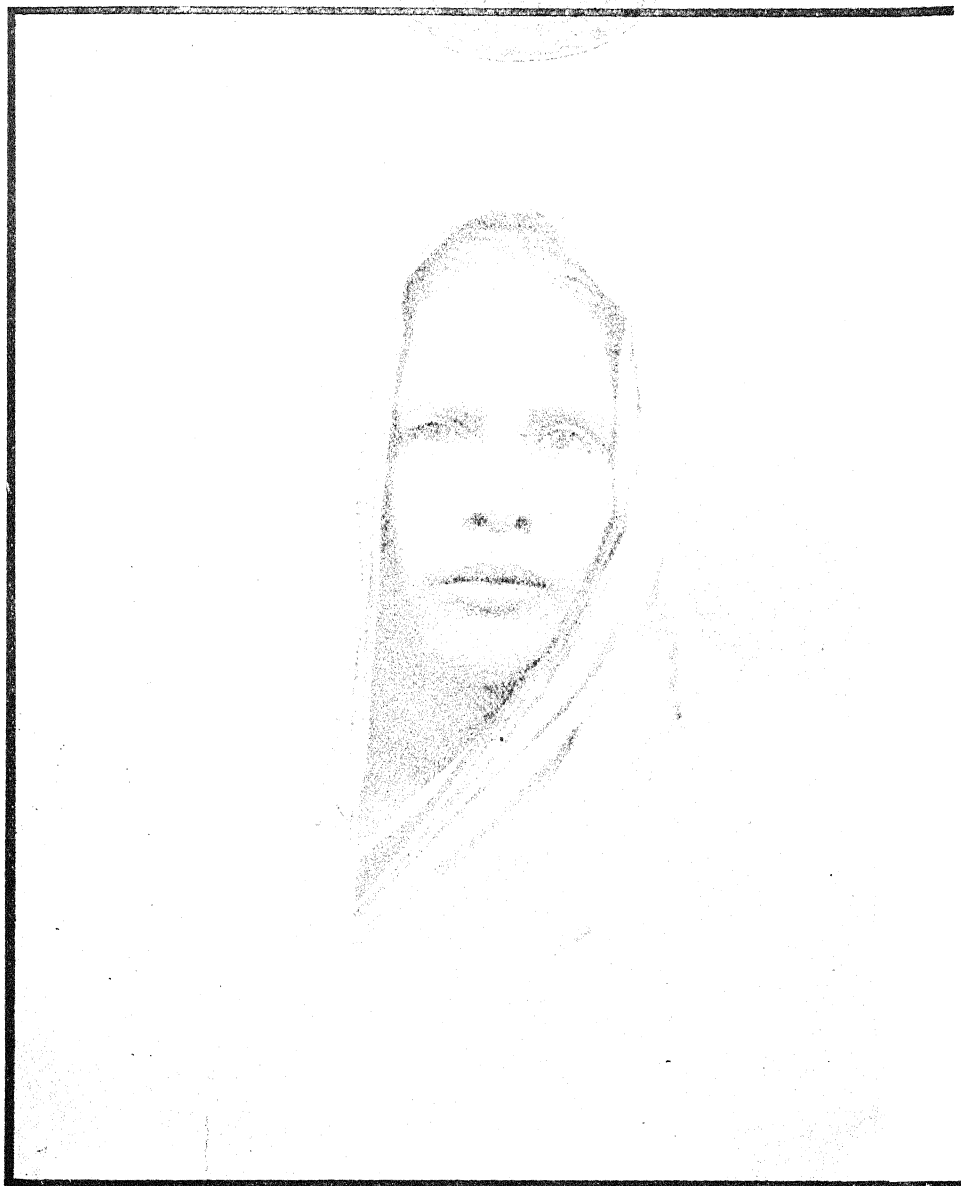
स्वर्गीय बाबू हरिपद घोष

पुण्य-स्मृति

[रायसाहब बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए०]

बाबू चिन्तामणि घोष से मेरा परिचय हुए आज लगभग तीस वर्ष के होता है। उस समय उनका इंडियन प्रेस कटरे में स्थित था। काशी के क्वींस कालेज के विज्ञान के अध्यापक रायबहादुर बाबू अभयचरण सान्याल के द्वारा ही हम लोगों का परस्पर परिचय हुआ था। उस समय सभा स्कूलों की पाठ्य पुस्तकों के लिए भाषासार-संग्रह तथा भाषा-पत्र-बोध नाम की पुस्तकों के तैयार करने में लगी हुई थी। सान्याल महोदय के द्वारा सभा में यह प्रस्ताव किया गया था कि इन दोनों पुस्तकों को इंडियन प्रेस अपने व्यय से प्रकाशित करेगा और सभा को उसके परिश्रम के लिए यथोचित पारिश्रमिक देगा। इस सम्बन्ध में मेरा तथा बाबू राधाकृष्णदास का कई बार प्रयाग जाना हुआ था।

इन्हीं दिनों में संयुक्त-प्रदेश की अदालतों में देवनागरी अक्षरों के प्रचार के लिए उद्योग हो रहा था। पण्डित मदनमोहन मालवीयजी 'कोर्ट कैरेक्टर एंड प्रायमरी एजूकेशन' (Court Character and Primary Education) नामक पुस्तिका लिखने में लगे हुए थे और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को समस्त प्रांत से आवेदन-पत्र के पक्ष में हस्ताक्षर प्राप्त करने का काम सौंपा गया था। इस निमित्त भी प्रायः प्रयाग जाना पड़ता था। क्रमशः चिन्तामणि बाबू से हम लोगों की घनिष्ठता बढ़ती गई। सरस्वती के प्रकाशन तथा रामचरितमानस के संपादन का आयोजन हुआ। उस समय से लेकर अब तक चिन्तामणि बाबू से मेरा सम्बन्ध बना रहा। ये मुझे अपना छोटा भाई मानते थे और इस नाते के निबाहने में इनकी ओर से कभी कोई त्रुटि नहीं हुई।

तीस वर्ष का समय बहुत लम्बा होता है। इस बीच में अनेक प्रकार की घटनायें हो सकती है, परन्तु आश्चर्य है कि चिन्तामणि बाबू से कभी किसी प्रकार मनोमालिन्य नहीं हुआ। यद्यपि सरस्वती के कारण कुछ खींचा-तानी हो गई थी, पर आपस के सौहार्द में कोई भेद नहीं पड़ा था। इन तीस वर्षों के संसर्ग में मुझे चिन्तामणि बाबू के स्वभाव-बर्ताव आदि के विषय में बहुत कुछ अनुभव प्राप्त करने का अवसर मिला, उनमें सबसे बड़ा गुण यह था कि वे सत्यवादी थे। कभी छल-कपट से या बात बनाकर अपना काम निकालने की उन्हें सूझती नहीं थी। जो कुछ कहना होता था उसे स्पष्ट कह देते थे और जो एक बेर कह देते थे उसके पूरा करने में कभी आगा-पीछा नहीं करते थे। उनका स्वभाव नम्र, सरल और दंभ-रहित था। यद्यपि उन्होंने इंडियन प्रेस का आरम्भ अपने एक मित्र से कुछ रुपया उधार लेकर किया था, पर इन्हीं सद्‌गुणों के कारण उनका कारबार इतना बढ़ा कि आज इंडियन प्रेस की समता का दूसरा प्रेस संयुक्त-प्रदेश में नहीं है। इस प्रेस के कारण उन्होंने अच्छा धन कमाया, पर कभी उसके कारण उन्हें दंभ नहीं हुआ।

चिन्तामणि बाबू ऐसी शांत प्रकृति के थे कि कभी किसी से कोई कड़वी बात न कहते थे। जब कभी मैं प्रयाग जाता

और उनके यहाँ ठहरता तब वे एक बेर अपने साथ लेकर मुझे समस्त प्रेस दिखाते। मुझे स्मरण है कि एक बेर यों ही घूमते हुए वे एक प्रेस के पास खड़े होगये। छपते हुए एक फ़र्मे को उठाकर उन्होंने देखा और उसे फाड़ कर वहीं रख दिया। प्रेस में हलचल पड़ गई, पर चिन्तामणि बाबू ने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा और दूसरे विभाग में चले गये। पीछे मैंने पूछा कि यह क्या बात थी। उन्होंने कहा कि छपाई ठीक नहीं हो रही थी और प्रेसमैन ठीक काम नहीं कर रहा था। पीछे मुझे ज्ञात हुआ कि वह फ़र्मा रद्दी कर दिया गया और पुनः ठीक करके छापा गया। इस घटना से यह स्पष्ट है कि वे अपने प्रेस की कीर्ति के लिए कितना व्यग्र रहते थे और प्रेस के कर्मचारियों का शासन कैसी अच्छी रीति से करते थे।

चिन्तामणि बाबू की बड़ी इच्छा थी कि जिस प्रकार रामायण का संस्करण इंडियन प्रेस से निकला है, वैसे सूरसागर का भी एक संस्करण निकाला जाता। इस काम को करने के लिए उन्होंने कई बेर आग्रह-पूर्वक मुझसे कहा था और मैंने इसका समस्त प्रबन्ध करने का भार भी अपने ऊपर ले लिया था, पर मुझे दुःख है कि अपनी जीवनावस्था में वे यह न सुन सके कि उसकी छपाई आरम्भ हो गई है।

बाबू चिन्तामणि घोष के द्वारा हिन्दी-साहित्य का बहुत कुछ उपकार हुआ और चिन्तामणि बाबू की उन्नति भी हिन्दी-सेवा के कारण हुई है, अतएव दोनों का सम्बन्ध घनिष्ठ है। एक बेर मैंने चिन्तामणि बाबू से कहा था कि हिन्दी के लिए कुछ विशेष धन-दान देकर कोई स्थायी काम कर जाइए। उन्होंने कहा कि तुमने पहले यह क्यों नहीं कहा। अब तो मैं एक अस्पताल के लिए आयोजन कर रहा हूँ। फिर भी उन्होंने उस समय दो हज़ार रुपये नागरी-प्रचारिणी सभा को दिये थे और आगे कुछ और करने का विचार किया था। मैं नहीं कह सकता कि उन्होंने इस सम्बन्ध में पुनः कभी विचार किया या नहीं।

चिन्तामणि बाबू को हम बड़ा भाग्यवान् कह सकते है। यद्यपि उन्हें अपने जीवन में अपने ज्येष्ठ पुत्र की असामयिक मृत्यु का शोक सहना पड़ा था, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे अपने पुत्रों के कारण अपने को भाग्यवान् समझते थे। वे अपने पुत्र बाबू हरिकेशव घोष से बड़े सन्तुष्ट थे। इन्होंने उनके जीवन में ही सारे कारबार को सँभाल लिया है। इधर कई वर्षों से चिन्तामणि बाबू दृष्टिहीन हो गये थे और कोई काम स्वयं नहीं कर सकते थे, तो भी उनकी आज्ञा के बिना कोई काम नहीं होता था। सन् १९२७ के मई-जून मास में मैं पुरी में था। चिन्तामणि बाबू भी उन दिनों वहीं थे। जहाँ मैं ठहरा था उसी के पास ही उनका स्थान भी था। मैं प्रायः संध्या को उनसे मिलता था। उनकी बातचीत से ऐसा आभास मिलता था कि प्रेस के काम की पूरी पूरी रिपोर्ट उनके पास नियमित रूप से आती है।

चिन्तामणि बाबू सत्यवादी, कार्यकुशल, परोपकारी तथा दयापूर्ण व्यक्ति थे। वे भाग्यवान् तो थे ही, संसार में मनुष्य जो कुछ चाहता है वह सब उनको मिला था, किसी बात की आकांक्षा बाक़ी नहीं थी और न किसी बात की चिन्ता थी। इसमें संदेह नहीं कि उनकी सद्गति हुई और उनकी आत्मा को उस लोक में भी शांति प्राप्त होगी। ईश्वर उनके पुत्रों को उन्हीं का आदर्श सम्मुख रख कर कार्य करते रहने की सद्-बुद्धि दे, यही कामना है।

अश्रुपात

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(१)

रे काल ! भारत ने बता—
अपकार क्या तेरा किया ?
जो आज चिन्तामणि-रहित,
तूने उसे हा कर दिया ॥

(२)

है ख्यात चिन्तामणि सही—
कामद, तदपि जड़ वस्तु है ।
पर आप चेतन हो यहाँ,
चिन्तामणे ! प्रख्यात थे ।

(३)

थे आप चिन्तामणि तदपि,
चिन्तित हमें क्यों कर गये ?
या आपका क्या दोष है ?
यह काल की है क्रूरता ॥

(४)

अत्यल्प साधन से बड़े,
किस भाँति करते काम हैं ।
इसके निदर्शन आप थे ,
अनुपम यशोमय विश्व में ॥

(५)

"है राष्ट्र-भाषा नागरी"
इस बात को सबसे प्रथम ।
बङ्गालियों मे आपने,
समझा तथा समझा दिया ॥

(६)

जैसा किया है आपने हित—
नागरी का प्रेम से ।
क्या आज तक वैसा किसी भी,
बङ्गवासी ने किया ?

(७)

थी मातृभाषा आपकी—
बँगला, यदपि यह सत्य है ।
पर प्रेम पक्का आपका—
था नागरी से धन्य है ॥

(८)

"निज राष्ट्र-भाषा की सुसेवा,
जो मनुज करता नहीं ।
है जन्म उसका व्यर्थ ही"
यह आपका सिद्धान्त था ॥

(९)

यद्यपि अनेकों गुण भरे—
थे आपमें संशय नहीं ।
पर नागरी के हेतु तो,
साक्षात् चिन्तामणि रहे ॥

(१०)

हैं अन्य कार्यों के लिए,
बङ्गालियों में योग्य नर ।
पर राष्ट्र-भाषा के लिए,
है आप-सा कोई नहीं ॥

(११)

है राष्ट्र-भाषा राष्ट्र की,
संजीवनी विद्या जहाँ।
स्वाधीन रहता देश वह,
गुरु-ज्ञान यह था आपमें ॥

(१२)

क्या आपके ऋण से उऋण,
हिन्दी कभी हो जायगी ?
या मातृ-सेवा आपने—
की, कुछ न ऋण उस पर हुआ ॥

(१३)

जैसी निकाली आपने,
आदर्श-हिन्दी-पत्रिका।
वैसी न कोई पत्रिका,
निकली अभी तक दूसरी ॥

(१४)

क्यों क्लेश देकर देश को,
अमरेश के सहचर बने ?
क्या अप्सराओं का प्रलोभन,
आप पर भी चल गया ?

(१५)

स्वर्गस्थ होकर आप चाहे,
भूल भी जावें कभी।
पर हिन्द-हिन्दी-हिन्दुओं से,
भूल सकते आप क्यों ?

(१६)

वङ्गीय थे पर आपकी मति,
भारतीया थी मिली।
था आपका भारत इसी से,
आप भारत के रहे ॥

(१७)

फलने न पाई फूल कर,
हा नागरी-लतिका अभी।
फिर भी उसे क्यों छोड़ कर—
अमरावती में जा बसे ?

(१८)

थी पाञ्चभौतिक देह नश्वर,
आपकी वह मिट गई।
पर नागरी के साथ में है,
कीर्ति सुस्थिर आपकी ॥

(१९)

जग में अमर नर है वही,
जिसका न मिटता नाम है।
है नाम तब तक आपका,
जब तक रहेगी नागरी ॥

(२०)

आँसू निलज रुक जायगा,
सद्बान्धवों का भी कभी।
पर आपके हित नागरी,
आँसू बहायेगी सदा ॥

राय साहब प्रोफ़ेसर सतीशचन्द्र देव, एम० ए०

प्रोफ़ेसर सुरेन्द्रनाथ देव, एम० ए०

कैसे बड़े हुए, किन गुणों से ?

[श्रीयुत 'मुरलीधर']

आदमी चरित्र के महत्त्व से बड़ा होता है, न धन से न दौलत से, न बड़े घराने से, न बड़े पद से। जितने अधिक सद्गुण इसमें पाये जाते हैं, उतना ही बड़ा वह समझा जाता है। स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष एक स्वनाम-धन्य स्वावलम्बी पुरुष थे, जो अपने उद्यम से इतने बड़े हुए। ऐसे मनुष्य के गुणों की आलोचना करना बड़ा लाभदायक है। किन किन गुणों के कारण वे इस पद को पहुँचे, इसी का विचार करना इस लेख का उद्देश है।

मातृप्रेम और भक्ति—सबसे बड़ी बात जो उनमें देख पड़ती थी वह उनकी मातृभक्ति थी। दस वर्ष के पितृहीन बालक ने अपनी बाल्यावस्था मे माता के लिए प्रेम और भक्ति का जैसा दृष्टान्त दिखाया, वैसा ही वृद्धावस्था में भी। इस सम्बन्ध में यदि तुलादण्ड में सारी दुनिया एक ओर होती और उनकी माता दूसरी ओर तो उनकी माता ही का पलड़ा भारी रहता। दुनिया टल जाय, पर माता की बात न टले। रूसी कवि करामज़ीन (Nicholas Karamzin) ने अपनी माता के विषय मे जो कहा है उसका प्रत्येक अक्षर उनके लिए भी प्रयोज्य है—

"तेरा शान्त धीर स्वभाव मेरी सम्पत्ति है,

"जिसको मैंने तुझसे उत्तराधिकार के रूप में प्राप्त किया है।

"तेरी आत्मा मेरे साथ सर्वदा रहती है।

"अदृश्य हाथों से तुमने मेरी ज्ञान-शून्य बाल्यावस्था में रक्षा की है।

"तूही मेरी युवावस्था मे मुझको भलाई की ओर ले गई।

"और तूही मेरी दुर्बलता के समय मेरी कल्याण-बुद्धि (Conscience) बनी"।

उनको सर्वदा यह चिन्ता रहती थी कि माता को किसी प्रकार का कष्ट न हो। बाल्यावस्था में सब प्रकार का शारीरिक कष्ट सहन किया, पर माता को एक दिन भी जानने न दिया। १२ वर्ष की अवस्था में जब लड़कों को खेल-कूद के सिवा और कुछ नहीं सूझता उस समय माता का कष्ट हरण करने को उन्होंने नौकरी करना स्वीकार किया। माता के सन्तोष के लिए उसी अवस्था में उन्होंने अपने भानजे-भानजियों का भार अपने ऊपर लिया। यद्यपि उन लोगों से वे कभी सुखी नहीं हुए*, तो भी उनका अपने पुत्र-कन्या के समान ही पालन-पोषण बराबर करते रहे। उनके सुख-सन्तोष के लिए सर्वदा चिन्तित रहते। यहाँ तक कि २८ वर्ष की अवस्था तक उन्होंने अपना व्याह नहीं किया कि कहीं उनको कष्ट न हो और इसलिए माता का दिल दुखे। जब लड़कों ने प्रेस और गृहस्थी का काम सँभाल लिया

*दो की अपमृत्यु हुई, एक संन्यासी हो गया, व्याही भानजी क्षय-रोग से मरी।

तब प्रायः कहा करते कि अब काशी में या और कहीं एकान्त में रहेंगे, पर जब तक माताजी का शरीर है, हम कहीं नहीं जा सकते। माता का प्रेम उनको इतना अधिक था कि कभी विश्वास ही नहीं होता था कि उनकी अनुपस्थिति में उनकी माताजी की पूरी सेवा होगी। ऐसे सपूत ही बड़े होते हैं। राममोहन राय, विद्यासागर, जस्टिस गुरुदास बन्द्योपाध्याय, रानडे, सर आशुतोष मुखोपाध्याय, नेपोलियन, वाशिङ्गटन, लिनकन, गारफ़ील्ड, ये सब मातृ-प्रेम और भक्ति के लिए प्रसिद्ध थे, और माता के सद्गुणों के अधिकारी बन कर बड़े हुए। किसी चिन्ताशील लेखक का कथन है कि बड़ी मा ही के बेटे बड़े होते हैं। यह बात बहुत सच है। पिता का प्रभाव बालक पर उतना नहीं पड़ता जितना प्रेममयी माता का। उनकी माताजी आदर्श हिन्दू-महिला के सब सद्गुणों से विभूषित थीं। दया, दाक्षिण्य, उदारता, अतिथि-सेवा, धर्मचर्या, औरों पर स्नेह, ममता, सब उनमें देख पड़ते थे। उनका हृदय दूसरों के कष्ट से विचलित हो जाता था। दुःख-भाराक्रान्त लोगों के एक बार उनके पास पहुँच जाने पर फिर जैसे हो वे उनका कष्ट दूर करने में कुछ उठा न रखती थीं।

बड़े होने की आकांक्षा (ambitbon) जिसमें न हो वह बड़ा नहीं हो सकता। फ़ारस के श्रेष्ठ कवि हाफ़िज़ ने यथार्थ कहा है—

ذرہ را تا نبود همت عالی حافظ
طالب چشمۂ درخشاں نشود

अर्थात् जब तक धूलि-कण को उच्चाकांक्षा न होगी, वह चमकते सूरज की किरण-धाराओं का कभी प्रार्थी न होगा। लड़कपन ही से वे अपनी अवस्था से सन्तुष्ट न थे। अपने मित्रों से कहते कि तुम तो दस-बीस से सुखी हो, पर हमको गुलामी नहीं भाती। अवसर के समय को ताश, पाँसा न खेल कर वे उसे ज्ञानोन्नति में बिताते। उन्होंने स्माइल्स (Smiles) की जगद्-विख्यात पुस्तक 'स्वावलम्बन' (Self Help) को १३।१४ बार पढ़ा था। तब क्यों न आदमी बनें? उनको लड़कपन ही से सब विषयों के सीखने की अभिलाषा थी। उनको गूढ़ तत्त्व के समझने की वासना थी। राय रामचरण दास बहादुर के बाद उनसे बढ़ कर इमारत का काम समझनेवाला प्रयाग के नगर-वासियों में और कोई नहीं था। लकड़ी के पहचानने में उनका समकक्ष कोई न था, प्रेस के काम की तो बात ही नहीं। यह सब उनकी इसी ज्ञानोन्नति का फल था।

पायोनियर के दफ़्तर में काम करते समय प्रेस के भीतर जा कैसे काम होता है यह देखते और साथियों से कहते कि मुझे मैनेजर की कुरसी पर बैठा दो, मैं सब काम चला लूँगा, इसमें कठिनाई ही क्या है? सब साथी हँस पड़ते। तब ये यह नहीं समझते थे कि उनके भीतर कैसी आग जल रही है। सारे जीवन में उनकी सब बातों में उत्कर्ष लाभ करने की, आगे बढ़ने की ही इच्छा देखने में आई। जब नौकरी करते थे, कपड़े की दूकान साझे में खोली, जब (Cabinet-making) मेज़, कुरसी, अलमारी बनाने की दूकान की तब उसमें गाड़ी तक बनाकर 'स्टुअर्ट' और 'डाइक्स' की बराबरी की, जब २५०) रुपये लेकर इंडियन प्रेस खोला तब उसको आज दिन की स्थिति को पहुँचाया—इन सबमें यही इच्छा-शक्ति काम कर रही थी। जेम्स नेस्मिथ, कारनेगी, फ़ोर्ड, एडीसन, डिमास्थनीज़ इत्यादि पृथिवी में जितने छोटे से बड़े हुए उन सबमें यही इच्छा बलवती थी। उन्नति के लिए "झोपड़े में रहना और महलों का ख़्वाब देखना" ज़रूरी है, पर उस स्वप्न को रूपमय और प्राणमय करना चाहिए। जब
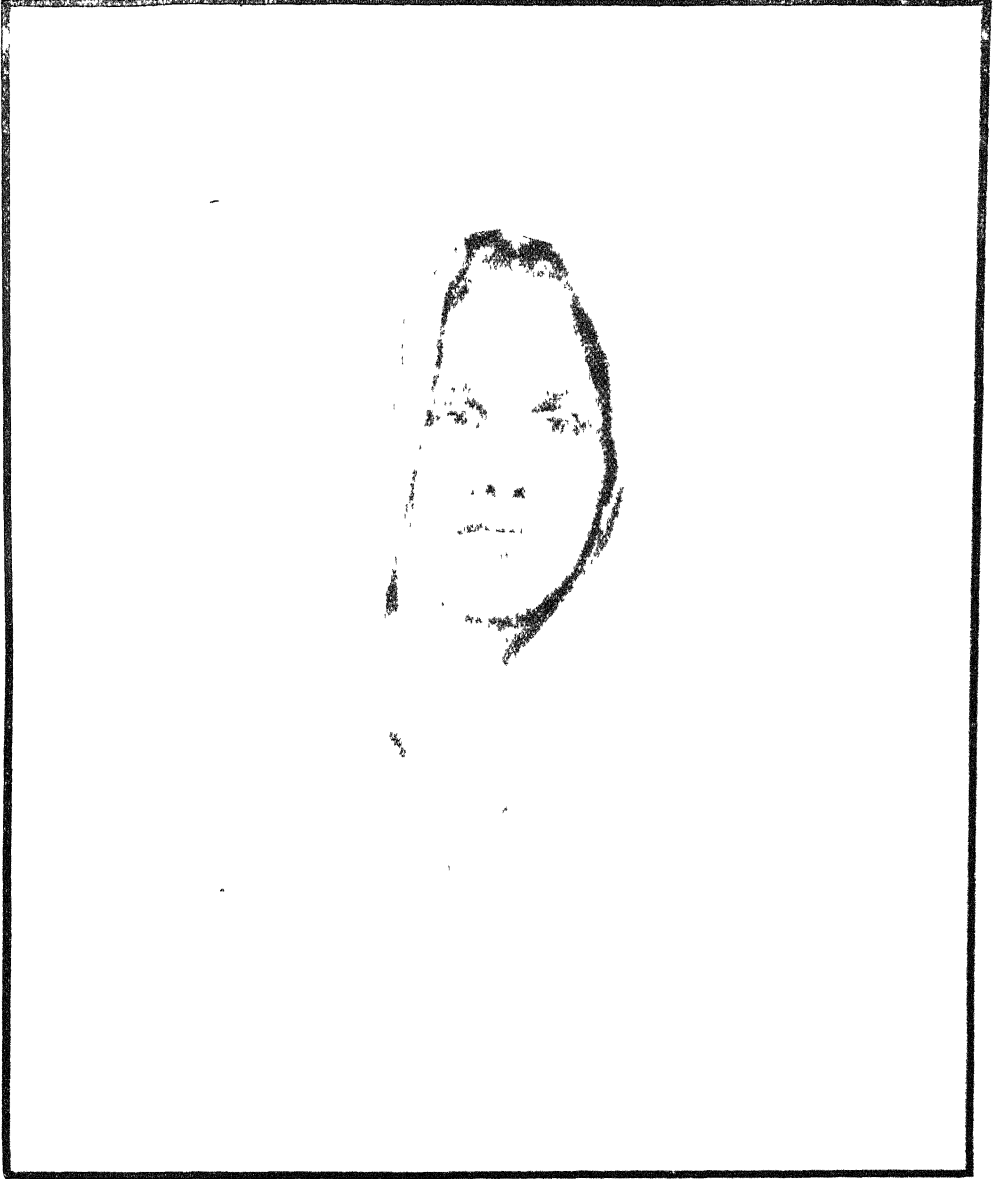
स्वर्गीया हरिप्रभा वसु (ज्येष्ठा कन्या)
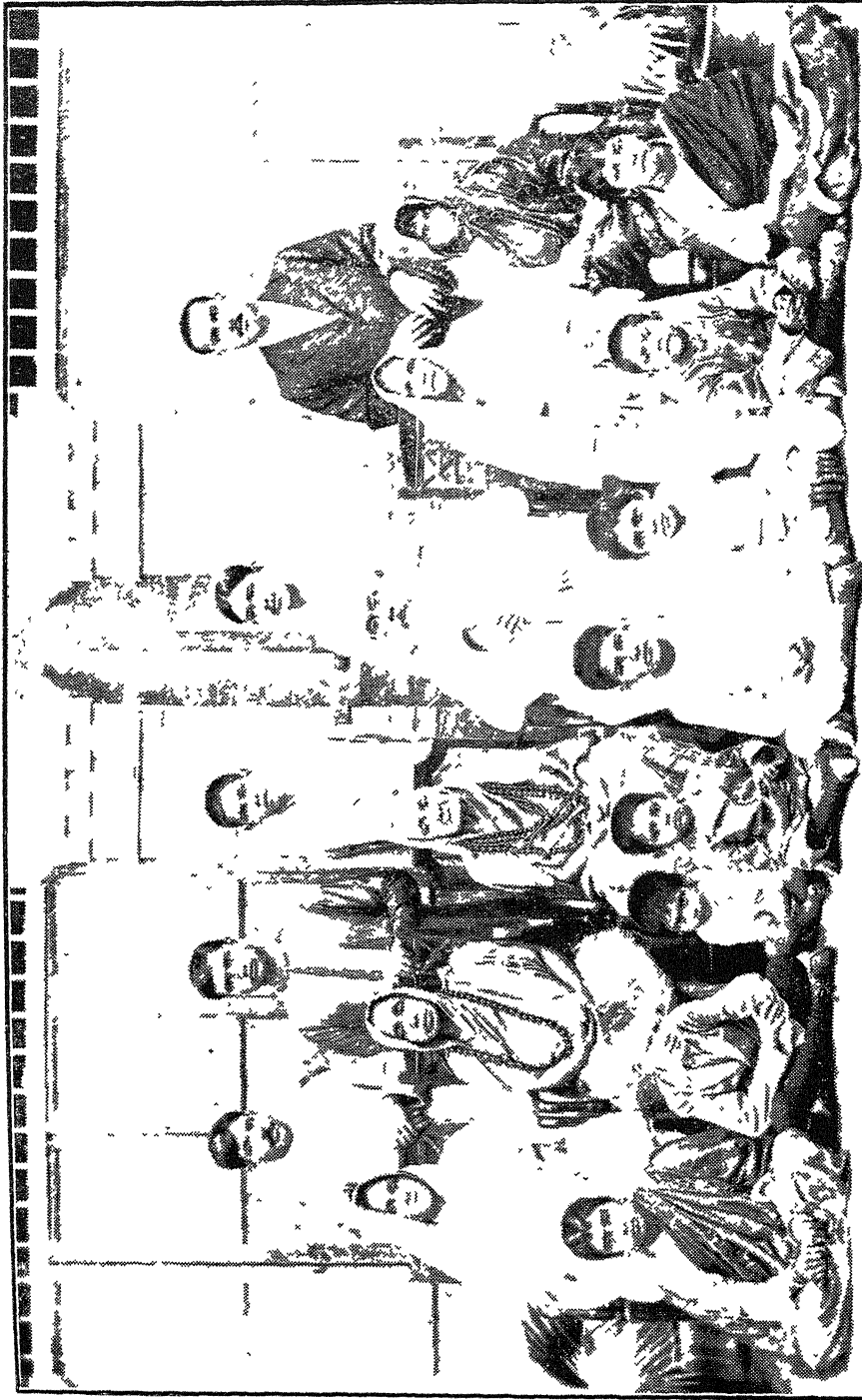
बाबू चिन्तामणि घोष और उनका परिवार

युवक डिमास्थनीज़ हकलाता हुआ नदी-किनारे मुँह में कंकड़ियाँ रख हवा और बालू को अपनी वक्तृता सुनाता तब कौन सोचता था कि वह स्वप्न नहीं देख रहा है। जब वह पृथिवी का सबसे बड़ा वाग्मी हुआ तब उसका महलों का ख़्वाब यथार्थ हुआ। रवीन्द्रनाथ ने कहा है—

"आगे चलो आगे चलो भाई—
"पीछु पड़े थाका—मिछे मरे थाका—
"आगे चलो आगे चलो भाई"

यही उनके जीवन का आदर्श था—वे आगे ही चलते थे। पीछे पड़े रहने को मृत्यु के समान समझते थे। कब हमारे देशवासी इसको अपने जीवन का आदर्श बनायेंगे ?

अचल, अटल, दृढ़प्रतिज्ञ, सहिष्णु हुए बिना जीवन में सफ़लता नहीं होती।

बैठे है तेरे दर पर तो कुछ करके उठेंगे।
या वस्ल ही हो जायगा या तो मरके उठेंगे॥

जब तक यह साहस, यह शक्ति नहीं आती, आदमी बड़ा नहीं हो सकता। लगे रहना, लिपटे रहना, आज न होगा तो कल होगा—साल में न होगा तो दो साल मे होगा—छोड़ना किसी प्रकार नहीं, जब तक सफलता न हो तब तक काम किये जाना, यही बड़ों का लक्षण है। फ़रासीसी बर्नार्ड पेलिसी (Bernard Palissy) चीनी मिट्टी के बर्तन बनानेवाला चीनी मीने (enamel) के गूढ़ रहस्य के आविष्कार करने में सर्वशान्त हो गया, अपने झोपड़े को भी तोड़-फोड़ जला दिया तब उसका रहस्य जान पाया—इँग्लेंड के प्रसिद्ध कलाल (potter) वेजउड (Josiah Wedgewood) ने भी जब तक सब खो न दिया तब तक उनको पोरसिलेन बनाने का भेद न मिला—ब्रेसमर (Bessemer) ने सब खोकर ही ईस्पात बनाने की नई रीति निकाली। देखने मे आता है कि कोई काम तन मन धन सब समर्पण किये बिना हासिल नहीं होता। उनका भी यही हाल था—प्रेस के नये नये काम इत्यादि सीखने के लिए उन्होंने कितना रुपया खोया, उसका हिसाब नही। एक दृष्टान्त बहुत है। क्रोमोलिथो बड़ा कठिन और बड़ा व्ययसाध्य काम है—यह काम बम्बई में उस समय रविवर्मा के प्रेस मे थोड़ा-बहुत होता था, और टूटे-फूटे तौर पर कुछ कलकत्ते मे। उन्होंने जर्मनी से (Litho-Artist) लिथो-चित्रकार बुला इस काम को आरम्भ किया और इसमें लगभग एक लाख रुपया खोया, पर इसकी उन्हे कुछ परवा न थी—सफलता की ओर उनकी दृष्टि थी, रुपये की ओर नहीं। छापेख़ाने को जिसे जर्मनी, अमेरिका और इँग्लेंड के मेशीन बनानेवाले भी देख फड़क उठते है उसे इस हालत में पहुँचाने के लिए उनको क्या क्या कष्ट उठाने पड़े उन्हें या तो वही जानते थे या थोड़ा-बहुत उनके दो चार अन्तरंग मित्र। जर्मन महाकवि गेटे का कथन है—

"Nur wer die Sehnsucht kennt, Weiss, was ich leide."

अर्थात् जो उच्च आकांक्षा रखते है वही जानते है कि हमको क्या कष्ट उठाना पड़ता है। उसके सोच के मारे वे रात रात भर नहीं सोये। रातें काम करने में गँवा दीं, यहाँ तक कि अपना स्वास्थ्य अपने नेत्र तक खो बैठे। फ़ारस के श्रेष्ठतम कवि ने सच कहा है—

حافظ صبور باش کی در راه عاشقي
هر کس که جان نداد بجانان نمی رسد

हाफिज़ धैर्य्य धरो क्योंकि प्रेम के पथ पर जिसने प्राण नहीं दिये वह प्रियतम तक नहीं पहुँचेगा।

सहिष्णु तो ऐसे थे कि सब प्रकार के कष्ट सहन किये, पर कभी किसी को जानने न दिया। पुत्र-कन्या-स्त्री की मृत्यु पर भी किसी ने कभी उनको शोक करते नहीं देखा। वीर के समान सब सहन किया। जिस बात के पीछे एक बार पड़ जाते उसका वारा-न्यारा किये बिना नहीं छोड़ते थे।

साधुता—१३-१४ वर्ष की उम्र में गृहस्थी का बोझ सिर पर उठाया था, पर आज नौकरी चली जाय तो कल कैसे चूल्हे में आग जलेगी, इसकी परवा इस तेजस्वी सत्यवादी युवक को न थी। दफ़्तर के हिसाब में गोल-माल था। बड़े अफ़सरों में से कुछ खाऊ वीर थे। उन्होंने कहा, हम इस गड़बड़ हिसाब को नहीं लिखेंगे। मित्रों ने हज़ार समझाया नहीं माना—१६ वर्ष की अवस्था में उन्होंने काम छोड़ दिया।

गत महायुद्ध के समय उन्होंने किसी अँगरेज़ काग़ज़-वाले को बहुत रुपये के काग़ज़ का आर्डर दिया। काग़ज़ समय पर नहीं आया—दाम गिर गया। उनको लगभग ..०,०००) रुपये का घाटा हुआ। वक्त पर न आने से वे सहज ही में माल लेना अस्वीकार कर सकते थे, पर बात के सच्चे वे क्यों अपनी बात को बदलते। विलायती कम्पनी उनकी इस व्यावसायिक साधुता से इतनी मोहित हुई कि उसने आधा घाटा स्वतः सहन करना स्वीकार किया। एक बड़े उच्च पदस्थ सरकारी कर्म्मचारी ने उनसे सच ही कहा था—"Your word is as good as a cheque on the Bank of England" उनके व्यावसायिक व्यवहार में कभी किसी को शिकायत का मौक़ा नहीं रहा। सर्वदा अपने पुत्रों को इस बात की शिक्षा देते रहे (Be honest, be truthful) सत्यवादी बनो—ईमानदार बनो।

सन्तोष—जैसे और सब बातों में उनको (Divine discontent) ईश्वरदत्त असन्तोष सताता था, जैसे वे सहज ही में संतुष्ट न होते थे, सर्वदा उत्कर्ष तक पहुँचने की इच्छा रखते थे, वैसे ही अपने ख़ास सुख-स्वच्छन्दता के विषय में वे उदासीन थे। मोटे कपड़े पहनना, सादा भोजन करना, सादगी के साथ रहना, यही उनके जीवन का सिद्धान्त था। मित्रों से प्रायः कहा करते, हमको किस बात की परवा है, हमारे २५) (अर्थात् आपकी पेंशन) तो किसी ने नहीं लिये। हमारा अकेले का गुज़र उसी में हो जायगा।

दुःसाहसिक काम में लगने की प्रकृति—(Spirit of adventure) व्यवसाय में सफलता के लिए कुछ जोखिम उठाने की प्रकृति होनी चाहिए। जब तक एक नहीं लगाते, चार नहीं होते। इनमें भी यही प्रकृति थी। प्रयाग में मेशीन से पुस्तक छापना उन्हीं का काम था। पायोनियर प्रेस में भी तब किताबें हैंड प्रेस पर छपती थीं। भूतपूर्व मिशन-प्रेस ने बाइबिल छापने के लिए एक मेशीन मँगवाई थी, पर वह वहाँ नहीं चली। प्रोसिस एनग्रेव, थ्रीकलर, लिथो का काम जस्ते की चद्दर पर छापना, क्रोमोलिथो में सर्वोत्कृष्ट चित्र छापना, जिसमें एक तस्वीर १८-२० बार भिन्न भिन्न रङ्गों में छापी जाती है, उन्हीं के लिए सम्भव था। नुक़सान के डर से कौन इनमें हाथ लगाता ? यह गुण उन्होंने अपने पिता से पाया था। उनके पिता उस ज़माने में कमसरियट के गुमाश्ता थे जब कि रामेश्वर चौधरी और ज्योतिःप्रसाद जैसे गुमाश्तों ने लाखों और करोड़ों रुपये पैदा किये। उन्होंने भी बहुत कुछ पैदा किया था। पर (Primero) प्राइमीरो (फ़रासीसी ताश) के खेल में सब उड़ा दिया। जैसे आज-कल कलकत्ते, बम्बई आदि शहरों में लोग घुड़दौड़ में, रुई, लाह, इत्यादि के तेज़ी-मन्दी जुए में सर्वशान्त हो जाते हैं, वैसे ही उन दिनों कलकत्ते और आस-पास के लोग इस

बाबू चिन्तामणि घोष (दफ़्तर की पोशाक में)
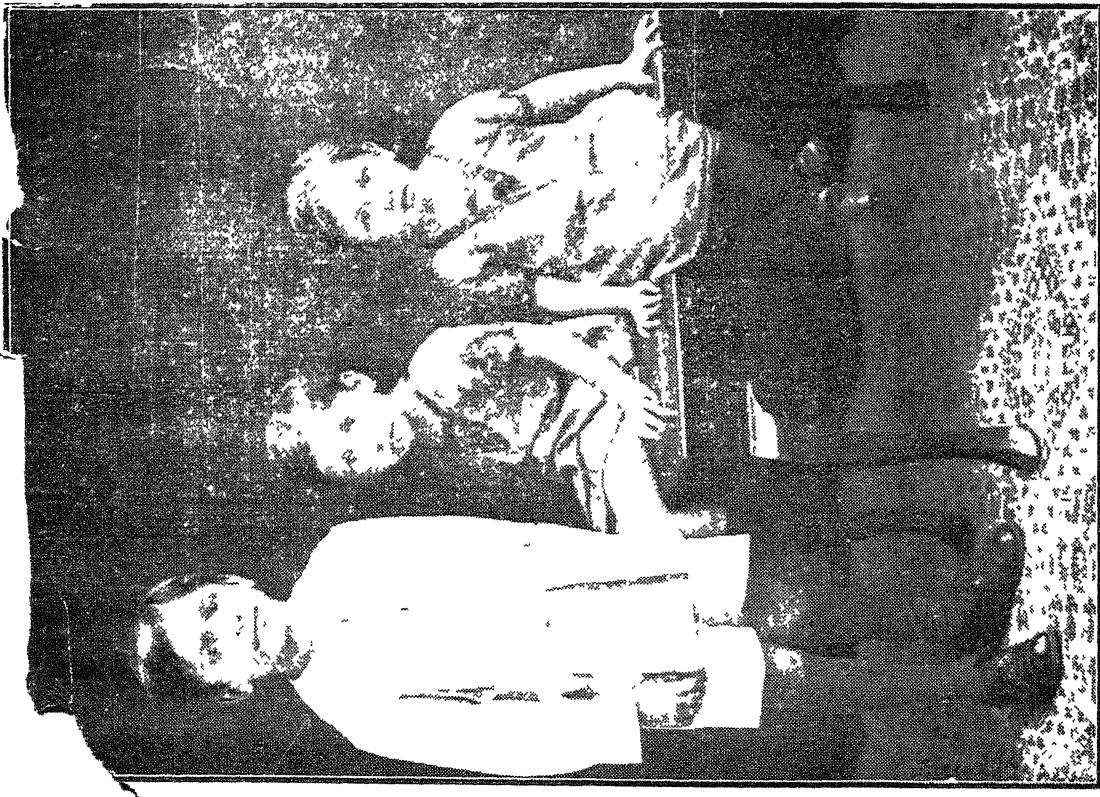
श्रीयुत देवकुमार घोष (ज्येष्ठ पौत्र), श्रीमती मायालता घोष (पौत्री),
श्रीमती शान्तिलता घोष (पौत्री)
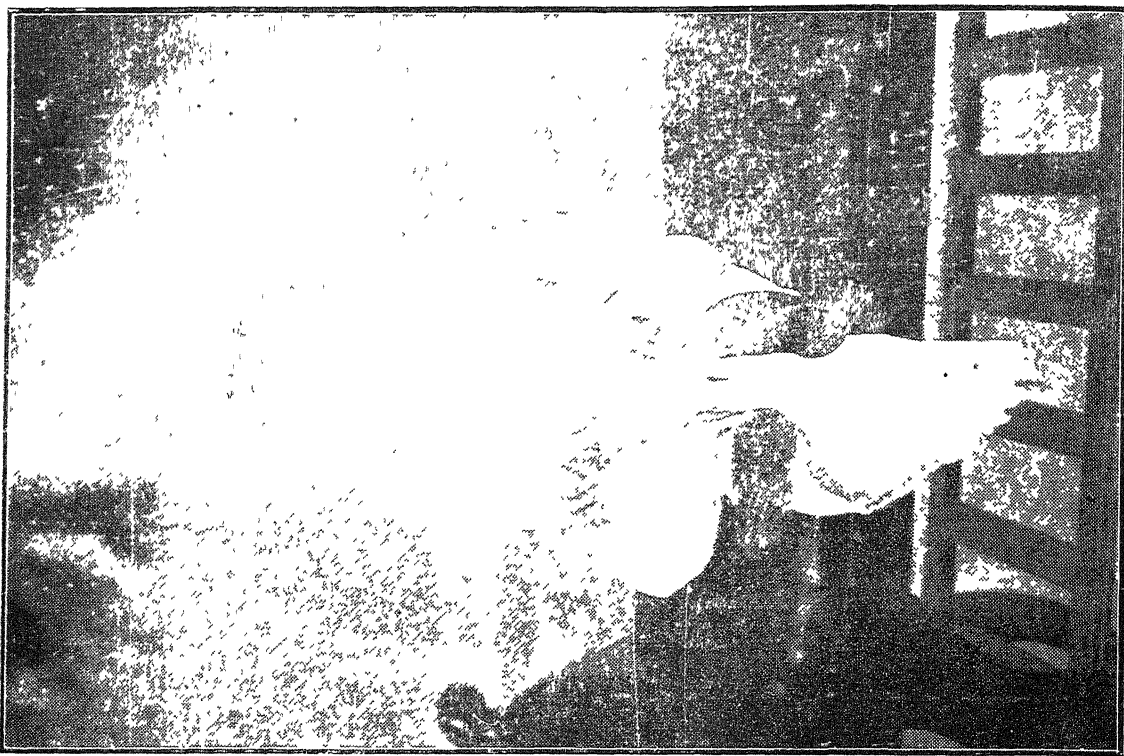
श्रीमती रेवा घोष (पौत्री)

प्राइमीरो में सर्वशान्त हो जाते। यद्यपि पिता से उन्होंने यह गुण पाया था, पर इसको सर्वदा अच्छे कामों मे ही लगाया।

चरित्र—चरित्र का शुद्ध होना बड़ा बल है। बिना इसके बड़ा होना असम्भव है। लड़कपन ही से पिता की दुर्दशा देख उन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि ताश-पांसा कभी न छुयेंगे, और यह प्रतिज्ञा मरते दम तक रक्खी थी। कभी तम्बाकू तक नहीं पीते थे। वृद्धावस्था में जब शरीर रोग-ग्रस्त हो गया था, कुछ मित्रों ने थोड़ी सी अफ़ीम के सेवन की सलाह दी, पर उन्होंने इस बात को कभी नहीं स्वीकार किया। जीवन भर किसी मादक द्रव्य का व्यवहार नहीं किया। सर्वदा चरित्र को निर्मल रक्खा, और सो भी उस दस वर्ष की अवस्था में जब कोई सिर पर न था, कि बुरा-भला सुझाता, बल्कि ऐसे लोग उनके आस-पास थे जिन्होंने उनको नरक का रास्ता दिखलाने में कोई बात उठा न रक्खी। सहनशील ऐसे थे कि शेष बीमारी के समय जब कष्ट बहुत होता था तब भी अपने लड़के, लड़की, पतोहुओं को जो उनकी २४ घंटे सेवा-सुश्रूषा करते थे, जानने न देते कि उनको कितनी सख़्त तकलीफ़ है। मित्रों से हँसते-बोलते, घंटों बातें करते, एक-दम को भी उनको यह भान न होने देते थे कि उनको कितना अधिक शारीरिक कष्ट है। जब बिलकुल नहीं सह सकते तब एक-आध बार कहते कि अब मृत्यु आये तो अच्छा हो। सत्य के ऐसे प्रेमी कि ख़ुशामद या डर से सत्य का कभी अनादर नहीं किया। नौकरी की अवस्था में भी दफ़्तर की ज़रूरत के बिना साहबों के सलाम को न जाते। स्वाधीन-चेता ऐसे थे कि कितना ही बड़ा उनका अफ़सर या ग्राहक क्यों न हो, उचित बात कहने से नहीं रुकते। इसी कारण उनका सर जान इलियट, डाक्टर मरे, मिस्टर एस० ए० हिल, सर सुन्दरलाल, पण्डित मदनमोहन मालवीय, राय-बहादुर बलदेवराम दवे इत्यादि इतना आदर और सम्मान करते थे। पर अप्रिय सत्य कह किसी का दिल नहीं दुखाया। शत्रु से कभी बदला नहीं लिया। उनके शरीर में क्षमा बहुत थी, पर अन्याय को कभी आश्रय नहीं दिया। सर्वदा उसका प्रतिवाद करते। अपना अन्याय समझने पर, क्षमा मागने में सर्वदा तत्पर रहे।

आदर्श व्यवसायी—अपनी कौड़ी जाय, पर दूसरे की न रह जाय। ईमानदारी के अवतार थे। समय के बड़े निष्ठ। काम जिस समय देना चाहिए, इसकी सर्वदा दृष्टि रखते कि उसमें अन्यथा न हो। कार्य-कुशल ऐसे थे कि अपने काम सफ़ाई और तेज़ी के साथ करना और औरों से वैसा ही काम लेना। चौदह वर्ष के बालक काम में इतने तेज़ कि दो घंटे में अपना काम शेष कर दूसरों का भी काम कर देते थे—इससे नया काम सीखते और मित्रों का भी उपकार होता। प्रेस से यदि कोई दोष-युक्त काम निकलता तो फिर प्रिन्टर, प्रेसमैन, रीडर किसी की भलाई नहीं,—मानो उन लोगों को मौत से सामना करना पड़ता था। रीमों काग़ज़, संस्करण के संस्करण रद्दी कर देते। ग्राहक-अनुग्राहकों को काम से ख़ुश करना ही मुख्य बात थी, और प्रेस की किसी प्रकार बदनामी न हो। कर्मनिष्ठ ऐसे थे कि बराबर १८ घंटे काम करना उनके लिए कोई बड़ी बात न थी। दो दो और चार चार दिन २४ घंटे भी समय पड़ने पर काम करते। मुक़द्दमे से बहुत डरते थे। सच मामला हो, तो भी थोड़ा सा झूठ बिना बोले सफलता नहीं होती। इस कारण उन्होंने कभी किसी पर नालिश नहीं की। हज़ारों का नुक़सान सहा, पर अदालत का मुँह नहीं देखा। एक समय गोरखपुर गवाही देने जाना था—सिविल सर्जन को फ़ीस दी, वकील के पास दौड़-धूप की, पर गवाही देने नहीं गये।

पशु-पक्षियों से प्रेम कोमल हृदय का परिचायक है। उनको पशुओं से बड़ा स्नेह था। सर्वदा गौओं का पालन करते थे। जब उनकी ६०) रुपये तनख्वाह थी तब भी उनको काकातुओं से और फ़ारस की अति सुन्दर बिल्लियों से बड़ा प्रेम था। उनके यहाँ हमेशा एक-दो काकातुआ बने रहे।

धर्म विषय में वे उदार मतावलम्बी थे। ईश्वर में दृढ़ विश्वास था, पर पूजा-पाठ का ढकोसला नहीं रखते थे। ईश्वर के जीवों की सेवा ही ईश्वर का सत्य पूजन और अपना धर्म समझते थे। दुःखी, दुर्दशाग्रस्त की सहायता के लिए सर्वदा तत्पर रहते।

"छायामन्यस्य कुर्वन्ति स्वयं तिष्ठन्ति चातपे।
"फलन्ति हि परार्थे च सत्यमेते महाद्रुमाः॥
परोपकाराय वहन्ति नद्यः
परोपकाराय दुहन्ति गावः।
"परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः,
परोपकाराय शरीरमेतत्"॥

दूसरे को छाया देते हैं आप सूर्य का उत्ताप सहते हैं। ये बड़े वृक्ष सत्य में दूसरे के लिए फलते हैं। परोपकार के लिए नदियाँ बहती हैं; परोपकार के कारण गायें दूध देती हैं; परोपकार के लिए वृक्ष फल धारण करते हैं; परोपकार के लिए ही यह शरीर है।

उनका गुप्त दान कितना था, यह उनके लड़के भी नहीं जानते।

ज्ञान-पिपासा—लड़कपन ही से उनको पठन-पाठन से बड़ा प्रेम था। जब १४-२०) महीने की आमदनी थी तभी से वे कबाड़ियों से (hdwkers) अच्छी अच्छी पुरानी (Second hand) पुस्तकें खरीदते और उनको दिल लगा कर पढ़ते। १८९२ में उनके अपने पुस्तकालय में इतनी पुस्तकें थीं कि वे ४-७ आलमारियों में भी नहीं समाती थीं। पर विनय के कारण कभी किसी को जानने न देते कि उनका ज्ञान कितना है। विद्या की चर्चा और आत्मोन्नति के लिए कुछ और विद्योत्साही युवकों के साथ उन्होंने एक अँगरेज़ी लाइब्रेरी खोली थी, जिसमें एक समय दो-ढाई हज़ार अच्छी अच्छी पुस्तकें थीं। उसमें ऐसी कई अच्छी पुस्तकों के विरल संस्करण (Rare edition) थे जो अब के सार्वजनिक पुस्तकालयों (Public Libaries) में भी नहीं मिलते। इन पुस्तकों में से चुनचुन कर अच्छी पुस्तकें उन्होंने पढ़ी थीं। इन दिनों जब स्वयं नहीं पढ़ सकते थे तब दूसरों के द्वारा अच्छी पुस्तकें और दैनिक संवाद-पत्र पढ़वा कर सुनते और उनकी आलोचना करते।

आदर्श मित्र—आदमी में समय के परिवर्तन से बहुत कुछ परिवर्तन होता है, पुराने मित्रों को भूल जाता है, पहचानता ही नहीं। सुदामा-समान बन्धु भला कृष्ण ऐसे द्वारकाधीश के सामने कब आ सकते हैं और अपनी पुरानी मित्रता का दावा कर सकते हैं? कलकत्ते के हाईकोर्ट के जस्टिस शम्भूनाथ पण्डित एक दिन हाईकोर्ट से घर को जोड़ी पर जा रहे थे। उनके लड़कपन के एक मित्र पटरी पर जा रहे थे। शम्भुनाथजी को देखकर उन्होंने मुँह फेर लिया। यह सोचा कि दरिद्र बालबन्धु को कब कौन भाग्यशाली पहचानता है। पर शम्भुनाथ ने उन्हें देख लिया, गाड़ी ठहरा झट उतर पड़े, दौड़ कर मित्र का हाथ पकड़ा और लाकर अपने बग़ल में बिठा लिया। अभियोग किया कि तुमने हमें देखकर मुँह मोड़ लिया, तुमने क्या हमें ऐसा ही अपदार्थ समझा है कि पुराने मित्रों को भूल जाऊँगा। मित्र का हाल पूछा, अपने घर ले गये और तब से उनकी सब तरह से सहायता करते रहे। महत्त्व का यह गुण उनमें बहुत था। पुराने मित्रों को मित्रता के कठिन शृङ्खला से उन्होंने बाँधा

था और कभी उसको शिथिल न होने दिया। उनकी आपद्-विपद् में, लड़कियों के शादी-ब्याह में, लड़कों के लिखाने-पढ़ाने में तन मन धन से सदा सहायता करते। ऐसे भी मित्र मिले जिन्होंने उनके बन्धुत्व का असद् व्यवहार किया, तो भी उनकी प्रीति उनकी ओर वैसी ही बनी रही। यदि उनके आत्मीय स्वजन कहते कि ऐसे स्वार्थी और कुटिल मित्र का आप साथ न दें तो हँसकर जवाब देते कि हमने अपना काम किया, वह अगर अपना कर्तव्य भूल गया तो कुछ परवा नहीं। ऐसे मित्र संसार में विरल हैं। उनके मित्र जो ऐसे बन्धु की मृत्यु से अब पीछे पड़ गये, रूसी कवि कराम-ज़ीन के साथ यही प्रार्थना करते हैं—

"जीवन! तुम समुद्र और उसकी सदा चंचल लहरें हो।

"मृत्यु! तुम पोताशय और शान्ति हो।

"वहीं उन लोगों का मिलन होगा जो यहाँ लहरों से जुदा हो गये हैं।

"हम देख रहे हैं, हम देख रहे हैं .तुम इशारा कर रहे हो।

"हमको उस रहस्यमय समुद्रतट पर बुला रहे हो!...

"हे प्रिय, छायामूर्ति अपने मित्रों के लिए एक स्थान अपने पास रखना!"

इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं है। हमने उनके कई पुराने मित्रों में से ऐसी इच्छा प्रकट करते सुना है।

आतिथ्य—अतिथि-अभ्यागतों के लिए उन्होंने अलग रहने का मकान बना रक्खा था, जहाँ जगद्विख्यात कवि रवीन्द्रनाथ से ले कर बहुत से छोटे-बड़े कवि, लेखक, चित्रकार इत्यादि आते और ठहरते और उनके आदर-भाव से सुखी होते थे। मित्रों को खिलाने से वे बड़े सन्तुष्ट होते थे। यह सब उदार हृदय का ही परिचायक है।

आदर्श पति, आदर्श पिता—उनकी स्त्री यथार्थ लक्ष्मीस्वरूपा थीं। गृहस्थी के काम-काज में, बोल-चाल में, लोगों के प्रति आदर-भाव में, व्यवहार में, सेवा में मूर्तिमती लक्ष्मी ही जान पड़ती थीं। ईश्वर ने जैसे चिन्तामणिजी को और सब सुख-स्वच्छन्दता दी थी, वैसे ही स्त्री-सुख भी दिया था। उनका विश्वास था कि उनकी सांसारिक उन्नति उनकी पत्नी ही के कारण हुई। पत्नी से बड़ा प्रेम था और उनकी प्रशंसा में वे शत-मुख थे। हो न क्यों? उनकी स्त्री के कारण उनके संसार में सदा सुख-शान्ति विराजा करती थी। पत्नी के गत होने पर उनको बड़ा धक्का लगा, पर वीर पुरुष की नाईं उन्होंने उसका सहन किया।

पुत्रों को उन्होंने अच्छी शिक्षा दी, जो इन लोगों के व्यवहार, बातचीत, शिष्टाचार, सौजन्य से प्रकट है। बहुत नाराज़ होते तो मीठी बातों से समझाते, पर कभी इनको दैहिक शासन नहीं किया। शिक्षा-विषय में उनका विचार अनोखा था—आज-कल के सदृश नहीं। अपने लड़कों को बी० ए, एम० ए० पास नहीं कराया। मध्यम पुत्र को एम० एस-सी० तक रसायन-शास्त्र पढ़वाया, पर पास नहीं करने दिया। उनका विश्वास था कि जब हिन्दुस्तान के लड़के डिग्री हासिल कर लेते है तब वे फिर किसी काम के नहीं रह जाते। यह बात सच है। साहस, शक्ति, सजीवता सबकी वे विश्वविद्यालय की दुष्टा सरस्वती के सामने आहुति दे देते हैं और जब संसार में प्रवेश करते है तब निचुड़े निम्बू की भाँति रसहीन, गन्ध-हीन छिलके के छिलके रह जाते हैं। उनके पुत्रों ने उनके शिक्षा-सिद्धान्त की सत्यता को प्रमाणित कर दिया है। वे कोरे के कोरे, अर्थात् यथाशक्ति यहाँ काम या विद्या न सीख, योरप जाने

के बड़े विरोधी थे। वहाँ के अद्भुत जीवों से अर्थात् छूँछे विलायत जाने और छूँछे लौट आनेवालों से बहुत घृणा थी। बाहर तो शान बड़ी और भीतर बिलकुल पोले, ऐसे योरप के लौटे हुए लोगों से उनको चिढ़ थी। पर यहाँ से पूर्ण शिक्षित योरप गये हुए दो-चार लोगों को उन्होंने यथेष्ट सहायता भी दी थी। उनके एक पुत्र को योरप जा काम सीखने का बड़ा शौक़ था। उन्होंने उसके लिए कलकत्ते में एक लाख रुपया लगा कर एक नया कारख़ाना खोलवा दिया और कहा कि जहाँ तक यहां सीखना सम्भव है, सीख लो, तब योरप जाना, हमें कोई उज्र नहीं होगा।

साहस—जब प्रयाग-विश्वविद्यालय ने पुराने इंडियन प्रेस (Indian Press) के मकान और छापेख़ाने का सब माल-असबाब ले लिया तब उनके नेत्र बिलकुल काम नहीं देते थे, स्वास्थ्य भी धीरे धीरे नष्ट हो रहा था। ऐसे समय दूसरा कोई होता तो रुपये ले घर बैठता, फिर हाथ-पैर हिलाने की हिम्मत न करता। परन्तु बिना काम-काज के लड़कों को चुप-चाप घर बैठाना उचित न समझा। प्रेस फिर नये सिरे से खोलने का प्रबन्ध किया। ज़मीन ख़रीदी, और वहां प्रेस के लिए नई इमारत बनाने के विषय मे सोचने लगे। आँखवाले मनुष्य के लिए यह कितना कठिन था, फिर दृष्टिहीन की बात ही क्या। उनके साहस, बुद्धि, विवेचना की प्रशंसा बिना किये रहा नहीं जाता। उन्होंने ज़मीन की केवल लम्बाई और चौड़ाई माँगी और फिर क्या दो ही चार दिनों में उन्होंने उसका नक़शा अपने दिमाग़ से खींच लिया। नये इंडियन प्रेस की उत्पत्ति उन्हीं के मस्तिष्क से हुई है। धीरे धीरे फिर पहले से बड़ा, सुन्दर, सुसज्जित प्रेस बना। लोगों को नहीं मालूम कि इसका छोटे से छोटा काम भी उनके परामर्श और सलाह के बिना नहीं होता था। सन्ध्या-समय जब लड़के घर आते तब एक आध घंटे बिना उनको प्रेस-विषयक हाल सुनाये और उनकी राय लिये उनको छुट्टी नहीं मिलती थी। ऐसे अनुसन्धानेच्छु, जिज्ञासु सब विषय में खोज रखनेवाले मनुष्य कम देखने में आते है। लोग आंख रहते अन्धे होते है। वे उनके न रहते सब विषयों पर दृष्टि रखते थे। उनकी हिम्मत और बुद्धि-शक्ति कितनी बड़ी थी, इसी से कुछ विदित हो जायगा।

दानशीलता—केवल रुपया ही नहीं कमाया, उन्होंने मुक्त-हस्त हो दान भी किया। शिक्षा-विस्तार के लिए जिस पर भारत की मुक्ति और उद्धार निर्भर है, उन्होंने बहुत से विश्वविद्यालयों और शिक्षालयों को दान दिया। कर्नैलगञ्ज स्कूल के मकान के लिए उन्होंने २५०००) रुपये रख छोड़े थे। पर जब सरकार के वादा पर भी तीन साल में कोई ज़मीन नहीं मिली तब लाचार हो इस रुपये को उस धन-भाण्डार में जो विधवाओं, असहाय नारियों और बालकों के लिए अपनी माता और स्त्री के नाम स्थापित किया है, दे दिया। विन्ध्यवासिनी—गुलाब मोहिनी-भाण्डार का मासिक दान १२५)-१५०) के क़रीब है।

उन्होंने एक अस्पताल जिसका माहवारी ख़र्च ४५०)-५००) तक है, प्रयाग-वासियों के लिए खोला है। इसमें दो विभाग हैं। एक होमियोपैथिक और दूसरा एलोपैथिक। दैनिक रोगियों का नम्बर २००-२२५ के लगभग है। हाल में इसके लिए २०,०००) रुपये की इमारत बनवाई गई है।

देश-प्रेम उनमें कुछ कम न था—देश में धनागम के नये रास्ते खोलना, यही कौन कम देश-प्रेम है। देश के काम के लिए वे सदा मुक्त-हस्त थे और सदा उसकी भलाई करने के व्यावहारिक उपाय वे सोचा करते थे। देश की सेवा के लिए कई साप्ताहिक और मासिक पत्र

अँगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू और बँगला में निकाले—आज "लीडर" (The Leader) पत्र के विख्यात एडिटर श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि (C Y Chintamni) भी उनके पास एक समय 'इंडियन पीपुल' (Indian People) के एडिटर का काम करते थे और प्रायः इंडियन प्रेस में घंटों बैठे काम करते दिखाई पड़ते थे। "सरस्वती" और हिन्दी की पुस्तकों के प्रकाशन से उन्होंने हिन्दी-भाषा और देश का जो उपकार किया है उसका इतिहास दूसरे अधिकारी लेखक वर्णन करेंगे। उसका स्थान यहां नहीं है।

भद्र समाज के बेकार-बहे लड़कों को प्रेस के नाना प्रकार के लाभदायक काम सिखाने के लिए उन्होंने बहुत कोशिश की। शिक्षावस्था में कुछ वृत्ति भी देते थे। लड़के भी आये। दस-पांच ने काम भी सीखा, पर दो-चार के सिवा सब भाग गये। कुर्सी-क़लम का प्रेम अभी तक इतना प्रबल है और साहब के लात-जूते और गाली-गलौज के हम इतने आदी हो गये है कि कोई काम जिसमें हम सर्वदा स्वाधीन है—नौकरी मिलने में कहीं किसी समय कोई बाधा नहीं—मेहनत के कारण नहीं पसन्द करते। ८०-९० भले नहीं, २०)-२५) ही भले, कुर्सी बैठने को तो मिलेगी, बाबू तो कहलायेंगे, १० से ४ तक द़फ़्तर करना, बाक़ी समय अफ़सरों का दुर्व्यवहार भूलने के लिए काफ़ी है।

कृतज्ञता—उपकार वे कभी नहीं भूले। जिन महाशय ने उनकी असहाय-अवस्था में उनको नौकर रखा दिया था, मृत्यु के दिन तक उनके वे कृतज्ञ रहे। उनकी अवस्था की अवनति पर उनकी वे सर्वदा मासिक सहायता करते रहे। यद्यपि उनकी उस समय आर्थिक अवस्था कुछ बहुत अच्छी न थी, तो भी पहले उनको खर्च भेजना, पीछे गृहस्थी का खर्च देखना। लड़का भी बाप के लिए इतना नहीं करता। उनके देहान्त के बाद उनकी लड़की तक की सहायता करते रहे और वृद्धा का भार लड़कों पर छोड़ गये हैं।

लखपति बनाना—कार्नेगी को लोग कहते हैं कि उन्होंने ३० करोड़पति बनाये। हाल में "जेनरल मोटर्स" अमेरिका के प्रेसिडेन्ट ने ८० करोड़-पति बनाये हैं। उनके पास काम सीख कर दो-तीन को तो लखपती बनने का सौभाग्य हुआ।

कर्मचारियों से व्यवहार—सबसे सदय व्यवहार करते और जब पुराने कर्म्मचारी काम के लायक़ न रह जाते तो उनको पेंशन देते। बाज़ों को तो पूरी तनख़्वाह पेंशन में दे दी। एक-आध को अच्छा धन भी दिया। आशा है कि पुत्र लोग भी इसमें और अन्य गुणों में उनका पदानुसरण करेंगे।

सबसे परामर्श लेना—जब कोई नई बात करते तब सबसे सलाह ले लेते। इसमें उनके पास छोटे-बड़े का कोई विचार न था। उनका एक विश्वासी जमादार माधोसिंह था, जिससे वे सब विषयों में घंटों बैठे सलाह किया करते और कहते कि माधोसिंह से प्रायः बहुत अच्छी सलाह मिलती है। यह भी उनके बड़प्पन का निदर्शन है।

सामाजिक सुधार में वे उन्नतिशील दल के थे—व्याह में दहेज लेना, लड़कियों को छोटी अवस्था में व्याह देना, इन सब सामाजिक बुराइयों के वे बड़े विरोधी थे। चाहते तो सहज ही में लड़कों के व्याह में काफ़ी रुपये ले सकते थे, पर उन्होंने कभी एक कौड़ी नहीं माँगी। जो लड़की के पिता ने दिया वही लिया, बल्कि कभी उन लोगों से कहते कि यदि आप अधिक ख़र्च करेंगे तो हमें बड़ा कष्ट होगा। हमने नया कुटुम्ब इसलिए किया है कि हमारे आत्मीय बन्धुओं की संख्या बढ़े

न कि आप ऋणग्रस्त हो लड़के के बाप को आजीवन कोसें। स्त्री-शिक्षा के लिए वे मुक्तहस्त थे। कई स्त्री-विद्यालयों में उन्होंने आर्थिक सहायता की। जगत-तारण विद्यालय के वे ट्रस्टी थे। विधवाओं को शिक्षा के लिए वृत्ति भी देते थे।

उनके महत्त्व का पाठकों को इस लेख से कुछ अनुमान हुआ होगा।* महाकवि कालिदास ने बहुत ठीक कहा है—

> उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं,
> क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
> शूरं कृतज्ञं दृढ़निश्चयञ्च,
> लक्ष्मीः स्वयं वाञ्छति वासहेतोः॥

जो उत्साही पुरुष हैं, दीर्घसूत्री नहीं हैं, काम की विधि के जाननेवाले है और व्यसन में आसक्ति नहीं हैं, शूर हैं, कृतज्ञ हैं और दृढ़निश्चय हैं, लक्ष्मी स्वयं उनके निकट वास करने की इच्छा करती है।

अन्त में हम भी कवि ब्राउनिङ्ग के साथ कहेंगे—

> Here let him lie
> Greater than the world suspects

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः
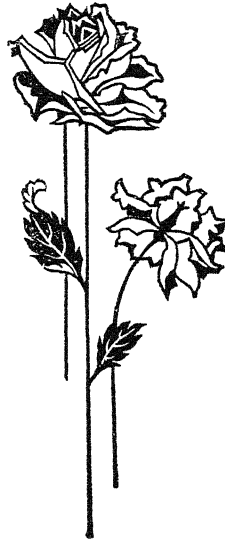
* यह आलोचना ४९ वर्ष के निकट परिचय का फल है। जो कुछ ऊपर लिखा गया है उसमें कुछ भी अतिरञ्जित नहीं ह। इटली के अमर कवि दान्ते ने कहा है— 'जो सत्य झूठ प्रतीत हो उसके कहने में आदमी को अपने होंठ सर्वदा बन्द कर लेना चाहिए। क्योंकि उसके कहने में यदि वह निष्पाप है तो भी उसे दोष लगेगा। पर मैं बिना उसे कहे नहीं रह सकता' जैसा उनको पाया वैसा ही उनकी वर्णना की, मित्रता ने लेखक को पक्षपाती नहीं बना दिया। किसी मनुष्य में सब गुण ही नहीं होते, दोष भी होते हैं। उनमें क्या दोष न थे? पर यहां उनकी आलोचना का मौक़ा नहीं, उससे कोई लाभ भी नहीं। यहां तो केवल उन्हीं गुणों की आलोचना की गई है जिनसे वे इतने बड़े हुए और जो हमारे अनुकरणयोग्य ह। — लेखक

[रा]बहादुर पण्डित बलदेवराम दवे, बी० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट

महामहोपाध्याय पण्डित गङ्गानाथ झा, एम० ए०, डी० लिट, एल-एल० डी०

प्रोफ़ेसर देवेन्द्रनाथ पाल, एम० ए०
(अन्तरङ्ग मित्र)

बाबू रामानन्द चटर्जी

श्रीयुत हरिप्रसन्न घोष

श्रीयुत हरिसाधन घोष

श्रीयुत हरिकेशव घोष
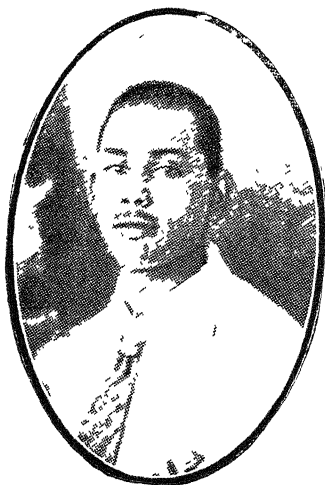
श्रीयुत हरिनाथ घोष
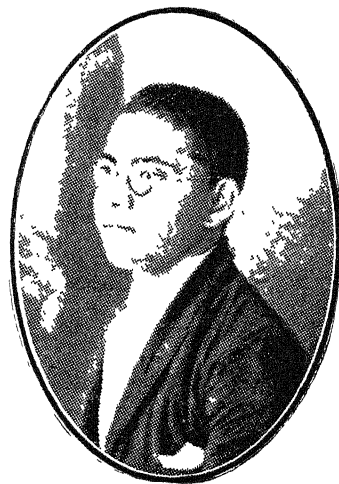
श्रीयुत हरिभूषण घोष

Managing Directors of Indian Press, Ltd.

सुहृद्वर बाबू चिन्तामणि घोष

[श्रीयुत रायबहादुर बल्देवराम दवे, बी० ए०, एल-एल० बी०, एडवोकेट]

र्गीय बाबू चिन्तामणि घोष से मेरा परिचय पहले पहल अनायास ही हुआ था। उस समय मैं विद्यार्थी था। मेरे बड़े भाई साहब सर सुन्दरलाल बाहर गये थे। वे उस समय यहाँ की एक सभा के सेक्रेटरी थे। उस सभा की कमेटी होनेवाली थी और उस समय के छोटेलाट सर एल्फ्रेट लायल सभापति का आसन ग्रहण करनेवाले थे। उक्त सभा को एकाएक एक नोटिस छपवाने की आवश्यकता हुई। मेरे मकान के पास एक छापाख़ाना था। उसी में छापने को मैंने वह नोटिस दे दिया। पर उसमें वह ठीक नहीं छपा। बहुत ग़लत और भद्दा छपा था। इसी समय मुझे इंडियन प्रेस की याद आ गई। एक बार कटरा जाते समय मैंने उसका साइनबोर्ड पढ़ा था। मैं तुरन्त कटरा गया। बाबू साहब से अपनी आवश्यकता बतलाई। उन्होंने उस नोटिस का छापना स्वीकार किया। नोटिस छपा और मेरे पसन्द के अनुसार छपा। बाबू साहब से यही पहली भेंट थी।

कुछ दिनों के बाद 'धर्म-शिक्षा' नाम की एक पोथी तैयार की। उसे अपने एक मित्र पण्डित से सुन्दर अक्षरों में लिखवाया। अब उसके छापने की इच्छा हुई। इंडियन प्रेस जाकर बाबू साहब से मिला। उनसे मैंने कहा—मेरे पास कुल ८४) रुपये हैं और इस पुस्तक को मैं बहुत सुन्दर रूप में छपवाना चाहता हूँ। बाबू साहब ने हँस कर काम ले लिया और कहा कि जाइए, आप का काम इतने में ही कर दिया जायगा।

धर्म-शिक्षा छपी और बहुत सुन्दर छपी। मैंने उसे समालोचनार्थ समाचार-पत्रों के सम्पादकों के सिवा अन्यान्य बहुतेरे हिन्दी के विद्वानों और प्रेमियों को भेजा। उसकी समाचार-पत्रों में बड़ी प्रशंसा हुई। केवल पुस्तक के विषय की ही नहीं, किन्तु उसकी सुन्दर छपाई की भी। ये इंडियन प्रेस के आरम्भ के दिन थे।

उक्त पुस्तक की प्रशंसा से हम लोगों का उत्साह बढ़ा। अब हम लोगों की इच्छा पाठ्य-पुस्तकें लिखने की हुई, और कई विद्वानों की सहायता से उन्हें लिख डाला। इसके बाद छापने

के लिए बाबू साहब को दे आया। बाबू साहब ने उन्हें अपने व्यय से छापा। वे किताबें शिक्षा-विभाग ने मंजूर कर लीं और उनका .खूब प्रचार हुआ। इस प्रकार इन पाठ्य-पुस्तकों के द्वारा हमारा बाबू साहब से जो परिचय-मात्र था वह घनिष्ठ मित्रता मे परिवर्तित हुआ और जो अब तक ज्यों का त्यों बना रहा।

बाबू साहब का हमारा घरऊ सम्बन्ध हो गया था। ऐसा कोई काम नहीं होता था जिसमें एक दूसरे की सलाह न ली जाती हो। हम उनके यहाँ आते और वे हमारे यहाँ आते। इधर उनके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु से उनको बड़ा भारी आघात पहुँचा। इससे उनकी रही-सही दृष्टि-शक्ति भी जाती रही। इस समय से उनका हमारे यहाँ का आना बन्द हुआ। बाबू साहब हमारे ऐसे ही सुहृद् बन्धु थे। उनके निष्कपट स्वभाव, उदार व्यवहार और अप्रतिभ प्रतिभा की प्रशंसा करने का अधिकार हमें नहीं है। साथ ही यहाँ यह कह देना अनुचित न होगा कि यह देख कर हमें सन्तोष है कि उनके पुत्र इतने योग्य हैं कि वे उनकी कीर्ति को उज्ज्वल ही करेंगे।
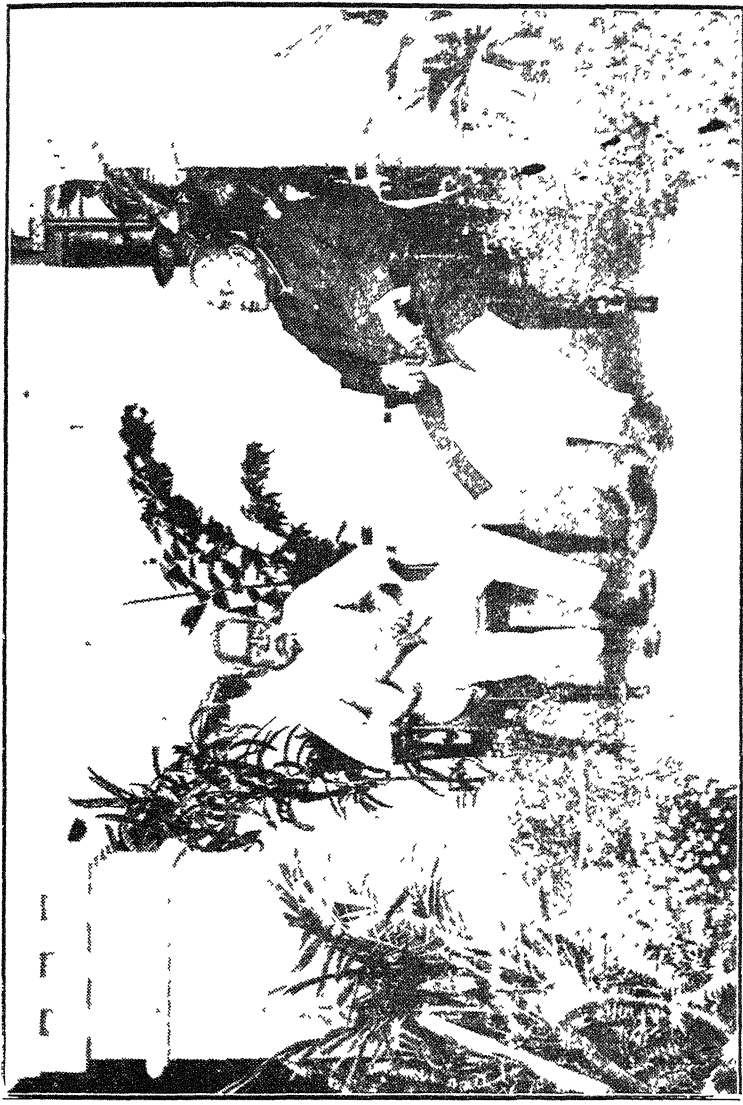
बाबू ध्रुवनाथ दे और बाबू चिन्तामणि घोष
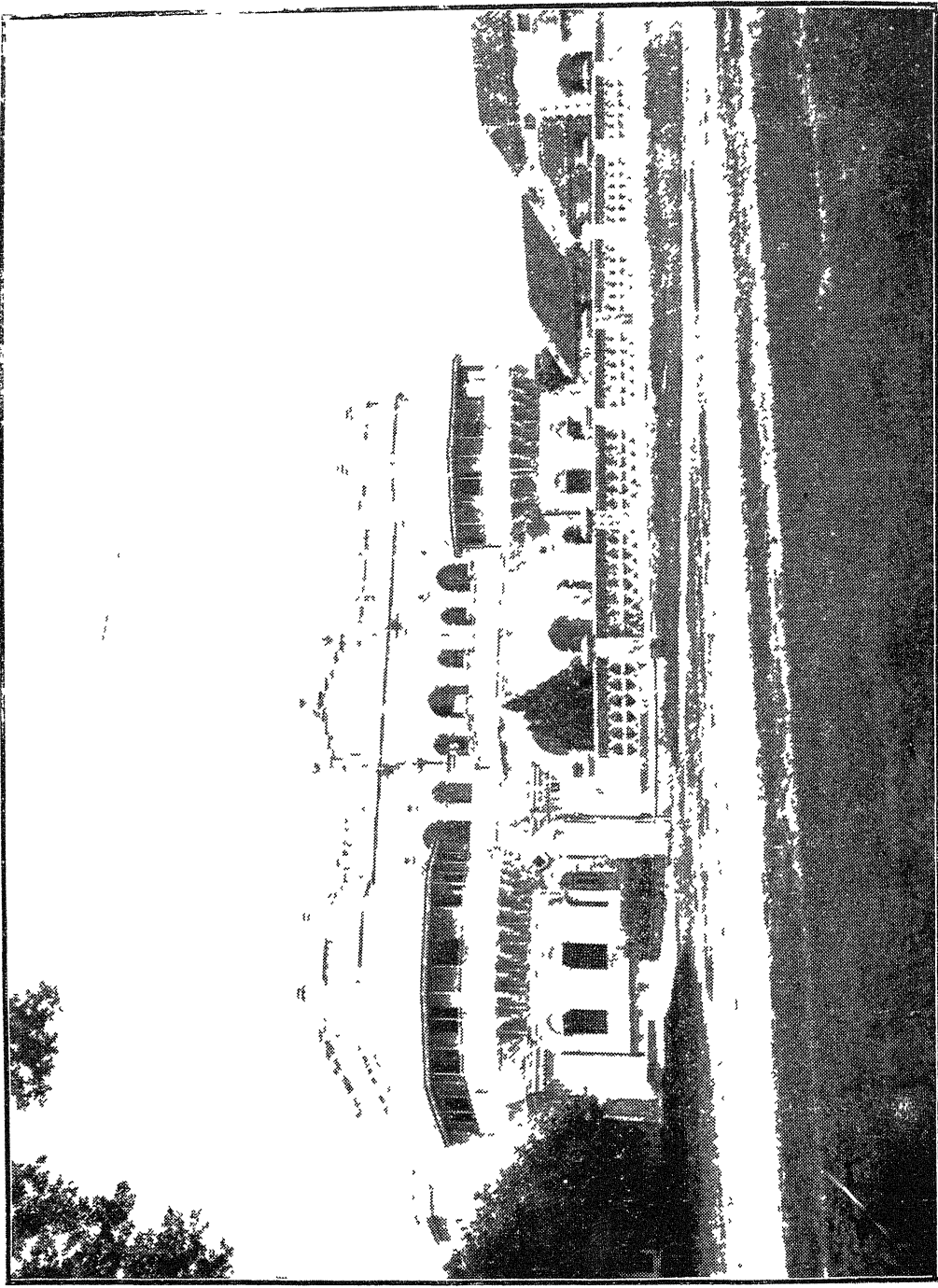
जार्जटाउन की कोठी (वर्तमान निवास-भवन)

चिन्तामणि

[श्रीयुत हनुमान शर्मा]

यद्यपि विष्णुशर्मा का यह कथन ठीक है कि 'जिसके जन्म लेने से जाति और वंश समुन्नत हो उसका जन्म लेना सार्थक है," तथापि यह मानना उचित प्रतीत होता है कि जिसके जन्म से जगत् को लाभ और मरण से हानि हो उसका जन्म लेना सार्थक और मरना चिन्तनीय होता है।

तीर्थराज प्रयाग के प्रसिद्ध इंडियन प्रेस के स्वामी श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष महोदय उन महापुरुषों में थे जिनके जन्म लेने से प्रायः सभी देश और सभी जातियों को किसी भी प्रकार से लाभ होता है। उक्त बाबू साहब ने बँग महाप्रदेश के कायस्थ कुल में जन्म लेकर भी हिन्दी, हिन्दू और हिन्दुस्तान का हिन्दी-प्रचार के द्वारा बहुत भला किया है।

आपका स्थापन किया हुआ इंडियन प्रेस और उसकी पत्र-पत्रिकायें तथा पुस्तकें आदि भारतवर्ष के कोने कोने में और इँग्लेंड, अमेरिका तथा जर्मनी आदि में विश्वास और आदर के साथ विख्याति पा रही हैं। और मुद्रण-कला के विचार से उस प्रेस की छपाई तथा विक्रय आदि की सद्व्यवस्थायें सर्वोत्तम समझी जाती हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के सम्बन्ध में इस समय अनेक पत्र अच्छे अच्छे प्रकाशित हो रहे हैं, किन्तु जिस समय हिन्दी-संसार में इने-गिने पत्र ही हिन्दी-पाठकों के रुचिकर हो रहे थे उन दिनों श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष ने प्रयाग की जगद्विख्यात 'सरस्वती' मासिक पत्रिका को इस प्रकार के आदर्श रूप में प्रकाशित करना प्रारम्भ किया था जिसकी देखादेखी उससे पीछे के कई पत्रों ने अपने रूप-रंग और आशय-विषय आदि को वैसा ही बनाया।

इंडियन प्रेस की पुस्तकें तथा पत्र आदि कितने उच्च कोटि के छपते और निकलते हैं, यह बात हिन्दी-पाठकों से प्रच्छन्न नहीं है। किन्तु इनके सिवा देश-देशान्तर के राजा-महाराजाओं और धनी-मानी विद्वानों की ओर से कई एक ग्रन्थरत्न अन्यत्र के भी इस प्रेस में ऐसे छपे हैं जो अपनी-चित्ताकर्षक छपाई और मनोमोहक सजधज आदि के कारण सचमुच ही दर्शनीय रत्न हैं। ये सब बाबू साहब की दूरदर्शिता, गुणग्राहकता और उदार भावों के फल हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इंडियन प्रेस के अतिविशाल कार्यालय में प्रत्येक विभाग के प्रायः सभी कार्यकर्त्तागण कैसे सुदक्ष, विद्वान्, प्रवीण और भारी भारी वेतन पानेवाले हैं और उनकी कार्यपरायणता

तथा सद्व्यवहारों से संसार संतुष्ट है। यह बाबू साहब की यथायोग्य योजना ही का कारण है। किन्तु पश्चात्ताप इस बात का है कि उक्त बाबू साहब अब इस संसार में नहीं है। गत ११ अगस्त को आपका स्वर्गवास हो गया।

इन पंक्तियों का लिखनेवाला स्वर्गीय बाबू साहब का स्वदेशीय, सजातीय, सहवासी, समाश्रित अथवा सेवक आदि नहीं है। केवल पत्र-व्यवहार से स्नेह-सम्बन्ध और परिचय प्राप्त किया हुआ प्राणी है। परन्तु नीचे के उल्लेख से पाठक अनुमान कर सकेंगे कि जब ऐसे आदमी के साथ ही उक्त बाबू साहब का ऐसा व्यवहार रहा है तब फिर स्वदेशीय अथवा समीप के सत्पुरुषों के साथ कैसा स्नेह-पूर्ण और सद्व्यवहार रहा होगा।

आरम्भ में मैं यह कह देना उचित समझता हूँ कि अपने हृदय में हिन्दी-साहित्य और संस्कृत के शास्त्रों का स्वाभाविक प्रेम होने से मैंने वेद-वेदान्त-पुराण-इतिहास-ज्योतिष-वैद्यक-काव्य-कोष और आयुर्वेद आदि के उत्तम ग्रन्थों का अपूर्व संग्रह किया है, जिसमें लगभग ५-६ हज़ार पुस्तकें हैं। मेरे पास कई एक नव प्रकाशित पत्र-पत्रिकायें और तरह तरह की पुस्तकें आती रहती हैं। परन्तु धन का सर्वथा अभाव रहने से यह संपूर्ण संग्रह केवल प्रार्थना-पत्रों के द्वारा घर बैठे हुए भीख माँग माँग कर किया है।

बहुत वर्षों की बात है—उसी भिक्षा में एक बार अयोध्या के स्वर्गीय महाराज प्रतापनारायणसिंह शर्मा महोदय ने साहित्य के समुज्ज्वल रत्न "रस-कुसुमाकर" ग्रंथ की दो प्रतियाँ प्रेषित की थीं। उनमें इंडियन प्रेस की मनोमोहक मुद्रणकला से उनकी अद्वितीय छवि अंकित हुई थी। उनको देख कर मैंने दो एक अन्य पुस्तकें प्राप्त करने के लिए प्रेस-स्वामी के पास प्रार्थना-पत्र भेजा। परन्तु स्वामी ने सूखा उत्तर भिजवाया कि हम कोई भी पुस्तक मुफ़्त में नहीं भेज सकते। लाचार मैं मन मसोस कर रह गया। किन्तु कालान्तर में उन्होंने मेरे साथ उदारता का बर्ताव किया और मेरे शास्त्र-संग्रह की सदैव सहायता की।

सन् १९१२ ईसवी में जाकर मुझे उत्कंठा हुई कि मैं सरस्वती का भी साद्यंत संग्रह करूँ। एतदर्थ मैंने उक्त बाबू साहब को लिखा तब उत्तर आया कि पिछली संपूर्ण संख्यायें बहुत ढूँढ़ने पर मिलेंगी, परन्तु दाम दूने देने पड़ेंगे। संख्यायें सौ से अधिक थीं और यहाँ दूने के बदले आधे दाम भी हस्तगत नहीं थे। तो भी इन शब्दों में आर्डर दिया कि मैं व्यापारी नहीं हूँ, केवल प्रगाढ़ हिन्दी अनुराग के अनुरोध से यह संग्रह कर रहा हूँ। तिस पर भी आप दूना दाम लेना चाहें तो सब संख्यायें वी० पी० से भेज दें। उक्त पत्र के ५ दिन पीछे एक बिना-मूल्य पार्सल आया, जिसमें सरस्वती की सब संख्यायें थीं। और साथ में जिल्दें बँधवाने के लिए बोट के बहुत से टुकड़े और कपड़ा भी था। मैं इस कृपा से बाबू साहब का बड़ा कृतज्ञ हुआ।

यद्यपि बाबू साहब को यह विदित नहीं था कि मैं किस विद्या का ज्ञाता हूँ। केवल यह मालूम था कि मैं हिन्दी का उपासक हूँ। ऐसी दशा में भी आपने एक बार अपने छओं पुत्रों के विषय में कुछ भविष्य की बातें पूँछीं। मैंने विस्तार के साथ उनका यथामति उत्तर भेज दिया। उसके कुछ ही दिन पीछे आपने इंडियन प्रेस की प्रायः संपूर्ण पुस्तकों की एक एक प्रति बिना मूल्य भिजवा कर अपनी उदारता, गुणग्राहकता और प्रच्छन्न परोपकारिता का परिचय दिया। और आगे प्रतिवर्ष नवीन छपी पुस्तकें भिजवाते रहे। ऐसा करने से मेरे संग्रह में इंडियन प्रेस की सभी पुस्तकों का स्वतंत्र विभाग बन गया। मेरे

सङ्ग्रह से अन्यान्य प्रेसों की हिन्दी-पुस्तकें और उच्च कोटि के समाचार-पत्र भी सद्व्यवस्था से मौजूद हैं। इनके सिवा एक बार आपने अपना चित्र भी भेजा था और कई हार्दिक विषय भी प्रकट किये थे, जिनसे उनकी मेरे प्रति प्रीति-भाव और आत्मीयता आभासित होती है। इस उल्लेख से विज्ञ पाठक जान सकते हैं कि बाबू साहब किस श्रेणी के व्यक्ति थे और हिन्दी-प्रचार के लिए आपने कितना अधिक अर्थव्यय करके उदार भाव व्यक्त किया था।

कोई आठ-दस वर्ष से आपकी नेत्र-ज्योति कम हो जाने से आपने प्रेस-प्रबन्ध के सब काम अपने प्रथम पुत्र श्रीहरिपद घोष के हस्तगत कर दिये थे। परन्तु काल बली ने हरिपद को हरिपद भेज कर बाबू साहब को अधिक कुण्ठित कर दिया। तब पीछे आपने व्यवसाय-मार्ग से सर्वथा मुख मोड़ लिया, और अपने प्रत्येक पुत्र को प्रेस तथा अन्यान्य प्रकार के कार्यों पर नियुक्त कर दिया। परमात्मा की कृपा से बाबू साहब के पाँचों पुत्र प्रत्येक कार्य में बड़े प्रवीण और सब प्रकार से सुयोग्य हैं, और अपने पूजनीय पिता की यशवल्ली के बढ़ाने-वाले हैं। ईश्वर करे, यह परिवार सदैव प्रसन्न रहे और श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष को स्वर्ग में शान्ति प्रदान हो।

शोकोद्गार

[रायबहादुर अवधवासी लाला सीताराम, बी० ए०]

(१)

यन्त्राधिप-मण्डली-व्योम के उज्ज्वल तारे ।
सरस्वती शृंगार करन दीक्षा सी धारे ।
हिन्दी के हितकारि, भूप के मित्र पियारे ।
श्रीचिन्तामणि घोष, हाय, परलोक सिधारे ॥

(२)

हिन्दु-मात्र को वेद तुलसि-कृत श्रीरामायन ।
पढ़ैं सुनैं जेहि प्रेम सहित सब धर्मपरायन ।
सुन्दर चित्र समेत, भक्त मन करत हुलासा ।
ताहि आदि ही बार, पाठ करि शुद्ध, प्रकासा ॥

(३)

रामायन सों प्रेम रह्यो जेहि यावत जीवन ।
नेत्रहीन जब रहे जरा वस अतिहि सिथिल तन ।
ढिग पंडित बैठाय निरन्तर पाठ कराते ।
सुनत रामगुन गान न जाके श्रवन अघाते ॥

(४)

विद्वानन के रचे संसकृत ग्रंथ अनोखे ।
हिन्दी के सत काव्य रसभरे मंजुल चोखे ।
मसि कागद दरिद्र से पहिले छापे जाते ।
गुदड़ी लिपटे लाल सरिस सद ग्रंथ लखाते ॥

(५)

तिनकी दशा निहारि, प्रथम जिन यह मन ठाना ।
हानि लाभ को ध्यान नहीं मन में कछु आना ।
"वाणी को शृंगार यथोचित नखशिष कीजै ।
"देइ मनोहर रूप ताहि, जग में जस लीजै ॥"

(६)

अति सुन्दर सर्वांग पत्रिका, चित्र सजाये ।
लेख मनोहर लिखन हेत विद्वान बुलाये ।
जिन पहिले ही बार, सरस्वति नाम प्रकासी ।
करि भाषा-उपकार लही कीरति अविनासी ॥

(७)

करत अनेकन भाँति विबुधजन कर सतकारा ।
दानी, परम सुशील, दया के सिन्धु, उदारा ।
हिन्दी के हितकरन-कीर्ति जग छाँड़ि अथोरी ।
बसे स्वर्ग सो, हितन शोक-सागर महँ बोरी ॥

बाबू चिन्तामणि घोष (वय ७२ वर्ष) और उनकी पौत्र-पौत्रियाँ

श्रीमती रेखाबाला घोष (पौत्री)

स्वर्गीय बाबू हीरालाल दास (गृह-शिक्षक)

स्मृति-तर्पण

[श्रीयुत ज्ञानेन्द्रमोहन दास]
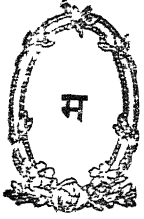
मनुष्य क्या श्रेष्ठ पुरुषों में निर्विच्छिन्न गुणों का सागर अथवा केवल दोषों का आकर होना असम्भव और अस्वाभाविक है। इन दोनों के सामञ्जस्य और एक के आधिक्य को लेकर लोग अपनी धारणा निश्चित करते हैं। मनुष्य के दैनिक जीवन की प्रत्येक छोटी छोटी बातों पर यह निश्चय निर्भर करता है और विचार-कार्य अज्ञात रूप से होता रहता है। इसकी धारणा भी अज्ञात रूप से ही उत्पन्न होती है। वास्तव में गुण ही मनुष्य के हृदय को आकर्षित करने की चुम्बक-शक्ति है, और यही शक्ति देश-काल-पात्र का अतिक्रमण करके सारे हृदयों के ऊपर प्रभाव डालती है। स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के जीवन-काल में विगत ३५ वर्षों के भीतर प्रयाग में प्रवास करते समय हज़ारों बार उनके सम्पर्क में आने का और उनके उपदेश और परामर्श से एवं अर्थ और उत्साह से उपकृत होने का और कलकत्ते से बीच बीच में आकर उनके भवन में ठहर कर उनको अधिक घनिष्ठ भाव से अध्ययन करने का मुझको बहुत अधिक सुयोग प्राप्त हुआ है। नित्य भिन्न भिन्न विषयों की आलोचना, उनका शैशव, यौवन तथा प्रौढ़ वयस की कर्म-कथा और उनके आचरण और भावों के भीतर से उनके हृदय और मन का परिचय जितना ही प्राप्त होता गया, उतना ही उनके प्रति श्रद्धा और भक्ति से मैं अधिकाधिक आकृष्ट होता गया। उनके नाना प्रकार के कार्यों और उक्तियों में उनको देखता रहा और उनकी कही हुई बहुत सी बातों को मनन करता रहा, और यह सब काल के प्रवाह के समान चलता आया, परन्तु उनके समग्र रूप का किसी भी दिन इस तरह नहीं चिन्तन किया, जैसा उनके अदर्शन में आज कर रहा हूँ।

उनसे मेरा प्रथम साक्षात्का १८९३ या ९४ में हुआ था। वे एक दिन दोपहर के बाद कटरा में अपने प्रेस के सामने खड़े प्रूफ़ जैसा कोई काग़ज़ आँख से लगाये देख रहे थे। मैं एक साहित्य-सभा का बँगला में विज्ञापन छपाने के लिए उनके पास गया था। उस समय उनके प्रेस में बँगला काम नहीं छपता था, बँगला टाइप भी नहीं था, परन्तु हैंड बिल छापने के लायक़ कुछ बँगला टाइप थे। उस समय भी मैंने उनकी दृष्टि-शक्ति को क्षीण देखा था। वे मुझसे विज्ञापन को ले आँख से लगा कर पढ़ने लगे। उसे छाप कर कब दे सकेंगे, यह कह कर उन्होंने उसे जेब में डाल लिया। निर्दिष्ट दिन के निर्दिष्ट समय पर मैं विज्ञापन लेने को जैसे ही उनके प्रेस में घुसा, उनके संकेत से उनके कर्मचारी ने विज्ञापन का पैकट लाकर मुझे दे दिया। मैंने बिल मांगा। उन्होंने कहा कि इसका बिल नहीं बनाया। बँगला-काम तो हमारे यहाँ होता नहीं है। तब एक छोटे से हैंड बिल की छपाई क्या लूँ। फिर हँस कर कहा कि जब विदेश में बंगाली युवक लोग मातृभाषा की चर्चा के लिए सभा कर रहे हैं तब उसमें उन्हें उत्साह भी तो देना चाहिए। मैं उनके हृदय का यह प्रथम परिचय पाकर श्रद्धा-पूर्ण हृदय के

साथ घर लौट आया। इसके कई वर्ष बाद मेरे स्वर्गीय पितृदेव प्रयाग-प्रवासी हुए। इस समय घोष महोदय अपने ज्येष्ठ पुत्र हरिपद को विद्यालय न भेज कर घर में पढ़ाने के लिए एक उपयुक्त शिक्षक की खोज में थे। इस सम्बन्ध में उन्होंने अपने सम्बन्धी कलकत्ता-निवासी स्वर्गीय मतिलाल सील को पत्र लिखा। स्वर्गीय मतिबाबू मेरे पिता के मित्र थे। उन्होंने उत्तर में मेरे स्वर्गीय पिता हीरालाल दास महोदय का नाम बता कर लिखा कि उनके हाथ में पुत्र की शिक्षा का भार देकर आप निश्चिन्त हो सकते हैं। उन्होंने शिक्षा-कार्य में ही अपना सारा जीवन व्यतीत किया है, और अब अवसर ग्रहण कर प्रयाग में ही प्रवास कर रहे हैं। इस चिट्ठी के परिणाम-स्वरूप मैं घोष महोदय का पत्र पाकर एक दिन पिताजी को साथ लेकर सन्ध्याकाल में उनसे मिला। मेरे पिताजी के साथ उनकी थोड़ी देर तक बातचीत हुई, परन्तु उतने ही समय के भीतर एक दूसरे को पहचान गये। धीरे धीरे यही क्षणकालिक परिचय प्रगाढ़ प्रीति, विश्वास और श्रद्धा में परिणत हो गया। मेरे पिताजी के जीवन-काल के शेष तक वह स्थायी रहा। तब से हम लोगों की घनिष्ठता बढ़ती ही गई। मैं उन्हें काका बाबू कहने लगा। अब मुझे और अधिक घनिष्ठ भाव से उनका अध्ययन करने का सुयोग प्राप्त हुआ। मुझे याद है कि मेरे पिताजी के श्राद्ध के समय उन्होंने हमारा व्यय-भार लघु करने की इच्छा की। परन्तु शायद मैं उससे कुंठित न हो जाऊँ, सोचकर कहा कि तुम्हारे पिता हरिपद के शिक्षा-गुरु थे, अतएव तुम्हारे साथ हरिपद भी श्राद्ध करने का अधिकारी है। मैं उनकी इस स्नेह-पूर्ण उक्ति के बाद फिर कुछ नहीं कह सका। उनकी देने की प्रणाली भी ऐसी ही मधुर थी।

एक बात बार बार मन में उदित हो रही है कि पिछली अर्द्धशताब्दी के भीतर वंग-जननी के अनेक सुसन्तान वंगदेश के बाहर प्रवास करके कर्म-जीवन के भिन्न भिन्न विभागों में कृती हुए, नाना दिशाओं में प्रतिभा का प्रदर्शन करके मातृभूमि का मुखोज्ज्वल कर गये, बहुतों ने अपने पीछे स्थायी कीर्तियाँ छोड़ीं, जो किसी भी देश, किसी भी जाति के लिए चिरगौरव का कारण हो सकती है। परन्तु जिस युग में बंगालियों ने बाबूगिरी के चरणों पर 'दास-खत' करके सरकार के प्रियपात्र और दफ़्तरों के बड़े बड़े साहबों के प्रलोभन-पात्र बन कर अनायास-लभ्य निश्चित आय के पथ को दृढ़ता-पूर्वक पकड़ लिया था, उसी युग के वायुमण्डल में वर्द्धित होकर साहाय्य-संबल-शून्य पितृहीन नवयुवक चिन्तामणि को ही उस पथ का परित्याग कर के अमानुषिक अध्यवसाय और परिश्रम से कष्ट-साध्य पथ को स्वीकार करते तथा तिल तिल पर अपने को गठित करते हुए एक के बाद एक कठिन से कठिनतर प्रतिकूल अवस्था के साथ संग्राम करके 'इंडियन प्रेस' के सदृश एक बड़ी भारी सजीव कीर्ति स्वहस्त से निर्मित करते पाया।

किसी प्रकार का प्रलोभन या किसी प्रकार की उत्तेजना या असत् परामर्श जैसे उनके यौवन में उन पर कोई प्रभाव नहीं डाल सका, वैसे ही उनके शैशव में भी नहीं डाल सका। शिशुकाल से वे चिन्ताशील थे। सबकी बातें और सबके परामर्श धीरता के साथ सुनते थे, परन्तु कार्य अपने ही सिद्धान्त के अनुसार करते थे। वे कल्पना-शील (Man of ideas) थे। जिस भाव की प्रेरणा मनुष्य को अद्भुत अद्भुत कल्पनाओं में निरत करती है और अचिन्तित और अप्रत्याशित असाध्य-साधन में नियुक्त करती है वे थे उसी प्रेरणा से अनुप्राणित। जो बात औरों की दृष्टि में व्यर्थ और अकिञ्चित्कर और कल्पना की क्रीड़ा प्रतीत होती है, उसी के भीतर इन सब भावों से प्रेरित पुरुष साफल्य का इंगित पाते हैं। और

अधिक आग्रह के साथ, अधिकतर धैर्य के साथ दिन प्रति दिन उसी कल्पना को प्रस्फुटित करते हुए एक दिन असम्भव को मनुष्य-साध्य बना देते है। ग्यारह वर्ष के पितृहीन बालक को पितामही और विधवा माता के साथ काशी से प्रयाग आकर अनिवार्य कारण से गृह का जो कमरा रहने और अध्ययन करने को उन्हे मिला था उसी कमरे मे उनकी अपेक्षा अधिक वयस्कों का गाजा पीने का अड्डा था। पहले वे लोग गांजा पीते थे, बाद को चण्डू पीने लगे। जब वे लोग अपनी मजलिस करते थे तब बालक चिन्तामणि एकान्त में बैठकर अपने अध्ययन में निरत रहते थे। उस मजलिस के चण्डूबाज़ उनको शान्त, चिन्ताशील और निस्सङ्ग देख कर मन में यह सोचते थे कि यह बालक बड़ा झेंपू, स्थूलबुद्धि और किसी काम का नही है। उसे चतुर, चालाक, संसार के लिए उपयोगी और काम का आदमी बनाने के लिए गाजा और चण्डू पीना सिखलाना चाहिए, यह स्थिर करके वे लोग उन्हे बहुत तङ्ग करने लगे। परन्तु उनकी सारी चेष्टायें विफल हुईं। बालक चिन्तामणि को कोई तम्बाकू तक न पिला सका! अन्त में जब उस बालक ने गांजा-वांजा पीना नहीं सीखा तब मनुष्य कैसे बनेगा, यह कह कर उन्होंने उनका भविष्य घोर अन्धकार-मय समझा और हताश होकर उनका सम्बन्ध त्याग दिया। परन्तु उस संसर्ग मे अति कष्ट के साथ उन्हें एक वर्ष बिताना पड़ा था। जब वे लोग उनका भविष्य अन्धकारमय अनुमान करते थे तब बालक चिन्तामणि अपने भविष्य की परिकल्पना करते थे। उनके पिताजी ताश के जुए मे सर्वस्व अर्पण कर पुत्र के लिए एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गये थे, और बहु उपार्जन करके भी जुआ खेल कर बीच बीच में रिक्तहस्त हो अति प्रयोजनीय कार्य के लिए कुछ भी कभी व्यय नहीं कर सके। यह बात बालक चिन्तामणि कभी नहीं भूल सके। पिताजी की अदूरदर्शिता का परिणाम देख कर वे शैशव से ही भविष्य के लिए सावधान हो गये और मन मे यह प्रतिज्ञा की कि ऐसी भूल अपने जीवन मे कभी नहीं होने देंगे। उन्होंने उन अड्डेवालों के कुत्सित् अभ्यास और मादक वस्तु के सेवन के परिणाम को देख कर सारे जीवन मे कोई मादक वस्तु स्पर्श तक न की। वे उन लोगों की निन्दा या तिरस्कार नहीं करते थे, परन्तु स्वयं सावधान होकर रहते थे। यह उनके चरित्र की विशेषता थी। इसी विशेषता के वश उत्तर-काल में वे शान्ति-पूर्वक जीवन-पथ पर अग्रसर होसके। क्षति सहकर भी वे अदालत की शरण कभी नहीं गये। मुझे याद आता है, बहुत दिनों की बात है, प्रेस उस समय न० ३ पायोनियर-रोड पर था। एक दिन दोपहर के समय उनका पुराना चपरासी माधो-सिंह बिल का रुपया वसूल करके आया और उनके सामने आकर खड़ा हो गया। वह एक बिल की वसूली के सम्बन्ध में, जिसका रुपया उसने बार बार तक़ाज़ा करने पर भी नहीं पाया था, शिकायत करने आया था। उसकी बात सुन कर उन्होंने वह बिल उससे ले लिया और उसको टुकड़े टुकड़े करके फाड़ डाला। उन्होंने उससे कहा कि इस बिल के रुपये का तक़ाज़ा करने अब कभी न जाना और उसको बट्टेखाते डाल देने के लिए उन्होंने ख़ज़ान्ची को आदेश दे दिया, साथ ही यह भी कहा कि उनके यहां का काम अब फिर कभी न लिया जाय। उस बिल का रुपया अल्प नहीं था, उपेक्षा करने के योग्य नही था। परन्तु अदालत करना या सख़्त तक़ाज़ा करके वसूल करना उनकी प्रकृति के विरुद्ध था। इसी तरह की एक और घटना का यहां उल्लेख करता हूँ। उस दिन भी मैं उनके पास बैठा था। वे जिस प्रकार न मिलने-वाले रुपये की क्षति चुपचाप सह लेते थे और अदालत

नहीं करते थे, वैसे ही ग्राहकों से रक़म लेकर अपने वचन के अनुसार ठीक ठीक काम कर देने में कभी अन्यथा नहीं करते थे और इसी लिए आधुनिकतम उत्कृष्ट मशीनों आदि का एवं उपयुक्त संख्यक सुदक्ष कर्मचारियों का संग्रह रखते थे। साफ़-सुथरी छपाई और सुन्दर जिल्द बँधाई, उत्तम काग़ज़ और बढ़िया स्याही और उच्च कोटि के चित्र आदि प्रेस-सम्बन्धी उपकरणों की ओर उनका लक्ष्य था। और उनका यह भी लक्ष्य था कि उनका वचन अन्यथा न हो। उनका यह नियम था कि कोई काम बाहर जाने के पहले उन्हें दिखा दिया जाय, क्योंकि जब तक काम निर्दोष और उनकी रुचि के अनुसार नहीं हो जाता था, तब तक वे उसे बाहर नहीं जाने देते थे। उस दिन दफ़्री ने लगभग २०० पृष्ठों की डबलक्राउन सोलह पेजी आकार की एक अँगरेज़ी पुस्तक जिल्द बाँध कर लाकर उन्हें दिखलाई। उस समय उनकी दृष्टि-शक्ति बहुत कुछ क्षीण हो चुकी थी। वे उस किताब को अपनी आँखों के पास ले जाकर देखने लगे। उसके पृष्ठ देखे, पृष्ठ के किनारे देखे, छपाई और स्याही देखी। उन्होंने कहा कि जब मैं अपनी हीन दृष्टि से इसमें छपाई की, कटाई की और बँधाई की अनेक भूलें पाता हूँ तब न मालूम इसमें कितनी भूलें भरी हों। यह कह कर उन्होंने उस किताब को बीच से दो खण्ड करके फेंक दिया और कहा कि जब इंडियन प्रेस और प्रेसों से ज़्यादा उजरत लेता है तब क्या इस तरह का काम देने के लिए। हम किसी तरह ऐसी किताब बाहर नहीं जाने देंगे। यह कह कर उस पुस्तक की सारी प्रतियाँ नष्ट करने और फिर उसे ठीक ठीक छापने और बाँधने का हुक्म उन्होंने दिया। यह यहाँ कहना व्यर्थ है कि ऐसी ऐसी क्षतियाँ वे प्रसन्नमन होकर सह लेते थे, परन्तु छपाई इत्यादि की भूलों के सहित अपना वचन भङ्ग करके कोई असुन्दर काम अपने प्रेस से बाहर नहीं जाने देते थे। वे स्वयं योरपीय दृष्टि से एक श्रेष्ठ प्रिंटर ((Master Printer) थे, और आधुनिक श्रेष्ठ छपाई के पक्षपाती थे। वे सौन्दर्य के अनुरागी थे, और स्वयं इतना शुद्ध प्रूफ़ देखते थे कि अति तीक्ष्ण दृष्टिवाले सुशिक्षित प्रूफ़रीडर तक उनके आगे सिर झुका देते थे।

परिश्रम के साथ प्रूफ़ देखने और साधारण साहित्य की चुनी हुई किताबों के, विशेष कर छपाई के सम्बन्ध की किताबों के दिन-रात के अध्ययन में वे आँखों से अत्यधिक काम लेने के कारण अपने मध्य-वयस में ही क्षीण-दृष्टि हो गये थे। उनकी अध्ययन-स्पृहा और अतुलनीय कीर्ति इंडियन प्रेस की उत्पत्ति और उसके उत्कर्ष की कथा मैं 'प्रबन्धान्तर' में विस्तार के साथ लिख चुका हूँ। यहाँ उसके दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

चिन्तामणि बाबू के लड़कपन के मित्र उनसे कई वर्ष बड़े श्रीयुत बाबू भुवनाथ सरकार से मैंने सुना है कि चिन्तामणि बाबू का स्वास्थ्य सब दिन अच्छा रहा। उनका रङ्ग उज्ज्वल साँवला, शरीर सुगठित और हृष्ट-पुष्ट था। उनके तरुण वयस्क की विनम्र मूर्ति में प्रेमिक भाव यथेष्ट रूप में था। वेश-विन्यास की ओर वे बिलकुल ध्यान नहीं देते थे। केश अत्यन्त विन्यस्त रहते थे, कभी कंघी स्पर्श नहीं करते थे, उनमें बाल-सुलभ चपलता नहीं दिखाई देती थी, व्यर्थ हास-परिहास में वे अपना समय नहीं गँवाते थे। वे अल्पभाषी थे, तो भी सरस वचन के प्रयोग* में

---

* जब बाबू चिन्तामणि हवाघर में काम करते थे तब वे एक बार अपनी जन्म-भूमि बाली गये थे। वहाँ पड़ोस के लोगों ने बात-चीत में पूछा कि कहाँ काम करते हो। उन्होंने कहा कि हवाघर (मेटिओरोलाजिकल आफ़िस) में काम करता हूँ। वेतन क्या, कहा सौ रुपया। ऊपरी कितना है, कहा, हाँ, ऊपरी है। ऊपर जाते हैं और हवा खाते हैं। यह ऊपरी रोज़ पाते हैं।

पटु थे। उनका स्वभाव गम्भीर था और अपने प्रेम के व्यवहार से सबको अपना बन्धु सा बना लेते थे। अपने बचपन के मित्रों को कभी नहीं भूले। उनकी समय-असमय में सहायता करते थे। किसी किसी मित्र ने उनके साथ अमित्र का सा व्यवहार किया, परन्तु उन्होंने उनके उस व्यवहार को भूल कर उनके असमय में उनकी बराबर सहायता की।

भविष्य में उन्नति करने के जो विशिष्ट लक्षण—माता के प्रति अकपट भक्ति आदि—होते हैं वे चिन्तामणि बाबू के हृदय में गम्भीर भाव से विद्यमान थे। माता के वाक्य उनके लिए वेद-वाक्य थे। माता का दुःख वे जीवन में सर्वापेक्षा अधिक दुःख का कारण समझते थे। पिता की मृत्यु के बाद जब संसार के अभाव की पीड़ा ने जननी को चिन्तित किया था तब वे विद्यालय के अध्ययन में मन नहीं दे सके, और तेरह वर्ष के ही वय में १०) मासिक वेतन की नौकरी स्वीकार की। ऊँची मेज़ के ऊपर बड़े बड़े लेजरों में हिसाब लिखने के समय उनका हाथ नहीं पहुँचता था, इसलिए प्रारम्भ में वे लेजर उतार कर टेबिल के नीचे लेटकर लिखा करते थे। इसके साथ एक यह भी कारण था कि उनके साथ के दूसरे कर्मचारी उनसे अपना काम लेते थे, जिससे उनके निज के काम में विघ्न पड़ता था, अतएव वे इस प्रकार छिप कर अपना काम पूरा कर लिया करते थे। विस्मय का विषय यह है कि तब भी उनके हस्ताक्षर मोती के समान सुन्दर और हिसाब दर्पण के समान स्वच्छ दिखाई देता था। उसमें कहीं भी काट-कूट और दाग़ या भूल नहीं रहती थी। किशोर वयस में अपनी बहन, भांजा और भाजियों का भी भार उन्हें अपने ऊपर लेना पड़ा था। अतएव उनके अपना विवाह न करने से भी उनका कुटुम्ब बहुत बड़ा हो गया था। इन लोगों के प्रति कदाचित् कोई त्रुटि हो जाय जिससे माता के मन में कोई दुःख हो, यह सोच कर उन्होंने समय में अपना विवाह न करके पहले अर्थोपार्जन, मिताचार, मित-व्ययिता के द्वारा अर्थ-सञ्चय की ही ओर ध्यान दिया था। इसके बाद अपनी अवस्था को समुन्नत करके इस संयमी पुरुष ने २८ वर्ष के वय में अपना विवाह किया। इस विवाह से साक्षात् लक्ष्मी जैसी पत्नी ने उनके गृह में पदार्पण किया, जिससे उनकी श्रीसम्पद् दिन प्रति दिन बढ़ती ही गई।

वे दरिद्र की सन्तान नहीं थे, क्योंकि उनके पिताजी उस समय के कमसरियट के गुमाश्ते थे। हां, वे स्वयं दारिद्र्य के साथ युद्ध करते हुए वर्द्धित हुए थे, क्योंकि ताश के जुए के कारण उनके पिताजी उनको एक कौड़ी भी नहीं छोड़ गये थे। अभाव के कठोर शासन ने उनको जैसा संयमी और चरित्रवान् बना दिया था, वैसे ही विद्यालय की शिक्षा अधिक समय तक न पाकर भी अनन्य असाधारण अध्यवसाय के साथ अध्ययन करके उन्होंने स्वयं अपने हृदय को आलोकित किया था। दूसरी ओर मनस्विनी स्नेहमयी जननी विद्यालय की शिक्षा नहीं दे सकी, तो भी अपनी उदार उन्नत चिन्ता, सदुपदेश और सद्भाव के द्वारा पुत्र को रत्न बनाने के लिए कोई उपाय बाक़ी नहीं रक्खा। माता का आशीर्वाद सिर पर रख कर वे भी तिल तिल करके अपने जीवन का निर्माण करने लगे। इसी समय उन्होंने स्माइल साहब की 'सेल्फ़ हेल्प' नामक पुस्तक को चौदह-पन्द्रह बार ख़ूब ध्यान देकर पढ़ा था। वे कहा करते थे कि उस पुस्तक ने मुझे स्वावलम्बन के मार्ग का निर्देश किया है और जीवन में मुझको उससे अपूर्व सहायता मिली है। इसी समय उनमें आर्थिक अभाव दूर करने की उपाय-चिन्ता का उदय प्रधान रूप से हुआ था। किसी नूतन पथ के अनुसन्धान के लिए अब वे व्यग्र रहने लगे थे।

चारों ओर के विषय-व्यापार से अपने उद्देश-साधन के अनुकूल के इंगित की उपलब्धि के लिए वे सचेष्ट रहते थे। इन्हीं दिनों एक बार उन्होंने स्वल्प मूल्य में जलाने के लिए लकड़ी के कुछ पुराने स्लीपर ख़रीदे थे। एक दिन उनका नौकर जलाने के लिए एक स्लीपर फाड़ रहा था, पर वह फटता नहीं था, यहां तक कि चैलियाँ भी मुश्किल से निकलती थीं। यह देख कर उन्होंने नौकर को उसे फाड़ने से रोक दिया और कहा कि यह तथा इसी तरह की लकड़ी के दूसरे स्लीपर अलग करके रख दो। इसके बाद एक दिन वे और उनके मित्र बाबू उमाचरण नन्दी कटरे के पुराने पोस्टआफ़िस के पास खड़े बातचीत कर रहे थे। इस बीच में उन्होंने देखा कि काशीराम नाम के एक बढ़ई ने शीशम की लकड़ी का बना हुआ एक सन्दूक़ बीस रुपये में बेंच डाला। इस साधारण घटना ने उनकी दृष्टि को आकृष्ट किया। उन्होंने उससे उस सन्दूक़ की लागत मालूम की। उन्हें ज्ञात हुआ कि उसके बनाने में कुल १२) लगे। यह सुन कर धनोपार्जन का एक नया मार्ग उन्हें सूझ गया। तब उन्होंने उक्त पूर्व-सञ्चित लकड़ी उस मिस्त्री को देकर कुछ चीज़ें बनवा कर उसी से बेंचवाईं। इस कार्य से उत्साह पाकर उन्होंने और १०) की शीशम की लकड़ी मोल लेकर उसे दी और १४) मासिक पर उसे नौकर रख कर लकड़ी की चीज़ों की दूकान अपने मित्र उक्त नन्दी महाशय के सहयोग में खोली। डेढ़ महीने के भीतर उन्होंने उस दूकान से १००) पैदा किये। जब वे उस दूकान मे बैठते थे तब मुहल्ले के कोई कोई लोग उनकी हँसी उड़ाते थे। अतएव उन लोगों की दृष्टि से बचने के लिए वे और उनके मित्र उस दूकान के एक ओर का टट्टर गिराकर आड़ कर लेते थे और मिस्त्री के काम की देखभाल किया करते थे। बाद को उन्होंने अपने एक परम मित्र कृष्णकिशोर तिवारी को अपनी दूकान का हिस्सेदार बना लिया, और सरकारी नौकर होने के कारण उस कारख़ाने का नाम 'तेवारी एंड कम्पनी' रखकर चौदह सौ रुपये के मूलधन से कारबार चलाना शुरू किया।

इसी तरह जब वे पायोनियर में थे तब वहाँ अपने अवकाश के समय प्रेस का काम और मशीन खोलना, जोड़ना और उसके व्यवहार इत्यादि की बातें बड़े ध्यान से देखते रहते थे। उनके साथ के कर्मचारी मित्र उनकी दिल्लगी उड़ाया करते थे। वे कहते थे कि यह सब देख कर क्या होगा, क्या छापाख़ाने का काम करोगे। वे गम्भीर भाव से जवाब देते थे कि देखने में क्या दोष है। देख क्यों न रक्खें, शायद बाद को कुछ काम ही पड़े। उनके हितैषी बाबू उमाचरण घोष पायोनियर प्रेस में हेड क्लर्क थे। वे भी समय समय पर उनके प्रेस आदि के देखने के सम्बन्ध में उन पर कटाक्ष किया करते थे। नौकरी के सम्बन्ध में जब बातचीत होती थी, बालक चिन्तामणि इनसे प्रायः यही कहा करते थे कि नौकरी में है ही क्या। बाप का धन नहीं मिला। इसी से अब नौकरी कर रहा हूँ। रुपया होता तो मैं भी इसी तरह प्रेस खड़ा करता और इतने ही आदमियों की उदरपूर्ति की व्यवस्था करता। इसी मनोबल से उन्होंने थोड़े दिन नौकरी करके ३५ वर्ष की उम्र में एक चौथाई (२५ रुपया) पेंशन लेकर अवसर ग्रहण किया, और पांच वर्ष पहले अर्थात् १८८४ में जो प्रेस रजिस्टरी कराया था और जिसका उन्होंने विस्तृत और सुन्दर ढङ्ग से कार्यपरिचालन

किया था उसके उत्कर्ष-विधान में अब मनो-निवेश किया। जिन्होंने एक दिन किशोर वयस में प्रसङ्ग-वश कहा था कि रुपया होता तो मैं भी एक ऐसा ही प्रेस खोलता और इतने ही आदमियों की उदर-पूर्त्ति की व्यवस्था करता उन्हीं ने आज सचमुच में एक उत्कृष्ट प्रेस अपने हाथ से खड़ा कर शत शत आदमियों के अर्थोपार्जन का द्वार खोल दिया। उनके सदृश चरित्रवान् कर्त्तव्यनिष्ठ स्वयंसिद्ध पुरुष की कर्मकथा की समाप्ति नहीं है। मासिक पत्रिका की इस स्मृति-संख्या में उसकी विस्तृत आलोचना सम्भव नहीं है। अतएव आज उनके सम्बन्ध मे और कुछ थोड़ी बातें लिख कर मैं इस प्रबन्ध को समाप्त करूँगा।

वे थे व्यवहार-कुशल। उनके जीवन की आलोचना करने से हम लोगों को उनके कतिपय ऐसे सद्गुणों का परिचय मिलता है जिनकी इस देश के वायु-मण्डल में विरलता है। उनके स्व-निर्मित-जीवन में ऐसी कुछ धारणायें और सिद्धान्त अपने आप गठित हो गये थे जिनका उन्होंने अपने अन्त तक पालन किया, क्योंकि वे दृढ़व्रत और प्रतिज्ञा मे अटल थे। वे जानते थे कि इस देश मे व्यवसाय एक-दो पुश्त से अधिक दिनो तक नही टिकता। इसका प्रधान कारण यह है कि जो व्यक्ति अमानुषीय अध्यवसाय, परिश्रम और व्यवसाय-बुद्धि के साथ आजीवन की चेष्टा से अपनी कीर्त्ति अपने पीछे छोड़ जाते हैं उनके वंशधर अनायास-प्राप्त सम्पत्ति के अधिकारी होकर और व्यवसायी के पुत्र होकर भी व्यवसाय-बुद्धि का अनुशीलन न कर बैरिस्टर या उपाधिव्याधिग्रस्त साहित्यिक या विज्ञान के डाक्टर नहीं तो कम से कम कवि बन बैठते हैं। उसका जो परिणाम होने को होता है वही होता है। पिता का व्यवसाय नष्ट हो जाता है।

चिन्तामणि बाबू ने अपने पुत्रों को ऐसी शिक्षा नहीं दी। वे विश्वविद्यालय की डिग्री की अपेक्षा इंडियन प्रेस की सुपरिचालन-क्षमता तथा व्यवसाय-बुद्धि एवं सुचरित्रता को बहुत बड़ा समझते थे। बहु-अध्यवसाय और परिश्रम, सतर्कता और बुद्धि-साध्य स्वाधीन व्यवसाय मे प्रवृत्ति हो और देशी प्रकृति-सुलभ उच्च उच्च पद-मर्यादा और क्षमता प्रदायक नौकरी का मोह चित्त को विभ्रान्त न करे, इसलिए उन्होंने अपने लड़कों को अपेक्षा-कृत अल्पवय से ही अपने पास रख कर उन्हें अपने विशाल अनुभव के फल-भागी बनाया और प्रेस के सभी विभागों के काम उनसे कराके वे उनको अपने व्यवसाय को भले प्रकार समझने के योग्य एवं उसे सुन्दर ढङ्ग से परिचालन के योग्य व्यावहारिक शिक्षा दे गये। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र को इस प्रकार की शिक्षा दे कर अपना दक्षिण-हस्त-स्वरूप बना लिया था, मध्यमपुत्र को कालेज में विश्वविद्यालय का एम० एस-सी० कोर्स तक अच्छी तरह पढ़ा कर उनको ग्रेजुएट होने का अवसर नहीं दिया, परीक्षा नहीं देने दी। अन्य पुत्रों को स्कूल-कालेज की शिक्षा दिलाई, परन्तु क़ानून, चिकित्सा, दर्शन, साहित्य इत्यादि अवान्तर विषयों में विशेषता प्राप्त करने का अवसर नहीं दिया। इनमें किसी किसी का आग्रह रहने पर भी विलायत नहीं जाने दिया। परिणाम में उन्हीं की चेष्टा फलवती हुई और उन्हीं का उद्देश सिद्ध हुआ। १९२० में जब बेरीबेरी रोग ने उनकी पत्नी, ज्येष्ठपुत्र, ज्येष्ठ कन्या को कवलित कर लिया तब उनके नेत्रों में जो थोड़ी-बहुत ज्योति शेष थी उसका भी अन्तर्धान हो गया, और अन्त में अपने शेष वर्ष उन्होंने घर से आबद्ध होकर व्यतीत किये। तब अपने पुत्रों के द्वारा प्रेस और प्रकाशन का कार्य सुपरिचालित और उनका उत्कर्ष सुसाधित होता देख कर अपनी

सफलता की तृप्ति प्राप्त कर वे अपने शेष श्वास त्याग कर गये।

धैर्य उनका असाधारण था। पत्नी, पुत्र, कन्या की मृत्यु से जब वे शोकाकुल हुए थे तब उनकी आराध्य जननी जीवित थीं। पुत्र को व्याकुल देख कर वृद्धा माता का शोक कहीं द्विगुणित न हो जाय, इस कारण अपनी शोकाग्नि हृदय में ही दबा कर उन्होंने असीम धैर्य के साथ अपने को संयत रक्खा।

उस शोक के समय समवेदना ज्ञापन करके तथा सान्त्वना देकर जो पत्र मैंने उन्हें कलकत्ते से भेजा था उसके पाने के पहले ही उनकी ज्येष्ठा कन्या की भी मृत्यु हो गई थी। इसके बाद उन्होंने मेरे पत्र के उत्तर में जो चिट्ठी भेजी उससे यह मालूम हो सकता है कि उस दारुण शोक के समय भी उनके चित्त की प्रशान्ति और साम्यावस्था का अभाव नहीं हुआ था। वह चिट्ठी यह है—

প্রিয় জ্ঞানেন্দ্র,

তোমার ৪ তারিখের পত্র পাইলাম। Beri-Beriর third victim আমার জ্যেষ্ঠা কন্যা বুড়িও ৩রা তারিখে তাহার মাতার কাছে গিয়াছে। ১৬ দিনের মধ্যে স্ত্রী, হরিপদ ও বুড়ি চলিয়া গেল, আমার পালা কবে আসিবে ভাবিতেছি।

ঈশ্বর মঙ্গলময়। আমার পক্ষে এই phraseটি একটি empty philosophic sound বা সত্য বলিতে পার কি?

আশা করি তোমরা সকলে ভাল আছ।

শুভার্থী

শ্রীচিন্তামণি ঘোষ

[प्रिय ज्ञानेन्द्र,

तुम्हारा ४ तारीख़ का पत्र पाया। बेरीबेरी का तीसरा शिकार मेरी ज्येष्ठा कन्या बूढ़ी भी तीसरी तारीख़ को अपनी माता के पास चली गई। १६ दिन के भीतर स्त्री, हरिपद, और बूढ़ी तीनों चले गये। मेरी बारी कब आयगी, यही सोचता हूँ।

ईश्वर मङ्गलमय है, मेरे लिए यह वाक्यांश एक empty philosophic sound (निस्सार दार्शनिक शब्द-मात्र) है?

आशा करता हूँ कि तुम लोग सब सकुशल होगे।

शुभार्थी

श्रीचिन्तामणि घोष]

उनकी स्मृति-शक्ति इतनी प्रखर थी कि मृत्यु के कुछ दिन पहले तक वे अपने जीवन की प्रत्येक घटना की तारीख़ एवं अन्यान्य घटनाओं की भी तारीख़ें यथावत् बताते थे। इसी प्रकार उनकी गणना भी चौकस होती थी। जो हिसाब करते थे ऐसा ठीक करते थे कि वह 'जर्मन कैल्कुलेशन' कहा जा सकता है। उनके सारे हिसाबों में केवल एक ही हिसाब में भूल हुई। आयु के सम्बन्ध में उनका हिसाब ठीक नहीं उतरा। उनकी विस्मयोत्पादक जन्म-पत्रिका के फलादेश के आगे वह भ्रामक निकला। जन्मपत्र के फलादेश से उनके जीवन की सारी घटनायें मिल जाने पर उनका जन्मपत्री पर अटल विश्वास हो गया था। जब पायोनियर में १३ वर्ष की उम्र में उन्होंने नौकरी की थी तब पाँच हज़ार रुपये का उन्होंने जीवन-बीमा कराया था। वे जानते थे कि उनके पितामह ने ३५ वर्ष के वय में देह-त्याग किया था, उनके पिता ने ३२ की उम्र में परलोक-यात्रा की, अतएव उनका यह अनुमान था कि वे २८ वर्ष की उम्र में स्वर्गवासी होंगे। परन्तु जन्मपत्रिका की गणनानुसार वे पूरे ७४ वर्ष तक जीवित रह कर बीमा के मूल-धन का कोई दूना रुपया उन्हें देना पड़ा।

भारतीय प्रेस के क्षेत्र में प्रिंटर के हिसाब से वे शीर्ष स्थान पर स्थित थे, इसमें मतभेद सम्भव नहीं। विगत

४४ वर्ष का इंडियन प्रेस का इतिहास इसी बात का साक्षी है। इंडियन प्रेस जैसे उनकी एक अक्षय कीर्ति है, बंगवासी होकर उनसे हिन्दी-साहित्य का विस्तार और अभूतपूर्व उन्नति-साधन उनकी एक और चिरस्मरणीय कीर्ति है। उस दिन तक जब हिन्दी-साहित्य ने कलकत्ते की पुरातन 'बटतला' की बँगला-साहित्यिक अवस्था को अति-क्रम नहीं किया था, हिन्दी के लेखकों, पाठकों, साहित्यिकों और प्रकाशकों की दृष्टि हिन्दी की ओर अनुकूल और श्रद्धा के भाव से नहीं गई थी, हिन्दी-मासिकों के जब विरल दर्शन थे तब १८६८ मे प्रथम प्रकाशित 'कविवचनसुधा' गद्य-पद्य मे सज कर वंग के गुप्त कवि (ईश्वरचन्द्र गुप्त) के युग का स्मरण कराती थी, १८७२ मे प्रवर्तित 'हिन्दी-द्युति-प्रकाश', १८७४ में प्रकाशित 'हिन्दी-प्रदीप' एवं १८८८-८९ में प्रचारित 'सुगृहिणी' और 'भारत-भगिनी' प्रभृति कई एक उल्लेखयोग्य मासिक पत्रिकायें सामयिक साहित्य-क्षेत्र में उर्दू के साथ प्रतियोगिता के क्षेत्र मे दब गई थीं और प्रान्तीय सीमा के बाहर अनादृत थीं। ऐसे ही समय में चिन्तामणि बाबू की उद्भावनी प्रतिभा ने 'सरस्वती' नाम की आदर्श मासिक पत्रिका का प्रवर्तन करके साहित्यिक जगत् में हिन्दी-मासिक की मर्यादा स्थापित की, और १९०० के साल को हिन्दी की युग-सन्धि के रूप में चिरस्मरणीय कर दिया। जो जिस काम के उपयोगी है उसको उसी काम के लिए निर्वाचन करने की क्षमता और गुणी का गुणग्रहण करके उनको उत्साहदान करने की प्रवृत्ति उनमें असाधारण थी। इसी लिए पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे साहित्या-चार्य को सरस्वती का कर्णधार कर दिया था।

उन्होंने केवल हिन्दी में आदर्श मासिक पत्रिका का प्रवर्तन किया था, यही नहीं, किन्तु साथ ही साथ साहित्य के प्रचार और उत्कर्ष-विधान, लोक-शिक्षा के उपाय-स्वरूप तथा व्यवसाय की ओर धनोपार्जन का एक नूतन मार्ग व्यवहार-रूप मे करके दिखा दिया था, और इस प्रकार वे दूसरों के द्वारा उत्कृष्ट मासिक पत्र के प्रवर्तन और परिचालन के कारण-स्वरूप हुए। हिन्दी-संसार में इस अवस्था की सृष्टि करते हुए सरस्वती को २० वर्ष लगे। उसके फल-स्वरूप आज इस प्रदेश में माधुरी, सुधा, चांद, मनोरमा प्रभृति प्रमुख उत्तमोत्तम मासिक पत्रिकायें १९२० के बाद से ही हिन्दी-क्षेत्र में आविर्भूत हुईं। हिन्दी-साहित्य के प्राण-स्वरूप गोस्वामी तुलसी-दास-कृत 'रामचरित-मानस' और असंख्य हिन्दी-ग्रन्थों के उत्कृष्ट संस्करण तथा नव नव उत्तमोत्तम हिन्दी-ग्रन्थों का प्रकाशन करके इस विभागीय प्रकाशन-कार्य और छपाई की कला को उन्नति के उच्च स्थान पर बिठा दिया। इस कारण आज समग्र हिन्दी-संसार इंडियन प्रेस के प्रतिष्ठाता स्वर्गीय चिन्तामणि घोष महोदय का ऋणी है।

जो उनके सम्पर्क में आये थे वे उनके आडम्बरहीन अकपट आन्तरिक व्यवहार से मुग्ध हुए। वे बड़े विद्यानुरागी थे और विद्वानों का तद्वत् आदर करते थे। बाल्यावस्था में अर्थाभाव से असमय में विद्यालय छोड़ने को बाध्य हुए थे, यह बात स्मरण करके बहुत सी शिक्षा-संस्थाओं को वे मुक्तहस्त होकर दान कर गये और अनेक दरिद्र विद्यार्थियों की शिक्षार्थ सहायता कर गये। दारिद्र्य-दैत्य का पीड़न कितना कठोर और निष्ठुर होता है, इसका उन्हे पूरा अनुभव था, इसलिए जीवन-संग्राम-क्षेत्र में अपने बाहुबल से उसे निहत कर अपने जीवन के उत्तर-काल में दीन-दुखियों और आतुरों एवं अनेक असहाय विधवाओं को प्रकाश्य में तथा गुप्तरूप से बराबर सहायता करते रहते थे और सर्वजन-हितार्थ 'दातव्य रोग-चिकित्सा-लय एवं अश्व-चिकित्सालय' स्थापित कर गये। प्रारम्भ में कहा गया है कि उनके सदृश मित्रवत्सल विरल हैं।

उनके एक और सद्गुण की कथा है, जिसका स्मरण किये बिना नहीं रहा जा सकता। वह यह है कि अकेले बहुत धनोपार्जन करके भी और अनेक लोगों की जीविका का उपाय करके भी अपने कर्तृत्व-गौरव का संकेत तक कभी नहीं किया। विपुल सम्पत्ति के अधिकारी होकर भी उनमें धन का अभिमान छू तक नहीं गया था। ऐश्वर्य के मोह में आत्म-विस्मृत होकर अपना निर्मल चरित्र, उदार हृदय और महान् आत्मा को उन्होंने अवनत और मलिन कभी नहीं होने दिया। सुखविलास के सारे उपकरण सुलभ होते हुए भी वे योगी की भांति संयत और साधारण गृहस्थ के सदृश सीधे-सादे ढङ्ग से अपना जीवन व्यतीत कर गये। दैव की निर्ममता उनके हृदय को चूर्ण-विचूर्ण करने पर भी शेष मुहूर्त तक उनके धैर्य का बांध भग्न करके उनको विचलित और कर्तव्यभ्रष्ट नहीं कर सकी। अतएव आज युवकों के आदर्श, सुगृहस्थो के अनुसरणीय, दरिद्रों के पथ-प्रदर्शक, धनियों के शिक्षा-स्थल और बहुगुणों के आधार इस पुरुषसिंह के तिरोभाव से जो स्थान शून्य हो गया, व्यवसाय-वाणिज्य विमुख बङ्गालियों तथा स्वावलम्बनहीन परमुखापेक्षी देश के भाग्य में क्या अब उसकी पूर्ति होगी।
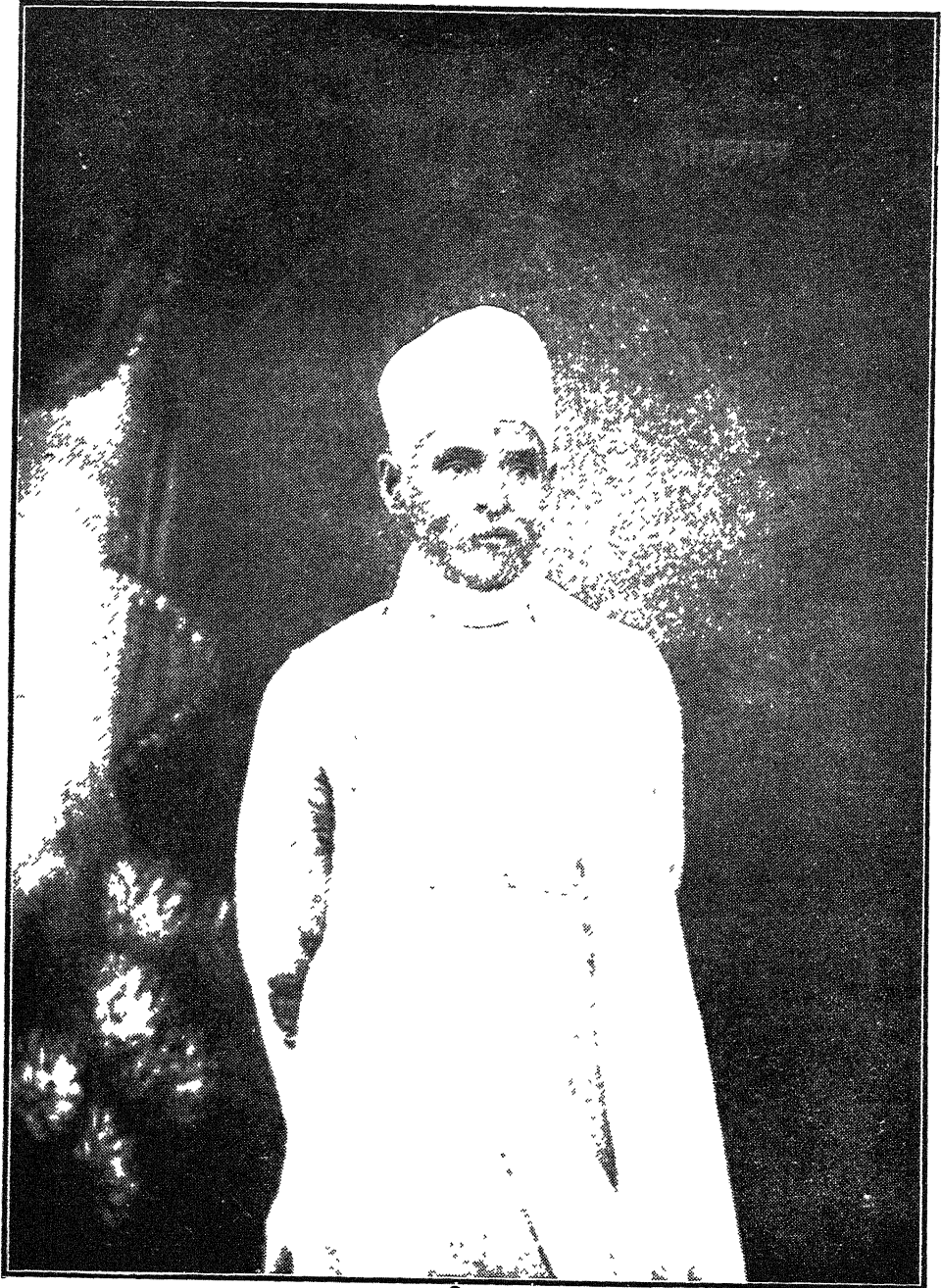
पण्डित मदनमोहन मालवीय

मिस्टर सी० वाई० चिन्तामणि

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष

[श्रीयुत सी० वाई० चिन्तामणि]

जिन बाबू चिन्तामणि का नाम इस सरस्वती के अत्यन्त प्रशंसनीय प्रवर्तन के साथ सदैव अभिन्न रहेगा उनकी पुण्य-स्मृति में इसके श्रद्धाङ्क के लिए मुझसे एक लेख माँगा गया है। उस प्रसिद्ध स्वर्गगत व्यक्ति से मेरा परिचय थोड़े समय का था और वह भी हाल का नहीं। उस थोड़े समय के भीतर ही मैं उनका विश्वासपात्र बन गया था और मुझे उनके गुणों की जानकारी प्राप्त करने का अवसर भी प्राप्त हुआ था। वे परिश्रमी थे और उनमें सङ्गठन की प्रतिभा थी। उन्होंने प्रारम्भ की साधारण स्थिति से उन्नति कर धनाढ्य और प्रभावशाली हो जाने का गौरव प्राप्त किया और यह सब अपने व्यक्तिगत गुणों की बदौलत। उच्च कुल या पैतृक सम्पत्ति की सहायता के बिना यदि कोई मनुष्य उस बात से जिसे लार्ड हाल्डेन उत्कृष्ट बनने की महत्त्वाकांक्षा कहते हैं, अनुप्राणित होकर आत्मशिक्षण-द्वारा धैर्य्य-पूर्वक और सतत परिश्रम के जीवन में अपने आपको ढाल सके तो वह अपने आपको क्या बना सकता है, इसका उदाहरण बाबू चिन्तामणि घोष से बढ़कर नवयुवकों को और कोई नहीं मिल सकता।

जैसे जेसुट श्रेणी के ईसाई ईसा को मानते हैं, वैसे ही बाबू चिन्तामणि घोष ने इंडियन प्रेस की सफलता को माना था। इसी को उन्होंने अपना आदर्श स्वीकार किया था और लार्ड हाल्डेन के शब्दों में उन्होंने इसी के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया था। बाबू चिन्तामणि घोष के इंडियन प्रेस की अपेक्षा छपाई के काम में पूर्ण सफलता के सहित ऐसे उच्च कोटि के उद्योग का अधिक अच्छा उदाहरण भारतवर्ष के किसी भी प्रान्त मे देखने में आ सकता है, इसका मुझे सन्देह है। यह उनके लिए प्रशंसा की बात है कि जो सम्पत्ति उन्होंने परिश्रम से अर्जित की थी उसके एक भाग को निःसङ्कोच भाव से लोकोपयोगी कार्य्यों में लगा दिया।

प्रयाग में आरम्भ में बाबू चिन्तामणि घोष एक साधारण अज्ञात दर्शक के रूप में आये थे। परन्तु वहीं वे उन्नति करते करते एक सम्माननीय नागरिक के रूप में वृद्ध हुए। उनके बहुत से मित्र और प्रशंसक हो गये। उन्होंने अपने सद्-गुणों की बदौलत ऐसी सफलता प्राप्त की जिसके लिए किसी भी व्यवसायी को अभिमान हो सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उनकी मृत्यु

से इलाहाबाद की अधिक क्षति हुई है। उनके मित्रों के लिए सन्तोष की बात केवल यही है कि वे ७४ वर्ष की परिपक्व आयु तक जीवित रहे और अपने समस्त परिचितो को शोकाकुल करके शान्ति के साथ परलोकगामी हुए। बाबू चिन्तामणि के मित्रों और प्रशसकों की यह कामना होनी चाहिए कि जैसे सौभाग्यशाली वे थे, वैसे ही उनके उत्तराधिकारी और पुत्र भी हों एवं इंडियन प्रेस जिसे हम उनका प्रथम पुत्र कह सकते हैं और सरस्वती दोनों उसी प्रकार फलते-फूलते रहें जैसे उनके जीवन-काल मे वे थे।

चिन्तामणि !

[श्रीयुत श्रीनाथसिंह]

प्रतिभा सजीव थी प्रभात-काल के समान
आँधी के समान क्रान्ति-कारिणी लगन थी।
टेक थी हिमालय सी आशा उपवन सी थी,
कोने में निराशा बैठ करती रुदन थी॥
सिन्धु के समान था गँभीर दया-पूर्ण मन
बुद्धि नवमार्ग नित्य करती सृजन थी।
चिन्तामणि ! राष्ट्र-भाषा हिन्दी के मुकुट-मणि !
चमक तुम्हारी तम तोड़ती गहन थी॥
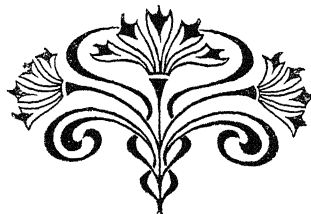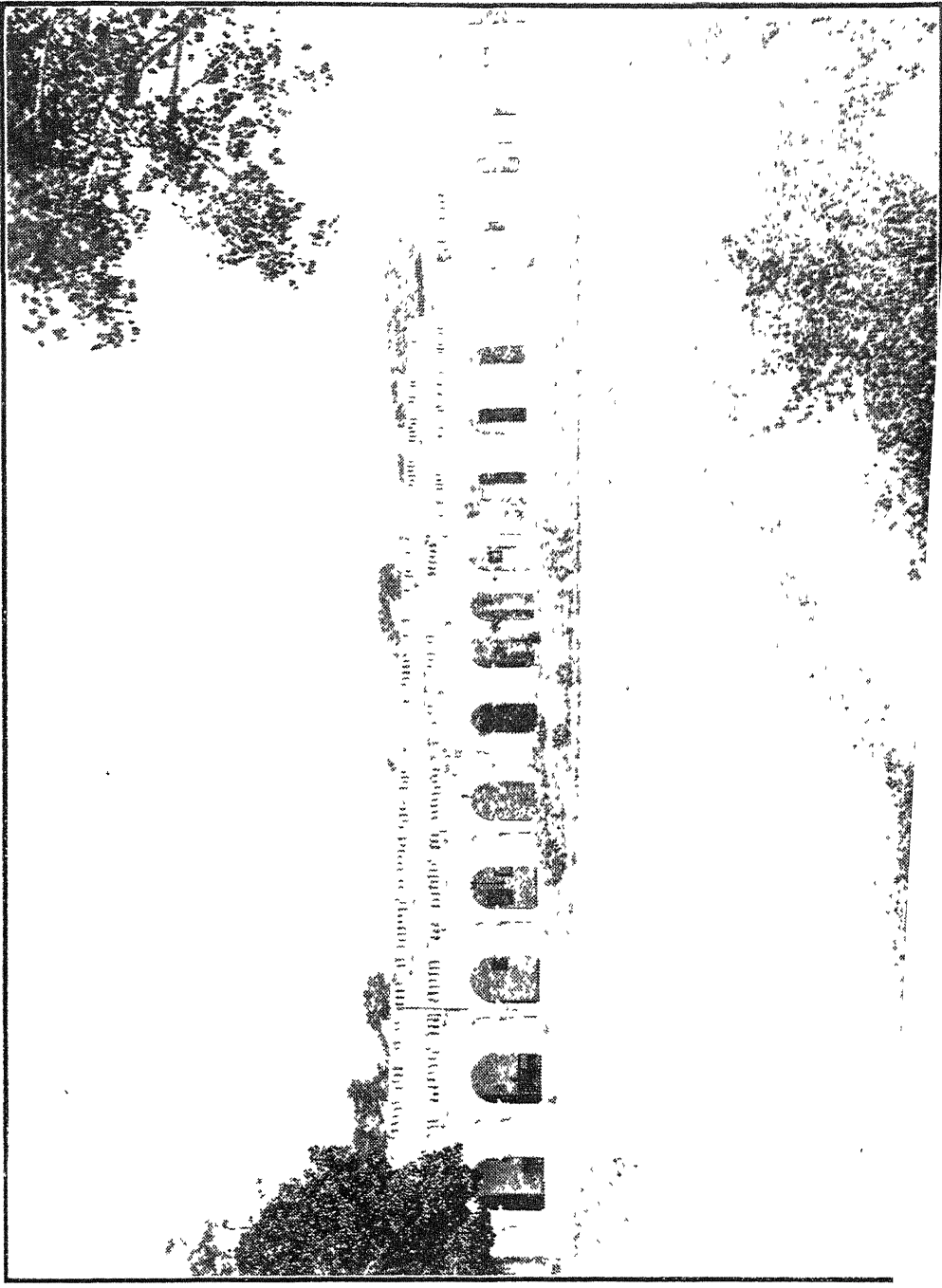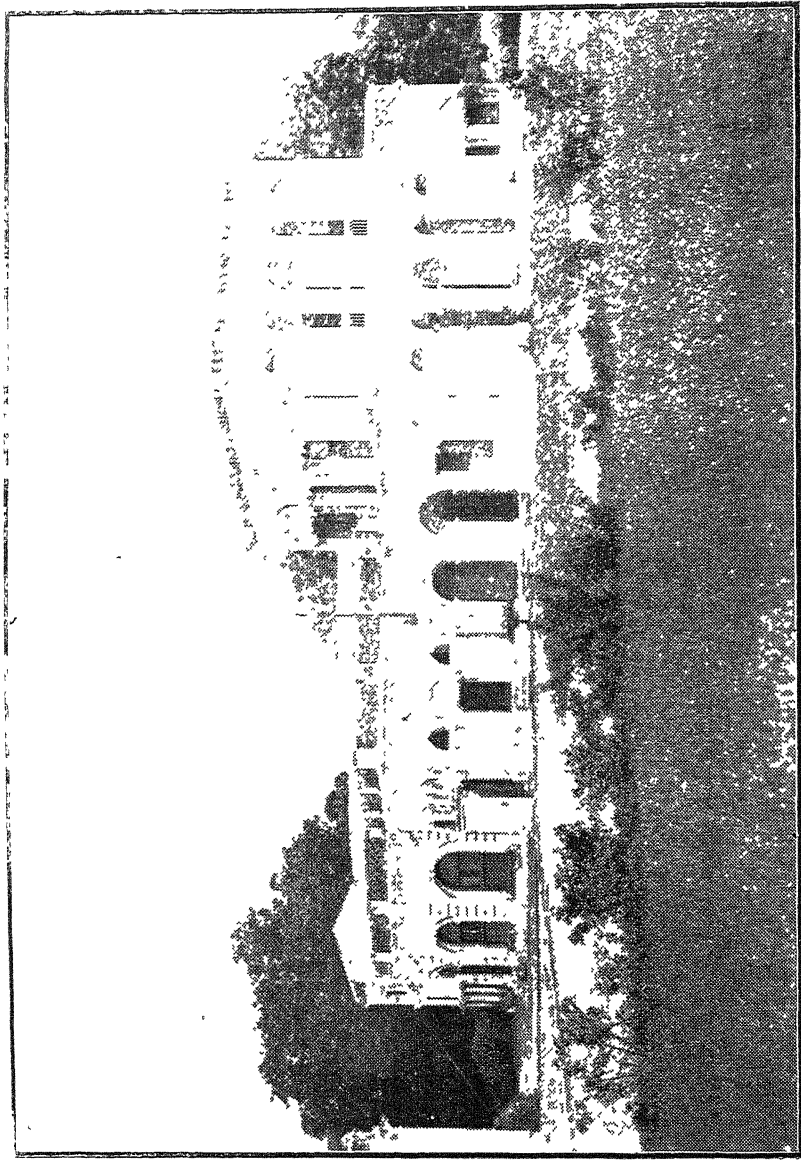
इंडियन प्रेस, ३ पायोनियर रोड, की कोठी का एक दृश्य

श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष

[श्रीयुत ईश्वरीप्रसाद, एम० ए०, डि० लिट०]

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ॥
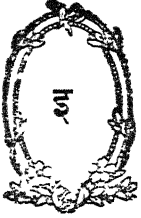
इस परिवर्तनशील संसार में जीवन-मरण का तांता बराबर जारी है। परन्तु कभी कभी जीवन-मरण दोनों ही कठिन हो जाते हैं। जीवन-यात्रा में अनेक आपदाओं का सामना करना पड़ता है और मृत्यु के समय भी अनेक महान् दुःख आ उपस्थित होते हैं। बहुत से मनुष्य धनी होने पर भी अनेक यातनायें सहते हैं और आशा-तृष्णा के शिकार बन अन्त में सन्तप्त-हृदय होकर अपनी जीवन-यात्रा समाप्त करते हैं। ऐसे भाग्य-शाली पुरुष बिरले ही होते हैं जिनकी जीवन-यात्रा सुख-पूर्वक समाप्त हो और अन्तिम समय आने पर वे शान्ति, सुख और सन्तोष के साथ इस असार संसार से बिदा हों। बाबू चिन्तामणि घोष को अवश्य यह सौभाग्य प्राप्त हुआ और वे सुखी और समृद्धिशाली होकर इस संसार से बिदा हुए।

इँग्लेंड के सुप्रसिद्ध विद्वान् कार्लायल ने लिखा है कि एक महान् पुरुष प्रकाश की ज्योति है। उसकी स्फूर्ति समाज को जागृत करती है और उसके मृतप्राय अंशों मे भी नवीन जीवन का संचार करती है। ऐसे महापुरुष समाज की सम्पत्ति होते हैं। उनसे समाज की शोभा होती है। उनका आदर्शजीवन उत्साही मनुष्यों के लिए शिक्षा-प्रद और पथ-प्रदर्शक होता है। उनकी नीति का अनुसरण करने से मनुष्य केवल अपनी ही उन्नति नहीं करता, बरन समाज की सामूहिक प्रतिष्ठा को बढ़ाता है। इंडियन प्रेस के अध्यक्ष बाबू चिन्तामणि की गणना ऐसे ही महापुरुषों में होनी चाहिए। स्वयं निर्धन होकर बाबू साहब ने लाखों रुपया उपार्जन किया और साहित्य के ज्ञाता न होने पर भी अपूर्व साहित्य-सेवा की। प्रारम्भिक जीवन बाबू साहब का अन्य सामान्य स्थिति के मनुष्यों की तरह चिन्ता और संकट में व्यतीत हुआ। अच्छी शिक्षा भी न मिल सकी। धनहीन होने के कारण छोटी-सी नौकरी स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु बाबू साहब का दिमाग़ मौलिकता से भरा हुआ था। उनके हृदय में उत्साह की तरंगें हिलोरें लेती थीं। खेद इतना ही था कि आर्थिक संकीर्णता सब आशाओं पर पानी फेर देती थी। परन्तु उन्होंने कभी अपने हौसले को पस्त न होने दिया।

बहुधा ऐसा होता है कि गृहस्थी के भार से पीड़ित नवयुवक अपनी हीनावस्था को देखकर हृदय

को मसोस कर रह जाता है। वह कभी समाज को धिक्कारता है और उसके अन्याय-पूर्ण सङ्गठन की तीव्र आलोचना करता है। कभी ईश्वर को दोष देता है, कभी भाग्य का आश्रय लेकर अपने दुखित हृदय को किसी प्रकार सान्त्वना देता है। बहुत से नवयुवक जो जीवन-समुद्र में यात्रा करने निकलते है, अपनी किश्ती डुबाकर लहरों के चक्कर में पड़कर रसातल को चले जाते हैं; बहुत से जिनकी प्रारम्भिक आशायें अधिक नहीं होतीं, यात्रा निर्विघ्न समाप्त कर लेते है और सफलता के साथ तूफ़ान और संकट का सामना करते हुए कीर्ति का सम्पादन करते है। बाबू चिन्तामणि घोष ऐसे ही अद्भुत बालक थे। कहा जाता है कि जब वे पायनियर प्रेस के आफ़िस में क्लर्क के पद पर काम करते थे तभी उन्हें प्रेस का काम जानने की इच्छा हुई। प्रेस के कर्मचारियों को पाईका टाइप आदि शब्दों का प्रयोग करते देख उन्हें इनका अर्थ जानने की इच्छा होती थी। जब उनके सहकारी चार बजने पर काम समाप्त कर अपनी अपनी छतरी ले घर को भाग जाते थे, बाबू साहब प्रेस में ठहर कर यह देखते थे कि प्रेस का संचालन किस प्रकार होता है। उनकी उस समय की यह उत्सुकता बाद को उनके बड़े काम आई। जब पहले पहल उन्हें प्रेस स्थापित करने की प्रेरणा हुई तब उन्हें अपने इस अनुभव से बड़ी मदद मिली। थोड़ी-सी पूँजी से कार्य आरम्भ किया। बड़ी बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित हुईं, जिनका बाबू साहब ने अपूर्व और अदम्य धैर्य के साथ सहन किया। कभी कभी वे स्वयंही प्रूफ़ देखते थे, स्वयं ही स्याही देते थे, प्रेसमेन का भी काम करते थे और छोटे से छोटे काम तक का ध्यान रखते थे। यही उनकी सफलता की कुंजी थी। जिस व्यवसाय में महान् उन्नति प्राप्त करना उनका ध्येय था उसके सारे विभागों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने के लिए दत्तचित्त होकर उन्होंने प्रयत्न किया। प्रेस के काम से अलग होने के बाद भी वे सदैव अपने परामर्श-द्वारा उसकी उन्नति की चेष्टा करते रहे और अपने पुत्रों को परिश्रमशील एवं उद्योगी बनाने का आदेश करते रहे।

मेरा परिचय बाबू साहब से पहले-पहल सन् १९२३ में हुआ। उस समय उनको नेत्रों से नहीं दिखाई देता था, परन्तु शरीर स्वस्थ था और उनकी मानसिक शक्ति भी बिलकुल ठीक थी। कुछ मिनट तक बातचीत करने से ही यह अनुभव होगया कि बाबू साहब एक प्रभावशाली व्यक्ति हैं। उनकी बुद्धिमत्ता, व्यावहारिक कुशलता, स्वाभाविक गम्भीरता और सरलता उनकी बात-चीत से अच्छीतरह प्रकट होती थी। उन्होंने प्राकृतिक भूगोल के लेखक प्रोफ़ेसर हिल का ज़िक्र किया और कहा कि किताब लेते समय जब मैंने पूछा कि आप रौयल्टी लेना स्वीकार करेंगे अथवा एकमुश्त दक्षिणा। तब प्रोफ़ेसर महोदय ने कहा कि, Babu, the labourer has done his work and he wants his wages अर्थात् बाबू, मज़दूर ने अपना काम कर दिया अब उसकी मज़दूरी मिलनी चाहिए। उन्होंने दो हज़ार रुपया माँगा। बाबू साहब ने तुरन्त देने का वचन दिया। बाबू साहब के भाग्य ने ऐसा चमत्कार दिखलाया कि वह भूगोल की पुस्तक बड़े ज़ोर से चली और वे कहते थे कि मैंने उससे लगभग दो लाख रुपया कमाया। किसी प्रकार यह बात हिल साहब के कानों तक भी पहुँची। एक दिन भेंट होने पर उन्होंने बाबू साहब से कहा कि हमने सुना है कि आपने हमारी किताब से बहुत रुपया कमाया है। इस पर बाबू साहब ने उत्तर दिया कि मेरा क्या दोष है, मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि रौयल्टी लीजिए, परन्तु आपने न माना। हिल साहब उदार-हृदय अँगरेज़ थे। आज-कल का कोई लेखक होता तो

शायद मूर्छित होकर धराशायी हो जाता। उन्होने फ़ौरन यही कहा—Babu, I have no complaint, that is alright इसके बाद बाबू साहब ने अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए २,००० रुपया और हिल साहब को भेंट किया, जिसे उन्होंने सहर्ष स्वीकार किया।

बाबू साहब का भाग्य ज़ोरदार था। वे जन्मही से प्रतापी पुरुष थे। परन्तु इस ऐश्वर्य-पद पर पहुँचने के भाग्य के अतिरिक्त और भी कारण थे। वे थे उनकी प्रौढ़ मौलिक बुद्धि, असीम उत्साह, अविरत परिश्रम, निर्भीकता और अविचल ईमानदारी। अपने लेखकों के साथ उनका व्यवहार बड़े प्रेम का होता था। श्रद्धेय पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी ने अपने एक लेख में हाल ही में बाबू साहब के प्रेम और औदार्य्य का वर्णन किया है। द्विवेदी जी से अधिक उनके घरवालों के अतिरिक्त और कोई उन्हें नहीं जानता था। जिस परिश्रम, स्वार्थ-त्याग, स्वास्थ्य-त्याग-द्वारा द्विवेदीजी ने इंडियन प्रेस के साथ मिलकर साहित्य-सेवा की उसके लिए मेरी सम्मति में इंडियन प्रेस सदैव उनका आभारी रहेगा।

जिस समय हिन्दी-संसार में कोई उच्च कोटि का साहित्यिक मुख-पत्र नहीं था बाबू चिन्तामणि के उद्योग से सरस्वती का जन्म हुआ। और द्विवेदीजी ने भी उस पर अपना तन, मन, धन न्यौछावर किया। सरस्वती की प्राचीन प्रतियों को देखने से पता लगता है कि द्विवेदीजी की ओजस्विनी भाषा ने हिन्दी-साहित्य को कैसा चमत्कृत किया। जिस विषय पर उन्होंने लेखनी उठाई उसे गाम्भीर्य की पराकाष्ठा को पहुँचा दिया। हिन्दी-साहित्य में उन्होंने एक नवीन, सरस लेख-शैली का प्रचार किया। ग्राहक-संख्या अधिक न होने पर भी बाबू साहब ने कभी किसी प्रकार सरस्वती को हिन्दी की सर्वोच्च पत्रिका बनाने में ज़रा भी आर्थिक सङ्कोच नहीं किया। दोनों सज्जनों के प्रयत्न से सरस्वती का यथेष्ट संचालन हुआ। सरस्वती ने द्विवेदीजी को बनाया और द्विवेदीजी ने इंडियन प्रेस को बना दिया। द्विवेदीजी को अपनी प्रभावशालिनी लेखनी का चमत्कार दिखलाने का अवसर मिला और इंडियन प्रेस को ऐसे जोशीले विद्वान् के सहयोग से धन तथा कीर्ति दोनों संचित करने और साहित्य-सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। द्विवेदीजी के स्मृति-लेख के पढ़ने से पता लगता है कि बाबू साहब का हृदय कैसा सौजन्य-पूर्ण था और अपने सहकारियों के प्रति उनकी श्रद्धा कैसी थी।

इन दोनों महापुरुषों की गणना सदैव हिन्दी-साहित्य-क्षेत्र के वीरों में होगी। आज चाहे कितनी ही रङ्ग-बिरङ्गी मासिक पत्रिकायें निकल जायँ, कितनीही बाहरी चटक-मटक दिखलायें, कितनी ही विज्ञापनों की भरमार करें, कितना ही जनता को आकृष्ट करने के लिए उचित तथा अनुचित लेखों का समावेश करें और नित्य लेखकों को सिंहासनारूढ़ अथवा सिंहासन-च्युत करें, प्रथम स्थान सदा सरस्वती ही को मिलेगा। यदि किसी समय हिन्दी में आधुनिक हिन्दी-साहित्य का गवेषणा-पूर्ण इतिहास लिखा गया तो उसके लिए पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी और बाबू चिन्तामणि घोष के हाथों से पली हुई सरस्वती अपूर्व सामग्री प्रदान करेगी।

बाबू चिन्तामणि घोष ने उत्तर-भारत में हिन्दी-साहित्य का भाण्डार बढ़ाने का प्रशंसनीय उद्योग किया। इस बात को प्रत्येक हिन्दी भाषा-भाषी जानता है। पाठ्य पुस्तकों के साथ उन्होंने अनेक मौलिक ग्रन्थ भी प्रकाशित किये और अनेक निराश लेखकों को प्रोत्साहन दिया। योग्य और अनुभवी लेखकों का उन्होंने सदैव सम्मान किया और उनके परिश्रम का एवज़ देने में ज़रा भी आना-कानी कभी न की।

कभी किसी लेखक को कोई शिकायत नहीं हुई। हिसाब-किताब बिलकुल साफ़ रहा। बाबू साहब ने कभी किसी पर नालिश नहीं की। वे हमेशा अपना पैसा छोड़ने को तैयार रहे, परन्तु दूसरे का हड़प जाने का कभी स्वप्न में भी ख़याल न किया। पाठ्य पुस्तकों में तो उन्होंने एक क्रान्ति ही कर डाली। जो पुस्तकें पहले पढ़ाई जाती थीं उनकी न तो छपाई ही अच्छी होती थी, न मैटर ही बढ़िया होता था। इन पंक्तियों का लेखक जब वर्नाक्यूलर स्कूल में पढ़ता था, बिलकुल रद्दी पुस्तकें पढ़ाई जाती थीं। इंटर का इतिहास, राजा शिवप्रसाद का गुटका और रेखागणित की छपाई अभी तक भूली नहीं। हिन्दी-स्कूलों को और सरकार के शिक्षा-विभाग को बाबू चिन्तामणि घोष का धन्यवाद करना चाहिए कि उन्होंने ऐसी सुन्दर पुस्तकें निकाल कर पढ़नेवालों की सुबिधा का समुचित प्रबन्ध किया। उन्होंने कभी किसी की ख़ुशामद नहीं की। इसी लिए उन्हें न रायसाहब की उपाधि मिली और न आनरेरी मजिस्ट्रेटी। वास्तव में इन चीज़ों से उन्हें घृणा थी। वे राष्ट्रीय थे। उन्होंने शिक्षा अधिक नहीं पाई थी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, कालीचरण बनर्जी, कृस्टोदास पाल आदि वीरपुरुषों के भावों का उन पर बहुत प्रभाव पड़ा था।

धीरे धीरे प्रेस बहुत बढ़ गया। मशीनों के प्रयोग के साथ कर्मचारियों की संख्या भी बढ़ गई। बाबू साहब ने उनके प्रति सदैव दया और सहिष्णुता का बर्त्ताव किया। उन्हें काफ़ी वेतन दिया, उनके आराम का ख़याल रक्खा, और नौकरी के नियम ऐसे बना दिये जिससे उन्हें किसी प्रकार की असुविधा न हो। कई वर्ष हुए जब प्रेस के कर्मचारियों ने हड़ताल की तब बाबू साहब ने उनकी शिकायतों को दूर करने की भरसक चेष्टा की। वे दब्बू नहीं थे। सचाई उनका मूल-मन्त्र था। व्यवहार उनका स्पष्ट था। इसलिए कभी ऐसा मौक़ा नहीं पड़ा कि वे किसी की बेजा धौंस में आते। अपने कर्मचारियों को उन्होंने समझाया और उनकी उचित शिकायतों को दूर किया। शीघ्र मेल होगया और वैमनस्य का एक-दम अन्त हो गया। प्रेस में हिन्दू-मुसलमान दोनो की संख्या काफ़ी है—किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं है। सबके साथ एक-सा बर्त्ताव किया जाता है।

आज-कल पुस्तकों के प्रकाशकों की पारस्परिक ईर्ष्या प्रचण्ड रूप धारण किये हुए है। स्पर्धा और द्वेष का बाज़ार गर्म है। एक दूसरे की चुग़ली खाते हैं; अफ़सरों से कानाफूसी करते हैं। रद्दी रद्दी किताबे चलाने के लिए अनेक हीलों से काम लेते हैं। दिन-रात लेखकों और शिक्षा-विभाग दोनो को झाँसा देने की फ़िक्र में रहते हैं। किताब दो हज़ार छापते है, बतलाते हैं एक हज़ार और देने के समय ऐसी काट-कूट करते हैं कि लेखक बेचारा अपना सा मुँह लेकर रह जाता है। अधिकांश प्रकाशकों पर तो तुलसीदासजी की निम्नलिखित चौपाइयां अक्षरशः चरितार्थ होती हैं—

> झूठहि लेना झूठहि देना।
> झूठहि भोजन झूठ चबैना॥
> जब काहू की सुनहिं बड़ाई।
> श्वास लेहिं जनु जूड़ी आई॥
> जब काहू की देखहिं बिपती।
> सुखी होइँ मानहुँ जग नृपती॥
> जहँ कहुँ निन्दा सुनहिं पराई।
> हर्षहिं मनहुँ परी निधि पाई॥

बाबू चिन्तामणि घोष का लक्ष्य सदा उम्दा चीज़ निकालना और लेखक को सन्तुष्ट रखना रहा। उन्होंने
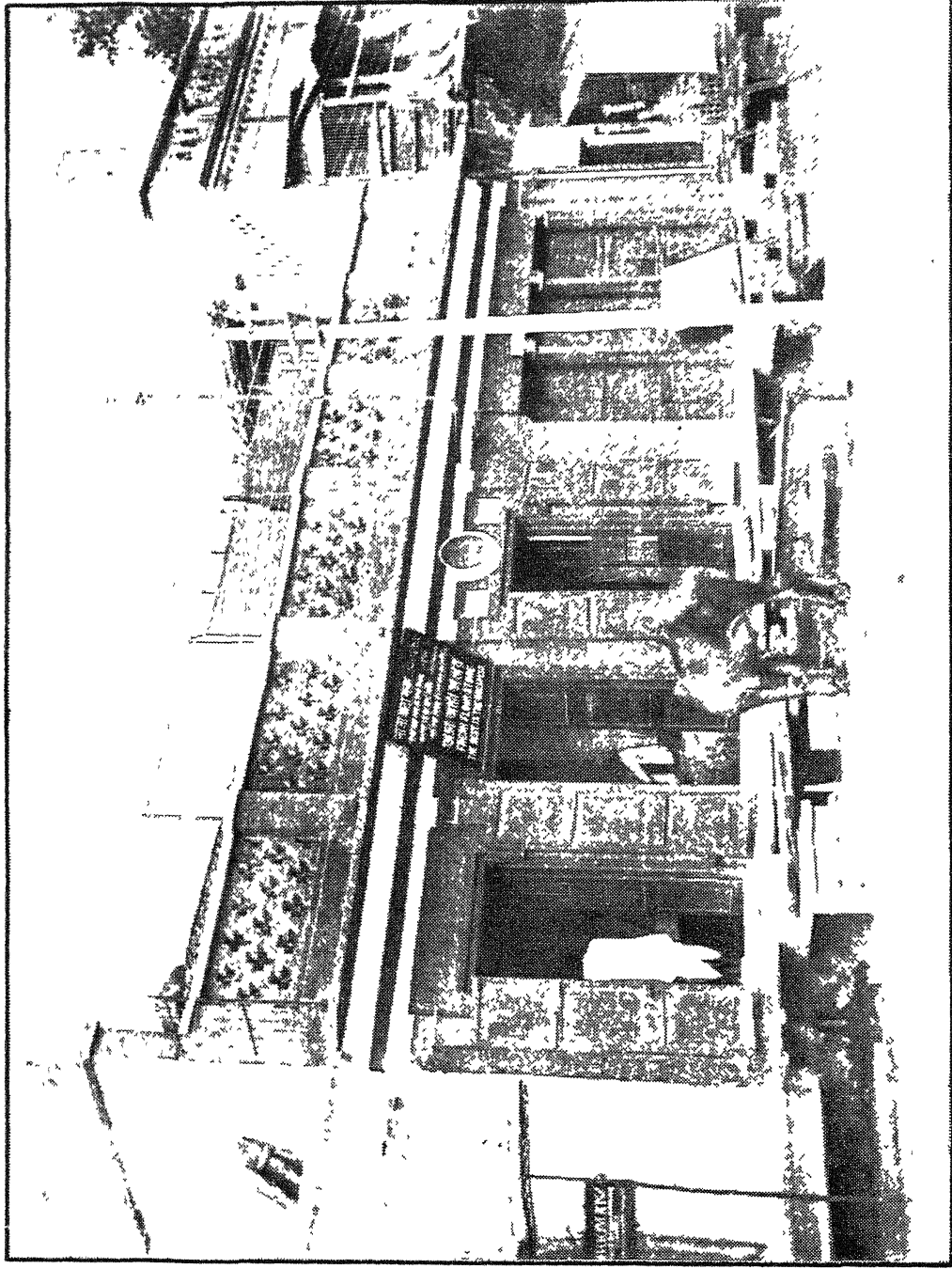
इंडियन प्रेस, कटरा की पुरानी इमारत
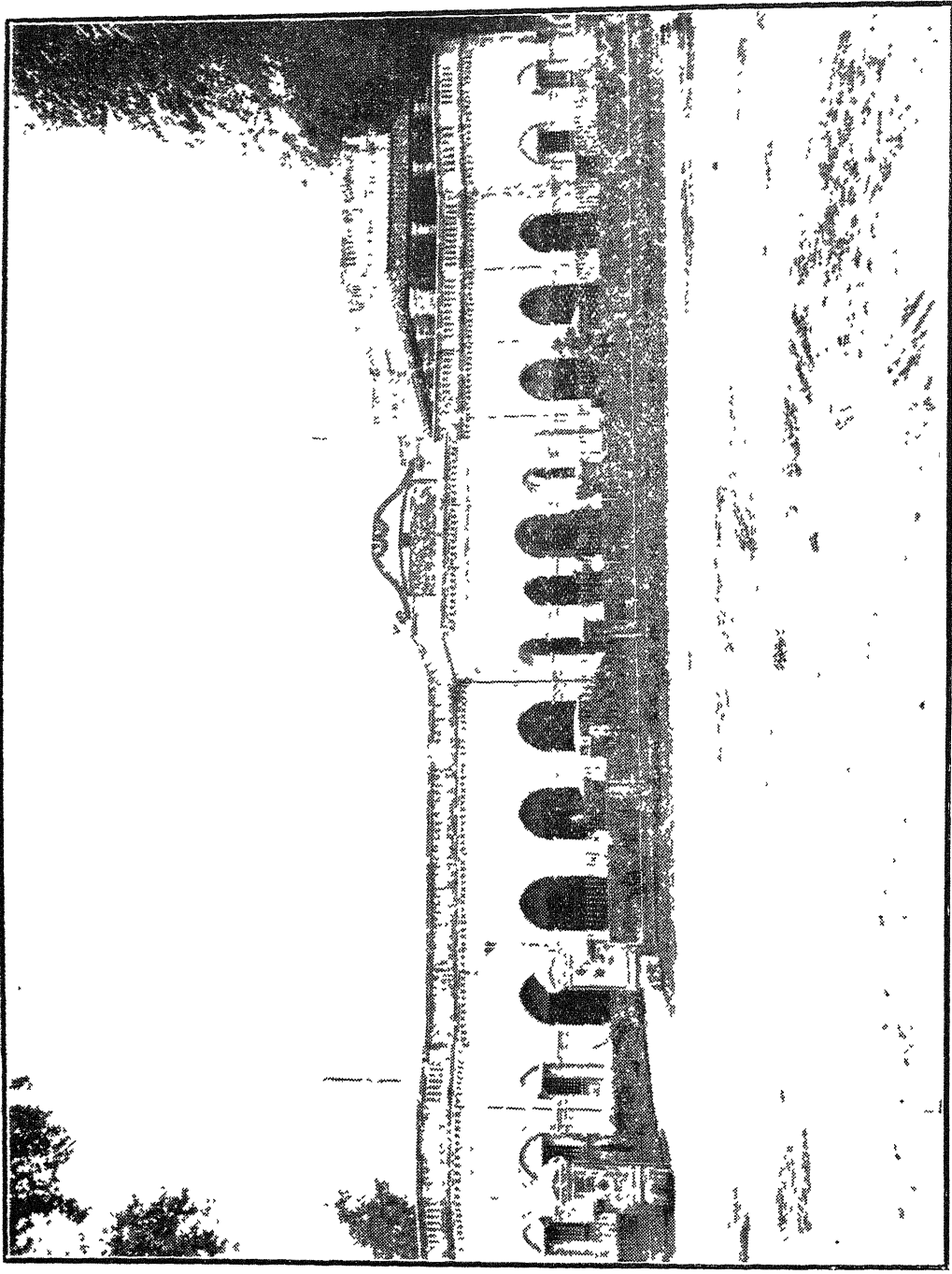
इंडियन प्रेस की वर्तमान इमारत

जनता की सुविधा का भी बड़ा ध्यान रक्खा। कभी कोई कुन्जी या नोट छापने की इच्छा तक न की। उन्होने अपने लेखकों की योग्यता और उनकी कृतियों की उपयोगिता को अपना प्रधान आश्रय बनाया। यही कारण है कि इंडियन प्रेस का अभी तक मान है और यह समझा जाता है कि जो चीज़ इंडियन प्रेस से निकलेगी वह निकम्मी और फ़िज़ूल न होगी। मुझे आशा है कि बाबू साहब के उत्तराधिकारी सदैव योग्य लेखकों को अपनायेंगे और उनकी कृतियों से लाभ उठा कर अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ावेंगे। पाठ्य पुस्तकों का ऐसी उत्तमता के साथ प्रकाशित करनेवाला दूसरा फ़र्म उत्तरी भारत में कोई नहीं है और यह आशा करना बेजा न होगा कि विद्वज्जन इस कार्य में सहयोग करेंगे।

बाबू चिन्तामणि घोष इस संसार से सदा के लिए चले गये। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे और उनकी फुलवाड़ी को सदैव हरी-भरी रक्खे। वे वास्तव मे हमारे प्रान्त के एक बेंजमिन फ्रेंकलिन थे। इतनाही नहीं, वे किसी किसी अंश मे तो इस अमरीकन व्यवसायी से भी बढ़े-चढ़े थे। उनकी उदारता, उनका सौजन्य, अपने दीन सम्बन्धियों तथा अन्य दीनजनों के प्रति दया, अपने व्यवहारियों के साथ स्पष्टता उन्हें बेंजमिन फ्रेंकलिन से बड़ा बनाती हैं। बाबू साहब ने अपने हाथ से हज़ारों रुपया कमाया और हज़ारों ही खर्च किया। भगवान् की दया से कृपणता उन्हे छू तक नहीं गई थी। शिक्षा के लिए, दीन असहायों की चिकित्सा तथा भरण-पोषण के लिए उन्होने हज़ारों रुपया दान किया, जिन सबका यहां उल्लेख करना उनकी इच्छा के विरुद्ध होगा। शुभ कार्यों के साथ उन्होंने सदा अपनी सहानुभूति प्रकट की और तन, मन, धन से सहायता की।

बाबू साहब का आदर्श उच्च कोटि का था। उसी की पूर्ति के लिए उन्होंने आजीवन उद्योग किया। मुझे आशा है कि इंडियन प्रेस इस आदर्श को कभी न भूलेगा। बाबू साहब की सत्यपरायणता, निर्लोभता, ईमानदारी, परिश्रम-शीलता, आर्थिक उदारता, उच्च कोटि की छपाई, उनकी कीर्ति, सम्पत्ति और शक्ति के स्रोत थे। उनके कार्य-क्रम का अनुसरण करने से यह स्रोत सदा प्रवाहित रहेगा और इसी से उनकी आत्मा को सुख लब्ध होगा।

इंडियन प्रेस की स्थिति इस समय संतोषजनक है। यह उसके अध्यक्षों, लेखकों और कर्मचारियों को कर्त्तव्यपरायणता और परिश्रम का फल है। इन्हीं सब छोटों-बड़ों के प्रयत्न से वह उन्नति की इस सीढ़ी पर पहुँचा है। प्रेस के वर्तमान संचालक यदि इस बात को सम्मुख रखते हुए काम करेंगे तो बाबू चिन्तामणिजी के यश की उत्तरोत्तर वृद्धि होगी और वह छोटा पौधा जिसे उन्होने अपनी धनहीन युवावस्था में अपने निर्बल हाथों से सींचकर वृक्ष में परिणत किया था और जिसकी उन्नति के लिए वे अपने उत्साह-पूर्ण हृदय से अहर्निशि ईश्वर से प्रार्थना करते थे, अधिकाधिक फले फूलेगा, और साहित्य-सेवी जनता के स्नेह का पात्र बनकर, अजर-अमर हो जायगा। यही इन पंक्तियों के लेखक की आशा है। पर्याप्त साधन उपस्थित होने पर लक्ष्य की पूर्त्ति में बाधा नहीं हो सकती।

इंडियन प्रेस और चिन्तामणि

[श्रीयुत रामनाथ 'जोतिसी', अयोध्या-राज पुस्तकाध्यक्ष]

(१)

बंगाली ह्वै हेरि हेरि हिन्दी-हित कीन्हें ।
विविध विषय के ग्रन्थपंथ-विस्तृति करि दीन्हें ॥
पुरस्कार दै किते कवीशनि सुकवि बनाये ।
दान मान सन्मान द्विवेदिहि नित अपनाये ॥
जग-विदित इंडियन प्रेस करि कीन्हे जग उपकार अति ।
श्रीसरस्वती शुभ जन्म के दाता ह्वै पाले प्रगति ॥

(२)

स्वयं आपने बाहु विपुल बल उन्नति कीन्हें ।
विविध भाँति औदार्य जगत वितरण करि दीन्हें ॥
गुणग्राहकता प्रकटि सबनि तैं आदर पाये ।
सदा स्वतन्त्र विचार 'जोतिसी' सुयश बिछाये ॥
इंडियन प्रेस लिपि दुन्दुभी देश विदेशनि लौं हये ।
जग चिन्तामणि इव दीप्ति करि चिन्तामणि सुरपुर गये ॥

(३)

गयो प्रेस हिय हहरि कार्यकर्ता-कर करके ।
लेख लेखकनि कम्प लेखनी आनन दरके ॥
सरस्वती संताप कविन के चिन्ता छाई ।
सम्पादक 'जोतिसी' बुधनि उर आकुलताई ॥
हा ! गुणीजनन की शून्य-सी भई भूमि, भूधर नये !
कर्तव्य वीर-पथ धीर-धुरि चिन्तामणि सुरपुर गये !!!

स्वर्गीय
बाबू चिन्तामणि घोष

[श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

"कीर्त्तिर्यस्य स जीवति"
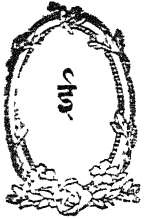
श्वर की सृष्टि मे मनुष्य सर्वश्रेष्ठ शरीर-धारी माना जाता है। प्रत्येक पार्थिव जड़-जङ्गम जीव ही नहीं, देवता, असुर, नाग, गन्धर्व आदि भी उसकी शक्ति को मानते है। मनुष्य-सृष्टि भी अन्य सृष्टियों की तरह विचित्र है। प्रत्येक मनुष्य की आकृति-प्रकृति विभिन्न प्रकार की दृष्टिगोचर होती है। कोई भी मनुष्य ऐसा नहीं, जिसमें सभी गुण हों, दोप एक भी न हो, अथवा जो केवल-मात्र दोषों का ही आकर हो, एक भी गुण से न अलंकृत हो। अतएव जिसमें दोषों या दोष के रहने पर भी अनेक सद्गुणों का विकास देख पड़ता है उसका लोग विशेष आदर करते है, उसे अपना आदर्श समझते हैं। ऐसे ही लोग कीर्त्तिशाली होते है, और मृत्यु के उपरान्त भी कीर्त्ति-रूपी शरीर से अमर बने रहते हैं—अर्थात् उन्हे लोग भूलते नहीं, समय-समय पर उनका नाम लेकर अपनी श्रद्धा-भक्ति उनके प्रति प्रकट करते हैं। कीर्त्तिर्यस्य स जीवति, इस श्लोकांश का यही भाव है।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष भी ऐसे ही नर-रत्नों मे—आदरणीय आदर्श पुरुषों मे—थे। आपका इंडियन प्रेस भारत भर मे अपने काम की श्रेष्ठता के लिए प्रसिद्ध है। आपमें उच्च अभिलाषा, अक्षय उत्साह, असाधारण अध्यवसाय, कठोर कर्त्तव्य-निष्ठा और कुशाग्रबुद्धि के साथ प्रखर प्रतिभा का एकत्र समावेश था। आपकी कार्यावली ही आपकी इस गुणावली का प्रत्यक्ष प्रमाण है। आदमी को आप पहली ही भेंट में, कुछ ही समय में पहचान लेते थे। जो मनुष्य जिस योग्य है उससे वह काम लेना आप ख़ूब जानते थे। व्यावसायिक सूझ-बूझ आपमें अद्वितीय थी। आपने अपने जीवन में यथेष्ट यश और धन कमाया, प्रतिष्ठा भी पाई और दुःख भी उठाये। ऐसे धीर, वीर, गम्भीर महापुरुष का परिचय देने के लिए वास्तव में एक बड़ी-सी पुस्तक लिखने की आवश्यकता है। मैं इस लेख में आपका संक्षिप्त परिचय और आपके जीवन की कुछ मुख्य-मुख्य घटनाओं का उल्लेख-मात्र करके अपनी लेखनी को कृतार्थ करने की चेष्टा करूँगा।

आपके पिता का नाम श्रीयुत माधवचन्द्र घोष था। उनका निवास-स्थान कलकत्ते के पास ही बाली नाम के ग्राम में था। कमसरियट की नौकरी पाकर आपको युक्तप्रान्त में विभिन्न स्थानों में रहना पड़ा। सन् १८६३ ईसवी में काशी में रहते समय चिन्तामणि बाबू भी पिता के पास घर से आकर रहने लगे। कोई दो

वर्ष बाद आपके पिता दौड़े में बीमार पड़े और प्रयाग में उनका स्वर्गवास हो गया। पिता के स्वर्गवास की ख़बर पाकर चिन्तामणि बाबू काशी से प्रयाग चले आये। माधव बाबू ने काफ़ी धनोपार्जन किया था, किन्तु पुत्र के लिए वे कुछ भी छोड़ न जा सके। ताश के खेल में उन्होंने अपना सर्वस्व गँवा दिया। चिन्तामणि बाबू की मातामही, माता आदि ने अपने देश (बाली ग्राम) को लौटकर जाना नहीं पसन्द किया। उन्होंने ग़रीबी के सब कष्ट उठाकर भी परदेश में ही रहने और वहीं बालक चिन्तामणि बाबू के पालने-पोसने का पक्का इरादा कर लिया।

अस्तु, माता आदि के सहित चिन्तामणि बाबू प्रयाग में ही रहने लगे। आपकी मनस्विनी माता का मानसिक बल और धर्म-निष्ठा असीम थी। चिन्तामणि बाबू में भी ये दोनों विशेषतायें बचपन से ही थीं और कहना न होगा, ये दोनों गुण आपको माता से ही प्राप्त हुए। चिन्तामणि बाबू ने बाध्य होकर तेरह साढ़े तेरह वर्ष की अवस्था में ही पढ़ना-लिखना छोड़ दिया और नौकरी करने लगे। सन् १८६७ में प्रयाग के प्रसिद्ध दैनिक पत्र पायोनियर के आफ़िस में दस रुपये महीने की नौकरी आपको मिल गई। आप असिस्टेंट क्लर्क के स्थान पर भरती हुए। यहाँ आपको हिसाब-किताब लिखना पड़ता था। मगर जब आपको अवकाश मिलता तब उतने समय को आप व्यर्थ नष्ट नहीं करते थे। उठकर घूम-फिर कर छापेखाने के काम को देखा-भाला करते थे। प्रेस में क्या-क्या काम होता है, क्या काम किस तरह किया जाता है, कौन मशीन किस तरह चलाई जाती है, इन सब बातों को वे ख़ूब ध्यान देकर देखते और इस सम्बन्ध में पूछताछ करके प्रत्येक विषय को हृदयङ्गत करने की चेष्टा करते थे। आपके साथ काम करनेवाले आफ़िस के अन्य कर्मचारी यद्यपि आपको हँसते थे, मखौल करते थे, पर आपका यह काम बराबर जारी रहा। थोड़े ही दिनों में यहाँ आपको ६०) मासिक वेतन मिलने लगा परन्तु कारणवश आपने उक्त नौकरी छोड़ दी। यहाँ आपको कितना अधिक काम करना पड़ता था, इसका प्रमाण यही है कि आपकी जगह पर प्रेस को धीरे धीरे पाँच आदमी रखने पड़े थे।

पायोनियर के आफ़िस में सात साल काम करने के बाद आपने 'रेलवे मेल सर्विस' के आफ़िस में प्रवेश किया। चिन्तामणि बाबू के अक्षर बहुत सुन्दर होते थे, इसके सिवा चाहे जैसा बदख़त लिखा हो, वे पढ़ लेते थे, और बहुत तेज़, साफ़ तथा शुद्ध लिखते थे। इन्हीं गुणों के कारण उन्हें नई जगह में नौकरी प्राप्त करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई। यहाँ जो बड़े साहब थे, चिन्तामणि बाबू पर कृपादृष्टि रखते थे। यह नई नौकरी छोड़ने की चिन्तामणि बाबू की इच्छा न थी, तथापि अपने आत्मीय बाबू उमाचरण घोष के विशेष आग्रह से चिन्तामणि बाबू को यह नौकरी भी छोड़कर मिटिआरोलोजिकल आफ़िस (Meteorological Office) में नौकरी के लिए दर्ख़्वास्त देनी पड़ी। इस समय मिस्टर इलियट इस ऑफ़िस के बड़े अफ़सर थे। यही इलियट साहब बाद को सर का ख़िताब पाकर कलकत्ते के प्रेसीडेन्सी कालेज के प्रिन्सपल और अन्त को डायरेक्टर (Director of Meteorological Reporters of India) बनाये गये थे। अस्तु, इलियट साहब ने निष्कपट-विनम्र-गम्भीर-मूर्त्ति बाबू चिन्तामणि की परीक्षा ली और इनसे बहुत प्रसन्न हुए। यहाँ चिन्तामणि बाबू हेडक्लर्क बना दिये गये। उस समय आपकी अवस्था बीस वर्ष से भी कम थी। बहुत कर्मचारियों ने इलियट साहब को अयाचित रूप से परामर्श दिया कि १९ साल के लड़के को हेडक्लर्क बना देना ठीक

डिप्टी मैनेजर का दफ़्र
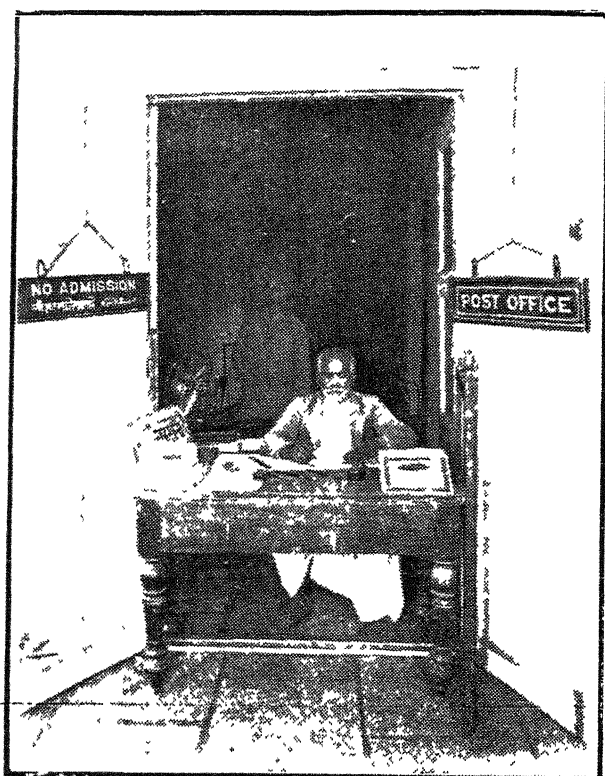
पोस्ट आफ़िस, इंडियन प्रेस, लि०
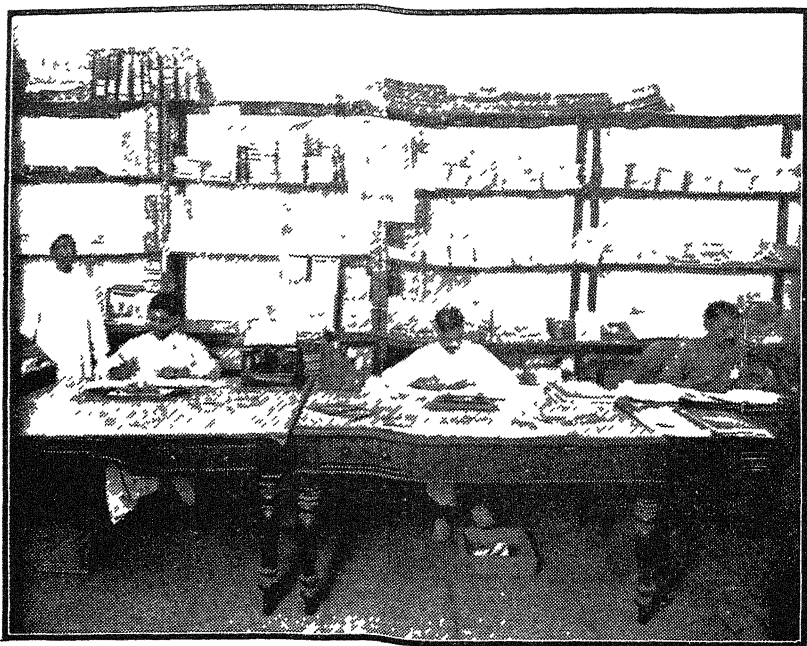
सरस्वती और बाल-सखा-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०
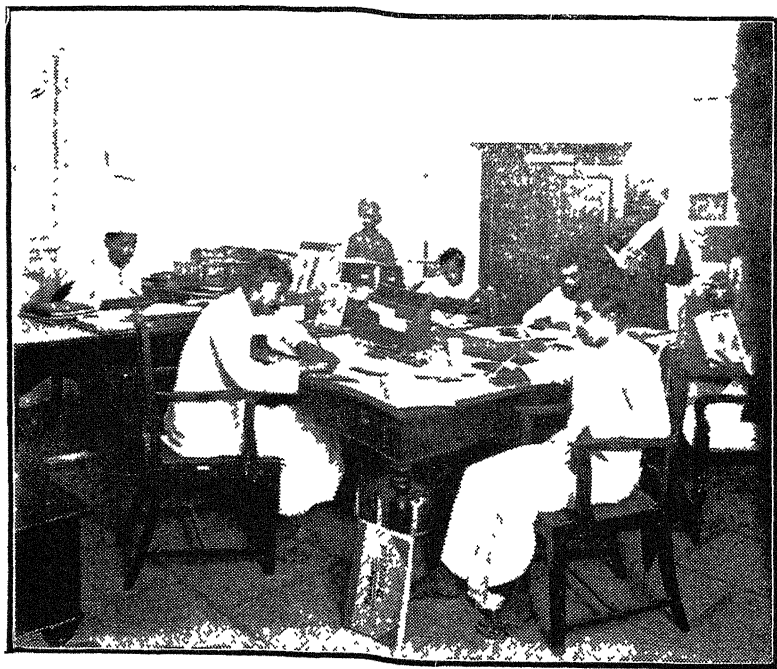
महाभारत-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०

नहीं हुआ। किन्तु चिन्तामणि बाबू की कार्य-कुशलता से सबकी यह धारणा शीघ्र ही दूर हो गई। अब सभी लोग आपकी प्रशंसा करने और आपको श्रद्धा की दृष्टि से देखने लगे।

एक दिन इलियट साहब ने चिन्तामणि बाबू को एक हिसाब (Statement) तैयार करने के लिए दिया। उसमें एक हिसाब बहुत उलझन का था। साहब ने कहा—देखो बाबू, यह बहुत ही ज़रूरी है। सब काम पड़े रहने दो, पहले इसी में हाथ लगाओ। वह काम ऐसा जटिल था और उसके करने में इतने धैर्य की अपेक्षा थी कि साहब ने समझा था कि उसे पूरा करने में कम से कम तीन दिन लगेंगे। किन्तु चिन्तामणि बाबू ऐसे धैर्यशाली, फुरतीले और एकाग्र-चित्त काम करनेवाले थे कि उन्होंने वह काम कुछ ही घन्टों में समाप्त कर डाला। और काम भी उन्होंने इतना सही किया कि इलियट साहब को आश्चर्य हुए बिना नहीं रहा। उसी दिन से असाधारण विद्वान् इलियट साहब की प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि चिन्तामणि बाबू की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुई। उसी दिन से साहब ने चिन्तामणि बाबू का वेतन बढ़ा दिया। उन्होंने अपनी इच्छा से अपने अमूल्य ग्रन्थ पढ़ने का अधिकार दे दिया। इतना ही नहीं, वे स्वयं नित्य चिन्तामणि बाबू को एक घण्टे ऊँचे दर्जे के गणित की शिक्षा देने लगे। उनके द्वारा चिन्तामणि बाबू ने अन्तरिक्ष और पवन-विद्या (Meteorology) के सम्बन्ध में व्यावहारिक प्रणाली और उसके सूत्र आदि (Practical method, formulae, etc.) जान कर अच्छी तरह काम करने योग्य शिक्षा प्राप्त करली।

इलियट साहब के बाद जब उनके स्थान पर मिस्टर एस० ए० हिल साहब रिपोर्टर हुए तब वे भी अपने हेडक्लर्क चिन्तामणि बाबू की कार्य-कुशलता और सद्गुणों पर मुग्ध हो गये। उन्होंने उस समय के अपने विभाग के बड़े आफ़िसर सर जान इलियट साहब के पास चिन्तामणि बाबू की तनख़्वाह बढ़ाने की सिफ़ारिश लिख भेजी। उन्होंने हेडक्लर्क (चिन्तामणि बाबू) की प्रशंसा करके लिखा कि टामसन साहब के समय में उनकी तरक्क़ी नहीं हुई। इसके उत्तर में इलियट साहब ने उनको लिखा—Thompson had nothing to do with him. Credit is due to me for my selection of Chintamani Babu अर्थात् उनके सम्बन्ध में टामसन को कुछ भी नहीं करना था। चिन्तामणि बाबू के चुनने की प्रशंसा एक-मात्र मुझे ही मिलनी चाहिए।

इस प्रकार नौकरी में प्रशंसा पाने पर भी स्वाधीन-प्रकृति युवक चिन्तामणि को संतोष नहीं हुआ। आपके हृदय में अपना कारोबार करके उसमें चरम सफलता प्राप्त करने की प्रबल इच्छा शुरू से ही थी। आप एक प्रेस खोलना चाहते थे। ईश्वर ने सुयोग भी दे दिया। कुछ दिन बाद पायोनियर में किसी रेजीमेंट के एक क्राउन साइज़ के हैंड प्रेस के बेंचे जाने का विज्ञापन आपकी नज़रों से गुज़रा। चिन्तामणि बाबू ने उसके लिए पत्र लिखा। प्रेस के साथ कुछ टाइप भी था। सब सामान आपने पांच सौ रुपये में ख़रीद लिया। चिन्तामणि बाबू दिन भर नौकरी का काम करते थे, उसके बाद घर में आकर दरवाज़ा बन्द करके टाइप के केस पहचानते, टाइप पहचानते और कम्पोज़ करना सीखते थे। इसी समय छपाई के छोटे छोटे काम मिलने लगे। पाठकों को चिन्तामणि बाबू के अध्यवसाय और परिश्रम का हाल सुनकर आश्चर्य हुए बिना नहीं रह सकता। आप अपने ही हाथ से कम्पोज़ करते, प्रूफ़ पढ़ते, करेक्शन करते और छापते थे। इतना ही नहीं, आप ऐसे ग्रन्थ मँगाकर बराबर पढ़ते रहते थे जिनमें छपाई और मशीन चलाने आदि का विवरण रहता था। इस तरह काम करते करते कभी आधी रात तक

आपको जागना पड़ता था और कभी सारी रात ही बीत जाती थी। सन् १८८४ ईसवी में आपने इंडियन प्रेस नाम से अपने प्रेस की रजिस्ट्री करा ली।

अब तो आपके पास नित्य नये आर्डर आने लगे। छपाई का काम जितना ही अधिक आने लगा, उतना ही आपका उत्साह भी बढ़ने लगा। तब बड़े प्रेस और अधिक सामान की ज़रूरत जान पड़ी। एक दिन एक सज्जन ने १४०० रुपये में वह पुराना प्रेस और सामान ख़रीदने की इच्छा प्रकट की। घोष बाबू ने जान डिकिंसन कम्पनी के यहां से एक बड़ा प्रेस मँगा लिया। इस घटना से घोष बाबू की सुयोग को हाथ से न जाने देनेवाली प्रतिभा और दूरदर्शिता का परिचय प्राप्त होता है।

छः साल बाद चिन्तामणि बाबू के आफ़िस में रिडक्शन (कर्मचारी कम करने) का प्रस्ताव हुआ। चिन्तामणि बाबू ने इसे अच्छा मौक़ा समझा। आपने बड़े साहब को समझा कर अन्य छोटे कर्मचारियों को कम न करके आप ही पेंशन लेकर नौकरी छोड़ने का इरादा ज़ाहिर किया। इस तरह ३४ वर्ष की अवस्था में वेतन की चौथाई पेंशन लेकर आपने नौकरी छोड़ दी। अब आप अपने प्रेस की ही उन्नति में सारी शक्ति और प्रतिभा ख़र्च करने में लग गये। लेकिन एक तो पूँजी कम—नहीं के बरावर थी, दूसरे बेवक़्त ली गई कम पेंशन पर ही बड़े परिवार का पालन-पोषण निर्भर था। इस कारण धनाभाव से चिन्तामणि बाबू इन दिनों बहुत चिन्तित रहने लगे। ऐसी अवस्था में मनुष्य को कितने उद्यम और परिश्रम के साथ काम करना पड़ता है, इसका अनुभव भुक्तभोगी पुरुष के सिवा दूसरा नहीं कर सकता। अपनी शक्ति पर अटल विश्वास और अक्षय मानसिक बल हुए बिना मनुष्य का साहस नहीं बना रह सकता। चिन्तामणि बाबू को अपने उज्ज्वल भविष्य पर पूरा विश्वास था। आप पीछे पैर रखना जानते ही नहीं थे। इस कारण चिन्तामणि बाबू अपनी प्रबल काम करने की शक्ति, दृढ़ सङ्कल्प, असाधारण मेधा और अध्यवसाय के बल पर स्थिर लक्ष्य से आगे बढ़ते ही गये। कई वर्षों के भीतर ही सब विघ्न-बाधाओं और कठिनाइयों को पार करके आप सफलता के समीप पहुँच गये। आपके इन गुणों ही का यह परिणाम था कि जब आप थोड़ा-सा सामान और एक पुराना हैंड-प्रेस लेकर कार्य-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे, तभी आपका प्रेस अपनी कई विशेषताओं के लिए शहर में प्रसिद्ध हो गया था, और अन्यान्य बड़े प्रेसों की अपेक्षा वह श्रेष्ठ समझा जाने लगा था।

आपके प्रेस का सामान जैसे जैसे बढ़ने लगा, वैसे ही वैसे कर्मचारियों की संख्या और कार्य-क्षेत्र भी बढ़ने लगा। इंडियन प्रेस में नई-नई अप-टु-डेट मशीनें आने लगीं। उसमें कई भिन्न-भिन्न विभाग भी स्थापित हो गये। प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा भी दिन-दिन बढ़ने लगी। चिन्तामणि बाबू छपाई-सफ़ाई आदि प्रत्येक बात में योरप के प्रथम श्रेणी के प्रेसों की बराबरी करने की उच्च आकांक्षा रखते थे। हर एक काम को सुन्दर, निर्दोष करने का उन्हें प्रबल आग्रह था। उत्कर्ष की नई नई परिकल्पनायें नित्य किया करते थे। उनका वादा सच्चा होता था। जो कह देते थे उसका पालन करते थे। नियम के पूरे पाबन्द रहते थे। छपाई में शुद्धता का पूरा ख़याल रक्खा जाता था। उत्कृष्ट सामग्री, कुशल कर्मचारी और कारीगर तथा ईमानदारी व सचाई—यही बातें आपका मूलमन्त्र थीं। ग्राहक को ठीक समय पर काम करके देने में आपको चाहे कितनी ही भारी हानि उठानी पड़े, इसकी आप कुछ भी परवा नहीं करते थे। ऐसा भी अनेक बार हुआ कि जो काम आपके मन के माफ़िक नहीं हुआ अथवा वादे से ज़रा भा ख़िलाफ़ हुआ

उसे यथेष्ट हानि उठाकर भी आपने रद्दी कर दिया और फिर से छाप कर ग्राहक को दिया। प्रूफ़-शीट में एक मामूली ग़लती भी आपकी नज़र से नहीं बचती थी। छपाई में कोई मामूली ग़लती भी अगर रह गई और उसे ग्राहक ने नहीं देख पाया, किन्तु आपने देख लिया, तो केवल एक ग़लती के लिए आपने फ़ार्म भर रद्दी कर दिया। मतलब यह कि आपकी जान में इंडियन प्रेस से कभी एक भी ग़लतीवाला कोई छपाई का काम प्रकाशित नहीं हुआ या ग्राहक को नहीं दिया गया। किसी ग्राहक को आपके प्रेस के बारे में कभी कोई शिकायत करने का मौक़ा नहीं मिला। एक विशेषता आपमें और थी। ग्राहकों के ज़िम्मे आपकी अक्सर काफ़ी रक़म पड़ी रह गई, पर आपने कभी उसे वसूल करने के लिए अदालत का दरवाज़ा नहीं खटखटाया। थोड़ी ही अवस्था से आपके इन अनन्य-साधारण गुणों ने आपको एक ओर जैसे लोक-प्रिय और प्रसिद्ध कर दिया, वैसे ही दूसरी ओर कठोर कर्त्तव्य-परायण, उद्योगी, नीति-निष्ठ, आदर्श व्यवसायी बना दिया। साहित्य-सेवी सज्जन चिन्तामणि बाबू से समय समय पर यथेष्ट सहायता पाते रहे। मेरी समझ में तो तत्कालीन ऐसा कोई भी साहित्यसेवी न होगा जो चिन्तामणि बाबू-द्वारा उपकृत न हुआ हो।

चिन्तामणि बाबू ने सुप्रसिद्ध सरस्वती पत्रिका निकाल कर हिन्दी का मुख उज्ज्वल किया। उस समय तक हिन्दी में ऐसी उच्च कोटि की सुन्दर उपयोगी कोई पत्रिका नहीं निकलती थी। सरस्वती एक सर्वाङ्गसुन्दर और सर्वजनप्रशंसित पत्रिका थी और हर्ष का विषय है कि अब तक उसका वह गौरव अक्षुण्ण बना हुआ है। सबसे पहले सरस्वती ने ही रास्ता दिखाया और उसी के तैयार किये हुए क्षेत्र में आज अनेक सुन्दर मासिक पत्र और पत्रिकायें फूल-फल रही हैं। इंडियन प्रेस ने ही तुलसीकृत रामायण का सुन्दर शुद्ध संस्करण सर्वप्रथम निकाला। इसके अतिरिक्त स्कूली किताबें अच्छी प्रकाशित कीं। रवीन्द्र बाबू की कई अच्छी किताबों के अनुवाद, वाल्मीकि-रामायण का अविकल अनुवाद, विद्यासागर की जीवनी, भू-प्रदक्षिण तथा अन्यान्य बालकों तथा स्त्रियों के लिए उपयोगी अमूल्य पुस्तकें निकालकर इंडियन प्रेस के स्वामी ने हिन्दी के भाण्डार को परिपूर्ण तथा अलंकृत किया है। महाभारत का सम्पूर्ण, सचित्र हिन्दी-अनुवाद भी, जो इस समय इंडियन प्रेस से प्रकाशित हो रहा है, स्वर्गीय चिन्तामणि बाबू का ही हिन्दी के भाण्डार में एक बहुमूल्य दान है। चिन्तामणि बाबू बङ्गाली होकर भी हिन्दी के कितने बड़े प्रेमी थे, इसका परिचय मुझे उस दिन प्राप्त हुआ था, जिस दिन महाभारत का हिन्दी-अनुवाद करने के विषय में मुझसे और आपसे पहले पहल बातचीत हुई थी। मैंने पुरस्कार के बारे में आपसे जब कहा कि इतने बड़े काम का इतना पुरस्कार होना चाहिए तब आपने कहा—भैया, मैं तो यह चाहता हूँ कि हिन्दी में महाभारत का एक सर्वाङ्गसुन्दर अनुवाद अवश्य प्रकाशित किया जाय ताकि अन्य भाषा-भाषी लोग उसे गौरव की दृष्टि से देखें। आप इस काम को धन के लाभ की दृष्टि से न देखें। यह काम कर डालने से आपका और इंडियन प्रेस का नाम अमर हो जायगा और हिन्दी-माता की सेवा करने का श्रेय हम लोगों को प्राप्त होगा। चिन्तामणि बाबू ने इंडियन प्रेस से मौलिक हिन्दी-पुस्तकें भी यथेष्ट प्रकाशित करने का प्रबन्ध कर रक्खा था। जो पुस्तकें उन्हे उपलब्ध हो सकीं उन्हें उन्होंने बराबर प्रकाशित किया। चिन्तामणि बाबू अपने हमपेशा लोगों से भी स्नेहपूर्ण व्यवहार रखते थे। अनेक प्रेसों के मालिक आपसे परामर्श लिया करते थे और आप उन्हें सहर्ष अनुभव-पूर्ण उपदेश देते रहते थे।

अस्तु, इंडियन प्रेस का काम जब बहुत बढ़ गया और पुराने स्थान में जगह की कमी हुई तब चिन्तामणि बाबू एक बड़ा बँगला किराये पर लेकर उसमें प्रेस ले गये। किताबें छापने के लिए सिलेंडर मशीन प्रयाग में सबसे पहले इंडियन प्रेस में ही मँगाई गई। लोगों की पहले यह धारणा थी कि ऐसी मशीन चलाने में सफलता नहीं मिल सकती। इस भ्रान्त धारणा को आपने दूर कर दिया। इसके बाद इंडियन प्रेस में १५० के लगभग कर्मचारी काम करने लगे। उनके लिए और बड़ी जगह की ज़रूरत हुई। अतएव सन् १६०४ ईसवी में एक लम्बे-चौड़े मैदान में लॉ-कालेज के पिछवाड़े बड़ी भारी आलीशान इमारत बनवाई गई और उसी में प्रेस चला गया। इस नवीन भवन में आकर घोष बाबू ने भारत में मुद्रण-शिल्प का उत्कर्ष सम्पन्न करने के लिए उसमें ललित कला के समावेश का भी प्रबन्ध करने की बात सोची। सोचने की देर थी, आपने लीथो-मशीन द्वारा कई रङ्ग के रङ्गीन चित्र छापने का प्रबन्ध कर डाला। यह (Chromo-lithography) उस समय व्यवसाय के रूप में भारत में अज्ञात-अपरिचित ही थी। इस कारीगरी की शिक्षा कुछ देशी युवकों को दिलाने के उद्देश से आपने इस कला के एक विशेषज्ञ जर्मन चित्र-शिल्पी को बुलाकर लम्बी तनख़्वाह पर अपने यहाँ नौकर रक्खा। विलायत से इस काम के लिए उपयोगी मशीन वग़ैरह काफ़ी रुपये ख़र्चकर आपने मँगाई। एक जर्मन प्रेसमैन को भी ख़ास इसी काम के लिए आपने नौकर रख लिया। इस विभाग में आपके कई हज़ार रुपये ख़र्च हो गये। दुःख की बात है कि इस देश के युवकों को इस कला की शिक्षा देने का जो आपका उद्देश था वह सिद्ध नहीं हो पाया। कारण, जिन युवकों को आपने इस चतुर शिल्पी की देख-रेख में काम सीखने के लिए नियुक्त किया था उनमें से कोई भी सफलकाम न हो सका।

ख़ैर, कुछ भी हो, इस विभाग ने कलकत्ते के आर्टस्कूल के वर्तमान प्रिन्सपल श्रीयामिनीप्रकाश गांगुली, आचार्य श्रीअवनीन्द्रनाथ ठाकुर, श्रीपूर्णचन्द्र घोष आदि धुरन्धर चित्रकारों के अङ्कित कई सुन्दर चित्रों को नई प्रणाली से छाप कर प्रकाशित किया और चित्र-कला के विशेषज्ञ रसिकों ने उनकी यथेष्ट प्रशंसा भी की। यही नहीं, भारत की कई प्रदर्शिनियों से इन चित्रों पर स्वर्ण-पदक भी प्राप्त हुए। अब भी वे चित्र भारत में क्रोमोलीथोग्राफ़ी के सर्वश्रेष्ठ नमूने समझे जाते हैं।

इंडियन-प्रेस के प्रकाशन-विभाग के सम्बन्ध में साधारण रूप से ऊपर लिखा जा चुका है। यही उसका प्रधान विभाग है। इंडियन प्रेस ने अँगरेज़ी, उर्दू, संस्कृत, हिन्दी और बँगला भाषाओं की उत्कृष्ट पुस्तकें प्रकाशित की हैं। गत २८-२६ वर्षों से यह प्रकाशन-कार्य जारी है। रवीन्द्र बाबू की सब उत्तम पुस्तकें बँगला में पहले इंडियन प्रेस ही प्रकाशित किया करता था। इंडियन प्रेस की छपाई और सफ़ाई भारत-प्रसिद्ध है। बँगला की पुस्तकें प्रकाशित करने के लिए घोष बाबू ने कलकत्ते में इंडियन पब्लिशिङ्ग हाउस की स्थापना की थी। सुप्रसिद्ध 'प्रवासी' और 'माडर्नरिव्यू', ये दोनों पत्र पहले इंडियन प्रेस ही में छपते थे। सन् १६०० ईसवी में सरस्वती पत्रिका निकली थी। सरस्वती के विषय में अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं जान पड़ती। इसने जन्म लेते ही हिन्दी में युगान्तर उपस्थित कर दिया। सरस्वती को सर्वश्रेष्ठ बनाने के लिए घोष बाबू ने कुछ उठा नहीं रक्खा। काफ़ी घाटा उठाकर भी आप इसकी उन्नति करते गये। आपको श्रद्धेय आचार्य पण्डित महावीर-प्रसाद जी द्विवेदी के समान सुयोग्य सम्पादक भी मिल गये थे। द्विवेदीजी ने सरस्वती के द्वारा हिन्दी की जो सेवा की है उसका वर्णन थोड़े-से शब्दों-द्वारा नहीं किया
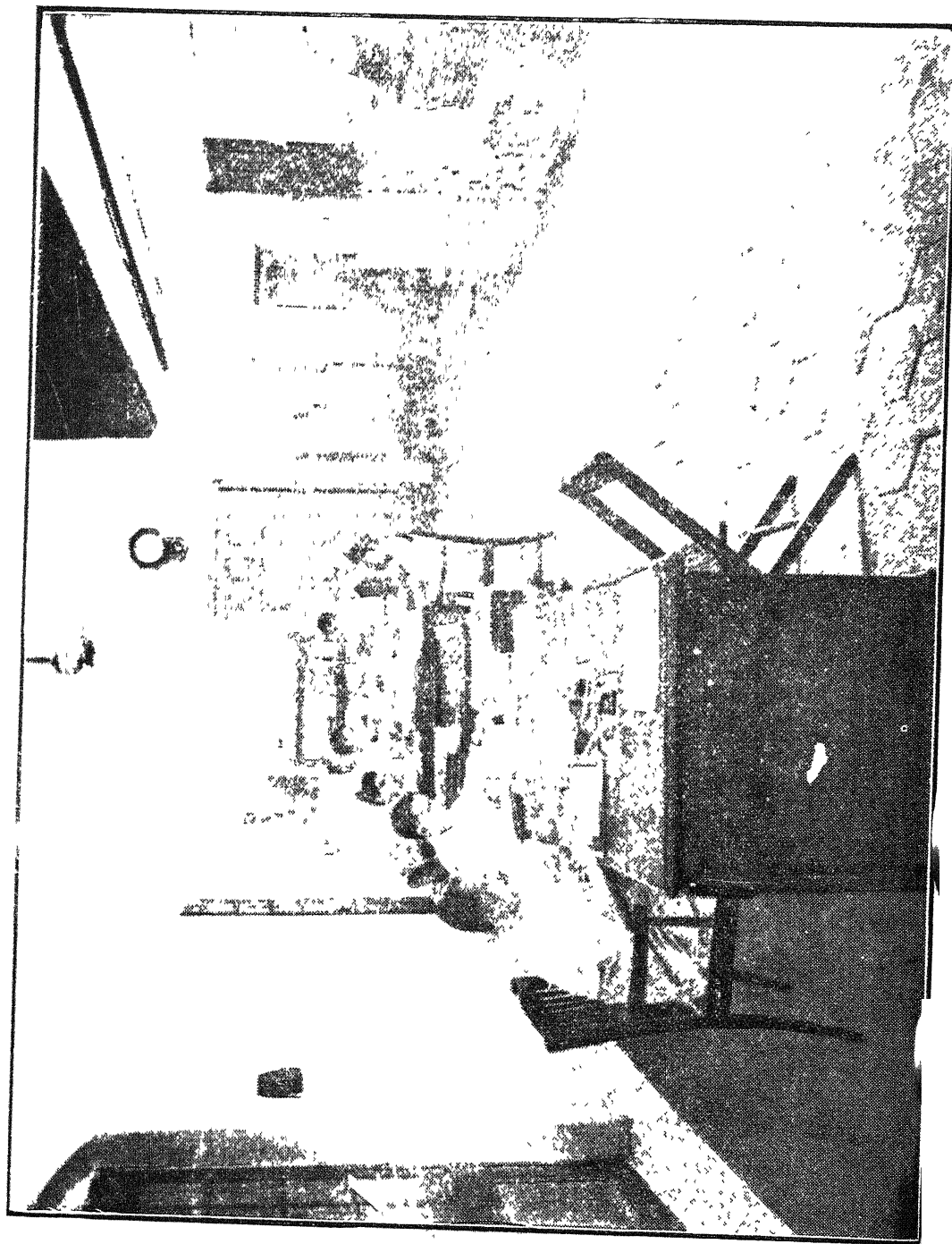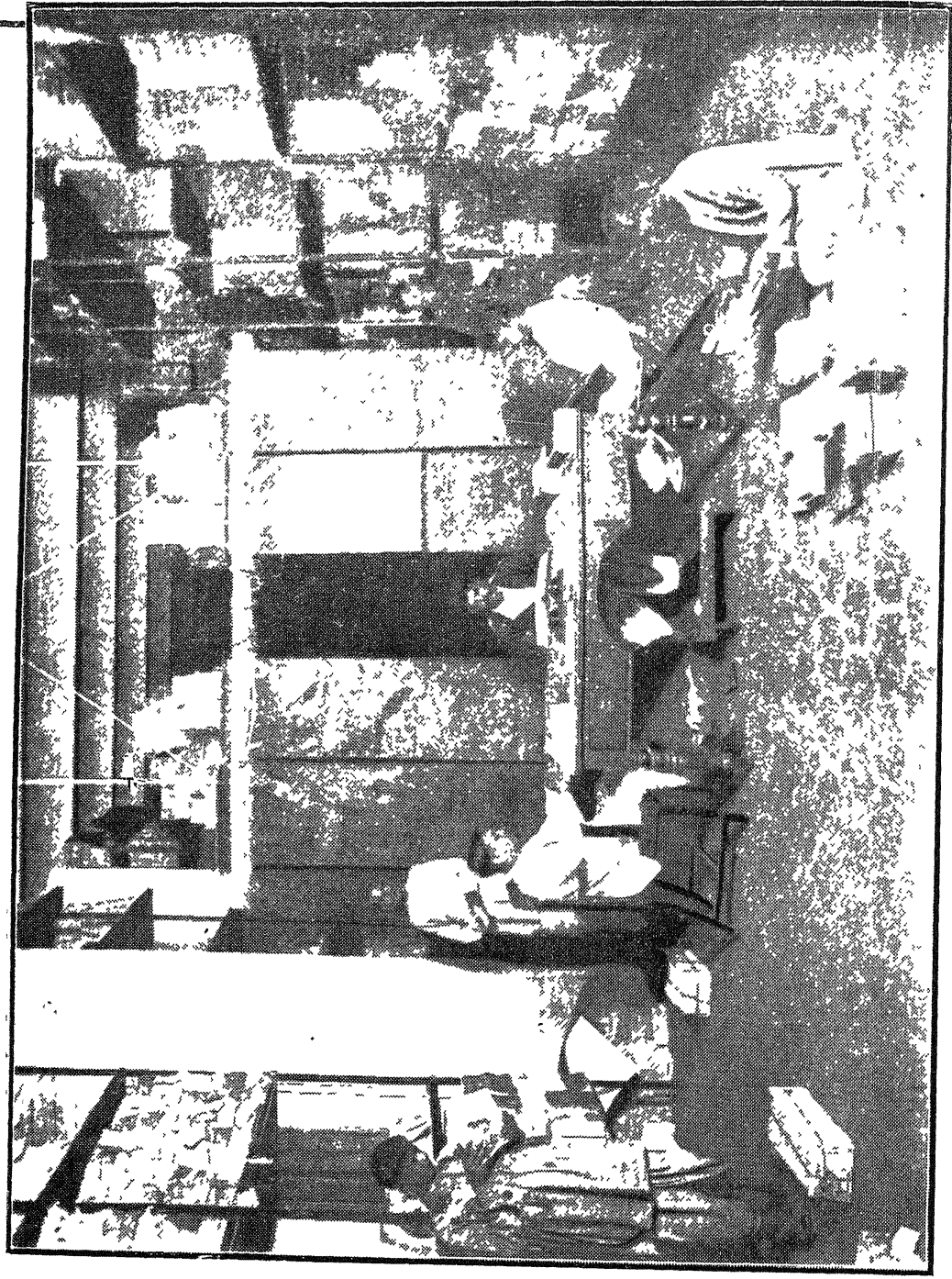
पुस्तक-भवन का गोदाम-विभाग

जा सकता। आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा और घोष बाबू की लगन ने अनुपम काम कर दिखाया। अन्य भाषा-भाषी विद्वान् सरस्वती का नाम आदर के साथ लेते हैं। सरस्वती ने हिन्दी के अनेक अधुना सुप्रसिद्ध लेखकों को तैयार करके अपने जन्म को सार्थक कर दिया है। हिन्दी की उन्नति और हिन्दी के प्रचार के लिए इण्डियन प्रेस के स्वामी चिन्तामणि बाबू ने जो कुछ स्वार्थत्याग किया है वह हिन्दी के इतिहास में सुवर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा और प्रत्येक हिन्दी-भाषा-भाषी आपके नाम को श्रद्धा के साथ स्मरण करेगा। शुद्ध सुन्दर छपाई, मज़बूत बढ़िया जिल्द, फिर भी उपयुक्त मूल्य, इन विशेषताओं में हिन्दी के अन्य प्रकाशक अब भी इंडियन प्रेस की बराबरी नहीं कर सकते, और इसका श्रेय चिन्तामणि बाबू को ही सर्वथा प्राप्य है। अगर आप अन्य व्यवसायियों की भाँति केवल आर्थिक लाभ-हानि पर ही दृष्टि रखते तो आज दिन उनके द्वारा हिन्दी का इतना प्रचार कदापि न हो पाता, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।

स्वर्गवासी चिन्तामणि

[श्रीयुत हरदत्त शर्मा]

गरिमावरिष्ठ चारु चौकस चरित्रवान,
सत्य-निष्ठ कर्मवीर साहसी उदार थे।
शील-निधि शान्त धीर गुणि-जन-कल्पतरु,
मातृभक्ति-अभिमानी मानते न हार थे॥
परहित-व्रती साधु एकनिष्ठ मतिमान,
विपल विवेकवाले दान में अपार थे।
स्वर्गवासी चिन्तामणि नरसिंह सरदार,
परम प्रतापी मानी जैसे अवतार थे॥

बाबू चिंतामणि घोष

[श्रीयुत मेजर वामनदास वसु, आई० एम० एस०]

न् १८८७ के सितम्बर में एक दिन मैं अपने भाई (श्रीयुत रायबहादुर श्रीशचन्द्र वसु विद्यार्णव) के साथ इलाहाबाद की मेटेओरोलोजिकल आबज़र्वेटरी देखने गया। वहाँ मैं बाबू चिन्तामणि घोष से मिला। वे उस समय वहाँ हेड क्लर्क थे और सौ रुपये मासिक वेतन पाते थे। परन्तु मेरा उनसे परिचय बीस वर्ष बाद सन् १९०७ से शुरू हुआ। सन् १९०७ में मैंने पेंशन ले ली और इलाहाबाद में आकर रहा। मैंने चिकित्सा का व्यवसाय छोड़ दिया और विविध साहित्यिक कार्यों में लग गया। उसी साल माडर्नरिव्यू नाम के अँगरेज़ी के मासिक पत्र का जन्म हुआ था और वह इंडियन प्रेस में छपता था। मैं उसके विद्वान् सम्पादक बाबू रामानन्द चटर्जी के साथ इंडियन प्रेस प्रायः जाया करता था। वहाँ वे अपने पत्र के सम्बन्ध मे जाया करते थे। इसके दो वर्ष बाद 'दि सेक्रेड बुक्स आफ़ हिंदूज़ (The Sacred Books of Hindus) का प्रकाशन मासिक पत्रिका के रूप में प्रारम्भ हुआ। पाणिनि-आफ़िस के इस नये साहस-पूर्ण कार्य के सम्बन्ध मे बाबू चिन्तामणि ने जो बड़ा अनुराग दिखाया था उसके लिए मैं उनका बहुत ही अधिक कृतज्ञ हूँ। हिन्दू की हैसियत से उन्होंने उसके प्रकाशन मे अपनी शक्ति भर सहायता करना अपना कर्त्तव्य समझा। उसकी सफलता में उसकी आकर्षक रूप-रेखा तथा सुन्दर छपाई का कुछ कम भाग नहीं है, और उसका श्रेय बाबू चिन्तामणि घोष को है।

बाबू चिन्तामणि घोष ने 'इंडियन मेडिकल प्लांट्स' नामक पुस्तक के छापने में मेरी बहुत अधिक सहायता की है। इस बात को मैंने उक्त पुस्तक की भूमिका मे स्वीकार किया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी पर मेरे भाई ने जो प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण पुस्तक लिखी है उसके प्रकाशन में उन्होंने मेरे भाई की भी मदद की थी। उपयोगी साहित्य के प्रकाशन में उन्हें इतना अधिक उत्साह था कि उन्होंने मुझसे अँगरेज़ी में एक चिकित्सा-सम्बन्धी मासिकपत्र सम्पादित करने को कहा था, जिसे वे अपने व्यय से प्रकाशित करना चाहते थे। मैंने उनकी राय मान ली थी, परन्तु दुर्भाग्य से इन प्रान्तों के चिकित्सा का व्यवसाय करनेवाले डाक्टरों से प्रोत्साहन न मिला, अतएव उक्त विचार छोड़ देना पड़ा।

शिक्षा से भी चिन्तामणि बाबू का विशेष अनुराग था। उन्होंने इलाहाबाद के 'सिटी ऐंग्लो वर्नाक्युलर स्कूल' के भवन-निर्माण के खाते

में एक बहुत बड़ी रक़म चन्दे के रूप में दी थी। उन्होंने इलाहाबाद के कर्नलगंज महल्ले में अपने व्यय से एक हाई स्कूल खोलने का विचार प्रकट किया था। परन्तु दुर्भाग्य से उसके लिए कोई उपयुक्त स्थान न मिल सका।

सन् १९१३-१४ में जब मैंने अपने भाई के स्थापित किये हुए निःशुल्क 'भारतीय कन्या हाई स्कूल' (The Indian Girls Free High School) का भवन बनाने के लिए चन्दा एकत्र करने का विचार किया था तब मैंने उसके सम्बन्ध में चिन्तामणि बाबू से बातचीत की। उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ एक हज़ार रुपये उसके चन्दे में दिये। उन्होंने 'जगततारन हाई स्कूल' की भी जब वह सन् १९१९ में खुला था, मदद की। परन्तु बाद को एक विशेष कारणवश उस स्कूल की सहायता करना बन्द कर दिया।

सन् १९२० में बाबू चिन्तामणि को बेरीबेरी रोग के कारण अपने परिवार के कई जनों से हाथ धोना पड़ा। उसी समय उनके ज्येष्ठ पुत्र जिसे उन्होंने प्रेस के प्रबन्ध की शिक्षा दी थी तथा उनकी प्रिय पत्नी, उनकी बहन और उनकी एक कन्या की मृत्यु हुई थी। ईश्वरेच्छा समझ कर उन्होंने अपने प्रिय जनों की मृत्यु का दुःख सह लिया।

दुर्भाग्यवश चिन्तामणि बाबू की दृष्टि-शक्ति जाती रही थी। इसे उन्होंने अपने जीवन की सबसे भारी विपत्ति समझा था। उनके जैसे तेज़ स्वभाववाले आदमी के लिए यह बात वास्तव में वैसी ही थी।

कोई बारह या तेरह वर्ष तक चिन्तामणि बाबू से प्रायः नित्य मिलने का मुझे सौभाग्य प्राप्त रहा है। उनसे वार्तालाप करके मैंने बहुत लाभ उठाया है। यह विचार कर कि उनको प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा समुचित नहीं मिली है, मुझे इस बात का आश्चर्य हुआ था कि उन्होंने संसार में इतनी उन्नति कैसे की और भिन्न भिन्न महत्त्व-पूर्ण विषयों का इतना अधिक उपयोगी ज्ञान कैसे प्राप्त किया। वे व्यावहारिक आदमी थे, उनकी आदतें व्यवसायपरक थीं। अपने इन्हीं गुणों से उन्हे सफलता प्राप्त हुई थी। उनकी मृत्यु से इलाहाबाद के बंगाली-समाज में जो स्थान रिक्त होगया है उसकी पूर्ति होना सरल बात नहीं है। उनकी स्मृति स्थायी बनाने के लिए इलाहाबाद के नागरिकों को कुछ न कुछ अवश्य करना चाहिए।
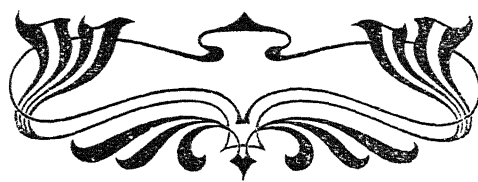
इंडियन प्रेस में दो वर्ष

[श्रीयुत बदरीनाथ भट्ट, बी० ए०]

पूरा एक युग बीत गया है। पूज्यवर द्विवेदीजी के अनुरोध से सन् १९१६ में मैं इंडियन प्रेस में काम करने गया था। इससे पहले जहां जहां मैंने काम किया था वहां की परिस्थिति का जो प्रभाव मुझ पर पड़ा उसका परिणाम यह है कि आज भी मित्रवर मैथिलीशरण कहते है कि तुम यह समझते हो कि सारा संसार तुम्हें ही ठगने की घात में है!

इंडियन प्रेस में, कुछ ही दिनों बाद, मैं इस परिणाम पर पहुँचा कि यहाँ काम करना मेरे लिए बहुत अच्छा है। बड़े बाबू को मैंने जैसा समझ रक्खा था उससे कहीं अच्छा पाया। मैंने सुना कि उनकी आज्ञा थी कि मुझसे कोई कुछ न कहे, और कोई बात ऐसी न हो जिससे मेरा दिल दुखे। 'यह प्रेस आपका है, इसके द्वारा हिन्दी का कुछ काम हो जाय इसी लिए हमने आपको कष्ट दिया है।' 'ये लड़के आपके छोटे भाई हैं, इनको सहायता आप सदा देते रहें; मेरा क्या है, मैं तो आज हूँ, कल नहीं'—आदि उनके वाक्य आज भी मैं नहीं भूला हूँ, और यद्यपि आज दस वर्ष से मेरा सीधा सम्बन्ध प्रेस से नहीं है, तो भी आज तक मैं यह नहीं समझ सका हूँ कि इंडियन प्रेस से अब मुझे कुछ मतलब नहीं। इंडियन प्रेस के लिए मेरे हृदय में श्रद्धा है, शुभ-कामना है; यह सब बड़े बाबू के सद्व्यवहार के कारण।

हिन्दी-संसार में कुछ लोग एक बड़े विचित्र रोग के शिकार हैं। पहले तो वे व्यर्थ दल-बंदी करते हैं, और फिर इस बात की चिन्ता में रहते हैं कि हमारे खुशामदियों और प्रशंसकों की संख्या ख़ूब बढ़े। यदि कोई उनके इस शेखचिल्लीपन को पसन्द नहीं करता है तो वे लोग उसकी निन्दा करने पर कमर कस लेते हैं; यह तक कि अपने पिछलगुओं को भी उस बेचारे पर लहका देते हैं। एक दिन मैंने देखा कि इसी रोग के राज-रोगी एक काशी-निवासी महाशय मेरे विषय में बड़े बाबू के कुछ कान भर रहे है। मैंने सुन रक्खा था कि बड़े बाबू कानों के कच्चे हैं। दूसरे दिन, प्रेस पहुँच कर, मैंने उनसे कहा, "बाबू साहब, मैं कुछ स्पष्ट-वक्ता हूँ, अतएव आपसे कुछ कहा चाहता हूँ।" उनके पूछने पर मैंने कहा, "जब आप मेरे काम से तनिक भी असन्तुष्ट हों तभी सीधे मुझसे कह दें। दूसरों की बातों पर ध्यान न दें, क्योंकि मैंने सुन लिया है कि आप कानों के बड़े कच्चे हैं।" बड़े बाबू ने शान्ति के साथ कहा, "पंडितजी, कल के जैसे हज़ार आदमी भी आपकी बुराई किया करें तो क्या? क्या आप समझते है कि मुझमें इतनी भी अक्ल़ नहीं कि मैं यह पहचान लूँ कि यह आपकी निन्दा द्वेष के कारण कर रहा है या कोई और बात है? आप विश्वास रखिए, मैं कानों का कच्चा नहीं हूँ, यदि होता तो आज यह प्रेस भी इस दशा में न होता। कान के कच्चे होने की बात कुछ ऐसे लोगों ने उड़ा रक्खी है जो अपने दोषों के कारण मेरे यहां से अलग किये जा चुके हैं।"
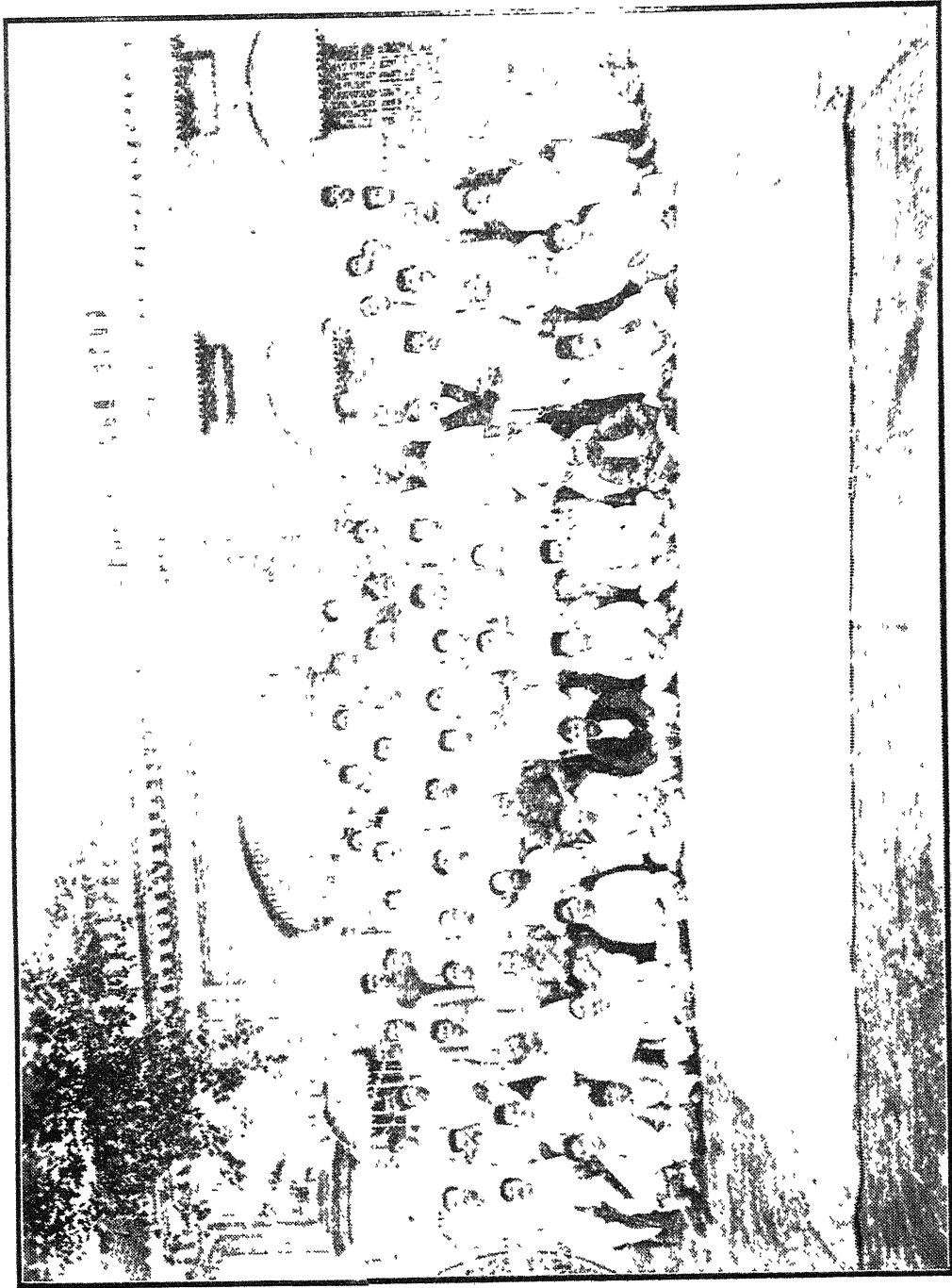
आफ़िस-विभाग, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

ललितकला-विभाग

एक दिन कुछ चित्र आये हुए थे—रंगीन। बड़े बाबू की मेज़ के आस-पास खड़े खड़े कई कर्मचारी उन चित्रों की प्रशंसा के पुल बाँध रहे थे। मुझे प्रेस में काम आरम्भ किये दो ही तीन दिन हुए थे। मुझे भी बुला कर वे चित्र दिखाये गये और "आगे आप ही को 'सरस्वती' सँभालनी है" कह कर बड़े बाबू ने उन चित्रों पर मेरी सम्मति पूछी। मैंने तुरन्त कहा, "ये चित्र बड़े रद्दी हैं; यदि ऐसे चित्र छपे तो शीघ्र ही 'सरस्वती' की ग्राहक-संख्या आधी रह जायगी।" मेरी खरी बात सुनकर सब लोग मेरी ओर आश्चर्य से देखने लगे। बाद को बड़े बाबू ने किसी से कहा कि 'मतभेद होना दूसरी बात है, मन की बात साफ़ कह देना भी बड़ा भारी गुण है।'

एक दिन बड़े बाबू ने प्रेस के एक सज्जन की सलाह मान कर मुझे एक ऐसा काम सौंपना चाहा जिसमें बड़ी ही माथापच्ची करनी पड़ती और जिसे १५) २०) महीने का एक साधारण लेखक भी कर सकता था। मैंने प्रेस के उक्त कर्मचारी महोदय के सामने ही बड़े बाबू से कहा, "यह काम मुझसे न होगा; यह तो १५) २०) के आदमी के करने का है। मेरा तो इसमें मस्तिष्क बिगड़ जायगा।" मेरी बात सुन कर बड़े बाबू गंभीर हो गये। जब मैं अपनी जगह पर आ बैठा तब उन महोदय ने बड़े बाबू के कान भरना आरम्भ किया, परन्तु बड़े बाबू ने उन्हें रोक कर कहा, "आज मुझे हर्ष है कि मेरी बात काटनेवाला एक आदमी मेरे प्रेस में आगया है। सच-मुच मेरी भूल थी जो मैंने पंडितजी को इस साधारण से काम में लगाना चाहा। इससे उन्हें भी कष्ट होता और प्रेस की भी हानि होती। मेरी भूल बतानेवाला भी प्रेस में कोई है इस बात पर मुझे हर्ष होना चाहिए, न कि क्रोध।"

ऊपर लिखी घटनाओं से क्या बड़े बाबू की सहृदयता और सहनशीलता प्रकट नहीं होती? क्या वे प्रकाशक, जो अपने कर्मचारियों से अपनी सब प्रकार की आज्ञाओं के पालन कराने के लिए 'दो दो हाथ' करने को तैयार रहते हैं, इस उदाहरण से कुछ सीखेंगे?

बड़े बाबू को लोगों ने बहुत ठगा। दो एक सज्जन तो उनसे रुपया 'उधार' ले गये, परन्तु फिर न तो उन्हें पुस्तकें ही लिख कर दीं और न रुपया ही चुकाने का नाम लिया, क्योंकि वे जानते थे कि बड़े बाबू अदालत में कभी जायँगे नहीं। मैंने पहुँचते ही यह धाधागर्दी बंद कर दी, जिससे कुछ लोग आज तक अप्रसन्न हैं और अनेक प्रकार से मेरा सत्कार करते और कराते रहते हैं।

बड़े बाबू पुरस्कार देने में कभी टालमटोल नहीं करते थे। जैसा ठहराव होता था उसके अनुसार तुरन्त रुपया दे देते थे। कहाँ बड़े बाबू और कहाँ वे प्रकाशकपुङ्गव जो ठहराये हुए पुरस्कार से भी कम देने के लिए तरह तरह की तरकीबें सोचते हैं, और, जब कोई तरकीब काम नहीं देती, तब बड़े बड़े मौलिक बहाने बनाकर लेखक को बरसों भटकाते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते! इंडियन प्रेस के व्यवहार की तुलना इन लोगों से की जाय तो यही कहना पड़ता है कि 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गाङ्गेय तैलंगण'।

दो वर्ष का समय बहुत होता है। बड़े बाबू ने, इस बीच में, मेरी प्रकृति अच्छी तरह पहचान ली थी। मेरे फक्कड़पन से उनके हृदय में यह बात सदा बनी रहती थी कि कहीं मैं नौकरी छोड़-छाड़ कर चल न दूँ। नेत्रों के कष्ट के कारण जब मैं अलग हुआ तब मुझे प्रीतिभोज देकर आदरपूर्वक बिदा किया और कह दिया कि 'आपके लिए सदा मेरे प्रेस में जगह रहेगी; आप जब चाहें तब—बिना मुझे पहले से सूचना दिये—चले आवें; क्योंकि मुझे अपने यहाँ की जगहों के लिए कोई लाट साहब से मंजूरी नहीं लेनी पड़ती है। मैं चाहता था कि आप बने रहते,

ललितकला-विभाग

एक दिन कुछ चित्र आये हुए थे—रंगीन। बड़े बाबू की मेज़ के आस-पास खड़े खड़े कई कर्मचारी उन चित्रों की प्रशंसा के पुल बाँध रहे थे। मुझे प्रेस में काम आरम्भ किये दो ही तीन दिन हुए थे। मुझे भी बुला कर वे चित्र दिखाये गये और "आगे आप ही को 'सरस्वती' सँभालनी है" कह कर बड़े बाबू ने उन चित्रों पर मेरी सम्मति पूछी। मैंने तुरन्त कहा, "ये चित्र बड़े रद्दी हैं; यदि ऐसे चित्र छपे तो शीघ्र ही 'सरस्वती' की ग्राहक-संख्या आधी रह जायगी।" मेरी खरी बात सुनकर सब लोग मेरी ओर आश्चर्य से देखने लगे। बाद को बड़े बाबू ने किसी से कहा कि 'मतभेद होना दूसरी बात है, मन की बात साफ़ कह देना भी बड़ा भारी गुण है।'

एक दिन बड़े बाबू ने प्रेस के एक सज्जन की सलाह मान कर मुझे एक ऐसा काम सौंपना चाहा जिसमें बड़ी ही माथापच्ची करनी पड़ती और जिसे १५) २०) महीने का एक साधारण लेखक भी कर सकता था। मैंने प्रेस के उक्त कर्मचारी महोदय के सामने ही बड़े बाबू से कहा, "यह काम मुझसे न होगा; यह तो १५) २०) के आदमी के करने का है। मेरा तो इसमें मस्तिष्क बिगड़ जायगा।" मेरी बात सुन कर बड़े बाबू गंभीर हो गये। जब मैं अपनी जगह पर आ बैठा तब उन महोदय ने बड़े बाबू के कान भरना आरम्भ किया, परन्तु बड़े बाबू ने उन्हें रोक कर कहा, "आज मुझे हर्ष है कि मेरी बात काटनेवाला एक आदमी मेरे प्रेस में आगया है। सच-मुच मेरी भूल थी जो मैंने पंडितजी को इस साधारण से काम में लगाना चाहा। इससे उन्हें भी कष्ट होता और प्रेस की भी हानि होती। मेरी भूल बतानेवाला भी प्रेस में कोई है, इस बात पर मुझे हर्ष होना चाहिए, न कि क्रोध।"

ऊपर लिखी घटनाओं से क्या बड़े बाबू की सहृदयता और सहनशीलता प्रकट नहीं होती? क्या वे प्रकाशक, जो अपने कर्मचारियों से अपनी सब प्रकार की आज्ञाओं के पालन कराने के लिए 'दो दो हाथ' करने को तैयार रहते हैं, इस उदाहरण से कुछ सीखेंगे?

बड़े बाबू को लोगों ने बहुत ठगा। दो एक सज्जन तो उनसे रुपया 'उधार' ले गये, परन्तु फिर न तो उन्हें पुस्तकें ही लिख कर दीं और न रुपया ही चुकाने का नाम लिया, क्योंकि वे जानते थे कि बड़े बाबू अदालत में कभी जायँगे नहीं। मैंने पहुँचते ही यह धांधागर्दी बंद कर दी, जिससे कुछ लोग आज तक अप्रसन्न हैं और अनेक प्रकार से मेरा सत्कार करते और कराते रहते हैं।

बड़े बाबू पुरस्कार देने में कभी टालमटोल नहीं करते थे। जैसा ठहराव होता था उसके अनुसार तुरन्त रुपया दे देते थे। कहां बड़े बाबू और कहां वे प्रकाशकपुङ्गव जो ठहराये हुए पुरस्कार से भी कम देने के लिए तरह तरह की तरकीबें सोचते हैं, और, जब कोई तरकीब काम नहीं देती, तब बड़े बड़े मौलिक बहाने बनाकर लेखक को बरसों भटकाते हुए तनिक भी लज्जित नहीं होते! इंडियन प्रेस के व्यवहार की तुलना इन लोगों से की जाय तो यही कहना पड़ता है कि 'कहां राजा भोज और कहां गाङ्गेय तैलंगण'।

दो वर्ष का समय बहुत होता है। बड़े बाबू ने, इस बीच में, मेरी प्रकृति अच्छी तरह पहचान ली थी। मेरे फक्कड़पन से उनके हृदय में यह बात सदा बनी रहती थी कि कहीं मैं नौकरी छोड़-छाड़ कर चल न दूँ। नेत्रों के कष्ट के कारण जब मैं अलग हुआ तब मुझे प्रीतिभोज देकर आदरपूर्वक बिदा किया और कह दिया कि 'आपके लिए सदा मेरे प्रेस में जगह रहेगी; आप जब चाहें तब—बिना मुझे पहले से सूचना दिये—चले आवें; क्योंकि मुझे अपने यहाँ की जगहों के लिए कोई लाट साहब से मंजूरी नहीं लेनी पड़ती है। मैं चाहता था कि आप बने रहते,

अब जब आपके नेत्रों का रोग दूर हो जाय तब अवश्य आइएगा। इन लड़कों को अपना छोटा भाई समझ कर सदा इन पर कृपा बनाये रहिएगा।'

उन दिनों हिन्दी-संसार इस बात पर आश्चर्य कर रहा था कि श्रीद्विवेदीजी महाराज की—जिनको कुछ लोगों ने अत्यन्त क्रोधी प्रसिद्ध कर रक्खा था—इंडियन प्रेस से कैसे निभ रही है। प्रेस में दो वर्ष काम करके जहां एक ओर बड़े बाबू की उदारता और शिष्टता को मैंने पहचाना, वहाँ दूसरी ओर उस अनुपम स्वार्थ-त्याग का भी मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा जो द्विवेदीजी महाराज, 'सरस्वती' के सम्बन्ध में, दिखा रहे थे। द्विवेदीजी महाराज ने 'सरस्वती' के द्वारा हिन्दी-भाषा और साहित्य की सेवा करते करते अपने स्वास्थ्य को चौपट कर डाला है, पर कौन है आज जो उनके स्थिर किये हुए शब्दों के रूपों, और मृतप्राय मुहावरों को पुनर्जन्म देने के अद्भुत कर्तव्य को समझता हो? आज-कल तो, सेठजी की तोंद से भी मोटी हिन्दी-पत्रिकाओं में, व्याकरण की साधारण भूलें, शब्दों के पुराने रूप, और मुहावरों का अभाव धड़ाधड़ दिखाई देता है। यहाँ तक कि बड़े बड़े अध्यापक भी व्याकरण-विरुद्ध प्रयोग करके लोगों की आंखों में धूल झोंक रहे हैं, और जो उनकी झूठी प्रशंसा नहीं करता उससे शत्रुता करने लगते हैं। नौकरी छोड़ देने के बाद भी बड़े बाबू ने सदा मेरी बड़ाई ही की, ऐसा मुझे और लोगों से ज्ञात हुआ किया; मैं भी उनकी बड़ाई ही करता हूँ। जार्ज टाउन की सुन्दर कोठी में, अपनी ही इच्छा से, उन्होंने मुझे रक्खा था और सब प्रकार की सुविधा मेरे लिए कर दी थी। प्रयाग में कैसे आनन्द से दो वर्ष कटे हैं मेरे!

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के प्रति

[श्रीयुत सुदर्शनाचार्य्य, बी० ए०]

(१)

श्रीचिन्तामणि घोष राष्ट्रभाषा के प्रेमी,
सज्जनता की मूर्ति, उचितवक्ता, दृढ़, नेमी,
नीतिकुशल, व्यवसाय-बुद्धि-परिपूर्ण, मनस्वी,
नियमित-संयत-कार्य्य-कर्म-रत यथा तपस्वी ।
निश्चित है संसार में जो आया वह जायगा ।
किन्तु भवादृशजनों का यश सौरभ रह जायगा ॥

(२)

हिन्दी-मुद्रण में नवीनता लानेवाले,
सुरुचिपूर्ण साहित्य प्रकाशन करनेवाले,
कवि, लेखक और, चित्रकार के थे गुणज्ञाता,
थे साहित्य-सेवियों के वे आश्रय-दाता,
यों गुण-गाथा याद कर समय समय पर कहेंगे ।
हिन्दी-प्रेमी सदा ही ऋणी आपके रहेंगे ॥

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष और उनका इंडियन प्रेस

[श्रीयुत गिरिजादत्त शुक्ल, बी० ए०]

उदर-पोषण और सन्तानोत्पत्ति प्राणि-मात्र की प्रधान प्रवृत्तियाँ हैं। मनुष्य का भी अधिकांश समय और उसकी शक्तियों का व्यय प्रायः इन्हीं प्रवृत्तियों की परितृप्ति में होता है। परन्तु जिस व्यक्ति में असाधारण प्रतिभा है वह अपने जीवन को साधारण मनुष्यों की तरह व्यतीत करके संतुष्ट नहीं हो सकता। उसे अपनी अनन्य-सुलभ शक्ति और स्फूर्त्ति के प्रयोग के लिए भी कोई वस्तु चाहिए ही। इसी आवश्यकता के वशीभूत होकर कवि रात-रात जागता और एक ललित शब्द पाने पर अपार सन्तोष का अनुभव करता है, इसी से प्रेरित होकर देश-भक्त स्वदेश-सेवा-सम्बन्धी अनेक संकटों का आनन्द-पूर्वक सामना करता है, और इसी के प्रभाव से अभिभूत होकर किसी संस्था का निर्म्माण करनेवाला व्यक्ति अनवरत परिश्रम तथा अध्यवसाय-द्वारा अपनी प्रिय वस्तु की रचना और उसका संगठन करने में संलग्न होता है। हमारे श्रद्धा-भाजन बाबू चिन्तामणि घोष इस पिछली श्रेणी के एक पुरुष-रत्न थे, जिन्होंने इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग की सुदृढ़ संस्थापना के लिए सम्पूर्ण जीवन-भर सफलता-पूर्व्वक अथक प्रयत्न किया और अपूर्व्व कल्पना-शक्ति, विचित्र रचनात्मक क्रिया-शीलता, आश्चर्य्य-जनक संगठन-प्रवीणता तथा जो कोई उनके सम्पर्क में आया उसे अपनी सरस सहृदयता के परिचय-प्रदान-द्वारा सदैव के लिए विमुग्ध करके गत ११ वीं अगस्त को अपनी इहलीला समाप्त की।

बाबू चिन्तामणि घोष के जीवन से हमें अनेक शिक्षायें मिलती हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता, जिससे हम शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, यह है कि जीवन के प्रारम्भ-काल में अपने लक्ष्य को स्थिर करके, अपने व्यक्तित्व के विकास का मार्ग निश्चित करके फिर वे कभी पश्चाद्‌गामी नहीं हुए। कितनी ही बाधायें आईं पर वे उद्विग्न न हुए। बहुव्यय-शील पिता से किसी प्रकार की सम्पत्ति न पाने पर अपनी जन्मभूमि वंगदेश से सुदूर एक अपरिचितप्राय नगर में तेरह वर्ष के बालक चिन्तामणि—जिन्हें उस समय मनस्विनी माता के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा देनेवाला नहीं था—कितने संकट में पड़े होंगे, इसका अनुमान वही कर सकता है जो स्वयं ऐसी परिस्थिति में पड़ा हो। तेरह वर्ष की अल्प अवस्था में ही पाठशाला की शिक्षा को सदा के लिए नमस्कार करके पायनियर प्रेस में दस रुपये वेतन की सहकारी लेखक की नौकरी स्वीकार करने के अनन्तर बाबू चिन्तामणि ने जीवन भर प्रत्येक काम को जिस संलग्नता के साथ सफलता-पूर्व्वक सम्पादित किया
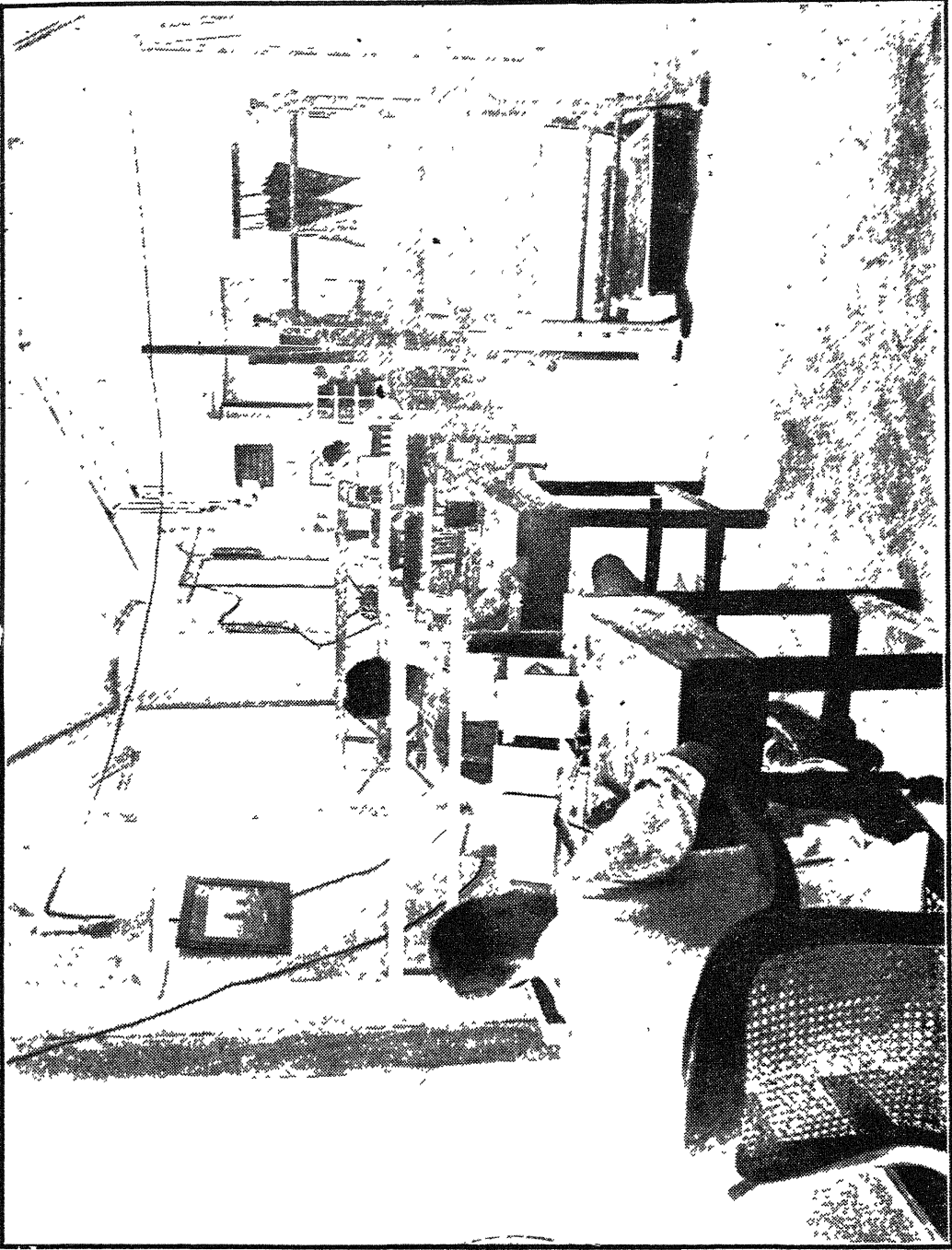
इंडियन प्रेस के फ़ोटो-एचिंग-विभाग का एक दृश्य
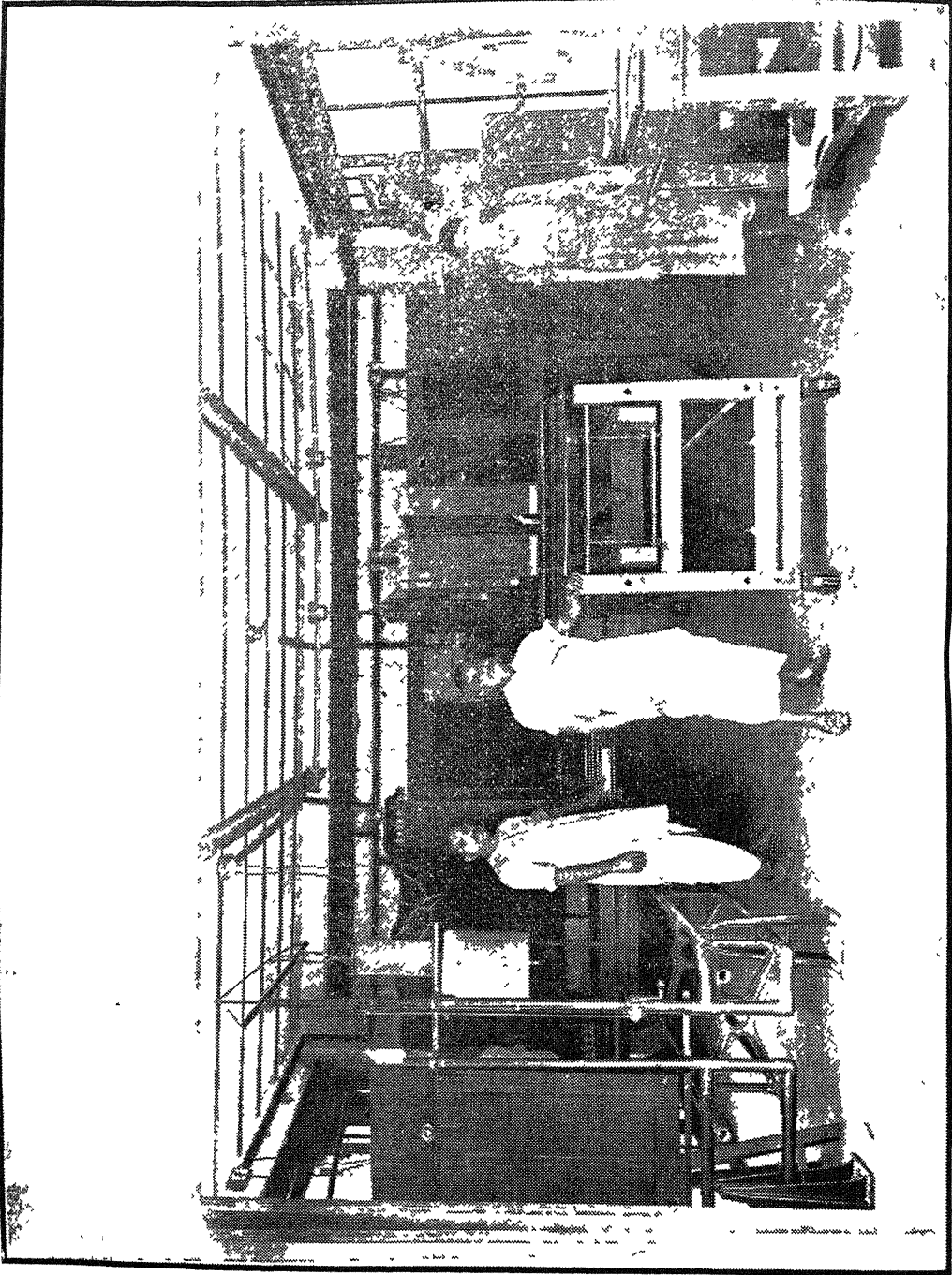
केमेरा-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०

वह विश्वविद्यालयों की उच्च से उच्च उपाधियों से विभूषित महोदयों के लिए भी अनुकरणीय है। सच पूछिए तो उनकी समस्त सफलता का रहस्य यह था कि अपने प्रस्तुत कार्य्य की अवहेलना वे कभी नहीं करते थे। जिस काम को वे हाथ में लेते थे उसमें पूर्ण रूप से तन्मय हो जाते थे। उनके अद्भुत मनोयोग का परिचय देने के लिए एक उदाहरण देना ही यथेष्ट होगा। प्रायः छः-सात वर्षों तक पायनियर प्रेस में काम करने के अनन्तर बाबू चिन्तामणि हवा-घर में हेडक्लर्क का काम करने लगे थे। उनके अफ़सर मिस्टर (बाद को सर) जान इलियट ने उन्हे एक कठिन काम सौंपा। उनका ख़याल था कि उस काम के पूरा होने मे कम से कम दो-तीन दिन तो लगेंगे ही। परन्तु जब उनके सुदक्ष सहकारी ने दो ही तीन घण्टों में अपना कार्य्य पूर्ण करके उनके सम्मुख रख दिया तब तो उनके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा। इस अपूर्व्व कार्य्य-तत्परता का इलियट महोदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि न केवल उन्होंने अपने पुस्तकालय की पुस्तके पढ़ने की उन्हें अनुमति दे दी, बल्कि एक घण्टा अपना समय लगाकर उन्हे पढ़ाना भी शुरू कर दिया।

सन् १८८४ ईसवी मे बाबू चिन्तामणि ने इंडियन प्रेस की स्थापना की। सन् १८८९ ईसवी में उन्होंने चौथाई पेंशन लेकर हवाघर की नौकरी छोड़ दी। इसके बाद वे इंडियन प्रेस के विकास में ऐसे दत्तचित्त हुए कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को उनके हृदय में स्थान ही नहीं रह गया। सन् १८८४ ईसवी के बाद का बाबू चिन्तामणि घोष का जीवन-चरित यदि केवल दो शब्दों में लिखना हो तो केवल 'इंडियन प्रेस' कह देने से काम चल जायगा। इंडियन प्रेस का प्रत्येक अवयव उन्हीं के व्यक्तित्व-द्वारा अनुप्राणित हुआ है।

यहां इंडियन प्रेस का थोड़ा सा इतिहास दिये बिना चिन्तामणि बाबू के पुरुषार्थ का पूर्ण अनुमान नहीं किया जा सकेगा। अतएव उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा निवेदन कर देना आवश्यक है।

इंडियन प्रेस के संगठन में उसके संस्थापक का व्यक्तित्व प्रधान है। चिन्तामणि बाबू सहृदय और सौन्दर्य्य-प्रेमी थे। अतएव साहित्य-सेवा और बढ़िया छपाई की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भी संयुक्त प्रान्त की जनता मे साहित्य-प्रेम और नयनाभिराम मुद्रण के प्रति अनुराग का सञ्चार नहीं हुआ था। ऐसी दशा में साहित्यिक पुस्तकों अथवा पत्रों के आधार पर किसी विशाल आयोजन का सञ्चालन नहीं हो सकता था। बुद्धिमत्ता और दूर-दर्शिता तो जैसे चिन्तामणि बाबू के बाटे पड़ी थी। उन्होंने स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों की ओर ध्यान दिया और उन्हीं को प्रेस का प्रधान अवलम्ब बनाने का निश्चय किया।

संस्थापक की इन्हीं प्रारम्भिक दिनों की अनेक शूरताओं मे से कम से कम एक का उदाहरण देने के प्रलोभन का संवरण करना कठिन है। चिन्तामणि बाबू ने अपना हैंड प्रेस बेंच दिया था और मशीन के लिए इँग्लैंड आर्डर भेज दिया था। इसी बीच में गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग, से उन्हें छपाई का कुछ काम मिला। बाबू साहब बड़े असमंजस में पड़े। परन्तु मिले हुए काम को वापस न करने का निश्चय करने में भी उन्हें देर न लगी। अब उनकी मौलिक बुद्धि की उपज देखिए। उन्होंने शीशम के दो तख़्ते बनाये। एक तख़्ते में टाइप आदि सजाया और स्याही लगाकर छापना शुरू कर दिया। और मज़े की बात यह कि गवर्नमेंट प्रेस के सुपरिंटेंडेंट ने उनकी सन्तोषजनक छपाई की बड़ी सराहना की।

वह विश्वविद्यालयों की उच्च से उच्च उपाधियों से विभूषित महोदयों के लिए भी अनुकरणीय है। सच पूछिए तो उनकी समस्त सफलता का रहस्य यह था कि अपने प्रस्तुत कार्य्य की अवहेलना वे कभी नहीं करते थे। जिस काम को वे हाथ में लेते थे उसमें पूर्ण रूप से तन्मय हो जाते थे। उनके अद्भुत मनोयोग का परिचय देने के लिए एक उदाहरण देना ही यथेष्ट होगा। प्रायः छः-सात वर्षों तक पायनियर प्रेस में काम करने के अनन्तर बाबू चिन्तामणि हवा-घर में हेडक्लर्क का काम करने लगे थे। उनके अफ़सर मिस्टर (बाद को सर) जान इलियट ने उन्हें एक कठिन काम सौंपा। उनका ख़याल था कि उस काम के पूरा होने में कम से कम दो-तीन दिन तो लगेंगे ही। परन्तु जब उनके सुदक्ष सहकारी ने दो ही तीन घण्टों में अपना कार्य्य पूर्ण करके उनके सम्मुख रख दिया तब तो उनके आश्चर्य्य का ठिकाना न रहा। इस अपूर्व्व कार्य्य-तत्परता का इलियट महोदय पर इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि न केवल उन्होंने अपने पुस्तकालय की पुस्तकें पढ़ने की उन्हें अनुमति दे दी, बल्कि एक घण्टा अपना समय लगाकर उन्हें पढ़ाना भी शुरू कर दिया।

सन् १८८४ ईसवी में बाबू चिन्तामणि ने इंडियन प्रेस की स्थापना की। सन् १८८६ ईसवी में उन्होंने चौथाई पेंशन लेकर हवाघर की नौकरी छोड़ दी। इसके बाद वे इंडियन प्रेस के विकास में ऐसे दत्तचित्त हुए कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु को उनके हृदय में स्थान ही नहीं रह गया। सन् १८८४ ईसवी के बाद का बाबू चिन्तामणि घोष का जीवन-चरित यदि केवल दो शब्दों में लिखना हो तो केवल 'इंडियन प्रेस' कह देने से काम चल जायगा। इंडियन प्रेस का प्रत्येक अवयव उन्हीं के व्यक्तित्व-द्वारा अनुप्राणित हुआ है।

यहां इंडियन प्रेस का थोड़ा सा इतिहास दिये बिना चिन्तामणि बाबू के पुरुषार्थ का पूर्ण अनुमान नहीं किया जा सकेगा। अतएव उसके सम्बन्ध में थोड़ा सा निवेदन कर देना आवश्यक है।

इंडियन प्रेस के संगठन में उसके संस्थापक का व्यक्तित्व प्रधान है। चिन्तामणि बाबू सहृदय और सौन्दर्य्य-प्रेमी थे। अतएव साहित्य-सेवा और बढ़िया छपाई की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक ही था। परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम भाग में भी संयुक्त प्रान्त की जनता में साहित्य-प्रेम और नयनाभिराम मुद्रण के प्रति अनुराग का सञ्चार नहीं हुआ था। ऐसी दशा में साहित्यिक पुस्तकों अथवा पत्रों के आधार पर किसी विशाल आयोजन का सञ्चालन नहीं हो सकता था। बुद्धिमत्ता और दूर-दर्शिता तो जैसे चिन्तामणि बाबू के बाटे पड़ी थी। उन्होंने स्कूलों में पढ़ाई जानेवाली पुस्तकों की ओर ध्यान दिया और उन्हीं को प्रेस का प्रधान अवलम्ब बनाने का निश्चय किया।

संस्थापक की इन्हीं प्रारम्भिक दिनों की अनेक शूरताओं में से कम से कम एक का उदाहरण देने के प्रलोभन का संवरण करना कठिन है। चिन्तामणि बाबू ने अपना हैंड प्रेस बेंच दिया था और मशीन के लिए इँग्लैंड आर्डर भेज दिया था। इसी बीच में गवर्नमेंट प्रेस, प्रयाग, से उन्हें छपाई का कुछ काम मिला। बाबू साहब बड़े असमंजस में पड़े। परन्तु मिले हुए काम को वापस न करने का निश्चय करने में भी उन्हें देर न लगी। अब उनकी मौलिक बुद्धि की उपज देखिए। उन्होंने शीशम के दो तख़्ते बनाये। एक तख़्ते में टाइप आदि सजाया और स्याही लगाकर छापना शुरू कर दिया। और मज़े की बात यह कि गवर्नमेंट प्रेस के सुपरिंटेंडेंट ने उनकी सन्तोषजनक छपाई की बड़ी सराहना की।

अपने प्रारम्भिक जीवन में इंडियन प्रेस कटरा में किराये के एक छोटे मकान में रहा। जब यह मकान बहुत छोटा पड़ने लगा तब एक दूसरे बड़े मकान में इंडियन प्रेस उठ गया। ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों इंडियन प्रेस का यह दूसरा भवन भी अपर्य्याप्त प्रतीत होने लगा। प्रेस का सङ्गठन अब प्रायः पूर्ण रूप से हो गया था। चिन्तामणि बाबू के प्रायः प्रत्येक प्रयत्न को सफलता और लक्ष्मी का आशीर्वाद प्राप्त होते रहने के कारण प्रेस को यथेष्ट सम्पन्नता प्राप्त हो चली थी और अब वे अपने अन्य स्वप्नों को कार्य्य-रूप में परिणत करने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने सबसे पहले तो एक ऐसे स्थान का प्रबन्ध करने का निश्चय किया जो प्रेस की भावी विस्तृति और विकास के लिए यथेष्ट हो तथा जिसे पुनः न बदलना पड़े। इस उद्देश की पूर्त्ति के लिए उन्होंने पायनियर रोड पर थोड़ी सी जगह मोल लेकर एक बँगला बनवाया।

इस समय हिन्दी में सुमुद्रित पुस्तकों और पत्रिकाओं का सर्वथा अभाव था। इस काल में अथवा इसके पूर्व हिन्दी-प्रदीप, हरिश्चन्द्र-चन्द्रिका आदि पत्र प्रकाशित हो रहे थे। परन्तु ग्राहक-संख्या प्राप्त करने की दृष्टि से ये सभी पत्र प्रायः असफल रहे। यथेष्ट ग्राहकों के अभाव में 'सरस्वती' कुछ समय तक एक सम्पादक-समिति के सम्पादकत्व में प्रकाशित होती रही। बाद को बाबू श्यामसुन्दर दास ने उसे अपने हाथ में लिया। परन्तु सरस्वती-सम्पादकत्व की वास्तविक कीर्त्ति एक दूसरे ही सरस्वती-पुत्र के मस्तक में लिखी थी। हमारा आशय हिन्दी के वयो-वृद्ध आचार्य्य पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी से है। चिन्तामणि बाबू का आदर्श सुप्रबन्ध, मनोहर मुद्रण और प्रकाशनोत्साह तथा प्रेम-पूर्ण सहयोग पाकर द्विवेदीजी ने अपने प्रखर पाण्डित्य, ओज-पूर्ण लेखन-शैली और अद्भुत सम्पादन-चातुरी का परिचय देते हुए अपने जीवन का सबसे अधिक उत्पादक काल भारतवर्ष की सर्व्वसम्मत राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास का पथ प्रशस्त करने में व्यय किया। इंडियन प्रेस को दो प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्तियों के व्यक्तित्व को पूर्णतया प्रस्फुटित करके देश के सम्मुख रखने का गौरव प्राप्त है,—चिन्तामणि घोष और महावीरप्रसाद द्विवेदी। और हिन्दी के इतिहास में इन दोनों महारथियों का नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित होगा।

काल पाकर 'सरस्वती' की लोक-प्रियता ख़ूब बढ़ी। इससे टक्कर लेने के लिए अनेक पत्रों ने जन्म लिया, परन्तु वे सब पर्याप्त साधनों के अभाव में अकाल मृत्यु ही के भागी होते रहे।

अधिक करना पड़ेगा, अपने कर्म्मचारियों के प्रति सहृदयता का व्यवहार तो अवश्य ही अधिक मात्रा में करना पड़ेगा, परन्तु साथ ही धन और यश का बहुमूल्य पुरस्कार भी उन्हें प्राप्त हुए बिना नहीं रहेगा।

चिन्तामणि बाबू सम्पादक का सम्मान करते थे और उसके उत्तर-दायित्व-पूर्ण पद की महत्ता समझते थे। सम्पादक के कार्य्य में हस्त-क्षेप करना वे अपराध समझते थे। आज-कल तो हम उस वातावरण में श्वास ले रहे हैं जिसमें हिन्दी-भाषा का अल्प से अल्प ज्ञान भी न रखनेवाले सज्जन बहुत गौरव-पूर्व्वक अपना नाम वास्तविक सम्पादक के नाम के ऊपर छपवाते हैं। इस सम्बन्ध में दो एक पत्रों ने नेतृत्व ग्रहण करके हिन्दी-संसार के सामने यह एक नवीन आदर्श उपस्थित किया है। चिन्तामणि बाबू ने स्वप्न में भी इस आदर्श की कल्पना नहीं की। उनका स्वाभिमान, उनकी लोकोत्तर क्षमता, उनकी उदार बुद्धि, उनकी असङ्कीर्ण स्वार्थ-प्रेरित कार्य्य-कुशलता उन्हें सदैव ही अपने अधिकार-क्षेत्र में रखती थी। उनके सामने

'स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः'

का आदर्श सदैव ही पथ-प्रदर्शन करने के लिए विद्यमान रहता था। यही नहीं, सच बात यह है कि वे कीर्त्ति से भागते थे। अभी गत वर्ष की बात है। उनके एक कृपा-पात्र सज्जन ने इंडियन प्रेस के परिचयात्मक एक लेख में उनकी कुछ प्रशंसा की थी। उस सम्पूर्ण लेख को सुनने के पश्चात् बाबू साहब ने कहा—मेरे जीवित काल में इन सब बातों को जाने दीजिए। इनसे कोई प्रयोजन नहीं। निदान प्रशंसात्मक अंशों को निकाल ही देना पड़ा। जीवन के संध्याकाल में भी कीर्त्ति और प्रशंसा से इतना विमुख होना क्या साधारण पुरुष के लिए सम्भव है?

हिन्दी में बाल-साहित्य के प्रकाशन का श्रीगणेश भी चिन्तामणि बाबू ने ही किया। पण्डित बदरीनाथ भट्ट बी० ए० के सम्पादकत्व में 'बाल-सखा' नामक बालोपयोगी मासिक पत्र को उन्होंने जन्म दिया। इस पत्र के द्वारा बालकों का असीम उपकार हुआ है। अब तो इसकी देखादेखी अन्य अनेक पत्र जन्म लेकर हिन्दी के बाल-साहित्य को पुष्ट बनाने के कार्य में संलग्न हैं।

सरस्वती ने जो क्षेत्र तैयार किया उसमें अन्य अनेक सहयोगिनी पत्रिकायें भी कार्य्य करने के लिए प्रविष्ट हो गई हैं। माधुरी, सुधा, विशाल भारत, त्याग-भूमि आदि अनेक दीर्घकाय पत्र हिन्दी के मासिक साहित्य को अधिकाधिक रोचक और उत्कृष्ट बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इनमें से किसी की तनिक भी निन्दा न करते हुए यह मुक्तकण्ठ से कहा जा सकता है कि 'सरस्वती' ने यथासम्भव अपने आदर्श से किसी भी समय स्खलन नहीं किया है, अपने कर्त्तव्य-पालन में कदापि त्रुटि नहीं की है।

इंडियन प्रेस की सबसे बड़ी विशेषता यह रही है कि पुस्तक यहाँ छपने के लिए देने पर छपानेवाला उसके सुमुद्रण और बढ़िया सज-धज के सम्बन्ध में सर्व्वथा निश्चिन्त रह सकता था। चिन्तामणि बाबू ने जीवन के प्रारम्भ काल में ही मुद्रण-कला की विशेषता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। जिन दिनों वे अपने महान् निश्चय को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए अपने बाल मुद्रणालय की नींव को सुदृढ़ बनाने में लगे हुए थे उन दिनों हवाघर के दफ़्र में दिन भर परिश्रम करने और फिर घर पर आकर कम्पोज़ करने, प्रूफ़ देखने अथवा छापने के काम से अवकाश पाने पर कभी आधी रात तक और कभी कभी सारी रात भर मुद्रण-कला-सम्बन्धी अँगरेज़ी पुस्तकों का अध्ययन करते रहते थे। प्रेस का सङ्गठन ठीक होते ही, मशीनों के आ जाने पर

उन्होंने इंडियन प्रेस के मनोहर मुद्रण-द्वारा हिन्दी और अँगरेज़ी दोनों भाषाओं के प्रेमियों को मुग्ध करना आरम्भ कर दिया। सुन्दर मुद्रण-विषयक उनका अनुराग और उसके सम्बन्ध की अपनी कीर्त्ति-रक्षा के लिए उनकी सतर्कता इतनी अधिक थी कि अनेक बार विपुल हानि सहकर भी उन्होंने अपने आदर्श व्रत को भंग नहीं किया। मुद्रक और प्रूफ़रीडर, जो अपने विषय के पण्डित होते थे, सदैव ही बाबू साहब की सौन्दर्यान्वेषिणी बुद्धि और दोषानुसन्धान-कारिणी दृष्टि का लोहा मानते थे। सच पूछिए तो स्वयं प्रूफ़ देखने के अटूट अभ्यास ने ही वृद्धावस्था में होनेवाले उनके नेत्र-शक्ति-ह्रास के लिए मार्ग परिष्कृत कर दिया।

चिन्तामणि बाबू ने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय श्रीयुक्त हरिपद घोष को प्रेस के कार्य में पूर्णतया प्रवीण कर दिया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि धीरे धीरे हरिपद बाबू ने प्रेस का सम्पूर्ण कार्य-भार अपने ऊपर लेकर चिर काल से परिश्रम-शील पूज्य पिता को थोड़ा विश्राम दिया था। हरिपद बाबू की वदान्यता, सुशीलता, दीन जन के प्रति सदयता और कर्मचारियों के साथ सद्व्यवहार-परायणता आदि गुणों ने उन्हें अत्यन्त लोक-प्रिय बना दिया था। परन्तु दुर्दैव को हरिपद बाबू का संसार में चिर काल तक रहना स्वीकार नहीं था। बेरी-बेरी नामक रोग के आक्रमण से उनका स्वर्ग-वास हो गया। उनके देहावसान के साथ साथ उनकी माता और बहन का भी परलोकवास हो गया। देवोपम गुणों से युक्त सुपुत्र, धर्म-पत्नी और सुपुत्री—तीन स्वजनों का वियोग किस धीर से धीर पुरुष को विचलित कर देने के लिए यथेष्ट नहीं है? कालान्तर में दुःख के प्रथम आवेश के प्रशमित होने पर चिन्तामणि बाबू ने पुनः अपने विश्राम को त्याग कर प्रेस का कार-बार सँभालने का निश्चय किया। परन्तु इस समय उनके द्वितीय सुपुत्र श्रीयुक्त हरिकेशव घोष ने अद्भुत मनोयोग और सुदक्षता पूर्वक प्रेस-कार्य का सञ्चालन करना शुरू किया। इस संकट-समय में उन्होंने अपना उत्तर-दायित्व समझा और अपने परिश्रम और चतुरता-पूर्ण कार्य-सम्पादन-द्वारा पूज्य वृद्ध महारथी को विश्राम-भवन से निकल कर पुनः कर्मक्षेत्र में प्रविष्ट होने की आवश्यकता ही नहीं अनुभव करने दी।

अनुभवी स्वर्गीय चिन्तामणि बाबू ने इंडियन प्रेस को एक लिमिटेड कम्पनी का रूप दे दिया था। इस सम्बन्ध में उन्होंने इतनी सुन्दर कार्य-प्रणाली का अनुसरण किया कि उनकी व्यावहारिक बुद्धि की प्रशंसा करनी ही पड़ती है।

प्रेस के सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गई। प्रयाग-विश्व-विद्यालय के विस्तार के लिए उसके आस-पास की भूमि ले लेने का विचार विश्व-विद्यालय के अधिकारियों ने किया। चिन्तामणि बाबू ने प्रेस की सामग्री और भवन सात लाख रुपयों में विश्व-विद्यालय के अधिकारियों के हाथ बेंच दिया और कुछ समय तक किराये के बँगलों में काम चलाते रहने के बाद कम्पनी बाग़ के कर्नलगञ्जवाले फाटक के सामने भूमि मोल ले कर पहले की भी अपेक्षा अधिक सुविशाल और सुविस्तृत प्रेस की इमारत बनवाई।

वर्त्तमान समय में इंडियन प्रेस का कार्य पूर्णतया सुसंगठित है। इंडियन प्रेस का प्रकाशन-कार्य इतना अधिक है कि बाहर से आनेवाले छपाई के काम की उसे अपेक्षा ही नहीं रहती। उसी का अपना काम इतना अधिक है कि उसे बाहर का काम करने की फ़ुर्सत ही नहीं रहती।

रामायण के अनेक संस्करण भिन्न भिन्न प्रेसों से प्रकाशित हुए हैं। इंडियन प्रेस ने रामायण का जो संस्करण
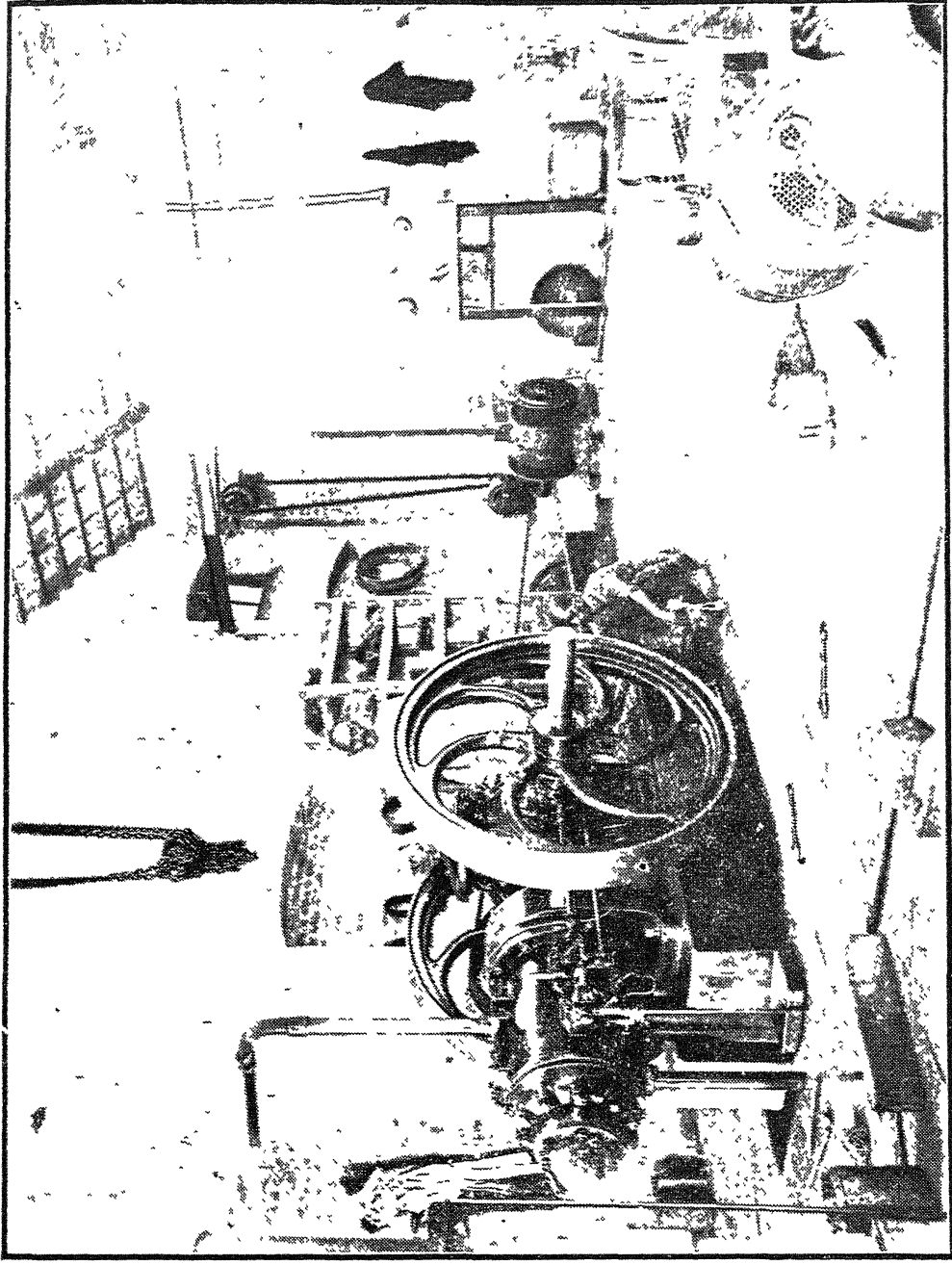
पावर हाउस, इंडियन प्रेस, लि०
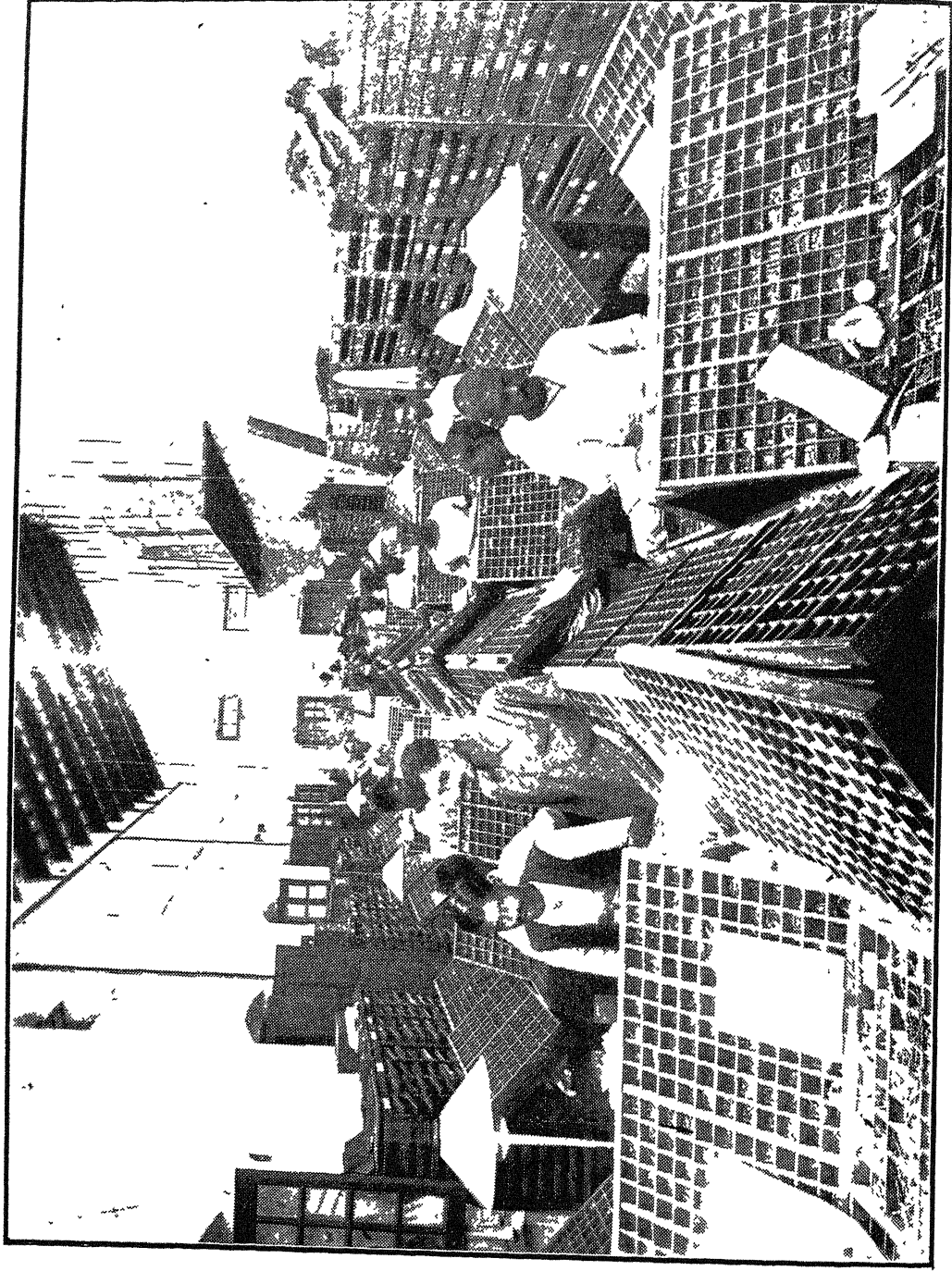
इंडियन प्रेस का हिन्दी-कम्पोज़िंग-विभाग का एक दृश्य

प्रकाशित किया है उसमें मूल के यथासम्भव शुद्ध होने की ओर बहुत अधिक ध्यान दिया गया है।

दो वर्षों से महाभारत का एक बहुत सुन्दर सचित्र संस्करण मासिक रूप में प्रकाशित हो रहा है। इसकी लोक-प्रियता इसी से सिद्ध है कि इसके छः हज़ार से अधिक ग्राहक हैं।

तीन-चार वर्षों से एक अँगरेज़ी-हिन्दी कोष बन रहा है। बँगला के लब्ध-प्रतिष्ठ कोशकार बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दास, जिन्होंने बँगला मे 'बँगला भाषार अभिधान' लिख कर अक्षय कीर्त्ति प्राप्त कर ली है, उसका सम्पादन कर रहे है।

हिन्दी और अँगरेज़ी भाषा में ग्रन्थ प्रकाशित करने के अतिरिक्त बँगला और उर्दू की पुस्तकें भी इंडियन प्रेस ने छापी है। बाबू ज्ञानेन्द्रमोहन दास का सर्वश्रेष्ठ कोश 'बँगला भाषार-अभिधान' भी इंडियन प्रेस से ही प्रकाशित हुआ है। उक्त ग्रन्थकार-द्वारा सम्पादित 'सटीक मेघनाद-वध' का सर्व्वश्रेष्ठ संस्करण इसी प्रेस से प्रकाशित हुआ है।

डाकुर रवीन्द्रनाथ ठाकुर की अनेक पुस्तकें, जो बाद को महाकवि की इच्छा से प्रासाधिकार-समेत विश्व-भारती को समर्पित कर दी गईं, इंडियन प्रेस से ही निकली थीं। इस सम्बन्ध में चिन्तामणि बाबू की उदारता उल्लेख-योग्य है। इसीप्रकार के उदार व्यवहार का परिचय उन्होंने माडर्न रिव्यू के सम्पादक श्रीयुत बाबू रामानन्द चटर्जी को दिया था। चटर्जी महोदय के तत्सम्बन्धी कृतज्ञत-पूर्ण उद्गारों को उन्हीं के मुख से सुनिए। सितम्बर के माडर्न रिव्यू में वे लिखते हैं —

"The present writer's Bengali monthly Prabasi was at first printed at the Indian Press. The work was well done. He records with gratitude that when, after giving up principalship of the Kayesth Pathshala, he started the Modern Review also, Babu Chintamani Ghosh brought out that magazine month after month, excellently printed on good paper and with unvarying punctuality, never asking for payment but leaving the editor-proprietor to pay when he could, which he began to do only when the journal was many months or perhaps a year old. But for this generous attitude of friendliness on the part of Babu Chintamani Ghosh, this monthly would perhaps never have seen the light of day, or, if at all born, would have died an untimely death. Fro, its editor-proprietor had no savings to finance it."

अर्थात् इन पंक्तियों के लेखक का बँगला मासिक पत्र 'प्रवासी' पहले इंडियन प्रेस में छपता था। वहाँ अत्यन्त प्रशंसनीय रूप से यह कार्य सम्पन्न हुआ। वह इस बात के लिए अत्यन्त कृतज्ञ है कि जब कायस्थ-पाठशाला के प्रिंसिपल पद से पृथक् हो कर उसने माडर्न रिव्यू नामक पत्र का सञ्चालन किया, बाबू चिन्तामणि घोष प्रति मास ठीक समय पर सुन्दर कागज़ पर बहुत बढ़िया ढङ्ग से छापते रहे और पत्र के सम्पादक तथा स्वामी से छपाई के रुपये का कभी तक़ाज़ा न करके उन्होंने उसे इच्छा और सुविधा के अनुसार देने के लिए स्वतन्त्र रक्खा और उसका अदा करना भी कई महीनों तक, शायद एक वर्ष तक, नहीं सम्भव हुआ। बाबू चिन्तामणि घोष के इस उदार मित्रतापूर्ण व्यवहार के बिना यह मासिक

पत्र कभी प्रकाशित ही न हो सकता और यदि प्रकाशित भी होता तो अधिक काल तक जीवित न रह सकता, क्योंकि इसके सम्पादक-स्वामी के पास उसे चलाने के लिए बचत की कोई रकम नहीं थी।

इस प्रकार की उदारता, जिसकी रामानन्द बाबू ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है, चिन्तामणि बाबू के सहृदयता-पूर्ण स्वभाव की एक सामान्य झलक थी। बाबू चिन्तामणि घोष, जैसा कि अनेक पूर्वोक्त बातों से भी पाठकों को स्पष्ट हो गया होगा, कीर्त्ति के भूखे कभी नहीं हुए। यही कारण है जो उनके सम्बन्ध की ऐसी बातों का लोगों को बहुत कम परिचय है। उनके अनुग्रह और आश्रय-प्रदान से अनेक साहित्यसेवियों ने शान्ति-पूर्वक सरस्वती देवी की आराधना की है। परन्तु उन्होंने जब कभी किसी की सहायता की तब यह कभी नहीं चाहा कि उससे वे अपनी कीर्त्ति बढ़ाने का प्रयत्न करें।

चिन्तामणि बाबू ने अपने प्रिय पुत्र हरिपद बाबू की स्मृति में 'हरिपद इनफ़र्मरी' नामक औषधालय की संस्थापना करके अपनी उस असित दीन-हितैषणा का परिचय दिया है जो उनके स्वभाव का प्रधान अङ्ग थी। विधवाओं और असहायों की सहायता करने में वे कभी पीछे नहीं हटे। सच बात यह है कि उनकी आर्थिक सहायता का द्वार उनके लिए सदैव ही खुला रहता था।

चिन्तामणि बाबू अब इस लोक में नहीं हैं। ७४ वर्ष की अवस्था में, स्वयं आश्रय-हीन की भांति जीवन के संघर्ष-क्षेत्र में पदार्पण करके और सम्पूर्ण जीवन भर औरों को आश्रय देते रह कर, वे इस संसार से चले गये। हम लोग दो-चार दिन शोक मना कर फिर अपने काम में लग जायँगे। ज्यों-ज्यों समय बीतता जायगा, त्यों-त्यों हमारे चित्तपट पर उनकी स्मरण-रेखा भी क्षीण होती जायगी। उन्हीं की भांति संसार में अनेक मनुष्य जन्म लेते हैं और अनेकों की आत्मा उनके मनुष्य पार्थिव शरीर से पृथक् हुआ करती है। जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आती है, वैसे ही संसार में जन्म-मरण का चक्र चला करता है। बहुतों की मृत्यु पर तो कोई दो आंसू भी नहीं बहाता। ऐसे लोगों से बाबू चिन्तामणि घोष में, क्या विशेषता थी, यह जान लेना, स्मरण रखना और इस पर मनन करके इसके अनुसार अपने जीवन-पथ को निर्धारित करना ही अब हमारा उद्देश होना चाहिए। बाबू चिन्तामणि घोष के जीवन से मनुष्य-मात्र को जो सन्देश मिलता है वह यही है कि सचाई के साथ, ईश्वर का नाम लेकर, शत्रु वा मित्र सबके साथ प्रेम और सहृदयता का व्यवहार करके परिश्रम, अध्यवसाय और संलग्नता-पूर्वक उस वस्तु की रचना करो जिसके योग्य तुम्हारे हृदय में उत्साह, उमङ्ग, कार्य्य-कारिणी शक्ति और प्रतिभा है। बहुत ऊँचे उचकने का प्रयत्न न करो, क्योंकि शीघ्रता वा अतिरेक कल्याण-कारी नहीं हो सकता। सदैव मर्य्यादित और सीमित रहने का प्रयत्न करो। जिस भवन की तुम रचना कर रहे हो उसमें सचाई और ईश्वर का नाम लेकर एक एक ईंट रखते जाओ। यदि तुम सचाई और ईमानदारी को अपना रुख़ा बनाओगे, यदि तुम मनुष्यता के नियमों को मानोगे तो निश्चित समझो कि तुम्हारा थोड़ा सा अग्रसर होना वास्तव में बहुत अधिक प्रगति का कारण होगा। राम का नाम लेकर मूषकवाहन गणेश ब्रह्मा के पास सब देवताओं से पहले पहुँचे थे। इसी प्रकार तुम भी अपने कार्य्यमय जीवन में ईश्वर का नाम लेकर उसके नियमों के सामने सिर नवा कर अपनी उद्देश-सिद्धि में उन लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सफल होगे जो नैतिक मर्यादा की अवहेलना करके सरपट दौड़ते और अन्त में मुँह के बल गिरते हैं—यही बाबू चिन्तामणि घोष के जीवन का सन्देश है।

जीवन-पथ पर अग्रसर होने वाले प्रत्येक स्त्री और पुरुष को चिन्तामणि बाबू का यही उपदेश है।

इंडियन प्रेस की संस्थापना और निर्म्माण करके तथा उसके द्वारा अपने व्यक्तित्व का परिचय देकर चिन्तामणि बाबू तो चले गये। वे बड़े भाग्यवान् पुरुष थे। केवल अर्थ-लाभ ही उनके भाग्य का सूचक नहीं है। उनके जीवन की सबसे बड़ी अनुकूल बात यह है कि उनकी प्रिय रचना का पोषण करनेवाले सुपुत्र उत्तराधिकारी के रूप में उन्हें प्राप्त हुए। हरिपद बाबू के सम्बन्ध में पहले ही निवेदन किया जा चुका है। उनके द्वितीय सुपुत्र श्रीयुक्त हरिकेशव घोष, जो इंडियन प्रेस के वर्त्तमान अधिकारी हैं, उनके जीवित काल में ही अपने सुप्रबन्ध, सहृदय व्यवहार और परिश्रम-द्वारा प्रशंसा पा चुके हैं। उनकी अध्यक्षता में इंडियन प्रेस ने उन्नति की है और भविष्य में उसके अधिकाधिक उन्नत होने की आशा है। ईश्वर करे, अपने महान् पिता का पदानुसरण करके, उन्हीं के सिद्धान्तों-द्वारा अपनी गति-विधि निर्द्धारित करते हुए वे इंडियन प्रेस को समुन्नति की ओर प्रगति-शील करें, यही नहीं उनसे भी आगे बढ़ जायँ, जिससे परलोक में 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' के अनुसार उनके पूज्य पिता को सन्तोष और आनन्द प्राप्त हो, यही ईश्वर से हमारी प्रार्थना है।

चिन्तामणि

[श्रीयुत चन्द्रधर मालवीय]

बुद्धि के निधान देखे गुणवान भारी भारी,
कर्मवीर ऐसे देखे उपमा न है कहीं।
दानी चारु चरित के देखे बहु धनाधीश,
जिनकी विमल कीर्ति चमक यहाँ रही॥
परम उदार देखे शीलवान महाराजे,
तिरस्कार एक का भी जिन्होंने किया नहीं।
जब देखा चिन्तामणि लौट कर देखा फिर,
पाई न समानता है बात यह सत्य ही॥

शोक-प्रकाश

[श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध']

"सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवनम् ॥"
"मृत्युः प्रकृतिः शरीरिणां जीवितु विकृतिमुच्यते बुधैः"
"अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवम्" ॥

ग्रन्थ-प्रकाशन गगन का जो था सु-विदित-सूर ।
काल-कुलिश-कर से हुआ वह चिन्ता-मणि चूर ॥१॥
भूलेंगे हिन्दू-सकल किसका मुख अवलोक ।
हिन्दी-हित-चिन्ता-निरत चिन्तामणि का शोक ॥२॥

संसार अनित्य है, जीवन ही मरण का पूर्वरूप है, यह सत्य है, फिर भी किसी महान् आत्मा का स्वर्ग-प्रस्थान हृदय को व्यथित बनाये बिना नहीं रहता । इसी कारण श्रीमान् बाबू चिन्तामणि के स्वर्गारोहण से आज हम मर्माहत हैं । हिन्दीभाषा के सम्बन्ध से हम लोग उनके अनुग्रह-ऋण के ऋणी हैं । हिन्दी-देवी की जो अर्चना उन्होंने की है वह चिर-काल तक हम लोगों को उनके स्नेह-पाश में बाँध रक्खेगी । हिन्दी-पुस्तकों के सुन्दर और नयनाभिराम संस्करण निकाल कर उन्होंने जिस महान् उद्योग का सूत्रपात किया, जो उच्च आदर्श हम लोगों के सामने रक्खा, वह चिर-स्मरणीय ही नहीं, चकितकर भी है । उनका व्यक्तिगत जीवन भी उदार और उन्नत था । मातृ-भाषा न होने पर भी हिन्दी-भाषा के विषय में उन्होंने जो ममता प्रकट की वही इस बात का पुष्ट प्रमाण है । अध्यवसायशीलता का जो उदाहरण उन्होंने अपने जीवन में उपस्थित किया वह अद्भुत ही नहीं, आचरणीय भी है । जो अपने जीवन का आदि-काल दस रुपये की नौकरी करके बिताता है उसका मृत्यु-काल दस-लक्ष की सम्पदा से अलंकृत है, क्या यह आश्चर्य-जनक व्यापार नहीं । परमात्मा हम लोगों में ऐसे ही पुरुष-रत्न उत्पन्न करें और उनकी आत्मा को शान्ति दें, अन्तिम-कामना यही है । इस अवसर पर हम उनके सु-योग्य पुत्रों और कुटुम्बियों के साथ हार्दिक समवेदना प्रकट करते हैं ।
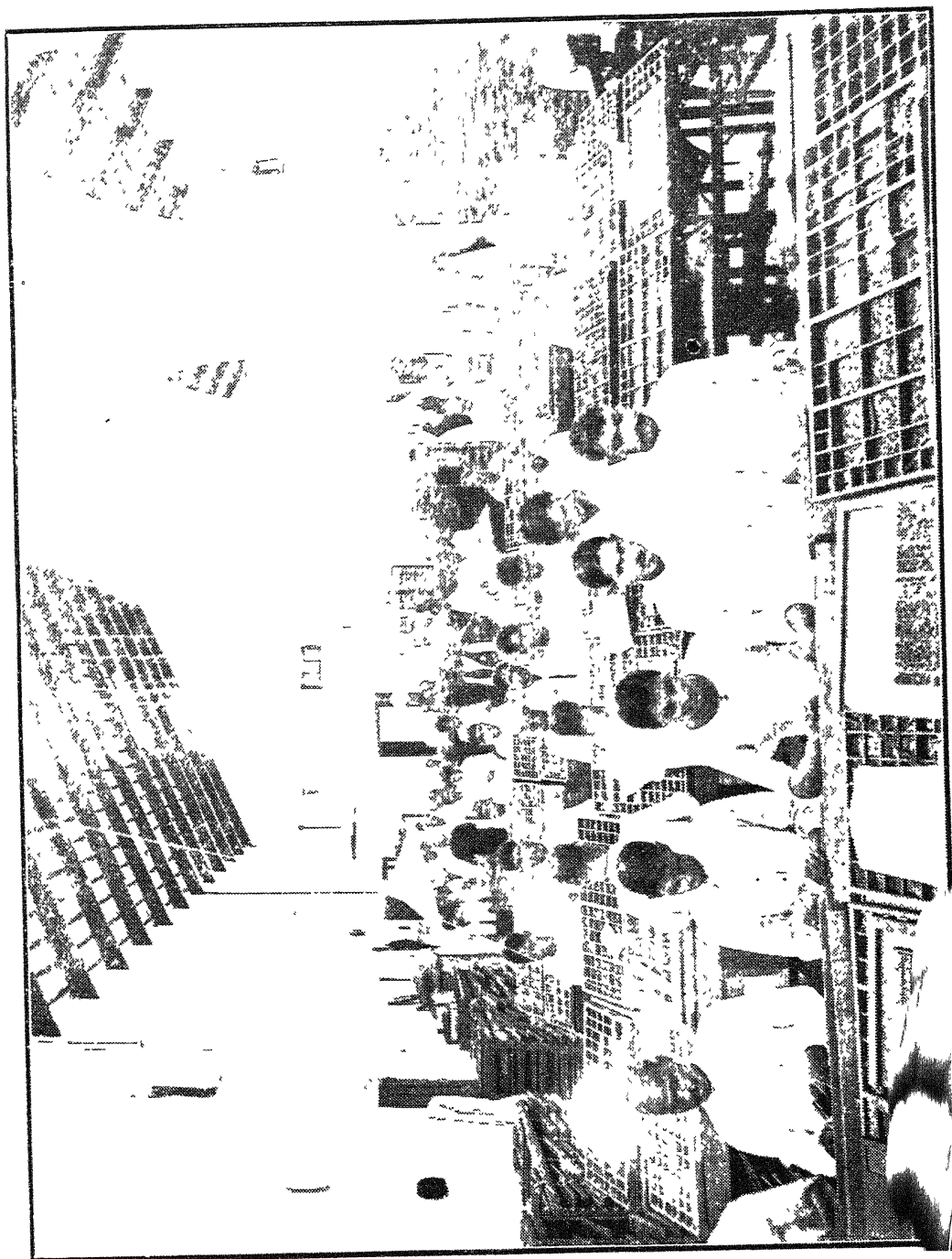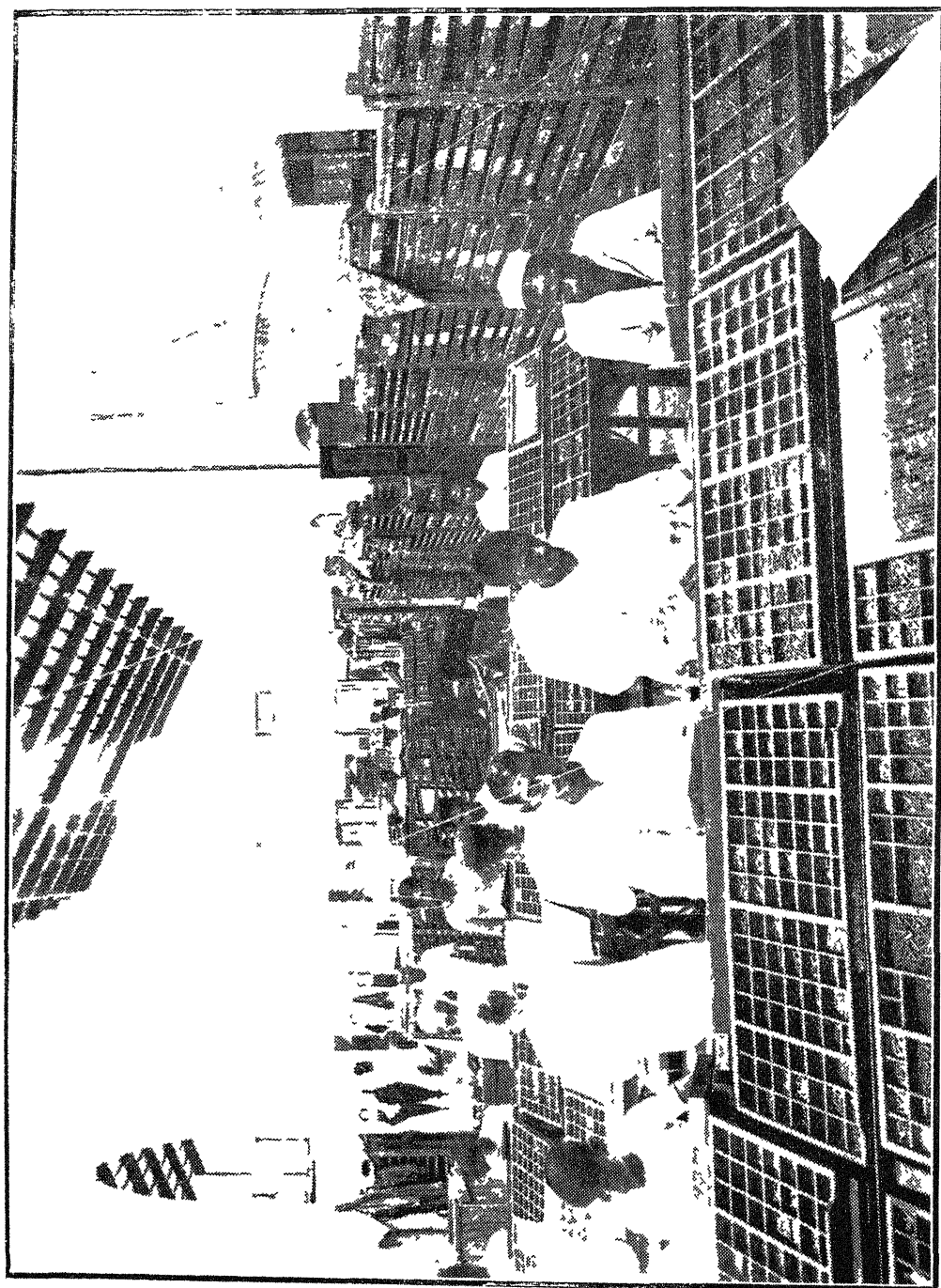
इंडियन प्रेस का अँगरेज़ी कम्पोज़िंग-पीस-विभाग का एक दृश्य

सद्गुण-परिचय

[श्रीयुत चन्द्रमौलि सुकुल, एम० ए०, एल० टी०]

याग के प्रसिद्ध इंडियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष का पाञ्चभौतिक कलेवर इस संसार में नहीं है। अब उनका नाम-मात्र अवशिष्ट है। परन्तु वह नाम, उस कलेवर से, अनेक गुना अधिक स्थायी है। बाबू चिन्तामणि घोष में वे वे गुण थे और उन्होंने वे वे काम किये कि हिन्दी-संसार उनका चिरऋणी रहेगा। उस समय की भावना मन में कीजिए जब संस्कृत के अमूल्य ग्रंथों तथा पाश्चात्य विज्ञान के आकर्षक सिद्धान्तों का ज्ञान केवल हिन्दी जाननेवालों को नहीं हो सकता था, अब इस समय इंडियन प्रेस आपकी सेवा अनेक ग्रंथरत्नों से करने को तैयार है। इसका श्रेय चिन्तामणिजी को है। आपने धन से, मान से, विद्याव्यसन के गौरव से, देश-सेवा के भाव से, व्यावसायिक व्यवहार से—जिस प्रकार से भी हुआ—देश के तथा विदेश के भी विद्वानों को उत्साह दिया, उनकी प्रतिष्ठा की और उनके द्वारा संस्कृत, फ़ारसी, हिन्दी, उर्दू, बँगला, अँगरेज़ी आदि भाषाओं के अनेक सद्ग्रंथ तैयार कराये। बंगाली होकर आपने हिन्दी की जो सेवा की उससे आपकी सहृदयता तथा हिन्दी की सर्वोपादेयता सिद्ध होती है।

चिन्तामणि घोषजी में जो अनेक गुण भरे थे उनका परिचय हमारे प्रान्त के प्रायः सभी विद्वानों को है। आपके गुणों का कीर्तन अन्य लोग 'सरस्वती' के इस 'श्राद्धाङ्क' में करेंगे। मुझे केवल एक छोटी सी बात का उल्लेख करना है, जिससे यह सिद्ध होगा कि आपका सम्पर्क किस प्रकार अपना प्रभाव दूसरों पर डालता था।

पहले पहल श्रीमान् मैकेंज़ी साहेब ने, जो आज-कल शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर हैं, मेरा परिचय चिन्तामणि बाबू से कराया। दो-चार बार की मुलाक़ात में मुझे निश्चय हो गया कि इस व्यक्ति में कुछ विशेष शक्ति है, विशेष दृढ़ता है और विशेष चरित्रबल है। उन दिनों मेरी उमर थोड़ी थी (सन् १९११ की बात है), उपदेश की आवश्यकता थी। एक दिन मैंने पूछा कि जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए मुझे क्या करना चाहिए। वृद्ध पुरुष ने हँसकर कहा, "हम तो कोई साधु महात्मा नहीं कि आपको उपदेश दें, तथापि यदि आप पूछते हैं तो हम कहते हैं कि आप वही कीजिए जो हमने किया है।" मैंने पूछा कि आपने क्या किया। उन्होंने उत्तर दो अँगरेज़ी शब्दों में दिया—Honesty and Industry, अर्थात् सचाई और परिश्रम। फिर इन दोनों शब्दों की व्याख्या करदी और अपनी जीवनी से अनेक उदाहरण

इन गुणों की पुष्टि करने के लिए दिये। एक घंटा समय लगाकर मेरे हृदय में इन गुणों का महत्त्व उन्होंने ऐसा जमा दिया कि मैंने इस उपदेश को सर्वथा पालन करने का संकल्प कर लिया। परिणाम यह हुआ कि जिन कामों को मैं पहले असम्भव और दुःसाध्य समझता था उन्हें सम्भव और साध्य समझने लगा। उसी उपदेश के कारण मुझे जीवन में सफलता प्राप्त हुई; मानो मुझे कार्य करने की और संसार में रहने की कुंजी मिल गई। उस उपदेश पर जितना विचार करता हूँ, उतना ही महत्त्व मुझे उसमें दिखाई देता है। अब जो लोग मुझसे उपदेश मांगते हैं उन्हें वही उपदेश देता हूँ। मेरे लिए चिन्तामणि का उपदेश चिन्तामणि-मन्त्र होगया, जिसके लिए मैं उनका परमकृतज्ञ हूँ।

इतना ही नहीं, मैंने बाबू चिन्तामणि घोष के प्रत्येक कार्य में सचाई और परिश्रम की छाप देखी; उन्हें झूठी दुनियादारी नापसन्द थी; जो कुछ वे कहते थे खूब सोच-विचार कर कहते थे और उस पर दृढ़ रहते थे। व्यवसाय में भी उनका पूरा अध्यवसाय था—सच्चा काम, सच्ची बात, सच्चा लेना-देना। आहा! वह समय याद आता है जब चिन्तामणि बाबू आफ़िस के बड़े लम्बे कमरे के एक छोर पर बैठते थे और प्रेम के साथ आगन्तुकों तथा मित्रों से बातें करते थे। अब वह समय गया। चिन्तामणि बाबू की आत्मा परलोक में है। हम भी ईश्वर से प्रार्थना करते है कि उनकी आत्मा को सद्गति मिले, चिरस्थायी शान्ति मिले।

शोकोच्छ्वास

[श्रीयुत आनन्दिप्रसाद श्रीवास्तव]

१

शोणित क्या था ? कर्मवीरता थी रग रग में,
बालू पर थी भीत उठा दी तुमने जग में,
ठोकर को कर लिया सदा उन्नति का कारण,
निन्दक जन को समझ लिया था अपना चारण,
राई को पर्वत किया एक अचम्भा होगया,
कितनों का आलस्य भी जिसे देख कर खो गया।

२

सबसे पहले तीक्ष्ण बुद्धि का तुमको बल था,
निर्णय के पश्चात एक निश्चय निश्चल था,
पत्नी-सी कर्तृत्व-शक्ति वश में चलती थी,
बन कर काली वही विघ्न का दल दलती थी,
कम्पित-सी थी आपदा सदा तुम्हारी भीति से,
जीवन का संग्राम था चकित विकट रण-रीति से।

३

परिचारिका-समान झुकाये माथ सदा ही,
इसी लिए तो रही सफलता साथ सदा ही,
मिट्टी भी ले लिया हाथ में तो सोना था,
हुआ तुम्हारे किये कभी जो अनहोना था,
एक बार तुमने पुनः सच्ची दिखला दी लगन,
विधि-सुविधा-निर्माण का खिला दिया जग में सुमन।

४

पर का दुख तो देख सके थे तुम न कभी भी,
पर को पर-सा लेख सके थे तुम न कभी भी,
कर्मचारियों के समूह पर परम प्रीति थी,
सद्व्यवहाराभार आदि की सुषम-रीति थी,
दया दीन पर तो सदा करते थे तुम चाव से,
हो जाते थे मुग्ध सब सुष्ठु तुम्हारे भाव से।

५

विपुल जनों का काम चला करता तुमसे था,
विधवाओं का वृन्द पला करता तुमसे था,
भिक्षुक जन पर सदा तुम्हारा अधिक प्रेम था,
साधित तुमने किया उन्हीं का अधिक क्षेम था,
रोगी-सेवा का तुम्हें रहता कितना ध्यान था ?
बड़ा औषधालय उसी के हित एक विधान था।

६

क्या था जग में किया नहीं जिसका अर्जन था,
जिससे पाया मान न ऐसा कौन सुजन था ?
अर्जन-द्रव्य का मान दान को तुम समझे थे,
निज सुख, पर-सुख के विधान को तुम समझे थे,
तिस पर भी मन में भरा भाव विनय का था गहन,
मानो फल का भार तरु झुक कर करता था वहन।

७

भाषा-भाग्याकाश नवल तुमने निर्माया,
उसमें द्युतिमय वृन्द धवल बहुभाँति सजाया,
हिन्दी-सेवा-भाव तुम्हारा देख देख कर,
उसमें ऊँची सुरुचि तुम्हारी लेख लेख कर,
हिन्दी-भाषी जन सभी, नित लज्जित होते रहे,
अपने भाषा-प्रेम का गर्व सदा खोते रहे।

८

सरस्वती को सरस्वती का दिया रूप था,
सर्वश्रेष्ठ पत्रिका किया साहित्य-स्तूप था,
उसकी सेवा की सदैव ही अविचल गति से,
बड़े बड़े साहित्य-रथी जन की सम्मति से,
हिन्दी के उत्थान का सिर पर श्रेय-मुकुट रहा,
उसे राष्ट्रभाषा समझ उसके हित सब कुछ सहा।

९

कौन कौन से काम न जाने तुम करते थे,
जाने किस किस भाँति मनुज का मन हरते थे,
किसी बात पर अगर कभी तुम चित धरते थे,
तो उसके हित विघ्न-सिन्धु को भी तरते थे,
आकांक्षायें थीं बड़ी बड़ा हृदय का देश था,
उसके भीतर भक्ति से खींच लिया सर्वेश था।

१०

करता ईर्ष्या भाग्य देख कर देववर्ग था,
तुमने अपने हेतु कर लिया जगत स्वर्ग था,
सोने की थी भूमि और सोने का घर था,
अमर नाम था अगर नहीं तो नाम अमर था,
फिर किस लालच से कहो स्वर्ग-लाभ तुमने किया,
क्यों असार समझा इसे क्यों भूतल को तज दिया?

११

निज सुवनों का ध्यान न क्यों तुमको आया था?
करना जन-मन-म्लान तुम्हें क्योंकर भाया था?
विधवाओं का क्लेश भूल क्या तुम्हें गया था?
यह प्रिय भारत देश भूल क्या तुम्हें गया था?
भिक्षुक-सेवा-भार है योग्य करों को जो दिया,
तो भी निज कर से स्वयं सेवा-अवसर खो दिया।

१२

भेजा था क्या स्वयं निमन्त्रण विश्वम्भर ने?
इंगित कुछ कर दिया उन्हीं के अलख सुकर ने?
आकर्षित क्यों किया अलौकिकता सुन्दर ने?
विघ्न कहाँ है वहाँ? गये जिनका मद हरने,
वह कैसा सन्देश था कर जिसको स्वीकार तुम,
छोड़ गये संसार का सार शरीरागार तुम?

१३

सुनते थे जब कभी कथा विद्यासागर की,
बाल-वयस की बात और फिर जीवन भर की,
बह चलते थे अश्रु नयन से तभी तुम्हारे,
मन में आता उसे स्मरण कर यही हमारे—
उनसे मिलने के लिए स्वर्गलोक को तुम गये,
पर देखोगे और भी रंग वहाँ के तुम नये!

१४

स्वर्ग सजाया गया बड़े भावों से होगा,
स्वर्ण-साज से स्नेह-सलिल-स्रावों से होगा,
सारा देवसमाज द्वार पर आया होगा,
शुभागमन तव जान वहाँ सुख छाया होगा,
स्वागत करने के लिए आगे हो सुरपति स्वयं,
खो देंगे कुछ काल को दृग-पलकों की गति स्वयं।
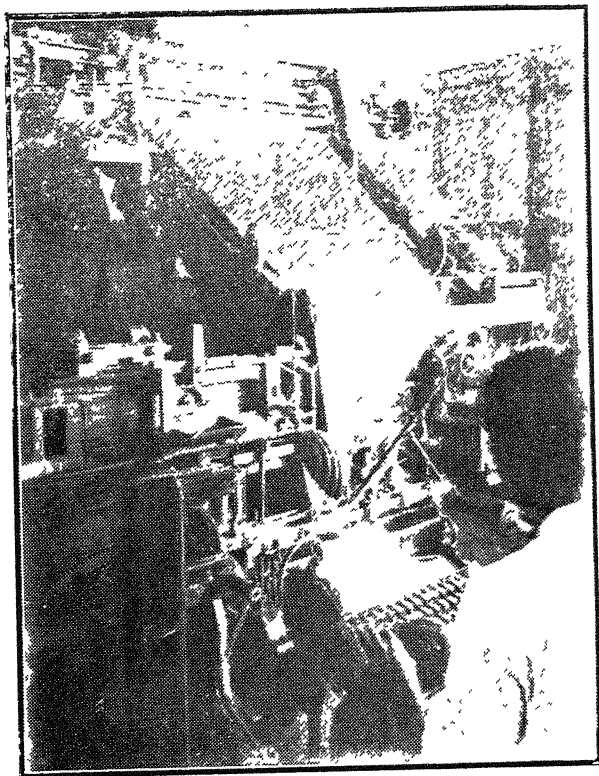
लाइनो टाइप-विभाग
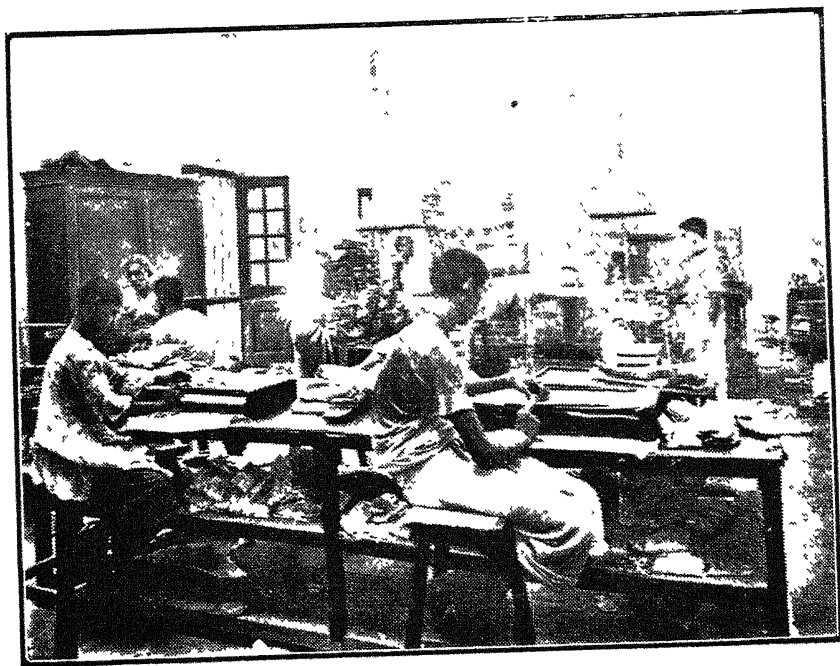
टाइप-फ़ाउंडरी-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०
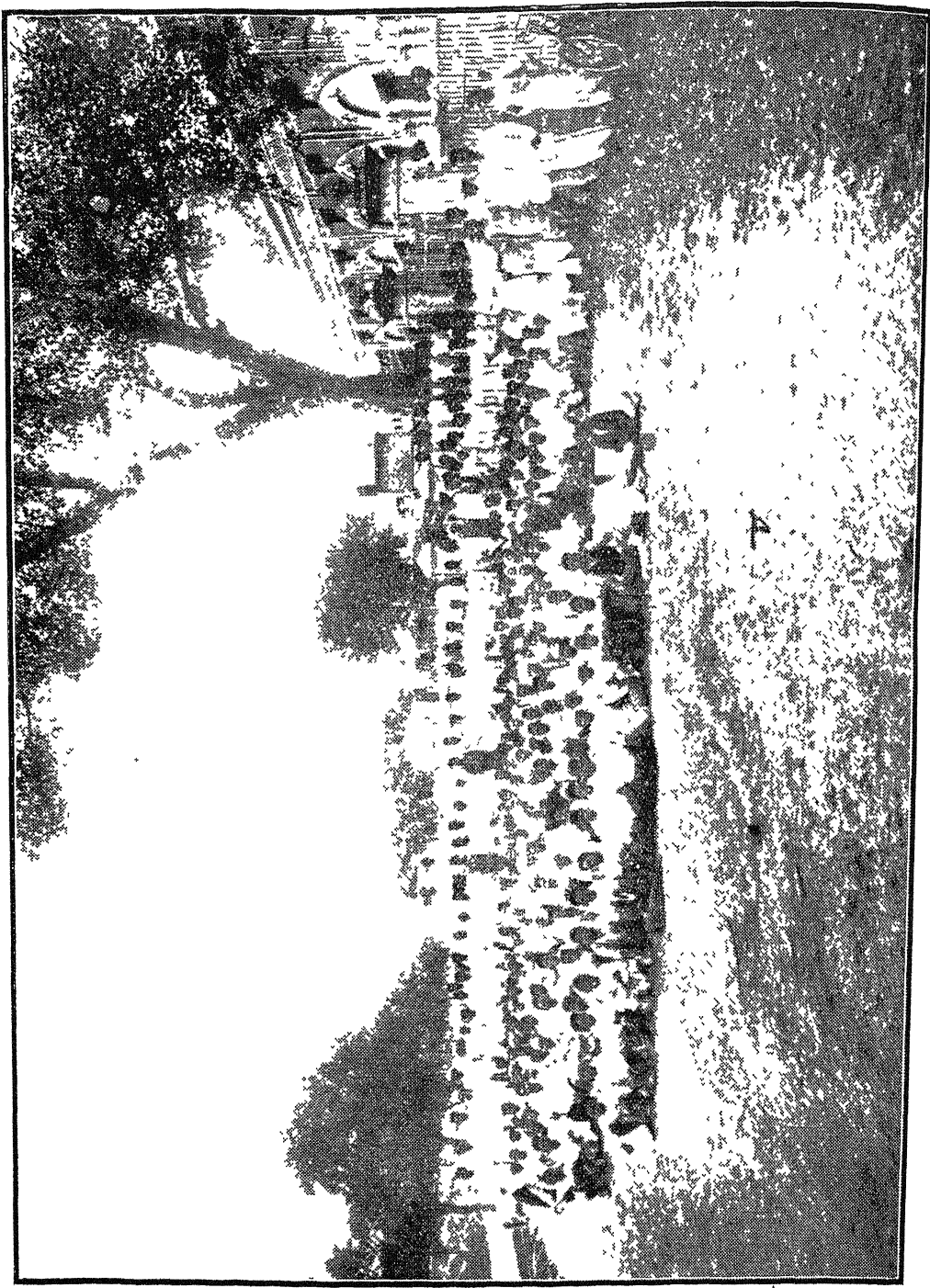
फ़ैक्टरी-विभाग के कर्मचारी, इंडियन प्रेस, लि० (हेड आफ़िस)

१५

फिर बोलेंगे, "भाग्य हमारे उदित हुए हैं,
जो आने को आप इधर ही मुदित हुए हैं,
स्वागत है इस जगह आपका बड़ा काम है,
नियत आपके लिए किन्तु वैकुण्ठ-धाम है,"
सुन करके यह बात जो आप कहेंगे विनय से,
उसे कहेंगे किन्तु हम कहते हैं कुछ सभय से।

१६

"देवराज की हुई कृपा मुझ पर भारी है,
उचित क्षुद्र के लिए न इतनी तैयारी है,
पद-सेवा कर सकूँ यही इच्छा प्यारी है,
किन्तु दास यह हिन्दी-सेवा-व्रतधारी है,
विनती करना है यही मुझे विष्णु भगवान से,
मेरे भारत देश के रक्षक परम प्रधान से।

१७

"हिन्द देश में किस प्रकार हिन्दी-दुर्गति है,
बतलाऊँ किस भांति ? स्तब्ध हो जाती मति है,
हिन्दी का उद्धार करो तुम नाथ शीघ्र ही,
हिन्दी का भाण्डार भरो तुम नाथ शीघ्र ही,
अधिक शक्ति दो और दो जन्म मुझे फिर भी वहीं,
मुझसे कुछ भी हो सकी हिन्दी की सेवा नहीं।"

१८

हिन्दी-माता-वदन आज क्यों म्लान न होवे ?
तव गुण-गण का यहां आज क्यों गान न होवे ?
खो देने पर तुम्हें मूल्य का भान न होवे ?
क्यों अरि का भी विगत आत्म-सम्मान न होवे ?
तुम भी तो इस प्रान्त के एक मनस्वी वीर थे,
तुम मनुजों के मध्य में एक यशस्वी धीर थे !

१९

जाओ, निज प्रिय-वृन्द किन्तु तुम भूल न जाना,
जहाँ रहो बस श्रेय वहीं से नित बरसाना,
आनन्दित रह स्वयं हमें आनन्दित करना,
वन्दित होना और हमें भी वन्दित करना,
तुमको इस जग-जाल में जन्म न लेना हो कभी,
परमशान्ति की प्राप्ति हो यही चाहते हम सभी !

अश्रुतर्पण

[श्रीयुत नयनचन्द्र मुखोपाध्याय]
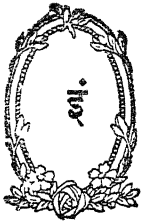
डियन प्रेस, प्रयाग, के जन्मदाता दानवीर तथा कर्मवीर बाबू चिन्तामणि घोष अब इस संसार में नहीं हैं। गत अधिक श्रावण की कृष्णा एकादशी तदनुसार ११ अगस्त शनिवार को ६ बजे रात्रि में उन्होंने अपनी ऐहलौकिक लीला का संवरण कर लिया और जीवन के उस पार अमरधाम की यात्रा कर गये। त्याग की अनुपम महिमा का अनुभव करके उन्होंने प्रायः आजन्म संन्यास व्यतीत किया था और सदा अपने कर्त्तव्य पर पर्वत के समान अटल रहे। आत्म-शक्ति पर दृढ़ विश्वास रखने से मनुष्य उन्नत हो सकता है, इस महामन्त्र की सिद्धि के निमित्त उन्होंने आजन्म 'शव-साधना' की थी, अन्त में दीर्घ जीवन में अपने कर्त्तव्य की समाप्ति कर अपनी साधना का महामन्त्र अपने सुयोग्य पुत्रों को देकर स्वयं सुरधाम को चले गये। इधर उनके विश्व के प्रति उदार प्रेम, चरित के माधुर्य तथा बन्धुत्व से वञ्चित हो जाने से सैकड़ों व्यक्ति अपने हाहाकार से पृथिवी-तल को व्याप्त कर रहे हैं।

भारत-माता, आज तुम्हारे एकनिष्ठ भक्त सन्तान तुममें तल्लीन चिन्तामणि—इंडियन प्रेस, इंडियन पब्लिशिङ्ग हाउस, इंडियन फ़ोटो इंग्रेविंग वर्क्स, इंडियन परफ़्यूमरी आदि के प्रवर्तक तथा स्वामी—जिनके जीवन की तन्त्री में तुम्हारी साधना का सुर रात-दिन बजा करता था, उन तुम्हारी मुक्ति की कामना करनेवाले महापुरुष ने अपने सुदीर्घ जीवन की लीला का संवरण करके साधना के उचित धाम के लिए महाप्रस्थान किया है। यद्यपि इस मृत्यु के सम्बन्ध में शोक करने का कोई भी कारण नहीं है, तो भी जिस समय उनके उदार हृदय की बातों का स्मरण होता है, जिस समय उस नीरवकर्मी की कर्मद्योतना हृत्तन्त्री को झङ्कृत करती है,—जिस समय उस महापुरुष की महान् महिमा हृदय में आत्म-गौरव को जागृत करती है, उस समय हृदय शोक के असह्य भार से झुक जाता है, अन्तरात्मा काँप उठती है, आँखों में आँसू भर आते हैं। संयम के बाँध से वह रोका नहीं जा सकता। वेदना के भीषण आघात से वह शतशः विध्वस्त हो जाता है।

चिन्तामणि बाबू चले गये, किन्तु उनकी स्मृति का अवलम्बन करके हम जब तक जीवित रहेंगे, आँसुओं से उनका तर्पण किया करेंगे। उनकी पुण्य-स्मृति, उनका आदर्श चरित्र, उनकी महत्ता हमारी जीवन-यात्रा में पथ-प्रदर्शक होगी।

बँगला के सारस्वत-यज्ञ के ऋत्विक्, हिन्दी-संसार में नवीन भाव-गङ्गा का स्रोत बहाने में भगीरथ, नाना प्रकार के सत्साहित्य के प्रचारक बाबू चिन्तामणि अपने आदर्श

जीवन में स्थापित किये हुए वाग्देवी की पूजा के मङ्गल-घट को अपने सुयोग्य पुत्रों के गौरव-मण्डित मस्तक पर रख कर स्वयं सुरधाम को चले गये। स्नेहमय का आशीर्वाद उनके हृदय को बलवान् बनाये, यही हम शोकार्त व्यक्तियों के हृदय की एकान्त प्रार्थना है।

वैराग्य, त्याग या संन्यास भारत की विशेषता है। यह गोमुखी के पवित्र स्रोत की धारा के समान प्रवाहित होकर चिन्तामणि बाबू के जीवन में अपूर्व प्रभा से विकसित हो उठा था। त्याग के मोहक आदर्श से अनुप्राणित हो कर चिन्तामणि बाबू ने संन्यास-जीवन व्यतीत किया था। अपनी अलौकिक प्रतिभा तथा कार्यदक्षता के प्रभाव से विपुल धन तथा सम्पत्ति का उपार्जन करके भी ऐश्वर्य का गर्व उनको छू तक नहीं गया था। सरकार से उन्हे केवल २५) मासिक पेंशन मिलती थी, उन्हे केवल उसी पर पूरा भरोसा था। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि मैं इन्हीं २५ रुपयें से अपना निर्वाह कर सकता हूँ।

१० अगस्त १८५४ ईसवी को बाली में चिन्तामणि बाबू का जन्म हुआ। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ७४ वर्ष की थी। ७५ वे वर्ष के पहले ही दिन उन्होंने महाप्रस्थान किया। उनकी जन्मपत्री का फल अद्भुत रूप से घटा करता था। ऐसी जन्मपत्री मैंने और किसी की कभी नहीं देखी। वे प्रत्येक वर्ष के आरम्भ मे अपनी जन्मपत्री देखते और उस वर्ष के फल के अनुसार ही कार्य करते। मुझे स्मरण है कि एक बार उनके वर्षफल में लिखा था—"फलं बन्धुविच्छेदः।" यह सुनते ही उन्होंने कहा कि मेरे मित्र तो ध्रुव सरकार है, उनसे विच्छेद हो ही नहीं सकता। देखें, हमारे जन्मपत्र का फल किस तरह घटता है। उसी वर्ष उनके ज्येष्ठ भान्जे से किसी बात पर मतभेद हो जाने के कारण अनबन होगई। अन्त मे चिन्तामणि बाबू ने कहा कि भान्जे के समान कोई भी मित्र नहीं है, उनसे अनबन हो ही गई। देखिए, जन्मपत्र का फल कैसा ठीक उतरा। जन्म-पत्र पर उनका पूर्ण विश्वास था। उनमे ७४ वर्ष तक का वर्ष-फल लिखा था। इसी से उन्होंने मुझसे कई बार कहा था कि पचहत्तरवें वर्ष मेरी मृत्यु होगी।

संसार मे जिन लोगों ने महत्ता प्राप्त की है वे सभी माता-पिता के भक्त रहे है। चिन्तामणि बाबू के सम्बन्ध मे भी यही बात कही जा सकती है। बचपन में ही उनके पिता का देहान्त हो गया था। आज से दो वर्ष पहले माताजी का भी सुरधाम को प्रयाण हो गया। चिन्तामणि बाबू ने माता की आज्ञा का उल्लङ्घन कभी नहीं किया। एक बार उनके नौकरों में से किसी ब्राह्मण ने दुष्टता की थी, इससे चिन्तामणि बाबू ने उसे जवाब दे दिया। वह ब्राह्मण उनकी माता को पूजा के लिए गङ्गाजल ला देता था। उसने माताजी के पास जाकर कहा कि बाबू साहब ने मुझे निकाल दिया है। यह सुनकर दयालुहृदय माता ने उसे आश्वासन देकर कहा कि आज तुम यहीं रहो, मैं रात मे चिन्तामणि से कहूँगी। रात्रि मे जब वे भोजन कर रहे थे तब माताजी ने आकर कहा कि जो महराज हमारा गङ्गाजल लाता है उसे तुमने निकाल क्यो दिया? उन्होंने उत्तर दिया कि उसने चोरी की है। यह सुनकर वृद्ध माता ने कहा कि नौकर-चाकर तो ऐसा करते ही रहते है, इसका ख़याल न करना चाहिए। साधारण से अपराध पर किसी की रोज़ी न मारो। पूर्व-जन्म में तुमने बड़ा पुण्य किया था, इसी से भगवान् तुम्हारे हाथ से इतने आदमियों को अन्न देते हैं। जिस दिन तुम समझोगे कि ये सब लोग हमारी बदौलत खाते-पीते हैं, उस दिन तुम्हारा इतना बड़ा कारबार सब नष्ट हो जायगा। इसी से कहती हूँ कि किसी की रोज़ी मत मारो। जहा तक हो सके, सहन करते रहो। माता

की इस आज्ञा को अपने जीवन में वे कभी नहीं भूले। कोई भी नौकर बड़ा से बड़ा अपराध करने पर भी जब अपना अपराध स्वीकार कर लेता था तब चिन्तामणि बाबू उसे तुरन्त ही क्षमा कर देते थे। चिन्तामणि का सा विशाल-हृदयवाला स्नेहमय और नियम का पाबन्द स्वामी कोई विरल होगा।

१९२० ईसवी के आरम्भ में उनके परिवार पर घोर विपत्ति आई। फ़रवरी से अप्रैल के भीतर ही भीतर बेरी-बेरी रोग के भीषण प्रकोप से उनकी पत्नी, ज्येष्ठ पुत्र, ज्येष्ठ कन्या तथा रक्तामाशय से बड़ी बहन की मृत्यु होगई। चिन्तामणि बाबू के हृदय पर इससे बड़ा आघात पहुँचा। वास्तव में उसी समय से उनका हृदय बिलकुल दब गया, परन्तु काम-काज के समय उनके चेहरे पर शोक का चिह्न तक नहीं दिखाई पड़ता था। हाँ, कभी कभी अवकाश के समय उनके चेहरे से यह साफ़ झलकता था कि वे रात-दिन शोक-सागर में डूबे रहते हैं। इसी शोक की मर्मान्तक व्यथा से उनका स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो गया था। अपनी पत्नी तथा पुत्र की स्मृति-रक्षा के निमित्त उन्होंने 'हरिपद इनफ़र्मरी' तथा 'गोपाल सुन्दरी चेरिटेबल्डिसपेंसरी' स्थापित किया है। इस दातव्य चिकित्सालय में सैकड़ों नर-नारियों की चिकित्सा होती है।

चिन्तामणि बाबू जिस समय पायनियर प्रेस के आफ़िस में डिस्पैचक्लर्क का काम करते थे, उसी समय प्रूफ़, गेली, केस, रैक, न्यूज़, स्टैंडिङ्ग मैटर, स्टीक, चेस्, हुइल, सिलेंडर एम आदि बहुत से प्रेस-सम्बन्धी शब्दों से उनका परिचय हुआ था। इन शब्दों को सुनकर उन्हें बड़ा कौतूहल होता था। उस समय उन्हें इस बात का ज़रा भी पता नहीं था कि छापाख़ाना ही मेरे भावी जीवन का मार्ग निर्दिष्ट करेगा और मुझे उन्नति के शिखर पर पहुँचा देगा।

पायनियर में उन्होंने बड़ी सफलता के साथ कार्य किया था। उनकी प्रखर बुद्धि, अथक परिश्रम तथा अद्भुत कार्यदक्षता पर अधिकारी-वर्ग मुग्ध थे। यहाँ सात वर्ष काम करके वे मेट्रिओरोलाजिकल आफ़िस के हेड क्लर्क हो गये और वहां भी अच्छी ख्याति प्राप्त की। परन्तु चिन्तामणि बाबू अपने इस पद से सन्तुष्ट न थे। पायनियर में काम करते समय प्रेस के सम्बन्ध में उन्हें जो कुछ अनुभव हुआ था, वे सारी बातें उनके मस्तिष्क में चक्कर काट रही थीं और प्रेस खोलने के लिए उनके हृदय में बड़ी उत्सुकता उत्पन्न हो रही थी। संयोगवश उन्हें एक छोटा-सा पुराना प्रेस भी सस्ते दाम पर मिल गया, तभी से उन्होंने अपने इस सदनुष्ठान का श्रीगणेश किया। वे स्वयं कम्पोज़ करते, प्रूफ़ पढ़ते और अपने हाथ ही से छाप कर ठीक समय पर काम दे दिया करते थे। इस प्रकार प्रेस का सञ्चालन करने में उन्हें कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था, कितने विघ्न उपस्थित हुए थे, इसका वर्णन करना असम्भव है। परन्तु इन सबों का सामना करते हुए वे केवल अपनी ही शक्ति के आश्रय पर प्रेस का सारा काम सुचारु रूप से चलाने लगे। फलतः उनके प्रेस का कारबार और कीर्ति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। अन्त में केवल २५) की मासिक की ही पेंशन लेकर उन्होंने उक्त आफ़िस का काम छोड़ दिया और प्रेस का विस्तार करने में ही अपनी सारी शक्ति का उपयोग करने लगे। कर्मक्षेत्र में विजय प्राप्त करके अतुल विभव के स्वामी बनकर भी वे सन्तुष्ट न हुए। वे आजीवन प्रेस की उन्नति का ही उपाय सोचते रहे और उसे उन्नति के शिखर पर पहुँचा कर भी न शान्त हुए। जीवन के अन्तिम कई वर्ष से प्रेस के सञ्चालन का भार अपने सुयोग्य पुत्रों पर छोड़ कर वे कुछ निश्चिन्त होगये थे, तो भी प्रतिदिन इन लोगों को बुलाकर अपना सत्परामर्श दिया करते थे।
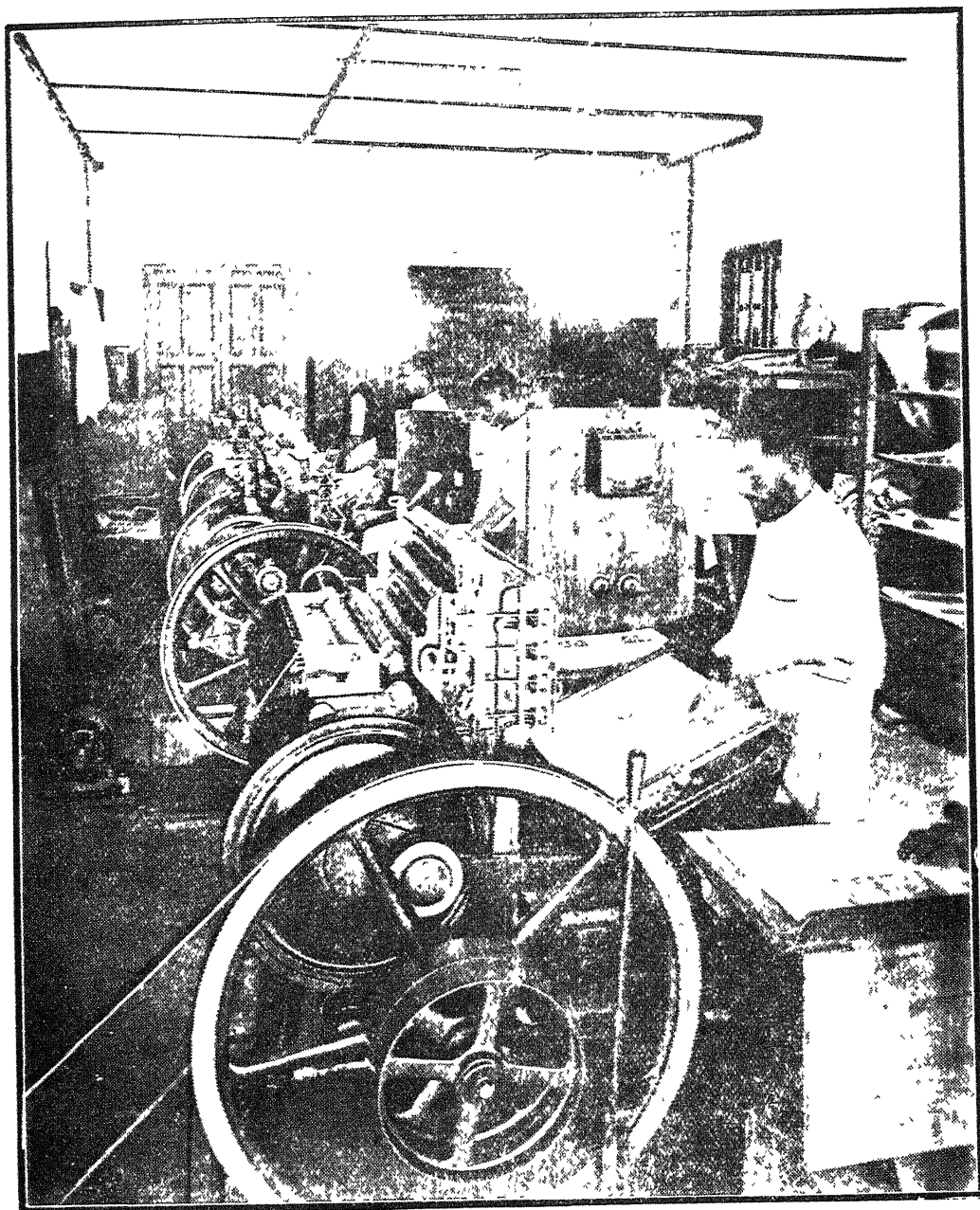
ट्रेडिल मैशीन-विभाग
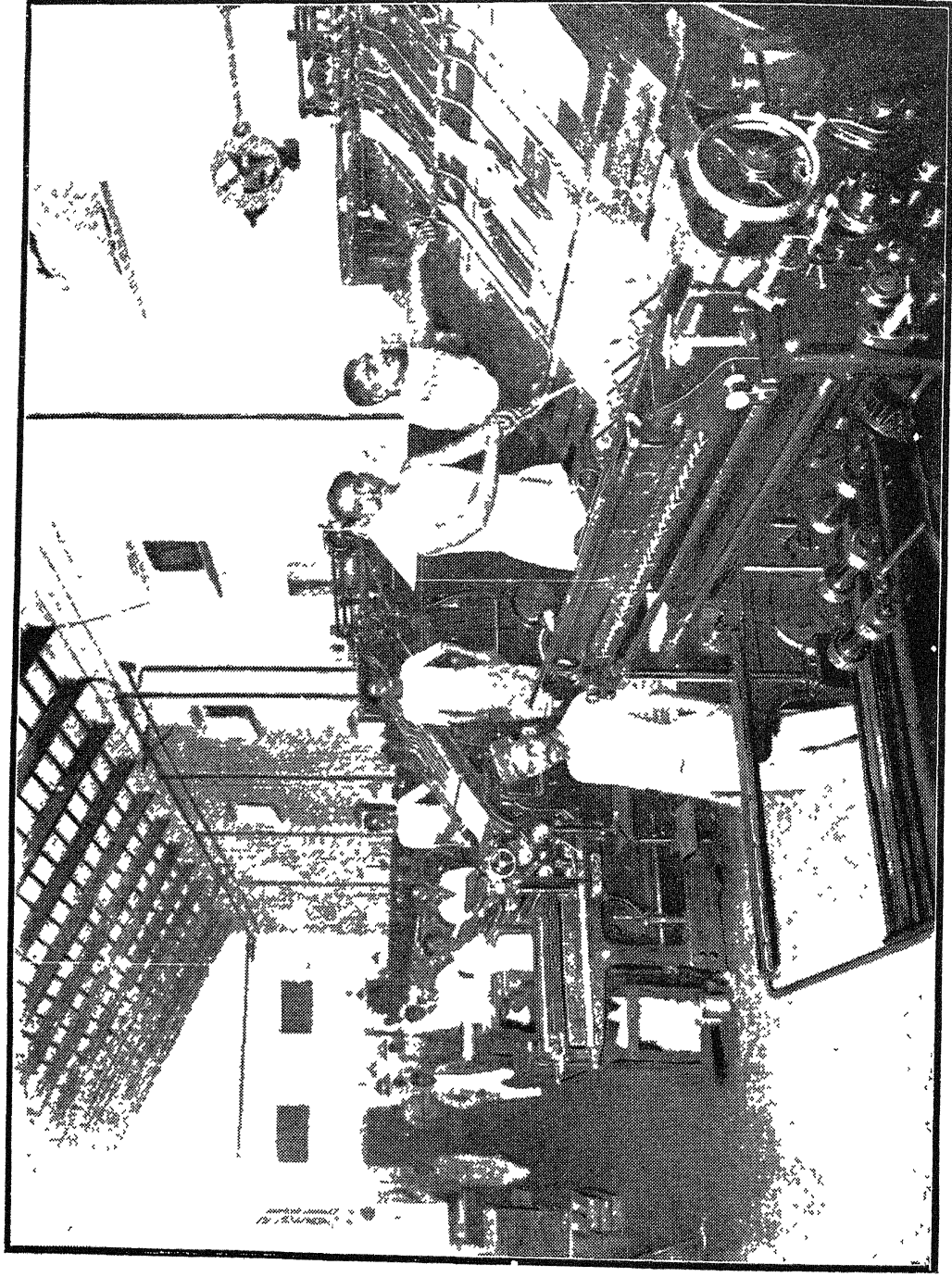
मुद्रण-यन्त्र (लेटर प्रेस)-विभाग

चिन्तामणि बाबू के असीम धैर्य, अतुल अध्यवसाय, विशाल हृदय तथा प्रेममय शासन का ही फल है कि इंडियन प्रेस अपनी उत्कृष्ट छपाई के लिए समस्त भारत में विख्यात है। आधुनिक मुद्रण-कला के साधन-स्वरूप भिन्न भिन्न प्रकार की मशीनों तथा विभागों के प्रवर्तन करने से इंडियन प्रेस भारत के उत्तम श्रेणी के प्रेसों में गिना जाता है। चिन्तामणि बाबू की ऐसी असाधारण उन्नति का मूलमन्त्र खोजने से पता चलता है कि उनके व्यवसाय का मूलमन्त्र था 'साधुता'। वे प्रायः कहा करते थे कि सत्य के मार्ग पर चलने और सद्व्यवहार करने से सिद्धि-प्रदान करने के लिए भगवान् को बाध्य होना पड़ता है। जिन लोगों से उनका सम्बन्ध होता, अपनी उदारता, स्नेहप्रवणता, सद्व्यवहार तथा सदुपदेश से उन्हें अपना लिया करते थे। इस प्रकार उनकी बदौलत न जाने कितने लोगों की जीवन-यात्रा का सम्पादन हुआ है, कितने लोग मनुष्यत्व का मार्ग पाकर आदर्श पुरुष होगये हैं, इसका ठिकाना नहीं है।

मुद्रण-कला में वे युगान्तर उत्पन्न कर गये हैं। उत्कृष्ट छपाई के लिए वे सदा हृदय से प्रयत्न किया करते थे। घंटों मशीन रुकी रहती, आदमी बेकार बैठे रहते, उस ओर उनका ज़रा भी ध्यान न जाता। शुद्ध और सुन्दर काम के लिए वे हर तरह की हानि स्वीकार करने के लिए तैयार रहते थे।

चिन्तामणि बाबू ने सन् १६०६ ईसवी में 'फ़ाइन आर्ट विभाग' खोल कर देशी चित्रों को बड़े आकार में छापने के लिए इँग्लैंड से आर्टिस्ट और प्रिंटर बुलवाया था। कहने की आवश्यकता नहीं कि उपयुक्त कर्मचारियों के अभाव एवं कुछ और भी आनुषङ्गिक कारणों से इस विभाग में उन्हें कई हज़ार की हानि उठानी पड़ी थी, तो भी वे हताश नहीं हुए। उनका कथन था कि प्रेस किया है तब सभी बातों का प्रबन्ध करना पड़ेगा। इसीलिए भारतवर्ष में साधारणतः जो काम नहीं होते या बहुत थोड़ी मात्रा में होते हैं उनका सम्पादन करने के लिए कई हज़ार की मशीनें ख़रीदी हैं।

वास्तव में व्यापारिक क्षेत्र में चिन्तामणि बाबू के समान और कोई भी ऐसा सत्साहस नहीं दिखा सका। इसी साहस के प्रभाव से ही वे विपुल धन के अधिकारी होगये थे। बाल्यावस्था में उन्हें निरन्तर दरिद्रता की ठोकर खानी पड़ी थी, अतएव जब कभी किसी के दुखदर्द की कहानी सुनते तब उनके आँखों में आसू आ जाते थे और हृदय करुणा से पिघल जाता था।

चिन्तामणि बाबू का दान साधारण नहीं है। उन्होंने न जाने कितने अनाथों को आश्रय दिया है, न जाने कितने भूखों के पेट की ज्वाला शान्त की है, कितने दरिद्र विद्यार्थियों को वृत्ति देकर मनुष्य बनाया है, इसीलिए, विशेषतः उनकी सहृदयता के ही कारण उनके महाप्रस्थान के समय कितने ही व्यक्ति उनकी मृत आत्मा के प्रति श्रद्धा प्रदर्शित करने के निमित्त एकत्र हुए थे।

चिन्तामणि बाबू बड़े नीरवकर्मी थे। यश की लालसा उनके हृदय पर अधिकार नहीं जमा सकी। वे बड़े स्वाधीनचेता पुरुष थे। कर्मक्षेत्र में किसी विषय में यदि किसी से कोई बात कहनी होती तो वे स्पष्ट शब्दों में कह दिया करते थे। फिर चाहे कोई उसका कितना ही विरोध करता, उस पर ज़रा भी ध्यान न देते।

उनका क्रोध भी क्षणिक था। उनके क्रुद्ध होने के बाद ही मुख पर तुरन्त ही हँसी की रेखा आ जाती। अपने कर्म-जीवन में भिन्न भिन्न स्थानों में बहुत से उदार पुरुषों के सम्पर्क में रहा, किन्तु चिन्तामणि बाबू के समान आदर्श पुरुष मैंने और कहीं नहीं देखा। किन्तु विधाता के विधान के टालने की शक्ति तो मनुष्य में

है नहीं। यही कारण है कि चिन्तामणि बाबू के समान चरित्रवान् , देश-हितैषी, दीन-दयालु, पुण्यश्लोक महात्मा के लिए अश्रु-तर्पण ही हम लोगों की सान्त्वना का एक-मात्र उपाय है।

जाओ भाग्यवान्, जहां शोक नहीं है, दुःख नहीं है, अशान्ति की ज्वाला नहीं है, उसी दिव्य धाम को गमन करो। तुम्हारे समान उदार व्यक्ति के लिए दिगङ्गनायें मन्दार-माला धारण किये हुए प्रतीक्षा कर रही हैं, तीर्थ-जल से तुम्हारी आत्मा का अभिषेक करने के लिए तैयार खड़ी है। तुमने कर्मक्षेत्र में विश्वदेवता की आरती के लिए जो पञ्च-प्रदीप जला रक्खा है उसकी पवित्र ज्योति से तुम्हारा परलोक, तुम्हारा स्वर्ग, तुम्हारा अवदान उज्ज्वल हो उठे।

अभिलाष

[श्रीयुत आशुतोष]

कामना का सुन्दर विटप सदा फूले-फले,
आत्मा का जिसमें अनश्वर प्रकाश है।
भर जाय दिव्यतम जिसकी प्रभा से जग,
उनके स्वरूप का जो अमर विकास है।
चिन्तामणिजी की कर्मनिष्ठ श्रम-शीलता का,
सौम्यता सा मूर्तिमान जिसमें विकास है।
बस, वही प्रेस नित्य सुरुचि प्रचार करे,
हिन्दी-भाषा-भाषियों की यही अभिलाष है।

बाबू चिन्तामणि घोष के स्मरण में

[श्रीयुत देवीप्रसाद शुक्ल, बी० ए०]

गत ११ अगस्त को श्रीयुत बाबू चिन्तामणि घोष का स्वर्गवास हो गया। बङ्गदेशीय होने पर भी उन्होंने अपनी आयु का प्राय: सर्वांश संयुक्त प्रदेश ही में बिताया और यहीं उन्होंने अपना कीर्तिस्तम्भ स्थापित किया। यद्यपि उनका यश-सौरभ फैलानेवाली 'हरिपद इनफ़र्मरी' इत्यादि अनेक संस्थायें हैं, तथापि सबसे अधिक हितकर उनकी जीवन-चर्या है जिस पर मनन कर हमारे देशवासी और विशेष कर युवक-वृन्द बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। एक सामान्य स्थिति का पुरुष थोड़ी पूँजी से क्या नहीं कर सकता यदि उसमें उद्योग, साहस और चरित्र-बल हो। यह एक अमूल्य उपदेश इंडियन प्रेस के द्वारा चिन्तामणि बाबू मानो यूनिवर्सिटी-सेन्टर में खड़े हुए हमारे युवकों को अब भी दे रहे हैं और सदैव देते रहेंगे। यूनिवर्सिटी की ऊँची से ऊँची डिग्रियाँ लेने के अनन्तर हमारे बहुतेरे ग्रेजुएटों के सामने कुछ काल के लिए अन्धकार सा आ जाता है। उन्हें सूझ ही नहीं पड़ता कि अब करें क्या? सिवा वकालत या नौकरी के कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। ऐसे सज्जनों को इस निराशा में चिन्तामणि बाबू का देदीप्यमान जीवन सदा मार्ग प्रदर्शक का काम देगा।

क़रीब १८ वर्ष हुए चिन्तामणि बाबू से मेरा परिचय पूज्यपाद पण्डित महावीरप्रसादजी द्विवेदी के द्वारा उस समय हुआ था जब मुझे उनकी कृपा से 'सरस्वती' की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। तभी से जब कभी चिन्तामणि बाबू से मिलने का अवसर होता उनके सदुपदेशों और मङ्गल-कामनाओं से मुझे आनन्द मिलता रहता था।

परमात्मा हमारे देश मे चिन्तामणि घोष के सदृश साधुचरित उद्योग-मूर्ति अनेक उत्पन्न करें।

चिन्तामणि-स्मृति

[श्रीयुत ज्ञानेन्द्रनाथ घटक]

जिस महापुरुष की कथा मैं यहाँ कहने जा रहा हूँ उनसे मेरा परिचय थोड़े ही दिनों का है। उनके प्रतिष्ठित इंडियन प्रेस में काम करने के लिए बुलाये जाने पर मैंने १९२५ के १४ नवम्बर को उनका आतिथ्य ग्रहण किया था। उस समय उनकी मातृदेवी रुग्ण थीं और अपने अन्तकाल की अपेक्षा करती थीं। उनके भवन में उस समय श्रीयुत श्यामसुन्दर दास प्रभृति अन्यान्य सम्भ्रान्त अतिथि लोग भी उपस्थित थे। जननी-पीड़ाजनित उत्कण्ठा और अपनी शारीरिक अस्वस्थता के होते हुए भी अतिथियों की सेवा में कोई त्रुटि तो नहीं हुई, यह संवाद स्वयं अतिथियों के ही मुँह से सुन कर वे सुस्थिर हुए। उसी दिन मैंने उनका आतिथ्य प्राप्त किया था और उनका सौजन्य देखकर मुग्ध हो गया था। यह तीसरा वर्ष है कि तब से उनके प्रेस में मैं काम कर रहा हूँ। अवकाश के समय मैं उनका दर्शन कर तथा उनसे वार्तालाप कर तृप्त होता रहा हूँ। कई बार के साक्षात् के बाद परस्पर आकृष्ट हो जाने से उनके साक्षात् के लिए मैं प्रायः व्यग्र होता रहा हूँ। दृष्टि-शक्ति के नष्ट हो जाने पर भी उनका मस्तिष्क पूर्ण रूप से कार्यक्षम था। इसी से वे व्यवसाय-सम्बन्धी बातों तथा अन्यान्य जटिल विषयों का समाधान अति अल्प समय में कर डालते थे। उनके मस्तिष्क की उद्भावनी शक्ति कुछ भी क्षीण नहीं हुई थी। अध्ययन में उनकी विशेष अनुरक्ति थी। उनका पुस्तकालय नाना विषयक ग्रन्थराशियों से पूर्ण था। दृष्टि-शक्ति के विनष्ट हो जाने पर भी बाह्य जगत् का कोई संवाद उनसे अविदित नहीं रहता था और एक व्यक्ति नित्य नियमित रूप से उन्हें संवाद-पत्र एवं अन्यान्य ग्रन्थ पढ़ कर सुनाया करता था।

उनकी असाधारण कार्य-शक्ति, मन का अमित बल और अतुलनीय साधुता उनकी उन्नति के मूल थे। ढाई सौ रुपये के मूलधन से जो व्यवसायी लाखों रुपयों का अधिकारी हो जाय उसकी कार्य-शक्ति और साधुता अनन्य-साधारण ही होगी। स्वयं क्षति स्वीकार करेंगे, अन्य को क्षति नहीं पहुँचायेंगे, यही महान् भाव लेकर वे कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण हुए थे और उस भाव का अक्षर अक्षर पालन किया था। अपना पावना वसूल करने के लिए उन्होंने कभी अदालत की सहायता नहीं ली। इसी लिए बहुत अधिक क्षति भी उन्हें सहनी पड़ी। अपने निश्चय की सतत रक्षा में वे बराबर यत्नवान् रहे। एक

आफ़सेट मैशीन-विभाग
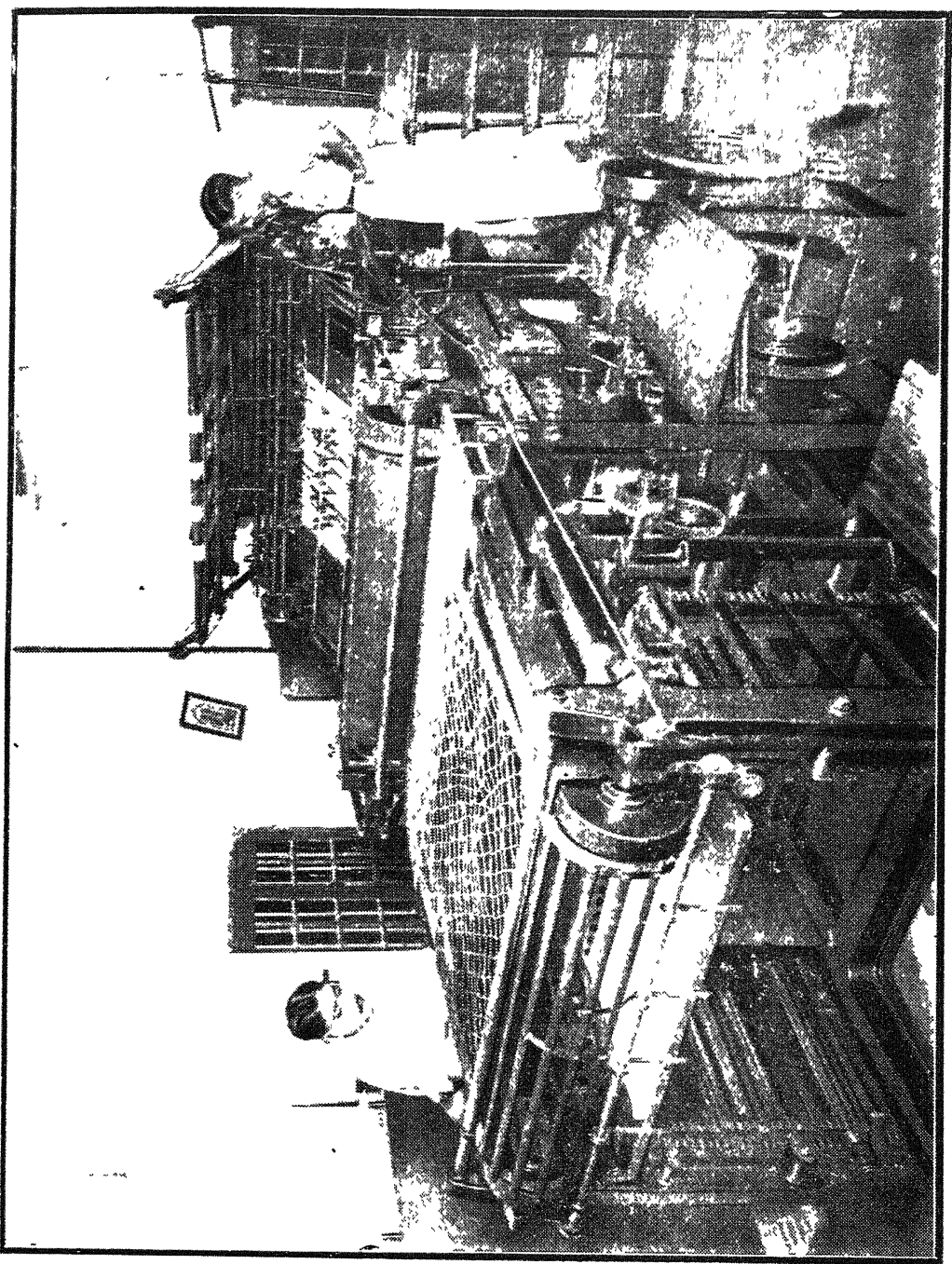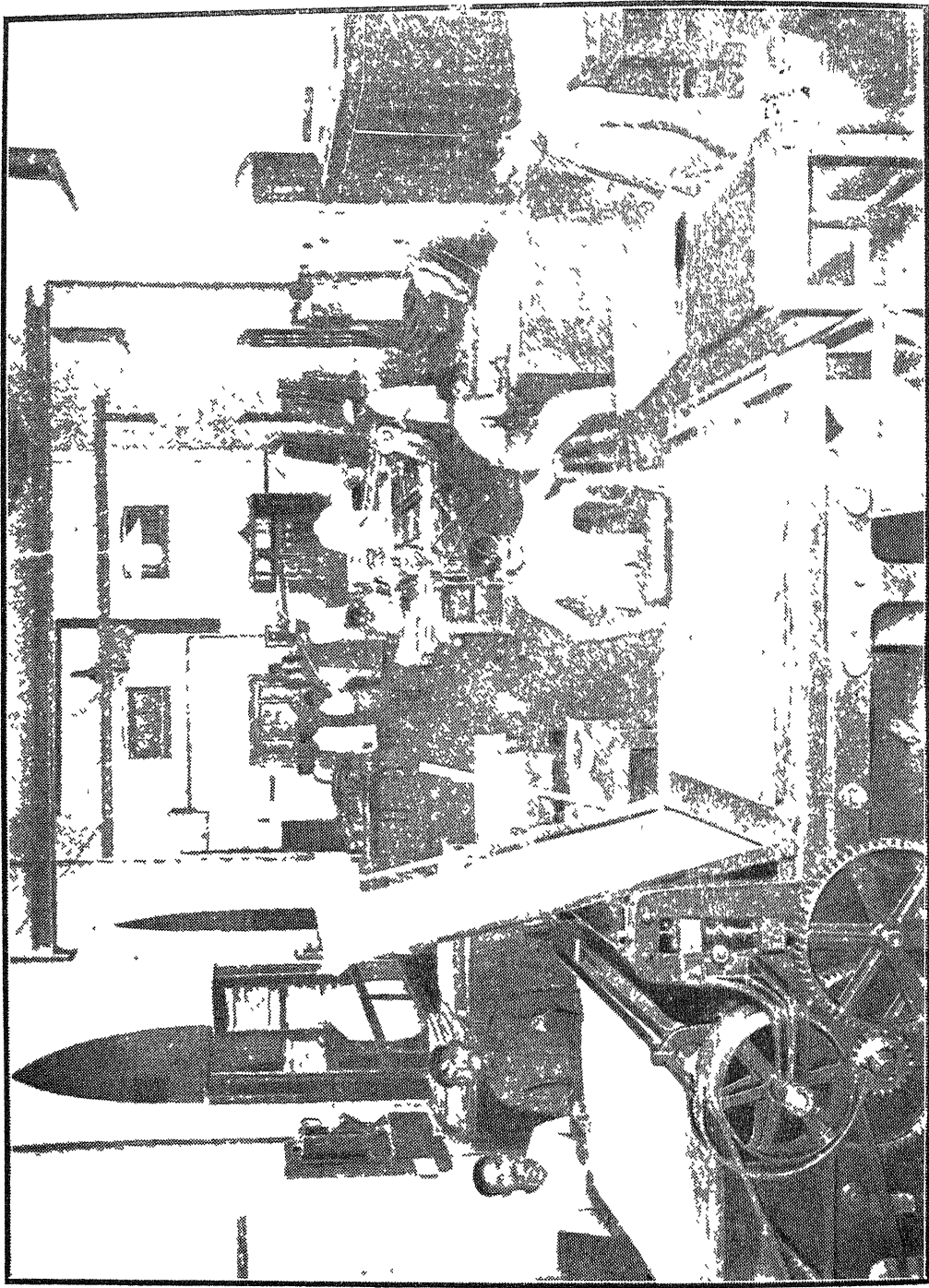
लिथो-विभाग, इंडियन प्रेस, लि०

बार उन्होंने कलकत्ते में प्रेस खोलने का विचार किया था और ‥‥न डिकिंसन कंपनी को मेशीनों के लिए आर्डर ‥‥ दिया था। इसी सम्बन्ध में वे कलकत्ते गये थे और अपने एक मित्र के यहाँ ठहरे थे। संयोगवश एक दिन एक दफ़्तरी ने आकर उनके मित्र से उजरत का रुपया माँगा। बहुत कुछ अनुनय-विनय की। जब रुपया नहीं मिला तब वह लौट गया। यह हाल देख कर उन्होंने अपने मित्र से पूछा कि रुपया होते हुए भी आपने दफ़्तरी को उसके रुपये क्यों नहीं दिये। ग्रन्थकार ने उत्तर दिया कि यहाँ केवल रुपया लेना होता है, किसी को कुछ देना नहीं चाहिए। पावनेदार के रुपया माँगने पर रुपया देने से यहाँ व्यवसाय नहीं चलता। ग्रन्थकार की यह उक्ति सुन कर उन्होंने कलकत्ते में प्रेस खोलने का विचार त्याग करके जान डिकिंसन को मेशीन इलाहाबाद भेज देने को लिख भेजा। उनकी चिट्ठी पाकर उक्त कंपनी का प्रतिनिधि उनसे मिला और उनकी बात सुनकर उसने कहा, मिस्टर घोष, आपके जैसे दृढ़ सिद्धान्त के पुरुष को कलकत्ते में व्यवसाय नहीं करना चाहिए। यथासमय आपकी मेशीनें इलाहाबाद भेज दी जायँगी।

छोटे घर में बड़ा मन लेकर उन्होंने अपने जीवन का आरम्भ किया था। उनके मन में किसी भी दिन संकीर्णता ने स्थान नहीं पाया। दीन-दरिद्रों के आँसू पोंछने के लिए वे निरन्तर तत्पर रहते थे। दान में सतत मुक्तहस्त थे। विधवाओं के दुख से उनके प्राण व्याकुल रहते थे। वे असहायों के दुख दूर करने के लिए प्रचुर अर्थव्यय करते थे। वे नीरवकर्मी थे। अहङ्कार उनको छू तक नहीं सका था। नाम के लिए वे कभी लालायित नहीं रहे। इंडियन प्रेस का नाम बहुतों को ज्ञात होने पर भी उसके प्रतिष्ठाता का नाम अल्प ही लोगों को ज्ञात था। नीरवरूप में काम करके सफलता पाने के आनन्द को ही वे अपने लिए योग्य पुरस्कार समझते थे। इससे अधिक पुरस्कार वे नहीं चाहते थे।

व्यवसाय-शिक्षा के लिए पुत्रों को विदेश भेजने के पक्षपाती वे नहीं थे। कहते थे कि कुछ दिनों के लिए विदेश में रह कर युवक लोग किसी भी व्यवसाय के रहस्य के भीतर नहीं प्रवेश कर सकते। शिक्षा के प्रारम्भ-समय में वे लोग विदेशी आचार-व्यवहार का ही अनुकरण करके स्वदेश को लौटते हैं। इसी कारण उन्होंने देशी युवकों को शिक्षा देने के लिए जर्मनी और स्वीज़र्लैंड से अधिक धन व्यय करके प्रिंटर और चित्रकार बुलाये थे, परन्तु उनकी आशा पूर्ण नहीं हुई। कोई भी युवक आशानुरूप शिक्षा नहीं प्राप्त कर सका। इस देश के युवकों को चित्रण-कला सिखलाने के लिए एक लक्ष रुपया उन्होंने व्यय किया। वे खेद के साथ कहते थे कि यदि एक भी युवक इस विद्या को उत्तम रूप से सीख लेता तो हमारा अर्थ-व्यय सार्थक हो जाता, परन्तु किसी ने नहीं सीखा। देश के युवकों को अर्थकरी विद्या सिखलाने के लिए उनका स्वार्थ-त्याग अल्प नहीं था।

अनेक मनीषियों के सत्सङ्ग से मैं धन्य हुआ हूँ, परन्तु कर्मवीर एक-मात्र इन्हीं को देखा जब कि वे कर्म-क्षेत्र से दूर स्थित थे। दोनों के कार्यक्षेत्र विभिन्न होने पर भी मैंने उनकी बंग के नरशार्दूल सर आशुतोष की कार्यशक्ति एवं स्मृति-शक्ति के साथ अपने मन में तुलना की और श्रद्धा

के साथ मस्तक अवनत किया। अनेक समय उनकी चरण-धूलि लेने की इच्छा हुई, परन्तु सामाजिक आचार के कारण उससे विरत होना पड़ा।

जीवन-सागर के पार जाने को प्रस्तुत होकर वे अपना समय व्यतीत कर रहे थे। प्रायः कहा करते थे कि मेरा कार्य समाप्त हो गया। अब मैं जाने के लिए तैयार हूँ। शेष दिन की भीति बहुतों को अभिभूत करती है। परन्तु इस महान् हृदय में उस दुर्बलता को मैंने किसी भी दिन नहीं देखा।

वे कर्तव्य समाप्त करके आनन्द-धाम को चले गये। उनकी अमर स्मृति तथा महान् आदर्श को हृदय में धारण कर हम लोग भी अपना अपना कर्तव्य समाप्त करके उनके साथ मिल सके, यही हमारी प्रार्थना है।

कर्म्मयोगी चिन्तामणि

[श्रीयुत 'गिरीश']

[१]

प्रखर परिश्रम के प्रबल उपासक थे,
ईश्वर की भक्ति का भरोसा बड़ा भारी था।
कठिनाइयों को झेलने में कभी ऊबे नहीं,
उत्साह, साहस निराला मुग्धकारी था।
प्रेम के प्रभाव से पराभव सभी का किया,
विजयी, परन्तु, क्षमाभाव चित्तहारी था।
चिन्तामणि घोष थे सभी के लिए चिन्तामणि,
उनका अदम्य तेज पौरुष-प्रसारी था।

[२]

चिन्तामणि घोष से व्रती जो भारतीय होवें,
वसुधा में उनके भी उज्ज्वल ललाट हों।
परम प्रमादियों में कर्म्म का प्रचार होवे,
भाग्य-वादियों में व्यवसायी बुद्धि-राट हों।
चाकरी के चक्कर में सिर टकरायें नहीं,
युवकों के और ही स्वतन्त्रता के ठाट हों।
आश्रित न होवें, बनें आश्रय के दाता धीर,
वीर हों, विजेता हों, धरा के सम्राट हों।

श्रद्धा-हार

['एक अकिञ्चन लेखक']

र्गीय बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के अस्त हो जाने पर हिन्दी का जो आश्रय-स्तम्भ ध्वस्त होगया था उसके समुद्धारक हिन्दी के द्वितीय भारतेन्दु बाबू चिन्तामणि घोष अब इस संसार में नहीं रहे। 'इंडियन प्रेस' की संस्थापना तथा 'सरस्वती' के सञ्चालन से हिन्दी में जिन्होंने नवयुग का प्रवर्तन किया था, हिन्दी के वे क्रान्तिकारी निर्मायक हिन्दी-जगत् को छोड़ कर परम धाम को सिधार गये। तुलसी की कीर्ति के संरक्षक हिन्दी के भाण्डार को समुज्ज्वल ग्रन्थ-रत्नों से परिपूर्ण करनेवाले साहित्य-रसिकों के आश्रयदाता चिन्तामणि बाबू आज हम लोगों के बीच में नहीं हैं, जिन्होंने अपने अदम्य उत्साह और अथक परिश्रम से हिन्दी के क्षेत्र में ऐसे साधन जुटाये थे, जिनका सहारा पाकर एक हिन्दी क्या, एक बँगला क्या, एक उर्दू क्या और एक अँगरेज़ी क्या, इन सभी के उदीयमान मौलिक लेखक आज भारतीय साहित्य-गगन में दीप्तिमान् अंगारक की भाँति अपनी अपनी छटा और अपना अपना तेज चारों ओर फैला रहे हैं वे अनुप्राणक और नूतन मार्गदर्शक चिन्तामणि बाबू वास्तव में सदा के लिए चिन्तामणि होगये। इसी साल के अगस्त की ग्यारहवीं तारीख़ को हिन्दी का यह दूसरा चन्द्रमा अस्तगत होगया।

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के रिक्त स्थान की पूर्ति करनेवाले इलाहाबाद के प्रवासी वंग के इन सुपुत्र के पास न तो वैसी सम्पत्ति थी और न इन्हें उनके जैसे साधन सुलभ थे, और इन दो महत्त्वपूर्ण अभावों के होते हुए भी इनमें एक बात थी जिससे ये उनके स्थान को ग्रहण करने के अधिकारी हुए, और वह थी इनका अदम्य आत्म-बल। अपने उसी असाधारण आत्म-बल की बदौलत इन्होंने हिन्दी के क्षेत्र में वह काम किया जिसे उसके भविष्य के इतिहास-लेखक इनका नाम और इनकी कर्मगाथा स्वर्णाक्षरों में लिखेंगे।

चिन्तामणि बाबू का महत्त्व केवल इस बात में नहीं है कि इन्होंने एक उत्कृष्ट प्रेस स्थापित किया एवं इनके द्वारा एक उत्कृष्ट और अपूर्व मासिक पत्रिका का जन्म हुआ, किन्तु विशेष रूप से इस बात में है कि इन्होंने हिन्दी-भाषियों की साहित्यिक रुचि को सुरुचिता प्रदान की, उसे एक नये साँचे में ढाल दिया और उसे एक नई गति प्रदान की। अपने इसी क्रान्तिकारी कार्य से वे भविष्य में नूतन युग के प्रवर्तक गिने जायँगे।

चिन्तामणि बाबू वास्तव में एक असाधारण पुरुष-सिंह थे। इनकी कर्तृत्व-शक्ति का जो परिचय हमें इनकी जीवन-गाथा से मिलता है वह हमारी भविष्य-सन्तानों के लिए आदर्श और पथप्रदर्शक का काम देगा। अपनी अनाथावस्था से अपना समुद्धार कर इन्होंने अपने जैसे ही अगणित दरिद्रों को जिस प्रकार सनाथ किया उसका ज्ञान होते ही इनके पौरुष और महत्त्व का तत्काल पता मिल जाता है। बँगला और अँगरेज़ी का साधारण शिक्षाप्राप्त एक प्रवासी १३ वर्ष के बालक को इलाहाबाद के पायोनियर प्रेस में १०) मासिक वेतन पर मुहर्रिरी करते हुए जिन लोगों ने पहले-पहल देखा होगा वे यदि आकर उस बालक के वर्तमान रूप का दर्शन कर पायें तो हतबुद्धि हो जायँ। क्योंकि आज वे इन्हें लक्षाधीश ही नहीं, किन्तु असाधारण महापुरुष के रूप में भी देख पायेंगे।

चिन्तामणि बाबू की महापुरुषता हिन्दी को समुन्नत करने के कार्य में तो है ही, परन्तु उसका समुचित रूप इनके विशाल हृदय के उस भव्य अञ्चल में अधिक प्रस्फुटित हुआ था जहाँ से अनाथ विधवाओं और आश्रय-हीन नवयुवकों के लिए इनका सहानुभूतिपरक सदय भाव समुद्भूत होता था। ऐसे ऋषि-तुल्य नररत्न के प्रति यदि इस अकिञ्चन उपकृत लेखक ने समार्चन की पुनीत भावना से यहाँ कुछ शब्द-पुष्पों का श्रद्धा-हार इन्हें समर्पित किया है तो ऐसा उसने अपना कर्तव्य समझ कर ही किया है।
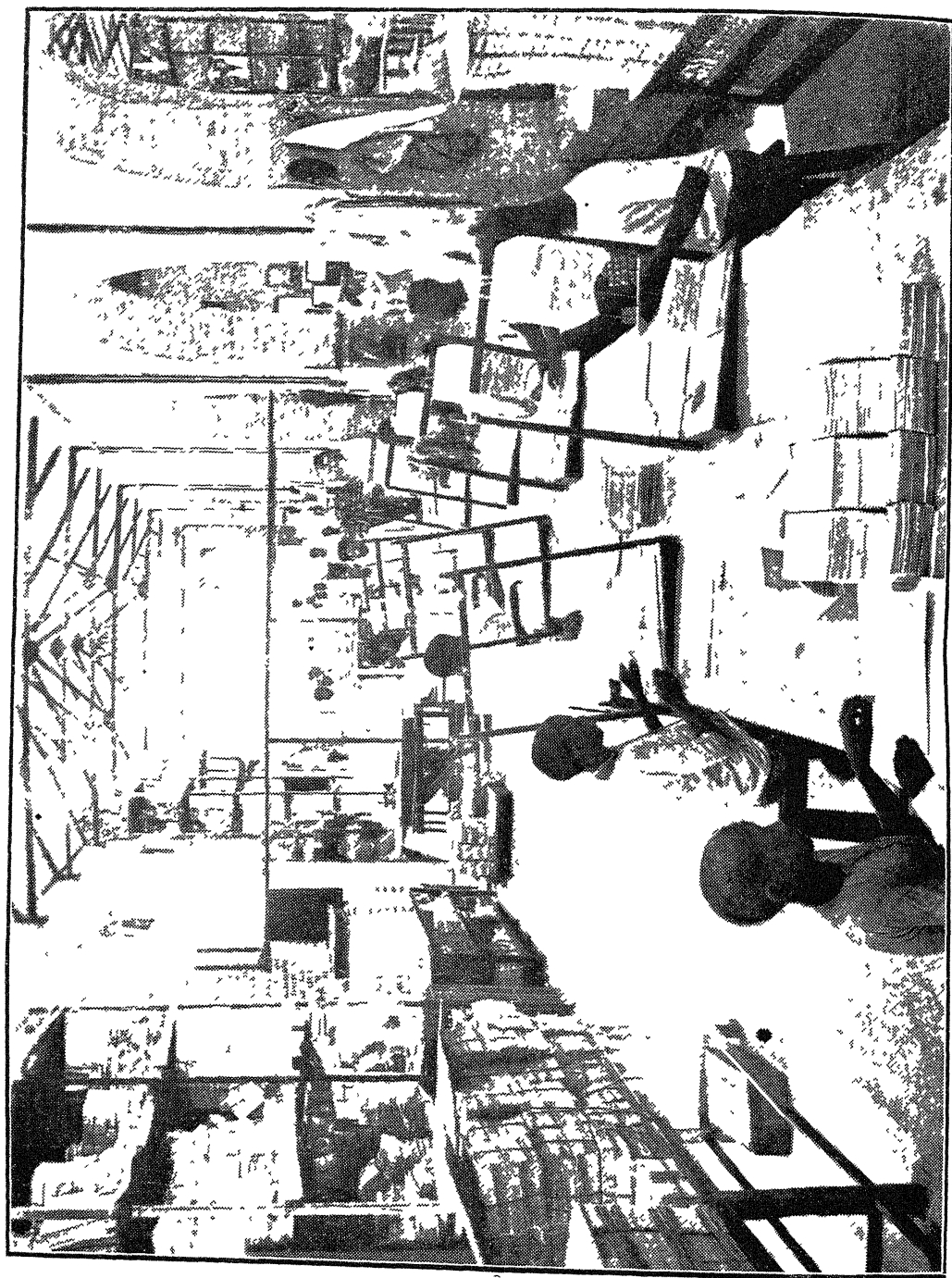
इंडियन प्रेस की सिलाई (स्टिचिंग)-विभाग का एक दृश्य

पढ़ने-लिखने की बलवती इच्छा को विवश होकर जिस लड़के ने छोड़ा और खेलने-कूदने की उम्र में सेवा-वृत्ति स्वीकार कर अपनी जीविका अपने आप चलाने का मार्ग ग्रहण किया उस कर्मवीर बालक का नाम चिन्तामणि था। यदि पिता माधवचन्द्र बाबू कुछ सम्पत्ति छोड़ जाते और बालक चिन्तामणि को आगे पढ़ते रहने की सुविधा बनी रहती तो निःसन्देह वे दिग्गज विद्वान् होते और सम्भवतः अँगरेज़-सरकार के यहाँ अथवा अन्यत्र बहुत उच्च पद की शोभावृद्धि करते; किन्तु कौन कह सकता है कि उस दशा मे इंडियन प्रेस जैसी प्रकाशन-संस्था की प्रतिष्ठा का श्रेय उन्हें प्राप्त हो सकता या नहीं।

चिन्तामणि बाबू तो लड़के थे ही। दफ़्तर का अपना काम कर चुकने पर जब दोपहर में जलपान की छुट्टी होती या बीच में .फ़ुरसत पा जाते तब प्रेस के छपाई-विभाग में चले जाते और वहां छपाई का सामान देखा करते थे। गैली, रैक, स्टिक, टाईप, केस, चेस, गुल्ली, लाकप, मेकप, एम, कम्पोज़, करेक्शन आदि शब्दों को सुनने से बालक चिन्तामणि के मन मे अपूर्व भाव उत्पन्न होता और वे एक स्वप्न-राज्य मे विचरण करने लग जाते। कुछ दिनों के बाद उन्होंने, उसी फुरसत के समय में, काम करनेवालों से यह पूछताछ आरम्भ की कि एम किसे कहते हैं; चेस, गुल्ली, केस आदि क्या हैं। उनकी इस जिज्ञासा को सुनकर साथ के बाबू लोग उनका उपहास करने लगते। किन्तु इसकी कुछ परवा न करके वे इस सम्बन्ध का अपना ज्ञान लगातार बढ़ाते गये।

बालक चिन्तामणि की स्कूली पढ़ाई पूरी न हो सकी तो क्या हुआ, उन्होंने घर पर स्वाध्याय जारी रक्खा। वे अपने जान-पहचानवालों से पुस्तकें मांग लाते और उन्हें पढ़कर लौटा देते थे। अगर दो-चार आने पास होते और पुरानी किताबे बेचनेवाले के पास कोई अच्छी पुस्तक पा जात तो उसे चट मोल ले लेते। इस प्रकार वे अपनी ज्ञानवृद्धि के उद्योग मे अनवरत लगे रहते थे। जिस दिन से वे पायोनियर प्रेस में नौकर हुए उसी दिन से उस पत्र के स्थायी पाठक हो गये। सुभीता यह था कि पायोनियर की एक प्रति उन्हे मुफ़्त में पढ़ने को मिलती थी। इस पत्र के मुख्य लेख को वे बड़े ध्यान से पढ़ते थे। इस अभ्यास के फलस्वरूप उनकी अँगरेज़ी परिमार्जित हो गई और उनके लिखे चिट्ठियों के मज़मून को देखकर दफ़्तर का अँगरेज़ सुपरिन्टेन्डेन्ट इसलिए प्रसन्न हुआ कि इतना छोटा सा लड़का ऐसी अच्छी भाषा लिख लेता है। चिन्तामणि बाबू के अक्षर भी सुन्दर होते थे। स्वभाव मिलनसार था ही। इस कारण उस दफ़्तर में आपकी लगातार उन्नति होती गई। यहां एक बात ध्यान देने की यह है कि इस उम्र से उन्हे पायोनियर पढ़ने का जो अभ्यास पड़ा वह ज़िन्दगी में एक दिन के लिए भी नहीं छूटा। यहां तक कि पतिप्राणा पत्नी और होनहार ज्येष्ठ पुत्र का देहान्त होने पर जब उनकी स्वल्पावशिष्ट दृष्टि-शक्ति सर्वथा लुप्त हो गई तब भी वे दूसरे से पढ़वाकर पायोनियर नियमित रूप से सुनते रहते थे। बचपन मे वे पायोनियर को अथ से लेकर इति तक पढ़ डालते थे; विज्ञापनों को भी न छोड़ते थे। यह देखकर साथ के लोग हँसी में पूँछते कि इन विज्ञापनों को पढ़ते हो तो क्या उल्लिखित वस्तुएँ मँगाओगे। इस पर उत्तर मिलता कि सौदे का आर्डर देने के लिए मैं विज्ञापन नहीं पढ़ रहा हूँ; मैं तो इस कला को सीखने और अपना ज्ञान बढ़ाने के लिए इन्हे देखा करता हूँ। पायोनियर प्रेस में उन्होंने सात वर्ष तक नौकरी की। इसके बाद कारणवश वहा की नौकरी छोड़ दी।

पायोनियर की नौकरी छोड़ कर वे हवाघर में नौकर हो गये। उस समय वे पूरे बीस वर्ष के भी न थे। हवाघर

की जगह के लिए बहुतेरे उम्मेदवार थे। इनमें कई ग्रेजुएट भी थे। किन्तु हवाघर के बड़े साहब ने जब योग्यता देखने के लिए लिखित परीक्षा ली तब बहुतेरे कार्यार्थी परीक्षापत्र छोड़-कर, चुपके से, चम्पत हो गये। जिन्होंने अन्त तक बैठकर प्रश्नों के उत्तर लिखे वे आपके मुक़ाबले में असफल रहे। इस दफ़्तर में चिन्तामणि बाबू ने पूरे पन्द्रह वर्ष नौकरी की। यहाँ पर उनकी हिसाब करने की विचित्र शक्ति देखकर (सर जान) इलियट साहब ने प्रसन्न होकर स्वयं उच्च गणित—त्रिकोण मिति आदि—सिखला दिया। नौकरी करते हुए उनकी सदा कुछ कारबार करने की इच्छा बनी रहती थी। अतएव इन्होंने बीच बीच में कई बार ठेके लिये और उनसे मुनाफ़े के साथ साथ ख़ासा अनुभव प्राप्त किया। इसके बाद उन्होंने एक व्यक्ति के साझे में फ़र्नीचर (लकड़ी के सामान) की दूकान की। यह तो उनका स्वभाव ही था कि जिस काम में हाथ लगाते उसे जी-जान से करते थे। अतएव इस दूकान में, उनकी देखरेख में, जो चीज़ें बनतीं वे बहुत ही उत्तम होती थीं इस कारण लोग अधिक दाम देकर भी उनकी दूकान का माल ले जाते थे। कहते हैं कि इस दूकान में सामान की तैयारी कराने के लिए उन्होंने विलायत के प्रसिद्ध व्यापारियों के यहाँ के सूचीपत्र मँगाये और उस सम्बन्ध की पुस्तकों का अध्ययन किया। उसी का यह परिणाम था कि उनके यहाँ की बनी हुई पालकी और लैंडो गाड़ियां दो-दो ढाई ढाई हज़ार तक में बिकती थीं। परन्तु जिसका कर्मक्षेत्र कुछ और ही था वह भला ठेकेदारी और ऐसी दूकानों के झमेले में कब तक रह सकता था। इतने दिनों में चिन्तामणि बाबू का बहुत लोगों से परिचय हो गया और संसार का उन्हें अनुभव भी काफ़ी हो गया। इस कारण पायोनियर प्रेस के केस, रैक, स्टिक आदि विशिष्ट शब्दों ने उनको प्रेस खोलने के लिए सन्नद्ध किया। उन्होंने पाँच सौ रुपये में रेजिमेंट का एक क्राउन साईज़ का हैंड प्रेस, मय टाईपों के, मोल ले लिया। दिन भर तो चिन्तामणि बाबू दफ़्तर का काम बड़ी मेहनत से करते और शाम को घर आकर, खा-पीकर, दरवाज़ा बन्द करके बहुत रात तक केस के घर पहचानने, टाईप पहचानने और कम्पोज़ करने की धुन में लग जाते। इस प्रकार वे स्वयं काम सीखते और इस दर्मियान जो छोटा-मोटा काम आ जाता उसे करते थे। वे स्वयं ही कम्पोज़ करके प्रूफ़ उठाते और उसे पढ़ते; फिर उसका करेक्शन करके छापते और ग्राहक की माग पूरी करते। इसके साथ ही साथ वे छपाई की कला के साहित्य को बड़ी सावधानी से पढ़ते थे। इस प्रकार उन्हें छापेख़ाने के साहित्य का और तत्सम्बन्धी हाथ से काम करने का—दोनों प्रकार का—यथेष्ट ज्ञान हो गया। आगे चलकर इसी ज्ञान का प्रत्यक्ष उपयोग होने से मुद्रण-संसार में इंडियन प्रेस की उदीयमान कीर्तिपताका के दर्शन हुए। उल्लिखित प्रेस ने क्रमशः किस प्रकार उन्नति प्राप्त की, उसकी उन्नति के मार्ग में कैसी कैसी बाधायें उपस्थित हुईं और चिन्तामणि बाबू ने उन पर विजय प्राप्त करके किस प्रकार अपना मार्ग प्रशस्त किया, यह एक लम्बी कहानी है। उसका उल्लेख करने से लेख का आकार बढ़ जाने की आशङ्का है।

चिन्तामणि बाबू के सभी काम अनोखे थे। हवाघर में की नौकरी में जब उनका मासिक वेतन १००) हो गया और घर में छोटे से प्रेस का काम शुरू हो गया तब पेंशन पर बड़ी रक़म पाने की आशा छोड़ कर, पन्द्रह वर्ष सर्विस करके, सन् १८९४ में उन्होंने पेंशन ले ली। असमय में नौकरी से अलग हो जाने के कारण उनको २५) मासिक पेंशन मिली, जो आजीवन मिलती रही और जिसका उल्लेख भी वे प्रायः किया करते थे कि वह मेरे निर्वाह के लिए पर्याप्त है। इसके १४ वर्ष पहले सन् १८८० में उनका विवाह हुआ

था। यद्यपि इससे पहले उनके लिए कई जगह से सम्बन्ध आये, किन्तु उन्होंने यह कह कर उन्हें स्वीकार नहीं किया कि जब मैं कुछ करने लायक़ हो जाऊँगा तभी विवाह करूँगा। ख़ासी प्रौढ़ अवस्था में उनका विवाह हुआ था। फलतः इस ब्रह्मचर्यरक्षा के कारण मरते मरते तक उनकी स्मरण-शक्ति ऐसी प्रबल बनी रही थी कि देख कर विस्मित हो जाना पड़ता था। बीसों वर्ष की पुरानी बातों का वे ऐसा पता देते थे, मानो अभी कल की बात है। हज़ारों, लाखों का हिसाब बिना काग़ज़-पेंसिल की सहायता के आनन-फ़ानन लगा देना उनके लिए तुच्छ बात थी। इन पंक्तियों के लेखक को उस समय बड़ा विस्मय होता था जब बाबू साहब कई कई वर्ष की पुरानी पुस्तकों की सही सही पृष्ठ-संख्या, काग़ज़ की क़िस्म (क्वालिटी), छपाई की तादाद आदि बतला देते थे।

उनके प्रथम पांच बच्चे अकाल-कवलित हो गये। कहते हैं, जिस समय किसी बच्चे की मृत्यु होती, वे उसे शान्ति से स्मशान पहुँचा कर बिना हाय-तोबा किये प्रेस के काम में इस ढङ्ग से तल्लीन हो जाते मानो घर में मौत नहीं हुई; किसी पड़ोसी का बालक माता की गोद को सूनी कर गया है। इसका यह मतलब नहीं कि उन्हें अपने बच्चों से स्नेह न था या उनके हृदय पर बच्चों की मृत्यु के शोक का असर नहीं होता था। नहीं, होता था और ज़रूर होता था; किन्तु उनकी मानसिक दृढ़ता इतनी प्रबल थी कि वे अपने हृद्गत शोक को दबा रखने में समर्थ होते थे। यह मानसिक बल की दृढ़ता उन्हें उनकी कर्तव्यनिरत विधवा माता और दादी से विरासत में मिली थी। उन दोनों सास-बहुओं को कर्तव्य का अपूर्व ज्ञान था; वे धर्म को ही सब कुछ समझती थीं; बड़ी दूरन्देश थीं। उनकी दूरदर्शिता इसी से परिलक्षित होती है कि चिन्तामणि बाबू के मस्तक पर से पिता के आश्रय की शीतल छाया दूर हो जाने पर जब वे संसार में निराश्रय हो गये तब उनके मामा ने बहन-भानजे को इस लिए अपने यहां बुला भेजा कि वे मेरे पास रहेंगे तो अन्न-वस्त्र की चिन्ता से बचे रहेंगे। परन्तु इन दोनों सास-बहुओं ने पराये आश्रय में रहना अपने लिए और अपने होनहार बच्चे के लिए कल्याणदायक नहीं समझा। उन्होंने धन्यवादपूर्वक उस आश्रय-दान को अस्वीकार कर मङ्गलमय जगत्पिता के आश्रय में रहना श्रेयस्कर समझा। यदि चिन्तामणि बाबू को उनकी माता अपने भाई के घर ले जातीं तो कौन कह सकता है कि चिन्तामणि के चरित्र का गठन किस प्रकार का होता। और कुछ भी होता, किन्तु वहां रहने से उनके हृत्पटल पर अपनी कर्मठ माता और दादी का आदर्श अवश्य ही इस रूप में अंकित न हो पाता कि वे संसार में गौरव-जनक पद लाभ कर सकते। दरिद्रता की कसौटी पर कसे जाने से और आत्मबल से बलीयसी माता तथा दादी के सान्निध्य एवं सुशिक्षा के प्रभाव से ही चिन्तामणि बाबू का चरित्र ऐसा सङ्गठित हुआ कि वे संसार में नाम पैदा कर सके।

चिन्तामणि बाबू के आत्मिक बल की दृढ़ता के दो एक प्रमाण इन पंक्तियों के लेखक ने अपनी आंखों देखे हैं। सन् १६२० ईसवी की शरद्-ऋतु थी। चिन्तामणि बाबू को अपना इलाज बन्द करवा कर कलकत्ते से इसलिए ताबड़तोड़ चले आना पड़ा कि प्रयाग में उनकी गृहिणी और सभी लड़के बच्चे बेरीबेरी के चङ्गुल में फँस गये थे। सब तरह की चिकित्सा को विफल करके जब उनकी सहधर्मिणी चल बसीं और उनके पीछे पीछे वह बड़ा बेटा भी चलता हुआ जिसके सहयोग के कारण चिन्तामणि बाबू को प्रेस के कामों से बहुत कुछ बेफ़िकरी हो गई थी, उस समय यह लेखक दबे हुए कलेजे को मसोसता हुआ मरघट से कोठी पर, सबके साथ, पहुचा।

भीतर स्त्रियों का जो करुण-क्रन्दन हो रहा था उसे सुनकर बाहर बैठे हुए पुरुष विह्वल हो रहे थे; किन्तु धीरता की मूर्ति चिन्तामणि बाबू उस समय भी स्थिर थे, अविचल थे। अपनी उम्र के दो एक लोगों से कह रहे थे, मुझे जाना चाहिए था सो यह चल बसा। उम्र से भला मृत्यु की कोई कैसे अटकल लगा सकता है। ठिकाना है इस मानसिक बल की दृढ़ता का। इसी दृढ़ता ने उन्हें कुछ कर जाने लायक़ बनाया।

चिन्तामणि बाबू में मनुष्य को पहचान लेने की अद्भुत क्षमता थी। वे बहुत जल्दी ताड़ लेते थे कि अमुक मनुष्य हमारे काम आ सकता है या नहीं और आ सकता है तो कहाँ तक। इस विलक्षण शक्ति के कारण उन्हें उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करने में बड़ी सहायता मिलती थी। वे जानते थे कि किस श्रेणी के व्यक्ति के साथ कैसा बर्ताव करने से वह चौकस काम करता है। उनके इस बर्ताव के कारण प्रेस के कर्मचारी सदा चौकन्ने रहते और मनोयोग से काम करते थे। उनकी तत्परता के कारण ग़लतियाँ करने से उनके लड़के तक चौंकते रहते थे। उनमें अपूर्व सङ्गठन-शक्ति और नियन्त्रण-शक्ति थी। कर्मचारियों में कभी कभी ऐसे लोग भी आ जाते थे जो बातूनी जमाख़र्च में तो पटु होते थे, परन्तु काम में अपटु। ऐसे लोगों का निर्वाह बहुत दिन नहीं होता था। कभी न कभी उनकी पोलें खुल ही जाती थीं। बड़े वेतनवाले अनुपयुक्त कर्मचारी को निकालने का उनका ढङ्ग भी अनोखा था। कई आदमियों को तो ख़ासी रक़म पलेथन में देकर बिदा करने के उनके दृष्टान्त याद हैं। ऐसे समय वे कहते थे कि यह रक़म मेरी भूल का जुर्माना है। प्रकृति किसी को भला क्षमा करती है। अपने सुयोग्य पुत्रों को प्रेस का काम सौंप देने के ४।६ साल पहले उनका यह नियम था कि वे एक बार प्रत्येक विभाग का चक्कर लगा आते थे। आवश्यकता हुई तो उस विभाग के मुखिया से संक्षेप में कुछ पूछताछ लेते थे। शेष काम को, वे अपने स्थान पर बैठे बैठे—सूचनायें दे देकर, करा लेते थे। सारी डाक स्वयं देखते और विशेष पत्रों के उत्तर के लिए उपयुक्त सूचनायें दे देते थे। जिन पत्रों का उत्तर सुनना आवश्यक होता उसे सुनते और संशोधन करा देते थे। मामूली काम क्लर्क लोग करते थे; हिन्दी, बँगला और अँगरेज़ी के विशिष्ट पत्र लिखने का काम ख़ास आदमियों के सुपुर्द था। इसके लिए वही लोग ज़िम्मेदार बना दिये गये थे।

यदि छपाई के किसी विभाग में कोई दोष आ जाता और उन्हें उसकी सूचना न मिलती तो इससे वे बहुत ही क्रुद्ध हो जाते थे। उस समय उनका गम्भीर गर्जन सुनकर सब लोग सहम जाते थे, भले ही उक्त दोष से उन लोगों का कुछ भी सम्पर्क न हो। बाबू साहब की यह धाक बाहरवालों तक पर बँधी रहती थी। इस कारण प्रेस के कामों में यथासम्भव कोई त्रुटि न होने पाती थी; और यदि यदा-कदा हो जाती तो बाबू साहब उसे दूर करवा देते थे। कई बार ऐसा हुआ है कि कोई काम ख़राब छप गया है। यद्यपि उस ऐब को बाहरवाले शायद ही ताड़ सकते; किन्तु अपने प्रेस के सुनाम की रक्षा के लिए उन्होंने उसे रद्दी कराकर नये सिरे से छपाया जिसे बे-नुक़्स पाकर ग्राहक को अपार हर्ष हुआ। प्रेस की यशोरक्षा के लिए चिन्तामणि बाबू पैसे की उतनी परवा न करते थे। यदि वे रुपये का अधिक आदर करते तो कदाचित् दो-चार लाख रुपया अपनी सम्पत्ति में अधिक छोड़ जाते, किन्तु उस दशा में वह अमूल्य यश उनके हिस्से में न आता। उनकी इस सावधानी के कारण कर्मचारी अपने आप ख़राब काम को बाहर न जाने देते थे। सफ़ाई और सुन्दरता-पूर्वक काम करनेवाले कारीगर कम मिलते हैं; जो मिलते हैं

हरिपद इंफ़र्मरी
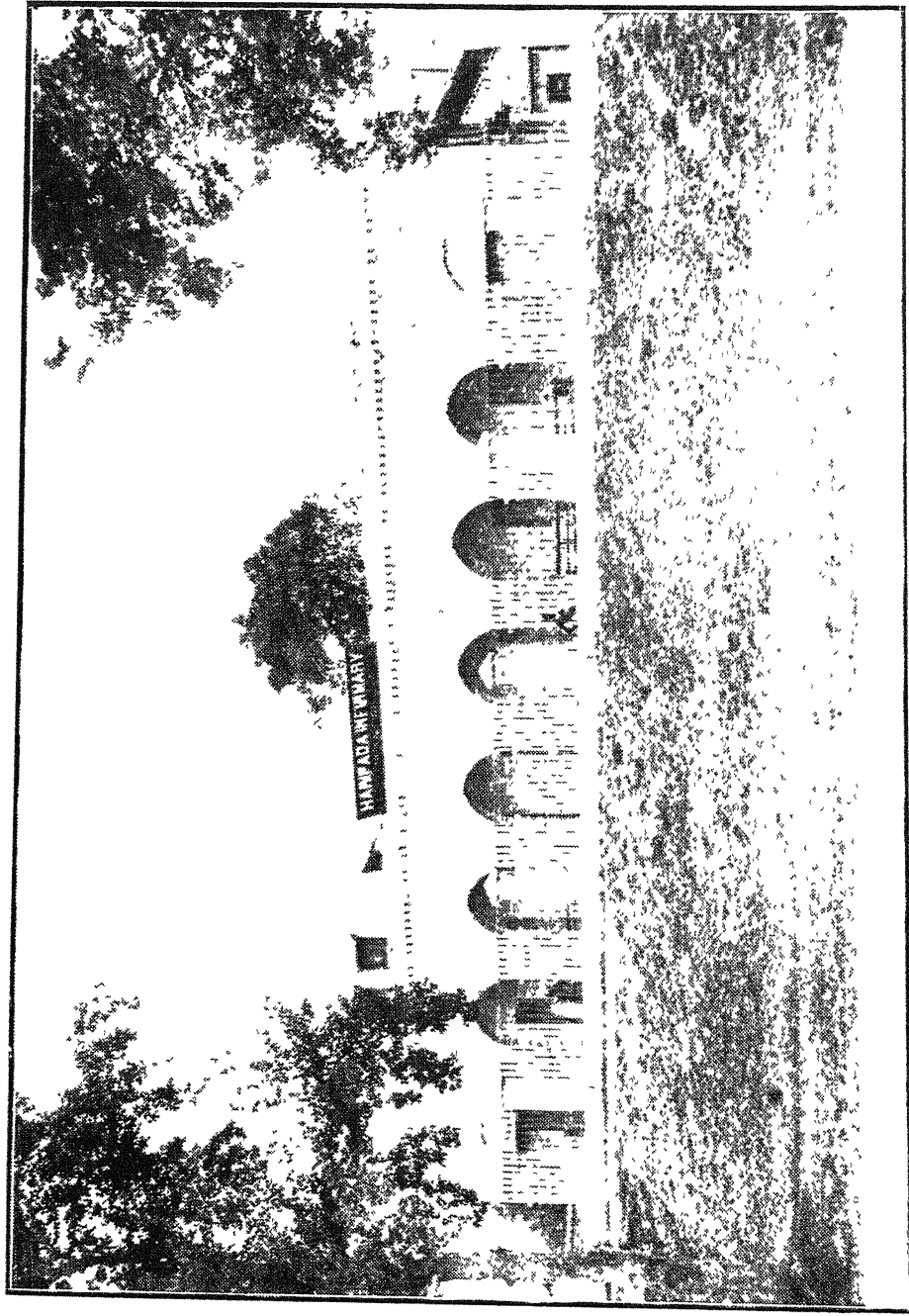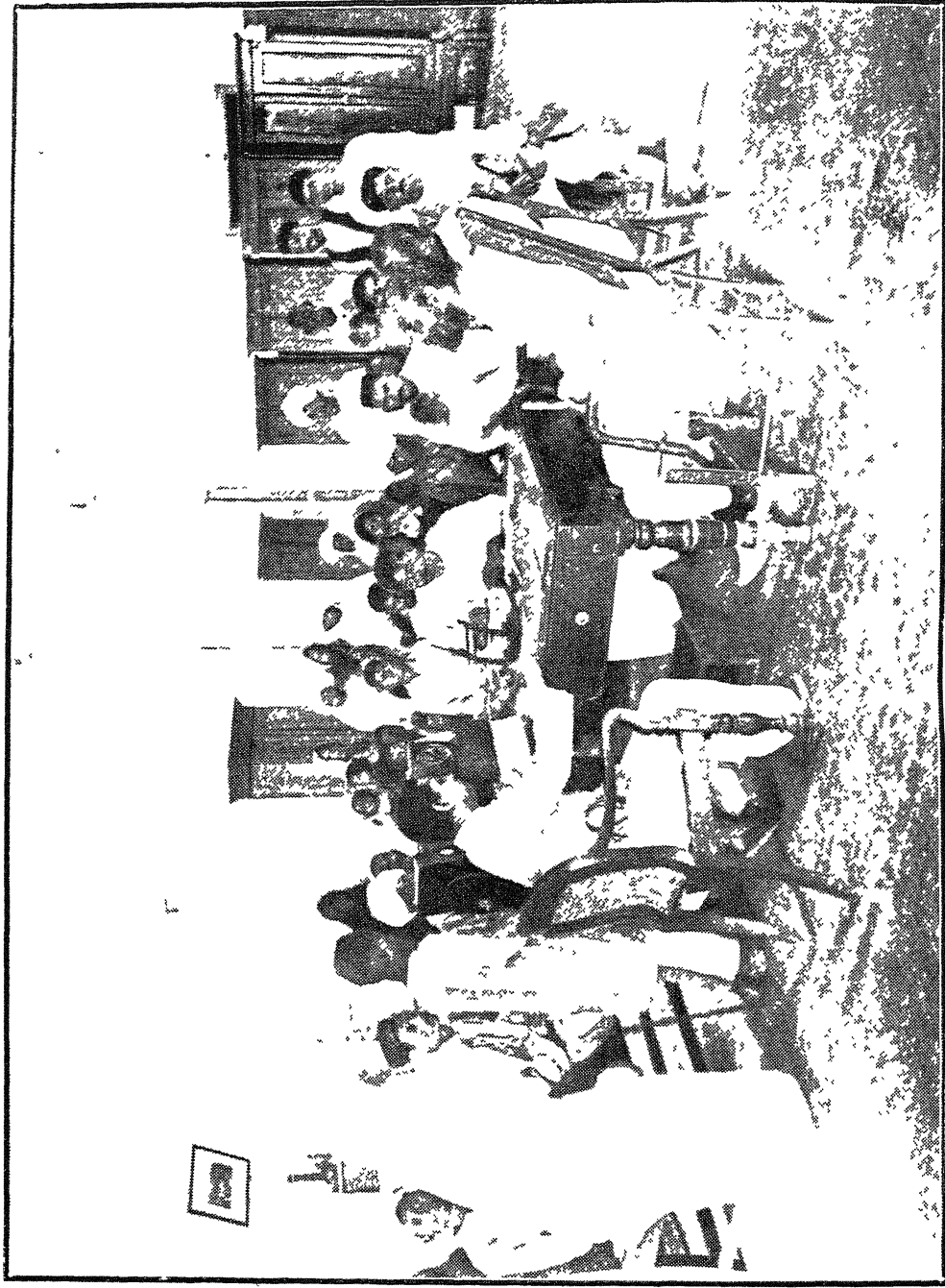
हरिपद होमियोपैथिक दातव्य औषधालय

उन्हें पारिश्रमिक अधिक देना पड़ता है, इसके सिवा समय अधिक लगता है और काम अपेक्षाकृत कम होता है। इन सब कारणों से और स्थानों की अपेक्षा इंडियन प्रेस का काम कुछ महँगा होता है। फिर भी पाठकों को यह जान कर आश्चर्य होगा कि कई एक प्रेसों के मालिक तक अपना निजी काम इस विशेषता को प्राप्त करने के लिए इंडियन प्रेस में ही कराते रहे हैं।

इन पंक्तियों के लेखक ने एक बार चिन्तामणि बाबू से उनकी जीवन-घटनाओं का विवरण जानने की इच्छा प्रकट की। इस पर हँसकर कहने लगे कि मेरी जीवन-चर्या मेहनती आदमी की जीवन-घटनाओं का समुच्चय है। उसमें और है ही क्या। एक लेखक ने मेरा आत्म-वृत्त अपनी एक ऐसी पुस्तक के लिए मांगा था जिसमें भारत के उन सपूतों का वर्णन होता जिन्होंने अपने बल-बूते पर अपनी उन्नति की है। उक्त लेखक को भी वही उत्तर दिया था। कहने लगे कि जो दरिद्र युवक संसार में परिश्रम करके कुछ कर जाना चाहते हैं उनके लिए मेरी जीवन-गाथा से कुछ सहारा ज़रूर मिल सकता है। वे जीवन के आरम्भ में धन-सम्पन्न नहीं थे, इस कारण उन्हें धन-हीनता का ख़ासा अनुभव था। सम्पन्न होने पर उन्होंने कभी फ़िज़ूल ख़र्च नहीं किया। रईस बनने की उन्हें हविस नहीं थी। किन्तु इससे कोई उन्हें कृपण न समझ ले। उनकी माता जैसी धर्मात्मा थीं, वैसे ही वे दानी थे। लेकिन इस दान का ढिँढोरा न पीटा जाता था। हम लोगों को उनकी दानशीलता का पता उनसे नहीं लगा; उन लोगों से जो उनके दान से उपकृत हो चुके थे। एक बार ऐसे ही एक व्यक्ति ने उनसे, बेटे या बेटी के ब्याह के लिए, कुछ क़र्ज़ मांगा तब उत्तर दिया कि जब देश जाने लगें तब एक-दो दिन पहले याद दिलाना। उक्त समय आने पर उन्होंने उस व्यक्ति से कहा कि क़र्ज़ का तो कुछ प्रबन्ध नहीं हो सका, यह रूमाल की गांठ लेते जाओ, शायद तुम्हारे काम आ जाय। रास्ते में गांठ खोली तो १००) के नोट पाये। ऋण मांगनेवाला इस अयाचित दान को पाकर मन ही मन अशेष आशीर्वाद देता हुआ चला गया। अनाथ बच्चों, विधवा स्त्रियों और अपाहिजों के लिए उनके यहां से नियमित वृत्ति मिलती थी। उनको उतनी स्कूली शिक्षा नहीं मिली जितनी के लिए वे उत्सुक थे, इसलिए उन्होंने निराश्रय विद्यार्थियों की शिक्षा-प्राप्ति में सहायक होने का प्रण-सा कर लिया था।

उनकी अतिथिवत्सलता सराहने योग्य थी। उनके यहां निमन्त्रण होता तो भोज्यसामग्री बढ़िया से बढ़िया बनवाने का प्रबन्ध किया जाता। प्रबन्धक को ताकीद कर दी जाती कि कोई कसर न रहने पाये और सबके भोजन कर चुकने पर वे उन्हीं पदार्थों को खाकर या तो सन्तुष्ट होते या अप्रसन्न होते कि अमुक चीज़ क्यों ख़राब कर दी गई, लोग भला क्या कहेंगे। जब से इन पङ्क्तियों का लेखक काशी स्थानान्तरित हुआ, प्रयाग जाने पर प्रायः बाबू साहब के ही यहां ठहरता रहा है। उस समय से उसे पता है कि अतिथियों की उनके यहां कैसी ख़ातिर की जाती है।

बाबू साहब का स्वभाव सरल था। हेलमेल से घण्टों सुख-दुःख की बात-चीत किया करते थे। पोशाक बिलकुल सादी थी। मामूली धोती और कमीज़ से काम लेते थे। मैंने कभी उन्हें हज़ार पांच सौ की शाल ओढ़े शान में नहीं देखा। लड़कों के विवाह में यद्यपि आवश्यक ख़र्च में कमी न की जाती थी, पर फ़िज़ूल बातों से कोई वास्ता नहीं रहता था। अधिकांश विवाहों में उन्होंने बाजे-गाजे या आतिशबाज़ी को उपयुक्त नहीं माना। ठीक समय पर भोजन और शयन करते थे। बीमार हों चाहे

तन्दुरुस्त, बेकाम नहीं बैठते थे। दृष्टि-शक्ति जाती रहने पर भी सदा मुख्य कर्मचारियों को काम में सलाह दिया करते, उलझनों को आसान करने की युक्ति बड़ी सरलता से बता देते और शेष समय में हिन्दी, अँगरेज़ी और बँगला के सद्ग्रन्थ दूसरे से पढ़वाकर सुनते रहते थे। तेरह वर्ष की उम्र से जिन्होंने कार्यक्षेत्र में पैर रक्खा था उन्होंने मृत्यु से कोई दो सप्ताह पहले तक अपने जीवन को कर्ममय बनाये रक्खा।

पुस्तकों के सम्बन्ध में उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि अधिकांश जनता की रुचि किस ओर है। यदि वे इस जानकारी से लाभ उठाते तो उनको आर्थिक लाभ अवश्य होता, परन्तु प्रवाह में बहती हुई जनता उच्च आदर्श की ओर कैसे आकृष्ट होती। फलतः चिन्तामणि बाबू ने अर्थ-लाभ की अपेक्षा सुरुचि का विशेष ध्यान रक्खा। कहा करते थे कि भूल से कोई ऐसी पुस्तक न छप जाय जिसके कारण लोग कहें कि हैं, यह पुस्तक इंडियन प्रेस से कैसे प्रकाशित हो गई। ऊर्जितावस्था से पहले प्रेस ने एक मौलिक उपन्यास छापा था। उपन्यास बढ़िया था। अच्छी बिक्री हुई। किन्तु उस ज़माने के कुछ लोगों ने उसमें विधवा-विवाह का प्रवर्तन देख तेवर बदले। इसका पता पाकर बाबू साहब ने उसका पुनर्मुद्रण रुकवा दिया। यह बात मुझे उक्त उपन्यास के लेखक से ही ज्ञात हुई, जिनकी आज-कल हिन्दी की दुनिया में ख़ासी क़दर है। पुस्तकों की सदाचारशीलता पर ही नहीं, वे विज्ञापनों के स्वास्थ्य पर भी दृष्टि रखते थे। जनता को हानि से बचाने के लिए उन्होंने अपने विज्ञापन-विभाग को आज्ञा दे रक्खी थी कि जहाँ तक हो सके, ऐसे विज्ञापन छापे जाया करें जिससे जनता की सुरुचि पर किसी प्रकार का दोष आक्रमण न कर ले। यह तो सम्भव नहीं था कि सभी विज्ञापन-दाताओं की सचाई की पड़ताल कर ली जाय; फिर भी औरों की अपेक्षा इंडियन प्रेस इस मामले में सावधान रहा है।

कवीन्द्र रवीन्द्र का एक उपन्यास हिन्दीवालों को बहुत प्रिय है। उसके एक स्त्री-पात्र 'माया' का चरित्र चिन्तामणि बाबू को स्त्रियों के लिए उपयुक्त नहीं जँचा। पात्र के हृदय की किसी स्वाभाविक दुर्बलता को प्रकट कर देना उनको आदर्श की सीमा की अन्तर्गत बात नहीं जँची। फलतः उक्त उपन्यास के छापने का अधिकार उन्होंने एक अन्य व्यक्ति को दे दिया। यद्यपि उन्होंने अच्छी रक़म देकर रवीन्द्र बाबू के उपन्यासों को हिन्दी में प्रकाशित करने का अधिकार प्राप्त किया था, तो भी उन्होंने उक्त उपन्यास सेंतमेंत ही छाप लेने दिया। परिणाम यह हुआ कि उक्त उपन्यास की ख़ासी बिक्री देख रवि बाबू की और और पुस्तकें, प्रेस से बिना पूछे ही, छापकर उक्त अनुगृहीत व्यक्ति ने कौड़ी पाई से कृतज्ञता का बदला चुकाया था। स्मरण रहे कि उस समय आज-कल की तरह कापी राइट ऐक्ट में बिना पूछे अनुवाद कर लेने देने की उदारता की छाया भी नहीं थी।

बाबू साहब हिन्दी-पुस्तकों के प्रकाशन मे नव युग उपस्थित कर देने के लिए सदा प्रयत्नशील रहते थे। उनकी इस परिमार्जित रुचि का प्रमाण इंडियन प्रेस के ग्रन्थ हैं। सबसे पहले रामचरितमानस का शुद्ध साफ़ प्रामाणिक संस्करण प्रकाशित करने का श्रेय चिन्तामणि बाबू को ही प्राप्त है। बहुत से उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन वे स्वयं कर गये हैं और बहुतों को लिखवा कर तथा उनका सम्पादन करवाकर रख गये हैं जो शीघ्र प्रकाशित किये जायँगे। इन पंक्तियों के लेखक से उन्होंने कई बार कहा था कि मेरी ज़िन्दगी मे महाभारत के अट्ठारहों पर्वों का प्रकाशित हो जाना कदाचित् सम्भव न हो; पर मेरे सामने उसके कुछ पर्व तो छपकर तैयार हो जायँ। सो

प्रसन्नता की बात है कि उनकी यह इच्छा भगवत्-कृपा से सफल हो गई। जनता में महाभारत का आशातीत समादर सुनकर उन्हें बहुत हर्ष हुआ था। वे कहा करते थे कि प्रेस में यों तो बहुत सी पुस्तकें छपती रहेंगी और उनकी बिक्री भी होगी; परन्तु प्रेस को प्रतिवर्ष एक दो ऐसे अमुद्रित ग्रन्थ छापना चाहिए जिनकी बिक्री चाहे कम हो; पर जिनके प्रकाशन से साहित्य का स्थायी लाभ हो।

स्वर्गवासी पण्डित रामेश्वर भट्ट को तुलसीदास के साहित्य का मर्मज्ञ सुनकर उन्होंने उनसे तुलसी-ग्रन्थावली का सम्पादन कराया और रामायण का परिशीलन करते करते अपनी ज्ञानवृद्ध अवस्था में भट्टजी ने रामायण की जो टीका लिखी है उसके प्रकाशन का अधिकार भी इंडियन प्रेस ने प्राप्त कर लिया है। यदि अधिक कार्य के कारण प्रेस को उलझन न होती तो काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से कदाचित् तुलसी-ग्रन्थावली प्रकाशित होती ही नहीं; क्योंकि प्रेस से प्रकाशित सटीक तुलसी-ग्रन्थावली का जनता में भी कभी का प्रचार होगया होता।

कुछ लोग कहते है कि इंडियन प्रेस ने हिन्दी में बँगला पुस्तकों के अनुवाद का प्रवाह बहा दिया है। उनका यह कथन कुछ अंशों में मिथ्या नहीं कहा जा सकता है। क्योंकि साहित्य के आरम्भिक युग में सभी भाषायें अनुवाद-ग्रन्थों से अपने भाण्डार का परिपुष्टि-साधन किया करती हैं। उसका अपवाद भला हिन्दी कैसे हो सकती थी। फिर चिन्तामणि बाबू स्वयं बङ्गाली थे। बँगला-साहित्य तथा उसके प्रसिद्ध लेखकों से अधिक परिचित होने के कारण उन्हें वहां से प्रकाशन के लिए ग्रन्थों का चुनाव करने में सहायता मिलना सहज था। किन्तु इसका यह मतलब नहीं कि उन्होंने मौलिक ग्रन्थ नहीं प्रकाशित किये हैं। छापने के लिए उनको जो सुन्दर ग्रन्थ प्राप्त हो सके उनको प्रकाशित करने के लिए वे सदैव तत्पर रहे।

हिन्दी के सिवा उन्होंने अपनी मातृ-भाषा बँगला का भी खासा हित-साधन किया और कवीन्द्र रवीन्द्र के ग्रन्थ जिस सुन्दर परिपाटी से इंडियन प्रेस ने छापे, वैसे उसके पहले बंगाल में भी नहीं छापे जा सके थे। बँगला-साहित्य का उनके द्वारा कैसा क्या हित-साधन हुआ, इसका वर्णन कोई उस भाषा का सहृदय लेखक ही करेगा। मैं यहां एक बात कहूँगा। बहुतेरे बंगालियों से मैंने और मेरे मित्रों ने हिन्दी की हित-चिन्ता कम सुनी है; अक्सर यही सुना है कि हिन्दी-साहित्य में है ही क्या, हिन्दी में लेखक ही कौन है।

किन्तु चिन्तामणि बाबू ने हिन्दी के प्रति ऐसी अवज्ञा का भाव कभी नहीं प्रकट किया। वे हिन्दी का और हिन्दी के लेखकों का आदर करते थे।

अदालती झगड़ों से वे सदा दूर रहते थे। कहते थे, कुछ ग़म खाकर बैठ रहे, पर अदालत न जाय। उनका अदालत न जाने का प्रण सबको विदित था। इस कारण लोग प्रेस का नुकसान कर देते, उसका रुपया हज़म कर जाते अथवा जिस पुस्तक के छापने का उन्हें अधिकार न होता उसे तक छाप लेते थे, पर चिन्तामणि बाबू अपनी अर्थक्षति की रक्षा के लिए अदालत का नाम न लेते थे।

हिन्दी और बँगला के नामी नामी लेखकों तथा कवियों से उनका खासा परिचय था। ये सरस्वती के आराधक लोग बीच बीच में उनसे भेंट करने प्रयाग भी आया करते थे। अधिकांश लेखकों की यही इच्छा रहती थी कि उनकी रचनाओं का प्रकाशन इंडियन प्रेस करे; और जब तक प्रेस नम्रतापूर्वक समयाभाव के कारण अपनी असमर्थता प्रकट न करता, वे किसी अन्य प्रकाशक के यहां जाने की इच्छा न करते थे। इसका कारण एक तो काम की

सुन्दरता और शुद्धता थी और दूसरा था देन-लेन का चौकस व्यवहार। जिसका पुरस्कार जिस दिन मिलना चाहिए उस दिन अवश्य ही प्रेस से बेबाक कर दिया जाता था। प्रसन्नता की बात है कि इस नियम का प्रतिपालन अब तक उसी रूप में हो रहा है। सरस्वती-सेवक प्रायः धनिक कम होते हैं। समय पर उनको पारिश्रमिक न मिले तो उन्हें असुविधा होती है; उनके लेखनकार्य में बाधा उपस्थित होती है। अतएव उनकी कुछ सेवा होने का युग जब तक भारतवर्ष में नहीं आया है, तब तक उनका पारिश्रमिक यदि उन्हें समय पर मिलता रहे तो यही बड़ी बात है। चिन्तामणि बाबू के यहां जो लेखक लोग काम करते थे उनसे वे कहा करते थे कि लेखकों का कार्य साधारण नहीं है। उन पर निगरानी करना ठीक नहीं। वे अपना पवित्र कार्य किया करें; और मैं उस व्यवस्था में अपना मन लगाये रहूँ जिसमें ठीक समय पर उनको मासिक पुरस्कार मिल जाय। उनके सद्व्यवहार का यह फल था कि जो लोग उनके यहां काम कर जाते थे वे फिर किसी अन्य प्रेस में काम करने की उत्सुकता का परित्याग कर देते थे। उनके साहित्य-विभाग में सदा चुने हुए साहित्य-सेवी रहते थे और हैं। पाठकों को सुनकर आश्चर्य न होगा कि हिन्दी के कई नामी नामी लेखकों ने अपने कार्य का श्रीगणेश इंडियन प्रेस से ही किया है।

चिन्तामणि बाबू कहा करते थे कि विलायत में लेखक-कला बड़ी उच्च दशा में है। वहां के कृती लेखकों की आय करोड़ों रुपये वार्षिक है। वहां पर क़लम की कृपा से सैकड़ों आदमी अमीर हो गये हैं। किन्तु यह तो पूर्व है। यहां पर लेखक ऋषि-मुनि की तरह श्रद्धा के पात्र हैं। वे लोक-हित के पथ-प्रदर्शक है। मालियत के हिसाब से जो दशा ऋषिमुनियों की थी वही, ज़माना सुधरने तक, लेखकों की रहेगी। इसलिए उन्हें अपनी शान्ति का परित्याग न करना चाहिए।

जिस व्यक्ति का जीवन निरन्तर काम करते रहने में अतिवाहित हुआ हो उसका सदाचारी होना स्वयं सिद्ध है। अपने कार्यविस्तार की उलझनों के कारण उसे फ़िज़ूल कामों के लिए .फ़ुरसत ही कहां। चिन्तामणि बाबू नाच-तमाशे से इतना परहेज़ रखते थे कि उनके वयस्क लड़के भी निर्दोष खेलों तक में प्रवृत्त नहीं हो सके। उनके सदाचार का अप्रत्यक्ष प्रभाव उनके कर्मचारियों पर भी पड़ता था। उनके यहां के ऐसे कुछ कर्मचारियों को लेखक जानता है जिन्होंने, विपत्नीक होने पर, अधिक अवस्था न होते हुए भी आदर्श के लिहाज़ से पुनर्दार-परिग्रह के सहस्र अनुरोधों को अस्वीकार करने की दृढ़ता दिखलाई; और जिन्होंने अपने बेटों के ब्याह, कन्यापक्ष से लेन-देन का ठेका किये बिना ही, सम्पन्न किये। फलतः चिन्तामणि बाबू के यहां, ख़ास कर उन लोगों में, जिन्हें कि घोष बाबू के सम्पर्क में विशेष रूप से रहना पड़ता था, असत्प्रवृत्ति के लोग नहीं के बराबर थे।

चिन्तामणि बाबू के व्यवसाय की सफलता के तीन मन्त्र थे; सचाई, बिना हीला-हवाला किये समय पर काम देना और काम को यथासम्भव अच्छा करना। अपने इन मन्त्रो का प्रयोग उन्होंने आजीवन किया और उल्लिखित तीनों मन्त्रों का उपदेश वे अपने सुयोग्य पुत्रों को भी दे गये हैं।

चिन्तामणि बाबू के इस समय पांच पुत्र और एक पुत्री है। कनिष्ट पुत्र अभी शिक्षा-कार्य में संलग्न ह। शेष पुत्र प्रेस को बड़ी योग्यता से चलाने में दत्तचित्त हैं। इनमें दो पुत्रों के अतिरिक्त सभी सन्तानवान् हैं। सम्पत्ति के बँटवारे के सम्बन्ध में, इन लोगों के बीच, किसी प्रकार का मनोमालिन्य उपस्थित न होने देने के लिए दूरदर्शी

चिन्तामणि बाबू ने एक ट्रस्ट की योजना कर दी है, जिसकी व्यवस्था से गृहस्थी के निर्वाह के लिए, उनकी दातव्य संस्था तथा अन्य आवश्यक कामों के लिए, निर्दिष्ट समय पर निर्धारित धन मिलते रहने का सुन्दर प्रबन्ध है। यह हो ही नहीं सकता कि भाइयों के बीच रुपये-पैसे के लिए विवाद हो। सभी भाइयों में आदर्श बन्धुत्व है।

चिन्तामणि बाबू का जीवन बहुत ही सुन्दर था। यदि असमय में उनके ज्येष्ठ पुत्र की मृत्यु न हो जाती तो निःसन्देह कहा जा सकता कि उनको सब सुख प्राप्त थे। दृष्टिहीन हो जाने से उनके अन्तिम तीन चार वर्ष सुखमय नहीं माने जा सकते। पुत्र और पुत्रवधुयें उनकी आदर्श सेवा शुश्रूषा किया करती थीं। ऐसा बढ़िया प्रबन्ध रहता था जिसमें बूढ़े पिता को रत्ती भर भी किसी प्रकार की असुविधा न हो। उनकी मर्ज़ी के बिना उनके गृह-राज्य का पत्ता तक न हिल सकता था। अपने बेटे-बहुओं द्वारा की गई परिचर्या से वे सदा सन्तुष्ट रहते और सन्तान को हृदय से सफल आशीर्वाद दिया करते थे। यह सब था; किन्तु दृष्टिहीनता के लिए कोई क्या कर सकता था। एक बार यह लेखक माघ-मेले के समय त्रिवेणी-स्नान से लौट कर उनके पास धूप में बैठा हुआ उनसे बातचीत कर रहा था। इसी बीच में एक अन्ध व्यक्ति छोटे बालक का हाथ पकड़े अपनी निर्दिष्ट वृत्ति लेने आया। वृत्ति लेकर उसके चले जाने पर बाबू साहब ने कहा कि बिना आँखों के जीना बड़ी मुसीबत है। इस आदमी की और मेरी एक सी दशा है। इसे खाने-पीने का कष्ट है; मैं उससे बचा हुआ हूँ। दृष्टिहीन व्यक्ति के लिए अनन्त अन्धकार है। इस काकातुआ के बोलने से मैं दिन का अनुमान कर लेता हूँ। जिसका जन्म काम करते करते बीता है उसके लिए, दृष्टि न रहने पर, खाली बैठा रहना कितना कष्टदायक है। इसका अनुभव सबको नहीं हो सकता।

चिन्तामणि बाबू ने जिस प्रयाग में अपने जीवन के उषःकाल में अकिञ्चन दशा में डरते डरते पदार्पण किया था और जिस प्रयाग में उन्हें निरुपाय हो शिक्षा-प्राप्ति से विरत होकर पायोनियर प्रेस की साधारण नौकरी करनी पड़ी तथा जहा पर उन्होंने कल्पनाप्रसूत प्रसाद-निर्माण का सुखमय स्वप्न देखा था उसी तीर्थराज प्रयाग में उन्होंने जीवन के मध्याह्न में अपने सुख-स्वप्नों की प्रत्यक्ष मङ्गल-मूर्ति देखी और धन-जन-विभव से सम्पन्न दुर्लभ जीवन को वर्ष भर पहले से ही छोड़ने के लिए सर्वथा प्रस्तुत होकर पुण्यसलिला जाह्नवी के क्रोड़ में पुरुषोत्तम मास (श्रावण) की एकादशी तिथि को चिरनिद्रा ग्रहण कर ली। पुण्य पुरुष का नश्वर शरीर गङ्गा के तट पर हुताशन में हुत हो गया; किन्तु यशःशरीर अमर रहेगा।
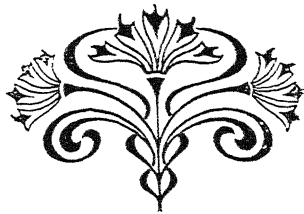
बड़े बाबू

[श्रीयुत ज्वालादत्त शर्मा]

"सत्यश्रमाभ्यां सकलार्थसिद्धिः"

इं डियन प्रेस के स्वामी बाबू चिन्तामणि घोष का पूरे ७४ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हो गया। बड़े बाबू सच्चे बड़े थे। उन जैसे बड़े आदमी संसार में भी बहुत अधिक नहीं होते, किन्तु भारतवर्ष में तो बहुत ही कम उत्पन्न होते हैं। बहुत छोटी अवस्था में, बहुत साधारण दशा में जीवन का आरम्भ करके अपने बाहुबल, बुद्धि-प्राखर्य और अदम्य उत्साह से उन्होंने जैसी भारी उन्नति की वह निर्धन भारतवासियों के लिए आदर्श-रूप है। उनके जीवन की पहली सीढ़ी पायोनियर प्रेस में १०) मासिक की क्लर्की थी और उनके जीवन का अन्तिम और उच्चतम सोपान सुसमृद्ध और विशाल इंडियन प्रेस का स्वामित्व और, और भी बहुत कुछ है। अन्य देशों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, किन्तु अपने देश में ऐसे स्वावलंबी और सेल्फ़ मेड (स्वयंसिद्ध) पुरुषसिंह कभी कहीं भूल से उत्पन्न हो जाते हैं। ग़रीब आदमी मालदार तो बन जाते हैं, किन्तु उनके जीवन में धन की वृद्धि से कोई विकास नहीं होता। उस दृष्टि से तो उनमें दस में नौ के जीवन पर ध्यान देने से यही कहना पड़ेगा कि वे धनवान् न होते तो उनके लिए तथा औरों के लिए अच्छा होता। धन के साथ मन का विकास न हुआ तो कुछ न हुआ। उचित उपायों से देश और जाति की सम्मानरक्षा करते हुए जो वैभव प्राप्त होता है वही प्रशंसनीय है। श्रीहर्षदेव ने कितना अच्छा कहा है—

अशठमलोलमजिह्मं त्यागिनमनुरागिणं विशेषज्ञम्।
यदि नाश्रयति नरं श्रीः श्रीरेवहि वञ्चिता तत्र॥

बड़े बाबू के सम्बन्ध में लक्ष्मी वञ्चित नहीं हुई थी। उन्होंने उससे अपना, अपने भाइयों का, अपने प्रान्त का, अपने देश का उपकार किया, उन्होंने एक विचक्षण व्यवसायी की भाँति देखभाल और समझ-बूझ कर धीरे धीरे आगे क़दम उठाया और इसी लिए उन्हें प्रायः हर काम में सफलता प्राप्त हुई।

बड़े बाबू में सद्रुचि का बहुत विकास हुआ था, वे कोई काम भी तीसरे दर्जे का पसन्द नही करते थे, प्रेस खोला तो बढ़िया, हिन्दी में पत्रिका निकाली तो आदर्श, स्कूलों के लिए पुस्तकें निकालीं तो सुन्दर, चित्रों की छपाई का प्रबन्ध किया तो उत्कृष्ट, बँगला का कोश निकाला तो अद्वितीय, इमारतें बनाईं तो रम्य, ग़र्ज़ जो काम किया अच्छा किया और अच्छे ढङ्ग से किया, ऐसे

सुरुचि-सम्पन्न सदाशय व्यक्ति का बुढ़ापे में भी मर जाना देश के लिए दुःखदायक घटना है।

हमारे प्रभु अँगरेज़ों का और अनेक योरपीयों का ख़याल है कि भारतवासी कोई काम अच्छा नहीं कर सकते, उद्योग-धन्धों के लिए तो उनके मग़ज़ में चर्बी का बिलकुल अभाव है, कोई काम भी वे सलीक़े से करना नहीं जानते। चिन्तामणि बाबू ने इंडियन प्रेस खोल कर जहां भारतीयों के सामने एक उत्तम छापाख़ाना खोलने का आदर्श रक्खा, वहां प्रभुओं के लगाये उस इलज़ाम को भी अलं समाजे। उन्होंने दिखा दिया कि अनेक साधनों के अभाव और परतन्त्रता-प्रसूत अनेक विघ्नों के सद्भाव होने पर भी भारतीय किसी काम को कितना अच्छा कर सकते हैं। प्रेस और प्रकाशन की कला का कोई विदेशी मर्म्मज्ञ उनके काम को देख कर उसी तरह विस्मित हो सकता था, जिस तरह जर्मनी का रसायनज्ञ मूर्तिमान् त्याग आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय के बङ्गाल फ़ार्मास्यूटिकल वर्क्स को देख कर हुआ था।

बङ्गाली होते हुए भी उन्होंने हिन्दी का जितना उपकार किया है, उतना किसी दूसरे से नहीं हो सका। हिन्दी में मासिक साहित्य का आदर्श उन्होंने ही 'सरस्वती' निकाल कर हिन्दी-प्रेमी जनता के सामने उपस्थित किया। हिन्दी में 'सरस्वती' ने जो काम किया है वह किसी प्रमाण या परिचय की आवश्यकता नहीं रखता। बड़े बाबू की गुण-ग्राहकता और सदाशयपूर्ण दूर-दर्शिता ने ही द्विवेदीजी महाराज को उस काम के लिए चुना जिसे उनसे अच्छा तब तो क्या अब भी कोई नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी प्रीति का उन पर ऐसा अच्छा प्रभाव डाला कि उन्होंने उस समय तक काम किया जिस समय तक वे और किसी के लिए नहीं कर सकते थे। पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण में भी उन्होंने बहुत कुछ काम किया। हिन्दी में अच्छी अच्छी पुस्तकें उन्होंने प्रकाशित कीं। उनके इन सब सदुद्योगों का फल भी उन्हें ईश्वर की कृपा से बहुत अच्छा प्राप्त हुआ।

बड़े बाबू ने मातृभाषा बँगला का भी कुछ कम उपकार नहीं किया। रवि बाबू के समग्र ग्रन्थों के वही प्रकाशक थे। बड़े प्रयत्न और अर्थव्यय से उन्होंने बँगला का एक सुन्दर कोश प्रकाशित किया है। 'प्रवासी' और 'माडर्न रिव्यू' के निकालने में सम्पादकप्रवर रामानन्द बाबू को उन्होंने आरम्भ में जो सहायता दी वह यदि न मिलती तो वे इन पत्रों को ज़िन्दा न रख सकते थे, इसका बड़ी कृतज्ञता के साथ रामानन्द बाबू ने अपने पत्र में ज़िक्र भी किया है।

बड़े बाबू में सबसे बड़ा गुण यह था कि वे चुपचाप लगन के साथ काम करना जानते थे। जो सोचते थे उसे बड़ी दृढ़ता से कार्य का रूप देते थे। इसी लिए उनके काम अच्छे और स्थायी होते थे। उनका जीवन उनकी एकान्त विचारशीलता का परिपाक है।

उन्होंने अनेक परोपकारी कार्य किये। अपने स्वर्गीय पुत्र की स्मृति में अस्पताल खोला, अनेक विद्यार्थियों और विधवाओं को उनसे वृत्ति मिलती थी। परन्तु उनका सबसे बड़ा उपकार उनका व्यापार था जिसे उन्होंने बहुत थोड़े धन किन्तु बहुत बड़े विचार और विश्वास के बल पर आरम्भ किया था।

ऐसा बड़े बाबू का जीवन था जो पृथ्वी से स्वर्ग तक पहुँच गया, उनके उठ जाने पर आज हज़ारों आदमियों को दुःख हो रहा है जो उन्हें थोड़ा सा भी जानते थे।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि और उनका जन्म-पत्र

[श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०]

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष के सम्बन्ध में इस अङ्क में अनेक विद्वानों के लेख छपेंगे। कई एक मे उनके गुणों का कीर्तन होगा तो कई एक में उनकी कर्म-कथा का वर्णन होगा। वे मनस्वी थे, अतएव इस प्रकार उनके चरित की चर्चा करना हम लोगों के लिए उपादेय है। परन्तु उनकी कीर्ति-गाथा का कथन न कर हम यहाँ उनके जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं को उनके जन्मपत्र के फल से मिला कर ही अपनी लेखनी को पुनीत करना चाहते हैं।

हमारा ज्योतिष-शास्त्र दो शाखाओं में विभक्त है, गणित और फलित। गणित के द्वारा तो आकाशस्थ ग्रहों और उपग्रहों के स्थान निकाले जाते हैं और फलित से उनके फल का विचार किया जाता है। खेद की बात है कि जो भारतवर्ष ज्योतिष का जन्मस्थान है, वहीं आज-कल लोग गणित को भूलते जाते हैं। प्राचीन काल में यहाँ तक गणित करते थे कि ग्रहों के स्थान आकाश में गणनानुसार हैं या नहीं, उसकी जाँच बीच बीच में बराबर होती रहती थी। परन्तु १४ शताब्दियों से भी अधिक समय हुआ कि ऐसी जाँच बन्द है। इस कारण गणित और दृक्सिद्ध स्थानों में बड़ा अन्तर पड गया है।

फलित ज्योतिष को बहुतेरे काल्पनिक और भित्तिहीन मानते हैं, क्योंकि गगनचारी ग्रहों का प्रभाव मनुष्य के शरीर और स्वभाव पर कैसे पड़ सकता है, इसका कोई वैज्ञानिक और विश्वसनीय कारण समझ में नहीं आता। परन्तु जब किसी विद्वान् ज्योतिषी के विचार-फल सत्य घटित होते हैं तब उसके न माननेवाले आश्चर्य में पड़ जाते हैं। यह हम मानते हैं कि आज-कल इस विद्या में निपुण विद्वानों की संख्या बहुत कम दिखाई देती है, और इसका कारण यह है कि इसके अर्जन करने में बहुत ही परिश्रम का प्रयोजन है और उस अनुपात में समुचित धनागम

कटरा की कोठी
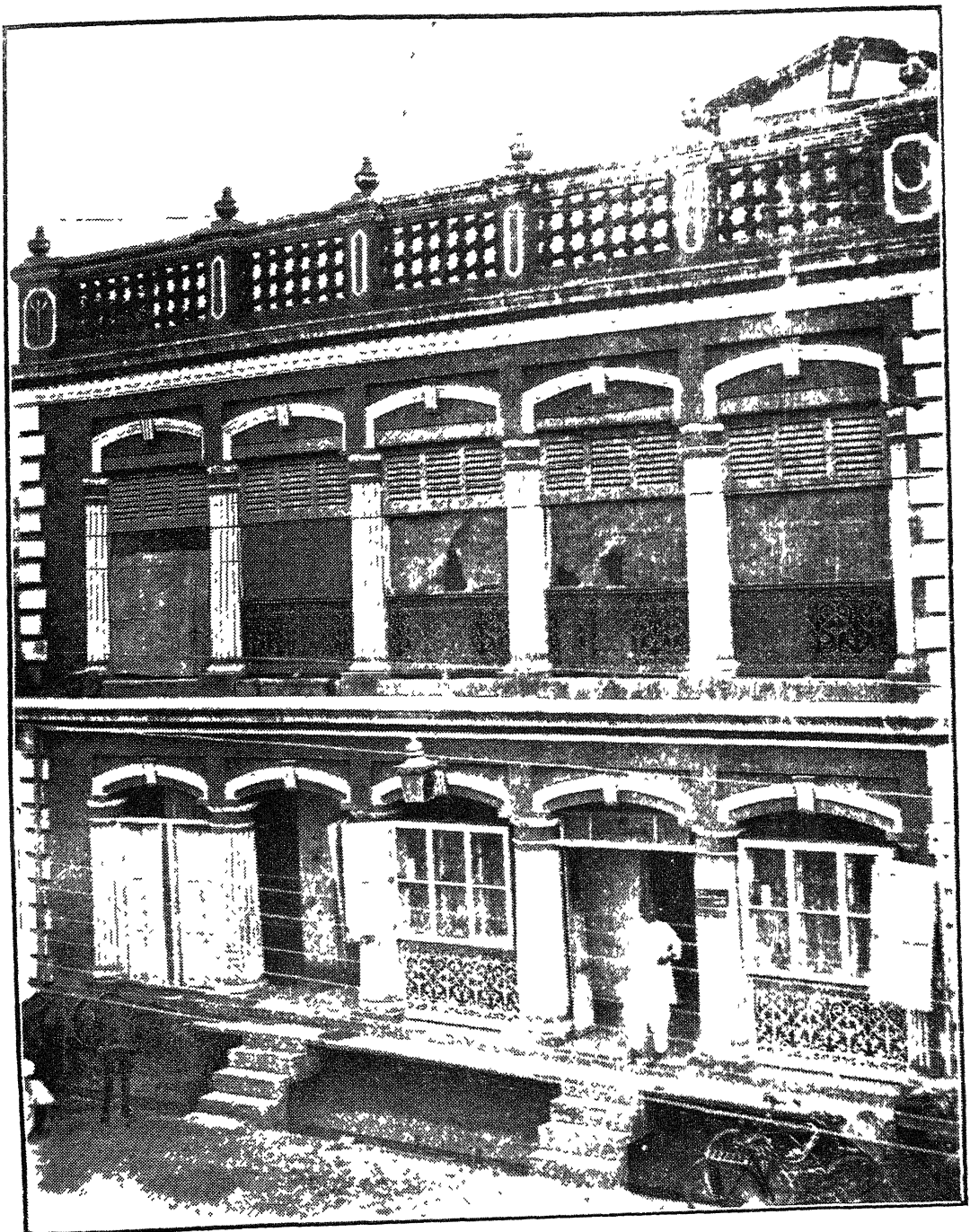
हिन्दुस्तानी पब्लिशिंग हाउस, बनारस

नहीं होता। अच्छे ज्योतिषियों को अपना पेट पालने के लिए या तो कोई दूसरा काम करना पड़ता है या उल्टा-सीधा फल बता कर यजमान को सन्तुष्ट करके अथवा अरिष्ट का भय दिखा कर ठगना पड़ता है, इस कारण अधिक परिश्रम करके कोई उसे सीखना नहीं चाहता।

अब हम स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष की जन्म-पत्रिका पर आज-कल के एक प्रसिद्ध गणितज्ञ और फलित ज्योतिष के ज्ञाता का विचार-फल संक्षेप में लिखते हैं और उसको प्रकृत घटनाओं से मिला कर पाठकों को दिखाते हैं कि ज्योतिष का विचार-फल कितना शुद्ध होता है। विद्वान् पाठक जानते ही हैं कि हमारे देश में 'पञ्चाङ्ग' पुरानी सारिणियों से बनाये जाते हैं, आकाश में ग्रहों के स्थान देख-भाल कर नाप कर अपनी गणना की जाँच कर लेने की प्रथा आज १४-१५ शताब्दियों से छूट गई है। इस कारण हमारे पञ्चाङ्गों के गणित-फल दृक्सिद्ध और शुद्ध नहीं होते। उदाहरण के लिए कह सकते हैं कि गत १ जुलाई १९२४ को सवेरे ९ से १० बजे के बीच में शुक्र-ग्रह सूर्य्य के बिम्ब के ऊपर होकर निकल गया, हज़ारों दर्शकों ने देखा कि सूर्य्य के उज्ज्वल बिम्ब पर एक छोटा बिन्दु चला जा रहा है। परन्तु सब देशी पञ्चाङ्गों मे उस समय शुक्र का स्थान सूर्य्य से पाँच-छः अंश दूर लिखा था। इसी प्रकार संवत् १९८२ की मकर-संक्रान्ति के दिन सब देशी पञ्चाङ्गों में १३ बिस्वा सूर्य्य-ग्रहण पड़ने का उल्लेख था। कुरुक्षेत्र के तीर्थ-क्षेत्र मे हज़ारों यात्री ग्रहण-स्नान करने को इकट्ठा हुए। परन्तु आकाश में सूर्य के पास राहु फटका ही नहीं, सब यात्री पञ्चाङ्ग बनानेवालों को कोसते चले गये। इस अभाव के दूर करने के लिए आज चालीस वर्ष से कलकत्ता से 'विशुद्ध सिद्धान्त-पञ्जिका' का प्रचार हो रहा है, उसमें दृक्सिद्ध गणितफल, अर्थात् आकाश मे जैसा दिखाई देता है वैसा ही ग्रहों के स्थान लिखे जाते हैं। ऐसी ही पञ्जिका के प्रधान गणक पण्डित चन्द्रशेखर शुक्ल ज्योतिर्भूषण सिद्धान्त-विनोद ने बाबू साहब की जन्मपत्रिका का विचार किया है। सिद्धान्तविनोदजी आज-कल कानपुर (हालसी-रोड) के अपने मृत्युञ्जय औषधालय में बैठ कर चिकित्सा के व्यवसाय से अपना निर्वाह करते हैं।

बाबू साहब की पूरी जन्मपत्री नहीं मिली। अतएव ग्रहों के स्फुट न मिलने से सूक्ष्म विचार न हो सका और जन्म-समय के नक्षत्र का जो काल मिला वह भी पुरानी रीति का गणित-फल है, दृक्-सिद्ध फल नहीं। इस कारण घटनाओं के समय मे अन्तर आ गया। अब आगे हम सिद्धान्त-विनोदजी का जन्मपत्रिका-सम्बन्धी विवरण देते हैं—

संक्षिप्त जन्मपत्रिका तथा उसका विचार

शुभ संवत् १९११। शकाब्दा १७७६। बंगाब्दा १२६१। खृष्टाब्दा १८५४ सौर २५ श्रावण बुधवार अं० १० अगस्त। भाद्रकृष्ण प्रतिपदा दं० २८। ५९ धनिष्ठा नामनक्षत्र दं० २९। ५६ शोभन योग दं० ५१। ४० जन्म-समय दिवा १० बजे। जन्म-स्थान उत्तरपाड़ा (हुगली) सूर्य्योदयाज्जात दण्डादि ११। ०। २० निरयन कन्या-लग्नके २४°। ३५' में जन्म।

जन्माङ्कम् ॥
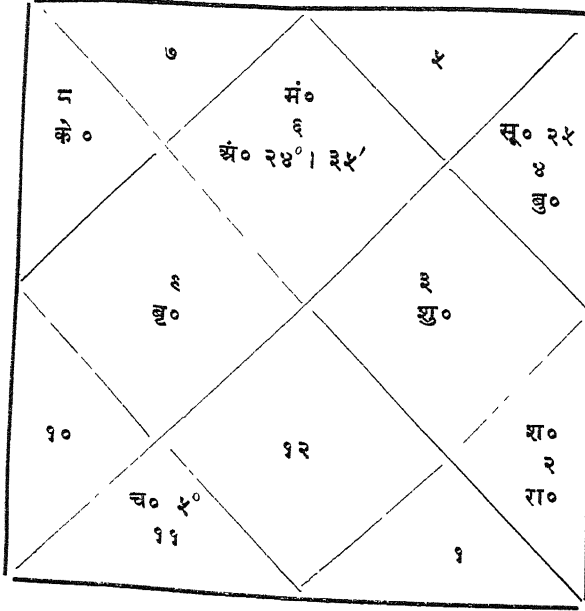
भावचक्रम् ।
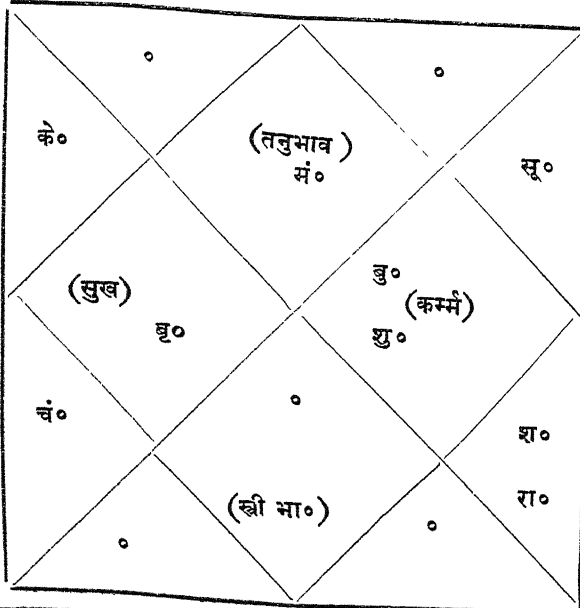
विंशोत्तरी दशा-विभाग

	वर्ष	महीना	दिन	फल
मंगल प्रा० ६-८-१८५४ से २४-१०-१८५६ तक	२	२	१५	वात-पित्तज पीड़ा, उदरामय, रक्तातीसार; रक्तविकृति जनित पीड़ा, अशान्ति प्रभृति।
रा०	१८			
राहु-दशा ... ... २४-१०-१८७४ तक	२०	२	१५	अशान्ति, शोक, अर्थहानि, विविध कष्ट प्रभृति।
बृ०	१६			
गुरु-दशा ... ... २४-१०-१८९० तक	३६	२	१५	विवाह, सौभाग्योदय, सम्मान, कार्य्योन्नति; धर्म्म-कार्य्य में मति, पुत्रादिलाभ. स्त्री-सुख प्रभृति।
श०	१९			
शनि-दशा ... ... २४-१०-१९०९ तक	५५	२	१५	शुभाशुभ-मिश्रदशा, स्वास्थ्य-विषय में अशुभ, परिवार में अशान्ति, कष्ट प्रभृति-सूचक
बुध	१७			
बुध-दशा ... ... २४-१०-१९२६ तक	७२	२	१५	ऐश्वर्य्य, कर्म्म में उन्नति, यशोलाभ, अर्थलाभ प्रभृतिशुभ-सूचक।
के०	७			
केतुदशा ... ... २४-१०-१९३३ तक	७९	२	१५	बन्धु-वियोग, सन्तान-हानि, अरिष्ट, पीड़ा, शोक, अशान्ति, मातृ-कष्ट प्रभृति।

केतु रोगेश शनैश्चर के सम्बन्धी हैं, इसलिए मारक एवं अरिष्टकारक हुए। प्रमाणं यथा—

पापदृष्टियुते केतौ द्वितीय-सप्तमे तथा।

निगडं बन्धुनाशश्च स्थानभ्रंशं मनोरुजम् ॥
शूद्रशून्यादिलाभश्च नानारोगभयाकुलम् ॥
(बृहत्पराशरः ॥)

केतु की दशा में (मारकेश) शुक्र का अन्तर महारिष्टसूचक है। पराशर के मत से दीर्घायु योगवालों को ७२ वर्ष के पश्चात् मारक दशान्तर्दशा आने पर अरिष्ट-चिन्ता करना चाहिए। प्रमाणं यथा—

दीर्घे द्विसप्ततिर्वर्षं तदूर्ध्वं चिन्तयेन्मृतिम् ॥
षट् त्रिंशदब्दादूर्ध्वं च चिन्तयेन्मध्यमायुपि ॥
(बृहत्पराशरः ॥)

शुक्रान्तर्दशाफलम्—

दायेशाद्रिपुरंध्रस्थे व्यये वा पापसंयुते।
अकस्मात् कलहं चैव पशुधान्यादि पीडनम् ॥
द्वितीयद्यूननाथे तु देहबाधा भविष्यति ॥
तद्दोषपरिहारार्थं दुर्गादेवीजपं चरेत् ॥
(देहजाड्यं मनोरुजं इति वा पाठः।)
(बृहत्पराशरः ॥)

शुभाशुभ-विचार

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि घोष का जन्म कन्या-लग्न एवं सिंह नवांश का है। लग्नपति बुध और नवांशपति सूर्य्य एकादश स्थान मे स्थित है। भाव-चक्र के हिसाब से बुध दशम भाव में है। धन और भाग्यपति शुक्र दशम स्थान में, सुख और सप्तम पति बृहस्पति अपने मूल त्रिकोण के होते हुए भी सुखस्थान में बैठा है। इस योग से नवजातशिशु बाल्यावस्था से ही उद्योगी, बहुमित्रयुक्त, असाधारण भाग्यवान्, दीर्घजीविनी माता करके युक्त हो। बृहस्पति के केन्द्रपति होने के कारण वह अशुभ फल का दाता होता, परन्तु भाग्येश शुक्र के साथ द्वितीय सम्बन्ध अर्थात् दृष्टि सम्बन्ध से युक्त है, इससे राज्यसुख दाता हुआ। प्रमाण यथा—

चन्द्रज्ञगुरुकाव्यानां मध्ये यः केन्द्रनायकः।
स दुष्टोऽपि च कोणेशसम्बन्धी राज्यदायकः ॥१॥
लक्ष्मीस्थानं त्रिकोणं च विष्णुस्थानं च केन्द्रकम् ॥
तयोः सम्बन्धमात्रेण राजयोगादिकं भवेत् ॥२॥
(इति बृहत्पराशरः ॥)

चन्द्रमा भाव के हिसाब से पञ्चम स्थान में पड़ा है और पत्नबल से विशेष बली है, इसलिए वह भी भाग्यवृद्धि, उत्साह तथा राज्य-सुख का दाता है। शुक्र एवं बुध कर्म्म भाव मे पड़ने के कारण विद्या-प्रचार-प्रभृति कार्य्य से उन्नति, अर्थ-लाभ, यशो-वृद्धि प्रभृति सूचक योग है।

मंगल अष्टम तथा तृतीयेश होने के कारण पापफलदाता है, परन्तु केन्द्र मे शुभ ग्रहों का समावेश रहने के कारण विशेष अशुभ नहीं। मंगल अपनी दशा मे कुछ अशुभ फल जैसे अर्थहानि, रोग (पित्त वा रक्तविकृतिजन्य पीड़ा, ग्रहणी, रक्तातीसार, पेट की बीमारी, विस्फोटक) प्रभृति-सूचक है।

राहु भी रोगेश शनैश्चर के साथ बैठा है, इसलिए अपनी दशा तथा अन्तर्दशा में विघ्न, अशान्ति, पीड़ा, अर्थकष्ट, परिवार में अशान्ति, पितृकष्ट प्रभृति अशुभसूचक है। बृहस्पति एवं बुध की दशा स्वर्गीय बाबू साहब के लिए भाग्योदय, अर्थलाभ, पुत्रादिलाभ, पारिवारिक सुख प्रभृति-सूचक है। शनि दोष-युक्त होने के कारण मिश्र फलदाता है।

परागर के मत से घोप बाबू की परमायु दीर्घ है। और योग के हिसाब से ७४ वर्ष परमायु आती है। प्रमाणं यथा—

लग्ने केन्द्रे शशिसुते कोणे चन्द्रे शुभे * शनौ ॥
जातस्तु वेदमुनिभिर्वर्षैः क्लिश्यत्यतः सुखम् ॥
(ज्यो० कल्पवृत्ते)

यह योग विलकुल मिल गया है। यथा—लग्न के केन्द्र मे बुध, (भावचक्र से) चन्द्रमा त्रिकोण में और शनि नवम स्थान में पड़ें तो जातक ७४ वर्ष तक जीवित रहे।

दूसरे हिसाब से स्वर्गीय बाबू साहब की परमायु दीर्घ है। दीर्घायु योगवालों के लिए ७२ वर्ष के बाद जब मारक ग्रह की दशान्तर्दशा आये तब मृत्यु-योग समझना चाहिए। प्रमाण यथा—

दीर्घे द्विसप्ततिर्वर्षे तदूर्ध्वं चिन्तयेन्मृतिम् ॥
षट्त्रिंशदब्दादूर्ध्वं च चिन्तयेन्मध्यमायुषि ॥
(बृहत्पराशरः)

अतएव केतु की दशा में शुक्र की अन्तर्दशा चिन्तामणि बाबू के लिए मारक है। दशा-विभाग में जो ३।४ महीना का अन्तर है वह मैंने नक्षत्र-मान न पाने के कारण मध्यम मान से (६० दण्ड नक्षत्रमान ग्रहण करके) दशानयन किया है। इससे ३।४ महीने का अन्तर होना असम्भव नहीं है। दूसरी बात उपर्युक्त ग्रहादि संस्थान प्राचीन मान से हैं, उससे भी अन्तर पड़ना असम्भव नहीं है।

घोष बाबू का जन्म चन्द्रप्रभा-योग, बुधादित्य योग, एवं और कतिपय तीर्थमृत्युसूचक योग से हुआ है। इसलिए निश्चय रूप से तीर्थमृत्यु-योग है। प्रमाणं यथा—

पुण्याधिपः पुण्यगृहे च केन्द्रे
चन्द्रप्रभायोग इह प्रणीतः।
राजाधिराजो गुणवान् विलासी
गंगाजले मुञ्चति जीवनं च ॥१॥

बुधादित्यसमो योगो न भूतो न भविष्यति ॥
चिरकालं सुखं भुक्त्वा म्रियते जाह्नवीजले ॥२॥
लग्नस्य दक्षिणे चन्द्रे वामे चैव दिवाकरे ॥
कृत्वा पुण्यसहस्राणि म्रियते जाह्नवीजले ॥३॥ इति।

ये तो ज्योतिषीजी के विचार हुए, अब मैं यहाँ उनके जीवन की मुख्य मुख्य घटनाओं का उल्लेख करता हूँ—

बाबू चिन्तामणि घोष का १० अगस्त १८५४ ईसवी को जन्म हुआ। जब उनकी अवस्था दस वर्ष की थी तब पितृवियोग होगया और उनको बड़ा कष्ट झेलना पड़ा। १३ वर्ष की अवस्था में उनको नौकरी से अपना एवं अपने कुटुम्बियों का पेट पालना पड़ा। नौकरी की अवस्था में उन्होंने एक छोटा सा छापाखाना स्थापित किया। २८ वर्ष की अवस्था में उन्होंने विवाह किया। इसके बाद ही उनकी दिन दिन उन्नति होने लगी। सन् १९१९ ईसवी में उनके मानसिक कष्टों का आरम्भ हुआ। उनकी गुणवती स्त्री, एक कन्या और सबसे बड़े पुत्र का देहान्त होगया। इसके उपरान्त ही वे अपनी आँखों से दुखी हो गये। १९२१-२२ में उनका छापाखाना यूनीवर्सिटी ने मोल ले लिया। इसके उपरान्त १९२२-२३ में उन्होंने कर्नलगंज के

* शुभे = नवमे।

किनारे हाल का बड़ा छापाख़ाना नये यन्त्रों से सजा कर ऐसा स्थापित किया कि आज भारतवर्ष मे उसके जवाब का छापाख़ाना नहीं है। १८९६ में उनकी माता का देहान्त हो गया। १८९८ की ११ वीं अगस्त को वे स्वयं साधनोचित परमधाम को पधारे।

स्मरण

[श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना, साहित्यरत्न]

(१)

पुष्प बुद्धिमत्ता के खिलाके रङ्गरूपवाले,
जिस योग्य माली ने सजाया उपवन था।
उनकी प्रभा से यहाँ हाय ! दैव, आज जब,
जगमग भारती का होने को भवन था।
छीन लिया कौन अभिशाप से निठुर कहो,
चिन्तामणि लेखकों की चिन्ता की जो मणि था।
और भी उदारता, महानता का आकर था,
कर था दया का, उच्च भावों का सदन था॥

(२)

पृष्ठों मे सरस्वती के लाकर सरस्वती को,
मूर्तिमान जिसने किया था अनुराग से।
ग्रन्थों के अभाव की कलंक-कालिमा को पोंछ,
भर दिया हिन्दी का अभाग्य भव्य भाग से।
देश-प्रेमियों के लिए चिन्तामणि घोष बाबू,
अपनी उदारता के मंजुल पराग से।
सुन्दर सुरुचि का प्रचार बार बार कर,
छोड़ गये यश का उदधि शुचि त्याग से॥

कालस्य कुटिला गतिः

[श्रीयुत सुन्दरलाल द्विवेदी]

अस्मिन्नद्भुतसर्गे मकराकरजायमानमखिवर्गे।
कोऽपि प्रकटितसुगतिः पुरुषमणिर्जायते॥

—क्षेमेन्द्रः

दुःख की बात है कि स्वनामधन्य श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष अब इस संसार में नहीं हैं। घोष बाबू के नाम से भारतवर्ष का और विशेषकर संयुक्त प्रान्त का प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति परिचित है। आप का जन्म १० अगस्त सन् १८४४ ईसवी को बंगाल में हुआ था।

यों तो वर्षों से घोष बाबू अस्वस्थ रहने लगे थे; पर इधर कुछ दिनों से आप विशेष बीमार हो गये थे। सेवा-शुश्रूषा में कोई कमी नहीं रही। नामी नामी डाक्टर-वैद्यों का इलाज हुआ, पर बली काल ने मौका पाते ही अपनी कुटिल गति से आघात कर दिया। उससे सब हारे हैं। अपने सकल परिवार, बन्धु-बान्धवों तथा अनेकानेक आश्रितों को शोकसागर में छोड़ कर वे ११ अगस्त १९२८ को स्वर्गवास कर गये।

स्वर्गीय बाबू साहब उच्च कोटि के कर्मयोगी थे। यह आपकी ही क्षमता थी कि केवल ढाई सौ रुपये लगा कर इंडियन प्रेस खोला और उसे सर्वोत्तम ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दिया और सर्वप्रिय बनाया। बाबू साहब कितने परिश्रमी थे, यह बात वे लोग भले प्रकार जानते हैं जिन्होंने आपके साथ काम किया है। आप प्रातः आकर प्रेस में काम किया करते थे और शाम तक लगातार अपनी सीट पर जमे हुए बैठे रहते थे। हाँ, इस बीच में सिर्फ़ दो बार भोजन आदि ज़रूरी कामों से निवासस्थान को थोड़ी थोड़ी देर के लिए जाते थे। आपके काम को देख कर नौजवान कर्मचारी हैरान होते थे कि इस अवस्था में इतना काम! आप पूरी मेहनत करते थे, अतएव आपको देख कर आपके कर्मचारी भी पूरे परिश्रमी हो गये थे।

कई वर्षों से आपकी नेत्रज्योति जाती रही थी। अधिक परिश्रम के कारण नेत्रों से कम दिखलाई देने लगा था। डाक्टर लोग आपको मना करते थे कि काम करना बिलकुल बन्द कर दीजिए। पर बाबू साहब जैसे परिश्रमी मनुष्य एक-दम काम बन्द कर दें, यह कैसे हो सकता था। आप बराबर काम करते ही रहे। नेत्र-ज्योति का अधिक ह्रास होना जानकर आपने नेत्रों का इलाज कराया और एक नामी डाक्टर से इलाज कराने के लिए आप अमृतसर गये। उस वक्त एक ही आँख का इलाज

हुआ था। उससे कुछ योंही फ़ायदा हुआ था। दुबारा दूसरी आंख ठीक कराई गई, पर योरोपियन डाक्टर की कृपा से लाभ होने की जगह उनको जो कुछ दिखलाई देता था वह भी न रहा। आपके नेत्रों की ज्योति सर्वथा जाती ही रही।

दृष्टिहीन हो जाने के बाद आपने प्रेस का कार्यभार अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय बाबू हरिपद घोष के ज़िम्मे किया। परन्तु कुटिल काल से उनका अभ्युदय न देखा गया। आपके घर में बेरी-बेरी नामक बीमारी का प्रवेश हुआ, जिससे पहले आपकी साक्षात् लक्ष्मीरूपा पत्नी का स्वर्गवास हुआ। इनकी मृत्यु के सातवें दिन हरिपद बाबू और उसके ठीक सातवें दिन आपकी पुत्री का स्वर्गवास हो गया। सोलह दिन के भीतर तीन प्राणियों का उठ जाना, सो भी ऐसों का जो घर का काम-काज सँभालनेवाले हों, वज्रपात ही कहा जायगा! ऐसे मौक़ों पर मनुष्य पागल हो जाता है। धन्य है बाबू चिन्तामणि की महती आत्मा को, जिसने सहधर्मिणी, ज्येष्ठ पुत्र और बड़ी लड़की के वियोग का सहन किया! लड़की के मृत्यु के बाद आपने एक दिन कहा कि 'तीन बुधवार को तीन प्राणी तो गये। देखें आगामी बुधवार को किसका नम्बर आता है'। अपने आश्रयदाता के ये वचन सुन कर किस सहृदय मनुष्य का वज्र का कलेजा होगा जो टूक टूक न हो जायगा। घोष बाबू बड़े धैर्यवान् पुरुष थे। मैंने आश्वासन दिया कि भगवान् को जो करना था वह हो गया। अब आप आगामी बुधवार के लिए कुछ भी चिन्ता न कीजिए। मेरी समझ में घोष बाबू के जीवन भर में आपके लिए यही सबसे बड़ी दुःखद घटना थी। पर बाबू साहब ने अपनी दूरदर्शिता और धीरता के साथ इस घटना को सहन किया।

अब प्रेस का देखने-भालनेवाला कोई न रहा। तब बाबू साहब ने अपने द्वितीय पुत्र बाबू हरिकेशव घोष का पढ़ना-लिखना छुड़ा कर प्रेस का काम सँभालने के लिए उन्हें सलाह दी और उनको प्रेस का मैनेजर बना दिया। उस समय इनकी अवस्था केवल २०।२२ वर्ष की थी। इतनी कम उम्र में इतने बड़े फ़र्म का ऐसी ख़ूबी के साथ काम चला लेने की आशा किसी को स्वप्न में भी न थी। परन्तु इन्होंने बड़ी बुद्धिमत्ता से काम किया और अपने पिताजी को यह अच्छी तरह दिखला दिया कि ऐसे ही लड़के सुपुत्र कहलाते हैं। एक दिन स्वर्गीय बाबू साहब से उनके निवासस्थान पर बातचीत होते होते प्रेस की भी बात छिड़ गई। मैंने कहा कि भगवान् की कृपा से अब तो पहले की अपेक्षा इस समय प्रेस ड्योढ़ी-दूनी तरक्क़ी पर है। बाबू साहब ने कहा कि पण्डित जी, सुपुत्र की सुपुत्रता इसी में है कि वह अपने पिता से चार क़दम आगे रहे! वाह! कैसा उत्तम भाव था। कुछ दिन के बाद घोष बाबू ने अपने तृतीय पुत्र श्री बाबू हरिप्रसन्न घोष को भी प्रेस लाइन में काम करने को भेज दिया। ये प्रेस में डिप्टी मैनेजर के पद पर काम कर रहे हैं। इन दोनों भाइयों ने अब प्रेस को जितने ऊँचे दर्जे पर पहुँचा दिया है इसका किसी को भी ख़याल न था। स्वर्गीय बाबू साहब इन दोनों भाइयों के काम से बहुत सन्तुष्ट थे और आपकी आत्मा ने सर्वथा सन्तोष की दशा में इहलीला संवरण की है। कुछ दिन के बाद चतुर्थ पुत्र बाबू हरिसाधन घोष को भी आपने प्रेस में भेज दिया। ये फ़ोटो-विभाग के हेड बना दिये गये। कुछ दिन से ये कलकत्ते की ब्रांच में मैनेजर के पद पर काम कर रहे हैं। आप के पाचवें पुत्र बाबू हरिनाथ घोष भी आपके ही सामने से प्रेस में काम करने लगे हैं। आपके कनिष्ठ पुत्र बाबू हरिभूषण घोष अभी पढ़ रहे हैं। मतलब यह कि स्वर्गीय घोष बाबू के सभी पुत्र सर्वथा सुपुत्र कहलाने के योग्य और उच्च कोटि के सदाचारी हैं,

जिससे बाबू साहब को बड़ा सन्तोष रहता था। यह बिलकुल ठीक है कि स्वर्गीय घोष बाबू बड़े भाग्यवान् थे। आपके लिए संसार में किसी भी चीज़ की कमी न थी। आप सर्वथा सन्तुष्ट थे।

इंडियन प्रेस अँगरेज़ी, बँगला, फ़ारसी आदि कई भाषाओं का काम करता है; पर जन्म से उसने प्रधान लक्ष्य हिन्दी को रक्खा है। इस प्रेस ने राष्ट्रभाषा हिन्दी की कितनी सहायता की है, यह किसी भी हिन्दी-ज्ञाता से छिपी नहीं है। उसने उत्तमोत्तम ग्रन्थ प्रकाशित करके हिन्दी-भाषा की कमी की बहुत कुछ पूर्ति की है। हिन्दी को उसने उस समय अपनाया था जब हिन्दी का प्रचार नाम-मात्र था। अच्छी किताबें हिन्दी में मिलती ही न थीं। सन् १९०० से इसने सरस्वती मासिक पत्रिका निकालना शुरू किया था। उस समय हिन्दी को अपनाने-वाले कम थे। अतएव पत्रिका में हिन्दी-साहित्य का भाण्डार रहते हुए भी उसके ख़रीदार कम होने से पत्रिका से प्रेस को बहुत घाटा रहता था। तिस पर भी स्वर्गीय घोष बाबू उसको बन्द करने का कभी मन में ख़याल तक न लाये। आप असाधारण पुरुष थे। आपका ख़याल था कि 'अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति'। जो काम करने लगे क्या उसको बीच में छोड़ देने से सुकीर्ति मिलेगी! आपने दिन प्रतिदिन उसे उन्नत करने का ही प्रयत्न किया। जब कभी राष्ट्रभाषा हिन्दी का कोई विद्वान् इतिहास लिखेगा तब मेरी समझ में उसे सबसे अधिक मसाला इंडियन प्रेस से प्रकाशित 'सरस्वती' से मिलेगा। इसका श्रेय स्वर्गीय घोष बाबू को ही है। उन्हीं की योग्यता थी जो उन्होंने सरस्वती का सम्पादन करने के लिए साहित्यमहारथी पूज्यवर पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे योग्य विद्वान् को ढूँढ़ कर रक्खा था। इनकी क़लम ने और बाबू साहब के औदार्य ने 'सरस्वती' को हिन्दी मासिक पत्र-पत्रिकाओं में सर्वश्रेष्ठ बनाने में कोई कसर न रक्खी। बंगदेशीय होने पर भी बाबू साहब ने देवनागरी को अपनाया। अतएव इसने भी आपको ऐसे ढंग से अपनाया कि किसी तरह की कसर न रक्खी। जिस तरह माता अपने चाहनेवाले पुत्र की शुभ-कामना करती है, उसी तरह देवनागरी ने भी ऐसा बदला दिया कि घोष बाबू को अति उच्च बना दिया। प्रेस की बहुत बड़ी वृद्धि का एक-मात्र हेतु देवनागरी ही है।

स्वर्गीय घोष बाबू एक असाधारण पुरुषसिंह थे। उनमें ऊँचे दर्जे की योग्यता थी। जन्म से प्रकृति ने उन्हें असीम योग्यता प्रदान की थी। आज हमको ऐसा मनुष्य ढूँढ़ने से शायद ही मिलेगा जो स्वर्गीय बाबू साहब के लगाये हुए पौधे इंडियन प्रेस को देखकर मुक्तकंठ से बाबू साहब की योग्यता को न स्वीकार करे। इसने अपने कारनामों से दूर देशों में भी पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है। किसी अनुभवी मनुष्य ने सच कहा है कि 'प्रसिद्धि योग्यता की कसौटी है'। इस वाक्य की सचाई माननीय चिन्तामणि बाबू के जीवन से अक्षरशः सिद्ध होती है। प्रेस की इतनी बड़ी प्रशंसा होने का एक-मात्र कारण घोष बाबू की असीम योग्यता ही है।

उत्तम पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य बड़े महत्त्व का कार्य है। पुस्तकों का निवास-स्थान हमारा हृदय है। कवियों की सुकविता हमारे रक्त में प्रवाहित होती है। बाल्यावस्था से लेकर यौवनावस्था तक हम उन्हें पढ़ते हैं और जीर्णावस्था तक हम उन्हें स्मरण रखने का प्रयत्न करते हैं। हमारी विद्या, हमारा भाव, हमारा तत्त्वज्ञान सभी कुछ ग्रन्थों के प्रकाशकों की कृपादृष्टि के फल हैं। अच्छी पुस्तकों में उपयोगी वाक्यों और उच्च भावों के सञ्चार हैं जो सादर स्मरण रखने और आत्मीय बनाने में हमारी शुभ चिन्ता
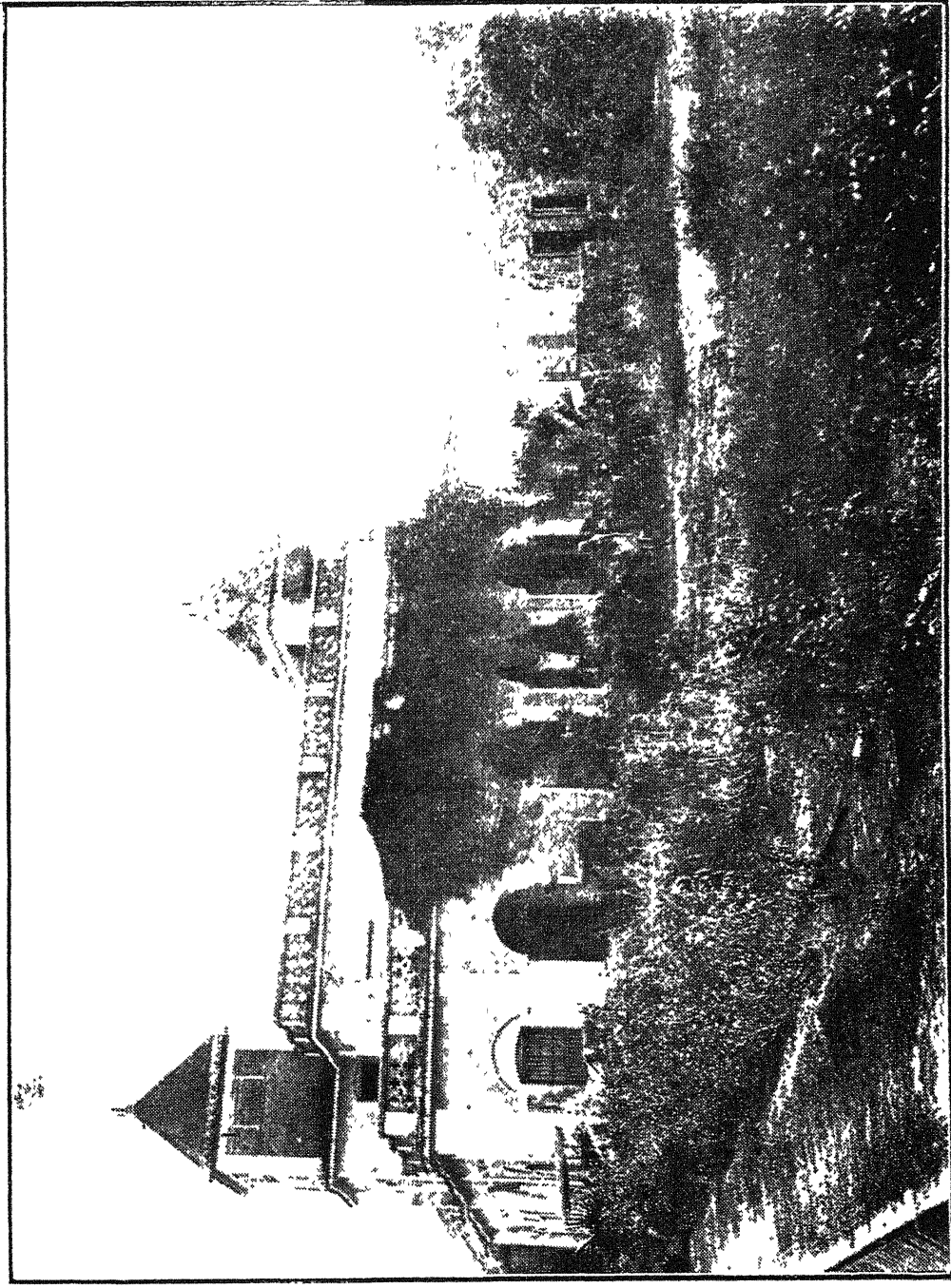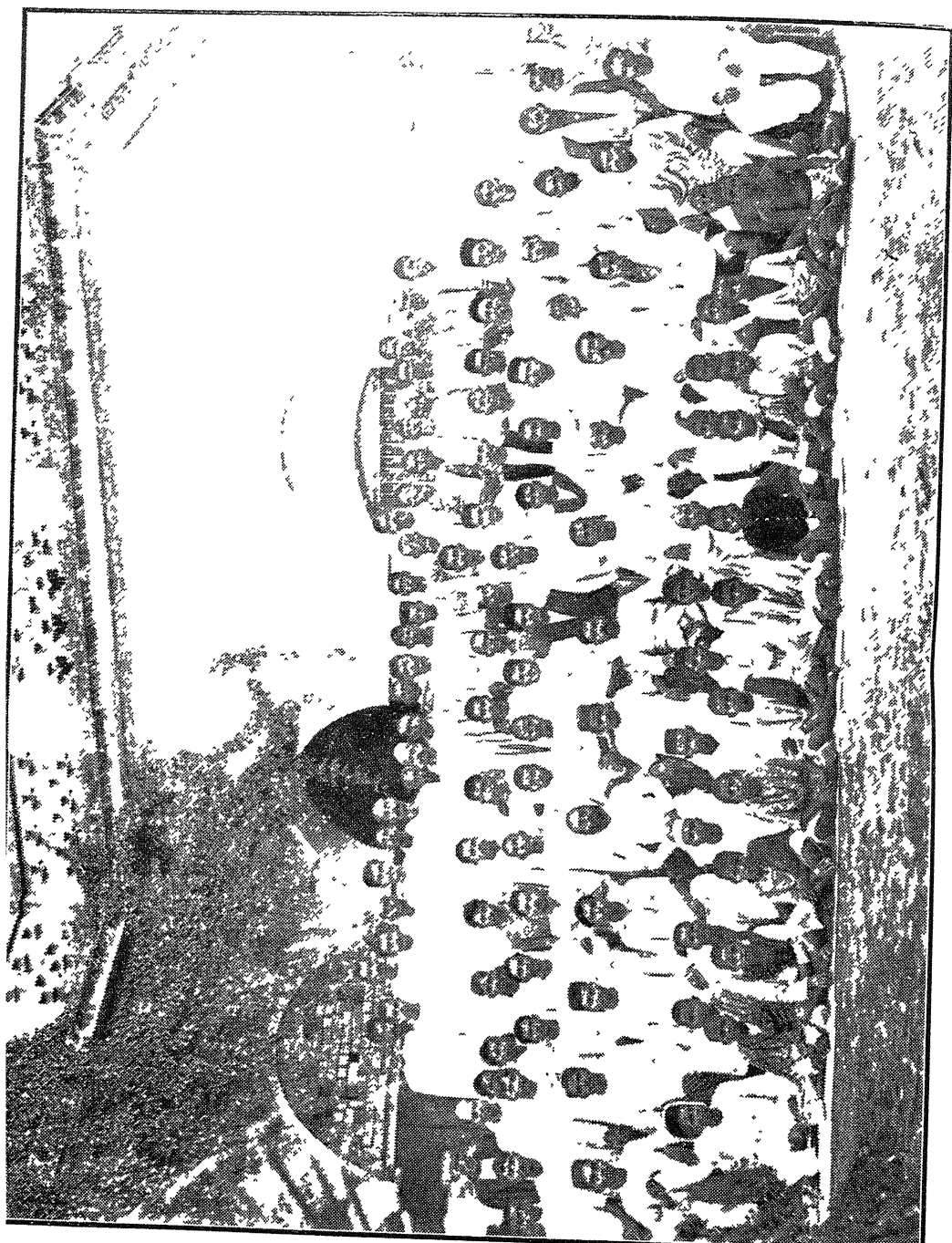
इंडियन प्रेस, बनारस-शाखा

इंडियन प्रेस बनारस-शाखा का कर्मचारी-मण्डल

किया करते हैं। इन्हीं पुस्तकों के द्वारा लेखक और प्रकाशक अमर हो जाते हैं। माननीय घोष बाबू ने इंडियन प्रेस खोल कर और अच्छी पुस्तकों के प्रकाशन का काम करके अपना नाम कर लिया और सदा के लिए अमर होगये। संसार में जब तक इंडियन प्रेस की 'सरस्वती' की एक भी कापी या उसके द्वारा प्रकाशित किसी दूसरे ग्रन्थ की कापी मौजूद रहेगी तब तक क्या इंडियन प्रेस का एवं स्वर्गीय बाबू साहब का नाम मिट सकता है ? नहीं, कदापि नहीं। उस वक्त भी ये दोनों नाम ऐसे ही रहेंगे जैसे कि आज-कल है।

यों तो प्रायः सभी मातृभक्त होते हैं। पर स्वर्गीय घोष बाबू में यह गुण बड़े महत्त्व का था। आप अपनी माता के परम भक्त थे। इधर बाबू साहब प्रेस के कार्य में संलग्न रहते थे; उधर वृद्धा माता का बहुत अधिक समय पूजापाठ में व्यतीत होता था। फिर भी कम से कम दिन में दो बार आप माताजी के दर्शन अवश्य करते थे। जो कुछ भी पूजापाठ के लिए, दान-पुण्य के लिए माताजी को ज़रूरत होती थी, उसके लिए निःसङ्कोच-भाव से आप सदा प्रयत्नशील रहते थे। आप की माताजी ने एक बार बनारस में रहने के लिए घोष महाशय से ज़िक्र किया। आपने फ़ौरन वहाँ उनके रहने के लिए एक बड़ा मकान बनवा दिया और नौकर-चाकर आदि का पूरा सामान प[्रस्तुत] कर दिया। बाबू साहब की माता जी एक आदर्श गृहणी थीं। उन्हीं की महत्त्वाकांक्षा एवं सदाशयता से बाबू साहब इतने योग्य हुए। उनका हृदय बड़ा दयार्द्र था। यदि प्रेस से कोई मनुष्य निकाला जाता था और उन्हें किसी तरह पता चल जाता था तो वे बहुत बुरा मानती थीं और उसे दुबारा नियुक्त कराने में भरसक प्रयत्न करती थीं। उनका स्वर्गवास हुए अभी दो तीन वर्ष ही हुए है। वे अत्यन्त वृद्धा होगई थीं। पूरी उम्र पाकर उनका शरीरपात हुआ है। उस समय घोष बाबू दृष्टिहीन थे। शरीर से भी शिथिलप्राय होगये थे। पर आपने माताजी का क्रिया-कर्म अपने हाथों किया। रात के आठ-नौ बजे आप येन केन प्रकारेण उस दुर्गम रास्ते को पार कर झूँसी के पास श्मशान-भूमि में गये और ख़ुद दाह-कर्म किया। इसके बाद एक महीने तक आपने उन कठिन नियमों का पालन किया जो घोष बाबू के कुलपरम्परागत होते आये हैं। श्राद्ध के समय आपने मुझे बुलवा कर एक काम के लिए निर्देश करते हुए अति करुण स्वर में कहा कि 'पंडितजी मेरी माता फिर आपको कष्ट देने नहीं आयेंगी; कृपया इस काम को कर दीजिए'। आप वाक्य पूरा कह नहीं पाये थे कि आपका गला भर आया और आँखों से आंसू बहने लगे। सुनने-वाला भी आपके साथ साथ रोने लगा। थोड़ी देर के बाद आपने आज्ञा दी कि 'आप प्रेस के कर्मचारियों के भोजन का प्रबन्ध इस ख़ूबी से करें कि जिससे किसी तरह की कमी न रह जाय'। धन्य है मातृभक्त घोष बाबू को ! माता के सच्चे आशीर्वाद से आपने इस लोक में तो वह सुख पाया ही था जो शायद ही किसी को प्राप्त होता हो, पर आप उनके आशीर्वाद से स्वर्ग में भी उच्चासनासीन होंगे और आपकी बलिष्ठ आत्मा को शान्ति मिलेगी।

घोष बाबू अपने परिवार के लोगों का ही ख़याल रखते रहे हों सो बात नहीं। आप अपने दीन-हीन सम्बन्धियों का भी पालन करना अपना कर्तव्य समझते थे और यथेष्ट रूप से आजीवन करते रहे।

[आ]प अपने मित्रों का यथेष्ट आदर-सम्मान सदा करते थे। आपके मित्रों में बंगाली, एतद्देशी एवं विदेशी सभी जातियों के लोग थे और हैं। अगर कोई मित्र किसी काम को लेकर प्रेस में आता था तो उसके काम को वे सब काम रोक कर पहले करते थे। पहले शुरू हुए काम

को रोकने से प्रेस का चाहे जितना नुक़सान हो जाय, पर वे इस बात का कभी ख़याल न करते थे। महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय और पण्डित बलदेवराम दवे एडवोकेट आदि आपके प्रेस में जब कभी काम लाये तभी फ़ौरन सब काम रोक कर आपका काम किया जाता था।

आपके यहां अतिथि-सत्कार आदर्श-रूप था। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर आदि उच्च कोटि के व्यक्तियों से लेकर सामान्य लोग तक जब तब अतिथिरूप से आते रहते थे। पर उन सबका समान रूप से उत्तम कोटि का ही अतिथि-सत्कार किया जाता था।

घोष बाबू में जो अपूर्व गुण थे उन सबका यदि उल्लेख किया जाय तो एक बड़ी पुस्तक तैयार हो जायगी। मैं यहाँ दो-चार उन्हीं बातों का ज़िक्र करना चाहता हूँ जो रात दिन मनुष्य के बर्ताव में आती रहती है आपने अपने अपार गुणों के द्वारा ही इतना नाम पाया और धनार्जन भी किया। असल में सांसारिक सम्पत्तियां गुणी मनुष्य के पास स्वयमेव ज़बरन इकट्ठा हुआ करती हैं। पुराने ज़माने में कहे हुए धर्मराज युधिष्ठिरजी महाराज के जो वचन भारवि कवि ने स्वरचित किरातार्जुनीय में लिखे हैं वे हम स्वर्गीय बाबू साहब के सम्बन्ध में अक्षरशः सत्य पाते हैं।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदाम्पदम्।
वृणते हि विमृष्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

स्वर्गीय घोष बाबू के विशाल मस्तिष्क में भगवान् ने विचार करने की अपार शक्ति प्रदान की थी। अतएव आप कभी अपदस्थ न हुए और उत्तरोत्तर वृद्धि ही करते चले गये। संसार की समस्त सम्पत्तियों ने आपको सिर नवाया और वे ज़बरन आप के गुणों का लोभ करती हुई आपके पास पहुँचती रहीं।

स्वर्गीय बाबू बढ़िया से बढ़िया चीज़ को पसन्द करते थे। वे पायदार चीज़ का महत्त्व समझते थे। उत्तम से उत्तम छपाई का ख़याल रखते थे। छपाई के काम में किसी तरह की भी ज़रा सी भी त्रुटि का पता चलते ही आप रुपये का ख़याल न रखते हुए फ़ौरन उस चीज़ को नेस्त-नाबूद कर देते थे। आप चाहते थे कि प्रेस से जो चीज़ निकले वह सबके लिए लाभकारी हो और सबको पसन्द आये। आपने उत्तमतम पुस्तकों के प्रकाशन में एक तरह का क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिया। ऐसी छपाई-सफ़ाई की पुस्तकें उस समय देखने को भी न मिलती थीं।

आपको इमारत बनवाने का बड़ा शौक था। एक से एक उत्तम इमारत आपने तैयार कराई है और उसमें औवल दर्जे का मसाला लगाया है, जिससे आपके सभी मकान सुदृढ़ एवं चिरस्थायी रहनेवाले हैं।

घोष महोदय का अपने नौकरों के साथ व्यवहार कैसा था, यह वे ही जान सकते हैं जिन्होंने आपके समय में काम किया है। मनुष्य को पहचानने की आपमें विलक्षण शक्ति थी। थोड़ी देर बातचीत करते ही फ़ौरन ताड़ जाते थे कि यह मनुष्य किस कोटि का है। आपने ऐसे चुन-चुन कर मनुष्य रक्खे थे जो प्रेस का काम अपने घर का काम समझते हुए करते थे। यदि किसी ने अपने कारनामों से आपको सन्तुष्ट कर लिया तो उसको आप भी सन्तुष्ट करने में ज़रा भी कोर-कसर न रखते थे। नौकरों को आप बहुत प्यार करते थे और उनके सुख-दुख की हमेशा ख़बर लेते रहते थे। इन पंक्तियों का लेखक एक बार एपेंड साइटिस फोड़ा हो जाने के कारण सख़् बीमार हो गया था। आपको बीमारी का हाल मालूम होने पर आपने समझ लिया कि यह बीमारी बड़ी सख़् है। ख़र्च बहुत होगा। आपने एसिस्टेंट सर्जन की पहली बिज़िट का तथा दवा का दाम देकर मेरे परम मित्र पण्डित नयनचन्द्र मुकर्जी को भेजा। उन्होंने कहा कि आज की तारीख़ का कुल ख़र्च बड़े बाबू करेंगे। मुझे उन्होंने भेजा है। मैं छः महीने

तक चारपाई का सेवन करता रहा। उदार-हृदय स्वर्गीय बाबू साहब ने बराबर छः महीने तक मेरा पूरा मासिक वेतन मेरे पास भेजा। पहली तारीख़ को पूरा वेतन घर पर आ जाता था। यही नहीं, किन्तु प्राइवेट ट्यूशन का भी वे पूरा रुपया वेतन के साथ भेज देते थे। यदि उस समय स्वर्गीय बाबू साहब अपनी उदारता से मेरी ख़बर न लेते तो न मालूम मेरा क्या हाल होता। मैं बहुत दिनों के लिए कर्ज़दार हो जाता। मैं तो यही कहूँगा कि मेरा पुनर्जन्म बाबू साहब की ही कृपा से हुआ है। मैं आपका आजन्म कृतज्ञ रहूँगा और मेरा समस्त परिवार आप की सहृदयता का शुभाशीर्वाद से मङ्गलकामना मनाता रहेगा। मैं आपके प्रेस का बहुत ही छोटे दर्जे का एक आश्रित हूँ। इस तरह की उदारता न मालूम कितनी बार आपने किस किस के साथ की है।

घोष बाबू को संसार का ऊँचे दर्जे का अनुभव था। आप प्रायः कहा करते थे कि आज-कल औसत दरजे के हम लोगों का बुरा हाल है। जो अमीर हैं उन्हें तो दीन-दुनिया की कुछ ख़बर ही नहीं। वे तो अलमस्त हैं। दूसरों के सुख-दुख को वे क्या समझें। तीसरे दर्जे के मनुष्य भी अपने बाल-बच्चों के साथ काम करके निर्वाहार्थ अर्जन कर ही लेते हैं। पर मध्यम श्रेणी के मनुष्य अधोगति में हैं। वे अपनी कुलप्रतिष्ठा भी क़ायम रखना चाहते हैं और भले मनुष्यों की संगति भी करना चाहते है। पर उनकी संसार-यात्रा बड़ी कठिनता से पार होती है। ये बातें कहते हुए आप प्रायः इस ढंग से कहते थे जिसमें अपने को भी शामिल कर लेते थे। आपके प्रेस में एक योग्य बाबू साहब रहते थे। उनको सौ रुपया मासिक वेतन मिलता था। एक दिन किसी मनुष्य से घोष बाबू को मालूम हुआ कि उनके पास केवल दो धोतियाँ हैं, जिनको वे धोबी को धोने के वास्ते नहीं दे सकते। घर में उनकी स्त्री साबुन से धो देती है, जिससे काम चलता है। ऊपर की बातों का ज़िक्र करते हुए आपने अफ़सोस किया और कहा कि ज़माना बड़ा ख़राब है। कल पहली तारीख़ से हमने उनका पन्द्रह रुपया मासिक वेतन बढ़ा दिया है। यह सच है कि जो मालिक अपने आश्रितों के सुख-दुख का ख़याल रखता है, भगवान् उसको बाबू साहब जैसा भाग्यशाली बनाते हैं।

घोष बाबू सहसा कोई काम न करते थे। आप बड़े दूरन्देश थे। आप दूसरों का किसी रूप से पालन करना अपना कर्त्तव्य समझते थे। आप जब तब कहा करते थे कि मैं दूसरे ढङ्ग का कोई कार-बार करके अपनी जीवन-यात्रा का निर्वाह कर सकता था। पर मेरी इच्छा तो यह थी कि मैं ऐसा कारबार करूँ जिससे दो चार-सौ आदमियों को अपने पास रख सकूँ और उनका गुज़ारा कर सकूँ। अतएव मैंने प्रेस लाइन को इस काम के लिए सबसे अच्छा समझा। इसमें जो दो चार सौ आदमी काम करते हैं वे जब शाम को घर जाने लगते हैं तब उनको देख कर मेरा मन बहुत प्रसन्न होता है।

घोष बाबू नौकरों की मामूली ग़लतियों पर ध्यान न देते थे। हाँ, जब कोई किसी से अत्यधिक अनुचित काम हो जाता था और जब वे समझ लेते थे कि अब इस मनुष्य के रखने से प्रेस के काम में क्षति होने की सम्भावना है तभी आप उसको अलग करते थे। ऐसा अवसर आने पर दो बार आपने मुझसे ज़िक्र किया कि पंडित जी कारबार करके करना सभी पड़ता है, पर पीछे मुझे ही पछताना पड़ता है। धन्य है. उदारचेता घोष बाबू को!

घोष बाबू स्वयं परिश्रमी थे, अतः अपने नौकरों में भी परिश्रमशीलता की मात्रा को वे पसन्द करते थे। वे कभी किसी को निकम्मा नहीं देखना चाहते थे। प्रेस मे कई विभाग अलग अलग काम करने के थे।

आप विभागों में शायद ही कभी घूमते हुए जाते हों। आप प्रायः अपने आसन पर ही बैठे हुए कुल प्रेस का कारबार देखते थे। जब कभी आप घूमते हुए किसी विभाग की ओर जाने लगते थे तब ज़मीन पर छड़ी ठोंकते हुए जाते थे, जिससे अगर कोई कर्मचारी अपने काम में असावधान हो तो वह सावधान हो जाय। आपके लिए छड़ी ठोंक कर चलना स्वभावगत-सी बात हो गई थी। एक बार मैंने आपसे पूछा कि आप कर्मचारियों को देखने के लिए जाते हैं कि वे काम कर रहे है या नहीं। पर आप छड़ी-द्वारा उनको सावधान पहले से ही कर देते हैं सो क्यों? आपने उत्तर दिया कि मैं अपने किसी भी कर्मचारी को असावधान देखना नहीं पसन्द करता, अतएव मेरी छड़ी उनको पहले से ही सावधान कर देती है, और वे भी अपने काम मे लग जाते हैं। लुक-छिप कर अन्य मामूली मनुष्यों की तरह आप नौकरों का काम देखना नहीं पसन्द करते थे।

प्रायः बातचीत करते समय स्वर्गीय बाबू साहब लोगों को उपदेश दिया करते थे कि मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह जो कुछ काम करे, सचाई के साथ करे और तत्परता के साथ करे। ऐसा करने से भगवान् रात तक दो रोटियों का प्रबन्ध करेंगे ही। सचाई और तत्परता ये ही दो शब्द आपके कार्य के ध्येय थे। आप इन्हीं दो शब्दों का ख़याल सदा रखते थे और अपना कारबार करते थे। आपने अपने जीवन-काल में जो इतनी सफलता प्राप्त की वह इन्हीं दो शब्दों का फल है। मानव-जीवन को पुष्ट तथा सबल करने का यह सर्वोत्तम सोपान है। आपकी आत्मा बहुत ऊँची थी। इसका परिचय उन सज्जनों को फ़ौरन मिल जाता था जो आपके पास जाते और जिनका सम्पर्क आपसे होता था।

संसार में ऐसे मनुष्य बहुत हुए हैं और हैं तथा होंगे भी जिन्होंने अपने बाहुबल से रुपया भी कमाया हो और उसका सदुपयोग भी किया हो एवं यशस्वी भी हुए हों। पर इन सब बातों के होते हुए भी स्वर्गीय बाबू साहब में एक गुण ऐसा था जो शायद ढूँढ़ने पर किसी ही महापुरुष में पाया जायगा। यह गुण लोगों में देखने में नहीं आता। वह यह कि जो कोई मनुष्य आपके पास किसी आशा से जाता था वह निराश होकर न लौटता था। आप भर सक यत्न करते थे कि आगन्तुक यहाँ से निराश न लौटे। यह गुण आपके जीवन-काल में आपके महत्त्व को और भी ऊँचा करता है। यों तो आपके सम्पर्क में काम करनेवालों में गुप्त रीत्या जिस किसी को मालूम था ही। पर मेरा स्वतः देखा हुआ एक समय का एक दृश्य अभी तक ताज़ा हो रहा है। एक दिन प्रातः ९ बजे के क़रीब मैं एक ज़रूरी काम से आप से मिलने गया। जाड़े का मौसम था। आप कोठी के दरवाज़े के पास धूप में बैठे हुए थे। वहीं मुझसे बातें हो रही थीं। इसी बीच में एक काबुली हींग बेचते हुए वहाँ आया। उसने दूर से अपनी भाषा में आवाज़ लगाई कि बाबू साहब हींग लीजिएगा। मेरे पास हींग बहुत अच्छी है। बाबू साहब ने मुझसे कहा कि देखिए तो हींग कैसी है? मैंने कहा कि इन लोगों की हींग प्रायः बनावटी होती है। अच्छी नहीं होती। काबुली से भी मैंने यही बात कही। पर उदारचेता बाबू साहब न माने। आपने कहा कि देख तो लीजिए। मैंने उसे कुछ फ़ासिले से बैठा दिया और कहा कि दिखलाओ। देखने पर हींग ख़राब ही जँची। कहा कि बाबू साहब हींग लेने के लायक़ नहीं है। आपने धीरे से कह ही दिया कि पंडित जी, यह कहीं से यह आशा करके आया होगा कि यहाँ कुछ हींग बिकेगी। कुछ ले लीजिए। मैंने बहुत ज़ोर दिया कि हींग सर्वथा खाने लायक़ नहीं है। पर स्वर्गीय महोदय ने यही कहा कि खाने के काम न आयेगी तो जानवरों को दे दी

जायगी। पर इसे निराश न लौटाइए। दो-तीन तोला हींग ली गई। फिर उन्होंने कहा कि देखिए तो कोई आदमी है। मैंने चारो ओर देखा, पर नौकर तो कोई न दिखाई दिया। हाँ, आपके सुपुत्र बाबू हरिनाथ घोष दिखाई दिये। मैंने बतलाया। उन्होंने उन्हीं को आवाज़ दी और पैसे घर से उसी भाव के हिसाब से मँगा दिये जो भाव काबुली ने बतलाया था। इस छोटी सी घटना के उल्लेख करने का तात्पर्य केवल यह दर्शाने का है कि उनका हृदय कितना उदार था। इस उदारता के गुण से, मुझे ख़ूब मालूम है, कुछ लोगों ने अनुचित लाभ भी उठाया है।

बाबू साहब के पास आये हुए लोग बातचीत करके प्रसन्न होकर जाते थे। आप छोटे-बड़े सभी तरह के मनुष्यों से समान भाव से बातें करते थे। आपकी बातों में ऐसा रस था, कुछ ऐसी शक्ति थी कि कभी तबीयत यह न होती थी कि यहाँ से उठ चलो। आप जी खोल कर बातें करते थे और आगन्तुक कुछ न कुछ आपके पास से सीख कर जाता था। छोटे-बड़े सभी तरह के मनुष्य आपके पास से हँसते हुए निकलते थे। आप उन्हें ख़ुश कर देते थे।

स्वर्गीय बाबू साहब मन के बड़े साफ़ थे। किसी के प्रति यदि आपको कुछ कहना होता था तो उसे छिपाते नहीं थे। प्रकट रूप से कह देते थे। आप कोई भी बात अपने मन में रखना पसन्द नहीं करते थे। यदि कभी कोई मनुष्य आपका कोपभाजन हुआ और फिर कुछ देर में आपके पास क्षमा-प्रार्थना के लिए गया तो आप उस कोप का ऐसा निरसन करते थे मानो आपको क्रोध हुआ ही नहीं था। क्षमा-प्रार्थना की तो कोई बात वह मनुष्य कहने ही न पाता था। उसके जाते ही आप समझ लेते थे कि यह मनुष्य इसी मतलब से आया है, फ़ौरन वे खुद ही उसे सद्भाव से समझाने लगते थे।

बाबू साहब को यदि किसी ने अपने काम से प्रसन्न कर लिया तो आप उसके जीवन भर के लिए उसके लिए सच्चे चिन्तामणि हो जाते थे। ऐसे मनुष्य जब काम से अलग होते थे, नौकरी छोड़ते थे, तब आप उन्हें जन्म भर पेंशन देते थे। वर्त्तमान में भी बहुतों को पेंशन दी जा रही है। क्या उन लोगों के परिवार बाबू साहब के लिए सदा शुभ-कामना न करते होंगे?

स्वर्गीय बाबू साहब को कचहरी के नाम से घिन सी थी। आप कचहरी जाना पसन्द न करते थे। आपका यह स्वाभाविक गुण अधिक प्रसिद्धि पा गया था। अतएव कुछ मनचले लोगों ने इस गुण से बहुत अधिक अनुचित लाभ उठाया। बाबू साहब ऊँचे दर्जे के शाहख़र्च थे। आप अपनी बात के आगे रुपये को नाचीज़ समझते थे। आप कभी किसी के आगे नतमस्तक न होना चाहते थे। अगर दूसरे व्यापारियों की तरह आप ख़र्च करने में कोताही करते तो हमारी समझ में आप, वर्त्तमान समय में प्रेस की जो हैसियत है उससे दुगुनी-तिगुनी हैसियत उसकी कर देते। पर साथ ही असन्मार्ग में आपने कभी एक पैसा भी ख़र्च नहीं किया।

बाबू साहब का स्वभाव कर्मशील था। आप निकम्मे मनुष्य को नहीं पसन्द करते थे। खुद भी ख़ाली बैठना आपको बिलकुल नापसन्द था। लेकिन इधर कुछ दिन से भगवान् ने ज़बरन आपका काम बन्द करा दिया। दृष्टिहीन हो जाने से आप पढ़ने-लिखने के योग्य न रहे। हाँ, दिमाग़ी काम आप आजीवन करते रहे। प्रेस के सम्बन्ध में अपने सुपुत्रों को सदा आप शुभ सम्मति देते थे। प्रेस का कुल हाल रोज़ाना पूछते थे। ये लोग ख़ुद तो ख़ूब समझदार हैं ही, पर इतनी ऊँचे दर्जे की विज्ञता जो शीघ्रातिशीघ्र इन्हें प्राप्त हुई है उसमें बड़े बाबू का ही अधिक हाथ है। आप इन लोगों को प्रायः ऊँच-नीच सुझाया करते थे। एक

दिन स्वर्गीय बाबू साहब ने मुझे कोठी पर बुलवा कर कहा कि पण्डित जी बैठे बैठे समय नहीं कटता। मैंने अँगरेज़ी अख़बार सुनने के लिए एक बाबू को रख लिया है। वे एक डेढ़ घन्टा रोज़ अख़बार सुनाते है। पर समय तो बड़ा लम्बा होता है। आप मुझे एक ऐसा पण्डित तलाश कर दीजिए जो घंटा दो घंटा मुझे गीता, महाभारत, रामायण आदि सद्ग्रन्थ सुनाया करे और कुछ हिन्दी के अख़बार भी। मैं वेतन काफ़ी दूँगा। ऐसा होने से समय आराम से व्यतीत होता रहेगा। यदि ईश्वरेच्छा से मैं दृष्टिहीन न हो जाता तो मैं प्रेस का बैठना न छोड़ता और मैं ही उसके देखने-भालने का काम करता। मेरा दिमाग़ अभी तक ठीक है। स्वर्गीय बाबू साहब में काम करने की ऐसी ही शक्ति थी। आप वृद्धावस्था में भी काम करने का हौसला रखते थे।

स्मरण-शक्ति जैसी मैंने स्वर्गीय बाबू साहब में प्रखर पाई, वैसी शक्ति का मुझे तो आज तक कोई मनुष्य नहीं मिला। इसी शक्ति के भरोसे आप ऊँचे दर्जे के व्यापारी और बात के ख़ूब पक्के साबित हुए। बीसियों वर्ष तक की बात आपको ज्यों की त्यों अक्षरशः याद रहती थी। यही नहीं, मौक़ा पड़ने पर ठीक उन्हीं शब्दों को दुहरा कर कह देते थे, जो बहुत पहले कह चुके होते थे। उनमें ज़रा भी हेर-फेर न होता था। जिस किसी बात का अगर किसी से वादा कर दिया है तो वह आपके दिमाग़ में ब्रह्मा की लकीर हो जाता था। पक्की लिखा-पढ़ी कभी रद हो सकती थी पर आपकी ज़बान से एक बार निकली हुई बात सदा के लिए पक्की रहती थी। व्यापारी का पेशा करनेवाले मनुष्यों में बात का ऐसा पक्का मनुष्य खोजने से भी न मिलेगा।

वार्षिक छुट्टी से लौटने पर गत १२ अगस्त सन् १९२७ को मैं बाबू साहब की कोठी पर आपके दर्शन करने गया। ऐसे अवसर पर प्रायः आप पारवारिक कुशल-समाचार पूछ लिया करते थे। वार्तालाप करते करते मैंने आपसे पूछा कि आज-कल आपका स्वास्थ्य कैसा है? उत्तर मे जवाब मिला कि अब आप स्वास्थ्य का हाल क्या पूछते हैं? परसों ७३ वां वर्ष पूरा हो गया है। कल से ७४ वां आरम्भ हुआ है। देखें, यह वर्ष पूरा होता है या नहीं। भगवान् की कृपा से मेरी सब इच्छायें पूरी हो गई हैं। केवल एक इच्छा बाक़ी है। उसे मेरे सामने ही भगवान् और पूरा कर दें, फिर मैं उनकी गोद मे जाने के लिए सर्वथा तैयार हूँ। वह यह कि हरिपद औषधालय की जो बिल्डिङ्ग बन रही है वह मेरे सामने बन जाय और पुराने औषधालय से सब सामान नये मकान में आ जाय। अब मैं कूच करने के लिए तैयार हूँ। आप लोगों की कृपा से मेरे पुत्र काम सँभालने के योग्य हो गये हैं। इतनी ही ख़ैरियत है कि मेरा दिमाग़ अभी तक सहीसलामत है। यह कह कर दिमाग़ के ठीक होने के कई प्रमाण आपने ऐसे दिये जिनको सुन कर मैं चकित रह गया। एक तरह मैं उन बातों को भूल गया था। पर आपने २०-२१ वर्ष पहले की कुछ ऐसी बातें कहीं, जिससे मालूम हुआ कि स्मरण-शक्ति का एक सच्चा मणि भगवान् ने आपको ही दिया है।

बाबू साहब की अन्तिम इच्छा भी भगवान् ने पूरी की। हरिपद-औषधालय का मकान आप के जीवन-काल में बनकर तैयार हो गया, और उसमें कारबार भी होने लगा। इस औषधालय का नाम बाबू साहब ने अपने ज्येष्ठ पुत्र स्वर्गीय हरिपद घोष के नाम पर रक्खा था। यह औषधालय अपनी कितनी ख़ूबी दिखला रहा है, कितने दीन-हीन मनुष्यों का उससे भला हो रहा है, इसके उल्लेख करने का न यह समय ही है और न ज़रूरत ही। वह शहर के दूर दूर ग्रामों और महल्लों तक काफ़ी नाम पा चुका है।

भगवान् जिसको सुमति देते हैं उसमें सभी तरह की शुभेच्छायें हुआ करती हैं। घोष बाबू औवल दर्जे के हिन्दू

एवं गो-भक्त और गोपालक थे। आपको कई तरह के जानवर रखने का शौक था। आप उन्हें पालते थे और उनके खान-पान की देख-रेख ऐसी रखते थे जिससे वे सदा हृष्ट-पुष्ट एवं देखने के लायक़ बने रहते थे। गाय-भैंसे जैसी दूध देते समय हृष्ट-पुष्ट रहती थीं; वैसी ही न दूध देने के समय भी। उनको खाने का सामान सदा पुष्कल एवं भरपेट दिया जाता था। बढ़िया से बढ़िया जानवर आप खोज कर ख़रीदते थे। कभी कभी दूर देशों से भी मँगाते थे। जिस तरह के जानवर को ख़रीदने की आपको इच्छा होती उसे प्राप्त करके ही आप सन्तुष्ट होते थे। भला जो सच्चा गोभक्त हो, हृदय से जानवारों से प्रेम रखता हो, ऐसा मनुष्य कभी सुखैश्वर्य से वञ्चित रह सकता है; नहीं, कभी नहीं।

किसी अनुभवी विद्वान् का कथन है कि 'गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति'। स्वर्गीय बाबू साहब गुणों का महत्त्व समझते थे। अतएव उन्हें अपनाते थे। आपके जीवन की ऐसी हज़ारों घटनायें होंगी जो आपके आदर्श को बहुत ऊँचा करनेवाली हैं। आप समझते थे कि परिश्रम करके मनुष्य को रुपया भी कमाना चाहिए। साथ ही मनुष्यत्व के आदर्श का सदा ख़याल रखना चाहिए। धन ऐसी चीज़ नहीं है जो मनुष्य को अपने अभीष्ट मार्ग तक पहुँचने के साधनों में बाधा डाल सके। किन्तु अगर समझ रखनेवाला है तो उससे उसको उन साधनों में कुछ सहायता ही मिलेगी। एक बार क्या कई बार मैंने आपके श्रीमुख से सुना था कि पण्डित जी, प्राणपखेरू के उड़ जाने पर आप ही लोग कहेंगे कि इनको यहां से जल्दी ले चलो, और साथ के लिए क्या देंगे, सिर्फ़ एक हाथ कपड़ा। बाक़ी सब यहीं पड़ा रहेगा। ऐसी दशा में मनुष्य यदि अपने पद से, अपने अभीष्ट मार्ग से पतित होता है तो मानो वह अपनी ही हानि करता है। कैसा उत्तम विचार था! आपकी महती आत्मा यशस्वी थी। शुभ काम ही उनको अच्छे मालूम होते थे। पथभ्रष्ट होने में वह अपनी ही हानि समझती थी।

ऊँचे दर्जे के सभी गुण हम स्वर्गीय बाबू साहब में पाते हैं। उन गुणों के कारण स्वभाववश यदि कोई मनुष्य आपकी तारीफ़ करने लगता था तो आप फ़ौरन ऐसी कोई बात छेड़ देते थे जिससे कहनेवाले को तत्काल अपनी बात छोड़कर बाबू साहब की बात सुननी पड़ती थी। आप अपनी प्रशंसा के भूखे न थे। प्रशंसक की प्रशंसा वे सुनना ही नहीं चाहते थे। आपकी बलिष्ठ आत्मा इस बात को महसूस करती थी कि प्रशंसकों की प्रशंसा व्यर्थ है। हम जब सच्चे मार्ग का अनुसरण किये हुए हैं तब लौकिक प्रशंसा से हमें क्या काम।

स्वर्गीय बाबू साहब कुछ ऐसे दान करते थे जिनका किसी को पता भी नहीं। हा, बातों बात कभी कुछ आभास मिल जाता था, पर स्पष्ट रूप से आपने कभी अपने दान की संख्या किसी को नहीं बतलाई। कुछ विधवाओं को भी आप गुप्तरीत्या सहायता देते थे। हां, धार्मिक संस्थाओं को आप जब कभी कुछ दान देते थे तब वह उन संस्थाओं के कार्यकर्त्ताओं-द्वारा प्रकट हो जाता था।

स्वर्गीय बाबू साहब का सदाचार उच्च शिखर की चोटी के समान सदा देदीप्यमान रहा। उसमें ज़रा भी कभी कमी नहीं हुई।

क्षेमेन्द्र कवि ने सच कहा है कि इस अद्भुत संसार-सागर में न मालूम कितने मकररूपी प्राणी रात-दिन पैदा होते रहते हैं। पर, सागर में पैदा हुए इनके समूह में स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि जैसा श्रेष्ठ प्रख्यात पुरुषमणि कभी कोई ही पैदा हुआ करता है!

एक विभूतिमान् पुरुष का क्षणिक दर्शन

[श्रीयुत गिरीशचन्द्र चौधरी, एम० ए०]

श्रीमद्भगवद्गीता के दशम अध्याय में श्रीभगवान्‌जी ने कहा है—

"यद्यद् विभूतिमत् सत्त्वं
श्रीमदूर्जितमेव च ।
तत्तदेवावगच्छत्वं
मम तेजोंऽशसम्भवम् ॥"

जो जो पदार्थ आश्चर्य-शक्ति, सौन्दर्य और बल से युक्त हों उन्हें मेरे ही तेज के अंश से उत्पन्न हुए समझो। जिन्होंने अपनी साधु चेष्टा से विपुल सम्पत्ति की प्राप्ति की, अपने चरित्रबल से हज़ारों लोगों से ठीक तौर से अपना काम करवा के जिन्होंने अपने उद्देशों को सिद्ध करते हुए अपने व्यवसाय को उन्नति के चरम शिखर पर चढ़ा दिया, वार्तालाप में गम्भीर बुद्धिमत्ता की झलक से जिन्होंने श्रोताओं को सदा मुग्ध किया ऐसे सत् पुरुष को विभूतिमान् न कहें तो और किसे कहें?

बाबू चिन्तामणि घोष से बहुत से बड़े बड़े लोगों का वर्षों से परिचय रहा है। ऐसे लोग अपने लम्बे अनुभव की उनके सम्बन्ध की बातें लिखेंगे। मैं तो अत्यन्त साधारण मनुष्य हूँ। इसके सिवा उनसे केवल एक ही बार कुछ देर तक बात-चीत करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। उस समय उनका शरीर अन्तिम रोग से जीर्ण होता जा रहा था। तथापि उस दिन की स्मृति को मैं अपने क्षुद्र जीवन की एक सम्पद् समझता रहूँगा। मैं उनसे उस दिन रात में मिला था। वे अपने पलँग पर बैठे थे, शरीर महीनों से क्लिष्ट था, दृष्टि-शक्ति से वर्षों पहले से वञ्चित होगये थे परन्तु धैर्य और गम्भीर बुद्धिमत्ता ने उनके शरीर और वचन को अपना आश्रय-स्थल बना लिया था और मानो प्राचीन यहूदी वीर सेम्सन, यूनानी आदिकवि होमर, या इँगलिस्तान के प्रबल स्वाधीन धार्मिक कवि मिल्टन उनके अशक्त शरीर में जाज्वल्यमान आत्मा को धारण किये हुए बैठे हैं। उनकी बात से प्रतीत होता था कि न तो वे बड़े लोगों की ख़ुशामद कर सकते हैं, न अपने लिए ख़ुशामद चाहते हैं। वास्तव में पक्का काम करनेवाला और चाहनेवाला कभी ख़ुशा-मद से तुष्ट नहीं हो सकता। उनकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी। वे पढ़ने या कोई काम सीखने के लिए विलायत जाना व्यर्थ समझते थे। वे कहते थे कि जो बात इसी देश में सीखी जा सकती है उसके लिए विलायत जानेवाले लड़के वहाँ और कुछ चाहे सीखा हो या न हो, शानदार चाल-ढाल और दम्भ लेकर अवश्य लौटते हैं। अच्छी पाठ्य पुस्तकों के प्रचलन, विशेषतः "सरस्वती" पत्रिका के द्वारा हिन्दी-साहित्य की समुन्नति आदि बातों के सम्बन्ध में
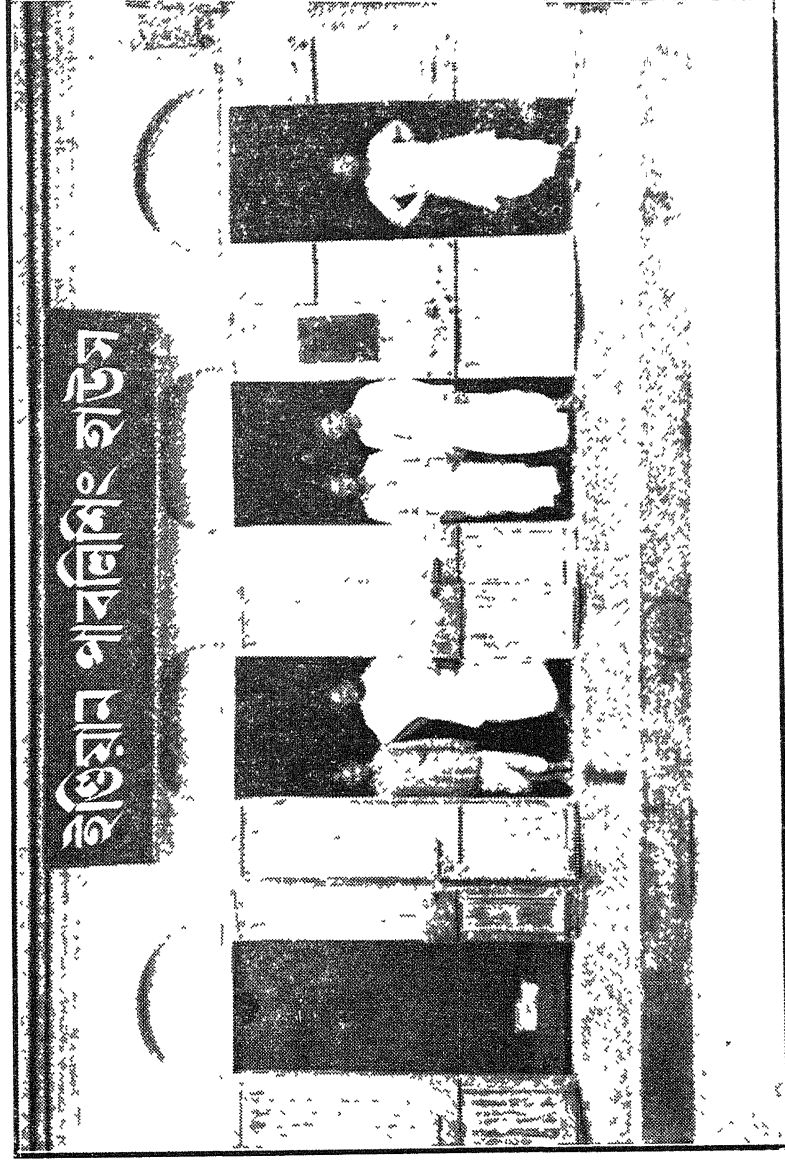
इंडियन पब्लिशिंग हाउस, कलकत्ता
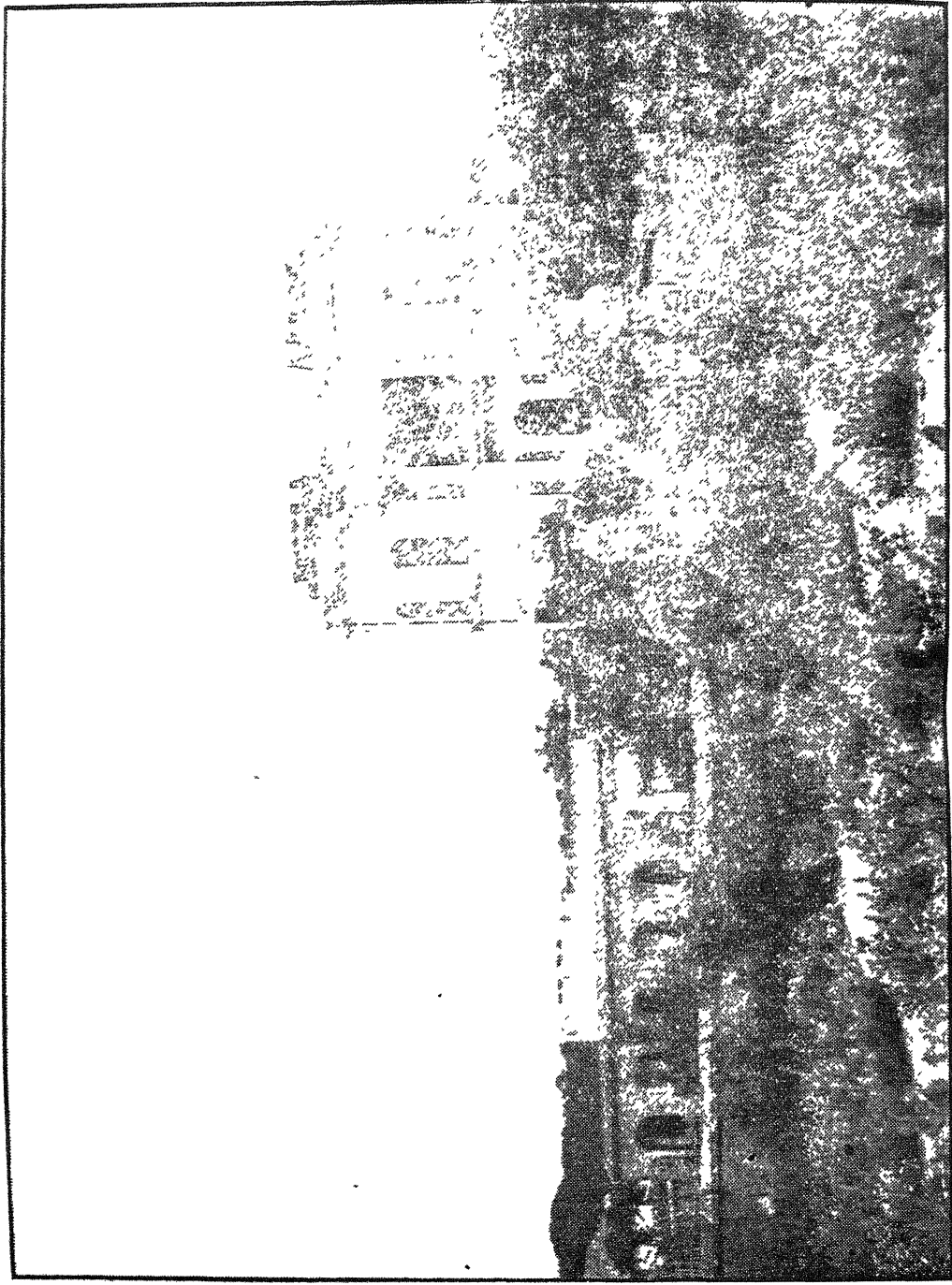
पुरी की कोठी

तथा उनकी व्यावसायिक बुद्धि का वर्णन इस श्रद्धाङ्क में बहुत से सुलेखकों ने किया होगा। अतएव उनके सम्बन्ध मे कुछ न कह कर यहाँ मैं केवल उनकी धार्मिक श्रद्धा के विषय में कुछ उल्लेख करना चाहता हूँ। वे परम विष्णुभक्त थे, माला-तिलक-धारी भक्त नहीं थे, आन्तरिक भक्त थे। उनके चरित्र में इस धार्म्मिक विकास की सृष्टि और पोषण उनकी परम वैष्णव माताजी से ही हुआ था। उनका ऐसा सौभाग्य था और उनमें ऐसी मातृभक्ति थी कि अपने जीवन के प्रायः ७२ वर्ष तक उन्हें अपनी परम धर्मवान् माताजी के दर्शन सुलभ रहे। उनके प्रत्येक पुत्र के नाम में "हरि" शब्द का विन्यास है। साथ ही उनके घर में नारायण-चक्र की प्रतिष्ठा हुई है और पूजन का भी यथारीति प्रबन्ध है। केवल यही नहीं, किन्तु दरिद्र नर-नारायण की सेवा भी उनके इन सदनुष्ठानों में अपना विशेष स्थान रखती है। एलोपैथिक और होमिओपैथिक के दो चिकित्सालय भी सर्वसाधारण के लाभ के लिए स्थापित किये हैं। वैकुण्ठ-वासिनी उनकी पत्नी और स्वर्गत उनके ज्येष्ठ पुत्र बाबू हरिपद घोष की स्मृति की रक्षा इनके ारा गौरव के साथ हो रही है। इनसे उनके . की दया के भाव का भी पूरा निदर्शन होता है। उनके जीवन से हमको सबसे बड़ी यह'' शिक्षा मिलती है कि सरकारी नौकरी को छोड़ ार भी साहस और परिश्रम करनेवाला पुरुष ऐश्वर्य को प्राप्त कर सकता है। अपने आप उद्यम करनेवाला मनुष्य ईश्वर का सहारा पाता है, यह अँगरेज़ी कहावत उनके जीवन में सार्थक होगई है। सचाई, सफ़ाई और शुद्ध रीति से तथा जगत् के नये नये क्रमोन्नत यन्त्रों से काम करके व्यवसाय-व्यापार की बहुत उन्नति होती है, यह भी उनके जीवन का एक सारवान् उपदेश है। अपने सम्मान की रक्षा के लिए सचाई और परिश्रम से काम करना और व्यर्थ दूसरों को .खुशामद से उस सम्मान को न खोना, यह शिक्षा भी हम उनके जीवन से पाते हैं।

चिन्तामणि बाबू का इस पृथ्वी पर से तिरोभाव हो गया है, तथापि यदि "कीर्तिर्यस्य स जीवति" यह कहावत सच है तो वे अपनी कीर्ति से अब भी जीते रहेगे। सच तो यह है कि यदि उनका "प्रेस" सुन्दरता से चलता रहे और उनके पुत्र-पौत्रादि उनके गुणों से यथा-सम्भव मण्डित होते गये और बाहर के दूसरे लोग भी उनके आदर्श से अनुप्राणित हो कर अपना और देश का कल्याण करते रहे तो वे विभूतिमान पुरुष अदृश्य विराट् रूप से इस संस्था के द्वारा अमर ही रहेंगे।

स्वर्गीय बाबू चिन्तामणि और उनका महत्त्व

[श्रीयुत सन्तराम, बी० ए०]

श्रीमान् बाबू चिन्तामणि घोष को मैं सदा एक असाधारण व्यक्ति समझता रहा हूँ। कोई दो वर्ष हुए, मेरा विचार एक ऐसी पुस्तक लिखने का हुआ जिसमें उन प्रतिभाशाली मनुष्यों का परिचय हो जो अति दरिद्र माता-पिता के घर में जन्म लेकर भी अपनी बुद्धिमत्ता, चातुर्य्य, अध्यवसाय और निष्कपट व्यवहार के प्रताप से धनकुबेर बन गये। उस पुस्तक में अन्य सज्जनों के अतिरिक्त मैं आपका भी जीवन-वृत्तान्त देना चाहता था। अतएव मैंने आपको एक पत्र लिखकर प्रार्थना की कि अपने जीवन की कुछ मुख्य मुख्य घटनायें लिख भेजने की कृपा कीजिए। परन्तु सांसारिक प्रसिद्धि और दिखावे से दूर भागनेवाले स्वर्गीय बाबूजी ने उत्तर दिया कि अब मेरे जीवन के दिन थोड़े ही हैं। मैं नहीं चाहता, मेरे जीवन-काल में मेरा जीवन-चरित प्रकाशित हो। बाबू चिन्तामणिजी का नाम यों तो आपके अनेक सद्गुणों के कारण चिरस्थायी रहेगा, परन्तु बँगलाभाषी होकर भी आपने हिन्दी की जो सेवा की है उसने हिन्दी-जगत् को आपका चिरऋणी बना दिया है। आपके द्वारा संस्थापित 'सरस्वती' २९ वर्ष से हिन्दी की सेवा कर रही है। इतनी पुरानी और इतनी उच्च कोटि की पत्रिका इस समय हिन्दी-जगत् में और दूसरी नहीं। हिन्दी के अनेक अच्छे अच्छे लेखक और विद्वान् उत्पन्न करने का श्रेय सरस्वती को प्राप्त है। मैं स्वयं जो थोड़ा-बहुत लिख लेता हूँ यह सब 'सरस्वती' ही की कृपा है।

'सरस्वती' के अतिरिक्त बाबूजी के 'इंडियन प्रेस' ने हिन्दी का सत्साहित्य उत्पन्न करने और उसकी धाक बैठाने में अद्वितीय कार्य किया है। इंडियन प्रेस के जन्म के पूर्व हिन्दी में केवल घटिया दर्जे की क़िस्से-कहानियों की ही पुस्तकें छपती थीं। उनका रंग-रूप और छपाई-सफ़ाई भी बहुत निकम्मी होती थी। इंडियन प्रेस ने हिन्दी के साहित्य-संसार में युगान्तर उत्पन्न कर दिया। उसने ज्ञान के प्रायः सभी विषयों पर सुयोग्य लेखकों की पुस्तकें सुचारु रूप में प्रकाशित कीं। प्रायः प्रकाशक लोग, सुरुचि और कुरुचि की कुछ भी परवा न करते हुए, वही पुस्तकें छापा करते हैं जिनकी अधिक बिक्री होने की आशा होती है। साहित्य के भिन्न भिन्न उपयोगी अङ्गों की पूर्ति का उन्हें कुछ भी विचार नहीं होता। और यह बात सब कोई जानता है कि इतिहास, मनोविज्ञान, रसायन-शास्त्र, अर्थ-शास्त्र, भ्रमण-वृत्तान्त इत्यादि विषयों की पुस्तकें उपन्यासों और कहानियों की पुस्तकों की अपेक्षा बहुत कम बिकती हैं। इसी लिए अधिकांश प्रकाशक इन विषयों की पुस्तकों को हाथ तक नहीं लगाते। परन्तु इंडियन प्रेस ने केवल अपने ही टके बटोरने का ध्यान न रख कर इन सभी

विषयों पर अच्छी अच्छी पुस्तकें प्रकाशित कीं। हाँ, उसने ऐसी ऐसी पुस्तकें प्रकाशित कीं जिनको छापने का साहस कोई भी दूसरी दूकान न कर सकती थी। महाभारत का पूर्ण अनुवाद, रामायण, शिक्षा, अलबेरुनी का भारत, इत्सिङ्ग की भारतयात्रा, प्रकृति, दयानन्द-दिग्विजय, बेट साहब का हिन्दी-इँगलिश कोश इत्यादि ग्रन्थ हमारे कथन की सत्यता का प्रमाण हैं।

बालक-बालिकाओं के लिए उत्तम साहित्य उत्पन्न करने में भी इंडियन प्रेस का नंबर सबसे पहला है। बच्चों के लिए हिन्दी में 'बाल-सखा' ही सबसे पहला और सबसे सुन्दर पत्र है। बाल-सखा-माला ने हिन्दी पढ़नेवाले बच्चों में अच्छी पुस्तकों के पढ़ने की अच्छी रुचि उत्पन्न कर दी है। इन पुस्तकों से पहले बच्चों के पढ़ने लायक़ अच्छी पुस्तकें मिलती ही न थीं।

स्त्री-पाठ्य साहित्य के प्रकाशन में भी इंडियन प्रेस किसी से पीछे नहीं रहा। इसके द्वारा प्रकाशित प्राचीन सती-साध्वी देवियों और शूरवीर माताओं के जीवन-चरित बड़े ही सुशिक्षा और सुरुचिपूर्ण हैं। भाषा की शुद्धता, विषय की निर्दोषता, शैली की रोचकता, और छपाई-सफ़ाई की सुन्दरता के लिए इंडियन प्रेस की पुस्तकों की अब तक धाक रही है। अमुक पुस्तक इंडियन प्रेस मे छपी है, केवल इतना पता लग जाने से ही विश्वास हो जाता है कि वह अवश्य उत्तम होगी। हिन्दी की छपाई की दृष्टि से तो इंडियन प्रेस अब तक भी अद्वितीय है। कोई भी दूसरा प्रेस वैसी सुन्दर छपाई नहीं करता।

इन सब बातों का श्रेय श्रीमान् बाबू चिन्तामणि को ही है। जिस किसी को आपके साथ कभी व्यवहार करने का संयोग मिला है, आपने उसे कभी शिकायत का मौक़ा नहीं दिया। यह आपका एक बहुत बड़ा गुण था। ऐसे ही अनेक दुर्लभ गुणों तथा लोक-सेवाओं के कारण आप सभी के श्रद्धास्पद थे। ऐसे साधु पुरुष के लोकान्तर से किसको शोक न होगा।

कर्मयोगी के प्रति

[श्रीयुत विद्याभास्कर शुक्ल]

(१)

साहस की प्रतिमूर्ति ! मेरु दृढ़ता के अविचल !
शान्तप्रकृति ! गंभीर ! धीर ! मृदुतामय ! निश्छल !
दीनों के प्रतिपाल ! सहायक निराश्रितों के !
उदारता के सिन्धु ! प्रेम-पथ स्व-आश्रितों के !
मृतप्राय रोगी अमित स्वास्थ्यलाभ पाते वहाँ,
तुमने 'हरिपद' नाम से खोला ओषधि-गृह जहाँ ।।

(२)

गुणग्राहक ! सुबदान्य ! लेखकों के हित-वर्षक !
विद्वज्जन सम्मान्य ! निर्धनों के पथ-दर्शक !
'बाल-सखा से बालवृन्द अपनानेवाले !
'सरस्वती' को मूर्तिमान कर लानेवाले !
सुरुचिपूर्ण साहित्य से हिन्दी का भाण्डार भर
प्रगतिशील संसार में करनेवाले अग्रसर !

(३)

धन-सम्पति-प्रपूर्ण कीर्ति-अक्षय-अधिकारी !
हिन्दी के साहित्य मध्य नव-युग-सञ्चारी !
अहो प्रेस के प्राण और उसके प्रिय स्वामी !
कर्मनिष्ठ ! धर्मिष्ठ ! ईश-आज्ञा-अनुगामी !
आज हमारे बीच में 'चिन्तामणि' बाबू नहीं ।
उनके पुण्यप्रकाश की किरणें फैलीं सब कहीं ।।
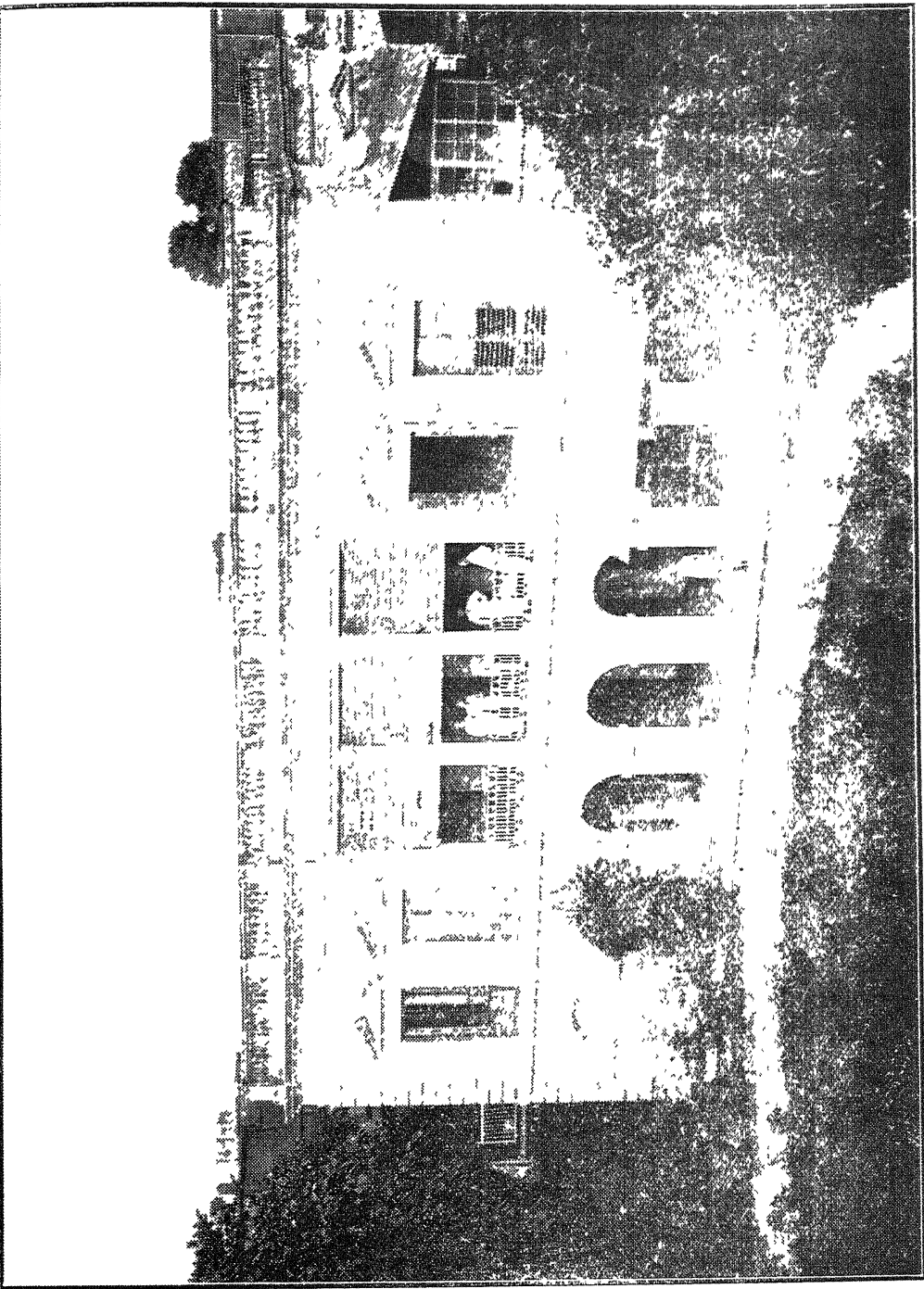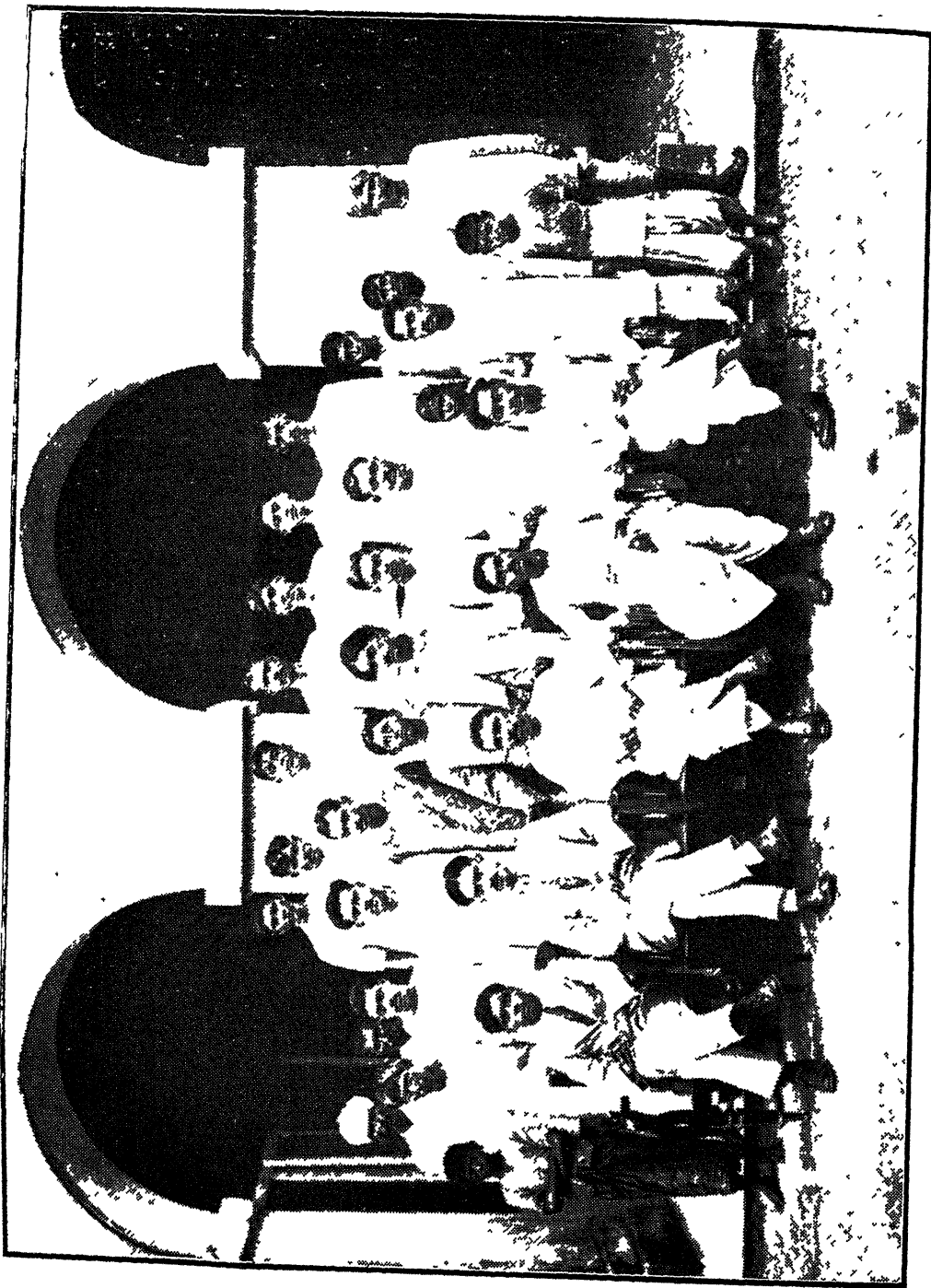
इंडियन प्रेस (कलकत्ता-शाखा)

इंडियन प्रेस, कलकत्ता-शाखा का कर्मचारी-मण्डल

स्नेह-स्मृति

[श्रीमती चारुबाला सरस्वती]

जिस वैचित्र्यमय संसार में जहाँ विश्वेश्वरजी की नित्य लीला हो रही है, जन्म-मृत्यु के फेर से प्राणियों का जहाँ नित्य आना-जाना चन्द्र-सूर्य्य के उदयास्त की भाँति नित्य संघटित हो रहा है, वहाँ जगदीश्वर की कृपा से, नित्य के जन्म-मरण के बीच में से, कभी कभी किसी किसी शुभ लग्न में ऐसे ऐसे मनुष्य भी जन्म लेते हैं जिनके जन्म से जननी तथा जन्म-भूमि धन्य कहलाती हैं, जो स्वदेश और स्वजाति का गौरव बढ़ाते हैं, और अपना आदर्श जीवन ऐसे काम में विताते हैं जिसके आनुसङ्गिक फल हैं ज्ञान, गौरव, उन्नति, सफलता और मन की प्रसन्नता। जीवन-पर्य्यन्त शुभ कर्म्म का अनुष्ठान करने के बाद मरते समय भी वे दूसरों के लिए चरित्र-संगठक बहुत कुछ उपादान तथा जीवन का गौरवमय सुआदर्श छोड़ जाते हैं। वैसेही एक क्षणजन्मा पुरुष थे परहितव्रती बाबू चिन्तामणि घोष। आप के वियोग से आज मैं हृदय की कातरता के साथ आँसू बहाती हुई श्रद्धा का तर्पण करने के लिए आई हूँ; परन्तु आज इस शोकाश्रु के साथ मन की श्रद्धा का कौन सा प्रसून देकर उन स्वर्गगत पूजनीय की स्मृति का तर्पण करूँगी? उनके जीवन, गुण, कर्म्म या स्नेह की कौन सी कथा आज मैं लिखूँगी? अपनी बाल्यावस्था से उनको और उनके परिजनों को जानने का सौभाग्य मुझे मिला था और उस बाल्य-काल से उनके अन्तिम काल तक उनसे पितृव्य का पूर्ण स्नेह मैंने पाया था। केवल वे ही नहीं, वरन उनके परिजनों में से प्रत्येक के साथ श्रद्धा या स्नेह के बन्धन से मैं आबद्ध हूँ। उनके वियोग में मेरा सब पुराना शोक आज नये भाव से मेरे मन को आकुल कर रहा है।

आज मैं किन का स्नेह-स्मरण करूँगी? उन की पूतशीला जननी, धर्म्मशीला भगिनी, पुण्यवती पत्नी—मेरी स्नेहमयी आजी, बुआ व चाची, अथवा उनके अकाल-मृत पुत्र, भानजा व कन्या—मेरे स्नेहास्पद हरिपद, हरिचरण व प्रभा—किस किस का स्मरण करके आज मैं शोकाश्रु-मोचन करूँगी? इस नये शोक के साथ विगत बत्तीस वर्ष के सुख-दुख व शोक की सैकड़ों स्मृतियाँ आज मेरे चित्त को व्याकुल कर रही हैं।

उन के स्वर्गगमन के कोई एक महीना पहले मैं इलाहाबाद गई थी, और वहाँ से लौटते समय दो दिन मैं उनके दर्शन के लिए गई तब उन्होंने मुझे सदा की भाँति परम स्नेह के साथ कुशल-प्रश्न के अनन्तर बहुत कुछ अमूल्य उपदेश दिये, और मेरी पहले की लिखी हुई 'सतुर मा" नाम की पुस्तक की जिसके लिए कई साल पूर्व उन्होंने बड़ी प्रसन्नता के साथ मुझे आशीर्वाद दिया था, चर्चा उठा कर मुझसे कहा कि "मा, तुम्हारी उसी "सतुर मा" पुस्तक की तरह कोई पुस्तक यदि लिखी गई हो तो मेरे पास भेज देना। मैं इंडियन प्रेस से प्रकाशित कराऊँगा। मगर देखती तो हो, बेटी, कि मेरा शरीर दिन प्रति दिन क्षीण होता जाता है, स्वास्थ्य की उन्नति की आशा बहुत कम है। यह समझ कर जितनी जल्दी हो सके वह किताब मुझे भेज देना।"

(अवकाश के समय थोड़ा-बहुत लिखने का मेरा अभ्यास है, यह वे जानते थे) उन्होंने मेरी सर्व-प्रथम पुस्तक "दमयन्ती-कथा" अपने व्यय से प्रकाशित कर मुझे उत्साहित किया था। और एक बार मेरा उत्साह बढ़ाने के अभिप्राय से ही उन्होंने मुझे यह अनुमति दी थी। उनके अतुल स्नेह की धारा ऐसी ही थी। मैंने उस अतुल स्नेह की अनुभूति से बड़े आनन्द के साथ अपनी लिखी हुई एक दूसरी पुस्तक सुन्दर रूप से नक़ल करा कर भेजना स्वीकार किया। उनकी शारीरिक अवस्था देख कर बड़ीही दुःखित व चिन्तायुक्त हो कर भगवान् से उनकी कुशल वाञ्छा करती हुई दो-चार मिनट तक और कुछ बातचीत करके प्रणामानन्तर मैंने विदा माँगी। उन्होंने सदा की भाँति बड़े ही स्नेह के साथ मुझे आशीर्वाद दिया, न जाने क्या सोच कर कुछ कम्पित स्वर से पूछा, फिर कब आओगी ? मैंने जवाब दिया, अब मैं आश्विन में आऊँगी। उन्होंने कहा—

"हाँ, आश्विन में फिर आना, पर किताब उससे पहले ही भेजना।" आज्ञा शिरोधार्य कर और अपने काका बाबू पूजनीय को प्रणाम कर मैं चली आई। तब यह मेरी समझ में न आया कि यही साक्षात् मेरा अन्तिम साक्षात् है, उनका वह स्नेह-पूर्ण मुख इस संसार में फिर न देख पाऊँगी, वैसी स्नेहभरी बातें पुनः नहीं सुनूँगी ! यह और भी कष्ट की बात है कि समयाभाव से उनका अन्तिम आदेश मैं पालन न कर सकी। पुस्तक के एकांश की कापी भेजने पर शेषांश सत्वर भेजने का आदेश मुझे मिला था, परन्तु उस कापी को समाप्त करके भेजने के पहले ही एक दिन अचानक यह गहरा शोकप्रद वियोग-संवाद मिला ! हाय ! यह क्या दुःखसंवाद मुझे मिला है ! आक्टोबर में मैं इलाहाबाद जाऊँगी, अगस्त में वे खुद चले गये ! और मैं उनके स्नेह-मय वचन न सुनूँगी, न उनके आशीष से अपने जनक-जननी व सन्तान-शोकतप्त हृदय को तृप्त कर सकूँगी ! आज केवल मैं ही नहीं, उनके पुत्र, कन्यापुत्र, कन्या ही की भाँति न जाने कितने नरनारी व बालक-वृद्ध युवा शोकाकुल होकर उनके गुणों का स्मरण करके रो रहे हैं।

उन परहितव्रती स्वनामख्यात स्वर्गीय महाशय का शुभ जन्म १८५४ ईसवी की १० वीं अगस्त को हुआ था। वंग-देश का बाली नामक ग्राम उनका जन्मस्थान है। उनके पिता बाली-ग्रामवासी स्वर्गीय माधवचन्द्र घोष कमसरियट-विभाग के कर्म्मसूत्र से उत्तर-पश्चिम-प्रदेश-प्रवासी हुए थे। आठ वर्ष के बालक चिन्तामणि मातृदेवी के साथ वंग-देश से पिता के कर्म्मस्थान पुण्य-भूमि वाराणसी में आये, और जनक-जननी के स्नेहनीड में आनन्द से दिन बिताने लगे। परन्तु, संसार का प्रायः जैसा हाल है—उनके सुख के दिन बड़ी जल्दी ही समाप्त हो गये। अदृश्य भाग्य-देवता के रोष से दो ही साल बीतने पर प्रयाग में उनके पितृ-देव का स्वर्गवास हो गया। विस्तीर्ण विश्व में अचानक दुःख का बोझ सिर पर उठा कर विधवा जननी ने उसी दस वर्ष के एक-मात्र अल्प-वयस्क पुत्र का अवलम्बन करके प्रयाग ही में रहना स्थिर किया। पुण्यवती-दूरदर्शिनी-विधवा भीतर-बाहर चिन्तामणि-स्मरण एवं चिन्तामणि-दर्शन करती हुई अपूर्व साहस और मानसिक शक्ति के साथ अपने शुभाशुभ की सारी चिन्ता, समस्त भार भी उन्होंने अपने कन्धों पर ले लिया। ऐसे दो साल और बीते। पितृहीन बालक को अर्थाभाव के कारण स्कूल-कालेज की शिक्षा तो अधिक न मिली, परन्तु पूतशीला जननी की धर्म्मनिष्ठा, सत्साहस, दृढ़ चित्तता, कर्तव्यनिष्ठा आदि सद्गुणों के अधिकार से ऐसी सुन्दर शिक्षा प्राप्त हुई कि वही लड़कपन से जीवन के अन्तिम समय तक न केवल

उनको सहायक हुई, वरन औरों के लिए भी आदर्श-स्वरूप सिद्ध हुई। उनकी जो एकमात्र बड़ी बहन थीं वे भी जननी के सब गुणों की अधिकारिणी थीं। उनका स्वर्गगमन हुए कितने ही साल बीत गये। फिर भी उन स्नेहमयी के स्मरण से आँखें आँसू नहीं सँभाल सकतीं।

जननी की सत्शिक्षा और अपने दृढ़सङ्कल्प का यह सुफल हुआ कि सन् १८६७ में तेरह वर्ष की उम्र में स्कूल छोड़ कर १० रुपया मासिक वेतन पर उन्होंने पायोनियर आफ़िस में सहर्ष कार्य्य स्वीकार कर लिया। आगे चल कर उनकी वयःवृद्धि के साथ ही साथ सत्साहस, सचाई, ईमानदारी, अध्यवसाय और चरित्र की दृढ़ता आदि सद्गुणों के फलस्वरूप वह अवस्था भी प्राप्त हुई कि जननी को पुत्र के ऐश्वर्य्य में किसी तरह के अभाव का अनुभव नहीं करना पड़ा। इन्होंने राजमाता की भाँति परम सुख से अपना शेष जीवन बिताया। इनके जीवन-काल में ही उन्होंने असामान्य आर्थिक उन्नति व सत्कर्म्म-सम्भूत देशव्यापी यश अर्जन किया था, बड़ी बड़ी अट्टालिकायें बनवाईं और प्रवासी बंगाली के प्रधान कीर्त्ति-स्वरूप विख्यात इंडियन प्रेस स्थापित करके सब प्रकार से उसे उन्नत किया था। भगवान् के आशीर्वाद से प्रार्थनीय पुत्र के कल्याण से पुत्रवधू, पौत्र, पौत्री, दौहित्र, पौत्र-वधू आदि परिजनों के साथ परम सुख से जीवन के बहुत दिन बिताकर पुण्य-स्नेहमयी वृद्धा जननी स्वर्गगता हुईं। हाँ, पहले जीवन में बहुत दुःख—अभाव—के साथ युद्ध करने के बाद माता-पुत्र ने बहुत सुख-पूर्वक अपना पिछला जीवन बिताया, यह ठीक है। परन्तु इस संसार में जन्म ग्रहण करके आज तक ऐसा कौन प्राणी हुआ है जिसे सुख के साथ दुःख या शोक न सहना पड़ा हो? इस घोष परिवार को भी ऐसा ही हुआ। एक ओर से जैसे उनकी सम्पदा बढ़ती गई, वैसेही दूसरे ओर से एक कठोर दुःख भी उन पर आ पड़ा। अध्ययन के अभ्यास, प्रेस के काम में बड़ी सावधानता के साथ प्रूफ़ पढ़ने आदि से आपकी दृष्टि-शक्ति का अधिक व्यय होने के कारण वह क्रमशः कमज़ोर होने लगी, और बाद को इतना तक हुआ कि लाचार हो कर १९१६ ईसवी में जेष्ठ पुत्र बाबू हरिपद घोष और शुभचिन्तक बन्धुओं व कर्म्मचारियों के ऊपर प्रेस का समस्त भार देकर उनको अवसर लेना पड़ा। इस स्थिति से उन अध्ययन-प्रिय कर्म्मप्राण महाशय के चित्त में कैसा कष्ट पहुँचा होगा, इसे सभी समझ सकते हैं। फिर भी यह दुःख कुछ सहन-योग्य था, पर इसके पीछे जो दुःख उन पर आ पडा उसको लिखने में मेरा हाथ काँप रहा है, चित्त व्याकुल हो रहा है। सरल-स्वभाव मिष्ट-भाषी हरिपद आकृति व प्रकृति दोनों ही से सुन्दर थे, सब कोई उन पर शुभ दृष्टि रखते थे, सब कोई उनसे प्रसन्न थे। कर्म्मनिष्ठ पिता के योग्य पुत्र ने पूर्व-शिक्षा के गुण से कुछ दिन में इंडियन प्रेस के सञ्चालन के उपयुक्त कर्म्म-दक्षता लाभ करके पिता के दुःखित चित्त में आशा व आनन्द पहुँचाया। कर्म्मचक्र के साथ भाग्य-चक्र भी घूमने लगा। स्वल्प दृष्टि के कारण दुःख रहने से भी पतिव्रता पत्नी, पुत्रों आदि के सेवा-यत्न से एक प्रकार सुख से ही समय बीतता था, परन्तु विधि के विधान से, दिनों के फेर से उनके संसार में भी अचानक एक भीषण आपदा आ गई।

१९२० में इलाहाबाद में बेरीबेरी नाम की बीमारी फैली, और दुर्भाग्य वश उनकी पत्नी, एक शिशु कन्या के पिता ज्येष्ठ पुत्र हरिपद, और दो शिशु पुत्रों की जननी ज्येष्ठा कन्या हरिप्रभा उसी भीषण रोग से एक ही साथ आक्रान्त होकर सर्व प्रकार चेष्टा, यत्न व बड़े बड़े डाक्टरों की औषधि विफल करके सोलह दिन के भीतर पहले पत्नी, पीछे पुत्र व कन्या शोक के गहरे

समुद्र में उनको डुबा कर चले गये। इस समय मानो घोष परिवार की सुख-पूर्णिमा के चन्द्रमा को शोक-रूपी राहु ने घेर लिया।

घोष महाशय की तब की मानसिक अवस्था क्या भाषा में व्यक्त हो सकती है? वे परम धैर्य्य-शील, गम्भीर-स्वभाव, ज्ञानी पुरुष भी कुछ दिन के लिए उस दुस्सह शोक से व्याकुल हुए। उनकी दृष्टि शक्ति का जो कुछ अवशिष्ट था वह भी उस दुर्द्दिन में चला गया। सुखमय चित्त में शोक का अँधेरा छा गया, आँखों के सामने का शोभायमान जगत् अन्धकार में डूब गया।

सन् १९२० के उस शोक की झञ्झा में अभि-भूत परिजनों को धीरे धीरे फिर संसार की ओर दृष्टि करनी पड़ी। बहुदर्शी घोष महाशय को भी प्रबल पत्नी-पुत्र-शोक को मन में दबा कर तथा फिर अपनी कर्म्म-शक्ति को जाग्रत कर सर्वविषय में पुत्रों को सुपरामर्श से सहायता करनी पड़ी। उनके सुयोग्य सुशिक्षित मध्यमपुत्र श्रीयुत हरि-केशव घोष तब अपनी उच्च शिक्षा, कर्म्मशक्ति व शुभचेष्टा लेकर इंडियन प्रेस की उन्नति के लिए अग्रसर हुए और सहकर्म्मी सुयोग्य भ्राता श्रीयुक्त हरिप्रसन्न घोष एवं श्रीयुत हरिसाधन घोष ने भी पूरे मनोयोग से मध्यम भ्राता के साथ कर्म्म-क्षेत्र में अवतरण किया। अब तीनों योग्य पुत्रों ने अपने शोकार्त व चिन्ताभार-ग्रस्त पिता के चित्त को फिर आशा के प्रकाश से आलोकित करके पुत्र के कर्त्तव्य का पालन किया, और शुभार्थी बन्धु-जनों तथा देशवासियों के धन्यवाद के पात्र हुए।

घोष महाशय ने प्रेस का संस्थापन, सरस्वती, बाल-सखा आदि पत्रों का सञ्चालन तथा लेखकों की उत्साह-वृद्धि करके साहित्य का पुष्टि-साधन ही नहीं किया, उनके जीवन में अन्य अनेक विशेषतायें भी थीं।

वे यथार्थ गुण-ग्राही, गुणियों का आदर करने व उत्साह देनेवाले थे। न जाने कितने असहाय दीन दरिद्र जनों को उनकी सहायता मिली। कितनी ही सहाय संबल-हीना नारियों को उन्होंने अर्थ की सहायता दी। कितने ही कर्म्म-हीन बेकार बैठे लोगों को काम दिया। दान के अभ्यास-वश वे दान करते थे, परन्तु चित्त के उच्च भाव से, हिन्दुस्तान की प्राचीन रीति से। दान का समाचार संवाद-पत्र में छपवाने के लिए वे व्यग्र न थे। वे जैसे दानशील थे, वैसे ही सच्चे नारी हितैषी भी थे। नारी जन के प्रति मानो नारी हितैषी दयानिधि विद्यासागर की ही भाँति उनको करुणा व श्रद्धा थी। जननी को वे साक्षात् देवी समझते थे।

बाल विधवा, सन्तान-हीन एवं सहाय-संबल-शून्य नारियों के प्रति उन नारी हितार्थी के अन्तर में असामान्य करुणा व सहानुभूति थी। देश की कन्या, भगिनी व माताओं के दुःख की वार्ता सुनते ही हृदय की व्यथानुभूति के बहिः-प्रकाश-स्वरूप उनका विशाल वक्ष किस तरह बार बार दीर्घश्वास से स्फुरित होता, मुँह पर विषाद का अँधेरा छा जाता, और नयन आँसुओं से भर जाते, उन गम्भीर-प्रकृतिवाले पुरुष का चित्त कैसा व्याकुल होता, यह सब मैं अपनी आँखों से देख चुकी हूँ। उनके जिन स्वर्ग-वासी ज्येष्ठ पुत्र के नाम पर अस्पताल खुला है वे भी दीन-आतुरों के प्रति करुणा का विशिष्ट परिचय देते थे।

उनके वियोग से व्याकुल हम सबको अपना अशान्त चित्त शान्त करने के लिए अब केवल यही एक उपाय है कि हम लोग उनके गुणों का स्मरण करते हुए परम देवता के श्रीचरणों में उनकी आत्मा के कल्याणार्थ प्रार्थना तथा उनका नाम व गौरव सुरक्षित रखनेवाले आत्मजों में सदैव उनका पदानुसरण करते हुए इंडियन प्रेस को समृद्धि-शाली और यशस्वी बनाये रहने की शक्ति-प्राप्ति के लिए शुभ कामना करें।

इंडियन प्रेस का विहग-दर्शन-चित्र (Bird's-eye View)
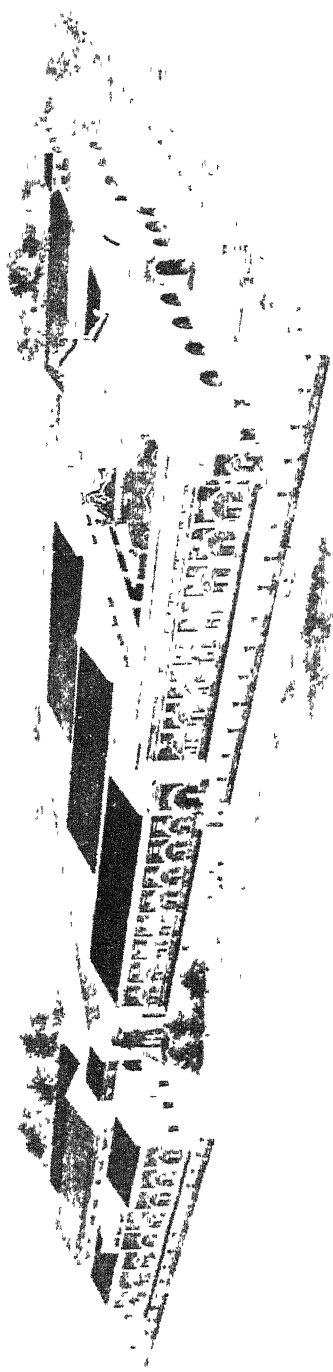
स्वर्गीय सर सुन्दरलाल दत्ते

पुजारी [श्रीयुत एम० ए० रहमान, चग़ताई
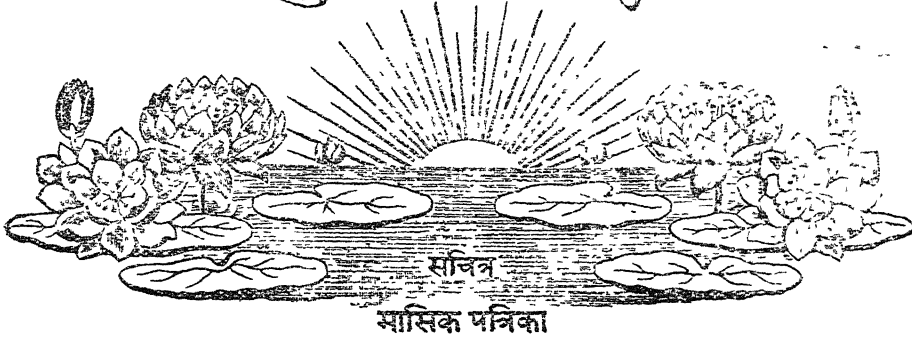
सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs 6-8] देवीदत्त शुक्ल [As 10 per copy

भाग २९, खण्ड २] आक्टोबर १९२८—आश्विन १९८५ [सं० ४, पूर्ण-संख्या ३४६

वियोग में

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

ज्यों ही भव्य भोले शिशु-रूप में मैं आया यहाँ,
 त्यों ही फँसा पाया अपने को प्रेम-रोग में।
मुझको नहीं है अवकाश कुछ सोचने का,
 रत रहता हूँ एक ऐसे बड़े योग मे।
तन दिया मन दिया पर जान पाया नहीं,
 लाया गया मेरा दान किस उपयोग मे।
बस उस दिन की सदा मैं देखता हूँ राह,
 जिस दिन मुझे मर जाना है वियोग मे॥

(२)

है जिन्हें सभी सुख उन्हें भी रहती न शान्ति,
 चाह है किसी के देखने की सब लोग में।
कौन कहता है यहाँ सच्चा अनुराग नहीं,
 सत्यता न नेक भी है इस अभियोग में।
सोच लो जगत में अवश्य है किसी का अंश,
 होती न इसी से कभी तृप्ति भव-भोग में।
इस दुनिया में दुख-रोग की कमी है नहीं,
 योग ही किसी का है जिला रहा वियोग में॥

ज़िन्दापीर बदीउद्दीन शाह मदार

[श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०]
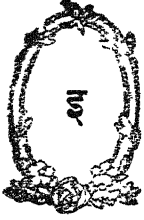
इस प्रदेश में मुसलमान फ़क़ीरों का एक सम्प्रदाय है जिसे मदारी फ़क़ीर कहते हैं। इस सम्प्रदाय के फ़क़ीर अक्सर खँजड़ी बजा कर ज़िन्दापीर शाह मदार या मदार साहब के गुण-कीर्तन किया करते हैं। शाह मदार की दरगाह कन्नौज के पास मकनपुर में है और वहाँ हर साल मदार साहब के उर्स (बर्षी) का मेला लगता है। इस मेले में जो यात्री इकट्ठे होते हैं उनमें मुसलमानों की संख्या ज़्यादा होती है, परन्तु कुछ छोटी जाति के हिन्दू भी आते हैं। अक्सर गाँववाले बीमारी अथवा विपत्ति के समय मदार साहब की मनौती मानते हैं। यदि बीमारी या विपत्ति से बच जाते हैं तो यहाँ आ गा-बजा कर पूजा चढ़ाते हैं।

मदार साहब असल में ईरान के रहनेवाले थे। उनके पिता का नाम अबू इसहाक़ था। उनके पूर्वज पहले यहूदी थे, फिर मुसलमान हो गये। उनका नाम शेख़ बदीउद्दीन था। बाल्यावस्था में अपने उस्ताद से जो हदीक़ा शामी के नाम से प्रसिद्ध थे और जो अपने समय के बड़े विद्वान् और वैज्ञानिक समझे जाते थे, नाना प्रकार की विद्यायें सीखीं। कहते हैं कि वे साहित्य के सिवा रीमिया, सीमिया और कीमिया के भी अच्छे विद्वान् थे। परन्तु इन विद्याओं से उनकी तबीयत नहीं भरी। उन्होंने अपने गुरु से कहा कि हमको कुछ ब्रह्म-विद्या भी सिखाइए। उनके गुरु ने कहा कि तुम जो विद्या सीखना चाहते हो उसका आचार्य्य बनने की क्षमता हममें नहीं है। तुम और किसी विद्वान् के पास जाकर सीखो। बदीउद्दीन ने कहा कि आप मुझे किसी आचार्य्य का पता बतायें, मैं उनके पास जाऊँ। उनके उस्ताद ने कहा कि तुम यह विद्या हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा से सीखो। उन्होंने पूछा कि वे कहाँ रहते हैं, उनके वास-स्थान का पता बताइए। उस्ताद ने कहा कि तुम समझे नहीं। हमारे कहने का मतलब है कि यह विद्या तुम रसूल अल्लाह ही से सीखो। उनका तो तिरोधान हो गया है, तुम उनके जन्मस्थान मक्के में जाकर वहाँ कोई विद्वान् आचार्य्य ढूँढ़ लो। बदीउद्दीन को तो ब्रह्म-विद्या की लौ लगी थी। वे मक्के जा पहुँचे और वहाँ के कई प्रसिद्ध आचार्य्यों से विद्या-लाभ करने लगे। कई वर्ष के उपरान्त वहाँ के आचार्य्यों ने उनको पूर्ण विद्वान् स्वीकार कर लिया, परन्तु उनकी तबीयत नहीं भरी, शान्ति भी नहीं मिली। वे बड़े दुखी होकर शामदेश (सीरिया) की ओर जाने को तैयार हुए। जब चलने का समय आया तब बड़े दुखी होकर एक दिन एक मसजिद में सो गये। उन्होंने स्वप्न में देखा कि कोई महापुरुष उनसे कह रहा है कि यदि तुमको ब्रह्म-विद्या सीखनी है तो यहाँ क्यों आये? तुमको चाहिए था कि रसूल अल्लाह के स्थान पर, अर्थात् जहाँ वे आराम कर रहे है, जाते और विद्यालाभ करने के लिए उपासना करते तो तुमको रास्ता मिल जाता। बदीउद्दीन चौंक पड़े और उसी समय मदीना को चल दिये। मदीना पहुँच कर उन्होंने तपस्या करना आरम्भ किया। एक दिन उनको यह शब्द सुनाई दिया कि "हे बदीउद्दीन अच्छा हुआ कि तुम आ गये। हम तो तुम्हारा रास्ता ही देख रहे थे।" परन्तु उन्होंने बोलनेवाले को नहीं देखा। इसके कई दिन के बाद रसूल अल्लाह की आत्मा ने मनुष्य-रूप में उनको अपना दर्शन दिया। उनके साथ हज़रत अली की आत्मा भी थी। रसूल अल्लाह की आत्मा ने उनको दीक्षा दी। फिर उन्होंने हज़रत अली की आत्मा से कहा कि मैं बदीउद्दीन तपस्वी को तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ, इनको पूर्ण शिक्षा दो। कुछ दिनों के उपरान्त ये अपने समय के क़ुतुब होंगे। यह कह कर वे दोनों आत्मायें अन्तर्धान हो गईं। बदीउद्दीन सोचने लगे कि अब क्या करना चाहिए। उनके ध्यान में यही चढ़ा कि हज़रत अली की क़बर पर नजफ़ अशरफ़ जाकर तपस्या करना चाहिए। अतएव मदीना से कूफ़ा को चले गये और हज़रत अली के मक़बरे के पास कठोर तप करने लगे। वहाँ

तप करते समय वे अक्सर हज़रत अली की आत्मा देखते थे, और उनसे गूढ़ विद्यायें सीखते थे। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक दिन हज़रत अली की आत्मा के साथ हज़रत अली के दसवें वंशज* और बारहवें इमाम हज़रत इमाम मेहदी बिन असकरी की आत्मा प्रकट हुई। हज़रत अली ने हज़रत मेहदी से कहा कि "इस तपस्वी बदीउद्दीन को हज़रत रसूल अल्लाह ने हमें शिक्षा के लिए सौंपा था। हमने भी इसको बहुत ही गूढ़ रहस्य की शिक्षा दी है। अब मैं इसको तुम्हारे सिपुर्द करता हूँ। इसको ऐसा बना दो कि क़ुतुब बनने के पूर्ण उपयुक्त हो जाय।"
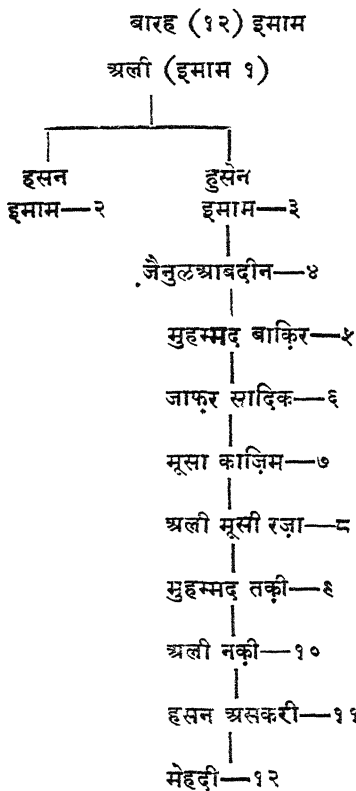
मुसलमान साधकों के सब सम्प्रदायों में इन बारह इमामों के नाम पाये जाते हैं। अली मुहम्मद साहब के चचाज़ाद भाई और दामाद थे। मुहम्मद साहब की बेटी फ़ातिमा बीबी के गर्भ से दो बेटे हसन और हुसेन उत्पन्न हुए थे। उनके वंशज आज-कल सैयद कहलाते हैं।

इसके बाद हज़रत अली की आत्मा अन्तर्धान हो गई और इमाम मेहदी की आत्मा उनको शिक्षा देने लगी। उन्होंने पहले चारों आसमानी किताबें अर्थात् तौरेत, इञ्जील, ज़बूर और क़ुरान सिखाया। इसके उपरान्त ब्रह्म-विद्या के सब गूढ़ रहस्य सिखा दिये। जब बदीउद्दीन पूर्ण विद्या लाभ कर चुके तब हज़रत इमाम मेहदी हज़रत अली के पास लिवा ले गये और कहा कि अब बदीउद्दीन आपसे दीक्षा लाभ करने के उपयुक्त हो गया है, मेरा काम तमाम हो गया। इसके उपरान्त हज़रत अली ने और कुछ शिक्षा देकर बदीउद्दीन को ख़लीफ़ा बना दिया और कहा कि "अब तुम हिन्दुस्तान जाओ और वहीं रहो। हमारे प्रेमी ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती से पूछना, वे जो जगह तुम्हारे लिए उपयुक्त बतायें, वहां जाकर रहना और क़ुतुब और ख़लीफ़ा के काम अच्छी तरह करना।" इस प्रकार अपनी शिक्षा समाप्त करके बदीउद्दीन ने हिन्दुस्तान की यात्रा की।

अब बदीउद्दीन सोचने लगे कि किस रास्ते से हिन्दुस्तान जाकर ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के मजार पर पहुँचना ठीक होगा। ख़ुश्की के मार्ग में बहुत दूर पैदल चलना पड़ता है, रास्ता भी अच्छा नहीं, इससे तरी के रास्ते अर्थात् जहाज़ से जाना अच्छा जँचा। वे नजफ़ अशरफ़ (कूफ़ा) से बसरा तक पैदल आये। बसरे से जहाज़ पर सवार हुए। वहां से थोड़ी दूर तक फ़रात नदी में जहाज़ चलता है, उसके बाद समुद्र में पहुँच जाता है। उन दिनों बसरा से सूरत को जहाज़ आते थे। वे ख़ुदा का नाम लेकर समुद्र में निकल पड़े। उस ज़माने में वाष्पीय जहाज़ तो थे नहीं, इस कारण किसी निर्दिष्ट समय में सूरत पहुँचने की आशा नहीं थी। कई दिन तक समुद्र में रहने के उपरान्त एक दिन रात को बड़े ज़ोर की आँधी आई। उनके जहाज़ में मल्लाहों को छोड़ सौ से कुछ ज़्यादा यात्री थे। इस आंधी से यात्री और मल्लाह दोनों घबरा गये। रात का समय, आकाश में घटा छाई हुई, जहाज़ पर अँधेरा फैला था, जहाज़ नहीं मालूम किधर जा रहा था, उस समय अँधेरे में एक-मात्र भगवान् ही प्रत्यक्ष हो रहे थे। यात्रियों का यह हाल था कि वे आप नहीं समझ सकते थे कि जीवित हैं अथवा प्रेत-लोक में पहुँच गये हैं। जहाज़ पर किसी का एक बहुत

बड़ा सन्दूक़ रक्खा था। उस पर चार-पांच आदमी बैठे भगवान् का नाम ले रहे थे। उन्हीं में शेख़ बदीउद्दीन भी बैठे थे। परन्तु दूसरे यात्रियों की तरह उनको कोई शङ्का नहीं थी। वे बे-खटके बैठे आँधी और पानी के युद्ध का दृश्य देख रहे थे। उनके निःशङ्क होने का कारण यह था कि उनको मुईनुद्दीन चिश्ती के मक़बरे को जाने की आज्ञा हज़रत अली से मिल चुकी थी। उनको पूरा विश्वास था कि वे निश्चय अजमेर पहुँचेंगे। रास्ते में उनको कितने ही सङ्कट क्यों न झेलने पड़ें, उनकी मृत्यु नहीं हो सकती। वे इस समय उच्च स्वर से भगवान् की महिमा के गीत गाने लगे। उनके साथियों ने उनसे पूछा कि क्या आपको डर नहीं लगता? उन्होंने समझाया कि ख़ुदाताला की मर्ज़ी और आज्ञा के बिना आदमी नहीं मर सकता, और यदि ख़ुदाताला ने मृत्यु की आज्ञा दे दी तो कोई भी नहीं बचा सकता। जब ऐसी अवस्था है तब फिर डर किसका? डरने और रोने-धोने से मिल ही क्या जायगा? अतएव ख़ुदाताला पर भरोसा करके उनकी महिमा की याद करो। उन लोगों में ऐसी बातें हो रही थीं। आँधी की गरज से पास बैठे आदमी की आवाज़ मुश्किल से कान तक पहुँचती थी कि कुछ ऐसा मालूम हुआ कि जहाज़ किसी वस्तु से टकरा गया और पांचों आरोही समेत वह सन्दूक़ खिसक कर समुद्र में बहने लगा। देखते देखते जहाज़ दृष्टि से दूर हो गया। जहाज़ का तो फिर पता नहीं चला, परन्तु ये पाँचों यात्री सन्दूक़ पर बैठे पानी की लहरों के थपेड़े खाने लगे। सर्दी के मारे हाथ-पाँव विवश हुए जाते थे। परन्तु अब कोई उपाय नहीं था। जब पूर्वाकाश में सूर्य का उदय हुआ तब उस समय आँधी का नाम भी नहीं था। यह प्रतीत होता था कि किसी स्थिर सरोवर में विहार कर रहे हैं, चारों ओर असीम समुद्र के सिवा और कुछ न था, क्षितिज पर समुद्र और आकाश के बीच मानो किसी ने एक रेखा खींच दी है। उन पांच प्राणियों को छोड़ आकाश में पक्षी भी नहीं दिखाई देते थे। कभी कभी एक आध उड़नेवाली मछली बेशक पानी से हाथ-दो हाथ उछलती दिखाई देती थी। यात्रियों ने बदीउद्दीन से कहा कि आप तो वेश से फ़क़ीर और विद्वान् मालूम होते हैं। इस समय क्या करना चाहिए, इसका उपदेश दीजिए। उन्होंने कहा कि तुम्हारा प्रश्न ही बे-सिर-पैर का है। इस समय ख़ुदाताला पर भरोसा करने के सिवा और क्या करना सम्भव है! यदि हमारे भाग्य से कोई जहाज़ इधर आ जाय अथवा हवा के झोंके से तट पर पहुँच जायँ तो बच सकते हैं। नहीं तो, ख़ुदाताला की मर्ज़ी। जब तक शरीर में प्राण हैं, और सन्दूक़ पर बैठने की शक्ति है तब तक बैठे रहो। जब शक्ति न रहे तब पानी में डूब कर ख़ुदाताला के पास पहुँच जाओ। उस समय हवा भी रुकी हुई जान पड़ती थी। यह भी नहीं मालूम होता था कि सन्दूक़ किसी ओर बह रहा है या नहीं। देखते देखते दिन चढ़ आया, उसके साथ वायु का भी ज़ोर हुआ और यात्रियों को मालूम हुआ कि वे उत्तर-पूर्व की ओर बहे जाते हैं। परन्तु सर्दी से हाथ-पाँव जकड़े जाते थे, आँखें भी नींद से बन्द हुई जाती थीं। उस समय सबकी यह सलाह ठहरी कि अपनी अपनी पगड़ी उतार कर उनसे पाँचों को सन्दूक़ से बाँधना चाहिए, जिससे पानी में न गिरने पायें। इस प्रकार अपने को बाँध कर पाँचों बैठे रहे, परन्तु आहार न मिलने से उनको बात-चीत करने की भी शक्ति नहीं रही। सूर्य्य देव के अस्त होने पर चारों ओर अँधेरा छा गया। वे बेचारे वैसे ही सन्दूक़ पर बँधे पड़े रहे। तीसरे दिन सूर्य्योदय होने पर उन्होंने देखा कि उनमें से दो यात्री पर-लोक को सिधार गये। तब बाक़ी तीन ने उनके शरीर खोल कर पानी में बहा दिये। इसी प्रकार उनकी संख्या घटने लगी। पाँचवें दिन सूर्य्योदय होने पर बदीउद्दीन ने अपने शेष साथी को समुद्र में बहा दिया, और सन्दूक़ पर अकेले रह गये। छठे दिन अभी सूर्य्योदय नहीं हुआ था कि उनको कुछ ऐसा मालूम हुआ कि सन्दूक़ एक ओर झुका हुआ है। आँख खोल कर देखा तब मालूम हुआ कि वह तट पर पहुँच गया है और नीचे रेत से लग कर टेढ़ा हो गया है। उस समय उनको हिलने की शक्ति भी नहीं रही थी। बड़े कष्ट से उन्होंने अपने बन्धन खोले और सन्दूक़ से उतर कर तट पर आये। जब सूर्य्य निकल आया तब तट पर थोड़ी दूर पर एक सुन्दर मकान दिखाई दिया। बदीउद्दीन को अब बड़ी आशा हुई। समझे जब मकान है तब आदमी भी अवश्य होंगे और

उनके पास कुछ न कुछ खाने को अवश्य मिलेगा। वे बड़ी आशा लगाकर उस मकान की तरफ़ बढ़े। जब फाटक पर पहुँचे तब देखा कि एक बड़ी सनोरम अट्टालिका तो है, परन्तु मानव का कोई चिह्न नहीं। फाटक पार होकर देखा कि एक बहुत बड़ा आगन है, उसका फ़र्श मूल्यवान् पत्थरों का है, एक ओर एक और फाटक दिखाई दिया। उस फाटक से जब उन्होंने प्रवेश किया तब दूसरा सहन उससे भी सुन्दर दिखाई दिया, परन्तु वहाँ भी कोई मनुष्य नहीं था। अब वे यह सोचने लगे कि यह कैसा मकान है। मकान तो किसी धनवान् राजा का मालूम होता है, परन्तु न तो गृह-स्वामी का पता है और न कोई सेवक ही दिखाई देता है। चारों तरफ़ देखते देखते मालूम हुआ कि एक ओर एक सुन्दर छोटा जलाशय अर्थात् हौज़ है, उसके किनारे पर कोई फ़क़ीर महापुरुष बैठा है, वे बढ़कर उसके पास पहुँचे और भक्ति से उसके चरणों पर सिर रख दिया। तब उस महापुरुष ने उनका नाम लेकर फ़ारसी-भाषा में उनका स्वागत किया और कहा कि "हे मदारशाह हम तुम्हारा रास्ता देख रहे थे।" बदीउद्दीन को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होने पूछा कि आप कौन हैं और आपको मेरी ख़बर कैसे मिली? जहाज़ के डूब जाने पर हम तो आज छः दिन से समुद्र में एक सन्दूक़ पर भटक रहे थे। उस महापुरुष ने कहा कि ठीक है, तुम इस समय बहुत भूखे हो, तुम्हारे कपड़े भी मैले और गीले हैं। वह देखो, एक बर्तन में तुम्हारे लिए कुछ खाना रक्खा है, और कुछ कपड़े भी रक्खे हैं। कपड़े बदल कर पहले कुछ खा लो. तब तुमसे बात-चीत करेंगे।" बदीउद्दीन को प्रतीत हो गया कि यह दैवी माया है और यह महापुरुष ईश्वर-प्रेरित है। ये बातें सोच कर उन्होंने कहा कि यह ठीक है कि आज छ दिन से मुझे आहार नहीं मिला। मैं तो जीवन से निराश हो चुका था. पर जब आपके दर्शन मिले है तब कहता हूँ कि मैं साधारण भोजन नहीं चाहता। मुझे आप वह भोजन दें जिससे जब तक मृत्यु न हो, फिर भूख न लगे और ऐसे कपड़े पहनायें जो जीते जी बदलने न पड़ें, न मैले हों और न फटें। महा-पुरुष ने हँसकर कहा कि तू जो चाहता है, यह आहार और कपड़े वैसे ही है। इन कपड़ों को पहन कर पहले खाना खा लो। तब और बात-चीत करेंगे।

बदीउद्दीन ने देखा कि एक टोकरे में फ़क़ीरों के पहनने के कपड़े और एक ख़िरक़ा* रक्खा है। कपड़ा बहुत सुन्दर है और उससे सुगन्धि आ रही है। महापुरुष के कहने से उन्होंने पहले हौज़ में वज़ू किया, फिर कपड़े पहने। इसके बाद एक थाली में जो आहार एक कपड़े से ढंका रक्खा था उसे खाया। भोजन बहुत सुगन्धित और स्वादिष्ट था, दो-चार कौर खाते ही छः दिन की भूख जाती रही और इच्छा नहीं रही, थाली में कुछ बचा रह गया। पहले तो इतना थोड़ा देखकर सोचा था कि आज इतने दिनों के उपरान्त खाना मिला सो भी इतना कम कि आधा पेट तो क्या, चौथाई भी नहीं भरेगा। परन्तु जब दो-चार कौर से ही तबीयत भर गई तब उनको आश्चर्य हुआ। इसके उपरान्त उन्होंने उस महापुरुष की सेवा में बैठ कर उनसे कुछ उपदेश सुनने की इच्छा प्रकट की। महापुरुष ने भी उनको ब्रह्म-विद्या के कुछ गूढ़ उपदेश दिये। उन्होंने उससे कहा कि मैं अजमेर के ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की क़ब्र को जाना चाहता हूँ। यह कौन देश है, यहाँ से अजमेर कितनी दूर है और किस रास्ते से जाऊँ तो पहुँच जाऊँ। महापुरुष ने कहा कि इस मकान के फाटक से निकलकर सीधे चले जाओ, थोड़ी दूर पर एक छोटी नदी समुद्र से मिली दिखाई देगी। वहाँ ठहर जाना। एक जहाज़ बसरे से सूरत को जा रहा है। उसमें पीने का पानी चुक गया है। जहाज़ के मल्लाह इस नदी से मीठा पानी भरने के लिए जहाज़ ठहरा कर तट पर आयेंगे। उनके साथ तुम सूरत को चले जाना। बदीउद्दीन ने ऐसा ही किया। वे नदी पर पहुँच कर बैठे ही थे कि दूर एक बड़ा जहाज़ दिखाई दिया। उस

---

* मुसलमान साधुओं के पहनने के चोग़ा को ख़िरक़ा कहते हैं। हिन्दुओं में जैसे संन्यासियों का कोपीन होता है, मुसलमानों में वैसा ही ख़िरक़ा होता है। जब कोई साधु मरता है तब वह अपना ख़िरक़ा अपने किसी प्यारे शिष्य को दे जाता है। बड़े नामी साधुओं के स्थानों में २०।२५ पुश्त के ख़िरक़े बड़े यत्नसे रक्खे जाते हैं।

जहाज़ से एक डोंगी तट पर पानी के लिए आई। डोंगी के मल्लाहों को वहाँ एक फ़क़ीर को बैठा देखकर बहुत ही आश्चर्य्य हुआ। वे जब पानी भर कर चलने लगे तब उनसे अपने साथ चलने के लिए अनुनय करने लगे।

जब बदीउद्दीन सूरत से अजमेर पहुँचे तब ख़्वाजा साहब की दरगाह में जाकर ठहरे। रात को सोते समय उन्होंने स्वप्न में देखा कि ख़्वाजा साहब ने उनका स्वागत किया और कहा कि मुझे तुम्हारे आने की ख़बर मिल चुकी है। पूर्व्व-देश में मकनपुर एक गाँव है। मैंने सोच-विचार कर तुम्हारे लिए उसी स्थान को ठीक किया है। मकनपुर में पहले तुमको रहने की तकलीफ़ होगी, परन्तु जल्दी ही सब प्रबन्ध हो जायगा, तुम वहीं जाकर रहो। यदि तुम्हारे लिए कोई दूसरा प्रबन्ध होगा तो तुमको सूचना मिल जायगी।

दूसरे दिन शेख़ बदीउद्दीन अजमेर से रवाना हुए और भारत के बडे बड़े नगर दिल्ली, आगरा इत्यादि में साधुओं के समाधि-स्थान देखते हुए पूर्व-देश को चले। जब काल्पी पहुँचे तब दिन भर की थकावट से सन्ध्या-समय एक बड़े वृक्ष के नीचे उतर पडे। उस समय उनके साथ ५।७ शिष्य-सेवक भी हो लिये थे और सवारी के लिए घोड़े-ऊँट भी मिल गये थे, अर्थात् एक छोटा सा क़ाफ़िला बन गया था। उस समय काल्पी का बादशाह क़ादिरशाह उस रास्ते से निकला। जब बादशाह ने सुना कि एक फ़कीर यहाँ आकर ठहरे हैं तब वह उनसे मिलने को आया। उनके सेवकों ने कह दिया कि इस समय शाह साहब थके-माँदे हैं, नहीं मिल सकते। इस पर क़ादिरशाह बहुत बिगड़ा और अपने आदमियों को हुक्म दिया कि इस फ़क़ीर को हमारी सीमा से बाहर निकाल दो। बदीउद्दीन को जब इस आज्ञा का संवाद मिला तब वे तत्काल ही उठकर चलने को प्रस्तुत हुए। इधर क़ादिरशाह की जिह्वा में, जिससे उसने अपनी निष्ठुर आज्ञा दी थी, देखते देखते जलन प्रारम्भ हुई और उसमें बड़े बड़े छाले पड़ गये। वह घबरा कर अपने गुरु शाह सिराजुद्दीन के पास गया और उनसे अपने कष्ट का हाल कहा। सिराजुद्दीन योगी थे, वे काल्पी में रहते थे। वहाँ उनके सैकड़ों शिष्य थे। उन्होंने अपने मुँह से कुछ राल निकाल कर क़ादिरशाह की जीभ पर लगा दी। इससे बादशाह को शान्ति मिली। जब यह संवाद बदीउद्दीन को मिला तब उनके क्रोध का पारा आसमान पर चढ़ गया। उन्होंने बिगड़कर कहा कि यह सिराजुद्दीन कितना क्षमता-वाला है, इसको अब हम समझ लेंगे। वह तो आप जल रहा है, दूसरों को जलने से कैसे बचावेगा? इसके बाद ही देखा गया कि सिराजुद्दीन के तमाम शरीर में ऐसी जलन पैदा हो गई कि वह छटपटाने लगा। इस घटना के बाद जितने दिन सिराजुद्दीन जीता रहा, वह एक सरोवर में गले तक डूबा पड़ा रहता था। यदि पानी से निकलता तो फिर जलन से अस्थिर हो जाता। सिराजुद्दीन ने भी इसका बदला लेने के लिए कहा कि जिस क्रोधी हिंसक ने मुझे जलाया है, मैं भी उसके सिलसिले को जलाता हूँ। उसका कोई शिष्य न होगा और यदि होगा भी तो अपना शिष्य करने से पहले ही वह मर जायगा। उसका नाम मैं नहीं चलने दूँगा। इस बात के सत्य होने का प्रमाण यह है कि यद्यपि बदीउद्दीन ने कई शिष्य किये, तो भी उनकी गुरु-परम्परा नहीं चली।

बदीउद्दीन काल्पी से चलकर मकनपुर को आये और वहाँ अपना आश्रम स्थापित किया। मकनपुर में उस समय जौनपुर के बादशाह सुलतान इब्राहीम शरकी की तरफ़ से क़ाज़ी शिहाबुद्दीन दौलताबादी नाम के एक बड़े विद्वान् क़ाज़ी थे। ये क़ाज़ी प्रसिद्ध साधु सैयद अशरफ़ जहाँगीर के क्षमतावान् शिष्य थे। उनको अपनी विद्या, साधना और क्षमता का बड़ा अहङ्कार था। उन्होंने एक बार बदीउद्दीन से पांच प्रश्न किये। वे प्रश्न ये थे—(१) कहते हैं कि पूर्ण विद्वान् आलिम विद्या में नबियों के उत्तराधिकारी होते हैं। यहाँ विद्या से क्या तात्पर्य्य है। (२) तुम शरियत की आज्ञा के विरुद्ध अपनी डाढ़ी के बाल नहीं कतरते, इसका कारण क्या है? (३) शरियत की आज्ञा है कि नमाज़ जमायत के साथ, अर्थात् साधारण मुसलमानों के साथ पढ़ना चाहिए, विशेष कर जुमा (शुक्रवार) की नमाज़, परन्तु तुम जुमा की नमाज़ की जमायत में नहीं आते, इसका कारण क्या है? (४) तुम आहार नहीं करते, बिना खाये ही जीते हो। यह क्यों और कैसे? (५) तुम्हारे कपड़े न मैले होते हैं

और न पुराने, इसका कारण क्या है? बदीउद्दीन ने इन पाँचों प्रश्नों का इस प्रकार से उत्तर दिया—(१) नबियों की जिस विद्या के उत्तराधिकारी पूर्ण विद्वान् कहलाते हैं वह विद्या नहीं है जिसे तुम पढ़ते हो, बल्कि वह गुप्त विद्या और योग-विद्या है। (२) आदमी के जो बाल मुर्दार हो जाते हैं उनको वह काट डालता है, जीवित बाल कोई नहीं काटता। हमारे डाढ़ी के बाल जीवित हैं, उनके काटने से रक्त की धार निकलती है, इस कारण हम उन्हें नहीं काटते। (३) जमायत में नमाज़ पढ़ानेवाला इमाम ऐसा होना चाहिए कि नमाज़ के समय उसका ध्यान ख़ुदाताला में डूबा हो, उसका ध्यान और किसी बात की तरफ़ बिलकुल न हो। ऐसा इमाम हमको नहीं मिलता, इस कारण जमायत में नमाज़ नहीं पढ़ता। (४) रसूल अल्लाह के दो शक्तियाँ थीं। कभी वे भोजन करते थे, कभी नहीं करते थे। तुमने उनके भोजन करने का अनुकरण किया, और हमने उनके उपवास का अनुकरण किया। (५) आदमी जब बीमार होता है उस समय उसके शरीर से दुर्गन्धि निकलने लगती है। अच्छी अवस्था में न दुर्गन्धि निकलती है और न मैल होती है। इन उत्तरों को देखकर क़ाज़ी ने कहला भेजा कि अबकी जुमा को मसजिद में आओ, मैं इमाम बनकर तुमको नमाज़ पढ़ाऊँगा। बदीउद्दीन राज़ी हो गये और शुक्रवार को मसजिद में पहुँचे। बदीउद्दीन के प्रश्न और उनके उत्तरों का संवाद नगर में फैल गया था, इस कारण उनकी जमायत की नमाज़ देखने के लिए शहर के छोटे-बड़े हज़ारों आदमी टूट पड़े। जुमा मसजिद में तिल-धरने को भी ख़ाली जगह नहीं रही। जब क़ाज़ी इमाम बनकर खड़े हुए और बिसमिल्लाह कहकर नमाज़ आरम्भ की तब बदीउद्दीन जमायत से निकल कर दूर जा बैठे। क़ाज़ी ने उस समय तो कुछ नहीं कहा परन्तु जब नमाज़ शेष हो चुकी तक उन्होंने नगर-वासियों से कहा कि तुम लोगों ने इस फ़क़ीर का साधुपन देखा? कोई भी सच्चा मुसलमान ऐसी अवस्था में जमायत छोड़कर अलग नहीं बैठता। बदीउद्दीन ने कहा कि जो आदमी इमाम बनकर नमाज़ पढ़ाने को खड़ा हुआ है वह अपने घर के आँगन में अपनी घोड़ी का बछेड़ा खुला छोड़ आया है और बीच आँगन में एक कुवा भी है। उसको अपने बछेड़े के कुएँ में गिरने की चिन्ता लगी हुई है। जब उसी का ध्यान ख़ुदा की तरफ़ नहीं है तब उसके पीछे खड़े होकर नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती। लोग दौड़कर क़ाज़ी के घर से संवाद लाये कि उसके आँगन में बछेड़ा कूदता फिरता है और बीच में कुआं है, जिसकी मेड़ भी बहुत छोटी है। इस घटना से साधारण नगर-वासियों को विश्वास हो गया कि उनका क़ाज़ी दिखावे का साधु है, और बदीउद्दीन बड़ा क्षमतावान् फ़क़ीर और अन्तर्यामी है।

दूसरे दिन बदीउद्दीन अपनी मसजिद के कोठे में बैठे थे कि क़ाज़ी का एक बेटा कैंची लेकर पहुँचा। कोठे का दरवाज़ा बन्द था। क़ाज़ी का बेटा दरवाज़ा तोड़ कर घुस गया और ज़बरदस्ती उनके डाढ़ी के बाल काटना चाहा। बदीउद्दीन ने अपनी क्रोधभरी आखों से जब उसे देखा तब वह जवान बालक मर कर गिर पड़ा। जब क़ाज़ी को संवाद मिला तब उसने अपने दूसरे बेटे को भेजा। वह भी फ़क़ीर के क्रोध से मर गया। इस प्रकार क़ाज़ी के सातों बेटे यमराज के अतिथि हुए। तब क़ाज़ी आप कैंची लेकर बदीउद्दीन के पास पहुँचा। बदीउद्दीन ने क़ाज़ी पर अपनी शक्ति चलाने की बहुत चेष्टा की, परन्तु एक न चली। क़ाज़ी के सिर पर उसके गुरु सैयद अशरफ़ः जहाँगीर की शक्ति थी, इस कारण बदीउद्दीन बेबस हो गये। तब उन्होंने क़ाज़ी से कहा कि तेरी सातों औलादों को तो मैंने शिक्षा दी, अब तू आया है। क़ाज़ी ने कहा कि हाँ, अब मैं तुझे शिक्षा देने आया हूँ। यह कह कर उसने कैंची से ज़बरदस्ती उनकी डाढ़ी कतर दी। परन्तु डाढ़ी के कटते ही उनके बालों से रक्त की धारायें बहने लगीं।

ः शाह मख़दूम सैयद अशरफ़ जहांगीर ईरान में ख़ुरासान के राजा इब्राहीम के बेटे थे। इनको १५ वर्ष की अवस्था में राज्य मिला। इसके सात वर्ष उपरान्त अपने छोटे भाई को राज्य देकर तपस्वी हो गये। घूमते घूमते भारतवर्ष को आये। पंडुआ [बङ्गाल] के प्रसिद्ध तपस्वी शाह अलाउलहक़ के चेले हुए। अयोध्या प्रान्त में ये बहुत दिनों तक रहे। उनका गोर फ़ैज़ाबाद ज़िले के परगना बिहार के रसूलपुर ग्राम में है। ये ईसवी १४०० के लगभग १२० वर्ष की अवस्था में मरे। इस प्रान्त में इनके बहुत चेले हैं, जो उनकी क़ब्र पर पूजा करने जाते हैं?

क़ाज़ी को बड़ा आश्चर्य हुआ। कहा जाता है कि इसके उपरान्त बदीउद्दीन ने क़ाज़ी के सातों बेटों को जिला दिया। एक किंवदन्ती यह है कि बदीउद्दीन ने क़ाज़ी से कहा कि यदि तू कहे तो तेरे बेटों को जिला दें। परन्तु क़ाज़ी ने कहा कि मेरे बेटे शरियत का हुक्म जमाने के पीछे शहीद हुए हैं। मैं अब तेरा एहसान नहीं चाहता।

बदीउद्दीन मकनपुर में ८३८ हिजरी (ईसवी १४३४) तक जीवित रहे। कहते है कि मरते समय उनकी अवस्था १२० चान्द्र वर्ष की हो गई थी। यदि यह बात ठीक है तो ७१८ हिजरी, १३१८ ईसवी में उनका जन्म हुआ होगा। परन्तु सब साधुओं की अवस्था १२० वर्ष कही जाती है। इसके सत्य होने में सन्देह है। वे शाह इब्राहीम शरकी के राज्यकाल में मकनपुर को आये और इब्राहीम ने १४०२ ईसवी से १४४० तक राज्य किया। यदि १४०२ में ही आये हों तो आने के ३२ वर्ष उपरान्त मरे अर्थात् ८८ वर्ष की अवस्था में मरे। परन्तु इसमें सन्देह मालूम होता है। उनकी जीवन-कहानी से मालूम होता है कि उनको अष्टसिद्धियों में से कोई कोई सिद्धि मिल गई थी। परन्तु उनके क्रोध, हिंसा और अहङ्कार से उनको महापुरुष कहना उचित न होगा। मदारी फ़क़ीर उनका गुण गाते हुए उनको आकाश पर चढ़ा देते हैं और उनके भक्त भी साधारण श्रेणी के ग्रामीण ही हैं। हमने कभी विद्वानों को उनका भक्त नहीं देखा।

बदीउद्दीन का नाम मदार क्यों पड़ा, इस बात पर भी लोगों का मतभेद है। बहुतेरे कहते हैं कि जब वे समुद्र से बचकर तट पर आये और एक महापुरुष के दर्शन मिले उस समय उस महापुरुष ने उनको शाह मदार के नाम से पुकारा था। परन्तु उस समय कोई और सुननेवाला वहा नहीं था। उन्होंने आप ही लोगों से अपनी तारीफ़ में यह बात कही होगी। उनकी कथा में असम्भव बातें भी बहुत हैं। जैसे बाल काटने से रक्त की धारायें बहना। इसमें सन्देह नहीं कि रक्त की गति ही से बाल बढ़ते हैं, परन्तु उनमें ऐसे छिद्र नहीं है। जिससे होकर धार बहने लगे। बिना आहार के जीवित रहना, ऐसे कपड़े पहनना जो न पुराने हों, न मैले हों, यह सब कहानी ही कहानी है। वास्तव में ऐसी असम्भव बातें नहीं होती हैं। कुछ भी हो कानपुर, लखनऊ और आस-पास के प्रदेशों में ज़िन्दापीर शाह मदार के भक्त बहुत मिलते हैं। इन भक्तों में हिन्दू-मुसलमान दोनों दिखाई देते हैं। इस प्रदेश में कोई लड़का बीमार हो अथवा चेचक निकलने से उसकी अवस्था सङ्कटापन्न हो जाय तो ज़िन्दापीर शाह मदार की मनौती मानी जाती है और रात्रि में जागरण कर गा-बजा कर दूसरे दिन शाह मदार के मज़ार पर भेट चढ़ाई जाती है।

भारतीय भाषाओं का अन्वेषण

[श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी]

भारत बहुत बड़ा देश है। उसे महादेश कहना चाहिए। उसमें यदि अनेक भाषाओं और बोलियों का प्रचार हो तो आश्चर्य करने की कोई बात नहीं। परन्तु इस अनेक भाषात्व को कुछ स्वार्थरत मनुष्य इस देश का बहुत बड़ा पाप या दोष समझते हैं। उनकी दलील है कि जिस देश में सैकड़ों भाषायें प्रचलित हों; कई वर्णों के लोग रहते हों; कई धर्म्मों का प्रचार हो उसमें एकता, जातीयता, राष्ट्रीयता की उत्पत्ति या विकास नहीं हो सकता। और इनका न होना किस बात का द्योतक है, इसके निर्देश की ज़रूरत नहीं। परन्तु इस तरह के आक्षेपकर्त्ता अपनी और अपने देश, द्वीप या महादेश की तरफ़ नज़र उठाकर देखने की ज़रूरत नहीं समझते। रूस को छोड़ कर योरप में और जितने देश या राज्य हैं वे यदि तराज़ू के एक पल्ले पर रक्खे जायँ और

भारत दूसरे पल्ले पर तो भारतवाला पल्ला दूसरे पल्ले से अधिक नहीं तो उतना ही वज़नी ज़रूर निकले। इस दशा में यदि भारत के प्रान्त प्रान्त में अपनी अपनी भाषा अलग अलग हो तो कुछ भी अस्वाभाविकता नहीं। योरप को देखिए। वहां के हालेंड, डेनमार्क, स्विट्ज़रलेंड, पोर्चुगल, स्वीडन आदि देश भारत के किसी किसी प्रान्त से भी छोटे हैं। परन्तु उनमें भी तो भाषा-भेद और बोली-भेद पाया जाता है। छोटे से स्विज़रलेंड में कई भाषायें प्रचलित हैं। ग्रेटब्रिटन ही को देखिए। क्या वहां प्रान्तिक बोलियां नहीं? वहां तो भाषाओं में भी भिन्नता है। वेल्स की भाषा जुदी है, आयरलेंड की जुदी। स्काच लोगों की भी भाषा में कुछ भिन्नता है। परन्तु उनके ख़िलाफ़ वैसी दलीलें कभी नहीं पेश की जातीं जैसी भारत के ख़िलाफ़ की जाती हैं। प्राकृतिक विभिन्नता ही के कारण भाषाओं में विभिन्नता आ जाती है; पर अनेक भाषाभाषी देशों में यदि एक व्यापक भाषा मान ली जाय तो उसके द्वारा सभी प्रान्तों के पारस्परिक व्यवहार बड़ी सुगमता से चल सकते है। संयुक्त-राज्य (अमेरिका) में अनेक देशों के निवासी जा बसे हैं। उन सबकी मातृभाषायें आरम्भ में भिन्न भिन्न थीं और अब भी बहुतों की भिन्न भिन्न है। पर व्यापक भाषा अँगरेज़ी होने के कारण सारे कारोबार उसी की मदद से होते हैं; कहीं किसी भी विषय मे कुछ भी अवरोध या प्रतिबन्ध नहीं उपस्थित होता। भारत में सबसे अधिक संख्या उन लोगों की है जो हिन्दी या हिन्दुस्तानी बोलते या समझ सकते हैं। यदि वही व्यापक भाषा स्वीकार कर ली जाय तो उसके द्वारा सारे देश का राजकीय कार्य्य सुचारु रूप से निभ सकता है। परन्तु ईश्वर को अभी यह मंज़ूर नहीं। मनुष्यों ही को मंज़ूर नहीं। बेचारा ईश्वर उन पर बलात्कार कर कैसे सकता है?

जो लोग भारत के बहुभाषात्व को उसकी एक-राष्ट्रीयता या एकता का अवरोधक या बाधक समझते है उनके लिए ख़ुशी मनाने का एक महेन्द्र-योग आकर उपस्थित हो गया है। इस योग को लाने का उपक्रम तो तीस चालीस वर्षों से हो रहा था, पर उसका अन्तिम आगमन कहीं जाकर, इतनी मुद्दत के बाद, अब हुआ है। औरों के द्वारा माने गये भारत के इस बहुभाषास्वरूपी कोढ़ के घाव अब खोल कर अच्छी तरह और बड़े पैरायें मे दिखा दिये गये हैं। जिस विद्वान् सर्जन ने यह इतना बड़ा काम किया है उनका नाम है सर जार्ज अब्राहम ग्रियर्सन—Sir George Abraham Grierson, K. C. I. E, Ph. D, D Litt, LL D I C. S (Retired). पेंशन लेकर अपने घर गये आपको बहुत समय हुआ। अब, इस समय, आप अपने देश, इँगलेंड, के सरे-सूबे के केम्बरले नामक गांव या क़सबे में विश्राम कर रहे हैं। विश्राम आप काम से नहीं कर रहे हैं, भारत की चाकरी से कर रहे हैं। लिखने-पढ़ने का काम तो आप शायद पहले से भी कुछ अधिक ही करते हैं। ये ग्रियर्सन साहब वही हैं जिनके काम के विषय में एक बार हिन्दी के समाचारपत्रों में बहुत कुछ चर्चा चली थी। जब आप भारत में थे तब आपने हिन्दी-साहित्य के इतिहास के सम्बन्ध में एक पुस्तक, अपनी भाषा में, लिखी थी। उसका हवाला अब भी लोग यदा कदा दिया करते हैं। उस साल मर्दुमशुमारी की बड़ी रिपोर्ट में शामिल करने के लिए एक नोट भी, भारतीय भाषाओं के विषय में लिख कर, आपने भाषाभिज्ञों की ज्ञान-वृद्धि की थी। उन बातों की प्रतिध्वनि अब आपकी एक नई और बड़े मार्के की पुस्तक में फिर से सुनाई दी है। भारतवर्ष की गवर्नमेंट की आज्ञा से यहां की भाषाओं और बोलियों का जो अन्वेषण आप कर रहे थे वह अब, एक युग के बाद, कहीं जाकर समाप्त हो पाया है। सब मिलाकर उसकी ११ जिल्दें निकलीं। उसकी पहली जिल्द अर्थात् विषय-प्रवेश या विषय-विवेचन (Introduction) का पहला भाग, अन्त में, (Vol. I, Part I) अभी हाल में निकला है। उसमें आपने, हिसाब लगा कर, भारतीय भाषाओं की संख्या एक कम एक सौ अस्सी (१७९) और बोलियों की छः कम साढ़े पांच सौ (५४४) बताई है! करें अब भारतवासी एकराष्ट्रीयता या एकजातीयता की उत्पत्ति! जहां सैकड़ों बोलियों और सैकड़ों भाषाओं का राज्य है वहां एकाकार करनेवालों की चेष्टा भला पागलपन के सिवा और क्या समझी जा सकती है? सर जार्ज

की राय है कि लहँडा और पञ्जाबी जुदा जुदा भाषायें हैं। पूर्वी और पश्चिमी हिन्दी भी जुदा जुदा भाषायें हैं। और, राम उनका भला करे, राजस्थानी और बिहारी भी जुदा जुदा भाषायें हैं। जिन लोगों की ये भाषायें हैं उन्हें यदि इनमें भिन्नता न देख पड़े तो न सही। बात यह है कि वे भाषा-शास्त्र नहीं पढ़े। पर डाकृर साहब उसमें निष्णात हैं। इसी से उन्हें इनके और इनके सदृश और भी अनेक भाषाओं के उद्गम का पता चल गया है। उन उद्गमों का सम्बन्ध भाषा की ऐसी शाखाओं से है जो परस्पर मेल नहीं खातीं। इसी से ग्रियर्सन साहब को उन्हें भिन्न भाषायें मानना पड़ा है और इसी से इन सारी भाषाओं और बोलियों की संख्या सात आठ सौ तक जा पहुँची है।

परन्तु एक बात ध्यान में रखने लायक़ है। वह यह कि इस सम्बन्ध में किसी संशयात्मा को भी यह संशय न करना चाहिए कि यह जाँच-पड़ताल किसी राजनैतिक दाँव-पेंच का कारण है। यद्यपि, जहाँ तक हमें मालूम है, इस तरह का भाषान्वेषण और किसी महादेश मे अब तक नहीं हुआ, तथापि इस देश की गवर्नमेंट की नीयत पर शङ्का करने को मुतलक़ जगह नहीं। क्योंकि यह जाँच उसके दिमाग़ की उपज नहीं। इसका बीज-वपन तो कोई ४० वर्ष पहले, आस्ट्रिया की राजधानी वीना में, हुआ था। १८८६ ईसवी में वहाँ प्राच्य-विद्या-विशारदों की परिषद् का एक अधिवेशन हुआ था। उसमें डाकृर कस्ट (Cust) नाम के एक महापण्डित ने यह प्रस्ताव पेश किया कि भारत की भाषाओं की जाँच होनी चाहिए। वह प्रस्ताव "पास" हो गया। तब उसी परिषद् ने यह भी निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में किन किन बातों का पता लगाया जाय। यह सब हो चुकने पर वह प्रस्ताव, निश्चय के रूप में, भारतीय गवर्नमेंट के दरबार में भेजा गया और प्रार्थना की गई कि वह भाषान्वेषण करा देने की कृपा करे। गवर्नमेंट ने यह बात मंज़ूर कर ली। तब इस काम पर डाकृर ग्रियर्सन की नियुक्ति हुई, जिसका फल भाषाओं की जाँच के सम्बन्ध की ये ग्यारह जिल्दें है। ग्यारह क्यों, तेरह; क्योंकि दो अभी और निकलनेवाली हैं।

भारतीय भाषाओं की जाँच के कारण के इस उल्लेख से प्रकट है कि भारत की गवर्नमेंट इसकी प्रेरक नहीं। प्रेरक थे वीना की उस परिषद् के पूर्वनिर्दिष्ट वे डाकृर साहब और तत्रस्थ अन्य उपस्थित सज्जन। परिषद् के मेम्बरों ने सोचा होगा कि भारत बहुत पुराना देश है। यदि वहाँ प्रचलित भाषाओं की उत्पत्ति, प्रकृति और विकास आदि का ठीक ठीक पता लग जाय तो पुरातत्त्व के अन्वेषण में बहुत सुभीता हो तो हम लोग थोड़े ही परिश्रम से जान सकें कि योरप की भाषाओं का भारत की भाषाओं से क्या और कितना सम्बन्ध है और इन देशों या महादेशों की सभ्यता के मूल में कुछ समता या सम्बन्ध भी है या नहीं। प्रकट में तो इस जाँच के उद्भावकों का उद्देश यही मालूम होता है, भीतर की राम जानें।

हाँ, एक बात खटकनेवाली ज़रूर है। डाकृर ग्रियर्सन ने जो ये बड़ी बड़ी इतनी जिल्दें लिखकर भारतीय भाषाओं की जाँच का फल प्रकाशित किया है उसके कम से कम एक अध्याय में उन्हें हिन्दी या हिन्दुस्तानी भाषा की व्यापकता पर जुदा विचार करना चाहिए था। उन्हें यह दिखाना चाहिए था कि यद्यपि इस देश में सैकड़ों बोलियाँ या भाषायें प्रचलित हैं और यद्यपि उत्पत्ति तथा विकास की दृष्टि से हिन्दी के कई भेद हैं तथापि यही भाषा ऐसी है जिसके बोलनेवाले सबसे अधिक हैं और जिसे भिन्न-भाषा-भाषी प्रान्तों के निवासी भी किसी हद तक समझ सकते हैं। इस दशा में राजकार्य्य-निर्वाह और पारस्परिक व्यवहार के लिए यदि भारत की प्रधान भाषा यही मान ली जाय तो इससे देश को अनेक लाभ पहुँच सकते हैं। परन्तु आपने ऐसा नहीं किया। इस पर सिवा उलाहना देने के हम लोग और करही क्या सकते हैं।

साठ वर्ष हो गये, डाकृर ग्रियर्सन डबलिन-नगर के ट्रीनिटी-कालेज में अध्ययन करते थे। उनके अध्यापकों में एक साहब थे राबर्ट अटकिंसन। उन्हींने आपका परिचय देवनागर-वर्णमाला के क० ख० ग० से कराया। उसके ५ वर्ष बाद आप भारत की सिविल सरविस की परीक्षा पास करके यहाँ के लिए जब प्रस्थान करने लगे तब उन्हीं अध्यापक महाशय ने आपको आज्ञा दी—बेटा, वहाँ जाकर वहाँ की भाषाओं आदि की जाँच करके ख़ूब

कीर्ति-सम्पादन करना। डाकृर साहब ने इस आज्ञा को शिरसा धारण किया। यहाँ आकर उन्होंने इस विषय के अपने ज्ञान की यथेष्ट वृद्धि की। इसकी गवाही आपके ग्रन्थ और नाना विषयों पर लिखे गये आपके लेख दे रहे हैं। हिन्दी और संस्कृत ही का नहीं, सुनते हैं, अरबी-फ़ारसी आदि और भी कई भाषाओं का ज्ञान आपने, यहाँ आने पर, थोड़े ही समय में, सम्पादन कर लिया। और अब तो आप भारत की पौने दो सौ भाषाओं के ज्ञाता या व्याख्याता बनकर विद्यानिधान ही हो गये हैं। जिस समय वीना की विद्वत्परिषद् की प्रार्थना भारतीय गवर्नमेंट के दफ़्र में पहुँची उस समय तक आप भारत की अनेक भाषाओं के विज्ञाता विख्यात हो चुके थे। अतएव गवर्नमेंट ने भाषाओं की जांच का काम आपही को सिपुर्द किया। उसका आरम्भ १८६४ ईसवी के इधर-उधर होकर, कहीं जाकर अब, ३३ वर्षों में, समाप्त हुआ है। लेखन-कार्य्य आपने यहीं, इस देश में, १८९८ में आरम्भ किया। अगले साल आप अपने देश चले गये। तब से अब तक आप इस जांच का काम वहीं करते रहे। छपाई अलबत्ते भारत में होती रही। युद्ध के समय, एक बार, आपकी भेजी हुई कापियाँ और प्रूफ़ आदि, जहाज़ डुबो दिये जाने के कारण, नष्ट भी हो गये। इससे काम में देरी ज़रूर हुई; पर सब विघ्न-बाधाओं को पार करके आपने अपने गृहीत कार्य की समाप्ति कर ही डाली।

इस जांच का फल बड़ी बड़ी कई जिल्दों में, समय समय पर, प्रकाशित होता रहा है। उनमें भाषाओं और बोलियों के नमूनों के सिवा उनके सम्बन्ध में साधारण विचार भी किया गया है। पहली जिल्द सबसे पीछे प्रकाशन के लिए रख छोड़ी गई थी। वह, अन्त में, अब प्रकाशित हुई है। समस्त भाषाओं और बोलियों का अध्ययन कर चुकने पर डाकृर साहब ने जो निष्कर्ष निकाले हैं उनका समावेश इस जिल्द में किया गया है। इसमें, और इसके पहले प्रकाशित हुई १० जिल्दों में, कोई १० हज़ार पृष्ठ हैं। आलोच्य पुस्तक की क़ीमत ९॥=) है और गवर्नमेंट आव् इंडिया, सेंट्रल पबलीकेशन ब्रांच, कलकत्ते से मिल सकती है। जिन लोगों को भारतीय भाषाओं के इतिहास आदि के ज्ञान-सम्पादन की इच्छा हो उन्हें इसका अवलोकन अवश्य करना चाहिए। इस विषय की इससे बढ़ कर और कोई पुस्तक अब तक नहीं निकली। यह बड़े महत्त्व की है। संशयालुओं को भी इसे देखना चाहिए। जब देशों के इतिहास हैं, जातियों के इतिहास हैं, राजघरानों और राजपुरुषों के इतिहास हैं, तब भाषाओं के भी इतिहास यदि लिखे जायँ तो लिखे जा सकते हैं। उनके सम्बन्ध में कोई मीन-मेख करे तो कर सकता है, पर ज्ञान-प्राप्ति के लिए यदि कोई उनका अवलोकन करना चाहे तो उससे उसे लाभ ही होने की सम्भावना है, हानि की नहीं। और देशों में प्रचलित भाषाओं का इतिहास यदि नहीं लिखा गया तो न सही—उसकी ज़रूरत न समझी गई होगी—जिनकी भाषाओं का लिखा गया है उससे हम लोग लाभ क्यों न उठावें?

यह जो पहला भाग सर्वान्त में निकला है वह इस जिल्द का प्रथमांश ही है। दो अंश या भाग अभी निकलने को हैं। दूसरे भाग में ३६८ भाषाओं और बोलियों के चुने हुए १८६ शब्दों का तुलनामूलक कोश रहेगा। उसमें यह दिखाया जायगा कि किस शब्द के किन भाषाओं में क्या रूप हो गये हैं। तीसरे भाग में भाषाओं की उस शाखा के शब्दों का कोश प्रकाशित होगा जिसे भाषा-शास्त्री हिन्दू-आर्यन (Indo—Aryan) कहते हैं। इनका प्रकाशन हो चुकने पर कहीं यह इतना बड़ा काम समाप्त समझा जायगा। दूसरा भाग तो छप रहा है। तीसरे की तैयारी अध्यापक टर्नर नाम के एक संस्कृतज्ञ कर रहे हैं। परन्तु डाकृर ग्रियर्सन का काम समाप्त ही हो गया समझिए।

जिस अन्तिम जिल्द का उल्लेख हमने ऊपर किया वह अनेक दृष्टियों से बड़े महत्त्व की है। उसमें भारतीय भाषाओं के वैज्ञानिक पृथक्करण के सिवा इन बातों का भी विचार किया गया है कि उनकी प्रकृति कैसी है, उनका विकास किस तरह हुआ, उनमें परिवर्तन कैसे हो रहे हैं, और वे किन शाखाओं के अन्तर्गत हैं। एक बात लिखना हम भूल ही गये। वह यह कि दक्षिण की द्रविड भाषाओं और ब्रह्मदेश में बोली जानेवाली भाषाओं की जांच डाकृर ग्रियर्सन ने नहीं की। शायद आप इन भाषाओं से अभिज्ञ नहीं। इनकी जांच का फल उन भाषाओं के ज्ञाता अलग ही प्रकाशित करनेवाले हैं।

डाकृर साहब की जांच से मालूम हुआ कि हिन्दू-आर्य्यन भाषाओं के बोलनेवाले ही इस देश में सबसे अधिक है। उनकी संख्या ७४ फ़ी सदी है। ये सब भाषायें केवल १७ हैं। हिन्दी, हिन्दुस्तानी, मराठी, गुजराती और बँगला आदि भाषायें इसी शाखा के अन्तर्गत हैं। अतएव तिब्बती, चीनी, मुण्डा, मान, करेन और पैशाची आदि भाषायें बोलनेवाले इस देश मे सिर्फ़ २६ फ़ी सदी रह जाते है। मुण्डा-भाषायें कोल, भील, गोंड आदि बोलते हैं; पैशाची काश्मीर की तराई और सीमा-प्रान्त के उत्तर में बोली जाती है। ईरानी विभाग की भाषायें बल्लोची और पश्तो हैं। वे भी सीमा-प्रान्त ही के कुछ हिस्से में प्रचलित है। चीनी और तिब्बती भाषाओं के मेल से जो भाषायें बनी हैं वे इन देशों से मिले हुए भारतीय भू-भाग की भाषायें या बोलियाँ हैं।

जिनकी गणना आर्य्य-भाषाओं में नहीं उनके भी कितने ही शब्द आर्य-भाषाओं में सम्मिलित हो गये हैं। इसी तरह मुण्डा आदि अनार्य्य भाषायें बोलनेवालों ने भी आर्य्य-भाषाओं के कितने ही शब्द अपना लिये हैं। हिन्दी में चुन चुनकर और ढूँढ़ ढूँढकर संस्कृत-शब्द रखने के पक्षपातियों को यह बात याद रखना चाहिए।

ग्रियर्सन साहब ने उन लोगों की बेतरह ख़बर ली है—उनका मज़ाक तक उड़ाया है—जो उर्दू लिखने में अरब और फारिस में बोले जानेवाले क्लिष्ट से क्लिष्ट शब्दों को अपनी भाषा में ठूँस ठूँसकर उसे एक उपहास-योग्य भाषा बना रहे हैं। आप सरल भाषा के पक्षपाती हैं और हिन्दी मे अकारण संस्कृत-शब्द और उर्दू में अकारण अरबी-फ़ारसी के शब्द मिलाने के विरोधी हैं।

ग्रियर्सन साहब ने भाषाओं और बोलियों के जो नमूने अब तक प्रकाशित किये है उनकी शुद्धि के सम्बन्ध में कुछ लोगों ने यथासमय शङ्का करके उनकी आलोचना की थी। उन आलोचनाओं का विचार आपने अब इस प्रस्तुत पुस्तक में किया है। वे क्षमा करें, उनके इस विचार से अहङ्कार की कुछ योंही सी गन्ध नहीं सुगन्ध आती है। उन्होंने लखनऊ की अवधी बोली का जो नमूना दिया है उसकी अशुद्धता, मई १६१९ ईसवी की सरस्वती में, दिखाई गई है। वहीं उसका शुद्ध नमूना भी दिया गया है। उस शुद्ध नमूने का स्वीकार तो आपने अब कर लिया है, पर कुछ किन्तु-परन्तु के साथ। आपने लिखा है कि परिशोधक का अमुक शब्द अमुक नियम के विरुद्ध है और अमुक अमुक नियम के। इस पर निवेदन है कि लखनऊ ज़िले के देहाती डाकृर साहब या अन्य भाषा-शास्त्रियों के बनाये हुए नियमों के पाबन्द नहीं। वे उन नियमों का ज्ञान प्राप्त करके बोलना नहीं सीखते। संशोधक यदि उस ज़िले का रहनेवाला है या यदि वह उस ज़िले के निवासियों के संसर्ग मे रहा है तो डाकृर साहब को उसकी बोली प्रमाण मान कर अपने नियमों मे तदनुकूल परिवर्तन या संशोधन करना चाहिए—उलटा उसकी त्रुटियां दिखाकर अपनी विज्ञता का प्रदर्शन न करना चाहिए। इँग्लैंड के सरे-प्रान्त के देहात में रहनेवाला भाषाशास्त्री भी लखनऊ की अवधी बोली का पारदर्शी पण्डित नहीं माना जा सकता, विशेष करके जब उसको कभी लखनऊ ज़िले के देहात के दर्शन तक नसीब नहीं हुए। जो नमूने साहब के पास पहुँचे हैं वे साहब ख़ुद तो ले आये नहीं। एक सरकारी चिट्ठी कलेकृर या डिपटी कमिश्नर के पास पहुँची। उसने उसे किसी डिपटी कलेकृर के हवाले कर दी। उसने तहसीलदार के। तहसीलदार ने किसी और के। जिन्होंने नमूने लिये वे प्रायः भाषा, बोली, नियम, क़वायद आदि में बिलकुल ही कोरे। फिर यह भी नहीं कि ये सभी मुलाज़िम उसी ज़िले के रहनेवाले हों। कोई कहीं का, कोई कहीं का। इन लोगों के भेजे हुए नमूनों में यदि त्रुटियाँ रह जायँ और उन्हें उसी ज़िले का रहनेवाला कोई साक्षर मनुष्य बता दे तो उसे दाद देकर उसका एहसान मानना चाहिए। उलटा उसकी ग़लतियाँ ढूँढ़ने की चेष्टा करके अपनी विज्ञता न दिखाना चाहिए।

अन्त में हमारा निवेदन है कि भाषा-विषयक इस जांच को डाकृर ग्रियर्सन ने बड़े मनोयोग, बड़ी लगन, बड़े परिश्रम और बड़ी योग्यता से किया है। उनका यह अजस्र अध्यवसाय सर्वथा स्तुत्य है। वे भारतीय भाषाओं के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं। रही इन सब भाषाओं को शुद्धतापूर्वक लिख सकने की बात, सो वह अभ्यास पर अवलम्बित है। अतएव उन्हें सहस्रशः साधुवाद।

टर्की से अरबी-लिपि का बहिष्कार

[श्रीयुत ज्ञ]

मनुष्य पुराण-प्रेमी है। जो रस्म या जो काम जिसके यहा परम्परा से होता आया है उसे वह नहीं छोड़ना चाहता। उससे मनुष्य की प्रत्यक्ष हानि होने पर भी वह उसे सह लेता है, पर उससे बचने की चेष्टा नहीं करता। तथापि इस परम्परा-प्रीति की भी सीमा है। प्रबल कारण उपस्थित होने पर, और बात अपने वश के बाहर की हो जाने पर, पुराने रीति-रवाज छोड़ने ही पड़ते हैं। रीति-रवाज की तो कुछ बात ही नहीं, पुत्र, कलत्र छूट जाते हैं; धर्म्म तक को तिलाञ्जलि देनी पड़ती है। देखिए, हिन्दुओं को अपना धर्म्म सबसे अधिक प्यारा है। इसी लिए उन्हें धर्म्म-प्राण-संज्ञा प्राप्त हुई है। परन्तु प्राण-सङ्कट उपस्थित होने पर इन्हीं धर्म्म-प्राण हिन्दुओं में से सैकड़ों-हज़ारों को अपना धर्म्म तक छोड़ देना पड़ा। धर्म्मान्तर हो जाने पर ये लोग अपनी पुराण-प्रियता को तो भूल ही गये; कुछ काम ये लोग ऐसे करने लगे जिन्हें देखकर धर्म्मिष्ठ हिन्दुओं को हृत्कम्प होने लगता है। कम्पकारी कृत्य करनेवाले ये लोग भी किसी समय हिन्दू ही थे। जो काम उन्होंने तब नहीं किया उसे वे अब कर रहे हैं और करने का गर्व भी वहन कर रहे है।

अन्ध-विश्वास कई तरह से दूर हो सकता है, फिर चाहे वह विश्वास लाभदायक हो चाहे हानिकारक। सती की प्रथा धार्मिक समझी जाती थी। वह क़ानूनन बन्द कर दी गई। छोटी उम्र में लड़कियों के विवाह की प्रथा भी हमारे समाज मे जायज़ हैं। पर, अब देखिए, उसमें भी कतर-ब्योंत होनेवाली है। मतलब यह कि कोई किसी प्रथा या वस्तु को चाहे जितनी अच्छी समझता हो, राजाज्ञा से वह उसे छोड़ने को विवश किया जा सकता है। फिर उसकी पुराण-प्रियता धरी रह जाती है।

मनुष्य-समाज मे ऐसी सैकड़ों बातें हैं जिनसे उसे कष्ट मिलता है। जेल, जुर्माना या फांसी के डर से तो मनुष्य उन्हें छोड़ने को विवश किया जा सकता है; पर समाज के नायकों, धर्म्मध्वजियों और पण्डित-प्रवरों के समझाने-बुझाने का कुछ भी असर उस पर नहीं पड़ता और पड़ता भी है तो कम। बुद्धि और विवेक ऐसे मामलों मे बहुत कम काम देता है। बड़े बड़े धर्म्मधुरीण कह रहे हैं—विधवा-विवाह की ज़रूरत है; ब्राह्मणों में सहभोज की ज़रूरत है; शादी मे दहेज़ की ठहरौनी की प्रथा को दूर करने की ज़रूरत है—पर उनके कथनों और वक्ताओं का प्रभाव लोगों पर बहुत ही कम पड़ता है। लोग अपनी आंखों देख रहे हैं कि ये प्रथायें अच्छी नहीं; इनसे बड़ी हानियां है। पर नहीं मानते। पुराण-प्रेमी जो ठहरे। ये लोग विवेक से काम लेनेवाले नहीं; ईश्वर-दत्त बुद्धि का उपयोग करनेवाले नहीं। शारदाजी या गौड़जी ज़ोर लगाकर, यदि इन रवाजों को क़ानूनन बन्द करवा दें तो भले ही करवा दें। पर अन्ध-परम्परा के परमभक्त हम लोग सदसद्विवेक की प्रेरणा से बुरी से भी बुरी प्रथा को न छोड़ेंगे। हां, बलपूर्वक कोई हमसे चाहे जो कुछ करा ले।

ऊपर जो कुछ कहा गया है हिन्दू-समाज के सम्बन्ध में कहा गया है। इस देश के निवासियों में कोई $\frac{3}{4}$ हिन्दू और $\frac{1}{4}$ मुसलमान है। अन्ध-परम्परा-प्रीति में ये $\frac{1}{4}$ मुसलमान हिन्दुओं से भी बहुत आगे बढ़े हुए हैं। हिन्दुओं के मुक़ाबले में उनमें और भी कितने ही लोकोत्तर "गुण" हैं। उन्हें हम "दोष" जान बूझ कर नहीं कहते। जिसकी संख्या देश में $\frac{1}{4}$ है उसे उसी अनुपात से खेत-पात, नौकरी-चाकरी, शराब-कबाब आदि भी मिलना चाहिए। परन्तु यदि वह अपने हिस्से से दूना, तिगुना और कभी कभी सभी हड़प जाने का दावा करे तो आप उसकी इस हविस को दोष भले ही समझें। वह तो उसे गुण ही समझता है। वह कहेगा, हम

शाही ख़ानदान के हैं। मामूली आदमियों के मुक़ाबले में क्या शाहों का वंशजात होना कुछ भी महत्त्व नहीं रखता ? क्या बड़े कुल मे जन्म लेना गुण में नहीं, दोष मे दाख़िल किया जा सकता है ?

अच्छा तो यह भूमिका यहीं तक रहे। अब मुसलमान-भाइयों की एक ऐसी अन्धपरम्परा-पूजा का दृष्टान्त देखिए जिसके कारण सामुदायिक रूप से वे अपनी ही नहीं, सारे भारत की हानि कर रहे हैं; पर उस पूजापाती से बाज़ नहीं आते। एक लिपि का नाम है अरबी। उसकी उत्पत्ति और विकास का विस्तृत वर्णन सरस्वती मे, बहुत पहले, किया जा चुका है। फ़ारसी-लिपि उसी का रूपान्तर है। उसी लिपि मे हमारे भाई अपनी प्यारी उर्दू लिखते हैं। शुरू शुरू में यह उर्दू हिन्दी ही कहाती थी। पर उसमें ज़बरदस्ती अरबी, फ़ारसी के शब्द ठूँस ठूँस कर वह हिन्दी से बहुत कुछ अलग कर दी गई है। लिपियां दो—देवनागरी और फ़ारसी ही—रहतीं; भाषा एक ही रहती, तो भी बहुत अधिक हानि न थी। पर वे भाषायें भी दो करना चाहते हैं; लिपियां तो दो पहले ही से है। दुनिया जानती है—सभी पढ़े-लिखे समझदार आदमी जानते हैं—कि एक भाषा और एक लिपि होने से देश में एकता बढ़ती है, एकराष्ट्रीयता पैदा होती है, और स्वराज्य-प्राप्ति का समय खिँच कर बहुत पास आ जाता है। पर मुसलमानों को इसकी मुतलक़ परवा नहीं। हिन्दुओं और ईसाइयों ही ने नहीं, मुसलमानों ने भी फ़ारसी-लिपि के एक नहीं अनेक दोष दिखाये है और यह बात अच्छी तरह साबित कर दी है कि उसके प्रचार के कारण मुसलमानों में शिक्षा-प्रचार-विषयक बहुत विघ्न उपस्थित होता है। तथापि अपनी और अपने देश भारत की हानि की ओर दृक्पात न करके मुसलमानों का समुदाय इस लिपि का प्रचार घटाने के बदले बढ़ाने की कोशिश कर रहा है। सूबे बिहार में इस लिपि का प्रचार सरकारी दफ़्रों और कचहरियों में अब तक न था। पर अब वहां भी उसे जारी करने की कोशिश की जा रही है। देश रसातल को चला जाय—ग़ुलामी की शृङ्खला और भी कड़ी हो जाय—उनकी बला से। दोष-सहस्र से पूर्ण उनकी फ़ारसी लिपि का प्रचार ज़रूर हो। जिन प्रान्तों में इस लिपि की कुछ भी पूछ या क़दर पहले न थी—उदाहरणार्थ, बङ्गाल, मदरास और बम्बई में—वहां भी भारत के कुछ परम-हितैषी मुसलमान इस अरबी-फ़ारसी-लिपि को अस्तित्व में लाने और गवर्नमेंट की सहायता से अपनी इस कुचेष्टा को फलीभूत कराने में लग गये हैं। इसे यदि कोई देश-द्रोह कहे तो कहा करे। पर अरबी-लिपि और उर्दू-भाषा के पक्षपाती अपना और अपने देश का हित इसी मे समझ रहे हैं कि सर्वत्र एक की जगह दो दो लिपियां और दो दो भाषायें प्रचलित हो जायँ।

धर्म्म-सम्बन्धिनी जिन बातो को—मसलन् ख़िलाफ़त को—इस देश के मुसलमान सबसे अधिक महत्त्व देते थे उन्हें टर्की ने गलहस्त दे दिया। जिस बाजे के कारण इस देश में हर साल सैकड़ो सिर फूटते और कितनी ही जानें जाती है उसका प्रवेश और प्रचार टर्की ने मसजिदों में क़ानूनन कर दिया। अब वहाँ के प्रजासत्ताक राज्य के सभापति, परम देशभक्त और परम दीर्घदर्शी मुस्तफ़ा कमालपाशा ने अरबी-लिपि का भी बहिष्कार उस देश से कर दिया। इस दोष-पूर्ण लिपि के कारण शिक्षा-प्रचार आदि में बेहद बाधा उपस्थित होती थी। और चूँकि कमालपाशा उन सारे अन्धविश्वासों की जड़ काट बहाने के लिए बीड़ा उठा चुके हैं जिनसे देशोन्नति में रुकावट होती है, इसलिए उन्होंने इस लिपि का प्रचार क़ानूनन बन्द करके रोमन किंवा लैटिन लिपि का प्रचार कर दिया है।

विलायत से एक अख़बार निकलता है उसका नाम है—न्यू-लीडर (New Leader) एक साहब—ब्रेल्सफर्ड (Brails-ford) ने उसमें एक लेख प्रकाशित किया है। उसमें उन्होंने अरबी-लिपि के कितनेही उपहसनीय दोष दिखा कर उनका बहिष्कार करने के कारण कमालपाशा की देश-भक्ति और दूरदर्शिता की बड़ी प्रशंसा की है। जिस समय सुल्तान अब्दुलहमीद टर्की के कर्ता-धर्ता थे उस समय ये साहब किसी काम से मैसीडोनिया (मक़दूनिया) गये हुए थे। यह प्रान्त टर्की ही के अधीन था और तुर्की भाषा और अरबी-लिपि ही का दौर-दौरा

वहाँ, उस समय, था। बड़ा दिन क़रीब आने पर साहब एक लेखक की शरण गये। उससे आपने एक तार लिख देने को कहा। लेखक ने सामान जुटा कर किसी तरह, बड़ी मुश्किलों से, साहब की आज्ञा का पालन कर दिया। साहब का तार किसी मैत्रिणी मेम के नाम था। उन्होंने तार में लिखाया था—"मेरा प्रेमाभिवादन स्वीकृत हो। बड़े दिन पर मैं तुम्हारे पास पहुँच जाने की आशा करता हूँ।" तार भेजा गया। पर उसका मज़मून कुछ का कुछ हो गया। अथवा यह कहिए कि पढ़नेवाले ने उसे कुछ का कुछ पढ़ा। उसने मेम-साहबा से कहा कि तार में लिखा है—"शान्त रहो; ऊन ख़रीद कर उसे बुनो"।

इतनी दोषदुष्ट अरबी-लिपि को हज़ारों वर्ष से तुर्क-लोग अपनाये रहे। उसे उन्होंने पवित्र ही नहीं, शायद ईश्वरप्रदत्त तक समझा। क्योंकि उनका क़ुरान इसी स्वर्गीय लिपि में लिखा गया था और अब तक इसी में लिखा और छापा जाता है। परन्तु जिस ईश्वर ने तुर्कों को यह लिपि दान में दी उसने उन लोगों के लिए शीघ्र शिक्षा-ग्रहण करने के कोई और उपाय नहीं बताये। और सुशिक्षा ही सारी उन्नतियों का मूल कारण है। फल यह हुआ कि तुर्कों का राज्य कट छँट कर तिहाई-चौथाई ही रह गया और उन्नतिशील योरप की अन्य जातियों ने उन्हें तरह तरह से तङ्ग करके उनका सर्वनाश तक कर डालने का आयोजन किया। ऐसे समय में सौभाग्य से मुस्तफा कमालपाशा का आविर्भाव हुआ। उन्होंने अन्धविश्वासों और उन्नति के अवरोधक कारणों की सच्ची मीमांसा करके क्रम क्रम से उनका बहिष्कार आरम्भ कर दिया। यह लिपि-विषयक बहुत बड़ा सुधार हुआ। यदि किसी और राजा, शाह, या सुल्तान का ज़माना होता तो इस पवित्र लिपि के दूरीकरण के कारण शायद टर्की में ग़दर हो जाता। मगर अब वह पुराना ज़माना नहीं। कमालपाशा के सहकारी भी उन्हीं के सदृश देश-भक्त और समयानुकूल परिवर्तन के पक्षपाती हैं। इसी से तुर्कों ने इस लिपि-विषयक परिवर्तन को चुपचाप मान लिया है। इसका सुफल भी उन्हें शीघ्र ही चखने को मिलेगा।

अब तुर्कों की इस राजनीतिज्ञता, समयसूचकता और देशहितैषणा का मुक़ाबला आप अभागे भारत के मुसल्मानों की मनोवृत्तियों से कीजिए। जिस दोष को टर्की ने अपनी उन्नति के मार्ग में कण्टक-तुल्य समझा उसी को ये लोग अपने समुदाय की उन्नति का साधक समझ रहे हैं। इसी से वे इस अरबी-लिपि का प्रचार बढ़ाने की चेष्टा जी-जान से कर रहे हैं। यह उनका नहीं, इस देश का दुर्भाग्य समझना चाहिए। उनके इस देश-हित-विघातक कार्य्य में यदि यहाँ की वर्तमान गवर्नमेंट उनकी सहायता करे तो आश्चर्य्य की बात नहीं। क्योंकि उसका हित इसी में है। एक भाषा और एक लिपि के कारण राष्ट्री-यता की वृद्धि से क्या उसका हित-साधन होने की सम्भावना हो सकती है? पर अरबी-लिपि के पक्षपातियों के अन्धे दिमाग़ में यह इतनी मोटी भी बात नहीं धँसती।

बर्फ़ के सञ्चरणशील पर्वत (Icebergs)

[श्रीयुत द्विरेफ]

अख़बारों के पाठकों को याद होगा कि कुछ वर्ष पूर्व एक प्रकाण्डकाय जहाज़, आटलांटिक महासागर में, बर्फ़ के एक पर्वत से टक्कर खाकर चूर चूर होगया था। इस जहाज़ का नाम ब्यूटानिया या ब्यूटानिक था। यह बहुत बड़ा जहाज़ था। इसमें आराम के सभी सामान मौजूद थे। नया ही बना था। वह इसकी, विलायत से अमेरिका की, पहली ही यात्रा थी। इसके द्वारा यात्रा करके आनन्द लूटने के लिए विलायत के कितने ही अमीर आदमी इस पर सवार थे। प्रसिद्ध मासिक पत्र "रिव्यू आव् रिव्यूज़" के सम्पादक, डब्लू० टी० स्टीट साहब, भी इस पर सवार थे। मार्ग में समुद्र पर एक बहुत बड़ा बर्फ़ का पर्वत बहता हुआ आ रहा था। उसी की टक्कर से यह इतना बड़ा जहाज़ चूर्ण होकर डूब गया और इस पर सवार सैकड़ों यात्रियों के प्राण गये। इससे सिद्ध है कि बर्फ़ के ये पर्वत कितने ख़तरनाक होते हैं।

यूरप के निवासियों ने उत्तरी ध्रुव तक की यात्रा करके इन सञ्चरणशील पर्वतों का पता लगाया है। ये पर्वत किस तरह बनते, किस तरह पानी पर तैरते और किस तरह ये गलते है, इस विषय में उन्होंने बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त करके पुस्तकें तक लिख डाली हैं। उनके लिखे हुए वर्णन पढ़कर जहाज़ चलानेवाले इन पर्वतों से सदा सावधान रहते हैं और इनसे बचने के उपाय करने से नहीं चूकते।

लोगों का पहले विश्वास था कि ऐसे पर्वत यदि १ फुट समुद्र के ऊपर दिखाई देते है तो कम से कम सात आठ फुट पानी के नीचे छिपे रहते हैं। परन्तु अब यह बात नहीं मानी जाती; अब तो पीरी साहब के कथन के आधार पर यह विचार बदल सा गया है। पीरी साहब ने कई दफ़े उत्तरी ध्रुव की यात्रा की है। उनका कहना है कि यद्यपि बर्फ़ के पर्वतों का सबसे अधिक हिस्सा समुद्र के भीतर छिपा रहता है; परन्तु यह सच नहीं कि आठ में से सात भाग समुद्र के भीतर रहता है। अनेक स्थानों में उन्हें इन पर्वतों का सिर्फ़ दो तिहाई भाग ही पानी के भीतर मिला।

सर्द मुल्कों में बर्फ़ के बड़े बड़े पर्वत बन जाते हैं। वे सब पृथ्वी ही पर धीरे धीरे पर्वत का आकार धारण करते हैं। उन्हीं के टुकड़े गर्मी से पिघलकर बहते और समुद्र तक पहुँच जाते हैं। पहले लोगों का यही ख़याल था। पर अब, जांच से, यह बात ग़लत साबित हुई है। समुद्र की तटवर्ती भूमि अधिक सर्द होती है। वहीं ये पर्वत बनते हैं। नई खोज यह है कि तटवर्ती पर्वतों पर जब समुद्र की लहरें ठोकर खाती हैं तब वे पर्वत टूट फूट जाते हैं और उनसे कटकर अलग हुए भाग समुद्र में पहुँच जाते हैं। वहां वे अनुकूल वायु और लहरों की सहायता पाकर दूर दूर तक बहते हुए चले जाते हैं।

समुद्र पर तैरनेवाले ये बर्फ़ीले पर्वत बड़े ही सुहावने मालूम होते हैं। वे इतने सुन्दर—इतने नेत्ररञ्जक—होते हैं कि उनसे दृष्टि हटाने को जी चाहता ही नहीं। अमेरिका के संयुक्तराज्यों और कनाडा से आते जाते जहाज़ों को जाड़े के दिनों में, ये पर्वत बहुधा दिखाई देते हैं। ग्रीनलेंड अत्यन्त सर्द टापू है। वहां ये पर्वत बहुत बना और बिगड़ा करते हैं। वहीं से बहकर जब ये आते हैं तब प्रशान्त और आटलांटिक सागर में जहाज़वालों को देख पड़ते हैं। बर्फ़ के जितने पहाड़ दुनिया में हैं, ग्रीनलेंड का "हम्बोल्ट ग्लेशियर" (Humboldt Glacier) सबसे बड़ा है। उसका पता डाक्टर केन नाम के एक आदमी ने पहले-पहल लगाया था। वह ६० मील लम्बा और कोई ३०० फुट ऊँचा है। जहाज़ के यात्रियों का ख़याल है कि इस पर्वत से कट कर

कर कोई ५ लाख बर्फ़ीले टुकड़े हर साल समुद्र में पहुँच जाते हैं। परन्तु इसका क्या ठिकाना कि इस तरह के टुकड़े इतने ही होते हैं या इससे कमो-बेश। हां, उनकी संख्या बहुत होती है, इसमें सन्देह नहीं।

ग्रीनलेंड के इन बर्फ़ीले पर्वतों को काट काट कर उनके टुकड़े समुद्र अपने भीतर ले जाता है। वहां से वे बह कर आटलांटिक सागर के बीचों बीच पहुँच जाते हैं। वे लैब्रेडर और न्यू-फौंडलेंड द्वीपों के पास से निकलकर "गल्फ स्ट्रीम" (Gult Stream) नामक गर्म जल की धार में पड़ते और बहते हुए आगे बढ़ते हैं। जल की गर्मी से कुछ तो वहीं पिघल कर नष्ट हो जाते हैं; कुछ, जो बहुत बड़े होते हैं, धीरे धीरे आटलांटिक महासागर के मध्य-भाग तक जा पहुँचते हैं। एक दफ़े बर्फ़ का एक टुकड़ा, जो १०० फुट ऊँचा और २०० फुट चौड़ा था, दक्षिणी स्पेन के किनारे तक पहुँच गया था। वहां उसे देखकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ था। किनारे पर वहीं वह नापा भी गया था।

बर्फ़ के ये तैरते हुए टुकड़े न्यू-फौंडलेंड के दक्षिण में उन जहाज़ों को दिखाई देते हैं जो आटलांटिक महासागर से आते हैं। कभी कभी न्यू-यार्क और कनाडा जाते हुए जहाज़ों को भी इनके दर्शन होते हैं। बर्फ़ के इन पर्वतों या टुकड़ों का आकार एक-सा नहीं होता। इनकी शकल-सूरत जुदा जुदा होती है। किसी का आकार अरब के निवासियों के तम्बुओं या छोलदारियों का जैसा होता है, किसी का बड़े बड़े आलीशान मकानों का जैसा, और किसी का मन्दिरों का जैसा। किसी किसी की शकल तो बहुत ही अजीब होती है। उनकी सूरतें कितने ही जानवरों की सूरतों से समता करती हैं। उनकी ऊँचाई की कुछ न पूछिए। ऐसे भी कितने ही पर्वत देखे गये हैं जिनकी चोटियाँ समुद्र की सतह से हज़ार हज़ार फ़ुट ऊँची आसमान में चली गई थीं। उनका अधस्तन भाग समुद्र में दस दस बारह बारह एकड़ तक फैला हुआ था। दूरबीन से देखने पर इन द्वीपरूपी पर्वतों पर छोटी छोटी नदियां बहती हुई देख पड़ती हैं। उन पर तरह तरह की चिड़ियां, और मछलियाँ भी नज़र आती हैं।

बर्फ़ के ये छोटे-बड़े पर्वत इतने सुन्दर और इतने चित्ताकर्षक होते हैं कि इनका वर्णन करना कवियों और महाकवियों की भी शक्ति के बाहर कहना चाहिए। इनकी शानदार चोटियां, सूर्य की रोशनी में, नुकीले काच के टुकड़ों की तरह चमकती हैं। कभी कभी ये टुकड़े सफ़ेद मालूम होते हैं और कभी कभी हरे। हरे इस कारण मालूम होते हैं कि सूर्य्य की किरणें पहले इन टुकड़ों को पार करती हुई समुद्र में गिरती हैं। वहां से जब उनका प्रत्यावर्तन होता है तब वे लौट कर बर्फ़ के टुकड़ों के उन शिखरों से टकराती हैं जो ऊपर निकले होते हैं। इसी से वे टुकड़े कुछ हरा रङ्ग लिये हुए देख पड़ते हैं। सूर्य्य की ज्योति जिस तरफ़ पड़ती है उसकी दूसरी तरफ़ उस ज्योति की परछाईं में नीले आकाश की आभा भी मिल जाती है। तब वह ज्योति नीलिमा-मिश्रित हो जाती है। इसी से कहीं सफ़ेदी, कहीं हरापन, कहीं नीलापन नज़र आता है और मन को मुग्ध कर लेता है।

समुद्र का जल खारी होता है, यह तो सभी जानते हैं। पर बर्फ़ के इन टुकड़ों में खारीपन नहीं होता। अतएव जब वे कुछ कुछ पिघलने लगते हैं तब उनमें जगह जगह छेद हो जाते हैं। नीले आकाश से आई हुई सूर्य की रोशनी जब उन छेदों में घुसकर बाहर निकलती है तब बड़ाही सुन्दर दृश्य देख पड़ता है। सफ़ेदी और नीलिमा लिये हुए यह प्रभा-पटल हृदय में अलौकिक आनन्द उत्पन्न करता है। इस घटना के कारण बर्फ़ीले पर्वतों पर कभी कभी नीली लकीरें-सी खिंची हुई दिखाई देती हैं। वे बहुत ही सुहावनी मालूम होती हैं।

उत्तरी-ध्रुव की तरफ़ जानेवाले जहाज़ों के मल्लाहों को बर्फ़ के इन पर्वतप्राय खण्डों पर बहुधा लाचार होकर उतर जाना पड़ता है। उत्तरी ध्रुव-प्रदेश महा बीहड़ और उजाड़ है। वहां कहीं पृथ्वी का पता नहीं। ऐसी दशा में कभी कभी बर्फ़ के इन्हीं टीलों पर जहाज़ के यञ्जिनों को पानी देना और स्वयं अपने पीने के लिए पानी लेना पड़ता है। ऐसा करने में इन लोगों को बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। टीले या पर्वत के पास तक तो जहाज़ जा ही नहीं सकता। अतएव मल्लाह लोग छोटी

छोटी नावों पर सवार होकर टीलों तक जाते और धीरे-धीरे बर्फ़ को हटाकर वहां उतर पड़ते हैं। यदि पर्वत-खण्ड बड़ा हुआ तब तो ख़ैर; अन्यथा आदमियों के बोझ से वह डगमगाने लगता है और कभी कभी पानी के भीतर भी चला जाता है। ऐसी दुर्घटना होने पर वहां गये हुए मनुष्य बर्फ़ीले पानी में गिर जाते हैं और यदा-कदा डूब भी जाते हैं; जाड़ों से ठिठुर जाने के कारण वे तैरकर नाव तक नहीं पहुँच पाते। वर्ष के इन प्रकाण्ड खण्डों पर जहाज़वालों को पीने का पानी तो मिलता ही है, खाने के लिए सील नामक मछलियां भी मिल जाती हैं। इन बर्फ़ के खण्डों पर कभी कभी बर्फ़िस्तानी भालुओं से भी मुठभेड़ हो जाती है। यदि पास तमंचा या बन्दूक़ हुई तो भालू देवता वहीं मार गिराये जाते हैं और उनकी चर्बी तथा चमड़ा जहाज़ पर पहुँच जाता है। अन्यथा मल्लाहों को अपनी जान बचाने के लिए जहाज़ पर लौट आना पड़ता है।

साधारण तौर पर बर्फ़ के पर्वत तीन से पांच मील फ़ी घन्टे के हिसाब से समुद्र की सतह पर चलते हैं। समुद्र की लहरों ही की झोंक से ये आगे बढ़ते जाते हैं और सैकड़ों नहीं, हज़ारों मील दूर की ख़बर लेते हैं। अनेक बर्फ़-खण्ड तो लैब्रेडर टापू के तटवर्ती प्रान्तों पर पहुँच कर वहीं रुक जाते हैं। पर इतनी भी दूर आने में वे १,८०० मील की दूरी तय कर चुकते हैं। जो आटलांटिक महासागर के गर्म जल तक पहुँच पाते हैं उनकी यात्रा ढाई से तीन हज़ार मील तक की हो जाती है। सेंट जान नामक बन्दरगाह के उत्तर जानेवाले जहाज़ों को बर्फ़ के पर्वतों के ये दल के दल दिखाई देते हैं। एक एक दल में कभी कभी पचास पचास साठ साठ पर्वत-खण्ड होते हैं।

जहाज़ के यात्रियों को कभी कभी एक विचित्र दृश्य देखने को मिलता है। लैब्रेडर के सब तरफ़ समुद्र का जल बर्फ़ से बिलकुल ही ढका रहता है। बर्फ़ की यह तह दस से पन्द्रह फ़ुट तक मोटी होती है। इसी तह को तड़ातड़ काटता हुआ हिम-खण्ड आगे बढ़ता है। समुद्र की लहरें उसे इस तेज़ी से आगे को ढकेलती हैं कि उसकी गति फ़ी घन्टे तीन मील से कम नहीं होती।

कोई कोई हिम खण्ड बहुत बड़ा होता है। उसे सचमुच ही पहाड़ नहीं तो विस्तृत टीला ज़रूर ही कहना पड़ता है। लफ़्टिनेन्ट पीरी को एक पर्वत बैफ़िन की खाड़ी (Baffins Bay) में एक बार मिला। वह पृथ्वी से २० मील दूर समुद्र में था। वह वहां पर अकस्मात् रुक गया था। नापने पर मालूम हुआ कि वह समुद्र के भीतर आध मील तक धँसा हुआ है। वह ४,१६९ गज़ लम्बा और ३,८६६ गज़ चौड़ा था। याद रहे, एक मील १,७६० गज़ का होता है। अर्थात् उसकी लम्बाई कोई २½ मील थी, और वज़न ? कुछ न पूछिए। वह तो कोई सवा अरब टन से भी अधिक था। ऐसे पर्वत पर टक्कर खाने से यदि बड़े से बड़ा भी जहाज़ चूर चूर हो जाय तो क्या आश्चर्य। इसी तरह और भी कई पर्वत नापे गये हैं। वे सब भी बैफ़िन की खाड़ी के पर्वत के भाई-बन्द ही निकले।

न्यूफ़ौंडलेंड टापू के किनारे इस तरह के सैकड़ों पर्वत कभी कभी आकर एकत्र हो जाते हैं। इनमें मछलियां भी रहती हैं। पर्वतों के गल जाने पर उन मुर्दा मछलियों के ढेर के ढेर किनारे पर पड़े हुए दिखाई देते हैं।

जहाज़ के ऊपर से देखने पर यद्यपि ये पर्वत बड़े सुन्दर और बड़े मनोमोहक मालूम होते हैं तथापि जहाज़ों के लिए ये बड़े ही भयङ्कर होते हैं। इन्हें तो जहाज़ों का काल ही समझिए। आज तक न मालूम कितने बड़े से भी बड़े जहाज़ इनसे टकराकर माल और मुसाफ़िरों समेत समुद्र के गर्भ में चले गये हैं। ऊपर टाइटानिक जहाज़ के नाश का उल्लेख हो ही चुका है। कुछ समय पूर्व एक जङ्गी जहाज़ न्यूफ़ौंडलेंड के तट से, ३०० मील की दूरी पर, समुद्र में, बर्फ़ के एक पर्वत से टकरा गया। मगर वह डूबा नहीं। किसी तरह वह सेंट जान नामक बन्दरगाह तक लाया गया। वहाँ देखा गया तो उसकी छत पर बर्फ़ का ढेर लगा हुआ है। वह निकाल कर तोला गया तो कोई ११ हज़ार मन निकला। बन्दरगाह तक पहुँचने के पहले भी, राह में, क़रीब क़रीब इतना ही बर्फ़ निकाल कर फेंका जा चुका था। जहाज़ों को अब इन पर्वतों के अस्तित्व की रिपोर्ट तार से देनी पड़ती है; ताकि और जहाज उनसे अपना बचाव कर सकें।

फ़ीजी-द्वीपसमूह

फ़ीजी में एक गढ़वाली वीर बद्री महाराज

[श्रीयुत मुकुन्दीलाल, बी० ए० (आक्सन), एम० एल० सी०, बार-एट-ला]

फ़ीजी-द्वीपसमूह का भूगोल

जी द्वीपसमूह में छोटे-बड़े कुल २५० टापू हैं। इनमें से ८० में मनुष्य नहीं रहते हैं। इनमें मुख्य द्वीप दो ही हैं। वितीलेवु और वनुआलेवु। इन सब टापुओं का रक़बा ७,४३५ वर्गमील है। वितीलेवु ९८ मील लम्बा ६७ मील चौड़ा और वनुआलेवु ११७ मील लम्बा ३० मील चौड़ा है। यहां वनस्पतियां बहुत और मनोहर हैं। पहाड़ियां ४,००० फुट तक ऊँची चोटीवाली हैं। पानी के चश्मे व नदियां कसरत से हैं। भूमि सम भी है और ऊँची-नीची भी है। भूगोल-तत्त्वज्ञों का अनुसन्धान है कि इस देश की भूमि नई है। भूगर्भ से ये द्वीप ज्वाला-मुख से निकले हैं। गढ़वाल की तरह वहां गरम जल के चश्मे भी हैं। आबहवा ठंडी और स्वास्थ्यकर है। बुख़ार वहां किसी को आता ही नहीं। पेचिश की शिकायत ही वहां का सबसे बड़ा रोग कहा जाता है। योरपवासियों से द्वीप-निवासियों का संसर्ग होने के पहले वहां कोई बीमारी नहीं हुई। सन् १८७५ में फ़ीजी में पहले पहल छोटी चेचक की बीमारी हुई थी, जिसके कारण ४,००० फ़ीजी-निवासी मरे। तब से ज्यों ज्यों पाश्चात्य सभ्यता का प्रसार वहां बढ़ रहा है, फ़ीजी के आदिम-निवासियों की संख्या कम होती जा रही है।

जन-समुदाय

फ़ीजी की वर्तमान जन-संख्या यह है—फ़ीजी के आदिम-निवासी ८०,०००; भारतवासी (हिन्दुस्तानी) ६१,०००; योरपीयन ५,०००। कुल संख्या १,४६,००० है। योरपीय प्रवासियों में अधिकांश अँगरेज़ हैं। भारतीय लोगों में हिन्दू-मुसलमान सब हैं। मगर अधिकांश हिन्दू ही हैं। अधिकांश लोग मदरास और बिहार के हैं। संयुक्त प्रान्त के लोग वहां बहुत कम हैं। जो हैं वे आज़मगढ़, गोरखपुर इत्यादि की तरफ़ के हैं। भारतीय वहां कुली का काम करने के लिए पांच वर्ष के ठेके में पहले पहल सन् १८७८ में ले जाये गये थे। तब से उनमें से बहुत से लोग वहीं बस गये हैं। उन्होंने वहां खेती ("गृहस्थ") कर ली है और वहीं के किसान बन गये हैं।

फ़ीजी के आदिमनिवासी

फ़ीजी के असली निवासी अपने को विती "कै" लेवु "कै" कहते हैं। अँगरेज़ और हिन्दुस्तानी उनको "जंगली" कहते हैं। इससे वे अप्रसन्न होते हैं। मगर उनको "कै" कहो तो प्रसन्न होते हैं। वे लोग आदमखोर थे। आदमी का मांस उनके लिए सर्वोत्तम और स्वादिष्ट है। जैसे हिन्दुओं में मांसाहारी लोग बलिदान करके (देवता को चढ़ाकर) भेड़-बकरी खाते हैं, उसी तरह "कै" लोग भी धर्म की आड़ में मनुष्य-भक्षण करते थे। आदमी को वे खाने के लिए "लम्बा सूअर" कहते हैं। वे भोजन के लिए अपने मित्रों व रिश्तेदारों का भी बलिदान करते थे। जब फ़ीजी-निवासियों के "राजा" मृत्युलोक को पधारते थे तब उनके साथ उनकी स्त्रियां और ग़ुलाम जीवित गाड़ दिये जाते थे। "राजा" के महल की बुनियाद में ग़ुलाम ज़िन्दा गाड़े जाते थे। उनके लड़ाई के जहाज़ (डोंगी) जब पानी में छोड़े जाते थे, वे मनुष्य की सीढ़ी बनाकर उसके ऊपर होकर पानी में छोड़े जाते थे। लोग इस तरह बलिदान होना अपना स्वाभाविक काम समझते थे। उनको इस बात का पूर्ण विश्वास है कि वे फिर इस लोक (फ़ीजी) में अवतार (पुनर्जन्म) लेते हैं। एक समय था कि फ़ीजी के निवासी अपने बीमार और बूढ़े आत्मजों को उसी तरह मार डालते थे, जैसे पाश्चात्य लोग अपने बीमार व बेकाम नाक़ाबिल जानवरों को गोली से मार कर उनका दुःख-हरण करते हैं। फ़ीजी के निवासी अतिथि का सत्कार करनेवाले दानी, गौरवयुक्त, बदला

लेनेवाले, घमंडी और समझदार होते हैं। उनमें १ राजवंश, २ पुरोहित, ३ क्षत्री, ४ शूद्र, ५ ग़ुलाम, और ६ कारीगर लोग जिनको वे अपनी बोली में "माता नी वनुआ" कहते हैं, आदि जातियां भी होती हैं। माता नी वनुआ के माने हैं देश की आंख। ये लोग संदेश पहुँचाने का काम (गाँव के प्रहरी की तरह) सलाहकार और साधारण भाड़े में काम करनेवाले कुली का काम करते हैं। खेती

"कै" लोग—फ़ीजी के आदिम बाशिन्दे।

के काम में फ़ीजी के लोग दक्ष हैं। वे नाव बनाने में होशियार हैं। बढ़ई उनके यहां एक जाति ही है। उनके यहां मल्लाहों की भी एक क़ौम है। उनमें चटाई, टोकरी, जाल इत्यादि बनाने वाले लोग भी हैं। स्त्रियों का स्थान उनके समाज में अच्छा है। वे लोग काहिल और आलसी भी अव्वल दर्जे के होते हैं। जब भूख लगी तब खाया-कमाया, वरना पेट भर कर पड़े रहते हैं।

योरप के लोगों का फ़ीजी में पदारोपण

सबसे पहले फ़ीजी-द्वीप-समूह का पता योरपवालों को सन् १६४३ में लगा। किन्तु उसका भौगोलिक पैमाना पहले पहल अमरीकावालों ने १८४० में तैयार किया अस्तु, फ़ीजी का योरप से संसर्ग १८४० से मानना होगा यद्यपि पादरी लोग वहाँ १८३५ में ही पहुँच गये थे। फ़ीजी का राजा पहले एक फ़ीजीवासी "थाकोमवौ" नामधारी पुरुष था। उस पर आस्ट्रेलिया से भागे हुए (योरपीयन) क़ैदियों की सहायता से निकटवर्ती "तोंगन" द्वीप के राजा "माकू" ने हमला किया। अमरीका की सरकार ने "थाकोमवौ" से नौ हज़ार पौंड हर्जाना भी लिया। इस प्रकार के घरेलू झगड़ों और "टोंगा" द्वीप के राजा, से जो ईसाई हो गया था, तंग आकर "थाकोमवौ" ने १८५४ में ईसाई-मत ग्रहण किया और १८५३ में इँग्लेंड से कहा कि यदि अमरीका की मांग पूरी कर दी जाय तो तुम्हारा आधिपत्य फ़ीजी में स्वीकार करूँगा। किन्तु उस समय इँग्लेंड इस दायित्व के लिए तैयार नहीं हुआ। इस बीच में वहाँ आजीविका के लिए अँगरेज़ अधिक जाने लगे। सन् १८६० में वहाँ केवल २०० अँगरेज़ थे। परन्तु नौ ही वर्ष में (१८६७ में) उनकी संख्या नौ गुनी हो गई। तब वहां कुछ अँगरेज़ों ने फ़ीजी के राजा थाकोमवौ के आधिपत्य में एक

राजपद्धति स्थापित की। किन्तु उससे समुचित प्रबन्ध न हो सका। अन्त में सन् १८७४ में इँग्लेंड ने वहा अपना आधिपत्य जमाया, और वहा विलायत से गवर्नर नियत हुआ। तब से वहा अँगरेज़ी राज्य हो गया। अँगरेज़ राज्य-कर्ता सन् १८७८ से पहले पहल वहां भारत से भर्ती करके कुली ले गये। हिन्दुस्तानी कुलियों के जाने से वहा के निवासी और भी पिछड़ने लगे। पाच वर्ष का ठेका पूरा हो जाने पर बहुत से हिन्दुस्तानी कुली वहीं बस जाने भी लग गये।

बद्री महाराज

बद्री महाराज का घर से भागना

बद्री महाराज का असल में पूरा नाम है पंडित बद्रीदत्त बमोला। आप बमोला जाति के ब्राह्मण हैं। आपका जन्म-स्थान गढ़वाल में नागपुर परगने में रुद्रप्रयाग के निकट बमोली ग्राम है।

सन् १८८६ में १८ वर्ष की अवस्था में बद्री महाराज संस्कृत-अध्ययन के निमित्त घर से निकल पड़े। आप श्रीनगर से जो गढ़वाल का मुख्य शहर व प्राचीन राजधानी है, श्रीनारायण भट्ट नाम के एक व्यक्ति के साथ आगरा पहुँचे। वहां एक स्कूल मे पढ़ने लगे। परन्तु वहा संस्कृत पढ़ने का कोई अच्छा प्रबन्ध न होने से आप बनारस के लिए रवाना हुए। काशी में आपने एक वर्ष तक संस्कृत का अध्ययन किया। इस बीच वहां बड़े ज़ोर का हैज़ा फैल गया। विद्यार्थियों को बनारस छोड़ना पड़ा।

सिंगापुर की यात्रा

बनारस से बद्री महाराज १०-१२ मील ही चल पाये थे कि आपको ज्योनदामोधर नाम के एक व्यक्ति मिल गये। उन्होंने आप से कहा कि हमारे साथ सिंगापुर (पेनाग) चलो, वहा संस्कृत का अध्ययन और पूजा-पाठ भी करना, जिससे आजीविका उपार्जन कर सकोगे, और कुछ धन भी संचय कर लोगे। पेनाग पहुँचने पर बद्री महाराज को पता लगा कि ज्योनदामोधर उनको पूजा-पाठ या संस्कृत का अध्ययन कराने के लिए नहीं ले गये थे, वरन कुली का काम करने के लिए ले गये थे, और उनसे तीन वर्ष का इक़रारनामा लिखाना चाहते थे। इस पर बद्रीमहाराज नहीं राज़ी हुए और भारत को वापस जाने के लिए आग्रह करने लगे। संयोगवश वे "आरकटी" महाशय बीमार हो गये, जिससे उन्होंने स्वयं भारत को चल दिया। आप भी उन्हीं के साथ स्वदेश को लौट आये।

पुलिस की नौकरी

बद्री महाराज वहा से गोरखपुर आये और वहीं पुलिस में भर्ती हो गये। किन्तु पुलिस की नौकरी आपको अच्छी नहीं लगी, अतएव उसे छोड़कर वे फिर काशीजी को गये। वहां बनारस की गलियों में आपको "द्वारका"

"जगन्नाथ"-यात्रा

नामक एक अरकाटी मिले। उन्होंने कहा कि हमारे साथ "जगन्नाथ" चलो। वहा रोज़ जगन्नाथजी के दर्शन करना और हम नौकरी भी दिला देंगे। पहले आपको सोने मे सुगन्ध-सा प्रतीत हुआ। द्वारका ने बद्री महाराज से यह भी कह दिया था कि "जगन्नाथ" को कुछ लोग "फ़ीजी" भी कहते है। इतने पर भी "जगन्नाथ" के दर्शनों को उत्सुक भोले-भाले बद्री महाराज "जगन्नाथ" (फ़ीजी) जाने को तैयार होगये। द्वारका ने बद्री महाराज से कहा कि अगर अँगरेज़ पूछे कि कहा जाते हो तो कह देना कि "फ़ीजी" जाते है। क्योंकि अँगरेज़ों को "जगन्नाथ" नाम नहीं मालूम है। कलकत्ते से बद्री महाराज "जगन्नाथ" की यात्रा के लिए जहाज़ पर रवाना हुए और तीन महीने में फ़ीजी जा पहुँचे। आपके साथ और भी २५ भारतीय आपकी ही तरह जगन्नाथ-"यात्रा" को जा रहे थे।

फ़ीजी में कुली बने

फ़ीजी में पहुँचकर जानवरों की तरह वे सब भारतीय अलग अलग मंडलियों में—पुरुष ४०) माहवार और स्त्री २०) माहवार पर—कोठीवालों को बाट दिये गये। पांच पांच वर्ष की नौकरी का इक़रारनामा सबसे ले लिया गया। वे सब "यात्री" (कुली) २५ थे, जिनमें से १८ नैपाली और ७ भारतीय थे। यह बात सन् १८८९ की है।

फ़ीजी में बद्री महाराज को ६ बजे सुबह से ५ बजे शाम तक कुली का काम करना पड़ता था। बीच में एक घंटे की छुट्टी मिलती थी। दो ही महीने बाद आपका कोठी के एक मुंशी से झगड़ा हो गया, जिसके कारण आपको बहुत दुःख सहना पड़ा। मार-पीट तक की नौबत पहुँच गई। यह झगड़ा उनकी वीरता की कसौटी निकला।

फ़ीजी में पहुँचने के दो वर्ष बाद ही अपनी कमाई से बद्री महाराज ने कुछ ज़मीन ख़रीद ली। इसी बीच (१८९२ में) आज़मगढ़-ज़िले के गये हुए परिवार की एक कन्या से आपने विवाह कर लिया। आपकी ठेके की नौकरी के पाच वर्ष में से तीन वर्ष लोहारख़ाने में कटे। ठेका (इक़रार) पूरा होने पर भी ३॥) रोज़ पर बद्री महाराज ने और भी सात वर्ष तक उसी लोहारख़ाने में काम किया।

बद्री महाराज स्वतन्त्र कृषक बन गये

बद्री महाराज क्रमशः दिन दिन अधिक ज़मीन ख़रीदते गये, और अपनी खेती में मज़दूरों से काम लेते गये। आपने गन्ने की ही खेती की। गन्ना वहाँ बहुत अच्छा होता है। आपने कृषि (जिसे वहाँ गृहस्थ कहते हैं) २० बीघे ज़मीन से शुरू की। १० वर्ष के बाद आपने नौकरी छोड़ दी, और स्वयं खेत का काम करने लगे। स्त्री आपको पूर्णरूप से लक्ष्मी मिली, जिन्होंने आपका गृह-कार्य सँभाला और घर का सब प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। दिन दिन आपका धन्धा बढ़ता गया। इस समय आपके पास कई हज़ार बीघे ज़मीन है, और जनरल स्टोर्स की एक दूकान भी है। आप आर्थिक दृष्टि से बड़ी अच्छी हालत में हैं।
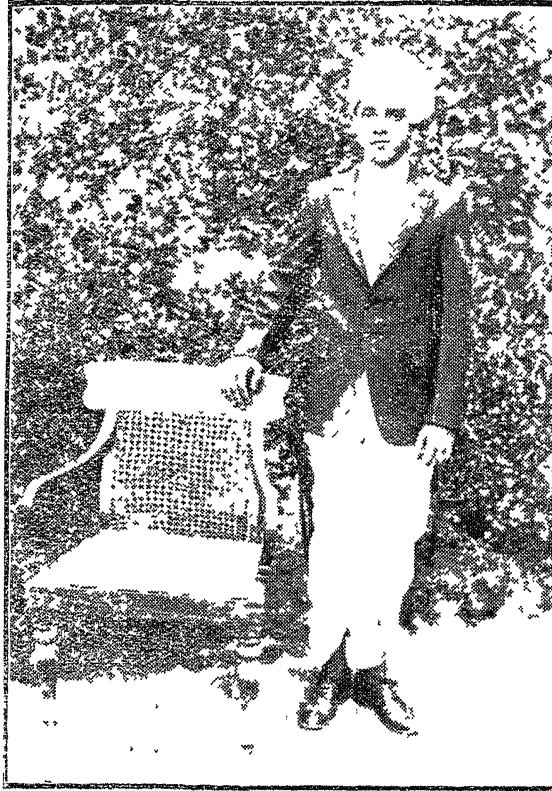
पण्डित ज्ञानेश्वर
[बद्री महाराज के कनिष्ठपुत्र जो कानपुर के डी० ए० वी० कालेज में शिक्षा पा रहे हैं]

बद्रीदत्त बमोला का परिवार

बद्री महाराज के ६ पुत्र और ३ कन्यायें हैं। आपके सबसे बड़े लड़के पण्डित राघवानन्द ने न्यूज़ीलेंड के विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त कर फ़ीजी की सिविल सर्विस में प्रवेश किया है। दूसरे पुत्र पण्डित सदानन्द न्यूज़ीलेंड में बैरिस्टरी पढ़ रहे हैं। तीसरे पुत्र पण्डित वासवानन्द ने भी न्यूज़ीलेंड में शिक्षा समाप्त कर फ़ीजी-सरकार की नौकरी स्वीकार कर ली है। चौथा पुत्र शिक्षा समाप्त कर घर के काम में लग गया है। दो कनिष्ठ पुत्रों को आपने कानपुर के डी० ए० वी० स्कूल में रख दिया है। एक (ज्येष्ठ) कन्या की मृत्यु हो गई। दूसरी का विवाह वहीं फ़ीजी में हो गया। सबसे छोटी कन्या सरस्वती को, जिसकी अवस्था १३ वर्ष की है, बद्री महाराज अपने साथ हिन्दुस्तान लाये हैं, और उसे आपने जालन्धर के कन्या-महाविद्यालय में अध्ययन के लिए रख दिया है।

बद्री महाराज का स्वदेश-आगमन

बद्री महाराज विगत २१ अप्रेल को फ़ीजी से स्वदेश के लिए रवाना हुए। आप अपने साथ फ़ीजी-प्रवासी भारतीयों के ११ लड़के और लड़कियां शिक्षा के लिए लाये हैं। वे सब १६ मई को कलकत्ते पहुँचे। आप उन लड़कों को कानपुर और वृन्दावन में रख आये हैं। ९ लड़कियां जालन्धर और ४ देहरादून के गुरुकुल में दाख़िल की गई हैं। बद्री महाराज इस समय देहरादून, लैंसडौन, पौड़ी, श्रीनगर होते हुए अपने जन्मस्थान

बमोली ग्राम को गये है। आप प्रायः ४२ वर्ष बाद घर गये है। आपकी अवस्था ६० वर्ष की है। आपकी धर्म-पत्नी की ५८ वर्ष की अवस्था में अभी हाल ही मे मृत्यु हुई है, जिसके कारण बद्री महाराज को अत्यन्त दुःख हुआ।

बद्री महाराज का विचार स्वदेश में एक साल रहने का है। आप आगामी कांग्रेस में सम्मिलित होंगे और प्रान्तीय कौंसिल तथा एसेम्बली की बैठकें भी देखेंगे।

फ़ीजी में हिन्दुस्तानियों के लिए कार्य

बद्री महाराज कहते हैं कि फ़ीजी में उन भारतीय बैरिस्टरों, डाक्टरों तथा कृषकों की बड़ी आवश्यकता है जो रहने के उद्देश से वहां जायँ। आप इस बात के लिए तैयार हैं कि यदि भारतीय विवाहित लोग अपनी भार्या और परिवार के सहित फ़ीजी जाने को तैयार हों तो वहाँ जाने और बसने में आप उनकी सहायता करेंगे। हमारी स्वयं यह धारणा है कि हमारे देशवासियों को योरपीयों की तरह विदेशों में जाकर बसना चाहिए। हम लोग कूप-मंडूक बने रहते हैं। अपने देश से बाहर आजीविका और बसने के लिए जाने का हमको प्रेम नहीं है।

फ़ीजी की उपज

फ़ीजी में ईख एवं नारियल की खेती सबसे अच्छी होती है। वहां धान और दालवाले कई प्रकार के अन्न भी पैदा होते है। वहां की खेती मे यहां से दस गुनी अधिक उपज होती है। ईख बोनेवालों को दूना-

आनरेबल बद्री महाराज नंगे सिर बीच में बैठे है। उनके दाहिनी ओर उनकी कन्या बैठी है। अन्य युवक युवतियां, सब बद्री महाराज के साथ फ़ीजी से अभी भारत में आये हैं

तिगुना या कम से कम डेवढ़ा लाभ ईख की पैदावार से होता है। ईख से प्रायः १५) फ़ी एकड़ पैदावार होती है। वहां गेहूँ नहीं होता। ज्वार होती है। वहाँ आम भी होता है। केला भी होता है। कटहल, इमली एवं पपीता भी वहाँ होते हैं। पक्षियों और जंगली जानवरों का वहां नितान्त अभाव है। साँप एवं गिद्ध तो वहाँ होते ही नहीं।

किराया सरकार ने दिया। बाक़ी अपने ख़र्च से गये। अब वहाँ कुलियों को इक़रारनामा नहीं लिखना पड़ता है। उन पर मालिक और नौकरवाला साधारण क़ानून एक वर्ष तक ही लागू होता है। उसके बाद वे नौकरी छोड़ सकते हैं। वहाँ भारतीय लोग कृषि-(गृहस्थ) कार्य, पशु-पालन इत्यादि कर सकते हैं। खेतों में काम करनेवालों को १॥) से २) तक प्रति दिन वेतन मिलता
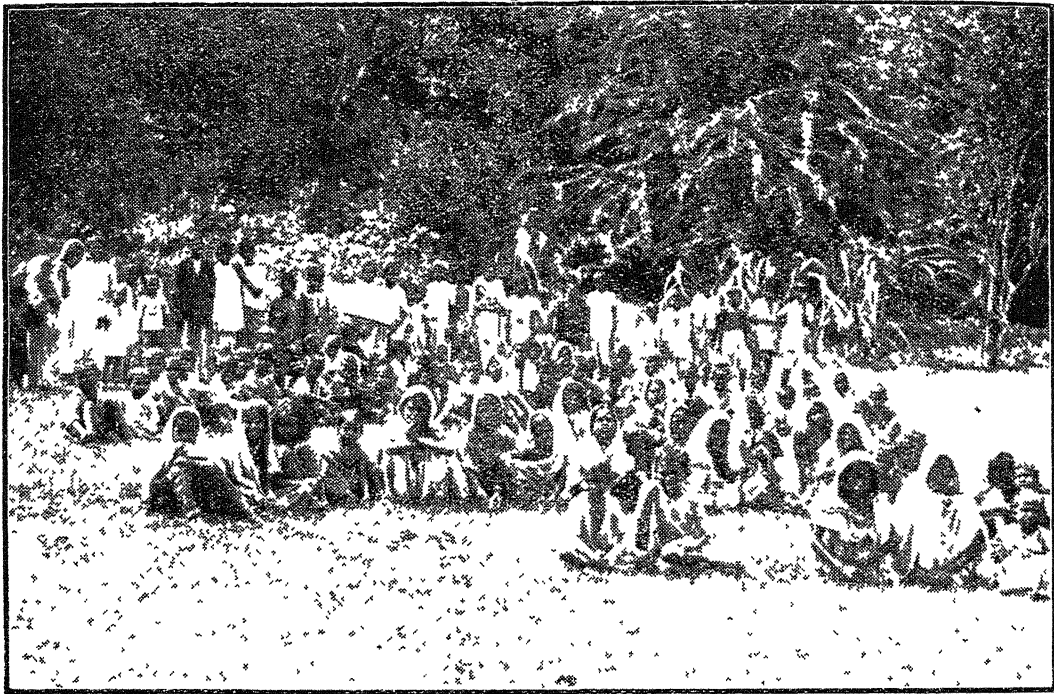
फ़ीजी में भारतीयों की बालक-बालिकायें

भारतवासियों को फ़ीजी का जलवायु अनुकूल पड़ता है। जो भारतीय वहाँ की राजधानी सूवा में रहते हैं वे पाश्चात्य ढङ्ग से रहते हैं। जो देहात में रहते हैं वे हिन्दुस्तानी ढङ्ग से ही रहते हैं। हिन्दुस्तानियों को वहां रहना पसन्द है। पिछले तीन वर्षों में ८०० भारतीय वहाँ से भारत को वापस आये। उनमें से प्रायः सबके सब फिर वहीं लौट गये हैं। ये लोग उसी जहाज़ से फ़ीजी को वापस गये जिस जहाज़ से बद्री महाराज यहाँ आये हैं। उनमें से ३२३ को वहां जाने का

है। इस समय वहाँ हल जोतनेवाले घोड़े की क़ीमत ६०) के लगभग है और बैल की क़ीमत उससे कुछ ज़्यादा है। बकरी व भेड़ वहाँ ६ से १० रुपये तक में मिलती हैं। वहाँ चूहे नहीं होते थे। नेवले भी नहीं होते थे। चूहे और नेवले वहाँ खेती को नुक़सान पहुँचानेवाले कीड़ों-मकोड़ों को मारने के अभिप्राय से ले जाये गये हैं। सैंटुला पक्षी भी वहाँ इसी मतलब से ले जाये गये हैं। वहाँ की आबहवा न गरम है न ठंडी। वर्षा काफ़ी होती है।

बद्री महाराज के सार्वजनिक कार्य

"महाराज" की उपाधि भारतीय प्रवासियों ने बद्रीदत्तजी को आपके लोकोपकार और स्वजाति-सेवा के लिए दी है। हमने बड़ी कोशिश की कि बद्री महाराज से आपके सार्वजनिक कामों की बाबत ब्योरेवार कुछ पता लगायें। किन्तु उसमें हम सफल नहीं हुए। जो कुछ हमें विदित हुआ वह साधारण बातों में अनायास ही बिना उनके जाने कि हम लिखने के लिए सामान एकत्र कर रहे हैं। बद्री महाराज सब भारतीय प्रवासियों से मिलते हैं। उनके घरों में जाते हैं, उनकी हालत देखते है, और उनकी सहायता करते हैं। २६ वर्ष से आपने हिन्दुस्तानियों के लिए पेनाग में एक बड़ा अच्छा स्कूल खोल रक्खा है, जिसमें अँगरेज़ी, हिन्दी और तामील भाषायें छठे दर्जे तक पढ़ाई जाती हैं। आप भारतीयों के घरों में जाकर उनको रामायण एवं महाभारत की कथा अक्सर सुनाया करते हैं। उनको अच्छे ढङ्ग से रहने और अपने आत्मगौरव की रक्षा करने की शिक्षा देते हैं। आप अच्छे खाते-पीते हिन्दुस्तानियों को अपने लड़के-लड़कियों को भारतवर्ष में शिक्षा के लिए भेजने की सलाह देते हैं। कुछ वर्षों से आपने कई बालक-बालिकायें हिन्दुस्तान में शिक्षा के लिए भेजवाये हैं। अभी अपने साथ, २० विद्यार्थियों को (११ लड़के और ६ लड़कियाँ) लाये थे, जिनको आपने कानपुर, वृन्दावन, जालन्धर और देहरादून के आर्य-स्कूलों में भर्ती कराया है।

भारतीय प्रवासियों के राजनैतिक स्वत्वों के लिए भी बद्री महाराज वर्षों से लड़ते आये हैं। पहले पहल आपने पशुओं पर चमड़ा जलाकर दाग देकर नम्बर व निशान लगाना बन्द कराया, कुलियों का दफ़्तर तुड़वाया और भारतीयों को कुली-ठेकों के बन्धनों से छुड़ाने में गोखले आदि भारतीय नेताओं की सहायता की।

भारतीयों को राजनैतिक स्वत्व प्राप्त कराने का उद्योग

अब बद्री महाराज इस बात पर कटिबद्ध हैं कि फ़ीजी में हिन्दुस्तानियों को भी नागरिकों के वही राजनैतिक स्वत्व मिलने चाहिए जो योरपीयों को प्राप्त हैं, और भारतीय भी फ़ीजी को अपना देश और निवास-भूमि मानें। आप चाहते हैं कि फ़ीजी में पैदा हुए सब हिन्दुस्तानियों को फ़ीजी-निवासियों के सब पूरे हक़ मिलने चाहिए। अफ़्रीका का क़ानून वहां न प्रवेश कर सके। वोट देने की सत्ता के अधिकारी वे सब हिन्दुस्तानी हो सकें जो ६० पौंड वार्षिक टैक्स देते हैं। अँगरेज़ों में १२० पौंड कर देनेवाले वोट के अधिकारी हैं। बद्री महाराज एवं वहाँ के भारतीय प्रवासियों का कहना है कि हिन्दुस्तानियों की आय कम है, इसलिए उनको वोट देने की सत्ता (अपना प्रतिनिधि चुनने का अधिकार) आधा कर देने पर ही प्राप्त हो जाना चाहिए।

आनरेबल बद्री महाराज फ़ीजी की कौंसिल के मेम्बर

फ़ीजी के भारतीयों को अपना प्रतिनिधि चुनने का स्वत्व प्राप्त नहीं है। वहां उनकी संख्या साठ हज़ार है। सब भारतीयों की ओर से सन् १९१७ से बद्री महाराज फ़ीजी की लेजिस्लेटिव कौंसिल में सरकार-द्वारा नामज़द होते आये हैं। अर्थात् २० वर्ष से आप हिन्दुस्तानियों की ओर से फ़ीजी की कौंसिल में हैं। आप कई कमीशनों के सदस्य भी रह चुके हैं। ऐजूकेशन कमीशन के सदस्य होकर आपने वहाँ के शिक्षा-विभाग में हिन्दी को उच्च स्थान दिलाया है, और आपके उद्योग से फ़ीजी में कई स्कूल खोले गये हैं।

फ़ीजी-कौंसिल में आनरेबल बद्री महाराज का "वाक आउट" असहयोग

सन् १९२३ में जब हिन्दुस्तानियों पर रेज़िडेन्सी (निवासस्थान) टैक्स नामक कर उनके भारतीय होने के कारण लगाये जाने की तज़वीज़ फ़ीजी की कौंसिल में पेश हुई, उसका विरोध सूचित करने के लिए आनरेबल बद्री महाराज कौंसिल छोड़कर चले गये ("वाक आउट" कर गये), क्योंकि उनका संशोधन स्वीकृत नहीं हुआ। इस पर कुछ वादविवाद होता रहा। यहाँ तक कि गवर्नर ने जो वहाँ कौंसिल का प्रेसिडेंट भी होता है, कौंसिल में इस घटना पर खेद प्रकट किया। तब से दो साल तक आनरेबल बद्री महाराज कौंसिल में नहीं गये। जब

जब नये गवर्नर विलायत से आये, वे स्वयं आनरेबल बद्री महाराज के मकान पर गये और आपसे कौंसिल में आने के लिए आग्रह किया। इस बात में फ़ीजी हिन्दुस्तान से भी बढ़ गया। "वाक आउट" करना दरकिनार रहा, सरकारी प्रस्ताव तथा बिल के विरुद्ध ज़बान हिलाना व वोट देना भी यहां के नामज़द मेम्बर नहीं जानते। दो साल तक "वाक आउट" करनेवाले असहयोगी नामज़द मेम्बर का न इन्तज़ार करना और उनकी जगह दूसरे को नामज़द कर देना फ़ीजी के गवर्नर के लिए सम्भव था। इस देश में न ऐसे आज़ाद नामज़द मेम्बर हैं, न ऐसे गवर्नर, यद्यपि वहा के मेम्बर (बद्री महाराज) भी भारतीय हैं और वहां के गवर्नर भी अँगरेज़ हैं।

फ़ीजी की कौंसिल

फ़ीजी की व्यवस्थापक सभा (कौंसिल) की व्यवस्था इस तरह है। इक्ज़िक्यूटिव कमेटी में गवर्नर और ४ सरकारी (अँगरेज़) मेम्बर हैं, और कौंसिल में १० सरकारी मेम्बर, ६ अँगरेज़ ग़ैर सरकारी चुने हुए मेम्बर, २ फ़ीजी निवासी (कै) लोगों की ओर से सरकार-द्वारा नामज़द मेम्बर और एक भारतीयों की ओर से सरकार-द्वारा नामज़द मेम्बर (आनरेबल बद्री महाराज) हैं। कौंसिल के सभापति जैसे पहले यहा हुआ करते थे, फ़ीजी के गवर्नर स्वयं हैं। सुवा और लेवुका में, जो वहाँ के दो बड़े नगर हैं, म्यूनिसिपल कौंसिलें हैं और वहाँ के देहातों में ज़िला तथा ग्राम कौंसिलें (पंचायतें) हैं।

"कै" लोगों का धर्म

फ़ीजी के निवासियों का धर्म भूत-पूजा है। अब ईसाइयों ने उन्हें नाममात्र को ईसाई बना लिया है। मगर उन्होंने अब तक अपने पुराने जंगली धर्म को नहीं छोड़ा है। भारतीय हिन्दू व मुसलमान दो फ़िरक़ों में विभक्त हैं। वहाँ हिन्दू-मुसलमानों में कोई भेद-भाव नहीं है।

"कै" लोगों में पाश्चात्य सभ्यता

फ़ीजी के निवासी पाश्चात्य रवाज़ अर्थात् खाने-पीने व रहने का ढंग स्वीकार करने में कोई उत्साह नहीं दिखाते। अर्थात् अभी अपने जंगली ढंग पर ही रहते हैं। कोई कोई उल्टे-सुल्टे पाश्चात्य आभूषण धारण करते हैं। शहरों में अँगरेज़ व किरानी बालकों के लिए सरकारी स्कूल हैं। किन्तु देहात में सरकारी पाठशालायें नहीं हैं। फ़ीजी के आदिम निवासियों के लिए गांवों में पादरी लोगों ने स्कूल खोले हैं, और वहां के लोग अपनी भाषा पढ़-लिख लेते हैं। सरकार ने एक शिल्पशाला वहा के लोगों के लिए खोली है।

भारतीय प्रवासी बालकों के लिए बद्री महाराज का शिक्षा-प्रबन्ध

भारतीय बालकों के लिए पाठशालाओं का प्रबन्ध पहले पहल आनरेबल बद्री महाराज ने स्वयं अपने व्यय से किया। २८ वर्ष हुए अर्थात् सन् १९०० में आपने पहले एक स्कूल खोला। सन् १९१७ तक वह आपके ही व्यय से चलता रहा। तब से सरकार उस स्कूल को ३६ पौंड सालाना सहायता देने लगी। और अब सरकार ६० पौंड देती है। बाक़ी ख़र्च उस स्कूल का बद्री महाराज अपनी ज़ेब से देते हैं। इस स्कूल में अँगरेज़ी, हिन्दी एवं तामिल भाषायें छठे दर्जे तक पढ़ाई जाती हैं। अँगरेज़ी पढ़ाने के लिए उसमें अँगरेज़ अध्यापक हैं। बद्री महाराज एक विलक्षण वीर हैं। आप जैसे वीर पुरुष विदेशों में और होते तो सब द्वीप व उपनिवेशों के भारतीय प्रवासियों की दशा कुछ और ही होती। इस बात का गौरव गढ़वाल-ज़िले के निवासियों को है कि बद्री महाराज एक गढ़वाली वीर हैं।

शुक-संवाद

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(३७)

वीरस्नुषा वीरात्मजा,
तुम वीरपत्नी हो प्रिये।
वीरोचिता वार्ता इसी से,
कह सुनाता हूँ सुनो ॥

(३८)

मैंने अनल के सामने,
पाणिग्रहण जो था किया।
पाणिग्रहण की लाज पर,
कर में तुम्हारे है प्रिये ॥

(३९)

अनुगामिनी ज्यों यामिनी—
है धर्मतः द्विजराज की।
उस भाँति देना साथ तुम,
रखना पतिव्रत-धर्म को ॥

(४०)

तुम पितृकुल की हो ध्वजा,
पतिवंश की तुम कीर्त्ति हो।
दोनों कुलों की लाज हो,
लज्जा गई तो क्या रहा ?

(४१)

जल में ज्वलन में कूद कर,
मरना स्त्रियों का काम है।
पर कूद कर संग्राम में,
मरना भटों का कृत्य है ॥

(४२)

यम भी नियम को मान ले,
जिसके वही नर वीर है।
जो शत्रु के वश में रहे,
निर्लज्ज क्लीवाधम वही ॥

(४३)

जब तक ज्वलन जलता रहे,
तब तक जलाता अन्य को।
जब तक न मरता वीर है,
तब तक खलों को मारता ॥

(४४)

अंधा बना जीवित रहे तो,
एक विधि कुछ है भला।
पर नेत्र रहते शत्रु का,
दुर्मद बुरा है देखना ॥

(४५)

हो कर पराये-वश सुखी,
कुत्ते तथा कायर रहे।
रहता न पर-वश में कभी,
नरसिंह या जो सिंह है ॥

(४६)

ज्यों कंजदल पर नीर है,
त्यों देह है संसार में।
इस हेतु भट रहते नहीं,
स्थिर कीर्त्तिदायक युद्ध से ॥

(४७)

रण मे मरे तो गति बने,
अरि को बधे तो कीर्ति हो।
है लाभ सब विधि युद्ध से,
संग्राम पुण्यक्षेत्र है ॥

(४८)

एक रात में सोया रहा,
तो स्वप्न क्या देखा प्रिये।
संग्राम में पाकर विजय,
मैं गेह पर पहुँचा तुरत ॥

(४९)

सैनिक बनी तू थी खड़ी,
संग्राम-यात्रा के लिए।
था खड्ग तेरे हाथ में,
द्युतिमय वदन पर क्रोध था ॥

(५०)

संहार करने के लिए,
ज्यों मृत्यु हो वपुधारिणी।
होकर रमा त्यों तू प्रिये,
थी चण्डिका के रूप में ॥

(५१)

मैंने कहा पाकर विजय,
मै आगया जाओ नहीं।
सस्मित वदन तुमने कहा
"जय देश की, जय धर्म की" ॥

(५२)

ज्यों ही बढ़े हम तुम परस्पर,
कण्ठ लगने के लिए।
त्यों ही यहां रण-दुंदुभी—
बजने लगी, मैं जग गया ॥

(५३)

मैं वीरता के साथ ही,
उत्पन्न हूँ संसार में।
वह साथ में आई हुई है,
साथ ही में जायगी ॥

(५४)

सौन्दर्य उसका व्यर्थ है,
जिसको न सुन्दर वर मिला।
है वीरता उसकी सफल,
जिस वीर को सङ्गर मिला ॥

(५५)

जिस शौर्य्य से मम पूर्वजों के,
देश यह रक्षित रहा।
वह शौर्य्य है मुझ में भरा,
फिर देश रक्षित क्यो न हो ?

(५६)

केहरि हटे चाहे मृगों पर,
चोट करने से कभी।
पर वीर रिपु-वध से नहीं—
हटते कभी भी स्वप्न में ॥

(५७)

जो मृत्यु का स्वागत सदा,
वर वीर करता प्रेम से।
स्वागत न क्यो उसका करें—
सब, शत्रु हों या मित्र हों ॥

(५८)

जीवित रहे जो शत्रु तो,
फिर वीर का जीना वृथा।
रवि ने उदित हो क्या किया ?
यदि तम बना ही रह गया ॥

(५९)

उस वंश के हम वीर हैं,
जिससे सशंकित देव थे।
इन पामरों की क्या कथा ?
हम से पराजित जो न हों ॥

(६०)

वनगीदड़ों को सिंह ने—
मारा, किया तो काम क्या ?
मुझ से पराजित म्लेच्छगण,
रण में हुआ तो क्या हुआ ?

(६१)

कदली-विपिन को काटने—
में वज्र चाहे श्रान्त हो।
पर दुर्जनों को जर्जरित,
करने में मुझको श्रम नहीं॥

(६२)

धारा न गङ्गा की तथा,
उपयुक्त पापी के लिए।
उपयुक्त है ज्यों खड्ग की,
धारा समर में शूर को॥

(६३)

जीते रहें नर-पशु भले ही,
दूसरों के दास बन।
पर जो नरोत्तम वीर हैं,
परतन्त्र हो जीते नहीं॥

(६४)

जो शत्रु के प्रोत्कर्ष पर,
उत्सर्ग करते प्राण को।
उनके निकट में दासता,
आती नहीं है स्वप्न मे॥

(६५)

यौवन-हरण के हेतु ही,
क्या मातृस्तन मैंने पिया?
मा-नाम कर दूँगा अमर,
करके समर अरि-व्यूह से॥

(६६)

गर्भस्थ अरि मारे नहीं,
भृगुनाथ ने कर के दया।
पर छोड़ सकता मैं नहीं,
गर्भस्थ शिशु भी शत्रु के॥

(६७)

शुक! मैं न पृथ्वीराज हूँ,
जो शत्रु पाकर छोड़ दूँ।
है आत्म-वध से कम नहीं,
अरिवर्ग पर करनी कृपा॥

(६८)

भू-प्यास, गीदड़ की क्षुधा,
अरिवर्ग का दुर्दर्प भी।
जब तक न होंगे शान्त ये,
मम कोप होगा शान्त क्यों?॥

(६९)

जिस वीर पर शस्त्रास्त्र की,
रिपु के करों वर्षा न हो।
उस पर कभी भी पुष्प की,
सुर-हाथ से क्यों वृष्टि हो?

(७०)

जिस विधि शलभ हो काल-वश,
मरते दहन में कूद कर।
उस भांति भारत-भूमि पर,
खल काल-वश हो आ गये॥

(७१)

आशा बड़ी ही वस्तु है,
होना हताशा तुम नहीं।
निःशेष कर मैं शत्रुओं को,
शीघ्र आऊँगा प्रिये॥

(७२)

कहना रहा सो कह चुका,
अब कीर! तुम जाओ चले।
सन्देश कहना युक्ति से,
जिसमें प्रिया मम हो सुखी॥

[क्रमशः]

भारतीय शिक्षक-सङ्घ

[श्रीयुत कालिदास कपूर, एम० ए०, एल० टी०]

क्षा-विषयक प्रश्न के अनेक अंग हैं। अभी तक देश के नेता प्रचार ही की ओर झुके हुए हैं। निरक्षरता दूर हो, यह उद्देश प्रथम महत्त्व का है। परन्तु साथ ही और भी प्रश्न हैं। शिक्षा कैसी हो, शिक्षक कैसे हों, ऐसे प्रश्नों पर भी समाज को ध्यान देना आवश्यक है। परन्तु यह मानना पड़ेगा कि देश के वे नेता जो स्वयं शिक्षक नहीं हैं, इन प्रश्नों पर प्रकाश नहीं डाल सकते। इन प्रश्नों पर देश को ठीक राह बताना शिक्षक-समुदाय का ही काम है।

पश्चिमी देशों में प्रचार का प्रश्न हल हो चुका। जर्मनी, इँग्लिस्तान, फ्रांस और संयुक्त-राज्य में ९० फ़ी सदी लोग पढ़ना-लिखना जानते हैं। वहाँ अब यह प्रश्न है कि शिक्षा-सुधार क्योंकर हो, शिक्षक क्योंकर अपनी योग्यता बढ़ायें। फल यह हुआ है कि इन देशों में शिक्षकों ने अनेक समितियाँ स्थापित की हैं जिनमें शिक्षक अपनी अपनी रुचि के अनुसार सम्मिलित हो सकते हैं। इन समितियों-द्वारा पत्रिकायें निकलती हैं, इनमें वक्तृतायें हुआ करती हैं, और वार्षिक अधिवेशनों की कार्यवाहियाँ छपती हैं। केवल इँग्लिस्तान में लगभग ५२ शिक्षा-समितियाँ हैं। प्रतिवर्ष इनका सम्मिलित अधिवेशन लन्दन में होता है; और अभी तक इनके सोलह अधिवेशन हो चुके हैं।

शिक्षा-विषयक उन्नति में हम पश्चिमी देशों से बहुत पीछे हैं। परन्तु यह नहीं कि हम सो रहे हों, जातीय जागृति के लक्षण चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। शिक्षक-समुदाय भी देश के प्रति अपना कर्तव्य-पालन करने का प्रयत्न कर रहा है।

महायुद्ध ने जहाँ और सब काम किये, वहाँ शिक्षकों की भी नींद तोड़ दी। युद्ध के पहले शिक्षकों को जो कुछ थोड़ा बहुत वेतन मिलता था उससे वे सन्तुष्ट थे। क़ायदे कम थे, काम कम था। जिसे चैन और हुकूमत करने का शौक़ था, वह शिक्षक बन जाता था। युद्ध ने जनता में जागृति पैदा की। लोगों ने कहा कि हमारे बालकों की शिक्षा में कुछ कसर है। शिक्षकों को अपना कर्तव्य करना चाहिए।

इधर महायुद्ध के कारण जीवन-निर्वाह की सब सामग्रियाँ महँगी हो गईं। शिक्षकों का वेतन वही रहा। फल यह हुआ कि अब उन पर काम का भार तो बढ़ गया, परन्तु जीवन-निर्वाह में कठिनाई पड़ने लगी। शिक्षकों को भी संघ बना कर अपने कर्तव्यों और अधिकारों की जाँच करनी पड़ी।

सबसे पहले मदरास-प्रान्त में सन् १९०८ के लगभग एक संस्था स्थापित हुई, जिसका नाम 'साउथ इंडियन टीचर्स यूनियन' है। यह संस्था पुरानी अवश्य है, परन्तु इसके कार्यक्रम का हमें विशेष ज्ञान नहीं है। अन्य प्रान्तों में जो संस्थायें स्थापित हुई हैं, सब महायुद्ध के अन्त होने तथा शिक्षा-विभाग के भारतीय नेताओं अधिकार में आने के पश्चात् स्थापित हुई हैं।

संयुक्त-प्रान्त के शिक्षकों ने सबसे पहले अपना क़दम बढ़ाया। नवम्बर सन् १९२० में अँगरेज़ी पढ़ाने के सरकारी स्कूलों के अध्यापकों तथा सब-डिप्टी इंस्पेक्टरों और डिप्टी इंस्पेक्टरों ने 'नान गजटेड एज्युकेशनल आफ़िसर्स एसोसिएशन' स्थापित किया। वेतन-वृद्धि प्रधान उद्देश था। बड़े समारोह से उनकी इस संस्था का अधिवेशन हुआ। दूसरे ही वर्ष उनकी यथेष्ट वेतन-वृद्धि हो गई। उद्देश-पूर्ति के साथ साथ संस्था का कार्य क्षेत्र भी संकुचित हो गया है। एसोसिएशन अभी तक क़ायम अवश्य है; कुछ उद्योगी अध्यापक उसे जीवित रखने का प्रयत्न अवश्य करते रहते हैं; यू० पी० एज्युकेशन नामक एक मुखपत्र भी निकलता है; परन्तु यह कहा नहीं जा सकता कि इस प्रयत्न से उसका कार्यक्षेत्र कहाँ तक विस्तीर्ण हो सकेगा।

सरकारी स्कूलों के अध्यापकों की देखादेखी संयुक्त-प्रान्त के ग़ैर सरकारी स्कूलों के अध्यापकों ने भी अपनी संस्था स्थापित की। मई सन् १९२१ में उसका प्रथम अधिवेशन प्रयाग में हुआ। तभी से इस संस्था की स्थापना हुई। नाम पड़ा 'यू० पी० सेकण्डरी एज्युकेशन एसोसियेशन'। इस संस्था ने भी वेतन-वृद्धि के उद्देश को प्रथम स्थान दिया। परन्तु संस्था के भीतर कुछ ऐसे महानुभाव भी थे जिन्होंने यह समझ कर कि यदि यही उद्देश रहा तो संस्था का चलना कठिन हो जायगा। यह भी उद्देश रक्खा कि वे शिक्षा-विषयक प्रश्नों पर अपने स्वतन्त्र विचार प्रकट करें और शिक्षक-समुदाय को अपना उत्तर-दायित्व निबाहने के योग्य बनायें। फल यह हुआ कि कानपुर के पृथ्वीनाथ स्कूल के प्रधानाध्यापक श्रीयुत देवीप्रसाद खत्री के सम्पादकत्व में 'एज्युकेशन' नामक एसोसिएशन का मासिक मुखपत्र निकाला गया। आपके सम्पादकत्व में यह पत्र उत्तरोत्तर उन्नति कर रहा है। आर्थिक कठिनाइयों के होते हुए भी इसका स्थान देश के उच्चतम शिक्षा-पत्रों में है। श्रीयुत विश्वेश्वरप्रसाद इस संस्था के मन्त्री है। आपने जगह जगह शिक्षकों के स्थानीय एसोसिएशन बना कर आपस में मिलने तथा शिक्षा-विषयक प्रश्नों पर विचार करने के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किया है।

लगभग इसी समय (सन् १९२१) बङ्गाल के शिक्षक-समुदाय ने 'आल बङ्गाल टीचर्स एसोसिएशन' स्थापित किया। बङ्गाल में एक तो अँगरेज़ी स्कूल बहुत है, दूसरे इनकी आर्थिक दशा भी बहुत बुरी है। वेतन कम है, और स्कूलों के संचालक इच्छानुसार घर के नौकरों की तरह अध्यापकों को निकालते और नियत करते रहते हैं। इसलिए इस संस्था की ओर से बहुत काम हो रहा है। लगभग सात सहस्र सदस्य है। प्रति-वर्ष समारोह के साथ अधिवेशन होता है। बङ्गाल के अध्यापकों के सामने वेतन-वृद्धि का प्रश्न इतना भीषण है कि जब तक वह नहीं हल होता तब तक इस संस्था को शिक्षा की उन्नति की ओर विशेष रूप से अग्रसर करना कठिन है। वार्षिक अधिवेशनों में उनके शिक्षा-विषयक मन्तव्य अवश्य होते है। बँगला और अँगरेज़ी में 'शिक्षा-श्रो-साहित्य' नामक मुखपत्र भी निकलता तक अध्यापकों को अपनी उदरपूर्ति की से शान्ति न मिले, तब तक उन्हें शिक्षा ओर अग्रसर करने का प्रयत्न व्यर्थ है।

सन् १९२१ में संयुक्त-प्रान्त के वर्नाक्युलर स्कूलों के अध्यापकों ने भी यू० पी० अध्यापक-मंडल नामक एक संस्था स्थापित की।

भारतीय शिक्षा की नींव की रक्षा वर्नाक्युलर स्कूलों के अध्यापकों के ही हाथ में है। इनका कार्य बड़े महत्त्व का है। परन्तु इनकी आर्थिक दशा बहुत हीन है और इनके पास शिक्षा की उन्नति करने के साधन नहीं हैं। इतना होते हुए भी इन्होंने अपना सङ्घ स्थापित किया, और उसके वार्षिक अधिवेशन होते रहते हैं, यह क्या कम सराहनीय है?

सन् १९२१ के पश्चात् सन् १९२४ शिक्षक-सङ्घों की स्थापना का वर्ष है। इस वर्ष बिहार, मध्य-प्रान्त, बम्बई और बरोदा में शिक्षक-सङ्घ स्थापित हुए। बम्बई प्रेसिडेंसी सेकंडरी टीचर्स एसोसिएशन की ओर से 'प्रोग्रेस आफ़ एज्युकेशन' नामक मासिक पत्र निकलता है, और बरोदा सेकंडरी टीचर्स एसोसिएशन की ओर से 'एज्युकेश-नल क्वार्टरली' नामक एक त्रैमासिक पत्रिका निकलती है। बिहार के शिक्षक-सङ्घों के अधिवेशन होते रहते हैं, मध्यप्रान्त के एसोसिएशन के कार्य-क्रम का कोई विशेष पता नहीं है।

देश की राष्ट्रीय और सामाजिक संस्थाओं का हाल यह है कि पहले कुछ जोशीले देश-सेवियों ने अखिल भारतीय संस्थायें स्थापित कीं। फिर होते होते प्रान्तीय संस्थायें स्थापित हुईं। महत्त्व अखिल भारतीय संस्थाओं का ही है। प्रान्तीय संस्थाओं की जड़ प्रान्तों में नहीं है, अखिल भारतीय संस्थाओं में है। फलतः कार्य कम होता है, मन्तव्य बहुत। शिक्षक-सङ्घों का दूसरा हाल है। पहले प्रान्तीय सङ्घ स्थापित हुए। जब उनकी संख्या यथेष्ट हुई, तब अखिल भारतीय संस्थाओं की स्थापना हुई।

सन् १९२५ अखिल भारतीय शिक्षक-संस्थाओं की स्थापना का वर्ष है। इस वर्ष अखिल भारतीय वर्नाक्यु-लर अध्यापक-मण्डल स्थापित हुआ और उसका प्रथम

अधिवेशन कानपुर में हुआ। भारतीय अध्यापक-मण्डल की ओर से (अध्यापक) नामक पाक्षिक पत्र प्रकाशित होता है और मण्डल के वार्षिक अधिवेशन होते रहते हैं। इसी वर्ष के दिसम्बर मास में अखिल भारतीय फ़ेडेरेशन आफ़ टीचर्स एसोसिएशन का प्रथम अधिवेशन कानपुर में हिन्दू-विश्वविद्यालय के अध्यापक श्रीयुत शेषाद्रि के सभापतित्व में हुआ। 'एज्युकेशन' सम्पादक श्रीयुत देवीप्रसाद खत्री इस सभा के मन्त्री नियत हुए।

अभी तक महिला-समाज का स्त्री-शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं गया था। सन् १९२७ में महारानी बरोदा के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय वीमेन्स कान्फ्रेंस आन एज्युकेशनल रिफ़ार्म' का प्रथम अधिवेशन पूना में हुआ।

इन अखिल भारतीय शिक्षक-सङ्घों के स्थापित होने का पहला फल तो यह हुआ है कि प्रान्तों और रियासतों में जहाँ जहाँ सम्भव हो सका, प्रान्तीय शिक्षक-सङ्घ स्थापित हो गये हैं। वर्नाक्युलर अध्यापकों के अखिल भारतीय सङ्घ के स्थापित होने पर सन् १९२६ में मध्य-प्रान्त में और दूसरे वर्ष बिहार में वर्नाक्युलर अध्यापकों के प्रान्तीय सङ्घ स्थापित हो गये। माध्यमिक शिक्षालयों के अखिल भारतीय सङ्घ के स्थापित होने पर पञ्जाब, अजमेर और निज़ाम-राज्य में शिक्षक-सङ्घ स्थापित हुए। अखिल भारतीय महिला-सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन के पश्चात् इस सम्मेलन का कार्य संयुक्त-प्रान्त, बङ्गाल, पञ्जाब, बम्बई, मदरास और कुछ देशी रियासतों में भी होने लगा।

दूसरा फल यह हुआ है कि वार्षिक अधिवेशनों-द्वारा जनता तथा सरकार के सामने शिक्षक-समुदाय के विचार आ जाते हैं। अभी गत बड़े दिन की छुट्टियों में फ़ेडरेशन आफ टीचर्स एसोसिएशन्स की तीसरी कान्फ्रेंस का अधिवेशन कलकत्ते में हुआ था। सभापति का आसन प्रसिद्ध वैज्ञानिक डाक्टर रमन ने ग्रहण किया था। शिक्षा-विषयक अनेक प्रश्नों पर विचार हुआ और कान्फ्रेंस के मन्तव्य आवश्यकतानुसार प्रान्तीय सरकारों तथा विश्वविद्यालयों के सञ्चालकों के पास भेजे गये।

तीसरा फल यह हुआ है कि भारत के सम्पूर्ण शिक्षक-समुदाय के प्रतिनिधियों को प्रतिवर्ष एक स्थान पर मिलने का अवसर प्राप्त होने लगा है। अभी तक शिक्षक अपनी कक्षाओं में भारतीयता का पाठ ही पढ़ाया करते थे, अब उन्हें इसका अनुभव भी होने लगा है। कलकत्ते के अधिवेशन में सभी प्रान्तों के प्रतिनिधि उपस्थित थे। मदरासी, पञ्जाबी, मारवाड़ी, गुजराती, बङ्गाली—सबको एक साथ बैठकर प्रीतिभोज में सम्मिलित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रतिनिधियों में सभी श्रेणी के शिक्षक उपस्थित थे—विश्वविद्यालयों के धुरन्धर विद्वानों से लेकर देहाती पाठशालाओं के शिक्षक तक। इस सम्मेलन से शिक्षकों के आत्म-गौरव को जो लाभ पहुँचा उसकी व्याख्या करना कठिन है।

चौथा फल यह हुआ है कि शिक्षकों को एक दूसरे से मिलकर अपनी समस्याओं और अनुभवों के प्रकट करने का अवसर मिला है। भारतीय अधिवेशन ही में नहीं, प्रान्तीय अधिवेशनों में भी, शिक्षक अपने लेख पढ़ते हैं और उन पर उपस्थित सदस्य अपना अपना मत प्रकट करते हैं। इनमें से अधिकतर लेख प्रकाशित होते हैं और स्थानीय सभाओं को अपने मासिक या पाक्षिक अधिवेशनों में शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। यों इन सङ्घों के द्वारा शिक्षक-समुदाय को अपनी योग्यता बढ़ाने का अवसर मिलता है।

इन शिक्षक-सङ्घों का भविष्य क्या होगा, सो बताना कठिन है। अखिल भारतीय फ़ेडरेशन आफ़ टीचर्स एसोसिएशन स्थापित होते ही अन्तर्देशीय कान्फ्रेंस आफ़ एज्युकेशनल एसोसिएशन में सम्मिलित हुआ। गत वर्ष इस कानफ्रेंस का द्वितीय अधिवेशन कनाडा देश के टारंटो नगर में हुआ था, जिसमें इस देश से पण्डित श्रीनारायणजी चतुर्वेदी प्रतिनिधि होकर सम्मिलित हुए थे। बम्बई में आगामी नवम्बर मास में फ़ेडरेशन की ओर से एशिया महाद्वीप के शिक्षक-सङ्घों का प्रथम अधिवेशन करने की आयोजना की जा रही है। यदि राजनीति में नहीं तो शिक्षा-क्षेत्र में ही अन्तर्देशीय प्रेम के प्राप्त करने का प्रयत्न करना सर्वथा सराहनीय है। इस सम्बन्ध में फ़ेडरेशन के मंत्री श्रीयुत देवीप्रसाद खत्री के अविकल उद्योग की जो कुछ तारीफ की जाय, थोड़ी है।

ऊपर कहा जा चुका है कि भारतीय शिक्षक-सङ्घों का प्रथम उद्देश अपने स्वत्वों की रक्षा करना है। इस

उद्देश के प्राप्त करने के प्रयत्न में केवल इतना भय है कि यह सङ्घ व्यावसायिक सङ्घों की तरह वेतन बढ़ाने के लिए हड़ताल के साधन न प्रयोग करने लगें। हमें पूर्ण आशा है कि यह उद्देश केवल सङ्घों को स्थापित करने के लिए ही रक्खा गया है। हमारा अनुभव है कि ज्यों ज्यों ये सङ्घ पुष्ट होते गये हैं, उनके कार्य-क्रम से वेतन-वृद्धि का आन्दोलन कम हो गया है। स्थानीय संस्थाओं में शिक्षा-सम्बन्धी लेखों के पढ़ने तथा नई नई शिक्षा-विधियों के अनुसार पाठ्य-क्रम रखने का उद्योग बढ़ रहा है। शिक्षित-समुदाय से हमारा अनुरोध है कि वह इन सङ्घों को सन्देह की दृष्टि से न देखे। इनकी सहायता करने में वह शिक्षक-समुदाय को अधिक योग्य बनने में सहायता दे सकेगा।

लेखक स्वयं एक शिक्षक है। प्रान्तीय तथा अखिल भारतीय शिक्षक-संस्थाओं में सम्मिलित होने का उसे सौभाग्य प्राप्त है। इसलिए उसका शिक्षक-समुदाय से भी कुछ विनम्र निवेदन है। एक तो यह कि हम अपने पारस्परिक भेदभाव को दूर करने का प्रयत्न करें। शिक्षक एक ही बिरादरी के हैं, चाहे वे विश्वविद्यालय के हों या देहाती पाठशालाओं के। दूसरे यह कि अपनी योग्यता बढ़ाने का हमारा प्रयत्न अभी यथेष्ट नहीं है। यह हम मानते हैं कि हमारा वेतन कम है, तो इससे क्या? हममें आत्म-सम्मान तो है। हमी तो देश को स्वराज्य के योग्य बनाने के पुनीत कार्य में लगे हुए हैं। कितना भारी उत्तरदायित्व है! यदि जनता को हमारी फ़िक्र नहीं है तो न सही। बालकों ने हमारा क्या बिगाड़ा है? जो हम उनकी फ़िक्र न करें। इसी देश में नहीं, अन्य देशों में भी शिक्षकों को वेतन कम मिलता है। परन्तु वहां शिक्षक तन मन से शिक्षा-विधियों की जांच कर रहे हैं। सैकड़ों समितियां अपने अपने ढङ्ग पर, उन्नति के मार्ग पर अग्रसर हैं। अभी तक सात वर्षों के भीतर हमने बहुत कुछ कार्य किया है। उपर्युक्त सङ्घों के अतिरिक्त श्रीयुत मुंशीलालजी अग्रवाल ने 'न्यु एज्युकेशन फ़ेलोशिप' नामक संस्था संयुक्त-प्रान्त में स्थापित की है। काठियावाड़ के भावनगर में 'मांटेसोरी' सोसाइटी स्थापित है। खुरजा के जानकीप्रसाद-हाईस्कूल में डाल्टन प्रणाली के अनुसार शिक्षा देने का प्रयत्न किया जा रहा है। देश बहुत विस्तृत है। कहीं कहीं अन्य स्थानों में भी उत्साही शिक्षक अपने पुनीत कार्य में तन मन से लगे होंगे। परन्तु यह संस्था और प्रकाशन का युग है। किसी अगले लेख में हम फिर कभी अन्य देशों की शिक्षा-समितियों का संक्षिप्त विवरण देंगे। अभी इतना ही निवेदन अभीष्ट है कि हमारा—शिक्षक-समुदाय का—अपने सङ्घों के अन्तर्गत या बाहर, शिक्षा-समितियों-द्वारा भारतीय बालकों की शिक्षा-समस्या को हल करना प्रथम कर्तव्य है।

रेशम

[श्रीयुत वनमाली प्रसाद शुक्ल]

चीनियों के आविष्कार और अन्वेषण का प्रथम और सर्वश्रेष्ठ फल रेशम है। संसार की इस सौन्दर्य-पूर्ण वस्तु का लोग कब से व्यवहार करते आ रहे हैं, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता। साथ ही उसके गुप्त रहस्य के उद्घाटन की वार्ता पर प्रकाश डालना भी कठिन है। हां, यह निश्चय है कि जिस काल में चीनी ललनायें नाना रूप-रङ्ग के रेशमी वस्त्रों से विभूषित हो अपनी चमक-दमक से दर्शकों के नेत्रों में चकाचौंध उत्पन्न करती थीं और भूमण्डल में स्वर्ग की अप्सराओं की अलौकिक छटा प्रदर्शित करती थीं तब योरप-खण्ड के निवासी जंगली पशुओं की खाल से शरीर को आच्छादित कर संसार में दैत्यों की भयंकरता उपस्थित करते थे। जान पड़ता है कि उन

*इस लेख की बहुत कुछ सामग्री हमें कानपुर से प्रकाशित १९२७ की टीचर्स फ़ेडरेशन इयर बुक (Federation year book) से मिली है।

लेखक।

दिनों चीन में विभीषण नहीं बसता था। इसीसे रेशम और तत्सम्बन्धी रहस्य चीन राज्य के अन्तर्गत गुप्त बने रहे। नहीं तो सभ्यता के आदि सूत्रधार कहानेवाले मिस्र-वासियों के फ़ेरोह की क़ब्रों में इतिहास खोजनेवाले साहबों को उसका नमूना देखने का सौभाग्य अवश्य प्राप्त होता। पर कोई भी बात कब तक गुप्त रह सकती है? मौक़ा मिलने पर एक न एक दिन वह बाहर निकल ही पड़ती है। इस नियम के अनुसार चीन का रेशमी सूत्र भी एक दिन चीन-राज्य से बाहर निकल पड़ा और विकट मार्गों से होता हुआ पश्चिम में जा पहुँचा। उसी सूत्र ने प्राचीन पूर्वी सभ्यता से पश्चिमी सभ्यता को बाँध रक्खा है। इस बन्धन की कथा बड़ी मनोहर और विस्मयोत्पादक है। यहाँ हम उसकी चर्चा करते हैं।

चीन ने संसार को इतनी बड़ी देन कैसे प्रदान की इस पर विचार करने के पूर्व चीन के रेशम-सम्बन्धी उद्योग की ओर दृष्टि-पात करना होगा। चीन में यात्रा करनेवाले एक महोदय का कथन है कि वहाँ के जिस प्रान्त में रेशम की पैदावार उन्नत अवस्था में है, वहाँ मीलों तक शहतूत के वृक्ष पंक्तिवार लगे हैं। उनकी रक्षा उसी तरह की जाती है, जिस प्रकार काश्तकार खेत में खड़ी फ़सल की करता है। उन पंक्तियों के बीच बीच में दो-मंजिले मकान बने हैं, जिनकी छतों में प्रकाश के लिए बड़ी बड़ी खिड़कियाँ बनी हैं। उन मकानों के ऊपर के मंजिल में रेशम के कीड़े पाले जाते हैं, जो आस पास में लगे हुए शहतूत के पत्तों को खाकर अपने पालकों को मनोवाञ्छित फल प्रदान करते हैं।

अब इन मकानों में से किसी एक पर दृष्टि डालिए। देखिए, सैकड़ों कीड़े अपने निज कृत-कर्म से बन्दी बन कर कुशियारों के भीतर काल-क्षेप कर रहे हैं। जान पड़ता है कि वे किसी महत् कार्य की सिद्धि के निमित्त अनुष्ठान कर रहे हैं। क्षुधा-पिपासा का दमन करके एकान्त में जीवन व्यतीत करना अनुष्ठान नहीं तो और क्या है? इस अनुष्ठान में उन्हें लगभग अट्ठारह दिन लग जाते हैं। तब उनमें कर्म के बन्धन को काट कर जगन्नियन्ता के विशाल लीला-क्षेत्र में अपना अभिनय प्रदर्शित करने की शक्ति आती है। जन्म होते ही वे जैसे उत्साह का परिचय देते हैं, वैसा कीट-वर्ग के अन्य प्राणियों में प्रायः नहीं लक्षित होता। इसका कारण यह है कि उन्हें अपनी लीला प्रकट करने के लिए बहुत थोड़ी अवधि प्राप्त हुई है, उतने ही समय में उन्हें रंग-मंच पर उपस्थित हो कर प्रेमियों के सौन्दर्य-जाल में फँसने, अपने हाव-भाव एवं नृत्य-कौशल से उन्हें वशीभूत करके उनके साथ शरीर-सम्बन्ध जोड़ने और प्रजोत्पादन के उत्तरदायित्वपूर्ण कर्तव्य का पालन कर संसार की अनित्यता के लिए दो आँसू बहाते हुए अपनी दुःखान्त लीला समाप्त करने का कौतुक दिखाना पड़ता है।

मादा कीड़ा चौबीस घण्टे में लगभग डेढ़ सौ अण्डे देती है। इस कार्य के समाप्त होते ही वह इतनी शिथिल हो जाती है कि जिस गोंदीले काग़ज़ पर वह अण्डे देती है उससे चिपक-सी जाती है। तब मनुष्य बड़ी शीघ्रता से उसे चिमटी से पकड़ कर एक टोकनी में फेंक देता है। वहाँ वह बहुत कष्ट पाती है। इसके अनन्तर उसके बलिदान की बारी आती है। इसके लिए चीनी लोग बांस की डोंगी तैयार करते हैं और उसे तथा उसके समान प्रसव-कष्ट से पीड़ित अन्य कीड़ों को उसमें सवार करा कर जल-धारा में प्रवाहित कर देते हैं। वह वोहित भवसागर में कुछ ही दूर जाकर लहरों के सम्पर्क से मस्त होकर कुछ समय तक नृत्य करती है। फिर अपना-पराया भूल कर कीट-समाज के सहित जल-तरंग में विलीन हो जाती है। पाठक यह न समझें कि चीनी लोग भगवान् बुद्ध के अनुयायी होने के कारण उन कीड़ों का वध अपने हाथ से न कर उन्हें भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। सच तो यह है कि कीड़ों को अपने हाथों से मसल कर मार डालने में उन्हें कोई आपत्ति नहीं है। उन्हें केवल इसी बात की शङ्का रहती है कि ऐसा घृणित कर्म उस स्थान के आस पास करने से, जहाँ उन्होंने अण्डे दिये हैं, रेशम की पैदावार मारी जायगी।

रेशम के कीड़े का अण्डा अत्यन्त छोटा होता है। यदि उसके एक सौ अण्डों को तोलें तो उनका वजन मुश्किल से एक ग्रेन होगा। अप्रेल के महीने में जब शहतूत के वृक्षों में नये पत्ते निकल आते हैं तब अण्डों

से इल्लियां भी बाहर आती हैं। इसके पूर्व वे बाहर नहीं आ सकतीं; कारण कि चीनी लोग ऐसे कृत्रिम उपायों का प्रयोग करते हैं जो अण्डों को इच्छित समय तक फूटने से बचाये रखते है। इल्लियों की सेवा-सुश्रूषा करने में चीनी लोग कोई बात नहीं उठा रखते। वे उन्हें कपास का नरम बिछौना लेटने के लिए और शहतूत के कोमल तथा महीन कटे हुए पत्ते भोजन के लिए देते है। जब इल्लियां ख़ूब खा-पीकर ताज़ी-तगड़ी हो जाती है तब उन्हें बांस की टोकनी में रख कर ऊपर से शहतूत के मुलायम पत्ते डाल देते हैं। वे वहां चार सप्ताह तक पड़ी रह कर केंचुल-परित्याग की क्रिया करती है। इसके अनन्तर वे संसार को चकित करनेवाले अपने महान् उद्योग के निमित्त उपवास करती है। उस समय उनकी मुख-मुद्रा देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वे ध्याना-वस्थित होकर शान्त मन से किसी अदृश्य शक्ति से दुस्तर कार्य करने का सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या कर रही है। उनके तुच्छातितुच्छ शरीर में इतना परा-क्रम कहाँ है, जो वे संसार में अपना नाम अमर करने के लिए अपने कृत्य का जाज्वल्यमान नमूना छोड़ जांय। इसी से वे हठ-योग का अवलम्बन करके प्रकृति-माता से शक्ति प्राप्त करने का उद्योग करती है। जब तपस्या के पूर्ण होने का अवसर आता है तब उनके पैरों के बीच से रेशम के तन्तु दिखाई पड़ते हैं। उससे चीनी लोगों को ज्ञात हो जाता है कि प्रकृति ने उन्हे रेशम बनाने की शक्ति प्रदान कर दी है और वे बहुत शीघ्र नूतन सृष्टि की रचना करके उसमें गुप्त होने वाली है। इसलिए वे पयाल से भरी हुई टोकनियों या शहतूत की छोटी-छोटी टहनियों पर छोड़ दी जाती हैं। यदि कोई दर्शक चार-पांच दिन के अनन्तर उस कमरे में आये तो उसे इल्लिया नही दिखाई देगी। उनके स्थान पर अलौकिक फल के सदृश पीत और श्वेत रङ्ग के कुशियारे जहां-तहां बिखरे हुए दिखाई देंगे।

जब कुशियारा कुछ कठोर हो जाता है तब उसे कुछ घंटों तक धूप में सुखाते हैं और फिर उसमें से सूत निका-लते है। सूत का स्वाभाविक रङ्ग सफ़ेद या पीला होता है। इस कारण उसे कातने के अनन्तर मन-चाहे रङ्ग से रङ्गते हैं और तब कपड़ा बुनते है। कहा जाता है कि एक सेर रेशम के लिए लगभग बत्तीस सौ कुशियारों की ज़रूरत पड़ती है।

यह तो हुई रेशम की जन्म-कथा। अब भिन्न भिन्न देशों में उसके भ्रमण करने की बातें सुनिए। हम कह चुके हैं कि रेशम तैयार करने की युक्ति का रहस्य कई शताब्दियों तक चीनियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता था। इतने दिनों तक वह रहस्य कैसे गुप्त बना रहा, इस सन्देह के निवारणार्थ इतना ही कह देना बस होगा कि वर्तमान युग में जब यात्रा आदि का बहुत सुभीता हो गया है तबभी हम लोगों को चीनियों के रेशम तैयार करने की विधि से नाम-मात्र का परिचय है। इतिहास-वेत्ताओं का अनुमान है कि तीसरी सदी में रेशम के कीड़े और उनकी करतूत का समाचार चीन से जापान में पहुँचा और वहां से भारतवर्ष के लोगों को मालूम हुआ। पर कुछ लोग इस मत को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। वे परम्परागत एक कथा के आधार पर यह कहते है कि प्राचीन समय में चीन की एक राजकुमारी अपने साथ रेशम के कीड़ों के अण्डे और शहतूत के बीज लेकर भारतवर्ष में आई थी। उसी की कृपा से उत्तर-भारत में रेशम की कृषि और तत्सम्बन्धी उद्योग-धंधे का बीजा-रोपण हुआ। उस धंधे को भारत वर्ष में ख़ूब आश्रय मिला। इतना ही नहीं, उसका प्रसार भी हिन्दुस्थान से लगाकर मध्य-एशिया तक हो गया।

इतिहास से प्रकट होता है कि ईसा के १२६ वर्ष पूर्व चीनी लोगों को पाश्चात्य देशों का पता लगा था। उसके थोड़े समय बाद जब पूर्वी तुर्किस्तान उनके अधीन हो गया, उन्होंने रेशम के व्यापार को कुछ बढ़ाया। इसके प्रमाण में कहा जाता है कि प्रथम शताब्दी के आरम्भ-काल में एशिया-खण्ड की अन्यान्य मूल्यवान् वस्तुओं की तरह कच्चा रेशम भी रोम को भेजा जाता था। क्रमशः रेशमी वस्त्र की मांग बढ़ती गई और सोने के भाव से बिकने पर भी रोमन साम्राज्य भर में उसकी खपत बहुतायत से होने लगी। जब रोम का पतन हो गया तब भी उसका व्यापार जारी रहा, और व्यापारी लोग अपना रेशमी माल कुस्तुनतुनियां में बेचने लगे।

रेशम से इतना परिचय होने पर भी पाश्चात्य लोगों को उसके जन्म का रहस्य नहीं ज्ञात था। वे नहीं जानते थे कि यह अनुपम पदार्थ छोटे छोटे कीड़ों की सम्पत्ति है, जिसे अज्ञान मनुष्यों ने चुरा कर अपनी बना ली है।

प्राचीन काल के एक पाश्चात्य लेखक ने चीन के बने हुए अत्यन्त महीन रेशमी वस्त्र का ज़िक्र करते हुए लिखा है कि उन मनुष्यों की बुद्धि एवं कला-कौशल धन्य है, जिन्होंने पुष्प-तन्तुओं-सा महीन वस्त्र तैयार किया है, जिसमें पुष्प की जैसी सफ़ाई और मकड़ी के जाल-जैसा महीनपन विद्यमान है। रोम के विख्यात कवि वर्जिल ने इसी आशय का विचार प्रकट करते हुए कहा है कि वृक्ष के अति सूक्ष्म तन्तुओं से रेशमी वस्त्र तैयार होता है। जिन दिनों पाश्चात्य देशों में रेशम-सम्बन्धी ऐसी बातें प्रचलित थीं, उस समय चीनी पण्डित सफ़ेद रेशमी वस्त्र के टुकड़े को गोंद में डुबा कर तथा उसे शङ्ख या सीप से चिकना कर उस पर बालों की महीन कूची से, जिसका आविष्कार ईसवी सन् से ३०० वर्ष पूर्व हो चुका था, लिखने लगे थे। रेशम पर लिखने में ख़र्च अधिक पड़ता था, इसलिए उन्होंने चीह (काग़ज़) का आविष्कार किया। फिर भी चित्रकारी के लिए रेशम का उपयोग कई शताब्दियों तक होता ही रहा। इस समय भी उसका उपयोग बिलकुल बन्द नहीं हुआ है।

चीन के इतिहास से पता लगता है कि ईसा के दो सौ वर्ष पूर्व वहाँ की रेशम की पुस्तक का रूप हमारे यहा की जन्म-पत्री जैसा था। उसका वह स्वरूप काग़ज़ तथा छापे के आविष्कार हो जाने पर भी दसवीं सदी के अन्त तक ज्यों का त्यों बना रहा। रेशमी वस्त्र के टुकड़े पर लिखा हुआ एक पत्र, जिस पर ईसा के जन्म के दो सौ वर्ष पूर्व की तारीख़ पड़ी है, चीन की दीवार के एक मीनार में मिला है। उसके साथ काग़ज़ का एक टुकड़ा भी पाया गया है, जो काग़ज़ की आदि-सृष्टि के समय का कहा जाता है। मुसलमानी काल के आदि में मेसोपोटामिया वाले भी रेशम पर लिखा करते थे। जब मिस्र से उन्हें काग़ज़ (पेपीरस) मिलने लगा तब भी वे पुस्तक के आमने-सामने के दो सफ़ों के बीच में लगाने के लिए चीन के बने हुए अत्यन्त महीन रेशमी रूमाल का उपयोग करते थे, जिसमें एक सफ़े का लेख दूसरे सफ़े के लेख से रगड़ खाकर ख़राब न हो जाय। मध्य-काल की ऐसी क़ीमती पुस्तकें खोज करनेवालों को अब भी वहां मिलती हैं।

जिस समय चीनी लोग छापने की कला को कार्य का रूप देने में लगे थे, उस समय व्यापारियों का दल पाश्चात्य देशों की रेशमी वस्त्र-सम्बन्धी बढ़ती-चढ़ती लालसा की पूर्ति के निमित्त भयंकर एवं दुर्गम मार्गों में से होता हुआ एक महाद्वीप से दूसरे महाद्वीप की यात्रा करने मे लगा था। कहा जाता है कि चीनी रेशम जिस मार्ग से होकर पाश्चात्य देशों में जाता था, वही व्यवसाय का सब से अधिक लम्बा और प्राचीन मार्ग है। वह प्रशान्त महासागर के तट से आरम्भ होकर चीन, गोबी, हिमालय की तराई, तुर्किस्तान, ईरान, सीरिया होते हुए भूमध्य-सागर तक गया है। इस मार्ग की पूरी लम्बाई लगभग तीस हज़ार मील है। इसके सिवा और भी मार्ग थे, परन्तु हर क़ौम और हर जाति के व्यापारी इसी मार्ग से चीनी रेशम लाया करते थे। उन्हें पूरा मार्ग तय करने में तीन वर्ष का समय लग जाता था। मार्ग में उन्हें बड़ी बड़ी आपत्तियों से सामना करना पड़ता था। इस कारण बहुत से व्यापारी एक साथ यात्रा करते थे।

इस मार्ग का महत्त्व जैसे जैसे बढ़ता गया, वैसे वैसे इसके समीपवर्ती प्रान्तो में बड़े बड़े नगर बसते गये। अब उन नगरों में से कितनों के ध्वंसावशेष रह गये है। तो भी उससे उस विशाल प्राचीन मार्ग के गुप्त रहस्य एवं इतिहास की बहुत सी बातें प्रकट होती हैं। समरकन्द तथा बग़दाद भी इसी मार्ग के समीपवर्ती नगर थे। इसी से वहा के निवासियों को समस्त पूर्व तथा पश्चिम की ज्ञान-सम्बन्धी बातों को जानने और अपने को उन्नत दशा में ले जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सच है, एक देश के निवासी दूसरे देश के लोगों को भले ही न जानें, पर एक के विचार तथा एक की उपज दूसरे के पास किसी न किसी रीति से पहुँच ही जाती है।

इस मार्ग के खुलने का मूल-कारण यह था कि रोम को रेशम की बहुत चाह थी और वह चीन के सिवा

अन्यत्र नहीं मिलता था। इसीलिए पूर्व के व्यापारी गहरी आमदनी कमाने की इच्छा से बड़ी बड़ी आपत्तियों का सामना करते हुए चीन से रेशम के वस्त्र और कमख़ाब वहाँ ले जाते थे। इनके अतिरिक्त आलूबख़ारा, चाय, घोड़ा, चीनी के बर्त्तन, काग़ज़, ताश, बारूद, परकार तथा ऐसी ही अनेक वस्तुएँ जो वहा वालों के लिए नई थी, ले जाते थे और लौटती बार अंगूरी शराब, गाजर, काच के सामान, यूनानी कला की वस्तुएँ तथा ऐसी ही दूसरी चीज़े, जो पूर्व मे नहीं मिलती थीं, लेकर आते थे। एक लेखक का कथन है कि चीन से चौबीस प्रकार की कारत-कारी की जिन्सें उन व्यापारियों ने पश्चिम में पहुँ-चाई थीं।

लेन-देन का यह व्यापार रोमन लोगों के समय से लगाकर मध्य-काल तक जारी रहा। इसके प्रमाण के लिए खोजियों ने बहुत कुछ सामग्री प्राप्त कर ली है। सर्व प्रथम खोजियों का एक दल भारत-सरकार की ओर से उपर्युक्त मार्ग के सम्बन्ध की बातों का पता लगाने के लिए भेजा गया था, उस दल के लोगों को तक्लमकन के मरुस्थल में लकड़ी के टुकड़े प्राप्त हुए, जिन पर भरत-खण्ड की प्राचीन भाषा लिखी थी। इनके सिवा उन्हें व्यापारियों के खोये हुए सिक्के, युद्ध के प्राचीन अस्त्र-शस्त्र, खजूर तथा दाख के उजड़े हुए सूखे उद्यान, बीस सौ वर्ष पूर्व की बस्तियों के खण्डहर और छोटी-बड़ी क़ब्रें, जिनमें चीनी रेशम और कमख़्वाब रक्खे थे, देखने को मिले। इसके पश्चात् 'रायल ज्याग्रेफ़िकल सोसाइटी' की ओर से खोजियों का दूसरा दल उस मार्ग के अनुसन्धान के लिए भेजा गया। उस दल के साहबों को उस मार्ग के निकट-वर्ती स्थानों में हूण वंश की टीलानुमा एक क़ब्र मिली। उसके भीतर जाकर उन्होने देखा कि क़ब्र की दीवार हलके भूरे रंग के वस्त्र से मढ़ी हुई है और उस पर घुड़-सवार, तीर, पक्षी और सर्प की आकृतियां रेशम के महीन तन्तुओं से कढ़ी हुई हैं। इनके सिवा अक्षरों की जगह चित्र की लिखावट तथा यन्त्र-तन्त्र के चिह्नों से युक्त रेशम की दरी भी उन्हें वहाँ दिखाई पड़ी। यहाँ यह लिख देना उचित होगा कि चीन का यह प्राचीन वंश रोमन साम्राज्य के स्थापित होने के समय अर्थात् इसी के दो सौ वर्ष पूर्व क़ायम था, जब कि पूर्व और पश्चिम का सर्व-प्रथम सम्बन्ध हुआ। शाही ख़ानदान की एक महिला की क़बर का भी उन्हे पता लगा था। उसमें महीन रेशम के चिथड़े, धातु के बने हुए तरह तरह के पात्र, आइना और रेशमी कामदार थैली रक्खी हुई मिली थी। इन सब से अधिक आश्चर्य तथा महत्त्व की वस्तुएँ मंगोलिया के खाराखोटो नगर मे प्राप्त हुई थीं, वहां भिन्न भिन्न विषयों की हज़ारों पुस्तकें मिली थीं, जिनमें रेशम पर बने हुए रङ्गीन चित्र लगे थे। भगवान् बुद्ध के भी सुन्दर एवं भावपूर्ण कई चित्र प्राप्त हुए थे, जो रेशमी पट पर अङ्कित थे। इस खोज से चीनियों की सभ्यता तथा उनके रेशम-सम्बन्धी उद्योग-धन्धे की प्राचीनता तो सिद्ध हुई है, इसके सिवा यह भी निश्चय हुआ है कि छापने की कला यूरोप मे आविष्कृत होने के बहुत काल पहले से चीनी लोग जानते थे।

लगभग छठीं सदी मे रेशम के व्यापार का वह मार्ग बन्द हो गया। वह क्यों बन्द हो गया, इसकी कथा बड़ी लम्बी है, उसकी चर्चा के लिए समय और स्थान दोनों का अभाव है, अतः अपने विषय के सम्बन्ध की केवल मोटी-मोटी बातों का दिग्दर्शन करा कर हम अपने लेख को समाप्त करते है। उस समय तुर्क-साम्राज्य बहुत बढ़-चढ़ रहा था। इससे ईरान को बड़ा भय हुआ और उसने उस मार्ग को एकदम बन्द कर दिया। रोमन सम्राट् जुस्तीनियन ने बड़ी-बड़ी कोशिशें कीं कि ईरान उस मार्ग को खोल दे। परन्तु फल कुछ नही हुआ। इस समय कुछ नेस्तोरियन पुरोहित पूर्व से सन्देश लाये कि रेशम वृक्ष-तन्तुओं से बनी हुई वस्तु नहीं है जैसा कि वर्जिल ने लिखा है, किन्तु वह छोटे-छोटे कीड़ों की अनोखी करतूत का फल है। उन कीड़ों के अण्डे होते हैं, जो प्रयत्न करने से योरप में लाये जा सकते है। बादशाह उस ख़बर से ख़ुश हुए और उन्होंने उन पुरोहितों को हर तरह से उत्साहित कर इस कार्य के लिए चीनी तुर्किस्तान को भेजा। वहां सन् ४११ से रेशम की पैदावार होने लगी थी। वे लोग मार्ग की कठि-नाइयों को झेल कर चीनी तुर्किस्तान पहुँचे और रेशम के कीड़े के अण्डों को तुर्कों की दृष्टि से बचाने की इच्छा से बांस

के डंडे की पोल में भर कर ले आये। यह बात सन् ५५० ईसवी की है। योरप में उन अण्डों से निकले हुए कीड़ों के परिवार क्रमशः बढ़ते गये। इस समय वहाँ रेशम के कीड़ों की जितनी जातियाँ तथा क़िस्में पाई जाती हैं वे सब उन्हीं कीड़ों की सन्तान हैं।

यूनानी लोगों के उद्योग से विज़ानटियम नगर में रेशम का एक कारख़ाना खुला, जो योरप में रेशम का सर्व-प्रथम कारख़ाना माना जाता है। उसकी ख्याति भी ख़ूब हुई, क्योंकि वहाँ जो रेशम तैयार होता था वह बहुत बातों में पूर्व के रेशम के समान था। जुस्तूनियन की मृत्यु के अनन्तर अरब लोगों ने रेशम तैयार करना सीखा। मध्ययुग में उन्हीं ने कुछ अपने यहाँ का और बहुत सा चीन का रेशम देकर योरप की रेशम-सम्बन्धी आवश्यकता की पूर्ति की। तेरहवीं सदी से पश्चिमी योरप में रेशम की पैदावार हो रही है। पहले इटली में रेशम का कारोबार शुरू हुआ, फिर फ़्रांस, स्पेन, इँग्लिस्तान आदि में भी होने लगा।

कृत्रिम रेशम तैयार करने की युक्ति का आविष्कार हो गया है, तो भी सच्चे रेशम की माँग संसार में प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। वायुयान बनाने के लिए रेशमी वस्त्र की आवश्यकता ही इसका मूल कारण है। इसमें सन्देह नहीं कि वायुयान की उन्नति के साथ-साथ रेशम के उद्योग की भी वृद्धि होगी। इस समय संसार भर में जितना रेशम खपता है उसका चतुर्थांश अकेला चीन देता है। शेष भाग जापान, बंगाल, ईरान, इटली और लीमान्ट से प्राप्त होता है।

मरण-काल

[श्रीयुत रामदास गौड़, एम० ए०]

(१) विषय का महत्त्व

मैं कौन हूँ, जगत् क्या है, इससे मेरा क्या सम्बन्ध है, वह सम्बन्ध कैसा होना चाहिए, जगत् का और मेरा उद्देश्य क्या है, दोनों का अन्त कैसे होता है, इन प्रश्नों की खोज में ही ज्ञान-विज्ञान का विकास होता है। गणित, भूगोल, खगोल, भौतिक, रसायन, जीव-विज्ञान आदि सभी विज्ञानों की अपेक्षा मनुष्य के लिए सबसे अधिक उपयोगी आयुर्वेद है। परन्तु आयुर्वेद की अपेक्षा भी कहीं अधिक महत्त्व का विषय, जन्मान्तर माननेवालों के लिए **परलोक विद्या** है। गणित या रसायन या ऐसे अन्य विज्ञानों के परिशीलन में लोग जितना धन, श्रम और आयु लगा देते हैं, परलोक विद्या में उससे कहीं अधिक लगाने की आवश्यकता है। यों तो मनुष्य-मात्र इस बात की दृढ़ आकांक्षा रखता है कि हम इस बात को निश्चयपूर्वक जान लें कि मरने के बाद क्या होंगे और क्या दशा होगी और इसी आकांक्षा की पूर्ति प्रत्येक धर्म और सम्प्रदायवाले अपनी अपनी परलोक-कल्पना में करते हैं। जो धर्मवाले पुनर्जन्म नहीं मानते वे भी कर्मफल का भोगना, नरक की यातना और स्वर्ग का सुख एवं न्याय का एक दिन मानते हैं। यह हुई उनकी बात जो शरीर छूट जाने पर भी आत्मसत्ता का बना रहना मानते हैं। जो लोग आत्मसत्ता का भी शरीर के साथ नाश मानते हैं वे परलोक के झंझट से बिलकुल बरी रहते हैं। परन्तु जो जन्मान्तर भी मानते हैं, उनके लिए केवल परलोक का ही प्रश्न महत्त्व का नहीं है। उनके लिए बड़े महत्त्व का प्रश्न है **कर्म का नियम**। इसी कर्म के नियमों पर ही पूर्वजन्म, वर्त्तमान-जीवन, भविष्य-जीवन, पुनर्जन्म, सुख-दुःख और मोक्ष सभी कुछ निर्भर है। इधर गत पचास वर्षों के अन्वेषण में परलोकविद्या के सभी खोजियों का यही निष्कर्ष रहा है कि पुनर्जन्म एक सिद्ध घटना है और सृष्टि के विकास में यह एक अनिवार्य्य नियम है।

कर्म्म के नियमों के सम्बन्ध में परान्वेषण सम्प्रदायियों ने कोई खोज नहीं की है और हमें अपने यहां के दर्शनों से अधिक वैज्ञानिक प्रतिपादन और कहीं भी नहीं मिल सकता। अतः मरण-काल के सम्बन्ध में खोजों का निष्कर्ष देने के पहले सूक्ष्म रूप से कर्म के नियम को भी समझ लेना चाहिए।

(२) कर्म के नियम

कर्म का सिलसिला अनादि काल से चला आया है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है। परन्तु सभी कर्म एक तरह के नहीं होते। किसी कर्म का फल तुरन्त मिलता है, किसी का कई जन्मों में मिल सकता है। यदि मार डालने का दंड मारा जाना ही हो और मान लीजिए कि किसी ने एक जन्म में दस मनुष्यों की हत्या की तो उस हत्यारे को दस बार प्राणदंड एक ही जन्म में नहीं मिल सकता। इस उदाहरण से यदि विश्व में न्याय है तो अनेक बार जन्म लेना भी आवश्यक होना चाहिए। यदि अनेक जन्म हैं तो किसी क्रिया का फल जो इस जन्म में नहीं मिला है, आगे के जन्मों में मिल सकता है, दिये हुए ऋण का ब्याज-सहित परिशोध हो सकता है, ब्याज-समेत बदला चुकाया जा सकता है। साथ ही जीवात्मा की उन्नति और **अवनति** दोनों हो सकती हैं। इस दृष्टि से कर्म तीन प्रकार के होते हैं—

(१) **संचित** वे कर्म जिनका फल भविष्य में **प्रारब्ध** होकर भुगतेगा जो अभी पाप और पुण्य (जमा और नाम) खाते लिखे हुए हैं।

(२) **प्रारब्ध**, वे संचित कर्म जिनके भोग के रूप में भोक्ता का जन्म, शरीर (इन्द्रियाँ आदि) स्वभाव, और निमित्त (माता पिता, देशकाल आदि सम्पूर्ण परिस्थिति) आदि बनते हैं, और जिनके अनुसार इनमें आगे भी परिवर्त्तन होते रहते हैं।

(३) **क्रियमाण**, वे नये कर्म जो मर्त्यलोकी प्राणी करता रहता है, जिनके फल के दो विभाग होते रहते हैं, **तात्कालिक प्रारब्ध** और **संचित**। तात्कालिक प्रारब्ध चाहे वर्त्तमानकाल में और चाहे उसी जन्म में किसी समय भुगत जाता है। दूसरा विभाग आवागमन के चक्र को बनाये रहता है और मर्त्यलोक वा मानवलोक में ही वर्त्तता है। प्रेत या अन्य किसी पारलौकिक योनि में क्रियमाण का संचय नहीं होता।

जिन प्रारब्ध कर्मों के फल से शरीर और देश, काल, निमित्त का संघात होता है, उनका भोग पूरा होने पर आयु पूरी हो जाती है और स्वाभाविक मृत्यु हो जाती है। इसका समय (अर्थात् पूर्णायु) जन्मकाल में ही नियत हो जाता है, परन्तु यह संघात बाहरी प्रहार से भी नष्ट हो जाता है। विष से, कीटाणुओं और जीवाणुओं से, हिंस्र या विषैले पशुओं की चोट से, मनुष्य की हिंसा से, प्रेत, यक्ष आदि नीच देव योनिवालों के प्रहार से या अग्नि, जल, वायु आदि भूतों के आक्रमण से पूर्णायु के पहले भी शरीर छूट जाता है। परन्तु आयु पूरी हो जाने पर प्रारब्ध-पूर्त्ति के समय भी बाहरी कारण उपस्थित हो जाते हैं और मृत्यु भीतरी बाहरी दोनों कारणों से हो जाती है। जहां पूर्णायु नहीं भुगती है और बाहरी प्रहार से ही मृत्यु होती है, वहां "**अकाल मृत्यु**" कही जाती है। बाहरी कारणों के होते भी यदि पूर्णायु पर मृत्यु हो तो वह "काल" मृत्यु होती है।

(३) मरने से भय

मरण एक ऐसी अनिवार्य्य घटना है जो प्राणीमात्र पर घटती है। कोई प्राणी इसका अपवाद नहीं है। कोई ऐसा उपाय आज तक आविष्कृत नहीं हुआ जिससे यह घटना एक-दम दूर हटा दी जा सके। स्वास्थ्य के उपाय से, योग के साधनों से, संयम नियम प्राणायाम प्रत्याहार से मनुष्य चिरायु भले ही हो ले परन्तु अबेर सबेर किसी न किसी दिन मरना ही पड़ेगा। "अमर" शब्द जो देवताओं के लिए प्रयुक्त होता है, वस्तुतः सापेक्ष है। किसी को दो चार हज़ार बरसों में, किसी को लाख दो लाख बरसों में, किसी को युगान्त में, किसी को मन्वन्तर के अन्त में और सभी अमरों को कल्पान्त में तो अवश्य ही मरना पड़ता है। भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्गलोक प्रलय में नष्ट होनेवाले लोक हैं, परन्तु कल्पान्त-प्रलय में तो सभी लोकों का अन्त हो जाता है। ब्रह्मा ही बच

जाते हैं। परन्तु ब्रह्मा अपनी आयु भर जीते हैं। आयु तो विष्णु और शिव की भी है। निदान जो सृष्टि और स्रष्टा देश और काल के अन्तर्गत हैं उनका अन्त होना निश्चित है। प्रकृत अमर वही परमात्मा है जो देश से असीमित, काल से परे और बुद्धि से अचिन्त्य है।

मरना सबको है, परन्तु मरने की इच्छा कोई नहीं करता। संभव है कि कोई किसी कारण से मृत्यु से न डरे, परन्तु मृत्यु की अभिलाषा किसी प्राणी को नहीं होती। मृत्यु के अज्ञात भय और अकारण अनिच्छा प्रकृति है, स्वभाव है। हलाहल जब समुद्र से निकलता है, सभी देवता-दैत्य जलने लगते हैं। उनकी रक्षा की आवश्यकता होती है, भगवान शंकर उसे पी लेते हैं और देवता बच जाते हैं, नहीं तो मर जाते। उनका दिव्य शरीर छूट जाता, शायद उन्हें नीच योनियों में जन्म लेना पड़ता। शायद उनकी अधोगति होती। परन्तु यदि अधोगति का भावी भय न भी होता, तो भी तत्काल ही जलने का दुःख तो होता ही। शायद मरने में भी कष्ट होता। भस्मासुर ने जब भगवान् शंकर को ही भस्म करना चाहा तो उन्हें भी चिन्ता हुई कि यह हमको जला देगा। मृत्यु के पहले होनेवाली पीड़ा का भय मृत्यु से अधिक भयानक है, क्योंकि मरने के पहले अनेक कड़ी यातनायें भुगतनी पड़ती हैं। मृत्यु के पीछे क्या होता है, इसका पता नहीं है, इसी लिए अज्ञात भय होता है।

भारतीय दार्शनिक दृष्टि से मरना केवल शरीर छोड़ देना है। मनुष्य जहाँ कहीं थोड़े काल तक भी रहता है उस स्थान से उसके मन में अनुराग हो जाता है। फिर जिस शरीर में वह बहुत काल तक रहा, यदि उसके छूटने में उसे वियोग का दुःख हो तो स्वाभाविक ही है। फिर मरने पर केवल शरीर के वियोग का दुःख तो नहीं है, पुत्र, कलत्र, स्वजन, मित्र, सुख की सामग्री सबसे तो वियोग हुआ ही जाता है, दुःख क्यों न हो। सच पूछिए तो स्वजन-परिवार, मित्र आदि भी सुख की सामग्री ही हैं। क्या पता कि परलोक में कैसी पड़ेगी, क्या सुख-दुःख मिलेगा। जिन वस्तुओं में हम वर्त्तमान काल में सुख प्रतीत करते हैं उनमें अधिकांश ममता का बन्धन इसी लिए हुआ करता है कि आगे उनसे अच्छी और अधिक सुखकर सामग्री मिलने का निश्चय नहीं होता।

संसार के सभी पुराणों में रोचक और भयानक कथाएँ देकर मनुष्य के जीवन को सत्पथगामी बनाने की चेष्टा की गई है। स्वर्ग का सुख और नरक की यातना, मरने के बाद दोनों दृश्य दिखाये गये हैं। उद्देश्य स्पष्ट ही है। आस्तिक मनुष्य इसी लिए फूँक फूँक कर क़दम रखता है। डरता रहता है कि मरने पर न जाने क्या हो। यह बात भी मशहूर है। "जन्मत मरत दुसह दुख होई" और इसी कल्पना से जन्म-मरण के बन्धन से छूटने के लिए भी लोग यत्न करते हैं, मोक्ष को ही सबसे उत्तम जानते हैं।

सर्व-साधारण के मृत्यु से भय का कारण भविष्य के सम्बन्ध में अज्ञान, मृत्युकाल की यातना का त्रास, वर्त्तमान सुख की सामग्री से ममता और वियोग का भय ही होता है। अब यह विचार करने की बात है कि भय के ये सब कारण कहाँ तक ठीक हैं? क्या मृत्यु सचमुच डरने की चीज़ है? क्या किसी तरह मृत्यु के भय से हम बच सकते हैं? क्या मृत्यु के पहले और पीछे यातना होती है? यदि होती है तो सबको समान रूप से होती है अथवा किसी को होती है किसी को नहीं? क्या मृत्यु के समय और पीछे सुख भी होता है? क्या मृत्यु के बाद मरनेवाले को स्वजनों की याद और मुहब्बत रहती है, क्या वह उनसे सहानुभूति रखता है अथवा उन्हें भूल जाता है? सभी विचारवान् मनुष्यों को इन प्रश्नों के सम्बन्ध में कुतूहल रहता है। इसलिए हम इन प्रश्नों पर आज-कल की परलोक विद्या की दृष्टि से विवेचन करेंगे।

(४) मरने से ठीक पहले क्या होता है?

मरनेवाला कैसी दशा में मरता है, क्या कोई निश्चित बात नहीं है। एक रोगी बीसों बरस चारपाइयों पर पड़ा पड़ा घुलता है। उसके शरीर में निरन्तर पड़े रहने से फोड़े हो जाते हैं और अन्त में बड़े कष्ट से दम घुट घुट कर शरीर छूटता है। किसी किसी को तड़फ तड़फ कर शरीर छोड़ते देखा है। कोई कोई जीवन भर सुखी और स्वस्थ रहते हैं और अन्त में घण्टे आधे घण्टे अस्वस्थ होकर शरीर-त्याग करते हैं। प्रयाग के प्रसिद्ध एडवोकेट

प्रेम-विह्वलता
मुझे तो खुद भी नहीं अपना मुद्दआ मालूम।—असग़र

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग
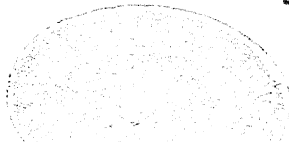
और नेता सर सुन्दरलाल सारे जीवन स्वस्थ और सुखी थे। एक छुट्टी के दिन गङ्गाजी स्नान को जाने की तैयारी मे थे। एकाएक शरीर शिथिल हो गया। सारा शरीर पसीने से भीग गया। आधे घण्टे तक चुपचाप लेटे रहे। हृदय की गति एकाएकी रुक गई। शरीर छूट गया। डाक्टरों ने परीक्षा करके कहा कि हृदय पर चरबी छा गई इससे रक्त की गति रुक गई। बम्बई के स्पीशी बैङ्क के सर्वस्व सेठ चुन्नीलाल सरैया आफ़िस जाने को तैयार हुए। ज़रा घबराहट मालूम हुई। कुरसी पर बैठ गये। थोड़ी देर मे बैठे ही बैठे देहावसान हो गया। एकाएक हृदय की गति बन्द हो गई। क्षय-रोगी के हृदय की गति प्रायः धीरे धीरे बन्द होती है। किसी साधु-महात्मा का मरण अद्भुत देखा गया है। उन्हे पहले से मृत्यु का समय मालूम हो गया। वे भगवान् के ध्यान में बैठ गये। सब लोग राम राम करने लगे। इस तैयारी से शरीर छूट गया। कोई कष्ट नहीं हुआ।

वैज्ञानिकों के मत से मृत्यु जिन जिन रीतियों से होती है, सबको इन चार प्रकारों मे बांट सकते है—

(१) हृदय की गति एकाएक बन्द हो जाने से,—जो या तो हृद्रोग अथवा रक्त-संस्थान में किसी विषम रोग के कारण अथवा नाड़ी-मंडल पर एकाएक असह्य धक्का लगने से हृदय पर प्रतिक्रिया हो जाने से होती है।

(२) यक्ष्मा आदि क्षय रोगो या ज्वर के विषो से धीरे धीरे सम्पूर्ण शरीर के क्षीण हो जाने से, हृदय की गति धीरे धीरे मन्द होती जाती है, अन्त में रुक जाती है।

(३) डूबने से या किसी और कारण से जब दम घुट जाता है और फेफड़े के भीतर वायु नहीं जा पाती।

(४) मस्तिष्क पर भारी चोट पहुँचने से अथवा अफ़ीम, मद्यसार, सर्प, हैज़ा आदि के विषों से रक्त-संचार-द्वारा ये मस्तिष्क तक पहुँच जाते है, गहरी बेहोशी आ जाती है। इसी बेहोशी में प्राणान्त हो जाता है।

इन चारों रीतियो मे किसी एक रीति से या दो या तीन सम्मिलित रीतियो से भी मृत्यु होती है। रक्त-संचार और श्वास का बन्द हो जाना, शरीर की गरमी का दूर हो जाना, और कहीं चीर देने से दोनों किनारों के उभर आने के बदले बैठ जाना मृत्यु के प्रधान लक्षण है। मृत्यु के कुछ पीछे चहरे और गर्दन से आरम्भ करके मांस-पेशियां अकड़ जाती है और २४ से लेकर ३६ घंटे तक कड़ी बनी रहती है। मृत्यु के बहुत पीछे के लक्षणों पर विस्तार करने की यहां आवश्यकता नहीं है। मृत्यु के समीपतम कारण चिकित्सकों की दृष्टि से यही है। इन समीपतम कारणों के हेतु सैकड़ों तरह के हो सकते हैं। उन पर भी विस्तार करना व्यर्थ है।

हिन्दुओं के दार्शनिक मत के अनुसार मृत्यु के कारण साधारणतया तीन होते है—

(१) **दैहिक ताप,** अर्थात वात, पित्तादि तीनों दोषों से उत्पन्न शारीरिक रोग, जिसे चरक ने "निज" रोग कहा है।

(२) **भौतिक ताप,** या वे रोग या दोष जो बाहर से प्रहार के कारण होते है, जैसे, सर्प-दंशन, शेर का आक्रमण, भूत-प्रेत का आक्रमण अथवा डूबना, जलना या बाहर से किसी तरह की चोट खाना इत्यादि।

(३) **दैविक ताप,** अर्थात् हैज़ा, मरी, विस्फोटक आदि संक्रामक रोग, ग्रहदशा से उत्पन्न पीड़ा, नीच देवताओं की ओर से प्रहार, तथा मंत्र-यंत्र त्रोटक, शाप आदि का परिणाम।

चरक ने भौतिक और दैविक दोनों प्रकार के तापों को "आगन्तुक" बतलाया है। तीनों तापों के उपर्युक्त विभाग प्रस्तुत प्रसङ्ग में प्रयोजनीय है।

थोड़ा-सा विचार करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि कम से कम दैहिक और भौतिक तापो से मनुष्य निरन्तर पीडित होते रहते है। खटमल, मच्छर, कुटकी आदि के काटने की पीड़ा, अदृश्य कीटाणुओं और प्रेतों के प्रहार आदि भौतिक और वात पित्तादि के घटने, बढ़ने, तथा कुपित होने की दैहिक पीड़ायें तो साधारण और नित्य की

बातें हैं। इन तीनों तापों की पीड़ा जब आत्यन्तिक दशा को पहुँचती है कि शरीर जीवात्मा के ठहरने अथवा संसार का उद्देश-पालन करने के योग्य नहीं रह जाता तब शरीर का एक-दम वियोग या अन्त हो जाता है। उग्र विष से या मर्म्मस्थल पर चोट लगने से भी संघात नष्ट हो जाता है। ग्रहों की अनिष्ट दशा भी संघात का विघातक हो जाती है। इसे दैवी ताप कहते हैं। लोग जो यह शङ्का ज्योतिष के सम्बन्ध में किया करते हैं कि एक ही मुहूर्त्त में हज़ारों बालक संसार में उत्पन्न होते हैं तब सबकी दशा एक-सी होनी चाहिए, परन्तु होती नहीं। इसका उत्तर यह है कि बिलकुल ठीक ठीक एक ही मुहूर्त्त सबका न होने के अतिरिक्त हर एक का प्रारब्ध, हर एक का संस्कार अलग अलग होता है, और परिस्थिति-भेद से हर एक पर भौतिक ताप का भिन्न प्रभाव पड़ता है। दैहिक पीड़ायें और दशायें भी भिन्न होती हैं। इस प्रकार अनेक विभिन्न कारणों के संयोग-वियोग से व्यक्तियों का भाव नितान्त अलग अलग होता ही है।

तीनों प्रकार के कर्मों का और तीनों तरह के तापों का पूरा हिसाब-किताब न रक्खा जाय तो प्रत्येक प्राणी का जीवन अनियमित हो जाय। इसी लिए चराचर जीव का बही-खाता होना भी ज़रूरी है। मेंडेले एफ़ ने जिस प्रकार नियम के अनुमान से रसायन-शास्त्र के नये नये मौलिकों की खोज की, ठीक उसी तरह ऐसी पारलौकिक संस्था का हम अनुमान कर सकते हैं जिसमें विश्वभर के चराचर प्राणी का हिसाब-किताब रक्खा जाता हो। मेरा यह अनुमान पहले का है और पुराणों से मेरे इस अनुमान की पूरी सिद्धि हो जाती है—यमपुरी और चित्रगुप्त की कचहरी का वर्णन पुराणों में पर्य्याप्त-रूप से है। पारलौकिक जाचों से भी पुराणों का समर्थन होता है।

किसी मनुष्य की मृत्यु होनेवाली है। जिस परगने में वह रहता है उस परगने का लेखक उसका परवाना बनाता है और यम की आज्ञा से आवश्यकतानुसार एक या अधिक दूतों को वह परवाना मिलता है। निश्चित मुहूर्त्त पर वे उस मनुष्य के पास पहुँच जाते हैं और अपने काम में हाथ लगा देते हैं। कभी कभी ये दूत मरनेवाले को देख पड़ते हैं और कभी नहीं भी देख पड़ते। कुछ हो ये दूत लिङ्गदेह या प्रेत शरीर को स्थूल से सदा के लिए अलग कर देते हैं, फिर स्थूल के चेतन को अलग करके प्रेत-शरीर के चेतन में लय कर देते हैं और स्थूल देह को छोड़ देते हैं। प्रेत शरीर जिस मार्ग से यमराज के दरबार में ले जाया जाता है वह नितान्त अन्धकारमय होता है। वह पहले जिस कठघरे में खड़ा होता है वह भी अन्धकार से आवृत रहता है। प्रेतात्मा नहीं जानती कि मुझे कौन कहा लिये जा रहा है, कहा आकर मैं रुका हूँ, क्या हो रहा है। मरनेवाले को मरते समय एक क्षण भर असह्य कष्ट प्रतीत होता है, फिर वह प्रायः बेहोश हो जाता है। फिर स्थूलदेह छोड़ते ही उसे होश भी होता है तो वह घोर अन्धकार के कारण कुछ नहीं देख पाता। एकाएक माध्यम और इन्द्रियों के बदल जाने से वह कुछ सुन भी नहीं सकता। यम की सभा में खड़े रहते भी उसे कुछ पता नहीं होता। उसके कर्मों का लेखा होता है, उसके लिए हवालात में रखने की आज्ञा होती है।

परन्तु यह सब वह कुछ नहीं जानता। उसके लिए वही स्थान प्रायः हवालात बन जाता है; जहाँ उसकी मृत्यु हुई है। उस जगह उसके प्रेत-शरीर की नई इन्द्रियाँ कुछ कुछ धुँधला-सा देखने लगती हैं। कुछ ज़रा ज़रा सुनने भी लगती हैं। परन्तु उसे यह बिलकुल याद नहीं आता कि इस वर्त्तमान दुरवस्था के पहले वह कहां था, कैसा था। रोना-चिल्लाना कुछ कुछ सुनता है, पर उसे अपनी दशा की याद नहीं आती। अतः वह समझ नहीं पाता। परन्तु किसी अज्ञात कारण से रोना सुनकर उसका जी बेतरह घबराता है। उसकी वर्त्तमान लाचारी भी घबराहट का कारण होती है। अभी उसको न कोई दुःख है, न सुख, वह एक प्रकार की अर्धचेतन अवस्था में है। जिन मरनेवालों की लाश बहा दी जाती है या गाड़ दी जाती है, उनके लिए हवालात लाश के पास ही रहती है।

उस अर्धचेतन अवस्था में प्रायः प्रेतात्मा किसी को सता नहीं सकता। लग नहीं सकता। उससे किसी को कोई भय न होना चाहिए, हवालात का समय प्रा दस से लेकर तेरह दिन तक रहता है। इस बीच में यह निश्चय हो जाता है कि (१) प्रेत को कैसी और कितने

काल की यातना दी जायगी, (२) कितने काल तक नज़रबन्दी के साथ प्रेतावस्था रहेगी, (३) कितने काल तक साधारण प्रेतावस्था रहेगी, (४) किस समय प्रेत-शरीर छोड़कर पितृलोक में जाना होगा, (५) वहां कैसी अवस्था में रहना होगा और (६) पितृलोक कब छोड़ना होगा। इसका पूरा विस्तार-पत्र इस अवधि में बन जाता है तब प्रेत हवालात से निकाला जाता है और पूर्व-निश्चित दशा को पहुँचता है। यातना के समय को छोड़कर शेष सम्पूर्ण प्रेतावस्था में प्रेतात्मा या तो अपनी क़ब्र में रहती है या उस स्थान पर रहती है जहां उसकी मृत्यु हुई है। प्रेतावस्था के सुख-दुःख उसे उसी जगह मिलते हैं। वह उस जगह एक-दम क़ैद नहीं रहती। जहां चाहे वहां जा सकती है। कभी कभी उसी स्थान पर क़ैद भी रहती है और यातना भी भोगती है। यातना भोगने के काल में प्रायः वह यातना के विशेष स्थान में, नरक लोक में, ही रहती है। यमलोक और नरक हिन्दू-पुराणों में दक्षिण-दिशा में बताया गया है। यूनानी पुराणों में पाताल में या नीचे की दिशा में बताया गया है। साधारण पढ़े-लिखे लोग नक़शों या भूगोल के ग्रन्थों में न तो कहीं दक्षिण में कोई ऐसा स्थान पाते हैं और न अमेरिका में ही पता लगता है। इस तरह खोज करनेवाले एक भारी भ्रम में हैं। समझते हैं कि यम-लोक स्थूल संसार है। वे इस बात को भूल जाते हैं कि भूलोक भुवर्लोक के लिए भुवर्लोक स्वर्लोक के लिए और स्वर्लोक महर्लोक के लिए स्थूल और गोचर है। स्थूल लोकों के लिए सूक्ष्मलोक अगोचर है। यमलोक भुवर्लोक का एक भारी भाग है। उसी में पितृलोक है। वह भूलोक के भूगोल में कैसे मिल सकता है? भुवर्लोक है पृथ्वी पर ही और दक्षिण दिशा में ही है, परन्तु वह स्थूल शरीर के लिए दृष्टिगोचर नहीं है।

हमने साधारण पाप-पुण्यवाले प्राणियों की पूर्णायुगत मृत्यु का वर्णन किया है। अब भौतिक बाधा द्वारा अकाल मृत्यु पर विचार कीजिए।

हम कह चुके हैं कि सर्प, मनुष्य, हिंसक जन्तु आदि के आक्रमण से जो मृत्यु होती है वह भिन्न प्रकार की होती है। गोली लगने से धुकधुकी बन्द हो गई या सखिया खालेने से प्राणान्त हो गया, उस समय एकाएक मनुष्य अन्धकार में डूब जाता है, चेतना-शून्य हो जाता है। यह संज्ञा-हीनता उस समय धीरे धीरे मिटने लगती है जब जीवन-सूत्र टूट जाता है या टूटने के लगभग हो जाता है। धीरे धीरे होश आने पर उसे ऐसा जान पड़ता है कि नींद से उठ रहा है। एकाएक शरीर अत्यन्त हलका जान पड़ा। देखता है कि उसकी लाश पड़ी हुई है। अब उस घटना की याद धीरे धीरे आती है जिससे मृत्यु हुई है। फिर लाश का अन्त्येष्टि-संस्कार कराने वह साथ ही साथ जाता है। यदि समाधि दी गई तो वह कभी समाधि पर और कभी अपनी मृत्यु के स्थान पर रहता है। स्वजनों के दुःख से उसे दुःख होता है। उनसे बातचीत न कर सकने से वह बेतरह घबराता है, पर कुछ कर नहीं सकता। उसके प्रेम, क्रोध, भय आदि सभी भाव प्रबल होते हैं, पर अवस्था से लाचारी होती है। दस से तेरह दिनों तक उसकी अनिश्चित दशा होती है, फिर उसके सम्बन्ध में यम-द्वारा यह निश्चित हो जाता है कि कब तक वह किस दशा या किस योनि में रहेगा।

यदि भौतिक ताप देनेवाले दुष्ट प्रेत हैं? उन्हीं ने सर्प शरीर में आवेश करके अथवा सर्प बनकर काटा है अथवा रोगी की अत्यन्त दुर्बल अवस्था में किसी और प्रकार से प्राणों के घातक हुए हैं, तो वे अकाल-मृत्यु से मरनेवाले के प्रेत-शरीर को अपने साथ ले लेते हैं। वह प्रेतात्मा उन दुष्ट प्रेतों का मुक़ाबला नहीं कर सकती और न भाग सकती है। ऐसी दशा में वह किसी प्रबल आध्यात्मिक शक्तिवाले गुरु की या किसी देवता की सहायता से छुटकारा पा सकती है। परन्तु उसके पकड़नेवाले इसका मौक़ा कब देते हैं? भौतिक बाधा से मृत्यु और प्रेतों के अधीन क़ैद रहना भी किसी प्रारब्ध का भोग ही होता है। उसका हिसाब भी यमराज के यहां होता रहता है। आवश्यक अंश भुगत लेने पर अथवा किसी पुण्यकर्म्म के प्रारम्भ होने पर ऐसे संयोग आ पड़ते हैं कि प्रेतग्रस्त प्रेत भी किसी ढङ्ग से उनके पञ्जे से छुटकारा पा ही जाता है। जब तक प्रेतों के अधीन रहता है तब तक उसे दिया हुआ पानी पिण्ड या अन्न सब कुछ वही दुष्ट प्रेत ले लेते हैं और मरनेवाला बेचारा भूखों-प्यासों

तड़फ़ता रहता है। वह भी उसकी यातना या भोग है।

पुण्यात्मा जो भौतिक बाधा से नहीं मरते, हिन्दू हुए तो पितृयोनि या स्वर्ग पाते है और हिन्दू न हुए तो उत्तम प्रकार का प्रेत-शरीर पाते है, जिसमे उन्हें पितृयोनि का ही सुख मिलता है। पितृयोनि से कोई कोई पुण्यात्मा स्वर्ग भी पाजाते है। उसी तरह उत्तम प्रकार की प्रेत-योनि से भी स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पुण्यात्माओं को भी मृत्यु के बाद अपने हिसाब-किताब के लिए यम के दरबार में जाना ही पड़ता है और वहीं से लोक का निश्चय होता है। भगवान् के भक्त को यम के यहा नहीं जाना पड़ता। उन्हें पार्षद भगवत्पद को बड़े आराम से ले जाते है। अच्छे भगवद् भक्त के लिए जो भगवान् का नाम जपते जपते शरीर-त्याग करते है, प्रायः विमान आता है और वह स्थूल, लिङ्ग, सूक्ष्म तीनों शरीर छोड़कर तुरन्त किशोर-कैवल्य-शरीर से उस विमान पर पार्षदों के साथ चला जाता है।

किसी किसी का मृत्यु होते ही गर्भ में प्रवेश भी हो जाता है। यह मृत्यु अल्पायु मृत्यु हो सकती है, पर अकाल मृत्यु नहीं होती। जिन लोगों से थोड़ा-सा ऋण वसूल करना रहता है उनके यहाँ प्रेतात्मा जन्म लेती है और ऋण वसूल कर के फिर मर जाती है। इस प्रकार कभी कभी ऐसा होता है कि एक बूढ़ा मरा, परन्तु नौ महीने बाद ही जन्म लिया, बरही हो जाने पर मर गया, फिर नौ महीने पर और कहीं पैदा हुआ। वहाँ विवाह तक जिया, फिर मरकर अन्यत्र जन्म लिया। ऋण का परिशोध अनिवार्य्य है।

मरणान्तर की घटनायें उसी तरह एक-सी नहीं हो सकतीं, जैसे मरण-पूर्व की घटनायें इस स्थूल जगत के प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न भिन्न होती हैं। अपने अपने कर्म्मों के सम्बन्ध से साधारणतया व्यक्तियों की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं।

संसार के सम्बन्धों की माया का कुछ कुछ पता मरने के बाद तब लगता है जब धीरे धीरे जन्मान्तर की स्मृति उदय होती है। मा, बाप, बेटे, भाई, बहन का सम्बन्ध कभी कभी घोर शत्रुओं में हो जाया करता है। जो पहले मित्र दीखते थे वे कपटी शत्रु निकल पड़ते हैं। जो वैरी जान पड़ते थे वे वस्तुतः कई जन्मों के मित्र या स्वजन देख पड़ते हैं। सांसारिक सम्बन्ध लेन-देन का सम्बन्ध समझ में आ जाता है। मूल ब्याज आदि के ऐसे झगड़े देख पड़ते हैं कि कर्म-बन्धन से छुटकारा असम्भव दीखता है. ऋण के परिशोध में ऋणी और महाजन दोनों को बारबार जन्म लेना पड़ता है और परस्पर बाप बेटे आदि का सम्बन्ध हो जाता है। बाप बेटे में भी लेन-देन का सूद-ब्याज समेत कड़ा हिसाब रहता है। मजूरी ही ईमान की कमाई है।

इसी लिए गीता में उपदेश है—

न तु कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

किं कर्म्म किमकर्म्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म्म प्रवक्ष्यामि यद् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भूः मा ते संगोऽस्त्वकर्म्मणि। इत्यादि

मनुष्य मर्त्यलोक में ही अपने छुटकारे के उपाय कर सकता है, यहीं गीता को व्यवहार में ला सकता है। इस मर्त्यलोकी देह को छोड़कर और किसी देह में परत्र-सुधार का उपाय नहीं है, और सर्वोत्तम उपाय परमात्मा की भक्ति और गीता के अनुसार भरसक आचरण ही है।

वीएना

[श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक]

डाक्टरों का मक्का

जब से मैं योरप में आया हूँ, मेरे पास भारतीय विद्यार्थियों के पत्र बराबर आ रहे हैं। वे जानना चाहते हैं कि योरप में कौन सा विश्वविद्यालय उनके लिए अत्यन्त उपयोगी और सहूलियतें देनेवाला है। आज 'सरस्वती' द्वारा भारत के सब विद्यार्थियों को मैं हर्ष-संवाद देने के लिए यह लेख लिख रहा हूँ।

समय परिवर्तनशील है। उतार-चढ़ाव काल की क्रीड़ा है। बीस वर्ष पहले अमरीका संसार के

वीएना का पार्लियामेंट भवन

विद्यार्थियों को अपनी तरफ़ बुलाता था। उसकी स्वतंत्रता-देवी गुलाम देशों के बच्चों को छाती से लगाती थी। वही 'युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका' आज अहंकार और मद में ग्रसित होकर साम्राज्यवाद की ओर जा रहा है। उसके विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रता का वातावरण नहीं रहा। वहां रंग-पक्षपात का विषैला वायुमंडल फैल गया है। न्याय और सत्य से प्रेम करनेवाले अमरीकन आज सब प्रकार के मक्कर-फ़रेबों से डालर जमा करने पर तुले हुए हैं। उनका एक ही देवता, एक ही उपास्य देव, एक ही ध्येय, एक ही ईश्वर है, और वह है—डालर! डालर!! डालर!!!

आज मैं अत्यन्त दुखित हृदय से अपने देश के विद्यार्थियों को अमरीका की बुराइयां बतलाने लगा हूँ और उनसे अनुरोध करता हूँ कि कभी भूल कर भी विद्याभ्यास के लिए अमरीका जाने का नाम न लें। अमरीका के विश्वविद्यालय विद्या और ज्ञान के केन्द्र नहीं रहे। वहाँ के विद्यार्थी और प्रोफ़ेसर स्वयं दौड़े दौड़े जर्मनी और आस्ट्रिया के विश्वविद्यालयों में ज्ञानामृत पान करने के लिए आ रहे हैं। जर्मनी के विश्वविद्यालयों में सैकड़ों अमरीकन छात्र विद्याभ्यास कर रहे हैं। वीएना (आस्ट्रिया) का तो कहना ही क्या है। यह तो संसार के डाक्टरों का मक्का और मदीना बन रहा है।

× × ×

२१ फ़रवरी १९२८ को रात के समय मैं बर्लिन से वीएना पहुँचा। वीएना, मैं पहले सन् १९२३ के

वीएना की जगद्विख्यात यूनीवर्सिटी

दिसम्बर मास में भी आया था। उस समय मुझे केवल डाक्टर फ़ुक्स से मिलना था, सो एक सप्ताह ठहर कर मैं यहां से पेरिस चला गया था। लेकिन इस बार मेरा विचार यहां ठहरने का था। मैंने सोचा कि वीएना में कुछ समय रह कर यहाँ का हाल-चाल तथा रंग-ढंग देखा जाय।

तड़फ़ता रहता है। वह भी उसकी यातना या भोग है।

पुण्यात्मा जो भौतिक बाधा से नहीं मरते, हिन्दू हुए तो पितृयोनि या स्वर्ग पाते हैं और हिन्दू न हुए तो उत्तम प्रकार का प्रेत-शरीर पाते हैं, जिसमें उन्हें पितृयोनि का ही सुख मिलता है। पितृयोनि से कोई कोई पुण्यात्मा स्वर्ग भी पाजाते हैं। उसी तरह उत्तम प्रकार की प्रेत-योनि से भी स्वर्ग-प्राप्ति हो सकती है। परन्तु पुण्यात्माओं को भी मृत्यु के बाद अपने हिसाब-किताब के लिए यम के दरबार में जाना ही पड़ता है और वहीं से लोक का निश्चय होता है। भगवान् के भक्त को यम के यहाँ नहीं जाना पड़ता। उन्हें पार्षद भगवत्पद को बड़े आराम से ले जाते हैं। अच्छे भगवद्-भक्त के लिए जो भगवान् का नाम जपते जपते शरीर-त्याग करते हैं, प्रायः विमान आता है और वह स्थूल, लिङ्ग, सूक्ष्म तीनों शरीर छोड़कर तुरन्त किशोर-कैवल्य-शरीर से उस विमान पर पार्षदों के साथ चला जाता है।

किसी किसी का मृत्यु होते ही गर्भ में प्रवेश भी हो जाता है। यह मृत्यु अल्पायु मृत्यु हो सकती है, पर अकाल मृत्यु नहीं होती। जिन लोगों से थोड़ा-सा ऋण वसूल करना रहता है उनके यहाँ प्रेतात्मा जन्म लेती है और ऋण वसूल कर के फिर मर जाती है। इस प्रकार कभी कभी ऐसा होता है कि एक बूढ़ा मरा, परन्तु नौ महीने बाद ही जन्म लिया, बरही हो जाने पर मर गया, फिर नौ महीने पर और कहीं पैदा हुआ। वहाँ विवाह तक जिया, फिर मरकर अन्यत्र जन्म लिया। ऋण का परिशोध अनिवार्य्य है।

मरणान्तर की घटनायें उसी तरह एक-सी नहीं हो सकतीं, जैसे मरण-पूर्व की घटनायें इस स्थूल जगत् के प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न भिन्न होती है। अपने अपने कर्म्मों के सम्बन्ध से साधारणतया व्यक्तियों की परिस्थितियाँ भिन्न होती हैं।

संसार के सम्बन्धों की माया का कुछ कुछ पता मरने के बाद तब लगता है जब धीरे धीरे जन्मान्तर की स्मृति उदय होती है। मा, बाप, बेटे, भाई, बहन का सम्बन्ध कभी कभी घोर शत्रुओं में हो जाया करता है। जो पहले मित्र दीखते थे वे कपटी शत्रु निकल पड़ते हैं। जो वैरी जान पड़ते थे वे वस्तुतः कई जन्मों के मित्र या स्वजन देख पड़ते हैं। सांसारिक सम्बन्ध लेन-देन का सम्बन्ध समझ में आ जाता है। मूल ब्याज आदि के ऐसे झगड़े देख पड़ते हैं कि कर्म-बन्धन से छुटकारा असम्भव दीखता है. ऋण के परिशोध में ऋणी और महाजन दोनों को बारबार जन्म लेना पड़ता है और परस्पर बाप बेटे आदि का सम्बन्ध हो जाता है। बाप बेटे में भी लेन-देन का सूद-ब्याज समेत कड़ा हिसाब रहता है। मजूरी ही ईमान की कमाई है।

इसी लिए गीता में उपदेश है—

न तु कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्वप्रकृतिजैर्गुणैः॥

किं कर्म्म किमकर्म्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म्म प्रवक्ष्यामि यद् ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भूः मा ते संगोऽस्त्वकर्म्मणि। इत्यादि

मनुष्य मर्त्यलोक में ही अपने छुटकारे के उपाय कर सकता है, यहीं गीता को व्यवहार में ला सकता है। इस मर्त्यलोकी देह को छोड़कर और किसी देह में परत्र-सुधार का उपाय नहीं है, और सर्वोत्तम उपाय परमात्मा की भक्ति और गीता के अनुसार भरसक आचरण ही है।

वीएना

[श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक]

डाक्टरों का मक्का

जब से मैं योरप में आया हूँ, मेरे पास भारतीय विद्यार्थियों के पत्र बराबर आ रहे हैं। वे जानना चाहते हैं कि योरप में कौन सा विश्वविद्यालय उनके लिए अत्यन्त उपयोगी और सहूलियतें देनेवाला है। आज 'सरस्वती' द्वारा भारत के सब विद्यार्थियों को मैं हर्ष-संवाद देने के लिए यह लेख लिख रहा हूँ।

समय परिवर्तनशील है। उतार-चढ़ाव काल की के अंग हैं। बीस वर्ष पहले अमरीका संसार के

वीएना का पार्लियामेंट भवन

विद्यार्थियों को अपनी तरफ़ बुलाता था। उसकी स्वतंत्रता-देवी गुलाम देशों के बच्चों को छाती से लगाती थी। वही 'युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका' आज अहंकार और मद में ग्रसित होकर साम्राज्यवाद की ओर जा रहा है। उसके विश्वविद्यालयों में स्वतंत्रता का वातावरण नहीं रहा। वहां रंग-पक्षपात का विषैला वायुमंडल फैल गया है। न्याय और सत्य से प्रेम करनेवाले अमरीकन आज सब प्रकार के मक्कर-फ़रेबों से डालर जमा करने पर तुले हुए हैं। उनका एक ही देवता, एक ही उपास्य देव, एक ही ध्येय, एक ही ईश्वर है, और वह है—डालर ! डालर !! डालर !!!

आज मैं अत्यन्त दुखित हृदय से अपने देश के विद्यार्थियों को अमरीका की बुराइयां बतलाने लगा हूँ और उनसे अनुरोध करता हूँ कि कभी भूल कर भी विद्याभ्यास के लिए अमरीका जाने का नाम न लें। अमरीका के विश्वविद्यालय विद्या और ज्ञान के केन्द्र नहीं रहे। वहां के विद्यार्थी और प्रोफ़ेसर स्वयं दौड़े दौड़े जर्मनी और आस्ट्रिया के विश्वविद्यालयों में ज्ञानामृत पान करने के लिए आ रहे हैं। जर्मनी के विश्वविद्यालयों में सैकड़ों अमरीकन छात्र विद्याभ्यास कर रहे हैं। वीएना (आस्ट्रिया) का तो कहना ही क्या है। यह तो संसार के डाक्टरों का मक्का और मदीना बन रहा है।

× × ×

२९ फ़रवरी १९२८ को रात के समय मैं बर्लिन से वीएना पहुँचा। वीएना, मैं पहले सन् १९२३ के

वीएना की जगद्विख्यात यूनीवर्सिटी

दिसम्बर मास में भी आया था। उस समय मुझे केवल डाक्टर फुक्स से मिलना था, सो एक सप्ताह ठहर कर मैं यहां से पेरिस चला गया था। लेकिन इस बार मेरा विचार यहां ठहरने का था। मैंने सोचा कि वीएना में कुछ समय रह कर यहां का हाल-चाल तथा रंग-ढंग देखा जाय।

यदि सचमुच यहां का विश्वविद्यालय भारतीय विद्यार्थियों के लिए उपयोगी हो तो फिर इसकी सूचना भारत में फैलाई जाय, ताकि हमारे विद्यार्थी बड़ी संख्या में यहां आ सकें। इसी लिए मैं वीएना में पौने तीन मास रहा।
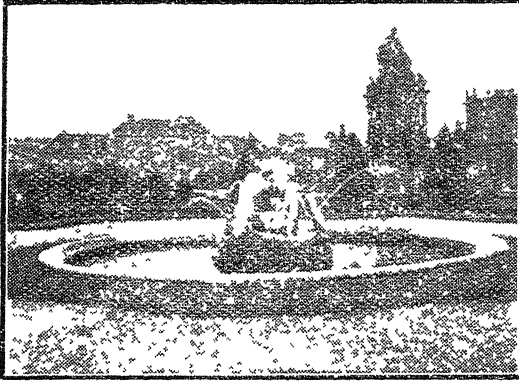
वीएना का जगत्प्रसिद्ध मेलों का स्थान

सब कुछ देख-भाल कर, अपनी तसल्ली कर ली, तब मैंने यह लेख लिखने का निश्चय किया।

अच्छा तो मैंने यहां क्या सहूलियत अपने विद्यार्थियों के लिए देखी है? सुनिए:—

पहली बड़ी भारी बात वीएना में यह है कि यहा के निवासी भारत से बड़ा प्रेम करते हैं। भारत की बातें जानने को बड़े उत्सुक हैं। भारत की संस्कृति को वे सर्वश्रेठ मानते हैं। कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर तथा महात्मा गान्धीजी ने यहाँ के शिक्षित समुदाय में अपना सुन्दर प्रभाव डाला है। अतएव भारतीय विद्यार्थियों के लिए यहाँ पूरा स्वागत है। भारत से सच्चरित्र विद्यार्थी यहां आयें—ऐसे विद्यार्थी जो अपने देश की संस्कृति के अभिमानी हों। ऐसे विद्यार्थी न आयें जो महात्मा गान्धीजी को बुरा भला कहनेवाले हों, या जो लड़कियों के पीछे भागनेवाले हों। ऐसे दुर्व्यसनी छात्र वहीं श्री गंगाजी में डूब कर अपना उद्धार कर सकते हैं।

दूसरी सहूलियत ख़र्च की कमी की है। जर्मनी में ख़र्च अधिक पड़ता है। वीएना में सवा सौ रुपये महीने में मज़े से विद्याभ्यास हो सकता है। मांसाहारी विद्यार्थी न हो तो इससे भी कम में गुज़र चल सकता है। चेकोस्लोवाकिया की राजधानी प्राग में केवल पाँच पौंड मे ही भारतीय विद्यार्थी विद्याभ्यास कर सकते है। लेकिन वहाँ कला-कौशल तथा फैक्टरियों में काम सीखनेवाले ही विद्यार्थी जाने चाहिएँ। प्राग, वीएना के पास ही है। रेल से छः घंटे लगते हैं।

तीसरी विशेषता वीएना के जल की है। वीएना में जैसा पीने का नीरोग जल मिलता है, वैसा स्विटज़रलेंड को छोड़कर और कहीं नहीं मिल सकता। मुझे तो वह जल बड़ा गुणकर लगा। जर्मनी में भोजनोपरान्त पानी पीने का रवाज नहीं है। वहां बीयर (शराब) पानी के स्थान पर पीते है। वीएना में पानी पीने का रवाज है।

चौथी विशेषता इसकी ऐतिहासिकता है। डेन्यूब-नदी के तट पर बसा हुआ यह नगर इतिहास के विद्यार्थी को पुरानी घटनाओं की याद दिलाता है। जब तुर्क-सेना इसके द्वार पर आकर डेरे डाले पड़ी थी तब यहीं से इसलाम का सूर्य्य ढलना शुरू हुआ था। जिस प[र] पर तुर्क-सेना की छावनी थी, वहां अब बड़ा रमणीक तु[...] शंस पार्क है। मैं प्रायः रोज़ वहां घूमने जाया कर[ता] था और पार्क के ऊँचे खण्ड पर खड़ा होकर इतिहास [के] पन्ने उलटा करता था।
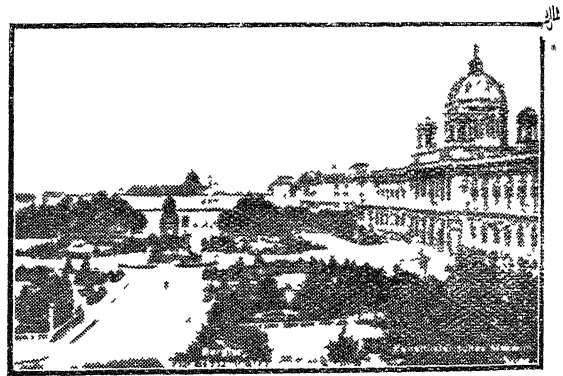
वीएना का प्रसिद्ध म्यूज़ियम

पांचवीं सहूलियत हमारे विद्यार्थियों के लिए यह है कि यहाँ अँगरेज़ी बोलनेवाले विद्यार्थी बहुत मिलते हैं। सैकड़ों अमरीकन विद्यार्थी यहाँ पढ़ते है, जापानी और चीनी विद्यार्थी भी हैं। साथ ही यहां आस्ट्रो-अमरीकन इन्स्टीट्यूट आफ़ एजूकेशन (Austro. American

Institute of Education) नाम की संस्था भी शिक्षा-प्रचारार्थ है। इसका काम है विदेशी विद्यार्थियों के लिए सब प्रकार के साधन जुटाना। इसके प्रधान मंत्री डाक्टर डैंगलर बड़े अच्छे भद्र पुरुष हैं। उनका पता यह है—

Dr. Paul Dangler
Elisabeth strausse 9
Viena, Austria

इनसे पत्र-व्यवहार करने से वीएना विश्वविद्यालय की सब बातें मालूम हो सकती हैं। ये मकान-कमरा तलाश
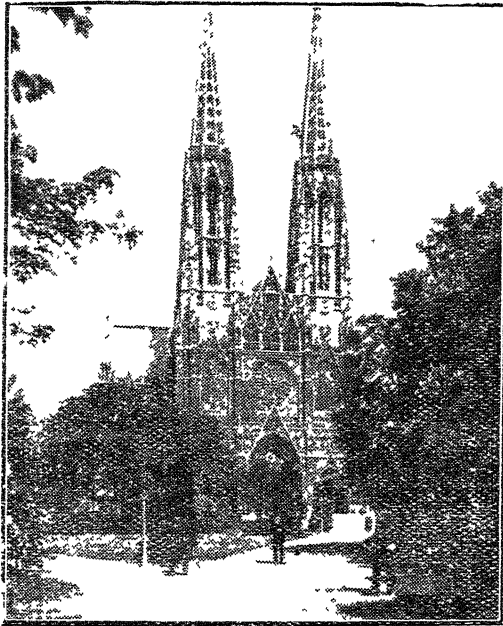
वीटिव का प्रसिद्ध गिरजाघर

कर देते हैं; अँगरेज़ी जाननेवालों से मिला देते हैं; अच्छे होटलों, डाक्टरों का पता देते हैं तथा विश्वविद्यालय में भर्ती कराने में मदद करते हैं। यह बड़ी अच्छी परोपकारिणी संस्था है।

छठी सबसे मुख्य बात यह है कि संसार के किसी भी सभ्य देश में ऐसे योग्य, व्यवहार-कुशल और प्रगल्भ डाक्टर नहीं हैं, जैसे वीएना विश्वविद्यालय के मेडिकल विभाग में इस समय हैं। यहाँ का बच्चों का अस्पताल अद्वितीय है। इसके अधिष्ठाता प्रोफ़ेसर पिर्केट दया की मूर्ति हैं। आप मुझसे प्रेम से मिले। मोटर में बिठाकर घर तक छोड़ने आये। अपने अस्पताल को देखने का आग्रह किया। सब कुछ दिखलाया। भारत से आपको बड़ा स्नेह है। आपका चित्र यहाँ दिया गया है।
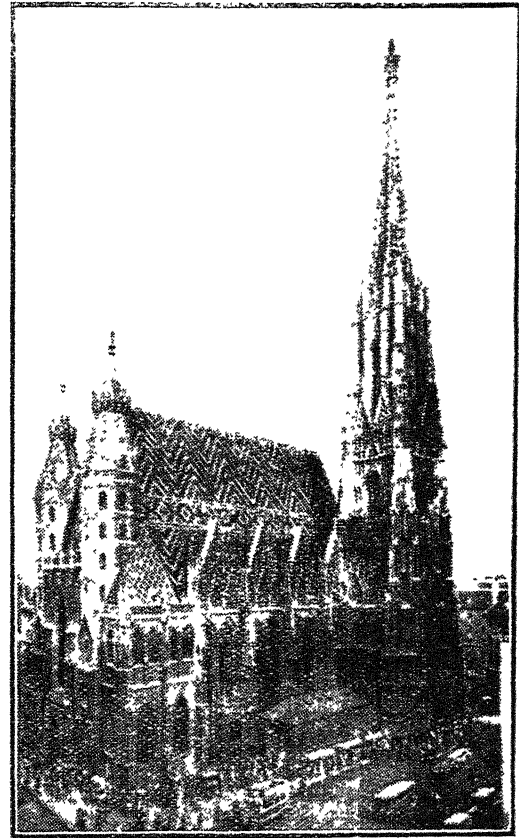
सेंट स्टीफ़न का प्राचीन गिरजाघर

जो भारतीय विद्यार्थी वीएना अथवा प्राग के विश्वविद्यालयों में पढ़ने के लिए आवें, वे पहले छः महीने-साल भारत में ही जर्मन भाषा सीख लें। यदि वे जर्मन-भाषा में छः सात व्याख्यान महात्मा गान्धी, भगवान् बुद्ध, गीता का सन्देश, हिन्दू-संस्कृति के आदर्श आदि विषयों पर तैयार कर लावें तो योरप में उनका ख़र्च निकल

सकता है। आस्ट्रिया और जर्मनी में सभा सोसाइटियाँ पैसा देकर ऐसे व्याख्यान सुनती हैं। महात्मा गान्धीजी की फ़िलासोफ़ी पर दो चार व्याख्यान हों, भारत की राजनैतिक अवस्था पर एक दो व्याख्यान तैयार हो, अँगरेज़ी में नहीं जर्मन-भाषा में, तो हमारे विद्यार्थी "पुण्य और पैसा" दोनों ले सकते हैं।

वीएना में आकर मैं पहले प्रोफ़ेसर माइलर से मिलने गया। आप आँख के बड़े कुशल डाक्टर हैं। दूर दूर से लोग आपको आँखें दिखलाने आते हैं। सच्ची और खरी बातें कहनेवाले व्यक्ति हैं। मुझसे दो पौंड फ़ीस ली आँखें देखकर अफ़सोस से बोले—

"आपकी दाहिनी आँख किसने ख़राब कर दी है?"
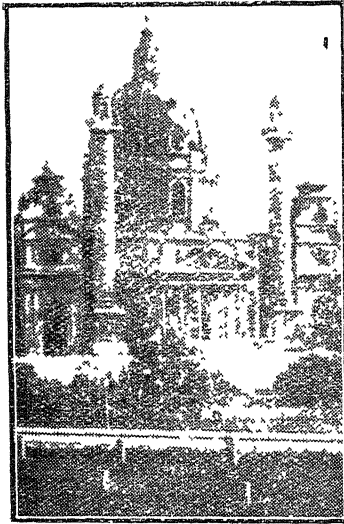
चार्ल्स का गिरजा-घर

"मैंने कहा—

"मेरे देश में मोगा एक स्थान है। वहाँ के डाक्टर की यह करतूत है।"

प्रोफ़ेसर मापलर बोले—

"यह आपकी ख़ुश क़िस्मती है जो आप बाँईं आँख बनवाने जर्मनी आ गये। बाँईं आँख का आपरेशन बड़ी होशियारी से हुआ है। अब आप किसी दूसरे डाक्टर को आँख में हाथ न लगाने दें। अगर आप पहले से ही वीएना में आकर आपरेशन कराते तो मैं आपकी आँखों की रोशनी बढ़ाने में बड़ी मदद करता।"

प्रोफ़ेसर मापलर ने मुझे सलाह दी कि यदि आप अपनी बाईं आँख का संयम से उपयोग करेंगे तो आपकी यह ज्योति सारी आयु बनी रहेगी। रात को पढ़ने का सर्वथा निषेध किया। धूप की चमक से आँख को बचाने का उपदेश दिया।

× × × ×

वीएना की प्रसिद्धि अपने विश्वविद्यालय तथा विद्वान् प्रोफ़ेसरों के लिए पहले से ही है, पर जो ख्याति आज उसे अपने मेडिकल विभाग तथा प्रोफ़ेसरों-द्वारा प्राप्त हुई है वह उसे पहले कभी नसीब नहीं हुई। उसके लब्ध-प्रतिष्ठ डाक्टरी के विद्वान् प्रोफ़ेसरों के कारण ही दूर दूर देशों से विद्यार्थी यहाँ दौड़े दौड़े आ रहे हैं। सारे सभ्य
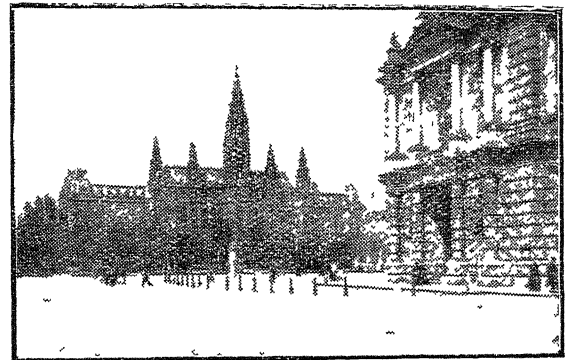
वीएना का टाउनहाल

संसार में इन प्रोफ़ेसरों का नाम विख्यात हो गया है। इन अनुभवी औषध-उपचार-कला के पण्डितों का कुछ परिचय पाठकों को कराता हूँ।

प्रोफ़ेसर क्लेमेन्स पिर्केट

आपके विषय में कुछ मैंने ऊपर लिखा भी है। आपका जन्म सन् १८७४ में वीएना के पास ही हिर्शस्टेटेन नामक स्थान में हुआ था। दो वर्ष तक आप बाल्टीमोर (अमरीका) की जान हापकिन्स यूनीवर्सिटी में प्रोफ़ेसर रहे। एक वर्ष तक आप जर्मनी के ब्रेस्लौ-नगर

के विश्वविद्यालय में पढ़ाते रहे। आप तपेदिक् के इलाज में सिद्धहस्त हैं। आप आज-कल वीएना के 'किन्डेर-क्लीनिक' बच्चों के अस्पताल के अधिष्ठाता हैं। तपेदिक् से मारे हुए बच्चे जब आपके अस्पताल मे आते है तब कुछ दिनों के बाद ही उनके स्वास्थ्य में अद्भुत उन्नति हो जाती है और वे गुलाब के फूल बन जाते है। मैंने आपके अस्पताल में बच्चों को बरामदे मे सोते देखा। पूछने पर पता लगा कि प्रोफ़ेसर महोदय शुद्ध पवन पर विश्वास करते हैं। तपेदिक् से ग्रसित बच्चों को प्रोफ़ेसर महोदय, कड़कते जाड़े में भी जब बर्फ़ गिरता है, बरामदे मे सुलाते हैं ताकि खुली हवा फेफड़ों को साफ़ करे और कीड़ों को मार दे। बरामदे सामने से बिलकुल खुले और ऊपर से छाये हुए हैं, बस! हिन्दुस्तान के वे बीमार, जो तपेदिक् से सताये हुए अल्मोड़े और भवाली भागते है, इससे ज़रा शिक्षा ग्रहण करें। वे खुली हवा में, जाड़ों मे भी, सोना सीखें। खिड़कियाँ दरवाज़े खोलकर सोयें, तब उन्हें कभी तपेदिक् न होगा। प्रोफ़ेसर पिर्के आज सभ्य संसार में तपेदिक् के अद्वितीय डाक्टर हैं। आपने सब सम्भव उपायों से इस भयानक बीमारी का इलाज करके देख लिया। आख़िर आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि तपेदिक् उन्हीं को होता है जिन्हें नीरोग भोजन और शुद्ध खुली वायु न मिले। सब दवाइयों को एक तरफ़ रखकर अब आपने इसी ईश्वरीय सिद्धान्त को पकड़ा है। इनके अस्पताल में नौकर भोजन नहीं बनाते। कुशल दाइयाँ भोजन बनाती हैं। दूध, मक्खन, मांस, शाक आदि सबकी परीक्षा कर भोजन तैयार किया जाता है। वह भोजन बीमार खाते हैं। ताज़ी खुली हवा मे सोते हैं। सरदियों में जब पानी जम जाता है, तब भी दरवाज़े या खिड़कियाँ बन्द करके नहीं सोते, हाँ ओढ़ते काफ़ी हैं और पहनते भी भरपूर हैं। फिर प्रकृति माता तपेदिक् को मार भगाती हैं।
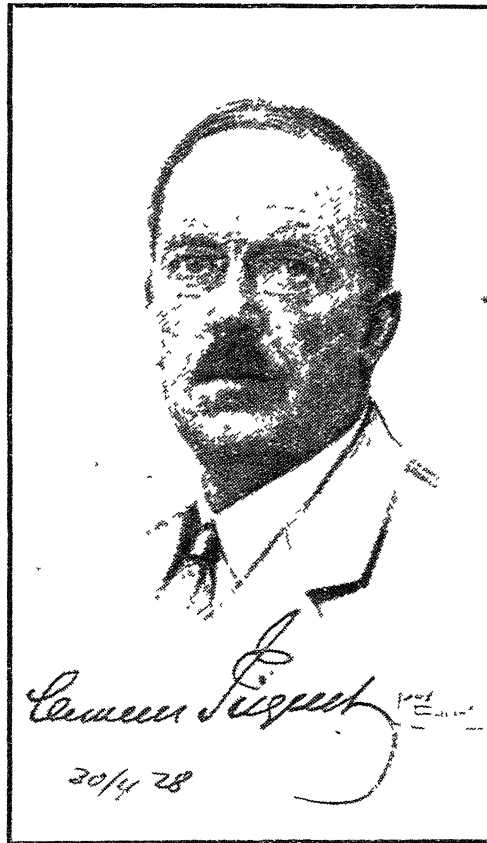
दयामूर्ति प्रोफ़ेसर क्लीमेंस पिर्के

सिगमुण्ड फ़्रायड

दूसरे स्वनामधन्य प्रोफ़ेसर सिगमुण्ड फ़्रायड हैं। बहत्तर वर्ष का यह बुड्ढा यहूदी डाक्टर आज स्नायु-सम्बन्धी रोगों (Nervous decease) में अपना सानी नहीं रखता। आपका मन्तव्य है कि मिरगी और (hysteria) के मुख्य कारण (Sexual) होते हैं। आपने (Interpretation of Dreams) पर एक अत्यन्त मौलिक ग्रन्थ लिखा है। आप कहते हैं कि जिन स्त्री और पुरुषों पर भूत-प्रेत का आवेश समझा जाता है, जो वाही-तबाही बकने लगते हैं वह अवस्था अधिकतर कामदेव के चमत्कारों के कारण होती है। भारत-वर्ष के उन अँगरेज़ी पढ़े लिखे तथा एम० ए० पास लोगों को, जो आज-कल भूत-प्रेत-बाधा तथा उसकी चिकित्सा के फेर में पड़े हुए हैं, इस आस्ट्रियन विद्वान् के ग्रन्थों का अनुशीलन करना चाहिए। उन ग्रन्थों को पढ़कर वे फिर उसी लोक के भूत-प्रेतों की चिकित्सा करेंगे और मरे हुओं के पीछे न दौड़ेंगे।

प्रोफ़ेसर फ्रायड मानसिक विज्ञान (Psychology) के भी उद्भट विद्वान् हैं। आपका यश आपके ग्रन्थों के कारण दूर दूर फैला हुआ है।

प्रोफ़ेसर यूजीन स्टाइनाख

कुछ वर्ष पहले जब मथुरा और हाथरस से बन्दरों से भरी हुई गाड़ियाँ बम्बई जाकर ख़ाली होती थीं और
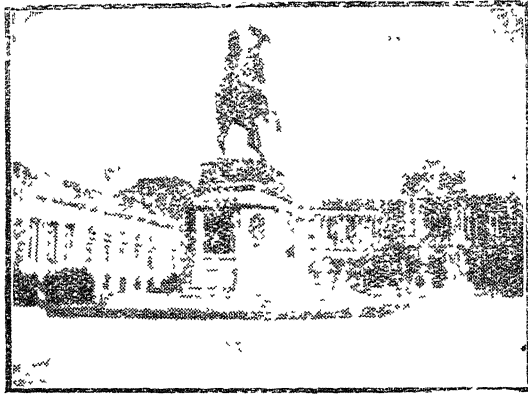
आर्कड्यूक चार्ल्स की मूर्ति

हम सुनते थे कि वे बन्दर जहाज़ों में लदकर योरप भेजे जा रहे हैं तो चित्त में बड़ा कौतूहल होता था कि हिन्दू-तीर्थों के इन बन्दरों की योरप में क्यों आवश्यकता पड़ गई है।

असल में बात वैज्ञानिक थी। वीएना-विश्वविद्यालय में एक प्रोफ़ेसर महोदय को एक विचित्र सूझ सूझी। प्रोफ़ेसर यूजीन स्टाइनाख महाशय ने सोचा कि बूढ़ा जवान और जवान बूढ़ा क्यों नहीं किया जा सकता? इसी प्रकार औरत मर्द और मर्द औरत क्यों नहीं बनाया जा सकता? जब पौधों तथा वृक्षों पर क़लम लग सकती है, जब आम में गुलाब की प्योन्द लगाने से आम गुलाब की सुगन्ध देने लगता है, जब नागफनी के काँटे दूर किये जा सकते हैं, तब मनुष्य में भी इच्छानुसार परिवर्तन किया जा सकता है। जब यह विचार आपको उत्पन्न हुआ था, उस समय आप प्राग के विश्वविद्यालय में थे। वहाँ छोटे शहर में आपका अभिप्राय सिद्ध न होता था, इसलिए प्राग छोड़कर आप वीएना आये और यहाँ अपनी निजी प्रयोग-शाला स्थापित की। यह सन् १९१० की बात है। बस प्रयोग-शाला बनाकर लगे तजरुबे करने। प्रायः यह बात सभी को विदित है कि हीजड़ों का चाल-ढाल, बात-चीत और रङ्ग-ढङ्ग वीर्य्यवान् पुरुषों से भिन्न होता है और उनका शारीरिक तथा मानसिक विकास नहीं होता। जिन बछड़ों के अण्डकोष कुचल या निकाल दिये जाते हैं, जो घोड़े या कुत्ते छोटी अवस्था में नपुंसक कर दिये जाते हैं, बड़े होने पर उनकी शक्ल-सूरत और हो जाती है। अतएव ये Generative glands अण्डकोष यदि एक पशु से निकालकर दूसरे में लगाये जायँ या जवान के बूढ़े में रक्खे जायँ तो उनका प्रभाव शरीर पर अवश्य पड़ना चाहिए। जो रस इन थैलियों में से निकल कर शरीर पर अद्भुत प्रभाव डालता है वही यदि दूसरे दुर्बलेन्द्रिय में डाला जाय तो उसे पुष्ट अवश्य करेगा। स्टाइनाख महोदय चूहों तथा अन्य छोटे छोटे जीवों पर अपने सिद्धान्त की आज़माइश करने लगे। इन्हें बड़ी कामयाबी हुई। बूढ़े चूहे जवानों के अण्डकोष पाकर ख़ूब मोटे-ताज़े हो गये और बच्चे पैदा करने लगे।

लेकिन चूहे-ख़रगोश तो तजरुबा करने के लिए बहुत मिल सकते हैं, आदमी औरतें कहाँ से मिलें, जो स्टाइ-

राष्ट्रीय थिएटर
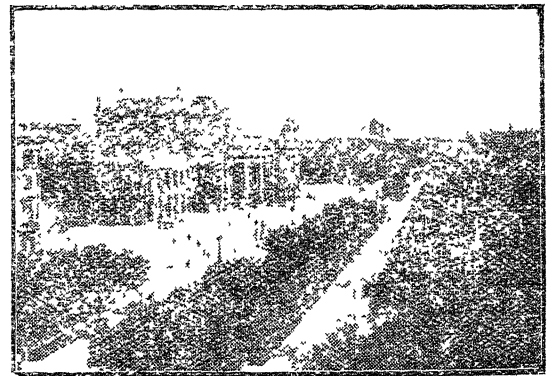
नाख साहब की प्रयोग-शाला के लिए हीजड़े बनने को तैयार होंगे। सो काम रुक गया। तब मनुष्य के प्राचीन

बुजुर्ग बन्दरों की याद आई। बन्दर भी तीर्थ-स्थानों के, जो मुफ़्त का माल खा खाकर मुटा गये हो! तब मथुरा-वृन्दावन के बन्दरों पर आफ़त आई। वे स्टाइनाख साहब की तथा अन्य उन्हीं के विचार वाले प्रोफ़ेसरों की प्रयोग-शालाओं में पहुँचे। उनके अण्डकोषों का अर्क प्रायः सभी बड़े बड़े शहरों के प्रसिद्ध दवाई-घरों में मिलता है, जिसे शौक़ीन औरतें और मर्द जवान बनने के लिए काम में लाते हैं। मगर प्रोफ़ेसर स्टाइनाख की इतने से तसल्ली नहीं हुई। वह बुड्ढा अपनी धुन में लगा है। यद्यपि सैकड़ों बूढ़ी औरतें और मर्द अमरीका तथा अन्य देशों से नई जवानी हासिल करने के लिए प्रोफ़ेसर महोदय के यहाँ आते हैं और स्टाइनाख साहब के दो सहायक दिन भर उन्हें जवानी देने में लगे रहते हैं, पर प्रोफ़ेसर महोदय चाहते हैं कि सच्चा काया-कल्प हाथ में आना ही चाहिए। वे चाहते हैं, शरीर के प्रत्येक अङ्ग पर नया प्योन्द—नई क़लम—लगनी ही चाहिए। अन्धे को नई आँखें लग सकें, बहरे को नये कान मिल सकें, गन्दे फेफड़ेवालों को तन्दुरुस्त फेफड़े मिल सकें। वीएना में ख़ास इसी जादू की सिद्धि के लिए एक ख़ास बृहत्प्रयोगशाला है। यहाँ विद्वान् दिन-रात लगे रहते हैं। वे कहते हैं आधा मैदान मार लिया है। बस आधा बाक़ी है।

× × × ×

वीएना-विश्वविद्यालय में एक से एक बढ़िया योग्यतर विद्वान् हैं। लेख की लम्बाई के भय से मैंने केवल दो का ही नाम दिया है। भारतीय विद्यार्थियों को उचित है कि इस समय वीएना-विश्वविद्यालय के मेडिकल-विभाग का पूरा लाभ ले लें। जब इँग्लेंड, जापान, अमरीका, फ़्रांस आदि सभी देशों के डाक्टर यहाँ सीखने के लिए आ रहे हैं तब भारत क्यों पीछे रह जाय। अलबत्ता ऐसे भारतीय डाक्टर न आवें जो दो-तीन महीने यहां किसी विद्वान् प्रोफ़ेसर के पास रहें; थीएटर, तमाशे, नाच-रङ्ग की ओर न देखें, फिर भारत जाकर विज्ञापनबाज़ी कर दें—"हम वीएना से भी सीख आये।" ऐसे कई डाक्टर भारत से आये हैं जो वीएना के विश्वविद्यालय को छूकर सारी विद्यायें सीख लेने का दावा करते हैं। वे कोरे लपोड़शङ्ख हैं। जो प्रोफ़ेसर बेचारे स्वयं वर्षों परिश्रम करके सीखते हैं, जिनके सहायक वर्षों उनके नीचे रह कर भी प्रोफ़ेसर होने का दावा नहीं करते, उन विद्वान् प्रोफ़ेसरों से हमारे अधकचरे एल० एम० एस० तीन महीने में क्या सीख लेंगे। हममें धैर्य्य, अध्यवसाय और शुद्ध लगन की बड़ी कमी है।

× × × ×

पाठक, वीएना के चित्र देखकर आप अपना जी भर लें। मैं आपको शहर की सैर नहीं करा सका। कारण साफ़ है। मेरी आंखों में वह विशुद्ध ज्योति नहीं है जो स्थापत्यकला-सम्पन्न भवनों को देखकर उनका वर्णन कर सकें। आपको यह जान कर सन्तोष करना चाहिए कि मैं दिन में सात आठ घण्टे लिख पढ़ लेता हूँ। रात के ढाई बजे से प्रकाश होने लगता है और साढ़े आठ बजे सन्ध्या तक रहता है। आज-कल जुलाई के महीने में १८ घंटे रोशनी रहती है। मैं आठ घंटे लिखने पढ़ने का काम कर लेता हूँ। मक्खी मैंने अब तक यहां नहीं देखी। धूप में मामूली गर्मी है। मेरा स्वास्थ्य आज-कल बहुत अच्छा है। मस्त घूमता हूँ। जो अनुभव लेता हूँ आप लोगों तक पहुँचाने का यत्न करता हूँ। डाक्टरों के मक्के की कथा सुना दी, चित्र भी दिखला दिये। अब मेरे आकाश-भ्रमण की रोचक कहानी सुनने के लिए तैयार हो जाइए। मैं विमान में उड़ने लगा हूँ।

पी० एल० एम० एक्सप्रेस

[अनुवादक, श्रीयुत भारद्वाज]

जब हमने सुना कि वेलेंटीन सिनकेर का विवाह होनेवाला है तब हमारी छोटी मित्र-मण्डली में से सभी को आश्चर्य हुआ। अरे! क्या वह?—अरे वही पक्का कौमारव्रतधारी, पेरिस का नास्तिक, सारे वैवाहिक विचारों का विरोधी, मौज से स्वाधीनतापूर्वक रहनेवाला, जिसने सैकड़ों बार क़समें खाई थीं कि विवाह जैसी बात से मेरा कभी किसी तरह का सरोकार न होगा। परन्तु अब वही वेलेंटीन विशाल भ्रातृमण्डल में शामिल होने जा रहा है! और इन सारी स्त्रियों में वह विवाह किससे करेगा?—एक विधवा से! हम लोग आश्चर्य में पड़ गये।

अस्तु जब मैं पहली बार उससे मिला, मैंने उसे पकड़कर कैफ़ियत माँगी।

उसने कहा—भाई, बात-चीत करने के लिए अभी समय का अभाव है—सारा काम पड़ा हुआ है। अभी ठीक 'मरे' से आया हूँ। इस समय स्टर्न की दूकान को जा रहा हूँ। कुछ निमन्त्रण-पत्र लेने हैं। अगर तुम मेरे साथ चलते—

मैंने कहा—अगर मैं तुम्हारे साथ चलूँ! अच्छा!

हम लोग मेडेलेनी के सामने खड़े थे। हम दोनों हाथ मिलाये दोनों ओर वृक्ष-श्रेणियों से युक्त राजपथ के आगे निकल गये।

उसने कहा—क़िस्सा बिलकुल मामूली है। परन्तु जब तुम उसे जानना ही चाहते हो तब लो, मैं सुनाता हूँ—

"पिछली फ़रवरी में मैं नाइस गया था। वहाँ मेला था। मैं रात में यात्रा नहीं करता। मुझे रात में यात्रा करना बिलकुल ही नहीं पसन्द है। इसलिए मैंने सवेरे ८-५५ की गाड़ी ली। यह आधी रात को मार्सेलीज़ पहुँचती है। वहाँ मेरे मित्र रोमबौड रहते हैं, अतएव अपने यहाँ ठहरने के सम्बन्ध में उन्हें लिख दिया था। दूसरे दिन सवेरे मैंने नाइस जाने का निश्चय किया था, जहाँ मैं दोपहर बाद २ बजे पहुँच जाता।

"स्टेशन पर यात्रियों की बड़ी भीड़ थी। सब लोग घबरा रहे थे। परन्तु धन्यवाद है स्टेशनमास्टर मोशिये रेग्नौल को, जिनकी कृपा से मुझे 'कूपा' में जगह मिल गई। उस गाड़ी में एक यही कूपा डिब्बा था। उसमें एक दूसरा यात्री भी बैठा था। उसके ओवरकोट के बटन के छेद में एक लाल गुलाब लटक रहा था। उसकी मुखाकृति से कठोरता और हुकूमत झलकती थी। सामान के नाम से उसके साथ काग़ज़ों का एक बस्ता भर था। इस इतने सामान से वह दूर का यात्री नहीं समझ पड़ता था। मैंने अपने मन में सोचा कि कुछ ही देर में अकेला मैं ही उस डिब्बे में रह जाऊँगा। रेल-यात्रा में तो ऐसी ही दशा में सुख मिलता है।

"सभी यात्री गाड़ी में बैठ गये थे। गाड़ी छूटने को ही थी। इतने में ही दरवाज़े पर झगड़े की आवाज़ सुनाई दी।

"'नहीं मोशिये, नहीं! मैंने स्लीपिंग-कार के लिए आज्ञा दी थी और मुझे वही मिलनी चाहिए।' यह एक स्त्री की आवाज़ थी, जिसका स्वर ताज़ा और जिसमें कुछ दक्षिणीपन की ध्वनि थी।

"'परन्तु मैडम, मैंने आपको बता दिया है कि हमारे पास वह नहीं है।' यह उत्तर स्टेशन के कर्म्मचारी ने दिया।

"'आपको, मेरे पत्र के अनुसार प्रबन्ध करना चाहिए था।'

"'मैडम, मुझे आपका कोई पत्र नहीं मिला है।'

"'तब कोई दूसरा डिब्बा जोड़ दो।'

"'असम्भव है। नियमानुसार जितने चाहिए, पहले से ही मौजूद हैं। जल्दी कीजिए। गाड़ी छूटती है।'

" 'अच्छा तो मेरे लिए कोई जगह ढूँढ़ दो।'

" 'कृपा मे आपके लिए दो स्थानों का प्रबन्ध कर दिया गया है।'

" 'क्या उसमें ?'

" 'हां, मैडम—उसी में।'

"कुछ कुछ काले बालवाली एक छोटी-सी स्त्री मेरे डिब्बे में चढ़ आई, परन्तु तुरन्त ही वह चौंक कर इस प्रकार लौट पड़ी, माना डर गई हो।

"इसमें तो दो यात्री बैठे हैं—उस स्त्री ने कहा।

" 'मैडम, मैं आपको पूरा का पूरा डिब्बा तो दे नहीं सकता।'

" 'बहुत अच्छा। तब मैं नहीं जाऊँगी!'

" 'यह आपकी इच्छा, गाड़ी जाती है, मैं सिग्नल करता हूँ।'

" 'ठहरो मोशिये ठहरो। मैं ज़रूर जाऊँगी, जब इसमें एक यही कूपा है तब क्या किया जाय। परन्तु क्या आप यह प्रबन्ध कर देंगे कि अगले स्टेशन में, मुझे कोई स्लीपिंग कार मिल जाय।'

" 'हां, मैडम।'

" 'इसके लिए क्या आप तार दे देंगे ?'

" 'हाँ हाँ, मैडम।'

" 'आप वादा करते हैं ?'

" 'हां, मैडम।'

" 'आपको विश्वास है।'

" 'हाँ, हां, हां मैडम।'

"दरवाज़ा खोल दिया गया। आधी गाड़ी के लगभग पार्सलों और ओढ़नों से घिरी हुई वह स्त्री डिब्बे में घुस आई। इतने में ही तेज़ सीटी हुई और हम लोग चल पड़े।

"वह रोबीला यात्री उदारता के साथ अपनी जगह छोड़ कर मेरे पास आ बैठा। इससे सामने की जगह नवागन्तुक के लिए पूरी की पूरी ख़ाली हो गई। उसने हम लोगों की ओर एक बार भी आंख उठाकर नहीं देखा। क्रोध से उसका मुँह लाल हो रहा था। वह वैसी ही साधारण शीघ्रता से अपना सामान अपने आस-पास क़ायदे के साथ रखने लगी, जैसी दूर के यात्रियों में प्रायः दिखाई देती है।

"उसके साथ एक नहीं, दो नहीं, तीन बैग थे और ओढ़ने, कुछ न पूछिए!

"मैं अपनी आंखों के कोनों से उसका धरना, उठाना देख रहा था। वह ठिंगनी स्त्री मुझे सुन्दर दिखाई दी। यह देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। प्रसन्न इसलिए कहता हूँ कि यात्रा में कुरूप स्त्री की अपेक्षा सुन्दरी स्त्री का साथ होना सचमुच मे अधिक अच्छा लगता है।'

"बड़ी सर्दी थी। सारा देश बर्फ़ से तोप गया था। सूर्य का विम्ब बिलकुल पीला पड़ गया था। वह गाड़ी के दोनों ओर भागता हुआ-सा दिखाई देता था। उस ठिंगनी स्त्री ने अपने को 'रगों' और दूसरे ओढ़नों से लपेट लिया। इसके बाद अपनी दृष्टि सामने की खिड़की से बाहर डाल कर दृढ़ता से चुपचाप उसी ओर देखने लगी। इधर हमारे साथ का वह रोबीला यात्री अपने पीले, हरे और नीले काग़ज़-पत्र छपे हुए शीर्षकों के सहित क़ायदे से रख कर ध्यान से पढ़ने लगा। अब रह गया मैं, सो मैं एक कोने में आराम के साथ बैठ गया, उन समाचार-पत्रों की फ़ाइलें उलटने लगा जिन्हें स्टेशन पर मैंने अपना समय काटने के लिए मोल लिया था।

"११ बजकर २१ पर हम लोग लारोचे पहुँचे। गाड़ी खड़ी हो गई। उस रोबीले यात्री ने अपने काग़ज़-पत्र उठा लिये, फिर सिर झुकाकर उसने हम लोगों को अभिवादन किया और गाड़ी से उतर गया। मुश्किल से उसने प्लैटफ़ार्म पर अपने पैर रक्खे थे कि स्टेशन-मास्टर ने आकर उसका स्वागत किया। उसने उसे मिस्टर इंस्पेक्टर कह कर सम्बोधित किया। उस स्त्री ने दरवाज़े के बाहर झुक कर कहा—

" 'मिस्टर स्टेशन-मास्टर।'

" 'मैडम।'

" 'आपको तो पेरिस से स्लीपिंग कार के लिए तार मिला होगा।'

" 'हां मैडम, उन्होंने तार किया, पर मैंने उसे अगले स्टेशन भेज दिया।'

" 'तो क्या मुझे यहां अभी स्लीपिंग कार नहीं मिलेगी ?'

" 'मैडम, असम्भव है। यहाँ हमारे पास स्लीपिंग कारें नहीं हैं। हाँ, ल्योंस में आपके लिए एक कार का प्रबन्ध हो जायगा।'

" 'ल्योंस में ! कितने बजे ?'

" '१ बज कर ४९ मिनट पर मैडम।'

" 'यात्रा के अन्त में। परन्तु सोचिये, मैं इसमें तब तक नहीं रह सकती ! असम्भव है ! मैं इसमें नहीं रहूँगी।'

" 'सावधान मैडम, गाड़ी चलती है।'

"गाड़ी चल पड़ी। वह बड़े क्रोध से जाकर फिर अपने उसी कोने में बैठ गई। उसने मेरी ओर निगाह तक न डाली। एक बार फिर मैं अपने समाचार-पत्र पढ़ने लगा—यह दसवाँ समाचार-पत्र था।

"सच कहता हूँ। उस समाचार-पत्र के पढ़ने में अधिक समय लगा। एक ही सतर को मैं बीसों बार पढ़ता। मुझे विश्वास है कि कम से कम कुछ समय तक मैं उसको उलटा ही पढ़ता रहा। मैंने मन में सोचा, फेंको इसे, क्योंकि किसी लम्बी यात्रा में किसी को भी आनन्द मिल सकता है यदि उसके साथ कोई सुन्दर स्त्री यात्रा कर रही हो।

"उस स्त्री से बात-चीत का सिलसिला जारी करने की मेरी बड़ी इच्छा थी। परन्तु वैसा करने के लिए क्या बहाना मुझे मिल सकता था ? तापक्रम की वैसी स्थिति में खिड़कियाँ खोलने या बन्द करने की पुरानी प्रसिद्ध चाल का भी उपयोग नहीं हो सकता था। कोई उपाय नहीं सूझ पड़ता था। कोई मामूली बात छेड़ देने का भी साहस नहीं पड़ता था। वैसा करने की अपेक्षा चुप रहना सौ बार अच्छा था। मैंने देखते ही जान लिया था कि वह स्त्री ऊँचे समाज की है। इसलिए बिना परिचित हुए उससे बोलना अपने को नीच बनाने के समान था। मैं उसकी निगाहों में एक गँवार व्यापारी यात्री ही जँचता। उससे बातचीत का सिलसिला छेड़ने का एक यही मार्ग था कि उससे कहने के लिए कोई भड़कीली मौलिक बात खोजी जाती। मैं परिश्रम के साथ कोई वैसी बात सोचने लगा, परन्तु विचार में ही नहीं आई।

"मैं वैसी ही बात की चिन्ता में था कि गाड़ी एकाएक रुक गई, धन्यवाद है ब्रेक की शक्ति को, जो दुर्घटनाओं के समय जितनी अच्छी है, उतनी ही यात्रियों के लिए बुरी भी है।

"गाड़ी का दरवाज़ा खोलते हुए एक खलासी ने चिल्ला कर कहा—टोमेरे ! गाड़ी २५ मिनट ठहरेगी।

"मेरे साथ की वह स्त्री उठ खड़ी हुई। उसने अपने रग और ओढ़ने फेंक दिये। वह उन्हें और अपने तीनों बेगों को गाड़ी में ही छोड़ कर प्लैटफ़ार्म पर उतर गई। दोपहर था। भूख लगने लगी थी। वह लाइन पार भोजनालय की ओर अपने बायें जाने लगी।

"मैं भी उसके पीछे लगा। अब मुझे उसके स्वरूप की सुन्दरता की आराम के साथ प्रशंसा करने का मौक़ा मिला। उसके फ़र के लम्बे लबादे से उसके शरीर की शोभा और भी बढ़ गई थी। मैंने यह भी देखा कि उसकी गर्दन बहुत सुन्दर है। वह भूरी फ़ेल्ट हैट लगाये थी और उसके पैर बहुत छोटे छोटे थे।

"भोजनालय के द्वार पर मैनेजर खड़ा था। वह रेशमी टोपी लगाये था। उसकी रूप-रेखा तीसरे नेपोलियन से बखूबी मिलती थी। उसने अपने हाथ और रूमाल से एक लम्बी मेज़ की ओर सङ्केत कर दिया, जिस तक धावा कर के ही पहुँचना था।

"यात्रियों के झुण्ड के साथ मैंने उसमें प्रवेश किया। भीतर घुसने के लिए यात्री शीघ्रता कर रहे थे, इसलिए वे एक दूसरे से गुँथ-सा गये थे। संक्षेप में यह कि (एक्सप्रेस गाड़ी के) यात्रियों का ताँता मानव-सौन्दर्य की दृष्टि से विशेष रूप से विद्रूप और हीनताद्योतक होता है। सभी लोग किसी न किसी प्रकार का भोजन करने में जुट गये।

" मैं भी बैठ गया। भोजन की जो तश्तरियाँ एक के बाद एक मेरे सामने आती जाती थीं, मैं जल्दी जल्दी उनका सामान निगलने-सा लगा। मेरे साथ की उस स्त्री ने एक दूसरी मेज़ के पास बैठ कर थोड़ा सा शोरबा लिया था।

"मैं सबसे पहले उठा और सिगरेट पीने के लिए प्लैटफ़ार्म पर चला गया। २५ मिनट—नियम के अनुसार

घट कर २० ही मिनट रह गये थे—शीघ्र ही बीत गये। यात्रियों की टोलियाँ भोजनालय से निकल निकल कर अपने अपने डिब्बों में जा बैठीं। मैं भी अपने डिब्बे में जा बैठा। पर मेरे साथ यात्रा करनेवाली वह स्त्री नहीं लौटी।

"मैंने उसे लाइन की दूसरी ओर बुक-स्टाल के पास खड़ी देखा। वहाँ वह पुस्तकें देख रही थी। यद्यपि मुझे केवल उसकी पीठ ही दिखाई देती थी, तो भी उसके सुन्दर शरीर से, उसके ओवर के चमड़े के लबादे से, और उसके भूरे हैट से मैंने उसे सरलता से पहचान लिया। उसके बाल जैसे काले होने मैंने सोचे थे उसकी अपेक्षा उसके बाल मुझे कुछ कम काले मालूम पड़े अवश्य; परन्तु निस्सन्देह वह मुझे दूरी का ही प्रभाव जान पड़ा था।

"सब यात्री अपनी अपनी जगहों पर बैठ गये थे और खलासी लोग गाड़ियों के दरवाज़े बन्द करने में लगे थे। मैंने अपने मन में सोचा—क्या वह छूट जायगी। वह पागल है। मैडम मैडम कह कर मैंने उसे खिड़की के बाहर से आवाज़ दी। वह बहुत दूर थी। उसने मेरी आवाज़ नहीं सुनी।

"सीटी बजी; गाड़ी छूटने को थी। अब मैं क्या करूँ? बिजली की दमक जैसी शीघ्रता से मेरे मन में एक विचार आया। वह इस विकट सर्दी में बिना अपने सामान के यहीं रह जायगी। इसलिए कम से कम उसकी कुछ छोटी छोटी चीज़ें तो उस बेचारी के पास अवश्य होनी चाहिए।

"मैंने उसके तीनों बैग और उसके रग एक साथ उठा लिये और गाड़ी के पास लाइन पर जो आदमी रेलवे की वर्दी पहने खड़ा था उसी के पास वे सब फेंक दिये। मैंने ज़ोर से उससे कहा—वहाँ जो स्त्री खड़ी है उसको दे दो।

"वह वर्दीवाला आदमी वे सब चीज़ें उठा कर बुक-स्टाल की ओर उस स्त्री के पास ले गया। उसी समय डिब्बे का दूसरी ओर का—प्लैटफ़ार्म की दूसरी ओर का—दरवाज़ा खुला और मेरे डिब्बे की वह यात्री स्त्री जल्दी में घुस आई और गाड़ी भी चल खड़ी हुई। बड़ा अनर्थ हुआ। मैंने यात्री के पहचानने में भूल की। बुक-स्टालवाली वह स्त्री मेरे डिब्बे में यात्रा करनेवाली स्त्री नहीं थी। वही लबादा, वही हैट, और वही शरीर, परन्तु वह कोई दूसरी स्त्री थी। सचमुच यह समझना पूरी मूर्खता है कि पीठ की ओर से भी लोग पहचाने जा सकते हैं—मैंने बड़ी भारी भूल की।

"उसने मुश्किल से गाड़ी में पैर रक्खा था कि वह चीख पड़ी। उसने कहा—मेरे बैग कहाँ गये। किसी ने मेरा सामान उड़ा दिया!

"अब पहली बार उसने मुझ पर निगाह डाली—भगवान् जाने—वह ऐसी निगाह थी जो कभी नहीं भूली जा सकती।

"मैंने कहा—नहीं मैडम, आपका सामान चोरी नहीं गया है। वह टोनेरे में पीछे छोड़ दिया गया है।

"'टोनेरे में! कैसे?'

"मैंने सारा क़िस्सा कह सुनाया। प्रिय मित्र, जो दूसरी निगाह उसने मुझ पर डाली उसका वर्णन तो मैं नहीं कर सकता, परन्तु मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि मुझे इस बात का पूरा विश्वास है कि मैं पहली निगाह से भी उसे अधिक समय तक याद रक्खूँगा।

"मैंने फिर कहा—मैडम, मुझे बहुत ही दुःख है, परन्तु मेरा उद्देश अच्छा ही था। मैंने समझा कि आप गाड़ी से छूटी जाती हैं—आपको सर्दी से कष्ट होगा—और यह बात मैं नहीं चाहता था कि आप सर्दी का कष्ट पायें। सारांश यह कि आप मुझे क्षमा करें और अपने सामान के सम्बन्ध में चिन्तित न हों। वह सुरक्षित है। वर्दीधारी स्टेशन के कर्मचारी के ही पास है। दूसरे स्टेशन पर आप तार दे सकती हैं—मैं ही दे दूँगा तार और आपका सामान तुरन्त भेज दिया जायगा। आपका सामान आपको मिल जायगा, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, चाहे मुझे उसे लाने के लिए स्वयं टोनेरे को फिर लौट कर जाना पड़े।

"'ख़ैर सोचिए, मैं सब ठीक कर लूँगी।'

"वह अपने कोने में ताबड़-तोड़ जाकर फिर बैठ गई और अपने दस्तानों को क्रोध से नोचने लगी।

"परन्तु खेद है कि उस बेचारी नन्हीं सी स्त्री का सर्दी की ओर ध्यान नहीं था। वह अपने गरम रग और

ओढ़ने नहीं ओढ़े हुए थी। दस मिनट बाद ही वह काँपने लगी। व्यर्थ ही उसने अपने आपको समेटने का, अपनी देह से अपना ओटर के चमड़े का लबादा लपेटने का प्रयत्न किया। वह सचमुच ही सर्दी से काँपने लगी।

"मैंने कहा—मैडम, घुटनों के बल होकर मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि कृपा कर आप मेरा रग ले लें। आपको सर्दी लग जायगी—और यह कष्ट मेरे अपराध से होगा—जीवन भर मैं इसके लिए अपने आपको कभी नहीं क्षमा कर सकूँगा।

"उसने तुरन्त जवाब दिया—मोशिये, मैंने तो आपको कुछ भी नहीं कहा।

"मैं घबरा गया—उत्तेजित हो उठा। एक तो वह सुन्दर थी, दूसरे जो मूर्खता-पूर्ण भूल मैंने की थी उसके लिए मैं अपने ही ऊपर बहुत अधिक रुष्ट था। सारांश यह कि मैं उस समय बड़े सङ्कट में पड़ गया था। ऐसे ही अवसरों पर दृढ़ निश्चय के साथ कोई साहसपूर्ण कार्य कर गुज़रने की आवश्यकता है।

"मैंने कहा—मैडम, या तो आप मेरे इस रग को स्वीकार करें, नहीं तो शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं नीचे लाइन में फांद पड़ूँगा।

"और रग को अपने और उसके बीच में फेंक कर मैंने खिड़की खोली और दरवाज़े का बाहरी दस्ता पकड़ लिया।

"वास्तव मे मैं कूद पड़ने को तुला हुआ नहीं था। परन्तु यही मालूम पड़ा कि मेरा ढङ्ग वैसा ही था, क्योंकि वह तत्काल ही चिल्ला उठी—

" 'मोशिये, आप पागल हो गये हैं, आप पागल हो गये हैं।'

" 'आप रग उठायें, नहीं तो मैं कूदता हूँ।'

" 'उसने रग उठा लिया और मृदु स्वर में कहा—परन्तु मोशिये, आप तो सर्दी में ठण्डे हो जायँगे।'

" 'मैडम, आप मेरी चिन्ता न करें, मुझे ज़रा भी सर्दी नहीं मालूम हो रही है—और यदि मुझे ठंड मालूम भी पड़ेगी तो वह केवल मेरी अक्षन्तव्य मूर्खता का समुचित दण्ड ही होगा।'

" 'मूर्खता नहीं, अपनी अधिक शीघ्रता कहो, क्योंकि जैसा आपने कहा है, आपका उद्देश अच्छा था। परन्तु दूसरी स्त्री को मुझे समझ लेने की भूल आपसे कैसे हो गई?'

" 'क्योंकि वह मुझे सुन्दर मालूम हुई।'

"उसने हँस दिया। बर्फ़ टूट पड़ी—अर्थात् बात-चीत का क्रम छिड़ गया। पर मैं ठंड से काँप रहा था।

"तोभी मैं शीघ्र ही ठंड, यात्रा—सभी कुछ भूल गया। मेरे लिए तो वह स्त्री अद्वितीय थी। वह शिक्षित, हँसमुख और तीक्ष्णबुद्धि थी। मेरी ही तरह उसे भी यात्रा से प्रेम था। साहित्य में, सङ्गीत में, वस्तुतः प्रत्येक विषय में हम दोनों की एक सी रुचि थी। और बात-चीत से हमें पता लगा कि हम दोनों के परिचित लोग भी एक ही हैं। उसकी सेंट चामस से, सेवेनिस से, यहाँ तक कि मांटबैज़ंस से भी घनिष्ठता थी। अब मैं सोचता हूँ कि कदाचित् मैं उससे इन लोगों के यहाँ बीसों बार मिला होऊँगा, परन्तु उसकी ओर कभी नहीं ध्यान दिया। हे भगवन्, मेरी आँखें कहाँ चली गई थीं!

"उसने सीधे सादे ढङ्ग से, प्रेम से और स्पष्टता से जिसे मैं पसन्द करता हूँ, बात-चीत की। उसका थोड़ा, बहुत ही थोड़ा, प्रान्तिक स्वर—जो प्रायः मालूम नहीं पड़ता था, उसके उच्चारण को पक्षी के गीत का कुछ कुछ रूप प्रदान करता था। और वह स्वर मनोमुग्ध करनेवाला था।

"मुझे ठंड लग रही है, यह न प्रकट होने देने के लिए मैंने सारा संसार दे दिया होता—परन्तु भगवान् जानते हैं, ठंड से मैं ठिठुर गया था।

"डिजन पहुँचने तक (२–२०) मेरा दाहना पैर आधा ठिठुर गया। यहाँ हमने पीछे छूटा हुआ सामान भेज देने के लिए तार दिया।

"मेकन पहुँचने पर (४–३०) मेरे बायें पैर की बारी आई। टोनेरे से तार मिला कि दूसरे दिन वह सामान मार्सेलीज़ पहुँच जायगा।

"ल्योंस-पेरांचे में (५–४०) मेरा बायाँ हाथ सुन्न हो गया। यहाँ वह अपने लिए स्लीपिंग कार माँगना भूल ही गई।

"वेलेंस में (८-३) मेरे दाहने हाथ ने बाये का अनुसरण किया। यहाँ मुझे मालूम हुआ कि वह विधवा है, साथ ही सन्तानहीन भी है।

"अवेगनान मे (६-५६) मेरी नाक नीली पड़ गई। यहाँ मैंने सोचा कि उसने अपने पहले पति को पूर्ण रूप से प्यार कभी न किया होगा।

"मार्सेलीज़ में (१२-५) मुझे ज़ोर की तीन छींके आईं। उसने मेरा रग मुझे लौटा दिया और प्रेमपूर्वक नमस्कार किया।

"नमस्कार! अहा! मैं प्रसन्नता से मत्त हो गया।

"मैंने होटेल डे नोलेस में रात व्यतीत की। मैं रात भर उत्तेजित रहा, उसकी स्मृति से बहुत देर तक नींद नहीं आई। दूसरे दिन जब सोकर उठा, मैं सर्दी से जकड़ा हुआ था, जिसका अनुमान बड़ी सरलता से किया जा सकता है।

"उस दशा में मैं अपने मित्र रोमबौड लोगों से नहीं मिल सकता था। परन्तु और कोई उपाय ही नहीं था। मैंने अपने मन में सोचा कि यह एक प्रकार की यात्रा की दुर्घटना है। मेरे मित्रों को मुझे उसी दशा में लेना होगा। परन्तु कल मैं नाइस चला जाऊँगा और तभी सूर्य के प्रकाश में इस व्याधि से मुक्ति पाऊँगा।

"परन्तु प्रिय मित्र, कैसी आश्चर्य की बात है! उस भले आदमी रोमबौड ने मेरा सम्मान करने के लिए अपने कुछ मित्र आमन्त्रित किये थे और उसमे वह सुन्दर स्त्री भी थी जो मेरे साथ यात्रा कर रही थी! वही जिसने मुझे मोहित कर लिया था।

"जब मेरा उसे परिचय दिया गया, उसके ओठों पर हँसी लहरा गई। झुक कर मैंने उसका अभिवादन किया और धीरे से पूछा—

"'टोनेरे से—आपका सामान?'

"उसी प्रकार धीरे में उसने कहा—मुझे मिल गया है।

"हम मेज़ के पास बैठ गये।

"सहानुभूति दिखलाते हुए रोमबौड ने जोर से पूछा—मेरे प्रिय मित्र, तुम्हें कैसी सर्दी हो गई है, यह व्याधि कहाँ से लाये? कदाचित रेलगाड़ी में लग गई है।

"'मैंने कहा—बहुत सम्भव है, परन्तु मुझे उसके लिए खेद नहीं है।

"इस छिपे हुए उत्तर का तात्पर्य कोई नहीं समझ सका, परन्तु मुझे मालूम हुआ कि मेरे साथ यात्रा करने-वाली उस स्त्री की दया-पूर्ण दृष्टि मेज़ पर रक्खे हुए शोरबे के सुगन्धित भाफ से होकर मुझ तक आ पहुँची।

"इससे अधिक मुझे और क्या तुम्हें बताना है। दूसरे दिन मैं नाइस को रवाना हो गया। अब १५ दिन में मेरा विवाह होगा*।"

* जैक्यू नारमंड की एक कहानी।

सापेक्ष्यवाद का दार्शनिक विचार

[श्रीयुत अवध उपाध्याय]
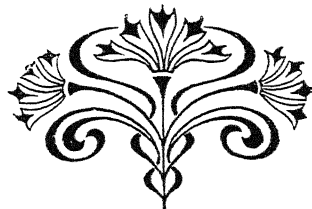
देश, काल और गति

देश, काल और गति का प्रश्न, दर्शन-शास्त्र के विचार से, बहुत प्राचीन है। देश, काल और गति स्वयं प्रकाश करनेवाली वस्तुएँ हैं। साधारण से साधारण मनुष्य भी इनके विषय में कुछ न कुछ अवश्य जानता है, और उच्च कोटि के दार्शनिक, गणितज्ञ तथा वैज्ञानिक लोग भी इन विषयों पर अभी तक बराबर विचार करते चले आते हैं। इनके विषय में अब भी ऐसे प्रश्न वर्त्तमान हैं जो बहुत कठिन कहे जा सकते हैं। गणित तथा विज्ञान के प्रधान विषय देश, काल और गति हैं। हम लोगों के प्रतिदिन का अनुभव इनकी सत्यता को प्रमाणित करता है।

कैंट तथा उसके बाद होनेवाले दार्शनिकों ने स्वीकार किया है कि देश और काल लोगों के ज्ञान की दशायें हैं। कैंट का विचार है कि हम लोगों को सत्य-पदार्थों का ज्ञान नहीं होता बरन दृश्यों का। यदि यह बात स्वीकार की जाय तो भौतिक विज्ञान की सब बातों मे इनका असर ही नहीं हो सकता।

कुछ दार्शनिकों का विचार है कि गति के अतिरिक्त और कुछ संसार में है ही नहीं; और दूसरों का यह कि गति असत्य है, इसके अतिरिक्त सब पदार्थ सत्य है, इस प्रकार देश-काल के विषय में दार्शनिको के विचार भिन्न भिन्न है।

आएन्स्टीन के सापेक्ष्यवाद से देश और काल के विषय में यह सिद्धान्त निकलता है कि देश और काल स्थिरात्मक नहीं है और सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्तानुसार ही प्रकृति के नियमों को स्वीकार करना न्याय-संगत तथा आवश्यक है। विशेष तथा साधारण सापेक्ष्यवाद की सहायता से आकर्षण-शक्ति तथा प्रकृति के अन्य सब नियम निकाले जा सकते हैं।

यह बात सत्य है कि सापेक्ष्यवाद का यह सिद्धान्त न्यूटन की आकर्षण-शक्ति के विरुद्ध है। देश के नियत रूप तथा समय की लगातार गति भी विरुद्ध है, उक्लैदसीय रेखा-गणितीय निराकरण करनेवाली मीमांसा है। सापेक्ष्य-वाद के सिद्धान्त के अनुसार त्रिभुज के सब कोणों का योग दो समकोणों के बराबर नहीं हो सकता। सापेक्ष्य का सिद्धान्त उन दो परीक्षाओं पर निर्भर है जिनके उत्तर नकारात्मक हैं। इनकी सहायता से हम लोगों को कोई नये विचार नहीं मिलते, क्योंकि ये इन्हीं पुराने विचारों पर अवलम्बित हैं।

प्रकाश की भिन्न भिन्न मीमांसायें प्रचलित हैं। सापे-क्ष्यवाद का स्वभाव उन मीमांसाओं के विषय में विशेष रूप से कुछ नहीं बदलता, केवल यह सिद्धान्त इसमें स्वीकार किया गया है कि प्रकाश की गति स्थिर है। यदि देश-काल निर्पेक्ष हों जैसा कि हम लोग साधारणतः मानते है, तब प्रकाश की गति स्थिर हो ही नहीं सकती, क्योंकि परीक्षकों को गति के कारण देश और काल भी भिन्न भिन्न होंगे, स्थिर नही। परन्तु परीक्षाओं की सहायता से यह बात सिद्ध हो गई है कि प्रकाश की गति सर्वदा एक ही रहती है और उद्गम अवस्था की गति से स्वतन्त्र है। अत-एव यह सिद्धान्त निकलता है कि गति स्थिर है, देश और काल ही परीक्षकों के विचार से भिन्न भिन्न है, यही सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सापेक्ष्यवाद से गति स्थिर और देश और काल को चलना स्वीकार करने की प्रथा है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि बहुतेरे लोगों को यह बात विरोधाभास की तरह प्रतीत होगी। आएन्स्टीन ने परीक्षा की बात को स्वीकार कर लिया है। उनका यह कथन नहीं है कि देश और काल माया-जाल है अथवा दृश्य है।

वियोग-चिन्ता [श्रीयुत फणीन्द्रनाथ मुकर्जी

एलुमिनियम जगत में कौन मार्का सबसे आगे है ?

उत्तर यही एक—

ताज मार्का

इसके तीन कारण हैं—
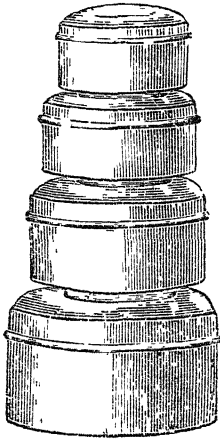
१—उनका सस्तापन

२—उनका टिकाऊपन

३—और उसकी शुद्धता

तथा स्वास्थ्यता
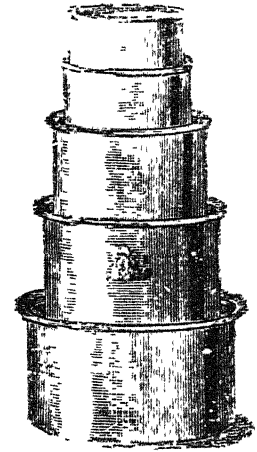
ताज मार्का अद्वितीय हैं ।

भारत और बरमा में सर्वत्र हर एक दुकान में मिलता है । सभी आर्डर तुरन्त कार्य में परिणत होते हैं । सचित्र सूचीपत्र मुफ़ मँगाइये ।

नोट—पुराने एलुमिनियम बर्तन ख़रीद लेते हैं ।

जीवनलाल एण्ड कम्पनी

४४ इजरा स्ट्रीट, कलकत्ता

तार का पता—'Martalumin' कलकत्ता । टेलीफ़ोन ३१५२, कलकत्ता ।

आर्डर देते समय पत्र में यह अवश्य लिखिए कि "सरस्वती" में विज्ञापन देखकर माल मँगाया है ।

सिद्धान्त को स्वीकार करना ही उनका मन्तव्य है। उन्होंने इन परीक्षा-फलों के अनुकूल सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त को बनाया है। इसको दूसरे शब्दों में यों भी कह सकते हैं कि सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त परीक्षा-फलों पर ही निर्भर है।

प्रत्येक मनुष्य को देश और काल का कुछ न कुछ ज्ञान अवश्य होता है। मन में इनका कुछ न कुछ रूप अवश्य अङ्कित रहता है। परन्तु यह ज्ञान निश्चित तथा नियत नहीं होता। यदि सच कहिए तो यह कहना अत्युक्ति न होगा कि प्रत्येक मनुष्य का देश और काल से स्पष्ट सम्बन्ध रहता है। हम लोगों की स्थिति देश और काल पर निर्भर है। देश और काल प्रत्याहार अथवा बौद्ध-पदार्थ नहीं है, तथापि ये मूर्त पदार्थ नहीं और न ये घटनायें हैं। अतएव देश और काल का ज्ञान हम लोगों को उसी प्रकार नहीं हो सकता, जैसे मूर्त्त पदार्थों तथा घटनाओं का होता है। भौतिक संसार के ढाँचे देश और काल हैं। देश और काल केवल ज्ञान ही नहीं हैं, वरन भावना भी हैं। देश और काल का अध्ययन करने के लिए 'ज्ञान' और 'भावना' दोनों का विचार करना चाहिए। सच बात तो यह है कि दर्शन का विद्वान् भावना का उतना विचार नहीं करता जितना ज्ञान का। भावना के लिए कवि लोग ही प्रधान हैं। कवियों के लिए, देश और काल के ज्ञान का परिणाम-वाद भावना ही का परिणाम रहा है। कवि लोगों का ज्ञान भावना के विषय में बहुत स्वच्छ व्यक्त तथा परिस्फुटित होता है और दार्शनिक लोगों का ज्ञान सत्य के प्रत्यय के विषय में। प्रत्येक सच्चा दार्शनिक लोक के दृष्टि-कोण से ही प्रारम्भ करता है।

परन्तु जब हम लोग किसी दार्शनिक विचार का प्रारम्भ करते हैं तब ज्ञान के स्थान पर अपनी भावना का उत्थापन कर देते हैं। जब किसी ज्ञान का विचार उत्पन्न होता है तब हम लोग अपनी भावना के अनुकूल ही उसे समझने लगते हैं; और संसार के दृष्टि-कोण का कुछ भी विचार नहीं करते। लेखक के ज्ञान से उसकी भावना अलग मान ली जाती है, क्योंकि पढ़नेवाला अपनी भावना के अनुसार ही उसे मानता है।

दार्शनिक पुस्तकों में सिद्धान्तों तथा प्रत्ययों का वर्णन होता है और काव्य की पुस्तकों में भावना का। किसी विशेष काल के विचार का अध्ययन करने के लिए ज्ञान और भावना दोनों का साथ साथ अध्ययन करना चाहिए। संसार की भावना भी बदलती रहती है और भावना का प्रभाव ज्ञान पर पड़ता ही रहता है और ज्ञान का भावना पर। यदि संसार के विचार तथा ज्ञान के इतिहास का अध्ययन करें तो पता चलेगा कि ज्ञान और भावना दोनों बदलते रहे हैं, दोनों, एक दूसरे के प्रभाव से भी बदलते रहे हैं। परन्तु देश, काल और गति के प्रधान विचार नहीं बदलते। इसमें भी सन्देह नहीं है कि अनुभव के कल्पितार्थ देश, काल और गति हैं और इनके बिना अनुभव हो ही नहीं सकता, तथापि ये नहीं बदलते। विश्व का स्वभाव, प्रकृति का नियम चाहे जो हो, विश्व में चाहे जो पदार्थ हों, विश्व का इतिहास चाहे जो हो, विश्व के आधार, देश, काल और गति हैं, अति प्राचीन काल से लोगों ने इनके विषय में विचार करना प्रारम्भ किया था। अब भी करते हैं और पूर्ण आशा है कि आगे भी करेंगे। इनके विषय में बहुत ऐसे प्रश्न उत्पन्न हुए हैं जो हल नहीं हो सके और बहुत ऐसे सिद्धान्त निकले हैं जो विरोधाभास की तरह मालूम होते हैं।

भावना की सहायता से देश और काल का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता। और यह बात भी निर्विवाद है कि ज्ञान की सहायता से भी इनका प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं होता यदि ज्ञान और प्रत्यक्ष-ज्ञान दोनों एक ही होते तब तो इनका प्रश्न बहुत ही सुगम हो जाता। परन्तु ये दोनों एक नहीं हैं और इसी कारण मनो-विज्ञान में कई कठिन प्रश्न उत्पन्न होते हैं। देश की भावना प्रायः दो प्रकार से हुआ करती है। एक को नकारात्मक कह सकते हैं, जिससे हम यह कहते हैं कि यह शून्य है। दूसरी को स्वीकारात्मक भावना कहते हैं, जिसकी सहायता से उसकी व्याप्ति (विस्तार) का ज्ञान होता है। देश के विस्तार तथा शून्य का प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियों-द्वारा नहीं होता।

यद्यपि इनका प्रत्यक्ष ज्ञान इन्द्रियों-द्वारा नहीं होता, तथापि प्रत्येक अनुभव के साथ देश और काल, दोनों

बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रखते हैं; तो भी देश और काल का अनुभव इन्द्रियों-द्वारा नहीं होता। देश और काल की प्रतीति भी नहीं होती। एक और बड़े आश्चर्य की बात, उक्लैदस के रेखागणित से सम्बन्ध रखती है। रेखागणित की स्वयंसिद्धियां तथा अबाध्योपक्रम देश और काल के ज्ञान तथा भावना के अनुसार ही है, तथापि हम लोगों का देश और काल-सम्बन्धी एक भी अनुभव इनके अनुसार नहीं होता।

बर्कले ने सिद्ध कर दिया है कि नेत्र से दूरी का तथा तृतीय परिमाण का ज्ञान नहीं हो सकता। इसी के आधार पर उन्होंने सिद्ध किया है कि प्रत्यक्ष-ज्ञान सांकेतिक होता है; जिसकी सहायता से स्पर्श-सम्बन्धी बोध होता है। स्पर्श-सम्बन्धी तथा नेत्र-सम्बन्धी बोध से दूरी का ज्ञान होता है और यह ज्ञान गति पर निर्भर है। गति में देश और काल का विचार मिश्रित है। यदि इन बातों को मान लें तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि निरपेक्ष माप क्या है, जिससे हम लोग समय को नाप सकें। इस प्रकार तथा किसी अन्य प्रकार से भी यदि देश और काल का विचार करें तो कदापि स्पष्ट रूप से देश और काल का निरपेक्ष ज्ञान नहीं होता। तथापि इसमें कुछ भी सन्देह नहीं होता है कि देश और काल इस प्रकृति के आधार हैं, इसके विषय में स्पेंसर तथा जेम्स् ने भी विचार किया है। कहने का आशय यह है कि देश और काल का प्रश्न दर्शन में बहुत ही प्राचीन और सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त दार्शनिक विचार से विरुद्ध नहीं है। दार्शनिक विचार से देश और काल के विषय में चाहे जो उत्तर रहा हो; चाहे वह सापेक्ष्यवाद ही का उत्तर हो अथवा इस से भिन्न; परन्तु इसका उत्तर दर्शन के अनुसार पहले ही से वर्त्तमान है और इसलिए सापेक्ष्यवाद दर्शन मे युगान्तरकारी आविष्कार नहीं है। परन्तु विज्ञान तथा गणित में सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त अवश्य युगान्तकारी है।

कुछ दार्शनिक तथा गणितज्ञ मन और पदार्थों का सम्बन्ध नहीं मानते थे। कम से कम गणितज्ञ लोग कहते थे कि हम लोग पदार्थों के विषय में कुछ नहीं जानते। 'यदि ये बातें दी हुई हैं तो ऐसे फल होंगे' बस यही हम लोगों का कार्य है।

अभी तक विज्ञान तथा गणित का क्षेत्र विषयाश्रित था। उससे आन्तरिक बातों से कुछ सम्बन्ध नहीं था। गणितज्ञ का ज्ञान अभी तक विषय-ज्ञान था; विज्ञान केवल पदार्थों के विषय में ही विवेचना करता था, मन के विषय मे नहीं। परन्तु सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त ने इनका एक-दम परिवर्त्तन कर दिया। सापेक्ष्य के आविष्कार ने गणित तथा विज्ञान के अखाड़े में आत्म-गत तथा विषय-गत तत्त्वों को भी उठाकर फेंक दिया।

गणित तथा विज्ञान के इतिहास में यह एक नई बात है। जब यह सिद्धान्त गणित में आया तब सब लोगों ने कहा कि यह केवल एक प्रकार का नियम का संशोधन है और इस संशोधन तथा संस्कार से नई स्थिर तथा चल राशियों का गणित में प्रवेश हुआ है।

'सापेक्ष्यवाद' दार्शनिक विचार से विश्व के स्वभाव का दार्शनिक ज्ञान है। इससे यह सिद्ध होता है कि परीक्षाओं को स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष मान ही नहीं सकते और नापने का कोई स्वतन्त्र तथा निरपेक्ष पैमाना हो ही नहीं सकता। सब लोगो का विचार था कि देश निरपेक्ष है। सब लोग सोचते थे कि देश स्वतंत्र है। सब लोगों का विचार था कि यदि संसार की सब वस्तुएँ कहीं अलग रख दी जायँ तो देश शून्य हो जायगा, रिक्त हो जायगा। परन्तु देश का नाश नहीं हो सकता। यदि संसार के सब पदार्थ हटा दिये जायँ तो देश रहेगा, क्योंकि वह निरपेक्ष है, किसी की अपेक्षा नहीं रखता। सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त यह कहता है कि यह असम्भव है, यह हो ही नहीं सकता, क्योंकि देश निरपेक्ष नहीं है, वह सापेक्ष है। सापेक्ष्यवाद यह कहता है कि यदि संसार के सब पदार्थ हटा दिये जायँ तो देश की स्थिति का नाश हो जायगा, क्योंकि बिना पदार्थों के देश हो ही नहीं सकता।

इसी प्रकार समय के विषय में भी लोगों का विचार था कि यदि कोई घटना न घटे तो समय का भेद मिट जायगा, तथापि काल उसी गति से बहता रहेगा, काल उसी चाल से चलता रहेगा, क्योंकि काल निरपेक्ष है और किसी की अपेक्षा नहीं करता। सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त इसके विरुद्ध है। वह कहता है कि जब कोई घटना ही

नहीं होगी तब समय की स्थिति भी नहीं होगी, क्योंकि समय सापेक्ष्य है।

इस लेख मे पहले ही लिखा गया है कि देश और काल का प्रत्यक्ष ज्ञान हम लोगों को नहीं होता। क्या इसी कारण देश और काल को सापेक्ष्य मान लिया गया है? देश और काल को निरपेक्ष मानना व्यर्थ है, क्या इसी लिए सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है?

देश और काल का आविष्कार नहीं हो सकता, क्या इसी आधार पर सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है? वास्तव में ऐसी बात नहीं है। सापेक्ष्यवाद का आधार मिन्टो और मार्ली की परीक्षायें हैं।

सापेक्ष्यवाद का आधार परीक्षायें हैं, जो अवश्य उनको प्रकट कर देतीं यदि उनका अस्तित्व होता। परीक्षाओं की सहायता से उनका पता नहीं चलता, इसी आधार पर सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है। कभी कभी ऐसा भी होता है कि एक आविष्कार से हम लोगों की अज्ञानता का ज्ञान हो जाता है, परन्तु कभी कभी आविष्कारों से विद्या तथा ज्ञान की वृद्धि होती है और इसका महत्त्व पहले से अधिक है। सापेक्ष्यवाद के आविष्कार से हम लोगों के ज्ञान की वृद्धि हुई, अज्ञानता का ज्ञान नहीं। इसी लिए इसका महत्त्व और भी बढ़ जाता है।

प्रकृति-अध्ययन से यह बात प्रकट होगई है कि प्रकृति जिसका हम लोग अध्ययन करते हैं, उस मन से स्वतन्त्र नहीं है जो इसे अध्ययन करता है। इससे यह सिद्ध होता है कि कोई ऐसी भौतिक सत्ता नहीं है जिसका ध्यान मन ध्यान करनेवाले तथा ध्यान की दशाओं से स्वतन्त्र कर सके।

गति

जेनो यूनान का एक बहुत ही प्राचीन तथा प्रसिद्ध विद्वान् है। अपने दार्शनिक विचारों के लिए वह बहुत ही प्रसिद्ध है। जेनो ईसा के पूर्व पांचवीं शताब्दी में हुआ था। वह परमेनीदेस नामक वैज्ञानिक का शिष्य था। उस समय परमेनीदेस ही दर्शन के इलियाटिक-सम्प्रदाय का मुखिया था। इस समय आओनिक सम्प्रदाय का जन्मदाता हिरेक्लेटस था। इन दोनों सम्प्रदायों में सर्वदा मतभेद रहा करता था और दोनों के सिद्धान्त एक दूसरे के विरुद्ध तथा खण्डनात्मक थे। एक के अनुसार स्थिति का प्रथम सिद्धान्त 'सत्ता' और दूसरे के अनुसार होना है। इस लेख में सापेक्ष्यवाद का वर्णन किया जा रहा है, यूनान के प्राचीन सम्प्रदायों के भिन्न भिन्न सिद्धान्तो तथा मतों का नहीं। परन्तु यहा केवल उन बातों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है जिनका 'गति' से स्पष्ट सम्बन्ध है। थोड़े शब्दों मे केवल इतना ही कहा जाता है कि अर्वाचीन के अतीतात्मक दार्शनिक लोगों के विचार से यह पुराना विचार बहुत कुछ मिलता-जुलता है।

हिरेक्लेटस ने देखा कि प्रकृति के सब पदार्थों में गति होती है और उस पदार्थ के विषय में जिसमे सर्वदा ही गति हुआ करती है कुछ नियमित रूप से कहा नहीं जा सकता। कम से कम उन पदार्थों के विषय मे जो सर्वदा और सब जगह बदलते रहते हैं, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जेनो का विचार इसके विरुद्ध था। जेनो ने गति के विरुद्ध चार युक्तियाँ दी हैं। जेनो की युक्तियाँ बहुत ही प्रबल और न्यायसङ्गत हैं। यदि कोई मनुष्य उन्हें अशुद्ध सिद्ध करने का यत्न करे तो उसे न्याय-सम्बन्धी रंध्र खोजना ही नहीं चाहिए।

जेनो की गति के विरुद्ध तीन युक्तियाँ

प्रथम युक्ति—कोई पदार्थ एक स्थान से दूसरे स्थान पर जो उससे दूर है, जा ही नहीं सकता क्योंकि यदि वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाय तो उसे कुछ दूरी तय करनी चाहिए। मान लिया कि दूरी की मात्रा दी हुई है। यह बात स्पष्ट है कि कुल दूरी तय करने के पहले आधी दूरी तय करनी पड़ी होगी और इस आधी दूरी के तय करने के पहले चौथाई ......इत्यादि। परन्तु इस क्रिया का अन्त हो ही नहीं सकता, अतएव कोई वस्तु एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा ही नहीं सकती। जो लोग गणित जानते है वे भली भांति जानते हैं कि जब तक अनन्त का विचार न करें तब तक आधा, चौथाई, आठवाँ भाग इत्यादि मिल कर एक के तुल्य नहीं

हो सकता। जैसे आठ आने, चार आने, दो आने, एक आना, दो पैसे, एक पैसा, अधेला आदि मिलकर एक रुपया कभी नहीं हो सकता।

द्वितीय युक्ति—यदि कछुए और बहुत ही प्रसिद्ध आदमी की दौड़ हो तो चाहे आदमी कितनाही अधिक क्यों न दौड़ता हो, कछुए को नहीं पा सकता, यदि आदमी से कछुआ कुछ आगे हो। जब तक आदमी उस स्थान पर पहुँचेगा जहां पर कछुआ था तब तक कछुआ आगे बढ़ जायगा, यही क्रिया होती रहेगी।

तृतीया युक्ति—उड़ता हुआ तीर नहीं घूमता क्योंकि वह सर्वदा स्थिर रहता है।

चतुर्थ युक्ति कुछ लम्बी-चौड़ी है। अतएव यहां उसका वर्णन नहीं किया जाता है। इसमें ऐसी स्थिति है कि दो घूमनेवाली वस्तु, एक ही देश को ऐसे समय में तय करती है कि समय अपने का दूना और आधा, दोनों हो जाता है। जेनो की गति की विवेचना किसी दूसरे लेख में की जायगी, क्योंकि इनके विस्तृत वर्णन से इस लेख का आकार बहुत बढ़ जायगा।

अरिस्टाटल ने इसका खण्डन किया है। यहां यह उल्लेख नहीं किया जायगा कि उसका खण्डन ठीक है अथवा अशुद्ध, क्योंकि ऐसा करने से लेख का आकार बहुत बढ़ जायगा। तथापि अरिस्टाटल की चौथी युक्ति के खण्डन का संक्षेप रीति से उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है और वह भी केवल इतनाही कि उसके खण्डन से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि घूमनेवाले पदार्थ की मात्रा और गति स्थिर है और समय चल है, अर्थात् मात्रा-गति सर्वदा एकही रहती है, परन्तु समय बदला करता है। इस कथन से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त को अरिस्टाटल ने पहले ही निकाल लिया, जहां तक कि इसका समय से सम्बन्ध है। परन्तु वास्तव में बात इसके विरुद्ध है। अरिस्टाटल का अर्थ बिलकुल इसके विरुद्ध है। उनका अभिप्राय यह है कि समय निरपेक्ष्य है और यदि एक वस्तु स्थिर हो, दूसरी चलती हो, और यदि दोनों की मात्रा बराबर हो, तो स्थिर वस्तु के पार करने में उस समय की अपेक्षा कम समय लगेगा जो उस वस्तु के पार करने में लगेगा, जो उसके समानान्तर दूसरी दिशा में चलती हो। परन्तु इससे जेनो के प्रश्न का समाधान तथा खण्डन नहीं होता।

जेनो की इन बातों से सिद्ध होता है कि उसने यह फल निकाला था कि गति कोई सत्य वस्तु नहीं है, वरन् आभास-मात्र है।

जेनो का सिद्धान्त था कि सत्य एक है और अपरिवर्त्तनशील है और कोई वस्तु घूमती नहीं है। जेनो की प्रथम युक्ति सिद्ध करती है कि गति असम्भव है, द्वितीय सिद्ध करती है कि गति असत्य है, तृतीय सिद्ध करती है कि वह विरोधात्मक है और चतुर्थ सिद्ध करती है कि वह अयुक्त है।

लगभग २५०० वर्ष हुए जेनो ने गति के इस प्रश्न को उठाया था। संसार के बहुतेरे दार्शनिकों के विचार इस सम्बन्ध में आज भी उपलब्ध हैं। प्रायः प्रत्येक प्रधान दार्शनिक ने इनके विषय में कुछ न कुछ अवश्य ही लिखा है, परन्तु केवल दो दार्शनिकों ने ही इस प्रश्न का यथेष्ट उत्तर दिया है। उनके नाम रसल और बर्गसन हैं। ब्रैडले ने भी इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न किया है, परन्तु उसे यथेष्ट उत्तर नहीं कह सकते। इस परस्पर विरोधात्मक गति के विषय में केवल ये दो ही यथेष्ट उत्तर माने जाते थे। यहाँ पर रसल तथा बर्गसन के उत्तर स्थानाभाव के कारण नहीं उद्धृत किये जाते। रसल की उपपत्ति गणितीय अविराम पर निर्भर है। रसल का विचार है कि जेनो का कथन ठीक है और परस्पर विरोधात्मक गति का प्रश्न ही नहीं उठता जब कि हम लोग अनन्त के गणितीय सिद्धान्त का व्यवहार करते हैं।

बर्गसन का कथन है कि जेनो का यह सिद्धान्त अशुद्ध है कि गति की स्थिति ही नहीं है। इन्होंने भी गति-सम्बन्धी विरोधाभास को समझाया है।

इस प्रश्न का तीसरा उत्तर जो सापेक्ष्यवाद की सहायता से दिया जाता है, उक्त दोनों उत्तरों से अधिक पूर्ण है। सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त स्वीकार करने पर विरोधाभास के प्रश्न का ही लोप हो जाता और यह उत्तर बुद्धि, विज्ञान तथा प्रज्ञा के अनुकूल ही है। यदि हम लोग जेनो की प्रतिज्ञा स्वीकार करलें तो उसके फल को स्वीकार करना ही पड़ेगा, क्योंकि उसमें कोई असङ्गत

तथा न्याय-विरुद्ध बात नहीं है। ऐसी दशा में उसकी प्रतिज्ञा के विषय में ही विचार करना अधिक लाभदायक होगा और आइन्स्टीन का सापेक्ष्यवाद यही करता भी है। सापेक्ष्यवाद में निरपेक्ष देश तथा काल का खण्डन किया जाता है और देश तथा काल, परीक्षा करनेवाले पुरुष से सम्बन्ध रखते हैं अर्थात् देश और काल परीक्षक से स्वतंत्र नहीं हैं।

महात्मा सुकरात के नाम से सब लोग भली भाँति परिचित हैं। सत्य के लिए जान दे देना इसी महात्मा का काम था। जब वह क़ैद था तब उसके शिष्यों ने आकर कहा कि आप भाग चलिए, हम लोग आपको बचा लेंगे परन्तु उसने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया और शान्तिपूर्वक विष के प्याले को हाथ में लेकर उसे पी लिया। विष पीने के थोड़े ही पहले उसका प्रधान शिष्य, प्रातःकाल ही उसके पास पहुँचा। जब उसने देखा महात्मा सुकरात आनन्दपूर्वक सुख की निद्रा में पड़े हैं तब उसके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। जिस शान्ति से महात्मा सुकरात ने विष पीकर अपने प्राण दिये वह अकथनीय तथा अपूर्व ही है। अस्तु, यूनान देश का एक बहुत प्रसिद्ध दार्शनिक उनका सम-कालीन था। उसका नाम डेमोक्रिटस था। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि वह दार्शनिक देहात्मक वाद का जन्मदाता है। यह थ्रेस देश के अवडेरा का रहनेवाला था, परमाणु-वाद का जन्मदाता यही है। वर्त्तमान काल में परीक्षाओं की सहायता से परमाणुवाद में बहुत नवीन सिद्धान्त निकाले गये हैं और इससे सम्बन्ध रखनेवाली विद्या में बहुत अधिक उन्नति हुई है। तथापि प्राचीन परमाणुवाद और नव्य परमाणुवाद में बहुत कुछ समानता है। इनमें विरोध नहीं है।

सबसे पहले डेमोक्रिट्स ने इस बात को सिद्ध किया कि प्रकृति पूर्ण तथा स्वतंत्र है। इसका 'देहात्मवाद' शुद्ध देहात्मकवाद कहा जा सकता है, क्योंकि विश्व के सब दृश्यों को चाहे आध्यात्मिक हों अथवा भौतिक, मानसिक हों अथवा शारीरिक बाह्य हों अथवा आभ्यन्तरिक, विषयाश्रित हों अथवा आन्तरिक, केवल प्रकृति की सहायता से ही इसने समझाने का प्रयत्न किया है। इसके कहने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि अति प्राचीन काल से भी देहात्मवाद के पक्षपाती होते आये हैं। इसके सिद्धान्त अकाट्य तथा व्यावहारिक होते हैं। मनुष्य की बुद्धि इसका समर्थन करती आई है। अनुभव भी इसकी ओर रहा है। परन्तु यह विचित्र बात है कि संसार के अधिक लोग इसके विरुद्ध रहे हैं। कभी लोगों ने घृणा की दृष्टि से इसकी ओर देखा है। इसका कारण यह नहीं है कि 'देहात्मवाद' बुद्धि-हीन बातों पर निर्भर है, बरन इसका प्रधान कारण यह दृष्टिगोचर होता है कि लोगों की धारणा इसके विषय में यह रही है कि यह आचार-नीति के विरुद्ध है और धर्म तथा मत की जड़ खोदनेवाला सिद्धान्त है। परन्तु जो दार्शनिक इसका खण्डन केवल इसलिए करता है कि यह आचार-नीति तथा धर्म के विरुद्ध है वह दर्शन की जड़ खोदता है। दार्शनिक को चाहिए कि वह प्रत्येक बात का दर्शन-शास्त्र की दृष्टि से ही विवेचन करे। ऐसे भी दार्शनिक पाये जाते हैं जो देहात्मवाद का दार्शनिक दृष्टि से भी खण्डन करते हैं।

एपिकरस एथेन्स में ईसा के पूर्व चौथी शताब्दी के अन्त में तथा तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ था। डेमोक्रिट्स इससे एक शताब्दी पहले हो चुका था। एपिकरस ने डेमोक्रिट्स के परमाणु-वाद को स्वीकार करके इसकी सहायता से आचार-नीति की व्याख्या की है।

प्राचीन काल का परमाणुवाद

शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा, पदार्थ तथा संसार सब परमाणुओं से बने हैं। संसार के सब दृश्य परमाणुओं की गति से उत्पन्न होते हैं, विचार के काम, मन के काम सब परमाणुओं की गति से होते हैं। संसार में परमाणुओं के अतिरिक्त न तो कोई अन्य पदार्थ है, न था और न होगा। शून्य और काल भी है। शून्य और काल ही से गति होती है, दृश्य संसार में केवल 'गति' सत्य है। इत्यादि।

एक प्रश्न था जिसे परमाणुवाद हल नहीं कर सका। यह प्रश्न दिशाओं से सम्बन्ध रखता है। संसार में जितने पदार्थ हैं, सब नीचे की ओर गिरते हैं।

अतएव पदार्थों के गिरने की स्वाभाविक दशा नीचे की ओर है; इससे यह सिद्ध होता है कि दिशा निरपेक्ष है। उक्त प्रश्न के हल करने ही के लिए निरपेक्ष दिशा की कल्पना की गई और इसको समझाने के लिए यह बात स्वीकार की गई कि शून्य अनन्त है, परमाणुओं का नाश नहीं होता, संसार बनते-बिगड़ते रहते हैं इत्यादि।

परन्तु एपिकरस को एक नई कठिनाई का सामना करना पड़ा। उसने कहा कि यदि सब परमाणु एकही दिशा में एक दूसरे के समानान्तर घूमते हैं, तब सब मिल नहीं सकते और किसी स्थूल पदार्थ को बना नहीं सकते। अतएव उसमें एक नये विचार का समावेश किया गया। यह नया विचार यह है कि सब परमाणु थोड़ा-सा झुक जाते हैं, यद्यपि यह झुकाव बहुत ही थोड़ा है, तो भी इसकी स्थिति है। क्योंकि इसके बिना संसार बनही नहीं सकता। इसी झुकाव के कारण वे आपस में मिल जाते हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से इस नये विचार का कुछ उतना अधिक महत्त्व नहीं है।

इस प्रकार प्राकृतिक दर्शन में देश, काल और गति का समावेश हुआ। दार्शनिक लोगों ने परमाणु तथा शून्य का खण्डन प्रारम्भ कर दिया। परमाणु की मात्रा क्या है? इसका खण्ड कैसे किया जायगा? खण्ड कब तक होता चला जायगा? पूर्ण और खण्ड की परिभाषा क्या है? आकार किसे कहते हैं?

शून्य का प्रश्न और भी कठिन है। सत्य के आधार पर यह शुद्ध निषेध है। शून्य का ध्यान में लाना और भी कठिन है।

परमाणुवाद का खण्डन करना दार्शनिक लोगों ने प्रारम्भ कर दिया, परन्तु देश, काल और गति के विषय में किसी विशेष बात का आविष्कार नहीं हुआ।

देश शून्य है, अनन्त रिक्त है, काल शक्ति के लिए आवश्यक है। गति भी संसार का एक पदार्थ है। स्थूल प्रकार से यही इन लोगों की धारणा थी।

डेमोक्रिट्स का परमाणुवाद कापर्निकस के पूर्व अच्छी तरह से प्रचलित रहा। यह सिद्धान्त निरीश्वर-वादी था और इसके स्वीकार करने से विश्व की उत्पत्ति आकस्मिक हो जायगी। यह सिद्धान्त-सम्बन्धी शून्य भी उक्लैदसीय था।

कापर्निकस के आविष्कार से संसार की सब बातों में परिवर्त्तन हो गया। इसके सिद्धान्त ने युगान्तर उपस्थित कर दिया और विज्ञान, गणित, ज्योतिष तथा दर्शन के स्रोत को एक दूसरी दिशा में बहा दिया। इसकी सहायता से नये प्रश्नों, नये नियमों, नये प्रत्ययों तथा नई भावनाओं का जन्म हुआ। यह बात निःसं-कोच कही जा सकती है कि जितना महत्त्व इस आविष्कार को दिया गया अथवा दिया जाता है, उतना और किसी दूसरे उसके पूर्व के आविष्कार को कदापि नहीं दिया जा सका या सकता है। इस आविष्कार से पृथ्वी उस महत्त्व को खो बैठी जो धर्म-सम्बन्धी लोगों ने उसे दिया था। सूर्य, चन्द्रमा तथा तारे पृथ्वी के चारों ओर घूमते हुए दिखलाई देते थे और सब लोग इसका विश्वास भी करते थे। जब कापर्निकस ने कहा कि ये सब स्थिर हैं, केवल पृथ्वी के घूमने के कारण ऐसा हम लोगों को मालूम होता है। वस्तुतः बात यह है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है तब लोग आश्चर्य करने लगे और अपने पहले विश्वास को छोड़ना नहीं चाहते थे। परन्तु बहुत ही शीघ्र इसका प्रचार हो गया और गणितादिक विषयों में बहुत ही शीघ्र लोगों ने इसका विश्वास कर लिया।

डेकार्टे ने कापर्निकस के सिद्धान्त से दर्शन-शास्त्र में बहुत ही सहायता ली और दर्शन के सब भागों का मनन करने के बाद उक्त सिद्धान्त की सहायता से दर्शन की प्रत्येक बातों की जाँच करना प्रारम्भ कर दिया।

डेकार्टे ने दो सिद्धान्तों का विचार किया और ये दोनों सिद्धान्त कापर्निकस के आविष्कार के फलस्वरूप कहे जा सकते हैं, क्योंकि इसकी सहायता बिना डेकार्टे उन्हें निकाल ही नहीं सकता था। दोनों सिद्धान्तों का बहुत स्थूल वर्णन यहाँ किया जायगा।

आन्तरिक सिद्धान्त

आन्तरिक सिद्धान्त का आशय यह है कि सत्य के लिए बुद्धि ही की आवश्यकता है, इन्द्रियों की नहीं, क्योंकि इन्द्रियाँ प्रायः धोखा देती हैं। इन्द्रियों का

प्रधान कार्य शरीर को क़ायम रखना है, सत्य की खोज नहीं। उसने प्रत्येक विषय में सन्देह करना प्रारम्भ किया और बहुत ही शान्ति के साथ विचार करके वह किसी बात को स्वीकार करता था।

विषयाश्रित सिद्धान्त

दूसरा सिद्धान्त विश्व की विषयाश्रित सत्यता के विषय में है। उसका विचार था कि यह विश्व यंत्रवत् है, देहात्मवत् नहीं। विश्वपरमाणुओं के, शून्य में, व्यवहार के कारण उत्पन्न नहीं हुआ है, वरन् परमाणुओं मे एक प्रकार की गति उत्पन्न की गई है और तब उसके कारण से विश्व की उत्पत्ति हुई है। गति स्थान का परिवर्त्तन नहीं है, बरन् समीप के देश का सापेक्ष परिवर्त्तन गति का होना शून्यभाव ही में सम्भव है। शून्य में गति के होने का कुछ अर्थ हो ही नहीं सकता। यदि कोई कहे कि शून्य मे गति हो रही है तो वह आप ही अपने कथन का खण्डन करता है। शून्याभाव में गति होगी, वह अवश्य घूर्णन-गति ही होगी, जिसे आवर्त्त गति भी कह सकते हैं। घूर्णनगति वह गति है, जिसमें घूमनेवाली गति का प्रत्येक भाग साथ ही घूमता है और जिसमे गति एक भाग से दूसरे भाग में नहीं जाती। यह विश्व ऐसी घूर्णन-गतियों के योग ही से बना है। प्रत्येक का घूर्णनगति के क्रम के भीतर उससे छोटी घूर्णनगति-वाले क्रम हैं, और प्रत्येक छोटा क्रम किसी बड़े घूर्णन-गतिवाले क्रम से सम्बन्ध रखता है। सूर्य-मण्डल भी एक घूर्णनगति का ही क्रम है। इसी प्रकार तारे भी घूर्णनगति के क्रम हैं।

डेकार्टे का प्रथम सिद्धान्त बहुत प्रचलित है। परन्तु दूसरा सिद्धान्त उतना प्रचलित नहीं है। तथापि डेकार्टे दूसरे सिद्धान्त के कारण ही प्रसिद्ध हुआ था। इसी सिद्धान्त के बल पर उसने कहा था कि मुझे परमाणु और गति दे दो, बस मैं उनकी सहायता से एक संसार उत्पन्न कर दूँगा। डेकार्टे का सिद्धान्त निम्नलिखित तीन बातों पर निर्भर है—

१ परमाणुओं तथा भूतों का सार विस्तार है।

२ गति निरपेक्ष्य नहीं है, बरन सापेक्ष्य है।

३ प्रकृति शून्याभाव है। शून्य नहीं है। शून्याभाव में गति, घूर्णनगति अथवा आवर्तगति ही होगी।

पूर्वोक्त तीनों बातों की व्याख्या यहाँ नहीं की जायगी, क्योंकि इस लेख में दर्शन के केवल उन भागों का वर्णन किया गया है जिनका सम्बन्ध सापेक्ष्यवाद से है। ऊपर अभी लिखा गया है कि इस सिद्धान्त का प्रचार पश्चिम में अधिक नहीं हुआ। इसमें डेकार्टे का कुछ भी दोष नहीं है। उसके सिद्धान्त के अनुसार यदि विश्व का निर्माण करें और फिर सापेक्ष्यवाद के अनुसार यदि विश्व का निर्माण करें तो विश्व के ये दोनों चित्र लगभग एक ही होंगे और इनमें विशेष अन्तर नहीं होगा। इस प्रकार यह बात कही जा सकती है कि यद्यपि हम लोग सापेक्ष्य-वाद की सहायता से न्यूटन के मत को छोड़ देते हैं, तथापि डेकार्टे के मत की ओर आ रहे हैं। डेकार्टे का सिद्धान्त है कि विश्व यंत्रवत् है। यन्त्र अथवा कल के लिए देश और काल दोनों की आवश्यकता होती है। यन्त्र के चलने में समय अवश्य लगेगा, अतएव यन्त्र के लिए समय आवश्यक है।

परन्तु काल चल है, क्योंकि यंत्र की सत्यता पर इसका अधिकार नहीं है। इससे यह अवश्य निकलता है कि काल स्वतंत्र नहीं है। कापर्निकस के सिद्धान्त ने देश के विचार में युगान्तर उत्पन्न कर दिया था, उसी प्रकार डार-विन के परिणामवाद ने काल के विचार में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। न्यूटन ने भी दर्शन-सम्बन्धी बातों का विचार करना प्रारम्भ कर दिया, परन्तु न्यूटन का दर्शन परी-क्षाओं ही पर निर्भर था। डेकार्टे के सिद्धान्त से यह बात समझ में आगई कि सब ग्रह सूर्य की ओर क्यों नहीं चले जाते। यह बात इस सिद्धान्त पर निर्भर है कि पदार्थ जितना ही भारी होगा, केन्द्रायगामी शक्ति उतनी ही अधिक होगी और पदार्थ और भी दूर जाने का प्रयत्न करेगा। इस सिद्धान्त के अनुसार ग्रहादि सूर्य की ओर नहीं जा सकते, बरन् उससे दूर भागने का ही प्रयत्न करेंगे।

यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सब ग्रह अपने नियत स्थान ही पर क्यों हैं? ये सूर्य से और दूर क्यों नहीं चले जाते? इन प्रश्नों का उत्तर डेकार्टे का आवर्त्त-गति का

क्रम नहीं दे सका। इन प्रश्नों के हल करने के लिए घूर्णनगति का क्रम असमर्थ हो गया। न्यूटन ने देखा कि सब पदार्थ ऊपर से पृथ्वी पर गिरते हैं। उसने अपने मन में सोचा कि इनके गिरने का क्या कारण है? उनकी समझ में पहले यह बात आई कि डेकार्टे के घूर्णनगति के क्रम के अनुसार सब पदार्थों को बाहर और ऊपर ही गिरना चाहिए, नीचे नहीं। केन्द्रापगामी शक्ति उसे बाहर क्यों नहीं ले जाती जैसा कि डेकार्टे के मत के अनुसार उसे ले जाना चाहिए? न्यूटन ने समझ लिया कि यह बात डेकार्टे के मत के विरुद्ध है। कम से कम यह एक बात ऐसी है जो डेकार्टे की घूर्णन-गति के क्रम के विरुद्ध है। इन्हीं कारणों से न्यूटन ने समझ लिया कि संसार के सिद्धान्तों के हल करने के लिए डेकार्टे का मत प्रामाणिक नहीं है। तब न्यूटन ने एक शक्ति की कल्पना की, जो सब पदार्थों पर (ग्रहादिकों पर) असर कर सके। उसने कल्पना की कि एक शक्ति वर्त्तमान है जिसके कारण पदार्थ एक दूसरे को खींचते हैं। यह शक्ति आकर्षण-शक्ति है। उसने आकर्षण-शक्ति के कार्य-क्रम का नियम भी बना लिया, परन्तु इसकी परीक्षा किये बिना न्यूटन उसे माननेवाला नहीं था। इसकी परीक्षा करने में उसे बहुत समय लगाना तथा परिश्रम करना पड़ता था। अन्त में यह आकर्षण-शक्ति का सिद्धान्त परीक्षा-द्वारा सिद्ध हो गया। यह आकर्षण-शक्ति केवल पदार्थों की दूरी तथा मात्रा पर निर्भर रहती है, और किसी अन्य वस्तु पर नहीं। आकर्षण-शक्ति की सहायता से देश और काल निरपेक्ष्य माने जाने लगे। क्योंकि देश का मात्रा से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था, और पदार्थों की मात्रा जो एक दूसरों के साथ कार्य करती थी, देश से स्वतंत्र थी, काल का भी उन परिवर्त्तनों से कुछ सम्बन्ध नहीं था। जिन्हें यह नापता था। इस प्रकार देश और काल निरपेक्ष्य मान लिये गये।

इस प्रकार न्यूटन हम लोगों को उसी पुराने परमाणुवाद की ओर ले गया। उसने शून्य को मान लिया और किसी किसी अर्थ में परमाणुवाद को भी मान लिया। परन्तु यह परिवर्त्तन साधारण नहीं था। क्योंकि पुराने सिद्धान्त में दिशा की निरपेक्ष्यता का झगड़ा था, परन्तु इसमें वह झगड़ा नहीं आने पाया। डेकार्टे ने शून्य तथा परमाणुवाद का खण्डन किया था, न्यूटन ने उसे मान लिया। जिस प्रश्न को डेमोक्रिट्स ने हल करने का प्रयत्न किया था, जिस प्रश्न का उत्तर एपिकूरस झुकाव ने कल्पितार्थ से दिया था, उसी की जगह न्यूटन की आकर्षण-शक्ति ने ले ली। भौतिक विज्ञान की दृष्टि से यह आकर्षण-शक्ति बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई। गणित तथा ज्योतिष में और भी उपयोगी हुई, परन्तु प्राकृतिक दर्शन में आकर्षण-शक्ति एक रहस्य के अतिरिक्त और कुछ नहीं रही।

न्यूटन ने इस प्रश्न को हल करने का भी प्रयत्न किया कि ईश्वर और देश-काल में क्या सम्बन्ध है। ईश्वर के अतिरिक्त देश और काल की स्वतंत्र तथा निरपेक्ष्य स्थिति मानने में न्यूटन को कठिनाई का सामना करना पड़ा, परन्तु आकर्षण-शक्ति के लिए उसे बाध्य हो कर यह बात माननी पड़ी। गणित और विज्ञान ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

आकर्षण-शक्ति के विषय में न्यूटन के विचार निम्नलिखित बातों से स्पष्ट हो जायँगे। वह लिखता है—मैंने आकाशीय तथा सामुद्री दृश्यों की सहायता से आकर्षण-शक्ति का आविष्कार किया है, परन्तु इसका क्या कारण है, यह मैं नहीं जानता। आकर्षण-शक्ति के ये गुण दृश्यों की सहायता से निकले हैं और मैंने कोई कल्पितार्थ नहीं बनाया है। इत्यादि—

इससे स्पष्ट विदित होता है कि न्यूटन ने आकर्षण-शक्ति के तत्त्व को प्रमाणित तथा दृढ़ कर दिया, परन्तु उसकी व्याख्या वह स्वयं नहीं कर सकता था। तथापि आकर्षण-शक्ति ने डेकार्टे के घूर्णनगति-क्रम का खण्डन कर दिया। इस खण्डन का कारण ऊपर लिखा जा चुका है। इसके अतिरिक्त और कारण यह था कि घूर्णनगति-वाद के अनुसार ग्रहों की कक्षायें वृत्त होनी चाहिए; दीर्घवृत्त नहीं। परीक्षा-द्वारा यह बात भी सिद्ध हो गई कि ग्रहों की कक्षायें दीर्घवृत्त हैं। न्यूटन की आकर्षण-शक्ति के अनुसार ग्रहों की कक्षायें दीर्घवृत्त हो सकती हैं। इस प्रकार आकर्षण-शक्ति से घूर्णनगति-वाद का खण्डन हो गया।

जब न्यूटन आकर्षण-शक्ति तथा भौतिक विज्ञान-सम्बन्धी बातों की सहायता से डेकार्टे के मत का खण्डन

कर रहा था, लगभग उसी समय लीवनीज़ अध्यात्मवाद के आधार से उक्त मत का खण्डन करने में लगा हुआ था। लीवनीज़ (१६४६—१७१६) ने परमेश्वर ार विश्व के सम्बन्ध के विषय में विचार करना प्रारम्भ कर दिया। लीवनीज़ और न्यूटन दोनों ईश्वर पर विश्वास करते थे। देश और काल दोनों ऐसे पदार्थ थे कि जिनके विषय में दोनों बिना सोचे रह ही नहीं सकते थे। दोनों का विचार इस सम्बन्ध में आगे दिया गया है। दोनों समकालीन गणितज्ञ तथा दार्शनिक थे। दोनों में चलन-कलन के आविष्कार के विषय में झगड़ा हो गया। यहां उन बातों का उल्लेख नहीं किया जायगा।

लीवनीज़ ने उस परमाणुवाद का खण्डन किया है जिसे देहात्मक परमाणुवाद कह सकते हैं, परन्तु इन्होंने उस परमाणुवाद का खण्डन किया है जिसे हम लोग अध्यात्मवादात्मक परमाणुवाद कह सकते हैं।

लीवनीज़ के परमाणु सब शक्तियाँ हैं, सब कर्मशील हैं, एक दूसरे को आकर्षित करते हैं। इन्होंने कहा कि शून्य हो ही नहीं सकता क्योंकि इससे ईश्वर अपूर्ण रह जायगा। उसने सिद्ध भी किया है कि शून्य नहीं है।

डेकार्टे कहा करता था कि मुझे पदार्थ और गति दे दो तो मैं संसार की रचना कर दूँगा।

लीवनीज़ ने दूसरा प्रश्न इस प्रकार से किया—यदि परमेश्वर को पदार्थ और गति दे दे तो क्या वह विश्व की रचना कर सकता है? लीवनीज़ ने इस प्रश्न का उत्तर दिया—'नहीं'। क्योंकि परमेश्वर ने जीवों और कर्मशील वस्तुओं को बना दिया है और सम्पूर्ण विश्व इनसे भरा हुआ है, अतएव हम लोग दूसरा संसार नहीं बना सकते। हम लोग केवल इन बातों का अध्ययन कर सकते हैं कि पदार्थ के गुण क्या हैं? जीव-प्रकृति के सत्य परमाणुओं का स्वभाव क्या है? उनका सम्बन्ध एक दूसरे से क्या है और इनकी सहायता से संसार कैसे बनता है।

संसार के प्रत्येक पदार्थ में नियम पाया जाता है। जो ग्रह जहां है वह वहीं पर रहता है, कोई पदार्थ स्वतंत्र नहीं है, बरन् सब नियम का पालन करते हैं, अतएव यह विश्व आकस्मिक घटना नहीं हो सकता।

देश एक सत्य है, जिसका अनुभव प्रत्येक जीव कर सकता है, देश की स्थिति ईश्वर के लिए हो ही नहीं सकती। देश कोई ऐसी वस्तु नहीं है जो हो सकती है। यह एक क्रम है। काल के विषय में भी उसके इसी प्रकार के विचार हैं।

देश सहास्तित्व का तथा काल-परम्परा का क्रम है। दोनों में से कोई सत्य नहीं है।

इस प्रकार यह प्रकट हो गया कि लीवनीज़ और न्यूटन के दर्शन में बहुत ही अन्तर है। लीवनीज़ आदर्शवाद का तथा न्यूटन देहात्मक का पक्षपाती था।

लीवनीज़ के अनुसार प्रथम कारण सर्वगत तथा सर्वव्यापी चैतन्य शक्ति है, जिसे परमेश्वर कह सकते हैं और ज्ञान में पूर्ण तथा अनन्त शक्तिशाली है। उसके अनुसार परमेश्वर सम्पूर्ण विश्व का नाश कर सकता है और सम्पूर्ण विश्व की उत्पत्ति भी कर सकता है, परन्तु विश्व के किसी अंश का प्रलय तथा सृष्टि नहीं कर सकता।

न्यूटन के दर्शन में बहुत सी ऐसी प्रतिज्ञायें हैं जो स्वयं एक दूसरे का खण्डन करती हैं। अध्यात्म तथा न्याय की दृष्टि से उसके सिद्धान्त ईश्वर-विद्या के विषय में एक दूसरे के विरोधी हैं।

लीवनीज़ और न्यूटन में 'चलन-कलन' के विषय में मतभेद हो गया। वह विषय गणित से सम्बन्ध रखता है। दर्शन के विषय में भी दोनों में वाद विवाद हुआ था। उसका संक्षिप्त विवरण यहाँ पर देना आवश्यक जान पड़ता है, क्योंकि उसका सापेक्ष्यवाद से बहुत ही घनिष्ट सम्बन्ध है। यहाँ यह भी लिखना आवश्यक जान पड़ता है कि उक्त वाद-विवाद में वेल्स की राजपुत्री भी शामिल थी। वेल्स की यही राजपुत्री पीछे महारानी केरोलाइन के नाम से विख्यात हुई और यही द्वितीय जार्ज (१७१५) की धर्मपत्नी थी।

लीवनीज़ ने राजपुत्री को लिखा था कि 'मुझे मालूम होता है कि इँग्लैंड में भी स्वाभाविक धर्म बहुत ही दुर्बल हो गया है। ऐसे भी लोग पाये जाते हैं जिनका यह विश्वास है कि आत्मा सदेह है। कुछ ऐसे भी लोग हैं जिनका यह विश्वास है कि स्वयं परमेश्वर देहयुक्त

है। न्यूटन का कथन है कि देह वह अवयव है जिसकी सहायता से ईश्वर को वस्तुओं का ज्ञान होता है। यदि ईश्वर को ऐसी सामग्री की आवश्यकता होती है जिसकी सहायता से उसे वस्तुओं का ज्ञान होता है, तो इससे यह फल निकलेगा कि ये वस्तुएँ पूर्णतः ईश्वर पर निर्भर नहीं हैं। ये ईश्वर की बनाई हुई नहीं हो सकतीं। न्यूटन तथा उसके अनुयायियों की धारणा ईश्वर के कार्य के विषय में विचित्र है। जैसे हम लोग घड़ी में कुंजी देते हैं, उसी प्रकार ईश्वर को भी काम करना पड़ता है। उन लोगों का विचार है कि जैसे घड़ी में कुंजी न देने से घड़ी बन्द हो जाती है, उसी प्रकार ईश्वर को भी विश्व के कार्य-सम्पादन के लिए वैसा ही करना पड़ता है। क्या परमेश्वर में इतनी दूरदर्शिता तथा इतना अग्रनिरूपण नहीं है कि वह अपने काम को निरन्तर, सनातन तथा नित्यगति दे सके? न्यूटन तथा उसके अनुगामियों के अनुसार ईश्वर का बनाया हुआ यंत्र इतना दुर्बल तथा अपूर्ण है कि उसका परिष्कार तथा शासन करने की आवश्यकता उसे बार बार पड़ती है। घड़ी बनानेवाला जब अपनी पुरानी घड़ी का संस्कार करता है तब अपनी भूल स्वीकार करता है और यह सिद्ध करता है कि उसकी कला अपूर्ण है। क्या यही बात ईश्वर के विषय में भी कही जा सकती है? मेरे विचार में एक ही शक्ति सर्वत्र वर्त्तमान है, वही शक्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। एक ही शक्ति पूर्व निश्चित-क्रम के अनुसार एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ में जाती है। यदि परमेश्वर कोई अलौकिक कार्य करता है तो इसका कारण यही है कि यह उसकी कृपा है और इसका यह कारण नहीं है कि उसे स्वभाववश विवश हो कर करना पड़ता है। इसके विरुद्ध जो लोग विचार करते हैं उनका विचार परमेश्वर के सम्बन्ध में बहुत ही तुच्छ है और वे लोग परमेश्वर के ज्ञान तथा उसकी शक्ति का अपमान करते हैं।"

जब लीवनीज़ का यह पत्र राजकुमारी को मिला तब उसने न्यूटन से इसका उत्तर देने के लिए कहा। न्यूटन ने अपने शिष्य क्लार्क को यह भार सौंपा। क्लार्क ने न्यूटन के पक्ष में लिखा। इसका उत्तर लीवनीज़ ने फिर दिया। इसी उत्तर में देश और काल की उज्ज्वल तथा स्वच्छ व्याख्या की है।

लीवनीज़ के उत्तर का कुछ भाग इस प्रकार है—"वर्त्तमान काल के इँग्लेंड के कुछ निवासियों का देश, देवता तथा इष्ट दृष्टिगोचर होता, यदि देश एक सत्य पदार्थ है जैसा कि ये लोग कहते हैं, तो वह नित्य अनंत है और तब ईश्वर के समान है। देश इस के अनुसार या स्वयं परमेश्वर है, अथवा परमेश्वर का एक गुण है; उसका एक महत्त्व है। परन्तु देश के भाग हो सकते हैं। तब यह परमेश्वर कैसे हो सकता है? यदि मुझसे पूछो तो मैं कहूँगा कि देश हमारे लिए सापेक्ष्य है और इसी प्रकार काल भी सापेक्ष्य है। देश, सहास्तित्व का क्रम है। इसी प्रकार काल परम्परा तथा अनुपूर्व का क्रम है"।

इसका उत्तर क्लार्क ने यह दिया था—"यदि देश सहास्तित्व तथा सहभाव के क्रम के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, तो इससे यह फल निकलेगा कि यदि परमेश्वर संसार को एक सरल रेखा में चला दें और उस चाल की गति, चाहे उनके इच्छा में जो आये दे दें, तो भी वह सर्वदा उसी स्थान पर रहेगा और जब गति बन्द हो जायगी तब किसी को धक्का नहीं पहुँचेगा"।

ध्यान देकर विचार करने से पता चलेगा कि क्लार्क के उत्तर में विलसन और मार्ली की परीक्षा का लगभग फल सम्मिलित है।

ऊपर लीवनीज़ तथा न्यूटन के वाद-विवाद का कुछ अंश दिया गया है। सापेक्ष्यवाद के पाठक भली भाँति समझ जायँगे कि उसका आएन्स्टीन के सापेक्ष्यवाद से क्या सम्बन्ध है।

इन बातों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सापेक्ष्यवाद का सिद्धान्त दर्शन-शास्त्र में उतना नया नहीं है जितना कि गणित तथा विज्ञान में, लीवनीज़ ने जिस अर्थ में देश और काल का प्रयोग किया है वह आएन्स्टीन के सापेक्ष्यवाद के लगभग अनुकूल नहीं है।

संसार किस अर्थ में अनन्त है?

संसार के लोग विश्व को भिन्न भिन्न दृष्टियों से देखते चले आये हैं। सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार साधा-

रण लोग संसार को उसी दृष्टि से देखेंगे, जिस दृष्टि से उसे पहले देखते थे। कापर्निकस के सिद्धान्त के पहले साधारण लोग जिस दृष्टि से संसार को देखते थे, आज भी उसे उसी दृष्टि से देखेंगे। न्यूटन की आकर्षण-शक्ति के कारण इसमें अन्तर नहीं पड़ा और सापेक्ष्यवाद के कारण भी इस दृष्टि में विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा। परन्तु दार्शनिक विचारों तथा गणित और विज्ञान-सम्बन्धी बातों में इस सिद्धान्त के कारण बहुत अन्तर पड़ेगा।

सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त के कारण विश्व की अविरामता तथा अनन्तता का स्वभाव कुछ न कुछ परिवर्त्तित हो जायगा। अभी तक अनन्त का अभिप्राय देश और काल से पृथक् नहीं समझा जाता था। कहने का आशय यह है कि देश और काल के साथ ही साथ अनन्त का भी विचार होता था, क्योंकि ये मिले हुए थे।

गणित में भी अनन्त तथा अविराम का प्रश्न उठता है। सापेक्ष्यवाद के अनुसार अनन्त की परिभाषा वह नहीं हो सकती जो गणित में है, क्योंकि सापेक्ष्यवाद उन स्वयंसिद्धियों और अबाध्योपक्रमों का खण्डन करता है जिनके आधार पर गणित की परिभाषायें निर्भर हैं। गणित में अनन्त की परिभाषा उक्लैदसीय अबाध्योपक्रमों पर भी अवलम्बित है। उस के अनुसार अनन्त अपरिमित तथा सीमा-रहित है। सापेक्ष्यवाद अनन्त की इस परिभाषा का खण्डन करता है। सापेक्ष्यवाद के अनुसार संसार शान्त भी है, परन्तु परिमित नहीं। साधारण लोगों को यह विचार विरोधाभास की तरह मालूम होगा, परन्तु वास्तव में यह ठीक है।

पहले लोग मानते थे कि विश्व का विस्तार अन्त-रहित और इसकी स्थिति सीमा-रहित है। परन्तु सापेक्ष्यवाद के कारण यह विचार बदल गया। अब संसार की अनन्तता का ज्ञान मनुष्य के जीवन तथा चेतनता पर निर्भर है। सापेक्ष्यवाद कहता है कि विश्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जिसकी मात्रा निरपेक्ष्य हो, स्वतंत्र हो। विश्व में कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो स्वभाव ही से बड़ी तथा छोटी होने का दावा कर सके। कोई भी स्थिति स्वाधीन नहीं है। देश और काल का परिमाण मन के लिए उपयुक्त नहीं है। जीव में कोई परिमाण नहीं होता। एक जीव दूसरे जीव से कम या अधिक देश का व्यापक नहीं है। देश और काल न तो आधार हैं और न अन्तर्गतार्थ हैं।

अविराम (अविच्छेद) का प्रश्न भी सापेक्ष्यवाद के अनुसार बड़े महत्त्व का है। चेतना की अविरामता ही विश्व की अविरामता हो सकती है, दूसरी नहीं। मान लिया कि एक दिन अकस्मात् इस विश्व के सब पदार्थों में परिवर्त्तन हो गया; या तो सब एक अनुपात से बढ़ गये या घट गये। इस परिवर्त्तन में एक ही अनुपात का होना बहुत ही आवश्यक है। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह परिवर्त्तन हम लोगों को मालूम होगा या नहीं? सापेक्ष्यवाद इस प्रश्न का यह उत्तर देता है कि यह परिवर्त्तन हम लोगों को नहीं मालूम हो सकता।

इस विषय पर स्वयं आएन्स्टीन ने विचार किया है। उसी के मत का उल्लेख करके इस लेख की पूर्त्ति की जाती है।

आएन्स्टीन का विचार

संसार अनन्त है अथवा नहीं—यह प्रश्न बहुत ही प्राचीन है। दर्शन के पण्डितों ने इस प्रश्न पर बहुत कुछ विचार किया है। यहाँ उसका उल्लेख नहीं किया जायगा। यहाँ केवल इस बात का दिग्दर्शन-मात्र करा दिया जायगा कि सापेक्ष्यवाद इन प्रश्नों का क्या उत्तर देता है। वस्तुतः यह प्रश्न व्यावहारिक रेखागणित का है और यह भी सम्भव है कि कदाचित् ज्योतिष-शास्त्र इसका शीघ्र उत्तर दे सके।

सापेक्ष्यवाद के सिद्धान्त के अनुसार इसके दो उत्तर दिये जा सकते हैं। देश के विचार से विश्व अनन्त भी हो सकता है और परिमित भी।

(१) यदि विश्व देश के द्रव्य का दैशिक घनत्व मध्य-शून्य हो तो विश्व का देश अनन्त होगा।

(२) यदि विश्व देश के द्रव्य का दैशिक घनत्व मध्य शून्य न हो और शून्य से भिन्न हो तो देश परिमित होगा।

मध्य घनत्व (गाढ़ापन) जितना ही कम होगा, देश उतना ही बड़ा होगा।

यद्यपि सापेक्ष्यवाद के अनुसार दोनों दशायें सम्भव हैं, तो भी विश्व के परिमित होने की अधिक सम्भावना पाई जाती है।

ई० माक के सिद्धान्त के लिए भी विश्व का परिमित होना ही अधिक आवश्यक है।

बहुत से वैज्ञानिक तथा ज्योतिषी इस विचार के विरुद्ध हैं और इस मत का खण्डन करते हैं। अनुभव तथा परीक्षाओं की सहायता से ही यह प्रश्न हल हो सकेगा। यदि हम लोग, इस प्रश्न के हल करने के लिए उस विश्व का घनत्व निकालें जिसका हम लोग प्रत्यक्ष अनुभव करते है, तो यह उचित नहीं है और न इस प्रकार यह प्र श्न हल ही हो सकता है, क्योंकि प्रत्यक्ष ताराओं का घनफल एक-दम समान नहीं है। इस प्रकार मध्यघनत्व का ज्ञान नहीं हो सकता और इसलिए ऐसी कल्पना करना भ्रमात्मक है।

आइन्स्टीन का मत है कि दूसरे प्रकार से यह प्रश्न हो सकता है। उनका विचार है कि पहले उन दशाओं की परीक्षा करनी चाहिए जिनमें सापेक्ष्यवाद और न्यूटन के मत में भेद पड़ता है। यह बुध की कक्षा के विषय में प्रमाणित हो गया है। इसी प्रकार और दशाओं की परीक्षा होनी चाहिए। इनकी सहायता से सिद्ध करना चाहिए। जब दूरी अधिक होगी तब न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से आकर्षण-शक्ति कम होगी। इस प्रकार सिद्ध हो जाने पर वह बात स्वीकार की जा सकती है, कि विश्व परिमित है। यह साधन वक्र होगा, स्पष्ट नहीं।

विजय!

[श्रीयुत वैद्यनाथप्रसाद मिश्र 'विह्वल']

(१)

पाप से छा जाता जब देश; चतुर्दिक होता अत्याचार,
भक्त, भूसुर की रक्षा हेतु—ईश का होता है अवतार!

(२)

मचा था चहुँ दिशि हाहाकार; जमा था निशिचर का आतङ्क;
निरंकुश फिरते थे स्वच्छन्द; अकड़ते थे सबसे निःशङ्क!

(३)

राज-मद, धन-मद का था गर्व, प्रबलता भी उनको थी प्राप्त;
ईश, पर, था उनके प्रतिकूल, हुआ झट राम-रूप में व्याप्त।

(४)

दशानन था निशिचर का नाम, सर्व-जित-मद में था वह चूर;
देव से पाया था वरदान, तपस्या में था वह भरपूर।

(५)

लिख दिया विधि ने है भवितव्य—लेखनी से जब जीव-ललाट—
भाग्य हो जाता है अतिमन्द —बन्द होता है हृदय-कपाट!!

(६)

काल का होता नङ्गा नाच—कर्म्म-फल का अभिनय आरम्भ—
यवनिका-पतन शनैः शनैः मिटाता अभिमानी का दम्भ!!

(७)

किया मादकता ने निज कार्य्य, खिँची जब अन्तिम-पट की डोर;
हुआ विधि का तब सुन्दर न्याय—चला प्राणी अनन्त की ओर!!

(८)

विश्व से मुक्त हुआ वह जीव, मिला दुष्कर्मों का परिणाम—
हरण कर वसुन्धरा का भार—अयोध्या लौटे सीता-राम॥

(९)

शुभाश्विन की दशमी थी धन्य! लग्न था उत्तम विजय-मुहूर्त्त;
वही था उसका निश्चित काल, उठ गया धरती से वह धूर्त्त!!

(१०)

आ गया उसका जब अवसान—कुमति दे हुआ विधाता वाम;
जगत्पति से कर वैर-विधान, लङ्का-पति पहुँचा ईश्वर-धाम!!

(११)

शक्ति थी विजया की सम्पन्न, हुआ चहुँ भूमण्डल में शोर;
गगन-मण्डल से बरसे पुष्प, हर्ष-ध्वनि पहुँची जा छिति-छोर!

(१२)

विजय की मची अवध में धूम, विजय के हुए मनोहर गान;
विश्व में बजी दुन्दुभी-विजय, दीप से साजे गये मकान;

(१३)

सत्य ही का होता है विजय, झूठ का होता सत्यानाश;
धर्म्मियों का होता उत्कर्ष, पापियों का ही शीघ्र विनाश!!

(१४)

धर्म्म से होता कीर्त्ति-प्रकाश, पाप से होता है अभिमान!
सत्य पर निर्भर दिव्य भविष्य, विजय पर निर्भर है उत्थान!!

(१५)

शक्ति से होता आत्म-विकास, विजय है उसका लक्ष्य महान;
करो आवाहन 'विह्वल' शक्ति, अजित का होता है सम्मान!!

कोलम्बो की सैर

[श्रीयुत रामोदार]

जिस तरह अँगरेज़ी-राज्य स्थापित होने से पहले कलकत्ता कुछ भी नहीं था, विदेशी शासन से पहले कोलम्बो की भी वही दशा थी, पर आज-कल कोलम्बो केवल लङ्का के ही लिए नहीं, समस्त संसार के लिए एक विशेष स्थान रखता है। १४ वीं शताब्दी के तृतीयांश में जब कि विक्रमबाहु तृतीय (१३२७-१३७४ ई०) गम्पोला से लङ्का पर शासन कर रहा था, उसके प्रधान मंत्री अलकेश्वर (अलगक्कोनार-तामिल) ने वर्तमान कोलम्बो से ६ मील पर जयवर्द्धनपुर बसाया। जयवर्द्धनपुर तब से अब तक कोई के ही नाम से प्रसिद्ध है। लङ्का को जिस समय पाश्चात्य जातियों से साम्मुख्य करना पड़ा था, उस समय यही राजधानी था। १५ नवम्बर १५०५ ई० को सर्वप्रथम दोम-लोरेन्सो द-अलमेडा प्रथम पोर्तगीज़ कोलम्बो पहुँचा; और तभी से इस अप्रसिद्ध कोलम्बो का भाग्योदय होने लगा। पोर्तगीज़ों ने कोलम्बो-निवासियों पर बड़ा प्रभाव डाला। सिंहल-इतिहास 'राजावलिय' के अनुसार उनके विषय में राजा को इस प्रकार की सूचना दी गई थी—"हमारे कोलम्बो के बन्दर में एक जाति के
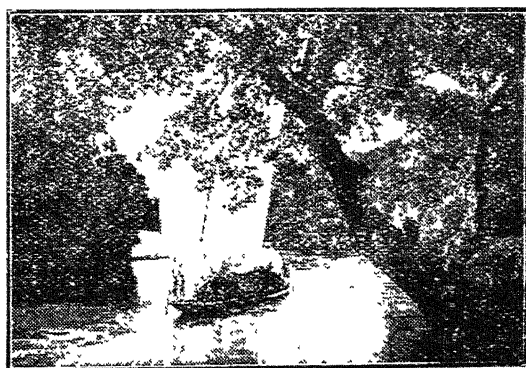
सिंहाली बजरा

मछुए की नाव

लोग हैं, जो रंग में सफ़ेद हैं। ये लोहे के जामा और लोहे की ही टोपी पहनते हैं। ये एक क्षण भी एक स्थान पर नहीं खड़े होते; सर्वदा इधर-उधर घूमते रहते हैं; ये पत्थर के ढेले खाते हैं, और रक्त पीते हैं; ये एक मछली या लेमू के लिए दो तीन अशर्फ़ियाँ दे देते हैं। युगन्धर पर्वत पर बिजली के गिरने से उतनी आवाज़ नहीं होती जितनी इनकी तोपों की होती है। इनके तोप का

कोलम्बो की एक सड़क

गोला कोसों तक पहुँचता है; और पत्थर के क़िले को भी छिन्न भिन्न कर देता है"। पोर्तगीज़ राजदूत ख़ूब घुमा-फिरा कर तीन दिन में दर्बार में पहुँचाया गया। यद्यपि कोई कोलम्बो से ६ ही मील है। उस समय मुसलमान व्यापारियों ने बहुत कोशिश की, कि लोरेन्सो सफल-मनोरथ न हो; क्योंकि उस समय लङ्का का सारा ही व्यापार इन्हीं मुसलमानों के हाथ में था। ये 'मूर' कहे जाते हैं।

परन्तु लोरेन्सो का अभीष्ट सिद्ध हुआ। राजा वीरपराक्रमबाहु अष्टम ने पोर्तगाल की संरक्षकता स्वीकार की; और बदले में दारचीनी की भेंट स्वीकार की।

थोड़े ही दिनों बाद पोर्तगीज़ों ने कोलम्बो में अपना क़िला बनाया। १५२४ में पोर्तगाल-नरेश के आज्ञानुसार यद्यपि यह क़िला तोड़ दिया गया; तो भी कोलम्बो की उन्नति होती ही गई। १६४४ ई० तक कोलम्बो पर पोर्तगीज़ों का झंडा फहराता रहा; इसके बाद यह हालेंड-वालों के हाथ में आया। अन्त में १५ फ़रवरी १७९६ में डचों से अँगरेज़ों ने छीन लिया। इस प्रकार कोलम्बो एक छोटे से मछुओं के गाँव से बढ़कर आज प्रायः ढाई लाख आबादी का एक आधुनिक नगर बन गया। जिन तीन पाश्चात्य जातियों का प्रभुत्व कोलम्बो पर रहा; उन्होंने अपने अनेक चिह्न छोड़े हैं। पोर्तगीज़ों का सबसे बड़ा

हिंदी-भाषा-प्रेमियो!

[illegible]

के

[illegible]

[illegible]

लगभग पचहत्तर वर्षों से इस प्रेस ने हिंदी, संस्कृत, उर्दू, फारसी, अरबी और अंग्रेजी साहित्य की जो उत्तमोत्तम पुस्तकें प्रकाशित कर साहित्य-सेवा की है, वह किसी भी साहित्य-सेवी से छिपी नहीं है। अब तक छोटी-बड़ी ५०००-६००० पुस्तकें इस प्रेस से प्रकाशित हो चुकी हैं। हिंदी की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका माधुरी इसी प्रेस से गत छः वर्षों से प्रकाशित होकर साहित्य-सेवा कर रही है। इसके अतिरिक्त अवध अखबार और एज्यूकेशनल गज़ट आदि भी इसी प्रेस द्वारा वर्षों से प्रकाशित होते चले आ रहे हैं। अब यहाँ के उदार और विद्यानुरागी स्वामी [illegible] ने सर्वांग-सुंदर, सभी विषयों के ग्रंथ-रत्नों से सुशोभित

[illegible]

नामक एक ग्रंथ-माला निकालने का आयोजन किया है। उसकी पुस्तकों के चुनाव, भाषा-संशोधन, और संपादन आदि का भार उन्होंने हिंदी-भाषा के स्वनामधन्य सिद्ध-हस्त उपन्यास-लेखक और माधुरी-संपादक श्रीप्रेमचंदजी के सुपुर्द किया है। इसीसे इस माला के पुष्प-रत्नों का अनुमान किया जा सकता है। इस माला में अन्य मालाओं की तरह केवल

भरती करने के उद्देश्य से अनाप-शनाप ग्रंथ न प्रकाशित किए जावेंगे। साहित्य के बढ़िया-से-बढ़िया और उपयोगी ग्रंथ अपने-अपने विषय के सिद्ध-हस्त लेखकों से लिखवाकर प्रकाशित किए जावेंगे। पुस्तकें प्रायः ऐसी प्रकाशित की जायँगी, जिनका संग्रह करना प्रत्येक गृहस्थ के लिये उपयोगी होगा। साथ ही प्रत्येक गृहस्थ के मनोरंजन के लिये भी समय-समय पर पुस्तकें प्रकाशित की जावेंगी इसके साथ ही गंभीर विषयों पर पुस्तकें निकालने का भी पूरा प्रयत्न किया जायगा। हम इस ग्रंथ-माला को आदर्श ग्रंथ-माला बनाना चाहते हैं। यह कार्य उत्तमोत्तम पुस्तकों के प्रकाशन और उनकी निकास पर निर्भर है।

पूर्ण उत्साह के साथ ग्रंथ-माला की पुस्तकों का प्रकाशन-कार्य करने के लिये प्रत्येक ग्रंथ-माला को एक अच्छी स्थायी-ग्राहक-संख्या की आवश्यकता होती है। यही एक ऐसी बात है, जिस पर प्रत्येक पुस्तक-माला का भविष्य निर्भर है। यही एक खास कारण है कि हिंदी-साहित्य-संसार में अब तक अनेकों ग्रंथ-मालाएँ मृत हो चुकी और होती जा रही हैं। हम पहले से ही इस कमी का निराकरण करना चाहते हैं। हम इस ग्रंथ-माला को अन्य ग्रंथ-मालाओं की तरह स्वल्पजीवी नहीं रखना चाहते। हम पूर्ण उत्साह के साथ कार्य करते हुए, इसे चिरस्थायी देखना चाहते हैं। यह उसी अवस्था में संभव हो सकता है, जब इस ग्रंथ-माला को एक अच्छी स्थायी-ग्राहक-संख्या प्राप्त हो, जो माला में निकलनेवाली प्रत्येक पुस्तक को निकलते ही ले लिया करें। यदि सभी पुस्तकें न ले सकें, तो कम-से-कम वर्ष भर में ५) की पुस्तकें अवश्य खरीद लेवें। हम इस ग्रंथ-माला में पुस्तकें भी सस्ती निकालना चाहते हैं। पुस्तकें उसी अवस्था में सस्ती निकल सकती हैं, जब वे काफ़ी संख्याओं में छपाई जावें। अतः हमारी प्रार्थना है कि हिंदी-भाषा-प्रेमीगण स्वयं इस माला के ग्राहक बन जावेंगे और अपने इष्ट-मित्रों को भी माला के ग्राहक बनाने की चेष्टा करेंगे।

हमें अधिक नहीं, केवल २००० स्थायी-ग्राहकों की आवश्यकता है।

आशा ही नहीं पूरा विश्वास भी है कि हमारी प्रार्थना के अनुसार हिंदी-भाषा-प्रेमीगण आगामी विजय दशमी तक २००० ही क्या इससे भी अधिक स्थायी-ग्राहक जुटा देने में हमारा हाथ बँटाने की कृपा करेंगे।

नवलकिशोर-बुकडिपो भवदीय—

हजरतगंज, लखनऊ हरिराम भार्गव.

N.K.P. व्यवस्थापक.

चिह्न उनके द्वारा बनाये गये लाखों रोमन कैथलिक ईसाई हैं। ये लोग बलपूर्वक ईसाई बनाये गये थे। कोलम्बो में इनकी यथेष्ट संख्या है। डचों की बनाई हुई कितनी ही इमारतें अब भी मौजूद हैं।

भारत से यहा आने के दो रास्ते है; एक तो धनुष-कोडी (रामेश्वरम्) से जहाज़ पर बैठ कर दो घंटे में मन्नार की खाड़ी पार हो, रेल-द्वारा १२ घंटे में कोलम्बो पहुँच सकते हैं। अथवा बम्बई से जहाज़ में बैठकर कोलम्बो आ सकते है। अधिकतर भारतीय पहले ही रास्ते से आते हैं। भारत से आने-जाने का कोलम्बो का सबसे बड़ा स्टेशन मर्दाना पहले मिलता है। पर हमारे यात्री को यहां न उतर कर एक स्टेशन और आगे फ़ोर्ट स्टेशन पर जाना होगा। स्टेशन से बाहर आपको घोड़ागाड़ी या इक्के नहीं मिलेंगे; हां रिक्शा और मोटरें आप चाहे जितनी ले लें। यदि आप अँगरेज़ी जानते हैं तो भाषा की कठिनाई आपको बिलकुल नहीं होगी लेकिन एक बात के लिए आपको सावधान रहना चाहिए; आप किसी को 'कुली' न कहे। रेलवे-कुली को 'पोर्टर' कहकर आप बुला सकते है। यों तो आप उनकी पोशाक से और अँगरेज़ी में बात चीत करने से 'कुली' कहने की हिम्मत न करेंगे; तो भी आपको खबरदार कर देना आवश्यक है; क्योंकि 'कुली' शब्द उनके लिए बहुत असह्य है। यह उन भारतीयों के ही लिए व्यवहृत होता है, जो यहाँ के चाय और रबर के बग़ीचों में काम करने के लिए लाखों की संख्या में आते हैं।

'चामर्स ग्रेनीए', और पेदा की सड़क

स्टेशन से यदि आप पसंद करें, तो किराया पर मोटर कर सकते हैं; किन्तु हमारे कुछ उत्तर भारतीय मित्रों की सम्मति तो यही थी; कि यहां एक ही चीज़ सस्ती है और वह है रिक्शा। भूमध्यरेखा के सिर्फ़ ६ अंश दूर पर के, इस स्थान में १२ बजे की धूप में नंगे पैर

रिक्शा लिये भागते हुए, इन आदमियों को देखकर आप अवश्य गोस्वामीजी की कोई चौपाई, सो भी लङ्का-कांड की, कहे बिना न रहेंगे। स्टेशन से सबसे पहले आपको यहाँ की चौरंगी या ठंढी सड़क की ओर चलना चाहिए। इसे फ़ोर्ट कहते हैं। फ़ोर्ट स्टेशन से बहुत दूर नहीं है। इच्छा हो तो स्टेशन के सामनेवाली ट्राम से आप दो नारियल। इससे आप चामर्स के अन्न-भण्डार का महत्त्व समझेंगे। चावल का व्यापार अधिकतर मद्रासी हिन्दू चेट्टियों के ही हाथ में है। यहाँ से कुछ आगे चलने पर चौरंगी आरम्भ हो जायगी। दोनों तरफ़ विशाल भवन हैं; जिनमें बड़ी बड़ी अँगरेज़ी कम्पनियों की दूकानें हैं। कहीं कहीं इनमें, कोई कोई भारतीय व्यापारी भी
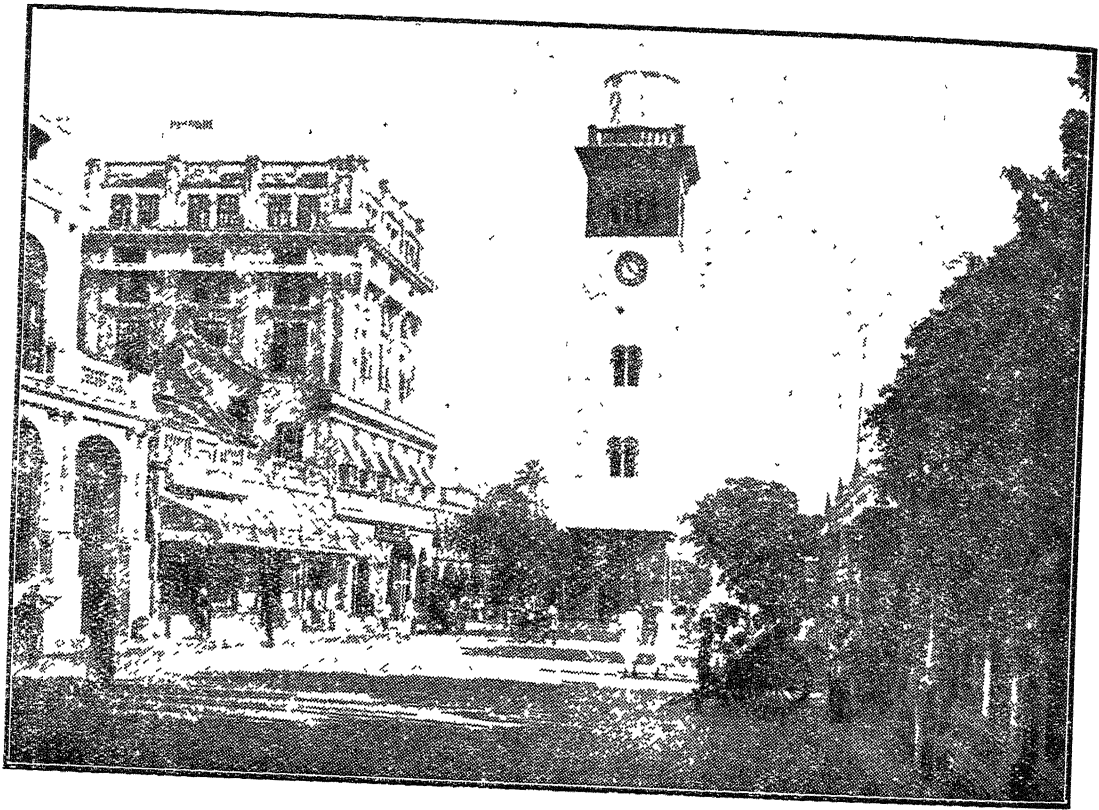
घंटाघर और दीपस्तम्भ

मिनट में पहुँच सकते हैं। थोड़ी ही दूर पर चहारदिवारियों से घिरी कुछ बारकें मिलेंगी; यही 'चामर्स ग्रेनरी' है। लङ्का में चावल का सबसे बड़ा ज़ख़ीरा यही है। आपको मालूम होना चाहिए कि इँगलैंड की भाँति लङ्का भी शायद तीन मास से अधिक के लिए अनाज नहीं पैदा करता। यहाँ की पैदावार है चाय, रबर और मिलेंगे। इन भारतीय व्यापारियों में अधिकतर गुजराती खोजे और बोहरे मुसलमान हैं। ये जवाहिरात और रेशम आदि का व्यापार करते हैं।

आप इसी सड़क से कुछ ही मिनटों में कोलम्बो बन्दर पर पहुँच जायँगे। कोलम्बो का बन्दर स्वाभाविक बन्दर नहीं है। १८८२ ई० तक गाल लङ्का का सबसे

बड़ा बन्दर था। सहस्राब्दियों से अरब, ईरान, चीन, जावा के व्यापारी यहीं आकर मिलते थे। १८८२ के बाद करोड़ों रुपये लगाकर कोलम्बो का बड़ा बन्दर तैयार किया गया; और उसके साथ ही लक्ष्मी देवी भी गाल से हट गईं। इसमें विशालकाय पचासों जहाज़ अपना अपना लंगर डाले खड़े रहते हैं। दिन को कभी दरियाई घोड़ों की लहरों पर की दौड़ और कभी उनका आकाश में

बन्दरगाह से निकलने पर अब दाहिनी ओर की सड़क पर हो जाना चाहिए। दो मिनटों में अब आप उस सड़क पर पहुँच गये; जो यहाँ की सबसे पवित्र सड़क है। यहाँ बड़े डाकघर के सामने बग़ीचे का दरवाज़ा-सा दिखलाई पड़ेगा; जिसके दरवाज़े पर ज्येष्ठ-वैशाख की धूप में, काली ऊनी कोट पहने हुए पुलिसमैन खड़ा है। पुलिसमैन ही क्यों; आपको बारह बजे दिन से कितने

हिन्दू-मन्दिर (पेटा)

उड़ना देखने के लिए कितने ही लोग आपको एकत्रित मिलेंगे। रात के समय तो बिजली की रोशनी से चारों ओर—स्थल-जल जगमगा उठता है। यदि आप चाहें, तो आठ आना पैसा फेंक कर, छोटी मोटरनाव पर चढ़ सकते हैं; दो घंटे में वह आपको सारे बन्दर की सैर करा देगी। यदि फ्रेंच, अँगरेज़ी, अमेरिकन, जर्मन, जापानी किसी जहाज़ के देखने की इच्छा हो तो वह भी मुश्किल नहीं; ज़रूरत सिर्फ़ रुपये की है।

ही सिंहाली साहब भी, गर्म ऊनी लबादेदार कोट पहने मिलेंगे; आख़िर उन बेचारों के लिए यदि प्रकृति ने जाड़ा नहीं दिया तो क्या वे ऊनी कपड़ों के पहनने का शौक़ ही न पूरा करें? यही क्या, आप में से कितनों को तो उस कड़ाके की गर्मी में इन साहबों को उबलती चाय और काफ़ी पीते भी देख कर असह्य मालूम होगा। लेकिन आपको समझना चाहिए; कि कितनी ही बातों में लङ्का और उसकी राजधानी भारत से सदियों आगे बढ़ आई है।

सिनोमन गार्डन की मसजिद

मौंट लेवनिया होटल और स्नान-घाट

यही बग़ीचेवाला घर 'क्वीन्स हौस' (महारानी का घर) कहा जाता है; क्योंकि यह उस समय बना था, जब महारानी विक्टोरिया राज्य-शासन करती थीं। यही 'वाइसीगल लॉज' है, जिसमें सीलोन के गवर्नर रहते हैं। चुपचाप आफ़िसों को देखते, ज़रा इस बस्ती को पार कर जाइए; अब आप फिर समुद्र के तट पर पहुँच गये। बाईं ओर आपको बहुत से लोहे के ढाँचे खड़े मिलेंगे;

समुद्र-तट पर सूर्यास्त

जिनमें पत्थर की जुड़ाई भी हो रही है। ये सब कौंसिल-हॉल और सेक्रेटरियट की इमारतें हैं। कुछ क़दम आगे बढ़ने पर नहर पार कर आप एक हरे-भरे मैदान में पहुँचेंगे। यदि सायंकाल का समय है; सूर्य हो या न हो, पर उसका विष बुझ चुका हो; तो विशाल नीले समुद्र की लहरों पर से आनेवाली हवा एक बार आपके तीनों ही ताप भुलवा देगी, शारीरिक ताप की तो बात ही क्या ? यदि कहीं कराल-काल के चक्रसुदर्शन से आर्त, सहस्रांशु को सागर के अनन्त गर्भ में लीन होने का अवसर आ गया हो; तब तो कहना ही क्या है। नीचे आपके पैरों से आकाश के छोर तक, सारा समुद्र लाल हो जाता है। उसकी अनन्त छींटें आकाश को भी लाल कर देती हैं। समुद्र के तट पर पड़ी कुर्सियों पर ज़रा बैठ जाइए; देखिए, लहरें कैसे एक दूसरे पर चढ़ाई करती

समुद्र-तट

आपके पैरों के नीचे तक आ जाती है। इस नहर से प्रायः ½ मील भर फैला हुआ यह मैदान, कोलम्बो का सबसे रमणीय स्थान है; यद्यपि हरी घास के फ़र्श, मामूली बेंचें और किनारे पर बँधे पत्थरों के बाँध के अतिरिक्त, मनुष्य ने इसके श्रृंगार के लिए कोई साधन नहीं प्रस्तुत किया है; तो भी यह बहुत ही रमणीय है।

यहाँ से, सामने गहरी रामरज मिट्टी में रँगा हुआ प्रासाद दिखाई दे रहा है; इसे आप रामरज में रँगा हुआ समझ कर तापसों की कुटिया न समझें। यह है 'गाल फेस होटल,' फ्रेंच में 'होतेल-दि-ल्युस्'। यह है पेरिस (परी) का टुकड़ा। इसके हाते में सैकड़ों मोटरें देख कर आपको घुड़दौड़ का मैदान याद आने लगेगा। समुद्र के तट पर बाहर से भोली-भाली-सी मालूम होनेवाली यह इमारत अन्दर से वैसी भोली नहीं है। जीवन के आनन्द को लूटने के लिए, कितने ही कोलम्बो-वासी सिंहाली साहब इसमें ही वास करते हैं। भीतर की स्वच्छता, सौन्दर्य, सनियमता, के लिए क्या कहना है? यहाँ आवश्यकता है, रुपया और हृदय-हीन हृदय की। यहाँ से दक्षिण दिशा की सड़क, पचासों मील तक समुद्र के किनारे किनारे चली गई है। इसी पर कोलम्बो से ६ मील पर, समुद्र-तट पर दूसरा सुन्दर 'मौंट लेवनिया होटल' है। यह अपने सामुद्रिक स्नान के लिए विशेष प्रसिद्ध है।

होटलों की सैर के बाद अब आप कोलम्बो के बड़े बाज़ार में चलिए, यह पेट्टा कहा जाता है। सड़क पतली है, इसमें ट्राम की दुहरी लाइनें भी हैं। भीड़ यहाँ भी बड़े बाज़ार की ही तरह है। मारवाड़ियों की जगह, यहाँ गुजराती बोहरों और खोजों ने ले रक्खी है। इन गुजराती मुसलमानों में कितने ही करोड़पति हैं। अभी फ़ोर्ट में एक बड़े मार्के की ज़मीन, एक बोहरे सेठ ने दस लाख से ऊपर पर ख़रीदी है, अब वह उस पर १५ लाख और ख़र्च करने जा रहा है। उससे पहले ही से 'ग़फ़ूर बिल्डिंग' की शानदार इमारत फ़ोर्ट में बन्दर के पास खड़ी है; यह कोलम्बो की सर्वोत्तम इमारतों में है। अस्तु।

कोलम्बो का चौरंगी (यार्कस्ट्रीट)

समुद्र-तट का एक दृश्य
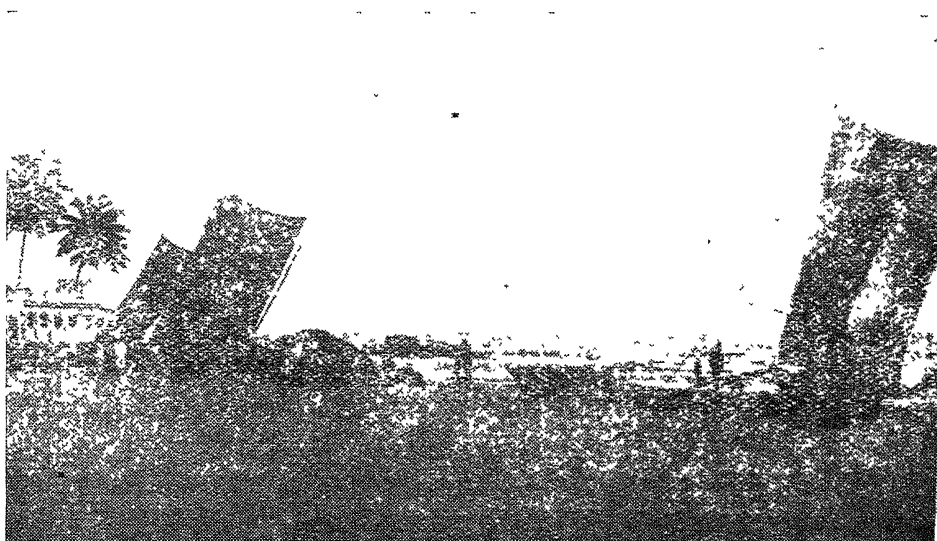
सूर्यास्त (मौंटलेबनिया)

पेट्टा में गुजराती मुसलमान व्यापारियों का अकण्टक राज्य समझिए; बीच में मामूली दूकानें सिंहालियों या दूसरों की भी टिमटिमा रही हैं; किन्तु उनका कहाँ मुकाबिला ? कहीं कहीं दो-चार दूकानें सिन्धी और मुल्तानी हिन्दुओं की भी हैं। ये लोग अधिकतर रेशम आदि का व्यापार करते हैं। मारवाड़ी का पता तक नहीं है। शायद बेचारे खारे पानी से बहुत डरते हैं। कितने ही बार कारबार में पत्ती देने का प्रलोभन देने के लिए मजबूर करती है। अन्त में दस-पन्द्रह वर्ष के बाद वह मुनीम ख़ुद सेठ बन जाता है और इस प्रकार कलम से कलम लगने की बात जारी रहती है। यह गुण यहाँ की किसी व्यापारिक जाति में नहीं है। ऐसी अवस्था में मैं कह सकता हूँ, कि यदि मारवाड़ियों का खारे पानी का डर मिट जाय; और वे रामेश्वर से
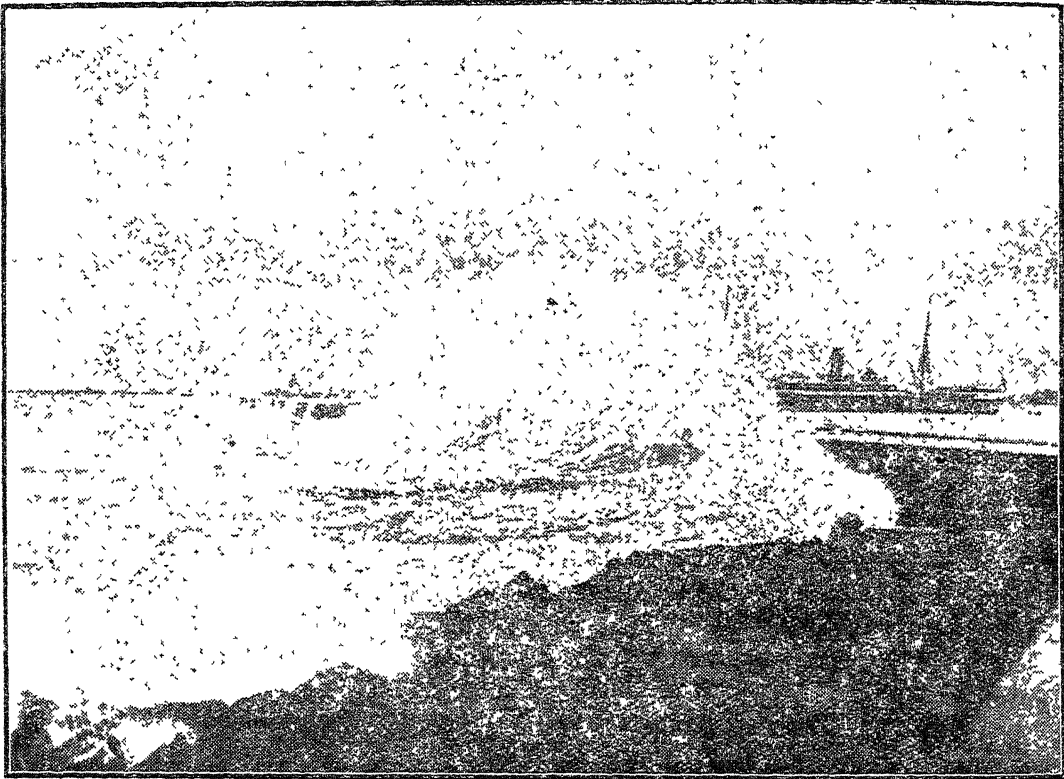
बरसाती समुद्र

लेकिन अब तो शायद धर्म के जलने का डर नहीं होना चाहिए। मारवाड़ी ऐसी व्यापार-कुशलता यहाँ किसी जाति में नहीं है, सबसे विशेषता मारवाड़ी-जाति की कलम-लगाई है। जो मारवाड़ी बच्चा मुनीमी करने के लिए भी, अभी ताज़ा मारवाड़ की प्यासी भूमि से आया है; वह भी चाहता है, कब वह अपना स्वतन्त्र कारोबार करेगा। उसकी यह धुन ख़ुद उसके मालिकों को भी

१४ घंटे के रास्ते पर और आ जायँ, तो यहाँ उनके लिए बड़ा भारी मैदान है।

पेट्टा की सैर के बाद ज़रा पास की 'सी स्ट्रीट' में चले चलें; यह मद्रासी चेट्टियों का मुहल्ला है। जान पड़ता है, कितने ही मन्दिर, तंजोर और कुम्भकोण से लाकर रख दिये गये हैं। छोटी छोटी कोठरियों में कृष्णकाय चेट्टी अपने मुनीमों-सहित बैठे हुए हैं।

सारे सीलोन के चावल का और लेन-देन का सारा कारबार इन्हीं के हाथ में है। घंटों के अन्दर लाखों रुपये निकाल कर दे देना इनके बायें हाथ का खेल है। ये सभी चेट्टी मद्रासी हैं; जाफना के नहीं। सीलोन के उत्तरी भाग मे भी सोलह आने तामिल भाषा-भाषी ही बसते हैं; लेकिन ये लोग जाफना-तामिल कहे जाते हैं; और मद्रासियों की तरह व्यापार और कुलीगिरी की

में हर साल ईसाई बनते जा रहे हैं। शायद उन्हें मन्दिरवालों की अपेक्षा मन्दिर का अस्तित्व अधिक वाञ्छनीय है। इसका यह मतलब नहीं, कि सर राम-नाथन् लोकोपकारक कार्यों से अलग रहते हैं। वे जाफना में अपने धन से लड़कों और लड़कियों के दो कालेज चला रहे हैं। अमेरिकन रमणी से विवाह करने पर भी, वे हिन्दू-सभ्यता के अगाध भक्त हैं।

धान के खेतों से रास्ता

कुलीन द्रविड़ युवती

अपेक्षा, क्लर्की अधिक पसंद करते हैं। इसी सड़क पर सर रामनाथन् का मन्दिर बन रहा है। चिदम्बरम् और मदुरा के नमूने के पत्थर के मण्डप बन रहे हैं; लाखों रुपये व्यय हो रहे हैं; पर सर साहब को, इन पत्थर के मकानों के खड़े करने की जितनी भक्ति है, उतनी उन अपने सह-धर्मियों के लिए नहीं, जो हज़ारों की संख्या

अब हमें पेट्टा की सीमा छोड़कर एक दूसरे भाग में चलना है, जिसमे रायल कालेज, जादूघर, घुड़दौड़, टाऊन हाल और सिनामोनगार्डन मुहल्ला है। रॉयल कालेज लंदन-यूनिवर्सिटी से सम्बद्ध सरकारी कालेज है; उसको अब यूनिवर्सिटी-कालेज कहते हैं। सीलोन में अपना विश्वविद्यालय न होने से, यहाँ सभी कालेज

मौंट लेबनिया का मार्ग
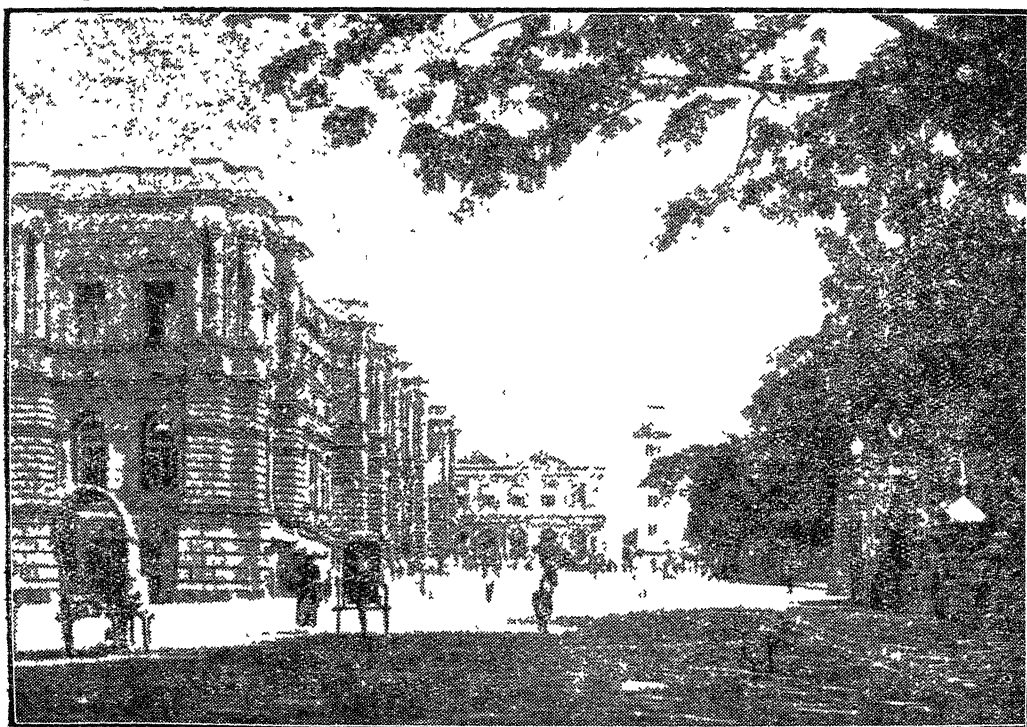
बड़ा डाकघर और गवर्नर का मकान

लंदन-यूनिवर्सिटी की ही परीक्षा दिलाते हैं। इनमें सिर्फ़ यही यूनिवर्सिटी कालेज है, जहां बी० ए० तक की पढ़ाई होती है। मेट्रिक तक की पढ़ाईवाले स्कूल भी यहां कालेज ही कहे जाते हैं। आगे चलकर अब हम 'सिनामोनगार्डेन' दारचीनी के बगीचे में प्रवेश करते हैं; लेकिन अब यह दारचीनी का बगीचा नहीं है; पहले, पोर्तुगीज़ों और डचों के काल में था। अब तो यह मुर्दे जानवर रक्खे हुए हैं। विशेषता है, एक सङ्गमरमर के-से पत्थर से बने लङ्का के चित्र की, जिसमें पहाड़ों की ऊँचाइयां और दूरियां, बड़ी अच्छी तरह दिखलाई गई हैं। म्यूज़ियम के ही एक कोने में पुस्तकालय है। पुस्तकालय लङ्का के योग्य नहीं है। इसीमें सीलोन-शाखा एसियाटिक सोसायटी का पुस्तकालय भी शामिल है। तो भी मुझे तो बहुधा बड़ा निराश होना पड़ता है।

फलवाला

कोलम्बो के धन-कुबेरों के बँगलों से सुशोभित है। इसी में 'टाऊन हाल' है। यह सीलोन की सर्वोत्तम इमारतों में है। अभी हालही में तयार हुआ है; टाऊन हाल के सामने विक्टोरिया पार्क है। बगीचे की कोई उतनी विशेषता नहीं है। इसमें टेनिस खेलने के कई क्षेत्र हैं। उसके बाद आपको जादूघर दिखलाई पड़ेगा। सभी जादूघरों की तरह यहां भी मूर्तियां, शिलालेख, मालूम होता है, सीलोन के लोग अँगरेज़ी भाषा पर जितना ध्यान देते हैं, उतना साहित्य पर नहीं। म्यूज़ियम के पास एक दूसरी पब्लिक लायब्रेरी भी है।

म्यूज़ियम से अब मर्दाना स्टेशन को चलना चाहिए; टाऊन हाल से थोड़ी ही दूर आगे मस्जिद मिलेगी। मर्दाना स्टेशन के पास एक और भी मसजिद है। इसका अहाता बहुत लम्बा-चौड़ा है। मर्दाना के चारों ओर की

बस्ती खूब घनी है। स्टेशन के बाहर मदन-कम्पनी का सिनेमा है। कोलम्बो में मदन-कम्पनी के तीन सिनेमा-घर हैं। मर्दाना की पूर्व जानेवाली सड़क पर यहाँ का सबसे बड़ा बौद्ध-कालेज आनन्द-कालेज है, पढ़ाई लन्दन के एफ० ए० तक है। ईंटे-चूने पर इन लोगों ने भी लाखों रुपये क़र्ज़ कर लिये है। अन्य बौद्ध-शिक्षा-संस्थाओं में नालन्दा कालेज, महाबोधी कालेज, और कन्याओं का सर्वोत्तम बौद्धतीर्थों में है। अमावस्या और पूर्णिमा के दिन आप यहाँ हज़ारों स्त्री-पुरुषों को पायेंगे। अभी हाल ही एक गृहस्थ ने बिजली की रोशनी के लिए इंजन लगवाया है, और दो लाख रुपये लगाकर मन्दिर बनवाने का काम आरम्भ कर दिया है। केलनी-विहार से डेढ़ मील पर केलनिया स्टेशन है, जिसके पास ही विद्यालङ्कार विद्यालय है। यह विद्यालय भिक्षुओं का है, जिसमें अधिकतर
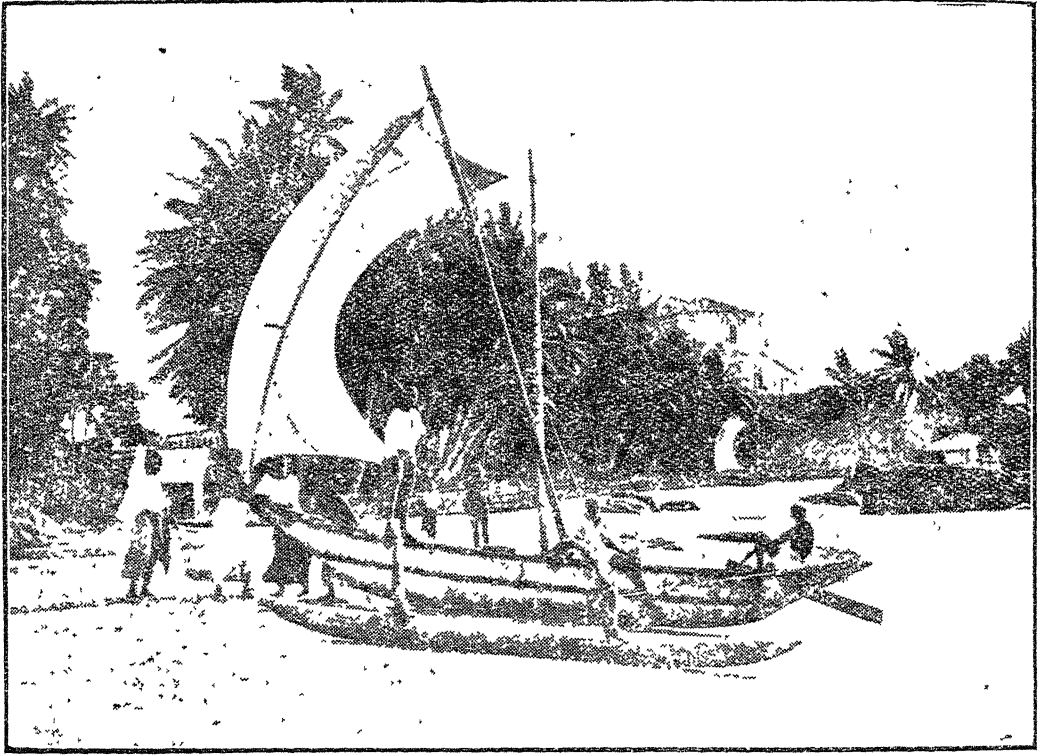
मछुओं की डोंगी

'विशाखा कालेज' है। शिक्षा में लङ्का भारत से बहुत आगे है; इसलिए लङ्कावासी बौद्ध-बन्धुओं का इधर ध्यान आकृष्ट होना आवश्यक ही है। तो भी शिक्षा का बहुत-सा काम ईसाइयों के हाथ में ही है, यद्यपि अब वे भी बौद्धों की जागृति का अनुभव करने लगे हैं।

कोलम्बो की उत्तरी सीमा केलनी (कल्याणी) गङ्गा है। इसी के किनारे कल्याणी-विहार है, जो लङ्का के भिक्षु ही पढ़ते हैं। इसी तरह का एक विद्यालय कोलम्बो में भी है, जिसका नाम विद्योदय है। विद्योदय सबसे पुराना और विद्यार्थी-संख्या मे भी सबसे बड़ा भिक्षुविद्यालय है। लङ्का के बौद्ध भिक्षुओं का वर्णन मैं एक दूसरे लेख में करना चाहता हूँ, इसलिए यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं।

केलनिया स्टेशन से हम एक मील पैदल चलकर कल्याणी गङ्गा के घाट पर पहुँच सकते हैं, और इसके उस

पार ट्राम है। यह ट्राम १० सेंट (प्रायः ६ पैसे) में फ़ोर्ट पहुँचा देगी। रास्ते में पहले आपको सिंहाली शहर की बस्ती देखने का मौक़ा हाथ लगेगा। कहीं कहीं आपको सूखी मछलियों की गन्ध अवश्य बेचैन कर देगी, चाहे

कल्याणी गंगा-तट की सड़क

आप भले ही भारतवर्ष से ही मत्स्यावतार के प्रेमी हों। लेकिन यह तो सारे लङ्का में साधारण बात है। कुछ दिन के अभ्यास पर शायद आप भी इसमें कन्नौज की गलियों की-सी सुगन्ध मालूम करने लगें। ट्राम्वे के दोनों
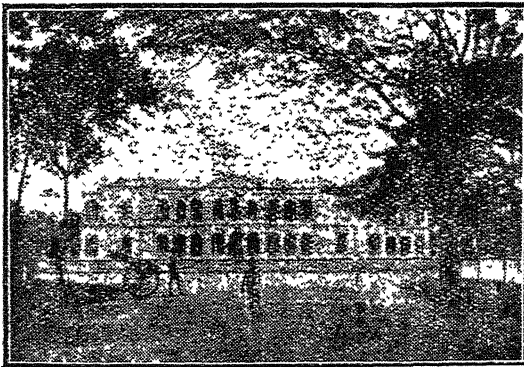
कोलम्बो-जादूघर

बगल में सारी छोटी छोटी दूकानें ही हैं। केला और चाय आप यहाँ अधिक देखेंगे। यह बात यहीं नहीं, सारे सिंहलद्वीप में है।

कोलम्बो की सैर में आपको कुछ विशेष बातें मालूम होंगी। एक तो कुछ ही भागों को छोड़ कर बाक़ी सभी

कल्याणी-विहार

सूर्यास्त नारियलों में

जगह मकान एक-तल्ले ही हैं। ख़ास बाज़ारों को छोड़ कर; नारियल के वृक्ष तथा फूल-पत्ते आप हर जगह देखेंगे।

चाहे कोई मास हो, हरियाली सदैव बनी रहती है, क्योंकि यहाँ वर्षा हर सप्ताह हो जाया करती है। मई तो वर्षा का मास ही ठहरा। मुसलमानों को छोड़ कर यहां पर्दा बिलकुल नहीं है; सिंहली स्त्रियां तो इस प्रकार कुर्ती पहनती हैं, कि आधा कन्धा ऊपर से खुला रहता है। शिर नङ्गा रहना तो उनके लिए धर्म-सा है।

एक जगह और चलिए। यह है 'हेवलाक टाऊन' में 'इसि (ऋषि) पतनाराम'। बनारस के छः मील उत्तर सारनाथ है। उसी का यह पुराना नाम है। यहाँ एक छोटा-सा मन्दिर है जो बड़े ही सुन्दर चित्रों और मूर्तियों से अलङ्कृत है। यद्यपि इसे बने बहुत दिन नहीं हुए, तो भी लोग इसको भी कोलम्बो की दर्शनीय चीज़ों में समझते हैं। १९१५ ई० में लङ्का में मार्शल्-ला की घोषणा हुई थी। उसी में यहा के एक करोड़पति का, तरुण पुत्र बलिदान हुआ। उसी की स्मृति-रक्षा के लिए भगवान् बुद्ध का यह मन्दिर उसके धनाढ्य पिता ने बनवाया है।

श्रीकान्त

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

ग्यारहवाँ परिच्छेद

पियारी से जो वादा किया था, उसे पूरा भी किया था, यह ख़बर जताने के लिए घर आकर मैंने उसे चिट्ठी लिख दी। तुरंत जवाब भी आ गया।

मैं एक बात पर बराबर ध्यान देता रहा था। पियारी ने किसी दिन पटने में अपने घर जाने के लिए ज़िद तो मुझसे की ही नहीं, साधारण रूप से एक बार मुख से कहा भी नहीं। इस पत्र में भी आने का रत्ती भर इशारा भी न था। केवल पत्र के नीचे एक ' निवेदन ' था, जिसे मैं आज भी नहीं भूला। सुख के दिनों में न सही, दुःख के दिनों में उसे न भूलूँ, यही प्रार्थना थी।

दिन बीतने लगे। पियारी की याद धुँधली होकर प्रायः अस्त होगई। किन्तु यह एक आश्चर्य की बात बीच बीच में मुझे देख पड़ने लगी कि अबकी शिकार से लौटने के बाद से मेरा मन जैसे कैसा उदास-उचाट-सा हो गया था, जैसे किसी एक अभाव की वेदना दबी हुई सर्दी की तरह मेरे शरीर के रोम-रोम में व्याप्त हो गई थी। बिस्तर पर लेटते ही वह जैसे खटकती थी।

यह याद पड़ता है कि उस दिन होली की रात थी। उस समय भी सिर पर पड़ा हुआ गुलाल का रंग साबुन लगाकर साफ़ नहीं किया था। क्लान्त, विवश शरीर शय्या पर डाल दिया था। पास की खिड़की खुली हुई थी। उसी से सामने के पीपल के पेड़ की फांक से आकाश में भरी हुई चांदनी की ओर ताक रहा था। इतना ही याद पड़ता है। किन्तु दरवाज़ा खोलकर सीधा स्टेशन क्यों चला गया और पटने का टिकट लेकर ट्रेन पर सवार हो गया, यह कुछ स्मरण नहीं आता।

रात बीत गई। किन्तु दिन को जब सुना, यह 'बाढ़' स्टेशन आ गया, अब पटना आने में अधिक विलंब नहीं है, तब एकाएक उसी स्टेशन पर उतर पड़ा। जेब में हाथ डाल कर देखा, घबराने का कोई कारण नहीं—एक दुअन्नी और दो पैसे उस समय भी मौजूद थे।

ख़ुश होकर खाने की दूकान खोजने के लिए स्टेशन से निकला। दूकान मिली। चूड़े, दही और शक्कर मिलाकर अति उत्तम स्वादिष्ट भोजन खाने में आधी रक़म ख़र्च हो गई। सो ख़र्च हो जाय, ज़िंदगी में ऐसी कितनी ही रक़में ख़र्च हो जाया करती हैं; इसके लिए कुण्ठित होना कायरपन है।

गांव घूमने के लिए निकला। घंटे भर के लगभग घूमा हूँगा, इसी बीच में मालूम होगया कि यहां दही और चूड़े जैसे अच्छे मिलते हैं, पीने का पानी वैसा ही निकृष्ट है। मेरे इस भूरि भोजन को उस पानी ने इतने ही समय में इस तरह पचाकर नष्ट कर दिया कि जान पड़ने लगा, जैसे दस-बीस दिन से अन्न का एक कण भी पेट में नहीं गया। ऐसे कदर्य स्थान में वास करना और एक घड़ी भी उचित नहीं है, यह सोचकर जगह छोड़ देने की कल्पना कर रहा था, इतने में देखा, थोड़ी ही दूर पर एक आम के बग़ीचे के भीतर धुआं उठ रहा है।

मेरा न्याय-शास्त्र जाना था। धुआं देखकर मैंने अग्नि होने का निश्चय कर लिया। बल्कि अग्नि सुलगने के कारण का अनुमान करने में भी मुझे देर नहीं लगी। बस, सीधे उसी ओर चल पड़ा। पहले ही कह चुका हूँ कि पानी यहां का बड़ा ख़राब है।

वाह, यही तो चाहिए! यह तो असली संन्यासी का आश्रम है। एक बड़ी भारी धूनी के ऊपर लोटे में चाय के लिए पानी चढ़ा हुआ है। बाबाजी आधी आंखें मूँदे सामने बैठे हैं। उनके आस-पास गांजा पीने की सामग्री रक्खी हुई है। एक छोकरा संन्यासी एक बकरी को दुह रहा है। दूध बाबा जी के चाय के काम आवेगा। दो ऊँट, दो टट्टू, और एक बच्चे-सहित गऊ पास ही एक पेड़ की डालियों में

बँधी हैं। पास ही एक छोटा-सा तम्बू तना है। झाँक कर देखा, भीतर मेरी ही हमजोली का एक चेला दोनों पैरों से पत्थर की कूंड़ी दबाये एक बड़े-से नीम के सोंटे से भंग घोंट रहा है। देखकर मेरी भक्ति उमड़ पड़ी। पल भर में ही साधु बाबा के पैरों पर मेरा सिर लोटने लगा।

बाबा की पद-रज मत्थे से लगाकर हाथ जोड़कर मैंने मन ही मन कहा—भगवान्, तुम्हारी कैसी असीम करुणा है! कैसी अच्छी जगह मुझे पहुँचा दिया! चूल्हे में जाय पियारी; इस मुक्तिमार्ग के फाटक को छोड़कर अगर तनिक देर के लिए भी कहीं और जाऊँ तो मुझे अनन्त नरक में भी स्थान न मिले।

साधुजी ने कहा—क्यों बेटा?

मैंने विनयपूर्वक निवेदन किया—मैं घर-बार छोड़ कर मुक्ति की खोज में निकला हुआ एक अभागा बालक हूँ। दया करके अपने चरणों की सेवा करने का अधिकार दीजिए।

साधुजी ने मृदु हास्य करके दो बार सिर हिलाकर संक्षेप में कहा—बेटा, घर लौट जा। यह राह बड़ी कठिन है।

मैं करुण स्वर में फ़ौरन कह उठा—बाबाजी, महाभारत में लिखा है, महापापी जगाई-मधाई वशिष्ट मुनि के पैर पकड़कर स्वर्ग चले गये थे। तो फिर आपके श्रीचरण पकड़कर मैं क्या मुक्ति भी न पाऊँगा? निश्चय ही पाऊँगा।

साधुजी ने प्रसन्न होकर कहा—अच्छा, तेरी बात सच्ची है। अच्छा बेटा, रामजी की मर्ज़ी।

जो दूध दुह रहे थे, उन महाशय ने आकर चाय तैयार करके बाबाजी को दी। बाबाजी का भोग लग चुकने पर मैंने भी प्रसाद पाया।

भंग शाम के लिए तैयार हो रही थी। उस समय भी दिन बाक़ी था। इसलिए अन्य प्रकार का आनन्द जमाने के लिए बाबाजी ने अपने दूसरे चेले को इशारे से गाँजे की चिलम दिखा दी और, चिलम तैयार होने में अधिक देर न होने की ताकीद भी कर दी।

आधा घंटा बीत गया। सर्वदर्शी बाबा ने मुझ पर अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—बेटा, तुममें बेशक अनेक गुण हैं। तुम मेरे चेला होने के योग्य पात्र हो।

मैंने भी बड़े आनन्द से दुबारा बाबाजी के श्रीचरणों की रज लेकर मस्तक से लगा ली।

दूसरे दिन प्रातःकाल स्नान कर आया! देखा, गुरुजी के आशीर्वाद से किसी चीज़ की कमी नहीं है। जो प्रधान चेला थे, उन्होंने एक नया गेरुए कपड़ों का सेट, दस के लगभग छोटी-बड़ी रुद्राक्ष की मालायें और एक जोड़ा पीतल के कड़े निकाल दिये। जहाँ जो वस्तु धारण करने की थी, उसे वहाँ पहन कर थोड़ी-सी धूनी की राख मुँह और शरीर में मलकर मैं तैयार हो गया।

आँख दबाकर मैंने कहा—बाबाजी, भला कोई शीशा-वीशा भी है? अपना मुँह एक बार देखने को बड़ा जी चाहता है।

देखा, बाबाजी भी बड़े रसिया हैं। तथापि उन्होंने कुछ गंभीर होकर कुछ ताच्छील्य के साथ ही कहा—एक ठो है।

मैंने कहा—तो फिर ज़रा छिपाकर ले न आइए।

बाबाजी का चेला शीशा ले आया। दो तीन मिनट के बाद आईना लेकर एक पेड़ की आड़ में गया। युक्त-प्रान्त के नाई जैसे एक आईना हजामत बनवानेवाले के हाथ में देकर हजामत बनाते हैं, वैसा ही एक छोटा सा टीन से मढ़ा हुआ शीशा था। होने दो छोटा, देखने से मालूम हुआ कि छोटे बाबाजी अर्थात् बाबाजी के चेला महाशय उसे बड़े यत्न से और साफ़ रखते हैं।

अपना चेहरा देखकर मैं हँसी के मारे लोटपोट हो गया। कौन देखकर कहेगा कि मैं वही श्रीकान्त हूँ, जो कुछ समय पहले ही राजा-महाराजों की मजलिस में बैठकर बाईजी का गाना सुनता था?

लगभग घण्टे भर के बाद गुरु महाराज के पास मैं दीक्षा लेने के लिए उपस्थित किया गया। महाराज मेरा चेहरा देखकर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले—बेटा महीने भर ठहरो।

मन ही मन "बहुत अच्छा" कह कर उनकी चरण-रज मस्तक से लगा कर हाथ जोड़कर भक्ति के साथ मैंने प्रणाम किया और एक किनारे बैठ गया।

आज बातों ही बातों में गुरुजी ने बहुत से आध्यात्मिक उपदेश दिये। उसके दुरूह होने की बात, उसके गहरे वैराग्य की बात, उसकी कठोर साधना का विषय, आज-कल

पाखण्डी लोग किस तरह इस विषय को बदनाम कर रहे हैं—इसका विशेष विवरण, भगवान् के चरण-कमलों में अपना मन स्थिर करने के लिए किस किस बात की आवश्यकता है—यह सब, इस साधना में एक वृक्ष-जाति सूखी वस्तु के धुएँ को बार-बार मुख-विवर से खींचने और नाक के छेदों से धीरे धीरे निकालने से कैसा भारी उपकार होता है, इन बातों को गुरुजी ने ख़ूब अच्छी तरह समझा दिया। फिर इशारे से यह जताकर मेरा उत्साह भी बढ़ाया कि इस विषय में मेरी अवस्था बहुत ही आशाप्रद है। इस तरह उस दिन मोक्षमार्ग के अनेक निगूढ़ तात्पर्य जानकर मैं गुरु महाराज के तीसरे चेले की पदवी पर विराजमान हुआ।

गहरे वैराग्य और कठोर साधना के लिए महाराज के आदेश से हम चेलों के खान-पान की व्यवस्था ज़रा कुछ कठोर ढंग की की गई थी। हमारे भोजन की मात्रा भी जैसी थी, उसका स्वाद भी वैसा ही था। चाय, रोटी, घी, दही, दूध, चूड़े, शक्कर वग़ैरह कठोर सात्विक भोजन और उन्हें पचाने के सभी अनुपान थे। इस पर भगवत्पदारविन्द से मन के उचाट न होने की ओर भी हम लोगों की लेशमात्र अवहेलना नहीं थी। इसका फल यह हुआ कि हमारा सूखा काठ-सा शरीर फूल उठा, तोंद पड़ आने के लक्षण भी देख पड़े।

काम बस एक था, भिक्षा माँगने के लिए जाना। संन्यासी के लिए यह सर्वप्रधान कार्य न होने पर भी एक प्रधान काम तो अवश्य ही है। कारण, सात्विक भोजन के साथ इसका घनिष्ठ संपर्क था। किन्तु गुरु महाराज आप यह काम नहीं करते थे, हम उनके चेले बारी-बारी से यह काम कर लाते थे।

संन्यासी के अन्यान्य कर्तव्यों में मैं साधु बाबा के अन्य दो चेलों से बहुत जल्दी आगे बढ़ गया, सिर्फ़ इसी एक काम में बराबर लँगड़ाने लगा। इस भिक्षा माँगने के काम को किसी दिन अपने निकट सहज और रुचिकर नहीं बना सका।

मगर हाँ, एक सुविधा थी, यह 'हिन्दोस्तानियों'* का मुल्क था। मैं भले या बुरे की बात नहीं कहता। मैं यह कहता हूँ कि यहाँ की औरतें बंगाल की औरतों की तरह "हाथ ख़ाली नहीं है, दूसरा घर देखो" इत्यादि कह कर टरकाती या उपदेश नहीं देती थीं, और मर्द भी "हम लोग कोई नौकरी या मेहनत-मज़दूरी क्यों नहीं करते" इसकी कैफ़ियत नहीं तलब करते थे। धनी और दरिद्र हर एक गृहस्थ हमें विमुख नहीं करता, शक्ति के अनुसार भिक्षा अवश्य देता था।

इसी तरह दिन गुज़र रहे थे। पन्द्रह दिन के लगभग तो उसी ग्राम के बाग़ में बीत गये। दिन के वक्त कोई झंझट नहीं था, केवल रात को मच्छड़ ऐसा काटते थे कि जान पड़ता था, मोक्ष की साधना रहने ही जाय। शरीर का चमड़ा और अधिक मोटा किये बिना तो जान बचाना मुश्किल जान पड़ा। अन्यान्य बातों में बंगाली चाहे जितने श्रेष्ठ हों, लेकिन इस मामले में—संन्यास-साधना में—हिन्दोस्तानियों का चमड़ा बंगालियों से कहीं अधिक अच्छा अथवा अनुकूल है, यह स्वीकार ही करना पड़ता है।

उस दिन सबेरे नहा कर सात्विक भोजन की चेष्टा में बाहर जा रहा था, इतने में गुरु महाराज ने बुलाकर कहा—

> भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा;
> जिनहिं राम-पद अति अनुरागा।

अर्थात् स्ट्राइक दि टेंट—तम्बू उखाड़ कर अन्यत्र यात्रा करनी होगी। किन्तु काम तो सहज नहीं है। संन्यासी की यात्रा ठहरी कि नहीं! पैर-बँधे टट्टू खोज लाकर उन पर सामान लादने में, ऊँट के ऊपर महाराज की ज़ीन कस देने में, गऊ-बकरी वग़ैरह साथ लेने में, पोटला-पोटली बांध कर ठीक करने में दोपहर बीत गया। उसके बाद रवाना होकर दो कोस के फ़ासले पर संध्या के पहले ही, बिठौरा-गाँव के किनारे एक भारी बरगद की जड़ में हमारा अड्डा जम गया।

जगह बेशक मनोरम थी, गुरु महाराज ने उसे ख़ूब पसंद किया। यह तो हुआ, लेकिन उस भरद्वाज मुनि के आश्रम में पहुँचते कै जन्म बीतेंगे, यह तो मैं अनुमान भी नहीं कर सका।

---

* बंगाली लोग बिहार और यू० पी० आदि इधर के लोगों को हिन्दोस्तानी ही कहते हैं।

—अनुवादक

इस बिठौरा ग्राम का नाम क्यों मुझे अब तक याद है, यह यहाँ पर बतलाऊँगा। उस दिन पूर्णिमा थी। अतएव गुरुजी की आज्ञा से हम तीनों जने तीन ओर भिक्षा माँगने के लिए गये। अकेला होता तो पेट भरने के लिए काफ़ी चेष्टा करता; लेकिन आज मुझे इसकी वैसी चिन्ता नहीं थी।

एक घर का दरवाज़ा खुला हुआ था। एकाएक भीतर एक बंगाली औरत का चेहरा देख पड़ा। उसकी धोती यद्यपि देसी ताँत की बुनी चटाई-सी मोटी ही थी, किन्तु पहनने का ख़ास ढंग बंगाली स्त्रियों का-सा था। इसीसे मुझे कौतूहल हुआ। सोचा, पांच-छः दिन से इस गाँव में हूँ, प्रायः सभी घरों में गया हूँ, किन्तु बंगाली स्त्री की कौन कहे, किसी बंगाली मर्द की भी सूरत तो नज़र नहीं आई।

साधु-संन्यासी के लिए कहीं जाने की रोक नहीं, कहीं पर्दा नहीं। मैंने उस घर के भीतर प्रवेश किया, वह स्त्री मुझे देखने लगी। उसका वह चेहरा आज भी मुझे याद है। इसका कारण यही है कि दस-ग्यारह साल की लड़की की आँखों में ऐसी करुण, ऐसी उदास मलिन दृष्टि मैंने और कभी शायद नहीं देख पाई। उसके मुख में, उसके होठों में, उसके सारे शरीर में जैसे दुःख तथा हताश-भाव फटा पड़ रहा था।

मैं एक-दम बँगला में कह उठा—कुछ भिक्षा दो माजी।

पहले तो वह कुछ बोली नहीं, उसके बाद उसके दोनों होंठ दो-एक बार काँपकर फूल उठे और वह एक-दम रोने लगी।

मैं अपने मन में कुछ लज्जित हो पड़ा। कारण, सामने और किसी के न रहने पर भी पास की कोठरी में कुछ बिहारी औरतों की बातचीत सुनाई पड़ रही थी। उनमें से अगर कोई एकाएक बाहर निकल कर इस अवस्था में हम दोनों को देख कर क्या सोचेगी, क्या कहेगी, यह मैं कुछ सोच न सका। इस अवस्था में खड़ा रहूँ या चला जाऊँ, यह निश्चय करने के पहले ही वह लड़की रोते-रोते एक सांस में हज़ारों प्रश्न कर बैठी—तुम कहां से आ रहे हो? तुम कहां रहते हो? तुम्हारा घर क्या बर्दवान-ज़िले में है? वहाँ कब जाओगे? तुम राजपुर गाँव जानते हो? वहाँ के गौरी तेवारी को पहचानते हो? इत्यादि।

मैंने कहा—तुम्हारा घर क्या बर्दवान में, राजपुर में, है?

लड़की ने हाथ से आँसू पोंछकर कहा—हाँ, मेरे बाप का नाम गौरी तेवारी है, मेरे दादा का नाम रामलाल तेवारी है। उन्हें तुम पहचानते हो? मैं तीन महीने से ससुराल आई हूँ, मगर एक भी चिट्ठी नहीं पाई। बप्पा, अम्मा, गिरिबाला, बच्चा वग़ैरह सब कैसे हैं, कुछ नहीं जानती। वह जो पीपल का पेड़ है, उसीके नीचेवाला घर मेरी दीदी की ससुराल है। उस सोमवार को दीदी गले में फाँसी लगाकर मर गई है, मगर वे लोग कहते हैं, नहीं, हैज़े से मरी है।

मैं विस्मय के मारे हतबुद्धि होगया। मामला क्या है? देखता हूँ, ये लोग पूरे हिन्दुस्तानी हैं, लेकिन यह लड़की एक-दम ख़ालिस बङ्गाली की लड़की है। इतनी दूर इस घर में इन लड़कियों का ब्याह ही कैसे हुआ और इनके स्वामी या सास-ससुर ही यहाँ क्या करने आये?

मैंने पूछा—तुम्हारी दीदी फाँसी लगाकर क्यों मर गई?

उसने कहा—दीदी राजपुर जाने के लिए दिन-रात रोती थी, न खाती-पीती थी, न सोती थी। इसी से इन लोगों ने उसके बाल धन्नी से बाँधकर उसको दिन-रात खड़े रहने की सज़ा दी थी। दीदी ने भी फांसी लगाकर अपनी जान देदी।

मैंने फिर पूछा—तुम्हारे सास-ससुर क्या हिन्दुस्तानी हैं?

लड़की ने फिर रोकर कहा—हां। मैं उनकी कोई बात समझ नहीं पाती। उनके यहां की रसोई मुझे रुचती नहीं—एक कौर भी मुँह में नहीं डाल सकती। मैं भी दिन-रात रोती रहती हूँ। लेकिन बप्पा न तो कोई चिट्ठी लिखते हैं और न मुझे ले ही जाते हैं।

फिर पूछा—अच्छा, तुम्हारे बाप ने इतनी दूर पर तुम्हारा ब्याह क्यों किया?

लड़की ने कहा—हम कनौजिया ब्राह्मण तेवारी जो हैं। हमारे लिए उस देश में लड़का कहा मिल सकता था?

मैंने कहा—तुम्हें ये लोग मारते-पीटते हैं?

लड़की ने कहा—मारते-पीटते क्यों नहीं। यह देखो न—

यह कहकर लड़की ने बाहुओं में, पीठ पर गालों-पर मार के निशान, 'लीलस्याह' दिखाकर फफककर रोते-रोते कहा—मैं भी दीदी की तरह गले मे फासी लगाकर जान दे दूँगी।

उसका रोना देखकर मेरी आखे भी सूखी न रह सकीं। अब और प्रश्नोत्तर या भिक्षा की अपेक्षा न करके मैं बाहर निकल आया। लेकिन वह लड़की मेरे पीछे पीछे आकर कहने लगी—मेरे बाप से तुम जाकर कह तो दोगे न? एक दफ़ा मुझे ले जायँ, नहीं तो—

मैंने किसी तरह गरदन हिलाकर स्वीकार किया और तेज़ी से चलकर ग़ायब होगया। उस लड़की का हृदयभेदी आवेदन मेरे कानों मे गूँजने लगा।

रास्ते के मोड़ पर ही एक मोदी की दूकान थी। भीतर जाते ही मोदी ने सम्मान-पूर्वक मेरी अभ्यर्थना की। खाने की कोई चीज़ न माँगकर मैं जब उससे थोड़ा सा काग़ज़ और दावात-क़लम मांग बैठा तब वह कुछ विस्मित तो अवश्य हुआ, लेकिन उसने मेरी आज्ञा का पालन तुरन्त कर दिया।

वहीं बैठकर मैंने गौरी तेवारी के नाम एक पत्र लिखा। सारा हाल लिखकर अन्त में यह भी लिख दिया कि लड़की की बहन फासी लगाकर मर गई है और यह भी मारपीट—अत्याचार असह्य होने के कारण ऐसा ही करने का निश्चय कर चुकी है। तुम ख़ुद आकर इसका कुछ उपाय न करोगे तो कहा नही जा सकता क्या होगा। बहुत संभव है, तुम्हारी भेजी चिट्ठिया ये लोग लड़कियो को नहीं देते। लड़की के बतलाने के अनुसार बर्दवान के राजपुर गांव का पता लिखकर चिट्ठी डाक मे डाल दी। मालूम नहीं, वह पत्र गौरी तेवारी के पास पहुँचा या नहीं और पहुँचा भी तो उसने आकर कुछ उपाय किया या नहीं। किन्तु यह मामला मेरे मन मे ऐसी गहरी छाप डाल गया था कि इतने दिनों बाद आज भी सब स्मरण है, और इस आदर्श हिन्दू-समाज के सूक्ष्मातिसूक्ष्म जाति-भेद के विरुद्ध एक विद्रोह का भाव आज भी मेरे मन मे बना हुआ है।

हो सकता है, यह जाति-भेद बहुत अच्छी चीज हो। इसी उपाय से जब सनातन हिन्दू-जाति आज तक जीवित है, तब इसकी प्रचण्ड उपकारिता या उपयोगिता के बारे मे संशय करने या प्रश्न करने को और कुछ नहीं है। कहीं किन्हीं दो बदनसीब लड़कियों ने दुःख-कष्ट न सह पाने के कारण गले मे फासी लगाकर जान दे दी, इस लिए द्रवीभूत होकर इसके कठोर बन्धन को रत्ती भर भी शिथिल करने की कल्पना भी पागलपन है। किन्तु उस लड़की के उस पाषाण-भेदी रुदन को जिस आदमी ने अपनी आखों से देखा है उसके लिए यह प्रश्न रोक रखना असम्भव है कि किसी तरह टिके रहना ही क्या चरम सार्थकता है? इस तरह तो अनेक जातिया टिकी हुई हैं—बनी हुई हैं—जीवित हैं। कूकी लोग हैं, कोल-भील-संथाल भी हैं, प्रशान्त महासागर के अनेक छोटे-मोटे द्वीपों की अनेक छोटी-मोटी जातिया भी मानव-सृष्टि के आदि से ही जीवित हैं—टिकी हुई हैं। यही नहीं, ऐसी जातिया आफ्रिका मे भी हैं, अमेरिका मे भी हैं। उनके यहा भी ऐसे कड़े सामाजिक आईन-क़ानून हैं कि उनका हाल सुनने से ख़ून पानी हो जाता है। अवस्था के हिसाब से वे योरप की अनेक जातियों के अतिवृद्ध प्राचीन प्रपितामह से भी प्राचीन हैं, हमारी हिन्दू जाति से भी पुरातन हैं। किन्तु इसी लिए वे जातिया सामाजिक आचार-व्यवहार मे भी हमसे श्रेष्ठ होंगी, ऐसा अद्भुत संशय, जान पड़ता है, किसी के मन में नहीं उठ सकता।

सामाजिक सहस्राधि दल बाधकर नहीं दिखाई देतीं। इसी तरह कभी-कभी एक आध आविर्भूत होती है। अपनी दोनों बङ्गाली लड़कियों का ब्याह हिन्दुस्तानियों के घर करने के समय शायद गौरी तेवारी के मन मे यह समस्या उत्पन्न हुई होगी। किन्तु वह बेचारा इस दुरूह समस्या के समाधान का कोई मार्ग न खोज पाकर ही अन्त को समाज की बलि-वेदी पर अपनी दोनों

कन्याओं का बलिदान करने को विवश हुआ था। जो समाज इन दो निरुपाय क्षुद्र बालिकाओं के लिए भी स्थान नहीं कर दे सका, जो समाज अपने को कुछ भी प्रसारित करने की शक्ति नहीं रखता, उस पंगु और जड़ के समान समाज के लिए मैं मन में कुछ भी गौरव का अनुभव नहीं कर सका। कहीं किसी जगह एक बहुत बड़े लेखक की रचना मे मैंने पढ़ा था कि हमारे समाज ने जाति-भेद के नाम से जो एक बहुत बड़े सामाजिक प्रश्न का उत्तर जगत् के सामने रक्खा था, उसका आख़िरी फ़ैसला आज भी और कोई जाति नहीं कर सकी। इसी तरह का कुछ उनका कथन था। किन्तु इन सब युक्ति-हीन उच्छ्वासों का उत्तर देने को भी जैसे जी नहीं चाहता। हुआ नहीं, होगा नहीं कहकर अपने प्रश्न का उत्तर आप ही उच्च कंठ से घोषित करके जो लोग समस्या को दबा बैठते है, उनकी बात का जवाब देना भी वैसाही कठिन है। अस्तु।

मोदी की दूकान से उठकर चल दिया। पता लगाकर उस बेअरिङ्ग चिट्ठी को लेटरबक्स में छोड़कर जब मैं अड्डे पर आकर उपस्थित हुआ, तब तक मेरे अन्य दोनों साथी बस्ती से आटा, चावल वग़ैरह मांगकर लौटे नहीं थे।

देखा, साधु बाबा आज जैसे कुछ खीझे हुए हैं। कारण इन्होंने आप ही प्रकट किया—कहने लगे—इस गांव के लोगों में साधु-संन्यासियों पर वैसी भक्ति नहीं है। ये लोग साधुओं के भोजन या सेवा आदि की व्यवस्था वैसी सन्तोष-जनक नहीं करते। इसलिए कल ही यह स्थान छोड़कर चल देना होगा।

'जो आज्ञा' कहकर मैंने उसी दम बाबा के कथन का अनुमोदन किया।

पटना देखने के लिए मन में जैसे कहीं पर एक प्रबल कौतूहल छिपा हुआ था। अब उसे अपने निकट छिपा नहीं सका।

इसके सिवा इन सब बिहार के गाँवों में किसी तरह का आकर्षण ही मैं खोज नहीं पाता। इसके पहले बङ्गाल के अनेक ग्रामों में घूमा-फिरा हूँ। उनके साथ यहाँ के गाँवों की कोई तुलना ही नहीं हो सकती। नर-नारी, पेड़-पत्ती, जल-वायु, कोई भी चीज़ अपनी नहीं जान पड़ती। मेरा मन सबेरे से शाम तक केवल भाग-भाग किया करता है।

संध्या के समय हर एक महल्ले मे बंगाल के देहातों की तरह यहां उस प्रकार से झाझ-करताल-मृदंग आदि के साथ हरिकीर्तन नहीं सुन पड़ता। देवमन्दिरों में घण्टे-घड़ियाल भी वैसे मधुर-गम्भीर शब्द से नहीं बजते। इस तरफ़ की औरतें शंख भी क्या वैसे मीठे स्वर में नहीं बजा सकतीं? यहा आदमी किस सुख के लिए रहे।

और, जान पड़ने लगा, इन सब देहातों में अगर न आ पड़ता तो अपने देश के देहातों का मूल्य किसी दिन इस तरह मालूम न पड़ता। हमारे गाँवों में जल में काई, हवा में मलेरिया, मनुष्यों के पेट में पिलही, घर-घर अदालत और महल्ले में झगड़ा या दलबन्दी भले ही है, तथापि उसी में कितना रस, कितनी परितृप्ति थी! इस समय जैसे उसका कुछ भी न समझ कर भी सब समझने लगा।

दूसरे दिन तंबू उठाकर यात्रा की गई। दलबल-सहित साधु बाबा यथाशक्ति भरद्वाज मुनि के आश्रम की ओर अग्रसर होने लगे। किन्तु रास्ता सीधा होगा, यह समझ कर हो चाहे मेरे मन की बात जानकर हो, पटने तक दस कोस के भीतर बाबा ने फिर तंबू नहीं डाला। मेरे मन में एक इच्छा थी। ख़ैर, उसे इस समय यों ही रहने दो। पाप-ताप अनेक किये हैं, कुछ दिन साधु-संग करके पवित्र हो आऊँ।

एक दिन संध्या से पहले जिस जगह हम लोगों का अड्डा पड़ा, उसका नाम था छोटा बगिया। आरा स्टेशन से आठ कोस के लगभग यह स्थान था। इस गांव में एक बहुत उदार प्रकृति के बङ्गाली सज्जन से मेरा परिचय हुआ था। उनकी सदाशयता का यहां पर थोड़ा-सा हाल लिखूँगा।

उनके पैतृक नाम को छिपा कर राम बाबू लिखना ही अच्छा होगा। कारण, वह अभी तक जीवित हैं, और बाद को अन्य एक स्थान में उनसे मेरी मुलाक़ात होने पर भी वह मुझे पहचान नहीं पाये थे। यह कुछ आश्चर्य की बात नहीं। किन्तु उनके स्वभाव को मैं जानता हूँ।

उन्होंने गुप्त-रूप से जितने सत्कार्य किये हैं, उनका प्रकाश्य रूप से उल्लेख करने से वे विनय के मारे संकुचित हो पड़ेंगे, यह मैं निश्चित रूप से जानता हूँ। इसी से उनका नाम राम बाबू समझ लीजिए। किस सूत्र से राम बाबू ने इस ग्राम में प्रवेश किया था और किस तरह जमा-ज़मीन पैदा करके इस गांव में खेती-बारी करते-कराते थे, यह कुछ मैं नहीं जानता। केवल इतना ही जानता हूँ कि उनकी स्त्री दूसरी थी और वह तीन-चार पुत्र-कन्या सन्तानों के साथ सुख-पूर्वक उस गांव में रह रहे थे।

एक दिन सबेरे सुना गया कि छोटे-बड़े बगिया नाम के गांवों में तो शीतला का कोप है ही, और भी आसपास के पांच-सात गांवों में यह रोग महामारी के रूप में प्रकट हो गया है। देखा गया है कि ऐसे दुःसमय में ही साधु-संन्यासियों की ख़ूब क़दर होती है, उनकी सेवा ख़ूब संतोष-जनक होती है। सुतरां साधु बाबा ने अविचलित चित्त से वहीं रहने का पक्का इरादा कर लिया।

अच्छी बात है। संन्यासी-जीवन के सम्बन्ध में मैं यहां पर एक बात कहना चाहता हूँ। जीवन में अनेक साधु-संन्यासी मैंने देखे हैं। तीन-चार बार उनकी संगति में घनिष्ठ भाव से शामिल भी हुआ हूँ। इनमें दोष जो हैं सो तो है ही। मैं यहां पर गुणों ही की बात कहूँगा। कोरे पेट के लिए साधु बने हुए तो आपने बहुत-से देखे ही होंगे; किन्तु इनमें भी निम्न-लिखित दो दोष मुझे नहीं देख पड़े। मेरी दृष्टि ऐसी बहुत मोटी हो, यह बात भी नहीं है। स्त्री-जाति के सम्बन्ध में इनकी उदासीनता को चाहे आप इनका संयम कहिए और चाहे उत्साह का अभाव कहिए, वह है ख़ूब अधिक। और, प्राण का भय भी इनके बहुत कम होता है। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' का भाव तो इनमें अवश्य है, किन्तु क्या करने से अनेक दिन जीवेत्, यह ख़याल नहीं है। हमारे साधु बाबा को भी यहां यही मुसीबत हुई। पहले के लिए दूसरे को तुच्छ कर दिया।

थोड़ी-सी धूनी की राख और दो बूँद कमंडलु के जल के बदले में जो बेशुमार सामग्री तेज़ी के साथ आने लगी, वह क्या संन्यासी और क्या गृहस्थ, किसी के लिए खीझ का कारण नहीं बन सकती।

राम बाबू भी स्त्री-सहित स्वामीजी की शरण में आकर रोने लगे। चार दिन ज्वर आने के बाद आज सबेरे उनके बड़े लड़के के शीतला के दाने दिखाई पड़े हैं। छोटा लड़का तो कल रात से ही ज्वर से बेहोश है। बंगाली देखकर स्वतः प्रवृत्त होकर मैंने राम बाबू से परिचय किया।

इसके बाद मैं अपनी इस कहानी में महीने भर का समय खाली छोड़ देना चाहता हूँ। कारण, किस तरह यह परिचय घनिष्ठ हुआ और किस तरह उनके दोनों लड़के आराम हो गये, यह वर्णन बहुत बड़ा तथा व्यर्थ ही है। इसके कहने में मैं ही ऊब उठूँगा, पाठकों की कौन कहे। मगर हां, बीच की एक बात कह दूँ। पन्द्रह दिन के बाद, जब रोग बहुत अधिक बढ़ गया था, तब साधु महाराज ने डेरा उठाने का प्रस्ताव किया।

राम बाबू की स्त्री ने रोकर मुझसे कहा—संन्यासी दादा, तुम तो सचमुच संन्यासी नहीं हो—तुम्हारे मन में दया-माया है। मेरे नवीन और जीवन को अगर तुम छोड़कर चले जाओगे तो वे कभी जी नहीं सकते। अच्छा, जाओ, देखूँ, कैसे जाते हो?

यह कहकर उन्होंने मेरे दोनों पैर पकड़ लिये। मेरी आँखों में भी आँसू भर आये। राम बाबू भी स्त्री के साथ ही प्रार्थना और ख़ुशामद करने लगे। अतएव मेरा जाना न हो सका।

साधुबाबा से मैंने कहा—प्रभु, आप लोग आगे चलिए। मैं रास्ते में न हो सका तो प्रयाग में आकर अवश्य ही आपके श्रीचरणों के दर्शन करूँगा।

प्रभु कुछ कुण्ठित हो गये। अन्त को बार-बार अनुरोध करके, मार्ग में कहीं व्यर्थ विलम्ब न करने के सम्बन्ध में बारंबार सतर्क कर देने के बाद, दल-बल-सहित गुरुदेव ने यात्रा कर दी। मैं राम बाबू के घर में ही रह गया।

इतने थोड़े दिनों में ही मैं बाबाजी का सबसे अधिक स्नेहपात्र हो गया था और टिका रहता तो उनकी संन्यासी-लीला के अंत में उत्तराधिकार सूत्र से टट्टू-ऊँट वग़ैरह पर मेरा ही दख़ल होता, इसमें कोई सन्देह नहीं। होगा, हाथ की लक्ष्मी को पैर से ठेलने के बाद बीती बात पर पश्चात्ताप करने से कोई लाभ नहीं।

राम बाबू के दोनों लड़के चंगे हो गये। अब बीमारी सचमुच महामारी के रूप में दिखाई दी। उस समय की दशा को जिसने अपनी आँखों से नहीं देखा उसके लिए लिखा हुआ पढ़कर, सुन कर या कल्पना करके उसे हृदयंगम करना सर्वथा असम्भव है। इसलिए इस असम्भव को सम्भव करने का प्रयास मैं नहीं करूँगा।

लोग सिर पर पैर रख कर वहा से भागने लगे। जिस किसी घर में कोई रह भी गया तो झांक कर देखने से यही देख पड़ा कि माता अपनी बीमार लड़की या लड़के को लिये बैठी है।

राम बाबू ने भी अपने घर की बैलगाड़ी से सब माल-असबाब लाद दिया। बहुत दिन पहले ही वह भाग गये होते, लेकिन लाचार होकर ही उन्हें रहना पड़ा था। पाच-सात दिन से मेरा सारा शरीर ऐसा आलस्य से भर गया था कि कुछ भी अच्छा न लगता था। सोचता था, रात को जागने और परिश्रम करने के कारण ही ऐसा जान पड़ता है।

उस दिन सवेरे से ही सिर धमकने लगा। बिलकुल अनिच्छा-अरुचि रहने पर उस दिन दोपहर को जो कुछ मैंने खाया, वह तीसरे पहर कय की राह निकल गया। रात के नौ-दस बजने के समय मालूम पड़ा कि बुख़ार चढ़ आया है। उस दिन रात भर राम बाबू की यात्रा का उद्योग-आयोजन होता रहा, रात भर सब जागते रहे।

बहुत रात बीते राम बाबू की स्त्री ने मेरी कोठरी में आकर कहा—संन्यासी दादा, तुम भी क्यों नहीं हम लोगों के साथ आरे तक चलते ?

मैंने कहा—चलूँगा। किन्तु गाड़ी में तुमको मुझे तनिक-सी जगह देनी होगी।

बहन ने उत्सुक होकर प्रश्न किया—क्यों संन्यासी-दादा ? गाड़ियाँ तो केवल दो ही मिली हैं। उनमें तो हम लोगों ही भर को जगह नहीं है।

मैंने कहा—मुझमें तो आज पैदल चलने की ताक़त ही नहीं है दीदी ! सबेरे ही से ख़ूब बुख़ार चढ़ा है।

"बुख़ार ? कहते क्या हो ?" कहकर ही, उत्तर की अपेक्षा बिना किये ही, मेरी यह नई बहन मुँह अँधेरा करके चल दीं।

कितनी देर बाद सो गया था, कह नहीं सकता। जाग कर जब उठा तो देखा, दिन चढ़ आया है। घर के भीतर प्रत्येक कोठरी में ताला बन्द है। किसी प्राणी का नाम नहीं।

बाहर की जिस कोठरी में मैं रहता था उसके सामने से उस गाव की कच्ची सड़क आरा-स्टेशन तक गई है। इस रास्ते पर से नित्य कम से कम ५-६ बैलगाड़ियाँ मृत्यु-भय से भाग रहे नर-नारियों को लादकर स्टेशन ले जाती थीं। दिन भर बहुत कोशिश करने के बाद शाम को जाकर एक यात्री को राज़ी कर सका और सवार हो लिया। जिन वृद्ध बिहारी सज्जन ने दया करके मुझे अपने साथ ले लिया था, उन्होंने बहुत तड़के ही स्टेशन के पास एक पेड़ के नीचे मुझे उतार दिया। उस समय मुझमें बैठने की शक्ति नहीं थी, वहीं लेट रहा।

पास ही एक टीन की शेड् ख़ाली पड़ी थी। पहले यह मुसाफ़िरख़ाने के काम आती थी; किन्तु अब वर्षा-बूँदी के दिन गऊ-बछड़ों को बाँध देने के सिवा और कुछ इसका उपयोग न होता था।

वह बिहारी सज्जन स्टेशन से एक बङ्गाली युवक को बुला लाये। मैं उन्हीं की दया से, कई एक कुलियों की सहायता से इसी शेड् के नीचे पहुँचाया गया।

मेरे बड़े दुर्भाग्य है कि मै इस युवक का कोई परिचय न दे सका; उस समय किसी से कुछ पूछताछ करने की ताब ही न थी। पाँच-छः महीने के बाद जब परिचय पूछने की शक्ति हुई, सुयोग प्राप्त हुआ तब पता लगाने से मालूम हुआ कि इसी बीच में शीतला-रोग से युवक की मृत्यु हो गई है। हाँ, उस समय युवक की बातचीत सुनकर केवल इतना जान पाया था कि वह पूर्व-बङ्गाल के रहनेवाले हैं और १५) मासिक पर इसी स्टेशन में नौकर हैं। दम भर बाद उस युवक ने अपना सैकड़ों जगह से जीर्ण बिस्तर लाकर हाज़िर किया और बार-बार कहने लगा कि वह अपने हाथ से रसोई बनाकर खाता और पराये ही घर रहता है। दोपहर को थोड़ा सा गरम दूध लाकर उसने मुझे ज़बरन कह-सुनकर पिलाया और कहा—कुछ डर नहीं, अच्छे हो जायँगे। किन्तु यदि किसी आत्मीय बन्धु-बान्धव को ख़बर देनी हो, तो पता बताने से वह तार दे सकता है।

उस समय भी मैं अच्छी तरह होश में था; अतएव यह भी ख़ूब समझता था कि अब और अधिक समय नहीं होश रह सकता। अगर ऐसा ही ५-६ घंटे भी ठहरा तो अवश्य ही होश जाता रहेगा। अतएव जो कुछ करने को है, वह इसी बीच में न करने से फिर नहीं किया जा सकेगा।

सो तो ठीक है, किन्तु ख़बर देने का प्रस्ताव सुनकर मैं सोच-विचार में पड़ गया। क्यों, यह खोलकर बताने की ज़रूरत नहीं। फिर सोचा, ग़रीब का पैसा व्यर्थ खर्च कराने से लाभ क्या!

सन्ध्या के उपरान्त वे भद्रपुरुष डियूटी से अवकाश मिलने पर एक घड़ा पानी और एक मिट्टी के तेल का चिराग़ लेकर उपस्थित हुए। उस समय ज्वर की यन्त्रणा के मारे दिमाग़ क्रमशः ख़राब हो उठ रहा था। उनको पास बुलाकर कहा—जब तक मुझे होश है तब तक बीच बीच में देख जाना। उसके बाद जो होना होगा सो होगा, आप कष्ट न कीजिएगा।

वे सज्जन बहुत ही सङ्कोची थे। बात बनाना या रँगना जानते ही न थे—यह क्षमता ही न थी। प्रत्युत्तर में केवल "ना, ना" कहकर ही चुप हो रहे।

मैंने कहा—आपने ख़बर देना चाहा था। मैं संन्यासी आदमी हूँ; यथार्थ में अपना मेरा कोई नहीं है। मगर हाँ, पटने में पियारी बाई के पते पर यदि एक पोस्टकार्ड लिख कर डाल दीजिए कि श्रीकान्त आरा-स्टेशन के बाहर एक टीन-शेड के भीतर मरणासन्न अवस्था में पड़ा हुआ है, तो—

वे भद्र पुरुष व्यस्त हो उठे। "मैं अभी लिखता हूँ, चिट्ठी और तार दोनों भेजे देता हूँ" कह कर चले गये।

मैंने मन में कहा—भगवान्, ख़बर उस तक पहुँच जाय।

× × ×

होश होने पर पहले तो अच्छी तरह कुछ समझ न सका। सिर पर हाथ रखकर अनुमान से जाना कि आईस-बैग रक्खा हुआ है। आँख खोलकर देखा, घर के भीतर एक खाट पर पड़ा हुआ हूँ। सामने टूल के ऊपर एक लालटेन के पास दो-तीन दवा की शीशियाँ हैं। उसी के पास एक खटिया पर कोई लाल शाल ओढ़े पड़ा हुआ है। बहुत देर तक कुछ भी स्मरण न कर सका। उसके बाद थोड़ा-थोड़ा करके जान पड़ने लगा, जैसे नींद की हालत में कितनी ही तरह के कितने ही स्वप्न देखे हैं। यथा—बहुत लोगों का आना जाना, उठा कर मुझे डोली पर डालना, सिर मुड़ा कर दवा खिलाना-पिलाना इत्यादि।

इस भर बाद जब वह आदमी उठकर बैठा, तब देखा वे एक बङ्गाली सज्जन हैं; अवस्था १८-१९ वर्ष से अधिक न होगी। तब मेरे सिरहाने की ओर से कोमल स्वर में जिसने उस युवक को सम्बोधन किया, उसकी आवाज़ मैंने पहचान ली। वह थी पियारी।

पियारी ने बहुत धीमे स्वर में कहा—बङ्कू, बर्फ़ को एक बार बदल क्यों नहीं दिया भैया!

लड़के ने कहा—बदले देता हूँ। तुम तनिक सो न जाओ मा। डाक्टर साहब कह गये हैं कि यह शीतला का ज्वर नहीं है, फिर अब काहे का ख़ौफ़ है?

पियारी ने कहा—ओरे बाबा! डाक्टर के 'भय नहीं है' कह देने से कहीं औरतों का भय जाता रहता है? ख़ैर, तू मेरे सोने-जागने की कुछ चिन्ता न कर बंकू। तू सिर्फ़ बर्फ़ बदल करके सो रह—रात को न जाग।

बंकू ने आकर बर्फ़ बदल दी और जाकर उसी खाट पर लेट रहा। थोड़ी ही देर में वह ख़र्राटे भरने लगा। तब मैंने धीरे धीरे पुकारा—पियारी!

पियारी ने मुँह के ऊपर झुक पड़ कर मेरे मत्थे की पसीने की बूँदें आँचल से पोंछकर कहा—मुझे क्या पहचाना? अब कैसे हो? का—

मैंने कहा—अच्छा हूँ। तुम कब आईं? यह क्या आरा है?

पियारी—हाँ, आरा है। कल हम लोग घर चलेंगे।

मैं—कहाँ?

पियारी—पटने। अपने घर ले जाने के सिवा इस समय क्या कहीं और तुमको छोड़ सकती हूँ?

मैं—यह लड़का कौन है राजलक्ष्मी?

पियारी—मेरी सौत का लड़का है। किन्तु मेरा बंकू मेरे पेट के लड़के के बराबर ही है। मेरे ही पास से

पटना-कालेज में पढ़ता है। आज अब और अधिक बातें न करना, सो रहो, कल सब बातें कहूँगी।

यह कह कर मेरे मुँह पर हाथ रखकर उसने मेरा मुँह बन्द कर दिया।

मैं हाथ बढ़ाकर राजलक्ष्मी का दाहना हाथ मुट्ठी में लेकर करवट लेकर सो रहा।

बारहवाँ परिच्छेद

जिसमें बेहोश होकर मैं पलँग पर पड़ गया था वह शीतला का नहीं, अन्य ज्वर था। डाक्टरी-शास्त्र में अवश्य ही उस ज्वर का कोई बड़ा भारी नाम था लेकिन वह मुझे मालूम है नहीं।

ख़बर पाकर पियारी अपने लड़के के साथ दो नौकर और एक दासी लेकर उपस्थित हुई थी। उसी दिन एक मकान भाड़े पर लेकर उसने मुझे वहाँ से हटाया और शहर के भले-बुरे तरह-तरह के, अनेक डाक्टर बुलाकर जमा कर दिये। अच्छा ही किया। नहीं तो अन्य क्षति चाहे भले ही न होती, किन्तु इस पुस्तक के पाठकों के धैर्य की महिमा संसार में अप्रसिद्ध ही रह जाती।

सबेरे पियारी ने कहा—बंकू, अब और देर न कर भैया, अभी जाकर एक सेकिंड क्लास की गाड़ी रिज़र्व करा आ। मैं अब एक घड़ी भी यहाँ रहने का साहस नहीं करती।

बंकू की आँखों में अभी नींद भरी हुई थी। उसने अव्यक्त स्वर में आंखें मूँदे-ही-मूँदे उत्तर दिया—पागल होगई हो मा? इस अवस्था में रोगी को एक जगह से दूसरी जगह कहीं ले जाया जा सकता है?

पियारी ने हँस कर कहा—पहले तू उठ तो सही, आँख-मुँह धो, उस के बाद ले जाने की बात देखी जायगी। राजा बेटा, उठ ज़रा।

लाचार पलँग छोड़कर हाथ-मुँह धोकर कपड़े बदल कर बंकू को स्टेशन जाना पड़ा। उस समय वैसे ही तड़का हो रहा था—घर में और कोई नहीं था। मैंने धीरे-धीरे पुकारा—पियारी!

मेरे सिरहाने की तरफ़ और एक खाट मेरी खाट से मिली हुई पड़ी थी। उसी के ऊपर, जान पड़ता है, क्लान्ति के कारण इसी बीच में पियारी आंखें ज़रा मूँद कर लेट गई थी। गड़बड़ा कर वह उठ बैठी और मेरे मुँह पर झुककर कोमल स्वर में उसने पूछा—नींद खुल गई?

मैंने कहा—मैं सोता थोड़े था, जाग ही रहा हूँ।

पियारी ने उत्कंठा-पूर्ण यत्न के साथ मेरे मत्थे में हाथ फेरते फेरते कहा—इस समय ज्वर बहुत कम है। तनिक आंख मूँदकर सोने की चेष्टा क्यों नहीं करते?

मैंने कहा—सो तो बराबर ही कर रहा हूँ पियारी! आज मुझे बुख़ार आये कै दिन हुए?

"तेरह दिन" कहकर जैसे बहुत ही वृद्ध पुरखिन की तरह गभीर भाव से उसने कहा—देखो, लड़के-बालों के सामने अब वह नाम लेकर मुझे न पुकारा करो। सदा लक्ष्मी कहकर पुकारा करते थे, वही नाम क्यों नहीं लेते?

दो दिन से मैं पूर्ण रूप से होश में था। मुझे सभी बातें याद थीं। मैंने कहा—अच्छा।

इसके बाद जो कहने के लिए मैंने पुकारा था उसे मन ही मन ठीक करके कहा—मुझे घर ले चलने की चेष्टा तो कर रही हो, लेकिन मैंने तुमको बहुत कष्ट दिये हैं, अब और नहीं देना चाहता।

पियारी—तो फिर क्या करना चाहते हो?

मैंने कहा—सोचता हूँ, इस समय जैसी हालत है उसके देखते तीन-चार दिन में ही जान पड़ता है, चंगा हो जाऊँगा। तुम बल्कि दो-एक दिन यहां ठहरकर घर चली जाओ।

पियारी—तब तुम क्या करोगे?

मैं—उस समय देखा जायगा।

"सो ठीक है" कहकर पियारी ज़रा हँस दी। उसके बाद मेरे सामने उठ आकर मेरी खाट के एक बाज़ू पर बैठकर मेरे मुख की ओर क्षणभर चुप-चाप ताकते रहकर फिर तनिक मुसकराकर उसने कहा—तीन-चार दिन में न सही, दस-बारह दिन में तुम्हारा यह रोग दूर होगा, यह मैं जानती हू; किन्तु असल रोग कितने दिन में अच्छा होगा, बता सकते हो?

मैंने कहा—असल रोग वह और क्या है?

पियारी ने कहा—सोचोगे कुछ, कहोगे कुछ और करोगे कुछ, सदा से तुम्हें यही एक रोग है। तुम
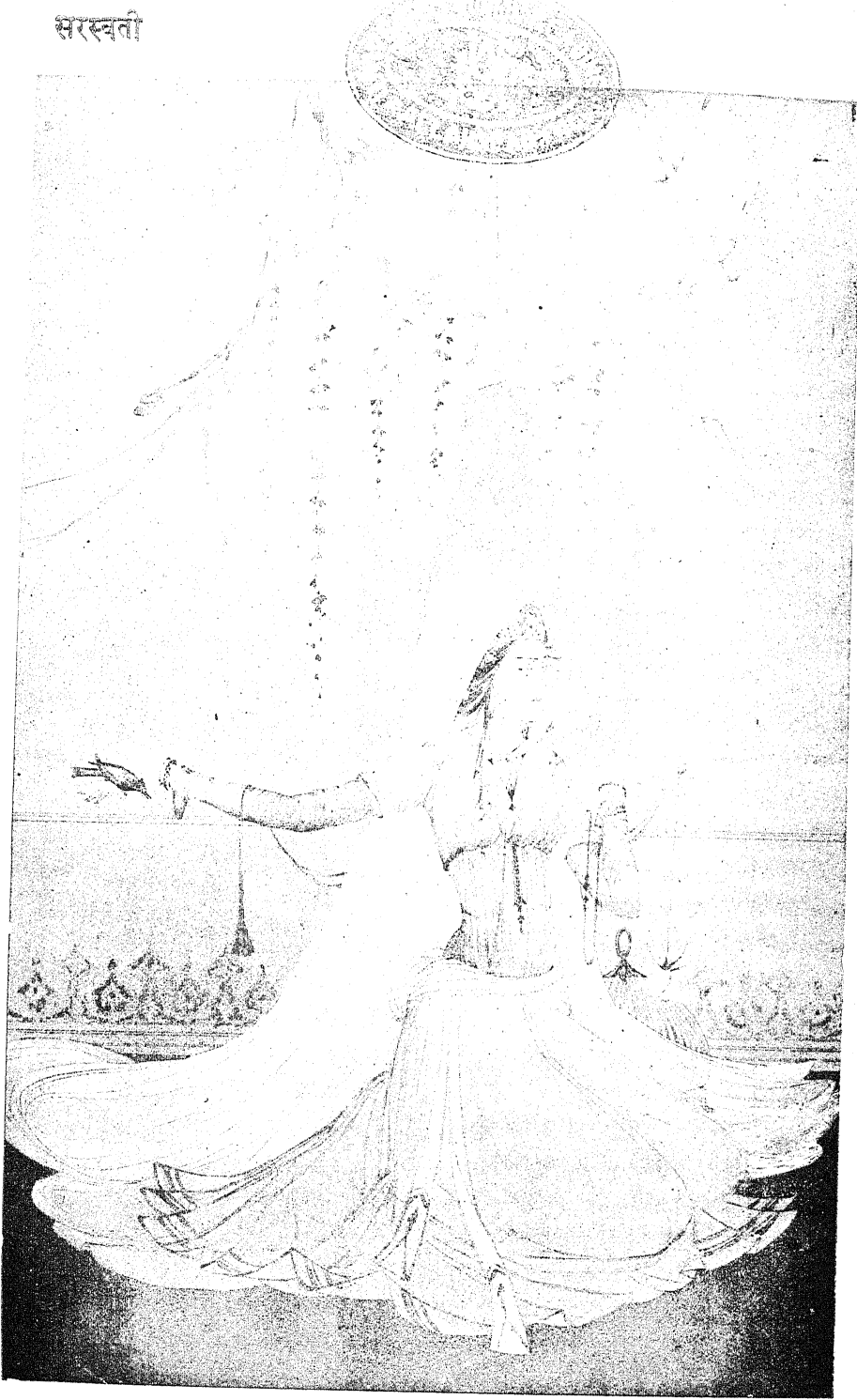
उन्मुक्ति

जा बुलबुले बेताब तड़प सहने चमन में।
एक हम हैं कि रोने की इजाज़त नहीं मिलती ॥—असग़र

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

जानते हो कि महीना भर पहले मैं तुम्हें आँखों की ओट नहीं कर सकूँगी, तो भी कह रहे हो—तुमको कष्ट दिया, तुम जाओ। अजी ओ दयामय! मेरा अगर तुम्हें इतना ही दर्द है तो फिर चाहे जो हो, तुम संन्यासी नहीं हो। संन्यासी बनकर तुमने इतना हंगामा क्यों खड़ा किया! आकर देखती क्या हूँ, धरती पर एक फटी कथरी पर एक-दम बेहोश पड़े हो। सिर के बाल धूल-कीचड़ में सनने से उनकी लटें बन गई हैं, देह भर में रुद्राक्ष है. हाथों में पीतल के कड़े। मैया रे मैया! चेहरा देखकर मैं तो रोने लगी।

कहते-कहते उमड़े हुए आसू उसकी आँखों में झलकने लगे। हाथ से चटपट उन्हें पोंछकर उसने कहा—बंकू पूछने लगा, यह कौन है मा? मैंने मन में कहा, तू लड़का है, तुझसे यह क्या बतलाऊँ भैया! ओह! वह दिन भी कैसी विपत्ति का था। सच तो यह है कि किस शुभ घड़ी में पाठशाला में हमारी चार आँखें हुई थीं! जितना दुःख तुमने मुझे दिया है, उतना दुनिया भर में कभी किसी ने किसी को न दिया होगा और न कोई दे सकेगा! यहाँ भी शहर में शीतला का बुख़ार दिखाई पड़ा है; सभी को लेकर अच्छे अच्छे—सकुशल—घर भाग जाऊँ तो जान में जान आवे।

इतना कहकर उसने एक लंबी साँस छोड़ी।

उसी रात को हम लोगों ने आरा छोड़ दिया। एक कमसिन छोकरा डॉक्टर बहुत तरह की दवाएँ वग़ैरह साथ लेकर हम लोगों को पटने तक पहुँचा गया।

पटने में पहुँचकर बारह-तेरह दिन के भीतर ही एक तरह से आराम हो गया। एक दिन सबेरे अकेले पियारी के घर में इधर-उधर घूमकर वहां का सामान-सरंजाम देखकर मुझे कुछ विस्मय हुआ। इस तरह का दृश्य मैंने पहले देखा न हो, यह बात न थी। सामग्री अच्छी और अधिक मूल्य की थी, यह ठीक है; किन्तु इस माड़वा-रियों के मोहल्ले में, इन सब धनी अथ च अल्पशिक्षित शौक़ीन आदमियों के संसर्ग में इतनी साधारण सामग्री से ही पियारी को संतोष कैसे हुआ?

इसके पहले मैंने और भी ऐसी स्त्रियों के जितने घर-बार देखे हैं, उनके साथ इसका किसी अंश में भी सादृश्य न था। उन मकानों में घुसते ही जान पड़ा कि इसके भीतर मनुष्य क्षण भर भी किस तरह रहता है? उन मकानों के झाड़, कवँल, लालटेन, दीवालगीरी, आईना, ग्लास-केस वग़ैरह सामान के बीच आनन्द के बदले आशंका ही अधिक होती है। जान पड़ता है, सहज श्वास-प्रश्वास लेने का अवकाश भी नहीं मिलेगा। वहां बहुत लोगों की बहुविध कामना-साधना की उपहार-राशि इस तरह ठसाठस ढेर हुई देख पड़ती है कि नज़र डालते ही जान पड़ता है, इन अचेतन वस्तुओं की तरह इनके देनेवाले सचेतन मनुष्यों में भी जैसे इस घर की थोड़ी सी जगह के लिए इसी तरह भीड़ करके परस्पर ठेलमठेला या संघर्ष चल रहा है! किन्तु इस घर के किसी भी कमरे में ज़रूरी चीज़ों के सिवा एक भी व्यर्थ वस्तु न देख पड़ी। और. जो देख पड़ीं, वे गृहस्वामिनी के अपने प्रयोजन के लिए ही लाई गई हैं तथा उसकी अपनी इच्छा और अभिरुचि को नांघकर अन्य किसी को प्रलुब्ध करने की अभिलाषा अनधिकार प्रवेश करके यहां जगह छेके नहीं बैठी है, यह बात बहुत सहज में ही मालूम होगई।

और भी एक बात ने मेरी दृष्टि को अपनी ओर आकृष्ट किया। इतनी बड़ी प्रसिद्ध बाईजी के घर में गाने-बजाने का आयोजन कुछ भी कहीं न था। इधर-उधर घूमकर दोतल्ले के एक कोने की कोठरी के दरवाज़े पर आकर मैं खड़ा हुआ। भीतर नज़र डालते ही मुझे मालूम होगया कि यह बाईजी के सोने की कोठरी है। किन्तु मेरी कल्पना के साथ इसका कितना अंतर था! मैंने जो कुछ सोचा था उसमें से यहाँ कुछ भी नहीं था। फ़र्श सफ़ेद पत्थर का था, दीवारें दूध की तरह सफ़ेद चमक रही थीं। कोठरी में एक किनारे एक छोटे से तख़्त पर बिछौना बिछा था। एक काठ की अलगनी पर कुछ कपड़े और उसके पीछे एक छोटे की आलमारी थी। और कहीं कुछ न था।

जूते पहने उसके भीतर जाने में जैसे संकोच मालूम पड़ा। चौखट के बाहर जूते उतारकर भीतर गया। जान पड़ता है, थकन या क्लान्ति के मारे ही पियारी की शय्या पर जाकर मैं बैठ गया, नहीं तो घर में और कोई बैठने की सामग्री अगर होती तो उसी पर बैठता।

सामने खुली हुई खिड़की को ढके हुए एक बड़ा-सा नीम का पेड़ था। उसी के भीतर से भरभर करके हवा चली आ रही थी। उस ओर देखकर एकाएक जैसे कुछ मैं अन्यमनस्क हो पड़ा था। एक मधुर शब्द से चौंककर देखा, गुनगुना कर गाना गाती हुई पियारी भीतर घुस रही है। वह गंगा-स्नान करने गई थी। लौटकर अपनी कोठरी में गीली धोती उतारने आई थी। उसने मेरी ओर देखा न था। सीधे आलमारी के पास जाकर सूखी धोती में उसके हाथ लगाते ही मैंने व्यस्त होकर अपनी उपस्थिति जताने के विचार से कहा—तुम घाट पर धोती क्यों नहीं ले जाया करती हो ?

पियारी चौंक पड़ी। फिर हँस कर बोली—ऐं—चोर की तरह मेरी कोठरी में घुसे बैठे हो ? ना, ना, बैठो—बैठो, जाने की ज़रूरत नहीं, मैं उस कोठरी से धोती बदल कर आती हूँ—

यह कह कर जल्दी से अपनी गर्द की रेशमी धोती लेकर वह चली गई। लगभग पाँच मिनट के बाद लौट आकर प्रफुल्ल मुख से हँस कर उसने कहा—मेरी कोठरी में तो कुछ भी नहीं है; फिर क्या चुराने आये थे, बतलाओ ? मुझे तो नहीं चुराने आये थे ?

मैंने कहा—मुझे तुमने ऐसा अकृतज्ञ समझा है क्या ? तुमने मेरे साथ इतना सलूक किया और मैं अन्त को तुम्हीं को चुराऊँगा ? मैं इतना लोभी नहीं हूँ।

पियारी का मुख मलिन हो गया। मेरी इस बात से उसे इतनी व्यथा पहुँचेगी, यह कहते समय मैंने नहीं सोचा था। उसे व्यथा पहुँचाने की मेरी इच्छा नहीं थी, होना स्वाभाविक भी नहीं। खास कर इन दो-एक दिनों के भीतर ही मैं चले जाने का इरादा कर रहा था। अपनी उस अचानक निकल गई बात को सँभालने के लिए ज़बरदस्ती हँसकर मैंने कहा—अपनी चीज़ को भला कोई चुराने जाता है ? यही तुममें बुद्धि है ?

किन्तु इतने सहज में उसे बतलाया न जा सका। उसने वैसे ही मलिन मुख से कहा—तुम्हें अब और कृतज्ञ न होना होगा। दया करके उस समय मेरे पास तुमने खबर भेज दी, यही मेरे लिए बहुत है।

उसके शुद्ध, स्नात, प्रफुल्ल, हँसते हुए मुख को मैंने इस सूर्य-किरणोज्ज्वल प्रभात-काल में ही मलिन कर दिया, यह देख कर मेरे हृदय में एक वेदना-सी होने लगी। उसकी उस हँसी में एक माधुर्य था। उस हँसी के नष्ट होते ही क्षति सुस्पष्ट हो उठी! उस हँसी को लौटा पाने की आशा से उसी दम अनुतप्त स्वर में मैंने कहा—लक्ष्मी, तुमसे तो कुछ भी छिपाया हुआ नहीं है; सभी तो जानती हो। तुम न आती तो मुझे उसी धूल-बालू के ऊपर पड़े पड़े मरना होता, कोई उतनी दूर जाकर एक बार अस्पताल में भेजने तक की चेष्टा न करता! वह जो तुमने चिट्ठी में लिखा था कि सुख के दिन न सही, दुःख के दिन अवश्य मैं तुम्हें याद करूँ, सो ज़िन्दगी अभी बाक़ी थी, इसलिए उस समय तुम्हारी यह बात याद पड़ गई और यह इस समय मुझे अच्छी तरह अनुभव हो रहा है।

पियारी—हो रहा है ?

मैं—निश्चय।

पियारी—तो तुम यह मानते हो कि मेरे ही कारण तुम्हारे प्राण बचे हैं ?

मैं—हा, इसमें मुझे कुछ सन्देह नहीं।

पियारी—तो फिर मैं इन प्राणों पर दावा कर सकती हूँ?

मैं—हां, कर सकती हो। किन्तु मेरे प्राण इतने तुच्छ हैं कि उन पर तुम्हें लोभ होना ही उचित नहीं।

पियारी ने इतनी देर बाद कुछ हँस कर कहा—ग़नीमत है, इतने दिनों बाद तुमने अपने प्राणों का मूल्य समझा तो सही।

किन्तु इसके बाद ही गम्भीर होकर बोली—दिल्लगी की बात नहीं, तुम्हारी तबीयत तो अब एक तरह से अच्छी हो गई है, अब जाने का किस दिन इरादा है ?

उसके प्रश्न का रहस्य ठीक समझ में न आया। मैंने भी गम्भीर होकर कहा—इस समय तो कहीं जाने की मुझे कुछ जल्दी नहीं है। इसी से और भी कुछ दिन यहां रहने का विचार कर रहा हूँ।

पियारी ने कहा—लेकिन मेरा लड़का आज-कल बाँकीपुर से अक्सर आया जाया करता है। अधिक दिन ठहरने से वह कुछ ख़याल कर सकता है।

मैंने कहा—ख़याल करेगा तो क्या होगा। तुम्हे कुछ उसे डर कर तो चलना होता नहीं। ऐसा आराम छोड़ कर मैं शीघ्र कहीं यहां से नहीं हिलता।

पियारी ने विषण्ण मुख से कहा—यह भी कहीं हो सकता है!

यह कह कर वह एकाएक उठ कर चली गई।

दूसरे दिन तीसरे पहर अपने कमरे के पश्चिम ओर के बरामदे में एक आरामकुर्सी पर लेटा हुआ मैं सूर्यास्त का दृश्य देख रहा था। इतने मे बंकु आकर उपस्थित हुआ।

इतने दिन तक उससे अच्छी तरह बात-चीत करने का सुयोग नहीं उपस्थित हुआ था। एक कुर्सी पर बैठने का इशारा करके मैंने कहा—कहो बंकु, क्या पढ़ते हो तुम?

लड़का बहुत ही सीधा-सादा भला आदमी था। उसने कहा—गत वर्ष मैंने एंट्रेंस पास किया है।

मैं—तो अब बाँकीपुर-कौलेज मे ही पढ़ते हो न?

वह—जी हां।

मैं—तुम के भाई-बहन हो?

वह—भाई और कोई नहीं है; चार बहनें हैं।

मैं—उनका ब्याह हो गया?

वह—जी हाँ; मा ने ही उनका ब्याह किया है।

मैं—तुम्हारी अपनी सगी मा ज़िंदा हैं?

वह—जी हां, वह गांव पर घर में ही है।

मैं—तुम्हारी ये मा कभी गांव गई हैं?

वह—अनेक बार। अभी पांच-छः महीने हुए, वहीं से आई है।

मैं—इनके जाने आने से देश में कुछ गड़बड़ नहीं होती?

बंकु कुछ देर तक चुप रहने के बाद बोला—होती है तो उससे क्या। हम लोगों को गांव के लोगों ने अलग कर रक्खा है, इसके लिए मैं अपनी मा को तो नहीं छोड़ सकता! ऐसी मा कितने आदमियों को नसीब है।

मुँह तक आया कि पूछूँ, मा पर तुम्हें इतनी भक्ति कहाँ से आई? लेकिन इस प्रश्न को मैं दबा गया।

बकु कहने लगा—अच्छा आप ही कहिए, गाने-बजाने मे क्या दोष है? मेरी मा तो केवल यही काम करती है। न पराई निंदा करती है, न पराई चर्चा। बल्कि गांव मे जो हमारे परम शत्रु हैं, उन्हीं के ८-१० लड़कों की पढ़ाई-लिखाई का ख़र्च देती हैं। सर्दियों मे कितने ही लोगों को कपड़े देती हैं, कंबल देती है। यह क्या बुरा काम करती है?

मैंने कहा—ना, ये तो सब बहुत अच्छे काम हैं।

बंकु ने उत्साहित होकर कहना शुरू किया—तो फिर आप ही बतलाइए, हमारे गांव के समान पाजी गांव और कोई कहीं है? यह देखिए न, उस साल ईंटें पकवा कर हमारा पक्का मकान गांव मे बना तो गाँववालों को पानी की बड़ी तकलीफ़ देख कर मा ने मेरी मा से कहा—दीदी, और भी कुछ रुपये ख़र्च करके उसी भट्टे की जगह एक तालाब बनवा दूँ? तीन चार हज़ार रुपये ख़र्च करके तालाब खनवाया और घाट बँधवा दिया। लेकिन गांव के लोगों ने उसकी प्रतिष्ठा मा को न करने दी। ऐसा बढ़िया पानी—लेकिन कोई पियेगा नहीं, छुएगा नहीं, ऐसे बदज़ात लोग है। केवल इसी डाह के मारे लोग मरे जाते है कि हमारा पक्का मकान क्यों हो गया—समझे आप?

मैंने विस्मित होकर कहा—कहते क्या हो जी! दारुण जल-कष्ट भोग करेंगे लेकिन उस तालाब के जल को काम में न लावेंगे?

बंकु ने तनिक हँस कर कहा—वही तो करते थे। लेकिन यह कहीं अधिक दिन चल सकता था? पहले साल डर के मारे किसी ने उसका जल नहीं छुआ; किन्तु अब छोटी जाति के सभी लोग लेते है—पीते है; ब्राह्मण, कायस्थ वग़ैरह भी वैशाख-ज्येष्ठ मे लुक-छिप कर ले जाते हैं। लेकिन फिर भी मा को तालाब की प्रतिष्ठा नहीं करने देते। यह क्या मा को कुछ कम दुःख है!

मैंने कहा—अपनी नाक कटा कर पराया असगुन करने की जो एक कहावत सुनी जाती है, यह वही है।

बंकु ज़ोर देकर कह उठा—ठीक आपने कहा! ऐसे गांव मे सबसे अलग, समाज-परित्यक्त होकर रहना भी शाप मे वर के समान है। आपकी क्या राय है?

इसके उत्तर में मैंने केवल हँस कर गरदन हिला दी। हाँ या ना कुछ स्पष्ट करके नहीं कहा। किन्तु इससे बंकु का जोश कुछ कम नहीं पड़ा। मैंने देखा, लड़का विमाता को सचमुच प्यार करता है। अनुकूल श्रोता पाकर देखते ही देखते भक्ति के आवेग से वह मस्त हो उठा और अपनी सौतेली मा के निरन्तर स्तुतिवाद और प्रशंसा से उसने मुझे प्रायः व्याकुल कर दिया।

अचानक एक बार उसे होश हुआ कि इतनी देर हुई, पर मैंने उसकी एक बात का भी समर्थन नहीं किया, केवल सुनता गया हूँ। तब उसने अप्रतिभ होकर उस प्रसंग को दबा देने के लिए प्रश्न किया—अभी आप और कुछ दिन यहाँ रहेंगे न?

मैंने हँसकर कहा—ना, कल सबेरे ही जानेवाला हूँ।

बंकु ने कहा—कल ही?

मैं—हाँ, कल ही।

बंकु—लेकिन आपका शरीर तो अभी सबल नहीं हुआ। आप एक-दम अपने को चङ्गा हो गया समझते हैं क्या?

मैंने कहा—सबेरे तक तो यही जान पड़ता था, लेकिन अब नहीं जान पड़ता। आज दोपहर से सिर दर्द कर रहा है।

बंकु ने कहा—तो फिर क्यों इतनी जल्दी जाइएगा? यहाँ तो आपको कुछ कष्ट नहीं है—

यह कह कर वह लड़का चिन्तित मुख से मेरी ओर ताकने लगा।

मैं भी कुछ देर तक चुपचाप उसकी ओर देखते रह कर उसके मन के भीतर की सच्ची बात जानने की चेष्टा करता रहा। जितना मैं अनुभव कर सका, उससे यह मालूम हुआ कि वह सत्य को छिपाने का कोई प्रयास नहीं कर रहा है। मगर हाँ, लड़का लज्जित अवश्य हुआ, और उस लज्जा को ढकने की भी उसने चेष्टा की। बोला—आप अभी न जाइएगा।

मैंने कहा—क्यों?

बंकु—आपके रहने से मा बड़ी प्रसन्न रहती है।

यह कहकर ही मुँह लाल करके लड़का चटपट वहा से उठ गया।

मैंने देखा, लड़का बहुत सरल बेशक है, लेकिन मूर्ख नहीं है। पियारी ने जो कहा था कि और अधिक दिन रहने से मेरा लड़का क्या ख़याल करेगा, इसके साथ लड़के के व्यवहार की आलोचना करके पियारी के पूर्वोक्त कथन का अर्थ जैसे मेरी समझ में आगया। मातृत्व का यह एक चित्र आज दृष्टिगत होने से जैसे एक नया ज्ञान मैंने प्राप्त किया। पियारी के हृदय की एकाग्र वासना का अनुमान करना मेरे लिए कठिन नहीं है, और वह संसार में सब ओर से सभी प्रकार से स्वाधीन है, यह कल्पना करना भी शायद पाप नहीं। तथापि उसने जब एक ग़रीब लड़के की माता के पद को अपनी इच्छा से स्वीकार कर लिया, वैसे ही अपने दोनों पैरों में लोहे की जंज़ीर के सैकड़ों फंदे डाल लिये। आप वह चाहे जो हो, किन्तु उसे अपने तईं माता का सम्मान तो देना ही होगा! उसकी असंयत कामना अथवा उच्छृङ्खल प्रवृत्ति उसे चाहे जितना नीचे गिराना चाहें, किन्तु यह बात तो वह भूल नहीं सकती कि वह एक आदमी की मा है! और उस सन्तान की भक्ति से झुकी हुई दृष्टि के सामने उसकी मा को तो वह अपमानित नहीं कर सकती! उसके विह्वल यौवन के लालसा-मत्त वसंत-दिवस में किसने उसका नाम पियारी रक्खा था, यह मैं नहीं जानता; किन्तु यह नाम तक वह अपने लड़के से छिपाना चाहती है, यह बात आज मुझे याद हो गई!

आँखों के सामने सूर्य अस्त हो गये। उसी ओर ताकते-ताकते मेरा सारा अन्तःकरण जैसे गल कर लाल हो उठा। मन में कहा—अब तो मैं राजलक्ष्मी को छोटी दृष्टि से देख नहीं सकता। हमारा बाहरी व्यवहार चाहे जितने बड़े स्वातन्त्र्य की रक्षा करके इतने दिन चलता क्यों न रहा हो, वह स्नेह और माधुर्य चाहे जितना ढाल क्यों न दे, इसमें तो कुछ भी संशय नहीं कि दोनों की कामना एकत्र सम्मिलित होने के लिए हर घड़ी दुर्निवार वेग से दौड़ रही थी। किन्तु आज मैंने देखा, यह असंभव है। एकाएक 'बंकु की मा' अभ्रभेदी हिमालय की तरह राह रोक कर राजलक्ष्मी के और मेरे बीच में आ खड़ी हुई है।

मन ही मन मैंने कहा—कल सबेरे ही तो मैं यहां से जा रहा हूँ। किन्तु हे ईश्वर, उस समय लाभ-हानि

का हिसाब करके कुछ बचा रखने की चेष्टा मैं न करूँ। मेरा यह जाना ही अन्तिम बार का जाना हो। देखने न पाने का बहाना करके एक अति सूक्ष्म वासना का बन्धन न छोड़ जाऊँ, जिसका सूत्र पकड़ कर और एक दिन आकर उपस्थित होना पड़े।

अन्यमनस्क होकर, तब से उसी एक जगह बैठा हुआ था। संध्या के समय धूप सुलगा कर उसे हाथ में लिये राजलक्ष्मी उसी बरामदे से होकर अन्य कोठरी में जा रही थी। एकाएक ठिठक कर बोली—सिर दर्द कर रहा है। ओस में क्यों बैठे हो? भीतर जाओ।

मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा—तुमने भी अवाक् कर दिया लक्ष्मी! ओस भला यहाँ कहाँ?

राजलक्ष्मी ने कहा—ओस न सही, ठंडी हवा तो चल रही है। वही क्या कुछ अच्छी है?

मैंने कहा—ना, यह भी तुम्हारी भूल है। इस समय ठंडी या गरम कोई भी हवा नहीं चल रही है।

राजलक्ष्मी ने कहा—मेरी सब भूल है; लेकिन तुम्हारे सिर का दर्द तो भूल नहीं है—वह तो सच है? भीतर जाकर ज़रा लेट न रहो। रतना क्या कर रहा है? वह क्या तनिक ओडिकलोन भी सिर में नहीं लगा सकता? इस घर के नौकरों के समान बाबू-नौकर और दुनिया में कहीं न होंगे।

इतना कहकर राजलक्ष्मी अपने काम से चली गई।

रतन जब व्यस्त होकर ओडिकलोन और पानी लेकर हाज़िर हुआ और अपनी भूल के लिए बार-बार पश्चात्ताप प्रकट करने लगा, तब मैं अपनी हँसी को किसी तरह रोक नहीं सका।

रतन ने साहस पाकर धीरे धीरे कहा—इसमें मेरा दोष नहीं है, यह क्या मैं जानता नहीं बाबूजी? लेकिन माजी से तो कह नहीं सकता कि तुमको जब ग़ुस्सा चढ़ता है तो अकारण ही घर भर के दोष देखने लगती हो!

कौतूहलवश मैं प्रश्न कर बैठा—क्यों, ग़ुस्सा क्यों हो?

रतन ने कहा—यह क्या कोई भला जान सकता है? बड़े आदमियों का ग़ुस्सा यों ही होता है और यों ही चला जाता है। ग़ुस्से के वक़्त मुँह चुराये न रहें तो नौकरों की जान पर बनती है!

दरवाज़े के पास से एकाएक प्रश्न हुआ—तब क्या मैं तुम लोगों का सिर काट लेती हूँ रतन? और बड़े आदमी के घर में अगर इतनी मुसीबत है तो फिर और कहीं क्यों नहीं चला जाता?

मालिक के इस प्रश्न से रतन कुण्ठित होकर सिर झुकाये चुपचाप बैठा रहा।

राजलक्ष्मी ने कहा—तेरा काम क्या है? इनके सिर में दर्द है, यह बंकू के मुँह से सुनकर तुझको जताया इसी से अब रात के आठ बजे आकर मेरी बड़ाई कर रहा है! कल से और कहीं नौकरी तलाश कर लेना, यहां तेरे लिए जगह नहीं है—समझा?

राजलक्ष्मी के चले जाने पर रतन मेरे सिर में ओडिक-लोन-जल डालकर सिर पर पङ्खा झलने लगा।

राजलक्ष्मी ने फ़ौरन् लौट आकर पूछा—कल सबेरे ही क्या घर चले जाओगे?

मेरा जाने का इरादा अवश्य था; लेकिन घर लौटने का विचार न था। इसी से प्रश्न का उत्तर दूसरी तरह से घुमाकर दिया—हाँ, कल सबेरे ही जाऊँगा।

राजलक्ष्मी—कल सबेरे कै बजे की गाड़ी से जाओगे?

मैं—सबेरे ही चल दूँगा—चाहे जो गाड़ी मिल जाय।

राजल०—अच्छा! एक टाइम-टेबिल के लिए न हो, किसी को जाकर स्टेशन भेज दूँ।

यह कहती हुई राजलक्ष्मी चली गई।

उसके बाद यथासमय रतन काम करके चला गया। नीचे नौकरों का बोलना-चालना बन्द हो गया। समझा, सभी अब सोने चले गये।

मुझे लेकिन किसी तरह नींद नहीं आई। घूम-फिर कर केवल यही ख़याल आने लगा कि पियारी ग़ुस्सा क्यों हुई? ऐसा मैंने क्या किया, जिसके कारण वह मेरे चले जाने के लिए इतनी अधीर हो उठी? रतन ने कहा था कि बड़े आदमियों को ग़ुस्सा यों ही अकारण हो आता है। यह कथन और किसी बड़े आदमी पर लागू होता है या नहीं, मैं नहीं जानता; किन्तु पियारी के बारे मेंयह

बात किसी तरह नहीं कही जा सकती। इसका परिचय मैं अनेक बार पा चुका हूँ कि वह अत्यन्त संयमी और बुद्धिमती है। इधर मुझमें भी बुद्धि की मात्रा चाहे जितनी कम हो, लेकिन प्रवृत्ति के सम्बन्ध में संयम पियारी की अपेक्षा कुछ कम नहीं है—शायद किसी से भी कम नहीं है। हृदय के भीतर चाहे जो हो, मुँह से उसे बाहर निकालना अत्यन्त अधिक विकार की अवस्था में भी मैं अपने लिए सम्भव नहीं समझता। व्यवहार में भी किसी दिन कुछ मैंने ऐसी बात प्रकट की हो, यह भी स्मरण नहीं आता। उसके अपने किसी कार्य के द्वारा अगर लज्जा का कोई कारण सङ्घटित हुआ हो तो हुआ हो, यह दूसरी बात है; लेकिन मेरे ऊपर उसके क्रोध अथवा खीझ का कुछ भी कारण नहीं है। अतएव बिदा होने के समय उसका यह उदासीन-भाव जो मुझे व्यथा पहुँचाने लगा सो कुछ बिलकुल ही तुच्छ बात न थी।

बहुत रात बीतने पर अचानक एक बार मेरी नींद उचट गई। आँखें खोलकर देखा, राजलक्ष्मी ने चुपचाप भीतर प्रवेश किया। टेबिल के ऊपर से लालटैन हटाकर उधर के दरवाज़े के कोने में बिलकुल आड़ में रख दी।

सामने की खिड़की खुली हुई थी। उसे बन्द करके मेरे पलँग के पास आकर वह दम भर खड़ी खड़ी जैसे कुछ सोचती रही। उसके बाद मसहरी के भीतर हाथ डाल कर पहले मेरे कपार की गरमी देखी, फिर कुर्ते के बटन खोलकर छाती की हरारत का बारबार अन्दाज़ करने लगी।

सन्नाटे के समय एकान्त मे आनेवाली के इस गुप्त कर-स्पर्श से पहले मैं कुण्ठित और लज्जित हो उठा; किन्तु वैसे ही ख़याल आया कि मेरी बेहोशी की हालत में सेवा करके जिसने फिर से मुझे सचेत किया है, उसके निकट मेरे लज्जित होने का कोई कारण नहीं!

इसके बाद उसने बोताम बन्द कर दिये; ओढ़ना जो हटा दिया था उसे खिसका कर गले तक ढक दिया। अन्त को मसहरी के किनारों को अच्छी तरह ठीक करके अत्यन्त सावधानी के साथ किवाड़े बन्द करने के बाद वह वहाँ से चली गई।

मैंने सब देखा, सब समझा। जो गुप्त रूप से आई थी उसे उसी तरह चले जाने दिया। किन्तु इस सन्नाटे की आधी रात में वह अपना क्या और कितना मेरे पास छोड़ गई, सो वह ख़ुद कुछ नहीं जान सकी। सबेरे जब नींद खुली तब मुझे बुख़ार चढ़ा हुआ था। आँखों में जलन हो रही थी; मुँह ख़राब कड़वा हो रहा था; सिर इतना भारी था कि पलँग छोड़कर उठने में भी क्लेश मालूम पड़ने लगा।

तो भी मुझे जाना ही होगा। इस घर में अब एक घड़ी रहने में भी मुझे अपने ऊपर विश्वास नहीं, वह विश्वास न जाने कब धोका दे जाय! अपने लिए भी उतना खटका नहीं था। मुझे राजलक्ष्मी ही के लिए राजलक्ष्मी को छोड़ जाना होगा, इसमें रत्ती भर भी अगर मगर करने से काम नहीं चलेगा।

मन ही मन सोचकर देखा, राजलक्ष्मी ने अपने विगत जीवन की कालिमा को बहुत कुछ धोकर साफ़ कर डाला है। आज उसके चारों ओर लड़के-लड़कियाँ उसे मा कहकर घेरे हुए हैं। इस प्रीति और भक्ति के आनन्द-धाम से उसे अपमान के साथ खींच कर बाहर निकाल लाऊँ, इतना बड़ा नीच क्या मैं हो सकता हूँ? इतने बड़े प्रेम की यह सार्थकता क्या अन्त को मेरे जीवन के अध्याय में ही चिर काल के लिए लिखी रह सकती है? कभी नहीं।

इतने में पियारी ने भीतर प्रवेश करके कहा—अब शरीर कैसा जान पड़ता है?

मैंने कहा—वैसा ख़राब नहीं है! जा सकूँगा।

पियारी ने कहा—आज न जाने से क्या काम न चलेगा?

मैंने कहा—हाँ, आज जाना ही चाहिए।

पियारी—तो फिर घर पहुँचते ही कुशल-समाचार भेजना। नहीं तो हम लोग बड़ी चिन्ता में रहेंगे।

उसके इस अटल धैर्य को देखकर मैं मुग्ध होगया। उसी दम समाचार देने के लिए सम्मत होकर बोला—अच्छा, मैं घर ही जाऊँगा और जाते ही तुम्हें ख़बर दूँगा।

पियारी ने कहा—हां, देना। मैं भी चिट्ठी लिख कर तुमसे दो एक बातें पूछूँगी।

बाहर पालकी पर जब मै सवार होने जा रहा था तब देखा, दोतल्ले के बरामदे पर पियारी चुपचाप खड़ी

हुई है। उसके हृदय के भीतर क्या हो रहा था, कैसी हलचल मची हुई थी, इसका पता उसके चेहरे से कुछ भी न लगता था।

मुझे अन्नदा दीदी का स्मरण हो आया! बहुत दिन पहले के एक अन्तिम दिन वे भी ठीक इसी तरह गम्भीर, इसी तरह स्तब्ध होकर खड़ी हुई थीं। उनके उन दोनों करुण नेत्रों की दृष्टि को मैं आज भी नहीं भूला, किन्तु उस दृष्टि में उस समय निकटवर्ती बिदाई की कितनी बड़ी व्यथा भरी हुई थी, यह मैं उस अवस्था में नहीं समझ सकता था—न समझ सका था! क्या जाने, आज भी वैसा ही कुछ इन दोनों घनी काली आंखों के भी भीतर भरा हुआ है या नहीं!

सांस छोड़कर पालकी पर सवार हो गया। देखा, बड़ा प्रेम केवल पास ही नहीं खींचता, वह दूर भी ठेल देता है। छोटे-मोटे प्रेम की मजाल भी न थी कि वह इस सुख-ऐश्वर्य-परिपूर्ण स्नेह के स्वर्ग से मङ्गल के लिए, कल्याण के लिए, एक पग भी मुझे हिला सकता।

कहार पालकी लेकर तेज़ी के साथ स्टेशन की ओर रवाना हो गये। मैं मन ही मन बारम्बार कहने लगा—लक्ष्मी, दुःख न करना, यह अच्छा ही हुआ कि मैं चला जा रहा हूँ। तुम्हारा ऋण इस जीवन में चुकाने की शक्ति मुझमें नहीं है। किन्तु जो जीवन तुमने दिया है उस जीवन का अपव्यवहार करके फिर तुम्हारा अपमान न करूँ—इस अपने इरादे को, दूर रखकर भी, मैं सदा अक्षुण्ण रक्खूँगा।
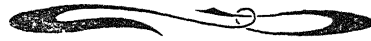
विदेश
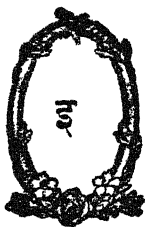
(१) इटली और बालकन प्रायद्वीप

टली और बालकन प्रायद्वीप का प्रश्न इतना रोचक है कि योरपीय राजनीति की अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण बातों को छोड़ कर पहले हम इसी पर विचार करेंगे। बालकन-प्रायद्वीप कई राष्ट्रों का एक विशाल भू-भाग है। इन राष्ट्रों में इतनी शक्ति नहीं है कि बिना किसी बड़े राष्ट्र की सहायता के ये अपने सम्पूर्ण अधिकारों की रक्षा कर सकें। इसलिए बालकन-प्रायद्वीप का प्रत्येक राज्य सदैव किसी न किसी बड़े राष्ट्र की मित्रता की तलाश में रहता है। इन राज्यों में आपस में इतनी ज़बर्दस्त लड़ाई रहती है कि किसी भी बड़े मित्र को इनकी मित्रता निबाहने के लिए दूसरे राष्ट्र के वैसे ही बड़े मित्र का दुश्मन बनना पड़ता है, उस समय भयङ्कर राजनैतिक स्थिति खड़ी हो जाती है। बालकन-प्रायद्वीप के राज्यों की अपनी भिन्न-भिन्न समस्यायें हैं। रूमानिया मे स्लॉव-जाति का अल्पमत है। रूमानिया-सरकार किस प्रकार स्लॉव जाति के साथ कुटिल व्यवहार करती है, यह 'सरस्वती' के पाठक जानते हैं। पोलेंड और लिथुआनिया का एक नगर के पीछे झगड़ा बड़ा पुराना है। यह भी 'सरस्वती' के पाठक जानते हैं। यूगोस्लोवाकिया सुप्रबन्ध के कारण बड़ी उन्नति कर गया है—पर वह इटली-सरकार की स्लॉव-जनता के प्रति कु-व्यवहार से परम असन्तुष्ट है। आस्ट्रिया-हंगरी-जर्मनी तीनों साफ़ तौर से इटली-सरकार के ख़िलाफ़ हैं क्योंकि दक्षिण टिराले में जर्मन अल्प संख्या के साथ इटली-सरकार बड़ा घृणित व्यवहार कर रही है—यह भी 'सरस्वती' के पाठक जानते हैं। यूनान के सामने सबसे कठिन समस्या अर्थ की है। तुर्किस्तान यद्यपि सदा से यूनान से लड़ता आया है, परन्तु अब वह लड़ाइयों से ऊब कर यूनान के साथ मित्रता का व्यवहार करना चाहता है—ऐसी अवस्था में बालकन-प्रायद्वीप के राज्यों की मनोवृत्ति इतनी विचलित तथा स्वार्थ-पूर्ण हो रही है कि अपनी रक्षा के लिए एक मित्र खोजते रहना उनके लिए अनिवार्य है। यदि कोई राष्ट्र, जैसे पोलेंड, रूस-जैसे की शरण लेगा तो उसे रूस की तरह योरप के व्यापक बहिष्कार का सामना करना पड़ेगा। यदि यूनान की तरह ब्रिटेन से मित्रता रक्खेगा तो ब्रिटेन के प्रति योरप में बढ़ते हुए अविश्वास के कारण तथा तुर्किस्तान और ब्रिटेन की एक-दम न पटने के कारण उसे तुर्की-मित्रता छोड़ना और रूस का शत्रु बनना पड़ेगा। यदि फ़्रांस की शरण ली जाती है तो इटली का विरोध-वैर बड़ा भयानक हो जायगा, क्योंकि यह दिन-दिन स्पष्ट होता जा रहा है कि इटली-फ़्रांस की न पटेगी।

रह गया इटली। इटली से अभी तक रूस को छोड़ कर किसी से खुल्लमखुल्ला विरोध नहीं है। इटली आज-कल की एक समुन्नत शक्ति है। इसके सिवा प्रकटरूप से शस्त्रीकरण के पक्ष में घोषणा करने के कारण अन्य राष्ट्र उससे दबते भी हैं। मुसोलिनी ने अपने यहाँ नवीन शासन-विधान बना कर प्रजा की राजनैतिक शक्ति को दबा कर

अपनी शक्ति यहां तक बढ़ा ली है कि उससे भय अपने आपही उत्पन्न होता है। इसी लिए बालकन-प्रायद्वीप के राज्य इटली की ओर अधिक खिँच रहे हैं। इस विषय में फ्रांसीसी पत्रों का कहना है कि 'इटली एक भीषण षड्यन्त्र रच रहा है तथा १९२० से फ्रांस ने बालकन-प्रायद्वीप पर अपना जो प्रभाव बढ़ाना शुरू कर दिया उसे नष्ट कर डालना चाहता है।' अवस्था भी ऐसी है। पेरिस-स्थित 'मैंचेस्टर गार्जियन' पत्र के विशेष संवाददाता का कहना है—'इधर एक मास से रोम में बालकन-राज्यों के परराष्ट्र-सचिवों का ताँता-सा लग गया है। न जाने किस आवश्यक विषय पर विचार करने के लिए वे चले आ रहे हैं।' सबसे पहले मुसोलिनी साहब से रूमानिया के, परराष्ट्र-सचिव मिले। उसके बाद यूनान के, फिर जर्मनी के, फिर हंगरी के और तदुपरान्त तुर्किस्तान के परराष्ट्र-सचिव ने भेंट की। इटालियन प्रधान-मन्त्री का निजी पत्र गेरारचिया यूनानी तथा तुर्की परराष्ट्र-सचिवों के साथ की मुलाकात का सरकारी तौर पर हाल देते हुए लिखता है कि "विक्टोरियो वेनेटो ने, जिसने महासमर के अन्त में आस्ट्रिया की सेना को पूरी तरह रौंद डाला था, जिस समय अपनी प्रख्यात विजय प्राप्त की थी उसके बाद से ही डेन्यूब नदी के तट-वर्ती राज्यों की सरकारी नीति पर इटली का व्यापक प्रभाव हो गया है और वर्त्तमान अवस्थायें प्रमाणित कर देती हैं कि अब इटली भू-मध्य-सागर में सबसे बड़ी शक्ति है।"

आगे चल कर वह पत्र लिखता है—"इटली, यूनान और तुर्की के इस मित्रता-प्रदर्शन को सहानुभूति-पूर्ण दृष्टि से देखता है—केवल इसलिए नहीं कि वे भी भूमध्य-सागरस्थ शक्तियाँ हैं, किन्तु इसलिए भी कि वहाँ इटली का भी स्वार्थ है— ...बहुत शीघ्र ही एजियन सागर के 'लोकार्नो' (Aeagean Sea Locarno) (जो महत्त्वपूर्ण सन्धि तुर्की-यूनानी शान्ति-स्थापन की जड़ कही जाती है) का निर्माण होगा, जिस 'लोकार्नो' का शान्ति की दृष्टि से अधिक महत्त्व होगा और जो बिना ब्रियांद (Briand-Foreign Minister, France) बेनेस (Benes) या मैरिंकोविश के हस्तक्षेप के हो जायगा।"

इटली के प्रधान मन्त्री की इस अति महत्त्वपूर्ण भविष्य-वाणी का बड़ा गूढ़ अर्थ है। इसका यही साफ़ अर्थ है कि अब फ्रांस को बालकन-प्रायद्वीप में हस्तक्षेप न करना चाहिए। जिस प्रकार तुर्की क्रान्ति के बाद लोकार्नो सन्धि ने शान्ति स्थापित की थी उसी प्रकार एक नवीन 'लोकार्नो' फिर जन्म लेगी। यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। अतएव इस पर अलग अलग विचार किया जाता है—

(१) **यूनान**—यूनानी मन्त्रिमण्डल इधर अच्छे दिन नहीं देख रहा था। जैमिस मन्त्रिमण्डल अपनी आर्थिक नीति के कारण ही बदनाम था। अर्थ-सचिव कैफैंडरिस ने कोई भी ऐसा उपाय न किया जिससे यूनान की आर्थिक अवस्था सुधरती तथा ऋण चुकता करने की कोई राह निकलती। अन्त में इन्होंने एक ऐसा कार्य किया जिसे स्वयं उनके प्रधान-मन्त्री ने भी उचित न समझा। बिना यूनानी महासभा से सलाह लिये, उन्होंने 'बैंक आव् ग्रीस' को अपने हिस्से निकालने की आज्ञा दे दी! दूसरा कार्य यह किया कि फ्रांस का जो क़र्ज़ यूनान पर था तथा जो काग़ज़ और नोटों के रूप में लिया गया था, उसे उन्होंने उस क़र्ज़ में मुजरा कर लिया जो यूनान का फ्रांस के ऊपर था और जिसमें सोना दिया गया था। अर्थात् फ्रांस के काग़ज़ों के रुपयों के बदले सोना दिया गया। मन्त्रि-मण्डल में विरोध के कारण श्री कैफेंडरिस ने त्याग-पत्र दे दिया। उनके हटते ही मन्त्रिमण्डल की फूट प्रकट हो गई। परिणामतः मण्डल का पतन हो गया और उसके सर्व-प्रबल प्रभावशाली विरोधी, लिबरल-दल के प्रधान श्री वेनेजुएला प्रधान मन्त्री और श्री अलेक्ज़ेंडर कारपैना परराष्ट्र-सचिव बने। इस परिवर्तन से यह भय था कि कहीं विदेशी नीति-मात्र में ही परिवर्तन न हो जाय। परन्तु जब अनुदार-दल तुर्किस्तान से मित्रता करना चाहता था तब नवीन उदार-दल से अपने कार्य के समर्थन किये जाने की अवश्य आशा थी। भूत-पूर्व जैमिस-मन्त्रिमण्डल के परराष्ट्र-सचिव श्री मिकला-कोपुलस ने इटली-तुर्की-यूनान के सम्बन्ध में जो कहा था वह एथेन्स के एलेथेरोनविमा नामक पत्र में प्रकाशित है। उससे यह स्पष्टरूप से प्रकट होता है कि यूनान, तुर्किस्तान तथा इटली के बीच कोई समझौता हो

गया है। परन्तु कई आर्थिक स्वार्थों पर क्षति पहुँचने के कारण तुर्किस्तान ने उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं किया है, पर शीघ्र ही समझौता हो जाने की पूरी आशा है, जिसे यूनान-सरकार सहर्ष स्वीकार करने को तैयार है।

इसके सिवा वर्तमान प्रधान-मन्त्री वेनेजुएला का मुख-पत्र पैट्रिस स्पष्ट लिखता है कि यद्यपि कई बार यूनान को इटली के कारण दुःख उठाना पड़ा है, तो भी कोरिन्थ के भीषण भूकम्प के समय सहायता देकर उसने यूनान की सहानुभूति प्राप्त करली है, अतएव प्रधान-मन्त्री इटली-यूनान की सन्धि का स्वागत करेंगे। परन्तु यह पत्र यह भी लिखता है कि इटली यह समझने में भूल न करेगा कि यूनान-जैसे छोटे राज्य से 'सन्धि' कर वह उसे अलबानिया (Albania) की तरह अपना खिलौना बनाकर रक्खेगा, क्योंकि छोटे-बड़े की सन्धि एक असम्भव कल्पना है। यूनान इटली से मिलने में एक और बाधा देखता है। इटली का जूगोस्लाव से पुराना झगड़ा चला आ रहा है। यूनान तथा जूगोस्लाव में काफ़ी प्रेम-भाव है। अतएव भय है कि कहीं इटली जूगोस्लाव के विरोध में यूनान को भी न सानले और यह बात यूनान चाहता नहीं। साथ ही यह भी भय है कि कहीं इटली की मित्रता योरप की अन्य महाशक्तियों से विरोध न उत्पन्न कराये। अतएव यूनान इटली से उसी समय मित्रता करेगा जब कोई दूसरा उदीयमान राज्य उसका साथ देगा। इसी लिए तुर्किस्तान से सन्धि करना उसे अभीष्ट है। इटली भी इसी कारण दोनों को मिलाना चाहता है जिससे वे निस्संकोच हो उससे मिलें।

(२) यूनान-तुर्की-मैत्री—यदि यूनानी-तुर्की-मैत्री हो जाय तो यह बीसवीं सदी की योरप की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाओं में से एक होगी। जब से तुर्की सचिव तौफ़ीक रशीद बिमिलन में मुसोलिनी से मिल आये हैं, तुर्की समाचार-पत्र इस मित्रता के सम्बन्ध में नाना प्रकार के विचार प्रकट कर रहे हैं। कुस्तुन्तुनिया के 'कारगुयेज़' पत्र ने एक व्यंग्य चित्र प्रकाशित किया था, जिसमें यह दिखलाया गया है, यूनान तथा तुर्किस्तान के परराष्ट्र-सचिवों को इटली-रूपी डोरा एक साथ बांध रहा है। अर्थात् इटली इनमें मेल कराना चाहता है। कुस्तुन्तुनिया का ही 'ज़म्हूरियत' पत्र स्पष्ट शब्दों में इटली को सावधान करता है कि वह इटली के साथ मित्रता के पक्ष में है, पर यदि फ़ैसिस्ट दल तुर्किस्तान से किसी प्रकार का स्वार्थ साधना चाहें तो आशा न रक्खें। इस पत्र का यूनान से कहना है कि तुम किसी बड़े राष्ट्र से सन्धि करके हमें डरा नहीं सकते। यदि हमसे सन्धि चाहते हो तो अपने वादे को पूरा करो। वहीं का 'मिलियत' पत्र इस सन्धि की सम्भावना का स्वागत करता है। यदि तुर्किस्तान इटली से शान के साथ मित्रता करना चाहता है तो इसका कारण उसकी रूस के साथ सन्धि है।

(३) रूमानिया—कृषकों को भड़काकर उनमें विप्लव कराकर रूमानिया के ब्रेटिआनो-शासन को उलट देने की चेष्टा राजकुमार कैरोल कर रहे थे। इसी लिए वे इँग्लेंड गये थे कि वहीं से अपने षड्यन्त्र का सञ्चालन करें। कृषकों का एक बड़ा विप्लव हुआ भी, वह दबा दिया गया। रूमानिया-सरकार के दुश्मन को इँग्लेंड अपने यहाँ आश्रय नहीं देना चाहता था, इसी कारण सारडिफ़ के 'ईवनिंग एक्सप्रेस' के कथनानुसार वे वहाँ से चले जाने के लिए बाध्य किये गये। रूमानिया-सरकार अब निश्चिन्त है। पूँजीवाद के विरुद्ध होने के कारण तथा जात-पाँत एक होने के कारण इटली से उसकी एकता की पूर्ण सम्भावना है।

(४) जुगोस्लाविया—जुलाई १९२५ में प्रधान-मन्त्री मुसोलिनी तथा जुगोस्लाव के उस समय के परराष्ट्र-सचिव श्री निनचिच के बीच नेट्टूनो की सन्धि हुई थी। इस सन्धि को इटली-सरकार ने मान लिया, परन्तु परराष्ट्र-सचिव-द्वारा स्वीकृत होते हुए भी जुगोस्लाविया की सरकार ने उसे अस्वीकार कर दिया। इसके बाद हाल में इटली ने टिराना की सन्धि की है, जिससे अलबानिया उसके अधिकार में पूरी तरह आ गया है। इससे जुगोस्लाविया बहुत रुष्ट हो गय

है। वह नेटूनो की सन्धि को नहीं स्वीकार कर रहा है और इटली उसको स्वीकार कर लेने के लिए ज़ोर दे रहा है। इन्हीं कारणों से दोनों देशों में वैर मनमुटाव है। डालमेशिया में उत्तेजित जुगोस्लाव जनता ने इटली के झण्डे को फाड़ कर कैसी बेइज़्ज़ती की थी, यह समाचार-पत्रों के पाठक जानते ही होंगे। इसके सिवा डालमेशिया में इटलीवालों पर पत्थर आदि बरसाने का जो समाचार प्रकाशित हुआ था उसी से फ़ैसिस्ट इतने उत्तेजित हो गये थे कि २८ मई सन् २८ को रोमस्थित जुगोस्लाव के दूतावास को विद्यार्थियों के आक्रमण से बचाने के लिए इटली की पुलिस को विशेष प्रबन्ध करना पड़ा था। अतएव जुगोस्लाविया तथा इटली के ऐसे बड़े विरोध में मित्रता सम्भव नहीं है। मिलन का गुयेरिन मेशिनो पत्र लिखता है कि जुगोस्लाविया की पीठ फ़्रांस ठोंक रहा है। न्यूयार्क के हेरल्ड ट्रिब्यून पत्र से भी यही पता चलता है कि फ़्रांस इस विरोध का लाभ उठाना चाहता है। २३ मई को ब्यूनोस एयरेस में इटली के दूतावास के दफ़्तर में बम फूटने से ६ आदमी मरे थे। आस्ट्रियन टिरोल में इटली के विरुद्ध घृणा दिखलाने के लिए इन्सब्रक में इटली का झण्डा फाड़कर बेइज़्ज़त किया गया। इन सब घटनाओं से बालकन-प्रायद्वीप के एक भाग में इटली के प्रति घृणा भी व्यक्त होती है। जर्मनी में सोशलिस्टों के हाथ में शासन आ गया है। वे इटली से कभी नहीं मिल सकते। फ़्रांस की पोआंकारे की सरकार इटली से मिलकर बालकन को बांट लेना नहीं पसंद करेगी, अतएव दोनों में योरप के इस प्रभावशाली भाग पर अपना अपना प्रभाव स्थापित करने की प्रति-स्पर्द्धा होगी—इसका दुःखद फल राष्ट्रपरिषद् को भोगना पड़ेगा। उसे किसी भी छोटे राष्ट्र के झगड़े में यह असमञ्जस होगा कि फ़्रांस की माने या इटली की। अस्तु, स्थिति बड़ी भयावह है। योरप की सम्पूर्ण व्याधि बालकन-प्रायद्वीप से प्रारम्भ होती है। इसी से अमेरिकन पत्र कहते हैं कि उस समय की अवस्था सोचनी चाहिए जब सदा के विरोधी यूनान और तुर्किस्तान मिल जायँगे और बालकन-जैसे झगड़ालू प्रायद्वीप का सिरताज या नेता इटली का मुसोलिनी—जैसा व्यक्ति होगा! उस समय योरप का भविष्य क्या होगा? !!

(२) मिस्र के मंत्रिमण्डल का पतन

जून के अन्तिम सप्ताह में मिस्र के मंत्रिमण्डल का पतन हो गया। जिस समय वहां के उदार-अनुदार-दलों का सम्मिलित मंत्रि-मण्डल श्री नहसपाशा के प्रधान मंत्रित्व में संगठित हुआ था, उसी समय राजनीतिज्ञों ने कह दिया था कि यह एका अधिक दिन न टिक सकेगा। पत्रों तथा भाषण-सम्बन्धी स्वतंत्रता का जो प्रस्ताव मिस्र की महासभा (वफ़्द) में स्वीकृति के लिए उपस्थित किया गया था तथा जिसके कारण इँगलेंड इतना रुष्ट हो गया था कि उसने अपना जहाज़ी बेड़ा तक मिस्र को भेज दिया था, उस समय नहसपाशा उस प्रस्ताव को वापस लेकर अँगरेज़ों की धमकी के आगे झुक गये थे। उसी समय से वहां का युवक-समुदाय इस मंत्रिमण्डल से असन्तुष्ट था। इसके बाद सम्भवतः आर्थिक नीति में मतभेद के कारण अर्थ-मंत्री महमूद पाशा (उदारदल) ने त्यागपत्र दे दिया। मंत्रिमण्डल में ही विरोध की बात फूट पड़ी। उनके बाद ही न्याय-सचिव ख़ाशिबा पाशा ने त्यागपत्र दिया। उनके बाद पबलिक-वर्क के मंत्री इब्राहीम पाशा का त्याग-पत्र आया! सम्मिलित मंत्रिमण्डल में नीति-विरोध का ही यह परिणाम था। यह विरोध उसी समय प्रकट हो गया था जब ब्रिटेन की बात नहसपाशा ने स्वीकार कर ली थी। २३ जून को ख़ाशिब पाशा ने त्यागपत्र दिया और २५ जून को ही महासभा के वफ़्द-दल ने अपनी मीटिंग की। प्रधानमंत्री नहसपाशा में विश्वास प्रकट किया तथा ख़ाशिब पाशा को दल से निकाल दिया। इसके बाद एक बड़ा सनसनीदार रहस्य पत्रों में प्रकाशित हुआ। कुछ ऐसे पत्र प्रकाशित हुए जिनसे पता चला कि सभा के अध्यक्ष विस्सा वास्सेफ़, प्रधान सचिव श्रीनहसपाशा तथा वफ़्द के एक प्रमुख डिप्टी जाफ़र फ़ख़री ने वकील की हैसियत से इँगलेंड में नज़रबन्द शाहज़ादा अहमद सैफुद्दीन के सम्बन्ध में, जो गत वर्ष वहां से भाग निकले थे, उनकी माता से यह शर्त्तनामा किया था कि यदि वे उनके पुत्र पर से नज़रबन्दी का बन्धन हटवा देंगे—स्वतन्त्र होने

की आज्ञा दिला देंगे, तो उनको १, १७,००० पौंड (मिस्री पौंड) मिलेंगे। प्रधानमंत्री का इस प्रकार का राजनैतिक शर्त्तनामा कितनी बुरी दृष्टि से देखा जायगा, यह बात स्पष्ट है। ऐसे पत्र के प्रकाशन से मिस्र में आग लग गई। विरोधी दल की शक्ति दुगुनी हो गई। यद्यपि विस्सा वासेफ़ ने घोषणा की कि पत्रों का अनुवाद भ्रमात्मक है, हमने राजनैतिक पद ग्रहण करते ही अपने मुवक्किलों से कह दिया था कि अब इधर काम न होगा, पर विरोधी यह सब स्वीकार न कर सके। मिस्र के शासक को विरोधी-दल की शक्ति देख कर यह आज्ञा निकालनी पड़ी कि सम्मिलित मंत्रिमण्डल में फूट पड़ गई है, अतः मंत्रिमण्डल भङ्ग किया जाता है। जिस समय नहस-पाशा ने यह घोषणा महासभा में सुनाई, विरोधी दल तथा एकत्र दर्शकवृन्द ने जयघोष किया। उपस्थित विद्यार्थी निकाले गये; मंत्रियों को 'विश्वासघाती' 'नीच', 'कायर' आदि कह कह चिल्लाने लगे। मंत्रिमण्डल भङ्ग होते ही विरोधी-दल के अग्रगण्य, लिबरल-दल के प्रमुख तथा मंत्रिमण्डल के अर्थ-सचिव के पद से त्यागपत्र देनेवाले महमूद पाशा को शाह ने मंत्रिमण्डल बनाने को कहा। सन् १९२२ में इन्हीं को अँगरेज़ों के विरोध के कारण देश-निर्वासन का दण्ड दिया गया था। महमूद पाशा ने अपना मंत्रिमण्डल बनाया। इस मण्डल में पूर्व-मण्डल के कई आदमी जैसे ख़ाशबा पाशा, मोहम्मद अलीपाशा, गफ़रवाली पाशा भी आ गये। महमूद पाशा ने अपनी नीति की घोषणा में इँगलैंड के प्रति सद्भाव रखते हुए भी मिस्र के स्वत्वों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य बतलाया। मिस्री महासभा कुछ समय के लिए स्थगित कर दी गई। शासक से मंत्रिमण्डल के अध्यक्ष ने भावी नीति पर सलाह करने के बाद शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। अभी तक प्रत्यक्ष रीति से मिस्री नीति में कोई परिवर्त्तन नहीं दीख पड़ता।

(३) मेक्सिको के नवीन राष्ट्रपति

मेक्सिको के नवीन राष्ट्रपति का 'निर्वाचन' हो गया। मेक्सिको-गणतन्त्र में सैनिक शक्ति के बल पर राष्ट्रपति का निर्वाचन होता है। जिसकी सैनिक शक्ति सर्वप्रबल हुई, वही राष्ट्रपति होगा। आज से छः वर्ष पूर्व सेनापति ओब्रेगौन ने अपने कार्य-काल के समाप्त होने पर अपने चेले कैलेस को राष्ट्रपति बनवा दिया था। अब इस बार राष्ट्रपति कैलेस ने अपनी पूरी सहायता देकर ओब्रेगौन महोदय के दो विरोधी उम्मीदवारों को पराजित कर उन्हें लड़ाई में मरवा डाला। केवल ओब्रेगौन साहब उम्मीदवार रह गये। २ जुलाई को उनका निर्वाचन हो गया और छः वर्ष के लिए वे बिना विरोध के राष्ट्रपति चुन लिये गये। चुनाव के समय सेना का काफ़ी प्रबन्ध था। बलवे का बहुत भय था। ध्यान रहे कि कामन कैथोलिक तथा वहाँ के अधिकांश जन-साधारण सैनिक शासन से बहुत रुष्ट हैं। पर केवल दो सौ बलवाइयों ने लेग्रिज (Lagriege) की सेना पर हमला किया और सरकार ने उन्हें भगा दिया। २६ बलवाई मारे गये, हज़ारों का ख़ून बहाकर 'राष्ट्रपति-निर्वाचन' हो गया। नवीन राष्ट्रपति ने घोषणा की है कि वे कैलेस की नीति का ही पालन करेंगे। कैलेस की बदनाम नीति पाठक भले प्रकार जानते हैं।

(४) जर्मनी में सोशलिस्टों की विजय

जर्मनी में रीशटैग जर्मन-महासभा का निर्वाचन मई के अन्त में ही समाप्त होगया। साथ ही यह भी प्रकट हो गया कि प्रेसिडेंट हिंडेनबर्ग के प्रति जर्मनों की असीम श्रद्धा होने पर भी जर्मनी दल पर उनको पूर्ण विश्वास नहीं है। इस निर्वाचन में जर्मनी ने सोशलिस्ट दल के प्रति अपना सबसे अधिक अनुराग दिखलाया और वही दल बहुमत में चुना गया। किस दल की महासभा में क्या शक्ति है, यह उनकी संख्या से प्रकट होगा। वे संख्यायें इस प्रकार हैं :—

सोशलिस्ट डिमौक्रेट-सोशलिस्ट	...	१५२
जर्मन नैशनलिस्ट	...	७३
केन्द्रीय दल (सेन्ट्रिस्ट)	.	६२
साम्यवादी		५४
पीपुल-पार्टी	...	४४
डिमौक्रेट	...	२५
इकोनोमिक लीग	...	२३
बवेरियन पीपुल-पार्टी	...	१६

ईसाई राष्ट्रीय कृषक-दल	१३
फैसिस्ट—	१२
जर्मन-कृषक-दल —	८
भूमि लीग—	३
पीपुल दक्षिण (दाहिना) दल—	२
सैक्सन कृषक-दल—	२
	४८९

आगामी चार वर्षों तक जर्मनी मे भिन्न भिन्न दलों का इस प्रकार बलाबल रहेगा। सोसलिस्टों की विजय होने के कारण शासन-सूत्र उन्हीं के हाथ मे आ गया। परिणाम से यह स्पष्ट है कि जर्मन नेशनलिस्ट, पीपुल्स पार्टी, सेंट्रिस्ट, बवेरियन पीपुल पार्टी आदि दल टूट गये। इनकी शक्ति बिखर गई। चुनाव के परिणाम से सबसे बड़ी बात यह मालूम होती है कि जर्मन-जनता जर्मन-गणतन्त्र के पक्ष मे अधिक है तथा राजा को पुनः बुलाकर राजतन्त्र-स्थापन के विरुद्ध है। सोशलिस्ट-डिमोक्रेट, डिमोक्रेट, सेन्ट्रिस्ट तथा पीपुल पार्टी आदि दलों के मिलने से एक बड़ा सम्मिलित दल हो गया है, जो चार वर्ष तक जर्मन के भाग्य का नियन्त्रण करेगा। डॉक्टर मार्क्स की स्वीकृति से प्रेसीडेंट हिंडेनबर्ग यानी हर हर्मन मुल्लर ने मन्त्रिमण्डल बना लिया है। जिसमें अपना परराष्ट्र-सचिव का पद विगत मण्डल के प्रसिद्ध परराष्ट्र-सचिव डॉक्टर स्ट्रेस्समान को मिला है। कूरियर जर्नल नामक पत्र का मत है कि पहले का शासक-मण्डल भी अयोग्य न था, और उसी के कारण फ्रांस से हेलमेल बढ़ता जा रहा है। राष्ट्रपरिषद् के सदस्य की हैसियत से वह अपना आत्म-सम्मान बनाये रहा। इसके समय में राइनलैंड का शस्त्र-सेनाओं से खाली होना शुरू हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय समझौते करके इसने उद्योग को प्रोत्सहन दिया है, फ्रांस के साथ व्यापारिक संधि से व्यापार को उत्तेजना मिली है—और सबसे बढ़कर डांये विधि (Dawel Plan) ने हरजाने के प्रश्न को हल करने का निश्चित रास्ता खोल दिया। बेकारी का प्रश्न होते हुए भी जर्मनी की आर्थिक अवस्था उन्नत है, और ऐसी अवस्था मे यह आमतौर से सोचा जाता है कि जर्मन-राष्ट्र उन्नति के मार्ग पर दिखाई देगा।

जर्मनी का शासन अब जिनके हाथों में गया है उनका दल 'डांय-विधि का समर्थक' लोकार्नो की संधियों का विश्वास करनेवाला, व्यापक सन्धि तथा शान्ति का प्रचारक एवं पुनर्निर्माण का समर्थक है। बाल्टीमोर का 'सन' पत्र कहता है कि जर्मन का गणतन्त्र सही सलामत रहेगा।

(५) पॉयनकेयर का फ्रैंक

महासमर के उपरान्त जर्मनी से हरजाना वसूल करने के लिए फ्रांस ने उसकी रूर की घाटी पर अधिकार कर लिया था। अतएव व्यय बढ़ गया। दूसरे देशों के क़र्ज़ से लदा था ही। फल यह हुआ कि उसके सिक्के का मूल्य गिर गया। मूल्य गिर जाने से फ्रांस में व्यापारिक उथल-पुथल मच गई। वहाँ की बैंको की बुरी दशा हो गई। कई मंत्रि-मंडल आये गये परन्तु फ्रैंक का मूल्य स्थिर करने में कोई समर्थ न हुआ। अन्त मे पायनकेयर के हाथ में शासन आया, बड़ी योग्यता-पूर्वक क़र्ज़ आदि लेकर काग़ज़ी सिक्के चला कर इन्होंने फ्रैंक का मूल्य गिरने से बचाया। इसके बाद अपनी निश्चित फ्रैंक-नीति तथा उसके मूल्य की स्थिरता की घोषणा करने की सूचना देकर नवीन निर्वाचन की सूचना कर दी। 'फ्रैंक' का मूल्य स्थिर करने में अन्य किसी दल मे क्षमता न होने के कारण विरोधी चुप रहे और फ्रैंक के गिर जाने के भय से फ्रांसीसी जनता ने बिना इनका राष्ट्रीय कार्यक्रम जाने ही इनके दल को बहुमत से चुना और ६११ प्रतिनिधियों की महासभा मे ४११ इनके दल के डिपुटी आगये। पॉयनकेयर ने शासन-सूत्र को अपने हाथ में दृढ़ता से लिया। उन्होंने फ्रैंक का मूल्य स्थिर करने की विधि घोषित कर दी और मंत्रणा-परिषद् से स्वीकृत हो जाने पर वह महासभा से स्वीकृत हो गई। मंत्रणा-परिषद् में २५६ समर्थक और ३ विरोधी थे तथा अर्थ-समिति मे ३२ समर्थक और १ विरोधी था। इस प्रकार पॉयनकेयर का फ्रांस के शासक-मण्डल में बहुमत है, जिसे इन्होंने फ्रांस के फ्रैंक की उस समस्या को हल करके प्राप्त किया है जो वर्षों से फ्रांस को घातक हानि पहुँचा रही थी। उनकी मुद्रा-नीति का क्या परिणाम होगा इसका पता बाद को लगेगा, पर उसका परिचय थोड़े में यहा कराया जाता है।

फ्रैंक के क़ानूनी स्थिरीकरण की धारा में १३ भाग हैं। उनका सारांश यह है—५ अगस्त १९१४ से ज़बर्दस्ती क़ायम किया गया चलन उठाया गया। नवीन फ्रैंक सिक्के में ६५.५. मिलिग्राम सोना रहेगा। उसमें पौंड स्टर्लिंग में वह १२४.२१ तथा डालर में २५.५२ होगा! 'बैंक आव फ्रांस' तीन अरब पाच पांच और दस दस चांदी के फ्रैंक निकालेगा। ये नोटों की जगह लेंगे, नोट इधर न निकाले जायँगे। बैंक इस बात का आश्वासन दिलाता है कि मागने पर नोटों के बदले में सोना दिया जायगा, परन्तु अर्थसचिव की सलाह से उनकी एक सीमा निश्चित रहेगी। बैंक कम से कम ३५ प्रतिशत चालू नोटों के मूल्य का सुवर्ण-कोष अवश्य रक्खेगा, जिसमें बुलियन और सिक्के रक्खे जायँगे। सोने चांदी तथा सिक्के भेजने का क़ानून तोड़ दिया गया!

(६) राष्ट्रीय चीन की नीति

दैनिक समाचार-पत्रों के पाठक राष्ट्रीय चीन की विजय का हाल जानते ही होंगे। उत्तर के विद्रोहियों का पतन हो गया। चांग-सोलिन की सेना का सत्यानाश हो गया। चांग-सो-लिन स्वयं भी मर गये। पेकिंग पर राष्ट्रीय सेना का क़ब्ज़ा हो गया। चीन में ऐक्य-स्थापन तथा दृढ़ राष्ट्रीय सरकार की घोषणा हो गई। पेकिंग का बदनाम नाम बदलकर 'पेपिंग' हो गया। राष्ट्रीय सरकार ने अपनी राजधानी नानकिंग तथा शङ्घाई में क़ायम की है। इनमें शङ्घाई के फ्रांसीसी निवासस्थान में सभी राजनैतिक कार्यालय खोले गये हैं। नानकिंग में केवल राजनैतिक कौंसिल की ही बैठकें होंगी। जापान ने भी वहां से अपनी बहुत-सी सेना वापस कर ली है। बाक़ी वापस कर ली जायगी। नवीन चीन ने कई घोषणायें की हैं, जिनसे उसकी भावी नीति का पता चलता है।

१—चीन-निवासी सभी प्रजा को—देशी हो या विदेशी—समान रूप से कर देना होगा।

२—राष्ट्रीय सरकार विदेशियों के लिए समुद्री महसूल तय करेगी।

३—राष्ट्रीय सरकार उन सभी सन्धियों को नाजायज़ समझती है जो विदेशी राष्ट्रों से की गई थीं तथा जिनका समय बीत गया है। जिन सन्धियों का कार्यकाल अभी है, उन पर पुनः विचार होगा और वे नये तरीक़े से की जायँगी।

४—राष्ट्रीय चीन अपने शासन में पूर्ण स्वतन्त्र है।

५—तींस्तीन आदि के उपद्रवों से जापान आदि की जो हानि हुई है उस पर हरजाने की बातचीत की जायगी।

स्वदेश

(१) कसौली

सन् १९२७ में पेरिस में राष्ट्रपरिषद् के एंटीरैबिक कानफ़्रेंस (League of nations Anti—Rabic confereance) की बैठक हुई थी। इसकी कार्यवाहियों से यह पता चलता है कि पागल तथा विषैले जानवरों से काटे या घायल किये गये व्यक्तियों का इलाज करनेवाला हमारे देश का कसौली का पास्चर इंस्टिट्यूट अपने प्रकार की संसार में यदि सबसे बड़ी नहीं तो सबसे बड़ी संस्थाओं में से एक संस्था अवश्य है। इसका कारण यह है कि संसार की इस प्रकार की सबसे बड़ी संस्था में जितने व्यक्तियों का इलाज होता है उतने ही व्यक्तियों का भारत में भी होता है। ३० जून १९२७ को समाप्त होने वाले छब्बीसवें वर्ष की इस संस्था की जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है उससे पता चलता है कि यहां इस वर्ष ६,१३८ मरीज़ों का संस्था के प्रधान अस्पताल में इलाज किया गया तथा २,२३४ मरीज़ों को संस्था के भिन्न भिन्न केन्द्रों में उसके द्वारा टीके लगवाये गये और चिकित्सा की गई। इस प्रकार रोगियों की पूर्ण संख्या ८,३७२ हुई। इसके पूर्व वर्ष इससे २५१ रोगियों की अधिक चिकित्सा की गई थी। इस वर्ष के रोगियों में ८३.४१ प्रतिशत कुत्तों के काटे, १४.२० प्रतिशत गीदड़ों के, और १६ प्रतिशत भेड़ियों के काटे थे। १७ रोगी दूसरे जानवरों-द्वारा काटे

गये थे। रिपोर्ट में लिखा गया है कि भारत में इस प्रकार के विषैले जानवरों के काटने का सबसे अधिक भय कुत्तों से ही है, और इन्हीं से देशवासियों की रक्षा करने की सख़्त ज़रूरत है। कसौली में कुल मिलाकर इस वर्ष ६,५५,८६५ सी० सी० (C C.'A) टीके तैयार कराये गये, जिनमें ५,५०,१७३ तो कसौली ख़ास में ही खपे और १,०५,६६२ सी० सी० लाहौर, इलाहाबाद, रावलपिंडी आदि भिन्न भिन्न केन्द्रों को भेजे गये। उपचार में प्रति मरीज़ पीछे १०) व्यय होता है। इसी वर्ष ख़ास कसौली में १०८, लाहौर में २५, रावलपिंडी में १, इलाहाबाद में ३, कुल मिलाकर १३७ मौतें हुईं। इस प्रकार कुल मिलाकर १·२४ प्रतिशत मौतें हुईं। कसौली में ७०, लाहौर में १६, रावलपिंडी में १, इलाहाबाद में १—कुल मिलाकर १·०५ प्रतिशत ही टीके असफल रहे। इस प्रकार कसौली-संस्था के कार्य की प्रशंसा की यह रिपोर्ट है। राष्ट्रपरिषद् ने इस उपयोगी संस्था की बड़ी प्रशंसा की है।

(२) रेलवे स्टोर की ख़रीद

भारतीय लोकमत की शिकायत है कि भारतीय रेलवे-विभाग भारत में अपनी ख़रीद न कर सुदूर इँगलेंड के बाज़ार में करता है। भारतीय स्टोर-ख़रीद की समिति (Indian Stote purchase Committee) ने जिसमें रेलवे बोर्ड के भी चार सदस्य थे, सर्वसम्मति से यह प्रस्ताव पास किया था कि सभी ख़रीद-फ़रोख़्त एक भारतीय स्टोर-ख़रीद-विभाग के द्वारा हुआ करे और यथासम्भव भारत में ही हो। सन् १९२४ में श्रीजिन्ना के प्रस्ताव तथा योरपियन सदस्यों के समर्थन पर यह पास हुआ था, कि ख़रीद के लिए टेंडर रुपये में भेजे जायँ, जिसका परिणाम यह होगा कि विदेशी कम्पनियों को भी भारत के किसी एजेंट के द्वारा ही माल देना पड़ेगा। परन्तु रेलवे-विभाग की ख़रीद इत्यादि की १९२६-२७ की जो रिपोर्ट निकली है उससे पता चलता है कि इस वर्ष भारतीय रेलों की ख़रीद कुल मिलाकर २८ करोड़ रुपये की थी, जिसमें केवल ७५ लाख की ख़रीद भारतीय स्टोर-विभाग के द्वारा हुई। इस तुच्छ रकम की ख़रीद के कारण व्यवस्थापक सभा में प्रश्नोत्तर हुए। सर चार्ल्स इनेस ने साफ़ कह दिया कि 'एकवर्थ कमेटी' की सिफ़ारिशें ध्यान में रक्खी गई हैं तथा प्रत्येक रेलवे कम्पनी अपने आर्थिक कार्यों के लिए ज़िम्मेदार है। पर सदस्य इससे सन्तुष्ट न हुए और उन्होंने स्पष्ट कहा कि हम यह साफ़ वादा चाहते हैं कि जो सामान मिल सकेगा वह भारत में ख़रीदा जायगा। इसी सम्बन्ध में उस समय सरकार को बहुत कुछ कहा सुना गया था जब व्यवस्थापक-सभा के अगले बजट की बैठक में रेलवे बजट से १) की काट की गई। बम्बई की भारतीय व्यापारी-सभा ने रेलवे-बोर्ड से यह पूछा भी कि सरकारी रेलवे-कम्पनियाँ कहाँ से अपना सामान ख़रीदती हैं। इस पर बोर्ड ने यह उत्तर दिया है कि हमें इसका पता नहीं है।

(३) भारतीय कृषि-कमीशन की सिफ़ारिशें

भारतीय कृषि की उन्नति-सम्बन्धी गुञ्जायशों की जाँच के लिए भारत के वायसराय लार्ड इरविन ने श्री लिनलिथगो की अध्यक्षता में एक कृषि-कमीशन बैठाया था। इसने देश भर में यात्रा कर गवाहियाँ लीं तथा जून के अन्तिम सप्ताह में अपनी सर्वसम्मत रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। कमीशन की सिफ़ारिशों से अधिकांश देशी पत्र सन्तुष्ट नहीं हुए। उनका कहना है कि कमीशन की यात्रा में जो तेरह लाख रुपये ख़र्च हुए हैं, वे व्यर्थ गये। यद्यपि कमीशन ने ऐसा कोई भी उपाय नहीं बतलाया है जिससे कम से कम बीस वर्ष के भीतर भारतीय कृषकों की दशा दुगुनी अच्छी हो जाय और खेतों की उपज दुगुनी हो जाय। तो भी उसने जिन बातों की सिफ़ारिश की वे महत्त्वपूर्ण हैं। अतएव यहाँ संक्षेप में उनका उल्लेख किया जाता है।

कृषि-सम्बन्धी अन्वेषण-कार्य पूसा-विद्यालय में होता है। तो भी इस कार्य में अभी बहुत कुछ उन्नति करने की ज़रूरत है। अतएव प्रान्तीय कृषि-विभाग को इस विद्यालय से अधिक निकट-सम्बन्ध रखना चाहिए। इसके सिवा दिल्ली में कृषि-सम्बन्धी खोज के लिए सरकार की ओर से एक समिति खोली जाय, जिसका सभापति कोई अनुभवी सरकारी अफ़सर हो। दो प्रसिद्ध वैज्ञानिक, तथा कृषि-विद्यालयों एवं वैसी ही

संस्थाओं के छत्तीस प्रतिनिधि इसके सदस्य बनाये जायँ। यह संस्था कृषि-सम्बन्धी भिन्न भिन्न अन्वेषणों की जाँच कर मूल-सिद्धान्तों का निर्णय करेगी तथा फ़सल, चौपायों आदि के लिए चार बुरो खोलेगी। इसके लिए पचास लाख रुपये ख़र्च की स्थायी स्वीकृति होनी चाहिए, और यह संस्था तथा इसका व्यय व्यवस्थापक सभाओं की स्वीकृति-द्वारा स्थापित होकर प्रत्येक प्रान्त में खोज के लिए केन्द्र खोले जायँ। पूसा-कालिज पर तथा केन्द्रीय संस्थाओं पर दिल्ली की उक्त कौंसिल का ही नियन्त्रण रहेगा। दिल्ली की कौंसिल खुलने पर भारत-सरकार के कृषि के सलाहकार का पद टूट जायगा।

कृषि-सम्बन्धी उन्नति के विषय में कमीशन की यह सिफ़ारिश है कि कृषि-विभाग बीज बाँटने, तेल निकालने के उद्योग तथा उपज के लिए उपयोगी एवं आवश्यक औज़ारों की जाँच के लिए अलग अलग विभाग खोले। कृषि में उन्नति के लिए तीन बातें प्रधान हैं—१—नवीन आविष्कृत औज़ार (साधन), २—बीज पैदा करने के लिए अलग खेती, तथा ३—फ़िल्मों-द्वारा आवश्यक वस्तुओं का प्रदर्शन। इस विषय में कमीशन प्रचार तथा ज्ञानकार्य कराने के लिए अन्य प्रान्तों का ध्यान बम्बई-सरकार के प्रयत्नों की ओर आकर्षित करता है। रेलवे-कम्पनियों से सिफ़ारिश की गई है कि वे कृषि-पदार्थों पर कम महसूल लें।

चौपायों की रक्षा के लिए ऐसा क़ानून व्यवस्थापक-सभा बनाये जो उनमें संक्रामक तथ ज़हरीली बीमारी फैलने से रोकने में सहायक हो, क्योंकि वर्त्तमान प्रणाली सदोष है। हर ज़िले में एक सरकारी चौपाया-अस्पताल एक पास-शुदा सर्जन के ज़िम्मे हो, जिससे सारे भारत में कम से कम ४०० चौपाया-सर्जन तथा ७,५०० सहायक सर्जन हो जायँ जिनके ऊपर एक डायरेक्टर प्रत्येक प्रान्त में हो। मौजूदा चौपाया-विद्यालयों में वेटेनेरी-सर्जन अच्छी तरह तैयार किये जा सकते हैं। दिल्ली की केन्द्रीय संस्था (कौंसिल) चौपायों का अपना एक अलग विभाग रक्खेगी। अतः इन्स्पेक्टर जेनरल सिविल एण्ड वेटेनरी डिपार्टमेंट तथा भारत-सरकार के चौपाया-सलाहकार का पद तोड़ दिया जायगा। आबपाशी की जहाँ ज़रूरत हो, वहाँ स्थानीय सलाह देनेवाली समितियाँ हों, जिनके ऊपर एक केन्द्रीय आबपाशी बोर्ड हो।

सड़कों की उन्नति के लिए अच्छी स्कीमों पर सरकार रुपये क़र्ज़ दे। पर वे सड़कें रेलवे की सहायता के लिए बनें, न कि प्रतिस्पर्द्धा के लिए।

विदेशों में, योरप में भारतीय कृषि की उत्पत्तियों की उत्तरोत्तर माँग-वृद्धि के कारण लन्दन के भारतीय व्यापारिक कमीशन का सहायक नियुक्त किया जाय तथा अन्य देशों में भी कमिश्नर नियुक्त हों।

खेती के लिए किसानों के लिए रुपये का सुभीता करना भी कमीशन के सामने एक ज़रूरी प्रश्न था। वह भूमि को रहन रखने के लिए बीस वर्ष अन्तिम मीयाद बनाना चाहता है। उसकी सिफ़ारिश है कि पंजाब के क़ानून के समान सभी प्रान्त में क़ानून बने। भूमि को रहन करने के लिए सहयोगिक क़ानून (co-operative Acts) के अन्तर्गत जिन बैंकों की गुञ्जायश की गई है वैसे ही बैंक खोलने के लिए उसकी रिपोर्ट ज़ोर देती है तथा शिक्षित-वर्गों से सिफ़ारिश करती है कि वे कृषकों में ऐसा आन्दोलन करें कि ग्रामीणों में स्वस्थिति में सन्तोष आपसे आप चल निकले। प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य की जाय जिसके साथ कृषि की भी प्रारम्भिक शिक्षा दी जाय। जिस ग्राम में ज़रूरत से ज़्यादा आबादी हो, वहाँ का बोझ लोगों को दूसरे स्थान पर जाने के लिए उत्साहित कर हलका कर दिया जाय। अकेले ब्रिटिश गायना में बीस लाख आदमी बड़े आराम से बस सकते हैं।

कृषि-विभाग के लिए जो नये अफ़सर रक्खे जायँगे उनका वेतन भी बतलाया गया है। प्रान्तीय डायरेक्टरों को १५००—५०—२००० रुपये तक, बड़े प्रान्तों में संयुक्त डायरेक्टर भी हों, प्रान्तीय नौकरी में ३५०) से १२००) तक का ग्रेड रक्खा गया है। खोज में काम करनेवालों को काफ़ी वेतन मिलेगा। रिपोर्ट विलायत से विशेषज्ञों के बुलाने के पक्ष में है।

(५) कलकत्ता-विश्वविद्यालय का आर्थिक संकट

कलकत्ता-विश्वविद्यालय के मन्त्रणा-परिषद् की रिपोर्ट है कि वह इस समय बड़े आर्थिक संकट में है। १९२८-२९

के आय-व्यय के अनुमान के अनुसार ३० जून १९३० तक २,५७,०००) का घाटा होगा। वर्त्तमान अस्थायी संचित कोष केवल २,५२,०००) का है, अतः ५,०००) का घाटा होगा। परन्तु आर्थिक विषयों में परिषद् ने कई संशोधन कर दिये हैं, जिस कारण घाटा १६,०००) का ही होगा। क़ानूनी विद्यालय फ़ण्ड में ७,१८५) का घाटा पड़ेगा, पर वह उस कालिज के 'फ़ण्डेड बैलेन्स' में से जो २,१०,०००) का है, पूरा किया जायगा। ख़र्च घटाने के लिए कुछ कर्मचारी हटाये भी जायँगे। आज-कल विश्व-विद्यालय का काम एक विशेष स्कीम पर हो रहा है, जिसकी अवधि ५ वर्ष की है। यह आर्थिक-क्षति केवल इसी आशा पर उठाई जा रही है कि सरकार अपनी मंज़ूरी बढ़ाकर घाटा चुकायेगी। विद्यालय की आवश्यकताओं तथा मितव्ययिता की सभी सुविधाओं का पता लगाकर वास्तविक माग और कार्यक्रम तैयार करने के लिए एक उपसमिति बनी थी जो अपनी रिपोर्ट तथा माग सरकार को बतलावेगी। इसके सभापति डाक्टर राय का कथन है कि यदि बङ्गाल-सरकार ने मांग न पूरी की तो यह काम परिषद् का और बङ्गाली जनता का है कि वह सरकार को मंज़ूरी देने के लिए मजबूर करे।

(६) विश्वविद्यालयों में सैनिक शिक्षा

अन्तर्विश्वविद्यालय-बोर्ड इस बात की चेष्टा कर रहा है कि देश के भिन्न-भिन्न भागों में विश्वविद्यालयों की सैनिक शिक्षा प्राप्त करनेवाले विद्यार्थियों का जो समुदाय है वह और बढ़ाया जाय, अधिक विद्यार्थियों को सैनिक शिक्षा दी जाय, शिक्षा के और कई केन्द्र खोले जायँ तथा विश्व-विद्यालयों में इस शिक्षा के प्रचार के लिए और भी सुविधाएँ दी जायँ। बोर्ड यह भी चाहता है कि जिस प्रकार आक्सफ़ोर्ड तथा कैम्ब्रिज़ से निकले ग्रेजुयेट सेना-विभाग की ओर से सेना में कमीशन और नौकरी पा जाते हैं, उसी प्रकार सैनिक शिक्षा-प्राप्त भारतीय विश्व-विद्यालयों के भी विद्यार्थी सेना में कमीशन पावें। इस सम्बन्ध में यह प्रसन्नता की बात है कि पञ्जाब तथा नागपुर के विश्वविद्यालयों ने अपने यहा सैनिक शिक्षा (विज्ञान) को भी पाठ्य-क्रम का एक विषय स्वीकार किया है। यह विषय अनिवार्य्य नहीं, किन्तु इच्छानुसार लिया जा सकता है। इस सम्बन्ध में शिक्षा की सुविधाओं आदि पर उक्त बोर्ड सेना-विभाग से सलाह कर रहा है। सैन्डहर्स्ट कमेटी ने वर्त्तमान भारतीय शिक्षा-प्रणाली में कुछ संशोधन तथा नवीनता उत्पन्न करने की सिफ़ारिशें की हैं—सैनिक शिक्षा देने के विषय में ये सिफ़ारिशें यद्यपि सन्तोषजनक नहीं समझी जाती हैं तो भी बोर्ड इन्हें ही तब तक कार्यरूप में परिणत करना चाहता है। भारत-सरकार ने प्रान्तीय सरकारों के पास उन सिफ़ारिशों को भेज दिया है और वह शिक्षा-संस्थाओं के विद्वान महारथियों के साथ इस विषय में काम करने की सुविधा पर विचार करने को तैयार है। सम्भवतः अगले वर्ष के अक्टूबर या नवम्बर में दिल्ली में विश्व-विद्यालय-सम्मेलन होगा, जिसमें इसकी कार्यवाही का श्रीगणेश करने के लिए वायसराय महोदय आमन्त्रित किये गये हैं। वहीं सैनिक शिक्षा पर पूरा विचार हो जायगा। तब तक सैनिक शिक्षा बढ़ाने तथा नये केन्द्रीय-दल स्थापित करने के विषय में सम्भवतः सेना-विभाग ने बोर्ड से प्रतिज्ञा की है कि वह अगले वर्ष के सैनिक-बजट में इसका ख़याल रक्खेगा तथा यदि सम्भव होगा तो तदनुसार कार्य भी होगा। इस प्रकार यह निश्चित है कि हमारे यहां सैनिक शिक्षा का जो सन्तोष-रहित क्रम रहा है वही इस वर्ष भी रहेगा।

(७) सीमान्त-प्रदेश में फ़सल का नाश

पश्चिमोत्तर सीमान्त-प्रदेश में, विशेषकर पेशावर-ज़िले के सरकारी नहरों-द्वारा सींचे जानेवाले भाग में इस वर्ष गेहूँ की फ़सल बिलकुल चौपट होगई। दूसरी ओर मालगुज़ारी तथा नहर के निकट भूमिवालों को पानी-कर की बड़ी किश्त देनी थी। इसलिए पीड़ित कृषकों ने पेशावर आदि स्थानों में कई सभायें करके यह प्रार्थना सरकार से की कि इस वर्ष में दोनों कर माफ़ कर दिये जायँ। जब पहले-पहल सरकार ने इस प्रार्थना पर ध्यान न दिया तब यह आन्दोलन ज़ोर पकड़ने लगा कि कर न देने का सत्याग्रह किया जाय और बारदोली की नक़ल की जाय। किन्तु जैसा कि सरकारी सूचना से पता चलता है, जब फ़सल कटकर खलियान में आई, वहाँ उनके चौपट होने

का पूरा रहस्य खुला और अवस्था की भयङ्करता समझ कर हाई कमिश्नर ने सहायता देना आवश्यक समझा। सरकारी नहर के भीतर की गेहूं की भूमि पर से ५० प्रतिशत से ३३ प्रतिशत तक पानी का कर माफ़ कर दिया। भूमि की मालगुज़ारी के विषय मे रबी की फ़सल के कर मे रुपये पीछे बारह आना माफ़ कर दिया गया। यह तो 'बारा' केन्द्र में हुआ है। पेशावर ज़िले के अन्य भाग मे २५ से ५० प्रतिशत तक कर माफ़ हुआ है। इस प्रकार कुल मिलाकर सरकार ने तीन लाख से अधिक रुपये माफ़ कर दिये। उसकी इस उदारता से वहा के पीड़ित किसानों को बहुत कुछ सहायता मिल गई।

(८) बङ्गाल में भीषण दुर्भिक्ष

अतिवृष्टि तथा अनावृष्टि के कारण बङ्गाल के कुछ ज़िलो में—बाकुड़ा, खुलना, मुर्शिदाबाद, दीनापुर, बीरभूम, मालदा आदि ज़िलों में—इस वर्ष फ़सल बिलकुल चौपट हो गई है। परिणामस्वरूप इस समय वहां भीषण अकाल है। लगभग नब्बे हज़ार आदमी अकाल से पीड़ित हैं। २, १६५ ग्रामो मे त्राहि त्राहि मची हुई है। खुलना में एक हज़ार आदमी भूख से अति व्याकुल हैं। कही कहीं तो २), और ४), पर बच्चे बेंचे जाने के समाचार मिले है। कुछ लोगो के लिए पेड़ों की छाल ही भोजन की एक-मात्र वस्तु हो रही है। बङ्गाल-प्रान्तीय-कांग्रेस-कमिटी ने अकाल की हालत जांच करने के लिए एक समिति बनाई थी। उस समिति की रिपोर्ट बड़ी हृदय-विदारक है। रिपोर्ट मे लिखा गया है कि केवल १८ ग्रामो मे २९ आदमी भूख से तड़प तड़प कर मर गये। इन मृत्युओ की जाच के लिए अकाल-सहायक-समिति ने श्री अनिलविश्वास नामक वकील को बालूरघाट भेजा। वहा की दशा देखकर विश्वासजी इतने प्रभावित हुए कि चार सौ आदमियों के साथ उन्होंन स्वयं खाना छोड़ दिया और इस सत्याग्रह-द्वारा ही सहायता करने की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया। उनकी संख्या बढ़ते बढ़ते तीन हज़ार तक पहुँच गई थी जो सत्याग्रह बड़ो कठिनता-पूर्वक समाप्त कराया गया था। कांग्रेस की रिपोर्ट तथा बङ्गाल के अधिकांश समाचार-पत्रों का कहना है कि सारा दोष सरकार का है। यदि बङ्गाल-सरकार ने पहले से ही सहायता का पर्य्याप्त प्रबन्ध कर रक्खा होता तो यह नौबत न आती। इतना भयङ्कर अकाल पड़ने पर भी जुलाई तक उसने केवल पन्द्रह हज़ार रुपये के लगभग सहायता दी थी। इस विषय मे सरकारी 'ग़ैर ज़िम्मेदारी' तथा 'उपेक्षा' की तीव्र निन्दा करने के लिए ग्यारह जुलाई को बङ्गाल-कौंसिल का अधिवेशन स्थगित करन का प्रस्ताव एक स्वराजी सदस्य ने उपस्थित किया, वह पास भी हो गया। इसका पास होना बङ्गाल के मंत्रियों के प्रति सभा का अविश्वास समझा गया और स्वराजियों ने उनसे इस्तीफ़ा देने के लिए कहा भी पर उन्होंने इस विषय में कोई उत्तर न दिया।

परिपूर्णानन्द वर्म्मा
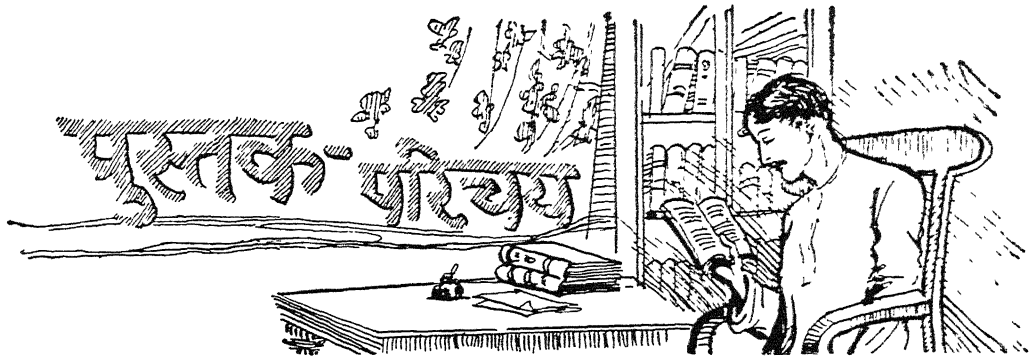
१—रसयोगसागर—सङ्ग्रहकर्ता पण्डित हरिप्रपन्नजी वैद्य, प्रकाशक, श्रीभास्कर-औषधालय, बम्बई नं० २। आकार बड़ा, पृष्ठ-संख्या १,०१७ और मूल्य १२) है। पुस्तक पर कपड़े की जिल्द है और छपी सुन्दर है।

यह आयुर्वेद-शास्त्र-सम्बन्धी एक महत्त्वपूर्ण सङ्ग्रह-ग्रन्थ है। इसके सङ्ग्रहकार पण्डित हरिप्रपन्नजी ने इसकी रचना बड़े परिश्रम के साथ की है। इस सङ्ग्रह से आपकी अध्ययन-शीलता ही नहीं प्रकट होती है, किन्तु साहित्यिक सुरुचि भी। आपने इसका सङ्कलन और सङ्गृहीत मूल श्लोकों का सम्पादन नये ढङ्ग से किया है। आपके सङ्ग्रह का क्रम वर्णमालात्मक है और यह भाग न अक्षर तक पहुँचा है। इस सङ्ग्रह की रचना में १०८ ग्रन्थों का उपयोग किया गया है। इन ग्रन्थों की नामावली में बहुतेरे प्राचीन और अप्राप्य ग्रन्थों के भी नाम हैं। सङ्ग्रहकार ने इसका हिन्दी में भाषान्तर भी किया है। इससे इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है। असंस्कृतज्ञ भी इसका अच्छी तरह उपयोग कर सकेंगे। प्रत्येक रस के नीचे अलग इस बात का सङ्केत कर दिया गया है कि यह पाठ किस ग्रन्थ का है या किन किन ग्रन्थों में पाया जाता है।

सङ्ग्रहकार ने इसकी भूमिका में अपने पाण्डित्य और अध्ययनशीलता का ख़ासा परिचय दिया है। भूमिका १०४ पृष्ठों में समाप्त हुई है और यह संस्कृत और अँगरेज़ी दोनों में है। अँगरेज़ी की भूमिका की पृष्ठ-संख्या १०४ और संस्कृत की १७८ है। इसमें आयुर्वेद की प्राचीनता वैदिककाल से सिद्ध की गई है एवं उसका इतिहास दिया गया है, साथ ही शरीर-विज्ञान की सविस्तर विवेचना की गई है। यह महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ अनेक ज्ञातव्य बातों से पूर्ण है। परन्तु इसमें सूची का अभाव है। यदि रोगाधिकार के अनुसार इसमें एक सूची लगा दी जाय तो उसकी उपयोगिता और भी बढ़ जायगी।

यह सङ्ग्रह अपने ढङ्ग का एक ही नहीं निकला है, किन्तु विश्वसनीय एवं उपयोगी भी है। आयुर्वेद के ज्ञाताओं तथा उससे प्रेम रखनेवाले लोगों को इस उत्कृष्ट ग्रन्थ का सङ्ग्रह अवश्य करना चाहिए। इसके अन्य भाग भी यथासम्भव शीघ्र प्रकाशित हो जाने चाहिए।

२—आरोग्य मन्दिर—सङ्कलयिता श्रीयुत प्रवासीलाल वर्मा, प्रकाशक, महाशक्ति साहित्य-मन्दिर, बुलानाला, बनारस सिटी। पृष्ठ-संख्या ४२० और मूल्य २)।

उपर्युक्त मन्दिर से निकलनेवाली ग्रन्थ-माला का यह पहला ग्रन्थ है। इसमें भिन्न भिन्न लेखकों के ८४ लेख सङ्ग्रह किये गये हैं। सभी लेख आयुर्वेद-सम्बन्धी-पत्रों में समय समय पर प्रकाशित हो चुके हैं। इनका सङ्कलन आरोग्य-वर्द्धन के भाव को दृष्टि में रख कर किया गया है। जिस शैली से इसमें लेखों का सङ्ग्रह किया गया है उससे सङ्ग्रह को बहुत कुछ एक नये ग्रन्थ का रूप प्राप्त हो गया है। स्वास्थ्य-सुधार-सम्बन्धी भिन्न भिन्न विषयों के विचारात्मक निबन्धों के सिवा ऐसे भी विषयों के लेख, जिनमें रोग-निवारण तथा अपने व्यवहार में आनेवाली चीज़ों के गुण-दोष तथा उनका उपयोग बतलानेवाले लेख भी सङ्ग्रहीत हैं। पुस्तक मनोरञ्जक और उपयोगी है।

३—श्रीमद्भगवद्गीता—अथवा भगवदाशयार्थ-दीपिका भाग २—लेखक, श्री र० स० नारायण स्वामी, प्रकाशक, श्रीरामतीर्थ पब्लिकेशनलीग, लखनऊ। इसकी पृष्ठ-संख्या २८७ + ७२३ है और मूल्य साधारण संस्करण का केवल २) है। गीता के इस अभिनव संस्करण के व्याख्याकार ब्रह्मलीन स्वामी रामतीर्थ के शिष्य श्री र० स० नारायण स्वामी हैं। बहुत दिन हुए इसका पहला भाग प्रकाशित हुआ था, जिसमें गीता के प्रथम छः अध्यायों की व्याख्या थी। यह उसका दूसरा भाग है। इस भाग में शेष बारह अध्यायों की व्याख्या समाप्त हो गई है। जैसा कि इसके पहले भाग के परिचय में लिखा जा चुका है, यह गीता-संस्करण अनेक प्रकार से अलङ्कृत है। भूमिका, प्रस्तावना, श्लोकों की वर्णानुक्रमणिका, मूल श्लोक, प्रत्येक श्लोक का शब्दार्थ, अन्वयार्थ, व्याख्या तथा पाद-टिप्पणियाँ एवं प्रत्येक अध्याय का संक्षिप्त सार आदि बातें इस संस्करण को सब प्रकार से उपयोगी बनाती हैं। इस भाग की प्रस्तावना २७२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसमें स्वामीजी ने षड्दर्शनों से गीता की तुलना एवं कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा ध्यानयोग की विवेचना विस्तार के साथ की है, जिससे गीता का महत्त्व तथा उसका मर्म समझ में बहुत सरलता से आ जाता है। गीता के मूल श्लोकों का अर्थ हृदयङ्गम करा देने के लिए स्वामीजी ने केवल शब्दार्थ तथा अन्वयार्थ ही प्रत्येक श्लोक के अलग अलग नहीं दिये हैं, किन्तु कठिन स्थलों पर विशद पाद-टिप्पणियाँ देकर उनकी समुचित आलोचना भी की है। गीता का यह संस्करण वास्तव में सब प्रकार से उपयोगी है। मूल्य भी नाम-मात्र का ही है। गीता-प्रेमियों को इसका उपयोग करना चाहिए।

४—मारवाड़-राज्य का इतिहास (सचित्र)—लेखक श्रीयुत जगदीशसिंह गहलोत, प्रकाशक, हिन्दी-साहित्य-मन्दिर, जोधपुर, पृष्ठ-संख्या ३२ + ४६२ + १२३ और मूल्य २॥)।

यह इतिहास-ग्रन्थ गैजेटियर के ढङ्ग का है। प्रारम्भ में मारवाड़-राज्य का भौगोलिक वर्णन है। इसके बाद राज्य के शासन-विभागों, सार्वजनिक संस्थाओं एवं राज-धानी के दर्शनीय स्थानों का वर्णन है। तदनन्तर मारवाड़ राज्य के राजवंश का प्रारम्भ से लेकर वर्तमान समय तक का इतिहास दिया गया है। फिर राज्य के परगनों, भूमि-सम्बन्धी अधिकार एवं जागीरदारों का वर्णन किया गया है। अन्त में मारवाड़ के निवासियों, वहाँ के रीति-रस्मों, तथा अन्यान्य ज्ञातव्य बातों का परिचय दिया गया है। इस ग्रन्थ के पढ़ने से मारवाड़ के राजवंश का ही पूरा ज्ञान नहीं होता है, किन्तु वहाँ के परगनों, नदी-नालों, पैदावार, निवासियों, उनके रहन-सहन आदि एवं वर्तमान शासन का भी पूरा पूरा ज्ञान हो जाता है। मारवाड़ के निवासियों के लिए यह पुस्तक अधिक उपयोगी होते हुए भी अन्य लोगों के लिए भी लाभप्रद है।
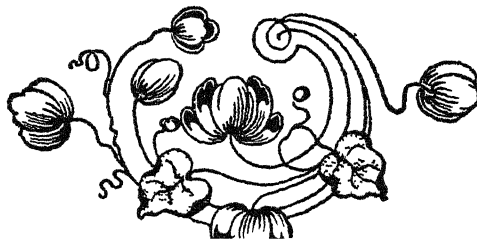
पण्डित श्रीधर पाठक हिन्दी के आधुनिक काल के शीर्ष-स्थान कवियों में रहे हैं। वे एक स्वाभाविक कवि ही नहीं थे, किन्तु उन्होंने अपनी कृति से हिन्दी के कविता-क्षेत्र में एक नूतन युग की सृष्टि की है। जिस समय बलिया के स्वर्गीय बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री बोलचाल की भाषा में ही कविता रचने का अपना आन्दोलन चला रहे थे उस समय पाठकजी ने ही उनको अपने सुख-स्वप्न की पूर्ति की आशा दिलाई थी। उन्होंने बोलचाल की भाषा में गोल्डस्मिथ के हर्मिट का बहुत ही सुन्दर अनुवाद किया था। इस प्रकार उन्होंने बोलचाल की भाषा में सफलतापूर्वक कविता करके दूसरों के लिए उस भाषा में कविता लिखनेवालों के लिए मार्ग प्रशस्त कर दिया था। खेद के साथ कहना पड़ता है कि गत सितम्बर में द्विवेदीजी के शब्दों में इन 'हिन्दी के जयदेव' पाठकजी का स्वर्गवास हो गया।

पाठकजी कवि थे। हिन्दी में ही नहीं, संस्कृत में भी वे पद्य-रचना करते थे। उन्होंने व्रजभाषा में भी कई एक सुन्दर रचनायें की हैं, परन्तु महत्त्व उनका बोलचाल की भाषा के कवि के रूप से ही अधिक हुआ है। उनकी रचनायें सदा आदर के साथ पढ़ी गई हैं। वे अपनी रचनायें पत्र-पत्रिकाओं में बहुत कम छपवाते थे। वे प्रायः आत्मसुखाय ही लिखते थे। हां, अपने इष्ट-मित्रों को सुनाने का उन्हें कुछ शौक़ अवश्य था।

पाठकजी की रचनाओं में इस बात की विशेषता है कि वे शब्द बहुत तौल तौल कर रखते थे। वे कहा भी करते थे कि शब्दों की अपनी आत्मा होती है। जो इस बात को नहीं जानता वह उनका दुष्ट प्रयोग कर उन्हें क्लेशित करता है। अपने इस कथन का उन्होंने अनुस्मरण करने की सदैव चेष्टा की है। उन्हें शब्द भी दूसरों की अपेक्षा अधिक संख्या में याद थे और उनका अपनी रचनाओं में उन्होंने उपयोग भी ख़ूब किया है। इस सम्बन्ध में भी बोलचाल की भाषा के कवियों के वही प्रथम पथ-प्रदर्शक हैं।

पाठकजी ने कई एक खण्ड काव्य तथा बहुसंख्यक फुटकर रचनायें की हैं। गोल्डस्मिथ के ट्रैवेलर, हर्मिट और डिज़र्टेड विलेज का हिन्दी में उन्होंने पद्य-बद्ध अनुवाद किया है। प्रारम्भ की दोनों रचनायें बोलचाल की भाषा में हैं। फुटकर रचनाओं में देश-भक्ति-परक रचनायें उन्होंने बहुत की हैं। उनकी रचनाओं में प्रकृति-वर्णन तथा देशानुराग की प्रधानता है।

पाठकजी का खड़ी बोली का एकान्तवासी योगी (हर्मिट का अनुवाद) पुस्तक-रूप में सन् १८८९ में निकला था।

परन्तु उसका समुचित रूप से स्वागत पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित बालकृष्ण भट्ट आदि जैसे उस समय के प्रसिद्ध विद्वानों ने नहीं किया। भट्टजी ने उसे प्रकाशित होने के पहले ही देखा था और 'निरा नीरस और निकम्मा' बतलाया था और पण्डित प्रतापनारायण मिश्र से तो पाठकजी का खड़ी बोली के सम्बन्ध में विवाद तक हो गया था। परन्तु खड़ी बोली के सम्बन्ध में समुचित क्षेत्र बाबू अयोध्याप्रसाद खत्री अपने आन्दोलन से तैयार करते ही आ रहे थे, अतएव अन्यान्य नये नये हिन्दी-लेखकों ने पाठकजी की रचना पसन्द की। यहां तक कि उनकी रचना की प्रशंसा में द्विवेदीजी ने 'छत्तीसगढ़-मित्र' में सन् १८६६ मे एक सप्तक लिखकर पाठकजी की भूरि भूरि प्रशंसा की और जब सन् १६०४ में आपने सरस्वती का सम्पादन-भार ग्रहण किया तब खड़ी बोली के कवियों की रचनाओं को ऐसी दाद दी कि आज हिन्दी-साहित्य के क्षेत्र में उसी का बोलबाला है। सौभाग्य की बात है, पाठकजी ने अपने आरम्भ किये हुए प्रयत्न को अपनी आंखों सफलता प्राप्त करते देख लिया।

जब पाठकजी ने हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में पदार्पण किया था उस समय भारतेन्दु के समय के प्रसिद्ध कवियों में पण्डित बदरीनारायण चौधरी, पण्डित विनायक राव, पण्डित प्रतापनारायण मिश्र, पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी, पण्डित अम्बिकादत्त व्यास आदि हिन्दी के सुकवि विद्यमान थे। यहा हम इन सुकवियों के कुछ पद्य उद्धृत करते हैं। उनसे उस समय की कविता की दशा का पाठकों को थोड़ा-बहुत परिचय हो जायगा।

पण्डित बदरीनारायण चौधरी हिन्दी के सुकवि तो थे ही, गद्य के भी कुशल लेखक थे। उनकी 'आनन्दकादम्बिनी' और 'नागरी नीरद' उनके पाण्डित्य और हिन्दी-प्रेम दोनों बातों के प्रमाण हैं। सन् १८६२ में उन्होंने दादा भाई नौरोजी के पार्लियामेंट के मेम्बर चुने जाने पर एक कविता लिखी थी। उसी की कुछ पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं—

× × ×

कारे काम, राम, जलधर जल बरसन वारे।
कारे लागत ताही सन कारन को प्यारे॥
तासों कारे ह्वै तुम लागत औरहु प्यारे।
यातैं नीको है तुम कारे जाहु पुकारे॥
यहै असीस देत तुम कहँ मिल हम सब कारे।
सफल होहिं मन के सब ही संकल्प तुमारे॥
वे कारे घन से कारे जसुदा के बारे।
कारे मनुजन के मन मैं नित विहरनहारे॥
मङ्गल करैं सदा भारत को सहित तुमारे।
सकल अमङ्गल मेटि रहैं आनंद बिस्तारे॥

पण्डित विनायक राव मध्य-प्रदेश के एक प्रसिद्ध शिक्षक थे। इन्होंने रामचरित-मानस पर एक बहुत सुन्दर टीका लिखी है। इन्होंने व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों में कवितायें बनाई हैं। यहां इनकी खड़ी बोली का भी एक पद्य उद्धृत किया गया है—

पुन्यहि पूरण पाप विनाशन
निर्मल कीरति भक्ति बढ़ावन।
दायक ज्ञानरु घायक मोह
विशुद्ध सुप्रेम मयी मुद पावन॥
श्रीमदराम चरित्र सुमानस
नीर सुभक्ति समेत नहावन।
नायक ते जन सूरज रूप
जहान के ताप को ताप नशावन।

× × ×

प्रसन्नता जो न लही सुराज से।
गही न ग्लानी वनवास-दुःख से॥
मुखच्छवी श्रीरघुनाथ की अहो।
हमैं सदा सुन्दर मङ्गलीय हो॥

पण्डित प्रतापनारायण मिश्र हिन्दी के सुकवि और सुलेखक तो थे ही, साथ ही देश-भक्त और स्वाधीनचेता भी थे। भारत-प्रेमी मिस्टर ब्रैडला जब यहा आये तब इन्होंने उनके सम्बन्ध में 'ब्रैडला-स्वागत' शीर्षक एक कविता लिखी थी। इस रचना की विलायत तक मे चर्चा हुई थी। यहा इनके 'क्रन्दन' से कुछ पंक्तिया उद्धृत की जाति हैं—

तब लखिहो जहँ रह्यो एक दिन कंचन बरसत।
तहँ चौथाई जन रूखी रोटिहुँ कहँ तरसत॥
जहँ आमन की गुठली अरु बिरछन की छालैं।
ज्वार चून महँ मेलि लोग परिवारहिं पालैं॥

नोंन तेल लकरी घासहु पर टिकस लगे जहँ ।
चना चिरौंजी मोल मिलै जहँ दीन प्रजा कहँ ॥
जहा कृषी वाणिज्य शिल्प सेवा सब माहीं ।
देशिन के हित कछु तत्त्व कहुँ कैसेहु नाहीं ॥

× × ×

पण्डित विजयानन्द त्रिपाठी संस्कृत और अँगरेज़ी के अच्छे विद्वान् तथा हिन्दी के सुकवि और सुलेखक थे। उनकी व्रजभाषा और खड़ी बोली दोनों की रचनायें मिलती हैं। यहां इनके विहार-गौरव से एक पद्य दिया जाता है—

पर न किसी की दशा एक सी नित रहती है।
पछिवा पुरवा हवा बदलती ही बहती है॥
बख़्तियार ने अख़्तियार जब किया यहा पर।
रहा खार ही खार बहार गई अपने घर॥

बदल गया एक बार ही मगध विहार असार हो।
सुख-समृद्धि कैसे रहें, जहा न उचित विचार हो।

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास संस्कृत के उच्च कोटि के विद्वान् थे। इन्होंने १२ वर्ष के वय में ही अपनी कविता-रचना का चमत्कार दिखाकर भारतेन्दु बाबू से सुकवि की पदवी प्राप्त की थी। ये शतावधानी कवि थे। इन्होंने सतसई के दोहों पर कुण्डलियाँ लिखी है। उदाहरणार्थ उनके दो दोहे यहां उद्धृत किये जाते हैं—

गुञ्जारी तू धन्य है, बसत तेरे मुख स्याम।
यातें उर लाये रहत, हरि तोकों बसु जाम॥
मोर सदा पिउ पिउ करत, नाचत लखि घनश्याम।
यासों ताकी पांख हूँ, सिर धारी घनश्याम॥

ऊपर पाठकजी के समकालीन कुछ मुख्य मुख्य कवियों की रचनाओं के नमूने दिये गये हैं। अब आगे पाठकजी के 'जगत सचाई सार' की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत हैं। एकान्तवासी योगी के प्रकाशित होने के बाद इस कविता को उन्होंने सन् १८८५ या ८६ में 'काशी-पत्रिका' में पहले-पहल छपवाया था। पंक्तिया ये हैं—

ध्यान लगाकर जो तुम देखो
सृष्टी की सुघराई को।
बात बात में पाओगे तुम
उस ईश्वर की चतुराई को।
ये सब भांति भाति के पक्षी
ये सब रङ्ग रङ्ग के फूल।
ये वन की लहलही लता
नव ललित ललित शोभा के मूल॥

यह समुद्र का पृथ्वीतल पर
छाया जो जलमय विस्तार।
उसमें से मेघों के मण्डल
हों अनन्त उत्पन्न अपार।
लरजन गरजन घनमण्डल की
बिजली बरषा का संचार।
जिसमें देखो परमेश्वर की
लीला अद्भुत अपरम्पार॥

× × × ×

पाठकजी ने हिन्दी के उपर्युक्त श्रेष्ठ कवियों के समय में कविता करके कीर्ति प्राप्त की थी। उपर्युक्त प्रमुख कवियों की भांति उन्होंने भी अपनी रचनाओं में उसी मार्ग को ग्रहण किया है जो उन लोगों ने निर्दिष्ट किया था। परन्तु पाठकजी की रचनाओं में एक यह विशेषता अवश्य देखने में आती है कि उन्होंने प्रकृति का वर्णन नये ढङ्ग से किया है। जैसे योरपीय कवियों ने प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन किया है, वही सुबोधता तथा विस्तार उनके प्राकृतिक वर्णनों मे दिखाई देते है। देश-भावपरक जो रचनायें उन्होंने की हैं उनमें गम्भीर करुण-स्वर ध्वनित होता है, धैर्य और दृढ़ता की झंकार सुनाई देती है। उनकी कृतियों में प्रेमघन, प्रतापनारायण आदि की रचनाओ कासा व्याकुलता और निराशा का राग नहीं है।

× × × ×

पाठकजी दरिद्र साहित्यिक नहीं थे। वे सरकार के दरबार में उच्च पद पर पहुँच गये थे, उन्हें पर्याप्त वेतन मिलता था। वे वास्तव में साहित्य-सेवी थे। उन्होंने हिन्दी की बड़ी भारी सेवा की है। इस समय हिन्दी की कविता में बोलचाल की भाषा का जो प्राधान्य है उसको अस्तित्व में लानेवाले सर्वप्रथम व्यक्तियों में एक वे भी हैं।

पाठकजी साहित्यिक थे। जिन लोगों को आपसे वार्तालाप करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उनको उनकी साहित्यिक सुरुचि तथा हिन्दी-प्रेम का तत्क्षण परिचय मिल गया है। वे बड़े मिलनसार और मधुर-भाषी थे। ऐसे श्रेष्ठ साहित्यिक की मृत्यु से हिन्दी की जो क्षति हुई है, सहसा उसकी पूर्ति होती अभी नहीं दिखाई देती।

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs 6-8] देवीदत्त शुक्ल [As 10 per copy

भाग २९, खण्ड २] नवम्बर १९२८—कार्तिक १९८५ [सं० ५, पूर्ण-संख्या ३४७

प्रेम का उपहार

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

कलक कलेजे की न नेक घटती है कभी,
चुभ रही नेज़े के समान बार बार है।
बढ़ गई ऐसा एक दम पीर मानस की,
काम कुछ आता नहीं कोई उपचार है।
भय है, तुम्हारी सुध भी न कहीं बह जाय,
बह रही लोचनों से ऐसी जल-धार है।
प्यार तो तुम्हारा हमें सुलभ हुआ है नहीं,
पर मिला प्यार का तुम्हारे उपहार है॥

(२)

विविध प्रकार दुख देने में हमे सदैव,
क्या तुम्हें बताओ, सुख मिलता अपार है।
बस तरसाते कलपाते रहते हो हमें,
हममें तुम्हारा इतना ही सरोकार है।
मन मे विचार कर तुम्हीं यह सोचो ज़रा,
कैसा प्रेम-पूरित तुम्हारा व्यवहार है।
क्यों न हो हमारी अश्रु-धार अति प्यारी हमें,
वह तो तुम्हारी प्रीति का ही उपहार है॥

श्रीरामायण-समालोचना

[परिचय]

[श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी]

बात कोई ४० वर्ष पहले की है। उस समय मराठी-भाषा के प्रसिद्ध लेखक और ग्रन्थकार, रावबहादुर चिन्तामणि विनायक वैद्य, एम० ए०, एल-एल० बी०, उज्जेन में सूबा या सर-सूबा थे। उनके लिखे हुए अबलोन्नति-लेखमाला नामक लेखों की उस समय बड़ी धूम थी। स्मरण तो यही कहता है कि ये लेख उन्हीं के लिखे हुए थे; पर, सम्भव है, किसी और के हो। लेख मराठी-भाषा में थे। उन्हें पढ़कर हमारे हृदय में लेखक महाशय के विषय में श्रद्धा का अङ्कुर उग आया। उनके अन्यान्य ग्रंथ और लेख पढ़ते पढ़ते वह अङ्कुर बढ़कर विशाल वृक्ष हो गया। महाभारत-विषयक उनके ग्रन्थ पढ़कर तो हमने बहुतही अधिक लाभ उठाया। इन ग्रन्थों में वैद्य महाशय ने महाभारत से सम्बन्ध रखनेवाले प्रायः सभी विषयों का जिस योग्यता से विचार किया है और उनकी तुलना-मूलक आलोचना करने में उन्होने जिस बुद्धि-तैक्ष्ण्य और सदसद्विवेचना का परिचय दिया है उसकी बार बार प्रशंसा करने को जी चाहता है। महाभारत के विषय में उनके एक ग्रन्थ का नाम है "उपसंहार"। उसे इस पञ्चम वेद की, सभी दृष्टियों से की गई चूडान्त समालोचना कहना चाहिए। इस पुस्तक को पढ़कर हमारे मन में यह भावना हुई कि यदि इसका हिन्दी-अनुवाद हो जाता तो अपनी भाषा के साहित्य में एक अमूल्य ग्रन्थ की सम्पन्नता हो जाती। यह सदिच्छा हमारे मन में बहुत समय तक योंही असफल पड़ी रही। सौभाग्य से मराठी-पुस्तक के प्रकाशकों को उसकी सफलता के लिए औरों ही ने प्रेरणा की। नतीजा यह हुआ कि मध्य-भारत के एक राजा साहब ने उनकी सहायता की। तब उन्होंने पण्डित माधवरावजी सप्रे से उसका हिन्दी-अनुवाद कराकर प्रकाशित कर दिया। इस अनुवाद का नाम है—महाभारत-मीमांसा। इसमें महाभारतकालीन राजकीय, सामाजिक, और धार्म्मिक आदि व्यवस्थाओं का बड़ा ही विशद और विवेचनात्मक वर्णन है। अतएव यह पुस्तक बड़े ही महत्त्व की है।

हिन्दी में इस पुस्तक के निकलने पर हमारी इच्छा वाल्मीकि-रामायण के सम्बन्ध में भी लिखी गई एक ऐसी ही पुस्तक देखने के लिए प्रबल हो उठी। रामायण महाभारत से भी पहले की है। रामायण के समय के भारत का ज्ञान होना हम भारतवासियों के लिए और भी अधिक महत्त्व की बात है। इस विषय मे हमने बहुत प्रयत्न किया और अनेक सुयोग्य सज्जनों से प्रार्थना की कि वे रामायण पर एक आलोचनात्मक पुस्तक—बड़ी न सही, छोटी ही—लिख देने की कृपा करें। परन्तु किसी ने इस प्रार्थना को हँसी में उड़ा दिया; किसी ने टालमटोल किया; किसी ने समर्थ होकर भी असमर्थता प्रकट की। इस प्रकार हिन्दी के हितैषियों ने यद्यपि हमें निराश कर दिया; तथापि मराठी-भाषा के कृतविद्य लेखकों और उद्योगशील प्रकाशकों के द्वारा हमारी उस पुरानी आकांक्षा की पूर्ति हाल में अनायास ही होगई।

मराठी-भाषा के मूल ग्रन्थ "उपसंहार" और उसके हिन्दी-अनुवाद, "महाभारत-मीमांसा" का प्रकाशन पूने की चिपलूणकर-मण्डली के स्वामी श्रीयुत बालकृष्ण पाण्डुरङ्ग ठकार ने किया है। उन्हीं की कृपा से वाल्मीकि-रामायण की भी समालोचना पढ़ने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ है। इस पुस्तक की कापी भेजकर हमें ठकार-महाशय ने अत्यन्त कृतज्ञ किया। इस सम्बन्ध में हम खांडवे के "कर्मवीर" नामक प्रसिद्ध पत्र के सम्पादक महाशय के भी ऋणी हैं। क्योंकि ठकारजी के पत्र से मालूम हुआ कि उन्हीं की प्रेरणा से ठकारजी ने यह पुस्तक हमें भेजने की कृपा की है।

वाल्मीकि-रामायण की यह समालोचना अवश्यही मराठी में है। परन्तु जैसे महाभारत की आलोचना का हिन्दी-रूपान्तर होगया है वैसे ही, आशा है, किसी दिन इसका भी अनुवाद हिन्दी में हो जायगा। और, तब, इससे हिन्दी-भाषा-भाषी जन-समुदाय भी लाभ उठा सकेगा।

महाराष्ट्र देश में एक महाशय बड़े विद्वान् और बड़े अच्छे मराठी-लेखक हैं। वे संस्कृत-भाषा के भी उत्कृष्ट ज्ञाता हैं। उन्होंने कई पाण्डित्यपूर्ण पुस्तकें मराठी में लिखी हैं। एक पुस्तक संस्कृत में भी लिखी है। उसका नाम है—"संस्कृत-व्याकरण-कारिका"। आपके लेखन-कार्य्य के सम्बन्ध में एक विशेषता है। वह यह कि आपने अपनी किसी भी पुस्तक में अपना नाम नहीं दिया। जो कुछ आपने अब तक लिखा है—"महाराष्ट्रीय" ही के नाम से लिखा है। रामायण के सम्बन्ध में भी आपने अपना यही नाम या उपनाम दिया है। आपके इस बड़े ही महत्त्व के ग्रन्थ का नाम है—"श्रीरामायण-समालोचना अथवा रामायण चा उपसंहार"।

इस ग्रन्थ के अवलोकन से हमारी यह धारणा हुई है कि "महाराष्ट्रीय" महाशय से बढ़कर रामायण का अन्य कोई ज्ञाता अपने देश में शायद ही हो। आपको समस्त रामायण हस्तामलकवत्-सी हो रही है। रामायण के अन्तर्गत आये हुए कितने ही प्रकीर्ण विषयों की संक्षिप्त समालोचनायें अँगरेज़ी, बँगला, मराठी आदि भाषाओं में निकल चुकी हैं। उनके लेखकों ने कहीं कहीं पर दृढ़तापूर्वक लिखा है कि अमुक बात ऐसी ही है। इन लोगों की ऐसी ऐसी कितनी ही कल्पनाओं और कितने ही निश्चयों को "महाराष्ट्रीय" महाराज ने एक ही फूँक में उड़ा दिया है। जिन वचनों या जिन श्लोकों के आधार पर उन्होंने अपने निष्कर्ष की पुष्टि की थी उसी निष्कर्ष के बाधक प्रमाण, प्रायः उसी स्थान या उसके आसही पास से, उद्धृत करके "महाराष्ट्रीय" जी ने समालोचकों की बनी-बनाई इमारत चुटकी बजाते ढहा दी है। पाठकों में से अनेक सज्जन जानते होंगे कि रावण की लङ्का की स्थिति इस समय बेतरह डाँवा-डोल हो रही है। कोई उसे अपनी पुरातत्त्वज्ञता के बल और तर्कना-ताण्डव की प्रचण्ड आँधी से उड़ा कर आसाम में फेंक रहा है, कोई उखाड़ कर उसे मालद्वीप के पास कहीं पटक रहा है, कोई उसे नज़दीक ही अमरकण्टक में स्थापित कर रहा है। इसी तरह रामायण में वर्णित और भी कितने ही आश्रमों, वनों, नगरों और नदियों की स्थिति की च्युति की जा रही है। इन पण्डित-प्रवरों की कल्पनाओं का विचार जिस योग्यता से "महाराष्ट्रीय" महाशय ने किया है उसकी शत-मुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है। आपने इन लोगों के कितने ही कोटि-क्रमों को रामायण ही से प्रमाण उद्धृत करके समूलही भ्रान्त क्यों, निर्मूल तक सिद्ध कर दिया है। आपकी आलोचना पढ़कर मन में यह भाव उदित होता है कि क्या सारी वाल्मीकि-रामायण आपको कण्ठ है और क्या, काम पड़ने पर, सभी प्रसङ्गों के अभीष्ट श्लोक इच्छा करते ही आपको याद आ जाते हैं? जिन लोगों की अवगति मराठी-भाषा से है उन्हें कम से कम इस पुस्तक के नवें भाग का "रामायणांतील स्थल-निर्णय"--नामक प्रकरण अवश्य ही पढ़ लेना चाहिए। स्थल-निर्णय संबन्ध में आज तक हिन्दी, मराठी, अँगरेज़ी आदि भाषाओं में जो कुछ लिखा गया है, प्रायः उस सभी की आलोचना करके "महाराष्ट्रीय" महोदय ने आलोचकों के भ्रम का निरसन किया है। जिन कीबे महाशय ने लङ्का का उत्खातन करके उसका आरोपण अमरकण्टक में करने के लिए अपनी पुराणतत्त्वज्ञता का प्रकटन किया है और उनके अनुयायी बन कर अन्य लोगों ने उनकी पृष्ठ-पोषकता करने में जो बुद्धिबल खर्च किया है उस सारे आयोजन को "महाराष्ट्रीय" जी ने निष्फल-सा कर दिया है। पञ्चवटी के संबन्ध में किया गया उनका विवेचन भी पढ़ने ही लायक़ है।

यह पुस्तक दो खण्डों में है। पहले खण्ड की पृष्ठ-संख्या ४ + २ + १५ + ३१ + ३७० = ४२३ और दूसरे खण्ड की ११ + ५ + ५०४ = ५२० है। इस प्रकार कुल पृष्ठ-संख्या ६२७ हुई। दोनों खण्ड एकही जिल्द में हैं, जो बड़ी सुन्दर है। काग़ज़ चिकना और मोटा है। टाइप स्पष्ट है। जहाँ जहाँ पुराणों और अन्य ग्रन्थों के

अवतरण, प्रमाण के रूप में, दिये गये है वहाँ वहाँ मोटा टाइप काम में लाया गया है। यह पुस्तक भोर-राज्य की सहायता से प्रकाशित हुई है।

इसके पहले खण्ड में ७ भाग हैं। यथा—

(१) रामायण की योग्यता
(२) रामायणकालीन लोक-स्थिति
(३) रामायण के राक्षस
(४) रामायण के वानर
(५) दन्तकथा और रामायण
(६) सन्दिग्ध परामर्श
(७) रामायण का प्रक्षिप्त भाग

दूसरे खण्ड में सिर्फ़ ४ भाग है। उनके नाम हैं—

(१) सङ्कीर्ण विवेचन
(२) रामायण का स्थल-निर्णय
(३) रामायण के पात्रों का गुणदोष-विवेचन
(४) रामायण के अवतार (अर्थात् भिन्न भिन्न रामायणों और रामचरितों की आलोचना)।

इस विभागोल्लेख ही से यह बात सहज ही ध्यान में आ सकती है कि रामायण के सम्बन्ध में लेखक ने कितने विस्तार से विवेचन किया है। उन्होने कोई बात ऐसी नहीं छोड़ी जिस पर कुछ कहा जा सकता हो और न कहा गया हो। लेखक ने भाषा भी बहुत सरल और मधुर लिखी है। क्लिष्ट से क्लिष्ट विषय का भी विवेचन बिना प्रयास समझ में आता चला जाता है। उन्हें रामायण का तो सर्वाङ्गीण ज्ञान है ही; उनके विवेचन से प्रकट है कि उन्हें अनेक पुराण भी हस्तामलक से हो रहे हैं; क्योंकि उनसे उन्होंने यथास्थान प्रमाण पर प्रमाण उद्धृत किये हैं। उनकी बहुज्ञता या बहुदर्शिता का यह हाल है कि रामायण के विषय में जहाँ, जो कुछ, जिसने, देश या विदेश में, लिखा है उस सबकी ख़बर उन्हें है। यहाँ, इस देश के, रामायणी लेखकों और आलोचकों की तो बात ही नहीं, भिन्न देशीय जनों ने अपनी अपनी भाषा में जो कुछ लिखा है उसके भी अधिकांश से लेखक परिचित मालूम हो रहे हैं। इससे सूचित होता है कि उनका अध्ययन और पुस्तक-परिशीलन कितना व्यापक और कितना विस्तृत है। तभी तो वे इतना उत्तम ग्रन्थ लिखने में समर्थ हुए हैं।

इस पुस्तक के कई भाग या प्रकरण अन्यों की अपेक्षा अधिक मोल के हैं। उदाहरणार्थ, पहले खण्ड का दूसरा भाग। उस भाग मे रामायण-काल में राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था के सम्बन्ध में जो विचार और जो ऊहापोह किया गया है उससे उस समय की लोक-स्थिति का बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है। परदे की प्रथा को लीजिए। किसी किसी का ख़याल है कि यह प्रथा इस देश में मुसलमानों के आगमन और उनके सम्पर्क के कारण अस्तित्व में आई है। पर बात ऐसी नहीं। रामायण में ऐसे कितने ही श्लोक हैं जिनसे सूचित होता है कि उस समय भी, स्त्रियों में अवगुण्ठन की प्रथा, किसी हद तक, जारी थी। हाँ, कई अवसर ऐसे भी निर्दिष्ट थे जब यह प्रथा शिथिल कर दी जाती थी और स्त्रियाँ परदा न करके बाहर निकल सकती थीं। रामायण की रचना महाभारत के पहले हो चुकी थी। पर रामायण-काल में भी मूर्तिपूजा का रवाज भारत में था। यह बात भी इस ग्रंथ के अवलोकन से प्रकट होती है। उस समय के व्यवसाय, वस्त्राच्छादन, ज़ेवर, सिक्के, धर्म्मरक्षा, वर्णव्यवस्था तथा राजा और प्रजा के अधिकार आदि का भी सप्रमाण वर्णन, पुस्तक-प्रणेता ने, इस प्रकरण में बड़ी योग्यता से किया है।

तीसरे और चौथे भागों मे राक्षसों और वानरों के रूप-गुण, आकार-प्रकार, वेशभूषा और नीति-कल्पना आदि का विशद विवेचन करके यह सिद्ध किया गया है कि ये लोग भी प्रायः मनुष्यों ही के सदृश थे—ये भी मनुष्य ही थे—भेद कुछ ही विशेष बातों में था।

पुस्तक के सातवें भाग में रामायण के प्रक्षिप्त अंशों का विचार किया गया है। इस प्रकरण में लेखक ने कुछ ऐसी कसौटियों का निर्देश किया है जिनकी सहायता से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इस ग्रन्थ का कौन सा अंश औरों के द्वारा पीछे से मिला दिया गया है। इस सम्बन्ध के विवेचन में लेखक ने बड़ी विद्वत्ता दिखाई है। उनके कोटि-क्रम से सूचित होता है कि रामायण पर उनका कितना अधिकार है और कितनी बारीकी से उन्होंने उसका अध्ययन किया है।

दूसरे खण्ड का आठवाँ भाग भी विशेष महत्त्व का है। उसमें समालोचनाकार ने भिन्न भिन्न लेखकों के द्वारा रामचन्द्र पर किये गये—उदाहरणार्थ, सीता-परित्याग पर किये गये—आक्षेपों का विवेचन किया है और जो आक्षेप उन्हें निराधार जान पड़े हैं उनका खण्डन भी उन्होंने किया है। पर ऐसा करने में उन्होंने मनमानी नहीं की। विचारपूर्ण और तर्कसङ्गत उत्तर देकर उन्होंने उनका प्रक्षेपण किया है। माइकेल मधुसूदन दत्त और रायसाहब दिनेशचन्द्र सेन तक के आक्षेपों और सम्मतियों का विचार उन्होंने किया है। जैनों की पुस्तकों में राम-जानकी आदि के विषय में कुछ ऐसी बातें कही गई हैं जिनका मेल रामायण से नहीं मिलता। "महाराष्ट्रीय" महाराज ने उनकी भी सदसद्विवेकपूर्ण आलोचना करने की कृपा की है। होमर की इलियड के सम्बन्ध में कुछ पाश्चात्य पण्डितों ने—विशेषतः प्रोफ़ेसर वेबर ने—यह लिख मारा है—कि रामायण उसी के आधार पर लिखी गई है। इस प्रवाद का प्रचालन कई भारतवासी विद्वान् पहले ही कर चुके हैं। उनके विवेचन के हवाले देकर लेखक ने अपनी नवीन कल्पनाओं के द्वारा उसकी निःसारता सिद्ध की है।

इस खण्ड के जिस नवें भाग में रामायण के स्थलों का निर्णय या निश्चय किया गया है उसका उल्लेख ऊपर, एक जगह, पहले ही किया जा चुका है। यह भाग इस ग्रन्थ का सबसे अधिक मनोरञ्जक और महत्त्वपूर्ण अंश है।

अन्तिम, अर्थात् ग्यारहवें, भाग में भिन्न भिन्न नामों से प्रचलित—अद्भुत-रामायण, अध्यात्म-रामायण, आनन्द-रामायण, भावार्थ-रामायण, तुलसीकृत-रामायण आदि—रामायणों की विवेचना और आलोचना है। रामचरित किस पुराण में किस तरह वर्णन किया गया है, इसका भी विवेचन करके लेखक ने अपने ग्रन्थ की पूर्ति की है।

ग्रन्थारम्भ में ग्रन्थकर्ता ने अपना "आत्मनिवेदन" लिखा है। उसके पाठ से यह बात ध्यान में आये बिना नहीं रह सकती कि ग्रन्थकर्त्ता महाशय में अद्भुत धैर्य्य है। अनेक असुविधाओं, अनेक कष्टों, अनेक निराशाओं पर विजय-प्राप्ति करके उन्होंने अपने अभीष्ट कार्य्य का समापन ही कर दिखाया की।

यदि उनमें सच्ची लगन न होती और यदि वे इस नीतिवाक्य के क़ायल न होते कि—

प्रारब्धमुत्तमगुणा न परित्यजन्ति तो वे अपनी इष्ट-सिद्धि में कभी कृतकार्य्य न होते।

ग्रन्थकार के आत्म-निवेदन के अनन्तर इस पुस्तक में एक इकतीस पृष्ठव्यापी लेख किसी अन्य सज्जन का लिखा हुआ है। उनका नाम है—"ज० स० करन्दीकर"। इस "ग्रन्थ-परिचय" नामक लेख में लेखक ने और और बातों के सिवा रामायण और महाभारत की पारस्परिक तुलना की है और यह निष्कर्ष निकाला है कि महाभारत में सामाजिक गुणों के उत्कर्ष का विवेचन है और रामायण में वैयक्तिक गुणों का। इसके सविस्तर विवेचन में उन्होंने बड़ा पाण्डित्य दिखाया है। यह परिचय लेखक की विवेचक बुद्धि का अच्छा नमूना है।

जङ्गली जानवरों का क्रिया-कलाप

[श्रीयुत ज्ञ]

अभी कल की बात है। सुबह मैं टहलने के लिए निकला। कोई एक मील जाने पर, गङ्गातट से कुछ ही दूर, मुझे एक खेत मिला। उसमें शकरकन्द बोई हुई थी। मेड़ पर फूस की एक झोपड़ी थी। उसी के पास दो आदमी—पिता-पुत्र—मन मारे उदास बैठे हुए थे। वही उस खेत के मालिक थे। वे मुझे जानते-पहचानते थे। पास जाने पर साहब-सलामत हुई। मैंने पूछा—क्या बात है? क्यों इस तरह चुपचाप बैठे हो? जवाब मिला—सामने खेत देखिए। देखा तो वह जगह जगह उजड़ा और खुदा हुआ पड़ा था—इस तरह उजड़ा जैसे किसी ने फावड़ों से उसे खोद डाला हो। कारण पूछने पर किसान ने जो कुछ कहा वह उसी के मुँह से सुन लीजिए—

महाराज, इस खेत की बदौलत मैं चार-पांच महीने अपने बाल-बच्चों को जिलाने की आशा रखता था। उस पर पानी पड़ गया। जब से गङ्गाजी की धारा यह किनारा छोड़कर, आधमील दूर, दूसरे किनारे की तरफ़ चली गई तब से बीच के कछार में रहनेवाले जङ्गली सुअर वग़ैरह रात को इस तरफ़ चले आते हैं और आलू, शकरकन्द, ज्वार, बाजरा आदि के खेतों पर छापा मारकर फ़सल बरबाद करते हैं। कल शाम तक शकरकन्द का मेरा यह खेत सही-सलामत था। रातभर में वह उजड़ गया।

उस किसान का विलाप सुनकर और उसके खेत की दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख हुआ। उससे मालूम हुआ कि उसी के सदृश चार-पांच आदमियों ने मिलकर कोई २५) इसलिए जमा किये थे कि उससे वे इसी देश की बनी हुई एक तोड़ेदार बन्दूक़ ख़रीदें और उसकी मदद से जङ्गली जानवरों से अपने अपने खेत की रक्षा करें। क़ायदे के मुताबिक़ उन्होंने डाक से कई दरख़्वास्तें, लैसंस लेने के विषय में, भेजीं। मगर एक का भी जवाब न मिला। तब उनमें से एक आदमी ज़िले के सदर मुक़ाम गया और वहां जाकर असालतन दरख़्वास्त दी। मगर उसे लैसंस न मिला—तुम्हे बन्दूक़ रखने और चलाने का शऊर नहीं। अपने ही गोली मार लो तो? किसी और ही का शिकार खेल डालो तो? किसी चोर-डाकू को डाकेज़नी के लिए बन्दूक़ दे दो तो? क़िस्सा कोताह, वह वहाँ से दुरदुरा दिया गया। उसे लैसंस न मिला। उसके, और मौज़े के दूसरे काश्तकारों के, खेतों की फ़सल बरबाद जाय तो लैसंस देनेवालों की बला से। उन लोगों के बाल-बच्चे भूखों मर जायँ, तो भी हाकिमों की बला से। लगान चुकाने के लिए उनके घर-द्वार बिक जायँ तो भी रियाया के माता-पिता की बला से। याद रहे, हथियारों के क़ानून (Arms Act) की रू से काश्तकारों को बिला फ़ीस ही के लैसंस देने की इजाज़त है।

अच्छा तो अब क्या हो? यह ठहरा कि ठाकुर बख़्त-बहादुर से इसकी फ़रियाद की जाय—उनसे कहा जाय कि आप मौज़े के ज़मींदार है। आपही एक बन्दूक़ रखिए। आपको आसानी से लैसंस मिल सकेगा। ठाकुर साहब को दया आई। उन्होंने काश्तकारों की बात मान ली। आपने एक अच्छे वकील से दरख़्वास्त लिखाई। उसमें क़ानून की उस दफ़ा का हवाला दिया गया जिसकी रू से किसानों को, बिला फ़ीसही के, काश्तकारी लैसंस दिये जाने की आज्ञा है। आपकी पेशी हाकिम ज़िले के सामने हुई। आपसे सम्बद्ध और असम्बद्ध अनेक प्रश्न पूछे गये। सबके जवाब आपने माकूल दिये। इस पर आपको इतमीनान होगया कि लैसंस दिये जाने का हुक्म हुआ ही समझो। हाकिम ने उनकी दरख़्वास्त पर हुक्म लिखकर उसे पेशकार साहब की तरफ़ बढ़ा दिया। हाकिम के उठ जाने पर चार-पांच बजे ठाकुर साहब

पेशकार साहब के सामने, खुशखुश, पहुँचे। तब पेशकार साहब ने दरख़्वास्त पर दिया गया हुक्म इस तरह सुनाया—

गज़नफ़रगज के अमुक नव्वाब साहब, पुरञ्जयपुर के अमुक राजा साहब, प्रान्तीय कौंसिल के अमुक माननीय मेम्बर साहब से अपनी नेक चलनी का सारटीफ़िकट ले आओ। तब तुम्हें लैसंस देने या न देने के बारे में फिर से ग़ौर किया जायगा।

कहने की ज़रूरत नहीं, बेचारे बख़्तबहादुर को इस तरह का एक भी सारटीफ़िकट न मिला। सुतरां उन्हें लैसंस भी न मिला। सो इधर तो उस मौज़े के कृषक अपने दुर्भाग्य पर ज़ार ज़ार रो रहे हैं; उधर नीलगाय, हिरन, सुअर, गीदड़ वग़ैरह उनके खेतों की फ़सलों पर धावे कर करके मौज उड़ा रहे हैं! फ़ौज के गोरे सिपाही और कभी कभी अन्य गौराङ्ग अफ़सर भी काले आदमियों का शिकार खेला करते हैं। यह बात अख़बार पढ़नेवालों से छिपी नहीं। उनके चाल-चलन की परीक्षा के सम्बन्ध में भी क्या कभी किसी ने किसी हाकिम को मीन-मेख़ करते सुना है? नहीं। इस विषय की सारी ख़बरदारी, सारी ज़िम्मेदारी और सारी जांच-पड़ताल-कारी बेचारे किसानों तथा अन्य देहातियों ही के लिए ख़र्च की जाती है! इसका नतीजा क्या होता है, यह बात सरकार की वह रिपोर्ट पुकार पुकार कर कह रही है जिसमें उसने हिंस्र जन्तुओं के द्वारा, १९२७ ईसवी में मारे गये मनुष्यों का हिसाब प्रकाशित किया है। इस रिपोर्ट से हत मनुष्यों का पता तो, घट-बढ़, लग जाता है। परन्तु फ़सलों को कितना नुक़सान पहुँचता है, इसका पता कौन लगा सकता है। सम्भव है, वह लाखों—और शायद करोड़ों—रुपये तक पहुँचता हो।

गैज़ट आव इंडिया में, गवर्नमेंट आव इंडिया के सेक्रेटरी महाशय ने जो वक्तव्य प्रकाशित किया है उसके अनुसार, १९२७ ईसवी के बारह महीनों में, इस देश में २,२८५ मनुष्यों को जङ्गली जानवरों ने मौत के घाट उतार दिया। १९२६ में केवल १,९८५ और १९२५ में केवल १,९६२ आदमी मारे गये थे। सो लगातार तीन साल से यह मृत्यु-संख्या बराबर तरक़्क़ी पर है। किन जानवरों के हिस्से में कितनी मौतें पड़ीं, इसका हिसाब नीचे देखिए—

बाघ—	१,०३३
तेंदुए—	२१८
भेड़िये—	४६५
रीछ—	७४
हाथी—	५६
लकड़बग्घे—	१२

इन सबका टोटल हुआ—१,८५८। रही ४२७ मौतें। सो उन्हें आप मगरों, जङ्गली सुअरों और गीदड़ों आदि के हिस्से की समझें। अभी आपको तक्षक महाराज के वंशधरों की कारपरदाज़ी का हाल सुनाया ही नहीं गया। वे जो कुछ कर रहे हैं या जो कुछ पिछले साल उन्होंने किया है उसके सामने बाघों और भालुओं, हाथियों और भेड़ियों आदि की कारपरदाज़ी कोई चीज़ ही नहीं। उन्होंने तो १९ हज़ार से भी अधिक आदमियों को यमालय में सैरसपाटा करने के लिए ज़बरदस्ती भेज दिया। इस तरह

साँपों की कृपा से	१९,०६९ और
जङ्गली जानवरों की कृपा से	२,२८५
	कुल—२१,३५४

आदमियों ने निर्वाण-पद की प्राप्ति की। इस सम्बन्ध में अपने प्रान्त को पहला नम्बर तो नहीं नसीब हुआ; दूसरा नम्बर उसने ज़रूर फटकारा। देखिए—

जङ्गली जानवरों के द्वारा मौतें

(१) मदरास में ५७९

(२) संयुक्त-प्रान्त में ५३०

साँपों के द्वारा मौतें

(१) बिहार और उड़ीसा में ५,३१०

(२) संयुक्त-प्रान्त में ४,७७५

अब आप यह भी मुलाहज़ा फ़रमाइए कि अपने प्रान्त में किन जानवरों ने कितने आदमी मार खाये या मौत के मुँह में पहुँचाये—

(१) हाथी—	१
(२) बाघ—	४२
(३) तेंदुए—	१२
	५५

	५५
(४) रीछ—	२
(५) भेड़िये—	४२६
(६) लकड़बग्घे—	४
(७) मगर, घड़ियाल आदि—	४०
	५३०

और प्रान्तों में हुई इन हत्याओं की तफ़सील देखकर क्या कीजिएगा। जाने दीजिए। भेड़ियों ने अपने प्रान्त में ये जो सवा चार सौ से भी अधिक आदमियों का ख़ून कर डाला, उसका इलाज कीजिए। वह न कर सकिए तो सोचिए तो सही कि किस तरह ये इतनी मौतें रोकी जा सकती हैं। अच्छा, यदि लोगों को बन्दूकें रखने के लिए आसानी से लैसंस मिल सकें तो ख़ूँख़्वार भेड़ियों की संख्या कुछ कम हो जाय या नहीं? इस उपाय से इस तरह होनेवाली नर-हत्या भी कम हो जाय और काश्तकारों की फ़सलें भी नष्ट होने से बहुत कुछ बच जायँ।

सरकार यद्यपि, अनेक कारणों से, लैसंस देने में सख़्ती से काम लेती है, तथापि उसने करुणा और दया तथा दीनवत्सलता और प्रजा-प्रेम को भी अपने हृदय में स्थान दे रक्खा है। दुःख में सुख की बात है तो इतनी ही है। वह हर साल लाखों रुपया उन लोगों में, बतौर इनाम के, बाट देती है जो इन हिंस्र जीवों का संहार करते हैं। चुनांचे उसने, १९२७ ईसवी में, १ लाख ३९ हज़ार रुपया तो जङ्गली जानवरों का शिकार करनेवालों और साढ़े बारह सौ रुपया सर्प-संहारकों को, दे डाला। इस इनाम की बदौलत २५½ हज़ार जानवर और ५७ हज़ार साँप मारे गये। मारे गये जानवरों की तफ़सील यह है—

(१) बाघ—१,३६४
(२) तेंदुए—४,३६०
(३) रीछ—२,७३९
(४) भेड़िये—२,४३९

हर साल इतनी हत्या होने पर भी ये कम नहीं होते, बढ़ते ही जाते हैं। रक्त-बीज से तो कहीं इनका कोई रिश्ता नहीं?

कान्त-कामना

गीत

[श्रीयुत अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"]

मङ्गल-गान सुर-वधू गावे।
बहु-विमुग्ध दिग्वधू दिखावे।
विलस गगन-तल में छबि पावे।
सुमन स-वृन्द सुमन झर लावे।
विविध-विनोद-वितान विधि-सदन में तने। १।

समय ललित-लीला-मय होवे।
काल कलंक-कालिमा धोवे।
रंजन-बीज रजनि-कर बोवे।
दिन-मणि दिवस-मलिनता खोवे।
छाया हो छबि-मयी धूप छिति पर छने। २।

जन-मन- रञ्जन ऋतु बन जावे।
मधु मधु-मयता-मन्त्र जगावे।
मञ्जु-वारि वारिद बरसावे।
पवन-प्रवाह सरसता पावे।
सदा सुधा में रहें सुधाकर-कर सने। ३।

सब तरु-वर मीठे फल लावें।
ललित लता वेलियाँ लुभावें।
सुमन-सकल फूले न समावें।
तृण मुक्ता-फल-मञ्जु दिखावें।
विपुल-अलौकिक-जड़ी विपिन-अवनी जने। ४।

कञ्चन प्रजू नगर हों न्यारे ।
ग्राम हों प्रकृति-सुकर सँवारे ।
बने शस्य-श्यामल थल सारे ।
सुन्दर-सरि-सर-सलिल सहारे ।
नग-मय हों नग-निकर रत्न दें खनि खने । ५ ।

जन जन सिद्धि-साधना जाने ।
हो सब सु-जन सु-बोध सयाने ।
बुद्धि विमुक्ति-महत्ता माने ।
विबुध विबुधता-पद पहचाने ।
हित-विधायिनी-विविध-बात जी में ठने । ६ ।

पूत-प्रीति-रस प्रेम पिलावे ।
सुमति-सुधा मानस उमगावे ।
बन्धु-भाव-व्यञ्जन भा जावे ।
मानवता-मधु मुग्ध बनावे ।
रुचि उपजाये रुचिर-चरित-रुचि-कर चने । ७ ।

उभय-लोक-वैभव अपनावे ।
निर्भय हो भय-भूत भगावे ।
मञ्जुल-भाव-भावना भावे ।
भव-भावुकता-भरित कहावे ।
भूरि-विभूति-निकेत भरत-भूतल बने । ८ ।

आकाश में मेरी पहली उड़ान

[श्रीयुत सत्यदेव परिव्राजक]

वीएना से पौने तीन मास रहने के बाद मैं प्राग आगया। भारतवर्ष के लोग इस प्राचीन नगर से सर्वथा अपरिचित हैं। थोड़े पढ़े-लिखे लोग ही इस नगर के विषय में कुछ जानते होंगे। इसका कारण यह है कि जिस बोहिमिया (Bohemia) राज्य की यह राजधानी रहा वह आस्ट्रिया के साम्राज्य के अधीन था। फिर भला इस नगर को कोई विशेष प्रसिद्धि क्यों मिलती। अब योरपीय महासमर के बाद बेचारे चेख लोग स्वतन्त्र हुए हैं। पिछले तीन सौ वर्षों से वे आज़ादी के लिए सिर पटकते रहे, लेकिन ज़बर्दस्त आस्ट्रिया के पञ्जे से छुटकारा न पा सके। योरपीय महासमर ने बहुत से ग़ुलाम देशों को स्वतन्त्र होने का अवसर दिया था। जिन अभागों ने उस अवसर को खो दिया वे हाथ मलते रह गये, और जो भाग्यशाली चैतन्य थे, उन्होंने हाथ मार लिये और आज वे रङ्गरेलियां मना रहे हैं।

योरपीय महासमर-द्वारा नवजात इस रिपब्लिक का नाम चेकोस्लोवाकिया है। प्राग इसकी राजधानी है। भारतवर्ष के साथ इस छोटे से देश का बड़ा व्यापार है। इसका माल हमारे यहाँ ख़ूब खपता है। यहाँ तक इसकी तिजारत बढ़ी है कि यहीं की मिलों का कपड़ा इँग्लेंड में जाकर "Made in England" अर्थात् इँग्लेंड की मोहर खाकर अँगरेज़ी नाम से बिकता है।

क़ुदरत के रङ्ग हैं। सवा करोड़ की आबादी का यह छोटा सा देश आज़ादी मिलने पर आज कैसी जल्दी आगे बढ़ रहा है। इसके शहरों को देखिए, मानो सोते से जगे हैं। चारों तरफ़ नये मकानों के बनने की धूम है। मैं प्रायः पुरानी इमारतें देखने नहीं जाया करता। मैं नगर के गली-कूचों तथा इर्द-गिर्द के ग्राम-क़स्बों में घूम कर यह देखता हूँ कि लोग क्या कर रहे हैं। कहीं लड़ाई, दङ्गा-फ़िसाद देखने में नहीं आता। लोग अपने अपने कामों में लगे हैं। नई आबादी तेज़ी से बढ़ रही है। बड़ी भारी ख़ूबी जो मैं योरपीय नगरों में देखता हूँ—ख़ास कर जो नये बस रहे हैं—वह यह है कि प्रत्येक बाज़ार-गली के दोनों किनारों पर, पार्श्व-पथ के साथ साथ, वृक्षों की क़तारें लगाई गई हैं। मैं घंटों घूमता हूँ और आज-कल जून-जुलाई में इन पादपों की शीतल छाया में सुखद समीर का आनन्द लेता हूँ। मैं सोचता हूँ—देखो, मेरा देश कैसा गर्म है। चाहिए यह था कि

भारतवर्ष के सारे नगर इसी ढङ्ग पर बसाये जाते। हमारे बाज़ार, गली-कूचे खुले होते और उनमें बराबर वृक्षों की क़तारें होतीं ताकि हम लोग सूर्य्य की जलानेवाली किरणों से बचकर वृक्षों की सघन शीतल छाया का सुख उठाते। पर हमारे बाज़ार, गली-कूचे टेढ़े-मेढ़े बेसिर-पैर के—चाहे लाहौर देखो या अमृतसर, चाहे बनारस देखो या कानपुर। इसका कारण क्या है? इसका कारण केवल हिन्दुओं का बनियापन है। हमारे लोग सदा अपने पैसे और प्राणों की रक्षा की मुख्य चिन्ता कर आत्मरक्षा के साधन जुटाते रहे, कभी मर्द बनकर—आगे बढ़ कर—मारने की नीति का अवलम्बन न किया। यदि ऐसा करने की वे आदत डालते तो अपने स्वतन्त्र इच्छानुसार, सर्व-सुख-साधन-सम्पन्न नगर बसाते। हमारे पुराने ढङ्ग के घर भी वैसे ही हैं, जिनमें जवान आदमी सीधा खड़ा होकर जा नहीं सकता। उनके बनाने में भी वही लुटेरो के भय का रोग काम कर रहा है। पैसे और प्राणों के मोह ने हमारी कितनी अधोगति की है। इस नीति ने हमें किस दीन-अवस्था पर पहुँचाया है।

× × ×

चेख लोग पश्चिमी योरपीय जातियों की तरह नहीं है। ये सीधे सरल स्वभाव के होते है। भाषा इनकी विकृत संस्कृत की भांति है। भारतवर्ष की संस्कृति से ये प्रेम रखते हैं और रङ्ग भी बहुतों का सांवला है। ये लोग स्लाव (Slav) कहलाते हैं। रूसी, पोलेंड और चेख लोगों की भाषायें बहुत मिलती-जुलती है।

जब मैं प्राग Prague आया तब यहाँ का रङ्ग-ढङ्ग देखकर कुछ विस्मित हुआ। बर्लिन से यहाँ बहुत सस्ता है। बर्लिन में कमरे के (सब ख़र्च मिलाकर) सवा चार पौंड देने पड़ते थे। यहां दो पौंड से कम मासिक किराये पर कमरा मिलता है। नौकर की तनख़्वाह और कपड़ों की धुलाई भी शामिल है। ऐसा सस्ता कमरा दिल्ली, लाहौर और प्रयाग आदि नगरो में भी नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त जो विद्यार्थी चार-पांच पौंड महीना भी नहीं ख़र्च कर सकते उनके लिए 'विद्यार्थी'-गृह (Students' Home) बना है। वहां नीरोग भोजन बहुत सस्ते में मिल जाता है। एक बार मैं भी वहां खाने गया था। जो चीज़

प्राग का पार्लीमेन्ट-भवन

दरकार हो, लिस्ट देखकर चुन लीजिए। फिर पैसा देकर अपनी थाली उठा लाइए और मेज़ पर रखकर खा लीजिए। बस, सीताराम, सीताराम। चौदह सौ विद्यार्थियों को मैने इस गृह में भोजन करते पाया। रूसी, पोल, हंगेरियन, जर्मन, फ़िन्नी, आस्ट्रियन—सभी देशों के ग़रीब यहां भोजन कर विद्याभ्यास करते है। केवल एक भारतीय छात्र, इन्द्रप्रसाद जैनी, यहा है। यहा आकर हमारे ग़रीब विद्यार्थी बड़े मज़े से विद्याभ्यास कर सकते है, पर वे भारत मे जर्मन-भाषा का अभ्यास अवश्य कर लें।

पाठक, आपके यहाँ भी ग़रीब विद्यार्थियों के लिए प्रत्येक बड़े नगर में 'विद्यार्थी-गृह' बन सकता है, जहाँ बहुत सस्ते में सुन्दर भोजन छात्रों को मिल सकता है, पर हम लोगों को तो चौके ने मार दिया। हमारा चौगुना-पँचगुना ख़र्च और पदार्थों की भयङ्कर बर्बादी तो केवल इसी छूआछूत के भूत के कारण होती है। हमारा उत्थान बहुत शीघ्र हो जाय, हम उस रबर के गेंद की तरह उछल उठें जो अपने ऊपर दबाव के हटने पर बम से उभर जाता है। यह छूआछूत हमारी उन्नति के मार्ग में विषम बाधा है।

× × × ×

आज बुधवार के दिन मै अमेरिकन एक्सप्रेस कम्पनी के दफ़्तर मे गया। प्राग से एक सौ सत्तर मील के फ़ासले पर ब्रनो (Brno) नगर में प्रदर्शिनी हो रही थी। दिल में आया, चलो झाकी लगा आवें, कुछ अनुभव ही होगा। पूछने पर पता लगा कि ब्रनो सवा घंटे में आकाश-यान (Airoplane) जाता है। रेल में चार घंटे लगते हैं। आकाश-यात्रा करने की मेरी पुरानी इच्छा एक-दम चैतन्य हो उठी। मैंने एक सौ चालीस क्राउन (साढ़े बारह रुपये) देकर एरोप्लेन का टिकट ख़रीद लिया।
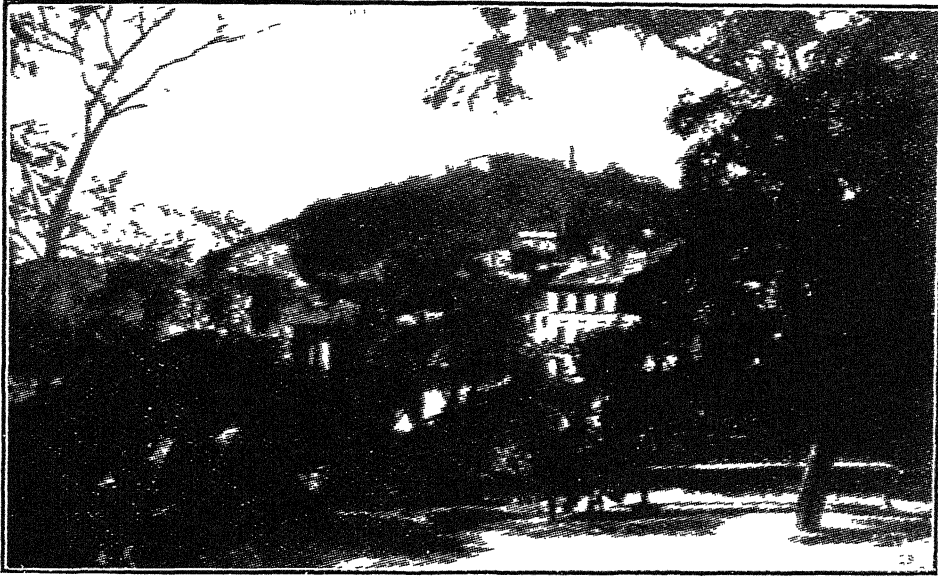
दूर पहाड़ी पर स्पीलबर्ग का क़िला दिखाई पड़ रहा है। इसी में आस्ट्रियन बादशाह देश-भक्तों को घोर दण्ड दिया करते थे।

यह टिकट १९ जून सोमवार के लिए था। चार दिन पहले से टिकट लेने का अभिप्राय था तैयारी करना। घर में आकर रात को मैं जब बिस्तरे पर लेटा तब मन में विचार-तरंगों के दो दल होगये, और लगा परस्पर तर्क-युद्ध होने। नरम पार्टी दूरंदेशी का उपदेश देती थी और कहती थी कि मनुष्य को बुरी-भली सभी हालतों के लिए तैयार रहना चाहिए। गरम पार्टी की युक्ति कुछ इस प्रकार थी—"छिः, भला आकाश-विमान में भी कोई मौत का डर है। और डर है कहां नहीं? अपने जीवन में कितनी बार मौत के दर्शन हो चुके हैं। ज़रा गिनो तो। क्या यह एरोप्लेन उस ज़हरीली गैस से भी ख़ौफ़-नाक है जो सन् १९२४ के फ़रवरी मास में नेपल्स से पालरमो जाते समय स्टीमर में रात के समय किसी ने केबिन में रख दी थी? वह ज़हरीली गैस न मार सकी तब इस एरोप्लेन में क्या होने लगा।"

लेकिन इन दोनों दलों के झगड़े को मिटानेवाली भाई बरजोरजी भरूचा की आवाज़ दूर बम्बई से आ रही थी—

"पबलिक में काम करनेवाले मनुष्य का फ़र्ज़ है कि वह कोई बात कच्ची न रक्खे। उसे बुरी से बुरी हालत की तैयारी कर लेनी चाहिए।"

× × ×

बृहस्पतिवार का दिन चिट्ठियां लिखने में बीता। वसीयत-नामा लिखकर भारत रवाना कर दिया। अपने विश्वासपात्र प्रेमियों को आख़िरी बातें लिख दीं। दो-तीन दिन इसी लिखा-पढ़ी में बीते।

प्राग का नेशनल-थियेटर

रविवार की रात को शय्या पर लेटे हुए पुराने बाल्य-काल के संस्कार जाग पड़े। छत्तीस वर्ष पहले, लाहौर में, मैंने वाल्मीकि-रामायण का सुन्दर हिन्दी-अनुवाद पढ़ा था। उसमें की नभ में विचरनेवाले देवताओं की कथायें तथा पुष्पक विमान की बातें याद आ गईं। उस समय क्या सोचा करता था। यही—

"धन्य वे सत्ययुगी लोग जो आकाश में पक्षियों की भांति विचरते थे। वह ज़माना क्या फिर भी आ सकता है?"

क्या कभी स्वप्न में भी यह बात आ सकती थी कि अपनी उनचास वर्ष की अवस्था में मैं भी विमान-द्वारा योरप की सैर करूँगा और उन्हीं सत्ययुगी लोगों की तरह आकाश में निश्चित बैठा हुआ नीचे मर्त्यलोक के जन्तुओं पर दृष्टि डालूँगा। जङ्गल, पहाड़ और नगर मेरे नीचे गुज़रते चले जायँगे।

दैव तेरी अद्‌भुत लीला है!

× × ×

सोमवार २५ जून सन् १९२८ का दिन आ गया। आज दिन के एक बजे आकाश-यात्रा करनी है। घर की मालकिन और उसकी लड़की मेरे कमरे में आकर पूछने लगी—

"आपको डर नहीं लगता?"

मैंने मुस्करा कर कहा—

"डर काहे का?"

घर की मालकिन गम्भीरतापूर्वक बोली—

"देखिए पान (मिस्टर) प्रोफ़ेसर, आप अपने मुल्क से दूर हैं, कुछ हो जायगा तो हम लोग क्या करेंगे?"

मैंने हँसकर पूछा—

"क्या एरोप्लेन की घटनायें आप अपने अख़बारों में पढ़ती हैं?"

इस पर उसकी लड़की फ़ौरन बोल उठी—

"पढ़ती क्यों नहीं! अभी उस दिन तो एरोप्लेन के गिरने से सिपाही मरे हैं।"

मुझे उस घटना की बाबत मालूम था। मैंने धीरे से कहा—

"आप लोग मेरे लिए चिन्ता न करें। वह लड़ाई का एरोप्लेन था। जो सिपाही हवा में लड़ना सीखने ऊपर जाते हैं उनके विमान का फटना मामूली बात है।"

प्राग का म्यूज़ियम

उनके आग्रह करने पर मैंने उन्हें अपना भारत का पता लिखवा दिया ताकि वे आवश्यकता पड़ने पर उसे काम में ला सकें।

ठीक साढ़े दस बजे पौने दो सौ पौंड अपनी जेब में रख, एक छोटा सूट केस हाथ में लेकर, मैं सबसे बिदा हो घर से बाहर निकला।

× × ×

घर की मालकिन—पानी जेरोलिम बड़ी सुशीला स्त्री थी। उसके हृदय में दूसरों के दुख के लिए अगाध प्रेम था। उससे न रहा गया। मुझे छोड़ने, एरोप्लेन के दफ़्र तक, साथ गई। वहाँ मुझे दस क्रौन (पन्द्रह आने) सूट केस का किराया भी पड़ गया। ठीक बारह बजे लारी आई और हम सात मुसाफ़िर आकाश में उड़ने के लिए रवाना हुए। घर की मालकिन ने—"Mit Gott अर्थात् ईश्वर आपकी रक्षा करे"—कह कर आशीर्वाद दिया।

पर मार सके और उड़ान ले सके। यहाँ पहले दफ़्तर के बाबू से मुलाक़ात की। तदुपरान्त हम लोग विमान के पास गये।

एक बहुत चौड़े मैदान में हम लोग आ गये। हरी हरी दूब के बिछौने से सुसज्जित यह मैदान आँखों को बड़ा भला मालूम देता था। यहाँ कई 'पक्षी' बैठे थे, जो उड़ने की तैयारी कर रहे थे। सरस्वती के पाठकों के ज्ञानार्थ उनमें से एक का चित्र भी दिया गया है, जो बड़ी दौड़-धूप से मिल सका है।
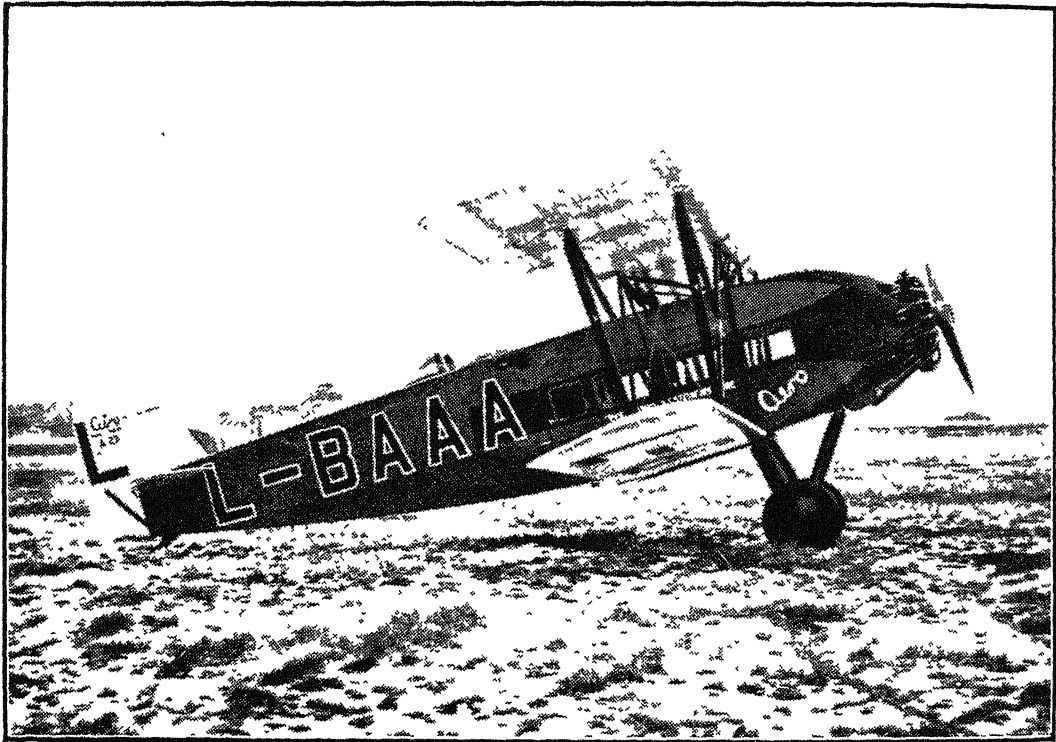
यही बीसवीं शताब्दि का पक्षी है। इसी एरोप्लेन पर बैठ कर मैंने पहली बार आकाश-यात्रा की।

लारी शहर के गली-कूचे पार करती हुई जा रही थी। आध घंटे में शहर से बाहर निकले। खेत शुरू हो गये। ठीक एक बजे के क़रीब हम बीसवीं शताब्दी के इस अद्भुत पक्षी—एरोप्लेन—के घोंसले के पास पहुँचे।

इस पक्षी का काम छोटे घोंसले से नहीं चल सकता। इसे ख़ूब-चौड़ा मैदान चाहिए, जहाँ यह निःशंक होकर

जिस एरोप्लेन से मैं पहली उड़ान करनेवाला था वह ठीक पक्षी के नमूने का होता है। उसी प्रकार दोनों ओर पर फैले हुए होते हैं। बीच में छोटी डोंगीनुमा पेट, और मुँह के पास हवा को पीछे धकेलनेवाला चक्र रहता है। जैसे स्टीमर में नीचे के चक्र इंजिन-द्वारा चल कर पानी को पीछे धकेलते हैं और आगे बढ़ते चले जाते

है, ठीक इसी प्रकार यह चक्र हवा को पीछे हटाता हुआ विमान को आगे उड़ाता चला जाता है। आकाश में उड़ता हुआ यह विमान ठीक पक्षी की तरह जान पड़ता है, मानो कोई बड़ा भारी गिद्ध उड़ा जा रहा है।

जब एरोप्लेन का चक्र चला तब फ़र्राटे का वायु बहने लगा। हम लोग अन्दर पक्षी के पेट में घुस गये। वहां दोनों तरफ़ खिड़कियों के पास पांच पांच सीटें (स्थान) लगी हुई थीं। बायें हाथ की एक कुरसी पर, खिड़की के पास, मैं भी बैठ गया और लगा आकाश-यात्रा का इन्तिज़ार करने।

× × ×

योरपीय महासमर के पहले मुझे रात को वायु-यान मे उड़ने के स्वप्न बहुधा आया करते थे। प्रायः रात को मैं नींद में आकाश-भ्रमण किया करता था। युद्ध के दिनों में स्वप्नों का विषय कुछ बदल गया। एरोप्लेन में बैठ कर उड़ा तो वैसे ही करता था, पर सी० आई० डी० (खुफ़िया पुलिस) वालों को चकमा देने के लिए। जब वे लोग मुझे पकड़ने के लिए अपने दल-बल-सहित आते तब मैं अपने एरोप्लेन में बैठ कर फ़ौरन आकाश की ओर चल देता और वे लोग हक्का-बक्का खड़े रह जाते। मैं ऊपर अपने उड़नखटोले मे बैठा हुआ उनकी नाकारी नौकरी पर अफ़सोस करता था।

सन् १९२२ में मुझे फिर एरोप्लेन के स्वप्न आने लगे, जो दो-तीन माह बाद बन्द हो गये। जब मैं योरप से लौट कर सन् १९२४ में भारत आया तब फिर मुझे रात को, भव्य भवनों के ऊपर, आकाश मे विचरने के स्वप्न आने लगे। एक बार की बात मुझे ख़ूब याद है। उसको यहां लिख देना अनुचित न होगा।

दिल्ली से मैं लखनऊ की हिन्दू-सभा के जलसे पर जाने के लिए गाड़ी में सवार हुआ। सेकंड क्लास के डिब्बे में मेरा स्थान सुरक्षित था। जब मैं अपनी जगह पर जाकर बैठा तब जो प्रेमी मुझे स्टेशन पर छोड़ने आये थे उनसे पता लगा कि स्वामी श्रद्धानन्दजी तथा पण्डित मदनमोहन मालवीय भी उसी गाड़ी से लखनऊ उसी अभिप्राय के हेतु जा रहे हैं और वे भी उसी डिब्बे में बैठेंगे। मैं प्रसन्न होगया। माननीय साथी मिल गये। स्वामी श्रद्धानन्दजी थोड़ी देर बाद ही आ गये और हम लोगों मे बातचीत होने लगी। मालवीयजी प्रायः गाड़ी छूटने के समय ही स्टेशन पर पहुँचा करते हैं, पर उस रोज़ न जाने कैसे कुछ मिनट पहले आ गये और लगे इधर-उधर फ़र्स्ट क्लास (पहले दर्जे) मे जगह तलाश करने। स्वामी श्रद्धानन्दजी गाड़ी से उतर कर उनके पास गये और फिर लौट कर मुस्कराते हुए मुझसे बोले—

"आपके कारण मालवीयजी इस डिब्बे मे नहीं आना चाहते।"

मैंने हँसकर कहा—

"कृपा कर आप उन्हें ले आइए। उनकी सीट इसी डिब्बे में रिज़र्व्ड है। मैं उनसे कोई वाद-विवाद नहीं करूँगा।"

स्वामीजी उन्हे ले आये। मालवीयजी के धार्मिक और सामाजिक विचार चाहे कैसे ही तंग क्यों न हों, पर यों तो वे चारु-चरित्रवान् (Polished Gentleman) व्यक्ति हैं। अपनी नीचे की सीट उन्होंने स्वामी श्रद्धानन्दजी को दी और अपने ऊपर की सीट पर चढ़ कर बिस्तरा लगाया।

उस रात एरोप्लेन में उड़ने का मैंने बड़ा भयङ्कर स्वप्न देखा। सब सोये हुए थे। रात को दो बजे होंगे। एक्सप्रेस तेज़ी से जा रहा था। स्वप्न में मैं एरोप्लेन-द्वारा आकाश में उड़ा। दूर कहीं पहाड़ियों में चला गया। वहां से नीचे उतरना शुरू हुआ। उतरते उतरते एरोप्लेन एक बड़े दलदल में जा फँसा और नीचे नीचे धँसने लगा। मैं ज़ोर से चिल्ला उठा। स्वामी श्रद्धानन्दजी जाग पड़े। उठ कर फ़ौरन मेरे पास आये, और स्नेह-पूर्वक बोले—

"आपके हाथ छाती पर पड़े हुए थे, इसी लिए ऐसा हुआ है।"

मैंने धीरे से उत्तर दिया—

"स्वामीजी, मेरा एरोप्लेन दलदल मे जा धँसा था। मैं उसमें गड़ा जा रहा था। इसी लिए डर कर चिल्लाया था।'

स्वामीजी हँसने लगे। फिर अपने बिस्तरे पर जाकर लेट गये।

× × ×

आख़िर एक बज कर पाच मिनट पर हमारे पक्षी महाशय ने पंख मार कर उड़ना शुरू किया। पहले धीरे धीरे जैसे कोई ढलान पर चढ़ता है, उड़ान प्रारम्भ हुई। घास का बृहत् मैदान इसी लिए है ताकि पक्षी ख़ूब सुचित्त हो कर उड़ सके। उड़ान पहले आहिस्ते आहिस्ते हुई। आठ सौ फ़ुट ऊपर पहुँच कर पक्षी वेग के साथ रास्ता काटने लगा। मैं खिड़की के शीशे-द्वारा नीचे के दृश्य देख रहा था। उड़न-खटोला कभी सात सौ फ़ुट पर हो जाता, कभी फिर ऊपर आ जाता। नीचे गाँव के गाँव खेतों के खेत तथा क़स्बे गुज़र रहे थे। ईश्वर की कृपा से आज दिन हमारे मन के लायक़ था। खिली हुई धूप—बादल का नाम नहीं—सब कुछ साफ़ दिखलाई देता था। सड़कें साँपों की तरह बल खाती हुई सफ़ेद सूत की तरह जान पड़ती थीं। बड़े बड़े जंगल, मीलों लम्बे, ऊपर से कितने छोटे दिखलाई पड़ते थे। सचमुच मुझे मज़ा आ गया। हवा में उड़ा जा रहा था। उस समय मुझ पर आनन्द की मस्ती छा गई और अपना वह प्यारा भजन याद आया जिसे मैंने भारत में हज़ारों लोगों के सम्मुख, भिन्न भिन्न प्रान्तों में, गाया था। मस्ती में मैं गुनगुनाने लगा—

भाइयो, संगठन का अब बिगुल बजना चाहिए।
देश भर के हिन्दुओं का संघ रचना चाहिए॥
छूत का झूठा बखेड़ा दूर होना चाहिए।
हिन्दुओं में प्रेम-रस का बीज बोना चाहिए॥
जाति की जीवन-कथा को अब जिलाना चाहिए।
वीर-हिन्दूकीर्ति के गीत गाना चाहिए॥
जाति-पाँति की दीवारों को गिराना चाहिए।
फूट के इन कारणों को अब मिटाना चाहिए॥

ब्रेनो का एक गिरजा

संघ-सैनिक-शूर बन कर दल बढ़ाना चाहिए।
देश भर में शुद्धि का चक्कर चलाना चाहिए॥
'देव' यह संगठन का मारग बताना चाहिए।
बिगुल की आवाज़ को घर घर सुनाना चाहिए॥

विमान हवा में रास्ता तय कर रहा था। वह अपना गाना गा रहा था और मैं अपना।

वह पुराना वर्षों का स्वप्न—आकाश में उड़ने का स्वप्न—आज पूरा हुआ। क्या दूसरा स्वर्गीय स्वप्न—भारतवर्ष की स्वाधीनता तथा हिन्दुओं की प्राचीन कीर्ति के पुनरुत्थान का भी पूरा होगा, होगा? होगा, अवश्य होगा और मेरे सामने होगा। यही विचारता हुआ मैं एरोप्लेन की खिड़की में से चारों ओर दृष्टि दौड़ाता था। जब पक्षी नीचे डुबकी लगाता तब पेट में सनसनी होने लगती थी। लेकिन मैं झूला झूलने का अभ्यस्त हूँ, इस कारण इसका कुछ विशेष असर मुझ पर नहीं होता था, जो यात्रा का मज़ा किरकिरा कर सके। हां, एक बात अवश्य हुई। पौन घंटे के बाद हमें बड़ी गरमी लगी। खिड़कियां सब बन्द थीं। उन्हें खोलते हुए डरते थे कि कहीं वायु-नौका उलट न जाय। इंजिन के हम लोग पास ही थे, उसके पेट्रोल की गन्ध भी मन-भावनी नहीं थी। शायद इसी से हम सब पसीने पसीने हो गये।

दो बज कर दस मिनट पर पक्षी ने नीचे उतरना शुरू किया। ब्रनो आ गया था। पक्षी अपने इस नगर के घोंसले के पास पहुँच कर भूमि पर पंजे मारता हुआ मैदान में चुपचाप बैठ गया।

× × ×

निस्सन्देह विदेश में वह पुरुष बड़ा भाग्यवान् है जिसका स्वागत करने के लिए मित्र-प्रेमी स्टेशन पर मौजूद रहते हैं। यात्री को उन प्रेमियों की स्वागत-मुसकान क्या मीठी मालूम देती है। आहा!

प्रभु की मुझ पर परम कृपा है। इस विदेश में भी मुझे ऐसे प्रेमी लोग मिल जाते हैं। एरोप्लेन से उतर कर नगर जाने के लिए जब मैं मोटर-बस में बैठा तब एक बूढ़ी औरत आकर ड्राइवर से पूछने लगी—"तुम्हारे एरोप्लेन में कोई अँगरेज़ी बोलनेवाला भी आया है?"

उसने मेरी तरफ़ इशारा कर दिया। मैं भी समझ गया था कि लेडी मेरे ही लिए आई है। वह वृद्धा मेरे पास आकर हाथ मिलाकर बैठ गई। हम लोग अँगरेज़ी में बात-चीत करने लगे। वार्तालाप करने पर पता लगा कि देवी केवल अँगरेज़ी ही नहीं बोलती, वह इटालियन, रशियन, जर्मन और फ्रेञ्च भी बहुत अच्छी बोलती है। एसपेरेन्टो का भी उसे खासा अभ्यास है। ऐसे साथी को पाकर मैं बड़ा ख़ुश हुआ।

पाठक हैरान होंगे कि मैं परदेश में ऐसे सहकारी विश्वासपात्र स्त्री-पुरुष कैसे तलाश कर लेता हूँ, जो मेरा सब प्रबन्ध कर देते हैं? असल में बात यह है कि अनुभव से मनुष्य सब कुछ सीख जाता है। मैं पुराना परिव्राजक हूँ—पुराना पक्षी हूँ—नित्य नये घोंसले बनाता हूँ, रोज़ नये घरों में रातें गुज़ारता हूँ। इसी लिए मैं उन सब वस्तुओं की पहले से चिन्ता कर लेता हूँ जो मुसाफ़िर के लिए अत्यन्त उपादेय है। योरप है सहयोग का घर तथा समाज-वाद की भूमि, भारत है व्यक्तिवाद का घर और चौके की भूमि। योरपीय देशों में यात्रा करना बड़ा सहल है, यदि पुरुष को थोड़ा भी उपयुक्त अनुभव हो। यहां केवल वही लोग मार खा जाते हैं, ठगे जाते हैं, जेबें करतवा लेते हैं, जो चकलों में घूमते हैं। जो लोग मिथ्याभिमान (Vanity) में डूब कर अपने पैसे की इश्तिहार-बाज़ी कर लोगों को दिखाते फिरते हैं, जो लड़कियों के जाल में फँसकर सारी सारी रातें थियेटरों में गुज़ारते हैं और नशे की तरंग में बाज़ारों में घूमते हैं। ऐसे लोग सभी जगह मार खायेंगे और कष्ट भोगेंगे।

जैसा मैंने ऊपर कहा है, योरप सहयोग की भूमि है। बड़े बड़े शहरों में यात्रियों को सहूलियतें पहुँचानेवाली सभा-सोसाइटियां मौजूद हैं। वे दोनों काम करती हैं—अपना धन्धा भी और यात्रियों के साथ सहयोग भी। भारतवर्ष में सभा-सोसाइटियां यदि थोड़ा-बहुत सहयोग की नक़ल करती भी हैं तो झट दान-भिक्षा के लिए अपीलें छाप देती हैं। अपने पैरों के बल खड़ा होना तो हमने सीखा ही नहीं। जो इनको स्वावलम्बन का मार्ग दिखलाये उसकी लोग निन्दा करते हैं। स्वावलम्बन का सिद्धान्त बड़ा निर्मल और ऊँचा है। हमें आज इस महान् तत्त्व को समझकर इसे व्यावहारिक रूप देना चाहिए। कोई समय था जब संस्थायें, व्यक्ति तथा आश्रम भिक्षावृत्ति पर गुज़र कर लेते थे। उसका परिणाम इतिहास के पन्ने उलट कर देख लीजिए। आज समय बदल गया है। यदि हमने स्वावलम्बन का पाठ न पढ़ा तो जो संस्थायें आज चन्दों से थोड़ी-बहुत चल रही हैं वे भी

थोड़े समय बाद बन्द दिखाई देंगी। मनुष्य तथा समाज का आदर्श स्पष्ट रहना चाहिए, फिर वस्तु के सदुपयोग और दुरुपयोग की पहचान करना आसान है। हाँ, आदर्श-भ्रष्ट होने से सब साधन भी दूषित हो जाते हैं।

अच्छा तो हमें करना क्या चाहिए? हमें यह चाहिए कि हम अपने सुन्दर सात्त्विक आदर्शों को व्यावहारिक जामा पहना कर योरप को सुमार्ग दिखलायें। योरप सहयोग और समाजवाद की भूमि है, किन्तु जो फल उससे उत्पन्न होता है वह विषैला बन जाता है। क्योंकि योरप के पास सात्त्विक आदर्श नहीं है। हम भी स्वावलम्बी सभा-सोसाइटियाँ चलायें, परोपकारी संस्थाओं को भिक्षावृत्ति से निकालें और अपने ब्रह्मचारी, संन्यासी तथा पुरोहितों को पुरुषार्थ का पाठ पढ़ावें। जब एक भाटिया, बनिया अथवा मारवाड़ी अपने लिए व्यवसाय कर पैसा कमा सकता है और लखपति, करोड़पति हो सकता है तब क्या जो अपने बाल-बच्चों के लिए व्यापार कर धन कमा सकता है वह किसी परोपकारी संस्था—गुरुकुल अथवा हिन्दू-विश्वविद्यालय—के लिए व्यापार नहीं कर सकता? योरप और अमरीका में यही हुआ है। संस्थाओं में ऐसे विलक्षण मस्तिष्क के लोग घुसते हैं जो संस्था को कुछ ही वर्षों में आर्थिक स्वतन्त्रता दे देते हैं। पर हमारे देश में संस्थाओं में ऐसे आदमी घुसते हैं जो परोपकार के धन को हड़प कर जाते हैं, हमारे व्यक्तिगत कार्य्य मज़े में चल जाते हैं, पर संस्थायें स्वार्थियों के मारे बर्बाद हो जाती हैं। आज हम व्यक्तिवाद की गहरी खाईं में गिरे हुए हैं। इसी कारण हमारा समाज निर्बल हो गया है। हमारी कोई 'पबलिक ओपिनियन' नहीं। डिस्ट्रिक्टबोर्डों और म्यूनिस्पेल्टियों में हमारे पढ़े-लिखे आदमी—जनता के लीडर कहानेवाले—किस निर्दयता से पबलिक के पैसे का दुरुपयोग करते हैं। क्या उन्हें किसी का डर है? चाहिए तो यह था कि हम सात्त्विक आदर्शोंवाले योरप को पाठ पढ़ाते, पर अभी तो हमें ही

ब्रनो का लिबर्टी-चौक
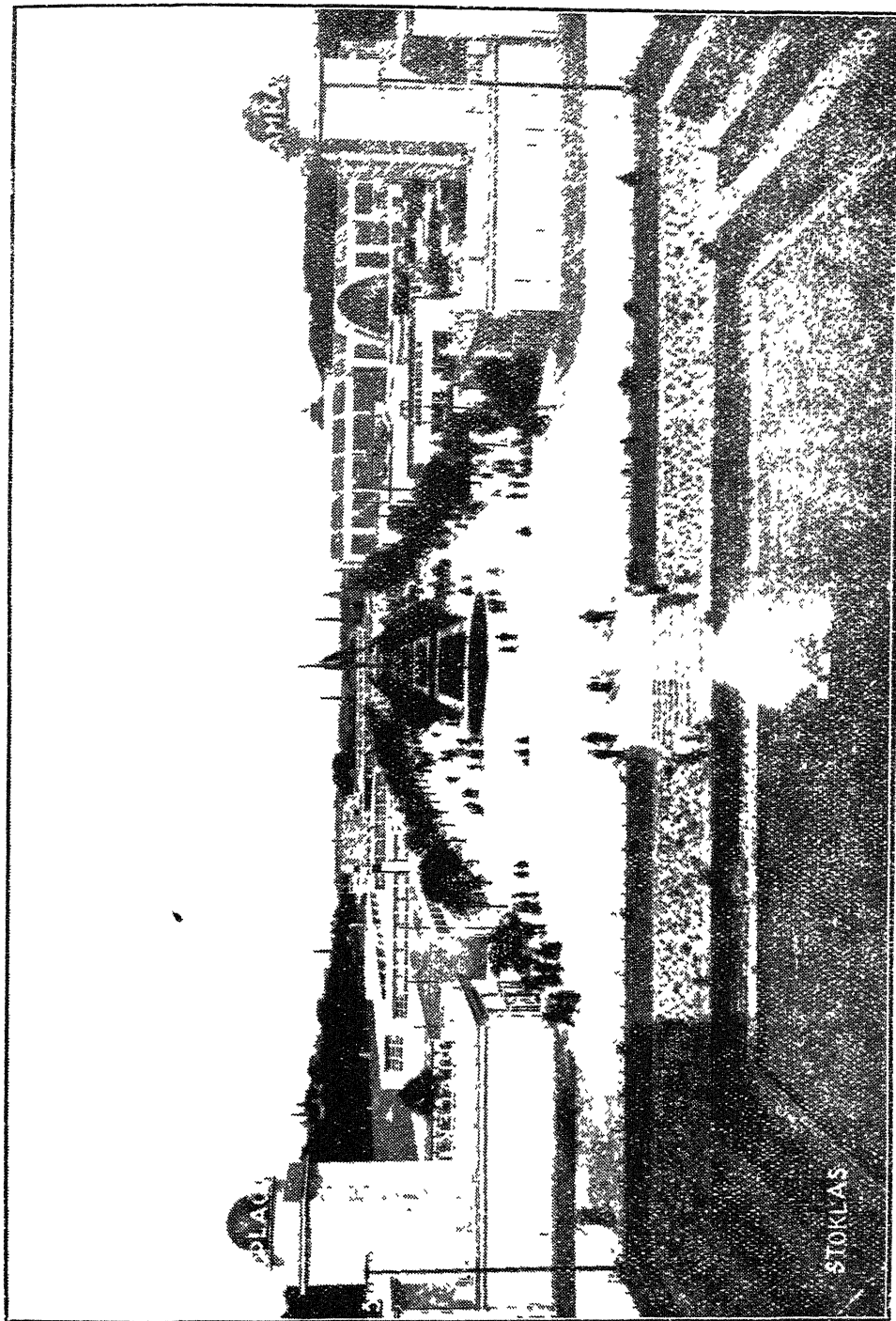
ब्रनो-प्रदर्शिनी की झाँकी

समाज-वाद सीखने की ज़रूरत आ पड़ी है। अभी हमीं अपने छोटे से व्यक्तित्व के दायरे से नहीं निकले।

× × × ×

सन्ध्या हो गई थी। मैं उस वृद्धा स्त्री के साथ ब्रनो नगर में घूम रहा था। ढाई लाख की आबादी का यह शहर मोरेविया-प्रान्त की राजधानी है। मध्य-योरप का इसे मान्चेस्टर समझिए। कपड़े की मिलों की यहाँ भरमार है। जूते की भी बड़ी भारी .फेक्टरी है। मशीनें भी यहाँ बनती है। सब प्रकार के इंजिन, पम्प आदि यहाँ तैयार होते है। रेल की गाड़ियाँ, घरों को गर्म रखने के सब लोह-साधन, सभी प्रकार का लोहे का सामान यहाँ बनता है। सब प्रकार के बाजों का कारखाना भी यहां है। बिजली का सब प्रकार का सामान भी यहाँ तैयार होता है। कुल मिलाकर २५० कल-कारखाने और पुतलीघर यहाँ हैं।

उस वृद्धा रमणी के साथ प्रदर्शिनी की झांकी लगा कर मै नगर में घूम रहा था! वह बराबर अपना लेकचर देती जाती थी। बिजली की गाड़ी मे बैठी हुई वह मुझे सभी ख़ास ख़ास भवनों का नाम बता रही थी। मैं कुछ पूछूँ, चाहे न पूछूँ—वह बराबर अपना व्याख्यान जारी रखती। मैं सोच रहा था—गहरे सोच में डूबा हुआ था। परदेश मे बाज़ बातें बड़ी चुभनेवाली (Striking) हो जाती हैं। जैसे अन्धकार मे दामिनी दमक गई हो।

बात यों हुई। मुझे पैसे की ज़रूरत पड़ गई। मेरे चेख क्राउन ख़तम होगये। मेरी जेब में पौंड थे। एक पौंड का नोट निकाल कर मैंने मेडम को दिया। वह फ़ौरन बैंक मे गई। जब वह पौंड भुनाने गई तब मैं सड़क पर खड़ा रहा। वृद्धा के आने में शायद सात मिनट लगे होगें, लेकिन उन सात मिनटों में मेरे मस्तिष्क में मानो आग लग गई। बड़ी तेज़ी से विचार-प्रवाह उमड़ पड़ा। मैंने सोचा—

देखो, पौंड की कितनी महिमा है। यह पौंड आज दुनिया की मंडी का बादशाह है। सब जगह इसकी आवभगत है। वीएना के बैंक वाले मेरे पौंड देखकर कितनी .ख़ुशी से अपने आस्ट्रियन शिलिंग देते थे। इस पौंड को लेकर आज सारी दुनिया बेफ़िक्री से, सम्मान-सहित, घूम सकते है। डालर से भी इसका रुतबा ऊँचा है। यह क्या बात है? इँग्लेंड को यह ऊँचा दर्जा, उसके नोटों का इतना मान क्यों है? भारतवर्ष के ही कारण तो। संसार जानता है कि इँग्लेंड के पास धन-धान्य पूरित देश है। उसी महाजन की तो साख होती है जिसके पास विपुल धनराशि हो—जिसके पास बड़ी जायदाद हो। इँग्लेंड को बड़ा बनानेवाला, उसे दुनिया में ऊँचा स्थान देनेवाला भारतवर्ष ही है। वह भारतवर्ष मेरी जन्मभूमि है। वह मेरे पूर्वजों की सम्पत्ति है। हम जो उस देश की गोद में पले है, हमारा आज विदेश में कोई सम्मान नहीं, वह बेचारा पेशावरी विष्णुदास, अमरीका में आत्महत्या करके मर गया। क्योंकि अमरीकन गवर्नमेंट ने उसका नागरिकता का अधिकार छीन कर उसका घोर अपमान किया था! हा! यह कब तक सहन होगा। भूमण्डल में सर्वश्रेष्ठ देश पाकर भी हम आज सभ्य संसार में किसी गणना में नहीं हैं।

× × × ×

वृद्धा पौंड भुनाकर ले आई। मेरा रात के लिए निवासस्थान पास ही था। मुझे वहाँ पहुँचा, दूसरे दिन फिर प्रदर्शिनी दिखलाने का वादा कर वह देवी विदा हुई। मैं धीरे धीरे तीसरी छत पर अपने कमरे में पहुँचा। आराम-कुरसी पर बैठकर फिर उन्हीं विचार-तरङ्गों में पड़ गया।

सहसा मेरे कानो में ये शब्द पड़े—"जिस ब्रनो में तुम हो उसी के निकट स्पीलबर्ग का मशहूर क़िला है। पिछली सदी में इसी क़िले में इटालियन, पोलिश और चेख देशभक्तों ने अपने अपने मुल्क की आज़ादी के लिए तड़फ तड़फ कर जानें दी थीं। उनको तड़फानेवाला आस्ट्रिया आज किस मुसीबत में पड़ा है। कर्मों का फल ज़रूर मिलता है। तुम क्यो फ़िक्र करते हो? जो लोग आज भारतवर्ष के लिए कष्ट भोग रहे हैं और जेलों मे सड़ रहे हैं वही उसके सुख के दिनों को नज़दीक ला रहे है। चेको-स्लोवाकिया के आज़ाद होने पर स्पीलबर्ग योरप के देशभक्तो का तीर्थ बन गया है। अब वह म्यूज़ियम है, जहाँ पिछली सदी के देशभक्तों की चीज़ें दिखलाई जाती हैं। हिन्दुस्तान का भाग्य-चक्र भी जल्द घूमनेवाला है।"

विधवा

[श्रीयुत जगदीश झा 'विमल']

(१)

हुत दिनों बाद कृपा हुई ?"

"अवकाश ही नहीं मिलता है।"

"क्यों ? आप तो स्वतन्त्र हैं"।

"अब वैसी अवस्था नहीं है। नौकरी करते हुए भी आप मुझसे अच्छे हैं।"

"इस कथन को मैं कैसे स्वीकार करूँ। धनी-मानी पुरुष हैं। लक्ष्मी के कृपा-पात्र हैं। फिर ऐसा कैसे समझूँ ?"

"अब वह अवस्था नहीं है। मुझ पर जैसी बीती है, ईश्वर न करे और किसी पर वैसी बीते"।

"क्यों क्या हुआ ? घर में सब अच्छे तो हैं ?"

"हाँ, घर में तो सब अच्छे ही हैं। एक मैं ही राह का भिखारी हो गया हूँ। धन गया, मान-प्रतिष्ठा गई और अब सहधर्मिणी भी साथ छोड़ना चाहती है।"

"ऐं ! क्या हुआ ? मेरे एक ही वर्ष के प्रवास मे आपकी यह दशा ! किस संकट में पड़े ?"

"अब उसकी चर्चा व्यर्थ है। मेरा नहीं था, इसी लिए मेरे हाथ नहीं रहा"।

"आखिर क्या हुआ ?"

"आपको अभी तक मालूम भी नहीं ?"

"कैसे होता ? आपने पत्र भी तो नहीं लिखा था। मै पूरे एक वर्ष बाद आज सवेरे घर आया हूँ।"

"घर मे रहने से कार्य कैसे चले, बाहर न जायँ तो पेट-पूजा कैसे हो ?"

"इस बार मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

"हवाखोरी के लिए ?"

"नहीं, नौकरी के लिए।"

"आप हँसी करते हैं।"

"सच कहता हूँ।"

"क्यों ?"

"घरवालों ने मुझे घर से निकाल दिया है। बड़े भाई के मरते ही चचा कहने लगे—'तुम अपना रास्ता देखो। इस धन मे तुम्हारा कुछ भी अधिकार नहीं है। यह मेरी निजी सम्पत्ति है। तुम्हारे पिता पहले ही अलग हो चुके थे। उनके बाद तुम्हारी दयनीय अवस्था पर मुझको दया आई थी, इसी लिए अपने साथ कर लिया था। दोनों भाइयों को पढ़ा-लिखा कर मनुष्य बना दिया है, अब अपनी रोज़ी देखो। मैं अपने जीवन भर अलग न करता, लेकिन तुम्हारी विधवा भाभी अच्छी नहीं है। उसकी नज़र लग जाती है। उसी की कृपा से मेरी एक सन्तान भी जीवित नहीं रह पाई। तुम्हारा भाई भी उसी के कारण दुनिया से चलता बना। यदि उस चुड़ैल को घर से निकाल बाहर करो तो साथ रह कर भोजन-छाजन पा सकते हो। लेकिन फिर भी इस धन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं होगा। उनके इस कथन पर मैं अलग होगया। घर की कोई चीज़ मुझको नहीं मिली।"

"देवेन्द्र बाबू का स्वभाव इतना निन्दनीय नहीं था। वे आप दोनों भाइयों को अपना ही पुत्र समझते थे। तब उनमे यह परिवर्तन कैसे हुआ, बता सकते हो ?"

"इधर थोड़े ही दिनों से हुआ और मेरी चाची के कारण हुआ।"

"आपकी चाची भी तो आप दोनों को पुत्र से कम नहीं समझती थीं।"

"बड़ी चाची का ऐसा स्नेह है, पर अब उनको पूछता है कौन, जिस दिन से उनकी सौत आई उसी दिन से वे भी बे-मौत मरने लगीं। अब उनकी सुनता है कौन ? छोटी चाची को एक सन्तान हुई और दो ही दिनों के बाद वह चलती बनी। तभी से वे मेरी विधवा भाभी पर पिल पड़ी हैं। कहती हैं—इसी रांड़ ने मेरी कोख ले ली, इसको घर से निकाल दो। चाचाजी उनके हाथ के पुतले हैं, इसी लिए मेरी यह दुर्गति हुई।"

"अनर्थ हुआ, स्त्रियाँ बुद्धिमानों की बुद्धि पर भी गाज गिरा देती हैं। धन्य है देवी तुम्हारी लीला! ख़ैर, अब आप क्या करना चाहते है"?

"क्या करूँगा? जीविका की खोज करूँगा।"

"धन का भाग नहीं चाहते?"

"चाहने से क्या होगा, देता है कौन?"

"मुक़द्दमा कीजिए, सरकार दिलायगी।"

मैं मुक़द्दमा नहीं करना चाहता, वहाँ कुत्तों से नुचवाने से कोई लाभ नहीं दिखाता। उनकी ऐसी ही इच्छा है तो करें। मेरे लिए भी ईश्वर हैं, कोई न कोई युक्ति लगा ही देंगे।"

"सन्तोष से बढ़कर कोई दूसरा गुण नहीं है। ईश्वर अवश्य आपकी ओर आँख उठायेंगे।"

"अभी परीक्षा का समय है। यदि इसमें ठहर गया तो भले ही कुछ देखूँगा, अन्यथा जीवन-नौका मँझधार ही में बूड़ना चाहती है। आज कई दिनों से धर्मपत्नी बीमार है, भाभी उससे पहले ही अस्वस्थ हो गई हैं। वैद्यराज की ओषधि से लाभ नहीं हुआ। डाक्टर की चिकित्सा कराने लगा, आज अड़तीस दिन हुए, अभी तक ज्वर-मुक्त नहीं हुई है। डाक्टर कहता है, मियादी ज्वर है, इसके उतरने की अवधि ७, १४, २१, २८, ३५ और अन्तिम ४२ दिन है, इसके भीतर नहीं उतरता है।"

"हाँ, यह ज्वर तो ऐसा ही होता है। किस डाक्टर की चिकित्सा कराते है?"

"डाक्टर नूरुलहसन की।"

"क्या कोई हिन्दू डाक्टर नहीं मिला? ऐसे समय में आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।"

"हिन्दू डाक्टरों की तंगदिली का हाल आपको मालूम नहीं है। वे हिन्दू का ख़याल नहीं करते, पैसे के भूखे हैं, बिना फ़ीस के आँख ही नहीं उठाते हैं। बीस दिन तक एक हिन्दू डाक्टर की ही चिकित्सा हुई, स्त्री के भूषण बन्धक रख कर उनकी फ़ीस चुकाई, ज्योंही उधार आने का अनुनय-विनय किया, त्यों ही उन्होने रूखा उत्तर दे दिया कि अभी तक मैंने यह सबक़ पढ़ा ही नहीं। किसी दूसरे हिन्दू डाक्टर ने भी प्रार्थना नहीं स्वीकार की। अन्त में विवश होकर डाक्टर नूरुलहसन के पास गया। ये मेरे भाई के सहपाठी हैं। बिना फ़ीस लिये ही नित्य दो बार आते हैं, यहाँ तक कि दवा भी अपनी ओर से मुफ़्त ही देते हैं। मैं इनके इस उपकार से दबा जा रहा हूँ, इच्छा होती है, बीच बीच में कुछ दे दिया करूँ, पर लाचारी विवश किये रहती है। हाथ में एक पैसा भी नहीं है। भोजन की भी फ़िक्र रहती है। आज मर कर आप तक आया। इस विपत्ति के समय कुछ सहायता कीजिए। आपसे बढ़ कर मेरा और कौन सहायक है?"

"आपकी बीती सुनकर हृदय फट रहा है, पर कर ही क्या सकता हूँ। मेरी चिन्तनीय अवस्था किसी से छिपी नहीं है। यदि मैं पाँच दिन भी घर में बैठ रहूँ तो फिर भोजन ही बन्द। आप मेरे यहाँ आये और असमय आये। इसकी मुझे बड़ी लाज है। मेरे पास सिर्फ़ २५) रुपये हैं, इन्हें मैं घर के ख़र्च के लिए लाया था। लीजिए, आप अभी इनसे अपना काम चलाइए। मेरे योग्य जो सेवा हो निःसंकोचभाव से कहिएगा, मैं उसे करना अपना कर्तव्य समझता हूँ।"

"और आपका घर-ख़र्च?"

"मैं उधार लेकर अपना काम चला लूँगा। इसकी चिन्ता न करें, आप घर के रोगियों को देखें, मैं भी किसी समय अवश्य आऊँगा।"

(२)

देवेन्द्र बाबू चिन्तितचित्त अपनी धर्मपत्नी से बोले—केशव की स्त्री बहुत बीमार है। नित्य डाक्टर आता है। सुनता हूँ, उसकी अवस्था अच्छी नहीं है।

"तब आप भी क्यों नहीं नित्य जाते? सपूत पर इतनी दया क्यों नहीं दिखाते?"

"केशव सपूत अवश्य है। उसने मेरी जैसी सेवा की है, वैसा अपना पुत्र भी नहीं करता है।"

"हाँ, सब देख चुकी हूँ। इतनी प्रशंसा न कीजिए। उसने आपकी जैसी दुर्गति की, वैसी दुर्गति शत्रु भी न करता। यदि मेरा आना न होता तो बुढ़ौती तरस कर ही कटती। आप ही कहा करते हैं कि 'केशव के खाने के लिए भी कुछ नहीं है।' अब आप ही देखिए, आज महीना भर से डाक्टर को फ़ीस कहाँ से चुकाता है? मेरी बातों पर

विश्वास कीजिए। उसने आपका बहुत धन हज़म किया है।"

"जाने दो। यदि ऐसा ही किया तो भी कुछ बुरा नहीं हुआ। यह धन उसी का है"।

"उसके बाप का इसमें क्या लगा है? यदि ऐसा ही करना था तो स्वर्ग की सीढ़ी पर पांव रखते समय मेरा पाणिग्रहण क्यों किया था? आपके पीछे मेरी आवश्यकता कौन पूरी करेगा?"

"क्या तुम भी इस अवस्था मे उसे देखने नहीं गई।"

"मै क्यों देखने चलूँ। मैं ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वे उसको दुनिया से उठा लें। यह केशव की भाभी के विषय मे कहती हूँ। हां, उसकी स्त्री भली है। उससे हमको उतना द्वेष नहीं है।"

"यदि उसकी मृत्यु हो जाय तो उसके लिए भी भला ही हो। कुलीन हिन्दुओं के घर में विधवा के जीने की आवश्यकता भी नहीं है।"

"अजी, उस रांड़ का परिचय अभी आपको मिला ही नहीं। वह चुड़ैल है। उसने मेरी कोख ले ली। जीवन भर के लिए दुख-कष्ट के अगाध कीचड़ में डुबो दिया।"

"यदि तुम्हारी सम्मति हो तो मैं आज उसको देख आऊँ।"

"यदि उधर पांव उठायेंगे तो मैं घर में पेट मार कर मर जाऊँगी। आफ़त मचा दूँगी, मैं उसको नहीं देखना चाहती। केशव को इतना अभिमान, इस अवस्था में भी कुछ कहने नहीं आया।"

"वह सिर्फ़ डर से यहां नहीं आता है।"

जिस समय पति-पत्नी में इस प्रकार की बातें हो रही थीं उस समय एक दासी ने देवेन्द्र बाबू के आगे लाकर एक चिट्ठी रख दी। बड़ी उत्सुकता से पत्र पढ़कर देवेन्द्र बाबू ने कहा—केशव का पत्र है। लड़का बड़ी विपत्ति में फँसा है। उसकी धर्मपत्नी रास्ते पर चढ़ गई। अब नहीं बच सकेगी। तुमको भी अन्तिम भेंट के लिए बुला भेजा है।

"मैं नख़रेबाज़ी नहीं जानती हूँ। आपके भाई की पुत्रवधू है, जाइए, मिलिए। मेरी कौन होती है, कि मैं उससे मिलने चलूँ।"

उसी समय केशव ने आ चाची का पाव छुआ और कहा—चाची, मेरी ओर देखो। मुझको अपनी सन्तान के समान समझ मुझ पर दया करो, आज उसकी अवस्था बहुत बिगड़ गई है। अब आशा नहीं है कि वह फिर धरती पर पाव रख सकेगी। आज किसी अच्छे डाक्टर को लाने का विचार था, लेकिन पास में एक फूटी कौड़ी नहीं है। और कोई डाक्टर बिना फ़ीस लिये आवेगा नहीं। इतने दिनों में देह के गहने बिक गये। मुसलमान डाक्टर तो कुछ लेता नहीं था, इसलिए इतने दिनों तक चला।

"मुझसे कुछ नहीं हो सकेगा, तुम अपना दूसरा प्रबन्ध करो। जब तक तुम्हारे घर में वह चुड़ैल रहेगी तब तक अपना मंगल भी न समझो। सुना है, दोनों ही बीमार हैं, लेकिन उसको तो कुछ होगा नहीं। हां, तुम्हारी स्त्री को खा कर ही दम लेगी।"

"चचाजी! क्या निराश ही लौटना पड़ेगा?"

लम्बी सास छोड़ते हुए चाचा ने कहा—मेरे हाथ में कुछ नहीं रहा। मैं क्या कहूँ। मुझको तुम्हारी अवस्था पर दुःख है। पर करूँ क्या?

"तब क्या करूँ?"

"मैं क्या करने को कहूँ, मुझको तुम्हारी अवस्था पर दुःख हो रहा है। देखो, किसी से ऋण लेकर अभी कार्य सँभालो, पीछे देखा जायगा।"

चचा के इस वचन पर केशवप्रसाद एक बार नीले नभ की ओर आंख कर आहें भर घर को वापस लौटा। घर की अवस्था बड़ी चिन्तनीय थी, स्त्री और भाभी दोनों ही सख़्त बीमार थीं। जब से केशव की स्त्री बीमार पड़ी तब से भाभी कुछ अच्छी होती दीखने लगी। उस दिन केशव की स्त्री कमला की बहुत बुरी अवस्था हो रही थी, ८ घंटे से ज्ञानशून्य पड़ी थी। नाड़ी क्षीण हो गई थी। हाथ-पांव ठण्डे पड़ रहे थे। डाक्टर को बुलाने की इच्छा थी, पर फ़ीस का कोई उपाय न देख अधीर हो रहे थे। कई घरों का द्वार खटखटाया, पर कहीं से कुछ नहीं मिला। उस दिन गांव के एक ग़रीब मित्र से उनको २५) उधार मिले थे, उसके चुकाने की अलग चिन्ता थी, मुसलमान डाक्टर नूरुलहसन बिना

बुलाये दिन में एक बार और रात में भी एक बार उनके घर आता था, केशव की भाभी अलग कमरे में अकेली पड़ी रहती थी। उसके निकट कोई नहीं जाता। जब कभी केशव ही उसके पथ्यादि का प्रबन्ध कर आते या डाक्टर नूरुलहसन ही कुछ देर उसके निकट बैठ उसकी सुव्यवस्था का प्रबन्ध करते। डाक्टर साहब अपने मित्र की धर्म-पत्नी समझ उस पर विशेष दया दिखाते थे।

अन्त में उसी मुसलमान डाक्टर से केशव ने कुछ रुपये ऋण लेकर एक वयोवृद्ध अनुभवी डाक्टर को लाकर कमला को दिखलाया, पर कुछ लाभ नहीं हुआ, उसका समय पूरा हो गया था। केशव के सिर ऋण का बोझ लाद कमला संसार से विदा होगई। केशव के भी बुरे दिनों ने उसको सताना आरम्भ कर दिया।

कुछ इष्ट-मित्रों की सहायता से ९ बजे रात के बाद कमला की लाश उठाकर केशव उसकी अन्त्येष्टि करने गंगा की ओर गया और विधिवत् कार्य सम्पन्न कर घर लौट आया।

(३)

"देखा, मेरा कहना सत्य निकला या आपका? आख़िर केशव के मुख में कालिख पोत कर रांड़ उस मुसलमान डाक्टर का बँधना साफ़ करने चली गई न?"

"तुमसे किसने कहा कि वह मुसलमान डाक्टर के घर गई?"

"यह सब छिपाने से छिपता है? मुसलमान डाक्टर का बिना फ़ीस उसके यहाँ दिन में दो बार आना क्या साबित करता है?"

"लोग ऐसा व्यर्थ ही अनुमान करते हैं।"

"यदि ऐसा ही है तो वह गई कहाँ? देवेन्द्र-प्रसाद तो उसको अपने घर में चढ़ने ही नहीं देते। हम लोग केशव की स्त्री की लाश स्मशान ले गये, इधर सूना घर देख नूर उसको अपनी हूर बनाने को उड़ा ले गया, मैंने सुना था कि वह उसके निकट घंटों तक बैठ कर न मालूम क्या क्या बातें किया करता था।"

गाँव के कई सज्जन आपस में मिलकर इस प्रकार बातें कर ही रहे थे कि म्लानमुख केशव उन लोगों के आगे आकर बोला—क्या आप लोग इस विपत्ति से मेरी रक्षा नहीं कर सकते। अभी अभी मुझको मालूम हुआ कि नूर उस कुलकलंकिनी को लिये हुए थाने की ओर गया है। उसका कहना है कि वह कहती है, मैं अपनी इच्छा से पवित्र इस्लाम-धर्म को क़बूल करती हूँ"।

केशव की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि गाँव का एक सज्जन थाने की ओर से दौड़ता हुआ आकर बोला—अभी थाने में ख़ून हो गया। डाक्टर नूरुलहसन ने केशव की भाभी को बड़े दरोग़ा के सामने खड़ी करके दरोग़ा से पुछवाया कि तुम क्या कहना चाहती हो। दरोग़ा के प्रश्न के उत्तर मे उसने कहा—मैं केशवप्रसाद की विधवा भाभी हूँ, उनका व्यवहार मेरे प्रति वैसा ही था, जैसा भाभी के प्रति देवर का होना चाहिए। मैं अपने भाग्य-दोष से अपनी देवरानी के साथ बीमार पड़ी, देवर इन दो रोगियों की चिकित्सा में राह का भिखारी होगया, रुपये न रहने पर डाक्टर नूर बिना फ़ीस पाये ही हम लोगों की चिकित्सा के लिए आने-जाने लगे सो भी एक नहीं दो दो बार। एकान्त-समय में ये मुझ पर विशेष दया दिखाने लगे। अनेक यत्न करने पर भी मेरी देवरानी आज से पाचवें दिन पूर्व ही संध्या को स्वर्गगामिनी हो गई, उस रात में जब देवर कुछ ग्रामीणों की सहायता से पत्नी की लाश स्मशान में जलाने ले गये उसी समय अवसर पाकर इन्होंने सूने घर से कुछ सहायकों की सहायता से अज्ञातावस्था में मुझे अपने घर में उठा मँगवाया। आज तक इस पापी ने मुझको लोभ-प्रलोभ देकर धर्मच्युत करने की चेष्टा की। अपने लिए मुक्ति का कोई उपाय न देख कर मैंन इसका कहना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि चलो, थाने में चल कर मैं लिखाये देती हूँ कि मैं राज़ी-ख़ुशी से इस्लाम-धर्म क़बूल करती हूँ। इस पर सहमत होकर इसने आप तक मुझे पहुँचाया। इस पापिष्ठ ने मेरे पवित्र शरीर को स्पर्श कर मुझे कलंकित किया, अतएव आप जैसा उचित समझे करें। इतना कहने के बाद ही उसने कमर के कपड़ों में छिपी कटार निकाल कर अपने कलेजे में घुसेड़ ली और तड़फड़ा कर क्षण भर में मर गई। नूर क़ैद कर लिया गया।

लोगों ने विधवा की प्रशंसा करते हुए थाने से उसकी लाश लाकर केशव-द्वारा प्रेत-क्रिया करवाई।
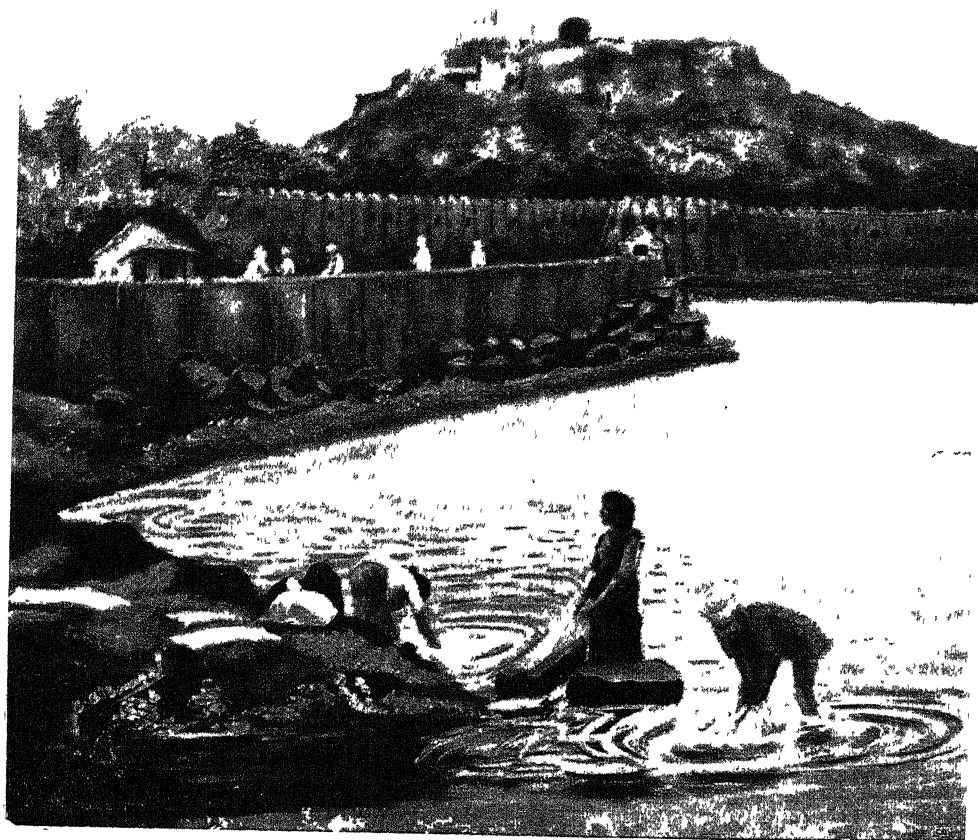
गोलकुण्डा का किला

शुक-संवाद

परिशिष्ट

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(१)

वीरोचिता बातें विविध
सुन वीर की हर्षित हुआ।
चलना यहां से चाहिए
शुक ने यही निश्चित किया॥

(२)

युद्धस्थली से शुक उड़ा,
पहुँचा जहां थी सुन्दरी।
साद्यन्त प्रिय-सन्देश को,
उस विरहिणी से कह गया॥

(३)

निज नाथ के सन्देश सुन,
मन मे सती हर्षित हुई।
कर जोड़ बोली शुक ! बता,
क्या अर्चना तेरी करूँ ?

(४)

मैं हो न सकती हूँ उऋण,
तुझसे कभी इस जन्म मे।
फिर भी बता दे कीर ! कुछ,
उपकार मैं तेरा करूँ॥

(५)

सेवा सुखद मेरी हुई यदि,
कुछ तुझे वीराङ्गने।
तो शीघ्र बन्धन-मुक्त बस—
कर दे, यही उपहार है॥

(६)

स्वाधीनता जैसे तुझे प्रिय—
है, उसी विधि है मुझे।
स्वाधीन सच्चा है वही,
स्वाधीन जो पर को लखे॥

(७)

पर को बना कर दास जो,
स्वाधीन रहना चाहता।
स्वार्थान्ध है वह नीच है,
जग-निन्द्य है वह पातकी॥

(८)

स्वातन्त्र्य उसका है अमिट,
जो स्वात्म-सम सबको लखे।
पर को दुखी कर जो सुखी,
वह है नराधम नारकी॥

(९)

स्वत्वाधिकारी जो बना,
हर कर पराये स्वत्व को।
वह देखते ही देखते,
जग के पगों कुचला गया॥

(१०)

सब सम्पदायें धूल है,
स्वाधीनता के सामने।
उसको न जग में क्या मिला ?
स्वाधीनता जिसको मिली।

(११)

शुक ! भूल मत, पछतायगा,
वरदान दूजा माग तू।
है देव-दुर्लभ सुख मिला,
वन में न मिल सकता तुझे॥

(१२)

तेरा रजत का पींजड़ा,
है स्वर्णमन्दिर में टँगा।
संपत्ति यह तरु-कोटरों मे,
प्राप्त हो सकती नहीं॥

(१३)

नित दूध-ओदन खा रहा है,
ऋतुफलों के साथ में।
क्या शाल्मली-वन में कभी—
मेवात पाते कीर हैं ?

(१४)

यह गेह मेरा है निरापद,
कीर ! तू वन में न जा
यदि व्याध के कर बच गया,
तो श्येन तुझको खायँगे ॥

(१५)

तू जंगली है, जंगली—
भाषा प्रथम था बोलता।
अपनी सिखा कर बोलियाँ,
मैंने तुझे शिक्षित किया ॥

(१६)

अब श्लोक पढ़ने तू लगा,
दोहे सुनाता कीर ! है।
फिर क्यों असभ्यों से मिलेगा ?
सभ्य जब तू होगया ॥

(१७)

वन में बिना उद्योग के,
भोजन न मिल सकता तुझे ।
पर सोच ले मन में यहाँ,
सब भाँति तू निश्चिन्त है ॥

(१८)

तुझको यहाँ पर शीत, आतप,
वृष्टि से दुख है नहीं।
वन में निराश्रय कीर ! हो,
हा ठोकरें तू खायगा ॥

(१९)

पहना पगों में पैंजनी,
छुमकारती हूँ मैं तुझे।
स्वागत करेगा कौन तेरा,
बोल वन में यों कभी ॥

(२०)

मुझसे तुझे पदवी मिली—
है, कीर ! "आत्माराम" की।
निज जाति से सम्मान यह,
वन में न तू पाता कभी ॥

(२१)

गुण-गान जब रामादि का—
है कीर ! करता प्रेम से।
तब चाहता जी है जड़ा दूँ
स्वर्ण तेरे ठोर में ॥

(२२)

वन में न जा, यदि जायगा,
अपमान पावेगा बड़ा।
काकादि मारेंगे तुझे,
साथी न होगा एक भी ॥

(२३)

तू ब्रह्मचारी जन्म का,
मम पूर्वजों का भक्त है।
तुझको महात्मा इसलिए,
कहते सभी हम हैं सदा ॥

(२४)

है जेल यह मेरे लिए
सुन्दरि ! रजत का पींजड़ा।
यह स्वर्णमन्दिर है नहीं,
मेरे लिए यम-गेह है ॥

(२५)

यदि दास्य में पर-हाथ से,
अमृत मिले तो है गरल।
स्वच्छन्द को निज गेह में,
सूखा चना भी है अमी ॥

(२६)

वन में गये पर श्येन मुझको,
खायँगे तो हानि क्या ?
वह धन्य है जो जाति के,
उपकार में अर्पित हुआ ॥

(२७)

सच बात सुन, मत रूठना,
या रूठ जा, कुछ भय नहीं।
बन्दी बना करके मुझे,
क्या व्याध से तू न्यून है ?

(२८)

भाषा सिखा अपनी मुझे
तूने बनाया दास है।
जो मातृभाषा का कृती,
क्यों दास्य उसके सिर चढ़े ?

(२९)

यह काल की है कोठरी,
तेरी अँटारी स्वर्ण की।
है वृक्ष-कोटर स्वर्ग-सा,
मेरे लिए सच मानना ॥

(३०)

तेरे करों से पैंजनी,
मेरे पगों जो है पड़ी।
बेड़ी उसे कहती न क्यों ?
हत्या न कर तू सत्य की ॥

(३१)

पदवी न "आत्माराम" की,
तूने मुझे दी प्रेम से।
बस दासता का चिह्न मेरे—
नाम के सिर रख दिया ॥

(३२)

काकादि विहगों से मुझे,
अपमान यदि सहना पड़े।
तो है भला, पर शत्रुओं से,
मान पाना है बुरा ॥

(३३)

तने मुझे स्वार्थान्ध हो—
बन्दी किया, रे निर्दयी।
फिर भी महात्मा क्यों मुझे—
तू कह रही लज्जा नहीं ॥

(३४)

उत्तर अधिक क्या दूँ तुझे,
मेरी यही है प्रार्थना।
ईश्वर किसी को विश्व में,
रक्खे नहीं पर-वश कभी ॥

(३५)

अति धीरता से युक्त, उस—
देशाभिमानी कीर के
उत्तर श्रवण कर सुन्दरी का,
चित्त मक्खन होगया ॥

(३६)

बोली द्रवित हो कीर तू,
बस आज से स्वच्छन्द है।
है सत्य की होती विजय,
तू सत्य का अवतार है ॥
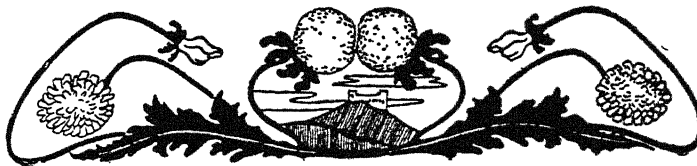
चन्द्रलोक की यात्रा*

[श्रीयुत अमृतलाल शील, एम० ए०]

घूमने-घामने से हम तीनों थक गये थे। राजा का भेजा हुआ खाना खाकर आराम करने लगे। आँख खुलने पर दीवार पर लगे हुए वायुचाप-यन्त्र (बेरोमीटर) पर हमारी नज़र पड़ी। हमारे साथ कई वायुचाप-यन्त्र थे। परन्तु उसमें एक घड़ी के ढङ्ग का था। उसके ऊपर घड़ी की तरह एक काँटा घूमता था, और काँटे से वायु का चाप इञ्चों में मालूम होता था। जब हम इस गुफा में अपना सामान ठीककर रखने लगे थे तब सूर्य्योदय का समय था। उस समय उक्त यन्त्र का काँटा एक इञ्च पर था। पृथिवी पर वह २९-३० इञ्च पर दिखाई देता था। यहाँ एक इञ्च पर देख सन्देह हुआ कि यन्त्र बेकाम हो गया है, अब इसे फेंक देना चाहिए। परन्तु उस समय उसे दीवार पर लटका दिया था। आँख खुलने पर जब उस पर दृष्टि पड़ी तब देखा कि काँटा दो इञ्च के स्थान के लगभग जा पहुँचा है, अर्थात् १°९३ पर है। यन्त्र चल रहा है और वह एक इञ्च के स्थान से दो के समीप कैसे जा पहुँचा यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य्य मालूम हुआ। मैंने जहाज़ से पारेवाला वायुचाप-यन्त्र (Mercureal Barometer) निकाल कर ठीक किया, परन्तु उसमें भी काँटा १°९३ इञ्च पर ही मिला। अब हमको प्रतीत होगया कि हम जिस समय यहाँ आये थे, अर्थात् सूर्य्योदय के समय, वायु का चाप केवल एक इञ्च था, अब बढ़ गया है। इसका कारण देर तक सोचते रहे, परन्तु उस समय हमारी समझ में नहीं आया। थोड़ी देर बाद राजा का संस्कृतज्ञ आया। उससे उस प्रदेश के सम्बन्ध में बातें करने लगा।

मैंने पूछा कि तुम्हारे देश में कितना पानी बरसता है और बरसात का मौसम कौन-सा है। वह हमारी बात सुनकर बड़े अचम्भे में पड़ गया, कहने लगा, आसमान पर पानी कहाँ से आया जो बरसे। हमने उसे मैदान के कई छोटे ताल दिखाकर पूछा कि इन तालों मे पानी कहाँ से आता है। उसने उत्तर दिया कि इस समय दिन का आरम्भ है। जितना दिन चढ़ता जायगा, उतनी ही गरमी बढ़ती जायगी। सूर्य्यास्त होते होते ये सब जलाशय सूख जायँगे। जो जलाशय बड़े और गम्भीर हैं उनमे थोड़ा पानी रह जायगा, परन्तु छोटे और कम गहरे जलाशय बिलकुल सूख जायँगे और पथरीली ज़मीन निकल आयगी। हमने पूछा कि यदि पानी न बरसे तो ये ताल फिर किस प्रकार से भर जाते हैं। उसने आश्चर्य्य के साथ कहा कि इसमे क्या मुश्किल है? सूर्य्यास्त होने पर जब ज्योत्स्ना फैल जायगी और सर्दी भी होगी उस समय चारों ओर की नालियाँ अपने आप चलने लगेंगी, यहा तक कि सूर्य्योदय तक सब ताल और गढ़े पानी से भर जायँगे।

संस्कृतज्ञ के कथन से यह समझ में आया कि पानी का बाष्प वायु के पतले और कम होने से ऊपर नही चढ़ता, पृथिवी पर जैसे ओस पड़ती है, इसी प्रकार यहां वह (Surface) सतह के पास ही जमकर पानी बन जाता है, और इतनी जल्दी बनता है कि देखते देखते नालियाँ बहने लगती हैं और तालों और गढ़ों में पानी भर जाता है। सूर्य्योदय से पहले छोटे छोटे तालों का जल जमकर बरफ़ बन जाता है, बड़ो की विशेष कर गहरे तालों में जल की सतह दो-ढाई फ़ुट तक जम जाती है। चन्द्र-लोक में हवा चलती नहीं मालूम पड़ती, इस कारण पानी दूर नहीं जाता, जहां का पानी वहीं रह जाता है। पानी की भाफ उँचाई तक उठ ही नहीं सकती। इस कारण वहाँ के लोगो ने न कभी बादल देखा और न कभी ऊँचाई से पानी को ही टपकते देखा।

हमने अपने यन्त्र के सन्दूक़ से एक फ़ारनहीट ताप-मान-यन्त्र निकाला। गुफा में जहां हम बैठे थे, उस समय ५०-५२ दर्जे का ताप था, परन्तु बाहर धूप में इससे

*जनवरी १९२८ की सरस्वती में प्रकाशित के बाद।

ज़्यादा मालूम होता था। बाहर धूप में जाकर देखा तब गुफा से सौ सवा सौ फ़ुट फ़ासले पर ताप तो १०२ दर्जे मिला, परन्तु और कुछ दूर जाने पर ११५ दर्जे मिला। उन लोगों के कहने से मालूम हुआ कि सूर्य्यास्त के कुछ पहले गुफाओं से दूर मैदान में और भी ज़्यादा ताप होता है। हमने तापमान-यन्त्र निकाल कर साथ रख लिया।

हमने राजा के भेजे हुए पण्डित से कहा, चलो अब राजधानी को चलें। परन्तु उसने कहा कि राजधानी यहाँ से छः मञ्ज़िल है, अर्थात् वे लोग बोझ लेकर जितना चल सकते हैं और जितना चलने के उपरान्त विश्राम करना पड़ता है, यदि उसे एक एक मञ्ज़िल कहें तो पाँच मरतबा विश्राम करने के बाद छठे मरतबा राजधानी पहुँच जायँगे और सूर्य्यास्त से पहले राजा राजधानी को नहीं जायँगे, इस कारण अभी राजधानी जाने की जल्दी नहीं। यहीं विश्राम करके चलेंगे। परन्तु हमारा कुछ और ही उद्देश था। राजधानी पहुँचने से पहले हमको मैदान और पहाड़ों की सैर करनी थी। पण्डित ने हमारा मतलब समझ कर राजा के राज्य का एक नक़शा दिया। यह नक़शा एक प्रकार के मोटे काग़ज़ पर खिंचा था। इसमें नगर, पहाड़ और सड़कें बनी थीं। पथिकों के टिकने के स्थान भी लिखे थे। वहाँ राजा की ओर से पथिकों के लिए सरकारी पान्थशालायें बनी थीं। उनमें पथिकों को रहने को जगह मिलती है और दरिद्रों को भोजन मिलता है। धनवान् पथिक पान्थशाला के अध्यक्ष से अपने प्रयोजन की चीज़ें मोल ले लेता है। चीज़ों का मूल्य सरकारी कर्मचारी स्थिर कर देते हैं, इससे ज़्यादा मूल्य कोई नहीं ले सकता।

नक़शा देख कर हमने पण्डित से कहा कि हम सीधी सड़क से राजधानी को नहीं जायँगे। एक पहाड़ पर चढ़ कर फिर उतर कर इधर से घूम कर चलेंगे। हमने अपने साथ खाने-पीने की चीज़ों के सिवा दो चार यन्त्र, यथा दूरवीक्षण, क्षुद्रवीक्षण, तापमान, वायुचाप-यन्त्र, कैमेरा आदि ले चलने का निश्चय किया। साथ ही रिवाल्वर, टोटे, बर्छी, छुरे इत्यादि भी लेने की ठान ली—राजा और राज-कर्मचारियों ने मित्रों का सा ही व्यवहार किया था, तो भी सावधान रहना आवश्यक था। जब हम अपना सामान सँभाल रहे थे उस समय दो राजपुरुष कुछ सिपाहियों के साथ आते दिखाई दिये। उनको देख कर हमने अपने हाथ के पास भरी हुई बन्दूक़ रख ली और हम तीनों ने हाथ में रिवाल्वर उठा लिया। यह सब वह दो-भाषिया पण्डित ताड़ गया। उसने हँस कर कहा, आगन्तुक राजकर्मचारी हैं, शायद राजा का कोई आदेश सुनाने आ रहे हैं, डर और सन्देह का कोई कारण नहीं है। हमने भी उसी प्रकार हँसकर कहा, हम लोग डर किसको कहते हैं, नहीं जानते, परन्तु सन्देह में सन्देह ही क्या है। विदेश में सावधान रहना उचित है। ऐसी बातें हो ही रही थीं कि उन राजपुरुषों ने हमारे सामने आकर अपने फ़ौजी ढङ्ग से अभिवादन करके एक पत्र दिया। यह पत्र बहुत अच्छे काग़ज़ पर लिखा हुआ था। काग़ज़ का रङ्ग कुछ ख़ाकी था, परन्तु हमारे पतङ्ग के काग़ज़ सा पतला और बक-पेपर सा चीमड़ था। वह कई रङ्गों की स्याही से चित्रित था। पत्र क्या था, चित्र सा मालूम होता था। हमने पण्डित से कहा कि हम तो इसे पढ़ नहीं सकते, तुम्हीं पढ़कर सुनाओ। उसको यह सुनकर कुछ आश्चर्य्य मालूम हुआ, क्योंकि यह पत्र भारत की प्राचीन चित्र-लिपि में लिखाकर राजा ने भेजा था। उनका अनुमान था कि हम इस लेख को पढ़ लेंगे, परन्तु हम भारतवर्ष की प्राचीन चित्र-लिपि से परिचित नहीं थे। पण्डित ने पत्र पढ़कर सुनाया। बात यह थी कि राजा ने हमसे राजधानी चलने का अनुरोध स्वयं किया था, मैंने भी स्वीकार किया था। अब राजा ने वही अनुरोध निमन्त्रण-पत्र-द्वारा किया। यह केवल हमारा सम्मान बढ़ाने के लिए किया गया था, नहीं तो इसकी कोई ऐसी आवश्यकता नहीं थी।

राज-कर्मचारियों के चले जाने के उपरान्त हम भी चलने की तैयारी करने लगे। देखा कि राजा की आज्ञा से हमारे साथ ५०-६० सैनिक और २०-२५ गाड़ियाँ तैयार थीं। उन गाड़ियों में ऊँटों की शकल के चार चार जानवर जुते थे। उनमें ४ पहिये थे और इतनी बड़ी थीं कि यदि हम भी बैठना चाहें तो एक गाड़ी में एक एक राज-अतिथि बैठ सकते थे। लेकिन हमने उन गाड़ियों में सामान लाद कर पैदल जाना ही पसन्द किया।

जब सब सामान लदकर चलने के लिए तैयार हुए तब हमने पण्डित से कहा कि नक़्शे पर हमने जो निशान कर दिया है, उसी रास्ते से चलो। परन्तु इसमें मुश्किल यह हुई कि उस रास्ते से पैदल चलना सम्भव था, परन्तु वह गाड़ी का रास्ता न था। पहाड़ का चढ़ाई-उतार भी था, वहाँ गाड़ी नहीं चल सकती थी। पण्डित ने हमको सीधी सड़क से चलने की प्रार्थना की, परन्तु हमारा उद्देश तो कुछ और ही था। हमने कहा, गाड़ियों को सरकारी बड़ी सड़कों से जाने दो। हम पहाड़ के चढ़ाव-उतार के रास्ते जायँगे। इसमें ज़्यादा देर लगेगी, लेकिन हमने न माना। एक पान्थ-शाला पर निशान कर दिया कि यहाँ पहुँचकर गाड़ियाँ हमारा रास्ता देखें, हम घूमते-घामते वहाँ पहुँचेंगे।

जब हम पण्डित और कुछ नौकरों को लेकर चले तब कुछ दूर चलकर हमको धूप कड़ी मालूम हुई। रास्ते में बड़े वृक्षों की छाया तो थी ही नहीं, इससे और भी तकलीफ़ होने लगी। पण्डित हम सबको एक छोटी गुफा में विश्राम करने को ले गया। गुफा के अन्दर जाते ही सर्दी मालूम होने लगी, अर्थात् धूप में ताप १३० दर्जे का था, और गुफा में ६० दर्जे का था। दस मिनट आराम कर फिर धूप में निकल पड़े और एक ऊँचे पहाड़ पर चढ़ने लगे। पहाड़ पर ज़मीन पथरीली थी, किसी समय यहाँ का पत्थर किसी ज्वालामुखी से गले हुए रूप में निकला होगा, अब जमकर चट्टान बन गया था, कोसों तक एक ही प्रकार का पत्थर नज़र आता था, बीच बीच में झाड़ियाँ थीं, और जिस प्रकार के जानवर हमारे ठहरने-वाली गुफा के पास देखे थे, वैसे ही जानवर मैदान में चरते थे। कहीं कहीं अच्छी ज़मीन थी। उसमें किसान जोतते-बोते थे। छोटी-बड़ी बहुत ताल-झीलें देखीं, उनमें स्वच्छ स्वादिष्ट पानी भरा था। ऊपर चढ़ते चढ़ते एक जगह हमारे पण्डित ने कहा, बस अब सामने न चढ़ो, पास की घाटी में से होकर चलेंगे, घूमकर पहाड़ के दूसरी ओर पहुँच जायँगे। हमने कहा, हम तो पहाड़ के ऊपर चढ़ा चाहते हैं, ऊपर चढ़कर दूसरी ओर उतरेंगे। परन्तु पण्डित ने कहा, ये सामने काले पत्थर के खम्भे आप देखते हैं, इनको लाँघकर और ऊपर चढ़ना तो राजा की आज्ञा से निषिद्ध है, आप चाहें चढ़ें, परन्तु हम लोग नहीं जा सकते। यदि जायँगे तो राज-विचारालय से दण्ड मिलेगा। यह सुनकर मैं एक बड़े पत्थर की छाया में बैठ गया और पण्डित से कहा कि ये काले पत्थर के खम्भे क्या हैं, किसने कब बनाये, विस्तार से सुनाइए। इसी छाया में बैठकर सुनेंगे, आराम कर फिर आगे बढ़ेंगे। पण्डित लज्जित हुआ। उसने कहा कि मैं भूल गया था कि आपको इन खम्भों की कथा नहीं मालूम। हमको चाहिए था कि पहले ही आपको सविस्तर इन खम्भों का इतिहास सुना देते। जब हम सब छाया में बैठ गये तब पण्डित ने कहना आरम्भ किया। उसने कहा—

आप जानते होंगे कि सब जीवों के जीवित रहने के लिए वायु का प्रयोजन है। बिना वायु के कोई भी जीव नहीं जीवित रह सकता। यह वायु जीव के शरीर के रोम-कूपों से होकर शरीर में प्रवेश करता है। यह भी आप को ज्ञात होगा कि नीचे मैदानों में जहाँ हम लोगों के रहने के मकान इत्यादि हैं, वायु बहुत घना है, उसमें पानी का बाष्प मिला हुआ है। इस कारण जीव के प्राण धारण करने के उपयोगी है। पहाड़ों पर, अर्थात् मैदानों से ऊँचाई पर बाष्प नहीं चढ़ सकता, इस कारण ऊपर की हवा पतली है और उसमें जीव जीवित नहीं रह सकते। यदि कोई जीव ऊपर के वायु-मण्डल में किसी प्रकार आ जाय तो उसको जल्दी इसका ज्ञान नहीं होता। हाँ, यदि विद्वान् हो तो समझ जाता है। परन्तु जो इन बातों को न जानता हो उसकी समझ में नहीं आता। वह ऐसी ऊँचाई पर आ जाने से अपने को शक्तिहीन और क्लान्त मालूम करता है। उसे धोखा होता है कि पहाड़ की चढ़ाई के परिश्रम से क्लान्त हो गया हूँ, वह सुस्ताने के लिए छाया में लेट जाता है। परन्तु यदि वह लेट जाता है तो फिर उसे उठने का अवसर नहीं मिलता। वह देखते देखते इतना क्षीण और दुर्बल हो जाता है कि फिर उठने की चेष्टा भी नहीं करता। उस समय यदि कोई समझदार आ गया और उसे उठा कर नीचे ले आया तो उसके बचने की सम्भावना हो जाती है, नहीं तो वह चिरनिद्रा में निमग्न हो जाता है। हमारी किताबों में लिखा है कि लगभग २५,००० दिन अथवा वर्ष पहले हमारे देश के तीन-चार

सौ आदमी इसी प्रकार से मर गये। उस समय के हमारे राजा ने देश के विद्वानों को सभा में बुलाकर पूछा कि इसका क्या प्रतीकार सम्भव है। हर एक विद्वान् ने अपनी अपनी सुनाई, परन्तु ऐसी व्यवस्था किसी की नहीं हुई जिससे अच्छा फल निकलता अथवा कार्य्यकर होता। तब राजपुरोहित ने कहा कि देश के पहाड़ों पर जहाँ तक जाना निरापद हो, वहाँ पर काले पत्थर के चिह्न बना दिये जायँ, और देशवासी आबाल-वृद्ध-वनिता सबसे बता दिया जाय कि उन चिह्नों को लाँघ कर ऊपर चढ़ने से प्राण जाने का भय है। राजा ने इस प्रस्ताव को सबसे अच्छा समझ कर विद्वानों को भेजा कि एक एक योजन* पर एक एक खम्भा बनवा दें और इन खम्भों का स्थान ऐसा हो कि वहाँ यदि कोई जीव जाय तो निरापद रहे, उससे ऊपर न जाय। आपको मालूम होगा कि हमारे देश मे कोई भी लड़का अथवा लड़की निरक्षर नहीं रह सकता। हर नगर में, हर मुहल्ले में सरकारी पाठशाला है। हर नागरिक को इनमें से किसी एक पाठशाला में अपनी बेटे-बेटियों को भेजना पड़ता है। जो लोग धनवान् हैं वे अपने घर पर अध्यापक रख कर बेटे-बेटी को शिक्षा देते हैं, परन्तु सरकारी परीक्षक हर दौरे में इन धनवान् सन्ततियों और उनके अध्यापकों की परीक्षा लेते हैं। जो लोग अपनी बेटे-बेटी को पढ़ने को नहीं भेजते उनको बड़ी कड़ी सज़ा दी जाती है। मैंने पूछा—यदि कोई ऐसा दरिद्र हो कि अपनी सन्तति को न पढ़ा सकता हो तो आप लोग क्या करते है। पण्डित को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—दरिद्र क्या? क्या राजा अपनी प्रजा को नहीं पढ़ा सकता? मैंने कहा—राजा नहीं। यदि कोई प्रजा ऐसा दरिद्र हो तो क्या होगा? उसने कहा—यह कैसे हो सकता है? यदि प्रजा दरिद्र हो तो राजकोष का धन किस काम आयेगा? राजकोष का अर्थ तो साधारण प्रजा का है, उसी से उसकी सन्तति के पढ़ाने-लिखाने का व्यय किया जाता है। यदि कोई प्रजा मर जाय तो राज-कोष से उसकी सन्तति पाली जाती है। उसने मुझसे पूछा—इसमें असम्भव क्या है? राज-कोष का अर्थ तो साधारण प्रजा का होता है। क्या आपके देश मे ऐसा नहीं होता? इस बात का उत्तर टाल कर मैंने कहा—सब देशों में एक प्रकार की व्यवस्था नहीं रह सकती। मैंने पूछा—राज-कोष के धन पर तुम्हारे राजा का कितना अधिकार है? उसने कहा—राज-कोष तो प्रजा का धन होता है, उसमें राजा का कैसा अधिकार? हाँ, राजा को उनके व्यय के हिसाब से वृत्ति स्थिर कर दी जाती है और प्रत्येक सौ दिन के उपरान्त इसमें यदि प्रयोजन हो तो कमी-बेशी की जाती है।

इतनी बातों के उपरान्त मैं उठ खड़ा हुआ और राजा के काले खम्भों के नीचे नीचे एक घाटी के रास्ते पहाड़ की दूसरी ओर जा निकला। पहाड़ की दूसरी ओर बायें तरफ़ लगभग दस मील के अन्तर पर एक गहरी काली घटा दिखाई दी। मुझे बड़ा आश्चर्य मालूम हुआ कि अभी पण्डित ने मुझसे कहा था कि इस देश में पानी नहीं बरसता, बादल नहीं होते, तो फिर यह क्या है? या तो यह मेघ की घटा नहीं है या पण्डित ने मेरी बात नहीं समझी थी। मैंने पण्डित को बादल दिखा कर पूछा—यह क्या है? परन्तु पण्डित देखते ही काँप उठा, और भयभीत होकर मुझसे कहने लगा—अब इस रास्ते चलना निरापद नहीं है, अब लौट चलिए, दूसरे रास्ते से चलेंगे। आपको इस रास्ते से ले जाने से न केवल हम लोगों के प्राणों का भय है, बल्कि यदि राजा को ज्ञात हो जाय कि इस घटा के होते हुए हम आपको इस रास्ते से ले गये तो हमको भी मृत्यु का दण्ड मिलेगा। इसलिए आप अनुग्रह कर दूसरे रास्ते से चलिए।

पण्डित के भय का कारण मेरी समझ मे नहीं आया। उस काली घटा में ऐसी कोई चीज़ हमको नहीं दिखाई देती थी जो भय का कारण हो। बेशक उससे पण्डित की बात के सच होने में सन्देह हो गया, क्योंकि वह मुझसे कह चुका था कि इस प्रदेश में बादल नहीं होते, आकाश से पानी नहीं बरसता। फिर यह घटा कैसी? क्या वह बात बना कर झूठ बोला था, अब उसके प्रकट होने से लज्जित हो रहा है। मैं वहीं एक बड़े पत्थर

* यहाँ का योजन भारतवर्ष में आज-कल प्रचलित गज़ के लगभग १,८०० गज़ का होता है।

की आड़ में बैठ गया और पण्डित से कहा—इस काली घटा का सारा भेद सुने बिना मैं आगे पैर न रक्खूँगा। उसने जब देखा कि मैं दृढ़-प्रतिज्ञ हूँ तब आकर मेरे पास बैठ गया और धीरे धीरे भय के साथ कहा—जिसे आप पानी की भाफ का पुञ्ज समझते हैं वह असल मे बड़ा विषाक्त द्रव्य है। हमारे देश की मृत्युरूपी दानवी पास के पहाड़ की खोह में रहती है। जब उसको भूख लगती है तब वह खाना पकाने को आग सुलगाती है, इससे यह काली घटारूपी धूम निकलता है। उसके भूख लगने का कोई समय नहीं है। कभी तो वह दो-चार हज़ार दिनों तक भूखी बैठी रहती है, कभी आठ-दस दिन बाद ही आग सुलगाती है, कभी दस-बीस दिन तक उसकी आग सुलगती रहती है, कभी सूर्य्यास्त से पहले ही आग बुझाकर बैठ जाती है, कभी इधर आनेवालों को तंग नहीं करती, कभी पहाड़ की खोह से मुँह निकाल कर देखती है और पास आनेवाले पथिकों को गले हुए गरम पत्थरों के ढेले इतने ज़ोर से मारती है कि आगन्तुक भागकर भी नहीं बच सकता, जल ही मरता है। मैंने पूछा—आपने इस दानवी को क्या कभी देखा है? पण्डित ने उत्तर दिया—देखा तो नहीं, परन्तु सुना अवश्य है। बहुतेरे साहसी युवक देखने के लिए आये भी, परन्तु फल कुछ नहीं हुआ। जब वह पहाड़ से मुँह निकालती है उस समय किसको साहस हो सकता है कि पास जाकर उसका मुँह देखे? वह पत्थर के गले हुए अथवा अर्द्ध-गलित लाखों ढेले फेंक कर मारती है, वे पत्थर के ढेले पाँच-छः योजन तक जा गिरते है। अगर वे किसी आदमी को लगते है तो उसे उठने का अवसर नहीं मिलता, और यदि उसके चोट भी नहीं आती है तो भी सुना है कि पत्थर की गर्मी से आदमी जल-भुन कर राख हो जाता है। इस कारण उस दानवी के रूप और क्रिया का ठीक ठीक हाल नहीं मालूम है, लोगों का अनुमान ही अनुमान है। मैंने पण्डित को अपना दूरवीक्षण-यन्त्र दिखाया और कहा—हमको ऐसी जगह ले चलो जहाँ से हम इस यन्त्र से उसे दूर से देख सकें। ख़ाली आँख जहां से कुछ पहचाना नहीं जा सकता, वहाँ से इस यन्त्र से साफ़ दिखाई देगा। पण्डित बहुत आनन्दित और उत्साहित होकर मुझे एक पहाड़ की चोटी पर ले गया। वहाँ से दानवी का घर जहाँ से धूम निकल रहा था, साफ़ दिखाई देता था।

मैंने दूरवीक्षण-यन्त्र निकाल कर उस पर लगाया तब बड़ा आश्चर्य्य मालूम हुआ। पृथिवी के विद्वान् कहा करते हैं कि चन्द्र का गोला एक निर्जीव गोला है, उसमें उत्ताप नहीं रहा, परन्तु यहां तो अच्छा ख़ासा ज्वालामुखी पर्व्वत अग्नि और धूम उद्गार कर रहा है। पहाड़ की नोकीली चोटी से कभी कभी उज्ज्वल शिखायें देख पड़ती थीं। पण्डित कहने लगा कि वह मृत्यु दानवी सिर उठा कर चारो ओर देखती है, उसके बिखरे हुए सिर के बाल शिखा-रूप में दिखाई देते है। कभी कभी वह छिप कर देखनेवालो को गरम गले हुए पत्थर के ढेले मारती है। ये बातें हो ही रही थीं कि कुछ जलते हुए पत्थर पहाड़ से निकले और ज्वालामुखी से लगभग पांच मील दूर तक आ आ गिरे। हम उस समय उस पहाड़ से लगभग दस मील दूर बैठे थे। एक बार इच्छा तो हुई कि पास जाकर अच्छी तरह देखें, परन्तु पण्डित राज़ी नही हुआ। असल बात यह थी कि हमको भी हिम्मत नही होती थी, क्योंकि हमारे सामने ज्वालामुखी की ओर २-३ सौ गज़ दूर कुछ पत्थर ऐसे पड़े थे जो उसी ज्वालामुखी से निकले जान पड़ते थे। अर्थात् कभी कभी ज्वालामुखी से इस ज़ोर से पत्थर निकलते हैं कि दस मील पर जा गिरते है। यदि हमारे आगे बढ़ने पर इस प्रकार पत्थर निकलें तो भागने का कोई उपाय नहीं, उसी में जल मरना निश्चय था। इस प्रदेश में वायु बहुत पतली है, इसमें झोंका नहीं होता अर्थात् हवा चलती नहीं मालूम होती, एक जगह स्थिर जान पड़ती है, इस कारण ज्वालामुखी के ऊपर उसका धूम काली घटा-सा मालूम होता है। पण्डित के कहने से मालूम हुआ कि यह घटा कभी कभी २०-२५ दिन-रात [अर्थात् पृथिवी के ७०८ घंटों का एक दिवा-रात्रि] तक ऐसी ही बनी रहती है, धीरे धीरे इस काली घटा का धुआँ बैठ जाता है और आकाश निर्म्मल हो जाता है। हम उस पहाड़ की चोटी पर बैठे ज्वालामुखी की कीर्त्ति देर तक देखते रहे। चारों ओर के मैदान से ज्वालामुखी कम से कम ५०० फ़ुट ऊँचा था

और उसके लगभग पाच* मील दूर चारों ओर गले हुए पत्थरों की एक दीवार बन रही थी, मानो दस मील का व्यास का एक वृत्त बन रहा है। यह दीवार भी दो-ढाई सौ फ़ुट ऊँची बन चुकी थी और जब तक ज्वालामुखी में गले हुए पत्थर फेंकने की शक्ति रहेगी तब तक यह दीवार ऊँची होती जायगी। जब ज्वालामुखी की शक्ति शेष हो जायगी तब प्राकृतिक विश्वकर्म्मा ज्वालामुखी का मुँह बन्द कर देगा। कुछ दिनों के बाद इन्हीं दीवारों की खोहों में नाना प्रकार के जीव-जन्तु आकर अपना घर बना लेंगे।

इस दृश्य को देखते देखते सोचने लगा कि इसका अन्त क्या होगा। चन्द्र तो एक छोटा-सा गोला है। इसके भीतर की गर्मी जल्दी निकल जायगी। तब इस पर पानी और वायु भी नहीं रहेंगे। जब ऐसा होगा तब यहा जीव न जीते रहेंगे। फिर कुछ दिनों में पृथिवी का गोला भी ऐसे ही ठंडा हो जायगा और उसके भी जीव मर जायँगे। अब रहा सूर्य्य, सो चाहे कितना बड़ा क्यों न हो, एक दिन उसे भी मरना पड़ेगा। विद्वानों ने हिसाब लगा कर बताया है कि सूर्य्य का उत्ताप हर साल कुछ न कुछ घटता जाता है। जब घटता ही है तब ज़रूर कभी ऐसा समय आयगा कि सब उत्ताप समाप्त हो जायगा। तब सूर्य्य में उज्ज्वलता और उत्ताप कुछ भी नहीं रहेगा, परन्तु आकर्षण-शक्ति तो बनी रहेगी। सूर्य्य के चारों ओर ग्रह, उपग्रह इसी प्रकार से घूमते रहेंगे, केवल अँधेरा रहेगा, किसी ग्रह-उपग्रह में जीव न होगा। इसी प्रकार सोचते सोचते चिन्ता के प्रबल प्रवाह में बहते बहते कहां से कहां जा पड़ा। सोचने लगा कि आकाश में आज-कल फ़ोटोग्राफ़ी से सौ कोटि १,००,००,००,००० तारों की तसवीर खिँच चुकी है, उन तारों से दूर और कितने तारे हैं उनका पता नहीं लगता। और ये तारे अथवा सूर्य्य हैं कितनी दूर? यह हमको ज्ञात हो चुका है कि रोशनी एक सेकेंड में १,८६,००० मील के लगभग चलती है। इस प्रकार चल कर हमारे सूर्य्य के सबसे दूर के ग्रह, नेपचून के वृत्त के व्यास में ८-९ घंटों में रोशनी दौड़ जाती है। इस चाल से हमारे पड़ोसी अर्थात सबसे पास के सूर्य्य से हमारी पृथिवी पर रोशनी आने में लगभग चार साल लगते हैं। लाखों सूर्य्य या तारे इतनी दूर हैं कि उनसे पृथिवी पर रोशनी पहुँचने के लिए हज़ारों वर्ष चाहिए। अच्छा, जहां तारे शेष हो चुके हों, वहां आकाश में क्या है? जहां कुछ भी नहीं, वहां आकाश तो है। जहां आकाश का शेष हुआ वहा क्या है? इन सब बातों की कल्पना भी मनुष्य नहीं कर सकता। विद्वान् कहते हैं कि मनुष्य और उसकी बुद्धि ससीम है, आकाश अनन्त असीम है, इस कारण हम अपनी ससीम बुद्धि से असीम की कल्पना नहीं कर सकते। हमारे ज्योतिषियों ने हिसाब लगा लिया है कि हमारा सूर्य्य आकाश के सूर्य्यों में एक अति छोटा सूर्य्य है और वह अपने ग्रहों-उपग्रहों को अपने साथ लिये अनन्त काल से अनन्त पथ में प्रति सेकेंड १८ मील के हिसाब से चल रहा है। परन्तु वह कहां से आ रहा है, कहां जाता है, इस प्रश्न का उत्तर कौन दे सकता है? सोचते सोचते मैं अपने मन में हँसने लगा कि भला मनुष्य ने आज तक इस प्रश्न का क्या समाधान किया है? यह तो अफ़ीमची की चिन्ता है। जितना चाहो कल्पना के बल बढ़ाते जाओ, कभी शेष नहीं होने का, अथवा मनुष्य का जीवन इसके शेष करने के लिए पर्याप्त नहीं है।

जब मनुष्य इस प्रकार की चिन्ता में फँस जाता है तब वह अपनी अवस्था इत्यादि सब भूल जाता है और घंटों इसी धुन में लगा रहता है। मैं भी देश-काल भूल कर यही सोचने लगा था। एकाएक हमारे साथी पण्डित ने कहा कि अब चलना चाहिए, नहीं तो पान्थशाला में पहुँचने से पहले ही ग्रहण लग जायगा, और ऐसा अँधेरा हो जायगा कि फिर रास्ता चलना असम्भव होगा। जहां उस समय होंगे वहीं बैठे रहना पड़ेगा। सूर्य्योदय के बाद ही कुछ दिखाई देगा। मैं यह सुन कर चौंक पड़ा। ग्रहण का ज्ञान तो पृथिवी से यात्रा

---

*यह स्मरण रखना चाहिए कि चन्द्र का गोला पृथिवी के गोले से बहुत छोटा है और चन्द्र की आकर्षण-शक्ति पृथिवी की आकर्षण-शक्ति का केवल छठा हिस्सा है। इस कारण जितनी शक्ति से चन्द्र के इस ज्वालामुखी से पत्थर निकल रहे थे, यदि उतनी ही शक्ति से पृथिवी पर किसी ज्वालामुखी से पत्थर निकलें तो ⅚ मील अर्थात् १,४६७ गज़ से ज़्यादा दूर नहीं जा सकते।

करने से पहले ही था, बल्कि इसी ग्रहण को देखने के लिए जल्दी की थी। पन्द्रह दिन पहले दो ग्रहणों का हाल यहां से देख गया था, परन्तु वहा पहुँच कर और सब दृश्यों के देखने में ऐसा फँस गया कि ग्रहण की बात भूल ही गया था। अब याद आया तब पान्थ-शाला तक पहुँचने की जल्दी करने लगा।

पृथिवी से जिस प्रकार का आकाश देखने का अभ्यस्त हो गया था, चन्द्रलोक का आकाश उससे बिलकुल स्वतन्त्र जान पड़ता था। पृथिवी से आकाश कभी तो धूलि से लदा, कभी रङ्ग-बिरङ्गे मेघ से रञ्जित, कभी सफ़ेद, कभी नीला दिखाई देता है, परन्तु चन्द्रलोक के आकाश में धूलि अथवा मेघ नहीं होता। इतनी हवा ही वहाँ नहीं है कि धूलि अथवा मेघ उसमें उतराते फिरें। आकाश का रङ्ग गहरा और स्वच्छ नीला दिखाई देता है। सूर्य्य इतना चमकता है कि खाली आख उसके किनारे साफ़ नहीं दिखाई देते। परन्तु पृथिवी से जैसे सूर्य्योदय के बाद चन्द्र की कला छोड़ और कोई ग्रह अथवा तारा नहीं दिखाई देता, चन्द्रलोक में ऐसा नहीं है। सूर्य्य से २४।३० अंश के भीतर के ग्रह और तारे बेशक नहीं दिखाई देते, परन्तु इससे दूर के बड़े तारे, ग्रह इत्यादि दिनमान में साफ़ दिखाई देते हैं। वहाँ का चन्द्र अर्थात् पृथिवी घूमती नहीं दीखती, एकही जगह ठहरी हुई दिखाई देती है। परन्तु हम पृथिवी से जैसे चन्द्र की कलायें देखते है, इसी प्रकार वहाँ पृथिवी की कलायें घटती-बढ़ती दिखाई देती है। हम जिस स्थान पर उतरे थे, वहाँ से ठीक सिर के ऊपर पृथिवी नहीं थी, उच्चतम स्थान (Zenith) से लगभग १५ अंश पश्चिम को हिली हुई थी। हमारे पहुँचने के समय अर्थात् सूर्य्योदय के समय पृथिवी का आधे से कुछ ज़्यादा हिस्सा दिखाई देता था। पृथिवी से दिन के समय जिस प्रकार सफ़ेद चाँद दिखाई देता है, इसी प्रकार का दिखाई देता है, और उसका उभरा हुआ अंश (Convex side) सूर्य्य की ओर होता है। जितना सूर्य्य पास आता जाता है, उतना ही पृथिवी का उज्ज्वल अंश घटता जाता है। बिलकुल पास आ जाने पर पृथिवी की अमावस्या के चाँद की तरह चन्द्रलोक का चन्द्र अदृश्य हो जाता है। सूर्य्य कभी इस पृथिवी के गोले से ऊपर कभी नीचे से निकल जाता है। जब सूर्य्य पृथिवी के गोले को अतिक्रम कर दूसरी ओर आ जाता है तब पृथिवी की क्षीण कला दिखाई देने लगती है। सूर्य्य जितना हटता जाता है पृथिवी की कला उतनी ही बढ़ती जाती है। याद रखना चाहिए कि जब तक सूर्य्य क्षितिज के ऊपर रहता है तब तक पृथिवी अनुज्ज्वल सफ़ेद दिखाई देती है। जब सूर्य्य अस्त हो जाता है उस समय एकाएक ज्योत्स्ना फूट पड़ती है और जितनी रात बढ़ती जाती है उतना ही पृथिवी का वृत्त पूरा होता जाता है। जब सूर्य्य से पृथिवी १८०° अर्थात् ठीक उसके आर-पार सीध में अथवा राशिचक्र में छः राशि हट जाती है तब पृथिवी से पूर्णिमा के चन्द्र की तरह पूर्ण वृत्ताकार पृथिवी दिखाई देती है और ज्योत्स्ना भी सबसे अधिक उज्ज्वल दिखाई देती है।

पृथिवी से हम जब चन्द्र-बिम्ब को देखते है तब चन्द्र का एक ही भाग हमको दिखाई देता है। चन्द्र की दूसरी ओर क्या है, उसका हाल पृथिवी पर बैठे नहीं दिखाई देता। बेशक चन्द्र कभी पूर्व्व, कभी पश्चिम में ७°५४ तक, कभी उत्तर, कभी दक्षिण को ६°५१ तक झूम जाता है, इस कारण पृथिवी से चन्द्र का आधे से कुछ अधिक भाग दिखाई देना सम्भव है। ज्योतिषियों ने हिसाब लगाया है कि पृथिवी से चन्द्र के गोले की सतह का जो हिस्सा दिखाई देना सम्भव है वह सैकड़ा ५८ है, अर्थात् यदि चन्द्र के कुल वर्गफल को १०० मान लें तो ५८ हिस्सा दिखाई देना सम्भव है और ४२ हिस्सा हमको कभी नहीं दिखाई देता। परन्तु चन्द्रलोक से पृथिवी के सब हिस्से दिखाई देते हैं, क्योंकि पृथिवी अपनी कीली पर घूम रही है। पृथिवी अपनी कीली पर २३ घंटे ५६ मिनट ४०१ सेकेंड में एक बार घूमती है, परन्तु पृथिवी और चन्द्र दोनों की गतियाँ मिला कर देखी जायँ तो चन्द्र-लोक में बैठ कर पृथिवी इस गति से घूमती नहीं देख पड़ती। पृथिवी का जो चित्र चन्द्र-लोक से दिखाई देता है, यदि उसका फ़ोटो खींच लिया जाय तो ठीक वही चित्र २४ घंटे ४८ मिनट के उपरान्त दिखाई देगा पृथिवी से भी तुमने देखा होगा कि आकाश में चन्द्र २४ घंटे ४८ मिनिट के उपरान्त उदय होता है। परन्तु

चन्द्र की गति में इतने विघ्न पड़ते है कि यह गति हर बार एकसी नहीं रहती। यदि सूक्ष्म यन्त्रों से नापा जाय तो कभी तो यह गति २४ घंटे ४२ मिनिट मे होती है, कभी २५ घंटे २ मिनट में।

चन्द्र-लोक से पृथिवी का नक़्शा बहुत साफ़ दिखाई देता है। पृथिवी-वासी उत्तर-मेरु-प्रदेश का हाल अभी तक अच्छी तरह नहीं जानते, केवल थोड़ा-बहुत सच्चा अथवा कल्पित ज्ञान है। परन्तु चन्द्रलोक से दूरबीन लेकर देखो तो रत्ती रत्ती स्पष्ट दिखाई देता है। चन्द्र-लोक से पृथिवी का बिम्ब सूर्य्य के बिम्ब से बहुत बड़ा दिखाई देता है। पृथिवी से जैसे सूर्य्य का बिम्ब कम से कम ३१ मिनट* ३२ सेकेंड और ज़्यादा से ज़्यादा ३२ मिनट ३६'४ सेकेंड दिखाई देता है, यहां से भी उतना ही दिखाई देता है, क्योंकि पृथिवी से सूर्य्य लगभग ९,२९,००,००० मील दूर है और चन्द्र केवल लगभग २,४०,००० मील है। इस कारण यहां से अर्थात् चन्द्र-लोक से सूर्य्य की दूरी कभी तो ९,३१,४०,००० मील होती है, कभी ९,२६,६०,००० मील। इन दोनों में प्रभेद इतना कम है कि उसकी गिनती नहीं हो सकती। पृथिवी का व्यास उत्तर से दक्षिण ७,८९९ मील और पूर्व से पश्चिम ७,९१२ मील है, परन्तु चन्द्र के गोले का व्यास केवल २,१६३ मील है, अर्थात् ७,९१२$\frac{1}{3}$ से भी कम है, और उनके वर्गफल में १३'३८ और १ का सम्बन्ध है। इससे सिद्ध हुआ कि पृथिवी पर पूर्णिमा की रात्रि को जितना प्रकाश होता है, चन्द्रलोक में पूर्णिमा में उससे १३'३८ गुना ज़्यादा प्रकाश होना चाहिए। परन्तु पृथिवी में वायु के वर्त्ता होने और वायु मे मेघ, धूलि इत्यादि होने से प्रकाश का बहुत-सा हिस्सा नष्ट हो जाता है, इस कारण हेमन्त-ऋतु की पूर्णिमा और शरद् की पूर्णिमा के प्रकाश मे आकाश-पाताल का प्रभेद होता है। अब यदि पृथिवी की शरद्-पूर्णिमा के प्रकाश से चन्द्र-लोक की पूर्णिमा के प्रकाश की तुलना की जाय तो पृथिवी की शारदीय पूर्णिमा के प्रकाश से चन्द्र-लोक की पूर्णिमा का प्रकाश कम से कम २० गुना उज्ज्वल होता है।

जब देखा कि ग्रहण को अब दो घंटे से कम समय रह गया है और हमको कम से कम ४ मील उतर कर पान्थ-शाला पहुँचना है तब हमने जल्दी से यात्रा की। यद्यपि हमारे साथ एक छोटी दूरबीन थी, परन्तु बड़ी दूरबीन गाड़ी मे रवाना हो चुकी थी और हम ग्रहण के समय बड़ी दूरबीन से देखना चाहते थे। [क्रमशः

सन्ध्या

[श्रीयुत शम्भूदयाल सक्सेना, 'साहित्य-रत्न']

(१)

कुसुमों का हास बिखरता,
था कुञ्जों के अञ्चल में।
संध्या-प्रदीप था झलता,
मृदु अनिल-प्रकम्पित जल में।

(२)

पूजा-उत्सर्ग-समीक्षा,
थी मौन भाव से होती;
अवसन्न प्रकृति के घर में,
मृदुता मीलित दृग सोती।

(३)

ललना के पावन कर से,
छूटी फूलों की माला—
सरिता के सौम्य सदन में,
करती थी मंजु उजाला।

(४)

झोंका वह पूर्व-पवन का,
क्यों बार-बार आ जाता?
कवि के मानस-मंदिर मे,
भावों का जाल बिछाता।

* एक वृत्त में ३६० अंश, एक समकोण में ९० अंश। एक अंश = ६० मिनिट; एक मिनिट = ६० सेकेंड।

(५)

वह सूक्ष्म तरी का नर्तन,
परिवर्तन रम्य गगन का—
स्वर भरता था आहों के,
कंपन संगीत-भवन का।

(६)

अभिनव शृंगार अमा का,
सुषमा का शुचि आकर्षण।
विहगी के नयन-मुकुर में,
प्रतिबिंबित था वह दर्शन।

(७)

तारिका नील-मंडल में,
स्वप्नों का साज सजाती।
लेकर उसकी माया को,
नलिनी जल में सो जाती।

(८)

अस्ताचल की अनुरञ्जित,
छिप गई जिधर वह रेखा।
उस ओर चक्रवाकी ने,
जाते प्रियतम को देखा।

(९)

अवलंब-शेष निज लेकर,
थी पर्णकुटी को आती।
करके अञ्चल की छाया,
माता गृहदेव मनाती।

(१०)

भूला-सा श्रमित बटोही,
उन्मन मन्दिर के द्वारे।
व्याकुल था ले आने को
कल्पना-गगन के तारे।

(११)

दृग-द्वार खोल कर झाँका,
मुग्धा ने उत्सुक होकर;
तममयी प्रशान्त दिशा से,
आया न कहीं कोई पर।

तक्षशिला और ख़ैबर-घाटी की यात्रा

[श्रीयुत रायसाहब सोहनलाल, बी० ए०, एल-टी०, एफ़० आर० जी० एस०]
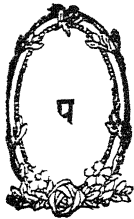
पञ्जाब के 'भौगोलिक एसोसिएशन' की ओर से पिछले मार्च मे तक्षशिला और ख़ैबर-घाटी की यात्रा की व्यवस्था की गई थी। इसके यात्री-दल मे २२५ व्यक्ति थे, जिनमे ४० नारियां थीं। दल का सङ्गठन नीचे लिखी हुई संस्थाओं-द्वारा हुआ था—

सेंट्रल ट्रेनिंग कालेज	...	२८
गवर्नमेंट कालेज	.. ..	२३
डी० ए० वी० कालेज	..	४५
एफ़० सी० कालेज	... ...	१६
सनातन-धर्म-कालेज	... ..	१०
इस्लामिया कालेज	. ..	६
दयालसिंह-कालेज	. ...	१३
हेली-कमर्स-कालेज	. ...	७
ला कालेज	... ...	११
केनार्ड-स्त्री-कालेज	.. ...	१
केनार्ड कन्या हाई स्कूल	... ...	७
कन्या हाई और नार्मल स्कूल ...	. .	६
हिन्दू सभा-कालेज (अमृतसर)	...	१
क्लर्क तथा दूसरे अध्यापक	... ..	४५
		२२५

इसी यात्री-दल में हेली-कालेज के प्रिंसपल टाम्सन, प्रोफ़ेसर राव, प्रोफ़ेसर गुलशनराय, प्रोफ़ेसर कृष्णदत्त, प्रोफ़ेसर राधाकृष्ण, प्रोफ़ेसर घनश्यामदास, प्रोफ़ेसर लालचन्द्र, प्रोफ़ेसर चरणदेव, प्रोफ़ेसर अख़्तरहुसेन, प्रोफ़ेसर मुहम्मद अब्दुल्ला, मिस डोनाल्ड एम० ए०, मिस के० राव, मिस काल्डवेल, मिस रास आदि थे। शिमला, फ़ीरोज़पुर, मालेरकोटला, गुरदासपुर, मोगा, अमृतसर, सङ्गला, स्यालकोट, डिंगा आदि स्थानों से भी आकर लोग इसमें शामिल हुए थे। इस दल के सेक्रेटरी लाला सोहनलाल थे।

तक्षशिला मे यह दल कुछ ही घंटों के लिए ठहरा था। इसके सिवा वहां उस दिन पानी बरसने लगा था। अतएव दल के अधिकांश लोग केवल धर्मराज का स्तूप और सिरकप-नगर ही देख पाये। परन्तु दल के जो लोग अधिक साहसी थे और जो बहुत पहले ही देखने-भालने के लिए चले गये थे उन्होंने लगभग सभी खोदाई के महत्त्वपूर्ण स्थान देख डाले। उदाहरण के लिए जैसे कुनाल-स्तूप, शिरदान-स्तूप, मोहरा मोरादू और जौलियान के मठ आदि। दल के कुछ यात्री वहां का अजायब-घर भी देखने मे समर्थ हो सके। इस अजायब-घर में वहाँ की खोदाई में पाई हुई चीज़ों का एक उत्कृष्ट संग्रह है। इसमें मौर्यकालीन मिट्टी के बर्तन, रत्नजटित सन्दूकचियों, तांबे के बर्तनों, भिन्न भिन्न सम्राटों के सिक्कों, सोने की चूड़ियों, सोने के कुण्डलों, चांदी के आभूषणों, मोतियों, तथा दूसरे रत्नों और मौर्यकालीन मिट्टी के बर्तनों का संग्रह है।

केवल खोदे हुए स्थानों को देखने से ही इस प्राचीन नगर की समृद्धि एवं गौरव तथा संस्कृति का पता लग जाता है। वहां की खोज के दृश्य ने हम लोगों को चकित कर दिया। भारत-सरकार के पुरातत्त्व-विभाग-द्वारा सर जान मार्शल के निरीक्षण में जो खोज वहाँ हुई है उसने इतिहास-लेखकों को भविष्य का सच्चा चित्र अङ्कित करने में समर्थ बना दिया है।

हम लोग तक्षशिला से दिन में ११ बजकर ३७ मिनट पर रवाना हुए और सन्ध्या को ५ बजे पेशावर पहुँचे। मार्गों में रेलगाड़ी से हमें वाह स्टेशन से एक बड़ी पहाड़ी दिखाई दी। इस पहाड़ी मे पास की एक सेमेंट फ़ैक्टरी के लिए चूना खोदा जाता है। अटक के पुल का दृश्य बहुत ही सुन्दर दिखाई दिया। यहाँ से अटक का क़िला और सिन्ध और काबुल नदी का सङ्गम भी दिखाई देता है। अटक की सड़क और वहाँ का रेलवे-पुल जो पानी की सतह से १११ फ़ुट ऊँचा है,

सन् १८८३ में खुला था। पुल लोहे के गर्डरों का बना हुआ है। प्रवाह की तेज़ी और ऊँचाई के कारण इसके बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ी थी। रेलगाड़ी की पटरियाँ पुल के ऊपर पड़ी हैं और गमनागमन की सड़क नीचे के खण्ड से गई है।

पुल के दोनों सिरों के फाटक क़िलेबन्दी-द्वारा सुरक्षित हैं। हाल ही में सारे पुल की एक सिरे से मरम्मत हुई है, गर्डर आदि बदल कर नये लगाये गये हैं। जब हम लोग पेशावर-छावनी में पहुँचे तब पानी बरस रहा था। परन्तु सरकारी महमानख़ाने के सुपरिंटेंडेंट तथा दूसरे मित्र हमें लेने के लिए स्टेशन पर आ गये थे। सीमा-प्रान्त की सरकार की कृपा से यात्री-दल के ठहरने का प्रबन्ध महमानख़ाने में ही किया गया था। मेहमानख़ाने की इमारत बड़ी है। इसमें बहुत लोगों के ठहरने की जगह है। हमारे आराम के लिए पूरा प्रबन्ध था। दूसरे दिन पाँचवीं मार्च को सबेरे हम लोग रेलगाड़ी से ख़ैबर-घाटी को रवाना हुए। हवा सर्द थी, परन्तु दृश्य अद्भुत था। पहले छः मील अर्थात् जमरूद के स्टेशन तक हमें मैदान मिला। जमरूद में लन्दीकोतल के राजनैतिक तहसीलदार साहब हमारे दल की सुरक्षा का प्रबन्ध करने के लिए उपस्थित थे। हम लोगों के दल के प्रत्येक व्यक्ति के डिब्बे में अफ़रीदियों से हमारी रक्षा करने के लिए भरी हुई बन्दूक़ लिये एक एक ख़ासदार बैठा था।

जब हम लोग उस काली और वर्जित घाटी के समीप पहुँचे तब हमें अपनी बाईं ओर तार के रस्सों के मार्ग के खम्भे खड़े दिखाई दिये। रेलगाड़ी चलने के पहले फ़ौजी माल-असबाब इसी मार्ग से जाता-आता था। हमारी दाहनी ओर फ़ौजी सड़क थी। घाटी के भीतर प्रवेश करने पर वहाँ का दृश्य बिलकुल पहाड़ी दिखाई दिया। रेल-मार्ग भी तादृश ही था। पहाड़ की ढलानों में वह ऊपर-नीचे होता और घुमाता-फिराता हुआ गया था। वह लगातार बोगदों में ग़ायब होता, गहरे जार्जों के अगणित ऊँचे ऊँचे पुलों के ऊपर से जाता, शगाई तक लगातार ऊँचा उठता चला गया था। शगाई से वह रेल-मार्ग अली मसजिद के जार्ज में घुस गया था। लन्दीकोतल

इस्लामिया कालेज, कच्चागढ़ी

से इस घाटी के सिरे की चढ़ाई का अन्तिम भाग ८ मील लम्बा है। बीच बीच में उजाड़ और सूर्यतप्त पहाड़ी मार्ग के ऊपर ऊँचाई पर ईगल के घोंसलों की भाति स्थित झोपड़ियों और मीनारों के कुछ प्रभावशाली दृश्य हमें दिखाई दिये। हमने मार्ग में अफ़रीदी स्त्रियों को ऊँची ऊँची पहाड़ियों पर अपनी बकरी-भेड़ों के ग़ल्ले चराते देखा। पहाड़ियों के निचले भाग की जिन गुफाओं में वे निवास करती है उन्हें भी हमने देखा। हमारा ध्यान एक स्तूप तथा पत्थर की एक प्राचीन दीवार की ओर आकृष्ट किया गया। यह दीवार सम्राट् अशोक की बनवाई बताई जाती है।

लन्दी कोतल से रेल-मार्ग लन्दीख़ाना तक गया है। वहाँ से यह स्थान छः मील दूर था। यहा हम लोग कोई ३ घंटे तक रहे। यहाँ से कुछ ही दूर पर अफ़गान-सरकार का चुंगी-घर दिखाई देता था। इस चुंगी-घर की इमारत सफ़ेद है। इसके अहाते की दीवार पर लिखा है—राहदारी के परवाना-बिना इस सीमा को पार करना सर्वथा वर्जित है।

लन्दीख़ाना में अन्तर्राष्ट्रीय डाक-घर भी है। यहां प्रायः सभी यात्रियों ने अपने भारतीय तथा विदेशी मित्रों के नाम पत्र डाले। उस समय बर्फ़ गिरी थी, अतएव चारों ओर की हिमावृत पहाड़ियां बहुत ही सुन्दर दृश्य उपस्थित किये हुए थीं। अँगरेज़ी सेना की क़िलाबन्दी की हुई छावनियों और ऊँची पहाड़ियों पर के मकानों का दृश्य तो कभी भूलने का नहीं। सन्ध्या-समय ९ बजे हम लोग पेशावर लौट आये। कुछ लोग इस्लामिया कालेज रेलवे-स्टेशन में उतर पड़े और उस महत्त्वपूर्ण कालेज की इमारतों तथा खेल के मैदान को देखा। दूसरे लोगों ने पेशावर-नगर के क़िस्सा-कहानी-बाज़ार, घोर खत्री, पंचतीर्थी और अजायबघर आदि स्थान देखे। इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यहां का अजायबघर बड़े काम का है। इसमें पेशावर के समीप खोजकर निकाली हुई केवल बौद्ध-कालीन बहुमूल्य टूटी-फूटी वस्तुएँ ही नहीं रक्खी हुई हैं, किन्तु जनरल एविटाबिले महाराज रणजीतसिंह, खड्गसिंह, नौनिहालसिंह, हरीसिंह नलवा तथा रणजीतसिंह के समय के दूसरे सरदारों के सुन्दर सुन्दर चित्र भी हैं।

जमरूद का क़िला

दूसरे दिन छठी मार्च को हम लोग लाहौर को लौट पड़े। मार्ग में हम लोग तीन घंटे के लिए रावलपिंडी में ठहर गये और वहाँ का बाज़ार, छावनी तथा दूसरे स्थान देखे-भाले। यात्री-दल सफलता-पूर्वक अपनी यात्रा समाप्त करके ७ वीं मार्च को सवेरे लाहौर पहुँच गया।

इस यात्रा के मुख्य मुख्य स्थानों का वर्णन इस प्रकार है—

पेशावर-छावनी--यह लाहौर से २८८ मील और काबुल से १६० मील ३४°१ अक्षांश और ७°१३७' देशान्तर पर है। भारत में यह एक अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण था। इस नगर के पूर्व शाहजी की ढेरी है। यहाँ कनिष्क के बनवाये हुए भारत के सबसे बड़े स्तूप के ध्वंसावशेष हैं। इस स्थान में सन् १६०६ में एक पुरानी सन्दूकची मिली थी जिसमें राख थी। कहा जाता है कि वह बुद्ध के चिता की भस्म थी। यह सन्दूकची पेशावर के अजायब-घर में रक्खी है।

बुद्ध के अवशेषों के यहाँ होने के कारण चीनी यात्रियों ने सन् ४०० और सन् ६३० के बीच में यहाँ की यात्रा की थी। ह्वेनसांग ने लिखा है कि यह नगर पौने सात मील के घेरे में है। मुग़लों के ज़माने से काबुल जाने-

लंडीकोतल छावनी का साधारण दृश्य
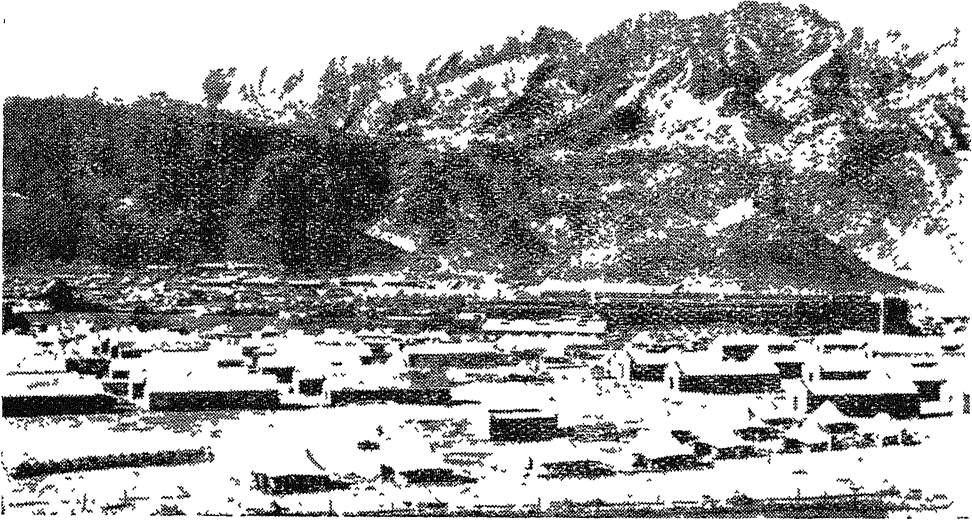
सीमावर्ती नगर है। पेशावर का ज़िला एक बड़ी भारी तराई है। यह पहाड़ियों से घिरा हुआ है और इसमें काबुल, बरा और स्वात नाम की नदियाँ बहती हैं। पेशावर में कई एक फलों के बाग़ हैं। वसन्त में जब गुलाब और फलों के वृक्ष फूलते हैं और ताज़ा बर्फ़ जमी हुई दिखाई देती है तब यह स्थान बहुत ही अधिक सुन्दर हो जाता है।

प्राचीन काल में यह स्थान बौद्धों का मुख्य केन्द्र था और दूसरी सदी में यह नगर कनिष्क की राजधानी

वाली सड़क पर होने के कारण इसका महत्त्व बहुत था। मुग़लों के पराभव पर दुर्रानियों का इस पर अधिकार हुआ। उनके बाद महाराज रणजीतसिंह ने इस पर अपना क़ब्ज़ा जमाया। उनके इटाली सेनापति एविटाबिले ने इस पर बड़ी कठोरता से शासन किया। सन् १८४६ में पंजाब के अँगरेज़ी-राज्य में मिला लिये जाने के कारण इस पर अँगरेज़ों का अधिकार हुआ। सन् १६०१ में यह पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त की राजधानी बना दिया गया।

इस नगर का मुख्य बाज़ार क़िस्सा-कहानी गली में लगता है। यहां भयावने और रंग-बिरंगी पोशाक के अफ़ग़ान और मध्य-एशियाई लोग देखने को मिलते हैं। काबुल और बुख़ारे को यहां से माल आता-जाता है। काबुल से कच्चा रेशम और फल आते हैं और बुख़ारा से कश्मीर होकर सोने-चांदी के तागे और लेस आती है। काबुली और बुख़ारी व्यवसायी यहां से रेशमी कपड़ा, सूती कपड़ा, शक्कर, चाय, नमक और कश्मीरी शाल ले जाते हैं। पेशावर में दुपट्टे या लुंगियां बनती हैं। यह यहां का मुख्य धन्धा है। मोमजामे का और ज़री का वाई। इसके बाद एविटाबिली ने उसे अपना निवास-स्थान बनाया। मुसलमानों की सबसे श्रेष्ठ इमारत मुहब्बतखां की मसजिद है। एविटाबिली इसी के मीनारों पर लोगों को फांसी देता था।

यहां के सार्वजनिक बाग़ बाग़ीचे और अजायबघर भी जो छावनी में हैं, देखने की वस्तुएँ हैं। अजायबघर में यूनान-बौद्धकालीन पत्थर की तराशी के नमूनों का सुन्दर संग्रह है। इनमें से अधिकांश शार-बहलोल और तख़्त-बहाई की खोदाई में प्राप्त हुए थे। इसमें सम्राट् कनिष्क की भी एक सन्दूकची रक्खी है। नगर के उत्तर बाला-
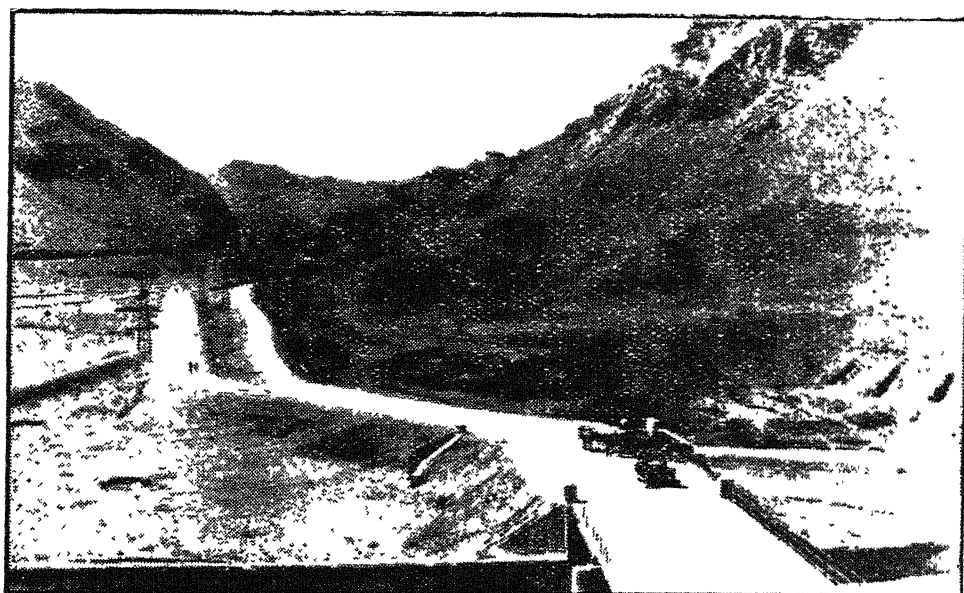
(जमरूद और अली मसजिद के बीच में से) ख़ैबर-घाटी

काम भी यहां होता है एवं चाक़ू और छोटे हथियार भी बनते हैं। एक ख़ास तरह का लकड़ी का भी काम यहां होता है।

गोरखत्री—इसके एक भाग में तहसील की कचहरी है। इस पर से नगर का सारा दृश्य दिखाई देता है। यह पहले एक बौद्धविहार का स्थान था। फिर वहां एक हिन्दू-मन्दिर बना। इसके बाद जहांगीर की बेगम नूरजहां ने वहां एक पान्थशाला बन- हिसार नाम का क़िला है। इसकी मिट्टी की दीवारें ९२ फ़ुट ऊँची हैं।

ख़ैबर-घाटी—यह घाटी जमरूद-क़िले से शुरू होती है। जमरूद-क़िला पेशावर से ६ मील पश्चिम है। यहीं घाटी के प्रवेश का द्वार है। इस क़िले को महाराज रणजीतसिंह के सेनापति हरीसिंह नलवा ने बनवाया था। इसकी दीवारें १० फ़ुट मोटी और फाटक दुहरे हैं। हरीसिंह इसमें रहकर अफ़ग़ानों से मोर्चा लेता रहा। बाद

को वह सन् १८३७ में एक युद्ध में मारा गया। जमरूद और पेशावर के बीच मे 'बुर्ज हरीसिंह' है। इसी के समीप उसका शव जलाया गया था। जमरूद के आगे घाटी भयावनी पहाड़ियों के बीच से होती हुई कोई ३३ मील उत्तर-पश्चिम जाने के बाद अफ़ग़ान-सीमा पर पहुँचती है। यह बात ध्यान में रखना चाहिए कि यह घाटी काबुल-नदी से दूर दक्षिण ओर है। वहा वह मोहम्मद नामक जाति के लोगों-द्वारा अधिकृत कठिन और ऊबड़-खाभड़ देश से होकर गई है। पेशावर से लन्दीखाने तक इससे होकर मोटरगाड़ी के लिए एक बहुत अच्छी सड़क गई है, ही अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। किंवदन्ती है कि अली मस्जिद मे ख़लीफ़ा अली ने नमाज़ पढ़ी थी। इस स्थान मे घाटी बहुत तङ्ग है और इसके दोनों ओर के पहाड़ों की ऊँचाई कोई दो हज़ार फ़ुट होगी। इसके पास ही तीन झरने है। जल के लिए सारी घाटी इन्हीं पर निर्भर है। इस घाटी का सबसे ऊँचा स्थान लन्दीकोतल यहा से १० मील पश्चिम है। लन्दीकोतल में एक कारवां सराय और एक क़िला है। लन्दीकोतल और अली मस्जिद दोनों स्थानों मे सेना रहती है। लन्दीकोतल से रेलमार्ग लन्दीख़ाना को नीचे उतरता गया है। लन्दीकोतल से

ख़ैबर-रेलवे-स्टेशन, लन्दीकोतल

और यही सड़क सीधे काबुल तक जो अँगरेज़ी-सीमा से १८० मील पर है, चली गई है। यह एक ऐतिहासिक-घाटी है। अज्ञातकाल से इसी से होकर आक्रमणकारी दल भारत में आये हैं। सन् १९२५ के नवम्बर से इस घाटी में जमरूद से लन्दीख़ाना तक कोई २७ मील तक रेल-मार्ग भी खुल गया है। इस रेल-मार्ग में ३२ बोगदे पड़ते है। इसके निर्माण में पौने तीन करोड़ रुपये का व्यय हुआ है। इस घाटी के मार्ग में अली मसजिद और लन्दीकोतल लन्दीख़ाना पांच मील पश्चिम है। लन्दीख़ाना से एक मील पश्चिम तोख़म से अफ़ग़ान-सीमा का प्रारम्भ होता है। इसी स्थान में राहदारी के परवाने के बिना अफ़ग़ान-सीमा पार करने की 'निषेध आज्ञा' लिखी हुई है। काबुल जाने के लिए विशेषरूप का राहदारी का परवाना प्राप्त करना पड़ता है। भारत और उससे मिले हुए देशों के बीच में सबसे बड़े व्यापारी मार्गों में से एक यह घाटी भी है। प्रति मंगलवार और शुक्रवार

के दिन माल से ख़ूब लदे हुए गधों, बैलों और ऊँटों के, बकरियों और भेड़ों के, तथा जङ्गली जान पड़ने वाले पुरुषों, स्त्रियों एवं बाल-बच्चों के काफ़िले इस घाटी में दिखाई देते हैं। घाटी से इन्हें हथियारबन्द ख़ासदार सकुशल पहुँचा देते हैं। वहा पर बसनेवाली जातियों के जो लोग इस या ऐसे ही किसी काम के लिए भर्ती किये जाते हैं वे ख़ासदार कहलाते हैं। ये ख़ासदार इसके आस-पास की पहाड़ियों पर भी पहरा देते हैं, क्योंकि वहा की पहाड़ियों में आज भी ऐसी लुटेरू जातिया निवास करती हैं जो अरक्षित क़ाफ़िलों पर आक्रमण करने को सदा तैयार रहती हैं। ये क़ाफ़िले कभी कभी पाच पाच मील लम्बे हो जाते हैं। भारत में इनका भी दृश्य अत्यन्त विचित्र है।

सीमा के उस अञ्चल में पहरा देने के कगूरे और मोर्चे जगह जगह दिखाई दे जाते हैं। पेशावर की तराई के सभी गाव सुरक्षित हैं। गावों में कृषक सशस्त्र निकलते हैं। सभी की पीठ पर तोड़ेदार बन्दूक़ लटकती दिखाई देती है। पूर्वोक्त कँगूरों पर लोग बैठ कर अपनी खेती का पहरा देते हैं। वहां चारों ओर जो पत्थरों के ढेर दिखाई देते हैं वे इस बात के सूचक हैं कि वहां कोई न कोई ख़ून-ख़राबी हुई है।

तक्षशिला—तक्षशिला लाहौर से उत्तर-पश्चिम १८० मील दूर है। यह स्थान अत्यन्त ही मनोरम तराई में स्थित है, जो हिमावृत पहाड़ियों से घिरी हुई है और जिसमें हारो तथा उसकी सहायक नदिया बहती हैं। यह भारत से मध्य-एशिया को जानेवाले मार्ग पर स्थित है। इसकी स्थिति, इसकी जल की प्रचुरता तथा इसकी भूमि की उर्वरता आदि बातों ने इसे प्राचीन भारत का एक अत्यन्त ही महत्त्व-पूर्ण नगर बना दिया था। यह उस समय शिक्षा का सबसे बड़ा पीठ था। इसमें दूर दूर से विद्यार्थी पढ़ने को आते थे। इस तराई में तीन नगरों के भग्नावशेष खोद कर निकाले गये हैं, जो क्रम क्रम से समुन्नत हुए थे। इनके सिवा वहां स्तूप, विहार, पूजा-गृह, मन्दिर, स्तम्भ भी हैं। ये सारे ध्वंसावशेष २५ वर्ग मील के घेरे में फैले हुए हैं।

तक्षशिला एक बहुत ही प्राचीन नगर है। सम्भवतः इसका अस्तित्व ईसा के दो हज़ार वर्ष पहले था। राजा जनमेजय के नाग-यज्ञ के सम्बन्ध में इसका उल्लेख

ख़ैबर-रेल-गाड़ी बोगदे से बाहर निकल रही है

महाभारत में हुआ है। राजा जनमेजय ने इस नगर को जीता था। ईसा के ५०० वर्ष पहले यह नगर ईरान-साम्राज्य में शामिल था। उस समय यह एक बड़ा भारी विद्या-पीठ था और ललित कला तथा विज्ञान के लिए प्रसिद्ध था। इसकी यह स्थिति बाद को भी बहुत दिनों तक बनी रही। महान् सिकन्दर ने ईसा के ३२६ वर्ष पूर्व पंजाब पर चढ़ाई की थी और पश्चिमी पंजाब में उसने यूनानी बस्तियाँ और छावनियां स्थापित की थीं, परन्तु चन्द्रगुप्त ने उनका पराभव किया और तक्षशिला पर शासन फलता-फूलता रहा होगा। दूसरा नगर जो सिरकप के नाम से प्रसिद्ध था, तमरानाला की दूसरी ओर था। इसे यूनानियों ने बसाया था। पहले यहाँ यूनानी रहे, बाद को सीथियावाले और प्रारम्भ के कुशन लोग। तीसरा नगर जो अब सिरसुख कहलाता है, सम्भवतः महान् कुशन सम्राट् कनिष्क-द्वारा ईसा की दूसरी सदी में बसाया गया था और यह नगर पाँच सौ वर्ष तक समुन्नत रहा। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इसी नगर को देखा था।
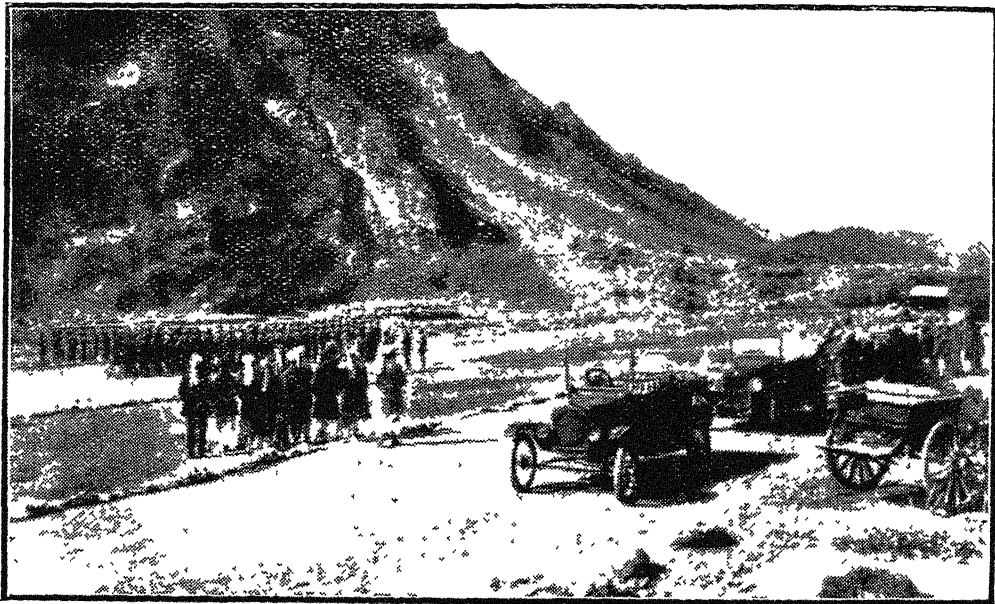
तूरखुम के पास अफ़ग़ान और अँगरेज़ी सीमा

किया। उसके बाद अशोक का भी इस पर अधिकार रहा। अशोक की मृत्यु के बाद बैक्ट्रिया, सीथिया तथा पार्थियावालों एवं कुशन लोगों ने इस पर शासन किया। हमें तक्षशिला में बौद्ध और यूनानी कला के नमूने मिलते हैं।

इस बात का उल्लेख हो चुका है कि इस तराई में तीन भिन्न भिन्न नगरों के अस्तित्व का पता लगा है। इन तीनों नगरों के जो ध्वंसावशेष खोद कर निकाले गये हैं उनमें सबसे प्राचीन नगर भीर के टीले पर रहा है। यह नगर ईसा के २ हज़ार वर्ष पहले से ईसा के १८० वर्ष बाद तक

तक्षशिला में जो ध्वंसावशेष खोद कर निकाले गये हैं उनको देखने के लिए दो दिन चाहिए। परन्तु प्रत्येक दर्शक यात्री को धर्मराज का स्तूप, कुनाल-स्तूप, और सिरकप नगर अवश्य देखना चाहिए। यदि उसके पास अधिक समय हो तो उसे जंडियल का मन्दिर भी देखना चाहिए और वहाँ से मोहरा मोरादू और जौलियां को जाना चाहिए।

धर्मराज-स्तूप या चीर टोप—स्तूप क्या है, यह तो पाठक जानते ही होंगे। प्रारम्भ में ये मृतक के स्मारक रूप में बनाये जाते थे। परन्तु बौद्धों के समय में इनका

निर्माण बुद्ध या किसी बौद्ध-साधु का कोई चिह्न रखने या कोई मुख्य पवित्र स्थान की स्मृति के लिए भक्तिभाव से होता था। स्तूप के बाह्य रूप को देख कर यह नहीं कहा जा सकता कि उसमें कोई प्राचीन चिह्न है या नहीं। बौद्धों के लिए स्तूप का स्थापन सदा पुण्य-कार्य रहा है, वे उसके निर्माण को मोक्ष की प्राप्ति का साधन मानते थे।

धर्मराज के स्तूप के ध्वंसावशेष में बहुसंख्यक स्तूप, विहार और पूजा-गृह हैं। बीच में प्रधान स्तूप है, जिसका निर्माण ईसा के पूर्व पहली सदी में हुआ था, परन्तु बाद को उसका परिवर्द्धन और पुनरुद्धार होता रहा है। इसके पूर्व ओर के पत्थर की नक़ाशी देखने की वस्तु है। प्रधान इमारत के चारों ओर छोटे छोटे स्तूपों का पहले एक घेरा था, परन्तु जब वे गिर गये तब उनके स्थान में पूजा-गृहों की एक श्रेणी तथा दूसरे अनेक स्तूप तथा पूजा-गृह इधर-उधर बना दिये गये। साथ ही एक मठ भी उत्तर ओर बना दिया गया। इस मठ के ध्वंसावशेष की खोदाई अभी नहीं हुई है। इस ओर की इमारतें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य हैं, क्योंकि इनके निर्माण में भिन्न भिन्न शैलियों का उपयोग हुआ है। सीथिया-पार्थिया-कालीन, ईसा की पहली सदी, दूसरी सदी और तीसरी सदी की इमारत की शैलियाँ यहाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

इस स्तूप के ध्वंसावशेष के बीच उत्तर-पूर्व ओर एक पूजा-मन्दिर है, जिसमें बुद्ध की एक विशाल मूर्ति का खण्डित अंश है। बुद्ध की यह मूर्ति ३० फुट से ४५ फुट तक ऊँची रही होगी। प्रधान स्तूप के पश्चिम में एक मन्दिर और एक पूजा-गृह खोद निकाला गया है।

कुनाल-स्तूप उस स्थान की याद दिलाता है, जहाँ सम्राट् अशोक के पुत्र कुनाल ने अपनी सौतेली माँ के षड्यन्त्र के कारण अपनी दोनों आँखें फोड़ डाली थीं। असली स्मारक केवल १० फुट के लगभग ऊँचा है। वह अपने पश्चिम ओर की अधिक बड़ी इमारत के भीतर से सार-तत्त्व की भाँति उठा हुआ दिखाई देता है। स्तूप के पश्चिम पास ही एक विस्तृत मठ है। कुनाल-स्तूप से सिरकप नगर का पूरा दृश्य दिखाई देता है।

सिरकप-नगर में एक बड़ी सड़क है, जो उत्तर-दक्षिण है। इसके उत्तरी सिरे पर क़िलेबन्दी है। इसकी तरह तरह की इमारतें एक दूसरी से गलियों-द्वारा यथाविधि पृथक् पृथक् हैं। सतह पर की इमारतें पार्थिया-वालों और प्रारम्भ के कुशन लोगों की हैं। उनके नीचे सीथियावालों के समय की इमारतें हैं। इनके नीचे जो इमारतें हैं वे यूनानवालों के समय की हैं। हाल में यहाँ जो खोदाई हुई है उससे कई मकान, कई छोटे छोटे मन्दिर जो जैनियों के जान पड़ते हैं, एक बड़ा बौद्ध-मन्दिर, और एक ऐसी जगह जिसका नक़शा असीरिया के महल के नक़शे से मिलता-जुलता है, निकली है। मकान दो या तीन मंज़िल के हैं। ये कई एक सहनों में विभक्त हैं, जिनके चारों ओर कमरों की पंक्तियाँ हैं। इनमें या तो कई एक परिवार रहते होंगे या अपने बहुसंख्यक विद्यार्थियों के साथ अध्यापक। इन मकानों में तहख़ाने भी हैं।

जंडियल का मन्दिर लगभग ईसाई सन् के प्रारम्भ का है। यह यूनानी मन्दिर के ढङ्ग से बना है। इसमें ठोस मीनार है, जिस पर से सूर्योदय और सूर्यास्त देखा जा सकता था। इसमें मूर्तियाँ नहीं थीं। सम्भवतः यह अग्निपूजक पारसियों का मन्दिर रहा होगा। सीथिया और पार्थियावालों के समय यहाँ अग्निपूजक पारसी बहु संख्या में रहे होंगे।

मोहरा मोरादू और जौलिया के स्तूप तथा विहार अपने ढङ्ग के ऐसे पुराने स्मारक हैं जो आज भी अच्छी दशा में हैं। ये दूसरी सदी के हैं। इनकी मूर्तियाँ तथा इनका पत्थर का काम ध्यान देने योग्य है। विहार के आँगन में जो छतरियों के सहित स्तूप हैं वे स्तूप के एक उत्कृष्ट उदाहरण हैं। जौलिया के ध्वंसावशेष भी मोहरा मोरादू के-से ही हैं। यहाँ के एक छोटे स्तूप में एक सन्दूकची मिली थी। इस पर चूने का पलस्तर था और यह रङ्गीन तथा रत्नजटित थी।

यहाँ के अजायबघर में वे चीज़ें रक्खी हैं जो तक्षशिला के खण्डहरों के खोदने से प्राप्त हुई हैं। सर्वसाधारण इसे देख-भाल सकते हैं। हाँ, रविवार को प्रत्येक आदमी पीछे =) फ़ीस देनी पड़ती है। सोमवार, बुध और शुक्र को कुछ भी नहीं देना पड़ता है।

श्रीकान्त

(उत्तरार्द्ध)

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

प्रथम परिच्छेद

इस अस्तव्यस्त जीवन का जो अध्याय उस दिन राजलक्ष्मी के निकट, अन्तिम बिदाई के समय, आंसुओं के बीच, समाप्त कर आया था, उसके छिन्न सूत्र को जोड़ने के लिए फिर मेरी पुकार होगी, यह मैंने सोचा न था। किन्तु पुकार जब सच-मुच ही पड़ी तब समझ पड़ा कि विस्मय और संकोच मुझे चाहे जितना हो, इस आह्वान को शिरोधार्य करने में रत्ती भर भी इधर-उधर करने से काम नहीं चलेगा।

इसी से आज फिर इस अस्त-व्यस्त जीवन की विशृंखल घटना की सैकड़ों जगह से छिन्न गाँठो को और एक बार बांधने में प्रवृत्त होता हूँ।

आज याद पड़ता है, घर लौट आने के बाद मेरे इस सुख-दुःख-मिश्रित जीवन को किसी ने जैसे अचानक दो हिस्सों में बाँट दिया था। तब जान पड़ा था, मेरे इस जीवन के दुःख का बोझ जैसे मेरा अपना नहीं है। इस बोझ को लादे वह घूमे जिसे बड़ी ग़रज़ हो। अर्थात् मैं जो दया करके ज़िन्दा रहूँगा, यह राजलक्ष्मी के लिए सौभाग्य की बात है। आँखों में आकाश का रंग बदल गया, हवा का स्पर्श शरीर में एक दूसरी ही तरह का लगने लगा। जैसे कहीं घर-बार या अपना-पराया नहीं रहा। ऐसे एक प्रकार के अनिर्वचनीय उल्लास से मेरा भीतर और बाहर एकाकार हो उठा कि रोग को रोग, विपत्ति को विपत्ति या अभाव को अभाव मैं नहीं समझने लगा। संसार में कहीं भी जाने या कुछ भी करने में अब जैसे दुबधा या बाधा का लेश नहीं रह गया।

ये सब बहुत दिन की बातें हैं। यद्यपि मेरा वह आनन्द अब नहीं है, किन्तु उस दिन के उस एकान्त विश्वास की निश्चिन्त निर्भरता का स्वाद जो जीवन में एक दिन भी पा सका, यही मेरे लिए परम लाभ है। अथच उसे गँवाने का ख़याल करके भी किसी दिन मुझे कुछ भी क्षोभ नहीं होता। केवल यही कभी-कभी ख़याल होता है कि जिस शक्ति ने उस दिन इस हृदय के भीतर से ही जगकर इतनी जल्दी संसार के सम्पूर्ण निरानन्द भाव को हर लिया था वह कैसी विराट शक्ति थी! और, ख़याल होता है, उस दिन मेरी ही तरह और भी दो दुर्बल, असमर्थ हाथों के ऊपर इतना बड़ा बोझ न रखकर यदि समस्त विश्व-ब्रह्माण्ड का भार वहन करनेवाले उन दोनों हाथों के ऊपर ही अपने उस दिन के उस अखण्ड विश्वास की सारी निर्भरता सौंप देता तो आज मुझे काहे की चिन्ता थी? ख़ैर, इस बात को जाने दो।

राजलक्ष्मी को घर पहुँचने की ख़बर देनेवाली जो चिट्ठी मैंने लिखी थी उसका जवाब तो आया, लेकिन बहुत दिनों के बाद आया। मेरे अस्वस्थ शरीर के लिए चिन्ता प्रकट करने के बाद मुझे विवाह करके गृहस्थ बनने का भारी उपदेश उसमें दिया गया था। और, फिर यह कह कर वह संक्षिप्त पत्र उसने समाप्त किया था कि कामकाज के झंझट में वह ठीक समय पर पत्र वग़ैरह अगर न लिख सके तो भी मैं बीच बीच में पत्र लिख कर अवश्य ही उसे अपने कुशल-समाचार देता रहूँ और उसे "अपना आदमी" समझूँ।

तथास्तु! इतने दिन बाद उस राजलक्ष्मी की यह चिट्ठी आई!

आकाश-कुसुम आकाश में ही सूख गया और उसकी जो सूखी-साखी दो-एक पंखड़ियां हवा में झड़ पड़ीं उन्हें

बटोर कर घर मे उठा रखने के लिए मैं धरती टटोलता भी नहीं फिरा। आखो से चाहे दो-एक बूँद जल भले ही गिरा हो, लेकिन उसकी याद मुझे नहीं है। हा, यह अवश्य स्मरण है कि दिन अब स्वप्न की तरह सहज मे और जल्दी बीतना नहीं चाहते थे। तो भी इसी तरह और भी ५-६ महीने बीत गये।

एक दिन सबेरे बाहर निकलने का उपक्रम कर रहा था, इसी समय अचानक एक पत्र आकर उपस्थित हुआ। ऊपर औरतों के से कच्चे अक्षरों में मेरा नाम और पता-ठिकाना लिखा हुआ था। खोलते ही पत्र के भीतर से और एक छोटा-सा पत्र ज़मीन पर गिर पड़ा। उठाकर उसके अक्षरों और हस्ताक्षरों को देखते ही सहसा मैं अपनी ही आंखों पर जैसे विश्वास न कर सका।

मेरी जो माता दस साल पहले स्वर्ग सिधार गई थी उन्हा के हाथों का लिखा यह पत्र था। पढ़ कर देखा, मा ने अपनी सहेली को, जिसके साथ उन्होंने 'गंगाजल'* सम्बोधन का सम्बन्ध स्थापित किया था, जिस तरह अभय देना चाहिए उसी तरह अभय दिया है।

मामला शायद यह था कि १२-१३ साल पहले इन गंगाजल देवी के अधिक अवस्था मे एक कन्या-रत्न उत्पन्न हुआ तब उन्होंने अपने दुःख, दैन्य और दुश्चिन्ता का रोना रोकर मा को एक पत्र लिखा था, और उसी पत्र के उत्तर मे मेरी स्वर्गवासिनी जननी ने इस गंगाजल-सुता के विवाह का सारा भार ग्रहण करके जो पत्र लिखा था, वही महा-मूल्य दस्तावेज़ यह छोटा-सा पत्र है।

सामयिक करुणा से विगलित होकर मा ने उपसंहार मे लिखा है—सुपात्र अगर और कहीं न मिले तो उनका अपना लड़का तो मौजूद ही है। ठीक है! संसार मे सुपात्र का अगर अत्यन्ताभाव हो तो मैं तो हूँ ही।

सब पत्र आदि से अन्त तक दो बार पढ़कर देखा, बेशक बाक़ायदे मुंशियाना ढंग से लिखा गया था! मेरी मा को तो वकील होना चाहिए था। कारण, जितनी तरह की कल्पनायें की जा सकती है वे करके वह अपने को और अपने वंशधर पुत्र को इस लड़की के व्याह की ज़िम्मे-दारी मे बाध गई हैं। इस लिखावट मे कहीं कुछ भी बचत की राह या कुछ भी त्रुटि वे नहीं रख गई है।

वह चाहे जो हो, मुझे यह मालूम पड़ा कि श्रीमती गंगाजल इस सुदीर्घ तेरह वर्ष के समय तक केवल इस पक्की लिखावट पर ही निर्भर करके निश्चिन्त, निर्भय, नीरव होकर नहीं बैठी रही होंगी। बल्कि जान पड़ा, बहुत कुछ कोशिश करके भी जब धन-जन के अभाव से उन्हें सुपात्र का हाथ लगना एक-दम दुर्घट देख पड़ा और क्वारी कन्या की शारीरिक बढ़ती की ओर दृष्टिपात करके पुलक के मारे कलेजे का ख़ून मग़ज़ मे चढ़ने लगा, तभी इस हतभाग्य सुपात्र के ऊपर उन्होंने अपना यह एक-मात्र ब्रह्मास्त्र छोड़ा है।

माताजी अगर ज़िन्दा होतीं तो इस चिट्ठी को लिखने के लिए आज मैं उनसे भिड़ जाता, उनका सिर खा जाता; किन्तु अब जिस ऊँचे स्थान पर बैठकर वे हँस रही हैं वहा छलांग मारकर भी मैं उनके तलवों मे ही ठोकर मारकर अपने जी की जलन मिटा सकूँ, यह भी असम्भव है—वह रास्ता भी मेरे लिए बन्द हो गया है।

अतएव मा का कुछ न कर पाकर उनकी गंगाजल का क्या कर सकता हूँ क्या नहीं कर सकता, यह जाचने के लिए मैं एक दिन रात को स्टेशन पर आकर उपस्थित हुआ। रात भर गाड़ी मे बिताकर, दूसरे दिन गंगाजल के घर देहात मे आकर जब मैं उपस्थित हुआ उस समय दिन का तीसरा पहर था। गंगाजल मैया ने पहले तो मुझे पहचाना नहीं। अन्त को परिचय पाकर इन तेरह वर्ष के बाद उस दिन मेरी मा के लिए ऐसा रोईं कि उनकी मृत्यु के समय उनका कोई अपना आदमी आंखों के आगे उन्हें मरते देखकर भी इस तरह शायद न रोया होगा।

बोलीं—लोक-दृष्टि से और धर्म से भी वही इस समय मेरी मा की जगह पर हैं। इस ज़िम्मेदारी को अपने ऊपर लेने के परिचय-स्वरूप या प्रथम सोपान-स्वरूप मेरी सांसारिक अवस्था की पुंखानुपुंखरूप से पर्यालोचना

* बंगालियों में यह चाल है कि स्त्रियां आपस मे मित्रता स्थापित करती हैं, तो गंगाजल, तुलसीपत्र, आंख की किरकिरी आदि किसी भी मनमाने नाम से दोनों दोनों को पुकारती हैं।—अनुवादक

करने में प्रवृत्त हुईं, अर्थात् मेरे पिता क्या छोड़ गये हैं, मेरी मा के कौन-कौन गहने हैं और किसके पास हैं, मैं नौकरी क्यों नहीं करता और अगर नौकरी करूँ तो अंदाज़न कितने रुपये माहवारी मिल सकते हैं इत्यादि कोई बात पूछने से उठा नहीं रक्खी।

उनका मुँह देखकर जान पड़ा, इस आलोचना का फल उनके निकट उतना सन्तोष-जनक नहीं हुआ। बोलीं—उनका कोई एक आत्मीय बर्मामुल्क में नौकरी करके 'लाल' हो गया है, अर्थात् बड़ा मालदार बन गया है। वहाँ राह-घाट में गली-गली रुपये बरसते हैं, केवल बटोर लाने भर की देर होती है! वहाँ जहाज़ से उतरते-उतरते बंगालियों को साहब लोग कंधे पर चढ़ाकर ले जाते और नौकरी दे देते हैं। इसी तरह की अनेक बातें वह बक गईं।

पीछे मैंने देखा, यह भ्रान्त विश्वास केवल उन्हीं को न था—इसी विश्वास के वश होकर, इसी माया-मरीचिका में पागल-से होकर अनेक बंगाली निस्सहाय-निस्सम्बल अवस्था में खाली हाथ बर्मा दौड़े गये और उनका जब मोह टूटा तब उन्हें भारत वापस भेजने में हम लोगों को कुछ कम कष्ट नहीं उठाने पड़े।

किन्तु इस समय इस ज़िक्र की ज़रूरत नहीं। गंगाजल-मा का वह बर्मा का विवरण मेरे मन में अंकित हो गया। 'लाल' होने की आशा नहीं, बल्कि मेरे हृदय के भीतर जो घुमक्कड़ कुछ दिन से ऊँघ रहा था वह अपनी तन्द्रा अथवा सुस्ती को दूर करके फ़ौरन उठ खड़ा हुआ। जिस समुद्र को अब से पहले केवल दूर से ही देखकर मैं मुग्ध हो गया था, उसी अनन्त जल-राशि को चीर कर, उसी के ऊपर से, जाऊँगा, इस ख़याल ने मुझे एक-दम अधीर कर दिया। किसी तरह एक बार छुटकारा पा जाऊँ, बस।

आदमी आदमी से जितनी तरह की जिरह कर सकता है उसमें से कोई भी इन नई मा ने बाक़ी नहीं छोड़ी। सुतरां अपनी लड़की के भावी वर के पद से उन्होंने मुझे मुक्ति दे दी है, इस बारे में मैं एक तरह से निश्चिन्त ही हो गया था। किन्तु रात को भोजन के समय उनकी भूमिका का ढंग देखकर उस दिन मैं घबरा उठा। जान पड़ा, वे मुझे एक-दम हाथ से निकल जाने देना नहीं चाहतीं। उन्होंने इस प्रकार कहना शुरू किया—लड़की के नसीब में सुख न बदा होने से लड़के के चाहे जितना रुपया-पैसा, घर-द्वार, ज़मीन-जमा, विद्या-बुद्धि देखकर क्यों न व्याह करो, सभी निष्फल होता है। इस सम्बन्ध में नाम-धाम-विवरण आदि सहित अनेक विश्वासयोग्य नज़ीरें भी पेश करके उन्होंने ऐसी विफलता के अनेक प्रमाण दिखा दिये। केवल यही नहीं, इसके विरुद्ध अनेक ऐसे आदमियों के नामों का भी उल्लेख किया, जो महामूर्ख होकर भी केवल जोरू के भाग्य के ज़ोर से ही इस समय रुपयों की ढेरी पर दिन-रात बैठे रहते हैं।

मैंने उन्हें विनय-पूर्वक जताया कि रुपयों पर मेरी आसक्ति रहने पर भी चौबीसों घंटे उन्हीं पर बैठे रहना मुझे पसंद नहीं, और इसके लिए स्त्री के नसीब को जाँचने का कौतूहल भी मुझे नहीं है। किन्तु इससे कुछ विशेष फल नहीं हुआ। वे निरस्त नहीं हुईं। कारण इतने दिन के बाद, तेरह वर्ष के उपरान्त जो ऐसे पत्र को जुगोकर प्रमाण-स्वरूप उपस्थित कर सकती है वह स्त्री इतने सहज में बहलाई नहीं जा सकती। वह बारबार यही कहने लगी कि इसे तुम्हें मा का ऋण ही स्वीकार करना चाहिए, और जो सन्तान समर्थ होकर भी माता के ऋण को नहीं चुकाता वह—इत्यादि, इत्यादि।

मैं जब अत्यन्त शङ्कित और उद्विग्न हो उठा, तब बातों-ही-बातों में मुझे मालूम हुआ कि निकट के एक गाँव में एक सुपात्र है अवश्य, लेकिन पाँच सौ रुपये से कम में वह हाथ नहीं आने का।

एक क्षीण आशा की किरण देख पड़ी। महीना भर बाद कुछ-न-कुछ इसका उपाय करने का वादा करके दूसरे दिन सबेरे ही मैं वहाँ से चल दिया। किन्तु उपाय किस तरह और क्या करूँगा, यह किसी ओर कुछ सूझ न पड़ा।

मैं अपने को तरह तरह से यह समझाने लगा कि मेरे ऊपर आरोपित यह बन्धन किसी तरह मेरे लिए सत्य का बन्धन नहीं हो सकता; किन्तु तो भी बीच-बीच में माता को इस वादे की फांसी से छुटकारा दिये बिना चुपचाप खिसक जाने की बात को भी मैं किसी तरह सोच न सका!

जान पड़ता है, एक उपाय था। वह यही कि पियारी से कहूँ। किन्तु इस सम्बन्ध में भी कुछ दिन तक अपने मन को स्थिर नहीं कर सका। बहुत दिन हुए, उसकी कुछ ख़बर भी नहीं मिली। वहीं पहुँचने की ख़बर के सिवा मैंने भी उसे और चिट्ठी नहीं लिखी और उसने भी उसके जवाब के सिवा अन्य पत्र नहीं भेजा। जान पड़ता है, उसका यह मंशा न था कि चिट्ठी-पत्री के द्वारा भी हम दोनों में कोई सम्बन्ध रहे। कम से कम उसकी उस चिट्ठी से मैंने ऐसा ही समझा था। तथापि आश्चर्य है कि पराई लड़की के ब्याह के लिए भिक्षा माँगने के बहाने एक दिन मैं सचमुच पटने में पियारी के यहां आकर उपस्थित हो गया।

दरवाज़े के भीतर प्रवेश करके नीचे की बैठक के बरामदे मे देखा, दो वर्दी पहने हुए दरबान बैठे हुए हैं। वे एकाएक मुझ-सरीखे एकश्रीहीन, अपरिचित आगन्तुक को देख कर इस तरह ताकने लगे कि ऊपर सीधे चढ़ने मे मुझे सङ्कोच मालूम पड़ा। इन्हें पहले नहीं देखा था।

उस पुराने वृद्ध दरबान की जगह इन नये नौजवान चुस्त-दुरुस्त पहरेदारों की पियारी को क्यों आवश्यकता हुई, यह मैं समझ न सका। ख़ैर, इनकी पर्वा न करके ऊपर चढ़ जाऊँ या इनसे विनयपूर्वक प्रवेश की अनुमति माँगूँ—यह ठीक कर ही रहा था कि इतने में देखा, रतन व्यस्तभाव से नीचे उतरा आ रहा है। अकस्मात् मुझे देख कर वह पहले अवाक् हो गया। फिर पैरों के पास सिर टेक कर प्रणाम करने के उपरान्त कहने लगा—कब आये बाबूजी? यहाँ खड़े क्यों हैं?

मैंने कहा—अभी आ रहा हूँ रतन। सब ख़ैरियत है न?

रतन ने सिर हिलाकर कहा—सब कुशल है भैया साहब! ऊपर जाइए, मैं बर्फ ख़रीद कर अभी आता हूँ।

रतन बाहर जाने को उद्यत हुआ।

मैंने पूछा—तुम्हारी मालकिन तो यहीं है?

"है" कह कर तेज़ी से रतन निकल गया।

ऊपर चढ़ कर बग़ल ही के कमरे में बैठक थी। उसके भीतर से एक ज़ोर की हँसी का शब्द और साथ ही अनेक आदमियों की आवाज़ सुनाई पड़ी। कुछ विस्मित हो उठा। किन्तु वैसे ही द्वार के सामने आकर तो मैं दंग रह गया।

पहले जब आया था उस समय इस बैठक को काम में लाते मैंने नहीं देखा था। तरह तरह के साज-सामान, टेबिल, कुर्सी वग़ैरह बहुत सी चीज़ें एक कोने में ढेर करके रक्खी रहती थीं, किन्तु कोई इसके भीतर आकर बैठता उठता न था। आज देखा, बैठक भर मे पूरा फ़र्श बिछा है। इधर से उधर तक कार्पेट बिछा हुआ है। उस पर सफ़ेद चादर बिछी है। तकियों पर साफ़ गिलाफ़ चढ़ाये गये हैं और उन्हीं में से कई के सहारे कई एक भले आदमी आश्चर्य की दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं।

उनका पहनावा बङ्गालियों की तरह धोती, कुर्ता, चदरा रहने पर भी सिर पर चिकन की टोपी देख कर बिहारी ही जान पड़े। एक बाएँ तबले के जोड़े के पास हिन्दुस्तानी तबलची तथा उसी से कुछ फ़ासले पर ख़ुद पियारी बाई विराजमान थी। एक ओर छोटा-सा हारमोनियम रक्खा था। पियारी की पोशाक मुजरेवाली बेशक न थी, लेकिन सजाव-सिंगार की कमी न थी। समझ गया, यह संगीत की बैठक है, दम भर विश्राम हो रहा है।

मुझे देखते ही पियारी के चेहरे मे ख़ून का एक बूँद जैसे नहीं रहा। उसके बाद ज़ोर करके ज़रा हँस कर पियारी ने कहा—यह क्या! श्रीकान्त बाबू हैं! कब आये?

मैंने कहा—आज ही।

पियारी ने कहा—आज ही? कब? कहां ठहरे हैं?

क्षण भर के लिए शायद मैं इस प्रश्न से हतबुद्धि हो गया हूँगा, नहीं तो जवाब देने में देर न होती। किन्तु अपने को सँभाल लेने में भी देर नहीं लगी।

मैंने कहा—यहाँ के सभी आदमियों को तो तुम पहचानती नहीं हो, नाम सुन कर पहचान न सकोगी।

जो सज्जन सबसे अधिक ठाट के साथ शान के साथ बैठे थे, वही शायद इस यज्ञ के यजमान थे। उन्होंने कहा—आइए बाबू जी, बैठिए। इतना कह कर उन्होंने तनिक मुस्का भी दिया। उन्होंने अपने भाव से यह सूचित किया कि हम दोनों के सम्बन्ध को उन्होंने भांप लिया है।

उनको एक सम्मान-सूचक प्रणाम करके जूते का फ़ीता खोलने के बहाने सिर झुका कर तनिक अपनी अवस्था पर मैंने विचार कर लेना चाहा। विचार करने के लिए समय अधिक न था; किन्तु इन्हीं कई सेकिंडों में मैंने यह निश्चय कर लिया कि मेरे भीतर चाहे जो कुछ भाव हो, बाहर के किसी व्यवहार में उसे ज़ाहिर होने देना ठीक न होगा। अपनी बातचीत, अपनी नज़र या अपने समस्त आचरण में भीतर का रत्ती भर भी क्षोभ या रोष न प्रकट होने दूँगा, यह मैंने तय कर लिया।

क्षण भर बाद भीतर सबके बीच में आकर जब मैं बैठा तब अपना चेहरा अपनी आंखों से न देख पाने पर भी भीतर यह मैंने ठीक ठीक अनुभव कर लिया कि उसमें अप्रसन्नता का लेश-मात्र चिह्न नहीं है।

राजलक्ष्मी की ओर देख कर हँसते हुए मैंने कहा—बाईजी, आज परमहंस शुकदेव का पता मालूम होता तो उनको तुम्हारे सामने बिठला कर एक बार उनके मन का ज़ोर जाँचता। तुमने यह क्या किया? यह तो रूप का दरिया बहा दिया है!

प्रशंसा सुनकर उत्सव के मालिक बाबू साहब आह्लाद से विगलित होकर बारम्बार सिर हिलाने लगे। वह पुर्निया-ज़िले के रहने वाले थे। देखा, बँगला बोल तो नहीं सकते, मगर समझ ख़ूब लेते हैं। किन्तु मेरी उक्ति सुनकर पियारी के कान तक लाल हो उठे। मगर लज्जा से नहीं, क्रोध से, यह मैंने फ़ौरन समझ लिया। लेकिन मैंने उधर ध्यान भी नहीं दिया, उन बाबू को उद्देश्य करके उसी तरह हँसते हँसते बँगला में मैंने कहा—मेरे आने के कारण अगर आप लोगों के आमोद-प्रमोद में कुछ भी विघ्न हुआ तो मुझे अत्यन्त दुःख होगा। गाना-बजाना हो न।

बाबू साहब इतने ख़ुश हो उठे कि जोश के मारे मेरी पीठ पर धम से हाथ दे मार कर—अर्थात् मेरी पीठ ठोक कर—बोले—बहुत अच्छा बाबू साहब।—पियारी जान, एक कोई बढ़िया गाना गाओ।

'शाम के बाद अब गाना-बजाना होगा, इस वक्त नहीं' कह कर सामने से हारमोनियम ठेल कर पियारी बाई सहसा उठ गई।

अब वह बाबू साहब मेरा परिचय ग्रहण करने के बहाने वास्तव में अपना परिचय देने लगे—इनका नाम है रामचन्द्रसिंह। वह पुर्निया-ज़िले के एक ज़मींदार हैं। दरभंगे के महाराजा उनके भाईबन्द हैं। पियारी बाई को वह ७-८ वर्ष से जानते हैं। वह उनकी पुर्निया की कोठी में ३-४ बार मुजरा कर आई है। वह ख़ुद भी अक्सर यहाँ उसका गाना सुनने आया करते हैं। कभी कभी १०-१२ दिन तक रहते हैं। लगभग तीन महीने पहले भी आकर एक सप्ताह रह गये हैं—इत्यादि इत्यादि। अब उन्होंने मेरे बारे में प्रश्न किया, मैं क्यों आया हूँ? मेरे उत्तर देने के पहले ही पियारी आकर उपस्थित हो गई।

उसकी ओर देख कर मैंने कहा—बाईजी से पूछिए न, क्यों आया हूँ।

पियारी ने मेरी ओर तीव्र कटाक्ष किया, किन्तु जवाब शान्त सहज स्वर में ही दिया। कहा—यह मेरे हो देश के आदमी हैं।

मैंने कहा—बाबूजी, शहद होने से ही मक्खियाँ आकर जुट जाती हैं, वे देश-विदेश का कुछ विचार नहीं करतीं।

किन्तु इतना कहने के बाद ही मैंने देखा, मेरी दिल्लगी का मतलब न समझ पाने के कारण पुर्निया ज़िले के ज़मींदार साहब का मुँह फूल गया। इतने में उनके नौकर ने आकर सूचना दी कि संध्या-आह्निक करने की तैयारी की जा चुकी है। ज़मींदार साहब फ़ौरन उठ कर चले गये।

तबलची तथा अन्य दो-एक भले आदमी भी उन्हीं के साथ साथ प्रस्थान कर गये। ज़मींदार साहब के मन का भाव अकस्मात् क्यों बिगड़ गया, इसका कुछ भी पता मैं न पा सका।

रतन ने आकर कहा—माजी, बाबू का बिछौना कहाँ बिछाया जाय?

पियारी ने खीझ के साथ कहा—क्या कोई और कमरा नहीं है? मुझसे बिना पूछे क्या तू रत्ती भर भी अपनी बुद्धि नहीं ख़र्च कर सकता रतन? जा यहाँ से!

यह कहती हुई रतन के साथ ही पियारी भी चली गई। मैंने अच्छी तरह देख पाया, मेरे आकस्मिक शुभा-

गमन से इस घर का भाव-केन्द्र बहुत अधिक विचलित हो उठा है। किन्तु पियारी ने दम भर बाद लौट आकर मेरे मुँह की ओर कुछ देर ताकते रहने के उपरान्त कहा—इस तरह अचानक कैसे आना हुआ ?

मैंने कहा—देश-गाँव का आदमी ठहरा; बहुत दिनों से देख न पाया था, इसी से अत्यन्त व्याकुल हो उठा था बाईजी !

पियारी का मुँह और गम्भीर हो गया। मेरी इस दिल्लगी में कुछ भी शामिल न होकर उसने कहा—आज रात को यहीं रहोगे न ?

मैंने कहा—रहने को कहो तो रहूँ।

पियारी ने कहा—मेरा कहना-सुनना क्या है! मगर हाँ, यहाँ रहने में शायद तुम्हें असुविधा होगी। जिस कमरे में तुम सोते थे उसमें—

मैं बीच ही में बोल उठा—बाबू सो रहे हैं ? अच्छी बात है, मैं नीचे ही सोऊँगा। तुम्हारे घर के नीचे के कमरे भी तो बहुत बढ़िया हैं।

पियारी ने कहा—नीचे सोओगे ? कहते क्या हो ! मन में इतना-सा भी विकार नहीं है—दो दिन में इतने बड़े परमहंस कैसे हो उठे ?

मन में कहा—पियारी, तुमने मुझे अभी तक नहीं पहचाना। किन्तु प्रकट में कहा—मैं इससे रत्ती भर भी बुरा न मानूँगा। और कष्ट का अगर ख़याल करो तो वह एक-दम व्यर्थ है। मैं घर से निकलते समय खाने-पीने-सोने वग़ैरह की चिन्ता को वहीं छोड़ आता हूँ। यह तो तुम भी ख़ूब जानती हो। बिछौने अधिक हों तो एक बिछा देने के लिए कह दो; न हो तो कुछ ज़रूरत नहीं—मेरे पास कंबल मौजूद है।

पियारी ने सिर हिलाकर कहा—हाँ, वह तो है, मैं जानती हूँ। किन्तु प्रश्न यह है कि इस व्यवस्था से तुम्हारे मन में कुछ दुःख तो न होगा ?

मैंने हँसकर कहा—ना। कारण, स्टेशन पर पड़ रहने की अपेक्षा यह व्यवस्था कहीं अच्छी है।

पियारी ने दम भर चुप रहने के बाद कहा—लेकिन मैं अगर तुम्हारी जगह पर होती तो चाहे किसी पेड़ के नीचे पड़ रहती, पर इतना अपमान कभी न बरदाश्त करती !

उसकी उत्तेजना पर लक्ष्य करके मुझसे हँसी रोकी न रुकी। अब मैं बहुत देर से समझ गया था कि पियारी मेरे मुँह से क्या सुनना चाहती है। किन्तु शान्त स्वाभाविक स्वर से ही मैंने उत्तर दिया—मैं इतना मूर्ख नहीं कि समझ लूँ, तुम जानबूझकर अपनी इच्छा से नीचे सोने के लिए कहकर मेरा अपमान कर रही हो। तुम्हारी शक्ति होती, या इस समय सम्भव होता, तो तुम उसी दफ़े की तरह मेरे सोने की व्यवस्था अवश्य ही करती। ख़ैर, इसे छोड़ो, इस तुच्छ बात को लेकर अधिक वाद-विवाद करने की ज़रूरत नहीं। तुम जाकर रतन को भेज दो, मुझे चलकर नीचे का कमरा बतला दे, मैं कम्बल बिछा कर सो रहूँ। बहुत थका हुआ हूँ।

पियारी ने कहा—तुम ज्ञानी आदमी हो, समझदार ठहरे। तुम अगर मेरी ठीक अवस्था को न समझ लोगे तो और कौन समझेगा ? ख़ैर, मेरी जान में जान आई !

यह कहकर एक निकलती हुई लम्बी साँस दबाकर उसने फिर पूछा—

अच्छा, इस एकाएक आने का सत्य कारण क्या न सुन पाऊँगी ?

मैंने कहा—प्रथम कारण न सुन पाओगी, हाँ दूसरा सुन पाओगी।

पियारी—पहला कारण क्यों न सुन पाऊँगी ?

मैं—अनावश्यक होने के कारण।

पियारी—अच्छा, दूसरा ही सुनूँ।

मैंने कहा—मैं बर्मा जा रहा हूँ। शायद फिर कभी भेंट-मुलाक़ात न होगी। कम से कम बहुत दिन तक भेंट न होगी, यह निश्चय है। जाने के पहले एक बार देखने चला आया।

रतन ने बैठक के भीतर प्रवेश करके कहा—बाबूजी, आपका बिस्तरा बिछ गया, आइए।

मैंने ख़ुश होकर कहा—चलो।

पियारी से कहा—मुझे बड़ी नींद लग रही है। घंटे भर के बाद अगर फ़ुरसत मिले तो एक बार नीचे आना, मुझे और भी कुछ कहना है।

यह कहकर रतन के साथ मैं चल दिया।

पियारी के ख़ास अपने सोने के कमरे में ले आकर रतन ने जब मुझको पलँग दिखा दिया तब मेरे विस्मय की सीमा न रही।

मैंने कहा—मेरा बिछौना नीचे के कमरे में न बिछा कर यहाँ क्यों बिछाया गया रतन?

रतन ने विस्मित होकर कहा—नीचे के कमरे में?

मैंने कहा—यही तो ठीक हुआ था।

उसने अवाक् होकर क्षण भर मेरी ओर ताकते रह कर कहा—आपका बिछौना नीचे के कमरे में बिछाया जायगा? आप भी कैसी दिल्लगी कर रहे हैं बाबूजी!

यों कहकर हँसकर वह चला जा रहा था, मैंने उसे बुला कर कहा—अच्छा, तुम्हारी मालकिन फिर कहाँ सोवेंगी?

रतन ने कहा—छोटे बाबू के कमरे में उनके लिए बिछौना बिछा आया हूँ।

पास आकर मैंने देखा, यह राजलक्ष्मी के उस डेढ़ हाथ चौड़े तख़्त पर बिछौना नहीं बिछाया गया था। एक बड़े भारी पलँग पर ख़ूब मोटा गुलगुला गद्दा डालकर यह राजसी शय्या तैयार की गई थी। सिरहाने के पास एक छोटे टेबिल के ऊपर एक सेज के भीतर मोमबत्ती जल रही थी। एक किनारे कई बँगला की किताबें रक्खी थीं, दूसरी तरफ़ एक पात्र में कुछ टटके बेले के फूल रक्खे थे। देखते ही मुझे मालूम पड़ गया कि इसमें से किसी चीज़ में नौकर का हाथ नहीं लगा, जो बहुत चाहती है उसी ने अपने हाथ से सब सजावट की है। ऊपर की चादर तक राजलक्ष्मी अपने हाथ से बिछा गई है, यह जैसे मैंने अपने हृदय के भीतर से अनुभव किया।

आज उस आदमी के सामने मेरे अचिन्तित आगमन से हतबुद्धि होकर पहले राजलक्ष्मी ने चाहे जो व्यवहार किया हो; मेरी निर्विकार उदासीनता से मन ही मन वह शंकित हो उठ रही थी, यह भी मुझसे छिपा नहीं था; और क्या मेरे व्यवहार अथवा वाक्य में थोड़ी सी भी ईर्ष्या प्रकट होते देखने के लिए इतनी देर से तरह तरह से मुझे वह आघात कर रही थी, यह भी मैं समझ गया था; किन्तु यह सब जानकर भी जो अपनी निष्ठुर रूढ़ता को ही पौरुष मानकर उसके अभिमान का कुछ भी मान मैंने नहीं रक्खा, उसके प्रत्येक क्षुद्र आघात को सौगुना करके फिरा दिया, यही अपना अन्याय अब मेरे मन में सुई की तरह बिंधने लगा।

बिछौने पर लेट रहा, पर नींद नहीं आई। मैं निश्चय जानता था, एक बार अवश्य ही आवेगी। अब उसी समय के लिए उत्सुक हो रहा था, मेरे कान उसके पाँवों की आहट सुनने के लिए खड़े थे।

थकन के मारे शायद मैं ज़रा सो गया था। सहसा आँख खुलते ही देखा, पियारी मेरे पैरों पर एक हाथ रक्खे बैठी है। मेरे उठकर बैठते ही उसने कहा—बर्मा में जाकर आदमी फिर नहीं लौटता, यह जानते हो?

मैंने कहा—ना, यह तो नहीं जानता।

उसने कहा—फिर?

मैंने कहा – लौटना ही होगा, इसके लिए किसी के सिर की क़सम तो है नहीं।

उसने कहा—क्यों नहीं है? तुम क्या दुनिया भर के सभी आदमियों के मन का हाल जानते हो?

बात बहुत साधारण थी। किन्तु संसार में यही एक बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य की कमज़ोरी कब किस रास्ते से अपने को ज़ाहिर कर बैठेगी, इसका अनुमान नहीं किया जा सकता। अब से पहले कितने ही असंख्य गुरुतर कारण उपस्थित होने पर भी मैंने कभी अपने भाव को प्रकट नहीं होने दिया, किन्तु आज राजलक्ष्मी के मुख की यह अत्यन्त सीधी बात मैं सहन नहीं कर सका। मेरे मुँह से सहसा निकल गया—सबके मन की बात तो मैं नहीं जानता राजलक्ष्मी, किन्तु एक आदमी के मन की बात जानता हूँ। अगर वहाँ से कभी लौटकर आऊँगा तो केवल तुम्हारे ही लिए। तुम्हारे सिर की क़सम को मैं टाल नहीं सकूँगा।

पियारी मेरे पैरों पर एक-दम लोट गई। मैंने इच्छा करके ही पैर नहीं खींच लिये। किन्तु लगभग दस मिनट बीत जाने पर भी जब उसने सिर नहीं उठाया तब उसके सिर पर मेरे दाहिना हाथ रखते ही वह काँप उठी, मगर वैसे ही पड़ी रही। सिर भी नहीं उठाया और न मुँह से ही कुछ कहा।

मैंने कहा—उठ कर बैठो लक्ष्मी। इस हालत में कोई देख लेगा तो उसे बड़ा आश्चर्य होगा।

किन्तु पियारी ने जब मेरी बात का कुछ भी जवाब नहीं दिया तब ज़ोर करके उसे उठाने की चेष्टा मैंने की तो देखा, उसके नीरव आँसुओं से वहां की सारी चादर भीग गई है। खींच खांच करने पर वह रुँधे हुए स्वर में कह उठी—पहले मेरी दो-तीन बातों का जवाब दो तब मैं उठूँगी।

मैंने कहा—बोलो, किन बातों का जवाब चाहती हो?

उसने कहा—पहले यह बताओ, उस आदमी के यहां रहने से तुमने मुझे कुछ बुरा तो नहीं समझ लिया?

मैंने कहा—ना।

पियारी ने फिर तनिक चुप रह कर कहा—लेकिन मेरा चरित्र अच्छा नहीं है, यह तो तुम जानते ही हो, फिर तुम्हें सन्देह क्यों नहीं होता?

प्रश्न बड़ा टेढ़ा था। वह भली औरतों में अब नहीं है, यह भी जानता ही हूँ; किन्तु उसका आचरण बुरा है, यह भी नहीं सोच सकता। लाचार चुप रह गया।

एकाएक आँसू पोंछ कर तेज़ी से वह उठ बैठी और बोली—अच्छा, तुमसे मैं यह पूछती हूँ कि मर्द चाहे जितना बुरा हो जाय, वह अगर भला होना चाहता है तो उसे कोई नहीं मना करता, तो फिर हम लोगों ही के लिए सब रास्ते क्यों बन्द हैं? अज्ञानवश, हाथ की तङ्गी से एक दिन जो कुछ मैं कर बैठी थी वही क्यों मुझे हमेशा करना पड़ेगा? हम लोगों को तुम मर्द लोग अच्छी राह पर क्यों न चलने दोगे?

मैंने कहा—हम लोग तुम्हें कभी मना नहीं करते। और, अगर हम मना भी करें तो यह निश्चित है कि संसार में किसी के भले होने की राह को कोई बन्द नहीं कर सकता।

पियारी बहुत देर तक चुपचाप मेरे मुँह की ओर, ताकती रही। उसके बाद धीरे धीरे उसने कहा—अच्छी बात है! तो फिर तुम भी बन्द नहीं कर सकोगे।

मेरे उत्तर देने के पहले ही दरवाज़े पर रतन के खाँसने का शब्द सुन पड़ा।

पियारी ने कहा—क्या है रतन?

रतन ने सिर अन्दर करके कहा—माजी, रात बहुत हो गई है। बाबू जी का ब्यालू का सामान न लाओगी? रसोइया-महाराज ऊँघते-ऊँघते रसोई-घर में ही लुढ़क रहे हैं।

"ओह! अभी तुम लोगों ने भी नहीं खाया-पिया" कह कर लज्जित और व्यस्तभाव से पियारी उठ कर चल दी। मेरे भोजन की थाली वह अपने ही हाथ से लाया करती थी। आज भी उसे लाने के लिए तेज़ी से चली गई।

भोजन समाप्त करके जब मैं पलँग पर लेटा तब रात का एक बज गया था। पियारी फिर आकर मेरे पैरों के पास बैठ गई। बोली—तुम्हारे लिए मैं आज बहुत रात तक जागी हूँ—आज तुमको भी सोने न दूँगी।

यों कहकर मेरी सम्मति की कुछ भी अपेक्षा न करके उसने मेरे पैरों के ओर का तकिया खींच लिया और बायाँ हाथ सिर के नीचे रखकर आड़ी होकर वहीं लेट रही। फिर बोली—मैंने बहुत सोच-विचार कर देखा, तुम्हारा इतनी दूर जाना किसी तरह नहीं हो सकता।

मैंने पूछा—तो फिर और क्या हो सकता है? इसी तरह घूमते रहना? पियारी ने इसका जवाब न देकर कहा—इसके सिवा तुम इतनी दूर बर्मामुल्क में क्यों जाना चाहते हो, सुनूँ तो सही?

मैंने कहा—नौकरी करने के लिए, सैर के लिए नहीं।

मेरी बात सुनकर पियारी उत्तेजना के मारे उठ बैठी और बोली—देखो, दूसरे किसी से चाहे जो कहो, किन्तु मुझे धोका देने की कोशिश न करना। मुझे धोका देने से तुम्हारा न यह लोक बनेगा और न परलोक, यह जानते हो?

मैंने कहा—यह मैं खूब जानता हूँ। अब बताओ, तुम क्या करने को कहती हो?

मेरी इस स्वीकारोक्ति से पियारी खुश होगई। उसने हँसकर कहा—स्त्री की जाति जो सदा कहती रहती है, वही मैं भी कहती हूँ! एक ब्याह करके गृहस्थ बनो—संसार-धर्म का पालन करो।

मैंने प्रश्न किया—क्या सचमुच इससे तुम सुखी होगी?

उसने सिर हिलाकर कानों के आभूषण को आन्दोलित करके कहा—निश्चय सुखी होऊँगी। एक सौ बार सुखी होऊँगी। इससे मैं न सुखी हूँगी तो भला संसार में और कौन सुखी होगा, तुम्हीं बतलाओ?

मैंने कहा—सो तो मैं नहीं जानता; किन्तु यह मेरी एक दुर्भावना अवश्य आज दूर होगई! वास्तव में यही ख़बर देने के लिए मैं यहां आया था कि इस समय ब्याह किये बिना मेरे लिए और उपाय नहीं है।

पियारी और एक बार कानों के स्वर्णाभूषण को आन्दोलित करके बड़े आनन्द के साथ कह उठी—ऐसा हो तो मैं कालीघाट में जाकर माता की पूजा कर आऊँगी। लेकिन यह कहे देती हूँ कि लड़की मैं ख़ुद देखकर पसंद करूँगी।

मैंने कहा—इसके लिए तो अब गुंजाइश नहीं रही। लड़की ठीक होगई है।

मेरे गंभीर स्वर पर शायद पियारी का ध्यान गया। सहसा उसके हँसते हुए चेहरे पर एक मलिन छाया आपड़ी। उसने कहा—अच्छा तो है, बुरा क्या है! अगर लड़की ठीक होगई है तो बड़ी ख़ुशी की बात है।

मैंने कहा—ख़ुशी या रंज तो मैं जानता नहीं राजलक्ष्मी, जो ठीक हो गया है वही तुमको सूचित कर रहा हूँ।

पियारी एक-दम ख़फ़ा हो उठी। बोली—जाओ, चालाकी रहने दो; तुम सब झूठ कह रहे हो।

मैंने कहा—मेरी एक बात भी झूठ नहीं है। चिट्ठी देखकर सब तुम जान लोगी।

यह कहकर कुर्ते की जेब से मैंने अपनी मा का और उनकी बहनेली का, दोनों पत्र निकाले।

"कहां है चिट्ठी, देखूँ?" कहकर हाथ बढ़ाकर पियारी ने दोनों चिट्ठियां हाथ में ले तो लीं, किन्तु उसके मुख पर जैसे अन्धकार छा गया। हाथ में दोनों पत्र लिये ही लिये उसने कहा—लेकिन पराई चिट्ठी पढ़ने की ज़रूरत ही मुझे क्या है!—ख़ैर, कहां ब्याह पक्का हुआ है?

मैंने कहा—पढ़कर देख न लो।

पियारी—मैं पराई चिट्ठी नहीं पढ़ती।

मैं—तो फिर पराई ख़बर जानने की भी तुम्हें ज़रूरत नहीं है।

"मैं नहीं जानना चाहती" कहकर वह फिर उसी तरह लेट गई। लेकिन वे दोनों चिट्ठियां उसकी मुट्ठी ही में थीं। बहुत देर तक उसने कोई बात नहीं की। उसके बाद धीरे धीरे उठकर जाकर लैंप की रोशनी बढ़ाकर फ़र्श पर दोनों पत्र लेकर स्थिर होकर वह बैठ गई। चिट्ठियों के लेख को, जान पड़ता है, उसने दो-तीन बार पढ़ा। उसके बाद वहां से उठ आकर फिर वैसे ही पलँग पर उसी जगह उसी तरह पड़ रही।

बहुत देर तक चुप रहने के बाद उसने कहा—सो गये?

मैंने कहा—नहीं तो।

पियारी ने कहा—इस जगह मैं किसी तरह तुम्हारा ब्याह न होने दूँगी। वह लड़की अच्छी नहीं है, उसे मैंने बचपन में देखा है।

मैंने कहा—मा की चिट्ठी तुमने पढ़ी?

पियारी ने कहा—हां, पढ़ी है। लेकिन चाची की चिट्ठी में ऐसा कुछ लिखा नहीं है कि तुम्हीं को वह लड़की अपने गले बांधनी होगी। और, वह चाहे अच्छी हो चाहे बुरी, इस लड़की को मैं किसी तरह तुम्हें अपने घर न लाने दूँगी।

मैंने कहा—अच्छा, तुम किस तरह की लड़की घर लाना चाहती हो, यह क्या मैं सुन सकता हूँ?

पियारी ने कहा—सो मैं अभी कैसे कह सकती हूँ? सोचकर देखना होगा।

तनिक देर चुप रहकर हँसकर मैंने कहा—तुम्हारी पसंद और विवेचना पर निर्भर रहने से तो मुझे अपना क्वांरापन दूर करने के लिए दूसरा जन्म लेना पड़े तो कुछ आश्चर्य नहीं—इस जन्म में तो ब्याह होता देख नहीं पड़ता! ख़ैर, यथासमय तुम्हारी बात मानकर न जाऊँगा, मुझे कुछ जल्दी नहीं है! किन्तु इस लड़की का ठिकाना तुम लगा देना—पांच सौ के क़रीब रुपये होने से लड़की का ब्याह हो जायगा, यह मैंने उसकी मा के मुँह से ही सुना है।

पियारी उत्साह के मारे और एक बार उठ बैठी और बोली—कल ही मैं रुपये भेज दूँगी—चाची का वचन मैं झूठा न होने दूँगी।

तनिक रुककर उसने फिर कहा—मैं तुमसे सच कहती हूँ, वह लड़की अच्छी नहीं है इसी से मुझे आपत्ति है, नहीं तो—

मैंने कहा—नहीं तो क्या ?

पियारी ने कहा—नहीं तो और क्या ! तुम्हारे योग्य लड़की पहले मैं खोज लूँगी तब तुम्हारे इस प्रश्न का उचित उत्तर दूँगी, अभी नहीं।

सिर हिलाकर मैंने कहा—तुम व्यर्थ चेष्टा न करो राजलक्ष्मी, मेरे योग्य लड़की तुम कभी खोजकर पा नहीं सकोगी।

क्षण भर चुप होकर बैठे रहने के बाद एकाएक राजलक्ष्मी कह उठी—अच्छा, यह मैं माने लेती हूँ कि ऐसी लड़की मैं नहीं खोज सकूँगी। अब यह बताओ कि बर्मा जाओगे तो मुझे भी अपने साथ ले चलोगे ?

उसका यह प्रस्ताव सुनकर मैं हँस पड़ा। कहा—मेरे साथ जाने की तुम्हारी हिम्मत होगी ?

पियारी ने मेरे मुख पर एक तीखी नज़र डालकर कहा—हिम्मत ! यह क्या तुम कोई कठिन बात समझते हो ?

मैंने कहा—मैं चाहे जो कुछ समझूँ, लेकिन तुम्हारी यह जो जायदाद, घर-द्वार, सामान वग़ैरह है, इसका क्या होगा ?

पियारी ने कहा—चाहे जो हो। तुम्हें जब नौकरी करने के लिए जाना पड़ा, इतना यह सब रहते भी तुम्हारे कुछ काम न आया, तब मैं इसे लेकर क्या करूँगी ? सब बंकू को दे जाऊँगी।

इस बात का जवाब मैं कुछ न दे सका। खुली खिड़की की राह बाहर अन्धकार को देखता हुआ चुपका बैठ रहा।

पियारी ने फिर कहा—अच्छा, इतनी दूर अगर न जाओ तो क्या काम नहीं चल सकता ? यह सब जायदाद क्या किसी दिन तुम्हारे किसी काम नहीं आ सकती ?

मैंने कहा—ना, कभी नहीं।

पियारी ने गरदन हिलाकर कहा—यह मैं जानती हूँ। अच्छा, मुझे तो अपने साथ ले चलोगे ?

इतना कहकर फिर उसने मेरे पैर पकड़ लिये। एक दिन इसी पियारी ने जब मुझे अपने घर से एक तरह से ज़बरजस्ती करके बिदा कर दिया था उस दिन इसके असाधारण धैर्य और मन के ज़ोर को देखकर मैं अवाक् हो गया था। आज उसी की इतनी बड़ी दुर्बलता, इस करुण कंठ की कातर विनय देख-सुनकर मेरा हृदय जैसे फटने लगा। किन्तु इसे साथ ले जाने की हामी किसी तरह भर न सका।

मैंने कहा—तुमको साथ बेशक नहीं ले जा सकता, किन्तु जब तुम मुझे बुलाओगी, तभी वहां से लौट आऊँगा। चाहे जहां रहूँ, सदा तुम्हारा ही मैं रहूँगा राजलक्ष्मी !

राजलक्ष्मी ने कहा—इस पापिन के होकर हमेशा तुम रहोगे ?

मैं—हां, रहूँगा।

राजलक्ष्मी—तब तो यह कहो कि किसी दिन तुम्हारा ब्याह भी न होगा ?

मैं—ना। इसका कारण यही है कि तुम्हारी राय के खिलाफ़, तुमको दुःख देकर यह काम करने के लिए कभी मेरी प्रवृत्ति न होगी।

पियारी एकटक कुछ देर तक मेरी ओर ताकती रही। उसके बाद उसकी आंखें सजल हो आईं और बड़े बड़े आंसू कपोलों पर होकर टपाटप पृथ्वी पर गिरने लगे।

आंसू पोंछ कर गाढ़ स्वर से उसने कहा—इस अभागिन के लिए जन्म भर तुम संन्यासी होकर रहोगे !

मैंने कहा—हां, सो मैं रहूँगा। तुम्हारे पास जो चीज़ मैंने पाई है उसके बदले संन्यासी होकर रहने से मेरी कोई हानि नहीं है। मैं चाहे जहां क्यों न रहूँ, मेरी इस बात पर तुम कभी अविश्वास न करना।

पल भर के लिए हम दोनों की चार आंखें हुईं। उसके बाद ही पियारी तकिये में मुँह छिपाकर पट पड़ गई। रुलाई के उच्छ्वसित आवेग से उसका सारा शरीर बारंबार कांप कांप कर फूल उठने लगा।

सिर उठाकर देखा, सारे घर में गहरी नींद की छाप पड़ी हुई थी, कहीं कोई भी नहीं जागता था। एक बार केवल यह जान पड़ा कि खिड़की के बाहर अँधेरी रात अपने कितने ही उत्सवों की प्रिय सहचरी पियारी बाईजी के इस मर्मभेदी अभिनय को आज जैसे चुपचाप आंखें खोले परम परितृप्ति के साथ देख रही है।
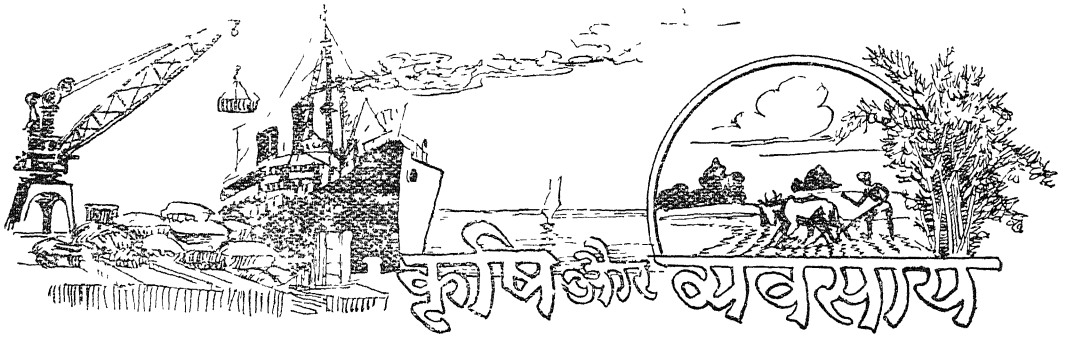
१——भारतवर्ष की आर्थिक कठिनाइयाँ

जो कच्चा माल भारतवर्ष के व्यापार का जीवन है, उसमें पाट की बड़ी नाज़ुक हालत रही। स्थानीय कारखानों में पिछले वर्ष का माल स्टाक में था और इस वर्ष मौसम आरम्भ होते ही दर गिर जाने से फिर उन्होंने ख़रीदना बन्द कर दिया। कारण, उनके पास काफ़ी स्टाक हो गया था। उन्होंने यह भाव बतलाया कि वे ख़रीदने के लिए गर्ज़मन्द नहीं है। बाज़ार के इन भावों में वे इस समय कदापि नहीं ख़रीदेंगे, वे मज़बूत अवस्था में है, पर बेचारे ग़रीब किसान नहीं ठहर सकते थे। उन्हें तो अपने माल के दाम चाहिए। विदेशी व्यापारियों ने भी माल ख़रीदने की उपेक्षा कर पाट के किसानों को मजबूर किया कि वे अपने भाव घटा दें। पाट के किसान सहकारी पद्धति से खेती करते होते तो सम्भव था कि वे व्यापारियों को नचा सकते। पर पूँजीपतियों के एकाधिपत्य ने उन्हें अभी तक उठने नहीं दिया। वास्तव में इस वर्ष पाट के कृषकों को जो दाम मिले उनसे उनकी मेहनत भी वसूल नहीं होती है। पाट पैदा करने के लिए जो बङ्गाल के किसान दिन-रात आधी कमर तक पानी में खड़े रह कर पौदों को सँभालते हैं; बङ्गाल की गर्मी और वर्षा को सहते है,—जिनके इस परिश्रम का मुकाबला करने में योरप के किसान भी असमर्थ हुए, उन्हें अपने माल का उचित दाम भी नहीं मिलता। कलकत्ते के बाड़ों में जो लोग सट्टा करते है वे यह शेख़ी मारते हैं कि हमारे सट्टे से पाट पैदा करनेवालों को अधिक दाम मिलते है। जहा उन्हें अपने पापों के लिए पश्चात्ताप करना चाहिए था, वहां वे निर्लज्जता से इस प्रकार कहते है। कलकत्ते के पाट के बाड़ों मे डिलेवरी शायद ही होती है, लेन-देन का सट्टा कर व्यापारी-समाज के हज़ारों नवयुवकों का जीवन नष्ट किया जाता है। पुलिस समय समय पर धावा भी बोलती है, किन्तु वे जुर्माना देकर छूट आते है और फिर वही काम करने लगते है। जो बाड़े यह कहते है कि हमारे यहाँ प्रत्येक सौदे की डिलेवरी होती है, वहां भी केवल फ़ार्स होता है। दिखाने के लिए सब ढोंग रचा जाता है। इस सट्टे ने औद्योगिक जीवन को नष्ट कर दिया। जिसे कहीं कोई रोजगार नहीं मिलता वह इन बाड़ों में चला जाता है। परिमित रूप में—अर्थात् उस अंश तक कि जिससे यहाँ का माल विदेशों में ऊँचे भाव बिक सके, वहा तक सट्टे से लाभ पहुँच सकता है। कारण, मुफ़स्सिलों में यही माँग पैदा करता है। पर इसके करने का उचित अधिकार उन्हीं को है जो आयात का व्यापार करते हों। कलकत्ते के मारवाड़ी सालीसिटर और बङ्गाल कौंसिल के सदस्य श्रीप्रभुदयाल हिम्मतसिंह का इस सट्टे को रोकने के लिए एक बिल कौंसिल में पेश किया गया है, जिसके पास होने पर किसी अंश तक यह रोग दूर हो सकता है।

रुई की अवस्था अन्य वर्षों के समान इस वर्ष भी रही। कितनी रुई का अनुमान निकलता है, और कितनी पैदा होती है, इससे भारतीय व्यापारियों की अपेक्षा किसानों को अधिक हानि उठानी पड़ती है। विलायत और अमेरिका के भाव और आंकड़े तथा विदेशी व्यापारियों की चालें, यहां की रुई की खपत विदेशों में अच्छे भावों में नहीं होने देती। रुई का भाव हमेशा अस्थिर रहता है, इससे किसानों को अपनी लागत में भी अकसर नुक़सान उठाना पड़ता है। पर इसकी परवा जब बम्बई के व्यापारियों को नहीं है तब बाहरवालों को क्यों हो? जो देशभक्त कहलाते हैं या ऐसे अनेक व्यक्ति जो अपने को ईमानदार और समाज का आदर्श सिद्ध करते हैं, उनकी ही गद्दियों अर्थात् पेढ़ियों में सट्टा होता है। न्यूयार्क के रुई के भावों के लिए दो दो बजे रात तक जाते हैं। ये ही व्यापारी कलकत्ते और बम्बई में किसानों के हितैषी बनेंगे और सट्टे को दूषित बतावेंगे। दूसरे कच्चे माल की भी कोई अच्छी अवस्था नहीं। व्यापार की गिरी हुई हालत देखकर मालूम तो यह पड़ा कि इस वर्ष विदेशी व्यापार भारतवर्ष के पक्ष में नहीं होगा। किन्तु बड़ी कठिनाई से ११ महीनों में ४७·८७ करोड़ व्यापार की रक़म केवल भारतवर्ष के पक्ष में रही। इस रक़म से उस होमचार्ज की रक़म की भी पूर्ति नहीं होती, जो इस देश को वर्ष प्रति वर्ष अपने स्वामियों को देनी पड़ती है। भारतवर्ष को प्रतिवर्ष ४५ करोड़ रुपये भारत-मंत्री की सेवा में हाज़िर करने पड़ते हैं; और जब तक भारतवर्ष के व्यापार की बाक़ी ४५ करोड़ रुपये के बराबर या कम रहती है तब तक हुंडिया मन —वैदेशिक विनिमय की दर—स्थायी होना कठिन है। जिन ख़ज़ानों की हुण्डियों का चलना आवश्यक कहा जा सकता है उनके लिए सरकार ने अभी तक कोई ऐसा मार्ग नहीं निकाला जिससे उनके बाज़ार में बिकने पर बैंकों को कष्ट न उठाना पड़े और भारतवर्ष के सराफ़ों को भी लाभ पहुँचे। इन ट्रेज़री बिलों की ओर अभी तो बैंकों ने असहयोग कर रक्खा है। सरकार इस वर्ष इस प्रश्न को हल कर डाले तो सराफ़ों की कठिनाई दूर हो सकती है। इम्पीरियल बैंक अवश्य ही ट्रेज़री बिल की खपत बढ़ा सकता है, क्योंकि वह सरकारी बैंक है। वह बड़े सुभीते से उन्हें बेच सकता है और थोड़े ब्याज में अगाऊ रुपया देने का भी प्रबन्ध करना उसके लिए कठिन नहीं है। इन बिलों की खुली ख़रीद और बिक्री बाज़ार में नहीं होती है, इसलिए इनमें रुपया लगाने का व्यावहारिक दृष्टि से कोई सुभीता नहीं है। लंदन के सराफ़ों में ब्रिटिश ख़ज़ाने से चार-पांच करोड़ के ट्रेज़री बिल प्रतिसप्ताह बिक जाते हैं, क्योंकि वहां उनके ख़रीदने और बेंचने का बाज़ार है। भारतवर्ष में तो लोग अभी जानते ही नहीं हैं, फिर कौन ख़रीद कर उनमें अपना रुपया लगावे। इम्पीरियल बैंक का यह कर्तव्य है कि वह ऐसा बाज़ार तैयार करे। बैंकों से भी सहयोग किया जा सकता है कि वे ट्रेज़री बिलों के लिए ब्याज की दर से एक सैकड़ा कम ब्याज लेवें। ऐसा होने पर ही ट्रेज़री बिल की सारी कठिनाइयां दूर हो जायँगी। इस वर्ष एक नई बात यह हुई कि सरकार ने स्टर्लिंग टेंडर दिये। इसके पूर्व भारत-मंत्री कौंसिल बिल बेंचा करते थे। बहुत दिनों से भारतीय नेता भारत-मंत्री के इस कार्य का विरोध कर रहे थे। पर अधिकारियों ने इस विरोध की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। सर बेसिल ब्लेकेट ने अर्थमंत्री का पद ग्रहण करते ही यह परिवर्तन किया कि लंदन में स्वतंत्ररूप से कौंसिल-बिल के बिकने के बजाय भारतवर्ष में स्टर्लिंग ख़रीदे जायँ। पहले चार वर्ष तक भारत-सरकार ने समय समय पर दर क़ायम कर इम्पीरियल बैंक से स्टर्लिंग ख़रीदे। इस वर्ष से सरकार ने बुधवार को टेंडरों को टेंडर देने की योजना निकाली, इसमें बड़ी सफलता मिली। जहां पहले ख़ज़ाने में १ करोड़ ९० लाख की रक़म रहती थी, वहां केवल ४० लाख रहने लगी। यह सुधार बड़े मार्के का हुआ है। भारतवासी बहुत दिनों से इसकी मांग कर रहे थे। इस वर्ष सरकार ने क़रीब २० लाख पौंड का सोना "सोने के रक्षित कोष" के लिए ख़रीदा। आरम्भ में यह सोचा गया था कि सरकार सोने का सिक्का चलन में जारी करने के लिए क्षेत्र तैयार कर रही है। पर पीछे से सोने की ख़रीद में उसके भाव प्रकट हो गये। इस वर्ष सारे संसार में सोने की हलचल ख़ूब हुई। अमेरिका सोने की रफ़तनी का सबसे बड़ा देश है। वह इसके लिए तैयार

था कि यदि भारतवर्ष में सोने का चलन हो तो वह सोने की काफ़ी रफ़तनी इस देश में करेगा। वह तो यहां तक तैयार था कि जितना सोना ख़रीदते बने, ख़रीदो, बाक़ी उधार ले लो। तिस पर भी भारतवर्ष में अमेरिका से सोना नहीं आया। यह देश तो उधार क्या नक़द ख़रीद सकता था। जब अमेरिका ने अरजनटाइन, ब्रेज़िल, फ़्रांस, इटली, पोलैंड और यूनान को सोने का चलन प्रचलित करने के लिए सोना दिया तब भारतवर्ष को वह क्यों नहीं सोना देता।

भारतवर्ष की व्यापारिक साख भी इतनी कमज़ोर नहीं थी कि अमेरिका हिचकता। पर भारत-सरकार ने इस देश की भलाई की ओर किञ्चित् ध्यान नहीं दिया। अमेरिका से सोना पाने का जो सुवर्ण-संयोग था उसे सरकार ने अपनी कर्महीनता से खो दिया। इससे यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि भारत-सरकार का उद्देश भारतीय हितों की रक्षा का नहीं है, उसका उद्देश तो लन्दन की सराफ़ा-बाज़ार और बैंक आफ़ इँग्लेंड की सुवर्ण-नीति को कामयाब बनाना है। भूतपूर्व अर्थमंत्री सर बेसिल ब्लेकेट के सम्बन्ध में कहा गया है कि उन्होंने बड़े बड़े काम किये। भारतवर्ष की साख बढ़ा दी जिससे उसी ब्याज की दर में हमें रुपया उधार मिल सकता है जिस दर में इँग्लेंड में अँगरेज़ी ख़ज़ाने को मिलता है। जो भारतवर्ष आर्थिक क्षेत्र में अमेरिका के मुक़ाबले में खड़ा हो सकता है उसकी कोई क्या साख बढ़ावेगा! दो वर्ष पूर्व जिस फ़्रांस के सिक्के का दिवाला निकाल रहा था उसकी राष्ट्रपति पायनकेर ने जो साख आज संसार में पैदा कर दी है, वहां के राज्य के बैंक ने अपनी दर कितनी घटा दी है, इस पर भूतपूर्व अर्थमंत्री ने कुछ भी लक्ष्य नहीं दिया। सर बेसिल ब्लेकेट के पाँच वर्ष तक अर्थमंत्री रहने पर भी भारतवर्ष की आर्थिक अवस्था उतनी ही शोचनीय आज भी बनी है, जितनी कि इस अवधि के पूर्व थी। इसका सारा दोष अर्थमंत्री पर है। यदि वे चाहते तो भारतवर्ष की आर्थिक स्थिति थोड़े समय में ही सुधर जाती।

भारतवर्ष की औद्योगिक अवस्था दिन पर दिन बिगड़ रही है। १९२४ के स्टील इंडस्ट्री (प्रोटेक्शन) क़ानून के अनुसार ईस्पात के उद्योग को ३१ मार्च १९२७ तक का संरक्षण मिला। पर लोगों ने इस अवधि के पूर्व ही आन्दोलन जारी कर दिया था, इससे सरकार को १९२६ में इस उद्योग की जांच के लिए टेरिफ़ बोर्ड की नियुक्ति करनी पड़ी। उसने संरक्षण की सलाह बहुत थोड़े परिमाण में केवल सात वर्ष तक के लिए दी। जो बाउंटी इस उद्योग को सरकार देती थी उसे रद कर दिया। केवल कस्टम ड्यूटी से सहायता देना निश्चय हुआ। १९३३-३४ में अब इस उद्योग की पुनः जांच होगी। डबल स्केल पर ड्यूटी लगाई गई है। पहली में साधारण ड्यूटी सभी विदेशी स्पात पर लगी है, और दूसरी में ब्रिटिश-ईस्पात के भावों में अन्तर रक्खा गया है। यह क़ानून १ अप्रेल १९२७ को स्वीकृत हुआ। सूती मिलों के उद्योग की जांच के लिए जो कमीशन बैठा था उसकी सिफ़ारिशों से पहले तो भारतीय व्यापारियों को संतोष नहीं हुआ, दूसरे उसकी भी मुख्य सिफ़ारिशें सरकार ने नहीं मानीं। सरकार ने केवल कुछ कलों और मिलों के स्टोर पर ड्यूटी घटाई। कमीशन ने जो यह सलाह दी थी कि भारतीय मिलों में ऊँचे नम्बर का सूत तैयार होने के लिए सरकार बाउँटी दे उसे सरकार ने स्वीकार नहीं किया। कारण, यदि भारतवर्ष में अच्छा सूत तैयार होने लगेगा तो लंकाशायर का उद्योग सहज ही में नष्ट हो जायगा। पांच सैकड़ा रेवन्यू ड्यूटी के अलावा जापानी सूत पर चार सैकड़ा अतिरिक्त ड्यूटी लगाई जाय। पर चीन से युद्ध होने के कारण जापान की अप्रसन्नता के ख़याल से सरकार ने इस प्रस्ताव को भी नहीं स्वीकार किया। बोर्ड के बहुमत ने सभी विदेशी कपड़े पर ११ से १५ सैकड़ा ड्यूटी बढ़ाने की सिफ़ारिश की, किन्तु उसके अध्यक्ष ने केवल जापान के आयात माल पर इतनी ड्यूटी लगाने की सिफ़ारिश की। पर सरकार ने दोनों में से कोई भी बात नहीं मानी। उसने सूत पर डेढ़ आना पौंड ड्यूटी बड़े आन्दोलन के उपरांत लगाई। यदि सूत के दाम एक रुपये चौदह आना प्रति पौंड से अधिक होंगे तो ५ सैकड़ा ड्यूटी लगेगी। नक़ली रेशम पर १५ सैकड़ा से ७½ सैकड़ा ड्यूटी कर दी गई है।

२—भारतीय कम्पनियों का क़ानून

भारतीय कम्पनियों का क़ानून इस देश की औद्योगिक उन्नति में पूर्णरूप से बाधक हो रहा है। इस त्रुटिपूर्ण क़ानून की ओट में प्रजा के करोड़ों रुपये बर्बाद होते हैं। कुछ समय से इस सम्बन्ध में आन्दोलन भी हो रहा है, पर सरकार फिर भी चुप मारे बैठी है।

लिमिटेड कम्पनी के क़ानून में बदनसीबी से सबसे पहली त्रुटि तो यह है कि कोई भी व्यक्ति मर्ज़ी में आवे, वैसी स्कीम का आकर्षक प्रास्पेक्टस और आर्टीकल आफ़ मेमोरेंडम तैयार कराकर, अपने सम्बन्धियों को डायरेक्टरों के बोर्ड में चुनकर लिमिटेड कम्पनी खोल सकते हैं और क़ानून के अनुसार टिकट की फ़ीस वग़ैरह देकर कम्पनी-रजिस्ट्रार के आफ़िस में अपनी लिमिटेड कम्पनी का नाम लिखवा कर जनता से हिस्सों-द्वारा रुपया वसूल कर सकते हैं।

कम्पनियों के क़ानून में कोई ऐसा प्रतिबन्ध नहीं है कि स्कीम की सम्पूर्ण योग्यता रखनेवाला ही लिमिटेड कम्पनी खोल सकता है। कानून में किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसी कोई रुकावट नहीं है। इसी से पिछले पन्द्रह वर्षों में अनेक लिमिटेड कम्पनियों ने जन्म लिया। उनमें सौ में अस्सी व नब्बे कम्पनियाँ क़ानून से अनुचित लाभ उठाने के लिए खोली गई थीं। इन कम्पनियों के द्वारा ग़रीब प्रजा का पसीने से कमाया हुआ करोड़ों रुपया नष्ट हो गया। पिछले पन्द्रह वर्षों में ताला-चाभी बेचनेवालों, लेन-देन का सट्टा खोलनेवालों, ब्याज-बट्टे का धन्धा करनेवालों ने स्टीमर, सीमेंट, मिल, स्टोर और बिल्डिङ्ग आदि आदि के अनेक धन्धे खड़े कर जनता का रुपया खींचा। जिन लोगों को कम्पनी-कानून का ज़रा भी ज्ञान नहीं वे भी कम्पनियों को चलाने लगे। ऐसी अवस्था में यह कहना अनुचित न होगा कि कम्पनी-क़ानून की त्रुटियों से अनुचित लाभ उठाकर निर्धन प्रजा का रुपया लूटा गया। इस क़ानूनी डाकेज़नी ने आज प्रजा के कान खोल दिये हैं। बङ्गाल और बम्बई में इन सुनहरी टोलियों की करतूतें नज़र में आगई हैं। इन टोलियों के लोगों ने ग़रीब प्रजा के हिस्सों का रुपया सट्टे में सफाचट कर, जनता को ठगने और कम्पनी में रुपया बन्धक में पड़ा हुआ बताने के लिए बैंक का पासबुक स्वयं किसी प्रेस में छपा। उसमें झूठी मुहर लगाकर जनता को यह बतलाया कि बैंक में कितनी रक़म पड़ी हुई है। जब दिवाला निकलता है तब भी रुपया खींचने में कसर नहीं रक्खी जाती है। कम्पनी बन्द करने के लिए एक नहीं कई लिक्वीडेटर होते हैं। वे इस सुनहरी टोली के बेहूदा कामों को ढाकने-पोंछनेवाले होते हैं। ये लिक्वीडेटर चलतेपुर्ज़े सालीसिटर को भी रोककर जनता को क़ानून के अनुसार काम करने का ढङ्ग बतलाते हैं। जनता इनके ढङ्ग और त्रास से इनके कामों का विरोध करने की हिम्मत नहीं करती है। पर ये बड़ी सी बड़ी दोल चलाकर जनता के साथ निर्दयता-पूर्वक व्यवहार करते हैं। लिक्वीडेशन भी तो एक मज़ेदार व्यवसाय है। लिक्वीडेशन के काम में जहाँ मुश्किल से बीस हज़ार की रक़म हो, वहाँ चार लाख के "काल" कर जनता पर जले पर नमक छिड़का जाता है। कभी कभी लिमिटेड कम्पनियों की किताबें छिपाकर एक-दम बोगस लिक्वीडेशन का काम करने के लिए अपनी सत्ता का उपयोग करते हैं।

लिमिटेड कम्पनियों में मेनेजिंग एजेन्सी का बोलबाला है। क़ानून की दृष्टि में बड़ी रक़म लेने के सिवा जो कुछ वे करते हैं वह विश्वासघात से भी बढ़कर है। बड़ी बड़ी तनख़्वाहों पर अपने घरवाले नौकर रक्खे जाते हैं, कच्चा माल सट्टे के रूप में ख़रीदा जाता है, नफ़ा हुआ तो वह माल अपनी बही में और नुक़सान हुआ तो कम्पनी की बही में लिखा जाता है। इसके अलावा कच्चा माल ख़रीदनेवाले व्यापारियों से अपना कमीशन अलग ठीक कर लिया जाता है। इसके अलावा कोयला, तेल, मशीनरी और स्टोर के सारे सामान पर अपने प्राइवेट कमीशन से प्रतिवर्ष जेबें भरी जाती हैं। पक्का माल भी उन्हें बेचा जाता है, जो उनके हाथ चुपके से गर्म करते रहते हैं। इस प्रकार लाखों रुपये कम्पनी से कमा लेते हैं। जब मज़दूरों की मज़दूरी का प्रश्न आता है तब देशभक्ति और संरक्षण की पुकार करते हैं। जो मज़दूर जीवित कलपुर्ज़े हैं उनकी शक्ति, बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद और कानपुर में दिन पर दिन क्षीण होती

चली जा रही है। वे दिन पर दिन अशक्त होते चले जाते है। कम्पनी के डायरेक्टरों को उनकी कुछ परवा नहीं। जब कभी उनके सिर पर आफ़त आती है तब मज़दूरों की मज़दूरी घटाने दौड़ते है। जिनेवा मे उनके प्रतिनिधि होकर वे लोग जाते है जो उनके सच्चे प्रतिनिधि नहीं। वे उनकी हालत छिपाते है। सरकार क्यों बोलने लगी। सरकार यह जानती है कि मिलों के मालिक अपने कारखाने देश की औद्योगिक के लिए उन्नति नहीं किन्तु अपने लाभ के लिए चलाते है। वह यह भी जानती है कि यदि कम्पनियां ईमानदारी से चलने लगीं तो इस देश का उद्योग और व्यापार उन्नत अवस्था पर पहुँच जायगा। इसी से विदेशी व्यापारी देशी कम्पनियों के दिवाला निकलने पर ख़ूब प्रसन्न होते हैं। बेचारे हिस्सेदारों को कोई अधिकार नहीं है। यदि उनके चुने हुए प्रतिनिधि डायरेक्टर हों, और डायरेक्टरों में भी तीसरे वर्ष परिवर्तन हुआ करे अथवा उनके कामों की स्वीकृति हिस्सेदारों के प्रतिनिधियों से ली जाया करे तो ये सब अन्याय दूर हो सकते है। कम्पनियों का संचालन पूर्ण व्यापारिक दृष्टि से हो; किन्तु हिस्सेदारों को नफ़ा पहुँचाने के साथ साथ देश की औद्योगिक उन्नति का भाव भी आगे रहना चाहिए।

३—भारतीय ट्रेड कमिश्नर

लन्दन में भारतीय ट्रेड कमिश्नर की नियुक्ति इस लिए की गई है कि वह भारतीय उद्योग-धन्दों को सहायता पहुँचाये। पर भारतीय ट्रेड कमिश्नर योरपीय व्यापारियों को सहायता पहुँचाते हैं। बेचारी भारतीय कम्पनियां हाथ पर हाथ धरे बैठी रहती हैं। यदि ट्रेड कमिश्नर भारतीय कम्पनियो को विदेशी ग्राहकों के आर्डर नहीं देते है तो उनकी नियुक्ति की कौन सी आवश्यकता है। ट्रेड कमिश्नर के विरुद्ध भारतीय कम्पनियो की शिकायतें तो हैं ही; किन्तु विदेशी व्यापारियो की उससे अधिक हैं। भारतीय व्यापारी चाहते है कि हम अपना कच्चा माल दूसरे देशों के व्यापारियों को सीधा बेंचें। उसी प्रकार विदेशी व्यापारी भी भारतवर्ष का कच्चा माल भारतीय कम्पनियों से ख़रीदना चाहते है। पर भारतवर्ष के ख़ज़ाने से पलनेवाले ट्रेड कमिश्नर भारतीय कम्पनियो को मिलनेवाले आर्डर योरपीय कम्पनियों को सौंप देते हैं। अभी हाल में एक उच्च व्यापारी ट्रेड कमिश्नर के पास गया और उनसे पूछा कि कुछ ऐसी अच्छी भारतीय कम्पनियों के पते दें जो भारतीय कच्चे माल का व्यापार करती हों। उस उच्च व्यापारी को तुरन्त ही एक सूची दी गई, जिसमें सब नाम योरपीय कम्पनियों के थे। एक भी नाम भारतीय कम्पनी का नहीं था। इतना ही नहीं, ट्रेड कमिश्नर विलायत मे जानेवाले भारतीयों को कारख़ानो में सीधा जाने भी नहीं देते हैं। विदेशों मे भारतीय व्यापार के विरुद्ध इँग्लैंड और योरप में अत्यधिक आन्दोलन हो रहा है।

योरप के व्यापारी भारतीय कम्पनियो से सम्बन्ध कर कच्चा माल ख़रीदना चाहते हैं। और इधर भारतवर्ष के व्यापारी हाथ पर हाथ धरे हुए बैठे हैं। वे अँगरेज़ी कम्पनियो को अपना माल बेंच कर ही रह जाते हैं। विदेशों के सभी बड़े बड़े व्यापारिक नगरों में अपने बड़े बड़े आफ़िस खोलने की ओर अभी तक उनका ध्यान नहीं गया है। यदि सभी विदेशी नगरो में भारतीय व्यापारियों के आफ़िस खुल जायं और वे भारतवर्ष के आयात और निर्यात का व्यापार करने लगें तो भारतवर्ष के व्यापार की उन्नति हो सकती है। अन्यथा भारतीय पैदावार की खपत विदेशों मे होनी संकटजनक हो जायगी।

४—तेल की लड़ाई

इस समय संसार में कोयला और तेल के लिए बड़े बड़े राष्ट्रों में प्रतिस्पर्धा हो रही है। जिसके पास जितनी ही अधिक कोयले की खानें हैं। उसकी उतनी ही अधिक शक्ति बढ़ी हुई है। पर संसार में आज-कल कोयले की जितनी अधिक खपत है। उससे यह कहा जा सकता है कि थोड़े समय में ही योरप, अमेरिका और अफ़्रीका आदि देशों की खानों का कोयला ख़तम हो जायगा। यदि नई खानें निकल आवें तो बात दूसरी है, किन्तु वर्तमान खानों से कोयला मिलना कठिन हो जायगा। पर कोयले के स्थान पर काम देनेवाली दूसरी वस्तु तेल है। इसलिए आज सभी देश तेल के लिए

लड़ रहे हैं। भारतवर्ष में भी बम्बई जैसे शहर में तेल से रेलगाड़ियां चलने लगी हैं। कुछ दिनों में इस देश में भी सारा काम तेल से होने लगेगा। तेल की खानें रूस में अधिक हैं। सब देशों को तेल वहीं से पहुँचता है। पर रूस में आज-कल बोलशेविकों का शासन है। उसने अपने दाम अँगरेज़ी माल की अपेक्षा घटा दिये हैं। भारतवर्ष भी तेल का सबसे बड़ा ग्राहक है। पर अँगरेज़ यह नहीं चाहते हैं कि हम प्रकट रूप से रूस का तेल बेचनेवाली स्टेंडर्ड आयल कम्पनी से माल ख़रीदें। स्टेंडर्ड आयल कम्पनी रूस से तेल ख़रीदती है और सस्ते से सस्ते भाव में बेचती है। वह यह भी साफ़ कहती है कि रूस से सारा तेल मँगा कर बेचा जाता है। पर स्टेंडर्ड आयल कम्पनी का यह काम रायल डच शेल के व्यवसाय में बाधा डालता है। रायल डच शेल का दल अँगरेज़ी तेल का व्यापार करता है, और उन भावों में अपना तेल नहीं बेंच सकता है, जिन भावों में स्टेंडर्ड आयल कम्पनी बेंचती है। रायल डच शेल दल के अँगरेज़ व्यापारी यह गवारा नहीं कर सकते कि किसी बाग़ी देश का तेल खुल्लमखुल्ला भारतवर्ष जैसे राजभक्त देश में बिके। अँगरेज़ व्यापारियों ने यह भी कहा कि जो अमेरिकन कम्पनी अँगरेज़ी कम्पनियों के मुक़ाबले में सस्ता तेल भारतवर्ष में बेचना चाहती है उसमें राजनैतिक भेद है। राजनैतिक उद्देशों की पूर्ति के लिए रूस अपना तेल अमेरिकन कम्पनी के द्वारा भारतवर्ष में सस्ते भावों में बेच रहा है। पर अमेरिकन कम्पनी ने अँगरेज़ व्यापारियों की चोरी खोल दी। उसने साफ़ कह दिया कि रायल डच शेल दल ने ही सबसे पहले सोवियट सरकार से तेल लेने का कंट्रैक्ट कर दाम घटाये थे। इस दल ने रूस के तेल को अपना कह कर बेचा। कम्पनी ने यह भी बतलाया कि युद्ध के उपरान्त चीज़ों के कितने दाम घट गये हैं, इसलिए उसने तेल के दाम व्यापारिक दृष्टि से ही घटाये हैं। पर अँगरेज़ी कम्पनियां जो दूसरे देशों का सस्ता तेल अपना कह कर बेचती हैं, वे एशियाई देशों से अब भी उतना ही अधिक नफ़ा लेती हैं। अँगरेज़ व्यापारियों के एजेंट ही इस देश में भारत-सरकार के नाम से शासन करते हैं, इसलिए व्यापारियों के आन्दोलन करने पर भारत-सरकार ने टेरिफ़ बोर्ड की नियुक्ति कर दी। यह टेरिफ़ बोर्ड भारतवर्ष में इधर-उधर घूम-फिर कर अपनी रिपोर्ट अँगरेज़ी कम्पनियों के पक्ष में तैयार करेगा। पर इस जाँच की कोई आवश्यकता नहीं है। अँगरेज़ी कम्पनियों की रक्षा के लिए सरकार इस देश में आनेवाले रूस के तेल पर आयात-कर (इम्पोर्ट ड्यूटी) लगावेगी। सरकार सूती मिलों को तो संरक्षण नहीं देगी, जो इस देश का सबसे प्रधान उद्योग है, पर भारतवर्ष के तेल के छोटे से उद्योग के लिए सरकार संरक्षण देने की बड़ी उदारता प्रकट करना चाहती है। पर भारतीय व्यापारी यह भले प्रकार जानते हैं कि सरकार की इस उदारता से इस देश में विदेशियों की प्रतिद्वन्द्विता में चलनेवाले उद्योगों को भारी धक्का लगेगा और अँगरेज़ी कम्पनियां पूर्ववत् नफ़ा उठावेंगी। अभी तक ये ख़ूब नफ़ा उठा चुकी हैं, और यह संरक्षण मिल जाने से तो इनके पौबारह हो जायँगे। भारतवर्ष में तेल ख़रीदनेवालों के हित के लिए सरकार कुछ भी नहीं करेगी। इस समय तेल की कई नई खानें निकल आई हैं और उनसे तेल वैज्ञानिक उपायों से निकाला जा रहा है। इस तेल के दाम अँगरेज़ी तेल से सस्ते होते हैं। इसलिए इसकी आमद इस देश में रोकने से भारतीय उद्योगों को निश्चय ही हानि उठानी पड़ेगी। तेल का उद्योग तो भारतीय नहीं है। उसे भारत-सरकार किस प्रकार संरक्षण देगी? यदि संरक्षण ही देना है तो सरकार कांच और केमीकल के उद्योगों को सहायता दे, जो बिना संरक्षण के नष्ट हो रहे हैं।
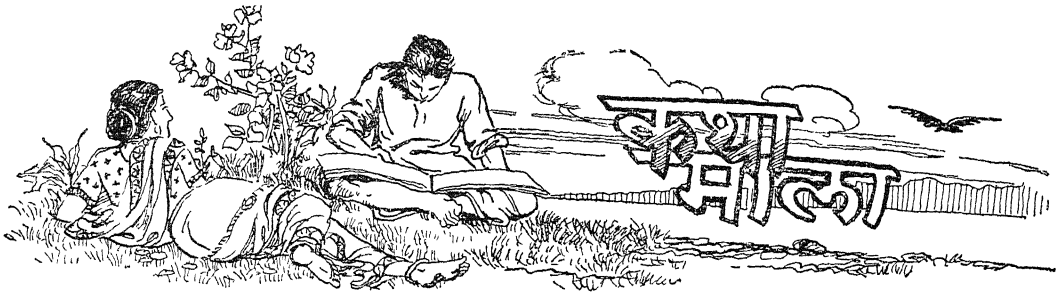
मलवा

[मेक्सिम गोर्की]

समुद्र के मुख पर हँसी थी। उष्ण और मधुर वायु के झकोरों से कम्पायमान होकर उसके वक्षःस्थल पर छोटी छोटी लहरें उठ रही थीं जो सूर्य के प्रकाश से चमत्कृत होती हुई अपनी सहस्र रजत-जिह्वाओं से अट्टहास करती थीं। समुद्र और आकाश के बीच शून्य देश में कानों को बहरा करने वाला लहरों का आनन्द-प्रलाप गूँज रहा था। वे बड़ी तेज़ी से रेतीले अन्तरीप के चौरस किनारे पर एक दूसरे का पीछा कर रही थीं। यह घोर शब्द और सूर्य का जाज्वल्यमान प्रकाश समुद्र के संयोग से सहस्रों गुना अधिक मालूम होता था। किन्तु दोनों में सामञ्जस्य था। उत्तेजना और आनन्द का ऐसा अपूर्व सम्मिलन बहुत कम देखा जाता है। सूर्य आनन्द से चारों ओर प्रकाश फैला रहे थे और समुद्र उस दिव्य आभा को लौटा कर प्रसन्न हो रहा था।

एक नाव की छाया मे वेसिली लेटा हुआ था। यह रूस के दक्षिण में मछली पकड़ने का मैदान था। वेसिली इसी मैदान का निरीक्षक था। वेसिली पेट के बल लेटा हुआ एकटक समुद्र की ओर देख रहा था। कुछ दूरी पर एक काला धब्बा उसे नाचता हुआ दिखाई दिया। उसके चेहरे पर संतोष की रेखा दौड़ गई, क्योंकि वह धब्बा क्रमशः बड़ा होता जाता था।

पानी की चमक की चकाचौंध से उसने अपनी आंखे सिकोड़ ली थीं। वह सहसा आनन्द और सन्तोष से सीटी बजाने लगा। मलवा आ रही है। मिनटों में ही वह यहाँ आ जायगी और ऐसे ज़ोर से हँसेगी कि उसके तंग सिले हुए कपड़ों की सीवन चटखने लगेगी। ओ हो, जब वह अपने मज़बूत और मुलायम हाथ मेरे गले मे डाल मेरा मुख-चुम्बन करेगी तब......वेसिली के हृदय में गुदगुदी होने लगेगी। फिर वह अपनी भारी और मीठी बोली में मुझे दूसरे किनारे के समाचार सुनायेगी। हम दोनों एक साथ मछली का शोरवा बनायेंगे और मन-मानी ब्रांडी पीकर इधर-उधर की गप-शप करेंगे। वेसिली का हृदय भावी आनन्द की कल्पना से चूर चूर हो रहा था। वास्तव में वेसिली और मलवा अपना प्रत्येक रविवार और छुट्टी का दिन इसी प्रकार बिताते थे। दूसरे दिन प्रातःकाल ठंढी हवा में वेसिली नाव में बैठाकर मलवा को अपने स्थान पर पहुँचा आता था। उस समय मलवा ऊँघती हुई नाव में बैठती और वेसिली पतवार चलाता हुआ बराबर उसकी ओर घूरता रहता। कभी कभी उस समय भी उसमें अपूर्व उत्साह रहता। वह सन्तुष्ट बिल्ली की भाँति नाव में उछल-कूद मचाती और अपनी जगह से खिसक कर नाव की तली में गेंद की तरह लुढ़कने लगती।

ज्यों ज्यों वह काला धब्बा वेसिली की दृष्टि में बढ़ता गया त्यों त्यों उसे मालूम होने लगा कि आज मलवा अकेली नहीं है। अच्छा, तो क्या सेरका उसके साथ आया है? वेसिली उठ बैठा और धम धम करके बालू पर चलने लगा। धूप की चकाचौंध से बचने के लिए उसने आँखों पर हाथ लगा लिया था किन्तु ग्लानि के लक्षण भी उसके चेहरे पर प्रकट हो गये थे।—नहीं, यह सेरका नहीं है, क्योंकि इसके खेने का ढंग अच्छा नहीं। जैसे कोई नौसिखिया हो। यदि सेरका साथ में होता तो मलवा को किसी प्रकार की सहायता करने की आवश्यकता न होती।

वेसिली ने धैर्य छोड़ कर कहा—ओ, दूसरा कौन है?

समुद्र की मछलियाँ क्षण भर के लिए अपनी दौड़-धूप छोड़ कर चुप होगईं।

नाव से आवाज़ आई—ठहरो, ठहरो। यह सुरीली और भारी आवाज़ मलवा की थी।

"तुम्हारे साथ दूसरा कौन है?"

उत्तर में केवल अट्टहास सुनाई दिया।

वेसिली ने मन ही मन कहा—अवश्य ही जेड होगा। घबराहट के मारे उसने पृथ्वी पर थूक दिया।

वेसिली चक्कर में था। वह सिगरेट निकाल कर पीने लगा किन्तु उसका ध्यान खेनेवाले की पीठ और गर्दन की ओर था। एक ओर डाड़ों की छटपटाहट से पानी कम्पायमान हो रहा था और दूसरी ओर उत्तेजित वेसिली की धमधमाहट से बालू कांप रही थी। ज्योंही उसने मलवा के सुन्दर और गोल मटीले चेहरे पर मुस्कराहट दिखाई देने लगी त्यों ही उसने फिर चिल्लाकर कहा—तेरे साथ दूसरा कौन है?

मलवा ने हँसते हुए उत्तर दिया—ठहरो—अभी अभी तुम्हें सब मालूम हो जायगा। उधर मल्लाह ने भी पीठ फेरी और वेसिली की ओर देखकर हँस दिया।

वेसिली सिर से पैर तक कँप गया। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह उसे पहचानता हो।

मलवा ने हुक्म दिया—जल्दी करो।

फिर क्या था—दो ही तीन झपाटे में नाव किनारे आ लगी और मल्लाह ने झट से नीचे उतर कर कहा—

पिताजी, आप अच्छे तो हैं?

वेसिली ने उसी ज़ोर से कहा—आइकव! उसके हृदय में प्रसन्नता की अपेक्षा आश्चर्य की मात्रा अधिक थी।

उन्होंने तीन बार एक दूसरे का आलिङ्गन किया धीरे धीरे वेसिली का आश्चर्य आनन्द और घबराहट में परिवर्तित होने लगा। उसने अपनी डाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा—

मेरे हृदय में सन्देह हो रहा था। न जाने कौन मुझसे कह रहा था कि आज अचानक घटना सुनने को मिलेगी। पहले तो मैंने सोचा कि यह शायद सेरका हो। किन्तु नहीं, मैं उसके रंग ढंग को अच्छी तरह पहचानता हूँ। भला, तुम यहा कैसे आ गये?

वेसिली की इच्छा थी कि मलवा की ओर देखे किन्तु उसके लड़के की बड़ी बड़ी आखें उस पर जमी हुई थीं और उसे साहस न होता था। उसके ऐसा मज़बूत और सुन्दर लड़का है—आज पहले-पहल—उसे इस बात का भान हुआ। एक ओर उसके हृदय में गर्व का उदय हो रहा था और दूसरी ओर मलवा की उपस्थिति से बेचैनी पैदा हो रही थी। वह आइकव से धड़ाधड़ प्रश्न कर रहा था। उसे उत्तर मिलता है या नहीं—इस बात की उसे कोई परवा न थी। उसका मस्तिष्क चक्कर में था। एकाएक मलवा ने कहा—इस ख़ुशी का भी कोई ठिकाना है! भलेमानुस, यह तो पूछता नहीं कि तुम्हे भूख तो नहीं लगी है? वेसिली की गाड़ी रुक गई। उसने अपने लड़के की ओर सिर से पैर तक देखा और देखा कि उसके मुख पर व्यंग्यमिश्रित हँसी खेल रही है। मलवा भी पिता से पुत्र पर और पुत्र से पिता पर अपनी आंखें दौड़ा रही थी। घड़ी भर के लिए तीनों चुप रहे जिससे वेसिली की बेचैनी और भी बढ़ गई।

एकाएक उसने कहा—तुम लोग यहा धूप में क्यों खड़े हो। केबिन में चलो। मैं पानी लेने जाता हूँ। फिर, आइकब, आज मैं तुम्हें बढ़िया मछली का शोरवा खिलाऊँगा।

उसके चले जाने पर मलवा ने कहा—क्यों, मेरे सुन्दर नौजवान दोस्त, मैंने तुम्हें अपने पिता से मिला दिया। अब तो तुम ख़ुश हो न? इतना कह कर वह खिलखिला उठी और अपने कंधे से आइकव को हलका धक्का भी दे दिया।

आइकब की आंख चमक गई। उसने कहा—हा, यहां बड़ा अच्छा लगता है। समुद्र का कैसा असीम विस्तार है।

मलवा—समुद्र तो सुन्दर है। किन्तु मैं पूछती हूँ कि बुड्ढा बहुत बदला तो नहीं ?

हाँ, बहुत तो नहीं बदला। मैं समझता था, बाल सफ़ेद हो गये होंगे। किन्तु अभी तो काफ़ी तेज़ है।

"तुमने अभी कितने दिनो से नहीं देखा था ?"

"लगभग पाच साल हुए। जिस समय वह गाव से चला आया उस समय मेरी अवस्था १७ वर्ष की थी।"

वे केबिन मे पहुँच गये। वह एक-दम काला था। और तंग होने के कारण वहा दम सी घुटती थी। बड़ी देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। किसी ने कुछ न कहा।

अन्त में मलवा बोली—अच्छा, तो क्या तुम सचमुच यहां काम करना चाहते हो ?

"अभी क्या कह सकता हूँ। यदि काम मिले तब तो।"

मलवा अपनी हरी हरी आखों से उसे ध्यानपूर्वक देख रही थी। उसने विश्वास के साथ कहा—तुम्हे काम अवश्य ही मिल जायगा।

आइकब ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। वह अपने माथे का पसीना पोंछ रहा था, जैसे कुछ सोच में हो।

एकाएक मलवा हँस पड़ी। उसने कहा—क्यों, तुम्हारी मा ने तुम्हारे हाथ पिता के लिए कोई संदेश भेजा है ?

आइकब के दोनों कंधे हिल गये। उसने कुछ बिगड़ कर कहा—इससे तुम्हें क्या ? यदि भेजा हो तो क्या कुछ अनुचित है ?

'नहीं, कुछ नहीं' यह कह कर वह और भी खिल-खिला कर हँस पड़ी।

आइकब मन ही मन और भी बिगड़ गया। उसे अपनी मा की बातें याद आ गईं। किस प्रकार वह मुझे गाँव के छोर तक आँखों में आंसू भरे पहुँचाने आई थी। उसने कहा था—आइकब, बेटा आइकब, अपने पिता से कहना—मा अकेली है। पांच साल होगये और कोई उसकी ख़बर लेनेवाला नहीं। आइकब, भगवान् के लिए उनसे समझा कर कह देना कि मा बुड्ढी हुई जा रही है। काम करते करते उसके बदन में झुर्रियाँ पड़ गई है। बेटा, आइकब, अपनी मा की बात न भूलना और उनसे सब समझा कर कह देना।

उस समय मा के आंसू देखकर आइकब के हृदय में कोई आन्दोलन नहीं हुआ था किन्तु अब उसके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। जी मे आया कि मलवा को दुतकार दूँ।

इतने ही में वेसिली आ पहुँचा। उसने कहा—लो, मैं आ गया। उसके एक हाथ में मछली थी और दूसरे मे छुरा।

यद्यपि अभी तक वेसिली की बेचैनी दूर न हुई थी, तथापि उसने उसे अपने हृदय के गम्भीरतम प्रदेश मे छिपा लिया था। उसके चेहरे पर प्रसन्नता आ गई थी। उसने हँसते हुए कहा—मैं थोड़ी सी आग और जला लूँ, फिर बातें करूँगा। आइकब, अब तो तू बहुत बढ़ गया है।

इतना कह कर वह फिर बाहर चला गया। मलवा बैठी बैठी तरबूज़ के दाने चबा रही थी किन्तु उसका ध्यान आइकब की ओर था। आइकब भी इस बात को जानता था और उसकी इच्छा भी मलवा की ओर देखने की थी किन्तु वह मन ही मन सोच-विचार में लगा रहा। उसके हृदय ने कहा—यहाँ, जीवन बहुत ही आनन्दमय मालूम होता है। किसी को खाने-पीने की चिन्ता नहीं। यह कितनी हृष्ट-पुष्ट है और पिता जी भी ऐसे बुड्ढे नहीं मालूम होते।

किन्तु इस प्रकार के मौन से वह घबरा-सा उठा। उसने ज़ोर से कहा—ओ, मैं नाव में अपना बैग भूल आया हूँ। जाकर उठा लाऊँ।

मलवा ने कुछ न कहा और आइकब धीरे धीरे उठ कर बाहर चला गया। इतने ही में वेसिली आ गया। उसने मलवा को अकेली देखकर क्रोध से कहा—क्यों, तू इसे क्यो लिवा ले आई ? मैं अब तुम्हारे बारे में उससे क्या कहूँगा।

मलवा ने अपनी उसी उपेक्षा से कहा जो सदा उसकी हरी आँखों में खेला करती थी—इससे मुझे क्या, क्या मैं उससे डरती हूँ अथवा तुम्हारा डर है ? उसे देखते ही बच्चू के चेहरे पर कैसी हवाइया उड़ने लगीं। कैसा मज़ा आता था।
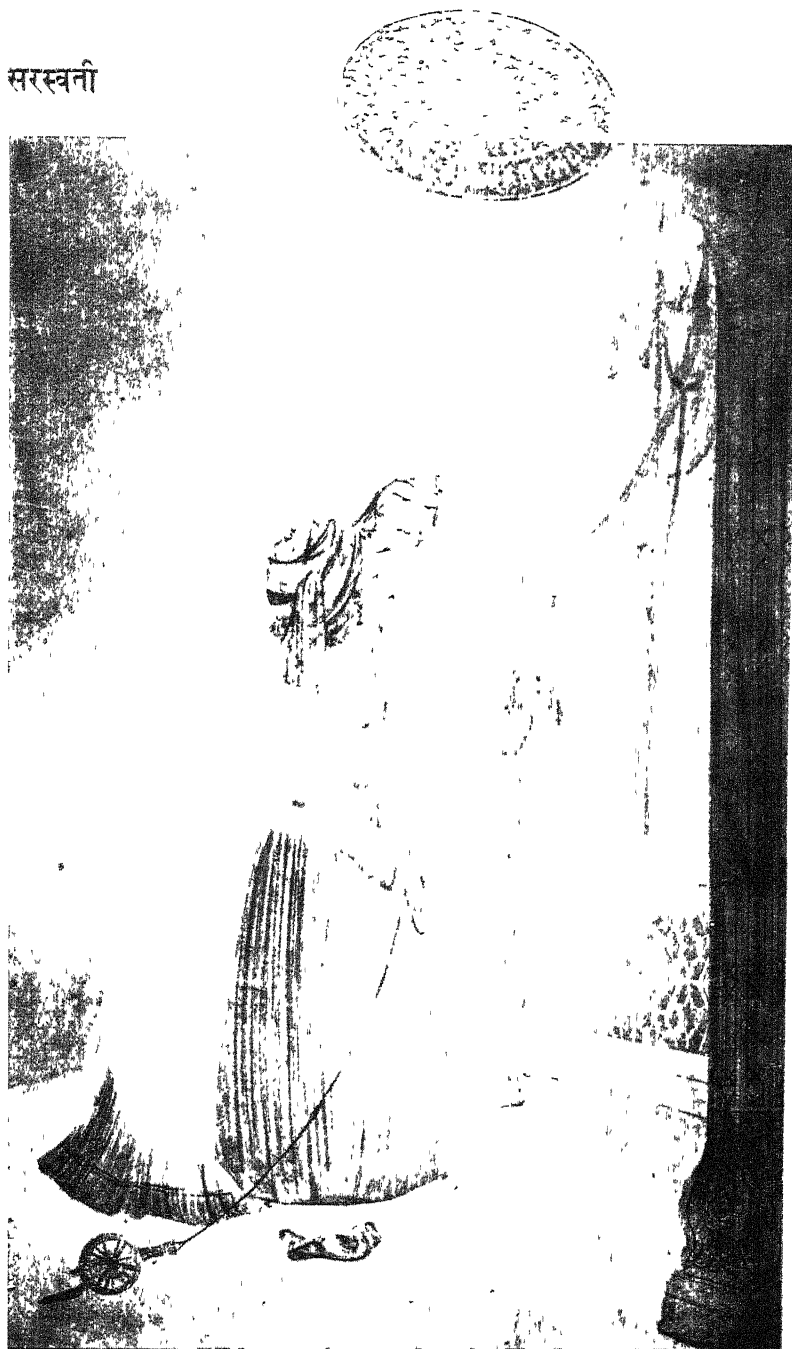
उस पार

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

"मज़ा ?"

बालू में आइकब के पैरों की छपछपाहट सुनाई दी। तुरन्त ही दोनों को अपनी बातचीत बन्द कर देनी पड़ी। आइकब ने अपना बैग एक कोने में फेंक दिया। उसके हृदय में स्त्री के प्रति घृणा-भाव और भी जम गया था। किन्तु मलवा बराबर अपने दाने चबाने में लगी थी।

सयत्न मुस्कराते हुए वेसिली ने कहा—तुम्हें यहा आने की कैसे सूझी ? आइकब !

"यों ही चला आया। और मैंने तुम्हें लिखा तो था।"

"कब, मुझे तो कोई पत्र नहीं मिला।"

"सचमुच, हम लोगों ने तो तुम्हें कई पत्र डाले हैं।"

वेसिली ने दुखी होकर कहा—यह तो अवश्य ही खो गया होगा। किन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। आवश्यक काम को ही मैंने हज़ारों बार बिगड़ते देखा है।

फिर भी आइकब ने आश्चर्य-भाव से कहा—तब तो तुम्हें घर का कोई हाल मालूम ही नहीं !

"कैसे मालूम होता—मुझे तो एक भी पत्र नहीं मिला।" तुरन्त ही आइकब सारा क़िस्सा सुनाने लगा। उसने कहा—अपना घोड़ा मर गया और फ़रवरी के पहले ही हमारा ग़ल्ला चुक गया था। घास की भी कमी थी—इसलिए गाय को भी भूखों मरना पड़ा। किसी तरह अप्रेल तक तो हम लोगों ने काम चलाया किन्तु फिर मुझे कोई काम न मिल सका। अन्त में यही निश्चय हुआ कि मैं कम से कम तीन माह तक पिताजी के साथ काम करूँ और यही हम लोगों ने आपको लिखा था। इसके बाद हम लोगों ने तीन भेड़ें और बेच डालीं और फिर मैं चला आया।

वेसिली बीच ही में चिल्ला उठा—यह सब कैसे सम्भव हुआ। मैंने तुम्हे रुपया तो भेजा था।

"इतने रुपये से क्या होता ? पहले मकान की मरम्मत की, फिर बहिन की शादी हुई। मुझे भी एक हल लेना था। पाँच वर्ष कुछ थोड़ा समय तो नहीं है !"

"हाँ, बात तो ठीक कही। किन्तु ऐसी दुःख-गाथा। अरे, और इधर मेरा शोरवा उबला जा रहा है।"

वह उठा और बर्तन को सँभालने लगा। अपने पुत्र की दुःख-गाथा से, सच पूछो तो, वेसिली के हृदय में रत्ती भर करुणा नहीं उत्पन्न हुई थी। उल्टा वह मन ही मन अपनी स्त्री और पुत्र से कुढ़ रहा था। पाँच साल के भीतर मैंने इतने रुपये भेजे और तिस पर भी इन लोगों का पूरा नहीं पड़ा। यदि आज मलवा यहाँ न होती तो मैं इसे दो-एक खरी बातें सुनाता। बच्चा को ख़ुद तो कुछ कर-धर नहीं आता, इतनी ज़मीन और ऐसा हाल। ऊपर से मुझे ही उल्लू बनाता है। इतना ही नहीं, मुझ से बिना पूछे ही यहा भाग भी आया। सोचते सोचते उसके दिल से एक आह निकली किन्तु वह तुरन्त ही सँभल कर आग सँभालने लगा। उसे यह निश्चय हो गया कि अब मेरा जीवन उतना सुखद नहीं हो सकता और न मैं अब उतना स्वतन्त्र हो सकता हूँ। आइकब ने अवश्य ही मलवा की बात ताड़ ली होगी।

इधर मलवा अपनी बड़ी बड़ी आंखों से आइकब को चिढ़ा रही थी। उसने पूछा—मालूम होता है; तुम अपना दिल गांव ही में छोड़ आये।

उसने धीरे से कहा—सम्भव है। भीतर ही भीतर वह मलवा को गालिया दे रहा था।

"अच्छा, वह कैसी है, सुन्दर है न ?"

आइकब ने कोई उत्तर न दिया।

"बोलते क्यों नहीं, क्या वह मेरे बराबर सुन्दर है ?"

हठात् आइकब की आंखें उसकी ओर उठ गईं। उसके चेहरे पर धूप की कालिमा थी किन्तु फिर भी उसके ओठों में आकर्षण था। और इस समय तो उसकी व्यंग्य मुस्कराहट के बीच उसके दांत ऐसे चमक रहे थे जैसे कोई स्वच्छ फूल हवा में हिल रहा हो। उसका सीना भी भरा-पूरा था जिससे उसके बदन पर चुस्त कपड़े बड़े भले मालूम होते थे किन्तु उसकी सबसे सुहावनी गोल गोल बाज़ू थीं जिनसे वह बातचीत में बराबर काम लिया करती थी। हां, आइकब को मलवा में यदि कुछ नापसंद था तो वे थीं उसकी हरी हरी गोल-मटोल आंखें।

बड़ी देर बाद उसने कहा—तुम मुझसे ऐसी बातें क्यों करते हो ? आइकब बहुत धीरे धीरे बोल रहा था किन्तु हृदय में मलवा को फटकारने की इच्छा हो रही थी।

उसने हँसते हुए कहा—और कैसी बातें करूँ।

"फिर हँस दिया, तुम किस पर हँसती हो ?"

"तुम पर—"

"मुझ पर, क्यों,"—आइकब के क्रोध का पारा और भी गरम हो गया। किन्तु फिर भी उसने अपनी आँखें नीची कर लीं।

मलवा भी चुप हो गई।

आइकब अपने पिता और मलवा के सम्बन्ध को अच्छी तरह जान गया था, इसलिए संकोच के मारे उसे खुल कर बातें करने का साहस न हुआ। वह अच्छी तरह जानता था कि मेरे पिता जैसा आदमी बहुत दिनों तक बिना साथी के नहीं रह सकता।

इतने ही में केबिन के दरवाज़े से वेसिली ने आवाज़ लगाई—शोरवा तैयार है, मलवा जल्दी से चम्मच ले आ।

उसने कहा—अच्छा, मैं इन्हें समुद्र में धोये लाती हूँ।

पिता और पुत्र चुपचाप उसे समुद्र की ओर दौड़ते हुए देख रहे थे।

अन्त में वेसिली ने पूछा—यह तुम्हें कहा मिल गई थी?

"मैं दफ़्तर में तुम्हारी ख़बर लगाने गया था। वहीं यह खड़ी हुई थी। इसने कहा—बालू में होकर क्यों जाओगे? मैं वहीं जा रही हूँ। मेरे साथ नाव में चलो।"

"अच्छा, तुम्हें यह कैसी मालूम होती है?"

आइकब ने ज़रा आंख मिचकाते हुए—"अच्छी तो है।"

वेसिली ने तुरन्त ही अपनी सफ़ाई दे डालनी चाही—मैं क्या करता, पहले तो बहुत दिनों तक मैंने अकेले रहने की चेष्टा की। किन्तु यह एक प्रकार से असम्भव सा है। यह मेरे कपड़े-लत्ते सी देती है और इस प्रकार मेरा काम चल जाता है। इसके सिवा जब स्त्री किसी के पीछे पड़ जाती है तब उससे छुटकारा पाना दुर्घट है। मनुष्य मृत्यु से भले ही बच जाय किन्तु स्त्री से नहीं बच सकता।

आइकब ने कहा—इससे मुझे क्या! यह तुम्हारा काम है। मैं तुम्हारा जज तो नहीं?

इतने ही में मलवा चम्मच धोकर लौट आई। तीनों भोजन करने बैठे। तीनों चुप थे। हाँ, हड्डियों के चूसने की चपचपाहट बेशक सुनाई देती थी। आइकब तो मरभुखे की तरह भोजन से चिपटा था। मलवा को यह देखकर बड़ा आनन्द आया। वेसिली को भूख नहीं लगी थी किन्तु वह भी भोजन में तल्लीन मालूम होने की चेष्टा कर रहा था। वास्तव मे उसका लक्ष्य मलवा और आइकब की ओर था।

खाना खाने के ही बाद आइकब ने कहा—मुझे नींद लगी है।

वेसिली ने कहा—अच्छी बात, सोओ, हम लोग तुम्हें जगा देंगे।

आइकब वहीं एक रस्से के ढेर पर लेट गया। उसने कहा—मैं तो सोता हूँ, तुम लोग क्या करोगे?

अपने पुत्र की मुस्कराहट से वेसिली कुढ़ गया। बाहर जाने के सिवा उसे और कोई उपाय न सूझा। किन्तु मलवा ने डपट कर कहा—इससे तुझे क्या? अभी छोकड़ा है। बात करने का ढङ्ग याद नहीं।

मलवा और वेसिली—दोनों बाहर जाकर बालू में लेट गये। वेसिली के चेहरे पर परेशानी साफ़ झलक रही थी। मलवा ने हँसते हुए कहा—क्यों, बुढ़ऊ, लड़के से इतना अधिक क्यों घबराते हो?

वेसिली ने कहा—वह मुझे चिढ़ाता है, और क्यों? तुम्हारे कारण।

"मुझे बड़ा शोक है, मैं बड़ी दुखी हूँ। किन्तु क्या करूँ? अब कभी यहां न आऊँगी, न आऊँगी। बस"

"हूँ, यह पाजीपन, क्यों न हो, तुम भी तो स्त्री हो। स्त्रियां चुड़ैल होती हैं। वह मुझे चिढ़ाता है और तुम मुझे बनाती हो। ख़ैर, मलवा, यदि तुम दुनिया में मुझे सबसे अधिक बढ़कर प्रिय न होती—"

वह कुछ दूर खिसक कर चुप हो गया। मलवा भी इधर-उधर बालू में ढुलकने लगी। कभी हँसते हुए समुद्र की ओर देखकर हँसती और कभी अपने विजय पर मुस्कराती। सौन्दर्य में शक्ति होती है। उसी के द्वारा स्त्रिया मनुष्य पर अधिकार जमाती हैं किन्तु वे अपनी इस विजय पर प्रसन्न हुए बिना नहीं रह सकतीं।

वेसिली ने फिर कहा—तू बोलती क्यों नहीं?

"मैं सोच रही हूँ।"

कुछ देर बाद फिर बोली—तुम्हारा लड़का सुन्दर तो है?

वेसिली के हृदय में ईर्ष्या का उद्रेक हुआ। उसने कड़क कर कहा—इससे तुझे क्या ?

"तुम नहीं समझते।"

उसने उसकी ओर सन्देह-दृष्टि से देखा और फिर डाटते हुए कहा—ख़बरदार, मुझे उल्लू मत बना। मैं सीधा आदमी हूँ किन्तु मुझे ग़ुस्सा दिलाना ठीक नहीं।

वह दात पीसने लगा और उसने अपनी मुट्ठिया बांध लीं।

किन्तु मलवा का इस ओर ध्यान न था। उसने बिना देखे ही कहा—वेसिली, मैं किसी से डरती नहीं हूँ।

"देखो, यह मज़ाक छोड़ दो।"

"क्या तुम मुझे डराना चाहते हो।"

"यदि तुम अपनी हरकत से बाज़ न आओगी तो याद रक्खो, अभी अक्ल ठिकाने कर दूँगा।"

"क्या तुम मुझे पीटोगे ?"

वह उसके पास खिसक गई और उसके भर्राये हुए चेहरे को ध्यानपूर्वक देखने लगी।

"इस समय तो तुम सचमुच रानी जैसी मालूम होती हो। किन्तु मैं तुम्हें पीटूँगा।"

मलवा शान्ति से कहने लगी—क्यों नहीं, किन्तु मैं तुम्हारी स्त्री थोड़े हूँ। तुम अपनी स्त्री को पीटा करते होगे किन्तु मेरे साथ ऐसा व्यवहार नहीं कर सकते। नहीं, मैं स्वतन्त्र हूँ, पूर्ण स्वतन्त्र हूँ। मेरे ऊपर किसी का अधिकार नहीं और न मैं किसी से डरती हूँ। तुम अपने लड़के से डरते हो और मुझे उल्टा धमकाते हो।

इतना कह कर उसने घृणा से सिर हिलाया। उसकी इस उपेक्षा से वेसिली का क्रोध शान्त होगया। वह इतनी अधिक सुन्दर उसे पहले कभी नहीं मालूम हुई थी। वह फिर कहने लगी—अब मैं तुमसे कुछ नहीं कहना चाहती। तुम सेरका से डींग हाकते थे कि तुम्हारे बिना ज़िन्दा ही नहीं रह सकती। किन्तु यह तुम्हारी भूल है। शायद न मैं तुम्हें प्यार करती हूँ और न मैं तुम्हारे लिए यहां आती हूँ। मुझे तो इस सुनसान किनारे की शान्ति पसन्द है। (यहाँ उसने अपने हाथ से इशारा करके बतलाया) देखो न, समुद्र का कैसा विशाल विस्तार है, ऊपर कैसा अनन्त आकाश चमचमा रहा है। मुझे यहा तुम जैसे दुष्ट जीवों से दूर रहने के कारण शान्ति मिलती है। तुम यहां न होते तो भी मैं यहा आती, यदि यहां सेरका ही रहता होता, तो भी यहां आती और यदि तुम्हारा लड़का ही यहा रहने लगे तो भी यहा मैं आती रहूँगी। इतना ही क्यों, यदि यहां कोई भी न हो तो भी मुझे यह स्थल प्यारा होगा। वास्तव मे मैं तो तुम सबसे तङ्ग आ गई हूँ। हां, यह मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि यदि मैं चाहूँ—क्योंकि मैं काफ़ी सुन्दर हूँ—तो किसी एक को अपना गुलाम बना सकती हूँ जो मुझे तुमसे अधिक आनन्द देगा।

वेसिली ध्यान से ये बातें सुन रहा था। उसकी बात पूरी होते ही वह दांत पीस कर उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—हूँ हूँ, तब तुम मुझे उल्लू बना रही थी। इतना कह कर उसने उसका गला पकड़ लिया और ज़ोर से मड़ोरने लगा। किन्तु मलवा ने छूटने का कोई उद्योग न किया। उसका चेहरा लाल पड़ गया और आंखों में ख़ून उतर आया।

वेसिली ने क्रोध से कांपते हुए कहा—अब मैंने तुझे पहचाना। फिर पहले क्यों कहती थी कि मैं तुम्हे प्यार करती हूँ। क्यों तूने मेरा चुम्बन किया और मुझे क्यों हृदय से लगाया। अब मैं तुझे इसका मज़ा चखाता हूँ।

उसने उसे बालू में दबा दिया और ज़ोर ज़ोर से घूँसे जमाने लगा। दिल भर पीटा और जब थक गया तब यह चिल्लाता हुआ दूर भाग गया—ओ, चुड़ैल, शैतान की बच्ची, अब तो ख़ुश हुई ?

बिना कुछ कहे-सुने चुपचाप मलवा वहीं शान्त होकर लेट गई। उसका सारा बदन लाल हो गया था किन्तु फिर भी सुन्दर थी। वह अपनी भौंहो के नीचे से हरी हरी आखें खोल कर देख रही थी। उस दृष्टि में शान्त किन्तु भयानक घृणा थी। उधर वेसिली का हृदय दण्ड की पूर्ति से बहुत कुछ शान्त हो गया था। जब बड़ी देर के बाद उसने सोचा कि देखूँ मलवा रोती है या नहीं तब उसके मुख पर मधुर मुस्कराहट खेल रही थी।

उसने देखा किन्तु कुछ भी न समझ सका। सोचा क्या फिर से पीटूँ ? किन्तु उत्तेजना को प्रज्वलित करने के लिए वहाँ कोई सामान न था।

उसने धीमे से कहा—क्यों, तुम मुझे कितना प्यार करते हो ?

'वेसिली का सारा बदन सन्न हो गया। उसने उदास होकर कहा—बस, बस, रहने दो, अब तो तुम ख़ुश हो।

'वेसिली, मैं बेवकूफ़ नहीं हूँ। मैं पहले ही ताड़ गई कि अब तुम मुझे प्यार नहीं करते। मैं जानती थी कि तुम्हारा लड़का यहाँ आ गया, उसके सामने तुम मुझसे प्रेम नहीं कर सकते।"

इतना कह कर वह फिर खिलखिला कर हँसने लगी किन्तु इसके लिए उसे कितना उद्योग करना पड़ा—वह स्वयं वही जान सकती थी।

हठात् वेसिली के मुख पर हँसी आ गई। उसने कहा—बेवक़ूफ़ लड़की।

उसे ऐसा मालूम हुआ, जैसे सचमुच उसी का दोष हो। उसके हृदय में एक वेदना उत्पन्न हुई किन्तु दूसरे ही क्षण ज्योंही उसे उसकी बातों का स्मरण हुआ त्योंही फिर उसकी भौंहों में बल आ गया। उसने कहा—मेरे लड़के और तुमसे क्या ? यदि तुम पिटी हो तो अपनी शैतानी के कारण। तुमने मुझे चिढ़ाया क्यों ?

"मैंने जान बूझ कर ऐसा किया। मैं तुम्हारी परीक्षा लेना चाहती थी।"

पालतू बिल्ली की भाँति वह तुरन्त ही अपना माथा उसके कंधे से रगड़ने लगी।

"मेरी परीक्षा लेने के लिए, हूँ, अभी यह कसर थी, लो, अब तो तूने उसका परिणाम देख लिया।"

मलवा ने अपनी आँखें नीची कर लीं—नहीं, नहीं सो क्या हुआ, मैं कुछ नाराज़ थोड़े ही हूँ। तुमने मुझे मारा, क्योंकि तुम मुझे प्यार करते हो। और अब तुम उसे पूरा भी कर दोगे।

उसकी आवाज़ उत्तरोत्तर धीमी होती जाती थी। और अधखुली आँखों से उसे देख रही थी। काँपते हुए उसने फिर दुहराया—तुम उसे पूरा कर दोगे।

बीच ही में टोक कर वेसिली ने पूछा—सो कैसे ?

मलवा की आवाज़ और भी धीमी हो गई थी। उसने शान्ति से कहा—ठहरो। उसके होंठ काँप रहे थे।

वेसिली से न रहा गया। झट से उसने उसे छाती से लगा लिया—मलवा, मेरी प्यारी मलवा, मैंने तुझे मारा है सो क्या तू समझती है कि मैं तुझे प्यार नहीं करता ? नहीं मलवा, मैं तुझे पहले से अधिक प्यार करता हूँ। मलवा ने अपना सिर उसके कंधे पर रख दिया और वेसिली ने उसके काँपते हुए होंठों पर अपने होंठ रख दिये।

समुद्र तेज़ी से चिल्ला रहा था और दूर से पश्चिमीय वायु लहरों के साथ अठखेलियाँ कर रही थी। दोनों कितनी देर तक उस अवस्था में रहे किसी को इस बात का पता न चला। किन्तु जब वे एक दूसरे के आलिंगन से छूटे तब मलवा वेसिली के घुटने पर बैठी हुई थी। वह ऐसी स्थिर थी जैसे कोई प्रस्तर-मूर्ति। उसके सीने के संयत उतार-चढ़ाव से ही दर्शक उसे जीवित समझ सकता था और वेसिली की आखें चमत्कृत थीं। वह कभी मलवा के नूतन सौन्दर्य को देखता और कभी समुद्र के असीम विस्तार को। अन्त में उसने कहा—मलवा, मैं अकेला हूँ, और दुखी हूँ। रात्रि के समय जब मैं सोने लगता हूँ तब मेरी हालत कैसी होती है—इसकी तुम कल्पना नहीं कर सकतीं। अनेक दुःखद विचार मुझे घेरते हैं और मुझे नींद नहीं आती।

मलवा बिलकुल चुप थी। वेसिली ने फिर उसका मुख-चुम्बन किया।

इस प्रकार शायद उन्हें तीन घण्टे हो गये। जब उन्हें डूबता हुआ सूर्य दिखाई दिया तब वेसिली ने घबराहट के साथ कहा—ओ, शाम होनेवाली है, मुझे चाय बनानी चाहिए, आइकब जाग उठा होगा।

मलवा उठी जैसे कोई बिल्ली सोकर उठती है और वेसिली उदास मन से केबिन की ओर चल दिया। मलवा का मुँह खुला हुआ था, उसने वेसिली को देखकर एक लम्बी साँस ली जैसे उसके सिर पर से एक बोझ उतर गया हो।

× × ×

पन्द्रह दिन बाद फिर रविवार था और फिर वेसिली अपनी झोंपड़ी के पास बालू में मलवा के लिए लेटा

हुआ था। उस दिन भी समुद्र के मुख पर हँसी थी और सूर्य मुस्करा रहा था। सैकड़ों लहरें एक ही साथ बालू की ओर दौड़ती थीं और बालू पर अपना फेन छोड़ कर वापस लौट जाती थीं।

गर्ज़ कि सब ज्यों का त्यों था किन्तु वेसिली की हालत वैसी न थी। पहले दिन वह शान्ति के साथ मलवा की बाट देख रहा था और आज उसके हृदय में चिन्ता थी। गत रविवार को वह नहीं आई—किन्तु क्या आज भी नहीं आयेगी—वेसिली कभी इस बात को अपने हृदय में स्थान नहीं दे सकता था। वेसिली को मलवा से मिलने की कितनी प्रबल इच्छा थी ! और आज तो उसके लिए विशेष सुयोग था। क्योंकि आइकब पहले ही से कह गया था कि मैं आगामी रविवार को नगर में सौदा करने के लिए जाऊँगा। यहाँ मल्लाहों में उसकी नौकरी लग गई थी।

आज के दिन समुद्र में मल्लाहों की नावें नहीं दिखाई देती थीं, तो भी उसे अपना चिरपरिचित काला धब्बा नहीं दिखाई दिया।

अन्त में उसने दिल बिगाड़ कर कहा—ओ, तू नहीं आ रही है, न आ, मुझे तेरी ऐसी परवा ही क्या है !

और यह कह कर उसने पानी की ओर थूक दिया, समुद्र हँस पड़ा।

वेसिली सोचता—यदि कम से कम सेरका ही आ जाता। वह केवल सेरका के विषय में सोचने की चेष्टा करने लगा। कैसा हँसमुख किन्तु कैसा बेकाम ! तगड़ा, पढ़ा-लिखा और दुनिया को देखे-भाले, किन्तु शराबी। कुछ भी हो, मुझे इन बातों से क्या मतलब। है तो प्रसन्नचित्त, उसके साथ में कभी कोई उदास नहीं रह सकता। स्त्रियाँ तो उसके पीछे पागल हो जाती हैं। सभी उसके लिए दौड़ती है। यदि कोई भागती है तो मलवा। ओ, वह अभी तक नहीं, उसका कोई चिह्न नहीं दिखाई देता। कैसी शैतान औरत है। शायद मैंने उसे पीटा है—इसी लिए मुझसे क्रुद्ध हो गई।

इस प्रकार वेसिली कभी अपने लड़के की बात सोचता और सेरका की। घबराहट में वह बालू में इधर-उधर घूम रहा था किन्तु उसकी सतृष्ण दृष्टि समुद्र से न हटती थी। किन्तु मलवा न आई, न आई।

अब दूसरी ओर क्या हुआ, सो सुनिए।

आइकब बड़े तड़के उठा और प्रतिदिन की भाँति मुँह-हाथ धोने समुद्र की ओर चला। वहाँ उसने मलवा को देखा। वह एक नाव में बैठी हुई थी और उसके पैर पानी में लटके थे। वह अपने गीले बालों में कंघी कर रही थी।

कुछ देर तक आइकब खड़ा खड़ा उसे देखता रहा। फिर चिल्ला कर पुकारा—क्यों, क्या तूने नहा लिया है।

उसने मुड़ कर उसकी ओर देखा और फिर अपने पैरों को देखने लगी। उसी प्रकार अपने बालों में कंघी करते हुए उसने कहा—हा, मैंने नहा लिया है, तुम आज इतनी जल्दी कैसे उठे ?

"क्या तुम जल्दी नहीं उठीं ?"

"किन्तु मेरी और तुम्हारी बराबरी कैसी। जो कुछ मैं करती हूँ यदि वह सब तुम करने लगो तो तुम्हारी आफ़त हो जाय।"

उसने पूछा—तुम मुझे हमेशा डराया क्यों करती हो ?

"और तुम मेरी ओर आखें क्यों बनाया करते हो ?"

आइकब ने उसे अन्य स्त्रियों की अपेक्षा कभी कोई विशेषता नहीं दी थी। उस क्षेत्र में और भी स्त्रियाँ थीं। जितना वह उनकी ओर देखता था उतना ही इसकी ओर। किन्तु इस समय उसने एकाएक कह दिया—क्योंकि तुम इतनी आकर्षक हो।

"यदि तुम्हारा पिता यह बात सुन ले तो तुम्हारी अक्ल ठिकाने आ जाय। देखो, मेरे प्यारे बच्चे, मैं तुम्हें समझाकर बतलाती हूँ कि तू मेरे पीछे मत पड़। मैं तेरे और वेसिली के बीच में नहीं आना चाहती। उसने कहा—अच्छा, तो मैंने ऐसा किया ही क्या है ? मैंने तो तुझे छुआ भी नहीं।"

"क्या तू मुझे छू सकता है ?" मलवा ने ये शब्द ऐसी उपेक्षा से कहे थे कि उसे सहन न हुए। उसने कहा—तो क्या मैं तुझे छू भी नहीं सकता। यह कह कर वह नाव पर चढ़ गया और उसकी बगल में जा बैठा। उत्तर मिला—नहीं, कदापि नहीं।

"और यदि मैं छू लूँ—"

"देखो"

"अच्छा तुम क्या करोगी।"

"मैं तुम्हारे कान में ऐसा घूँसा जमाऊँगी कि पानी में चित्त जा लेटोगे।"

"अच्छा, देखता हूँ—तुम क्या करोगी।"

"अच्छा, देखो।"

उसने तुरन्त ही उसकी कमर में हाथ डाला और उसे अपनी छाती से लगा लिया।

"लो, मैंने छू लिया, अब मेरे कान में घूँसा मारो।"

मलवा जल्दी से अपने आपको छुड़ाने की चेष्टा करने लगी। उसने कहा—आइकब, देखो, मुझे छोड़ दो।

"और वह दण्ड, जिसकी तुमने प्रतिज्ञा की थी।"

"जाओ, भागो।"

"अच्छा, मेरी हृदयेश्वरी, अब ये धमकियाँ रहने दो।"

इतना कह कर उसने फिर उसे अपनी ओर खींच लिया और उसका मुख-चुम्बन कर लिया।

वह अट्टहास करने लगी और अपने दोनों हाथों से आइकब को जकड़ लिया। फिर अपने पूरे बल के साथ उसने उसे धक्का दिया कि दोनों धड़ाम से पानी में जा गिरे। दोनों एक बंडल रूप थे। वहाँ वह आसानी के साथ उसके चंगुल से निकल गई और फिर लगी उसे खारी पानी के छींटे मारने। आइकब ने बड़ी कोशिश की कि उसे पकड़ ले किन्तु वह उसके हाथ न आई। अन्त में जब उसने उसे पकड़ पाया तब दोनों बड़ी देर तक मछलियों की तरह मल्लयुद्ध करते रहे। जब दोनों बिलकुल थक गये और खारी पानी से ऊब गये तब दोनों बाहर निकल कर धूप में अपने आपको सुखाने लगे।

मलवा के मुख पर फिर भी हँसी थी। वह अपने बालों से पानी निकाल रही थी। इधर दिन चढ़ आया। मल्लाह रात की खुमारी के बाद एक एक करके अपनी झोपड़ियों से बाहर निकलने लगे। दूर से सभी एक से मालूम होते थे। कोई तम्बाकू पीते थे। दो स्त्रियाँ आपस में झगड़ रही थीं और कुत्ते भौंक रहे थे।

आइकब ने कहा—लो, लोग उठ बैठे हैं। आज मुझे बाज़ार जाना था। तुम्हारे पीछे मेरा बहुत-सा समय नष्ट हो गया।

"मेरे साथ रहने से कभी किसी की भलाई नहीं हो सकती—" ये शब्द मलवा ने कुछ हँसी में और कुछ सच्चे हृदय से कहे थे।

"तुम्हें आदमियों को दुतकारने की क्या आदत है?"

"यह तुम्हें अपने पिता से—"

पिता का नाम सुनते ही आइकब का पारा गरम हो गया। उसने बीच ही में टोक कर कहा—पिता से क्या? मैं बच्चा नहीं हूँ और न मैं अन्धा हूँ। और वह भी तो साधु नहीं। फिर मैं क्यों अपने आपको इन बातों से वंचित रक्खूँ। यदि तुम न मानोगी तो मैं तुम्हें अपनी लौंडी बना कर रक्खूँगा।

"तुम"?

"तुम मुझे क्या समझती हो?"

"सचमुच!"

उसने उत्तेजित होकर कहा—देखो, देखो, मलवा, तुम मुझे चिढ़ाओ मत—मैं—मैं

उसने उसी उपेक्षा से कहा—तुम क्या करोगे?

"कुछ नहीं।"—यह कहते हुए आइकब पीठ फेर कर चलता हुआ।

मलवा ने व्यंग्य से कहा—सचमुच कैसे बहादुर हो। तुम्हें देख कर मुझे इन्स्पेक्टर के छोटे कुत्ते की याद आती है। दूरी पर तो वह बराबर भौंकता है और काटने को दौड़ता है किन्तु पास पहुँचने पर दुम दबा कर भाग जाता है।

आइकब ने वहीं से चिल्ला कर कहा—अच्छा, ठहरो, मैं तुम्हें बताऊँगा कि मैं कौन हूँ।

इतने ही में एक हट्टा कट्टा किन्तु चिथड़ा पहने हुए आदमी उनकी ओर आता दिखाई दिया। उसकी कमीज़ और पायजामे में न जाने कितने सूराख़ थे और उसके पैरों में भी कुछ नहीं था। जब वह पास आया तब उसने मुँह बना कर कहा—सेरका ने कल शराब पी थी और आज उसकी जेब ख़ाली है। मुझे २० आने उधार दे दो, मैं उन्हें लौटा दूँगा।

आइकब खिलखिला कर हँसने लगा और मलवा मुस्करा दी।

"मुझे पैसे दो और यदि तुम चाहोगे तो मै तुम्हारी शादी करवा दूँगा।"

आइकब ने कहा—अजब बेवकूफ़ हो, क्या तुम पादरी हो जो शादी करोगे?

"कैसी बात? क्या मैं ओलिग के पादरी का नौकर नहीं रहा हूँ?"

आइकब ने कहा—मैं शादी नहीं करना चाहता।

"तो भी पैसे दो। तुम अपने पिता की रानी से प्रणय करते हो, मैं उसे छिपा दूँगा।" यह कह कर सेरका अपने सूखे होंठ चाटने लगा।

आइकब पैसे नहीं देना चाहता था किन्तु लोगों ने उससे कह रक्खा था कि सेरका से हमेशा होशियार रहना। एक तो वह अधिक मांगता ही नहीं और यदि उतना भी उसे न मिले तो फिर वह बड़ा अनर्थ करता है। इसी भाव से आइकब ने सांस लेते हुए जेब में हाथ डाला और उसे पैसे दे दिये।

सेरका ने उत्साह से कहा—बहुत ठीक और फिर वहीं उनकी बगल में बैठ गया—"यदि तुम मेरा कहना मानोगे तो हमेशा खुश रहोगे और मलवा, तुम कब मेरे साथ शादी करनेवाली हो? जल्दी करो तो बड़ा अच्छा हो, क्योंकि अब मैं अधिक नहीं ठहर सकता।"

मलवा मुस्करा दी। उसने कहा—तुम्हारी पोशाक फट गई है। अच्छा हो, तुम पहले अपने चिथड़े सी लो और फिर हम लोग शादी की बातचीत करें। सेरका ने घृणा से अपने कपड़ों को देखा और सिर हिला दिया। उसने कहा—अच्छा हो तुम्हीं मुझे एक कमीज़ दे दो।

मलवा ने हँस कर कहा—बहुत अच्छा।

"नहीं, नहीं, मैं हँसी नहीं करता हूँ। तुम्हारे पास कोई पुरानी कमीज़ पड़ी होगी।"

"नहीं, तुम एक पायजामा ख़रीद लो।"

"मैं तो रुपये से शराब पीना चाहता हूँ।"

सेरका उठा और पैसा बजाते हुए चला गया। मलवा के मुख पर एक अजब मुस्कराहट थी। जब वह कुछ दूर चला गया तब आइकब ने कहा—यदि ऐसा उठाईगीर हमारे गाव मे होता तो बात की बात में उसकी अक़्ल ठिकाने कर दी जाती और यहां तो सब उससे डरते मालूम होते हैं।

मलवा ने आइकब की ओर देखा और उपेक्षा से कहा—तुम उसे नहीं पहचानते।

"मैं अच्छी तरह जानता हूँ—वह दो कौड़ी का आदमी है।"

उसने कोई उत्तर न दिया और लहरों की घुड़दौड़ को निहारने लगी। अन्त में उसने पूछा—तुम जाते क्यों नहीं हो?

"कहा?"

"तुम शहर तो जाने कहते थे।"

"मै नहीं जाऊँगा।"

"तो फिर अपने पिता के पास जाओ।"

"और तुम?"

"क्या कहा?"

"क्या तुम नहीं चलोगी?"

"नहीं।"

"तो मै भी नहीं जाऊँगा।"

"तो क्या तुम दिन भर मेरे पीछे चक्कर लगाओगे?"

"नहीं, मै ऐसा तुम्हारा भी गुलाम नहीं।"

क्रुद्ध होकर वह वहां से चल दिया। किन्तु चलते ही उसे अपनी भूल मालूम हुई। उसे ऐसा मालूम हुआ जैसे वह सचमुच मलवा का ग़ुलाम हो गया हो। आज की बातचीत से उसके हृदय में एक भीषण उथल-पुथल मच गई। कल तक—नहीं, नहीं, आज सवेरे तक उसके हृदय में मलवा के लिए कोई आकर्षण न था, किन्तु अब उसे अपना ही पिता उसके मार्ग में सबसे बड़ा बाधक मालूम होता था। उसे ऐसा भी मालूम हुआ जैसे मलवा भी पिता को डरती हो, नहीं तो वह कभी ऐसी उचटी उचटी बातें न करती। कुछ भी हो, अब उसके हृदय में कुछ कमी आगई थी। किसी बात में उसका मन नहीं लगता था। बड़ी देर तक वह मल्लाहों से इधर-उधर की गप-शप करता रहा, फिर सोगया किन्तु फिर भी हृदय में शान्ति न आई। हठात् सायंकाल के समय मलवा की खोज में निकल पड़ा।

वह मल्लाहों से बहुत दूर वृक्षों की छाया में एक फटी हुई पुस्तक पढ़ रही थी।

आइकब को देखकर वह मुस्करा दी। आइकब भी यह कहता हुआ कि एकान्त मे विद्याध्ययन हो रहा है, उसकी बग़ल में जा बैठा।

उसने लजाते हुए कहा—क्या तुम मुझे बड़ी देर से ढूँढ़ते थे।

आइकब ने हँसकर कहा—बहुत ठीक, मैं तुम्हें क्यों ढूँढ़ूगा। किन्तु मन ही मन उसे मलवा की बात में विश्वास हो रहा था।

उसने पुछा—क्या तुम भी पढ़ना जानते हो?

"नहीं, मैंने कुछ पढ़ा था किन्तु अब सब भूल गया।"

"मैं भी कुछ नहीं जानती।"

एकाएक आइकब पूछ बैठा—आज तुम समुद्र के दूसरे किनारे क्यों नहीं गईं?

"इससे तुम्हें क्या?"

आइकब ने एक पत्ता तोड़ा और उसे चबाने लगा।

कुछ देर बाद उसने उसके पास खिसक कर धीमे से कहा—मलवा, क्या तुम मेरी बात सुनोगी? मैं एक ज़रूरी बात कहना चाहता हूँ। मैं नौजवान हूँ और तुम्हें हृदय से प्यार करता हूँ।

मलवा ने सिर हिलाकर कहा—तुम पागल हो और मैं पागल लड़कों से बातचीत नहीं करना चाहती।

"मैं पागल भले हूँ, किन्तु मैं तुम्हें हृदय से प्यार करता हूँ, सच्चे हृदय से।"

आइकब के इस अनुनय में कितनी तीव्रता थी!

"बस, तुम यहाँ से चले जाओ।"

"क्यों?"

"क्योंकि........"

आइकब ने नम्रता से उसके कंधे पर हाथ रख दिया और बोला—मलवा, ज़िद मत करो, क्या तुम मेरी बात नहीं समझ सकतीं?

मलवा ने और ज़ोर से कहा—आइकब, तुम यहाँ से हटो, जाओ, एक-दम हट जाओ।

"अच्छा, यदि तुम्हारा ऐसा घमण्ड है तो मुझे भी परवा नहीं। कुछ तुम्हीं तो यहाँ एक अनहोनी औरत हो नहीं। तुम शायद यह समझती हो कि मैं दूसरों से बहुत सुन्दर हूँ।

उसने कोई उत्तर न दिया। एक-दम उठ बैठी और कपड़े फटकारने लगी। अन्त में उसने कहा—आओ।

फिर वे दोनों साथ साथ झोपड़ियों की ओर चलने लगे। वे बालू के कारण धीरे-धीरे चल रहे थे। जब वे नावों के अत्यन्त समीप पहुँच गये तब एकाएक आइकब ने मलवा के हाथ पकड़ लिये और पूछा—तुम मुझे पागल क्यों बना रही हो, क्या मुझे सताने मे तुम्हें मज़ा आता है?

धीरे से अपने आप को छुड़ा कर उसने कहा—मैं कहती तो हूँ—तुम मेरा पीछा मत करो।

इतने ही में नावों के बीच से सेरका दिखाई दिया। उसने अपनी मुट्ठी तान कर दोनों से कहा—अच्छा, अब यहाँ तक नौबत पहुँच गई। वेसिली से यह बात छिप नहीं सकती।

मलवा चिल्ला उठी—तुम सब चूल्हे में जाओ। मुझ से क्या मतलब। यह कहती हुई नावों में होकर न जाने कहाँ निकल गई।

कुछ देर तक सेरका और आइकब दोनों एक दूसरे आंखें लड़ाते हुए खड़े रहे जैसे दो मेंढ़े युद्ध के लिए सन्नद्ध हों। किन्तु दूसरे ही क्षण दोनों ने पीठ फेरी और अपनी अपनी राह ली।

अस्ताचलगामी सूर्य्य की आभा से समुद्र का वक्ष-स्थल रक्तवर्ण हो रहा था।

* * * *

दूसरे ही दिन मछली के शिकार के लिए जाते हुए सेरका ने वेसिली के अड्डे पर डेरा डाल दिया। दोनों साथ साथ केबिन की ओर जा रहे थे। वेसिली ने पूछा—तुम रविवार को क्यों नहीं आये?

"नहीं आसका।"

"क्यों? क्या कुछ अधिक चढ़ गई थी?"

"नहीं, मैं तुम्हारे लड़के और उसकी सौतेली मा को देख रहा था।"

वेसिली ने सप्रयत्न हँसते हुए कहा—यह तो तुम्हारे सिर पर नई बला आगई। वे तो बच्चे हैं, उन्हें देखने से

क्या मतलब ? वेसिली ने कहते तो यह कह दिया किन्तु मन ही मन वह इन दोनों के व्यवहार से लज्जित और उद्विग्न हो रहा था।

सेरका ने एक ग्लास गले के नीचे उतारते हुए कहा—आज तुम मलवा की खबर क्यों नहीं पूछते हो।

वेसिली ने उपेक्षा-भाव से कहना चाहा—मुझे उसकी क्या परवा।

"वह पिछले रविवार को नहीं आई। इसलिए तुम्हें पूछना चाहिए कि वह क्या करती रही ? मैं जानता हूँ कि तुम्हारे हृदय में वेदना हो रही है किन्तु तुम उसे प्रकट नहीं कर सकते।"

"अजी, उस जैसी तो सैकड़ों हैं।"

"हां, उस जैसी हैं तो सैकड़ों बेशक, पुराने खुड्डूसहो. क्यों न ऐसी कहोगे ? किन्तु मैं तो देखता हूँ कि तुम सब किसान एक से मतलबी होते हो।"

वेसिली चंचल हो उठा। उसने बीच ही में रोककर कहा—अच्छा, तुम्हीं क्यों उसके पीछे पड़े हो ? क्या वह तुम्हारे साथ शादी करने के लिए तैयार हो गई ?

"यह तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि वह तुम्हारी है किन्तु क्या मैंने कभी तुम्हें तंग किया। लेकिन अब तुम्हारा ही लड़का आइकब उसके पीछे पड़ा है। यह बहुत बुरी बात है। मेरी बात सुनो, उसे खूब मारो और यदि तुमसे न हो सके तो मुझसे कहो, मैं पीट दूँगा। मैं ऐसे बदमाशों के लिए काफ़ी मज़बूत हूँ।"

वेसिली ने कोई उत्तर न दिया। वह चुपचाप समुद्र की ओर देख रहा था। अन्त में उसने कहा—तुम ठीक कहते हो। मैं आइकब को ठीक कर दूँगा।

"नहीं, मैं उसे बिल्कुल पसन्द नहीं करता। वह बहुत गँवार है।"

सेरका की नाव लौट आई और वह एक गिलास और चढ़ा कर चल दिया।

* * * *

संध्या का समय था। चिराग़ जल चुके थे। मल्लाह अपने भोजन की चिन्ता में थे। मलवा एक नाव पर बैठी हुई समुद्र की क्रीड़ा देख रही थी। दूसरे किनारे पर अँधेरे में उसे आग जलती हुई दिखाई दी। मलवा का हृदय बैठ-सा गया। वह जानती थी कि यह अग्नि वेसिली ने प्रज्वलित की है। आग की लौ हवा के वेग में बराबर गिरती-उठती थी। मलवा सोचती—जलानेवाले का हृदय कैसा होता होगा।

पीछे से सेरका ने पुकारा—तू वहां बैठी बैठी क्या करती है ? मलवा ने बिना हिले-डुले रूखे स्वर में कहा—इससे तुम्हें क्या ?

सेरका ने एक सिगरेट जलाई और कुछ देर चुपचाप रहा। फिर मित्रभाव से बोला—तुम कैसी अजीब औरत हो। पहले तो तुम सब आदमियों से भागती हो और फिर चाहे जिसके गले में हाथ डाल देती हो।

मलवा ने उदासीन हो कहा—तुम्हारे गले में तो नहीं डालती हूँ।

"शायद मेरे गले में तो नहीं, किन्तु आइकब के गले में।"

"इससे क्या तुम्हें ईर्ष्या होती है ?"

"हूँ, तो क्या तुम मेरी दो-एक स्पष्ट बातें सुनना चाहती हो ?"

"कहो न ?"

"तुम ने क्या वेसिली से सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया ?"

कुछ देर चुप रह कर उसने कहा—मैं नहीं जानती, मैं उससे तङ्ग आगई हूँ।

"कैसे" ?

"उसने मुझे पीटा है।"

"सचमुच ? और तुम कुछ न बोलीं।"

सेरका की समझ में कुछ भी न आया। इससे मलवा के मुँह की ओर देखने की चेष्टा की और मुँह बना दिया।

"नहीं, वह मुझे पीट तो नहीं सकता था किन्तु मैंने अपने आपको बचाया नहीं।"

सेरका ने अपनी सिगरेट से धुआं का बादल उड़ा दिया—

"ओ हो, तब तुम उस पुराने खुर्राट को इतना अधिक प्यार करती हो। मैं तुम्हें कुछ और ही समझता था।"

मलवा ने अपने हाथ से धुआँ हटाते हुए कहा—मैं तुमसे अधिक किसी को प्यार नहीं करती।

"यदि तुम प्यार नहीं करतीं तो अपने आप को पिटने कैसे दिया ?"

"मैं नहीं जानती, तुम मुझे अकेली छोड़ दो।"

सेरका ने सिर हिला कर कहा—बड़े आश्चर्य की बात है! थोड़ी देर तक दोनों चुप रहे। रात्रि बढ़ रही थी। सेरका चला गया। वेसिली की आग बुझ गई थी। किन्तु फिर भी मलवा उसी दिशा में देखती रही।

: : * :

सेरका ने आइकब को पूरा पूरा भर दिया। उसने कहा कि तुम्हारा पिता मलवा के कारण तुमसे नाराज़ है और इसी कारण से मलवा तुम्हारी बात नहीं सुनती। उसने यहां तक कहा कि मैं मलवा को मारते मारते अधमरी कर दूँगा और तुम भी उससे बच नहीं सकते।

आइकब का पारा गरम हो गया। उसे अब अपना पिता स्पष्टरूप से व्याधिरूप मालूम होने लगा। ऐसी व्याधि कि जिसे न वह जीत सकता था और न दूर ही कर सकता था।

किन्तु आइकब को अपनी शक्ति का भरोसा था। वह पिता के पास गया और उसे दृढ़ता से घूरने लगा, मानो उसकी आखें कह रही थीं—दम हो तो कुछ बोलो।

दोनों ने अपने अपने गिलास मे शराब उड़ेली और पीने लगे। बड़ी देर तक किसी के मुँह से एक भी शब्द न निकला। अन्त में वेसिली बोला—सेरका का क्या हाल है ?

"हाल क्या है ? वही शराब"

"एक न एक दिन अवश्य ही उसकी दुर्गति होगी और यदि तुमने भी अपनी चाल न छोड़ी तो तुम्हारा भी वही हाल होगा।"

आइकब ने गुर्राकर कहा—नही, मैं कदापि वैसा नहीं हो सकता।

वेसिली ने भी उसी स्वर में कहा—नहीं, मैं यों ही नहीं कहता, मैंने अपनी बात पर ख़ूब विचार कर लिया है। तुम्हें यहाँ रहते दो महीने होगये। अब तुम्हें वापस चला जाना चाहिए। अच्छा, अभी तक तुमने क्या बचाया ?

"इतने थोड़े समय में मैं क्या बचा सकता था।"

"तब तुम्हारे यहां रहने की आवश्यकता ही क्या, देखो, मैं तुमसे प्रेम से कहता हूँ कि तुम वापस चले जाओ।"

आइकब मुस्कराने लगा।

वेसिली को अपने पुत्र की इस धृष्टता से बड़ा क्रोध आया। उसने उत्तेजित हो कर कहा—ऐसी गुस्ताख़ी, मैं तुझे आज्ञा देता हूँ और तू मुँह बनाता है। अभी से यह हाल! इतनी जल्दी पर लग गये।

आइकब ने अपने ग्लास में थोड़ी सी शराब और उड़ेली और पीने लगा। वह मन ही मन कुढ़ रहा था किन्तु सोचता था कि मामला न बढ़े तो अच्छा है।

इधर वेसिली ने देखा कि अकेले ही शराब पीने लगा और मेरी बात भी न पूछी। उसका सारा चेहरा क्रोध से तमतमा उठा। उसने कहा—देखो, शनिवार को तुम्हारा वेतन मिल जायगा, बस, तुम सबेरे ही घर चले जाना।

"नहीं, मै नहीं जाऊँगा।"

वेसिली चिल्ला उठा—क्यों ? उसका सारा शरीर काँप रहा था। वह मेज़ का किनारा पकड़े हुए उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—पाजी कुत्ता कहीं का, तेरा साहस, याद नहीं कि किससे बातें कर रहा हूँ।

आइकब ने धीरे से कहा—मुझे सब याद है। तुम्हीं भूले हुए मालूम होते हो।

"तू मेरा उपदेशक नहीं। मैं अभी तेरी हड्डी-पसली एक कर दूँगा।"

वेसिली का हाथ उठा हुआ था, किन्तु आइकब ने अपना सर बचा लिया। उसके हृदय में तूफ़ान उठ रहा था। उसने दांत पीस कर कहा—देखो, मुझे हाथ मत लगाना, यह गांव नहीं है।

"चुप रह, मैं तेरा बाप हूँ बाप।"

दोनों एक दूसरे के सामन खड़े हुए थे, मेज़ बीच में थी। वेसिली की आँखों से ख़ून बरसता था, मुट्ठी बँधी हुई थी और दांत सटे हुए। आइकब कुछ पीछे हट गया। ऊपर से यद्यपि वह शान्त था, किन्तु अन्दर बड़ी उथल-पुथल मची हुई थी। उसने अपने माथे का पसीना पोंछ डाला।

वेसिली फिर चिल्ला उठा—तू समझता है कि मैं तुझे मार न सकूँगा ?

आइकब ध्यान से उसकी हरकतों को देख रहा था। उसने कहा—यहां हम दोनों एक-से हैं, तुम भी मल्लाह हो और मैं भी मल्लाह हूँ। तुम मुझे नहीं मार सकते। तुम समझते हो कि मैं कुछ जानता ही नहीं!

वेसिली ने क्रोध से अपनी दोनों मुट्ठियां ऐसे ज़ोर से आइकब के सिर पर पटक दीं कि उसे बचने का मौक़ा ही न मिला। वह वहीं ज़मीन पर गिर पड़ा।

वेसिली ने घूम कर फिर कहा—ठहरो, अभी क्या हुआ। थोड़ी देर में दोनों में गुत्थमगुत्था होने लगा। किन्तु आइकब अपने पिता के वारों को बचाता हुआ बाहर निकल भागा।

वेसिली ने उसका पीछा करना चाहा, किन्तु एक रस्सी में उसकी टांग फँस गई और वह बालू में गिर पड़ा। आइकब बहुत दूर निकल गया था। वेसिली ने हाथ मलते हुए कहा—अभागे, मैं तुझे शाप देता हूँ।

अपनी स्थिति का अनुभव होते ही वेसिली का हृदय ग्लानि से भर गया। उसने एक लम्बी सांस ली। उसका सिर नीचे को झुका था, जैसे कोई भारी बोझ रक्खा हो। उसके हृदय में अनेकों विचार उठ रहे थे। हे ईश्वर, मैं कैसा अभागा हूँ। एक अवारा स्त्री के पीछे मैंने अपनी पत्नी को छोड़ दिया—उसे, जिसका कोई दोष नहीं, जिसने रात-दिन पन्द्रह साल तक मेरी सेवा की। हे ईश्वर, तेरा कोई दोष नहीं। मैं ही इस योग्य हूँ। तभी तो आज मेरा लड़का मुझे चिढ़ाकर भाग गया। हे ईश्वर, तू मुझे और भी घोर दण्ड दे जिससे मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो जाय। बैठे बैठे वेसिली के हृदय में इस प्रकार के न जाने कितने विचार उठे। अन्त में वह अपनी आंखें मिचमिचाने लगा। वे आंसुओं से भर गई थीं।

सूर्य की लाल किरणें अन्तिम बिदा माग रही थीं और समुद्र उस ओर आशा लगाये हुए था। वेसिली मउसी मैदान में बैठा रहा। कब उसकी आंख लगी और कब सबेरा हुआ—इसका उसे तनिक भी ज्ञान न था।

* * *

लड़ाई के दूसरे ही दिन आइकब मछली पकड़ने के लिए समुद्र पर तीस मील दूर चला गया और पांच दिन बाद खाद्य-सामग्री लेने लौटा। दोपहर का समय था। सभी भोजन के बाद आराम से लेटे थे। तेज़ गर्मी थी—इतनी अधिक कि आइकब के पैर बालू में भुने जा रहे थे। और आइकब को फिर से नाव में लौट जाने की जल्दी भी थी किन्तु उसकी इच्छा थी कि एक बार मलवा को देख लूँ। समुद्र के एकान्त में सन्ध्या-समय उसने कई बार मलवा की बात सोची थी। उसे सन्देह था कि कहीं पिता और मलवा फिर से न मिले हों। उन्होंने न जाने क्या बातें की होंगी। शायद बुड्ढे ने उसे अवश्य ही पीटा होगा।

मल्लाहखाना सुनसान था जैसे गर्मी ने उसे परास्त कर दिया हो। एकाएक एक ओर से आइकब को मलवा की आवाज़ सुनाई दी। वह ठिठक गया। थोड़ी दूर पर देखता क्या है कि पीपों की आड़ में सेरका पीठ के बल लेटा हुआ है। उसके एक ओर मलवा बैठी है और दूसरी ओर वेसिली। वह सोचने लगा—पिता यहां क्यों आया? क्या उसने वहां की नौकरी छोड़ दी और मलवा के पास रहने की ठानी है। कुछ भी हो, वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ा रहा।

इतने में सेरका ने कहा—तब तो तुमने तय ही कर लिया है। हम लोगों से अन्तिम प्रणाम। अच्छी बात, जाओ, जाओ और हल चलाओ।

आइकब के बदन में बिजली-सी दौड़ गई। उसे एक आन्तरिक आह्लाद मालूम हुआ।

वेसिली ने कहा—हा, जा तो रहा हूँ।

अब तो आइकब दृढ़ता से आगे बढ़ गया। और कहा—

"सबको प्रणाम।"

पिता ने पुत्र पर एक सरसरी निगाह फेंकी और फिर आखें फेर लीं। मलवा ज्यों की त्यों बैठी रही। सेरका अधबैठा होगया और ऊँचे स्वर से बोला—ओ हो, आइ-कब, आगया, हमारा प्यारा बेटा बड़ी दूर से आया है। फिर अपने सहज स्वभाव से कहने लगा—आइकब, क्रोध तो तुझ पर ऐसा आता है कि ज़िन्दा ही तेरी खाल खींचकर भुस भर दूँ।

मलवा हँसने लगी।

आइकब बैठ गया और बोला—बड़ी गर्मी है।

वेसिली ने कहा—मैं सबेरे से तुम्हारी बाट देख रहा हूँ। इन्स्पेक्टर ने मुझसे कहा था कि आज तुम लौट आओगे।

आइकब को ऐसा मालूम हुआ कि बुड्ढे की आवाज़ कुछ कमज़ोर हो गई है और मुखमुद्रा भी कुछ बदली हुई मालूम हुई। उसने सेरका से एक सिगरेट माँगी।

सेरका ने बिना हिले-डुले उत्तर दिया—तुम जैसे पाजियों के लिए मेरे पास सिगरेट नहीं।

वेसिली अपने नाखूनों से बालू खोद रहा था। उसने गम्भीरता से कहा—आइकब, मैं घर जा रहा हूँ।

पुत्र ने पूछा—क्यों? प्रश्न से निश्छलता टपकती थी।

"यों ही, तुम तो यहीं रहोगे?"

"हाँ, मैं रहूँगा। हम दोनों घर पर क्या करेंगे?"

"बहुत अच्छा। मुझे कुछ नहीं कहना। जैसा समझो वैसा करो। अब तुम बच्चे नहीं। हाँ, अब मैं अधिक दिन ठहरने का नहीं और यदि शायद ज़िन्दा भी रहूँ तो काम नहीं कर सकता। इसके सिवा अब मुझसे खेती का काम नहीं हो सकता। हाँ, आइकब, तुम एक बात याद रखना कि तुम्हारी मा वहाँ है।"

स्पष्टरूप से उसके लिए अधिक कहना असम्भव था। शब्द उसके मुँह में रह गये। एक हाथ से उसने अच्छी दाढ़ी पर हाथ फेरा। वह काँप रहा था।

मलवा उसे ताक रही थी और सेरका एक आँख आधी बन्द किये हुए आइकब पर दृष्टि लगाये था। आइकब के हृदय में प्रसन्नता थी किन्तु वह उसे प्रकट नहीं कर सकता था। उसने सिर झुका लिया और चुप हो गया। वेसिली ने फिर कहा—"आइकब, अपनी माँ को मत भूल जाना।"

आइकब के बदन में फुरोही आगई। उसने कहा—मुझे ख़याल है।

पिता ने संदेहात्मक स्वर में कहा—यदि ख़याल है तब तो बड़ा अच्छा। यदि न हो तो मैं तुम्हें याद दिलाता हूँ। यह कहकर उसने एक लम्बी साँस खींची और थोड़ी देर तक तीनों चुपचाप रहे।

फिर मलवा ने कहा—काम की घंटी बजने ही वाली होगी।

वेसिली उठ बैठा और बोला—मैं जाता हूँ।

सब उठ खड़े हुए। वेसिली ने फिर कहा—प्रणाम, अन्तिम प्रणाम। सेरका, यदि तुम कभी बोल्गा की ओर आना तो मेरे पास भी घंटे भर के लिए हो जाना।

"अवश्य, अवश्य"।

"प्रणाम"।

"प्रणाम,"

वेसिली ने उसी प्रकार नीची निगाह किये हुए कहा—मलवा प्रणाम।

मलवा ने धीरे से आस्तीन से अपने होंठ पोंछ डाले और फिर अपने दोनों सफ़ेद हाथ उसके गले में डाल दिये। मलवा ने तीन बार उसका मुख-चुम्बन किया।

वेसिली का हृदय भर आया। उसने क्या कहा—कुछ समझ में न आ सका। आइकब ने मुस्कराहट छिपाने के लिए सिर नीचा कर लिया। सेरका को कोई उद्वेग छू नहीं सकता था। उसने एक जम्हाई ली और आकाश की ओर देखकर कहा—धूप बड़ी तेज़ है, चलने में बड़ी कठिनाई होगी।

"कुछ चिन्ता नहीं, प्रणाम, आइकब, प्रणाम।"

"प्रणाम।"

दोनों एक दूसरे के सामने खड़े थे। आइकब ने प्रत्युत्तर में प्रणाम तो कह दिया किन्तु किस प्रकार बिदाई दे—यह कुछ भी समझ में न आया। पिता के अन्तिम शब्द से उसके हृदय में करुणा उत्पन्न हुई। किन्तु न तो वह मलवा की तरह चुम्बन ही कर सकता था और न सेरका की भाँति हाथ मिलाकर बिदाई दे सकता था। वेसिली को अपने पुत्र की इस अस्थिरता से दुख हुआ। उसने फिर कहा—देखो आइकब, अपनी मा को न भूल जाना।

"नहीं, नहीं, आप कुछ चिन्ता न करें।" इससे अधिक वह कुछ न कह सका।

"बस, मैं यही चाहता हूँ। तुम प्रसन्न रहो और ईश्वर तुम्हारी रक्षा करे। मेरी बातों का ख़याल न करना। और हाँ, सेरका, तुम्हारा वर्तन केबिन के पास बालू में है।

आइकब ने पूँछा—कैसा वर्तन?

"वह अब मेरी जगह केबिन में काम करेगा।"

आइकब ने सेरका पर एक दृष्टि डाली। उसमें ईर्ष्या का भाव था। फिर उसने मलवा की ओर देखा।

"अच्छा, तो अब मैं जाता हूँ।" वेसिली ने उनकी ओर हाथ हिलाया और चल दिया। मलवा भी उसके पीछे चली और कहा—मैं ज़रा तुम्हें सड़क तक पहुँचा आऊँ।

सेरका पृथ्वी पर बैठ गया। आइकब भी जाने की तैयारी में था किन्तु सेरका ने उसकी टाँग पकड़ कर रोक लिया।

"ठहरो, कहा जाते हो?"

आइकब ने छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा—क्यों दिक करते हो, किन्तु सेरका ने उसके दोनों पैर मज़बूती से पकड़ लिये थे।

"मेरे पास बैठो।"

"इस बेवकूफ़ी का मतलब!"

"बेवकूफ़ी नहीं, बैठो तो।"

आइकब दांत पीस कर बैठ गया और बोला—बोलो, क्या चाहते हो?

"ठहरो, पहले मैं सोच लूँ, फिर बात करूँगा।"

सेरका आइकब की ओर घूर रहा था और वह चुप था।

मलवा और वेसिली कुछ देर तक चुपचाप चले गये। मलवा की आँख में एक अद्भुत चमक थी। वेसिली उदास और सोच में था। उनके पैर बालू में धंसने के कारण वे जल्दी नहीं चल सकते थे।

"वेसिली।"

"क्या?" यह कह कर उसने उसकी ओर देखा।

"मैंने तुम्हें और आइकब को जानबूझ कर लड़ाया है। तुम यहाँ दोनों मज़े से रह सकते थे।" उसकी वाणी में गम्भीरता थी किन्तु कोई उसमें पश्चात्ताप की झलक नहीं कह सकता।

कुछ देर चुप रहने के बाद वेसिली ने पूछा—तुमने क्यों ऐसा किया?

"मैं नहीं जानती, यों ही" यह कह कर उसने अपने कंधे हिलाये और मुस्करा दी।

वेसिली ने भी उसी स्वर में कहा—जो तुमने किया, बहुत अच्छा किया।

वह चुप हो गई।

"किन्तु तुम मेरे लड़के को बरबाद कर दोगी, बिल्कुल बरबाद कर दोगी। न तुम्हें ईश्वर का डर है और न किसी की लज्जा। जो न करो सो थोड़ा!"

"अच्छा, और क्या करूँ?"—यहाँ उसकी आवाज़ में कुछ परेशानी मालूम होती थी।

वेसिली को एकाएक क्रोध चढ़ आया। उसने चिल्ला कर कहा—

"क्या करो?" इच्छा हुई, इसको मारूँ और यहीं बालू में गाड़ दूँ। उसने अपनी मुट्ठी बांध ली और उसकी ओर देखने लगा।

इतने में पीपों की ओर से आइकब और सेरका दिखाई दिये। वे इसी ओर देख रहे थे।

"यहाँ से भाग जाओ, नहीं मैं तुझे मार डालूँगा।"

इतना कह कर वह उसे गालियाँ देने लगा। उस की आंखें लाल थीं। उसकी डाढ़ी कँपती थी और हाथ बरबस मलवा के बाल पकड़ने को दौड़ते थे।

उसने अपनी हरी हरी आंखें वेसिली के ऊपर जमा दीं।

उसने कहा—तुम मारने योग्य हो। यदि मैं नहीं, तो और कोई तुम्हारा सर फोड़ेगा।

उसने मुस्करा दिया और एक लम्बी सांस लेकर कहा—बस, अब अन्तिम नमस्कार।

"और तुरन्त ही पीठ फेर कर लौट पड़ी।"

वेसिली बकता-झकता रह गया। लौटते समय मलवा बड़े यत्न के साथ बालू में बने हुए वेसिली के पैरों के निशानों में अपने पैर रखती थी और इसके बाद मुड़कर उन निशानों को मिटा देती थी। जब तक वह पीपों के पास नहीं पहुँची तब तक बराबर यही करती रही। वहाँ सेरका ने पूछा—क्यों, अब तो उसके अन्तिम दर्शन कर लिये?

मलवा ने सिर हिला दिया और उसकी बगल में बैठ गई। आइकब ने उसकी ओर देखा और मुस्करा दिया। उसके होंठ इस प्रकार चल रहे थे जैसे वह कुछ कह रहा हो।

मलवा ने समुद्र की ओर इशारा करते हुए सेरका से पूछा—क्यों उस पार कब जाओगे?

"आज शाम को।"

"मैं भी चलूँगी।"

"वाह, वाह, यह तो मैं चाहता ही हूँ।"

"और मैं भी—मैं भी चलूँगा।" आकइब बीच ही में चिल्ला उठा।

सेरका ने आँख मिचकाते हुए कहा—तुम्हें कौन निमन्त्रण देता है?

इतने ही में एक फूटी घंटी बजने लगी।

आइकब ने कहा—मलवा मुझे निमन्त्रण देगी और उसकी ओर घमण्ड से देखने लगा।

मलवा ने आश्चर्य से उत्तर दिया—मैं? मुझे तुम्हारी क्या आवश्यकता?

सेरका ने कहा—देखो, आइकब, मैं साफ़ बात कहता हूँ। यदि अब तुमने इसे तंग किया तो मैं मार मार कर तुम्हारा कचूमर निकाल दूँगा और यदि तुमने उँगली भर से उसे छूने की धृष्टता की तो मैं तुम्हें मक्खी की तरह मसल दूँगा। मैं सीधा-सच्चा आदमी हूँ।

उसका चेहरा, उसका शरीर, उसकी गठी हुई मोटी भुजायें इस बात को स्पष्ट रूप से सिद्ध कर रही थीं कि आदमी को मार डालना उसके लिए कोई कठिन काम नहीं।

आइकब एक क़दम पीछे हट गया और बड़बड़ाता हुआ बोला—ठहरो, यह फैसला मलवा—

"चुप रह, उल्लू कहीं का। तेरा ऐसा भाग्य कहाँ जो तेरे सामने थाली परोसी जाय, तुझे तो बचे-खुचे जूठन से ही सन्तोष करना चाहिए।"

आइकब ने मलवा को देखा। वह उसकी ओर क्षुद्रता की हँसी हँस रही थी और सेरका के प्रति उसका कुछ और ही भाव था। आइकब अपने ही अन्दर क्रोध के मारे गर्म और सर्द हो रहा था।

दोनों सेरका और मलवा हाथ में हाथ डाल कर चल दिये। थोड़ी देर में उनका अट्टहास सुनाई दिया। आइकब के पैर बालू में धँसे थे जैसे किसी ने उसे कहीं गाड़ दिया हो। उसका चेहरा लाल था और हृदय में बेहद धड़कन थी।

दूरी में बालू की निर्जीव लहरों पर एक छोटा काला आदमी रेंगता हुआ मालूम होता था। उसके एक ओर विशाल सागर था और दूसरी ओर बालू—चौरस बालू का उदास मैदान। आइकब उस एकाकी मनुष्य की रेंगती हुई छाया को देखने लगा। उसकी आँखों में आँसू छलछला आये। उसने पराजय, दुख और अन्धकार के आँसुओं को निकालने के लिए अपनी आँखें बन्द कर लीं।

मल्लाह अपने अपने काम पर जुटे थे। एकाएक आइकब ने मलवा को क्रोध में अपनी ऊँची बोली से चिल्लाती हुई सुना—मेरा चाकू किसने लिया है?

सूर्य चमकता था और समुद्र के मुख पर हँसी थी।

दीनदयालु श्रीवास्तव, बी० ए०
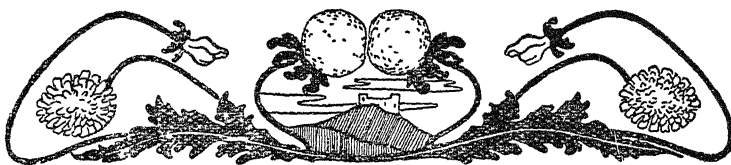
भारत में व्यायाम-विज्ञान

[श्रीयुत माधवसिंह थोके, बी० ए०]

जब हम किसी निर्बल और असहाय जाति की समुन्नति के काम में लगते है तब सर्वप्रथम हमारा ध्यान उस जाति के लोगों की शारीरिक अवस्था की ओर जाता है। उसकी मानसिक और नैतिक अवस्थाओं की बारी बाद को आती है, क्योंकि शारीरिक सामर्थ्य से ही मानसिक और नैतिक सामर्थ्य का उद्भव होता है। साधारणतया किसी जाति के पराभव के कारण उसकी आर्थिक अवस्था, उसके सामाजिक रीति-रवाज तथा लोगों की जीवन-प्रणाली ही होते है। यदि लोग यह समझते है कि जीवन एक ऐसी वस्तु है जिसका किसी भी ढङ्ग से यापन किया जाना ही ध्येय है तो उनकी कुछ भी उन्नति नहीं होगी, परन्तु यदि वे यह समझते हैं कि जीवन एक ऐसी वस्तु है जिसका यापन उत्तम ढङ्ग से होना चाहिए, जिसके प्रत्येक क्षण का आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक ढङ्ग से उपयोग होना चाहिए, तो उनमें प्रत्येक प्रकार की उन्नति की बातें दिखाई देने लगती हैं और वे लोग दूसरी जाति के लोगों का आदर प्राप्त करते हैं।

किसी जाति को समुन्नत करने के लिए हमें उसका कार्य उस जाति के लोगों की शारीरिक स्थिति से प्रारम्भ करना चाहिए। सभी जातियों ने सभी कालों में शारीरिक समुन्नति की बात को उच्च स्थान प्रदान किया है। किसी भी जाति की भलाई में इस बात को महत्त्व-पूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। जब यूनान समुन्नत था तब वहां का प्रत्येक नागरिक अधिक समय के लिए सैनिक शिक्षा प्राप्त करने और व्यायाम का अभ्यास करने को बाध्य था। वहां की ऐसी शिक्षा के अन्तिम परिणाम से हम सभी परिचित हैं। जिस सैंडो ने व्यायाम-विज्ञान का लोगों में अनुराग पैदा करके हजारों नर-नारियों का स्वास्थ्य सुधार कर बड़ी भलाई का काम किया है वह एक यूनानी बलवान् व्यक्ति की मूर्ति से ही अनुप्राणित हुआ था। प्रत्येक जाति ने प्रत्येक युग में बलवान् व्यक्तियों को जन्म दिया है, परन्तु जो स्वभाव से ही बलवान् और बलिष्ठ होते है तथा जो लोग प्रारम्भ मे निर्बल होते हुए अनुप्राणित होकर अपने आपको बलवान् बना लेते है तथा व्यवस्थित रूप से शिक्षा पाकर ख्याति प्राप्त करते हैं, इन दोनों प्रकार के लोगों में अन्तर है। वर्तमान समय में भारत में एक दो सैम्सन या सैंडो की प्रदर्शन के लिए आवश्यकता नहीं है, परन्तु आवश्यकता है सारी जाति की शारीरिक क्षमता को समुन्नत करने की। आवश्यकता है प्रत्येक घर में, प्रत्येक व्यक्ति

में व्यायाम-विज्ञान के प्रति अनुराग पैदा करने की, जिससे भविष्य में भारत बलवान्, स्वस्थ और बुद्धिमान् लोगों का राष्ट्र बन जाय।

आओ पहले हम यहाँ भारतीयों की वर्तमान शारीरिक अवस्था पर विचार करें। कोई भी समाचार-पत्र उठा कर देखिए, उसमें आधे से भी ज़्यादा विज्ञापन ऐसी दवाइयों के मिलेंगे जिनमें लोगों को बलवान् और नीरोग करने का दावा किया गया है। उन विज्ञापनों की प्रलुब्ध करनेवाली बातों को पढ़कर नवयुवक लोग उनके फेर में पड़ जाते हैं और उन बेकार दवाइयों का उपयोग करते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि कभी कभी उनको अस्थायी लाभ हो जाता है, अतएव वे उनका अधिकाधिक उपयोग करने लग जाते हैं, यहाँ तक कि उनके सेवन से वे अपना स्वास्थ्य गँवा बैठते हैं और तब वे किसी भी प्रकार भले-चङ्गे नहीं हो सकते। यदि वे ऐसी सङ्गति में बैठते-उठते होते जहाँ उनको व्यायाम-द्वारा शरीर की रक्षा की शिक्षा मिलती तो मानव-जाति के लिए वे एक आदर्श उदाहरण बन गये होते। किसी स्कूल या कालेज में जाकर देखो, आपको ऐनकों की दमक से चकाचौंध हो जायगा। वहाँ के उन नवयुवकों के चेहरों को देखो जो अपनी जाति की भविष्य आशा समझे जाते हैं, आपको हँसमुख मुखाकृति, तेज और दमकती हुई आँखें और सीधी पीठ जो पूर्ण स्वास्थ्य के चिह्न हैं, कठिनाई से दिखाई देंगे। भोजन के अभाव, आवश्यक शक्तियों के दुरुपयोग, बुरे सामाजिक रवाजों, सङ्गठक वातावरण के लोप आदि ने मिल कर आपके समक्ष वर्तमान समय के भारतीय युवकों का यह दुःख-जनक दृश्य उपस्थित किया है। परन्तु यदि आप भारत में या उसके बाहर किसी योरपीय शिक्षालय को देखें तो आपको इसका उलटा ही दृश्य दिखाई देगा। वहाँ की प्रणाली में योरपीय युवकों को अपनी शारीरिक शक्ति को बढ़ाने के लिए ख़ासी सुविधा प्राप्त है।

लोग कह सकते हैं कि भारतीयों के बुरे शारीरिक स्वास्थ्य का अधिक कारण उनकी आर्थिक अवस्था है। घोर परिश्रम और पौष्टिक भोजन का अभाव उनकी मुख्य कठिनाई है। निस्सन्देह यह कथन सत्य है, परन्तु यह यहाँ के सभी लोगों पर घटित नहीं है। भारतीयों की एक बड़ी संख्या बेशक ऐसी है जिसको आवश्यक भोजन का अभाव नहीं है और जो भोजन के अभाव के कारण निर्बल नहीं है, किन्तु शक्ति के बढ़नेवाले ज्ञान से वञ्चित रहने के कारण निर्बल है।

यदि स्कूल और कालेजों के द्वारा भारतीय युवकों को व्यायाम-विज्ञान का अध्ययन और अभ्यास कराकर उसका महत्त्व बताया जाय तो उक्त विषय के प्रति अनुराग बढ़ जाने पर शीघ्र ही उनमें पूर्ण शारीरिक और मानसिक क्षमता के आदर्श उदाहरण उपस्थित हो जायँगे। एक यह मिथ्या भावना प्रचलित है कि शारीरिक व्यायामों में अत्यधिक अनुराग रखने से मानसिक शक्तियों का ह्रास होता है। यह सत्य नहीं है। बात यह है कि अधिकांश लोग व्यायाम में लग जाने से बौद्धिक उन्नति करने का काम छोड़ ही देते हैं या कुछ समय के लिए उस ओर ध्यान नहीं देते हैं. इसका यह परिणाम होता है कि उनकी मानसिक क्षमतायें अवरुद्ध हो जाती हैं। परन्तु यह तो उन्हीं की भूल है, इसमें व्यायाम का कोई दोष नहीं है। निस्सन्देह सैंडो, हूने, राममूर्ति या गामा की साहित्यिक रचना नहीं सुन पड़ती है। परन्तु उनमें साहित्यिक गुणों के इस अभाव का कारण उनका अहर्निश अपने उस व्यायाम-कार्य में लगे रहना है जिसमें वे सर्वेसर्वा होना चाहते थे, और इस कारण साहित्यिक अध्ययन की ओर ध्यान देने के लिए उनके पास समय नहीं था। अतएव मेरी समझ में यदि कोई व्यक्ति इन दोनों बातों की समुन्नति साथ साथ होने दे तो अन्त में वह अपने को दोनों बातों में सफल पायेगा। सभी देशों में ऐसे लोगों के पर्याप्त उदाहरण उपलब्ध हैं जो शारीरिक तथा मानसिक दोनों शक्तियों में पूर्ण हैं।

अतएव व्यायामशील होकर मनुष्य के लिए शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति साथ साथ करना सर्वथा सम्भव है। मेरा मतलब यह नहीं है कि अपने हाथों, छाती और टाँगों पर बड़े बड़े भयावने पट्ठे उभाड़ना तुम्हारा अन्तिम लक्ष्य हो। वैसा करने के लिए तुम्हें अपनी मानसिक उन्नति के कुछ भाग को बलिदान करना ही होगा, क्योंकि अपने पट्ठों को वैसे पुष्ट बनाने के लिए

तुम्हे व्यायाम के लिए अधिक समय देना होगा। परन्तु साधारण आदमी को तो अपने शारीरिक सुधार के लिए व्यायाम में उतना ही समय लगाना चाहिए जितने से वह सबल और नीरोग बना रहे।

व्यायाम-विज्ञान क्या है? जिस शरीर पर मन का अधिकार है उसके अवयवों, पट्ठों या इन्द्रियों की क्रिया को नियमन करना, आज्ञा का पालन करना, जिससे वे सारे शरीर के स्वामी बन जायँ, यह जानना कि हम क्या कर रहे है और किसलिए कर रहे है, व्यायाम विज्ञान है। मनुष्य के शरीर का उसकी मानसिक योग्यता से वही सम्बन्ध है जो नीव का घर से है, जड़ों का वृक्ष से है। इसीलिए व्यायाम विज्ञान का मूल्य नवयुवकों को बताना आवश्यक है। विश्वविद्यालय-सम्बन्धी जीवन में अच्छी स्थिति के प्राप्त करने का मैं विरोधी नहीं, परन्तु यह बात ज़रूरी है कि जीवन को सफल बनाने के लिए पुस्तकों का अध्ययन करने के साथ साथ व्यायाम का भी अभ्यास करना चाहिए।

व्यायाम-विज्ञान सैंडो या टेरी के व्यायामों या वैसी ही किसी दूसरी प्रक्रिया तक ही सीमित नहीं है। शरीर के अवयवों और इन्द्रियों की क्षमता बढ़ाने के विचार से जिस किसी व्यायाम का अभ्यास किया जाता है वह सब व्यायाम-विज्ञान के अन्तर्गत है। सभी व्यायामों का प्रधान उद्देश स्वास्थ्य है। शरीर को सुडौल और सुन्दर बनाना गौण उद्देश है। यह एक प्रकट बात है कि सभी लोग अपने शरीर को सुन्दर और सुपुष्ट बनाना चाहते है और दूसरों के शरीर मे ऐसा सौन्दर्य देखकर उसकी प्रशंसा करते है। परन्तु उनमे से अनेक लोग यह बात नहीं जानते कि समुचित शिक्षण से उनका भी शरीर उसी प्रकार बलवान् और पुष्ट हो सकता है, जैसा कि वे दूसरों का देखते है जिन्होंने अपना शरीर बनाया है। आवश्यक केवल यही है कि वे इस ओर अपने मे अनुराग उत्पन्न करें, अनुभव-प्राप्त लोगों से परामर्श करे और जो व्यायाम उन्हे बताये जायँ उनका अभ्यास करे। यदि वे इस ओर अपना ध्यान देंगे तो उन्हे अपने शरीर मे बहुत शीघ्र बड़ा परिवर्तन दिखाई देगा। शरीर के पट्ठों का बनाना ही व्यायाम का अन्तिम लक्ष्य नहीं होना चाहिए, क्योंकि आवश्यक तो वास्तव मे स्वास्थ्य-सुधार और बल की वृद्धि है। गुण की ज़रूरत है, क़द की नहीं। सुन्दर बना बदन देखने के लिए हमे कल्लों को ही केवल न देखना चाहिए, क्योंकि वे किसी भी प्रकार बल का मान-दण्ड नही हैं, किन्तु मान-दण्ड सारा शरीर है। केवल वही शरीर पूरी तौर पर बना हुआ शरीर है जिसके प्रत्येक अवयव का एक दूसरे से तारतम्य है। कोई एक बना हुआ अवयव सुन्दरता की अपेक्षा अधिकतर असुन्दरता का ही द्योतक है।
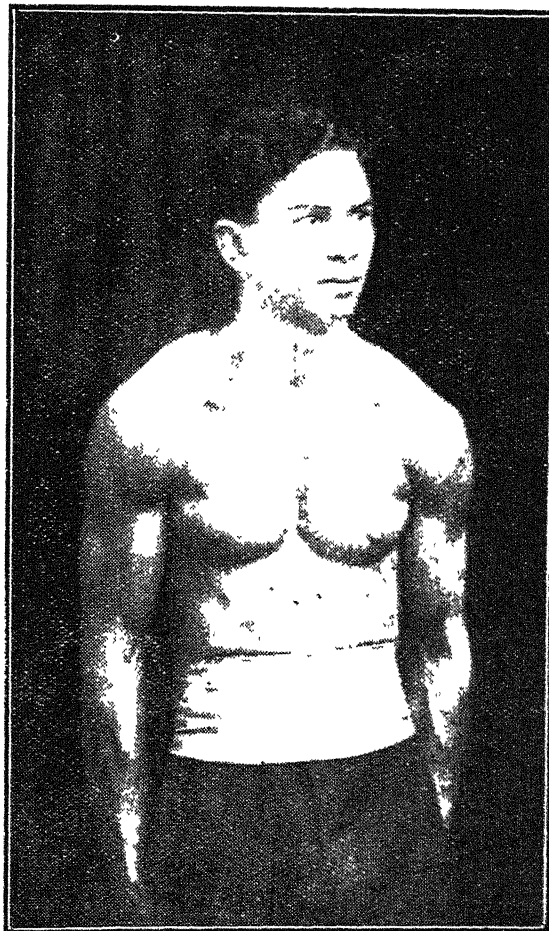
१—श्रीयुत माधवसिंह की व्यायाम-क्रिया

आज-कल व्यायाम-विज्ञान की अनेक भिन्न भिन्न पद्धतियाँ पुस्तक-रूप में प्रचलित है, जिनको देख कर लोग चक्कर में पड़ जाते हैं कि किस व्यायाम-पद्धति के अनुसार व्यायाम करना चाहिए। इस सम्बन्ध के शिक्षक सैंडो, मूलर, स्ट्रांगफोर्ट, लिडरमैन, माउल्डन, लैप्टिन, चेक्ले आदि बहुसंख्यक लोग है। इनके सिवा स्वीडन, जर्मनी, स्वीज़र्लंड, फ्रांस, अमरीका आदि की प्रणालियाँ भी अलग अलग हैं। तब कैसे इस जाल से निकल कर अपने लाभ की कोई एक प्रणाली चुनी जाय ? ऐसी दशा में किसी ऐसे अनुभवी आदमी की सलाह लेनी चाहिए जो इन सब पद्धतियो और प्रणालियों का ज्ञान रखता हो। वह जानता है कि किस पद्धति में कौन सी बात अच्छी है। वह अपने अनुभव से बता सकता है कि इन सब पद्धतियों मे से उत्तम उत्तम क्रियायें चुन कर अपने निश्चित उद्देश की पूर्ति के लिए उनका सम्मिलित रूप में किस तरह अभ्यास करना चाहिए। किसी ख़ास पद्धति को ग्रहण करने से समय, धन तथा शक्ति की बर्बादी व्यर्थ में होती है।

२—श्रीयुत माधवसिंह की व्यायाम-क्रिया

व्यायाम की अनेक विधियों के होने से पुरुष या स्त्री अपनी अपनी आवश्यकताओं तथा देशकाल के उपयुक्त उनमें से कोई एक चुन सकते हैं। यदि तुम जिमनासियम के उपाकरण नहीं प्राप्त कर सकते हो तो सैकड़ों प्रकार के ऐसे व्यायाम हैं जिनके अभ्यास में उपाकरणों की आवश्यकता ही नहीं। यदि तुम खुली जगह या घर के भीतर व्यायाम करना चाहते हो तो तुम्हें वैसे व्यायामों की भी विधियाँ प्राप्त हो सकती है। बच्चों के लिए, लड़कों के लिए, लड़कियो के लिए, जवान स्त्री-पुरुषों के लिए तथा प्रौढ़ों के लिए सबके लिए अलग अलग व्यायाम है। मेरी राय में केवल जवान तथा बलवान् आदमी को ही उपाकरणों के साथ व्यायाम करना चाहिए। बच्चो तथा प्रौढ़ों को बिना उपाकरणों के ही व्यायाम करना चाहिए। उनका काम वैसे ही चल जायगा।

स्कूल और कालेज में पढ़नेवाले युवकों के लिए अनेक प्रकार के व्यायाम निर्दिष्ट है। यह आश्चर्य की बात होगी यदि उनमें से किसी भी एक में किसी एक युवक का अनुराग न हो। वहां खेल-कूद, परेलल और हारी-ज़ंटलबार, बाक्सिंग, कुश्ती, बारबेल, डमबेल, रोमनरिंग, तैराकी, नौका-चालन, दौड़ तथा दूसरे खेलों तथा फ़ौजी शिक्षा आदि की व्यवस्था है। खेल-कूद को छोड़कर मैं तो बाक्सिंग को ही पसन्द करूँगा। यह एक श्रेष्ठ व्यायाम है। ऐसा सुन्दर शिक्षण और सो भी ५-६ मिनट के ही भीतर सारे शरीर तथा मन की स्थिति के
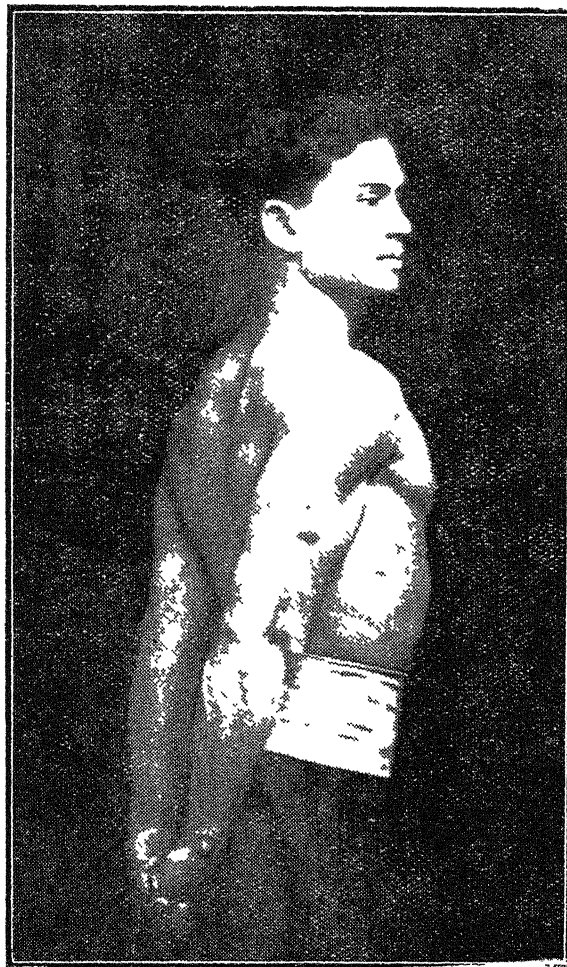
लिए किसी दूसरे व्यायाम में नहीं प्राप्त हो सकता। नाक के रक्त-प्रवाह, एक-दो दांतों के टूटने, कभी कभी आंख के चोट खा जाने आदि से लोग कहने लगते हैं कि बाक्सिंग जंगली लोगों का खेल है। परन्तु यदि यह व्यायाम के रूप में ग्रहण किया जाय तो मेरी समझ में इससे बढ़कर दूसरा व्यायाम नहीं है। दूसरे व्यायामों में पैरेललबार का व्यायाम छाती की उन्नति के लिए बहुत अच्छा है, हारीज़ँटलबार अवयवों को चञ्चल करने, बारबेल हाथ और जाघ के ऊपर के पट्ठों, हाथ के नीचे के पट्ठों तथा पेट के पट्ठों के लिए, दौड़, तेज़ चलना, तैरना और सैनिक शिक्षण पैरों के लिए उपयोगी है। कुछ और ख़ास व्यायाम भी हैं जिनसे पैर बहुत सुन्दर बनते हैं। सैनिक शिक्षण भी विनय सीखने, आज्ञा का पालन करने, आज्ञा देने, कठोर जीवन सहन करने, युद्ध-काल में अगणित लोगों के बलिदान का अनुभव करने के लिए उपयोगी है। रायफ़िल और शारीरिक व्यायामों की सैनिक पद्धति भी शरीर को मज़बूत और मुस्तैद बनाने के लिए अच्छी है। श्वास के नियमन तथा सारे शरीर के लिए तैरना भी एक अच्छा व्यायाम है।

शरीर सुधारने के लिए इन व्यायामों के अतिरिक्त और भी भिन्न भिन्न प्रकार के रोगनिवारक व्यायाम हैं, जिनके अभ्यास से शरीर का वह ख़ास अङ्ग बलवान् हो जाता है जो रोग के लिए दायी होता है। और ऐसे भी व्यायाम हैं जिनसे उन आदमियों का भार कम पड़ जाता है जो अत्यधिक मोटे हो गये हैं। यह बात या तो उपवास करने से सम्भव है या समुचित व्यायामों के करने से। मेरी समझ में अधिकांश लोग इसके लिए व्यायाम करना ही पसन्द करेंगे। समुचित व्यायामों के अभ्यास और भोजन की व्यवस्था से शरीर के भार की वृद्धि भी की जा सकती है। सारे व्यायामों का यही लक्ष्य है कि शरीर के प्रत्येक पट्ठे पर मन का प्रभाव हो, जिससे किसी एक पट्ठे का उपयोग करने में दूसरे पट्ठों पर व्यर्थ ही दबाव न पड़े और वे उस समय तक विश्राम करते रहें जब तक उनकी आवश्यकता न हो। व्यायाम-विज्ञान से जो लाभ हमें होते हैं उनमें यहां यही कुछ गिनाये गये हैं।

व्यायाम-विज्ञान में समुचित भोजन का प्रश्न भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। बिना अच्छे और पौष्टिक भोजन के कड़े व्यायाम करने से शरीर को लाभ की अपेक्षा अधिक हानि होने की ही सम्भावना है। अतएव व्यायाम भी उतना ही करना चाहिए जितना पौष्टिक भोजन व्यायाम करनेवाला करता हो। अत्यधिक मसाले तथा चिकने पदार्थ शरीर के उतने सहायक नहीं हैं। जो भोजन शीघ्र पच जाय तथा जिससे शरीर की रचना होती हो उसी को ग्रहण करना चाहिए। इस सम्बन्ध में पाश्चात्य ढङ्ग का भोजन व्यायाम के अभ्यासियों के लिए प्राच्य ढङ्ग के भोजन की अपेक्षा अधिक हितकर है। प्राच्य का भोजन अधिक गरिष्ठ और अधिक पका हुआ होता है। मांस, अण्डे, दूध, पनीर तथा ताज़ी तरकारी तथा ताज़े फल शरीर की उन्नति के लिए सर्व-श्रेष्ठ चीज़ों में से हैं। मोटे आदमियों के लिए बहुत अधिक पानी नहीं पीना चाहिए और मादक पदार्थों तथा तम्बाकू का तो उन्हें नाम तक न लेना चाहिए। मस्तिष्कवर्द्धक भोज्य पदार्थों में पट्ठेदार मांस, मछली, पनीर, बादाम, मटर, अंजीर आदि हैं। चर्बी, शक्कर, मक्खन, चावल, चाकलेट और रोटी आदि से शरीर के पट्ठे उतना नहीं बढ़ते। उनका काम तो शरीर को गर्मी देना भर है। सेब, अंगूर तथा दूसरे स्वास्थ्यकर फलों से भी लाभ होता है, यदि वे परिमित मात्रा में खाये जायँ। पीने के पानी के साथ नींबू का रस आमाशय तथा आंतों के लिए बहुत ही लाभदायक है।

व्यायाम के रँगरूट अभ्यासी को एक बात सदा ध्यान में रखना चाहिए। वह यह कि व्यायाम नियमित हो। व्यायाम तभी तक करते रहना चाहिए जब तक वह सुखद मालूम पड़ता रहे। परन्तु ज्यों ही उकतानेवाला मालूम होने लगे, उसे बन्द कर देना चाहिए। व्यायाम करने के १०-१५ मिनट बाद ठंडे जल के स्नान का शरीर पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। वह हल्का और स्वस्थ मालूम देने लगता है। स्वस्थ युवक को सदा ठंडे जल में स्नान करना चाहिए और स्नान के बाद देह को कपड़े से अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। ऐसा करने से ठंड दूर हो जाती है, रक्तप्रवाह को उससे सहायता मिलती है और शरीर गर्म हो जाता तथा चमक उठता है।

व्यायाम के अभ्यासी को काफ़ी सोना भी आवश्यक है। जवान आदमी को छः से आठ घण्टे तक सोना चाहिए! बाईं करवट सोने की अपेक्षा दाहनी करवट सोना अधिक अच्छा है। ऐसा करने से हृदय अपना कार्य करने के लिए स्वतन्त्र रहता है, दूसरे अङ्ग उसके पास आकर एकत्र नहीं हो जाते। घर में हवा और प्रकाश होने के सम्बन्ध में मैं यहाँ कुछ कहना नहीं चाहता, क्योंकि यह बात प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है कि ताज़ी हवा और प्रकाश से पूर्ण कमरा ही रहने और सोने के लिए उपयुक्त होता है, अँधेरे और निर्वात स्थान में रहना स्वस्थ आदमी तक के लिए हितकर नहीं है। एक बात की ओर प्रत्येक आदमी का ध्यान सदा रहना चाहिए। वह यह कि सदा नाक से ही साँस लेना चाहिए, मुँह से साँस कभी नहीं लेना चाहिए। चाहे व्यायाम करते हो, खेलते हो, चलते हो या सोते हो, सदा नाक से ही साँस लो। यदि तुम ऐसा नहीं कर सकते तो तुम्हें वैसा करने का प्रयत्न करना चाहिए, वैसा करना सीखना चाहिए। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए और इसका निरन्तर अभ्यास करना चाहिए। नाक से साँस लेने से सारे कीटाणु तथा धूलि-कण नासा-मार्ग में ही रुक जाते हैं, साथ ही ठण्डी हवा फेफड़ों तक पहुँचने के पहले ही गर्म हो जाती है। इस तरह परिश्रम और रोगों से फेफड़े बच जाते हैं।

३—श्रीयुत माधवसिंह की व्यायाम-क्रिया

व्यायाम-विज्ञान के प्रति भारत में अनुराग की वृद्धि करना वास्तव में एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न है। अधिकारियों ने इस ओर पैर बढ़ाया है। उन्होंने विदेशों को कुछ युवक वहाँ के स्कूलों में प्रचलित व्यायामों की शिक्षा ग्रहण करने को भेजे हैं। परन्तु अभी यह विषय स्कूल और कालेजों में अपने प्रारम्भ-रूप में है। एक या दो समय क़वायद या जिम्नास्टिक करने से, जिनमें विद्यार्थियों का कोई वास्तविक अनुराग नहीं है, स्वास्थ्य को वैसा लाभ नहीं पहुँचता। इसके सिवा ये व्यायाम केवल पढ़ाई के समय दिन में किये जाते हैं, जो व्यायामों के लिए उपयुक्त समय नहीं है। व्यायाम के लिए सवेरे और सन्ध्या का ही समय उपयुक्त होता है। स्कूल और कालेजों में सिखलाये जानेवाले व्यायाम ऐसे होने चाहिए जिनसे निर्बलों की शक्ति और स्वास्थ्य की वृद्धि हो तथा स्वस्थों का शरीर बलवान् और हृष्ट-पुष्ट हो, न कि वे सफ़ाई और बाज़ीगरी के काम दिखानेवाले हों, जिसमें उनका जिम्नास्टिक अखाड़ा सरकस सा दीखने लगे। आवश्यकता इस बात की है कि प्रत्येक स्कूल और कालेज में जिम्नास्टिक-घर सभी उपकरणों से पूर्ण हो, साथ ही अधिकारी उस विषय का प्रोत्साहन दें तथा उसके प्रति अनुराग
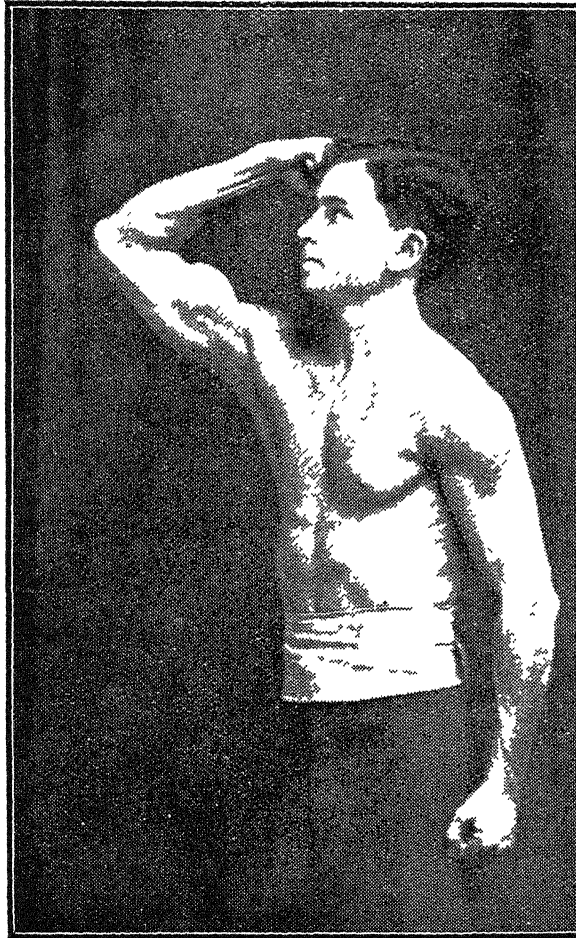
पैदा करे। व्यावहारिक व्यायामों के सिवा व्यायाम-विज्ञान का विषय के रूप में अध्ययन विद्यार्थियों को शरीर की क्रिया तथा उस पर व्यायाम के प्रभाव का पूर्ण ज्ञान भी करा देगा। इससे उन अगणित शरीर से गये-बीतों की रक्षा हो जायगी जो प्रत्येक शिक्षालयों में दिखाई पड़ सकते हैं और जो इस ज्ञान के अभाव से इस दशा को पहुँचे हैं।

व्यायाम-विज्ञान की आवश्यकता केवल युवकों के ही लिए नहीं है, किन्तु हमारे देश की युवा कन्याओं के लिए भी है। यह बात हमारे देश के लिए विशेष रूप से आवश्यक है, क्योंकि यहां के भिन्न भिन्न पुराने रवाज ऐसे हैं कि वे लड़कियों का स्वास्थ्य बिगाड़ने में बहुत कुछ सहायक होते हैं। हमारे देश की अधिक संख्यक स्त्रियों को सूर्य्य का प्रकाश, ताज़ी हवा और अल्प व्यायाम तक दुर्लभ हैं। इसका परिणाम वही होता है जो होना चाहिए। क्षय, अपच, तथा और अनेक रोग जो साधारण रीति से युवा स्त्रियों में पाये जाते हैं, व्यायाम-विज्ञान के अभाव के ही दुष्परिणाम हैं। इस दशा को सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि वे बाहर खुली जगह में निकलें, प्रकृति की नियामतों के उपभोग करने में अपना हिस्सा लें, दवाइयों के सेवन से विरत हों, ऐसे व्यायामों तथा खेलों से अनुराग पैदा करें जो उनके शरीर को हृष्ट-पुष्ट तथा सुन्दर बनावें, उनके भीतरी अङ्गों को अपने घरेलू कामों का भार वहन करने में समर्थ करें तथा उनको प्रसन्न बनाये रहें। तभी ऐसी स्वस्थ माताओं की सन्तान स्वस्थ और प्रसन्न होगी और राष्ट्र की समुन्नति करना तो प्रधान बात होगी। यदि स्त्रियों के करने योग्य व्यायामों में से कुछ का स्त्रियां अपने घर के भीतर परदे में रहती हुई भी नित्य अभ्यास किया करें तो हमारी स्त्रियों का स्वास्थ्य अद्भुत रूप से सुधर जायगा और तब हमारे देश की स्वास्थ्य से गई-बीती स्त्रियों की संख्या में बहुत-कुछ ह्रास हो जायगा। हमारी स्त्रियों के पर्दा तोड़ कर बाहर आने, खेल-कूद आदि व्यायामों में लगने, खुली जगह में घूम-फिर हवा खाने तथा सार्वजनिक आमोद-प्रमोद की बातों का उपयोग करने का अभी समय नहीं आया है। ऐसा समय जब तक नहीं आता तब तक वे कम से कम व्यायाम-विज्ञान की नियामत से लाभ उठा सकती हैं और भविष्य के लिए अपने आपको तथा अपनी सन्तान को तैयार कर सकती हैं। निस्सन्देह हमारी पद्धति पाश्चात्य स्त्रियों की-सी नहीं होनी चाहिए। पाश्चात्य देशों की स्त्रियां पुरुष बनती जाती हैं। वे हाकी, फ़ुटबाल, टेनिस और क्रीकेट खेलनेवाली हैं। वे समुद्र के मुहाने तैरनेवाली हैं। पुरुषों के समान उन्होंने कपड़े पहनने प्रारम्भ कर दिये हैं। अब वहां ऐसी कोई बात नहीं है जो वे नहीं करतीं। यह दूसरी अति है, इससे दूरही रहना चाहिए, क्योंकि मुझे इस कथन पर विश्वास है कि 'ईश्वर के बाद पुरुषत्व-पूर्ण पुरुष या स्त्रीत्वपूर्ण स्त्री की अपेक्षा दूसरा कोई श्रेष्ठ नहीं है।

व्यायाम-विज्ञान क्या है, उसका उपयोग करके उससे कैसे लाभ उठाया जा सकता है, यहां मैंने इन्हीं बातों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है। आज भारत के लिए यही सर्व-प्रथम आवश्यक वस्तु है। मेरी इच्छा है कि जिन लोगों पर जनता के स्वास्थ्य-सुधार का भार है वे दोषों को निर्मूल कर अपना स्वास्थ्य सुधारने के लिए लोगों को मार्ग दिखाने का प्रयत्न करेंगे।

१—अनुरोध

मैं ही क्या, जग मुग्ध तुम्हारी
लख लेखनी परम कुशला,
चित्रकार ! है नम्र प्रार्थना,
मुझे सिखा दो चित्रकला।

यश की लिप्सा नहीं, न करना
है मुझको कुछ तव समता ;
भाव तुम्हारे अङ्कित करने
तक की यहां न है क्षमता।

मन ही तो, आगई भावना
मैं भी करूँ चित्र चित्रित;
"क्यों" ? अच्छा हो इसे न पूँछो,
अरे होगये तुम शंकित !

सुनो, हँसोगे बहुत समझ कर
इसको मेरा पागलपन;
मुझे तुम्हारी ही छवि का है
करना एक चित्र चित्रण।

"गुरुदक्षिणा" ! प्रथम ही उसका
सोच लिया है आयोजन—
बना हृदय की आशाओं का
चित्र करूँगा तव अर्पण

कह कर ".ख़ूब" ! न टालो मुझको
.ख़ूब समझता ये बातें,
रहने दो बीसवीं सदी की
ये शिष्टतामयी बातें।

कहो, खुलेगी कब से शाला
उत्कण्ठा हो रही प्रबल—
कलाकार ! करुणा कर मुझको
कर दो कोमल-कला-कुशल।

श्रीरत्न शुक्ल

२—कुछ

मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में प्रतिक्षण बैठा रहता हूं। परन्तु तुम नहीं आते।

मैं कल समय टालने के लिए मिनट और पल गिन रहा था। गिनते गिनते मैं भूल गया कि मैं कहां हूँ और क्या कर रहा हूँ। कितने क्षण और कितने पल मैंने गिन डाले होंगे ! मुझे नहीं मालूम कि मैं किसमें तल्लीन था—गिनती में या किसी ज्योतिर्मय अन्धकार की अनुभूति में।

जब मैं उठा तब मेरे सामने ज्योतिर्मय अन्धकार था।

मैंने अपनी छड़ी ली और घूमने चल दिया। सुषुप्ति और जागरण का मैंने एक साथ अनुभव किया। मुझे याद है कि मैं अपनी परिचित सड़कों पर चल रहा था। ख़ोंचेवालों की प्रतिदिन की आवाज़ मैंने सुनी। बाईसिकल, इक्के और मोटर मेरे इधर-उधर से निकले। सदा की भांति अपने काम या मटरगश्त में व्यस्त लोगो ने मेरी दृष्टि के मार्ग को रोका। उनमें कितने ही मेरे मुलाक़ाती थे। किसी किसी ने मुझसे कुछ बातें भी कीं। मैंने कुछ उत्तर भी दिया।

पब्लिक पार्क, सिनेमा हाउस, थियेटर, स्टेशन—और क्या क्या—सब, एक एक करके बीत गये। विचार करने पर मालूम होता है, ये सब वस्तुएँ ही मेरा स्वप्न थीं। जो यथार्थ था वह यह सब नहीं था। सुनो, अब तुमको यथार्थ की बात सुनाऊँगा।

नदी के एकान्त तट पर मैं अपना भारी हृदय लेकर एक शिला पर बैठ गया। मैंने अपनी जेब से तुलसी की माला निकाली और 'एक, दो, तीन, चार' गिनने लगा। सहसा पीछे से किसी ने मेरी आखें बंद कर ली। मैं समझ गया। मैं तुम्हारे स्पर्श को पहचानता हूँ।

तुम बोले, "जप कर रहे हो?—क्या मेरा?"

मैंने कहा, "नहीं। काल का।"

"क्या काल इसी तरह बिताया जाता है?"

"मैं उसका आह्वान कर रहा हूँ।"

"क्या अब भी मरोगे?"

"मैं नहीं जानता। मैंने काल का आह्वान किया तो तुम आगये। और तुम्हीं मेरे जीवन-पीयूष हो। क्या मरना-जीना अब मेरे हाथ में है?"

"तुमने अपने हाथ मेरे गले मे डाल दिये। मैंने तुम्हारा आलिंगन कर लिया। हम दोनों वहा से चल कर नदी-तट पर घूमने लगे।

सहसा एक व्यक्ति के कठोर झटके ने मेरे यथार्थ जगत की भावना नष्ट कर दी। वह पुलिस का एक कान्स्टेबिल था। वह न बचाता तो मै एक मोटर से दब जाता। मैं यथार्थ और स्वप्न की मीमांसा करता हुआ घर को लौटा।

जब मैं मकान पर पहुँचा तब तुम मेरी चारपाई पर बैठे बाँसुरी बजा रहे थे। शिलीमुख

३—हृदयोद्गार

विषम वेदना से व्याकुल हो, पहुँचा उदधि-किनारे—
खड़ा खड़ा मन बहलाता था, गिनकर नभ के तारे।
सारी रात्रि बिताई यों ही, गिनकर तारे सारे;
हृदयाघातों से संख्या में, अधिक नहीं थे तारे।
मौन रहा, फिर बेसुध होकर, लगा गान यों गाने;
टकराती थीं जाकर लहरों से मेरी वे तानें।
तुम तो आते नहीं, पास ही, बनकर मिथ्या मानी—
करुणागार बनो, तुम सुन लो, जो मम करुण-कहानी!
उस दिन, हा उस दिन जिस दिन था, मैंने तुझको पाया.
स्मृति पट पर अब तक है उस दिन की धुँधली-सी छाया।
सुधा-वृष्टि ही किया नहीं तुमने जीवन-मानस मे,
चातक तेरा प्यासा ही रह जाता है पावस मे
ऐसी शान्ति और मादकता. भरी आंख मे तेरे,
पी सकता हूँ विष भी यदि तू रहे सामने मेरे!
देता है सुस्फूर्ति नाम तव इस मुरझाये मन को,
विरह-वेदना भी देती है छोड़ मुझे कुछ क्षण को
अनुदिन ही रमता मेरी नस नस मे मेरा प्यारा—
है, इस टूटी नौका का बस, वह ही एक सहारा।
सोचा करता हूँ प्रायः क्यों त्याग न दूँ जीवन को'
फिर भी जीवित समझा हूँ यों अपने मन को:
प्रेम-उदधि की तरल तरंगों से ताड़ित बहने मे—
मिलता जो आनन्द नहीं वह शीघ्र डूब मरने मे!

पद्मकान्त मालवीय

४—भाषा और भाव की भूलें

संस्कृत के नैयायिक भाव की प्रधानता और भाषा की अप्रधानता बताने के लिए बहुधा वैयाकरणों से कहा करते हैं कि 'अर्थेरि तु प्रयोजनं न तु शब्दरि'। इसका उत्तर भी वैयाकरण बहुधा यह कह कर देते हैं कि "भट्टस्य कव्याम् शरटः प्रविष्टः"। इसी प्रकार हमारे हिन्दी के कुछ भाववादी लेखक समझते है कि रेल के कुली का यह कहना कि 'बाबूजी गाड़ी छोड़ा' किसी प्रकार अनुचित नहीं है, क्योंकि कहनेवाले का भाव सहज ही समझ मे आ सकता है और उसके इस वाक्य से गाड़ी के आने-जाने में कोई बाधा नहीं होती। हम भी मान लेते हैं कि यदि भाव शुद्ध है पर भाषा अशुद्ध है तो विशेष हानि नहीं। पर कठिनाई तो वहां होती है जहां भाषा की अशुद्धता से भाव भी अशुद्ध हो जाता है। नीचे लिखे

अनुच्छेद को देखिए जो एक प्रतिष्ठित मासिक पत्र की टटकी संख्या मे निकला है—

"मैनेजर ने हमारे पास "सजीवन-पाक" समालोचनार्थ भेजा है। पाक का आकार-प्रकार सुन्दर और खाने में स्वादिष्ट है। स्वाद से यह भी प्रतीत होता है कि उसमें कुछ ओषधियों का समावेश है। बिना कुछ काल तक सेवन किये गुणावगुण का विवेचन करना कठिन है। जो लोग मँगाना चाहे वे उपर्युक्त पते से मँगा कर परीक्षा करें।"

इस लेखाश से जान पड़ता है कि समालोचक महाशय (अर्थात् संपादकजी) ने "संजीवन-पाक" कम से कम एक बार अवश्य खाया है; पर उसके स्वाद के भाव मे वे अपनी भाषा भूल गये ! उनके लिखने से यह समझ पड़ता है कि "पाक का आकार-प्रकार खाने में स्वादिष्ट है, स्वयं पाक नहीं" ! अर्थात् उन्होंने पाक नहीं खाया, किन्तु उसका सुन्दर आकार-प्रकार खाया है ! हम मानते है कि आज-कल के श्रम-जीवन में बहुत से शब्द लिखने के लिए लोगों को अवकाश नहीं है; इसलिए 'लाघव' और अध्याहार का उपयोग किया जाता है; पर जो लेखक "उपर्युक्त" और गुणावगुण" सरीखे कष्टोच्चार्य शब्दों का प्रयोग करता है और "ओषधि" शब्द को संस्कृत की शुद्धता से लिख सकता है उसे अपने दूसरे वाक्य में एक "है" और एक "वह" अवश्य जोड़ देना चाहिए था।

अब लेखांश का तीसरा वाक्य लीजिए। इस वाक्य से यह जाना जाता है कि "ओषधियो" का समावेश पाक में नहीं है, किन्तु उसके स्वाद में है ! अथवा यों कहिए कि पाक का स्वाद निकाल लिया गया है और फिर स्वाद में ओषधियां मिलाई गई हैं ! यदि वाक्य में "उसके" सर्वनाम जोड़ दिया जाता तो किसी शब्द-वादी को कुछ कहने का साहस ही न होता। आगे चल कर समालोचकजी मानो यह कहते है कि जब तक गुणावगुण का सेवन कुछ दिन तक न किया जाय तब तक उसका विवेचन करना कठिन है ! यथार्थ में उनका अभिप्राय पाक के सेवन से है; पर वाक्य स्पष्ट नहीं है और वह "सामान्य कथन" के रूप में रचा गया है। अन्त में समालोचकजी कदाचित् पाक खाने का बदला चुकाने के लिए पाठकों से यह कहते है कि "वे परीक्षा करें"—परीक्षा का फल चाहे जो हो ! यहां उन्हें यह लिखना था कि "वे परीक्षा कर सकते है"। इस रचना से लोग पाक मँगाने के कर्तव्य से बच जाते !

लेखांश की और अधिक भूलें बताना व्यर्थ है।

"भाषा-भाव-वादी"

५—बुद्ध-धर्म में स्वस्तिक (卐)

मार्च सन् १९२८ की सरस्वती में रायबहादुर लाला सीताराम बी० ए० का "स्वस्तिका और ओंकार" शीर्षक जो लेख प्रकाशित हुआ है उसमें उन्होंने पिपहरवा से प्राप्त एक आभूषण पर विद्यमान स्वस्तिक के चिह्न के आधार पर लिखा है कि प्राचीन काल मे "बौद्धों में भी स्वस्तिक की महिमा मानी जाती थी"। प्राचीन काल में ही नहीं, किन्तु आज भी मानी जाती है। बुद्ध-धर्म में स्वस्तिक ही एक ऐसा चिह्न है जिस पर महायान और स्थविरयान (Heenyan) दोनों का एक मत है। पिपहरवा में ही नहीं, सुदूर लंका में भी स्वस्तिक पुराने शिला-लेखों में देखा जाता है। अनुराधपुर से २१ मील दक्षिण-पूर्व की ओर 'रितिगल" नाम का एक प्रसिद्ध पर्वत है। 'महावंश' में इसका नाम 'अरिट्ठ पब्बत' आया है। सन् १८९३ में मिस्टर एच० सी० बेल ने इस पर्वत का अनुसन्धान करके ३२ लेखों का पता लगाया था। उनमें से कुछ लेख चट्टानों पर और कुछ लेख गुफाओं मे अङ्कित है। शिला-लेखों में एक लेख केवल तन्ना स्थान की गुफा मे विद्यमान है। इसमे ऊपर एक पंक्ति का लेख—

महमत बमदत पुत पुरुमक पुशगुते करिते बदतुबे

(महामात्य ब्रह्मदत्त के पुत्र कुमार पुष्पगुप्त का बनवाया हुआ बुद्धस्तूप)

और पांच मङ्गलचिह्न है—स्वस्तिक, चैत्य, चक्र और दो छोटे बड़े ब्राह्मी 'म' के सदृश। इस लेख की लिपि ब्राह्मी-लिपि है और अन्य पुरातन भाषा और लिपियों की तुलना से यह लेख ईसा के पूर्व द्वितीय शताब्दी का सिद्ध होता है।

लंका मे ईसाइयों की आबादी काफ़ी है, और वे अपने क्रास + के चिह्न को किसी न किसी रूप में धारण किये रहते हैं। जो स्थान ईसाइयों में क्रास-चिह्न का है वही स्थान बुद्ध-धर्म में स्वस्तिक का है। लंका में बौद्ध लोग अपनी मोटर के सामने स्वस्तिक का सुन्दर चिह्न लगाते हैं, घड़ियों की चेन मे भी उसे लगाते हैं, कितने ही अपने कोट पर भी धारण करते हैं। स्त्रियां और बच्चे गले मे तावीज़ के तौर पर उसे पहनते है। संक्षेपतः लंका मे ईसाइयों के क्रास के साथ साथ स्वस्तिक का वही स्थान है जो मध्यकालीन ईसाइयों और मुसलमानों में क्रास और क्रेसेंट crescent* का था। यद्यपि इस उपमा का यह अर्थ नहीं कि इनका परस्पर कोई युद्ध-भाव है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि लंका के बौद्धों मे जो स्थान स्वस्तिक को प्राप्त है वह भारतवर्ष में अन्य हिन्दुओं में भी नहीं।

कौसल्यायनि आनन्द

——

६—दो आँखें

मैंने तीन बार उन दोनों आंखों को देखा था। जिसकी आंखे थीं, उसके साथ बातें करने का सुयोग कभी नहीं प्राप्त हुआ, और न इस जीवन मे कभी होगा। किन्तु उन तीन बार मे ही खुली हुई पुस्तक के समान मैंने उनकी नीरव दृष्टि से उन आंखों के कुल जीवन का हाल जान लिया था।

दो ही आँखें थीं, और कुछ नहीं था। किन्तु वे दोनों आंखे आज भी मेरे मन के अन्धकार में विद्युत् रेखा से अंकित छवि के समान जागृत है। उन दोनों आंखों को कभी नहीं भूल सकता।

पथ-विपथ में क्षण भर ही के देखने से ऐसी कितनी ही आंखों की स्मृतियां मनुष्यों के हृदय मे छिपी हुई हैं, जो अतीत के सुख स्वप्न के समान, अकाल वसन्त के फूल के समान और वासना के दीर्घ श्वास के समान क्षण-अक्षण मे जाग उठती है। आंखें देखकर कितने ही लोगों ने हृदय खो दिया है, किन्तु आलिंगन के पाश में आबद्ध होकर भी उन आँखों को नहीं प्राप्त कर सके हैं और न आमरण भूल ही सकते है।

मैंने उन आंखों को प्रेम की दृष्टि से नहीं देखा था। उन दोनों आंखों को किसी दिन भी मैं अपने ध्यान मे नहीं लाता, और उनको भूलने की बार बार चेष्टा करता हूँ, तो भी वे मेरे भागे हुए मन को मृग के पीछे व्याध के बाण के समान अनुसरण करती रहती है। मन हार मान गया है। अब उसको भागने की जगह नहीं है।

मैंने उन आंखों को कब कब देखा था, उसी की कथा आज वर्णन करता हूँ।

प्रथम बार

नगर मे एक सरकारी बाग है। तालाब के सामने मैं चुप बैठा हुआ हूँ।

तालाब के जल मे बालक तैर रहे है, और कुछ बालक-बालिकायें किनारे पर घास पर खेल रही हैं। आस-पास से बहुत लोग आ जा रहे है। एक बालिका मेरे पास मालूम होता है, लड़कों का तैरना देखने के लिए आकर खड़ी होगई। उसकी अवस्था दस वर्ष की होगी, रंग गोरा था। काले काले बड़े बड़े बाल भौंरे के समान पीठ पर लहरा रहे थे।

उसके मुख की ओर देखते ही मेरे अनमने मन के भीतर प्रसन्नता की चमक जाग उठी। दो आंखों ने अपनी विचित्र महिमा से मेरी दृष्टि को एक बार ही पलकहारा कर दिया।

मन उच्छ्वसित होकर कह उठा—सुन्दर, सुन्दर, इसके समान सुन्दर आँखे कहीं नहीं देखीं!

हां, सुन्दर आंखे मैंने अनेक देखी हैं, किन्तु इनमे केवल अभिराम ही नहीं, अभिनव भी है? एक साथ ही जागृत चंचलता और स्वप्न की प्रशान्त मधुरता किसी आंख में होना संभव है या नहीं—नहीं जानता, किन्तु इन दोनों आंखों मे वे दोनों ही भाव झलक रहे है। उन दोनों आंखों के भीतर मेरी दोनों आँखे बन्दी हो गईं! मैं विस्मय से पुलकित होगया। मैंने एक विशेषता और भी लक्ष्य की। उन दोनों आंखों के नीचे दोनों गालों के ऊपर दो बड़े बड़े काले तिल थे।

बालिका हठात् चौंक कर कह उठी, "ओह!"

मैंने देखा, एक रबड़ का गेंद हाथ से छूट कर तालाब के जल मे गिर गया है। उसके मुख पर निराशा की

झलक फूट उठी, उसकी दोनों आँखों में आँसू छलछल करने लगे।

मैंने तैरनेवाले बालकों में से एक बालक को बुलाकर तालाब में से गेंद निकालने के लिए कहा।

बालक ने जल में से गेंद निकाल कर ऊपर की ओर फेंक दिया। बालिका ने हँसते हुए और हवा में अपने बालों को उड़ाती हुई दौड़ कर गेंद को उठा लिया। उसके बाद मेरी ओर कृतज्ञ दृष्टि से देखते हुए एक ओर दौड़ती हुई चली गई। दूसरे दिन, उसके दूसरे दिन और भी कई दिन तक मैं उस बाग़ में गया। तमाम बाग़ को मैंने छान डाला, किन्तु उस बालिका को फिर मैंने कभी नहीं देखा। किन्तु वे दोनों अपूर्व आँखें मेरे हृदय पर अङ्कित होगईं।

द्वितीय बार

आठ दस वर्ष के बाद का हाल है।

दोपहर का समय है। मैं अपने घर की ओर चला जा रहा हूँ। मेरे आगे आगे एक और मनुष्य जा रहा है। उसके कपड़े में कीचड़, पान की पीक और काले लाल पीले दाग़ पड़े हुए हैं। चाल से वह शराबी जान पड़ा। मैंने उसके बग़ल से होकर जाने का यत्न किया। किन्तु इसके पहले ही वह चक्कर खाकर एकबारगी मेरे शरीर के ऊपर आ पड़ा।

उसके मुख से बड़ी विकट गन्ध निकल रही थी। मैंने दुःसह घृणा से उसको धक्का दिया, वह उसको न सँभाल सका और धम से फ़ूटपाथ पर पछाड़ खाकर गिर पड़ा। जाते जाते मैंने घूम कर देखा, उसके माथे से रक्त की धारा बह रही है!

मैंने अनुतप्त मन से फ़ौरन ही लौट कर उसका हाथ पकड़ कर उठाना चाहा, किन्तु छोड़ते ही वह गिर पड़ा। फिर उठाया, फिर गिर गया।

मैंने देखा, अब उसमें उठने की शक्ति नहीं है। मेरे ही कारण उसके चोट लगी है और इस समय ऐसी अवस्था में रास्ते में छोड़ कर जाने से उसकी मृत्यु भी हो सकती है, इसी लिए मैंने जाना उचित नहीं समझा। मुख देखने से वह मुझे भला आदमी मालूम हुआ।

मैंने धीरे धीरे उससे पूछा—महाशय, मैं आपको आपके घर पहुँचाना चाहता हूँ। आपके मकान का क्या पता है?

उसने रुकते हुए कंठ से उत्तर दिया—नहीं भाई, मैं मकान नहीं जाना चाहता। मकान में केवल मेरी स्त्री है, उसकी बकबक से मेरा सारा नशा उतर जायगा।

"तब आप कहाँ जाना चाहते हैं?"

"भाई, यदि तुम मेरा उपकार ही करना चाहते हो तो मुझे राजेश्वरी बाई के यहाँ ले चलो।"

"राजेश्वरी बाई के यहाँ?"

"हाँ भाई, उसी के यहाँ।"

"मैं वहाँ नहीं जा सकता। यदि मकान जाना चाहते हो तो मैं आपको ले जा सकता हूँ। नहीं तो इसी जगह पड़े रहिए। वह देखिए पुलिसवाला आ रहा है, मैं जाता हूँ।"

"पुलिसवाला आ रहा है? तब तो भाई तुम्हारे पैर पड़ता हूँ, मुझे मकान ही पर ले चलो। आज का दिन मिट्टी हो गया—धत्।"

एक गाड़ी मँगाकर उसको मैंने किसी प्रकार उसके अन्दर बैठाला। वह अनर्गल बकने लगा। मैं चुप होकर बैठा बैठा सोचने लगा, इस प्रकार मद पीने से क्या आमोद मिला करता है?

उसके मकान पहुँचने पर मैंने उसको पकड़ कर गाड़ी से उतारा। घर का द्वार किसी ने भीतर से खोल दिया। इसके बाद मैंने एक युवती को देखा। स्वामी की अवस्था देखकर युवती अस्फुट स्वर से आर्तनाद कर उठी।

उसकी आँखें देखकर मैं चौंक पड़ा। वही अपूर्व आँखें हैं—आधी जगी हुईं, आधी सोई हुईं? इतने दिन में भी उन दोनों आँखों को नहीं भूल सका था। कितने पहले की देखी हुई वह बालिका और यह युवती दोनों एक ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं है? दोनों आँखों के नीचे वही दोनों बड़े बड़े काले तिलों ने मेरे समस्त सन्देहों को दूर कर दिया।

युवती ने हठात् अपने मुख पर परदा कर लिया। मैंने भी अब वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा।

पहले की वह क्रीड़ाशील बालिका-मूर्ति मेरी आँखों के सामने आज फिर घूमने लगी। उसके खुले हुए बाल

हवा में उड़ने लगे थे, होंठों पर उसके हँसी नाच रही थी, आखें पर उसके रूप की चमक पड़ रही थी।... ..... *और यह अमानुष शराबी उसका स्वामी है !*

यौवन का ज्वार क्या आज उसके हृदय में उछल उठता है ? या कोयल की कूक क्या उसके कान सुन सकते हैं ? और और क्या भगवान् के ऊपर उसका विश्वास है ?........

उसकी आंखें जागृत होने पर भी सोई हुई हैं, नहीं-नहीं, जीवित रहने पर भी मृत के समान हैं—ऐसा मेरे मन में हुआ।

तृतीय बार

उपरिलिखित घटना के दस वर्ष के बाद का हाल है।

पड़ोस में एक कृपण वृद्ध ने इस लोक में समस्त धन आदि छोड़ कर परलोक की यात्रा की है। धन लेकर कोई भी परलोक नहीं जा सकता। सब कृपण जानते हैं, तो भी पृथिवी पर कृपणों का अभाव नहीं है। आश्चर्य ! वृद्ध के कोई नहीं था, इसी लिए हम लोगों को ही उसका शव ले जाना पड़ा।

वृद्ध की चिता में अग्नि देकर मैं गंगा के किनारे गया।

उस जगह एक खाट के पास बैठी हुई सात आठ स्त्रियां मद्पान कर रही थीं, हँस रही थीं और कुत्सित भाषा में बातें कर रही थीं। खाट के ऊपर जो शव था वह भी स्त्री का था। ये स्त्रियां गणिकायें हैं, यह समझने में देर नहीं लगी। किसी अभागिनी का दुर्वह जीवन आज मरण की गोद में सान्त्वना ढूँढ़ने गया है एवं ये स्त्रियां उसके नश्वर शरीर को लेकर अग्निदेव को उपहार देने आई हैं।

एक बार मैंने शव के मुख की ओर देखा, और सब से पहले मेरी दृष्टि दो बड़े बड़े काले तिलों के ऊपर दो बड़ी बड़ी स्थिर आंखों पर पड़ी !

मेरा हृदय सिहर उठा,—यह क्या मैं देख रहा हूँ, और आगे जाकर मैंने अच्छी तरह देखा ?........कोई सन्देह नहीं है—ये वही दोनों आंखे हैं ? अब आज इनमें उस प्रकार की रूप की लहर निश्चय नहीं दिखाई देती, किन्तु हैं वही दोनों आखें ? वह खेल में मत्त प्रसन्नचित्त बालिका, वह विषाद-पूर्ण युवती,—और यह जीवनरहित, नारीत्वरहित नारी !... ... .

उस जगह से जाने के पहले मैंने एक बार शव के मुख की ओर अच्छी तरह देखा...... ..

वे दोनों आंखे आज भी अपूर्व और अनुपम हैं—मरने पर भी वे मुदित नहीं हुई हैं। जागृत अवस्था खोकर आज उनकी दृष्टि निश्चय सोई हुई है, तो भी मेरी ओर दो लुप्त ज्योतियां ताराओं के समान देख रही हैं ! . . . उनमें आज हँसी की धारा नहीं है, अश्रु का झरना भी नहीं है,—वही स्तम्भित आखों की शीतल दृष्टि आज भी मेरे प्राणों के भीतर तुषा की वृष्टि कर रही है।

राजाराम भार्गव

——

७—हरि की खोज

तेरी रचाई वियोगविथा अब तू करि यत्न नहीं हरती क्यों,
यों अभिमान के भौन में बैठी वृथा विरहानल में जरती क्यों
चित्त हटाय सजाव सों सूने निकुंजन में न हियो धरती क्यों,
जो हरि आवत हैं न इहां तो तुही अभिसार नहीं करती क्यों।

बलदेवप्रसाद मिश्र

——

८—दर्पण में

नेली एक बड़े भारी ज़मींदार की लड़की थी। देखने में बड़ी सुन्दर थी। वह सदा अपना ठाट-बाट बनाने में ही लगी रहती, रात-दिन मौज से खेलती-कूदती, ख़ूब चैन से रहती। परन्तु जैसे ही जैसे उसके यौवन का विकास होता जाता, उसका शरीर लावण्य की प्रभा से अनुपम श्री से परिपूर्ण होता जाता, वैसे ही वैसे उसके हृदय में चिन्ता की धारा भी बढ़ती जाती। वह चिन्ता विवाह की थी। नेली रात-दिन यही सोचती, मानो मेरा विवाह हो गया है--मेरे पतिदेव बड़े सुन्दर हैं, वे मुझे बहुत प्यार करते हैं, उनके पास रुपया-पैसा भी ख़ूब है, हम दोनों बड़े आनन्द से रहते हैं, परस्पर एक दूसरे को आंख की ओट नहीं होने देते,

एक मुहूर्त का भी वियोग होने पर चित्त व्याकुल हो जाता है, हम लोगों में बहुत प्रेम है, हम लोगों को बहुत सुख है। बहुत आनन्द है। वह कल्पना करती माना उसके एक बच्चा भी हुआ है, गुलाब की कली-सा उसका चेहरा है, अपनी मधुर हँसी से वह सारे घर को देदीप्यमान कर देता है। उसने अपने पति की ओर देखकर गुलाब की पँखुरी की भांति उस कोमल बच्चे के अधरों का चुम्बन किया है, साथ ही साथ बच्चे का मुख-मण्डल मधुर मुसकान से विकसित होगया है। इससे उसके हृदय से स्वर्गीय आनन्द के उच्छ्वास निकलने लगे हैं, उसे बहुत सुख हुआ है, बहुत आनन्द मिला है। इसी प्रकार सोच सोच कर अपने भावी जीवन को अपने इच्छानुसार अच्छी तरह सजा लिया था। अब उसका खेलना-कूदना बन्द हो गया। वह बैठे बैठे अपने जीवन का भावी चित्र ही खींचा करती और बीच बीच में तन्मय भी हो जाती थी।

नये वर्ष का पहला दिन था। नेली दर्पण के सामने खड़ी होकर कपड़े पहन रही थी। साथ ही साथ वह अपने वैवाहिक जीवन की बातें भी सोच रही थी। सोचते सोचते वह बिलकुल तन्मय हो गई। उसे बाह्य जगत् का कुछ भी अनुभव न रहा। वह उसी दर्पण की ओर स्थिर दृष्टि से ताकती रह गई। भार से शिथिल होकर उसकी दोनों आँखें अर्द्धनिमीलित थीं, ओठ कुछ कुछ खुले हुए थे। देखने से यह नहीं मालूम पड़ता था कि वह सोती है या जागती। परन्तु वास्तव में वह उस समय अपने भविष्य में तन्मय होकर दर्पण में उसी का चित्र देख रही थी।

पहले-पहल उसके सामने दो नेत्र दिखाई पड़े। कैसी मनोहर उनकी चितवन थी। उसके बाद धनुष के समान कुटिल दो भौंहें, तब सारा मुँह, अन्त में सारा शरीर दिखाई पड़ा। हाँ, हां, मैंने पहचान लिया यही तो मेरे प्रियतम हैं—मेरे स्वामी हैं, जिनके साथ भावी ने मुझे एक सूत्र में बाँध रक्खा है। वह आकर नेली से बातें करने लगा, हँसने लगा, बहुत प्यार किया। उसके साथ नेली का विवाह होगया है। बड़े सुख से दोनों साथ साथ रहते हैं। उन्होंने अभाव तथा असुविधा का नाम तक नहीं सुना है। नेली ने अपना तन-मन सब कुछ उनके ऊपर अर्पण कर दिया है। वे दोनों ही परस्पर एक दूसरे को बहुत प्यार करते हैं, कोई भी किसी को आँख से ओट नहीं होने देता है। अहा! वह कैसा सुख था, कैसा आनन्द था! नेली मानो अपने पति में बिलकुल तन्मय होगई थी।

सर्दी की रात थी। शहर की सड़कों पर लोगों का आना-जाना बन्द होगया था। चारों ओर सन्नाटा था। ऐसे ही भयानक समय में नेली डाक्टर का द्वार खटखटा रही थी। जैसे ही नौकर बाहर निकला, नेली ने पूछा—"डाक्टर साहब घर पर हैं न? नौकर ने चुपके से उत्तर दिया—सारा दिन रोगियों के देखने में बिता कर अभी ही लौटे हैं। वे इस समय लेटे हुए हैं, जगाने को रोक दिया है। इस समय उनसे भेंट नहीं हो सकती।

"भेंट नहीं हो सकती?" कह कर नेली घर के भीतर घुस गई। अँधेरे में इस कमरे से उस कमरे में भटभटा कर, दो एक कुर्सियाँ गिरा कर, दीवार में सिर से दो एक धक्के देकर वह डाक्टर साहब के शयनागार में पहुँच गई। उस समय डाक्टर साहब बिछौने पर लेटे लेटे अपने ही हाथ से अपने निःश्वास की परीक्षा कर रहे थे। कमरे में एक दीपक टिमटिमा रहा था।

नेली कुछ देर तक खड़ी रही, फिर वहीं बैठ कर रोने लगी। अन्त में अपने को किसी प्रकार सँभाल कर काँपती काँपती कहने लगी—मेरे स्वामी बहुत बीमार हैं।

डाक्टर साहब ने धीरे धीरे करवट बदली। हाथों के ऊपर मस्तक रखकर उन्होंने जैसे ही नेली की ओर देखा उसने फिर कहा—मेरे स्वामी बहुत बीमार हैं। कृपा करके जल्दी उठिए, उठिए।

डाक्टर साहब ने मुँह बना कर कर्कश स्वर से कहा—"आह!"

"चलिए, चलिए। अभी चलिए, नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, अभी चलिए।"

उस समय नेली बहुत क्लान्त होगई थी, उसका चेहरा उतर गया था। वह सिसक सिसक कर अपने पति के रोग का हाल डाक्टर को बताने लगी। हाय! उसके आशा-भरोसा, सुख-सम्पत्ति तथा वर्तमान-भविष्य या यों

कहिए, उसके सर्वस्व पतिदेव की रुग्णता का वर्णन करते हुए माना उसका हृदय विदीर्ण होता जा रहा था। उसके करुणामय शब्दों से पत्थर तक पिघल जाता था। परन्तु डाकृर साहब बिलकुल निश्चल रहे। थोड़ी देर तक नेली की ओर देखकर उन्होंने बड़े ज़ोर से अपने हाथ पर एक निःश्वास छोड़ा और कहा—कल चलूँगा, कल।

"नहीं साहब; उन्हें सन्निपात-ज्वर हो गया है। अभी, इसी समय आपके चलने की आवश्यकता है, दया करके उठिए।"

"मैं अभी ही चला आ रहा हूँ। आज सवेरे से इसी ज्वर के ही रोगी देखता फिरा हूँ, तनिक भी विश्राम नहीं कर सका। आज मैं स्वयं अस्वस्थ हो गया हूँ, आज मैं कहीं नहीं जा सकता। मुझे स्वयं सन्निपात-ज्वर हो गया है। थरमामेटर से अपने शरीर के ताप की परीक्षा करके नेली को दिखाकर उन्होंने कहा कि मुझे स्वयं १०३ डिग्री का ज्वर है। मैं बड़ी कठिनता से उठ कर बैठा हूँ, क्षमा करो, मुझे सोने दो।

डाकृर साहब लेट गये।

नेली हताश होकर डाकृर का पैर पकड़ कर कहने लगी—मैं आपकी दुहाई देती हूँ, एक बार चलिए, मेरे लिए आज कष्ट ही सहिए। फ़ीस की चिन्ता न कीजिए।

"भाई, क्यों तंग करती हो। कह तो दिया, कि आज नहीं चल सकूँगा।

नेली उठकर खड़ी हो गई। उसके नेत्रों से झर झर कर आंसू बह रहे थे। उसके हृदय में जो यन्त्रणा हो रही थी इसे डाकृर साहब नहीं समझ सकते थे। वह अपने पति को कितना चाहती थी। उसके हृदय की यन्त्रणा के एक अंश का भी यदि वे अनुभव कर सकते तो अपनी बीमारी भूल कर वे अवश्य उसके पति को देखने के लिए दौड़ पड़ते। परन्तु वह बेचारी भला उन्हें किस तरह समझाती? उसकी भाषा में भी तो इतनी शक्ति न थी।

अन्त में डाकृर ने कहा—सरकारी डाकृर के पास क्यों नहीं जातीं?

"यह तो मेरे लिए बिलकुल असम्भव है। वे यहाँ से बीस मील की दूरी पर रहते हैं। अब इतना समय नहीं है। ऐसी रात में तो घोड़ा भी इतनी दूर नहीं जा सकता। यह नहीं हो सकता। उठिए, चलिए, आपको चलना ही पड़ेगा। मेरी दशा पर आपको दया भी नहीं आती?

"क्या करूँ? मुझे ज्वर है। सिर में चक्कर आ रहा है। ऐसी अवस्था में रोगी को न देखना चाहिए, यह बात तो तुम समझ ही नहीं सकतीं। जाओ, मुझे सोने दो।"

"आप चलने के लिए बाध्य हैं। आप किसी तरह इनकार नहीं कर सकते। लोग दूसरे की रक्षा के लिए अपने प्राण तक दे देते हैं, परन्तु आप पैसा लेकर भी रोगी को देखने नहीं चलते! आप कितने स्वार्थी हैं? मैं आपको अदालत ले चलूँगी, किन्तु—"

डाकृर साहब करवट बदल कर लेट गये। नेली ने सोचा कि बिना सोचे-समझे ये बातें कह कर मैंने बड़ा बुरा किया है। इससे तो डाकृर साहब का अपमान हुआ, परन्तु क्या करूँ? पतिदेव की अस्वस्थता के कारण संयम तथा सज्जनता की बातें करना बिलकुल भूल गई। नेली डाकृर के पैरों पर मस्तक रख कर प्रार्थना करने लगी। थोड़ी देर बाद डाकृर साहब खाँसते खाँसते उठ कर बैठे। उन्होंने कहा—मेरा कोट लाओ।

खूँटी पर से कोट उतार कर नेली ने डाक्टर साहब को पहना दिया। तब उसने कहा—चलिए, मैं, आपको चौगुनी फ़ीस दूँगी और इस कृपा के लिए आजन्म कृतज्ञ रहूँगी।

यह क्या! कोट पहनते ही डाक्टर साहब फिर लेट गये। नेली ने उनके नौकर को बुला उसकी सहायता से डाक्टर साहब को धीरे धीरे ले जाकर गाड़ी में बैठाया।

जाड़े की हवा सनसन करके चल रही थी। सारा रास्ता बर्फ़ से ढका था। ठीक रास्ता देखने के लिए कोचवान को जगह जगह गाड़ी रोकनी पड़ती थी। इसी तरह उसे तीस मील जाना था। घोड़े जब तनिक भी धीरे चलते तब नेली तुरन्त ही कोचवान से तेज़ चलाने की प्रार्थना करने लगती। सवेरा होते होते नेली डाक्टर को लेकर पहुँच गई। बरामदे में एक आरामकुर्सी पर उन्हें बैठा कर वह भीतर गई।

डाक्टर साहब बैठते ही उसी आरामकुर्सी पर सो गये। नेली ने लौट कर उन्हें पुकारा। उन्होंने उत्तर दिया—

"यह व्यर्थ विवाद है।"

"आप क्या कहते हैं?"

"उस समय मीटिंग में सभी ने कहा था—

ब्लासव ने कहा—क्या ज़रूरत है—?

"यह क्या? डाक्टर साहब न जाने क्या अनाप-शनाप बक रहे हैं! भगवान् इन्हें क्या होगया?

नेली का पति अच्छा होगया। उस समय वह बहुत ऋणी था। ज़मींदारी रेहन थी। बैंक का ब्याज तक नहीं पटता था। धन की चिन्ता में उन पति-पत्नी को सारी रात नींद न आती थी। अन्त में ५-६ लड़के-लड़कियाँ भी हो गये। किसी को ज्वर होता तो किसी को खाँसी आती, किसी को सर्दी होती, तो किसी को पेचिश। अन्त में एक लड़के की मृत्यु हो गई। इस प्रकार तरह तरह की दुश्चिन्ताओं में पड़ने से नेली का हृदय बहुत दुखी हुआ। परन्तु फिर भी पति का मुँह देखकर सब कुछ सहती जाती। आह! यदि दोनों वे पति-पत्नी एक साथ मरते।

देश में प्लेग आया। नेली सदा ही सावधान तथा शङ्कित रहती, किन्तु एक दिन प्लेग ने उसके पति को न छोड़ा। नेली अपने पति के पास बैठी हुई, टकटकी लगा कर उसका मुँह देख रही है*।

शैलेन्द्रनाथ राय

९—स्वर्गीय कविवर पण्डित श्रीधरजी पाठक

आज पंडित श्रीधरजी पाठक हमारे बीच में नहीं हैं। वे मसूरी के उच्च शिखर से बहुत ऊपर वहाँ पहुँच गये हैं, जहाँ उनके विचारों के अनुकूल वायु-मण्डल है, जहाँ उनकी कविता के सुकोमल भाव, उनके काल्पनिक जीवन-सौन्दर्य की अनुपम छटा मूर्तिमान् होकर बिखरती है। किन्तु पद्मकोट की प्राचीरों के भीतर एकान्तवासी योगी और ऊजड़ग्राम के पद्यों में, तथा काश्मीर-सुषमा आदि के पद्यों में उनका जो महान् और अमर व्यक्तित्व छिपा हुआ है, उसके अन्दर उनकी जो अनुभूति है, वह हमारी स्मृति पर एक स्थायी प्रभाव है। उनकी लेखनी ने उसे इतनी गहराई से अंकित कर दिया है कि हम उसे चिर काल तक नहीं भूल सकेंगे।

ऐसे हँसमुख और विनोद-प्रिय साहित्य-सेवी को अपने मध्य से उठ जाते देखकर किसका चित्त व्याकुल न हुआ होगा। वे वृद्ध अवश्य थे, पर उनके स्वभाव में शिशु की-सी सरलता और युवक की-सी कर्तृत्वशीलता थी। अन्त समय तक वे जिस लगन और मनोयोग से अपने व्यसन—साहित्य-सेवा के व्यसन में लगे हुए थे उसे जिसने देखा है वही उनकी कार्यकारिणी शक्ति का अनुमान कर सकता है। साहित्य-सेवियों में उनका-सा निरालापन पाना कठिन काम है। उनकी यह विशेषता, उनके रहन-सहन तथा सभी तरह के विचारों में थी। उनकी कविता में भी इसकी ख़ासी झलक मौजूद है। अपने सम-सामयिक कवियों की रचनाओं की अपेक्षा पाठकजी की कविताओं में एक तरह की नवीनता है। उनकी शैली में मौलिकता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि उन्होंने स्वच्छन्दता से अपनी लेखनी और प्रतिभा का प्रयोग किया है। उन्होंने साहित्य-सेवा केवल मनो-विनोद के लिए की। जब जातीय भावनायें या सुन्दर प्राकृतिक दृश्य उनके अन्तःकरण को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेते थे तब जैसे पूर्णिमा की चाँदनी में प्रशान्त महासागर भी बल्लियों उछलने लगता है उसी तरह उनके मस्तिष्क में कविता की बाढ़ आ जाती थी। इसी लिए उनमें सजीवता और मौलिकता है। किसी तरह के लाभ से प्रेरित होकर प्रतिभा में जो शिथिलता आ जाती है उससे पाठकजी की रचनायें प्रायः मुक्त हैं।

उनके विचारों से लोगों का मतभेद हो सकता है जैसा कि बड़े से बड़े विद्वान् के साथ होता ही है, किन्तु हम इससे कभी इनकार नहीं कर सकते कि पाठक जी संकुचित विचारों के नहीं थे। उनके हृदय में बहुत अधिक उदारता का भाव था। जो उनसे एक बार भी मिल चुका है वह यह कह सकता है कि मातृ-जाति के प्रति उनके हृदय में अनन्त श्रद्धा थी। उनकी 'आर्य-सुन्दरी' नामक कविता में उनका वह हृद्गत-भाव ख़ूब सुन्दरता

---

* रूस के एक प्रसिद्ध लेखक की कहानी।

से व्यञ्जित हुआ है । वे स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती थे। अपने इस विचार को उन्होंने अपनी सुयोग्य पुत्री को उच्च शिक्षा दिलाकर कार्यरूप में परिणत कर दिया। यहा के पास एक कवि का हृदय था। उन्होंने इस दीन-हीन भारत का जो विस्मृत और अतीत गौरव देखा वह अक्षुण्ण है। अपनी 'भारतगीत' नामक प्रौढ़ रचनाओं
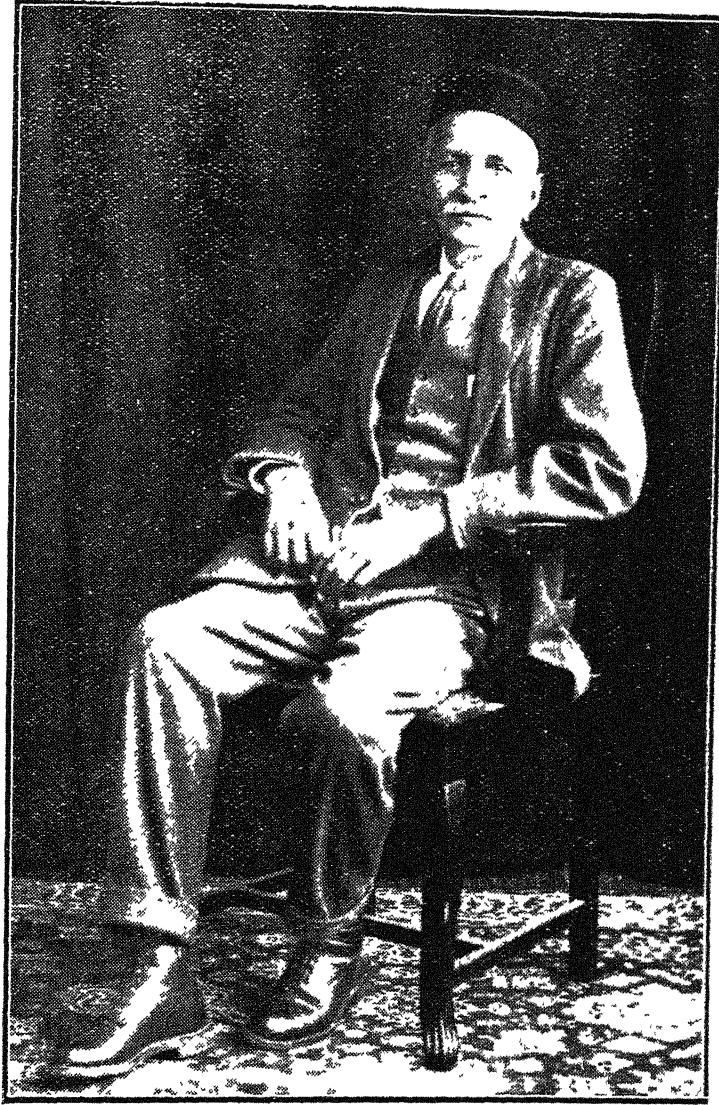
स्वर्गीय कविवर श्रीधर पाठक

इस छोटे से लेख में हम उनके विचारों का विस्तृत रूप व्यक्त करने में असमर्थ हैं, तो भी इतना अवश्य कह देना आवश्यक होगा कि अपनी मातृभूमि के लिए भी पाठकजी में उन्होंने उसका बड़ा ही उत्कृष्ट वर्णन किया है। समष्टि रूप से हम कह सकते हैं कि पाठकजी उस महापुरुष के समकक्ष कहे जा सकते है जिसमे प्रगाढ़ देशभक्ति,

अनुपम मातृप्रेम, अपूर्व प्रतिभा और सजीव प्रकृति-प्रेम हो। साठ बरस के वयस्क कवि के होठों पर सरल शैशव की जो हँसी खेला करती थी, आंखों में जो प्रकृति-छटा का अनूठा विस्मय लहरें लेता था, वही आज हम उनकी कृतियों में पा सकते हैं। उन्हीं के शब्दों में उन्हें स्मरण करने के लिए हम कहेंगे, "विश्वनिकाई विधि ने उसमें की एकत्र बटोर।"

उनकी कविता के सम्बन्ध में कुछ लिखते हुए यह बतला देना आवश्यक है कि पाठकजी वर्तमान खड़ी बोली के प्रमुख आचार्य थे। उन्होंने जिस शैली को शैशवकाल में उठाकर घुटनों के बल चलना सिखलाया था वह आज यौवन-मंजरित किशोरी होकर हिन्दी के आधुनिक युग में नवीन हाव-भाव और नया संसार पैदा कर रही है। ख़ैर, पाठकजी की कविताओं में प्राकृतिक अनुभूति की विशेषता के साथ साथ कोमल-कान्त पदावली की बढ़िया प्रदर्शिनी है। उनके सिवा 'ललित लतावलि वलित कलित कमनीय' की अपूर्व शब्द-योजना हर जगह मिलना असंभव है और प्रकृति-वर्णन में तो पाठकजी की तुलना में अभी तक और कोई कवि तोला नहीं जा सकता। उनकी 'काश्मीर-सुषमा' से हम यहां एक पद्य देते हैं। देखिए इसमें कैसी अलौकिक और सहृदता-पूर्ण अनुभूति है—

> कै यह जादू-भरी विश्व-बाजीगर-थैली।
> खेलत मैं खुलि परी शैल के सिर पै फैली।
> प्रकृति यहां एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
> पल पल पलटति भेस छनिक छवि छिन छिन धारति॥
> विमल-अम्बु-सर मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति।
> अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति॥
> यही स्वर्ग सुरलोक यही सुर-कानन सुन्दर।
> यहिं अमरन को लोक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥

पहली दो पंक्तियों में कैसा विस्मयजनक भाव है। बाज़ीगर की पोटली में तमाशे की तमाम कला बन्द रहती है। जहां शैल के उत्तुङ्ग शिखर पर विश्व-बाज़ीगर का रहस्य बिखर गया हो, यह कैसा दर्शनीय स्थान होगा। कैसी सुन्दर कल्पना है। काश्मीर के शैल-शिखर पर लुटाये हुए प्रकृति के वैभव को इतनी ख़ूबी से शब्दों में मूर्तिमान् कर सका हो, ऐसा कोई विरल ही कवि होगा।

> 'यही स्वर्ग-सुरलोक यही सुर कानन सुन्दर।
> यहिं अमरन को ओक यहीं कहुँ बसत पुरन्दर॥'

गत गौरव, वैभव के शिखर से गिरे हुए, दुष्काल-निपीड़ित भारत की गोद से, त्रिवेणी-संगम पर असहायों की करुण और मर्मभेदिनी पुकार सुनकर प्रयाग के पद्म-कोट से एक कवि मर्माहत होकर हिमालय की हिमाच्छादित चोटी पर जाकर कानन-कानन में, उपत्यका-उपत्यका मे, नगरी-नगरी में ढूँढ़ता और पुकारता है। अरे! यहीं कहीं तो देवताओं का लोक है। यहीं कहीं तो वज्रधारी सुरराज इन्द्र रहते है। इसी कानन में दैत्य-नाशन देवों का क्रीड़ा-स्थल है। हे सुरराज तुम कहां हो, तनिक मेरे साथ चलकर देखो तो, आज गिरिराज हिमालय का दिया हुआ सारा वैभव हमारे हाथ से चला गया है। दक्षिण-महासागर मेघों को इधर नहीं भेज रहा है। चलो, ज़रा चल कर देखो तो।

अपने देशवासियों के अधिकारों के सम्बन्ध में पाठकजी के हृदय मे कैसी धारणा थी, वे क्या चाहते थे, इसका कुछ कुछ निदर्शन निम्नलिखित पद्य से हो जायगा—

> जहाँ मनुष्यों को मनुष्य अधिकार प्राप्त नहिं।
> जन जन सरल सनेह सुजन व्यवहार व्याप्त नहिं।
> निर्धारित नरनारि उचित उपचार आप्त नहिं।
> कलि-कल-मूलक कलह कभी होवे समाप्त नहिं।
> वह देश मनुष्यों का नहीं, प्रेतों का उपवेश है।
> नित नूतन अध उद्देश थल, भूतल नरक निवेश है।

तात्पर्य यही है कि पंडित श्रीधरजी पाठक ने जिस मनोयोग के साथ हिन्दी-साहित्य की सेवा की है वह प्रत्येक हिन्दी-हितैषी के लिए अनुकरणीय है। आधुनिक हिन्दी-साहित्य को उन्होंने एक नवीन रूप प्रदान किया और अन्त-समय तक प्राण-पण से उसकी सेवा में लगे रहे। अब हमारा कर्तव्य उनके प्रति यही है कि हम भी यथाशक्ति उनके प्रारम्भ किये हुए कार्य में सहयोग प्रदान करें ताकि राष्ट्र-भाषा हिन्दी का भाण्डार अपूर्व ग्रन्थ-रत्नों से भर जाय। इससे हम पाठकजी की स्वर्गगत आत्मा का आशीर्वाद भी पा सकेंगे।

शम्भूदयाल सक्सेना

१—तेजस् (AURA)
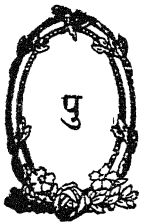
राने समय के राजा, महाराजा, ऋषि, अवतार अथवा महापुरुषों के चित्रों तथा मूर्तियों का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि हर एक के मस्तक के चहुँ-ओर एक गोलाकार आलोक बना हुआ है। महात्मा बुद्ध की एक मूर्ति लंका में है। उसमें आलोक की किरणें साफ़-साफ़ दिखलाई गई हैं। अथर्व-वेद व महाभारत में भी इसका वर्णन पाया जाता है। इससे मालूम होता है कि आज-कल ही नहीं, किन्तु हज़ारों वर्षों से मनुष्यों में इस आलोक के अस्तित्व पर विश्वास पाया जाता है। हर एक जाति के मनुष्य इसको किसी न किसी रूप में मानते रहे हैं। संस्कृत में इसे तेजस् कहते हैं। मुसलमान लोग इसे नूर कहते हैं। पाश्चात्य विद्वान् इसे मैग्नेटिज़्म (Magnetism), पर्सनल मैग्नेटिज़्म (Personal Magnetism), एनीमल मैग्नेटिज़्म (Animal Magnetism) अथवा ह्यूमन इलेक्ट्रीसिटी (Human Electricity) आदि अनेक नामों से पुकारते चले आते हैं। बुलवर लिटन (Bulwer Lytton) ने इसको व्रिल (Vril) कहा है। एवेंजेलिस्ट लोगों (Evangelists) ने अपने ग्रन्थों में लिखा है कि (Master) यानी गुरू से विर्चू (Virtue) निकल कर बीमारों को तुरन्त अच्छा कर देती है। यह कथन ठीक है, क्योंकि विर्चू, विरीलिटी (Virtue, Virility) आदि शब्द लेटिन के विर (Vir) शब्द से निकले हैं, जिसका अर्थ है "एक श्रेष्ठ पुरुष"। साधारण पुरुष को लेटिन में होमो (Homo) कहते हैं। इससे भी साफ़ मालूम होता है कि लेटिन-भाषी लोग भी पर्सनल मैग्नेटिज़्म को मानते थे। इसके सिवा यह सर्व-साधारण के अनुभव की बात है कि किसी मनुष्य की आकृति, किसी की वाणी या किसी का मन इतना प्रभावशाली होता है कि लोग एक-दम मोहित हो जाते हैं। कालिदास, शेक्सपियर, स्वामी रामतीर्थ, बर्क, नेपोलियन आदि अनेक पुरुष ऐसे ही मुग्ध कर देनेवाले हो गये हैं। कई पुरुष ऐसे हैं कि उनके पास बैठने ही से सुख तथा शान्ति प्राप्त होती है। अनेक ऐसे हैं कि उनके पास बैठने से अशान्ति, दुःख, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि बुरे विचार पैदा होते हैं। कई स्थान ऐसे हैं जहां जाने से चित्त प्रसन्न व शान्त हो जाता है, और अनेक जगहें ऐसी हैं कि वहां जानेवाले के हृदय में अशान्ति, डर व दुःख के भाव पैदा होते हैं। उपर्युक्त बातों पर विचार करने से साफ़ साफ़ समझ में आता है कि हर एक मनुष्य के अन्दर व चहुँ ओर एक बहते हुए सूक्ष्म पदार्थ का घेरा रहता है। यह घेरा साधारण मनुष्य के दो फ़ुट हर तरफ़ रहता है और इसका आलोक अंडाकार होता है। सिर्फ़ मनुष्य के ही नहीं, परन्तु पशु, वनस्पति इत्यादि समस्त प्राणि-मात्र अथवा सृष्टि के समस्त पदार्थों के भीतर-बाहर यह आलोक व्याप्त रहता है।

इस तेजस् को दिव्य दृष्टिवाले पुरुष (Clairvoyant) प्रत्यक्ष रूप में देख सकते हैं और उन्हें इसमें तरह तरह के रंग दिखाई देते हैं। इसी पदार्थ के कारण आकर्षण-विकर्षण होते हैं। इसी तत्त्व के कारण एक का दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। इसी के द्वारा एक स्थान से दूरस्थ पुरुष के पास विचार भेजे जा सकते हैं। इसी से एक स्थानवाला दूसरे स्थानवाले का

उपचार कर सकता है। यही प्रभावोत्पादक तत्त्व तेजस्, औरा आदि अनेक नामों से पुकारा जाता है।

औरा निर्माण करना तथा उसे प्रबल बनाना

विचार एक अत्यन्त ही प्रबल शक्ति है। विचारों ही से हर एक वस्तु सूक्ष्म से स्थूल रूप में आती है। विचारों ही के प्रबल प्रभाव से औरा बनता है। परन्तु औरा के निर्माण में हमारी इन्द्रियों-द्वारा सेवन किये गये खान, पान, श्रवण, दर्शन आदि विषयों की भी सहायता कुछ न कुछ अवश्य पहुँचती है। मनुष्य जैसे विषयों का सेवन करता है, वैसा ही उसका औरा बनता चला जाता है। औरा शुद्ध करने के लिए अथवा प्रबल बनाने के लिए पवित्र व प्रबल विचारों की अथवा नियमानुसार प्राणायाम की अत्यन्त आवश्यकता है। पाश्चात्य विद्वानों के कथनानुसार सूचना (Suggestions) से भी औरा सुधारा जा सकता है। जो जैसा सोचता है वह अवश्यमेव वैसा ही हो जाता है। विचारों की लहरें विद्युत की लहरों से भी अधिक बलवती होती है। अतः जो सदा उन्नति, शान्ति, शक्ति, उत्साह, आनन्द आदि के विचारों को अपने मन में हरा-भरा रखता है उसका जीवन अधिकाधिक सुखी, शान्त और शक्ति-सम्पन्न बनता जाता है। दूसरे के भेजे हुए बुरे विचारों से अपने को बचाने के लिए सदा प्रबल, पवित्र विचारों से अपने मन को पूर्ण रक्खो। इससे अपना औरा इतना प्रबल हो जाता है कि दूसरों के बुरे विचार कभी असर नहीं डाल सकते। बुरे विचार उसी अपवित्र आत्मा के पास लौट कर जायँगे और उसी को उचित फल चखायेंगे। इसलिए अपने विचारों को सदा पवित्र रखना चाहिए।

औरा के नियम

१—औरा अनेक रंग का होता है। इसका रंग मनुष्य की भावनाओं के अनुसार बराबर बदलता रहता है। सूक्ष्म-दृष्टिवालों को रंग इस प्रकार दिखाई पड़ते हैं:—

जो सदा सबके हित का ध्यान करता है और पर-हित के काम में लगा रहता है, उसका औरा शुद्ध उज्ज्वल रहता है। द्वेष, ईर्ष्या के भाववाले का और घने काले बादलों के रंग का दिखाई देता है। क्रोधी पुरुष के औरा में गहरे लाल रंग की धारियाँ होती हैं। अगर क्रोध शुद्ध सात्विकी है तो रंग चमकदार होगा। विद्वानों तथा बुद्धिमानों के औरा में पीलापन होता है। लाभ की इच्छावाले के औरा में नारंगी रंग, प्रेम में किरमिजी, पवित्र प्रेम में चमकदार गुलाबी रंग, मज़हबी विचारवाले के नीला रंग, आध्यात्मिक शक्ति वाले के हल्का नीला रंग, महान् पुरुषों के औरा में सफ़ेद चमकदार रंग और दुष्ट व अपवित्र मनुष्यों के औरा में काला रंग दिखाई पड़ता है।

२—प्रत्येक मनुष्य अपने औरा का भला या बुरा प्रभाव दूसरों पर अवश्य डालता है। इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है कि अमुक अमुक बीमारीवाले पुरुष को दो हाथ से कम फ़ासले पर नहीं आने देना चाहिए, और इसीलिए दुष्टों की संगति का निषेध तथा अच्छी संगति की प्रशंसा की गई है। सर्व-साधारण के अनुभव में आता है कि जब एक क्रोधी एक शान्त व्यक्ति के पास आता है तब उसका क्रोध सचमुच कम होने लगता है। बुरा मनुष्य अपने चारों ओर बुरे विचारों की लहरें पहुँचाता रहता है, और अशान्त अशान्ति की, जिससे सबको हानि उठानी पड़ती है। प्रेम, शान्ति, दया आनन्द तथा भक्ति के विचारों से चारों ओर शुद्धता फैलती है।

३—सदृश औरा में आकर्षण होता है। क्रोध के भाव होने से दूसरों के औरा से क्रोध के भाव खिंच आते हैं, जिससे क्रोध और अधिक बढ़ जाता है। जो पुरुष जैसा होता है वह वैसा ही औरा अपनी तरफ़ खींचता रहता है, और अपनी भावनाओं की उत्तरोत्तर वृद्धि करता रहता है। बुरे विचारवाला बुरा होता चला जाता है और अच्छे विचारवाला अच्छा। बुरे औरा के बढ़ने से दुष्ट, दुराचारी तथा अधर्मी पुरुषों की शक्ति बढ़ती है और धर्म दिन दिन घटती को पहुँचता चला जाता है। बुरे औरा के अधिक फैलने से प्लेग, हैज़ा, इनफ़्लूएन्ज़ा आदि भयङ्कर बीमारियाँ फैलती हैं, और आपस के कलह, वैमनस्य और युद्ध बढ़ते हैं। इनका नाश अच्छे औरा से हो सकता है। जो मनुष्य अहङ्कार-रहित लोक-हितार्थ

निष्काम कर्म करते हैं उनका औरा अत्यन्त पवित्र होता है और वह मीलों दूर तक फैला रहता है।

औरा के भेद

औरा ७ प्रकार का होता है

१—स्वास्थ्य तेजस्—यह बिलकुल बे-रंग होता है। यह असंख्य समानान्तर रेखाओं से बना हुआ होता है, जोकि सारे शरीर से बराबर बाहर निकलती रहती हैं। जब शरीर के किसी अङ्ग से बीमारी फैलती है तब उस अङ्ग की लकीरें आड़ी-टेढ़ी व तितर-बितर हो जाती हैं और सारे शरीर की लकीरों में भी कुछ गड़बड़ हो जाती है।

२—प्राण तेजस्—प्राण जब शरीर के भीतर संचार करता रहता है तब उसका रंग हल्का नीला सफ़ेदी लिये होता है। परन्तु जब यह शरीर से बाहर आता है तब इसका रंग-रूप ऐसा दिखाई पड़ता है जैसा गर्मी के दिनों में गर्म ज़मीन से निकलती हुई हवा। इसी से मेस्मेरिज़्म (Mesmerism) के तमाम कार्य होते हैं। प्राण के सदा बहते रहने ही के कारण स्वस्थ औरा की लकीरें सीधी व समानान्तर होती हैं। जब तक प्राण की धारा बराबर बहती रहती है और औरा की लकीरें समानान्तर रहती हैं तब तक मनुष्य हर बीमारी से बचा रहता है, किन्तु जब कभी कमज़ोरी, थकावट अथवा किसी घाव या किसी ज़्यादती के कारण शरीर में प्राण की अधिक आवश्यकता हो जाती है तभी शरीर से बाहर निकलते हुए प्राण में फ़र्क़ पड़ जाता है। इस दशा में बीमारियों के कीटाणुओं से बचना मुश्किल हो जाता है। परन्तु प्रबल इच्छा-शक्ति तथा नियमानुसार प्राणायाम के द्वारा शरीर के चारों ओर एक दीवार अपनी संरक्षा के लिए बनाई जा सकती है।

३—काम तेजस्—इसमें हर तरह की इच्छायें रहती हैं। इसी के द्वारा निद्रा-अवस्था में महापुरुष अपने (Asstsal) एस्टसल शरीर में घूम-फिर सकते हैं। इसके रंग-रूप हर समय बदलते रहते हैं। लेकिन इनकी तसवीर आकाश-तत्त्व में सदा के लिए बनी रहती है।

४—साधारण मनस् तेजस्—वे इच्छायें जो प्रबल हैं, अपना रंग सदा के लिए मानसिक औरा पर चढ़ा देती हैं। अतः इसमें हर एक मनुष्य के पिछले जीवन की तसवीरें अथवा अच्छे व बुरे चरित्र के चित्र दिव्य दृष्टि-वाले देख सकते हैं। जब मनुष्य निद्रावस्था में स्थूल शरीर के बाहर चला जाता है तब यही औरा साथ में जाता है, लेकिन इसके साथ कुछ हिस्सा तीसरे औरा का भी जाता है।

५—उच्च मनस् तेजस्—यह बहुत ही सूक्ष्मतर तत्त्वों का बना होता है, और यह बहुत ही कम मनुष्यों में मिलता है, परन्तु जहां यह मिलता है, यह बहुत ही सुन्दरता से पूर्ण रहता है। वह बिलकुल ऐसा दिखाई पड़ता है, मानो एक जीवित ज्योति हो। इनका वर्णन शब्दों में नहीं किया जा सकता है। यह उन्हीं तत्त्वों का बना होता है, जिनसे "कारण-शरीर" बनता है। "कारण-शरीर" एक जीवन से दूसरे जीवन में जाता रहता है। इसी "कारण-शरीर" को सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण करने से मनुष्य की उन्नति की दशा ज्ञात हो सकती है। यह वही शरीर है जिसमें नया शरीर धारण करनेवाली आत्मा वास करती है।

६ व ७—इनका अस्तित्व तो सम्भव है, परन्तु इनके विषय में किसी विद्वान् व सूक्ष्मदर्शी ने आज तक कुछ प्रकाश नहीं डाला है।

मोहनलाल

२—भोजन और थकावट

'रिव्यू सैंटिफ़िक' पत्रिका में प्रकाशित हुआ है कि जो लोग मांस खाते हैं उनकी अपेक्षा निरामिष-भोजी अधिक समय तक बिना किसी प्रकार की थकावट के काम कर सकते हैं।

अमरीका के अध्यापक आर्विं फ़िशर ने इस सम्बन्ध में परीक्षा की थी। उनके कथन का सार इस प्रकार है—

भोजन-विशेष से हमारे शरीर में यूरिक ऐसिड अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है। इस यूरिक एसिड का एक गुण यह है कि वह रक्त को गाढ़ा करता है। रक्त के अधिक गाढ़ा होजाने पर शरीर की सूक्ष्म शिराओं के मध्य से होकर चलने में हृत्पिण्ड पर अधिक दबाव का प्रयोग करना पड़ता है। इससे बहुत शक्ति का व्यय

होता है। जो लोग अधिक समय तक परिश्रम करते हुए दिखाई पड़ते हैं उनके रक्त का भार कम होता है। यह तो सभी को मालूम है कि मांस खाने से यूरिक ऐसिड अधिक मात्रा में उत्पन्न होता है।

एक मत यह प्रचलित हुआ है कि अधिक परिश्रम करने से शरीर में एक विष उत्पन्न होता है, उसी विष के प्रभाव से प्राणी क्लान्त होता है। किसी भी जीव का मांस खाते समय हम उस विष को भी खा जाते हैं। यह उत्पन्न क्लान्ति का विष हमारे परिश्रम में व्याघात करता है।

इस सम्बन्ध में एक मत और है। गेहूँ, चावल, जौ आदि से हम लोग जिन आङ्गारिक पदार्थों का संग्रह करते है वे और स्नेह-पदार्थ शरीर की दाह-क्रिया से पूर्णरूप से जल सकते है। जल कर वे कार्बलिक ऐसिड और जल के आकार मे परिणत होकर हमारे निःश्वास आदि के द्वारा बाहर निकल जाते हैं। किन्तु मांस में जो एल्बुमेन पदार्थ है वह इस प्रकार नहीं निकल सकता। यह एल्बुमेन शरीर में कुछ ऐसा अंश अवशिष्ट रखता है जिसका दाना बाँधने का स्वभाव है। इनमें से एक यूरिक ऐसिड भी है। यही चीज़ें शरीर में जम कर उसे क्लान्त किया करती है। अतएव जिस भोजन में एल्बुमेन का अंश कम होता है वह हम लोगो को अधिक मात्रा में परिश्रम के लिए उपयोगी बनाता है। आधुनिक चिकित्सक इन्हीं सब कारणों से रोगी के पथ्य से मांस को पृथक् कर देते है।

अध्यापक महोदय का कथन है कि योरप मे बहुत से लोग संध्या-समय मांस नहीं खाते। इससे उन्हे बहुत लाभ हुआ है। मांस खाने का जिन्हें अभ्यास होगया है उनके लिए उसका एकबारगी छोड़ देना साध्य नहीं है। क्योंकि पाकस्थली एकाएक नये भोजन का परिवर्त्तन करना आसानी से नहीं सह सकती, किन्तु धीरे धीरे मांस को त्याग देने में अवश्य लाभ होगा।

३—नमक

डाकृर विसन का कथन है कि लोगों का विश्वास है कि नमक पाचन-क्रिया का सहायक है, किन्तु इस बात पर कोई भी ध्यान नहीं देता कि वह किस मात्रा तक उपयोगी है। उनके विचार से भोजन के साथ नमक मिलाने की आवश्यकता नहीं है, भोजन में ही नमक यथेष्ट मात्रा में वर्त्तमान रहता है, यहां तक कि नमक मिलाया हुआ भोजन पचाना ही कठिन है।

१,००० भाग भोजन के साथ चार भाग नमक भी उपयोगी है, किन्तु मात्रा के बढ़ जाने से छः भाग हो जाने पर भी वह हानिकारक हो जाता है। हमारे प्रतिदिन के भोजन में साधारण तौर से १,००० भाग में २२.५ भाग नमक रहता है। समुद्र के जल मे भी प्रायः इसी मात्रा से (१,००० भाग में २८ भाग) रहता है। भोजन में नमक मिला कर खाने का हम लोगों को अभ्यास हो गया है, यही कारण है कि बिना नमक का भोजन फीका मालूम पड़ता है। भोजन का स्वाद बढ़ाने के लिए पशु-पक्षियों को नमक की आवश्यकता नहीं पड़ती। डाक्टर विसन का कथन है कि परीक्षा करके देखने पर मालूम हुआ है कि नौ मास तक बिना नमक के भोजन करने पर फिर नमक मिला हुआ भोजन अच्छा नहीं लगता।

प्राणि-मात्र के शरीर में "नैट्रम-क्लोराइड" रहता है। स्थलचर एवं जलचर स्तन्यपायी जन्तुओं के शरीर में १,००० भाग में ६.५ भाग, समुद्र के मेरुदण्डयुक्त प्राणियों में १,००० भाग में १६ से २२ भाग तक और पक्षियो और मीठे जल में रहनेवाली मछलियों के शरीर में भी स्तन्यपायी जन्तुओं के ही समान नमक रहता है। शाक-भाजी में १,००० में एक या दो भाग नमक रहता है। शरीर के अवस्था-भेद से नमक की मात्रा का विशेष तारतम्य नहीं दिखाई पड़ता। प्राणियो के शरीर में पेशियों के रस में नमक मिला रहता है किन्तु कोष में प्रवेश करने के कारण वह मालूम नहीं पड़ता।

रक्त के सार भाग का गुरुत्व स्वाभाविक अवस्था से ०.५० भाग से अधिक नहीं बदलता। नमक का आवश्यकता से अधिक उपयोग करने से शरीर का रक्त दूषित हो जाता है, इससे लोहित-कोष-समूह की संख्या कम होजाती है। ऐसी दशा में भोजन से यथेष्ट सार ग्रहण करने तथा उसके उचित मात्रा में बाहर न निकल जाने से अजीर्ण हो जाता है।

[श्रीयुत परिपूर्णानन्द वर्म्मा]

विदेश

१—इटली में प्रजातन्त्र का अन्त

लूम होता है, इटली की फ़ासिस्टी सरकार शीघ्रातिशीघ्र पार्लियामेंट को पंगु बना देगी। हाल की घटनाओं से प्रकट होता है कि वहाँ की शासन-प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्त्तन हो गये। (फ़ैसिस्ट ग्रैंड कौंसिल) ने अपनी ज़िम्मेदारियों व कार्य्यों की सीमा की व्याख्या करते हुए जो घोषणा प्रकाशित की है उससे प्रकट होता है कि वहाँ प्रजातन्त्र का अन्त हो गया। ४०० सदस्यों की जो पार्लियामेंट होगी उसमें उम्मेदवारों तथा मतदाताओं की सूची भी फ़ासिस्ट कौंसिल तैयार करेगी। ग्रैंड कौंसिल के निर्णय प्रत्येक मामले में अन्तिम होंगे और उसके निर्णयों के विरुद्ध कहीं भी अपील नहीं की जा सकेगी। सरकार का प्रधान ग्रैंड कौंसिल का अध्यक्ष होगा। इस बड़ी कौंसिल के पार्लियामेंट की दोनों सभाओं के सभापति, मन्त्रि-वर्ग तथा प्रधान मन्त्री का सहायक-सचिव-फ़ासिस्ट मिलिशिया सेना के प्रधान सेनाध्यक्ष, फ़ासिस्ट दल के मन्त्री तथा उपमन्त्री, इसी दल के भूतपूर्व मन्त्रि-वर्ग, सहौद्योगिक-औद्योगिक संस्थाओं के अध्यक्ष—ये सब सदस्य होंगे। इस प्रकार फ़ैसिस्ट ग्रैंड कौंसिल में केवल फ़ैसिस्टी दल के ही लोग रह सकेंगे और इनके बनाये क़ानून-क़ायदे निर्विवाद होंगे।

समिति की अनुमति के बिना उसका कोई सदस्य गिरफ़्तार नहीं किया जा सकता है और न उसके ख़िलाफ़ फ़ौजदारी के जुर्म ही लगाये जा सकते हैं। समिति ही फ़ैसिस्टी-दल के भी क़ानून-क़ायदे बनावेगी और गद्दी के उत्तराधिकार, मन्त्रणापरिषद् तथा व्यवस्थापक सभा की नियुक्ति, कार्य-विस्तार आदि का निर्णय करेगी। राजा की शक्ति को नियन्त्रण में रखना, अन्तर्राष्ट्रीय सन्धियों, गिर्जाघरों की शक्ति, सरकारी नौकरियों के उम्मीदवारों की सूची तैयार कर राजा के सम्मुख रखना, सीमा-निर्णय, आदि सभी कार्य इसी समिति के अधीन रक्खे गये हैं। फ़ासिस्ट-दल का सेक्रेटरी मन्त्रिमण्डल की बैठकों में आमन्त्रित हो सकता है। बीस सितम्बर की अर्द्धरात्रि तक—लगातार ६ घंटे की बहस के बाद ये सब निर्णय अन्तिम बार स्वीकार किये गये और मुसोलिनी को बधाई देकर सभा भङ्ग हुई। यहाँ यह भी बतला देना उचित है कि इन निर्णयों के विरुद्ध इटली की अधिकांश जनता है तो भी गिओविनी (Giovinni) आदि के प्रयत्नों पर भी यह दल अचल रहा।

२—निःशस्त्रीकरण और राष्ट्र-परिषद्

२७ अगस्त को पेरिस में केलोग-सन्धि पर सबके हस्ताक्षर हो गये। इस प्रकार संसार की प्रमुख महा-

शक्तियों ने समर को अवैध घोषित कर दिया। परन्तु "सरस्वती" के पाठकों को ज्ञात होगा कि अँगरेज़-सरकार तथा फ़रासीसी-सरकार के बीच एक "नौ-सैनिक-गुप्त-सन्धि" है और इसका पता जब अमरीका के संयुक्त-राज्य, जर्मनी, ब्रिटेन के पूर्व-सखा इटली को मिला तब उन्होंने बड़ा आन्दोलन मचाया और ब्रिटेन-फ्रांस को बदनीयत बतलाया। इस घटना के बाद सन्धि-कर्त्ताओं में बहुत विरोध बढ़ा। सन्धि का महत्त्व जाता रहा। यह रङ्ग-ढङ्ग देख कर ब्रिटेन ने उक्त गुप्त-सन्धि वापस ले ली और इसकी घोषणा कर दी। इस पर सार्वजनिक रूप में अमरीका के संयुक्त-राज्य ने सन्तोष प्रकट किया, पर छिपे छिपे सन्धि की शर्तों का पता लगाने की चेष्टा होती रही। जो बहुत-सी बातें मालूम हुईं उनके आधार पर संयुक्त-राज्य का कहना है कि वह सन्धि अमरीका के विरुद्ध थी। इस पर बहुत रुष्ट होकर उसने ब्रिटेन और फ्रांस को एक कड़ा नोट लिखा है। दूसरी ओर ब्रिटेन के पत्रों में एक स्वर से यह पुकार मची हुई है कि ग़लत-फ़हमी फैलने से पूर्व-सन्धि की शर्तें छाप क्यों नहीं दी जातीं। अपने अल्पकालीन कार्य-काल में लार्ड कशेंडेन (Lord Cushendon) महोदय ने ब्रिटेन की बड़ी भारी बदनामी करा दी।

दूसरी ओर राष्ट्र-परिषद् की बैठकें जिनेवा में प्रारम्भ हो गई हैं। उनकी समाप्ति का अवसर भी आ गया, पर निःशस्त्रीकरण के विषय में कोई निश्चय न हुआ। इस अधिवेशन का सबसे बड़ा महत्त्व इसी प्रश्न के कारण था। निःशस्त्रीकरण की जो 'प्रेपरेटरी कमेटी' (Preparatory Disarnament Committee) बैठी थी वह एक उप-समिति-मात्र बना कर रह गई। इसकी बैठक में फ्रांस तथा जर्मनी में बड़ा मतभेद हो गया। १८ सितम्बर को दो घंटे तक लगातार बहस होती रही और महाशय पॉय बॉनकूर (Mr. Pani Bancour) तथा जर्मन-प्रतिनिधि श्री हर-बर्नस्टॉफ़ (Herr Bernstorff) के दो अलग प्रस्तावों पर—जिनका आशय यह था कि राष्ट्रों को आमन्त्रित कर शीघ्रातिशीघ्र निःशस्त्रीकरण-सम्बन्धी मत-भेद दूर कर स्थायी समझौता किया जाय—यह निर्णय हुआ कि एक 'ड्राफ़्टिंग कमिटी' (Drafting Committee) बना दी जाय जो जर्मन प्रस्तावों के आधार पर सर्व-महाराष्ट्रों के पास भेजने के लिए प्रस्ताव का एक ख़ाका तैयार करे। यह निर्णय 'थर्ड कमिटी' ने किया। 'प्रिपरेटरी डिसआर्मामेंट कमिटी' के सभापति श्रीलूडन (Mr. Loudoun) ने प्रस्ताव किया था कि 'थर्ड-कमिटी' सम्पूर्ण नौ-सैनिक शक्तियों से आग्रहपूर्वक अनुरोध करे कि वे शीघ्रातिशीघ्र पेरिस या लन्दन में अपनी बैठक कर सम्पूर्ण मत-भेदों का निर्णय कर लें ताकि कमिटी की आगामी बैठक शीघ्र की जा सके। पर शुरू में ही लार्ड कशेंडेन ने यह कहकर उनकी बात काट दी कि आपकी बात शायद किसी को मान्य न हो। "ड्राफ़्टिंग कमिटी" की भी बैठक हो गई। इसने जर्मन तथा फ्रेंच प्रस्तावों को मिलाकर यह प्रस्ताव किया है कि सन् १९२८ के अन्त में अथवा सन् १९२९ के प्रारम्भ में शीघ्रातिशीघ्र निःशस्त्रीकरण की 'प्रिपरेटरी कमिटी' की बैठक हो जानी चाहिए। ब्रिटेन से यह अनुरोध किया गया है कि निजी तौर पर वह सभी महाशक्तियों से बातचीत कर मतभेद को दूर करा दे। समझौता होते ही प्रिपरेटरी कमिटी की बैठक की तारीख़ भी लन्दन ही तय करे। इस सम्बन्ध में अन्तिम समाचार यह है कि जर्मन-प्रतिनिधि प्रस्ताव से असहमत हैं। परिषद् की बैठक भी समाप्त होने को आई, अतएव क्या परिणाम होगा यह कहना कठिन है, किन्तु इन अवसरों पर रूस की ख़ामोशी से ऐसा अनुमान होता है कि समझदार शक्तियाँ सब प्रयास निष्फल समझती हैं। निःशस्त्रीकरण के विषय में ड्राफ़्टिंग कमिटी के निर्णयों के विषय में थर्ड कमिटी के जो प्रस्ताव हैं उनको जर्मन-प्रतिनिधि बर्नस्टाफ़ के पूर्णतया अस्वीकार कर देने का समाचार पीछे मिला है। इससे पता चलता है कि जर्मन-प्रतिनिधि ने इस आधार पर कि १९२८-२९ में केवल प्रिपरेटरी डिसआर्मामेंट का ज़िक्र किया जा रहा है, प्रधान निःशस्त्रीकरण सम्मेलन का कुछ ज़िक्र ही नहीं है, इसे अस्वीकार कर दिया। विवश हो कर समिति ने प्रस्ताव को ड्राफ़्टिंग कमिटी के विचारार्थ पुनः वापस किया। प्रस्ताव पुनः वापस आने पर पास हो गया। उसने प्रिपरेटरी कमीशन के सभापति से यह अनुरोध किया

हैं कि वे भिन्न भिन्न सरकारों की इस विषय में मतभेद-निर्णय करनेवाली चेष्टाओं तथा स्वीकृतियों की जानकारी रक्खे ताकि १९२८ के अन्त या २९ के प्रारम्भ में अपनी समिति का शीघ्र अधिवेशन करा सकें। जर्मन-प्रतिनिधि इस निर्णय से भी प्रसन्न नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि उन्होंने अपना मत प्रकट करने का अधिकार उस समय तक के लिए स्थगित रक्खा है जब तक समिति की रिपोर्ट परिषद् के सामने पेश न हो जाय।

३—निग्रो-जगत् और पश्चिमी संसार

दक्षिणी अफ़्रीका, पश्चिमी अफ़्रीका, पूर्वी अफ़्रिका तथा मलाया इत्यादि प्रदेशों से वहा के आदिम-निवासियों के प्रति गोरी-जनता के दुर्व्यवहारों के सम्बन्ध में मर्मस्पर्शी समाचार प्रायः मिला करते हैं। आदिम-निवासियों के साथही भारतीयों के साथ किये गये दुर्व्यवहारों के भी समाचार नित्य आते हैं। मोम्बासा-प्रदेश में भारतीयों ने अच्छी अच्छी उर्वरा भूमि जङ्गल काटकर खेती के लिए बड़े परिश्रम से तैयार की थी। किन्तु हाल में ही मोम्बासा-सरकार ने सूचना निकाली है कि भूमि का बटवारा काले-गोरे के हिसाब से किया जायगा और जो उर्वरा भूमि (निश्चित सीमा के भीतर) भारतीयों के हाथ में है वह योरपीयों को लौटा देनी होगी। इसके पूर्व ही सन् १९२३ में हिज़ मैजिस्टी की सरकार ने यह घोषणा निकाली थी कि वहा सबके साथ समान व्यवहार होगा। इसी घोषणा के आधार पर भारत-सरकार ने उपर्युक्त आज्ञा को रद करने की प्रार्थना की। इसके उत्तर में मोम्बासा-सरकार ने यह सूचना दी कि १९२३ की घोषणा के पूर्व की सभी उर्वरा भूमि क़ानून से योरपीयों की है। उसके बाद की ख़रीदी भूमि के स्वामी जायज़ हैं। भारत-सरकार अब इसी क़ानूनी प्रश्न पर केनिया की जनता की ओर से अदालत में दावा करेगी। अस्तु, इसी प्रकार सेनेगल, सूडान आदि में भारतीयों की तो कोई गणना नहीं, वहां के आदिम-निवासी बड़ी बुरी अवस्था में हैं। उन्हें राजनैतिक, आर्थिक आदि कोई अधिकार प्राप्त नहीं। आरेंज फ़्री स्टेट (Orange Free State) में यह क़ानून है कि वहां का असली निवासी निग्रो चाहे कितना ही गुणी, पढ़ा-लिखा, सम्पन्न तथा सुयोग्य हो, पर वह किसी प्रकार की भी अचल सम्पत्ति (गृह, भूमि आदि) रखने का अधिकारी नहीं है। संसार में सबसे धनी अमरीका में रेड इंडियन (असली निवासी) कितनी दुर्गति में है, इसका परिचय 'सरस्वती' के पाठकों को कराया जा चुका है। संसार में अपना कोई स्थान न देखकर निग्रो-जनता ने अपना एक सङ्गठन 'विश्व-निग्रो उन्नति-संस्था' (Universal Negro Improvement Association) के रूप में किया है। इसके सभापति श्रीमार्कस गार्वी (Mr Marcus Garvey) संसार का परिभ्रमण कर 'निग्रो जाति के अन्तर्राष्ट्रीय पद-महत्त्व' की वृद्धि के लिए चेष्टा कर रहे हैं। लन्दन के अल्बर्ट हाल (Albert Hall) में आपने अभी एक भाषण दिया है, जिसका सूचनात्मक अंश इस प्रकार है—

"पश्चिमी जगत् काले मनुष्य के श्रम पर जी रहा है.. लङ्काशायर की रुई की मिलें, लिवरपूल का बन्दरगाह इस बात के साक्षी हैं कि हम कालों ने ब्रिटिश-साम्राज्य के लिए क्या किया है। वह रुई, जिसका तुम उपयोग करते हो और जिससे तुम्हारी मिलें चलती रहती हैं, सदियों से संयुक्त-राज्य (अमेरिका) के दक्षिण से आती है—जो निग्रो-श्रम का परिणाम है। उसी रुई के बल पर तुम्हारा उद्योग पनपा है और तुम महान् ब्रिटिश-साम्राज्य बढ़ा सके हो।..... पूर्व और पश्चिम अफ़्रीका में काला आदमी गोरों का धन बढ़ाने के लिए कितना जी-तोड़ परिश्रम कर रहा है। ..महासमर के समय तुमने हमारी सहायता मांगी और सेनेगल, सूडान, पश्चिमी और पूर्वी अफ़्रीका, वेस्ट इंडीज़ तथा संयुक्त-राज्य (अमेरिका) से हम बीस लाख काले तुम्हारी सहायता के लिए गये। हमारी सन्तान (जाति) के ख़ून से फ़्लैंडर्स (Flanders) का युद्ध-क्षेत्र सना हुआ है और हमारी हड्डियां वहाँ गड़ी हुई हैं" उपर्युक्त कथन से निग्रो लोगों के वर्तमान मनोभाव का परिचय मिल जाता है।

४—अमरीका के राष्ट्रपति

अमरीका के संयुक्तराज्य के राष्ट्रपति की गद्दी के लिए दो उम्मीदवार थे। प्रजातन्त्र-दल के श्री स्मिथ

तथा गणतन्त्र-दल के श्रीहूवर। दोनों का सङ्ग्राम ख़ूब ज़ोरों पर रहा। चुनाव का दिन निकट आते आते दो बातें और भी साफ़ हो गईं। अभी तक अलफ्रेड स्मिथ साहब रोमन कैथोलिक होने से निन्दित ठहराये जाते थे, क्योंकि उनका धर्म उन्हें बाध्य करता है कि राज्य तथा गिर्जाघरों का सम्बन्ध हो! प्रथम धर्म फिर राजनीति! किन्तु ओकलहामा की एक सभा में उन्होंने ज़ोरदार शब्दों में कह दिया कि "मैं नहीं चाहता कि कोई रोमन कैथोलिक धार्मिक कारणों से मुझे मत दे। मैं धर्म का राजनीति से कुछ भी सम्बन्ध नहीं मानता। अमरीका के शासन-विधान में मूल से ही गिर्जाघर राजनीति से पृथक् रक्खे गये हैं। सच्चा नागरिक मुझे धर्म के कारण मत न दे।" उनका यह व्याख्यान बड़ा महत्त्वपूर्ण रहा। उनके विरोधियों की एक ज़बर्दस्त शिकायत जाती रही। इधर हूवर ने भी एक विषय में अपनी स्पष्ट राय देकर प्रजातन्त्र-दल के गहरे आक्षेपों का एक-दम समाधान कर दिया। 'न्यू जेरेसी' के 'न्यू वर्क' में एक प्रभावशाली व्याख्यान देकर आपने स्पष्ट कर दिया है कि विदेशी माल पर जो कड़ी चुंगी लगती थी वह लगेगी। साथही अमरीकनों के बाहर जाकर बसने के सम्बन्ध में कड़ी रुकावटें की जायँगी। आपने यह भी घोषित किया कि कोयले और वस्त्र-व्यवसाय को इस समय सहायता की नितान्त आवश्यकता है और वे अपनी पूरी शक्ति लगाकर उनकी सहायता करेंगे। स्मिथ ने अपनी विजय के लिए कृषकों में आन्दोलन किया और हूवर ने उद्योग-धन्धेवालों और व्यवसायियों में। सौभाग्यवश विजय प्राप्त की हूवर साहब ने ही। संयुक्त-राज्यों के प्रेसीडेंट-पद के लिए अब यही निर्वाचित होंगे।

५—डच-अमरीकन तैल-सङ्ग्राम

डच-अमरीकन तैल-संग्राम अर्थात् 'डच-शेल-पेट्रोलियम' कम्पनी (Dutch Shell Petroleum Company) और स्टैंडर्ड ऑयल कम्पनी (Standard Oil Company) का तेल के व्यवसाय का सङ्ग्राम वर्षों से चला आ रहा था। वह कुछ समय के लिए शान्त होगया है। डच-कम्पनी को अँगरेज़ों का साहाय्य प्राप्त था और है तथा स्टैंडर्ड कम्पनी को अमरीका के संयुक्त-राज्यों की सरकार का। इसी कारण जब स्टैंडर्ड कम्पनी ने रूसी तेल ख़रीदकर भारत तथा अन्य अँगरेज़ी राज्यों में बेंचा था तब तेल के ख़रीददारों को ख़ूब लाभ हुआ। परन्तु झगड़े की जड़ दूसरी ही थी। दोनों देशों में इस विषय में घोर मत-भेद था कि एक दूसरे के देश की भूमि में दोनों के आदमी तैल-क्षेत्रों को खोद सकते हैं अथवा नहीं। परन्तु इसी सितम्बर के तृतीय सप्ताह में समझौता हो गया। डच-सरकार ने स्वीकार किया है कि डच ईस्ट इंडीज़ मे अमरीकन तैल-क्षेत्र खोद सकेंगे और उनका उपयोग कर सकेंगे।

६—स्पेन में भीषण अतिक्रान्ति

स्पेन में प्राइमो डि रिवेरा (Primo de Rivera) का सैनिक शासन उतना ही अप्रिय है जितना इटली में मुसोलिनी का। किन्तु प्राइमो ने व्यवस्थापक महासभा की नियुक्ति की सूचना प्रकाशित की थी तथा आश्वासन दिया था कि शीघ्र ही प्रजातन्त्रात्मक शासन का जन्म होगा। इसी कारण कुछ दिनों तक विरोधाग्नि प्रज्वलित न हुई। जिन्होंने महासभा की नियुक्ति की जल्दी मचाई वे कुछ ही मास हुए, सैकड़ों की संख्या में बोल्शेवी कहकर पकड़ लिये गये। इस कारण जनता का धैर्य्य जाता-सा रहा। राज्य के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने के अपराध में बिना किसी प्रमाण या न्याय के कैटीलोनिया आदि में हालही में बहुत ज़्यादा गिरफ़्तारियाँ की गई हैं। कहा जाता है कि स्पेन के शासन से इसे पृथक् करने के लिए षड्यन्त्र किया जा रहा था। इन गिरफ़्तार लोगों में कितने ही फ्रीमेसन, कितने ही पादरी, सोशलिस्ट तथा राजभक्त भी हैं। इस कारण सभी दलों में घोर द्वेष है। बारसीलोनिया के कृषक भीषण अतिक्रान्ति कर चुके हैं। १६ सितम्बर को उन्होंने प्राइमो के ऊपर गोली चलाकर उनकी हत्या करने की चेष्टा की थी, इसका भी संवाद मिला है। इसके बाद पता चला कि अवस्था क़ाबू में है। प्राइमो निर्द्वन्द हैं तथा स्वयं कैटिलोनिया में शान्ति-स्थापन तथा बार्सिलोनिया की जनता को शान्त करने की चेष्टा कर रहे हैं। दूसरी ओर यह भी समाचार

है कि स्पेन के बादशाह अलफ़ौंज़ो (Alfonso) के समर्थक कहीं दूसरी आग न भड़का दें, बादशाह के ऊपर भी कड़ी निगरानी होती है। इस समय स्पेन की डांवाडोल राजनीति को सँभालना प्राइमो ऐसे साहसी का ही काम हो सकता है। बाहरी दर्शक के लिए अवस्था क़ाबू से बाहर दीखती है। मैड्रिड में प्राइमो की सेना सब प्रकार से उनकी सहायता करने को तैयार है।

७—संसार की जन-संख्या

अर्थ-शास्त्रियों का विचार है कि संसार की जन-संख्या के ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाने पर व्याधि-द्वारा अथवा संग्राम-द्वारा उस बढ़ती का अन्त होकर सन्तुलन स्थापित हो जाता है। इसी कारण वे संसार की जन-संख्या का बहुत अधिक बढ़ जाना ही भावी संग्राम का लक्षण बतलाते हैं। किन्तु इस विषय में कुछ आश्चर्यजनक बातें प्रकट हुई हैं। वैज्ञानिकों ने निरन्तर जांच-पड़ताल कर जो निष्कर्ष निकाला है वह एक पेरिस के पत्र में प्रकाशित हुआ है। उसका कुछ अंश 'लिटरेरी डाइजेस्ट' (Literary Digest) ने उद्धृत किया है। इससे पता चलता है कि इस समय संसार की जन-संख्या १८,००० लाख है। किन्तु प्रसिद्ध जर्मन भौगोलिक प्रोफ़ेसर अलबर्ट पेंक साहब का कथन है कि पृथ्वी पर अभी इससे पँचगुने आदमियों के रहने और उनके पालन-पोषण के लिए स्थान तथा साधन हैं। इनका तो विचार है कि कम से कम ८ अरब आदमी सुख-पूर्वक जीवन बिता सकते हैं। दूसरे जर्मन-भौगोलिक प्रोफ़ेसर अलोईं फ़िशर महोदय का कथन है कि संसार की जन-संख्या ६२,००० लाख मिलियन से अधिक बढ़ ही नहीं सकती, यद्यपि वह इससे भी अधिक आदमियों को पाल सकता है। डाक्टर बेंडर का कथन है कि योरप अवश्य ८० प्रतिशत आबाद है और उसकी जन-संख्या के ज़रूरत से ज़्यादा बढ़ जाने की पूर्ण आशा है, किन्तु फ़िशर के अनुसार योरप ५,६०० लाख आदमियों को खिला सकता है और इस समय उसकी आबादी केवल ४,६०० लाख के लगभग है—सौ लाख बढ़ने में कुछ समय लगेगा। फ़िशर के अनुसार एशिया १५,००० लाख तथा पेंक के अनुसार ७०,००० लाख को खिला सकता है, किन्तु उसकी वर्तमान आबादी केवल १०,३०० लाख ही है। अर्थात् वह ७० प्रतिशत आबाद है। उत्तरी अमरीका की आबादी इस समय ४,१५० लाख है, किन्तु फ़िशर के मतानुसार वह ८,००० लाख और पेंक के मतानुसार १३,००० लाख को खिला और पाल सकता है। दक्षिण-अमरीका अपनी मौजूदा आबादी से १०,००० लाख अधिक आदमियों को पाल सकता है। पेंक का कथन है कि १,४०० लाख की आबादीवाला अफ़्रीका २३,००० लाख आदमी पाल सकता है, पर फ़िशर के हिसाब से केवल १५,६०० लाख को ही। आस्ट्रेलिया की ६० लाख आबादी है, पर वह ४,५०० लाख को पाल सकता है। इस प्रकार अफ़्रीका और आस्ट्रेलिया में केवल ७ और ८ प्रतिशत आबादी है। बुड्ढे योरप की बढ़ी हुई आबादी इन देशों में खप जायगी। अस्तु, इस रोचक सूची को पढ़कर अर्थशास्त्रियों की आत्मा यह सोचकर शान्ति पावेगी कि संसार की अशान्ति आबादी की बढ़ती के कारण नहीं है।

८—तिब्बत की नवीन नीति

इधर वर्षों से ज़ोरों के साथ तिब्बत में वर्तमान युग की लहर दौड़ रही थी। जब से ल्हासा को ब्रिटिश मिशन गया था उसी समय से वहां के शासक दलाई लामा के नवीन आविष्कारों के प्रति प्रेम उत्पन्न हुआ था। ल्हासा में बिजली लगी। सरदारों ने मोटर ख़रीदे। टेलीफ़ोन चल निकला। इस प्रकार आराम व आराइश की चीज़ें बढ़ने लगीं। परन्तु १९२८ से इन सबका एकाएक लोप होने लगा है। बिजली की रोशनी प्राचीन स्मृति-मात्र के लिए केवल पोटाला (Potala) में रह गई है। सरकार की कड़ी आज्ञा हो गई है कि विदेशी माल एक-दम न ख़रीदा जाय, विदेशियों का साथ लेश-मात्र भी सम्पर्क न रक्खा जाय। मोटरों का प्रयोग रोका जाय। वही शासक जो कुछ वर्ष पूर्व इतना सुधारक था, पीछे क्यों लौट पड़ा, इसके रोचक कारण हैं। दलाई लामा ने देखा कि उनकी अधिकांश प्रजा इस नवीनता के विरुद्ध है। हाल का प्रसिद्ध कृषक-विद्रोह भी प्राचीन परिपाटी के विपरीत जाने के

कारण हुआ था। इसलिए अपनी स्थिति को ख़तरे से बचाने के लिए लामा महोदय पूर्व-स्थिति को पुनः लौट पड़े है। सन् १९२४ में न्यू-यार्क के प्रोफ़ेसर रोयेरिच एवरेस्ट एक दल लेकर मौट एवरेस्ट की चोटी की खोज करने तथा नवीन अनुभव प्राप्त करने के लिए भारत आये थे। उस समय जब दलाई लामा के विचार आज ऐसे न थे। फिर भी ब्रिटिश-सरकार ने इस दल को सूचित किया कि वे शिकम से होकर तिब्बत न जा सकेंगे, आज्ञा न मिलेगी। तब डाक्टर साहब को काश्मीर जाकर, सेंट्रल एशिया होते हुए, काशगर होकर जाना पड़ा। ४ वर्ष तक ये ख़ूब घूमें और इनका सबसे ख़तरनाक काम मङ्गोलिया से लासा होकर भारत आने की चेष्टा थी। दलाई लामा ने इन्हें गिरिफ़ार कर लिया और ५ मास तक इतनी बुरी तरह क़ैद रक्खा कि इनके ५ साथी मर गये। भारत आकर इन्होंने अपने जो अनुभव पत्रों में छपवाये है वे बड़े रोचक हैं और उनसे पता चलता है कि तिब्बतवासी अधिकांशतः बौद्ध नहीं हैं। न तो वे धर्म को जानते है और न बर्बरता में किसी से कम है। मंगोलिया के लामा अधिक पढ़े-लिखे होते है। डाक्टर साहब ने कई रोचक चित्र भी खींचे है, पर तिब्बत की पुलिस उन पर कड़ी निगरानी रखती थी और जब कभी वे कोई चित्र खींचना चाहते थे, पुलिस यह कहकर हस्तक्षेप करती थी कि तुम विदेशी हमारे राज्य का नक़शा खींच कर आक्रमण करोगे। अस्तु, लामा की सबसे ताज़ी यह आज्ञा है कि उद्योग, शिक्षा आदि में वर्तमान रोशनी के अनुसार जो सुधार किये गये है, सब रद किये जायँ। अब एवरेस्ट की खोज के दल को तिब्बत में घुसने की आज्ञा न मिलेगी, यह सबका विश्वास है।

९—इटली-यूनान-सन्धि

बहुचर्चित तथा अनुमानित इटली-यूनान-सन्धि हो गई। श्री वेनेज़ुयेले के प्रधान मंत्री होते ही यह आशा तथा विश्वास-सा होगया था कि यूनान-सरकार इटली की सरकार से सन्धि कर लेगी। अब अनुमान के पूर्णतया सच होने में केवल इतना ही बाक़ी है कि तुर्किस्तान भी इसी सन्धि में शामिल हो जाय। "मित्रता तथा समझौते" की सन्धि हो गई। सन्धि की शर्तों में प्रधान बात यह है कि जब दो में से किसी राज्य पर, बिना इनके भड़काये कोई बाहरी तीसरी शक्ति आक्रमण करेगी उस समय मित्रराज्य तटस्थ रहेगा। तटस्थता के अलावा किसी एक पर आक्रमण होने पर तटस्थ राज्य उसे सम्पूर्ण राजनैतिक सहायता देगा। यदि दोनों पर समान विपत्ति पड़ेगी तो एक साथ मिलकर कार्य किया जायगा। सन्धि की शर्तों का यही प्रधान सारांश है। योरप के मध्य-भाग की चञ्चल राजनैतिक परिस्थिति में यह सन्धि बड़ा महत्त्व रखती है।

स्वदेश

१—व्यवस्थापक महासभा के कार्य

व्यवस्थापक महासभा के पिछले अधिवेशन में कई एक महत्त्व की बातें हुई हैं। इस अधिवेशन में अध्यक्ष पटेल ने कई अवसरों पर सभा की प्रतिष्ठा, अध्यक्ष के पद-महत्त्व तथा सार्वजनिक स्वत्व की रक्षा के लिए सरकार के प्रति बड़ी कड़ाई का व्यवहार किया। सरकार की ओर से भी अध्यक्ष के शासन को स्वीकार करते हुए चार अवसरों पर क्षमा-याचना की गई। सरकार के व्यवस्थापक महासभा-विभाग के अन्तर्गत व्यवस्थापक महासभा का दफ़्तर है। अतएव उसके सेक्रेटरी पर अध्यक्ष का कुछ भी नियन्त्रण नहीं होता। इसी कारण अध्यक्ष महोदय ने सरकार से आग्रह किया था कि वह दोनों विभागों को अलग कर दे। इस अधिवेशन में अध्यक्ष ने इस विषय के सम्बन्ध की अपनी सारी चेष्टाओं तथा सरकार की निरंकुशता की बातों का उल्लेख किया। अध्यक्ष की दृढ़ता देखकर सरकार को एक प्रकार से उनकी बात स्वीकार करनी पड़ी। कहा जाता है कि समाचार-पत्रों में अध्यक्ष पटेल के विरुद्ध जो अपमानजनक आन्दोलन किया गया था उसमें सरकारी कर्मचारियों का हाथ था। इस पर सर-

कार की तीक्ष्ण आलोचना की गई और परिणाम-स्वरूप सरकार को माफ़ी माँगनी पड़ी। दिल्ली में अध्यक्षों (सभी प्रान्तीय कौंसिलों के सभापतियों) का जो सम्मेलन हुआ था उसने पटेल महोदय से प्रान्तीय दौरा करने की प्रार्थना की थी। साथ ही लार्ड रीडिंग ने भी उनको सलाह दी थी कि वे अपने पूर्ववर्त्ती अध्यक्ष की भाँति ही कार्य किया करें। इसी कारण पटेल महोदय ने प्रान्तीय दौरा किया था, जिसके ख़िलाफ़ 'टाइम्स आफ़ इंडिया' ने अध्यक्ष के विरुद्ध अपमानजनक बातें लिखी थीं। इस पत्र ने तथा 'डेली टेलीग्राफ़' ने सभा की कार्यवाहियों की रिपोर्ट अपमानजनक रूप में प्रकाशित की जाती थी। इसीलिए अध्यक्ष महोदय ने दोनों पत्रों के संवाददाताओं—श्रीबर्ट और राइस—का प्रवेश-टिकट रद किया और आज्ञा दी कि जब तक दोनों पत्र पूर्ण क्षमा नहीं माँगेंगे, उन्हें संवाददाता-गैलरी में बैठने की आज्ञा न मिलेगी। यह निर्णय सभा का कार्य समाप्त होने पर किया गया ताकि पत्रों को क्षमा-याचना का पर्य्याप्त समय मिले। अस्तु, अधिवेशन में इसके अतिरिक्त और भी कई ऐतिहासिक कार्य हुए। हज के यात्रियों के कष्टों की जाँच करने के लिए एक समिति नियुक्त हुई। शिक्षा-सम्बन्धी जांच के लिए भी एक समिति नियुक्त हुई। विवाह-वय के सम्बन्ध में जांच करनेवाली समिति में जिसका व्यय सभा की अर्थ-कमिटी ने इस कारण नामंज़ूर किया था क्योंकि उसमें सभा के निर्वाचित सदस्य नहीं थे, चार सदस्य और जोड़ दिये गये तथा कार्य के पूर्ण सु-सम्पादन का आदेश किया गया। भारत के समुद्र-तट का व्यवसाय भारतीयों के हाथ में हो और भारतीय कम्पनियों को अधिक सुविधायें दी जायँ, इस सम्बन्ध का श्रीहाजी का कोस्टल बिल एक सेलेक्ट कमिटी के सिपुर्द हुआ। इस विषय में यह जान लेना चाहिए कि प्रत्येक प्रान्त की सरकारें बरमा और बङ्गाल को छोड़कर इस बिल के पक्ष में तथा भारतीय हित के विशेष ध्यान रखने के विषय में समर्थन की रिपोर्टें दे चुकी हैं। किन्तु बरमा तथा बङ्गाल की नामञ्ज़ूरी का कारण यह बतलाया जाता है कि वहां गोरी-कम्पनियों के जहाज़ ख़ूब कमाते हैं। इनमें तीसरे तथा ड्योढ़े दर्जे के यात्रियों की दुर्दशा शोचनीय होती है। कहते हैं कि इन प्रान्तों की सरकारें गोरों के हित के विचार से इस बिल का विरोध कर रही हैं। किन्तु सबसे बड़ा कार्य अध्यक्ष के निर्णायक मत से "सार्वजनिक रक्षा-बिल" (Public Safety Bill) का रद होना है। सरकार ने इस धारा को पास कराने के लिए बड़ी चेष्टायें कीं। पक्ष के बहुमत से यह बिल चार दिन के ही भीतर एक सिलेक्ट कमिटी के सिपुर्द हुआ। उसने थोड़ी-सी नरमीम कर इसे वापस किया। इसे बोल्शेवी बिल भी कहते हैं। इसका प्रधान आशय भारत से बाहर से आकर बोल्शेवी-प्रचार करनेवालों को निर्वासित करना था। परन्तु सभा ने इसे रद किया। वायसराय महोदय ने न तो अपनी सिफ़ारिश कर इसे पुनः विचारार्थ भेजा और न विशेष अधिकार से मंज़ूर ही किया। सरकार ने 'प्रेस'-सम्बन्धी नवीन धारा पेश ही नहीं की। व्यवस्थापक महासभा के इतिहास में यह अधिवेशन चिर-स्थायी महत्त्व का रहेगा। उपरिलिखित श्रीहाजी के 'कोस्टल बिल' के सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि ब्रिटिश उद्योगी-संघ (Federation of British Industries) की कार्यकारिणी समिति ने भारत-सचिव श्रीबर्केनहेड को लिखा है कि इस धारा की स्वीकृति से ब्रिटिश व्यवसायियों की घातक हानि होगी इसलिए सचिव इसे स्वीकार न करें।

२—सायमन कमीशन

१२ आक्टोबर को बम्बई में सायमन-कमीशन का आगमन तथा हड़ताल-द्वारा स्वागत हुआ। सर सायमन ने वायसराय महोदय को लिखा था कि यदि भारतीय व्यवस्थापक महासभा सायमन-कमिटी के लिए चार सदस्य नियुक्त करने को तैयार न हो तो वे स्वयं तीन सदस्य राज्य-परिषद् से चुनवा दें तथा व्यवस्थापक महासभा के सदस्यों में से चार सदस्य नामज़द कर दें। यदि सदस्य निर्वाचित करने का सवाल सरकार व्यवस्थापक महासभा में उठाती तो उसे भय था कि अध्यक्ष पटेल आज्ञा न देते। अतएव वायसराय महोदय ने व्यवस्थापक महासभा से स्वयं चार

या छः सदस्य चुन लिये हैं। राज्य-परिषद् से तीन सदस्य चुने गये हैं। इस प्रकार परिषद् से सर संकरन नायर, सर आर्थर फ्रूम, तथा राजा नवाब अलीखां और महासभा से सरदार शिवदेवसिंह नवाब जुल्फ़िकार अलीखां, सर हरीसिंह गौड़, डाक्टर ए० सुहरावर्दी, श्री किकाभाई प्रेमचन्द्र, और रावबहादुर एम० सी० राजा (अछूतों के मनोनीत प्रतिनिधि) सदस्य नियुक्त हुए हैं। वायसराय महोदय ने सर शंकरन नायर को समिति का अध्यक्ष चुना है। कमीशन के साथ यह समिति कार्य करेगी और इसका महत्त्व प्रान्तीय कमिटियों से अधिक होगा। सभी प्रान्तीय कमिटियों ने—मध्यप्रान्त को छोड़ कर—प्रान्तीय समितियां भी बना दी हैं, जिनकी नियुक्ति का कारण सरकारी चुने सदस्यों की सहायता का परिणाम बतलाया जाता है। अस्तु जो हो, सायमन कमीशन की सहयोग-समितियों की रचना हो गई। पहली आक्टोबर को बर्मिंघम में मज़दूर-सम्मेलन—ब्रिटिश मज़दूर-दल—का जो वार्षिक अधिवेशन—हुआ था, उसके सम्मुख कार्यकारिणी सभा ने वार्षिक रिपोर्ट पेश की थी। उसमें सायमन-कमीशन के विषय में कहा गया था कि भारतीय इसका अज्ञानतापूर्वक विरोध कर रहे हैं और उनके विरोध का प्रधान कारण इस विषय में कार्य्य करने का भारत-सरकार का दोषपूर्ण तरीक़ा है। चाहे जो हो, कमीशन ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

३—भारत में रुई की पैदावार

भारतीय केन्द्र-रुई-समिति (Indian Central Cotton Committee) की १७ वीं बैठक ३० जूलाई को हुई थी। सभापति डाक्टर क्लाउस्टन ने अपनी वक्तृता में बतलाया कि समिति की इतनी उन्नति उसके मंत्री डा० बर्ट के प्रयत्न का परिणाम है। गत सात वर्षों में समिति ने बड़ी उन्नति की है। समिति में सर्वप्रथम २८ सदस्य थे। अपने जीवन के पूर्व दो वर्षों में उसने रुई-विदेश-गमन एक्ट, रुई-गिनिंग-एंड प्रेसिंग एक्ट, इंडियन कॉटन सेस एक्ट (Cotton Transport Act, Cotton Ginning and Pressing Act, Indian Cotton Cess Act) का मसविदा तैयार किया। अन्तिम एक्ट के १९२३ में पास हो जाने के बाद समिति की सदस्य-संख्या ४३ हो गई। इसी समय समिति को रुपया मिला कि वह भारतीय रुई की उत्पत्ति पर खोज, जांच और सुधार के काम करे। समिति के कोष से ही सञ्चालित दो परमोपयोगी संस्थायें इस समय चल रही हैं—एक टेकनोलोजिकल लेबोरेटरी (Technological Laboratory) बम्बई में, दूसरी इन्स्टिट्यूट आव प्लान्ट इंडस्ट्री (Institute of Plant Industry) इन्दौर में है। पहली संस्था रुई के तन्तुओं की जांच और कताई के प्रश्न पर खोज करती है, और दूसरी उसकी पैदावार के प्रश्न पर। इसके अलावा रुई पैदा करनेवाले सभी प्रान्तों में यह समिति काम कर रही है। अच्छी श्रेणी मे किस प्रणाली-द्वारा रुई उत्पन्न की जाय, इस विषय की ६ स्कीमों का बम्बई-प्रान्त मे प्रयोग हो रहा है जिनके लिए स्थानीय सरकार ने भूमि दी है और समिति ने द्रव्य। मध्यभारत में दो, मदरास मे एक, संयुक्त-प्रान्त में एक तथा पंजाब में दो प्रयोगों की परीक्षा हो रही है। सन् १९२८ के जून तक इन प्रयोगों पर २४,१८,०००) ख़र्च किया जा चुका है। रुई के लिए बाज़ार बनाने और संगठित करने के लिए भी समिति ने एक बिल तैयार कर प्रान्तीय सरकारों के पास भेजा है। समिति-द्वारा प्रदत्त धन से पांच प्रान्तों ने रुई पैदा करनेवाले किसानों की माली हालत, रुई की खपत, बाज़ार आदि पर जाँच कराई है। रुपया लगाकर रुई की पैदावार बढ़ाने के लिए खोज कराई जा रही है तथा इस खोज का परिणाम एक दो वर्ष में निकल आयेगा। समिति-द्वारा नियुक्त कई उपसमितियों की—सिन्ध, ख़ानदेश आदि की रिपोर्ट निकल गई। आगामी अप्रैल की पैदावार की भविष्यवाणी करते समय बम्बई, बरोदा, भड़ोच, मैसोर तथा हैदराबाद की सरकारें निश्चित आँकड़े बतला सकेंगी। कई देशी रियासतों ने काटन गिनिंग, प्रेसिंग एक्ट के अनुसार अपने यहाँ भी क़ानून बनाये हैं। भारतीय रुई की पैदावार बढ़ाने में बहुत काफ़ी खोज हो गई है और इस व्यवसाय में शीघ्र ही परिवर्तन होना सम्भव दीखता है।

४—सरकारी अपव्यय

भारतीय सैनिक, नौ-सैनिक, सैनिक इन्जीनियरिंग विभाग, तथा अन्य केन्द्रीय सरकार के १९२६-२७ के व्यय की सरकारी जाच करके अकाउंटेंट जेनरल (Accountant General) ने जो रिपोर्ट दी है उसमें उन्होंने कई स्थान पर कई अफ़सरों के घोर अपव्यय बतलाये है। यह तो रिपोर्ट की कड़ी टीका से पता चलता है कि फ़िज़ूलख़र्ची के लिए कई अफ़सरों से नाराज़गी प्रकट की गई है, पर दण्ड किसी को नहीं दिया गया है। नमक-विभाग में २०० जोड़े पहिये और चालीस मन के सौ नांदों की ज़रूरत थी। आर्डर देते समय ठीक नाप और क़िस्म न बतलाई गई। पहियों का मूल्य रेलवे महसूल छोड़ कर छः हज़ार रुपये पड़ा, पर पीछे पता चला कि वे छोटे और बे-मतलब हैं। बड़ी मुश्किल से एक तिहाई दाम में वे नीलाम कर दिये गये। एक अफ़सर की रिपोर्ट पर सरकार ने २२० जोड़े पहियों की और मंज़ूरी दे दी। १०,३०७) के पहिये आ गये, पर अकाउंटेंट जेनरल की रिपोर्ट है कि 'सरकार से ग़लत बात बतलाई गई। उन चीज़ों की ज़रूरत नहीं थी।' रिपोर्ट के ही शब्दों में ६,३३५) 'अधिक' दाम देकर बिना ज़रूरत के सरकारी छापेख़ाने में एक क़िस्म के टाइप मँगाये गये।' इसी समय शिमला सेंट्रल प्रेस के सरकारी प्रेस के साथ मिला दिये जाने के बाद वे टाइप बिलकुल अनुपयोगी होने के कारण ३,४४२) के घाटे पर बेच दिये गये। सरकारी रिपोर्ट है कि उन टाइपों की इतनी ज़रूरत तक नहीं थी कि वे बँधे के बँधे पड़े रहे, खोले भी नहीं गये। देहरादून की एक्स-रे संस्था (X-Ray Institute) के लिए १४,१७५) का एक ऐसा यन्त्र मँगाया गया जो तीन माह में ही ख़राब हो गया। ६,६३२) का दूसरा यन्त्र मँगाया गया, जो रिपोर्ट के अनुसार, 'लापरवाही' से मंज़ूर कर लिया गया, पर बेकाम साबित हुआ। सरकारी आज्ञा हुई कि उसे बेच डालो, पर अभी तक वह नहीं बेचा गया। ग़बन करने के भी बहुत से उदाहरण अकाउंटेंट जेनरल ने दिये हैं। करेंसी-विभाग के एक उप-ख़ज़ाने में एक उप-अकाउंटेंट ने चार वर्ष के भीतर ५२,०००) का गड़बड़ कर दिया, पर तीन डिप्टी कमिश्नर जांच कर गये, किसी को पता न चला। निरीक्षण के समय सिर्फ़ दस्तख़त बना दिया जाता था। एक उप-कोषाध्यक्ष ने ५२,०००) का ग़बन किया, इत्यादि, इत्यादि।

दिल्ली तथा नई दिल्ली में जिन सरकारी आवासों में अफ़सर रहते हैं या अन्य लोग आकर टिकते हैं उनको जो फ़रनिचर (सामान) दिया गया है, उस पर १५ प्रतिशत के हिसाब से केवल ७५,०००) किराया मिलता है, परन्तु उसकी बनवाई में लगी पूँजी पर सूद, मरम्मत तथा ख़राबी मिला कर १,६७,०००) ख़र्च होता है। इस प्रकार सरकार को ९२,०००) लगातार घाटा होता है। किराये के सम्बन्ध में अगले वर्ष जांच होगी। नवीन पूँजी-समिति (Capital Committee) ने एक ठीकेदार को २०,०००) देकर एक देशी रियासत में उसके ठीके का काम बन्द करा दिया, यद्यपि क़ानून में 'फुटकर' काम के लिए नियुक्त ठीकेदार को कभी भी बिना हर्जाने के काम से हटा देने की शर्त है। राजनैतिक विभाग में सरहद की जातियों को ख़ुश रखने के लिए अफ़सर लाखों रुपया उत्सव करने, दावत और घूँस देने में ख़र्च करते हैं। इस सम्बन्ध में 'तोशाख़ाना नज़राने' के रूप में एक मुश्त रक़में ख़र्च की जाती हैं, जिनका ब्यौरा या वाउचर नहीं होता। इस सम्बन्ध में अकाउंटेंट जेनरल ने नवम्बर १९२७ तक के हिसाब में ३४,४१२) के ख़र्च पर विरोध प्रकट किया है और वह विरोध की पुस्तक (Objection Book) में दर्ज कर दिया गया है।

अकाउंटेंट जेनरल के ही कथनानुसार रिपोर्ट अधूरी है और ख़र्च में बड़ा गड़बड़ और लापरवाही की जाती है, जिसकी बहुत सी बातें दिखाई भी नहीं पड़तीं। भारत-सरकार का कहना है कि सरकारी ख़ज़ाने इत्यादि में इतने ज़्यादा गबन हो रहे हैं कि भारत-सचिव और सरकार दोनों ही परेशान हैं।

५—भारतीय सिनेमा-उद्योग

भारतीय सिनेमा-उद्योग की जांच के लिए अक्टोबर सन् १९२७ में भारत-सरकार ने जो समिति नियुक्त की थी

उसकी रिपोर्ट इस अगस्त में प्रकाशित हो गई। सिनेमा-व्यवसाय भारत की आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय महत्त्व का है इस कारण इस रिपोर्ट की बड़ी प्रतीक्षा थी। कमिश्नरों की सर्वसम्मत राय है कि साम्राज्य के ही फ़िल्मों के साथ रियायत दिखलाने की ज़रूरत नहीं। भारत-सरकार एक सिनेमा-विभाग खोले, जिसके लिए केन्द्रीय सरकार तथा प्रान्तीय सरकारें भी कुछ खर्च करें। बाहर से आनेवाले फ़िल्मों पर १५ प्रतिशत जो कर लगता है उसके अलावा ५ प्रतिशत कर लगा कर खर्च निकाला जाय। जो घटी पड़े, वह भारत-सरकार दे। इस प्रकार चार से पाँच लाख वार्षिक व्ययवाला यह विभाग खोला जाय, जिसमें क्रमशः विदेशी विशेषज्ञों के स्थान पर भारतीय रक्खे जायँ। सिनेमा-विभाग में एक सलाह देनेवाली समिति तथा प्रबन्ध के लिए एक सेंट्रल बुरो (Central Bureau) होगा। सलाह देनेवाली समिति में १९ सदस्य होंगे, जिनमें सभापति तथा ६ सदस्य ग़ैरसरकारी और ६ सरकारी होंगे। भारतीयों का बहुमत होगा। सेंट्रल बुरो में सिनेमा-विषय के विशेषज्ञ होंगे। सिनेमा-विभाग अन्य कार्यों के सिवा सलाह और व्यापारिक सहूलियत देने का भी प्रबन्ध करेगा। फ़िल्म बनानेवालों को सरकार उनकी बनाई तथा बम्बई के बोर्ड आव सेन्सर्स (Board of Censors) से पासशुदा फ़िल्म की ज़मानत पर अन्य फ़िल्मों के बनाने के लिए सरकार क़र्ज़ देगी। यदि फ़िल्म अधिक बनेंगे तो उनके लिए बाज़ार चाहिए। सिनेमा-भवनों आदि की कम संख्या होने से यह कठिन है। सिनेमा-भवन बनाने, चित्र-प्रदर्शक यात्री कम्पनियाँ बढ़ाने तथा साधनों के सम्बन्ध में चेष्टा की जायगी। अच्छे भारतीय फ़िल्म दिखलाये जायँ जो सिनेमा भारतीय चित्र नहीं दिखलाते वे अवश्य दिखलावें। इस उद्देश से दस वर्षों के लिए 'कोटा' (Quota)-प्रणाली काम में लाई जायगी। प्रत्येक सिनेमा-कम्पनी को जिसने पूर्व वर्षों में जो चित्र दिखलाये थे, यदि उनमें ५० प्रतिशत भारतीय फ़िल्म नहीं दिखलाये थे तो जितने भारतीय फ़िल्म उसने दिखलाये हैं उनकी अपेक्षा, सन् १९३० से ५ प्रतिशत प्रतिवर्ष अधिक दिखलाना होगा ताकि वह ५० प्रतिशत तक पहुँच जाय। सब सिनेमा कम्पनियों को इसके लिए बाध्य करना कठिन है, अतएव यह सहूलियत रक्खी गई है कि यदि किसी के कई सिनेमा थियेटर हों तो वह सब जगह के दिखलाये चित्रों के अनुपात से हिसाब लगाये। इस विषय में और भी कई नियम हैं। आयात फ़िल्मों पर कर की पुनः जाँच होगी। विदेशों में छपे भारतीय फ़िल्मों के साथ रियायत न की जाय। यहीं चित्र बनाने और छापने के कार्य को उत्तेजना दी जाय। आयात फ़िल्मों पर कर बढ़ाना ज़रूरी नहीं है। कच्चे फ़िल्मों पर कर न लगे। निश्चित शिक्षा देनेवाले चित्रों पर कम कर लगे। आयात सस्ते फ़िल्मों पर कर लगाया जाय। बाहर से आनेवाले फ़िल्मों की दुहरी कापी पर कर की रियायत न की जाय। इस विषय में (सिनेमा की कला में) दक्षता प्राप्त करने के लिए विद्यार्थी विदेश भेजे जायँ। कमिश्नरों का बहुमत है कि सरकार ऐसी चेष्टा करे कि विदेशी भारतीय सिनेमा-व्यवसाय पर कब्ज़ा न कर बैठें। अस्तु, स्थानाभाव से इस रिपोर्ट की यही महत्त्वपूर्ण बातें हैं।

६—भारत का शासन-विधान

भारतीय शासन-विधान लखनऊ के सर्वदल-सम्मेलन में स्वीकृत होगया। उसका सारांश इस प्रकार है।

विधान की रिपोर्ट एक प्रकार से सर्व-सम्मत है। इसकी ८७ सिफ़ारिशें हैं, जिनमें सर्व-प्रथम तो यह है कि भारतीय औपनिवेशिक स्वराज्य से घटकर कुछ स्वीकार न करेंगे। उनकी शासन-प्रणाली ब्रिटिश साम्राज्य के आत्मशासित उपनिवेशों-सी होगी। भारत-सचिव का दफ़्तर तोड़ दिया जाय। उनकी कौंसिल की ज़रूरत नहीं। भारतीय कामनवेल्थ का क़ानून बनाने की ताक़त बादशाह, मन्त्रणा-परिषद् और प्रतिनिधि-सभा मिलकर बननेवाली पार्लियामेंट को होगी। २१ वर्ष की अवस्था के ऊपर के स्त्री-पुरुष सभी वोट दे सकेंगे। प्रतिनिधि-सभा में ५०० सदस्य होंगे। सैनिक और विदेशी मामलों में भी क़ानूनी गुंजायश के मुताबिक प्रतिनिधि-सभा को अधिकार होगा। बादशाह का प्रतिनिधि एक गवर्नर-जनरल सबके ऊपर होगा और वह प्रधान-मन्त्री तथा ६ अन्य मन्त्रियों की एक शासन-समिति की सलाह से शासन

करेगा। इनको वह स्वयं नियुक्त करेगा। वह प्रतिनिधि-सभा के निर्णयों को रद भी कर सकता है। मन्त्री महासभा के प्रति ज़िम्मेदार होंगे। एक सबसे बड़ी अदालत (सुप्रीम कोर्ट) होगी, जिससे कहीं और अपील न हो सकेगी। उसकी आज्ञा से गवर्नर-जेनरल के पास अपील हो सकती है। प्रान्तीय शासन अपने प्रान्तीय सीमा के भीतर क़ानूनी रुकावटों को छोड़कर स्वतन्त्र होगा। इनकी एक प्रतिनिधि-सभा तथा गवर्नर-जेनरल-द्वारा नियुक्त गवर्नर होगा। इसका भी एक नियुक्त मंत्रिमण्डल होगा। प्रत्येक एक लाख की आबादी के पीछे एक प्रतिनिधि प्रान्तीय सभा में होगे। अलग निर्वाचन न होगा। सम्मिलित निर्वाचन होगा। जिस प्रान्त में मुसलमानों का अल्पमत होगा, वहाँ उन्हें और स्थान मिलेंगे। उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त-प्रदेश में हिन्दुओं के लिए विशेष स्थान होगा। पंजाब तथा बङ्गाल में किसी समुदाय के लिए विशेष स्थान न होंगे। विशेष स्थान केवल दस वर्ष के लिए तय किये जाते हैं। सिन्ध का पृथक्करण यदि आर्थिक-दृष्टि से संभव हो तो कर दिया जायगा। देशी रियासतों के साथ भारत-सरकार जो अधिकार बर्तती आई है, वही बर्ता जायगा। गवर्नर-जेनरल तथा उनसे विरोध होने पर सुप्रीम कोर्ट फ़ैसला करेगी।

* * *

इस रिपोर्ट ने देशी नरेशों के अधिकारों के विषय में यह निश्चय किया है कि उनके अधिकारों पर भारतीय कामनवेल्थ का उतना ही नियन्त्रण होगा जितना भारत-सरकार का है। इस निर्णय के बिलकुल विपरीत सर लेस्ली स्काट (Sir Leslie Scot) की यह स्कीम है कि देशी नरेशों का सम्बन्ध सीधे ब्रिटिश शाहंशाह से होना चाहिए, क्योंकि क़ानून से यही उचित है। सर चुन्नीलाल मेहता, विलायत जाते समय बीकानेर-नरेश के प्रधान-मन्त्री ने तथा स्वयं बीकानेर-नरेश ने कई सारगर्भित व्याख्यान देकर इस स्कीम का प्रतिपादन किया था और नेहरू रिपोर्ट की दलीलों को काटा था। राजाओं की कौंसिल के अध्यक्ष पटियाला-नरेश ने लन्दन जाते समय ट्रियून (Treun) में रायटर (Reuter) के प्रतिनिधि से कहा है कि रिपोर्ट की सिफ़ारिशें ग़लत हैं। भारत के लिए ब्रिटिश-सम्बन्ध अनिवार्य और आवश्यक है। देशी नरेशों का सम्बन्ध भारत-सरकार से हो ही नहीं सकता। उनकी सन्धि सीधे बादशाह से है तथा 'हम और हमारी प्रजा कभी भी ब्रिटिश भारत का शासन स्वीकार न करेगी'। भारत के राजनीतिज्ञ इन दलीलों का स्पष्ट उत्तर दे रहे हैं, जिन्हें यहाँ लिखने की आवश्यकता नहीं है। एक महत्त्वपूर्ण विषय की प्रगति बतलाने के लिए ही यह लिखा गया है। रिपोर्ट के सम्बन्ध में सर जान सायमन की राय है कि "यह बड़ी योग्यता के साथ तैयार की गई है और बड़ा सुन्दर बयान है।"

७—भारत में इंजीनियरिंग की शिक्षा

मध्यप्रान्त, बरार तथा बम्बई-प्रान्त के मिकानिकल इंजीनियरों (Mechanical Engineers) का वार्षिक सम्मेलन हाल में हुआ था। विक्टोरिया टेक्निकल इंस्टीट्यूट के आचार्य डाक्टर बर्ले (Dr. Burley) सभापति तथा श्रीफरीरजी भरूचा स्वागताध्यक्ष थे। दोनों वक्ताओं के सूचनापूर्ण व्याख्यानों से पता चलता है कि भारतीयों को मिकानिकल इंजीनियरिंग की शिक्षा प्राप्त करने के बहुत कम साधन और सहूलियतें हैं। जो पास कर भी लेते हैं उन्हें कार्यक्षेत्र में बहुत कम अवसर मिलता है। रेलवे बोर्ड तथा व्यापारी जहाज़ी बेड़े भारतीयों को लेते ही नहीं। परिणाम-स्वरूप एक ओर उन्हें नौकरी के लिए बड़ा संकुचित क्षेत्र मिलता है, दूसरी ओर जहाज़ी इंजीनियरिंग आदि में वे विशेष ज्ञान प्राप्त ही नहीं कर पाते। कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए, जिनमें इस विभाग में भी 'बायलर और फ़ैक्टरी' की देख-रेख के विभाग में भी भारतीयकरण (Indianisation) न करने तथा इस ओर मध्य प्रदेश की सरकार के वादों के पूरा न करने की तीव्र निन्दा की गई।

८—भारत में बालचर-आन्दोलन

क्रमशः भारत में बालचर-आन्दोलन बढ़ता जा रहा है। किन्तु साथ ही साथ बेडेनपावेल नामक ब्रिटिश संस्था तथा सेवासमिति के बालचरों की दो भिन्न संस्थाओं में मतभेद भी बढ़ता जा रहा है। पंजाब के

बेडेनपावेल-मण्डल के प्रान्तीय सेक्रेटरी ने 'न्यू-इंडिया' में एक लेख लिखकर अलग बालचर-आन्दोलन चलाने के कारण सेवासमिति की भर्त्सना की है। इसका जो उत्तर सेवासमिति बालचर-मण्डल के निःस्वार्थ कार्यकर्त्ता श्रीराम वाजपेयी ने प्रकाशित कराया है वह बड़ा सूचना-पूर्ण है। आपके उत्तर से हमें बहुत सी नई बातें मालूम होती हैं। आपकी विज्ञप्ति से पता चलता है कि जब भारत में बेडेन पावेल-मण्डल ने भारतीयों के समान श्रेणी में बालचर-आन्दोलन चलाने से हिचकिचाहट प्रकट की, तभी से सेवासमिति ने अपना अलग राष्ट्रीय संगठन किया। बेल्जियम, डेनमार्क, फ़िनलैंड, फ्रांस, इटली तथा लक्ज़ेंबर्ग आदि में बेडेन पावेल मण्डल के अतिरिक्त राष्ट्रीय बालचर-मण्डल भी हैं। ये सभी अन्त-र्राष्ट्रीय बालचर-मण्डल-संघ से रजिस्टर्ड हैं। सेवा-समिति की संस्था केवल बेडेन पावेल के प्रभाव व विरोध के कारण इस संस्था में रजिस्टर्ड नहीं की जा रही है। बाल-चर-मण्डल का सरकार से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। किन्तु पंजाब में दो स्कूल-इंस्पेक्टरों ने सेवा-समिति-बालचर-मण्डल स्थापित करनेवाले दो हेड-मास्टरों से मजबूरन वह संघ छुड़वाकर बेडेन पावेल से सम्बन्ध स्थापित कराया। स्काउट का चौथा नियम सभी स्काउटों को बराबर तथा भाई समझना है। किन्तु कलकत्ते में ही बेडेन पावेल स्काउटों के दो दल हैं—एक योरपियनों का, दूसरा हिन्दुस्तानियों का। इस प्रकार जाति तथा रङ्ग भेद माना जाता है। यह कहा जाता है कि बेडेन पावेल संघ एक साम्राज्य की संस्था है, किन्तु दक्षिण-अफ्रीका में बिलकुल उलटी बात हो रही है। वहाँ एक भारतीय पादरी श्री सिगामोनी (B. L E. Sigamony) ने जोहांसबर्ग में भारतीयों की एक स्काउट टोली तैयार की तथा स्थानीय बेडेन पॉवेल संस्था से उसको अपने अन्तर्गत करने की प्रार्थना की। परन्तु ग़ैर-योरपीय स्काउट माने जाने से अस्वीकार किये गये। श्रीसिगामोनी लन्दन और भारत से इस विषय में हस्तक्षेप की प्रार्थना करना चाहते हैं। १९२१ में बेडेन-पावेल-दल में सम्मिलित होने के पहले भारतीयों को भी दक्षिण-अफ्रीका के समस्त अपमान सहने पड़े थे। सेवा-समिति के बालचर देश की सेवा करना प्रधान कर्त्तव्य समझते हैं, इसी कारण देश, नरेश, महेश की शपथ लेते हैं, किन्तु बेडेन पॉवेल-दल में देश की शपथ ज़रूरी नहीं है। मरी (Murre) में ७ सितम्बर से २२ सितम्बर तक लाहौर के यंगमेन क्रिश्चियन एसोशि-एशन ने एक विशाल स्काउट-कैम्प की योजना की थी, किन्तु उसमें सेवा-समिति के बालचर नहीं आमन्त्रित किये गये थे। सेवासमिति कभी इस प्रकार की भेद या द्वेष-भावना नहीं रखती। इस समय सेवासमिति में २१ हज़ार बालचर हैं। इनकी गति, उन्नति तथा कार्य-भूमि नित्य प्रति बढ़ती जा रही है, जिसे किसी भी प्रकार की द्वेष-भावना क्षति नहीं पहुँचा सकती।

९—जंगलात का स्कूल

व्यवस्थापक महासभा की अर्थसमिति ने देहरादून के जङ्गलात-सम्बन्धी खोज की पाठशाला के भावी कार्यक्रम पर जाँच करने के लिए ४०,०००) रुपये की मञ्ज़ूरी दी है। भारत में जितने जंगल हैं और इन जंगलों के कारण जो राष्ट्रीय सम्पत्ति छिपी हुई है, उसके विषय में विशेष जान कारी व खोज के लिए इस विषय का एक विद्यालय होना अति आवश्यक है। एक करोड़ ग्यारह लाख रुपये इस विद्यालय में लगे हैं। समिति इसके भावी कार्यक्रम, कार्यक्षेत्र तथा गुञ्जाइशों के विषय में पता लगाकर पूरी रिपोर्ट देगी। अर्थसमिति ने कलकत्ते में सार्वजनिक स्वास्थ्य-संस्था तथा देहरादून में ओषधि-सम्बन्धी खोज की संस्था स्थापित करने का १९२२ का ही सरकारी प्रस्ताव स्वीकार कर लिया है। देहरादून की संस्था के लिए सरकारी खोज-विभाग तथा कसौली के कोष से रुपया खींचा जायगा। कलकत्ते की संस्था के लिए राकफ़ेलर कोष से साढ़े पन्द्रह लाख की स्थायी रक़म तथा भारत-सरकार से तीन लाख की रक़म काम दे जायगी। शिमला में लेडी रीडिंग के स्त्री-बच्चों के अस्पताल के लिए ५ हज़ार की स्थायी तथा दस हज़ार की अस्थायी माँग मञ्ज़ूर हुई। भारत-सरकार आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलेंड में इसी वर्ष होने वाले साम्राज्य-जङ्गल-सम्मेलन में अपने प्रतिनिधि भी भेजेगी।
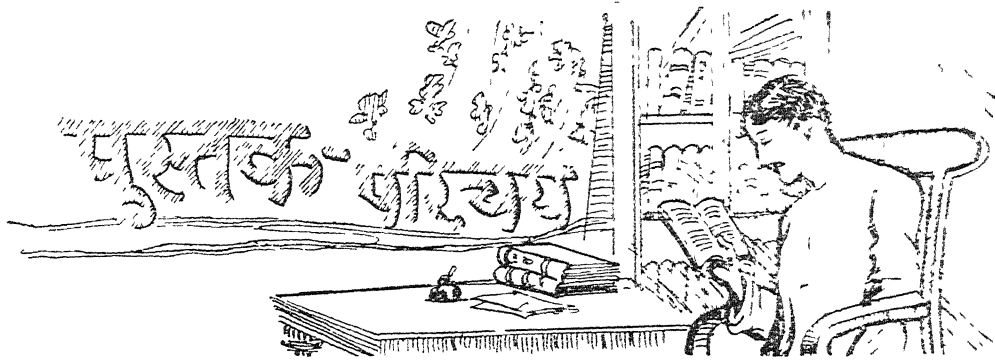
रतीय शासन—प्रेम-महाविद्यालय, वृन्दावन के अर्थ-शास्त्र के अध्यापक श्रीयुत भगवानदास केला ने हिन्दी में राजनीति तथा अर्थशास्त्र-सम्बन्धी कई पुस्तकें लिखी हैं। शिक्षित-समाज में इन पुस्तकों का यथेष्ट आदर भी हुआ है। केलाजी की कृतिया प्रायः विद्यार्थियों तथा साधारण पाठकों के लिए अधिक उपयोगी होती हैं। यह पुस्तक भी राजनीति के प्रारम्भिक ज्ञान का प्रचार करने के उद्देश से ही लिखी गई है।

भारतवर्ष की राजनैतिक परिस्थिति कैसी है, वर्तमान समय में इसका शासन किस प्रकार हो रहा है, तथा आधुनिक शासन-प्रणाली का विकास किस प्रकार हुआ, आदि बातों का इसमें भली भाति दिग्दर्शन कराया गया है। इस पुस्तक के द्वारा व्यवस्थापिका सभा, प्रान्तीय कौंसिलों, म्युनिसिपलिटिया, ज़िला-बोर्डों के संगठन तथा कार्य-क्षेत्र एवं अधिकारों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। साथ ही शासन-सम्बन्धी अन्य सरकारी विभागों तथा स्वतन्त्र एवं रक्षित राज्यों का भी विवरण इसमें दिया गया है। परिशिष्ट में कुछ मुख्य पारिभाषिक हिन्दी एवं अँगरेज़ी शब्दों की सूची भी दी गई है। यह पुस्तक की पाचवीं आवृत्ति है। पृष्ठ संख्या २१० और मूल्य ॥।=) है।

बाल-विवाह और हिन्दू विधवा (बँगला)—इस पुस्तिका की लेखिका श्रीमती चारुबाला सरस्वती का मत है कि यदि हम अपनी सन्तान का विवाह अल्पावस्था में न करके शास्त्र-सम्मत विधि से उनके शरीर तथा बुद्धि का पूर्ण विकास होने पर करें तो न तो उनका स्वास्थ्य नष्ट हो, न समाज में अनाचार की वृद्धि हो और न विधवा-विवाह का ही नया नियम गढ़ने की आवश्यकता पड़े। लोगों की यह धारणा कि अधिक अवस्था तक अविवाहित रहने से बालकों तथा बालिकाओं के चरित्र में विकार आ जाने की सम्भावना रहती है, निर्मूल है, कारण प्राचीन काल में कितनी ही छात्र-छात्रियां एक साथ गुरु के आश्रम में रहकर सदाचारपूर्वक शिक्षा ग्रहण किया करती थीं। किन्तु उनके चरित्र में प्रायः लेशमात्र भी दोष नहीं आने पाता था।

वर्तमान युग में यदि कहीं ऐसी घटनायें हो भी जाती हैं तो यह सामाजिक कुसंस्कार एवं कुशिक्षा का ही दोष है और यह कुशिक्षा व्यवस्था एवं समाज-सुधार के ही द्वारा दूर की जा सकती है। पुस्तकान्त में लेखिका महोदया ने भारतीय महिलाओं से बाल-विवाह की कुप्रथा को समूल नष्ट करने की अपील की है, जिससे इस सम्बन्ध में क़ानूनी अड़ङ्गा लगाने की सरकार को आवश्यकता ही न पड़े। भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से यह पुस्तक उपयोगी तथा मनोरञ्जक है। मिलने का पता—कान्तिप्रेस २२, सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता। मूल्य =) है

सरल भारतीय शासन—यह १३२ पृष्ठ की पुस्तक केलाजी की उपरिलिखित पुस्तक का सरल एवं संक्षिप्त

रूप है। इसमें शासन-सम्बन्धी भिन्न भिन्न विभागों का वर्णन सरल भाषा में किया गया है। मूल्य ॥) है।

उपर्युक्त दोनों पुस्तकों के मिलने का पता—व्यवस्थापक, भारतीय ग्रन्थमाला, वृन्दावन।

मित्रता—जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने के लिए मित्रता एक बहुत आवश्यक एवं मुख्य साधन है। परन्तु वास्तविक मित्रता किसे कहते हैं, मित्रता किस प्रकार प्राप्त की जा सकती है, इसका उपयोग एवं रक्षा किस किस प्रकार सम्भव है, आदि बातों का ज्ञान विरल ही लोगों को होता है। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं बातों पर प्रकाश डाला गया है।

इस पुस्तक के लेखक और प्रकाशक हैं मोमासर (बीकानेर) निवासी श्रीयुत प्रतापमल नाहटा और सम्पादक पण्डित लक्ष्मणनारायणजी गर्दे। पुस्तक ८६ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसमें मित्र के गुण दोष, उनके लक्षण तथा कर्तव्य आदि बातों पर भले प्रकार विचार किया गया है, साथ ही कुछ आदर्श मित्रों के मित्र-प्रेम के उदाहरण भी दिये गये हैं। पुस्तक उपयोगी है। मूल्य =) है ७।१ प्यारीमोहन पाललेन, कलकत्ता के पते से ग्रन्थकार को लिखने से यह पुस्तक प्राप्त की जा सकती है।

दुखी भारत—लेखक, स्वर्गीय लाला लाजपतराय। प्रकाशक, इंडियन प्रेस, लि०, इलाहाबाद। पृष्ठ-संख्या ४८०, मूल्य ४), छपाई-सफ़ाई और काग़ज़-जिल्द उत्तम।

यह पुस्तक लाला लाजपतराय की 'अनहैपी इंडिया' का, जिसे उन्होंने मिस कैथरिन मेयो की 'मदर इंडिया' के उत्तर में लिखा था, सचित्र हिन्दी अनुवाद है। इसे पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि मदर इंडिया केवल मिस मेयो के ही मस्तिष्क की उपज नहीं है। उसके लिखे जाने में पश्चिम के उन गोरे साम्राज्यवादियों का बहुत बड़ा हाथ है जो भारतवर्ष को अपने लाभ के लिए सदैव चङ्गुल में दबाये रखना चाहते हैं। इस पुस्तक में लालाजी ने बड़े अकाट्य प्रमाणों के साथ इन सब बातों को सिद्ध किया है। योरप और अमरीका के भी बड़े बड़े विद्वान् इस बात को स्वीकार करते हैं कि लाला लाजपतराय एक महान् देशभक्त, राजनीतिज्ञ, सम्पादक और ग्रन्थकार थे। प्रस्तुत पुस्तक से उनके इन समस्त गुणों का बड़ा सुन्दर परिचय मिल जाता है। मिस मेयो के एक एक आक्षेप का उन्होंने इतनी ख़ूबी के साथ उत्तर दिया है कि पढ़कर चकित रह जाना पड़ता है। वे इस बात को जानते थे कि हिन्दुओं के सम्बन्ध में मिस मेयो ने जो असत्य, निन्दाजनक, घृणित और गन्दी बातें लिखी हैं उनका खण्डन विदेशियों के मुँह से कराया जायगा तभी पश्चिम के अपने से भिन्न जातियों को नीच समझनेवाले नागरिकों पर प्रभाव पड़ सकता है। इसलिए उन्होंने मिस मेयो के प्रत्येक बात का उत्तर बड़े बड़े पाश्चात्य विद्वानों का मत उद्धृत करके दिया है और इस प्रकार उसके आक्षेपों का पूर्णरूप से खण्डन किया है। उन्होंने यह स्पष्ट दिखला दिया है कि मिस मेयो के सभी आक्षेप निराधार हैं और वे पुष्ट प्रमाणों से सर्वथा रहित हैं। इसी सिलसिले में उन्होंने यह भी दिखला दिया है कि अपनी वर्तमान दलितावस्था में भी भारत पाश्चात्य देशों से सदाचार, प्रेम, दया आदि मानवीय गुणों में बहुत आगे है। इस सम्बन्ध में अमरीका आदि देशों की पैशाचिक प्रवृत्ति और सदाचार-सम्बन्धी अधःपतन का उन्होंने जो स्थान स्थान पर विस्तार के साथ उल्लेख किया है उसके लिए भूमिका में उन्होंने स्वयं लिखा है—'इस पुस्तक में अमरीका के जीवन के कुछ काले धब्बों को दिखलाकर मैंने जो पाप किया है उसके प्रायश्चित्त स्वरूप मुझे दूसरी पुस्तक लिखनी पड़ेगी। उसमें... अमरीका के उज्ज्वल दृश्यों का प्रदर्शन होगा।' खेद है कि वह पुस्तक लिखने के लिए वे अब इस संसार में नहीं रहे।

यह 'दुखी भारत' लालाजी की अन्तिम कृति है। इसे लिखकर उन्होंने बड़ी विकट परिस्थिति में भारतवर्ष की रक्षा की है। संसार के बड़े बड़े विद्वानों ने और देश के पण्डित मोतीलाल नेहरू जैसे महान् नेताओं ने इस पुस्तक की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। भारतवर्ष की स्वतन्त्रता के युद्ध में यह पुस्तक एक बड़े भारी मार्ग-प्रदर्शक का कार्य्य करेगी। प्रत्येक भारतीय पुरुष को इसकी एक प्रति ख़रीद कर अपनी दुरवस्था का परिचय प्राप्त करना चाहिए।

हरद्वार-दर्शन—इस १८ पृष्ठ की पुस्तक के लेखक हैं श्रीयुत केदारनाथ शर्म्मा, मन्त्री, ऋषिकुल, हरद्वार। इसमें हरद्वार-तीर्थ का माहात्म्य तथा वहाँ के भिन्न भिन्न तीर्थ-स्थानों का विवरण दिया गया है। हरद्वार-यात्रियों के लिए उपयोगी है। मूल्य =) है।

कथा-कहानी—इस २७ पृष्ठ की पुस्तक में छोटे बच्चों के मनोरञ्जन के योग्य छोटी छोटी उपदेशप्रद कहानियों का संग्रह किया गया है। इसके लेखक हैं श्रीयुत मदन-मोहन पाण्डेय और प्रकाशक श्रीयुत जगदेव पाण्डेय, बबुरा (शाहाबाद) मूल्य =)॥ है।

धर्मदिवाकर—(पहली किरण) इस पुस्तिका में धर्म-सम्बन्धी छोटी-बड़ी प्रायः सभी बातों पर संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है। मनुष्य को अपनी दिन-चर्या तथा रात्रि-चर्या किस प्रकार बितानी चाहिए, गृहस्थ कौन कौन से पाप करने के लिए बाध्य होता है और उनकी शान्ति के लिए उसका क्या कर्तव्य है, धर्म क्या है, धर्मशास्त्र के कौन कौन से अङ्ग हैं आदि बातें इस पुस्तक के विषय हैं। इसमें धार्मिक ग्रन्थों तथा संस्कारों की सूची भी दी गई है। अन्त में प्रार्थना-सम्बन्धी कुछ पद्य भी दिये गये हैं। इसके लेखक हैं श्रीयुत रामवचन द्विवेदी अरविन्द और प्रकाशक राजेश्वरी-पुस्तकालय गया। पृष्ठ-संख्या ६४ और मूल्य ।) है।

१—पंजाब-केसरी लाला लाजपतराय

श के दुर्भाग्य से १७ नवम्बर को लाला लाजपतराय का हृदय की गति के एकाएक बन्द हो जाने से ६३ वर्ष के वय में स्वर्गवास होगया। इनके निधन से भारत का एक कोना का कोना सूना होगया। देशबन्धु की मृत्यु से शक्ति का उपासक बंगाल अभी ख़ाली पड़ा ही था, अब लालाजी की मृत्यु से वीर पंजाब भी ख़ाली होगया। लालाजी बड़े भारी सजग नेता थे। वे महर्षि दयानन्द के अमर प्रसाद थे। हिन्दू-जाति की लाज रखने में उन्होंने अपना नाम सार्थक किया है। लुधियाना के जगराँव ने भारत के लिए इन नररत्न को जन्म देकर अपना ही नहीं, किन्तु सारी जन्म-भूमि का सिर ऊँचा किया है।

लाला लाजपतराय जन्मजात देशभक्त थे। उनके पिता राधाकृष्णजी स्वयं भी देशभक्त थे, स्वामी दयानन्द सरस्वती के पक्के अनुयायी थे और राजनीति में प्रजातन्त्रवादी थे। उस समय सर सैयद अहमदख़ाँ का दौर-दौरा था, अतएव आप उनके बड़े प्रशंसक हो गये थे। तब आपके पुत्र लालाजी में वह विभूति कैसे न पाई जाय। जब लालाजी लाहौर में क़ानून का अध्ययन कर रहे थे तब वहाँ उनका स्वर्गीय गुरुदत्त तथा लाला हंसराज से साथ होगया। आर्य-समाज और देश-सेवा करने की जो भावना उन्होंने अपने पिताजी से प्राप्त की थी वह अपने ही विचारवाले मित्रों का सहयोग पाकर दूनी हो गई। इन तीनों मित्रों ने आर्य-समाज का कार्य अपने हाथों में लेकर जगह जगह स्थानिक आर्य-समाज खोले, और राष्ट्रीय भावापन्न एक कालेज खोलने का आयोजन किया। सन् १८८९ में कालेज खुल गया। तब से आज तक लालाजी देश-सेवा के कार्य में बराबर लगे रहे। उन्होंने देश की जो सेवायें की है वे अप्रतिम है। निस्सन्देह उन्होंने ख़ूब धूम-धाम से वकालत की, पर उनकी वकालत भी देशहित के ही लिए थी। वे जो कुछ उपार्जन करते उसका अधिकांश देशहित में ही लगा देते। लाहौर के उक्त मित्र-त्रय ने देश-सेवा का व्रत उन्नीसवीं सदी के उस अन्तिम भाग में लिया था जिसमें भारत ने अपने इतिहास में सर्व-प्रथम देशभक्ति के मन्त्र की दीक्षा ली थी। इन मित्र-त्रय के सार्वजनिक कार्यक्षेत्र में अवतीर्ण होने के चार ही पाँच वर्ष पहले पूना में मनीषी चिपलूणकर के नेतृत्व में वहाँ के बाल गङ्गाधर तिलक प्रभृति चार होनहार युवकों ने अपने आत्मत्याग द्वारा तपोधन भारत में देशभक्ति रूपी एक नई तपस्या का आदर्श देशवासियों के आगे उपस्थित किया था। इसे संयोग ही कहना चाहिए कि लालाजी की भी मण्डली पूना की उक्त मण्डली की ही भाँति देश-भक्ति के भाव से पूर्ण थी और अपने आदर्श के अनुसार देश-सेवा का कार्य तन-मन से करने को उद्यत हुई थी। समय आते ही लालाजी ने कांग्रेस में प्रवेश किया और अपने उत्कृष्ट राजनैतिक ज्ञान की बदौलत शीघ्र ही वे नेताओं की अगली पंक्ति में बैठे दिखाई दिये।

लालाजी बड़े तेजस्वी थे। वे बड़े भारी वक्ता भी थे। उनमें रचनात्मक कार्य करने की अद्भुत क्षमता थी। उनकी वृत्ति बहुमुखी थी। सभी क्षेत्रों में कार्य करने को वे अपने को समर्थ पाते थे, और जिस काम में हाथ लगाया उसे आजीवन बराबर करते रहे। उनके लिए देश-सेवा के एक के बाद दूसरे काम आते गये, और वे सबमें तन-मन से लगते गये। जिस समय वे आर्य-समाज का प्रचार-कार्य तथा भिन्न भिन्न स्थानों में समाजों के स्थापन और अपने प्रिय डी० ए० वी० कालेज की समुन्नति की समुचित व्यवस्था में तन-मन से लगे हुए थे उसी समय उन्हें राजनैतिक क्षेत्र में भी अवतीर्ण होने को बाध्य होना पड़ा था। उनके पूज्य पिता लाला राधाकृष्ण राजनीति में सर सैयद अहमद ख़ाँ को अपना गुरु मानते थे, परन्तु पीछे से जब उनके विचारों में परिवर्तन होगया और उन्होंने खुल्लम-खुल्ला कांग्रेस का विरोध किया तब आपने 'कोहनूर' नामक उर्दू पत्र में सर सैयद के विरुद्ध एक खुली चिट्ठी लिखी। इसी सम्बन्ध में लालाजी ने भी सन् १८८६ में सर सैयद के विरुद्ध एक पत्र-माला प्रकाशित की और अपने निश्चित राजनैतिक विचारों के अनुसार राजनैतिक कार्य करने के लिए कांग्रेस में उसके मदरासवाले तीसरे अधिवेशन में शामिल हो प्रवेश किया। इस समय के उनके लेखों तथा उनकी उर्दू में लिखी मेज़िनी, गैरीबाल्डी आदि की छोटी छोटी जीवनियों से उनकी देश-भक्ति और राजनैतिक विचारों का पता लग जाता है।

स्वर्गीय लाला लाजपतराय

परन्तु लालाजी के जीवन के प्रारम्भिक कार्यों में उनका अनाथोद्धारक-आन्दोलन का कार्य भी अपना महत्त्व-पूर्ण स्थान रखता है। इस आन्दोलन से उनकी राजनीतिज्ञता के साथ साथ उनके हृदय की दयार्द्रता का भी परिचय मिलता है। अकाल के समय जो अनाथ बच्चे सरकार के हाथ में पड़ते थे उनके भरण-पोषण के लिए वे ईसाई आदि भिन्न धर्मावलम्बियों को दे दिये जाते थे, जिससे हिन्दुओं की विशेष रूप से हानि होती थी। लालाजी ने इस सम्बन्ध में बड़ा भारी आन्दोलन किया और अनाथालय खोलने के लिए जगह जगह कमेटियाँ खोलीं तथा धन का संग्रह किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने जो विराट् आयोजन किया था उससे उनकी सङ्गठन-शक्ति का ही नहीं किन्तु उनके कार्य करने की असीम शक्ति का भी भले प्रकार परिचय मिलता है। सन् १९०१ के अकाल-कमीशन के सामने
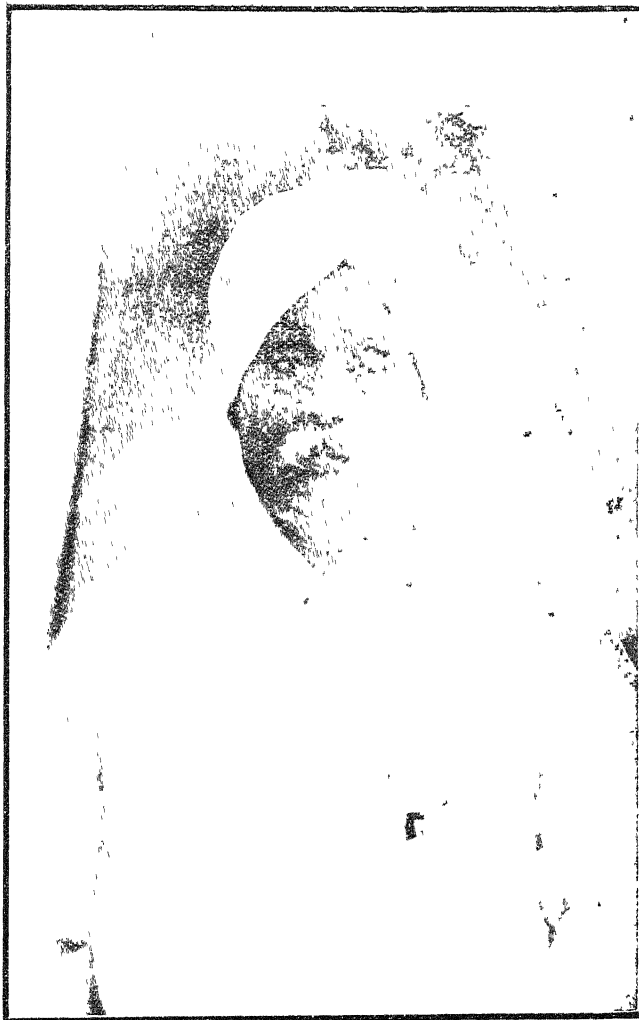
गवाही देते समय उन्होंने हिन्दू अनाथ बालकों के सम्बन्ध में सरकार की नीति में परिवर्तन करने के लिए जो उपयुक्त सूचनायें उपस्थित की थीं उनमें से सरकार ने बहुत कुछ स्वीकार कर लीं और निराश्रित अनाथ बालकों के उन्हीं की जातीय संस्थाओं को मिल जाने की सुविधा कर दी।

लालाजी शिक्षा-प्रचार के बड़े प्रेमी थे। डी० ए० वी० कालेज की सहायता के लिए प्रारम्भ में अपनी आय का अधिकांश उसके सञ्चालनार्थ अर्पित करते रहे। कालेज के कार्य से विशेष अनुराग होने से वे सन् १८६२ में हिसार से आकर लाहौर में वकालत करने लगे थे। उन्होंने कालेज के पास ही एक मकान मोल ले लिया था, और कालेज के सेक्रेटरी का पद ग्रहण कर वर्षों तक उस का सञ्चालन करते रहे। यही नहीं, उसमें कुछ दिनों तक अध्यापन का भी कार्य किया। पंजाब में शिक्षा तथा धर्म-प्रचार एवं समाज के उद्धार का जो व्यापक कार्य लालाजी ने किया है उससे पंजाब में विशेष रूप से जागृति हुई है, और इसके लिए सारे पंजाबी लालाजी को सदा देवता की तरह पूजते रहेंगे।

परन्तु जिस महान् विभूति के लिए लालाजी भारत-भूषण हुए वह उनका राजनैतिक कार्य है। नागरिकता के अधिकारों के लिए वे सरकार से सदा युद्ध करते रहे। उनके राजनैतिक विचार उग्र न होते हुए भी उनके व्यक्त करने की शैली निस्सन्देह उग्र थी। सन् १६०५ की कांग्रेस में बंगाल में पुलिस के अत्याचारों के विरोध में उन्होंने जो भाषण किया था उससे चारों ओर सनसनी फैल गई थी। इसी समय पंजाब में भी सरकार के कुछ अन्याय-मूलक कार्यों के कारण जनता क्षुब्ध हो रही थी। यह हाल देखकर सरकार ने सन् १८१८ के क़ानून के अनुसार उनको बरमा में निर्वासित कर दिया। उनके निर्वासित हो जाने पर देश में अनेक सभायें करके नेताओं ने सरकार की बड़ी निन्दा की। अन्त में सरकार ने साढ़े छः महीने बाद उन्हें मुक्त कर दिया। परन्तु वह उन्हें सदा सन्देह की दृष्टि से देखती रही। उनकी प्रखर आलोचनाओं से सरकार का धैर्य छूट जाता था और वह उन्हे अपना भयङ्कर विरोधी समझती थी। सरकार की इस धारणा को अपने कार्यों-द्वारा वे बराबर मिथ्या सिद्ध करते रहे। सरकार-द्वारा अपने प्रति किये गये दुर्व्यवहारों के प्रतिशोधरूप में उन्होंने अपना धैर्य कभी नहीं टूटने दिया और उनके राजनैतिक विचार सदा प्रजासत्तात्मक ही बने रहे, क्रान्तिकारियों के दल से उन्होंने कभी नहीं सहयोग किया।

युद्धकाल में जब लालाजी योरप में थे तब सरकार ने उन को स्वदेश नहीं लौटने दिया। बड़ा आन्दोलन करने पर युद्ध की समाप्ति के कोई दो वर्ष बाद वे स्वदेश लौटने पाये। परन्तु उन्होंने सरकार के विरुद्ध कभी झंडा नहीं उठाया। वे सदा विधानात्मक राजनैतिक आन्दोलन के ही पक्षपाती बने रहे। अमरीका में पाँच वर्ष तक रहने के कारण उनको संसार की राजनीति के अध्ययन का पूरा मौक़ा मिला था। अतएव वे स्वदेश की और भी अधिक तेजस्विता के साथ सेवा करने को तैयार होकर आये थे। उन दिनों पंजाब में फ़ौजी क़ानून जारी कर जनता पर जो अत्याचार किये गये थे उनके प्रतीकार के लिए महात्मा गान्धी ने देश के नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में ली थी। महात्मा गान्धी से विरुद्ध मत रखते हुए भी लालाजी ने उनके असहयोग-आन्दोलन में उनका बराबर साथ दिया और जेल का दण्ड भी भोगा। और जब वह असफल हो गया तब उन्होंने देशबन्धु के साथ स्वराज्यदल का झंडा उठाया और तब से जीवन के अन्तिम क्षण तक अस्वस्थ होते हुए भी वे देश की राजनीति की लड़ाई में कमर कसे बराबर डटे रहे। अपनी मृत्यु के आठ दिन पहले साइमन-कमीशन के बहिष्कार के सम्बन्ध में जो प्रदर्शन लाहौर में हुआ था उसका सङ्गठन उन्हीं ने किया था और सबसे आगे रह कर पुलिस की लाठियाँ खाई थीं और अपने विशाल जलूस को सब प्रकार से शान्त रक्खा था। चोट खा जाने से तबीयत के अच्छी न होते हुए भी वे कांग्रेस की समिति में भाग लेने को दिल्ली दौड़ गये और देश के उन नवयुवकों का ज़ोरों के साथ विरोध किया जो स्वाधीनता के लिए विकट आन्दोलन करने की तैयारी कर रहे है। उन्होंने सरकार की पुलिस की खाई हुई लाठियों की चोट को भूल कर सरकार के ही पक्ष में अपने देश के नवयुवकों के प्रयत्न के रोकने का काम किया।

लालाजी में कार्य करने की कितनी शक्ति थी, इसका अन्दाज़ा नहीं किया जा सकता। पिछले दो-तीन वर्ष

से वे बराबर अस्वस्थ रहे हैं, उन्निद्र-रोग के तो रोगी थे ही, तो भी उनका देश-भक्ति का व्रत उनको देश का कार्य करने को बराबर लाचार किये रहा। ऐसी दशा में भी वे देश के कार्य में अपने अन्त तक बराबर लगे रहे। इसी समय उन्होंने मिस मेयो की 'मदर इंडिया' नामक भारत को बदनाम करनेवाली घृणित पुस्तक के उत्तर में 'अनहैपी इंडिया' नामक पुस्तक का प्रणयन किया। इस पुस्तक की अमरीका, इँग्लेंड आदि के कतिपय प्रसिद्ध प्रसिद्ध व्यक्तियों और समाचार-पत्रों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और यह स्वीकार कर लिया है कि लालाजी ने उसका मुँहतोड़ जवाब दिया है। इस पुस्तक में उन्होंने अपना सारा ज्ञान और अनुभव लाकर एकत्र कर दिया है। यद्यपि उन्होंने और भी कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से उनकी यंग इंडिया विशेष रूप से प्रसिद्ध है तथापि उनकी यह पुस्तक उनकी प्रतिभा, उनके पाण्डित्य, उनकी बहुज्ञता का प्रत्यक्ष निदर्शन है। अपने देश का और संसार का उनको कितना विशाल ज्ञान था, उन्होंने संसार की सारी बातों का कितना अधिक तुलनामूलक अध्ययन किया है तथा अपने अध्ययन से उन्होंने कैसे कैसे सिद्धान्त निश्चित किये हैं और उनका उपयोग अपनी मातृभूमि की मान-मर्यादा की रक्षा करने में कैसे सुन्दर ढङ्ग से किया है इन्हीं सब बातों का भव्य चित्र उनका 'अनहैपी इंडिया' है। हिन्दी जाननेवालों के लिए भी उन्होंने उसका हिन्दी-अनुवाद करवाकर इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, को उसके प्रकाशन का अधिकार दे दिया है। खेद है, वह उनकी मृत्यु के चार दिन बाद प्रकाशित हो सकी। उसके शीघ्र प्रकाशन के लिए उनका बड़ा आग्रह था। हिन्दी जाननेवालों को उनके अनहैपी इंडिया के अनुवाद 'दुखी भारत' को पढ़ कर अपने देश की दुरवस्था से अवश्य परिचित होना चाहिए और यह जानना चाहिए कि उनके नेता लालाजी ने उनके हित के सम्बन्ध में कितना महत्त्व-पूर्ण कार्य किया है।

यह देश का, विशेष कर हिन्दुओं का, दुर्भाग्य है कि उनके एक बड़े भारी नेता सदा के लिए उनके बीच से उठ गये। यह और भी दुर्भाग्य की बात है कि उनके उन नेता की मृत्यु ऐसे समय में हुई है जब उनकी देश को सबसे अधिक ज़रूरत थी।

लालाजी असाधारण श्रेणी के देश-भक्त थे। वे भारत की एक आदर्श सन्तान थे और उन्होंने अपने आत्मत्याग की प्रचण्ड भावना से देश-भक्ति के कार्य से अपना नाम सदा के लिए अमर कर लिया है। क्या राजनैतिक क्षेत्र में, क्या सामाजिक क्षेत्र में और क्या धार्मिक क्षेत्र में जिस किसी भी क्षेत्र में उन्होंने अपने देश का हित समझा उसमें प्रविष्ट होने से वे कभी नहीं विमुख हुए। और उनकी इसी वीरभावना से जनता ने उन्हें 'पंजाब-केसरी' की पदवी से सुसम्मानित कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय उनके जीवन-काल में ही दिया था।

लालाजी भारत की महान् आत्माओं में थे। वे उच्च कोटि के राजनीति-कुशल नेता थे। वे किसी भी दल के नहीं थे। सभी दलों से उनका सम्बन्ध था। यह उनमें एक विशेष बात थी। सरकार एवं जनता दोनों उन्हें उग्र राजनीति के नेता समझती थी, परन्तु वे वास्तव में नरमनीति के ही पक्ष में सदा बने रहे। निस्सन्देह वे वचनवीर और कर्मवीर दोनों थे। कड़ी टीका-टिप्पणियों से जहाँ वे अधिकारियों की भर्त्सना ही नहीं किया करते थे, वहाँ उन्होंने राष्ट्र के लिए ठोस कार्य भी किये हैं। स्कूल, कालेज, अनाथालय आदि खोल कर उन्होंने देश का अभ्युत्थान किया है। पिछले दिनों तिलक स्कूल आफ़ पालिटिक्स तथा महामना गोखले की सर्वेंट आफ़ इंडिया सोसायटी के अनुकरण पर जो सर्वेंट्स आफ़ पीपुल्स सोसायटी नामक संस्था की स्थापना की है और उसके लिए अपनी सम्पत्ति का अधिकांश दान किया है उससे उनके देशभक्ति-सम्बन्धी त्याग का पूरा परिचय मिल जाता है। वे जीवन भर कार्य-क्षेत्र में कमर कसे खड़े रहे। कभी विश्राम का नाम नहीं लिया। क्या धर्मप्रचार के लिए आर्यसमाजों के सङ्गठन में, क्या शिक्षा-प्रचार के कार्य में और क्या अनाथोद्धार में और क्या जन्मभूमि के समुद्धार के कार्य में वे सदा कर्मनिरत ही नहीं, आगे चलते दिखाई दिये। राष्ट्रसेवा के सभी कार्यक्षेत्रों में उन्होंने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। अपने जीवन के पिछले ४० वर्षों में जो भारी देशसेवा उन्होंने की है वह अपने ढङ्ग की एक है और अतुलनीय है। निस्सन्देह लालाजी जैसे सुपुत्र को पाकर जहाँ भारत-माता और हिन्दू-जाति ने अपने को धन्य माना था, वहाँ आज वह उनकी मृत्यु से कंगाल हो गई है।

२—निवेदन

सरस्वती पिछले २८ वर्ष से साहित्य-क्षेत्र में कार्य कर रही है। उसका २९ वाँ वर्ष अगले दिसम्बर से समाप्त हो जायगा। अपने जीवन के इस दीर्घ काल में उसने हिन्दी की जो सेवा की है, हिन्दी के प्रेमियों से छिपी नहीं है। सरस्वती ने लोकरुचि का सदा ध्यान रक्खा है। इस सम्बन्ध में समय समय पर हिन्दी के अनुभवी लेखक तथा प्रेमी अपने सत्परामर्श से उसकी बराबर सहायता करते रहे हैं। उसके विशेषाङ्कों का निकलना, भिन्न भिन्न स्तम्भ खोल कर उसकी पाठ्य सामग्री का यथास्थान विभाजन एवं नये नये विषयों का समावेश करना उसी सत्परामर्श का परिणाम रहा है। इस बार हम फिर अपने ग्राहकों, प्रेमियों तथा पाठकों से सरस्वती को और भी सुन्दर तथा उपयोगी रूप में निकालने के लिए अपनी अपनी सम्मति प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं। आशा है, मासिक पत्रिकाओं के प्रेमी पाठक अपने सत्परामर्श से सरस्वती को और भी उत्तम ढङ्ग से प्रकाशित करने के कार्य में हमारी सहायता करेंगे।

यहाँ यह निवेदन इस मतलब से किया गया है कि अगले वर्ष से हम सरस्वती को और भी अधिक मनोरञ्जक तथा सुरुचि-वर्द्धक रूप में निकालने की तैयारी कर रहे हैं। रोचक कहानियों तथा उपन्यासों का आयोजन तो किया ही गया है, साथ ही अन्य विषयों के जो लेख तथा स्तम्भ रहेंगे उनके सम्पादन में लोकरुचि तथा सर्वप्रियता का विशेष रूप से ध्यान रक्खा जायगा। आशा है, हम अपने नये प्रयत्न से सरस्वती के प्रेमियों को सन्तुष्ट कर सकेंगे।
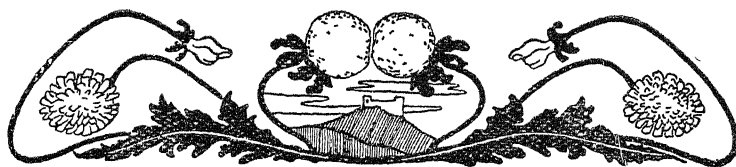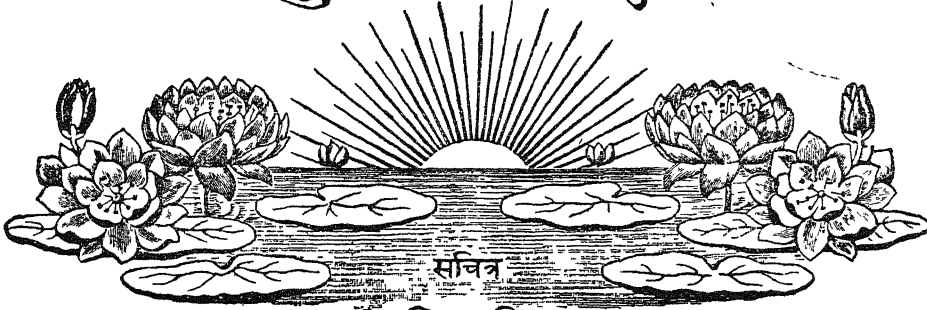
Printed and published by K. Mittra, at The Indian Press, Ltd., Allahabad

सम्पादक

वार्षिक मूल्य ६॥)] पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, बी० ए० [प्रति संख्या ॥=)

Yearly Subscription, Rs 6-8] देवीदत्त शुक्ल [As 10 per copy

भाग २९, खण्ड २] दिसम्बर १९२८—मार्गशीर्ष १९८५ [सं० ६, पूर्ण-संख्या ३४८

दुखिया

[श्रीयुत गोपालशरणसिंह]

(१)

छोड़ने न पाते मुझे मेरे दुख शोक कभी,
होने नहीं पाता कभी सबल शरीर है।
क्या करूँ उपाय हाय, होने नहीं पाती दूर,
पल भर चिन्ता चल चित्त की गँभीर है।
सूखने न पाता कभी वारि है विलोचन का,
घटने न पाती कभी मानस की पीर है।
घिरने न पाती सुख-शान्ति की घटा है कभी,
फिरने न पाती कभी मेरी तक़दीर है।

(२)

दीन बल-हीन हूँ न कोई है सहारा मुझे,
तंग रहता हूँ मैं विपत्तियों की मार से।
मन में जलन रहती है बनी दिन-रात,
होती जो न शान्त कभी किसी उपचार से।
प्राणों को जलाता है सदैव दुख-दावानल,
गुञ्जित है उर-देश उनकी पुकार से।
जल गया होता मैं कभी का करुणावतार,
रहता न भीगा जो तुम्हारी अश्रु-धार से।

भारतवर्ष में हीरे की खानें

[श्रीयुत महावीरप्रसाद द्विवेदी]

भारत, क्या तुम्हें कभी अपने पुराने दिनों की भी बात याद आती है ? क्या तुम्हे कभी इस बात का स्मरण स्वप्न में भी होता है कि किसी समय तुम ज्ञान, विज्ञान, सम्मान आदि सभी विषयों में रत्नोपमान थे ? धन, जन और प्रभुता में भी तुम अपना सानी न रखते थे। सुवर्ण और रजत ही की नहीं, हीरों तक की एक नहीं अनेक खानें तुम्हारी ही रत्नगर्भा भूमि के भीतर भरी हुई पड़ी थीं। जिन कितनी ही हीरक-मणियों को पाकर इस समय योरप के कुछ देश अपने को परम सौभाग्यशाली समझ रहे हैं वे सब तुम्हारी ही दी हुई हैं। पर कुछ तो कर्म्मयोग के और कुछ तुम्हारी ही अकर्मण्यता के कारण तुम्हारा वह प्राचीन वैभव, इस समय, कथावशेष होगया है। लौकिक ज्ञान और विज्ञान में तुम्हें योरप और अमेरिका ने परास्त कर दिया। बल-विक्रम में तुम्हें विदेशी जातियों ने मुँह दिखाने लायक़ न रक्खा। तुम्हारे हीरों का भी ह्रास होगया। अब तो उन्होंने ब्रेज़ील और ट्रांसवाल आदि देशों का आश्रय ग्रहण कर लिया है। चेतो, जागो, कर्म्म और चेष्टा करना सीखो। पुरानी बातों का स्मरण कर लो, पर उनकी दुहाई देकर डींग मत मारो। उद्योग, अध्यवसाय और परिश्रम के द्वारा अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करो। चुपचाप मत बैठो।

खनिज वस्तुओं में हीरा सबसे अधिक मूल्यवान् है। सोने, चाँदी, लोहे, ताँबे आदि की तो बात ही नहीं, हीरा तक, किसी समय, इस देश की खानों से निकलता था और बहुत निकलता था। अथवा यह कहना चाहिए कि वह इस देश को छोड़कर और कहीं पाया ही न जाता था। इस रत्न के सम्बन्ध में आचार्य्यों ने बड़े बड़े ग्रन्थ तक, संस्कृत में, लिख डाले हैं। उनमें से कुछ अब तक प्राप्य हैं। एक महाशय ने, उन्हीं के आधार पर, हिन्दी में भी एक पुस्तक लिखी है। उसमें मणियों और "मोहरों" का वर्णन है।

प्राचीन पुस्तकों के अवलोकन से मालूम होता है कि किसी समय इस देश के आठ प्रधान प्रधान स्थानों या प्रान्तों में हीरे पाये जाते थे। यथा—मातङ्ग, सौराष्ट्र, पौण्ड्र, कोशल, सौबीर, वेणु-गङ्गा, हैम और कलिङ्ग। आज-कल इन देशों, प्रान्तों या स्थानों के नाम यथाक्रम ये हैं—गोलकुण्डा, गुजरात या सूरत, छोटा-नागपुर, अवध, पञ्जाब, वेणु-गङ्गा (अज्ञात), हैम अर्थात् हिमालय के आसपास का कोई स्थान और मदरासहाते का उत्तरी भाग। वेणु-गङ्गा से मतलब शायद बानगङ्गा-नदी से है। क्योंकि नदियों की वालुकामयी भूमि से भी हीरे निकलते रहे हैं। सम्भव है, निर्दिष्ट स्थानों में सर्वत्र ही हीरे की खानें न रही हों। कुछ जगहों, जैसे सौराष्ट्र या सूरत, में हीरों की मण्डियां-मात्र रही हों। खानों से हीरे निकलवाकर व्यापारी उन्हें ख़ास ख़ास मण्डियों और शहरों में ले जाते और वहां उन्हें बेचते रहे हों। इसी से शायद ग्रन्थकारों ने उन जगहों के नाम भी हीरकोत्पादक स्थानों में गिना दिये हैं।

अभी, कुछ समय पूर्व तक, इस देश में कहाँ कहाँ हीरे की खानें थीं, इसका लिखित प्रमाण अब तक पाया जाता है। कहीं कहीं, विशेष करके पन्ना-रियासत में, अब भी छोटे-मोटे हीरे निकल आते हैं। ये सब स्थान हैं या थे—मदरासहाते के ज़िले कड़पा, बिलारी, कर्नूल, कृष्णा और गोदावरी में; मध्यप्रदेश के ज़िले सम्भलपुर और चाँदा में; छोटा-नागपुर और बुन्देलखण्ड में; कृष्णा और गोदावरी की खानें गोलकुण्डा ही के नाम से प्रसिद्ध थीं। यह जगह निज़ाम के राज्य में है।

मदरासहाते में जो हीरे निकलते थे वे सब गोलकुण्डे को भेज दिये जाते थे; क्योंकि वहाँ की खान सबसे अधिक प्रसिद्ध थी और हीरे वहीं अधिक निकलते भी थे।

वहां बड़े बड़े सेठ-साहूकार और हीरे के व्यापारी बस गये थे। इस कारण हीरे की वही मुख्य मण्डी थी और वहीं उनकी बिक्री होती थी। गुजरात और काठियावाड़ के लोग हीरों का व्यवसाय अधिक करते थे। वे हीरों का चालान सूरत को भी करते थे। अतएव वहाँ भी उनकी बिक्री होती थी। मदरास-प्रान्त की खानों से, १८४० ईसवी तक, हीरे निकाले जाते थे। उसके बाद वहां यह व्यवसाय बन्द हो गया। बात यह हुई कि हीरों का निकलना कम हो गया और खुदाई का खर्च पूरा न पड़ने लगा। वहां के भी हीरे गोलकुण्डे ही के हीरों के नाम से बिकते थे; क्योंकि उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त का काम वहीं होता था।

संस्कृत-भाषा में रचे गये मणि-मुक्ता शास्त्र मे हर तरह के रत्नों और मोतियों का विस्तृत वर्णन है। उसमें उनके रङ्ग, उनके वज़न, उनके गुण-धर्म्म, उनके मूल्य आदि के सिवा उनके सम्बन्ध की सूक्ष्म से सूक्ष्म बातों की विवेचना की गई है। हीरे का तो वर्ण-विनिश्चय भी उसमें किया गया है। वे भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों में विभक्त किये गये है और हर वर्ण के लक्षण बड़ी बारीकी से बताये गये हैं। ब्राह्मण-वर्ण का हीरा सबसे अधिक मूल्यवान् माना गया है और शूद्र वर्ण का सबसे कम मूल्य का। मदरास-हाते की खानों से जो हीरा निकलता था वह प्रायः शूद्र ही वर्ण का होता था।

कृष्णा और गोदावरी ज़िले की खानों से जो हीरा निकलता था वह भी गोलकुण्डा ही की खानों से निकला हुआ समझा जाता था—उसकी भी प्रसिद्धि गोलकुण्डा ही के नाम से थी। वहाँ के हीरों की बड़ी ख्याति थी। वे समस्त संसार में प्रसिद्ध थे। ट्रांसवाल के किंबर्ले और दक्षिणी अमेरिका के ब्रेज़ील मे तो अभी कल से हीरे निकलने लगे है। उसके पहले भारत के गोलकुण्डे और प्रशान्त महासागर के बोर्नियो द्वीप की खानों ही से निकले हुए हीरों की सर्वत्र धूम थी। कितने ही विश्वविख्यात हीरे गोलकुण्डे ही की खान से प्राप्त हुए है। टेवरनियर नाम का एक यात्री, दो ढाई सौ वर्ष पूर्व, भारत में आया था। उस समय देहली के सिंहासन पर औरङ्गज़ेब आसीन था। इस यात्री ने अपनी यात्रा का वर्णन लिखा है। उसमें वह लिखता है—

"गोलकुण्डे के पास खेत जोतते वक्त एक किसान को एक चमकदार पत्थर मिला। उसे उसने एक ऐसे आदमी को दिखाया जो हीरे का व्यापारी था और जो इन रत्नों का पारखी भी था। वह उस पत्थर को देखकर चकित होगया और उसे बड़े मोल का बताया। उसने उस किसान से उस जगह का पता भी मालूम कर लिया जहाँ से उसे वह हीरा मिला था। बात धीरे धीरे सर्वत्र फैल गई। फल यह हुआ कि अनेक मालदार मनुष्यों ने वहां खोद खोद कर हीरे निकालने का व्यवसाय शुरू कर दिया। ढेरों हीरे निकलने लगे। उनमे से अनेक हीरे बड़े-बड़े और बहुमूल्य थे। एक हीरे का वज़न ९०० करात था। वह गोलकुण्डे के हाकिम के पास पहुँचा। पर उसके एक सरदार ने विश्वासघात करके उसे उससे छीन लिया। कुछ कालोपरान्त वह हीरा औरंगज़ेब को नज़र किया गया। उसे देखकर वह मोहित हो गया। औरंगज़ेब ने उसका जो नाम रक्खा उसी का अनुवाद अँगरेज़ी पुस्तकों मे "ग्रेट मोग़ल" अर्थात् विशाल मोग़ल लिखा मिलता है। १ नवम्बर १६६५ को औरंगज़ेब के एक सरदार ने वह हीरा टेवरनियर को दिखाया। उस समय उसका वज़न केवल ३१९ करात रह गया था। बात यह हुई कि औरंगज़ेब ने उसे एक कारीगर के सिपुर्द इसलिए किया था कि उसे पहलदार और सुडौल बना दे। पर यह काम उससे ठीक ठीक न हो सका या उसने न किया। फल हुआ कि हीरे का वज़न आधे से भी कम रह गया। इस पर मज़दूरी देना तो दूर, औरंगज़ेब ने उस कारीगर पर १० हज़ार रुपया जुर्माना ठोक दिया"!

किसी किसी का ख़याल है कि उस कारीगर ने उस हीरे को काटकर दो टुकड़े चुरा लिये, जिन्हें उसने पीछे से औरों के हाथ बेंचा। ये दोनों हीरे अब तक योरप में विद्यमान हैं और बड़े मोल के समझे जाते हैं। कोई कोई इसी "विशाल मोग़ल" को

कोहेनूर समझते हैं। पर यह ख़याल ग़लत मालूम होता है।

आज-कल तो नहीं, पर किसी समय मध्य-प्रदेश के चांदा और सम्भलपुर ज़िलों की भी खानियों से हीरा निकलता था। अठारहवीं सदी के अन्त तक कुछ न कुछ हीरे उनसे निकलते ही रहे। परन्तु उसके बाद उनकी प्राप्ति यहाँ तक कम हो गई कि खुदाई का ख़र्च भी पूरा न पड़ने लगा। अतएव खुदाई का काम सदा के लिए बन्द कर देना पड़ा। उस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य था। उसे इस देश से जो रुपया विलायत भेजना पड़ता था वह प्रायः सोने के रूप में भेजा जाता था। सोना ज़ियादह जगह घेरता है और उसे भेजने के लिए विशेष प्रबन्ध और अधिक रक्षा की ज़रूरत होती है। इसी से, १७६६ ईसवी में, लार्ड क्लाइव ने मदरास के गवर्नर को एक पत्र भेजा। उसमें उन्होंने यह तजवीज़ पेश की कि सोने के बदले हीरे विलायत भेजे जाया करें। उन्होंने सलाह दी कि कोई जौहरी सम्भलपुर भेजा जाय। वह वहाँ कम्पनी के लिए हीरे ख़रीदे। वही हीरे विलायत रवाना हुआ करें। परन्तु लार्ड क्लाइव की यह योजना पसन्द न की गई। इसके कुछ कालोपरान्त वहाँ के हीरे निकालने का व्यवसाय ही बैठ गया।

अकबर और जहाँगीर के शासन-काल में छोटा-नागपुर के हीरों की भी बड़ी ख्याति थी। उस समय वहाँ का कुछ भू-भाग कोकरा कहलाता था। वहीं हीरे की खानें थीं। वे सब राजा माधवसिंह के राज्य में थीं। यह राजा स्वतन्त्र था। अकबर ने जो वहाँ के हीरों का हाल सुना तो उसके मुँह से लोभ की लार टपकने लगी। उसने राजा की स्वतन्त्रता का अपहरण करके उसे अपना करद राजा बना लिया। इस प्रकार उसने राजा से बहुत से हीरे हथियाये। छोटा-नागपुर के हीरों के विषय में जहाँगीर ने अपने आत्म-चरित में जो कुछ लिखा है उसका मतलब नीचे दिया जाता है—

"यह ज़िला सूबे बिहार में शामिल है। उसमें एक नदी है। उसी से हीरे निकलते हैं। जब नदी में पानी कम रह जाता है तब कहीं कहीं उसमें छोटे छोटे कुण्ड बन जाते हैं। जिन कुण्डों के ऊपर भिङ्गा नाम के पतिङ्गे उड़ा करते हैं उनके भीतर हीरे ज़रूर मिलते हैं। हीरे निकालनेवाले इस बात को जानते हैं। अतएव वे उन्हीं कुण्डों को खोद कर हीरे निकालते हैं। कभी कभी एक एक लाख रुपये तक की क़ीमत के हीरे उस नदी की तह से निकल आते हैं। यह नदी और इसके आस पास की भूमि दुर्जनशाल नाम के राजा के राज्य या ज़मींदारी में है। मेरे हुक्म से बिहार के गवर्नर इब्राहीमख़ाँ ने इस राजा पर चढ़ाई की। उसमें उसकी जीत हुई। उसने राजा की मा और भाई को पकड़ कर उनसे उनके तमाम हीरे छीन लिये"।

इसके आगे बादशाह सलामत फ़रमाते हैं—

"छोटा-नागपुर का यह भाग अब मेरे ही अधीन है। जितने हीरे अब नदी से निकलते हैं सब देहली भेज दिये जाते हैं और यहाँ मेरे तोशेख़ाने मे जमा हो जाते हैं। अभी कुछ ही समय हुआ, एक ऐसा हीरा वहाँ से आया जिसका मूल्य ५० हज़ार रुपये से कम न होगा। मुझे आशा है, इसी तरह के और भी बहुत से हीरे मुझे वहाँ से मिलेंगे"।

जिस नदी का उल्लेख ऊपर हुआ वह लोहर डग्गा ज़िले से होकर बहती है। वहाँ के हीरों के सम्बन्ध में कर्नेल डाल्टन नाम के एक साहब ने एक वैसी ही घटना का वर्णन किया है जैसी घटना का वर्णन नादिरशाह और मोहम्मदशाह के सम्बन्ध में किया जाता है। वह इस तरह—

"बात १७७२ ईसवी की है। उस समय पालामऊ या पलामू में कुछ फ़ौज रहती थी। कप्तान कामर उसके कमांडिंग अफ़सर थे। एक दफ़े छोटा नागपुर के राजा उनसे मिलने गये। कप्तान साहब ने सुन रक्खा था कि राजा साहब अपनी पगड़ी में कितने ही बेश-क़ीमती हीरे रखते हैं। कहीं वे खो न जायँ, इस डर से वे उन्हें सदा अपने सिर पर ही रखना मुनासिब समझते हैं। कप्तान था चण्डूल आदमी। वह लोभी भी पहले दरजे का था। उसे राजा की

पगड़ी के हीरों का भेद मालूम होगया था। राजा यद्यपि ईस्ट-इंडिया कम्पनी की अधीनता में था—यद्यपि वह उसका करद राजा था—तथापि कप्तान कामर ने उसके करद होने पर विश्वास न किया। उसने कहा, हम लोगों को अपनी पारस्परिक मैत्री की दृढ़ता का सबूत देना चाहिए। आइए, हम लोग पगड़ी बदलौव्वल कर लें। बेचारा राजा बड़े धर्म्म-संकट में पड़ा। लाचार होकर उसे अपनी पगड़ी साहब के सिर पर रख कर हीरों से हाथ धोना पड़ा। उधर साहब की टोपी में तो कुछ था ही नहीं। अतएव साहब को कोसते हुए राजा साहब अपने घर गये"। परन्तु यह एक मन-गढ़न्त क़िस्सा सा मालूम होता है। शायद ही इसमें कुछ सार हो। ऐसी कौन सी आपत्ति आनेवाली थी जिसके डर से राजा को अपने हीरे पगड़ी के भीतर छिपाकर रखने पड़े? इतिहास में तो इसका कहीं भी कुछ भी उल्लेख नहीं।

भारत की और सब खानें तो अब ख़ाली पड़ी हुई हैं। और यदि ख़ाली भी न हों तो उनसे हीरे निकलने की बहुत कम आशा है। इसी से उनकी खुदाई नहीं होती। हां, बुन्देलखण्ड की रियासत पन्ना में अब भी कहीं कहीं हीरे की खानों में काम होता है और यदा-कदा कुछ हीरे निकल भी आते है। खुदाई का काम वहाँ की गोंड-जाति के जङ्गली आदमी करते है। वे खानों की तीस तीस फ़ुट की गहराई तक खोदते हैं। यदि उनसे पानी निकलता है तो उसे खींच कर बाहर फेंक देते हैं और भीतर के मिट्टी-कङ्कड़ टोकरियों में भर-भर कर ऊपर लाते हैं। उसी मिट्टी को धोकर वे उससे हीरों के टुकड़े निकालते हैं। यह बात कुछ समय पहले की है। मालूम नहीं, अब भी वहां हीरे निकालने और ढूँढ़ने का काम होता है या नहीं।

(सङ्कलित)

पुलिस के क्रियाकलाप को आलोचना

[श्रीयुत 'ज्ञ']
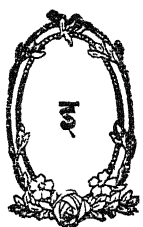
इस सुभग और शान्त प्रान्त के एक मौज़े में एक आदमी दिन-दहाड़े लुट गया। चौकीदार साहब ठहरे फ़रमाँबरदार मुलाज़िम। थाने पर रिपोर्ट पहुँचा दी। दूसरेही दिन घोड़े की टाप सुनाई दी। दारोग़ाजी मौक़े पर आधमके। बँधाई हुई (रेगुलेशन) लाठियाँ इधर-उधर चमकने लगीं। काले और ख़ाकी कोट, और लाल पगड़ी-धारी जवानो के ठट्ट लग गये। बुलाओ चमारों को घास लावें। पकड़ो नाइयों और कहारों को ख़िदमत करें। कहाँ है नब्बूख़ाँ? अरे ग़फ़ूर, चारपाइयाँ अभी तक नहीं आईं! पकड़ो बनिये को; रसद हाज़िर करे। यह सब हो चुकने पर, तफ़तीश की ठहरी। भले-बुरे, नङ्गे-लुच्चे, शरीफ़-कमीने, पासी-कुर्मी, काश्तकार-नम्बरदार, बनिये-महाजन सब तलब हो आये। किसी की डाढ़ी नुची, किसी की चोटी खिँची, किसी पर चपत रसीद हुए, किसी पर हंटर बरसे। यह तो हाथों की कारपरदाज़ी हुई। ज़बान की कुछ न पूछिए। कुल अलफ़ाज़ में से ९० फ़ी सदी से ज़ियादह ही स्तुतिस्तोत्र समझ लीजिए। बाक़ी-माँदह और मामूली बातें। दौड़-धूप भी कुछ हुई; मगर असल मतलब हासिल न हुआ। सब टाँय टाँय फिस। शुभे भी कुछ हुए। जनाबेमन, जो शख़्स लुटा था वह बेहद घबराया; क्योंकि उसकी तरफ़ कुछ इशारे किये गये। पुलिस को तङ्ग करने के लिए कहीं झूठमूठही तो इसने वावैला नहीं मचा दिया! मगर कुछ लोगों के कहने-सुनने से उसे कुछ भी इनाम-इकराम न देना पड़ा। बेचारा बच गया। जब जाने की ठहरी तब बनिये ने बिल पेश किया। वह कुछ चुकाया

गया, कुछ चुकाने के वादे पर छोड़ा गया। मालूम नहीं, उसकी निसबत कोई चेक या चादी थाने से आई या नहीं। हाँ, एक बात भूलही गई। चलते वक्त मौज़े के उन आधे दर्जन आदमियों ने पगड़ियों और लाठियों को सलाम किया। हुक्म हुआ, अब अपने अपने घर जा सकते हो। किसी ने बड़ी जुरात करके सिफ़ारिश की कि इन बेचारों को कुछ मिल जाना चाहिए। मगर मिलता कैसे, ख़ज़ाना ही ख़ाली था। इस पर किसी ने कहा कि आपको तो बतौर हक़ के ख़ास ख़ास लोगों से कुछ वसूल कर लेने का भी अख़्त्यार हासिल है। वसूल करके इन्हें रुपया, रुपया न सही धेलीही धेली दे दीजिए। फ़रमाया गया—राम राम, इसकी तो क़तई मुमानियत है। यह बात ज़रूर सच होगी, क्योंकि शुभा किये गये कुछ आदमियों से दो एक कांस्टेबुल देवता, अलग, एकान्त मे, गुरुदीक्षा देते या लेते अवश्य देखे गये थे।

जिस पुलिस के क्रिया-कलाप का यह एक छोटा सा काल्पनिक—हाँ हाँ, काल्पनिक, सच्चा नहीं—दृश्य है उसकी, १९२७ ईसवी से सम्बन्ध रखनेवाली, कारपरदाज़ी पर गवर्नर साहब ने, अकेलेही अपने कमरे में बैठकर नहीं, किन्तु अपने मन्त्रि-मण्डल के मध्य विराजमान होकर, जो मन्तव्य प्रकाशित किया है उसमें लिखा है कि पिछले साल यद्यपि पुलिस के मुलाज़िम बरख़ास्त कमही हुए, मगर अदालतों से उन्हें सज़ायें अधिक हुईं। १९२६ में सिर्फ़ ९४ मुलाज़िमों ने सज़ायें पाई थीं; पर १९२७ में १०८ की इज़्ज़त-अफ़ज़ाई हुई। सरकार का कहना है कि वह पुलिस की घूसखोरी और नालायक़ी ("Corruption and inefficience) का नाश करने की ख़ूब चेष्टा कर रही है। इससे साबित होता है कि दारोग़ाजी के "राम राम" करने पर भी यह रोग इस महकमे का पीछा नहीं छोड़ना चाहता। जिस तहरीर में सरकार ने पुलिस के काम-काज के विषय में नुक़ताचीनी की है उसका नम्बर २८०७ VIII—३२५ और तारीख़ ६ सितम्बर १९२८ है। उसी में यह भी लिखा है कि इस महकमे के जिन लोगों ने अच्छा काम किया उन्हें कुल मिला कर सवा लाख रुपया इनाम दिया गया!

जिन जुर्मों में पुलिस को दस्तन्दाज़ी करने का मजाज़ है वे १९२७ में कम हुए। अर्थात् १९२६ की अपेक्षा कोई २½ हज़ार कम। इन जुर्मों मे क़त्ल, ज़ररशदीद, लूट, डाकेज़नी आदि शामिल समझिए। इन जुर्मों के मुतअल्लिक़ फ़ी सदी ८८ हादसों की तफ़तीश, याने जांच, पुलिस ने कर डाली। जिन मुज़रिमों का चालान हुआ उनमें से फ़ी सदी ९४ को सज़ायें मिलीं। सिर्फ़ ६ ने पुलिस के पाश से मुक्ति पाई। इस नतीजे पर गवर्नर साहब ने ख़ुशी ज़ाहिर की है। मगर किन्तु परन्तु के साथ। उनकी आलोचना है कि नक़बज़नी के मामिलों में किसी किसी ज़िले की पुलिस ने जाँच-पड़ताल करने में कसर कर दी। यही राय पुलिस के बड़े साहब की भी है। इस नोट के लेखक की राय तो यह है कि कसर रह गई तो अच्छाही हुआ। बचे बेचारे देहाती वह दृश्य देखने से जिसका नज़ारा इस नोट के आरम्भ में दिखाया जा चुका है।

पिछले साल क़त्ल के हादसे, बहुत हो गये। मगर ग़नीमत इतनीही हुई कि १९२६ ईसवी से ७ कम हुए। मेरठ, सीतापुर और कानपुर का नम्बर इन जुर्मों में ख़ूब ऊँचा रहा। हर ज़िले में ४० से भी अधिक क़त्ल हुए। पीलीभीत के राय बहादुर बाबू बहादुरसिंह के क़ातिलों का पता लग गया। मगर पता लगाया ख़ुफिया पुलिस के मुलाज़िमों ने, ज़िला-पुलिस से कुछ भी नहीं हो सका। लखनऊ और उसके पड़ोसी ज़िलों में निःसहाय औरतों के १२ क़त्ल हो गये। मगर एक में भी पुलिस क़ातिल या क़ातिलों का पता न लगा सकी। १२७ मुज़रिमों को फांसी दे दी गई—अर्थात् १९२६ की अपेक्षा २६ अधिक को। ठीक हुआ न? कम से कम पुलिस के लिए तो ख़ुशी मनाने की बात हुई। दस औरतों पर यह इलज़ाम लगाया गया कि उन्होंने अपनेही बच्चे मार डाले हैं। उनमें से ७ को आमरण क़ैद की सज़ा मिली। सरकारी आलोचना के लेखक को यह लिख देना था कि ये औरतें सधवा थीं या विधवा। यदि विधवा होतीं तो विधवा-विवाह के विरोधियों को सत्यदेव की कथा कहाने का मौक़ा ज़रूर मिल जाता। इस सम्बन्ध में गवर्नमेंट को, उसकी निरतिशय दयालुता के कारण, धन्य-

वाद दिये बिना नहीं रहा जाता; क्योंकि आमरण क़ैद की सज़ा पाई हुई स्त्रियों में से एक को छोड़ कर और सभी की सज़ा घटा कर उसने एक से तीनही वर्ष तक कर दी।

बलवे ख़ूबही हुए। सन् १९२६ से ८० अधिक। इसे सरकार जाति-द्वेष या धर्म्म-द्वेष का कारण समझती है। अर्थात् हिन्दू-मुसल्मानों ने, आपसी कलह के कारण, सिर-फुटौव्वल की। १८ ज़िलों में ये बलवे हुए। उनमें से बरेली का नम्बर सबसे ऊँचा रहा। वहाँ १८ आदमियों की जानें गईं। दो एक ज़िलों में पुलिस ने अपने काम में ग़फ़लत की। इस कारण उसकी सख़्त ख़बर ली गई। यदि वह अपना काम मुस्तैदी से करती तो अधिक ज़ोर आज़माई करने का मौक़ा बलवाइयों को न मिलता।

डाकेज़नी यद्यपि पहले से कम होगई है तथापि, पिछले साल, फिर भी ६५७ डाके पड़ ही गये। उनमें से ४१५ हादसे तो मकानों पर हमले के हुए और २३६ हादसे राह चलते हुए लोगों पर हुए। २८० डाकों में डाकुओं ने बन्दूक़ों और तमंचों से काम लिया या उनको लिये हुए डाके डाले। चम्बल के कंजर नामी डाकू हैं। उनके सरदार और सैनिक प्रायः सभी पकड़ लिये गये और उनके गरोह तितर-बितर कर दिये गये। डाकेज़नी रोकने के लिए जो ख़ास पुलिस रक्खी गई है उसने अपना काम बड़ी ख़ूबी से किया। इसी से ये डाकू ठिकाने लगाये जा सके।

लूट, चोरी और नक़बज़नी कम होगई। फिर भी, जनाब, कुछ कम २० हज़ार चोरियाँ हुईं। इसे सुनकर घबराइएगा नहीं। दस साल पहले इनकी संख्या प्रायः ४० हज़ार थी! पुलिस के कुछ अफ़सर अब अपनी वर्दी घर पर रखकर, सादे कपड़े पहनकर, चोरियों का पता लगाने लगे हैं। इससे उन्हें अधिक कामयाबी हुई है। लखनऊ में कुछ शरीफ़ज़ादों ने एक गुट बना लिया था। वे पैरगाड़ियों की चोरियाँ करते थे। इस तरह उन्होंने ७६ पैरगाड़ियाँ उड़ा ली थीं। वर्दी-विहीन पुलिस ने उनमें से ४० गाड़ियाँ बरामद कर लीं। चोरी गया माल पहले बहुत ही कम बरामद होता था। अब कुछ अधिक होने लगा है। अब तो, जनाब, १०० में १७ का पता लगा लिया और बरामद कर लिया जाता है। बाक़ी १०० में ८३ चोरों ही के घरों में रह जाता है। सभी छिन जायगा तो बेचारे चोर बे-मौत ही मर जायँगे। अतएव कुछ तो उनके पल्ले पड़ा ही रहने देना चाहिए। क्योंकि चोरी का हुनर बहुत पुराना है। प्राचीन हिन्दू-पण्डितों ने उस पर बड़ी बड़ी पोथियाँ लिख डाली हैं। उनकी यादगार समूल ही नष्ट कर देना बड़ी ही बेरहमी होगी। बेरहमी क्या, उसे तो पितृद्रोह कहना पड़ेगा।

स्त्रियों और बच्चों वग़ैरह को उड़ा देने के जुर्म बढ़ रहे हैं। यह बाढ़ १९२२ ईसवी से तरक़्क़ी ही करती जा रही है। पिछले साल इन जुर्मों की संख्या ६३३ तक पहुँच गई। ज़हर देने के हादसे कुछ कम ज़रूर होगये हैं; मगर रेल के मुसाफ़िरों को फिर भी कालकूट के घूँट अधिक पिलाये जाते हैं। नाजायज़ तरीक़े से शराब बनाने के जुर्म किसी ज़िले में कम, किसी में ज़ियादह, हुए। एक बात क़ाबिलअफ़सोस यह हुई कि जिन सरकारी मुलाज़िमों का काम ऐसे जुर्म रोकने का है उन्होंने अपना फ़र्ज़ ठीक ठीक अदा न किया। इसका क्या मतलब, सो सरकार ने खोलकर नहीं बताया। मुलाज़िमों ने निगरानी में ग़फ़लत की या मुट्ठी गरम करके चश्मपोशी कर डाली? हुआ क्या? रायबरेली के पासी शराब के बड़े ही शौक़ीन मालूम होते हैं। अनेक पासियों को सज़ायें होगईं; मगर शराब चुआना और पीकर मस्त होना उन्होंने न छोड़ा। कोकेन की नाजायज़ बिक्री भी इस सूबे में ख़ूब हो रही है। पुलिस से कुछ करते धरते नहीं बनता।

पुलिस ने अपनी काली किताब में पूरे ५० हज़ार आदमियों के नाम दर्ज कर रक्खे हैं। अर्थात् ये सब मशकूक आदमी हैं। चाहे आप इन्हें बदमाश कहें, चाहे शरीफ़। पुलिस इनकी निगरानी ज़रूर करती है। इसका अर्थ यह हुआ कि फ़ी थाने ६० आदमी ऐसे हैं जिनकी चाल-ढाल और रफ़्तार की देख-रेख पुलिस को करनी पड़ती है।

सरकार अपनी ख़ुफ़िया पुलिस के काम से बहुत ख़ुश है। इस पुलिस में सिर्फ़ ७१ आदमी हैं। मगर,

साहब, इतने थोड़े होने पर भी ये लोग ग़ज़ब का काम करते हैं। याद रहे, इन्हीं लोगों ने काकोरीवाली जालसाज़ी का रत्ती रत्ती पता लगाकर कावा काटनेवाले कितने हीं काइयाँ लोगों को कृष्णालय भिजवा दिया। कुछ को फांसी पर भी शायद चढ़वा दिया। और, जनाब, इन्हीं ने नामी डाकू छत्रपालसिंह के साथियों को हज को पहुँचाया। साहबमन, इन लोगों ने तो इससे भी बढ़कर काम कर दिखाये। सरकार बहादुर के कुछ अफ़सर तक घूसखोर हैं। सुना आपने? ऐसे घूसखोरों के सात मामलों की जांच इन लोगों ने कर डाली। नतीजा यह हुआ कि चार अफ़सरों को इन्होंने ले डाला। उन्हें सज़ायें मिल गईं।

सूबे में चौकीदार कम रह गये हैं। कई साल हुए बहुत से चौकीदार बरख़ास्त कर दिये गये थे। ख़र्च में कुछ बचत करने के इरादे से यह तख़फ़ीफ़ हुई थी। मगर अब कुछ चौकीदारों के भाग्य फिर खुलनेवाले हैं। जान तो ऐसा ही पड़ता है। फ़ी सदी १२ चौकीदार बढ़ाने की तजवीज़ पर सरकार विचार कर रही है। यदि यह तजवीज़ मंज़ूर हो गई तो ऐसे हर मौज़े के लिए एक एक चौकीदार हो जायगा जिसमें जरायम पेशा लोग रहते हैं या ऐसे लोग रहते हैं जिनकी आदतही एक न एक जुर्म करने की पड़ गई है।

तथास्तु।

बेड़ा पार

[श्रीयुत रामचरित उपाध्याय]

(१)

सीता सावित्री सी नारी,
न हों यहाँ, यह साध हमारी।
ग्रेजुएट होवें अबलायें,
योरप अमरीका में जायें॥
होवें वहाँ पहुँच कर पास।
भारत का भग जावे त्रास॥

(२)

हिन्दू हिन्दी से अनभिज्ञ,—
होकर, इँग्लिश के हों विज्ञ।
हैट-पैंट के होकर भक्त,
पगड़ी धोती कर दें त्यक्त॥
चन्दन न दें, मलें बस सोप।
तब भारत का हो दुख लोप॥

(३)

शस्त्र, शास्त्र को समझें पाप,
लेक्चर से मेटें त्रय ताप।
प्रस्तावों का खोलें सत्र।
या निकाल दें इँग्लिश-पत्र॥
इससे बढ़ करके उत्थान।
क्या दूजा होगा मतिमान॥

(४)

साड़ी-चादर को रख दूर,
और चूड़ियों को कर चूर।
दृग पर ऐनक पग में बूट,
धारण करो देवि! न्यू सूट॥
पति पर छड़ी तुम्हारी चले।
फिर न देश क्यों फूले-फले?

(५)

देशी कुत्ते मारे जावें,
श्वान विदेशी आदर पावें।
गो-सेवा करना है भूल,
श्वा-सेवा है उन्नति-मूल॥
चुरट-पान है पुण्य महान।
मोक्षप्रद है मदिरा-पान॥

(६)

होवे ब्याह नरों का एक,
और स्त्रियों के ब्याह अनेक।
पुरुष अगोरें निज घर-द्वार,
स्त्रियाँ करें सब हाट-बजार॥
शिशु को घर पर पुरुष खेलावें।
स्त्रियाँ सभायें करने जावें॥

(७)

नारी लीडर फ़ीडर बने,
नारी टीचर रीडर बने।
नारी मास्टर नारी डाक्टर,
नारी जज नारी बैरिस्टर ॥
पराधीन फिर देश न रहे।
निर्बल होकर क्लेश न सहे ॥

(८)

द्विज-सम समझो डोम-चमार,
छुआछूत का तजो विचार।
एकी जाति एक ही धर्म,
मन-माना हो सबका कर्म ॥
चौके पर चौका दो फेर।
फिर उन्नति में लगे न देर ॥

(९)

ज्ञान-हीन थे शिवा, प्रताप,
व्यर्थ धर्म की रक्खी छाप।
जीवन अपना व्यर्थ गँवाया,
जाति-धर्म पर रक्त बहाया ॥
चन्दा माँगो लेक्चर झाड़ो।
देश दासता के उर फाड़ो ॥

(१०)

करो संगठन कुछ मत डरो,
किन्तु मेम्बरी पर लड़ मरो।
करो नौकरी मिले स्वराज,
रिशवत लेने में क्या लाज ?
विधर्मियों से डरते रहो।
कर्मवीर अपने को कहो ॥

(११)

शब्द "सनातन" है विकराल,
कोषों से दो उसे निकाल।
कोई शूद्र न जग में रहे,
सब अपने को द्विजवर कहे ॥
फिर वह क्यों न खिलेगा फूल।
जो है सकल समुन्नति-मूल ॥

(१२)

वस्तु विदेशी का व्यवहार,
करते रहिए बारंबार।
कभी स्वदेशी वस्तु न छूना,
हा बढ़ जायेगा दुख दूना ॥
सम्पति जावे चली विदेश।
तब भारत को मिले न क्लेश ॥

(१३)

यदि स्वतन्त्र होना है, डरो,
बैठे बैठे आहें भरो।
उद्यम करने से क्या काम ?
पर-वशता में है आराम ॥
लेते रहो विदेशी शिक्षा।
करो नौकरी, माँगो भिक्षा ॥

(१४)

जाओ भूल आत्म-इतिहास,
होने दो जग में उपहास।
अति कायर अपने को जानो,
बिना लात के बात न मानो ॥
किसी काम का लो मत नाम।
सबको देता दाता राम ॥

(१५)

बलदायक व्यायाम न करिए,
निर्बल रहकर झटपट मरिए।
सहन-शीलता-क्षमा-निधान,
बन कर, बन जाओ मतिमान ॥
सहते रहो मार पर मार।
हो जावेगा बेड़ा पार ॥

मेरी दूसरी आकाश-यात्रा

[श्रीयुत स्वामी सत्यदेव परिव्राजक]

सा की बीसवीं शताब्दी में आकाश-यानों का युग आरम्भ हो गया है। उन्नति-चक्र बड़े वेग से घूम रहा है। इतिहास अपनी पुरानी बातों को फिर दोहराता है, पर दोहराता है उन्हें सुलझा कर, सुथरा कर और उन्नत-दशा में। विमानों पर लोग पहले भी चढ़ते थे—नभ-विचरण होता था—पर वह देवताओं का, अवतारी जीवों का और राजों-महाराजों का। आकाश-यानों में बैठकर पहले भी लोग लड़ते थे, पर ख़ास व्यक्ति—जन-साधारण केवल तमाशबीन थे और आकाश में यात्रा करनेवालों को सिर झुकाया करते थे।

टेम्पल-होफ़ का एक दृश्य

वह अहंमन्यता—महापुरुषता—का युग था। वर्तमान युग जन-साधारण के लिए आरम्भ हुआ है। आज रोज़ ठीक समय पर योरप के बड़े बड़े नगरों में विमान-यात्रा होने लगी है। चाहे मज़दूर हो या ड्यूक—सभी उन यानों में बैठकर आकाश के पक्षी बन सकते हैं। सभी उसका सुख ले सकते हैं। दाम भी कुछ ऐसा अधिक नहीं। अगर सेकंड क्लास रेल की यात्रा में अट्ठाईस रुपये पड़ते है तो आकाश-यान से उसी यात्रा में सैंतीस रुपये पड़ जायँगे। बस, नौ रुपये में आकाश की मज़ेदार सैर हो सकती है।

आकाश-यानों की इस दौड़ में भी जर्मनी सबसे आगे है। पाठकों को चेकोस्लोवाकिया के विमान का

हाल तो सुना चुका हूँ, प्राग से ब्रूनो, एक घंटे के सफ़र की कथा भी बता चुका हूँ, आज जर्मनी के हंसा-यान का चमत्कार भी दिखलाता हूँ। प्रागवाले आकाश-यान में ऊपर-नीचे के उथल-पुथल से पेट में कन्दुक-क्रीड़ा होने लगी थी और पसीने से यात्री तरबतर हो गये थे, पर जर्मनी का हंसा-यान सचमुच राजहंस की भाँति ही हवा में तैरता है और अपनी मस्तानी चाल से यात्रियों को मुग्ध कर देता है।

सब प्रकार से मदद करते हैं। भाई कर्तारीम क्या कोई बी० ए० एम० ए० हैं, बेचारे अपना नाम भी लिखना नहीं जानते। वे हमारी जनता, हमारे ग्रामवासियों के प्रतिनिधि-स्वरूप हैं। उन्हें उपदेश देना नहीं आता, बातें बनानी नहीं आतीं, काम आप बताइए, वे झट कर डालेंगे।

मेरे प्यारे पाठको, सरस्वती में बड़े बड़े आदमियों का परिचय छपता है, उनके त्याग के गीत गाये जाते
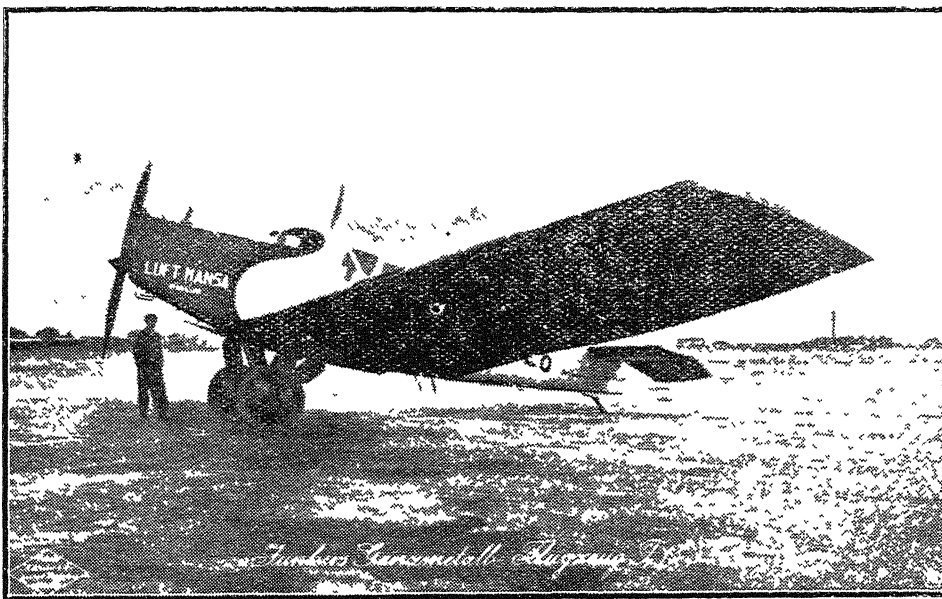
हंसा-विमान अपने घोंसले में आया है

× × × ×

मैं प्राग से बर्लिन आगया। यहाँ रङ्गदार चश्मा लेना था। बर्लिन में भारतीयों का सच्चा मित्र और भारत-माता का भक्त भाई कर्तारीम मेरी सदा सहायता करने के लिए तैयार रहता है। जितने भारतीय मुझे बर्लिन अथवा और दूसरे योरपीय नगरों में मिले, भाई कर्तारीम के जोड़ का सच्चा सेवक दूसरा नहीं मिला। जो भी हिन्दुस्तानी बर्लिन आये—आधी रात हो चाहे दोपहर, मेंह हो चाहे बर्फ़—कर्तारीम को सूचना मिलनी चाहिए, फिर अपने हँसमुख चेहरे से वे आगन्तुक भारतीय की

हैं, पर जिन ग़रीबों ने मातृभूमि के लिए अपने सर्वस्व का होम कर दिया है उनका परिचय कौन देता है। भाई कर्तारीम ने अपनी सारी पूँजी लाला हरदयालजी के चरणों में रखकर सन् १९१४ में ग़दर का झण्डा उठाया था। आप पञ्जाब के गढ़ शङ्कर (होशियारपुर ज़िला) के राजपूत क्षत्री हैं। लीडरों ने जो कहा, सिपाही ने वह सब किया। पर जब लीडर आपस में गद्दियों के लिए लड़ने लगते हैं तब बेचारा सिपाही बे-मौत मारा जाता है। आज बेचारे कर्तारीम के पास पासपोर्ट नहीं है। जर्मनी में अपने दिन काट रहे हैं।
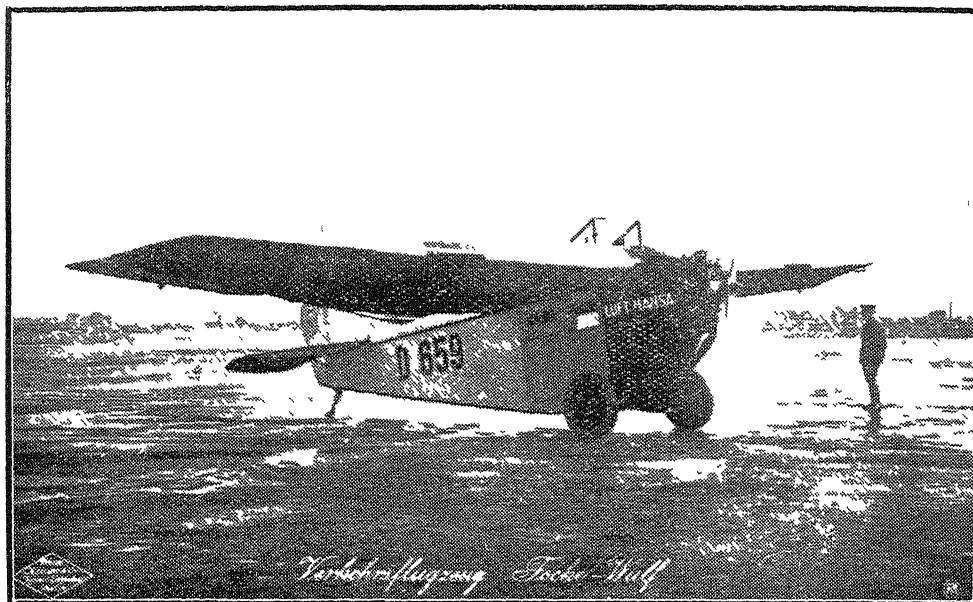
आकाश-यान उड़ने को तैयार है
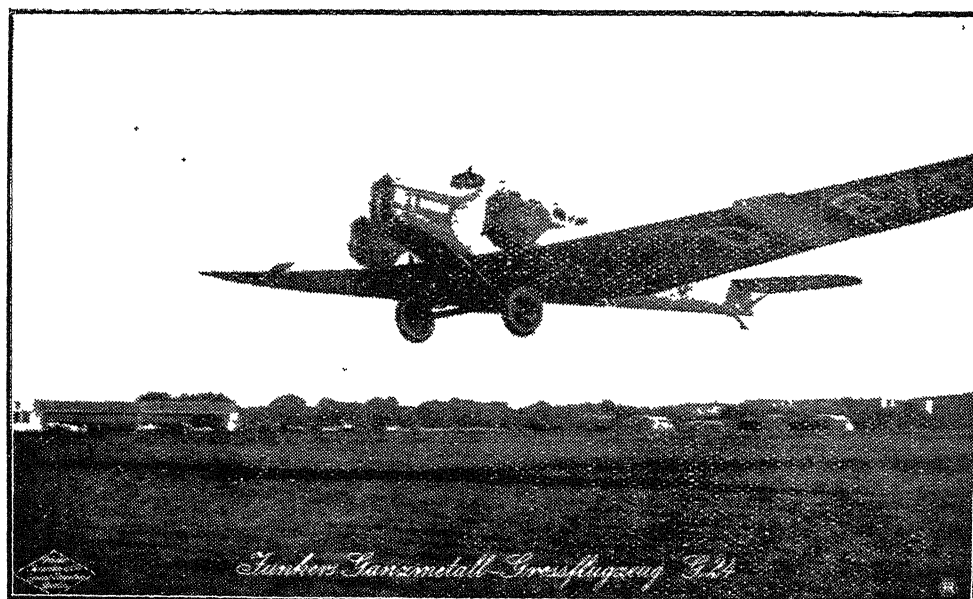
विमान चल पड़ा

× × × ×

बर्लिन में अपना काम पूरा कर मैंने भारत की ओर मुँह करने की ठानी। विचार यह किया कि बर्लिन से फ्रेंकफ़ोर्ट जाकर जगद्विख्यात दार्शनिक गेटे का जन्म-स्थान देखा जाय, वहाँ से आकाश-यान-द्वारा स्विटज़रलैंड की यात्रा हो। यह निश्चय कर अपने परम सुहृद प्रोफ़ेसर ताराचन्द्र रायजी को साथ लेकर मैं जर्मनी के प्रसिद्ध वायु-यान के अड्डे 'टेम्पल-होफ़' को देखने चला।

जर्मन लड़कों को आकाश के पक्के नाविक बनाने की तालीम दी जाती है। आज ये लड़के केवल यात्री-यान चलाना सीखकर व्युत्पन्न होते हैं। जब मौक़ा आएगा तब यही नवयुवक भयंकर बमों से शत्रुओं का संहार करेंगे। अभी जर्मनी केवल शान्त है, अपने व्यापार को बढ़ा रहा है। यात्री-वायुयान अच्छे से अच्छे बना रहा है। पाँच लाख वर्ग मीटर भूमि में यह मैदान है। चालीस हज़ार वर्ग मीटर भूमि में इमारतें बन रही हैं। आकाश-यान-

हवाई-जहाज़ के दरवाज़े के सामने स्वामी सत्यदेव खड़े हैं और पास ही विमान चलानेवाला खड़ा है
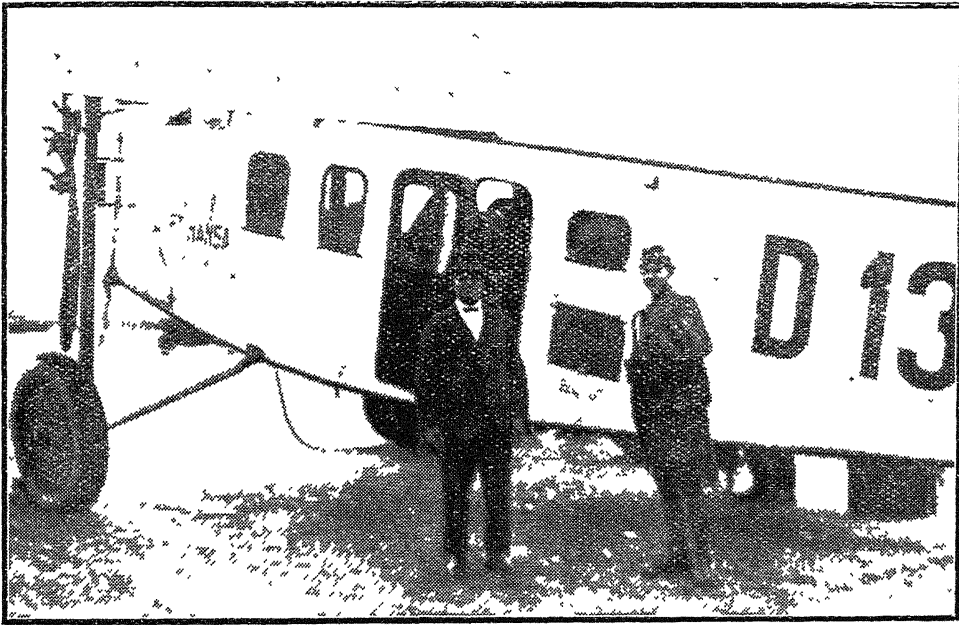
बर्लिन का यह यान-स्टेशन संसार में सबसे श्रेष्ठ है। वहाँ से आकाश-यान योरप के चारों ओर उड़ते हैं। आप मास्को जाइए चाहे रोम; कुस्तुन्तुनिया जाइए चाहे पेरिस, यहाँ से आप को टिकट मिलेंगे और आप मज़े में आकाश की सैर कर सकेंगे।

एक बहुत बड़े चौड़े मैदान में यह स्टेशन बनाया गया है। रेलवे स्टेशनों जैसा भीड़-भड़क्का यहाँ नहीं होता। हाँ, यात्रियों की सुविधा के लिए सब साधन जुटाये गये हैं। अच्छा भोजनालय मौजूद है। एक ओर

विभाग का सारा शासन-यन्त्र यहीं मौजूद है। बेतार का तारघर तथा ऋतु-सूचक-यन्त्र यहीं स्थित हैं। आकाश-यानों के इस स्टेशन का सारा प्रबन्ध-शासन बर्लिन की फ़्लाइट-पोर्ट सोसाइटी के हाथ में है। जितने आकाश-यान हैं वे लुफ़्ट्हंसावस्थली के अधीन हैं। इस प्रकार दो संस्थायें सहयोग-द्वारा इस कार्य्य का संचालन कर रही हैं—एक का काम प्रबन्ध-शासन का है और दूसरी का व्यापारिक। सन् १९२३ से यह स्टेशन खुला है। हर साल हज़ारों सैलानी आकाश-यात्रा करते हैं। प्रति

वर्ष उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है और विमान-यात्रा लोक-प्रिय होती जा रही है।

× × × ×

बुधवार का दिन था। भाई कर्तारामा मुझे छोड़ने के लिए आये। अपना केमेरा वे साथ लेते आये थे। चार बजे संध्या के पूर्व विमान के चलने का समय था।
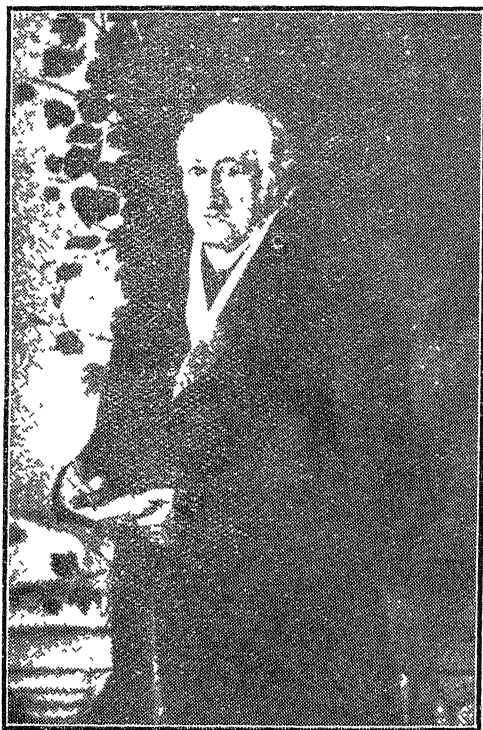
जोन वुल्फ़ गांग गेटे
जन्म सन् १७४९—देहावसान सन् १८३२

फ्रेंकफोर्ट तक मेरे पैंतालीस रुपये किराये के लगे। दस सेर वज़न मुआफ़ होता है। मेरे दोनों सूटकेसों का वज़न १६ सेर निकला, सो तीन रुपये और देने पड़े।

मैं अपना ओवर-कोट लिये आकाश-यान के पास खड़ा था, झट भाई कर्तारामजी ने मेरा फ़ोटो ले लिया, मैं विमान में बैठ गया। प्रोफ़ेसर राय बेचारे दौड़ते दौड़ते आये भी, पर मैं तो हवा से बातें करने लग गया था। सो बर्लिन से हमारा यान उड़ा।

हम केवल तीन यात्री थे। सचमुच इस यात्रा में मुझे मज़ा आ गया। विमान एक चाल से मस्त जा रहा था—नीचे घर, बाज़ार सब बहुत छोटे हो गये। जङ्गल, नदी, नाले, ग्राम, क़स्बे सब नीचे से गुज़रते जा
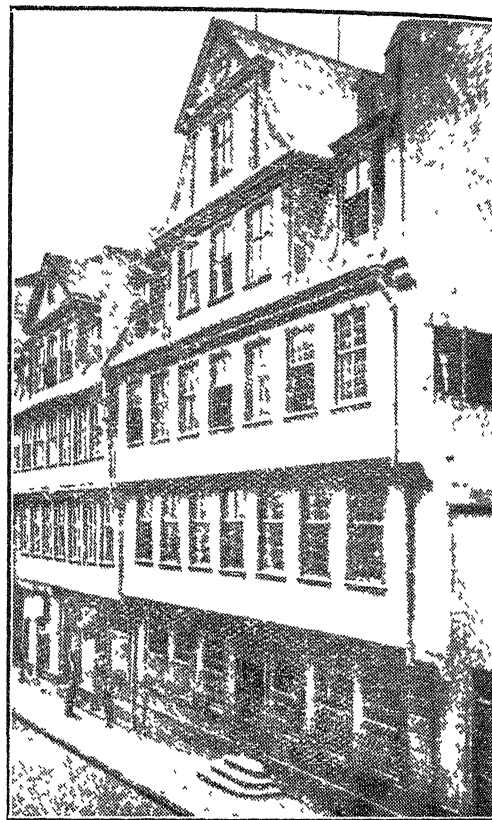
जगद्विख्यात जर्मन दार्शनिक, कवि और साहित्य-सूर्य्य जोन वुल्फ़ गांग गेटे का घर
(यहीं आप अगस्त २८ सन् १७४९ में पैदा हुए। यहीं अपने प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की। आज इस पवित्र घर को देखने के लिए दूर दूर से लोग आते हैं।)

रहे थे। पवन बड़ा सुखदायी, शरीर को प्रफुल्लित करता था। विमान में ही साफ़-सुथरा पाख़ाना होता है। पहली यात्रा में तो मैं घंटा भर अपनी कुरसी पर जमा बैठा रहा था, लेकिन इस यात्रा में

फ़्रैंकफ़ोर्ट नगरी का रमणीक चिड़ियाघर
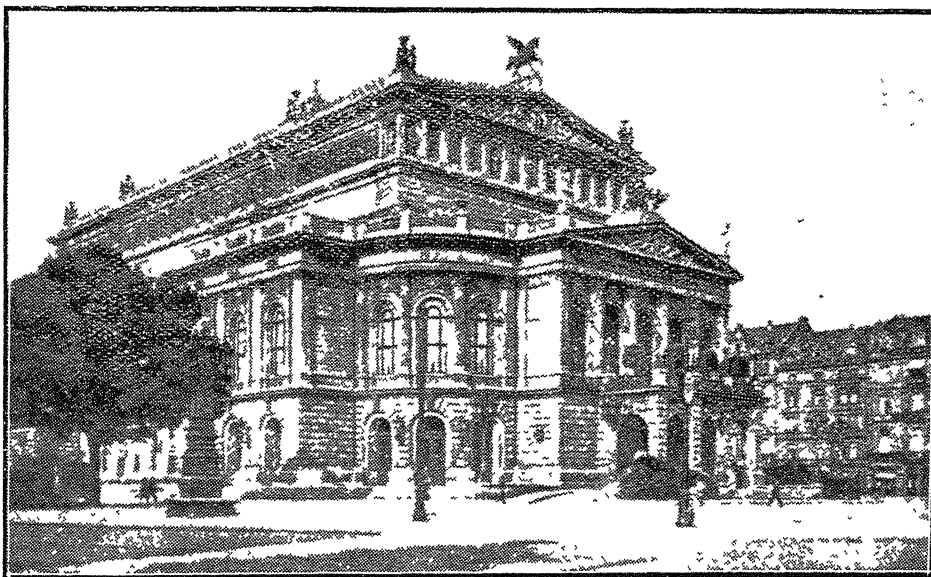
फ़्रैंकफ़ोर्ट का विशाल आपेरा-हाउस
(यहाँ उच्च कोटि की नाट्यकला तथा संगीत का प्रदर्शन होता है)

मैं विमान में कई बार उठा-चला। कुछ डर की बात नहीं, जैसे रेल में बैठे हों। मैंने दिल में कहा—यह है ठीक आकाश-यात्रा। 'सरस्वती' का नया अङ्क मेरे ओवर कोट की जेब में था, उसे निकालकर मैं चिरंजीव राजेश्वरप्रसाद की 'आदर्श' शीर्षक गल्प पढ़ने लगा। उसे पूरा करने पर क्या-क्या भाव मेरे मन में उठे। हम हिन्दू-मुसलमान मामूली-मामूली बातों पर सिर-फुटौअल कर रहे हैं और सभ्य-संसार नये-नये सुन्दर विमान बना रहा है। कितना विशाल धन-धान्य-पूरित मेरा देश है। जर्मनी-फ़्रांस उसके आगे क्या चीज़ हैं। हम यदि स्वतन्त्र हों तो संसार में सबसे अधिक धाक हमारी हो। जिनका अतीत गौरवपूर्ण है, जिनका साहित्य सौन्दर्य-सुरभि-स्रोत है और जिनकी वसुन्धरा ऐसी रत्न-गर्भा है और फिर जो एशिया और योरप का मुख्य द्वार है, ओ हो! कितना प्रचण्ड प्रभाव हमारा दुनिया पर पड़ सकता है।

लेकिन वह सब हमारी फूट, हमारी जात-पाँत और हमारी छूत-छात के कारण केवल ख़याली पुलाव बना हुआ है। एक समय वह था जब राम पुष्पक-विमान में सिंहल जीत कर अयोध्या जा रहे थे और विमान में बैठे हुए नीचे के दृश्यों को देखते जा रहे थे और एक आज यह ज़माना है!

बेचैन होकर मैं खिड़की से देखने लगा। सामने एल्ब-नदी चमक रही थी। विमान उसी की ओर जा रहा था। कुछ मिनटों में ही उसे पीछे छोड़ दिया। जङ्गल के ऊपर से गुज़रते हुए यान घूम गया और हम फ़्रेंकफ़ोर्ड के पास पहुँच गये। घड़ी में सात बजे थे। तीन घंटे में यात्रा पूरी हो गई। रेल में आठ-नौ घंटे लगते और परेशानी अलग।

माइन नदी के पुल का एक दृश्य

एक अमरीकन ने यह बात कही थी तब मैं भेद नहीं समझ सका था, आज यात्रा करने पर मालूम हुआ कि जर्मन-यान अधिक सुरक्षित और शान्त होता है। झकोरों का बिलकुल भय नहीं। यों तो रेलों की टक्कर लग जाती है, घोड़ा भड़कने पर गाड़ियाँ उलट जाती हैं और भयाकुल बैल गढ़े में गिरकर बहलियों को तोड़ देते हैं,

इन दैवी दुर्घटनाओं से तो कभी छुटकारा नहीं हो सकता। अभी फ्रेंच आकाश-यान में मैंने यात्रा की है, ईश्वर-कृपा से उसकी कथा भी सुनाऊँगा।

× × × ×

फ्रेंकफ़ोर्ड छः-सात लाख की आबादी का शहर माइल-नदी के किनारे पर बसा है। यहीं दर्शन-शास्त्र-भास्कर गेटे २८ अगस्त सन् १७४९ में उत्पन्न हुए। उन्हीं का जन्म-स्थान मुझे देखना था। आप चित्र में उस चौमंज़िले मकान को देखिए। इसमें आज-कल गेटे महोदय की सब चीज़ों का म्यूज़ियम है। जहाँ बैठकर वे पढ़ा करते थे, जहाँ उनकी माताजी भोजन बनाती थीं, उनके शतरंज खेलने की मेज़, उनकी सब पुस्तकें, हस्त-लिखित पत्र और तैल-चित्र, उनकी धर्मपत्नी, माता तथा पिता की मूर्तियाँ—सब सामान यात्रियों को दिखलाया जाता है। मैंने भी सब देखा। देखता था और सोचता था। मैं कहता था—

"सब चीज़ें नाशवान् हैं, पर विचार स्थायी वस्तु है। उसी विचार (थाट) पर सारा संसार खड़ा है। जातियाँ आयँगी, चली जायँगी, साम्राज्यों का उत्थान और पतन होगा, विजयी विजय-पताका उड़ायेंगे औरा धराशायी होंगे, पर साहित्य एक ऐसी अमोघवस्तु है, विचार (थाट) एक ऐसी अमर-शक्ति है जो सदा जीवित रहती है। इमारतों के भी खँडहर हो जाते हैं और उनमें दुनिया भूल जाती है, पर मानव-जाति को श्रेष्ठ बनानेवाला विचार, उसे स्फूर्ति देनेवाली कविता, उसे आदर्श-पथ दिखानेवाली कथायें और उसे शक्ति प्रदान करनेवाले सूत्र सदा जीवित रहते हैं। उनके साथ कोई द्वेष नहीं करता, वे एक जाति के मनुष्य की चीज़ें सारे संसार की जायदाद बन जाती हैं, और सारा संसार मिलकर उनकी पूजा करता है। कभी कभी आँधी, भूचाल और क्रान्तियों मे पुस्तकालय जल भी जाते हैं, मगर शब्द आकाश में अधर रहता है। वह अविनाशी है।

देश-भक्त भाई कर्तारराम

इसलिए उसी का जीवन अमर है, उसी की कीर्ति स्थायी है, जो सद्विचारों की वृद्धि करता है, जो समाज को उन्नति के विचार देता है, जो उसे स्फूर्ति प्रदान करता है। वही धन्य है जो निर्लेप होकर अपना सर्वस्व सेवा और बलिदान के विचारों की खोज में लगाता है और उन्हें सीधी-साधी भाषा मे जन-साधारण के चरणों में अर्पित करता है। जर्मनी में कैसर रहे तो क्या, रिपब्लिक बन जाय तो क्या, लोग बोलशेविकी हो जायँ तो क्या, और साम्राज्यवादी हो जायँ तो क्या, जॉन वुल्फ़ गांग गेटे जिस उच्च सिंहासन पर आरूढ़ हो चुके हैं, उन्हें वहाँ से कोई नहीं हटा सकता। ज्यों ज्यों समय बीतता जायगा, उनकी निर्मल कीर्ति का प्रकाश और भी फैलता जायगा।

कर्मवीर सोन्तोकू

[श्रीयुत वनमालीप्रसाद शुक्ल]
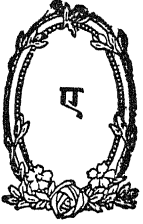
एशिया-खण्ड में जापान ने वह उन्नति की है जो आज सब आँखवाले देख रहे हैं। उसके सम्बन्ध में यह कहना कि वह उन्नति की प्रायः सभी बातों में पाताल से आकाश तक उड़ गया है, अतिशयोक्ति नहीं होगा। दो सौ वर्ष पूर्व जापान में अवनति के प्रायः सभी लक्षण विद्यमान थे। उस समय की उसकी दशा से प्रकट होता था कि उसकी स्वतन्त्रता शीघ्र विलीन हो जायगी। पर ऐसा हुआ नहीं। वहाँ की प्रजा को ठेस लगी। वह उठ खड़ी हुई और अपने प्रताप, गौरव एवं पुरुषार्थ-बल से अज्ञान-तिमिर को ध्वंस करके उसने वह दिन-मणि प्रदर्शित की जिसकी ज्योति से आज योरपवालों की भी आँखें चौंधिया रही हैं।

लगभग साठ वर्ष से जापान दिन-दूनी रात-चौगुनी उन्नति करता आ रहा है। इतिहास से विदित होता है कि उसकी उन्नति का मूल-कारण उसके निवासियों की प्रबल अभिरुचि, वैज्ञानिक चतुरता, प्रशंसनीय विद्या-सम्पन्नता, पारस्परिक एकता तथा निश्शंक वीरता है। यहाँ हमें इन सब बातों का विवेचन नहीं करना है, कारण कि जापान की राजनैतिक उन्नति, प्रतिनिधि-शक्ति तथा अन्यान्य राजकीय बातों से हम सबका कुछ न कुछ परिचय अवश्य है, पर इस परिचय से हमें वहाँ के व्यक्तिगत जीवन की आन्तरिक बातों का पता नहीं लगता। जापानी इतिहास और साहित्य में इसका उल्लेख नहीं हुआ है। उनमें वहाँ के राजनीतिज्ञों तथा योधाओं के कृत्य का वर्णन-मात्र है। कुछ दिन हुए, एक जापानी सज्जन ने अपने यहाँ के एक कृषक के सम्बन्ध में एक विस्तृत लेख विलायत की एक पत्रिका में छपाया था। उससे जापान के व्यक्तिगत जीवन का अच्छा दिग्दर्शन होता है। इतना ही नहीं, साधारण मनुष्य के जीवनोद्देश, नैतिक विचार और आन्तरिक भाव पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। अतः उसका विवेचन यहाँ संक्षेप में किया जाता है।

जिस जापानी कृषक की यहां जीवनी लिखी जाती है उसका जन्म-नाम किंजिरो था, पर वह नाम बहुत समय तक प्रचलित नहीं रह सका। जनता उसकी उदारता, परोपकारिता, सहृदयता एवं कर्तव्य-निष्ठा पर मुग्ध हो गई और उसने उसे सोन्तोकू अर्थात् सद्‌गुण-सम्पन्न की उपाधि से विभूषित किया। उसकी यह उपाधि उसके नाम में परिणत होगई और उसका जन्म-नाम प्रायः विलीन हो गया।

सोन्तोकू का जन्म कामाया नामक ग्राम के निनोमिया-वंशी एक कृषक के यहां सन् १७८७ ईसवी में हुआ था। उसका पितामह उद्योगी पुरुष था। उसने अपने पुरुषार्थ-बल से बहुत द्रव्य कमाया और मितव्ययी होने के कारण संचय भी ख़ूब किया। पर उसका पिता पैतृक सम्पत्ति की रक्षा नहीं कर सका। उसमें फ़ज़ूल ख़र्च करने की लत थी। इस कारण चंचला लक्ष्मी उसके पास बहुत समय तक नहीं ठहर सकी। इधर दैवी आपत्ति ने भी उसे सताना आरम्भ कर दिया। बाप-दादों की मौरूसी ज़मीन जिससे दो-तीन कुटुम्बों का भरण-पोषण मज़े में हो सकता था, नदी की बाढ़ से नष्ट हो गई, और जो बच गई थी वह ईंट, पत्थर, रेज़े आदि के जमा हो जाने से बेकाम होगई। सोन्तोकू के पिता का स्वास्थ्य पहले ही से नहीं ठीक था। पर जब उसे एक के बाद दूसरी आपत्ति सताने लगी तब उसका रहा-सहा धीरज जाता रहा और वह इतना बीमार पड़ गया कि खाट पर से फिर नहीं उठ सका, शारीरिक यन्त्रणायें भोग कर संसार से चल बसा।

सोन्तोकू पर वज्रपात होगया। ऐसे तो वह जन्म से ही परिवार पर पड़नेवाली आपत्ति का नज़ारा देखता

आ रहा था, पर उससे उसका मन इतना विचलित कभी नहीं हुआ था जितना कि पिता की मृत्यु से हुआ। घर में कुछ है नहीं; डाक्टर का बिल कैसे चुकाया जाय; यह समस्या उसके सामने उपस्थित हुई। यदि वह रही-सही पैतृक सम्पत्ति को बेंचता है तो उस पर पुत्र-धर्म त्यागने का पाप लगता है। यदि डाक्टर को कुछ नहीं देने का निश्चय करके ज़मीन को बचा लेता है तो पितृ-भक्ति को तिलाञ्जलि देने का कलङ्क उसके माथे पर लगता है। जापानी विश्वास के अनुसार राजा, स्व-जाति और पिता की भक्ति में किंचित् त्रुटि दिखाना पाप समझा जाता है। इस पाप में पड़ना मानो इहलोक और पर-लोक को बिगाड़ना है। सोन्तोकू ने देखा कि उसके एक ओर कुआँ और दूसरी ओर खाई है। बचने का कहीं रास्ता नहीं है। अन्त में उसने ज़मीन बेंच दी। डाकूर ने जब देखा कि सोन्तोकू पितृ-ऋण चुकाने के लिए ड्योढ़ी पर दीन-भाव से खड़ा है तब उसका हृदय करुणा से भर आया। उसने कहा—भाई, जब तुम्हारी विपत्ति को हलका करने का मुझमें सामर्थ्य नहीं है तब उसे और भी भारी करने का दोष मैं अपने ऊपर क्यों लूँ। जाओ, इन रुपयों से अपने कुटुम्ब का निर्वाह करो। तुम मेरे ऋणी नहीं रहे। मैंने सब भर पाया। सोन्तोकू ने उसकी बात नहीं मानी। विवश होकर डाक्टर को फ़ीस और ओषधियों का मूल्य लेना पड़ा।

पिता की मृत्यु के समय सोन्तोकू की अवस्था चौदह वर्ष की थी। इतनी कच्ची उमर में माता और दो छोटे भाइयों की परवरिश करने का भार उठाना यद्यपि कठिन प्रसंग था, तो भी उसने इसकी तनिक भी परवा न की। दिन में दूर के पर्वत से लकड़ियाँ बटोर कर और रात्रि में रस्सियों की खड़ाऊँ बनाकर वह अपनी गृहस्थी स्वतन्त्रता-पूर्वक चलाने लगा। पर विधाता को वह नहीं रुचा। उसकी माता शोक-सन्तप्त पुत्रों को निस्सहाय छोड़कर एकाएक स्वर्ग को चली गई। १६ वर्ष के सोन्तोकू की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। इस दुरवस्था में दूर के एक रिश्ते-दार ने उसे और उसके भाइयों को अपने यहाँ आश्रय दिया। यहा आने से सोन्तोकू के परिश्रम में कुछ कमी नहीं हुई—उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। इसके लिए उसने किसी से कभी कुछ कहा भी नहीं। पर जब उसे पढ़ने-लिखने के लिए रात्रि में तेल नहीं मिलने लगा तब उसकी आत्मा को असह्य चोट पहुँची। उसने निश्चय किया कि तेल के लिए कुटुम्बियों के सामने गिड़गिड़ाने की अपेक्षा गाँव की पड़ती और ऊसर ज़मीन को अवकाश के समय जोत-बो कर लाभ उठाना और उससे निजी आवश्यक्ताओं की पूर्ति करना उत्तम होगा। इस निश्चय को गुप्त रीति से कार्य में परिणत करते उसे देर नहीं लगी। फल यह हुआ कि कुछ काल में पड़ती ज़मीन में उसके बहुत से खेत हो गये और उपज से अच्छी आमदनी भी उसके हाथ आने लगी। इस तरह अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करके वह अपने भाइयों के सहित रिश्तेदार की छत्रच्छाया से अलग होगया। इतना ही नहीं, अपने असाधारण उद्योग-बल से उसने अपनी पैतृक भूमि भी ख़रीद ली। इस महान् कार्य के कर लेने से सोन्तोकू को पूर्ण सन्तोष हुआ। एक दिन उसने अपने भाइयों से कहा—यदि मैं जन्मान्ध होता और बहुत दिनों के बाद ओषधि-प्रयोग से देखने लगता तो मुझे इतनी ख़ुशी नहीं होती जितनी पैतृक भूमि को लौटा कर अपने पुरुषों की आत्मा को सम्मानित करने में हुई है।

सोन्तोकू का विवाह होगया और वह आनन्दपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन का सुख अनुभव करने लगा। इसी बीच में उसके पुरुषार्थ की चर्चा फैलते फैलते उसके इलाक़े के अधिपति के कान तक पहुँची। अधिपति महोदय की आर्थिक स्थिति बुरी तरह से बिगड़ चुकी थी। ऋण का बड़ा भारी बोझ उनके ऊपर आ पड़ा था। ऐसा जान पड़ता था कि कुछ ही दिनों में उनकी सारी स्टेट साहूकार के क़ब्ज़े में चली जायगी। उसने सोन्तोकू को बुलवाया और अपना कच्चा-पक्का चिट्ठा सुनाकर स्टेट के प्रबन्ध का भार उसे सौंप दिया। सोन्तोकू ने सर्वप्रथम अपने सहा-यक कर्मचारियों की सहानुभूति प्राप्त की। फिर उसने स्टेट की आमदनी और ख़र्च में सुधार करने की नई नई योजनायें कीं। वह अपनी दूरदर्शिता के कारण सबमें सफल होता गया और पांच वर्ष के अविराम परिश्रम से अपने स्वामी की आर्थिक अवस्था में असाधारण परिवर्तन कर दिया। कहना न होगा कि इस कार्य के बदले में

सोन्तोकू को यश और धन दोनों की प्राप्ति हुई। धन तो उसने अपने सहायकों को बाँट दिया, केवल यश लेकर वह घर लौटा।

यह अधिपति जापान-सरकार की सेना-विभाग का मन्त्री भी था। एक बार प्रसंग आने पर उसने सोन्तोकू को उच्च सरकारी ओहदे पर नियुक्त कराने के लिए ज़ोर-दार सिफ़ारिश की। उसकी प्रशंसा में उसने कहा कि वह जैसा निःस्वार्थी और कर्तव्यपरायण है, वैसी ही उसकी योग्यता भी है। परन्तु सभासदों में से अधिकों ने यह कह कर उसकी बात टाल दी कि वह एक साधारण कृषक है, अतः असाधारण योग्य होते हुए भी उसे जवाब-दारी का उच्च पद एकाएक नहीं दिया जा सकता। हां, प्रथम उसे कृषि-सुधार-सम्बन्धी व्यावहारिक कार्य करने को दिया जाय और यदि उसमे वह सफल हो जाय तो उसे कोई उच्च पद देने का विचार किया जाय। सभासदों के इस मन्तव्य से सोन्तोकू को कुछ गांवों का सुधार करने का भार सौंपा गया। इन गाँवों की प्रजा दरिद्र, आलसी, स्वेच्छाचारी और राजद्रोही थी। हर प्रकार की बुराइयां वहाँ के निवासियों में कूट कूट कर भरी हुई थीं। पहले सरकार ने उन्हें सुधारने के लिए पानी की तरह धन बहाया था, जो सब निरर्थक गया। सोन्तोकू ने अपने नवीन कार्य के लिए समय निश्चित करते हुए अधिकारियों से कहा कि जब तक लोगों के मन और स्वभाव में आवश्यक परिवर्तन नहीं हो जायगा तब तक वहाँ किसी तरह का सुधार होना असम्भव है। अतः इस कार्य में सफलता पाने के लिए कम से कम दस वर्ष की मुद्दत दरकार होगी। सोन्तोकू की बात मान ली गई और वह नये कार्य के साधन में लग भी गया। पर कुछ समय के अनुभव से उसे पता लगा कि यह कार्य जैसा उसने समझा था उससे बहुत कठिन है। जब तक अलग अलग प्रकार के लोगों का स्वभाव अच्छी तरह नहीं समझ लिया जायगा और प्रत्येक से उसके स्वभावानुसार बर्ताव नहीं किया जायगा तब तक यहां उद्योग की सिद्धि होनी साध्य नहीं है।

अब इस निश्चय की भित्ति पर सोन्तोकू ने कार्य करना आरम्भ किया। काम करते कुछ ही दिन हुए थे कि इसी बीच में उसे असफलता के लक्षण दीखने लगे। इससे वह विचलित तो नहीं हुआ, तो भी यह सोच कर कि सम्भवतः उसी की कुछ कमज़ोरी हो, वह एक मन्दिर में गया और अन्न-जल त्याग कर अपनी कमज़ोरी दूर करने के लिए भगवत्-उपासना में तल्लीन होगया। इस तरह तीन सप्ताह बीत गये। सोन्तोकू बाहर नहीं निकला। जो लोग उसके कार्य में रुकावट डालते थे उन्हें अब चिन्ता हुई कि कहीं वह उन्हें छोड़ कर चला न जाय। उसके उद्योग से उन्हें लाभ होने लगा था। इस बात को वे सब जानते थे। इसलिए उन्होंने उससे अपने कार्य को पूर्ववत् पुनः चलाने के लिए प्रार्थना की। सोन्तोकू को इच्छित अवसर मिल गया। उसने फिर अपना समय नहीं नष्ट किया और उन गांवों को आदर्श गांव बना कर ही छोड़ा। एक बार भावी दुष्काल की आशङ्का कर उसने गाँव के लोगों से अधिक प्रमाण में अन्न-संग्रह कराया। उसकी दूर-दर्शिता ठीक निकली। फल यह हुआ कि उन गांवों के लोगों को भूख से मरते हुए अपने सैकड़ों देश-बन्धुओं की जान बचाने का श्रेय मिला।

जापान के सरकारी दफ़्र में इस बात का प्रमाण मौजूद है कि कितने गाँवों के मुखिया, बड़े बड़े ताल्लुक़ेदार तथा नामाङ्कित ज़मींदारों के कार्याध्यक्ष गाँव के सुधार-सम्बन्धी उसकी अमूल्य शिक्षा प्राप्त करने के लिए उसके पास दूर दूर से आते थे और सन्तुष्ट होकर जाते थे। उसकी शिक्षा सबके लिए एक-सी नहीं होती थी। वह गाँव की स्थिति, ज़मीन की क़िस्म, काश्त की मेहनत, काश्तकारों की नैतिक परिस्थिति आदि बातों पर विचार करके भिन्न भिन्न गाँवों के लिए अलग अलग उपाय बताता था। पर सबको इस बात पर विशेष रूप से ध्यान देने के लिए कहता था कि लगान और महसूल इतना लगाया जाय कि परिश्रमी मनुष्यों को उनके परिश्रम का यथोचित फल प्राप्त हो सके।

परिश्रम और सादगी सोन्तोकू के जीवन के मुख्य अङ्ग थे। धन-सम्पन्न होकर भी वह साधारण कृषक के समान रहता था। जो कुछ कमाता उसकी बचत का अधिकांश ग़रीबों की सहायता में लगा देता था। तरह तरह की तरकीबें सोच-सोच और उन्हें कार्य-रूप में परिणत कर दूसरों को लाभ पहुँचाने मे उसे आनन्द

मिलता था और इसके लिए जो कुछ करता सब थोड़ा था।

सन् १८५३ ईसवी में निक्को के पहाड़ी ज़िलों को दुष्काल के भयङ्कर चंगुल से छुड़ाने के लिए सरकार ने सोन्तोकू की फिर याद की। उस समय उसकी अवस्था ६६ वर्ष की थी, यद्यपि उसका शरीर निरन्तर कठोर परिश्रम करते रहने के कारण जीर्ण होगया था, उसमें शारीरिक बल प्रायः नहीं रह गया था, तो भी उसने इस महत्त्व के कार्य का भार वहन कर लिया। उन ज़िलों के गाँव गाँव लगातार तीन वर्षों तक घूम-फिर कर उसने कृषि की उन्नति के साथ साथ लोगों के जीवन में भी आशातीत परिवर्तन कर दिया। उसकी शिक्षा से कृषकों को पड़ती ज़मीन से लाभ उठाने और निरर्थक बह जानेवाले जल को कृषि के उपयोग में लाने की हिकमत मालूम हो गई। इनके सिवा कर्तव्य को जीवन का मुख्य अङ्ग समझने और आपस में मित्र-भाव रखने से होनेवाले लाभ का भी उन्होंने अनुभव कर लिया। इस कार्य की समाप्ति के साथ सन् १८५६ ईसवी में उस कर्मवीर की इह लोक-लीला समाप्त होगई। समूचे जापान में उसकी मृत्यु से शोक छा गया।

वह कौन सी शिक्षा थी जिस पर इस कर्मवीर का जीवन अवलम्बित था और जिसके कारण जनता पर इसका प्रभाव पड़ता था, इस विषय पर कुछ कहे बिना लेख अधूरा रह जाता है। अतः यहाँ उसका शिक्षा-सिद्धान्त संक्षेप मे लिखा जाता है।

सोन्तोकू की शिक्षा चार सिद्धान्तों पर अवलम्बित है। पहले में सत्यता, निष्कपटता और निःस्वार्थता सम्मिलित है। वह कहता है कि इनका व्यवहार प्रति-दिन के सभी काम में स्वतन्त्रता-पूर्वक होना चाहिए। दूसरे में परिश्रम का नाम आता है। इसे उसने निष्क-लङ्क एवं सुखमय जीवन का सोपान कहा है। ईश्वर की सारी सृष्टि विश्राम किये बिना निरन्तर कर्तव्य-कर्म में लगी रहती है। अतः विश्व में ऐसा कोई भी नहीं हो सकता जिसे अपना कर्तव्य न करना पड़े। इसी कर्तव्य-अभिरुचि एवं कर्तव्य-पाश में दूसरों को बद्ध कर सकने की योग्यता से सोन्तोकू को सुधार-सम्बन्धी अपने उद्योग में आशातीत सफलता मिली। सच है, कृषक के उद्योग ही से भूमि भी अपने कर्तव्य-पालन में फलवती होती है। उसका तीसरा सिद्धान्त भी बहुत महत्त्व का है। उससे प्रकट होता है कि मनुष्य को आमदनी से कम ख़र्च करना चाहिए और सादगी से जीवन बिताना चाहिए। ऐसा करने ही से मनुष्य दरिद्रता की चिन्ता से सर्वदा मुक्त रह सकता है। पोशाक की आवश्यकता शारीरिक स्वास्थ्य के लिए है, नुमाइश के लिए नहीं। अतः शान-शौकत की स्पर्धा मे पड़ कर विलासिता के लिए मनमाना ख़र्च करना बुद्धिमानी नहीं है। इसी तरह उत्तम स्वास्थ्य और शारीरिक शक्ति-वर्धन के लिए सादा भोजन अत्यन्त आवश्यक है। उसका परित्याग करके एक-मात्र स्वाद के लिए लालायित होना पागलपन है। वह ग़रीब-अमीर सबको यही शिक्षा देता था कि ख़र्च और आमदनी पर अपना पूर्ण अधिकार रक्खो। तभी हर व्यक्ति और फिर समूचे देश का कल्याण होगा। सम्भवतः पाठक समझते होंगे कि इससे मनुष्य कंजूस और लोभी बन जायगा। पर सोन्तोकू का चौथा सिद्धान्त उसे ऐसा नहीं बनने देता। उससे मनुष्य को दयालु बनने और अपनी अनावश्यक सम्पत्ति का अधिकांश मनुष्य-जाति की सेवा के निमित्त व्यय करने का आदेश मिलता है।

बस, इन्हीं बातों का बीज अपने देश-भाइयों के मन में बोने के लिए सोन्तोकू ने जीवन की सारी शक्ति लगा दी। इसमें सन्देह नहीं कि सद्भाव एवं बन्धुत्व के स्थापित होने, अनावश्यक व्यय को रोकने, कर्तव्य-पालन के निमित्त जीवन को लगाने और मनुष्यों की भलाई का सदा ध्यान रखने से कोई भी समाज, राष्ट्र या देश उन्नति कर सकता है। यद्यपि इससे सम्पत्ति-शास्त्र का मत स्थिर नहीं रह सकता है, तो भी जब हम सोन्तोकू के विश्वराट्-सम्बन्धी उन्नत विचार पर दृष्टिपात करते हैं तब वह सम्पत्ति-शास्त्र के सङ्कुचित विचार से बहुत भला, उत्तम एवं कल्याण-कारी जँचता है। सोन्तोकू अपने एक पद्य में कहता है—

> यह मिट्टी का छोटा सा घर उस प्रभु को अर्पण है जो इसका कर्ता एवं शासक है। उससे प्रार्थना करता हूँ कि वह अपने जीवों को जो सर्वथा निर्बल है, आशीर्वाद दे और बुराइयों से बचाये।

प्रत्येक जीव को अपनी सन्तान के लिए प्रकृति माता से जिस प्रेम की प्राप्ति होती है उससे अधिक व्यापक प्रेम की शिक्षा सत् पथ प्रदान करता है।

सरल विश्वास निर्भय मन में अज्ञात भविष्य के लिए उत्सुकता उत्पन्न करता है, तब जगत्पिता का शासन जो अनन्त और अनित्य है, कोई कैसे भूल सकता है।

उसने अपने जीवनोद्देश के सम्बन्ध में बताया है कि मेरी इच्छा मनुष्य-हृदय से जङ्गली-पन को निवारण करके उसमें स्वर्ग से प्राप्त बीज को वपन करने, परोपकारिता, धार्मिकता, बुद्धिमत्ता और सुशीलता के सुन्दर पौधे उपजाने और उनसे अच्छी फ़सल प्राप्त करने की है।

इसमें सोन्तोकू को सफलता भी मिली। यह बात उसकी मृत्यु के अनन्तर उसके स्मरणार्थ स्थापित हुए समाज के कार्यों से प्रकट होती है। यह समाज जनता के आचरण-सम्बन्धी बुराइयों को समूल नष्ट करके उनमें मातृ-भाव जाग्रत करता है और आवश्यकतानुसार पारस्परिक सहायता के लिए उन्हें तैयार भी करता है। पड़ती ज़मीन को क़ानून के योग्य बनाने, आबपाशी-सम्बन्धी सरल से सरल उपाय ढूँढ़ने और ग़रीब काश्तकारों के लाभार्थ अन्यान्य बातों की सुविधा करने में इस समाज का कोष अपने धन से और इसके सदस्य अपने बाहु-बल एवं बुद्धि-बल से जनता का उपकार करते हैं। सहायता के भिक्षुक उसके द्वार से निराश होकर नहीं लौट सकते। सैकड़ों ग़रीब-परिवार कला-कौशल-सम्बन्धी घरेलू उद्योग-धन्धे के लिए इस समाज से सहायता पाते हैं। इस समाज के पास धन और उत्साही कार्य-कर्ताओं की भी कमी नहीं है। धनी लोग अपना धन और देशहितैषी युवक अपना तन-मन इस समाज को निःस्वार्थ-भाव से अर्पण कर ईश्वर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं। इस समाज की स्थापना जापान-सरकार के नूतन सुधार की योजना के दस वर्ष पूर्व हुई थी। यही कारण है कि जापानी राष्ट्र देखते ही देखते सातवें आसमान में चढ़ गया। इस उन्नति के फल-भाग में सोन्तोकू का भी हाथ था। उसके जीवनोद्देश ने राष्ट्र के मङ्गल-कर्ताओं को पथ-प्रदर्शक का काम दिया, यह कुछ कम महत्त्व की बात नहीं है।

कौतूहल

[श्रीयुत रामनरेश त्रिपाठी]

(१)

किसकी सुख-निद्रा का मधुमय
स्वप्न-खण्ड है विशद विश्व यह ?
जग कितना सुन्दर लगता है
ललित खिलौनों का-सा संग्रह !
घन में किस प्रियतम से चपला
करती है विनोद हँस हँस कर !
किसके लिए उषा उठती है
प्रतिदिन कर शृङ्गार मनोहर !

(२)

मंजु मोतियों से प्रभात में
तृण का मरकत-सा सुन्दर कर।
भरकर कौन खड़ा करता है
किसके स्वागत को प्रतिवासर !
मैं जिसके निर्मल प्रकाश में
करता हूँ दिन-रात अति-क्रम।
ज्योति-मूल वह कहाँ प्रकट है ?
बाहर है किसका छाया-भ्रम ॥

(३)

हर्ष-विषादों के उठते हैं
जो अगणित उच्छ्वास यहाँ-पर।
उनका कौन स्वाद लेता है ?
रहता है वह रसिक कहाँ पर ?
जग क्या है ? किसलिए बना है ?
क्यों है यह इतना आकर्षक ?
कोई इसका अभिनेता है ?
मैं हूँ कौन ? दृश्य ? या दर्शक ?*

* अप्रकाशित 'स्वप्न' से।

शैशुनाक और नन्द-वंश

[श्रीयुत वासुदेवशरण अग्रवाल]

शुनाक[1] और नन्द-वंश का साम्राज्य मौर्य-वंश के साम्राज्य से पहले था। मौर्य-वंश का आदिकाल यवनराज सिकन्दर के भारतागमन की तिथि के अनुसार ३२५ ई० पू० निश्चित हुआ था। शैशुनाक और नन्द-वंश के विषय में काल-क्रम के आनुपूर्व्य के अतिरिक्त कोई तिथि निश्चित रूप से नहीं ज्ञात थी। सर्व-प्रथम यह बात विदित हुई कि शैशुनाक राजा बिम्बसार और अजातशत्रु बुद्ध के समकालीन थे। यद्यपि बुद्ध के निर्वाण का तिथि-संवत् निश्चितरूप से ज्ञात न था, तो भी उसके विषय मे ई० पू० ५४३ या ई० पू० ४८७ ये दो संवत् अधिक मान्य हुए थे, और अभी तक केवल यही दो उनके निर्वाण-काल के विवाद के विषय हैं, अतएव लगभग पचास वर्ष का अन्तर होते हुए भी हम इतिहास में ई० पू० छठी शताब्दी में शैशुनाक-वंश के राजा बिम्बसार को रख कर उससे काल-गणना कर सकते थे। इन दोनों वंशों के विषय में दूसरी निश्चित तिथि महाराज महामेघवाहन खारवेल के हाथीगुम्फवाले शिला-लेख के मिलने के बाद ज्ञात हुई। यह शिला-लेख राजा मुरीय के १६५ संवत् में खोदा गया था। मौर्य-संवत् ३२५ ई० पू० में आरम्भ होता है, तदनुसार यह लेख १६० ई० पू० में उत्कीर्ण हुआ था। इसमें लिखा है कि तीन सौ वर्ष पूर्व कलिङ्ग मे किसी नन्द राजा ने एक नहर खुदवाई थी। वह नन्दराज १६० + ३०० = ४६० ई० पू० के लगभग पाटलिपुत्र में राज्य करता होगा। इस प्रकार नन्द-वंश के विषय में यह दूसरी निश्चित-प्राय तिथि ज्ञात हुई। इन दोनों के अतिरिक्त हमारे आधार पुराणोक्त वर्णन हैं। पुराणों में लिखी हुई अनुश्रुतियो के आधार पर यह समझा जाता था कि नवनन्दों = (नौ नन्द) ने एक सौ वर्ष तक राज्य किया। पृथ्वीराज-रासो के अनन्द संवत् के आधार पर नौ नन्द राजाओं का शासन-काल ९१ वर्ष भी माना जाता था। इन नौ नन्दों के विषय मे भी बड़ा गड़बड़ था। हमें महापद्म-नन्द का नाम ज्ञात था और यह कहा जाता था कि उसके बाद उसके आठ पुत्रों ने राज्य किया। यह आठ पुत्रों का आडम्बर केवल भ्रान्त नौ की संख्या पूरी करने के लिए ही रचा गया था। इस अव्यवस्था के द्वार पर आकर कोई ऐतिहासिक ऐसा नहीं बचा जिसने ठोकर न खाई हो। परन्तु कोई कर ही क्या सकता था। इस कण्टकाकीर्ण जनपथ में और कोई दूसरा मार्ग भी तो नहीं दिखाई पड़ता था। अन्त में श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल ने सर्वप्रथम इस अन्धकारमय विपिनपथ को अपनी कल्पना के चमत्कार से आलोकित किया। एकदम झाड़झंखाड़ हटा कर इस महाकान्तार में उन्होंने सुव्यवस्था का राज्य स्थापित किया। किसी इतिहास-लेखक को उनके निश्चित किये हुए तिथि-संवतों से मतभेद प्रदर्शित करने का साहस अभी तक नहीं हुआ है। श्रीयुत स्मिथ ने भी अपनी मृत्यु से पूर्व जायसवाल के मत को स्वीकृत कर लिया था। शैशुनाक-वंश के विषय में पुराणों में, पाली के दीपवंश, महावंश, तारानाथ, दिव्यावदान और ब्रह्मदेश की अनुश्रुतियो में, इन सबमे अत्यन्त भयावह गड़बड़ था। उससे ऐतिहासिकों की रक्षा करके जायसवाल भारतीय इतिहास के लेखकों के धन्यवाद के पात्र बन गये हैं। उपर्युक्त प्रमाणो का समन्वय हो जाने से उनके निर्णय स्वयं पुष्ट जान पड़ते हैं। अस्तु पुराणों के अनुसार बारह[2]शैशुनाकी राजाओ ने ३६२ वर्ष राज्य किया। परन्तु प्रत्येक राजा के शासन-काल

[1]मत्स्य और वायु पुराणों के अनुसार शिशुनाक शुद्ध रूप है। शिशुनाग उसी का प्राकृत-रूप है।

[2]वास्तव में शैशुनाक-वंश में कम से कम तेरह अथवा चौदह राजा हुए हैं। ये अधिक दो महानन्द के लड़के थे, जिन्होंने महापद्म से पूर्व राज्य किया। या त इनका वध करके महापद्म ने सिंहासन छीन लिया था या इनकी मृत्यु के उपरान्त रिक्त सिंहासन का वह अधिकारी हुआ था।

के सम्बन्ध मे जो अलग अलग संख्यायें उनमें दी हुई हैं उनका जोड़ इस संख्या से कम आता है। वायु से केवल ३३२ वर्ष आते हैं और मत्स्य के अनुसार दो काण्वायन राजाओं का भी समय मिला लेने से ३५४ वर्ष ही होते हैं। इन दो सहस्र वर्षों में लेखकों के प्रमाद अथवा निश्चित ऐतिहासिक दृष्टिबिन्दु के अभाव से इन संख्याओं में यदि थोड़ा-बहुत गड़बड़ हो गया हो तो आश्चर्य की बात नहीं है। किन्हीं किन्हीं पुराणों की हस्तलिखित प्रतियों में अब भी सौभाग्यवश ठीक संख्यायें मिल जाती हैं। इसके अतिरिक्त पाली-ग्रन्थों से इन संख्याओं का मिलान कर उन्हें निश्चित करने मे बड़ी सहायता मिलती है।

भिन्न भिन्न पुराणों की सङ्गति लगाकर शैशुनाक-वंशी राजाओं का शासन-काल निम्नलिखित ज्ञात होता है —

नाम	वर्ष	पुराण
काशिराज[३] शिशुनाक	४०	वायु-मत्स्य-ब्रह्माण्ड
काकवर्ण	२६	मत्स्य
क्षेमधर्मा	२०	वायु-ब्रह्माण्ड
क्षेमवित्[४]	४०	वायु-ब्रह्माण्ड-मत्स्य
बिम्बिसार	५१	मत्स्य
अजातशत्रु	३५	ब्रह्माण्ड
दर्शक	३५	ब्रह्माण्ड
उदयी[५]	३३	वायु-ब्रह्माण्ड-मत्स्य
नन्दिवर्धन	४०	मत्स्य-ब्रह्माण्ड
महानन्द	४३	वायु-ब्रह्माण्ड-मत्स्य
योग	३६३	

इस ३६३ के योग में और पुराणों के ३६२ में १ वर्ष का अन्तर है। इसका कारण यह हो सकता है कि कहीं सात-आठ महीने के खण्ड को पूरा एक वर्ष मान लिया गया है।

शैशुनाक-वंश से पूर्व मगध में बार्हद्रथवंश का राज्य था। इस वंश में १२ राजा महाभारत से पहले हुए और ३२ राजा बाद को। इन ३२ नृपतियों ने ६६७ वर्ष राज्य किया। जायसवाल की गणना के अनुसार महाभारत का अन्त १,४२४ ई० पू० मे हुआ[६]। यही

[३] शिशुनाक काशी का राजा था। इसने अपने पुत्र को काशी का सिंहासन देकर मगध में गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनाकर शैशुनाक-राज्य की स्थापना की। मगधवालों का निमन्त्रण स्वीकार करके सम्भवतः शिशुनाक वहां गया था। उससे पूर्व वहाँ बार्हद्रथों का राज्य था। यह वंश महाभारत के समय से भी पहले से चला आता था। जरासंध बार्हद्रथ-वंश का ही राजा था।

[४] क्षेमवित् का नाम भागवत में क्षेत्रज्ञ, विष्णु और ब्रह्माण्ड में क्षेत्रौजस् और वायु में क्षेमार्चिस् दिया हुआ है।

[५] वायु, मत्स्य और जैन-ग्रन्थों में उदयी दिया हुआ है। गर्ग-संहिता और ब्रह्माण्ड मे उदयि रूप है। दिव्यावदान में उदयी और उदयि दोनों है।

[६] जायसवाल के मत से महाभारत का समय १४२४ ई० पू० है। जिस वर्ष युद्ध हुआ था उसी वष परीक्षित का जन्म हुआ था। पुराणों में ही यह बात स्पष्ट लिखी हुई है कि महाभारत-युद्ध या परीक्षित के जन्म से महानन्द तक १,०५५ वर्ष हुए। तदनुसार महाभारत का १०१५ + २६ = १४२४ ई० पू० मे होना निश्चित होता ह। महाभारत के समकालीन भगवान् कृष्ण का समय भी ई० पू० १५ वीं शताब्दी ज्ञात होता है। महाभारत के विषय में त्रिपुर-राज्य में मिली हुई सूचना से भी उक्त संवत् की पुष्टि होती है। श्रीयुत तिलक भी पन्द्रहवीं शताब्दी के ही पक्षपाती थे। महाभारत का समय लोक में ५,०२७ (युधिष्ठिर संवत्) प्रचलित है। यह भ्रान्त है। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक में युधिष्ठिर के समय तक जो इक्ष्वाकु-संवत् प्रचलित था उसी का नाम परिवर्तित होकर युधिष्ठिर के अश्वमेध के बाद युधिष्ठिर-संवत् नाम चल निकला। कल्हण के समय भी इस विषय में एक मत नहीं था कि ५,०२७ युधिष्ठिर का ही संवत् है। कल्हण ने लिखा है कि महाभारत-युद्ध को द्वापर के अन्त में बताना भ्रम (मोह) है। द्वापर तो अब से ५,०२७ वर्ष पूर्व शुरू हुआ था पर महाभारत-युद्ध उसके ६५३ वर्ष बाद हुआ। कल्हण की गणना के अनुसार महाभारत का युद्ध २,४५० ई० पू० के लगभग होना चाहिए। हम समझते है कि कल्हण ने भी इस गणना में भूल की है या बहुत कुछ अनुमान से काम लिया है। युधिष्ठिर-संवत् के विषय में उपर्युक्त अनुमान यदि युक्ति-सङ्गत मान लिया जाय तो भारतीय इतिहास में ई० पू० पांच सहस्र वर्षों का राजनैतिक इतिहास बहुत कुछ साधार हो जाय। फिर मान्धाता, रघु, भरत आदि सम्राटों का समय भी कुछ थोड़े अनुमान के आधार पर लिखा जाना सम्भव हो जायगा।

परीक्षित का जन्म-संवत् है। इसके अनुसार शैशुनाक-वंश ७२७ ई० पू० में प्रारम्भ होता है।

नाम	राज्यकाल	संवत् ई० पू०	
१ शिशुनाक	४०	७२७—६८७	
२ काकवर्ण	२६	६८७—६६१	
३ क्षेमधर्मन्	२०	६६१—६४१	
४ क्षेमवित्	४०	६४१—६०१	
५ बिम्बिसार[७]	५१[७]	६०१—५५२	
६ अजातशत्रु	३५	५५२—५१७	
७ दर्शक शिशुनाग[८]	३५	५१७—४८२	
८ उदयिन्	१६	४८२—४६६	
९ अनुरुद्ध[९]	९	४६६—४५७	
१० मुण्ड	८	४५७—४४९	
११ नन्दवर्धन[१०]	४०	५४९—४०९	प्राचीन नन्द-वंश
१२ महानन्द[११]	३५	४०८—३७३	
१३-१४ महानन्द के दो पुत्र	८	३७३—३६५	
१५ नवनन्द-वंश[१२]			
१६ महापद्म	२८	३६५—३३७	
१७ सुमाल्यनन्द	१२	३३७—३२५	

अब इसके बाद दीपवंश, महावंश, दिव्यावदान आदि ग्रन्थों में जो शैशुनाक-वंश की सूची है उसे यहा देते है। इन्हीं सब विरोधों का परिहार कर उपरिलिखित कालक्रम निश्चित किया गया है—

सिंहल के ग्रन्थो के अनुसार बिम्बिसार से अन्तिम नन्द तक का राज्य-काल—

दीपवंश	वर्ष	महावंश	वर्ष
बिम्बिसार	५२	बिम्बिसार	५२
अजातशत्रु	३२	अजातशत्रु	३२
उदयभद्द	१६	उदयभद्द	१६
		अनुरुद्ध } मुण्ड }	८
नागदास	२४	नागदसोक	२४
शुशुनाग	१०	शुशुनाग	१८
कालाशोक	१	कालाशोक	२८
कालाशोक के दश पुत्र	२२	कालाशोक के दश पुत्र	२२
		नव नन्द	२२

[७]—बिम्बिसार भगवान् बुद्ध का समकालीन था। उसके बाद उसका पुत्र अजातशत्रु गद्दी पर बैठा। अजातशत्रु के राज्यकाल में आठ चौमासे कटने के बाद बुद्ध निर्वाण को प्राप्त हुए। बुद्ध के निर्वाण का समय बौद्ध, जैन और पौराणिक तथा सिंहल की अनुश्रुतियों के आधार पर जायसवाल ने ५४३ ई० पू० निश्चित किया है। यह बात भी शैशुनाक-वंश की तिथियों को निश्चय करने में बड़ी सहायक है।

[८]—इसको कहीं नागदास, कहीं नागदशक और कहीं दर्शक लिखा है। इसका नाम दर्शक था। शैशुनाक इसकी उपाधि थी। उपाधि लगाने का कारण यह था कि इसके समय में दक्षिण-भारत में दर्शक नाम का एक सुप्रसिद्ध बौद्ध-भिक्षु हुआ था। उसके और राजा दर्शक के नाम में भेद करने के लिए पुराण-लेखक तथा अन्य ग्रन्थ-प्रणेता उत्तरी दर्शक को दर्शक शिशुनाग कहने लगे, जो कालान्तर में नाग दशक हो गया।

[९]—अनुरुद्ध और मुण्ड ये दो वास्तविक राजा उदयिन् के बाद हुए। उन्हें अप्रसिद्ध जानकर पुराणों ने उनके शासन-काल के १७ वर्षों को भी उदयिन् के १६ वर्षों में जोड़ कर उदयिन् का राजत्वकाल ३३ वर्ष लिख दिया।

[१०]—नन्दवर्धन का ही दूसरा नाम नन्दिवर्धन प्रख्यात है। इसी का नाम बौद्ध-ग्रन्थों में कालाशोक है।

[११]—महानन्द का दूसरा नाम महानन्दिन् है।

[१२]—महापद्म एक नापित दासी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। इसी के लिए कहा गया है—

उत्पत्स्यते महापद्मः सर्वक्षत्रान्तको भुवि। इसका वंश नवनन्द = नये नन्द के नाम से प्रसिद्ध हो गया। बहुत दिन तक इतिहास में हम लोग इस 'नव' शब्द का असली अर्थ भूले रहे।

इसके विरुद्ध दिव्यावदान, तारानाथ (तिब्बत का बौद्ध ऐतिहासिक), बर्मा की अनुश्रुति और बुद्ध के जीवन-चरित के लेखक राकहिल ने निम्नलिखित काल-संख्या दी है—

दिव्यावदान	वर्ष	तारानाथ	वर्ष	ब्रह्मदेश की अनुश्रुति	वर्ष	राकहिकल	वर्ष
१	२	३	४	५	६	७	८
श्रेणी बिम्बिसार	...	...	...	बिम्बिसार	...	बिम्बिसार	...
अजातशत्रु	...	क्षेमदर्शी अजातशत्रु	...	अजातशत्रु	३५	अजातशत्रु	३२
...	...	सुबाहु	१०		...	...	...
उदायि	...	सुबन्धु	२३	उदायि	१५	...	...
...	...	महेन्द्र	६	अनुरुद्ध	...	...	...
मुण्ड		चमस (१२ पुत्र)	२२	मुण्ड	६	...	...
		...		नागदासक	४	...	...
काकवर्णिन्	...		...	[अन्तराल]	१०	...	...
				शुशुनाग	३२	...	...
सहालिन्	...	कामाशोक (चम्पारण्य के थे, मगध के राजा चुने गये)	...	कालाशोक	२८	...	...
		नन्दिन् (वैशाली के)	...				
	...						
तुलाकुचि	...	वीरसेनात्मज नन्द	२६	कालाशोक के पुत्र भद्रसेन और उसके ८ भाई	२२	नन्द	...
महामण्डल	...	महापद्म	...	उग्रसेन नन्द और उसके आठ भाई	२१	महापद्म	...
प्रसेनजित्	...		...	...	.	...	...
नन्द (मौयनन्द)	...	चन्द्रगुप्त	...	चन्द्रगुप्त	२४	...	...
बिन्दुसार	...	बिन्दुसार	३५	बिन्दुसार	२७	...	...
अशोक	...	विगत अशोक	...	अशोक	...	धर्माशोक	५४

अख़बार का रिपोर्टर

[श्रीयुत 'भारद्वाज']

"महोदयो, देखते हो, यह दफ़्तर अमरीकन चाल पर है। मेरे समीप का यह टाइप राइटर अमरीकन है। जिस पर यह रक्खा है वह भी अमरीकन है। बिजली का प्रकाश करने का यह ढङ्ग भी अमरीकन है। यहाँ तक कि जिन क़लमों से हम लिखते हैं वे तक अमरीका की बनी हैं। मेरा प्रस्ताव है कि अब राजनीति की चर्चा और विज्ञापनबाज़ी भी अमरीकन रंगत पर ही हुआ करे। हाँ, महोदयो, यदि पेरिस का सम्पादक-मण्डल मौलिकता की छटा दिखलाना चाहता है तो उसके लिए एक यही उपाय है कि वह अपने समाचार-पत्र भी अमरीकन ढर्रे पर ही चलाया करे। साहित्यिक पुटवाले लेखों की अब ज़रूरत नहीं। जनता साहित्य का मर्म ही नहीं समझती। जब हम उसके पढ़ने के लिए ऐसे विषयों के लेख छापते हैं जिनका वह रहस्य ही नहीं जान सकती तब वह नाराज़ हो जाती है। वह घटनाओं का हाल जानना चाहती है—वास्तविक घटनाओं का, क्योंकि जनता वास्तविक वस्तु है। साथ ही उसके मन है, हृदय है। हमें इन्हीं को रिझाना चाहिए। सनसनी पैदा करनेवाली घटनाओं का हाल प्रतिदिन होना चाहिए। आओ, हम लोग अब पूरे अमरीकन बन जायँ।"

सम्पादकों का एक समूह एक बड़े भारी सुन्दर दफ़्तर में चुपचाप बैठा 'प्रजा-पुकार' के स्वामी के मुँह से निकले हुए ये उपर्युक्त आदर्श वाक्य सुन रहा था। उस समय पेरिस में 'प्रजा-पुकार' ही सबसे अधिक अपटुडेट और बहुज्ञ पत्र समझा जाता था। "संसार के सब भागों से फ़ोन-द्वारा हमारा निजी सम्बन्ध है"—यह उक्ति उसके सभी विज्ञापनों में बार बार छपती रहती थी।

अपने अमरीकन डेस्क के कोने से खड़े होकर 'प्रजा-पुकार' के स्वामी ने अपने इन विचारों को प्रकट किया था। वह अपनी कुहनी डेस्क के अग्रभाग से टेके हुए खड़ा था और आत्म-तुष्टि के भाव से मन ही मन मुसकरा रहा था। उसे अपनी वक्तृत्व-शक्ति का गर्व था। उसने अपने मन में कहा—सम्भव है, मिस्र के पिरामिड के नीचे बोनापार्ट ने अधिक ज़ोरदार व्याख्यान किया हो, परन्तु वह अधिक प्रगल्भ नहीं हो सका होगा, क्योंकि सच्ची प्रगल्भता सच्ची बातों को स्पष्ट रूप से उपस्थित करने की शक्ति को कहते हैं।

कुछ दिनों के बाद प्रजा-पुकार के स्वामी रिपोर्टरों में से गस्टन-लाँगू नामक एक अत्यन्त सीधे-सादे रिपोर्टर ने उसके पास अपना कार्ड भेजा। उसे किसी ज़रूरी काम के सम्बन्ध में उससे भेंट करनी थी। लाँगू जवान आदमी था। पर न तो वैसा सुन्दर था और न वैसा कुरूप, न लम्बा था न ठिंगना, न मोटा था न दुबला, न काला था न सफ़ेद, न चतुर था न मूर्ख। इसीसे पहले जिस दफ़्तर में वह काम करता था, वहाँ उसके एक साथी ने हँसी में उसका नाम 'दि मिडवे' (बीच का) रख दिया था।

'प्रजा-पुकार' का स्वामी लाँगू को बहुत चतुर समझता था। उसने बेलग्रेड-हत्याकांड के समय नीचे लिखे हुए सनसनी उत्पन्न करनेवाले शीर्षक सोचे थे। इन शीर्षकों का जनता पर ख़ासा प्रभाव पड़ा था—

प्रिंस कराजार्जविच से सनसनी उत्पन्न करनेवाली भेंट।

वे कोई भी बात बताने से इनकार करते हैं।

इसी से पत्र-स्वामी ने कहा था—उसमें असली अमरीकन प्रतिभा है और वह उसे प्रकट कर सकता है। अतएव उसका कार्ड पाते ही वह उत्साह और आश्चर्य के साथ लाँगू से मिलने को तुरन्त तैयार हो गया। अमरीकन धज के साथ वह जल्दी जल्दी बाहर आकर रुखाई से अपने रिपोर्टर से मिला। उसने कहा—अरे मूर्ख, अपने

मामले की बातें जल्दी क्यों नहीं कहते। कृपा करके केवल मुख्य ही मुख्य बातें कहिएगा।

अपने स्वामी के ढङ्ग की यथासम्भव नक़ल करके रिपोर्टर ने उसी प्रकार उत्तर दिया—मोशिये, पेरिस से ३८ मील पर ओसे-एट-सोमे का मुख्य नगर कार्जेविली है। इसके रेलवे-स्टेशन के समीप के छोटे जङ्गल में एक ख़ून हुआ है।

उपेक्षा के भाव से पत्र-स्वामी ने कहा—ऐसे अपराध तो प्रतिदिन होते रहते हैं। रिपोर्टर ने कहा—परन्तु यह साधारण अपराध नहीं है। हम इसमें बड़ी भारी सनसनी उत्पन्न कर देने का मसाला पा सकते हैं। उससे जनता अधिक समय तक उत्तेजित रक्खी जा सकेगी। आपके पत्र की बिक्री दस गुनी बढ़ जायगी। मैंने एक स्कीम सोची है। उसके अनुकूल इस घटना में ख़ास तौर से कुछ बातें मौजूद हैं।

"और तुम्हारी स्कीम? मुख्य बात पर आओ न।"

"लाश नङ्गी और अङ्ग-भङ्ग मिली है। उसका पहचानना असम्भव है। हाथ, पैर और सिर ग़ायब है। अभी तक कोई पहचान नहीं सका है कि यह किस की लाश है। निश्चय-पूर्वक केवल एक यही बात जानी जा सकी है कि लाश स्त्री की है, सम्भवतः किसी जवान स्त्री की। हत्यारे की छाँह तक का पता नहीं है। पुलिस या तो उसका पता पा नहीं सकती या वैसा करना ही नहीं चाहती।

"और तुम्हारी कल्पना?"

"मैं कार्जेविली जाऊँगा। वहाँ ऐसे ढङ्ग से रहूँगा जिससे लोगों का मुझ पर सन्देह हो। वैसी ही कुछ बातें भी कह दूँगा, मानो मेरे मुँह से अचानक ही निकल गई हैं। वे मुझ पर सन्देह करेंगे, मुझे पकड़ेंगे, हवालात में डालेंगे और मुझ पर मुक़द्दमा चलेगा। मैं अपने को हत्या का अभियुक्त हो जाने दूँगा, और अपने रक्षक को कुछ फ़ीस देकर प्रतिदिन हवालात से एक लेख 'प्रजा-पुकार' के लिए भेजने का प्रबन्ध करूँगा। उसमें हत्या के अपराध में किसी अभियुक्त बन्दी के मानसिक भावों का वर्णन रहेगा। असली रहस्य उसमें किसी भी तरह नहीं खुलने पायेगा, और इधर आप अपने पत्र में मेरे उक्त विषय पर एक बड़ा भारी विवाद छेड़ सकते हैं। इस सम्बन्ध में आपको विवाद में भाग लेनेवालों के लिए एक लाख फ़्रैंक के पुरस्कार देने की घोषणा करनी पड़ेगी। जो मेरे लेख से यह अनुमान करेंगे कि मैं अपराधी हूँ या निर्दोष हूँ उन्हें अपने निर्णय के समुचित कारण बता कर उसे पुष्ट भी करना पड़ेगा। यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि पुरस्कार पानेवालों में आधे दर्जन लोग अपने ही होंगे। ये लोग यह काम कुछ डालर पा जाने पर कर देंगे। इसी को अमरीकन पद्धति कहते हैं। क्या आप मेरी बात समझ गये?

पत्र-स्वामी ने चिल्ला कर कहा—लाँगू, तुम सचमुच एक चतुर रिपोर्टर हो। जाओ, अपनी स्कीम के अनुसार कार्य करो। मुक़द्दमा शुरू होने के पहले जब तक तुम गिरफ़्तार रहोगे, तुम्हारे रहने के लिए एक कमरे तथा दूसरी सुख की सामग्रियों का प्रबन्ध करने में जो व्यय होगा वह सब दफ़्तर से दिया जायगा। भगवान् करे, तुम्हारी स्कीम सफल हो।

लाँगू कार्जेविली की जवार से सर्वथा अपरिचित नहीं था। वहाँ की एक जवान और सुन्दर स्त्री से उसका प्रेम था। और वह स्त्री मध्य-श्रेणी के लोगों में थी।

पिछली गर्मी में वह स्त्री कई सप्ताह तक अपने गाँव में रही थी। उसने लाँगू को भेंट करने के लिए अपने गाँव कई बार आने भी दिया था। परन्तु उनकी ये भेंट-मुलाकातें पवित्र भाव से होती थीं। उस स्त्री के पति ने उसे दो वर्ष से छोड़ दिया था। वह कहाँ चला गया, जीवित है या मर गया है, इसका पता किसी को नहीं था। इसी से उसने लाँगू से विवाह करने का वादा किया था। परन्तु इस कार्य में बाधक यह बात थी कि न तो उसे अभी तक तलाक़ की डिग्री प्राप्त हुई थी और न यही निश्चय था कि वह विधवा या सधवा है।

कार्जेविली पहुँच कर एक दिन से भी कम समय में लाँगू ने अपनी स्कीम को ऐसे ढङ्ग से कार्य में परिणत किया कि दो ख़ुफ़िया पुलिसवालों ने उसे तत्काल पकड़ लिया और घसीटते हुए मजिस्ट्रेट के पास ले चले।

उद्देश के इतनी जल्दी सफल हो जाने से लाँगू को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह द्वेष की मुसकराहट के साथ

मजिस्ट्रेट के सामने जाकर खड़ा होगया। वास्तव में महत्त्व की बात केवल यह थी कि भेद की बात जल्दी न खुलने पाये, क्योंकि उस दशा में वह शीघ्र छोड़ दिया जायगा और तब उसे अपना वही रिपोर्टर का पुराना काम फिर करना पड़ेगा। अतएव उसने मजिस्ट्रेट के सामने अँगरेज़ी ढङ्ग ग्रहण किया। अँगरेज़ी क़ानून में यह है कि जब तक अपराध सिद्ध नहीं हो जाता तब तक प्रत्येक अभियुक्त निरपराध समझा जाता है।

उसने कहा—मोशिये, मैं अपनी सफ़ाई देने का प्रयत्न नहीं करूँगा। आप मुझ पर अपराध का आरोप करते हैं, अतएव अपराध को सिद्ध करना आपका काम है।

मजिस्ट्रेट ने कहा—तो भी अभियोग की सत्यता या असत्यता के जानने में तुम अपनी सफ़ाई देकर मेरी बहुत कुछ सहायता कर सकते हो।

लाँगू ने दृढ़ता से कहा—मैं सफ़ाई के सम्बन्ध में एक भी बात नहीं कहूँगा। जब आप अपने सारे प्रमाण एकत्र कर लेंगे तब मुझे जो कुछ कहना होगा, कहूँगा। यदि आप ठीक ही मुझ पर अभियोग लगायँगे तो मुझे कुछ भी नहीं कहना होगा।

मजिस्ट्रेट ने कहा—यह तो अपराध को स्वीकार करना ही जैसा हुआ।

लाँगू ने उत्तर दिया—ज़रा भी नहीं। यह तो सावधानी-मात्र है। कभी कभी बिलकुल ही निर्दोष व्यक्तियों को जिरह के चक्कर में डाल कर उनके मुँह से कोई ऐसी बात कहलवा ली जाती है जो बाद को उनके प्राणों का ग्राहक होती है, इससे मैं मौन ही रहूँगा।

लाँगू लगातार दो-तीन दिन तक दृढ़ता के साथ अदालत में चुप रहा। उससे बराबर प्रश्न किये जाते थे, पर वह उदासीन ही बना रहा। इधर इन तीन दिनों तक मामले की जाँच भी ख़ूब होती रही।

चौथे दिन लाँगू ने ज्यों ही मजिस्ट्रेट की ओर देखा, उसे तत्काल ज्ञात हो गया कि कोई न कोई नई बात अवश्य हुई है। उसने अपने मन में सोचा—आज मजिस्ट्रेट अधिक प्रसन्न दिखाई देता है। मालूम होता है, उसे मेरी चाल मालूम हो गई है और अब वह मुझे छोड़ने जा रहा है। अरे इतनी जल्दी! कैसी बुरी बात हुई!

मजिस्ट्रेट कहने लगा—लाँगू, जैसी तुम्हारी इच्छा हो, उत्तर दो चाहे न दो। अब कोई हर्ज नहीं है। तुम्हारे सम्बन्ध में हमे सारे प्रमाण मिल गये है, और अब मैं तुम्हारे मामले को सेशन सिपुर्द करता हूँ।

रिपोर्टर ने मुसकराहट के साथ अपने मन को संतुष्ट किया।

मजिस्ट्रेट कहता गया—देखते हो। केवल एक बात के कारण मैं हिचकिचाता था। वह अपराधी के पहचानने की बात थी। किसी व्यक्ति के मार डालने के अपराध में किसी पर हत्या का अभियोग लगाना तब तक कठिन है जब तक यह बात न मालूम हो जाय कि वह हत्यारा कौन व्यक्ति है।

मुसकराकर लाँगू ने कहा—हो सकता है।

"परन्तु जिस व्यक्ति की हत्या हुई है उसका भी पता अब मुझे मिल गया है।"

"बहुत अच्छा हुआ। क्या आप मुझे भी बता देने की कृपा करेंगे?"

"अभी बताता हूँ। परन्तु पहले मैं यह बताऊँगा कि ठीक ठीक हुआ क्या था।"

लाँगू को इस बात का विश्वास था कि वह जब चाहेगा, एक बात कहकर प्रमाणों की सारी विशाल इमारत को ध्वंस कर सकता है। वह कह देगा—यह सब झूठ है। मैंने किसी को नहीं मारा है। यदि मेरा विश्वास न हो तो 'प्रजा-पुकार' के स्वामी को बुला कर पूछ लो। उसने कहा—मैं भी वह सब हाल जानने के लिए बहुत उत्सुक हूँ।

मजिस्ट्रेट कहने लगा—उस अभागी स्त्री को प्रेम की आशा थी, पर मिली उसे मृत्यु। उसका प्रेम पाप-पूर्ण था, उसके लिए उसे बड़ी निर्दयता के साथ दण्ड दिया गया है।

लाँगू बीच में बोल उठा। उसने कहा—अरे तो क्या उसको मारनेवाला उसका प्रेमी ही है!

"हाँ लाँगू, उसका प्रेमी ही है। उसका वध १० आक्टोबर की शाम को हुआ था।"

"मेरी समझ में यह १२ वीं की सन्ध्या की घटना है।"

"लाश का पता १२ वीं को लगा था। हत्या ४८ घण्टे पहले हुई थी।"

"और यह सब आपको कैसे मालूम हुआ?"

"क्योंकि १० वीं की रात को तुम गुप्त रीति से पेरिस से ग़ायब हो गये। उसी रात से उस स्त्री को किसी ने नहीं देखा। वह बेचारी तुम्हारा शिकार बन गई। यह घटना-संयोग विश्वसनीय है और अकाट्य है।"

इस समय ऐसा मालूम होता था कि लाँगू किसी ऐसी बात पर विचार कर रहा है जो अभी तक उसके ध्यान में नहीं आई थी। एकाएक मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा—१० आक्टोबर की रात को तुमने क्या किया था?

इस प्रश्न ने स्पष्ट रूप से अभियुक्त को चक्कर में डाल दिया। अपने पहले के निश्चय के अनुसार उसने उत्तर दिया—मेरा कोई उत्तर नहीं है। यह तो आपको ही बताना चाहिए कि मैंने क्या किया था।

मजिस्ट्रेट ने कहा—बहुत अच्छा। सुनो! तुम सन्ध्या को ७ बजे पेरिस से चले, नौ बजे कार्जेविली पहुँचे। लौटते समय तुम साढ़े ग्यारह के एक्सप्रेस से आये और एक बजे रात को पेरिस को लौटे। परन्तु तुम अपने घर सवेरे साढ़े सात से पहले नहीं गये।

"किसने मुझे यह यात्रा करते देखा? किसी ने नहीं।"

"क्योंकि तुम रूप बदले थे—सम्भवतः तुम किसी प्रकार अपने आपको छिपाये-सा रहे—और यह सावधानी ही तुम्हारे अपराध का प्रमाण है। जब कोई आदमी यात्री की तरह यात्रा करता है तब वह इस बात की परवा नहीं करता कि कौन मुझे देखता है और कौन मुझे पहचानता है। अपने शिकार को मार डालने तथा उसकी लाश का अङ्ग-भङ्ग करने के लिए तुम्हारे लिए ढाई घण्टे का समय बिलकुल काफ़ी रहा होगा। तुम्हारे शिकार ने भी पेरिस को उसी गाड़ी से छोड़ा था जिससे तुमने।

लाँगू ने व्यङ्ग्य में कहा—यथार्थ घटना के रूप में जो कुछ मसाला पुलिस जुटा सकती है वह अद्भुत ही होता है।

मजिस्ट्रेट का कथन लाँगू को बिलकुल ही अत्युक्तिपूर्ण जँचा। परन्तु प्रबल चिन्ता के आगे एकाएक उसकी दृढ़ता ने जवाब दे दिया।

मजिस्ट्रेट कहता गया—

"तुम्हारे साढ़े सात के पहले घर न पहुँचने का यह कारण था कि तुमने गाड़ी से उतरते ही स्टेशन के पास के होटल में रात बिताने का निश्चय किया था।"

होटल का नाम बता कर मजिस्ट्रेट ने कहा—और यह दौड़-धूप क्यों? इसलिए कि मौक़े पर मौजूद रहना न प्रमाणित हो। तुमने एक दिन पहले उस होटल को एक बनावटी नाम से तार दिया था और अपने रहने के लिए एक कमरा ठीक कराया था। संध्या-समय तुम एक स्त्री को साथ लिये उस होटल में जाकर ठहरे। उसी स्त्री का अब पता नहीं है। रात को एक बजे तुम होटल के बाहर उसी प्रकार दिखाई दिये जैसे तुम चार घण्टे पहले दिखाई दिये थे। तुमने सोचा था कि इस बीच में तुम्हारे जाने के सम्बन्ध में किसी ने कुछ न कहा होगा। अतएव तुम कार्जेविली की यात्रा करने से इनकार करते। यह सब बहुत कुछ सोच-विचार कर किया गया था। परन्तु वही तुम्हारी कल्पना का सारा अपव्यय अपराध के प्रमाण-स्वरूप आगे आकर खड़ा हो गया। एक निर्दोष यात्री को अपने आस-पास का उतना ध्यान नहीं रहता है। उसके सम्बन्ध में क्या हो रहा है, इसकी चिन्ता करने की उसे ज़रूरत नहीं रहती है, किसी होटल में अमुक निश्चित समय में पहुँच जाने की सूचना देने का कष्ट भी वह नहीं स्वीकार करेगा। अब तुम अपना हाल कहो कि १० आक्टोबर की रात तुमने कैसे व्यतीत की।

लाँगू पीला पड़ गया था। उस तारीख़ के अपने कार्यों का ठीक ठीक वर्णन करना उसके लिए असम्भव था। वास्तव में मजिस्ट्रेट को जो समाचार मिला था वह बहुत ठीक था। यह बात सत्य थी कि उसने जिस होटल का कमरा अपने लिए रिज़र्व करवाया था और जिसका नाम मजिस्ट्रेट ने लिया था उसमें वह अपने साथ एक स्त्री भी ले गया था और वहाँ उसके साथ भोजन किया था। केवल अपकीर्ति के ही विचार से वह

स्त्री सार्वजनिक भोजन-शाला या किसी जल-पान-गृह में नहीं गई थी। इसी कारण दोनों अपने को छिपाये रहे। शिष्टता की मर्यादा के विचार से भी वह अपनी साथिन का नाम नहीं बता सकता था।

उस स्त्री ने ही भेंट करने का प्रस्ताव किया था। भेंट का भाव सर्वथा पवित्र था। लाँगू से उसकी शादी होने की सम्भावनायें बढ़ती जाती थीं। इन्हीं के सम्बन्ध में उसे विचार करना था। परन्तु अपनी बुद्धिमानी के कारण वह न तो उसके घर गई, न उसे अपने ही घर बुलाया। इसी से उक्त होटल में एक एकान्त कमरे का उपयोग किया गया था। अब उस स्त्री को आगे आना और कहना चाहिए कि—"१० वीं आक्टोबर की रात को ८ बजे से ११बजे तक गैस्टन लाँगू अमुक होटल के कमरे में हमारे साथ रहा।" तभी उसके विरुद्ध लगाये गये अभियोग का समाधान होगा। परन्तु ऐसा होना न तो सम्भव था और न आवश्यक ही था, क्योंकि अभियुक्त को निश्चय था कि उसके बोल देने भर से ही उस मामले की समाप्ति हो जायगी, जब ज़रूरत होगी तब वह अपनी विचित्र स्कीम की बात खोल देगा, कह देगा कि अपने पत्र के प्रचार के लिए उसने अपनी स्कीम को कार्य में परिणत भर किया है। इसके सिवा और किसी बात की आवश्यकता नहीं थी। मामले को समाप्त कर देने के विचार से वह अपना भेद खोलने ही को था कि मजिस्ट्रेट ने उसे जोश में देख कर एक और धक्का दिया। उसे अपने क़ाबू में करने तथा उससे अपना अपराध स्वीकार करवाने के लिए वह यह धक्का लगाने की तैयारी ही कर रहा था। उसने कहा—

जिस स्त्री को तुमने कर्तव्य से च्युत किया है उसका पता हमें मिल गया है। पहले उसे तुम पेरिस के होटल में ले गये और तब कार्जेविली में उसका वध करने के लिए ले गये। हमने उसके नाम का, उसकी पद-मर्यादा का, उसके सम्बन्ध की प्रत्येक बात का पता लगा लिया है। यद्यपि उस स्त्री की लाश भयङ्कर रूप से अङ्ग-भङ्ग कर दी गई थी, तो भी वह पहचान ली गई है। उसका नाम मैडेम बालेस्टीन है और वह टमटिलेस-कार्जेविली की रहनेवाली है।

लाँगू ने चिल्ला कर कहा—मैडम बालेस्टीन! असम्भव है! वह नहीं मरी है।

मजिस्ट्रेट ने कहा—अब यह नाटक बन्द करो। तुम जानते हो कि वह मर गई है, तुम्हीं ने उसे मारा है।

लाँगू बोला—अरे नहीं! इसमें भूल है! बड़ी भयङ्कर बात है। विचार करने की बात है कि मैं उसका प्रेमी होकर उसका वधकर्त्ता कैसे हो सकता हूँ। सोचिये, मैंने झूँठ ही हत्यारा होने का बहाना किया था। मैं रिपोर्टर के काम का अनुभव प्राप्त करता था। इसी प्रकार की बात थी। 'प्रजा-पुकार' के स्वामी को सारा हाल मालूम है। मैंने अपनी स्कीम उन्हें बताई थी और तदनुसार यह प्रबन्ध किया गया था।

"बहुत ठीक है। तुम अपनी यह विचित्र कहानी जूरी के सामने कहना।"

"परन्तु आप मेरा विश्वास करें। मैडम बालेस्टीन की मृत्यु नहीं हुई है।

"मेरे पास उसकी मृत्यु का सर्टीफ़िकेट है। यह उसके लापता हो जाने की बात के सिद्ध हो जाने के बाद का लिखा हुआ है। उसके सम्बन्धियों और मित्रों ने उसकी लाश पहचानी है।"

अभागे रिपोर्टर ने चिल्लाकर कहा—तब वह बाद को मार डाली गई होगी। इसका पता लगाया जाना चाहिए, यदि घर लौटने के लिए वह कार्जेविली को आधी रात की गाड़ी से नहीं लौटी।

मजिस्ट्रेट ने कन्धे हिलाकर सन्देह का भाव प्रकट किया।

× × ×

दूसरे ही दिन 'प्रजा-पुकार' मैडम बालेस्टीन के काल्पनिक हत्यारे की सनसनीदार भेंट का अपूर्व वर्णन छापने में समर्थ हुआ। पत्र ख़ूब बिका, जिससे उसके स्वामी को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी अपेक्षा दूसरे अख़बारवाले—यहाँ तक कि अमरीका तक में भी—इससे बढ़ कर ग़प उड़ाने में आज तक कभी नहीं समर्थ हुए।

सेशन में मुक़द्दमा शुरू होने के पहले लाँगू के वकील ने कहा—आपके हाथ में इस मामले के सम्बन्ध

के कुछ बढ़िया दाँव हैं। विपक्ष का वकील पक्का प्रमाण उपस्थित करने में असमर्थ है। उसका सारा मामला केवल नैतिक आधारों पर ही निर्भर है। वह कल्पनाओं की एक लड़ी-मात्र है। मैं उसके टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। परन्तु झूठे अपराध की अपनी बेतुकी कहानी जज और जूरी के सामने दोहराने का प्रयत्न न करना। नहीं तो वे सारी बातें आपके विरुद्ध आ पड़ेंगी। और यदि आप ऐसा करेंगे तो फिर मैं किसी बात का उत्तर न दूँगा।

परन्तु बुद्धिमान् रिपोर्टर अपनी बात छोड़ने को राज़ी नहीं था। उसने चिल्ला कर कहा—परन्तु सत्य तो यही है। इसके सिवा इस नये आविष्कार से अमरीकन शैली के सफल सम्पादक के रूप में मेरी कीर्ति होगी। परन्तु अपने दुःख की बात आपसे क्या कहूँ। हाय मैडम बाले-स्टीन मर गईं। मैं उनका प्रेम करता था। जिस दुष्ट ने उनका वध किया है, यदि मिलता तो उसे चावल चावल कुतरता।

जब लाँगू ने अपने समर्थन में अपनी स्कीम का उल्लेख किया और कहा कि अपने अख़बार के लिए सनसनी-दार रिपोर्ट प्रस्तुत करने के लिए मैंने हत्यारा बनने का ढोंग किया था तब जज ने उसे फटकार कर कहा—क़ानून से दिल्लगी करने का प्रयत्न मत करो। नहीं तो तुम अदालत का अपमान करने के अपराधी होगे।

वकील ने धीरे से कहा—मैंने क्या कहा था? तुम सारा मामला बिगाड़ दोगे। जूरी तुम्हारे विरुद्ध हो जायँगे और वे तुमको पूरा दण्ड देंगे।

जज तथा अदालत के दूसरे लोगों को उसके कथन का विश्वास नहीं हुआ।

'प्रजा-पुकार' का स्वामी बुलाया गया। उसने लाँगू की आशा के अनुसार ही उसके कथन की पुष्टि की।

प्रसन्नता से चिल्लाकर लाँगू ने कहा—देखा आपने!

मुद्दई-पक्ष के वकील ने पत्र-स्वामी से कहा—मोशिये, क्या आप जैसे चाणाक्ष, अमेरिकन सूझवाले पत्र-स्वामी ने तुरन्त ही यह बात नहीं जान ली कि यह अत्यन्त बुद्धिमान् रिपोर्टर अपनी चतुराई से हमारे लिए एक गड्ढा तैयार कर रहा है और सो भी नारकीय धूर्तता से, नीच निर्लज्जता से, सफ़ाई के साथ अपना जघन्य कृत्य करने तथा तत्सम्बन्धी प्रमाणों को यह कह कर निर्मूल कर देने के भाव से कि 'वे सब झूठे हैं। मैंने स्वयं ही ये बेड़ियाँ धारण की हैं, उन्हें जाल करके प्राप्त किया है कि अच्छा न्याय हो और जनता को प्रकट हो जाय कि मजिस्ट्रेट कितनी सरलता से धोखा खा जाते हैं।'

मामले के इस पहलू को देख कर पत्र-स्वामी चकित हो गया। परन्तु अपनी सूक्ष्म दृष्टि प्रमाणित करने के भाव से उसने शीघ्रता से उत्तर दिया—हाँ, बहुत ठीक है। मैंने तुरन्त जान लिया था कि लाँगू की यह चाल सन्देह-जनक है, परन्तु मैंने अपने मन में कहा कि यदि वह अपने को भेड़िये के मुँह में डालना पसन्द करता है—क्षमा कीजिएगा। इस अलङ्कारिक कथन-द्वारा मेरा अदालत का अपमान करने से मतलब नहीं है।

मुद्दई-पक्ष के वकील ने कहा—बिलकुल ठीक है। अब आप बैठ जायँ।

अदालत में अभियुक्त के प्रति प्रतिक्षण क्रोध बढ़ता जाता था। उसकी निर्लज्जता ने लोगों के क्रोध को और भी प्रज्वलित कर दिया था।

"हे भगवान्, कैसा पाजी है!"—"अरे ये अख़बार-वाले—सब कुछ कर सकते हैं"—"उस बेचारी स्त्री को मार डाला है"—"तुम जानते हो, क्या तुम नहीं जानते?—कैसी सुन्दर लड़की थी?" "कैसा दुष्ट पशु है"—"अरे चाण्डाल है।" "और इस चालबाज़ की धृष्टता को तो देखो। कहता है कि अपराधी बनने का ढोंग किया है। ऐसे व्यक्ति का बस सिर उतार लेना चाहिए"—"चाहे उसे मौत की ही सज़ा वे भी दें"—"क्यों, क्या उसे मौत की सज़ा न दी जाने का भी अव-सर है? क्या वह क़त्ल किये जाने से बच जा सकता है?" इस प्रकार की बातों से लोगों का क्रोध बढ़ता ही गया, वे उसको स्वयं दण्ड देने को तैयार थे।

पेशी समाप्त हुई, मुक़द्दमा दूसरे दिन के लिए उठा दिया गया। चार रक्षकों से घिरा हुआ लाँगू जब अपनी कोठरी में जाने को सहन पार करने लगा तब बड़ी भारी भीड़ उस पर उमड़ पड़ी। एकाएक एक आवाज़ सुनाई

पड़ी—उसे लटका दो। बीस ने, सौ ने, हज़ार ने यही दोहराया—उसे लटका दो। हाँ, उसे लटका दो।

पुरुषों और स्त्रियों की क्रुद्ध भीड़ रक्षकों पर टूट पड़ी, उन्हें घेर लिया, बलपूर्वक उन्हें अलग हटा दिया और अभागे लॉगू को पकड़ लिया। तुरन्त ही उन्होंने उसके हाथ-पैर बाँध दिये, उसकी गर्दन में एक रस्सी बाँधी गई, एक सोलह वर्ष का अवारा लड़का लैम्प-पोस्ट पर चढ़ गया। उसने रस्सी खींच ली और उसी पोस्ट से उसे लटका दिया। दूसरों ने नीचे से उस रिपोर्टर को छोड़ दिया। अब वह अधर में लटकने लगा, उसकी आँखें और जीभ निकल पड़ीं।

उस भयङ्कर दृश्य को देख कर 'प्रजा-पुकार' का स्वामी पीला पड़ गया। उसने चिल्लाकर कहा—उन्होंने उसे लिंच किया है। कम से कम यह काम ज़रूर अमरीकन हुआ है।

× × × ×

दूसरे दिन काली पोशाक में एक स्त्री कार्जविली-प्रान्त के ज़िला अटर्नी के सामने जाकर उपस्थित हुई। उसने कहा—मोशिये, मैं मैडम बालेस्टीन हूँ और मेरा वध नहीं हुआ है। पाँच हफ़्ते हुए, १० आक्टोबर की रात को आधी रात हो जाने के कुछ ही बाद जब मैंने अपने घर में प्रवेश किया तब मुझे मेरे पति का केवल मिला। उसने मुझे न्यूयार्क बुलाया था, जहां वह बीमार पड़ा था। बिना एक क्षण बिताये, बिना किसी से कुछ कहे-सुने मैं अपनी नौकरानी से कह कर वहां चली गई। नौकरानी भी मैसेंट लज़ारे स्टेशन को दौड़ी, हावरे को जाने को तैयार गाड़ी में जा कूदी और दूसरे दिन सवेरे जहाज़-द्वारा अमरीका को रवाना हो गई। अमरीका पहुँचने पर मुझे अपने पति की मृत्यु का संवाद मिला। यथाशीघ्र वहा के काम-काज से छुट्टी पाते ही मैं लौट पड़ी। हाल में ही विधवा हो जाने से अब मैं मोशिये लॉगू की प्राण-रक्षा के लिए अपनी गवाही स्वतन्त्रता से देती हूँ।

क्रोध से चिल्लाकर ज़िला-अटर्नी ने कहा—मैडम, भगवान् के लिए आप २४ घण्टे पहले आने का प्रबन्ध क्यों नहीं कर सकीं। आप बहुत ही अरुचिकर मामला हमारे सामने उपस्थित कर रही हैं।

यह जानते ही कि वह दुबारा विधवा हो गई है, एक बार वास्तव में और दूसरी बार भविष्य-पति की आशा के रूप में, मैडम बालेस्टीन बेहोश होकर मुर्दे के समान वहीं गिर पड़ीं।

कौन मारा गया? किसने हत्या की? जो न्याय देवी-देवता को अन्धा बना देता है वही इस पहेली का उत्तर जानता है, परन्तु वह अपना उत्तर कभी प्रकट नहीं करेगा।:-

सुकुमारी

[श्रीयुत श्रीरत्नाम्बरदत्त चन्दोला]

सजनि, कहो तुम किस मधुवन की
कोमल कुसुम-कली हो ?
मञ्जु-मरालों के किस कुल में
हंसिनि ! कहो पली हो ?

उषाकाल के बालारुण की
क्या तुम प्रथम किरण हो ?
याकि सुधाकर की गोदी से
गिरी सुधा-की कण हो ?

इन्द्र-धनुष-प्रत्यञ्चा-सी तुम
कौन अरी अनजान !
उतरी चञ्चल चपला-सी हो
चढ़कर जलद-विमान ?

क्या हिम-शैल-शिखर से निकली
तुम शुचि सुर-सरिता हो ?
या कि किसी भोले-से कवि की
सुन्दरि ! तुम कविता हो ?

कमल-कोष में छिपनेवाली
अलिनी-सी चितचोर—
रेशम-से परवाली हो क्या
तितली-रूप किशोर ?

हो तुम किसके हृदय-देश की
शोभा, श्री, शृङ्गार ?
हो तुम किसके मन-मन्दिर की
देवी सरल उदार ?

किस उपवन की कोयल हो तुम,
किस वसन्त की माया ?
किस झरने की शीतलता हो
किस कदम्ब की छाया ?

लता लजीली, किस तरुवर को
हृदय-दान तुम दोगी ?
किसके जीवन-सागर की तुम
तरणी सुमुखि ! बनोगी ?*

हिन्दुस्तान की राष्ट्र-भाषा

[श्रीयुत कामताप्रसाद गुरु]

आज-कल राष्ट्र-भाषा की पुकार चारों ओर से सुनाई देती है और महात्मा गांधीजी ने उसका स्वरूप भी थोड़ा-बहुत निश्चित कर दिया है। इसके सिवा एक "भारतीय हृदय" की लिखी हुई इस विषय की "राष्ट्र-भाषा" नामक एक पुस्तक भी कुछ वर्ष पूर्व हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग, ने प्रकाशित की है। ऐसी अवस्था में इस विषय पर कुछ व्यावहारिक रूप से विचार करने की आवश्यकता है।

अधिकांश हिन्दू और हिन्दुस्तानी लोग हिन्दी को राष्ट्र-भाषा के योग्य मानते हैं। जिनकी मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है—जैसे, बङ्गाली, महाराष्ट्र, मदरासी आदि—वे भी हिन्दी को संस्कृत-जन्य होने के कारण राष्ट्र-भाषा होने के लिए उपयुक्त समझते हैं। यदि हिन्दी के मार्ग में कोई कठिनाई है तो वह कुछ स्वार्थान्ध हिन्दुओं और धर्मान्ध मुसलमानों की ओर से है। संभव है, हमारे स्वार्थान्ध हिन्दू और हिन्दुस्तानी बहुमत के प्रभाव से हिन्दी को राष्ट्र-भाषा मान लेवें; पर धर्मान्ध मुसलमानों

* अप्रकाशित 'मधुकोष' काव्य से।

से हमें किसी प्रकार के समझौते की आशा नहीं है। इसका मुख्य कारण यह है कि उनकी दृष्टि मे काफ़िर, उनकी भाषायें, उनका धर्म और उनकी संस्थायें—सब घृणा-योग्य हैं। ऐसी अवस्था मे किसी न्याय-संगत परिणाम पर पहुँचना कठिन ही नहीं, किन्तु लगभग असम्भव है।

मुसलमानों ने अब "उर्दू" के बदले "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रचार आरम्भ किया है। "राष्ट्र-भाषा" नामक पुस्तक मे पटना के श्रीयुत सरफ़राज़ख़ाँ की सम्मति संगृहीत की गई है जिसका अर्थ यह है कि "राष्ट्रवादी की हैसियत से मेरा ख़याल है कि राष्ट्र-भाषा "हिन्दुस्तानी" के नाम से पुकारी जाय। उर्दू या हिन्दी के नाम से नहीं—और उसमे फ़ारसी तथा संस्कृत के शब्दों की कमी करने की कोशिश की जाय"। लगभग ऐसी ही सम्मति महात्मा गांधी ने इस विषय में प्रकट की है। अष्टम हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति की अवस्था में आपने जो भाषण दिया था उसमें एक जगह आपने कहा है कि "यह हिन्दी एक-दम संस्कृतमयी नहीं है, न एक-दम फ़ारसी-शब्दों से लदी हुई है। सलाह बहुत अच्छी है; पर यह देखना आवश्यक है कि यह कार्य-रूप में कहाँ तक परिणत हो सकती है।

राजा शिवप्रसाद सितारे-हिन्द ने अपने समय में इस बात का बहुत उद्योग किया था कि उर्दू और हिन्दी में कुछ शब्दों को छोड़ केवल लिपि का भेद रह जाय। पाठशालाओं के उपयोग के लिए उन्होंने जो पुस्तकें लिखीं उनमें वे इस प्रकार की भाषा लिखते थे—

"उधर इँग्लिस्तान में सन् १७८४ के दर्मियान पार्लामेंट के हुक्म से एक महकमा बोर्ड आफ़ कंट्रोल का मुक़र्रर हो गया था। उसमे बादशाही कौंसिल के छः वज़ीर बैठते थे, और वह कोर्ट आफ़ डैरेक्टर्स से बालादस्त थे। तिजारत के सिवाय हिन्दुस्तान के सारे कामों पर उनको पूरा इख़्तियार था, और कोर्ट आफ़ डैरेक्टर्स को सब काम उनकी मर्ज़ी के बमूजिब करना पड़ता था"।

इस प्रकार की भाषा मे शैली और शब्दावली उर्दू ढङ्ग की रहती है और "तिजारत" के बदले "व्यापार" को स्थान नहीं दिया जा सकता। यदि गाधीजी की सलाह के अनुसार हिन्दुओं की बोली से फ़ारसी शब्दों का सर्वथा त्याग और मुसलमानों की बोली से संस्कृत का सर्वथा त्याग अनावश्यक है तो यह हिन्दी या हिन्दुस्तानी प्रायः वैसी ही होगी जैसी कि मीर अम्मन ने लगभग सवा सौ वर्ष पहले "बाग़ोबहार" में हिन्दुओं का वर्णन करते समय लिखी थी। उस भाषा का उदाहरण यह है—"मैं **कन्या** जेरबाद के देश के राजा की हूँ वह गबरू जो ज़िन्दाने-सुलेमान में क़ैद है उसका नाम बहर-मन्द है। मेरे **पिता** के **मन्त्री** का बेटा है। एक रोज़ **महाराज** ने आज्ञा दी कि जितने राजा और कुँवर हैं मैदान मे ज़ेर झरोके आकर तीरन्दाज़ी और चौगानबाज़ी करें तो घुड़चढ़ी और कसब हर एक का ज़ाहिर हो। मैं रानी के **नेरे** जो मेरी माता थीं अटारी पर ओझल मे बैठी थीं और **दाइयाँ** और **सहेलियाँ** हाज़िर थीं। तमाशा देखती थीं। यह दीवान का पूत सबमें **सुन्दर** था और घोड़े कावे देकर कसब कर रहा था। मुझको **भाया** और दिल से उस पर **रीझी**। मुद्दत तक यह बात **गुप्त** रही। आख़िर जब बहुत **व्याकुल** हुई तब दाई से कहा"।

यदि मुसलमान लोग अपने आदि-लेखक की-सी भाषा लिखने और समझने का उद्योग करने लगें तो राष्ट्र-भाषा के मार्ग की बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर हो जायँ; क्योंकि हिन्दी-लेखकों को संस्कृत-शब्दों का उतना पक्ष-पात नहीं है जितना मुसलमानों को फ़ारसी और अरबी शब्दों का है। वे लोग अपने दस बरस के बच्चे को भी ऐसी भाषा सिखाते हैं जिसे सुन कर केवल हिन्दी जाननेवाला तरुण पुरुष भी भौंचक्का रह जाता है। उदाहरण के लिए "उर्दू ज़बान की चौथी किताब" का यह अंश देखिए—

"राजा की **दुख़्तर** संजोगनी यह **दास्तान** सुनकर राय की दिलेरी पर **शेफ़्तह** हो गई। उसके सिवा किसी को पसन्द न किया। बाप **सख़्त आज़ुर्दह** हुआ। **दौलत-ख़ानह** से निकाल एक **जुदा** मकान में **नज़रबन्द** किया"।

इसके विरुद्ध हिन्दू-लेखक अपने दस बरस के बच्चे के लिए नीचे लिखे उदाहरण से कठिन भाषा न लिखेगा—

"विदर्भ नगर के राजा, भीमसेन की कन्या, दमयन्ती बड़ी रूपवती और गुणवती थी। उसके विवाह के लिए

राजा ने स्वयंवर रचा और उसमें देश देश के राजाओं को बुलाया। दमयन्ती ने भाटों के द्वारा सब राजाओं की कीर्ति सुन कर निषध-देश के राजा नल ही को सबसे अधिक प्रतापी और सुन्दर समझा और उन्हीं के गले में जयमाला डाल दी"।

यदि थोड़े समय के लिए मान लिया जाय कि हमारे मुसलमान भाई हिन्दुओं पर अपनी "दुख़्तर" न लादेंगे, और उसके बदले "कन्या" से संतोष कर लेंगे, तो भी अनेक प्रसंग ऐसे अवश्य उपस्थित होंगे जिनमें ठेठ हिन्दी शब्द से काम न चलेगा और उसके बदले फ़ारसी या संस्कृत शब्द रखना ही पड़ेगा। ऐसी अवस्था में यह निर्णय करना कठिन होगा कि किस भाषा का शब्द काम में लाया जाय। उदाहरण के लिए नीचे लिखा हुआ अँगरेज़ी का अंश देखिए और "हिन्दुस्तानी" में उसका अनुवाद कीजिए—

"These leaders, not content with the *national* demand for *Dominion Status* are for complete independence Now I am not one of those who look upon the British connection with India as a *God-send*, who think that *God* has brought about this happy union for the benefit of both these countries and especially India. Those who think in this happy vein, no doubt, deserve to be *congratulated* on their redoubtable *optimism* Frankly I do not share it and I would not like anybody else to share it'

इस अवतरण में "National," "Dominion Status", "God-send," "Optimism" आदि अनेक शब्द हैं, जिनका अनुवाद करने में फ़ारसी या संस्कृत शब्दों का उपयोग करना होगा और उस समय इस बात का निर्णय आवश्यक है कि किस भाषा के शब्द को प्रधानता दी जाय जिससे दोनों दलों को संतोष हो। कुछ लोग इसमें यह कह सकते हैं कि जिस भाषा का शब्द सहज हो उसी का उपयोग किया जाय। हम भी इस बात को मानते हैं; पर यदि किसी लेख में सरलता के कारण संस्कृत-शब्दों की अधिकता होगी तो मुसलमान लोग उसे पूरा "संसकीरत" कहने में न चूकेंगे। ऐसी अवस्था में कदाचित् उचित यही होगा कि सभाओं में मुसलमानों की संख्या के समान, राष्ट्र-भाषा में उर्दू शब्दों की संख्या—संभवतः प्रतिशत ३३—नियत कर दी जाय और जैसे बने वैसे लेखक अपने लेख को सहज और स्वाभाविक बनाने का प्रयत्न करे। मेरी समझ में यही एक उपाय उपयुक्त दीखता है।

यदि किसी तरह भाषा का प्रश्न हल हो जाय, तो भी उसके साथ लिपि का प्रश्न लगा हुआ है। मुसलमान लोग उर्दू-लिपि को और हिन्दू लोग देवनागरी-लिपि को कभी छोड़नेवाले नहीं हैं। एक थोड़े-बहुत उदार-चित्त मुसलमान सज्जन लिखते हैं कि "यह लिखनेवाले की पसन्दगी पर छोड़ दिया जावे कि अपनी ज़ुबान को फ़ारसी हुरूफ़ में लिखे या देवनागरी हुरूफ़ में (लेखक ने "देवनागरी" शब्द के साथ "अक्षरों" लिखना ठीक नहीं समझा)। महात्मा गाँधी भी लिपि के प्रश्न को हल नहीं कर सके। उन्होंने अपने पूर्वोक्त व्याख्यान में कहा है कि "लिपि की कुछ तकलीफ़ ज़रूर है। मुसलमान भाई अरबी-लिपि ही में लिखेंगे। राष्ट्र में दोनों को स्थान मिलना चाहिए। अमलदारों को दोनों लिपियों का ज्ञान आवश्यक होना चाहिए। इसमें कुछ कठिनाई नहीं है। अन्त में जिस लिपि में ज़्यादा सरलता होगी उसी की विजय होगी।

गांधीजी के परामर्श के अनुसार राष्ट्र-भाषा के लिए दोनों लिपियों की आवश्यकता है और यथार्थ में भी मुसलमानों की प्रसन्नता के लिए अरबी-लिपि को स्थान देना ही पड़ेगा। गांधीजी को इस प्रबन्ध में कोई कठिनाई नहीं दीखती; पर इसका परिणाम यह होगा कि जो काम एक लिपि से सरलता पूर्वक सम्पन्न हो सकता है उसके लिए दो लिपियों और संभवतः दो भाषाओं की योजना करना पड़ेगी। गांधीजी के एक वाक्य से अवश्य यह आशा होती है कि अन्त में सरल लिपि ही की विजय होगी; पर इसमें भी सन्देह है; क्योंकि संयुक्त-प्रदेश में आज-तक सरल देवनागरी की विजय न हो सकी, और हैदराबाद तथा भोपाल में हिन्दुओं की संख्या अधिक होने पर भी उर्दू-भाषा और लिपि का अखण्ड राज है। कानपुर की सभा में मुसलमानों ने जो सात माँगें पेश की हैं उनमें एक उर्दू की रक्षा के लिए है।

सारांश यह है कि हिन्दू-मुस्लिम-समस्या के समान उर्दू-हिन्दी-समस्या भी एक कठिन राष्ट्रीय प्रश्न है और उसे सुलझाने के लिए नेहरू-कमेटी के समान एक अलग कमेटी नियत करने की आवश्यकता है, जो इस विषय पर एक उपयोगी योजना तैयार करे। इसके लिए राजनैतिक नेताओं के साथ हिन्दी और उर्दू के विद्वानों को भी सम्मिलित करना होगा और कमेटी में भाषा तथा लिपि के सम्बन्ध में ऐसी व्यावहारिक योजना उपस्थित करनी होगी जो विरोधी दलों को स्वीकृत हो। आशा है, हमारे नेता इस विषय पर आवश्यकता से अधिक ध्यान देंगे।

हिम-गिरि-शिखर पर

(गुलमर्ग)

[श्रीयुत—श्रीगोपाल नेवटिया]

दीनता ने काश्मीर-निवासियों को कितना पराधीन बना दिया है, इसका अनुभव तो गत ग्रीष्म-ऋतु में काश्मीर-यात्रा के अवसर पर प्रतिदिन ही होता था, परन्तु सबसे अधिक कटु अनुभव हुआ गुलमर्ग के मार्ग में, पहाड़ के नीचे टनमर्ग में! गगन-भेदी गिरि-शिखरों पर, अनन्त वातावरण के बीच, शुभ्र हिमराशि पर प्रकृति के अनूठे रूप के साथ आमोद-प्रमोद करने के लिए उत्सुक मन बीच में ही दीनता से दुर्बल मानवता का अनुभव करके कितना खिन्न हुआ था! मन की वह खिन्नता न जाने कैसी उपदेशप्रद सूचना थी।

टनमर्ग श्रीनगर से २४ मील दूर है। मोटर का रास्ता है। वहाँ से गुलमर्ग और उसके आगे खिलनमर्ग तक जाने के लिए घोड़े अथवा गाँड़ियाँ भाड़ा करनी पड़ती है। यहाँ की रत्नगर्भा वसुन्धरा के पुत्र न जाने भाग्य के किस फेर से, उसके प्रसाद से वंचित रहकर, सेवा का कार्य करने के लिए बाध्य होते हैं। जब कभी कोई यात्री वहाँ आता है तब उसके पैसे से अपने और अपने बिलखते हुए घरवालों के मुँह में धान का ग्रास डालने के लिए उत्सुक मज़दूरों का दल उस पर टूट सा पड़ता है। ग़रीबों के उस आक्रमण से यात्री को बचाने के लिए वहाँ स्टेटपुलिस का प्रबन्ध है।

हम लोग मोटरों से उतरने भी नहीं पाये थे कि बीसों डांड़ी व घोड़ेवाले हमारी ओर लपके। उन्हीं के पीछे आया एक हाथ में कोड़ा और दूसरे हाथ में जूता लिये हुए पुलिस का सिपाही! कोड़ा तो उसे स्टेट की ओर से मिला ही होगा, परन्तु जूते के सम्बन्ध में भी हमारे एक साथी महाशय की कल्पना कुछ कम महत्त्व और मनोरञ्जन की नहीं है। उनकी राय थी कि उस सिपाही को वह जूता भी राज्य की ओर से ही मिला हुआ होना चाहिए। थोड़े से वेतन का भोगी अपना निजी जूता तोड़ेगा ही कैसे? किसी दूसरे के जूते को एक स्वाभिमानी पुलिसमैन छू भी कैसे सकता है? खैर चाहे जो हो दीनता का वह दृश्य कारुणिक अवश्य था। घोड़े और डांड़ीवालों को अपने दुर्व्यवहार के कारण पिटते देख लेने से ही मन खिन्न न भी हो, तो भी गहरे देखने पर उनकी निर्धनता का एक नग्न दृश्य दिखाई देगा—मन करुणा और समवेदना से ओत-प्रोत हो जायगा। एक धनी परिवार भी उस दिन वहाँ गया था। एक कुली के ठीक काम न करने पर अथवा निरपराध ही पीटे जाने पर उस धनी परिवार की एक बालिका हर्ष प्रकट कर रही थी। उसके लिए तो वह कौतूहल के कारण हर्ष की बात हो रही होगी, किन्तु दीनता का जो हृदय-विदारक इतिहास उसके पीछे छिपा है वह तो रुलाये बिना नहीं रह सकता।

डांड़ी और टट्टुओं पर सवार होकर हम लोगों ने पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ की। उन सीधे-सादे टट्टुओं की पीठ पर बैठकर और वैसे ही सीधे-सादे आदमियों के

कन्धों पर लद कर जब हमारा क़ाफ़िला पहाड़ पर चढ़ने लगा तब हम सभी को काश्मीर-यात्रा का एक नया ही अनुभव हुआ। "पोपूलर" (हाउस-बोट) में बड़े आराम से दिन बिताने और मोटर मे घूमने-फिरने की अपेक्षा यह अवश्य ही अधिक आनन्द-दायक था। हममें से कुछ तो ऐसे थे जिन्हें उसी दिन अश्वारोहण का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, कुछ ऐसे भी थे जिनको अपनी घुड़सवारी का अभिमान भी था। पर टट्टुओं की उस मन्द मन्द चाल में सभी एक प्रकार का सुखानुभव कर रहे थे। पछताते थे तो वे जो चार चार के कन्धों पर सवार होकर चल रहे थे। वास्तव में वे डाँड़ियाँ तो मरीज़ों औरतों और उन विशालकाय जीवों के लिए हैं जिनका बोझ बेचारे टट्टू नहीं उठा सकते। टट्टुओं की जगह २।३ डाँड़ियाँ करके हम लोगों ने अढ़ाई-अढ़ाई रुपये की जगह प्रत्येक डाँडी के लिए पौने दस दस रुपये व्यर्थ खर्च किये। पर एक संतोष की बात थी कि वह पैसा उन ग़रीब भाइयों की जेब में गया जो दाने-दाने के लिए तरसते हैं।

रावलपिण्डी से श्रीनगर आते समय पहाड़ी मार्ग का जो चित्ताकर्षक दृश्य आंखों के सामने आया था, ठीक वैसा ही दृश्य इस मार्ग में भी था। मार्ग घोड़ों के लिए ही बना है, उस पर मोटर अथवा गाड़ियाँ नहीं आ-जा सकतीं। मार्ग कई स्थान पर बहुत सीधा और घुमाव-वाला है। पहाड़ी पर ऊपर से लेकर नीचे तक घना जङ्गल है। मार्ग का सौन्दर्य उस जङ्गल के पेड़-पौधों में है। ऊपर जाते समय बायें हाथ की ओर कुछ दूरी पर हिमाच्छादित शैल-शृङ्ग हैं और पीछे सैकड़ो मील लम्बा-चौड़ा वही सुप्रसिद्ध काश्मीर का सानुप्रदेश है। अनुकूल ऋतु में जब वन के लताद्रुम कुसुमित हो जाते हैं तब उस दृश्य का सौन्दर्य चौगुना हो जाता है। जङ्गली गुलाबों और विविध प्रकार के फूलों की वह सजावट प्रकृति अपने कोमल हाथों से करती है। कौन उसे देख कर मुग्ध न होगा? हरियाली के बीच स्थान स्थान पर केसर के समान पीत वर्ण बड़े बड़े फूलों को देखकर हममें से कितनों का ही मन उन पर चला था। एक फूल तोड़कर ज्यों ही हमारे एक साथी ने हाथ में लिया, घोड़ावाला चिल्ला उठा—"हुज़ूर! यह तो ज़हरीला फूल है!" हमारे साथी ने तत्क्षण फूल गिरा दिया, वह घोड़े के पैरों से कुचल गया। सौन्दर्य और विष का यह संमिश्रण। ईश्वर की लीला अद्भुत है!

टनमर्ग से गुलमर्ग चार मील है। १-१॥ घण्टे में हम लोग गुलमर्ग पहुँच गये। पहाड़ की ऊँचाई पर यह एक सुविस्तृत समतल स्थान है। गोल्फ़, पोलो, आमोद-प्रमोद के सब सुख-साधन होने के कारण यह स्थान काश्मीर आनेवालों के लिए, विशेषतः विदेशियों के लिए, अधिक आकर्षक है। उन्होने इस स्थान को अपने उप-युक्त हिल-स्टेशन बना लिया है। यह तो उन लोगों के जीवन की एक विशेषता ही है। भारतवासियों की भांति उनका जीवन गार्हस्थ्य नहीं, उनके जीवन मे सामा-जिकता की मात्रा अधिक है। उसी के अनुरूप उन्हे अपना जीवन बनाना पड़ता है। मिलने-जुलने, आमोद-प्रमोद, खेल-कूद आदि के लिए क्लब, होटल आदि की सुव्यवस्था उनके लिए आवश्यक हो जाती है। भारतीय भी इस स्थान पर आते ही हैं, पर ये किसी एक कोने में अपना समय बिता कर चले जाते हैं, अँगरेज़ों की भांति न इनका मेल-जोल ही होता है और न इनमें वैसी चहल-पहल ही रहती है। शहरी चहल-पहल को छोड़कर गिरि-शिखरों की शांति का अनुभव करने की इच्छा प्रशंसनीय ज़रूर है, परन्तु दूसरी ओर सामाजिक जीवन के सुख से सर्वथा वंचित रहना भी तो ठीक नहीं।

गुलमर्ग में काठ के बने हुए अच्छे सुविधाजनक मकान भाड़े पर मिल जाते हैं। ये मकान महँगे तो होते हैं, पर होते हैं बड़े आराम के। पहाड़ के ऊपर टेकरियों पर बने हुए ये मकान काठ के खिलौने से दिखाई देते है। पूर्वोत्तर कोण की एक टेकरी पर "लिंड्सफ़र्न हट" में हम-लोग रहे थे। यह कोठी काश्मीर के भूतपूर्व मन्त्री श्री मित्र महाशय की थी। बहुत ही सुविधाजनक निवास-स्थान था। वहाँ का दृश्य तो अद्भुत ही था। एक ओर पहाड़ की तलहटी से लेकर मीलों दूर तक मैदान—उसके हरे और सुनहले खेत, सामने हिमाच्छादित शैल-शृङ्गों की श्रेणी, एक ओर गुलमर्ग का कौतुकमय गोल्फ़-मैदान। कभी यह दृश्य कभी वह दृश्य, घर में बैठे ही देखने को मिल जाता था।

गुलमर्ग ८,९०० फ़ुट की ऊँचाई पर है। इतने ऊँचे स्थान पर सर्दी की अधिकता स्वाभाविक है। जब कभी ३।४ दिन लगातार आकाश खुला रहता है, धूप बनी रहती है, तब एक दो दिन में ही बादल फिर आते है। बरसात में वहाँ का वह आनन्द नहीं रह जाता जो सूर्य के प्रकाश में रहता है। वर्षा में घर से बाहर निकलना तो दूर की बात है, घर के भीतर भी सर्दी के मारे ओढ़-कर पड़े रहना पड़ता है अथवा आग तापकर समय बिताना पड़ता है। हम लोग गुलमर्ग गये, उसके दूसरे दिन से ही वर्षा शुरू हुई। तीन-चार दिन तक आकाश नहीं खुला, घन गरजते, बिजली चमकती और कभी कभी ओले भी गिरते। उस भयानक सर्दी की चर्चा हम लोगों में हुए बिना कैसे रहती? पूज्य श्रीरामनरेशजी त्रिपाठी के नीचे के पद्य को लेकर हमारे साथियों में काफ़ी विनोद होता रहा—

ओढ़ना तुषार जैसा तकिया तुहिन जैसा
हिम-सा बिछौना देख बुद्धि चकराती है।
घुटने चिपक जाते कान के निकट जाके
बरफ़ की मारी पड़ी देह थहराती है॥
इन्द्रियों का साथ छोड़ मन भाग जाता कहीं
ऐसी महाशीत गुलमर्ग में सताती है।
और आग की तो कौन चर्चा चलावे यहाँ
ठंड से विरह की भी आग बुझ जाती है॥

सर्दी की अधिकता के कारण स्वास्थ्य-लाभ तो होता है, तो भी ऋतु के आकस्मिक परिवर्तन के कारण कभी उलटा असर भी हो जाता है। पानी भी यहां का थोड़ा वायुकारक है। जो लोग सोडा-लेमन पीकर काम चला लेते हैं उन्हें तो पानी से क्या मतलब? पर जिन्हें पानी का आसरा देखना पड़ता है उन्हें पेट के गड़बड़ का सामना भी करना पड़ता है। दूसरी सब दृष्टियों से यह स्थान बहुत उत्तम है। घूमने-फिरने की, घुड़सवारी की अच्छी सुविधा है। जो अपना स्वास्थ्य सुधारना चाहें उनके लिए पानी अथवा ऋतु विशेष रुकावट नहीं डाल सकते।

पहाड़ियों पर आने-जानेवालों का समय तो सैर-सपाटे में ही बीतता है। दूसरी ओर पहाड़ियों पर जानेवालों के लिए भी घूमने-फिरने के बहुत से आकर्षण होते हैं, गुलमर्ग तो काश्मीर का पहाड़ी स्थान है, वहाँ इन आकर्षणों की क्या कमी? पहाड़ी के ऊपर चारों ओर फैले हुए ऐसे अनेक मार्ग हैं जिन पर सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक घूमने पर भी उनका अन्त नहीं आ सकता। पहाड़ी के चारों ओर बना हुआ वृत्ताकार मार्ग (Circular Road) जितना सुन्दर है उतना सुन्दर मार्ग पैदल घूमने-वालों के लिए शायद ही कहीं हो। इस मार्ग का सौन्दर्य वहाँ के विविध दृश्यों में है। कहीं वृक्षों के झुरमुट में से उच्च हिम-गिरि-शिखर सूर्य के प्रकाश से चमकते हुए दिखाई देते है तो कहीं दृष्टि पहाड़ के सुन्दर सुन्दर वृक्षों की चोटियों का स्पर्श करती हुई विशाल उपत्यका पर जा पहुँचती है। सड़क के किनारे पर सुन्दर सुन्दर फूलों की अनेक क्यारियाँ है। यह मार्ग इतना सुन्दर और परिष्कृत है कि वर्णनातीत है।

सरक्यूलर रोड की भाँति यहाँ के जंगल-विभाग के द्वारा बनाई हुई फ़ारेस्ट रोड (जंगल की सड़क) भी बड़ी सुन्दर है। मार्ग में बहुत से नाले अविराम गति से प्रवाहित हो रहे हैं। दक्षिण के हिमगिरि-शिखरों से बर्फ़ गल कर इन नालों में आती रहती है। सघन वृक्षों से आच्छादित और कोमल दूब से आवृत बहुत से ऐसे स्थान हैं, जहां पिकनिक की बड़ी सुविधा है। पहाड़ के उत्तर ओर की उतराई में ३।४ मील की दूरी पर मुसलमानों की एक ज़ियारत है। उस स्थान का नाम है "बाबा-ऋषि"। मुसलमानों की ज़ियारत के भी ऐसे नाम होने में यहां कोई विचित्रता नहीं। यहां पण्डित नूरुद्दीन भी तो होते हैं!

फ़ारेस्ट रोड में जो छोटे-बड़े नाले प्रवाहित होते हैं उनमें से फ़ीरोज़पुर नाला सबसे अधिक विशाल और सुन्दर है। गुलमर्ग सेटनमर्ग जाने के मार्ग पर थोड़े नीचे जाकर फ़ीरोज़पुर-नाले के लिए एक अलग रास्ता बना है। पहाड़ के ऊँचे-नीचे विकट रास्ते को पार करके जब हम लोग उस रमणीय स्थान में पहुँचे तब अन्य सब सुन्दर सुन्दर जल-स्रोतों को, वितस्ता और डल के अनेक अद्भुत दृश्यों को भूल गये। दो पहाड़ों के बीच में छोटे से मार्ग पर गिरता-पड़ता जल इतनी वेग-गति से

बह रहा था कि समुद्र के गर्जन के समान कोलाहल हो रहा था। पानी के घर्षण से वहाँ के पत्थर बहुत ही चिकने होगये हैं। पत्थर की बड़ी बड़ी चट्टानें वहाँ चिर-काल से पड़ी हैं, नाले के तट तक पहुँचने के लिए एक स्थान पर तो ऐसी ही एक चट्टान के नीचे से बड़ी साव-धानी से जाना पड़ता है। यदि वापस लौटने की जल्दी न होती तो हम लोग घण्टों बैठ कर जलस्रोत की वह क्रीड़ा देखते और मन बहलाते।

एक पड़ाव की दूरी पर तोप-मैदान नामक ए लम्बा-चौड़ा मैदान है। उतनी दूरी तक जाने के लिए न हमारे पास समय ही था और न हम लोग उसके लिए तैयार ही थे। पर—

खिलनमर्ग

की सैर तो हम लोगों के लिए सरल थी। खिलनमर्ग गुलमर्ग में रहनेवालों के लिए रोज़ की घूमने की जगह है। रास्ता पहाड़ी है। दक्षिण की पर्वत-माला के एक-एक अंश का नाम ही खिलनमर्ग है। उस पहाड़ी मार्ग पर घोड़े एक घण्टे में बड़ी आसानी से जा सकते हैं। जिन्हें पैदल चलने का अच्छा अभ्यास हो वे इतनी सी देर मे पैदल भी वहाँ जा सकते हैं। ज्यों-ज्यो गरमी बढ़ती है, नीचे की बरफ़ गलती जाती है, पहाड़ की चोटियो पर ही बरफ़ रह जाती है। श्रीनगर आते ही एक बार हम लोग खिलनमर्ग आये थे। उस समय वहाँ का आनन्द कुछ और ही था। बरफ़ बहुत कुछ गल गई थी, तो भी हमारी दृष्टि में तो वह अनन्त ही थी। उस समय का अद्भुत दृश्य अब भी बहुधा आँखों के सामने आ जाया करता है।

काश्मीर, काश्मीर, हम लोग काश्मीर में थे, मन में कितना कौतूहल हुआ करता था, परन्तु असली काश्मीर में तो पदार्पण हम लोगों ने उस समय किया जब हम खिलनमर्ग पहुँचे! हिमगिरि शिखरों का उस समय तक केवल नयन-सुख ही मिला करता था, परन्तु वहाँ पहुँच कर तो हम लोगों ने उस सौन्दर्य-सम्पन्न स्थान से प्राप्य सब प्रकार के सुखों का अनुभव किया।

बरफ़ से ढके हुए, वेग-गति से नीचे की ओर बहते हुए नाले को पार करके ऊपर आते ही अनायास मुँह से निकला था—"ओह! काश्मीर, भूस्वर्ग तो यह है!" हरित और धवल गलीचे से आच्छादित पहाड़ी समतल भूमि के उस ओर दक्षिण मे हिम-मण्डित वे गिरि-शिखर, पीछे नीची और विशाल घाटी के उस ओर बहुत दूर क्षितिज पर सूर्य की किरणों से चमकते हुए तुषार-धवल पर्वतों की वह पतली-सी रेखा, शीतल और मन्द पवन का वह प्रवाह, विविध वर्णों से विभूषित नभ का वह रूप सब मन को मत्त बनाने में पूर्ण समर्थ थे।

पहाड़ी पर आगे बढ़कर बहुत दूर तक चारों ओर बरफ़ से घिरे हुए एक पत्थर पर खड़े होकर वह दृश्य देखने में कितना सुख था! नेत्रों के द्वारा उस सौन्दर्य का प्रति-क्षण नवीन संदेश लेकर मन तक पहुँचाने में कितना आनन्द था! उन संदेशों को सुन सुनकर मन प्रफुल्लित होता था, प्राकृतिक सौन्दर्य का वास्तविक मूल्य आँकने का प्रयत्न करता था और न जाने कितनी ऊँची-ऊँची उड़ान मारता था।

दूसरी बार गुलमर्ग में आकर रहने पर खिलनमर्ग का आना-जाना बहुत अधिक सरल हो गया था पर, बरफ़ का वह आनन्द नहीं रह गया था। नीचे की सारी बरफ़ गल गई थी। पहाड़ों की चोटी और नीचे बहते हुए नालों पर तो बरफ़ तब भी थी। बरफ़ का पूरा आनन्द तो खिलनमर्ग के पहाड़ को पार करके उसकी चोटी के उस ओर

आलापत्थर

नामक स्थान में पहुँचने पर था। आलापत्थर के सौन्दर्य का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि काश्मीर में हम लोगों ने जो स्थान देखे थे उनमें वह सर्वश्रेष्ठ था! उस सौन्दर्य के अवलोकन से जो सुख हुआ उसका वर्णन करने में भी एक प्रकार का सुख है। उस परम रमणीय स्थान की स्मृति उसका यह वर्णन लिखते समय सजग होती ही है और सुखदायक भी! नदी-नालों और हरे-भरे पर्वतों का सुख तो दूसरे स्थानों में भी उठाया जा सकता है, परन्तु दूध के समान श्वेत अनन्त अविनाशी हिम-राशि का सुख तो काश्मीर में ही सुलभ है। वही सुखानुभव पूर्ण-रूप से आलापत्थर में होता है।

गुलमर्ग से आलापत्थर जाने के दो मार्ग हैं। एक मार्ग पहाड़ का चक्कर देकर जाता है। वह १०।१२ मील लम्बा है। घोड़े उधर से आसानी से जा सकते हैं। दूसरे मार्ग से जानेवालों को खिलनमर्ग का पहाड़

टनमर्ग से

पार करके उसकी चोटी के उस ओर जाना पड़ता है। खिलनमर्ग तथा उससे १।१॥ मील ऊपर तक बिना किसी रास्ते के ऊबड़-खाबड़ पहाड़ पर घोड़े लेजाये जा सकते हैं। पहाड़ की चोटी तक पहुँचने के लिए तो अपने पैरों की शरण ही लेनी पड़ती है। आलापत्थर १४,५०० .फुट ऊँचा है। वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते हवा बहुत पतली हो जाती है। पहाड़ की वह विकट चढ़ाई यों ही दम फुला देती है, उस पर हवा का वह पतलापन तो और भी मुश्किल पैदा कर देता है।

पहाड़ की चढ़ाई का अनुभव करने की थोड़ी सी भी लालसा रखनेवालों को इसी मार्ग से जाना चाहिए। हमारे कुछ साथी दूसरा मार्ग भी देख आये थे। उनकी राय में सुविधा की दृष्टि से भी खिलनमर्ग के पहाड़ को पार करके जाना ही ठीक था। हमारे साथियों में ऐसे भी थे जो अपने तन का बोझ अपनी टाँगों पर न डालकर घोड़े की पीठ पर डालना ही ठीक समझते थे, परन्तु उस दिन उनका मनोबल देखकर तो बहुत आश्चर्य हुआ था। मनोबल के सहारे ही तो हिमालय की विकट चढ़ाई का साहस करते हुए लोग देखे जाते हैं।

गुलमर्ग से ६ बजे सवेरे हम लोग रवाना हुए। आलापत्थर पहुँचने में हमें पूरे चार घण्टे लग गये। खिलनमर्ग के ऊपर पहाड़ पर जहाँ से घोड़ों ने हिम्मत छोड़ दी, पैरों की परीक्षा का अवसर आया। कहीं बरफ़, कहीं पहाड़ी नाले और कहीं पथरीले मार्ग को पार करके हम लोग पहाड़ की चोटी पर पहुँचे। इतनी सी चढ़ाई में ही हम सभी .खूब अच्छी तरह थक गये थे। एक दिन खिलनमर्ग से, इस आशा से कि ऊपर की स्वच्छ और सफ़ेद बरफ़ पर थोड़ी सी देर में पहुँच जायँगे, हम दो साथियों ने बर्फ़ीले नाले की सीधी चढ़ाई पर कमर कसी थी। जूतों में कीलें भी नहीं थीं और हम दो साथियों के बीच एक ही लकड़ी थी। गिरते-पड़ते,

वृत्ताकार पार्वत्यपथ

फिसलते हम लोग वहाँ तक चढ़ गये, जहाँ से हमारे पैरों ने जबाव दे दिया, पर सफ़ेद बरफ़ धोखा देती ही रही। दूसरी बार आलापत्थर जाते समय मालूम हुआ कि वह उज्ज्वल धवल बरफ़ कितनी ऊँचाई पर थी। पहाड़ की चोटी तक पहुँचने में चाहे जितनी तकलीफ़ हुई हो, परन्तु

ऊपर पहुँचते ही उस सारी तकलीफ़ का प्रतिफल मिल गया।

पहले-पहल खिलनमर्ग को देखकर हम लोग आनन्द-विह्वल हो गये थे। बरफ़ का वह मनोरम दृश्य हम लोगों के लिए नवीन था, परन्तु खिलनमर्ग पहाड़ की ओर में आलापत्थर का वह दृश्य तो अलौकिक था! अपूर्व था!! पहाड़ की चोटी पर सिर उठाते ही सामने अनन्त
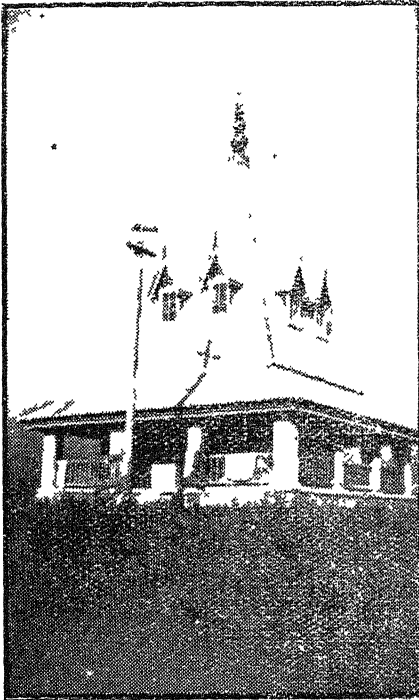
गुलमर्ग—शिवमन्दिर

और अविनाशी हिम-राशि के दर्शन हुए। मीलों तक चांदी के समान उज्ज्वल बरफ़ पड़ी थी, आमने-सामने के पर्वत भी ऊपर से लेकर नीचे तक बरफ़ से लदे थे। कितना अद्भुत दृश्य था वह! अब भी उसकी वह अलौकिक आभा आँखों के आगे उसी प्रकार आरही है। पहाड़ की चोटी के उस ओर एक मील तक बरफ़ पर चलकर जब हम लोग आलापत्थर—अथवा अपरवट—के उस प्रकृति-निर्मित हिम-सरोवर के तट पर पहुँचे तब आनन्दातिरेक का कुछ ठिकाना ही नहीं रहा। उस दृश्य का हूबहू वर्णन बिना उसे देखे केवल कल्पना के सहारे पूज्य त्रिपाठीजी ने काश्मीर-यात्रा के कई वर्ष पूर्व 'पथिक' में न जाने किस प्रकार लिख दिया था—

"चारों ओर तुषार-धवल पर्वत चुपचाप खड़ा है।
प्रकृति-मुकुर सा एक सरोवर उसके मध्य जड़ा है॥"
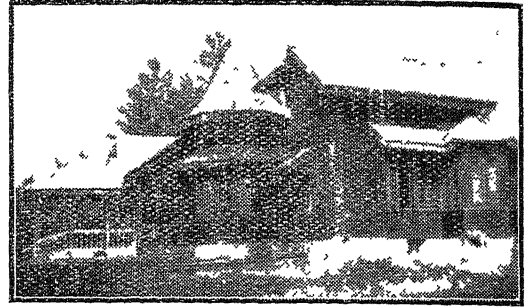
लिंड्सफर्नहट

ठीक यही दृश्य था। उस निर्मल जलवाले सरोवर में तटस्थ हिमाच्छादित गिरि-शृंग अपना रूप देख रहे थे। सरोवर मे तुषार-धवल पर्वतों का वह प्रतिबिम्ब कितना मनमोहक था! तीन ओर उन पर्वतों से वेष्टित वह सरोवर उन्हीं की बरफ़ के गले हुए जल के एकत्र
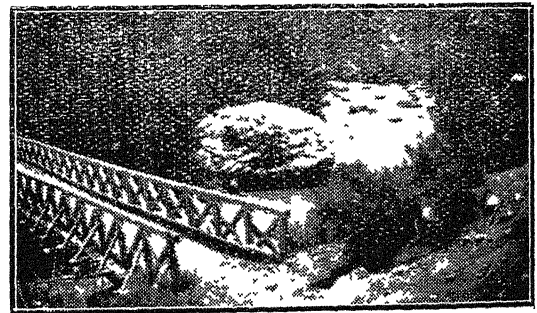
फ़ीरोज़पुरनाला—पुल

होने से बन गया है। अनादि-काल से बरफ़ गल-गल कर वहाँ एकत्र होती रही होगी, नालों में होकर वह पानी बहता रहा होगा, कभी बरफ़ जमती रही होगी, कभी गलती रही होगी। आस-पास के वे पर्वत, नभ के वक्ष में सुशोभित सूर्य-चन्द्र तारका प्रकृति वह क्रीड़ा

न जाने कब से देख रहे है ! आलापत्थर के सरोवर-तट पर खड़े होकर इस विचार-माला में तल्लीन होना कितना चित्ताह्लादकारी था ! प्रकृति के सुन्दर वेश-विन्यास में—उसकी रमणीय क्रीड़ा में—प्रकृति-निर्माता के अवलोकन के भाव, चाहे वे आंशिक रूप में ही हों, मन मे

फ़ीरोज़पुरनाला—जलस्रोत

कितने ही दिनों से पल रहे थे। आलापत्थर सरीखे स्थान में पहुँच कर तो उन विचारों में एक प्रकार से तूफ़ान सा आ गया था। समुद्र की सतह से २॥-३ मील ऊँचे एकान्त शान्त वातावरण में तुषार धवल नगों
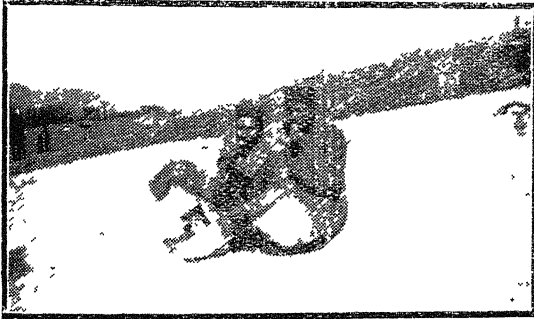
खिलनमर्ग—बरफ़ पर

से वेष्टित हिमसरोवर के तट पर बैठ कर उस सौन्दर्य को देखने में कितना आनन्द है, कितना आकर्षण है ! प्रकृति-पुस्तिका के अन्य रङ्ग-बिरङ्गे पृष्ठों की भाँति चाँदी के समान उज्ज्वल हिम के पृष्ठों पर भी उस विश्व-स्रष्टा का नाम अङ्कित है। उस अस्पष्ट लिपि को जो पढ़ने में समर्थ है वही धन्य है।

उस सौन्दर्य-सम्पन्न स्थान में बैठकर अधखुले नेत्रों से इस दृश्य का अवलोकन करने और काश्मीर के अन्य प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता को याद करने में कितना आनन्द है ! सौन्दर्य और आनन्द का घनिष्ठ सम्बन्ध है। जहां सौन्दर्य है वहीं आनन्द है। उस विराट् स्वरूप कलाकार की कृति तो सर्वाङ्ग-सुन्दर है। उस अज्ञात की यह रचना तो यत्र तत्र सर्वत्र अपने सौन्दर्य के कारण आनन्ददायिनी है। कृति के द्वारा कलाकार से सम्बन्ध स्थापित कर लेनेवाला धन्य है, किसी अज्ञात चित्रकार की तूलिका से चित्रित प्रकृति-सुन्दरी के सौन्दर्य में साक्षात् कलाकार का दर्शन कर लेनेवाला धन्य है।

आलापत्थर सरीखे स्थान में हिमगिरि के चरणों में बैठकर शैल-शिखर और उदय होते हुए सूर्य की लालिमा

आलापत्थर की चढ़ाई में

के आलिङ्गन के सौन्दर्य-दर्शन में आनन्दातिरेक है। उस सरोवर के तट पर बैठकर उसके अनिन्द्य और वन्दनीय सौन्दर्य को देखने, रवि-रश्मियों को उसकी तरङ्गों के साथ अठखेलियां करने में उस कौतुककार को अपने सामने खड़ा देख सकनेवाला धन्य है।

इन पङ्क्तियों के लेखक के लिए तो प्रकृति-दर्शन की ये उच्च भावनायें भावना और कल्पना तक ही सीमित हैं। उनका वास्तविक आनन्द तो उनकी पूर्णता में है, वह पूर्णता भी कल्पना के क़िले में ही क़ैद है !

आलापत्थर पहुँचे हमें घण्टा डेढ़ घण्टा भी नहीं बीता होगा। भोजन समाप्त करते ही दक्षिण से बादल उठते

दिखाई दिये, देखते देखते उन्होंने आकर हमें घेर लिया। बूँदे आने लगीं, ठंडी हवा चलने लगी। सबको पीछे भागने की सूझी, वह सुखदायक दृश्य छोड़ कर सबको अविलम्ब लौटना पड़ा। वह दृश्य तो घड़ी दो घड़ी ही आँखों के सामने रहा था, परन्तु उसकी स्मृति तो सदा के लिए हृदय-पटल पर अङ्कित होगई।

अनन्त अविनाशी हिमराशि

जितना कठिन काम उस पहाड़ पर चढ़ना था, उतना ही सहल काम नीचे आना था। बर्फ़ पर लोटने, ताज़ी पड़ी हुई बर्फ़ का गेंद बनाकर खेलने की बहुत सी बातें हम लोगों ने सुन रक्खी थीं। खिलनमर्ग और आलापत्थर में हम लोग उन आनन्दों का अनुभव करना क्यों भूलते? जब पहले एक बार हम लोग खिलनमर्ग आये थे, बरफ़ पर ख़ूब खेले-कूदे थे, बर्फ़ पर लोटें भी लगाई थीं। परन्तु सबसे अधिक आनन्द तो उस समय आया जब आलापत्थर से वापस आते समय बर्फ़ीली चोटी से नीचे फिसले।

हमारे घोड़ेवालों में कुछ सिक्ख भी थे, जो बड़े भले थे। नीचे उतरने की हमारी तकलीफ़ को दूर करने और बर्फ़ पर फिसलने का नया अनुभव कराने के लिए उन्होंने बर्फ़ से जमे हुए एक नाले की चोटी पर एक कपड़ा बिछाकर हममें से दो को उस पर बैठा दिया। कपड़े का एक छोर रस्सी से बाँध दिया गया। उसे पकड़ कर वे उस भयानक ढलाव में दौड़े। उनके पैर इस काम के लिए सधे हुए थे। बड़ी तेज़ी से हम लोग नीचे की ओर घसीटे चले जा रहे थे। न कोई कष्ट था, न कोई भय! बीच बीच में पत्थरों अथवा नालों के कारण रुकना पड़ता था। यदि बर्फ़ ऊपर से लेकर नीचे तक एक समान हो तो कहीं रुकने की ज़रूरत नहीं पड़ती। ९,००० फ़ुट ऊँचे से बड़े आराम से फिसल सकते हैं। जब हम लोग गये थे उस समय तो बर्फ़ बहुत कम रह गई थी। एक जगह बर्फ़ उतनी साफ़ न थी। घोड़ेवाले सिक्ख लड़के ने कहा, यहाँ तो "लारी" की चाल से चलना होगा, यहाँ मोटर नहीं दौड़ सकती। उसने पैदल चलने की सलाह दी। पैदल चलने की बात कौन पसन्द करता? लारी की तरह उछलते-कूदते चलना ही पसन्द किया गया। बात की बात में पहाड़ की तलहटी आगई। घोड़े, जो पहले से ही वापस आगये थे, खिलनमर्ग में तैयार मिले। शाम होने के पहले ही हम लोग गुलमर्ग पहुँच गये।

आलापत्थर की बातों को याद करके विनोद-विनिमय हो रहा था। रात चाँदनी थी। आलापत्थर के चन्द्रिकासिक्त दृश्य की कल्पना की बात छिड़ी। उस प्रकृति-निर्मित सरोवर के सङ्गमरमर से भी अधिक सुशोभित बर्फ़ के तट चाँदनी में नहा कर और भी अधिक उज्ज्वल हो रहे होंगे! मानसरोवर की कल्पना तो उसके उस स्वरूप से ही हो गई थी; परन्तु उस छोटे से सरोवर में
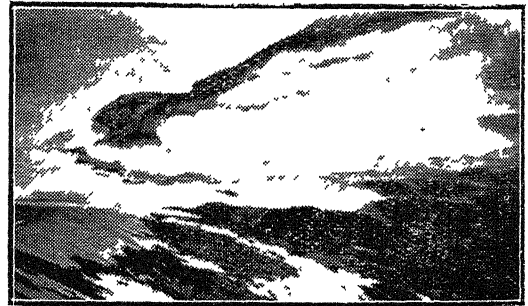
हिमसमूह और जलस्रोत

यदि कमल और राजहंस भी होते तो उसकी शोभा कितनी अद्भुत होती? शायद उसी रात को पूज्य त्रिपाठीजी ने "स्वप्न" में ये पङ्क्तियाँ लिखी थीं—

"निर्मल नीरव निशीथिनी हो,
निद्रा-वश हो जब समस्त जग।

चन्द्रकला में नहा रहे हो,
चारों ओर तुषार-धवल नग ॥
जब केवल रह जाय श्रवण में,
अपने एक हृदय की धड़कन।
तब उर-अन्तर-वासी हरि की,
पद-गति क्यों न श्रवण करता मन ?॥"

इसी प्रकार की मधुर कल्पनाओं और थकावट के बीच आलापत्थर-यात्रा की संध्या समाप्त हुई।

हिम-पथ पर

दस दिन गुलमर्ग में रह लेने पर गुलमर्ग-यात्रा भी पूरी हो गई। शीघ्र ही काश्मीर के उस सुखद प्रदेश से भी बिदा लेनी थी। एक बार फिर ४। ७ दिन वितस्ता के तट पर "पोपूलर" में बिताकर लौट जाने का निश्चय होगया था।

जुलाई का प्रथम सप्ताह था। प्रकाशमान् सूर्य विशाल घाटी के ऊपर उठ रहा था। घाटी के उस ओर नंगा पर्वत के हिमाच्छादित उच्च शिखर दिखाई दे रहे थे। २६,२६० फुट ऊँचे उन गगनभेदी गिरि-शिखरों को ८० मील दूरी से देखने में कितना कौतूहल था ? वास्तव में उन हिम-गिरि-शिखरों में कोई भी उस ताज का अधिकारी न था जो बिना किसी विरोध के नङ्गापर्वत के सिर पर सुशोभित था। विविध वर्णों के फूल और हरी-भरी घास से ढँके, सीधे और सघन वृक्षों से आच्छादित पार्वत्य वन-प्रदेश का वह दृश्य और सामने वह सुविस्तृत घाटी और उसके छोर पर छोटी-छोटी गिरि-मालाओं के उस ओर अपने एक भिन्न और आनन्द-मय जगत् में शान्त और गम्भीर भाव से खड़े नङ्गापर्वत को देखते हुए हम लोगों ने गुलमर्ग से बिदा ली।

गुलमर्ग के वे दिन अब भी उसी प्रकार याद आया करते हैं। कभी सूर्य के तेज़ प्रकाश से सारा दृश्य चमत्कृत हो उठता था, तो कभी वह स्वच्छ नभ बादलों का संग्राम-स्थल होजाया करता था। दिनों की उस असमानता में भी आनन्द था। पर्वत की उपत्यका के हरे-भरे वन, सूर्य के प्रकाश में सोने के समान चमकते हुए धान के खेत, उनके बीच में किसानों की टूटी-फूटी झोपड़िया, स्थान-स्थान पर बहते हुए जल-प्रपात और नागिन की
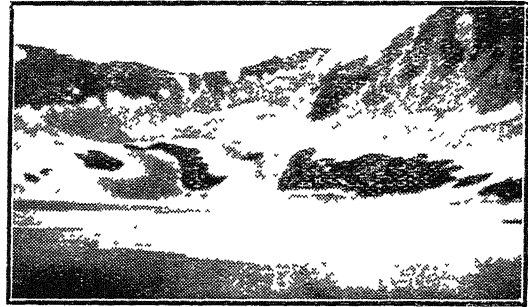
प्रकृति-निर्मित हिमसरोवर

भाँति बल खाते हुए जल-स्रोत, दूध के समान धवल तुषार से अलंकृत लम्बी गिरि-माला और उन सबसे अधिक आकर्षक नंगापर्वत के उच्च शिखर ज्यों के त्यों याद हैं। प्रकृति के उस अनूठे सौन्दर्य को देखकर कौन उसे भूल जायगा ? वह तो सदा सर्वदा के लिए मन में स्थान कर लेता है, अपनी स्मृति से आँखों पर हर्ष की आभा और ओठों पर हास्य की रेखा उत्पन्न करता रहता है।*

---

*शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली मेरी "काश्मीर" पुस्तक का एक परिच्छेद।—लेखक

उमर-ख़ैयाम की रुबाइयाँ

प्रेम-प्रदर्शन

[अनुवादक, श्रीयुत एक़बाल वर्मा "सेहर"]

(١)

اے آنکه گزیدهٔ جهانی تو مرا
خوشتر ز دل و دیده و جانی تو مرا
از جان صنما عزیز تر چیزے نیست
صد بار عزیز تر ز جانی تو مرا

(१)

तू जो है मेरी नज़रों में इस सारे जग से न्यारा,
तुझसे प्रियतर नहीं समुच्चय आँख-जान-दिल का सारा;
प्यारे ! नहीं जान से जग में कोई वस्तु अधिक प्यारी,
और मुझे तू उसी जान से है शतगुणा अधिक प्यारा।

(٢)

دانی که چه مدتست اے دلبر ما
تا بے تو جهان برشدهٔ از بر ما
چون کس نفرستی و نه پرسی هرگز
تا بے تو چها میگذرد بر سر ما

(२)

प्रिये ! तुझे कुछ ज्ञात भला है कितने दिन अब गये गुज़र,
गया अकारण ही जब से तू स्वेच्छा से मुझको तज कर;
भेजा नहीं किसी को तूने और न पूछा ही तूने,
हा ! तेरे-बिन बीत रही है क्या-क्या कुछ अपने ऊपर।

(٣)

خرم نبود زیست دل در غم را
هجر تو حزین کرد دل خرم را
من دلکی عالم بتو خوش میکردم
با دلکی هجرت چه کنم عالم را

(३)

सुख से कभी नहीं जी सकता दुःखी होता वह दिल जो,
दुःखी किया सुखी दिल को अब इस तेरे वियोग ने तो;
रखकर तुझको मधुर बनाया जग की कटुता को मैंने,
रखकर तव वियोग की कटुता आह करूँ क्या मैं जग की ?

(۴)

در پاے تو بوسه دادن اے شمع طرب
به زان باشد که دیگران را در لب
دست من و دامن خیالت هر روز
پاے من و جستن وصالت هر شب

(४)

तेरे पग को चुम्बन करना, ए दीपक प्रसन्नता के,
अच्छा अन्य प्रेमिकाओं के ओष्ठों के भी चुम्बन से;
दिन-भर तो मैं लज्जित रहता तेरा खोज न मिलने पर,
और रात-भर पुनः मिलन हित मैं फिरता खोजता तुझे।

(۵)

آں بت که دلم ز مهر او زار شده است
او با دگرے بغم گرفتار شده است
من در طلب علاج خود چون کوشم
چون آنکه طبیب ماست بیمار شده است

(५)

वही प्रेमिका जिसकी ख़ातिर मेरा दिल है ज़ार बना,
उसका दिल है किसी अन्य का बन्दी सर्व प्रकार बना;
फिर कैसे अपने इलाज की मैं कोई तदबीर करूँ ?
जब वह जो हकीम है मेरा है ख़ुद ही बीमार बना।

(۶)

اے آبحیات مضمر اندر لب تو
مگذار که بوسه لب ساغر لب تو
گر خون صراحی بخورم مرد نیم
او چون که بود که لب نهد بر لب تو

(६)

हा इन तेरे ओष्ठों मे अमृत जो है भरा हुआ,
ऐसा न कर मिले प्याले को चुम्बन तेरे ओष्ठों का;
ख़ून सुराही का न पिऊँ मैं तो कदापि मैं मर्द नहीं,
वह कैसे तेरे ओष्ठों पर रखे सदैव ओष्ठ अपना ?

(٧)

در عالم بیوفا که منزل گه ماست
بسیار بجستم بفناسے که مراست
چوں روے تو ماه نیست روشن گفتم
چوں قد تو سرو نیست میگویم راست

(७)

इस अस्थायी जग में जिसमें है मेरी भी जगह बनी,
अनुमानतः बहुत ही खोजा खोज सका मैं जितना भी;
चांद नहीं तेरे मुख-जैसा साफ़ कह दिया यह मैंने;
सरो नहीं तेरे क़द-जैसा है सीधी-सी बात यही।

(٨)

جاناں ز کدام دست برخاستهٔ
کز حلقهٔ خوبش ماه را کاستهٔ
خوبان جهاں به عید رو آرامند
تو عید بروے خوبش آراستهٔ

(८)

प्रिये ! तुझे किसके हाथों ने है इस भांति सँवार दिया ?
शशि को भी मुख की आभा से तूने आभाहीन किया;
अन्य सुमुखियां ईद समय पर स्वयं साजतीं निज मुखको,
पर तूने तो निज मुख पर ही स्वयं ईद को साज लिया !

(٩)

گفتم که سر زلف تو بس سر خورد است
گفتا که تو بن بده اگر سر خورد است
گفتم روزے ز قامتت بر بخورم
گفتا که ز سرو کے کسے بر خورد است

(९)

मैंने कहा कि तव केशो ने बहुतों को समूल ढाया,
उसने कहा कि तू भी झुक जा यदि यों है मन में लाया;
मैंने कहा कि तेरे क़द से कभी न फल खाया मैंने,
उसने कहा कि सरो-वृक्ष से कब किसने है फल खाया ?

(١٠)

در عشق تو ام از ملامت ننگے نیست
با بیخرداں دریں سخن جنگے
آں شربت عاشقی همه مرداں راست
نا مرداں را ازیں قدح رنگے نیست

(१०)

मैं तेरा प्रेमिक हूँ मुझको निन्दा की परवाह नहीं,
इस पर वाद करूँ मूर्खों से मुझमें यह उत्साह नहीं;
पुरुषों के ही लिए बना है बना प्रेम का शर्बत जो,
उस शर्बत के प्याले की तो कापुरुषों को चाह नहीं।

(١١)

عشقے که مجازی بود آتش نه بود
چوں آتش نیم مرده تابش نبود
عاشق باید که سال و ماه و شب و روز
آرام و قرار و خورد و خوابش نبود

(११)

प्रेम अगर भौतिक है उसमें शक्य नहीं प्रकाश होना,
जैसे बुझती हुई अग्नि का है अनिवार्य चमक खोना;
प्रेमिक वह है जो निशि-वासर दासों एवं वर्षों में,
नहीं जानता कल से रहना वा खाना—पीना—सोना।

(۱۲)

از واقعه‌ای ترا خبر خواهم کرد
وان را بدو حرف مختصر خواهم کرد
با عشق تو در خاک فرو خواهم شد
با مهر تو سر ز خاک بر خواهم کرد

(१२)

अपनी मृत्युजन्म घटना की अब मैं कर दूँ तुझे ख़बर,
केवल दो शब्दों में उसको प्रकट करूँगा मैं तुझ पर;
मिट्टी के नीचे जाऊँगा लेकर अमिट-प्रेम तेरा,
पुनः उठूँगा मैं मट्टी से तेरा अमिट-प्रेम लेकर।

(۱۳)

گویند هر آن کسان که با پرهیز اند
زانسان که بمیرند چنان برخیزند
ما با می و معشوق ازانیم مقیم
تا بو که بحشر ما چنان انگیزند

(१३)

जो मनुष्य है शुद्ध हृदय के वे सब कहते हैं ऐसा,
उठता है मनुष्य वैसा ही वह मर जाता है जैसा;
मदिरा तथा प्रेमिका से मिल हम रहते इसलिए सदा,
प्रलय-दिवस पर हो निश्चय ही अपना भी उठना वैसा।

(۱۴)

روزی بینی مرا تو مست افتاده
در حلقهٔ زلف، بت پرست افتاده
دستار ز سر، قدح ز دست افتاده
در پای تو سر نهاده پست افتاده

(१४)

एक रोज़ तू यह देखेगा मैं बस हूँगा मस्त पड़ा,
तथा प्रेमिका पूजक बनकर तव केशों में ग्रस्त पड़ा;
पगड़ी गिरी हुई सिर पर से, प्याला गिरा हुआ कर से,
तथा रखे सिर को तव पग पर मैं बिलकुल ही मस्त पड़ा।

(۱۵)

گر در کمری چگونه پرواز کنم
با عشق، دوئی چگونه آغاز کنم
یک لحظه سرشک دیده می نگذارد
تا چشم بروی دگری باز کنم

(१५)

तू मुझको अपनाये तो मैं कहाँ भाग कर जा सकता ?
तेरा प्रेमिक हो अन्यों से क्योंकर प्रेम जता सकता ?
मिलता कभी प्रेमाश्रुओं से है तनिक नहीं अवकाश मुझे,
फिर मैं किसी अन्य के मुख पर कैसे दृष्टि जमा सकता ?

(۱۶)

من گوهر خود بقیمت کم ندهم
درد تو بصد هزار مرهم ندهم
خاک در تو بمملکت جم ندهم
یک موی ترا بهر دو عالم ندهم

(१६)

न्यून मूल्य पर अपना मोती मैं निश्चय ही दूँ न कभी,
शत-शत ओषधियों के बदले पीड़ा तेरी दूँ न कभी;
मिट्टी तेरे द्वार की न दूँ यदि जग की शाही पाऊँ,
दोनों लोक मिलें पर तेरा एक रोम भी दूँ न कभी।

(۱۷)

ترس اجل و بیم فنا هستی تست
ورنه ز فنا شاخ بقا خواهد رست
من از دم عیسوی شدم زنده بجان
مرگ آمد و از خود من دست بشست

(१७)

बनी मृत्यु के भय का कारण सांसारिक सत्ता तेरी,
मृत्यु-विटप से उपज अन्यथा बढ़ती बेलि अमरता की;
मैंने जीवन प्राप्त किया है स्वयं प्रिया के श्वासों से,
गई हाथ ही धोकर मुझसे आई मुझ तक मृत्यु जभी।

पश्चिमी चित्र-कला के उत्कृष्ट नमूने (२)

वेनिस के प्रसिद्ध चित्रकार टीपोलो के चित्रण का यह एक नमूना है। इसमें वेनिस के पलाज़ो लेरिया नामक महल के एक बड़े कमरे की दीवार पर जो चित्र अंकित किया है उसी का यह एक अंश है। इसमें उसने क्लिओपटरा को ऐंटानी के साथ भोजन करते हुए दिखाया है।
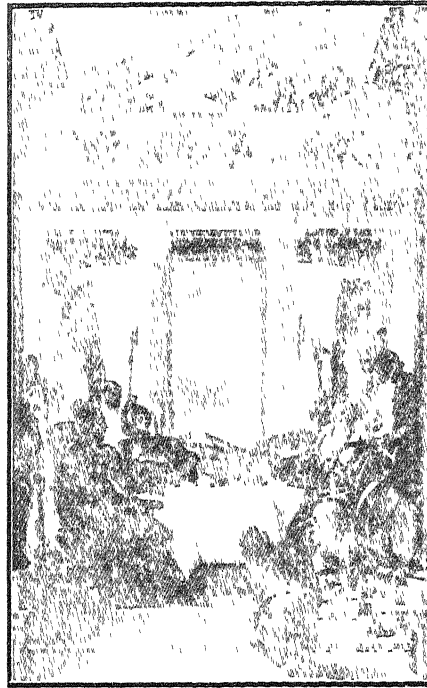
ऐंटानी और क्लिओपटरा
(चित्रकार टीपोलो)

लेवेरी नामी अंगरेज़ चित्रकारों में है। इसने अपने इस चित्र मे नर्तकी पगरोआ को इस हंस की मृत्यु के नृत्य के रूप में चित्रित करने मे कमाल दिखाया है। जैसे नृत्य की उस नर्तकी ने कल्पना की थी उसको उसने हूबहू अंकित कर दिया है।

यह एंटवर्प के एक उच्च घराने की प्रसिद्ध महिला मेरिया लूगिया का चित्र है। यह तत्कालीन पेरिस के फ़ैशन की शौक़ीन थी। चित्रकार ने उसकी रूप-रेखा के साथ उसके पहनावे को भी भले प्रकार अंकित किया है।

हंस की मृत्यु
(चित्रकार लेवेरी)

टेसिस की मेरिया लूगिया
(चित्रकार वान डाइक)

पश्चिमी चित्र-कला के उत्कृष्ट नमूने (१)

यह चित्र फ्रेगोनार्ड की कला-कुशलता का उदाहरण है। इसमें जो युवक और युवती अपने अत्यधिक आनन्द-स्रोत की ओर दौड़े जा रहे हैं उनके शरीर से यूनानी सभ्यता झलकती है। जिस प्रकार वे प्रकाश से आवृत्त किये गये हैं उससे उनका सौन्दर्य और भी बढ़ गया है। फ़ौवारे के पास जो वृक्ष है वह बादलों के घिर जाने से वास्तविक वृक्ष नहीं मालूम पड़ता। इसी प्रकार जो कामदेव इनकी ओर अमृत का प्याला बढ़ाते हैं उनमें भी उनकी वास्तविकता टपकती है।

प्रेम का फ़ौवारा
(चित्रकार फ्रेगोनार्ड)

घिरलन्दाज़ो के मनोमुग्धकारी चित्रों में से यह एक है। इसमें उसने एक स्त्री का चित्र बड़े सुन्दर ढङ्ग से अंकित किया है। उसका यह चित्र सुन्दर ही नहीं किन्तु सब प्रकार से निर्दोष भी माना जाता है।

लार्ड लिघटन की कला का यह उत्कृष्ट नमूना है। तद्वत् चित्र अंकित करने में ये सिद्धहस्त थे। यूनानी कला के ये बड़े प्रशंसक थे।

ग्योवन्ना डेग्ली अल्बिज़ी
(चित्रकार घिरलन्दाज़ो)
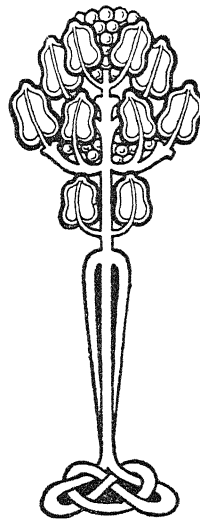
परिणीता
(चित्रकार लिघटन)

महाकवि हरिचन्द्र

[श्रीयुत शम्भुनाथ त्रिपाठी, व्याकरणाचार्य]

महाकवि हरिचन्द्र का नाम प्राचीन इतिहास के प्रेमियों को बतलाने की आवश्यकता नहीं है। जिसकी अद्वितीय कृति की गद्याचार्य बाण-वाक्पतिराज तथा राजशेखर आदि कवियो ने अपने अपने ग्रन्थों में प्रशंसा की है, उसकी धाक तत्कालीन तथा यत्किञ्चित् उत्तरवर्ती कवियों पर अच्छी तरह से जम गई थी। जिस बाण की गद्य-लेखन-क्षमता के सम्बन्ध में 'न भूतो न भविष्यति' की कहावत लोगों में प्रसिद्ध है उसने "भट्टारहरिचन्द्रस्य गद्यबन्धो नृपायते" (हर्षचरित) लिखकर उसकी गद्य-लेखन-क्षमता को स्वीकार किया। खेद है ऐसे कवि का इतना उच्च व्यक्तित्व होने पर भी अभी तक हम लोग उसके सम्बन्ध में उसके नाम के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जानते। अभी तक इस कवि के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों ने जो कुछ खोज की है उससे संशय या जटिलता ही बढ़ी है। महामहोपाध्याय कुप्पू स्वामी शास्त्री और एक अन्य किसी विश्वविद्यालय के अध्यापक को छोड़कर किसी विद्वान् ने इस सम्बन्ध में कुछ लिखा भी नहीं है। इस लेख में उक्त महाकवि के स्थान, काल, कृति तथा इतर विशेषताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है।

उक्त कवि के विषय में कुछ लिखने के पूर्व हम पहले उक्त नाम के कवि-द्वारा प्रणीत प्राप्त गद्य या पद्य काव्यग्रन्थो का उल्लेख करेंगे।

> भासे ज्वलनमित्रे कुन्ती देवे च यस्य रघुकारे।
> सौबन्धवे च वन्द्ये हरिचन्द्रे च आनन्दः ॥

इस वाक्पतिराज के वाक्य के अनुसार उसमें क्या आनन्दकारित्व है। इन दोनों जिज्ञासाओं के समाधान में प्रथम मेरा ध्यान 'धर्मशर्माभ्युदय' और 'जीवन्धरचम्पू' के ऊपर जाता है। ये दोनों ग्रन्थ महाकवि हरिचन्द्रकृत है, जैसा कि प्रथम ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक से प्रकट है।

> अर्हत्यदाम्भोरुहचंचरीकस्तयोः सुतः श्रीहरिचन्द्र आसीत्।
> गुरुप्रसादादमला बभूवुः सारस्वते स्रोतसि यस्य वाचः ॥
> (धर्मशर्माभ्युदय)

प्रथम ग्रन्थ पद्यात्मक महाकाव्य है। दूसरा गद्य पद्य—उभयात्मक चम्पू है। दोनों ग्रन्थ काव्य की दृष्टि से बड़े महत्त्व के हैं। वर्णनशैली, चमत्कारपूर्ण कल्पना, और शब्दार्थ-सौष्ठव सर्वथा प्रशंसनीय है।

उपरिलिखित धर्मशर्माभ्युदय के अन्तिम श्लोक के आदि-चरण से ज्ञात होता है कि हरिचन्द्र कवि जैन-धर्मावलम्बी थे।

इसके सिवा बाण का हरिचन्द्र के सम्बन्ध में जो पद्य है उसमें 'भट्टारहरिचन्द्रस्य' कह कर बाण ने हरिचन्द्र को जैन बतलाया है। भट्टार पद जैनत्व का बोधक है, यह शब्द भारत में इतर धर्म के विद्वानों के साथ प्रयोग में नहीं आया है। कुछ दानपत्रों में भोजराज आदि के पूर्व परम भट्टार शब्द का अवश्य व्यवहार हुआ है, परन्तु किसी कवि या विद्वान् के नाम के साथ नहीं। जैन-विद्वानों के ऐसे पचासों नाम बतलाये जा सकते हैं जिनके नाम के साथ भट्टार शब्द का प्रयोग हुआ है। आज भी जैन-मठाध्यक्ष भट्टार या भट्टारक कहलाते है। अतएव बाणोक्त हरिचन्द्र जैन ही थे।

बाण तथा वाक्पतिराज के द्वारा 'हर्षचरित' तथा 'गौडवध' में क्रम से आदिलिखित हरिचन्द्र को हम एकही व्यक्ति मानते हैं। हाँ 'कर्पूरमञ्जरी' में राजशेखर-द्वारा विदूषक के मुख से वर्णित हरिचन्द्र हमारे मत से कोई दूसरे व्यक्ति हैं। क्योंकि हरिचन्द्र का कोई नाटक नहीं प्रसिद्ध है। और नाटककार के द्वारा नाटक-रचयिता की ही

प्रशंसा सम्भव है। एक तीसरे हरिचन्द्र भी हैं। ये 'विश्वप्रकाश' कोष के कर्ता महेश्वर के पूर्वपुरुष, चरक के टीकाकार हैं। ये तृतीय हरिचन्द्र राजा साहसांक के वैद्य थे। इस टीका को देखने से कोई भी कह सकता है कि यह किसी भावुक कवि की कृति नहीं है। अतएव इस हरिचन्द्र को बाणोक्त हरिचन्द्र से भिन्न तीसरा ही मानना उचित है। हमारे लेख का सम्बन्ध जिन हरिचन्द्र से है वे ईसवी सातवीं सदी के बाण-वाक्पतिराज के समकालीन अथवा पूर्ववर्ती हैं।

परन्तु हरिचन्द्र को सातवें शतक का मानने मे सबसे बड़ी बाधा यह है कि इनकी कथा का आधार सम्भवतः जिनसेनाचार्य के शिष्य गुणभद्र का उत्तरपुराण है। इनके द्वितीय ग्रन्थ में 'जीवन्धरचंपू' में राजकुमार जीवन्धर की कथा का वर्णन है। यह कथा उत्तर-पुराण में 'जीवन्धरोपाख्यान' के नाम से मिलती है। यदि इस ग्रन्थ से कथा ली है तो यह स्वयं सिद्ध होगा कि हरिचन्द्र गुणभद्र के बाद हुए। जिनसेन ने अपने को राजा अमोघवर्ष का समकालीन लिखा है। अपने 'पार्श्वाभ्युदय' काव्य के अन्तिम पद्य में उन्होंने इसका उल्लेख किया है।

इति विरचितमेतत् काव्यमावेष्ट्य मेघं
बहु गुणयति दोषं कालिदासस्य काव्यम्।
मलिनितपरकाव्यं तिष्ठता दाशशांकं
भुवनमवतु देवः सर्वदाऽमोघवर्षः॥

इन राष्ट्रकूटवंशज मान्यखेट-नरेश अमोघवर्ष का समय सन् ८२७ के क़रीब है। अतएव जिनसेन का भी यही समय हुआ। इन्हीं जिनसेन ने जैनपुराण (आदिपुराण) की रचना आरम्भ की थी, पर समाप्त नहीं कर सके। इनके देहान्त के बाद राजा अमोघवर्ष के पुत्र अकालवर्ष के राजत्वकाल में जिनसेन के शिष्य गुणभद्र ने उसके शेषांश को पूरा किया। इन्हीं गुणभद्र-कृत भाग में जीवन्धर राजकुमार की कथा है। गुणभद्र ने अपने उत्तरपुराण के अन्त में उसकी रचना का समय ८२० शकाब्द (सन् ८९८) बतलाया है। अकालवर्ष के राज्यकाल का भी समय इतिहास-ग्रन्थों में यही लिखा मिलता है। इससे ज्ञात हुआ कि दशवीं शताब्दी के बिलकुल अन्त में जीवन्धरोपाख्यान बना था। तो क्या हरिचन्द्र ने इसी पुराण से उक्त कथा ली है? नहीं, ऐसी बात नहीं है। सुनिए।

हरिचन्द्रकृत धर्मशर्माभ्युदय के श्लोकों का शब्दतः और अर्थतः अनुकरण 'नेमिनिर्वाण' के कर्ता 'वाग्भट्ट' ने अपनी रचना में किया है। इन दोनों कवियों के ग्रन्थों के सर्वप्रथम श्लोक उदाहरण-स्वरूप यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

श्रीनाभिसूनोश्चिरमंघ्रियुग्मनखेन्दवः कौमुदमेधयन्तु।
यत्रानमन्नाकिनरेन्द्रचक्रचूडाश्मगर्भप्रतिबिम्बमेणः॥

(हरिचन्द्र)

श्रीनाभिसूनोः पदपद्मयुग्मनखाः सुखानि प्रथयन्तु ते वः।
समं नमन्नाकिशिरःकिरीटसंघट्टविस्रस्तमणीयितं यैः॥

(वाग्भट्ट)

अस्तु, यह सिद्ध हुआ कि हरिचन्द्र वाग्भट्ट से पहले के हैं। वाग्भट्ट ने अपना समय 'वाग्भट्टालङ्कार' में अणहिलपाटन (अन्हिड़वाड़) के नरेश जयसिंहदेव का राज्यकाल बतलाया है। यह नरेश १०९३ ईसवी के क़रीब मौजूद था। यही वाग्भट्ट का समय है। अतएव हरिचन्द्र का समय इसके पूर्व ही होना चाहिए।

धर्मशर्माभ्युदय के प्रथम सर्ग के चतुर्थ श्लोक को, द्वितीय जिनसेनाचार्य ने अपने 'अलङ्कार-चिन्तामणि' नामक ग्रन्थ में उत्प्रेक्षालङ्कार के उदाहरण में उद्धृत किया है।

इन द्वितीय जिनसेन ने अपना समय सोलंकी-वंशज चामुण्डराय का राज्य-काल बतलाया है।

इस नरेश की राजधानी अन्हिलवाड़ा थी और इसका समय सन् ९९६ है। इससे यह सिद्ध हुआ कि हरिचन्द्र इस समय से भी पहले के हैं।

पहले लिखा जा चुका है कि उत्तरपुराण का अन्तिम निर्माण-काल सन् ८९८ है और ९९६ से परवर्ती हरिचन्द्र भी नहीं हैं। उत्तरपुराण और उक्त अलङ्कार-चिन्तामणि के निर्माणकाल के बीच केवल ९८ वर्ष का अन्तर है। अब विचारने की बात यह है कि किसी ग्रन्थ के बनते ही उसका प्रचार तथा प्रसिद्धि नहीं हो जाती, सो भी प्राचीन

समय में जब आज की तरह मुद्रण तथा शीघ्र गमनागमन के साधनों का सर्वथा अभाव था। द्वितीय जिनसेन ने भी अपने ग्रन्थ में हरिचन्द्र के पद्य का तभी उल्लेख किया होगा जब उनके पहले हरिचन्द्र का धर्मशर्माभ्युदय काफ़ी प्रसिद्धि में आगया होगा। इसके लिए १००-५० वर्ष भी कम हैं। ऐसे ही उत्तरपुराण की प्रसिद्धि के लिए इतना ही समय होना चाहिए। तभी हरिचन्द्र जैसे महाकवि-द्वारा उसका ग्रहण करना सम्भव है। उक्त दोनों ग्रन्थों के नियत निर्माण-काल के बीच इतना समय नहीं बचता कि उत्तरपुराण की कथा का हरिचन्द्र अनुकरण करते तथा हरिचन्द्र के पद्य का द्वितीय जिनसेन उद्धरण कर सकते। यही समझ पड़ता है कि हरिचन्द्र ने उत्तर-पुराण से उक्त कथा नहीं ली है।

हरिचन्द्र ने जिस कथा का वर्णन किया है वह उत्तर-पुराण की कथा से भिन्न भी है। वह संक्षेप में इस प्रकार है—

"राजा सत्यन्धर अपनी प्रेयसी रानी विजया पर अत्यन्त प्रेमासक्त हो गया। यहाँ तक कि राज्य-कार्य में समय लगाना उसके लिए अशक्य हो गया। तब उसने अपने प्रधान मन्त्री काष्ठाङ्गार को पूर्णरूप से राज्य का भार सौंप दिया। स्वयं निश्चिन्त हो आनन्द में निमग्न हुआ। कुछ दिनों के बाद काष्ठाङ्गार ने अपने मन में विचार किया कि क्यों न राजा को मारकर मैं ही स्वतन्त्र राजा बन जाऊँ। तुरन्त सत्यन्धर के राज-भवन को आकर घेर लिया। यह हाल पाकर राजा चिन्तित हुआ, लड़ने के लिए निकला और मारा गया। पर बाहर आने के पूर्व वंश-रक्षा के निमित्त उसने सगर्भा रानी को एक मयूर-यन्त्र (वायुयान)-द्वारा आकाश-मार्ग से बाहर निकाल दिया। रानी उस मयूर-यन्त्र-द्वारा वहाँ के श्मशान में उतरी। तथा 'जीवन्धर' नाम के राजकुमार को, जो इस ग्रन्थ का नायक है, पैदा किया। उस लड़के का पालन-पोषण एक वैश्य के घर हुआ। जब वह सयाना हुआ तब उसके कई एक कामों से वहाँ का राजा काष्ठाङ्गार बहुत रुष्ट हो गया। राजा के हाथी को भी इसने चोट पहुँचाई थी, जिसके दण्ड-स्वरूप काष्ठाङ्गार ने जीवन्धर को मार डालने की आज्ञा दी। पर जीवन्धर का एक यक्ष मित्र था। इसको उक्त राजकुमार ने एक मन्त्र-द्वारा कुत्तायोनि से देव बना दिया था। इसलिए इसका वह बड़ा कृतज्ञ था। इस आपत्ति के समय इसने उसका स्मरण किया। वह विद्याधरी माया से इसको उड़ा ले गया और काष्ठाङ्गार के वध-दण्ड से बचा लिया। उसके आठ विवाह हुए। बाद को उसने अपने मामा की सहायता से काष्ठाङ्गार को मारकर अपना पैतृक-राज्य प्राप्त किया। मामा की लड़की का विवाह भी इस हर्ष के उपलक्ष्य में इसके साथ हुआ। अपनी माता को, जो बेचारी अब तक अनाथ होने के कारण जङ्गलों में रहती थी, राजधानी में लाकर उसने उसे सुखी किया।"

इस भिन्न कथा से हम इस निश्चय को पहुँचते हैं कि हरिचन्द्र ने उक्त पुराण से कथा नहीं ली। यह कथा जनश्रुतिरूप में वर्तमान थी, अथवा कवि हरिचन्द्र ने ही इस कथा की कल्पना की हो। इसके सिवा यह कथा कृष्णलीला से अधिक समानता रखती है। यदि यह जनश्रुति में प्रचलित रही है तो लोक-रुचि के अनुसार उसमें बहुत कुछ घटनायें तथा नाम परिवर्तित हुए होंगे। मालवा के गाँव गाँव में नल-दमयन्ती की कथा का प्रचार है। पर सुननेवाला ऐसा कोई भी नाम या ठीक घटना न पायगा जिससे यह कह सके कि नल-दमयन्ती की ही यह कथा है। उसमें मालवीय ग्राम्य भाव का अत्यधिक सम्मेलन होगया है। कहने का मतलब यह कि जनश्रुतिरूप में आने पर कथाओं में बहुत हेर-फेर हो जाता है। उसी जनश्रुति के आधार पर, सम्भव है, दोनों ने अपने अपने ग्रन्थों में यथाश्रुत हेर-फेर के साथ लिखा हो अथवा हरिचन्द्र के उक्त ग्रन्थ से कुछ संशोधन कर उत्तर-पुराण-कर्ता ने ले लिया हो।

उपर्युक्त कथा के आधार पर एक और जैन कवि के दो ग्रन्थ मिलते हैं। गद्यचिन्तामणि तथा क्षत्रचूड़ामणि। लोगों का यह सन्देह करना स्वाभाविक है कि शायद "वादीभ" से ही यह कथा हरिचन्द्र को प्राप्त हुई हो। इसके निराकरण में हमको यही कहना है कि राजकेशरी वर्मा—उपाधिधारी राजाकुलोत्तुङ्ग के राज्य-काल में सेक्किलर (तामीलकवि) ने "पिरियापुराणम्" ग्रन्थ बनाया है। उसमें "तिरुत्तकदेवर" कवि-कृत "जीवक-

चिन्तामणि" का कुछ ज़िक्र हुआ है। तिरुत्तकदेवर अपने 'जीवन-चिन्तामणि' में लिखता है कि 'वादीभ' के द्वारा प्रारम्भ किये हुए इस ग्रन्थ के शेष भाग को हमने पूरा किया। इस नरेश का समय ग्यारहवीं ईसवी शताब्दी का उत्तरार्द्ध निश्चित है। अतः वादीभ का यही समय है। इसके अतिरिक्त हरिचन्द्र के कई पद्यों को वादीभ ने अपने ग्रन्थ मे अर्थतः स्थान दिया है, इससे भी हरिचन्द्र के बाद यही वादीभ सिद्ध होता है। अतएव उक्त सन्देह कि हरिचन्द्र ने उससे कथा ली हो, निर्मूल है, किन्तु हरिचन्द्र से उसने ली है, यह सयौक्तिक होने से मान्य है।

हरिचन्द्र के दोनों ग्रन्थों में कालिदास, माघ, भर्तृहरि के ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट मालूम होता है। इन कवियों के भावों का तथा शब्द-रचना के चित्र हरिचन्द्र के मानस-पटल पर इस तरह चित्रित हो गये थे कि कहीं कहीं शब्द तथा अर्थ भी वही के वही आ गये हैं। माघ की कृति के प्रभाव से यह सन्देह लोगों को हो सकता है कि दसवीं या ग्यारहवीं शताब्दी के माघ का, जैसा कि कुछ लोगों ने माघ का समय बतलाया है, इस पर प्रभाव पड़ा है तो हरिचन्द्र भी तदनन्तर के होंगे। इस विषय मे मैं कह देना चाहता हूँ कि काश्मीर के आनन्दवर्धनाचार्य ने, जो नवीं शताब्दी के उत्तरकाल में निश्चितरूप से वर्तमान थे, अपने ध्वन्यालोक में माघ के कई पद्यों को (५।२६, ३।५३, २।११२) उद्धृत किया है, जिससे माघ का छठी शताब्दी के मध्य-भाग में होना सर्वथा सिद्ध है। यहा अधिक लिखना असम्भव है।

हरिचन्द्र ने अपने "धर्मशर्माभ्युदय" के अन्त में बतलाया है कि मैं कायस्थ-वंश का हूँ। मेरे पिता का नाम आर्द्रदेव तथा माता का नाम रथ्या है। मालूम होता है, उनका वंश लक्ष्मी-सम्पन्न था। किसी राजा के आश्रय में उनकी वृत्ति नहीं थी। यह बात 'हस्तावलम्बनमवाप्य यमुल्लसन्ती वृद्धापि न स्खलति दुर्गपथेषु लक्ष्मीः" उनके इस वाक्य से भासित होती है। मालूम होता है कि उनके माता-पिता जैन नहीं थे। वे स्वयं व्यक्तिगत रूप से थे। अपने वंश तथा माता-पिता की प्रशंसा उन्होंने लक्ष्मी तथा न्यायनिपुणता आदि की दृष्टि से तो की है, परन्तु धर्म या सदाचार की दृष्टि से कुछ नहीं कहा है। अपनी प्रशंसा में "अर्हत्पदाम्भोरुहचञ्चरीक" कहा है, अर्थात् 'जिनेन्द्र के चरण-कमल का रसिक भ्रमर मैं हरिचन्द्र' से वैश्यों का प्रभाव उन पर अधिक मालूम होता है। सम्भव है, उनके वंश की स्वतन्त्र वृत्ति व्यापार ही रही हो। जैन-धर्म राजाओं के आश्रय में बहुत थोड़ा रहा है। अधिकतर यह वैश्य-जाति में ही स्थायी रहा है। अतएव हरिचन्द्र का वैश्यभावानुराग उचित ही है। इस कथन के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण हैं। उनमें एक यह है। हरिचन्द्र ने अपने नायक 'जीवनधर' का क्षत्रिय होते हुए भी दो वैश्य-पुत्रियों के साथ धर्मानुसार ब्याह कराया है। उनका पालन भी एक वैश्य के द्वारा कराया है। पुस्तक के दो हिस्सों से अधिक भाग में वैश्यों के महत्त्व का ही वर्णन किया गया है।

मामा की लड़की से जीवन्धर का विवाह कराया है। यह द्राक्षिणात्य प्रथा है। उत्तर-भारत में यह कभी नहीं प्रचलित हुई। इस प्रथा का श्रीमाधवाचार्य जी ने भी अपने "जैमिनीय न्यायमाला" मे उल्लेख कर इसे श्रुति-स्मृति के विरुद्ध बतलाया है और खण्डन किया है। दक्षिण-भारत की यह बहुत पुरानी प्रथा है और आज भी वहाँ प्रचलित है। इससे हरिचन्द्र दक्षिण भारतीय मालूम होते है। अस्तु।

दूसरा प्रमाण यह है। 'धर्मशर्माभ्युदय' में हरिचन्द्र ने लिखा है कि एक राजा अपने दरबार में भिन्न-भिन्न देशों के कवियों की कविता सुन रहा था। पर और किसी देश के कवि के काव्य पर वह उतना नहीं रीझा, जितना कि दाक्षिणात्य कवियों की कविता पर। इस दाक्षिणात्य कवि के स्नेह-विशेष का कारण केवल कवि का देशाभिमान मालूम होता है। वह पद्य यह है—

दाक्षिणात्यकविचक्रवर्तिनां हृच्चमत्कृतिगुणाभिरुक्तिभिः।
पूरितश्रुतिशिरो विघूर्णयन्नेतुमन्तरिव तद्रसान्तरम्॥

धर्म० ५।१३

इसमें दाक्षिणात्य कवियों की उक्ति को बहुत चमत्कारी तथा मधुर बतलाया है। राजा उसके रस का आस्वादन कर रहा है। इस देशाभिमान से हरिचन्द्र दक्षिण भारत के ही

सिद्ध होते हैं। मालूम होता है, उस समय भारत में पाँच राज्य बलवान् थे। हरिचन्द्र ने उन राज्यों का इस क्रम से वर्णन किया है—मालव, मगध, अङ्ग, कलिङ्ग और पाण्ड्य। मालव को प्रथम पद दिया है। इससे प्रतीत होता है, मालव-राज्य उस समय भी बलवान् था। कम से कम दक्षिण-भारत पर उसका आतङ्क अच्छी तरह से छाया हुआ था। यह गुप्त-राज्य का अन्तिम समय ज्ञात होता है। हरिचन्द्र के वर्णन से दक्षिण में पाण्ड्य-राज्य की अच्छी श्रीवृद्धि उस समय मालूम होती है। पाण्ड्य-राज्य के वर्णन में हरिचन्द्र के निम्नलिखित पद्यों से यह बात स्पष्ट है।

लीलाचलत्कुण्डलमण्डितास्यः पाण्ड्योऽयमुड्डाभरहेमकान्तिः।
आभाति शृंगोभयपक्षसर्पत्सूर्येन्दुरुच्चैरिव काञ्चनाद्रिः॥
निर्मूलमुन्मूल्य महीधराणां वंशानशेषानपि विक्रमेण।
तापापनोदार्थमसौ धरित्र्यामेकातपत्रं विदधे स्वराज्यम्॥
अनेन कोदण्डसखेन तीक्ष्णैर्बाणैरसंख्यैः सपदि क्षताङ्गः।
अभाजनं वीररसस्य चक्रे को वा न संख्येषु विपक्षवीरः॥

(धर्म० सर्ग १७ श्लो० ५८, ५९, ६०)

इन श्लोकों में बतलाया है कि पाण्ड्य-वंशज नरेश का दक्षिण में एकच्छत्र राज्य था। कोई भी राजा उसका सामना नहीं कर सकता था। मालूम होता है, यह नरेश अरिकेशरी-मारवर्मा है। बलवान् केल-राज्य को परास्त कर इसने अपने राज्य को अच्छी तरह से बढ़ाया था। मदुरा इसकी राजधानी थी। इस कवि का जो समय हमने पूर्व में निश्चित किया है वही इस नरेश का भी राज्यकाल है। यह दक्षिण के पाण्ड्य-वंशज के इतिहास के अवलोकन से ज्ञात होगा। यह राजा जैन नहीं था। इसलिए कवि अपनी पतिंवरा राजकुमारी से उसका वरण नहीं करता है। उसके दुस्सह प्रताप के प्रलोभन से राजकुमारी उसकी तरफ़ आकृष्ट हुई। और कोई दोष भी उसमें नहीं बतला सकी। इससे कवि हरिचन्द्र का अपने स्वदेशीय राजा के प्रति प्रेम झलकता है। पर कवि जैनी है, राजा के शैव होने से राजकुमारी के हृदय में यह विचार उत्पन्न कराता है कि ये सब राजे जिनधर्म-बाह्य हैं इनको वरना उचित नहीं है।

महीभुजो ये जिनधर्मबाह्याः सम्यक्त्ववृत्त्येव तया विमुक्ताः।

(धर्म० १७।६४)

"अर्थात् अजैन राजे जैसे सम्यक् बुद्धि से शून्य थे, वैसे ही उस राजकुमारी के स्वयंवर से भी शून्य रह गये। इस उक्ति से भी हरिचन्द्र जैन और दक्षिण-देशवासी सिद्ध होते हैं।

किसी दूसरे लेख में हम इस महाकवि की चमत्कार-पूर्ण रचना का रसास्वादन पाठकों को करायेंगे।

बदला

[श्रीयुत वर्मा]

जिस दिन चिक की ओट में खड़ी हुई प्रेमलता अपना सिर चिक के बाहर निकाल कर भैरवप्रसादजी के सुन्दर सबल शरीर को देख रही थी और एकाएक भैरवप्रसादजी ने लौट कर उस खिड़की की ओर दृष्टिपात कर दिया था—वह दिन उन दोनों को कभी नहीं भूला। उसी दिन पहले-पहल उन दोनों ने लज्जापूर्वक अपनी अपनी हार स्वीकार की और उसी दिन उन दोनों ने सगर्व अपनी विजय पर मन ही मन हर्षनाद किया।

उस समय दोनों ने एक दूसरे के सम्बन्ध में और कुछ भी जानना नहीं चाहा। किन्तु दूसरे दिन जब भैरव बाबू अपने एक नौकर के साथ एक ऐसी गली से निकले, जहाँ से उस मकान का कुछ हिस्सा दिखलाई देता था, तब एकाएक नौकर से पूछ बैठे—वह किसका घर है?

नौकर ने कहा—सरकार, श्याम बाबू का घर यही है। उन्हें बुला लाऊँ क्या ?

भैरवप्रसादजी ने कहा — नहीं, अभी रहने दे।

उनके मुख पर पसीने की बूँदें दिखलाई देने लगी थीं ! वे तुरन्त सड़क पर आकर अपनी मोटर में बैठ गये और ड्राइवर को कोठी पर वापिस चलने का हुक्म दिया।

इधर प्रेमलता उस रात्रि अपने पति के लिए चिल्ला पड़ी—आओ, आओ, मुझे बचा लो।

किन्तु उसका पति नहीं आवेगा, यह वह जानती थी।

दूसरे दिन वह दिन भर उस खिड़की के पास नहीं गई। दोपहर में मन की बेचैनी से वह रो उठी।

उस रात्रि को भी उसका पति बाहर ही रहा !

तीसरे दिन भैरव बाबू ने अकेले उधर आकर चारों ओर एक बार अच्छी तरह देखकर प्रेमलता के दरवाज़े पर आकर कहा—एक ख़त है।

परन्तु उनकी आवाज़ और चिट्ठीरसा की आवाज़ में बहुत अन्तर था।

वे चोर से भी अधिक भयभीत हो रहे थे, कोई न कोई उनकी इस नीचता को देख रहा है, यही उनका मन बार बार कह रहा था। पत्र भीतर फेंक कर वे एक साँस में ही सड़क पर जा पहुँचे और वहाँ से सीधे अपनी कोठी पर चले गये।

प्रेमलता ने भैरव बाबू की आवाज़ इसके पहले कभी न सुनी थी, पर उसे जान पड़ा, मानों यह साधारण आवाज़ नहीं है। डगमग पैर रखते वहाँ आकर काँपते हुए हाथ से उसने उस लिफ़ाफ़े को उठा लिया। एक बार चाहा कि पत्र-सहित उसके टुकड़े टुकड़े करके फेंक दे किन्तु न जाने क्यों किवाड़ी बन्द कर भीतर जा चारपाई पर बैठ सम्पूर्ण शरीर को शाल से ढक कर उस लिफ़ाफ़े को उसने खोला और तब सहसा उसके भीतर रक्खे हुए सुगन्धित लेटरपेपर को दूर फेंक दिया।

वहाँ से भी वह पढ़ा जा सकता था। उधर दृष्टि डालते ही प्रेमलता ने देखा स्पष्ट अक्षरों में सुन्दर ढङ्ग से लिखा हुआ है—

'दीपावली की रात्रि में मेरे यहाँ उत्सव होगा। मैं श्याम बाबू को सपरिवार आने के लिए निमन्त्रित करूँगा। रात्रि को ठीक बारह बजे भेंट होगी। महालक्ष्मी की पूजा उसी समय होती है। —मधुप,

'मधुप' असली नाम नहीं, यह प्रेमलता ने समझ लिया किन्तु इस समय वह असली से भी बढ़कर हो रहा है इसमें उसे सन्देह नहीं था।

उसने एक बार उस पत्र को फिर पढ़ा—तब उठकर अपने आप कहा—महालक्ष्मी की ही पूजा होगी। मेरे रुधिर और मधुप के रुधिर से महालक्ष्मी की पूजा होगी। मैं कुलकलङ्किनी नारी की भाँति अपने पति से बदला कैसे ले सकती हूँ ? मैं महालक्ष्मी की सेविका की भाँति ही बदला लूँगी।

तब वह उसी समय भीतर जाकर एक लम्बे चाक़ू को हाथ में ले देखने लगी।

उस रात्रि उसके पति श्याम बाबू ने घर आकर कहा—

इस दफ़े दिवाली के दिन तुम्हे भी भैरव बाबू के घर चलना होगा। इस बार बहुत ज़ोर-शोर से लक्ष्मी-पूजा होगी। अभी से उन्होने निमन्त्रण-पत्र दे दिया है।

'किसने ? भैरव बाबू ने ?'

'हाँ, इतना चौंकती क्यों हो ?'

'कहाँ है निमन्त्रण-पत्र ? देखूँ तो।'

श्याम बाबू ने जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर प्रेमलता के हाथ में दे दिया।

लिफ़ाफ़े पर दृष्टि डालते ही, बिना निमन्त्रण-पत्र उसमें से निकाले, प्रेमलता ने दीवाल पकड़ कर कहा—क्या ये ही वे भैरव बाबू हैं जिनका सारे शहर में इतना बड़ा नाम है ? ये ही दीन-दुखियों के बड़े हितैषी समझे जाते है ?

श्याम ने कहा—समझे क्या जाते हैं, वे है ही ऐसे। हम लोगों पर भी तो उनका उपकार कुछ कम नहीं है ?

प्रेमलता ने जल कर कहा—हम लोगों क्यों कहते हो ? तुम पर ही होगा। रात रात भर बाहर पड़े रहना शायद उन्होंने ही तुम्हें सिखाया है।

श्याम बाबू गर्ज कर बोले—क्या बकती है ? भैरव बाबू के लिए ऐसी बात ? लाखों धनवानों में कोई एक उनका-सा सच्चरित्र होगा। अरे ! वे न होते तो अब तक तू भूखों मर जाती ! मैं अपनी आमदनी का एक पैसा भी तुझे नहीं देता, क्या यह मालूम नहीं है ?

प्रेमलता ने भी उग्र स्वर से कहा—मालूम क्यों न होगा? जिसका पति अपनी आमदनी का एक भी पैसा अपनी स्त्री को न देकर दूसरे के रुपयों से अपनी स्त्री की गुज़र करके उस पर गर्व करेगा और उपकार मानेगा वह हतभागिनी यह जानेगी क्यों नहीं? पर मैं यह बताये देती हूँ कि तुम चाहे जितना उपकार मानो मुझमें उपकार का भार ढोने की शक्ति नहीं है। मैं भैरव बाबू के यहाँ कदापि न जाऊँगी।

श्याम बाबू ने और भी क्रुद्ध होकर कहा—मैंने क्या तुम्हारी इच्छा-अनिच्छा वहाँ चलने के विषय में जानना चाहा है? तुम्हें यह अधिकार, इतनी स्वतन्त्रता, किसने दी है? मैं कहता हूँ, वहाँ चलना होगा—बस।

प्रेमलता—मैं कहती हूँ मैं वहाँ नहीं जाऊँगी—बस।

इतना कह वह तेज़ी के साथ उठकर दूसरे कमरे में चली गई और भीतर से उसे बन्द कर फ़र्श पर पड़ रही। उसका अपमान आर्त-हृदय से ज्वालापूर्ण भाफ उठ उठ कर आँखों की राह पानी बन बन कर बरसने लगी!

श्याम बाबू तुरन्त बाहर चले गये।

दीपावली के दिन ऐन दोपहर में भैरव बाबू ने आकर दरवाज़ा खटखटाया।

प्रेमलता ने किवाड़े की दराज़ से बाहर झांका, तब भीतर जाकर वही चाकू हाथ में ले उसका फल खोल उसे अपनी टेंट में खोंस लिया। इसके बाद फिर दरवाज़े के पास आ, बिना उसे खोले, बोली—कहिए।

भैरव बाबू ने कहा—यहाँ से क्या कहूँ—मैं अपना—

प्रेमलता ने कहा—आप यहाँ से तुरन्त चले जाइए, यही आपके और मेरे लिए अच्छा होगा। मैं यह सोच भी न सकती थी कि आप इतने पतित, इतने अधम, इतने अधिक पापात्मा हैं। धर्म और उपकार की शाल ओढ़ कर जो पाप में प्रवृत्त होता है उसका पतन सबसे बढ़ा-चढ़ा है। भीतर आने की इच्छा हो तो मैं एक हाथ में चाकू लिये खड़ी हूँ, दूसरे हाथ से किवाड़ा खोलकर आपका चाकू से स्वागत कर सकती हूँ!

उसकी आवाज़ एक-दम विकृत हो गई थी!

भैरव ने कहा—आप यह कैसे कह सकती हैं कि मैं किस बुरे उद्देश से यहाँ आया हूँ? किवाड़ खोल दीजिए परमात्मा साक्षी है, आज से अपनी बहिन के समान मैं आपको मानूँगा।

प्रेमलता ने कहा—और आधी रात में महालक्ष्मी की पूजा कौन करेगा? सोचा था वहीं तुम्हारे रुधिर से देवी को सदैव के लिए तृप्त कर दूँगी—दुखी स्त्री की कमज़ोरी से तुम लाभ उठाना चाहते हो—नारकी—

भैरव ने रोते हुए कहा—आप मुझे अधिक लज्जित न करें। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ—पर यही मेरा पहला पाप है। मैं अपने बारे में इतनी बातें सुन नहीं सकता। मुझे यही घमंड था कि श्याम बाबू का साथी रहते हुए भी मैं स्वयं कभी गिर नहीं सकता। मेरा वह घमंड चकनाचूर हो गया!

'तब यहाँ क्यों खड़े हो?'

'मैं तुम्हारे पति को सुधार सकता हूँ।

'तो आओ सुधारो—जिसने बिगाड़ा है वह अगर सुधारने की बात कहे तो मैं तो इसे भी उसका व्यर्थ अभिमान ही समझती हूँ।'

'सत्य जानो' मैंने श्याम बाबू को नहीं बिगाड़ा—कभी किसी को बिगाड़ना नहीं चाहा, देखो, तुम्हारी सहायता की मुझे आवश्यकता होगी। इसके बाद बहुत धीरे धीरे उन्होंने न जाने क्या क्या कहा। तब प्रेमलता के भाई को जो ला-कालेज का विद्यार्थी था लिवाने चले गये!

सायङ्काल श्याम बाबू ने झूमते-झामते घर आकर कहा—तैयार हो ना! हा! हा! हा!

प्रेमलता ने घृणा से मुँह फेर कर उत्तर दिया—

तैयार हो रही हूँ। तुम जाकर मोटर तो लाओ।

किन्तु मोटर लेने कौन जाता! श्याम बाबू थोड़ी ही देर में फ़र्श पर लेट गये।

भैरव बाबू के नौकर ने आकर श्याम बाबू के मुँह पर गुलाबजल छिड़क कर जब उन्हें बातचीत करने लायक़ बना लिया तब कहा—मोटर खड़ी है। चलिए।

'चलो भाई, तैयार हो गईं?'

कुछ उत्तर न मिला।

श्याम ने फिर आवाज़ दी।

उत्तर नदारद।

झल्लाकर वह दूसरे कमरे के भीतर गया। वहाँ से निकल सब जगह देख डाली। प्रेमलता कहीं नहीं थी। उसकी खाट पर नज़र पड़ते ही श्याम बाबू ने देखा काग़ज़ की एक चिट पर लिखा है—

मैं कलकत्ते जा रही हूँ। तुम अपनी प्रियतमा के साथ सानन्द अपना जीवन व्यतीत कर सको, यही मेरी हार्दिक इच्छा और अभिलाषा है।

इसे पढ़ते ही श्याम बाबू की विचित्र दशा हो गई। सामने मेज़ पर कई किताबें सजी हुई थीं। उसने मेज़ को ज़ोर से धक्का देकर पटक दिया। किताबें इधर-उधर गिर पड़ीं। धमधम करता हुआ वह नीचे उतरा। तब तक वह सैकड़ों बार बदला-बदला कह चुका था। सारे मकान में एक ही स्वर गूँज उठा था—बदला।

बाहर आकर वह मोटर पर बैठ कर ड्राइवर से कहा—जल्दी स्टेशन चलो।

ड्राइवर बोला—अब स्टेशन कैसे चल सकता हूँ? अभी और लोगों को लिवा लाने के लिए जाना है—सरकार—

श्याम बाबू ने गर्ज कर कहा—सरकार कौन है? स्टेशन चलो, नहीं तो अभी तुम्हारा सिर फोड़ डालूँगा! सारा बदला तुझसे ही लूँगा।

लाचार ड्राइवर स्टेशन की ओर चला। थोड़ी दूर जाने पर उधर से एक मोटर पर भैरव बाबू आते दिखाई पड़े। ड्राइवर बहुत खुश हुआ। उसने मोटर रोककर कहा—देखिए सरकार, मुझे दोष न दीजिएगा, मुझे बाबू साहब अब स्टेशन लिवाये जा रहे हैं।

भैरव ने पूछा—स्टेशन क्यों जा रहे हो श्याम?

श्याम ने कहा—यह लाटकर बताऊँगा। जल्दी चलो।

भैरव ने हँसकर कहा—तुम जिसके लिए स्टेशन जा रहे हो, बदला-बदला। वह वहाँ नहीं, मेरे यहाँ है। वहीं बदला मिलेगा!

श्याम—तुम्हारे यहाँ? तब तुरन्त अपने घर चलो।

यह कह कर श्याम उसी मोटर में जा बैठा।

अपने घर पहुँच कर भैरव बाबू ने श्यामसुन्दरजी को अपने मकान के बाहरी कमरे में ले जाकर खड़ा कर दिया—वहाँ गुलबदन बैठी हुई थी!

भैरव ने कहा—देखो तो, ये तुम्हारे लिए स्टेशन जा रहे थे।

शायद समझते थे कि तुम आज ही बाहर जानेवाली हो।

गुलबदन ने कहा—मैं तो आज बाहर जानेवाली नहीं हूँ।

भैरव ने आश्चर्य का भाव दिखा कर कहा—अरे! तब ये इस तरह व्याकुलता के साथ स्टेशन क्यों जा रहे थे?

गुलबदन ने मधुर हास्य के साथ पूछा—क्यों बाबू जी, आप मेरे लिए स्टेशन जा रहे थे? यह तो ठीक नहीं।

इस हँसी ने सदैव श्याम बाबू पर जादू का सा काम किया था, किन्तु आज उसका वह प्रभाव कहाँ गया?

श्याम बाबू ने उसी मनमोहिनी गुलबदन के गाल पर पागल की भाँति एक ज़ोरदार थप्पड़ क्यों रसीद कर दिया और फिर बाघ की तरह झल्ला करके भैरव बाबू की गर्दन क्यों पकड़ ली?

भैरव बाबू ने बात की बात में अपनी गर्दन छुड़ा ली। श्याम के दोनों हाथ तेज़ी से पकड़ कर उन्होंने कहा—क्या आप पागल हो गये हैं?

एकाएक श्याम बाबू बेहोश होकर कालीन पर गिर पड़े!

जब श्याम बाबू की आँख खुली, उन्होंने देखा, उनकी स्त्री प्रेमलता उनके पैर के पास बैठी हुई उनकी ओर एकटक देख रही है। श्याम बाबू को अपनी आँख पर विश्वास न हुआ, समझे कि वे अब भी नशे में हैं, आँखों को मलने लगे।

प्रेमलता ने रुंधे हुए कण्ठ से कहा—मुझे क्षमा नहीं कर सकते क्या?

तब श्यामसुन्दर उठ कर बैठ गये, प्रेमलता का हाथ ज़ोर से पकड़ करके हा किसके साथ कलकत्ते जा रही थी।

प्रेमलता—किसी के नहीं। कलकत्ते में मेरा कौन है?

श्यामसुन्दर ने कहा—तब कलकत्ते जाने की बात क्यों लिखी थी?

प्रेमलता—मैंने नहीं लिखी, वह तो गुलबदन का लिखा है। वेही कलकत्ते जा रही हैं। मेरे कल्याण के

लिए भैया भैरव को अपनी प्रतिज्ञा तोड़ कर वेश्या से बातें करनी पड़ीं और उसे अपने घर तक लाना पड़ा। अब वह कलकत्ते जाने को तैयार है।

श्यामसुन्दर—क्यों?

प्रेमलता—भैरव भइया ने उन्हें वहाँ जाकर रहने के लिए काफ़ी रुपये दिये हैं।

श्यामसुन्दर ने गले को साफ़ कर कहा—मैंने तो ईश्वर से कभी कुछ नहीं चाहा। आज मेरी उससे इतनी ही प्रार्थना है कि गुलबदन ने जिस इच्छा, जिस अभिलाषा को अपने पत्र में प्रकट किया है वह सफल हो।

इसी समय भैरव बाबू ने प्रेमलता के भाई के साथ वहाँ आकर कहा—बारह बज रहे हैं। महालक्ष्मी की सच्ची पूजा होने से आज की यह दीपावली सार्थक हुई। कैसा अच्छा हो, यदि यह सब गिरे हुए लोगों को इसी तरह बदल दे।

ओस

[श्रीयुत देवीप्रसाद गुप्त 'कुसुमाकर', बी० ए०, एल-एल० बी०]

उपवन भर में प्रातसमय जो, बूँदें झलक रही हैं।
वे समीर के धक्के खाकर, भू पर ढलक रही हैं।
अभी अभी मन लुभा रहे थे, जो मोती के दाने।
वे ही गिरने पर आते हैं, तनिक नहीं पहचाने।
जीवन की घड़ियाँ थोड़ी थीं, किन्तु सुखी जीवन था।
गोद खेलते बीता इनका, अब तक ही बचपन था।
खेल खेल कर जो जी भर कर, मन में नहीं छकी थीं।
बचपन की किल्लोलें पूरी, हो भी नहीं सकी थीं।
प्रातसमीर हृदय में जीवन, सब ही के भरता है।
किन्तु वही हँस हँस कर इनके, प्राणों को हरता है।
हे भगवन्! यह कैसी लीला, समझ नहीं आती है।
कभी आपकी अनुकम्पा ही, घातक बन जाती है।

लखनऊ की पशुशाला

[श्रीयुत 'द्विरेफ']

महाकवि कालिदास ने बहुत ठीक कहा है—नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण। कभी किसी की दशा एकसी नहीं रहती। वह सदा ही बदला करती है। कभी वह उच्च हो जाती है, कभी नीच। नीच उच्चता को प्राप्त हो जाते हैं, उच्च नीचता को। यह परिवर्तन सर्वसाधारण है। मनुष्यों के विषय में भी यह चरितार्थ है और नगरों आदि के विषय मे भी।

नवाब वज़ीरों के समय में लखनऊ ख़ूब तरक़्क़ी पर था। उनकी नवाबी उठ जाने पर उसकी समृद्धि भी धीरे धीरे खिसकने लगी। कुछ समय में वहां की इमारतों, महलों, बाज़ारों और बाग़ीचों की बहुत ही हीन दशा हो गई। सौभाग्य से उसके दिन फिरे। श्रीमान् बटलर साहब वहां के डिपुटी कमिश्नर नियत हुए। उन्हें वह नगर बहुत पसन्द आया। उन्होंने उसकी समृद्धि बढ़ाने की ठानी। वह बढ़ने लगी। वहाँ से उनकी बदली हो जाने पर भी वे उसे नहीं भूले। यथासम्भव, दूर रह कर भी, वे उसकी उन्नति की चेष्टा करते रहे। जब वे इन प्रान्तों के गवर्नर नियत हुए तब तो इस उन्नति का तूफ़ान सा आ गया। तरह तरह से इस पुराने नगर की शोभा बढ़ाई जाने लगी। कितने ही सरकारी दफ़्तर भी इलाहाबाद से वहाँ उठ गये। कौंसिल-भवन भी वहीं बना। बेचारा बूढ़ा प्रयाग मुँह ताकते ही रह गया। सुनते हैं, सर हरकर्ट बटलर अवध के तअल्लुक़ेदारों के बड़े मित्र अथवा हित-चिन्तक हैं। ब्रह्मदेश को बदल जाने पर भी छुट्टियों में

वे यहां आकर उनको अनुगृहीत करते रहे हैं। लखनऊ में जो विश्वविद्यालय स्थापित हुआ है वह भी, शायद, बटलर साहब ही के कृपा-कटाक्ष का फल है। उसकी स्थापना के लिए उनके प्रेमी या कृपापात्र तअल्लुकेदारों ने जी खोल कर हज़ारों रुपया चन्दे में दिया है।

सर हरकर्ट बटलर ने इस प्रान्त से जाते जाते लखनऊ में एक बात की कसर रह गई देखी। यद्यपि उसे उन्होंने अनेक प्रकार से शोभा-सम्पन्न और समृद्ध कर दिया था, तथापि उस एक बात की कमी उन्हें फिर भी बहुत खटकी। वह कमी थी एक पशुशाला (Zoological Garden) का अभाव। इसे भी, जाते जाते, उन्होंने दूर कर देना चाहा। तअल्लुकेदार तो सदा ही से उनके आज्ञापालक थे। उन्होंने इस काम के लिए भी बड़े बड़े चन्दे लिखे। मालूम नहीं, उन्होंने यह काम मन से किया या बे-मन। पर किसी तरह सही, किया उन्होंने ज़रूर। और करते क्यों नहीं, पशुशाला को गवर्नर साहब कुछ अपनी विलायत उठा ले जाने के लिए तो खोलते नहीं थे। यह काम तो वे उदार हृदय तअल्लुकेदारों के प्यारे नगर लखनऊ की शोभा बढ़ाने के लिए कर रहे थे। याद रहे, यह लखनऊ वही शहर है जहाँ के नवाब वज़ीरों के दरबार में तअल्लुकेदारों के पूर्वज बड़े अदब से कोर्निश बजा लाने के लिए हाज़िर हुआ करते थे और जहाँ उनकी समवेत महासभा, ब्रिटिश इंडियन असोसिएशन (British India Association), की आलीशान इमारत खड़ी है और उसके भीतर उसका दफ़्तर भी विराजमान है।

अन्ततो गत्वा पशुशाला खुल ही गई। साहब तो इस देश से चले गये। पर यह शाला—विश्वविद्यालय और कौंसिल-भवन के सदृश—यहीं रह गई और दिन पर दिन बढ़ती हुई गवर्नर साहब की बढ़ती मना रही है। ये विचार हमें इस पशुशाला की पिछली वार्षिक रिपोर्ट पढ़ कर व्यक्त करने पड़े हैं। रिपोर्ट १९२७ ईसवी की है और प्रान्तिक गवर्नमेंट के गैज़ट में प्रकाशित हुई है। वह कासिल्स साहब की लिखी हुई है।

जो कारण हमने इसके खोले जाने के बताये उन्हें आप चाहें तो हमारे दिमाग़ की उपज समझिए। क्योंकि रिपोर्ट में शाला के खोले जाने का कारण प्रिंस आव् वेल्स की यादगार लिखा है। उस साल महाराजाधिराज (सम्राट्) के चिरञ्जीवी ज्येष्ठ राजकुमार, अर्थात् प्रिंस आव् वेल्स, इस देश में पधारे थे। उन्हीं की यादगार में यह शाला खोली गई थी। यह बात १९२१ ईसवी की है। अब तक तो इसका बालपन सा था। इसे स्थायित्व न प्राप्त हुआ था—यह बढ़कर पूर्णता को पहुँचने की चेष्टा ही में थी। पर अब इसकी वह चेष्टा सफल हो गई है और सारी विघ्न-बाधाओं को पार करके यह अपने पैरों खड़ी हुई दर्शकों को ज्ञान और मनोरञ्जन दान देने लगी है। उपर्युक्त रिपोर्ट के सरकारी वक्तव्य का भावार्थ कुछ कुछ इसी तरह का है—

इस पशु या जीव-जन्तुशाला में अनेक नभश्चर, जलचर और थलचर प्राणियों को स्थान दिया गया है। इसमें पक्षी भी हैं, चतुष्पाद पशु भी हैं और ऐसे भी प्राणी हैं जो जलचर होने पर भी कभी कभी थल में आ जाते हैं। गत वर्ष इसमें दो काम महत्त्व के हुए। एक तो जलचर पक्षियों के लिए एक अच्छा तालाब बनाया गया। उसके बीच में एक छोटे से टापू का भी निर्म्माण हुआ। तालाब के चारों तरफ़ घास, बाँस की कोठियाँ, पेड़-पौधे और झाड़ियाँ भी लगा दी गईं। पक्षिवर्ग उन्हीं में कलोलें किया करता है। जहाँगीराबाद के राजा साहब ने इस शाला को एक ऐसा जङ्गल दान किया है जो शेरों और बाघों के रहने के लिए है। वह इस तरह तैयार किया गया है कि जिनके रहने के लिए वह है वे उसे बनावटी न समझ कर क़ुदरती जङ्गल समझें और वहीं आनन्दपूर्वक मौज किया करें। इसमें भी कोने में एक तालाब है। उसके भी बीच में एक टापू है। यह इसलिए कि मृगराजों को पानी का कष्ट न उठाना पड़े।

टेहरी-नरेश की भी कृपा इस जीव-जन्तुशाला पर है। आप अपने ही ख़र्च से इसमें कांगरू इत्यादि कुछ विदेशी जीवों के लिए एक मकान और एक बाड़ा बनवा रहे हैं। इन अद्भुत जन्तुओं को कलकत्ते से मँगा देने का ख़र्च भी आप ही उठावेंगे। यह इमारत और स्थान सर हरकर्ट बटलर के नाम से प्रसिद्धि पावेगा; क्योंकि रिपोर्ट के लेखक के कथनानुसार उन्हीं की कृपा से इस शाला ने जन्म पाया है।

अभी कुछ ही समय पूर्व रामपुर के नवाब साहब ने भी, इस शाला में एक इमारत, मकान या भवन बनवा देने का वचन सर हरकर्ट बटलर को दिया है। रिपोर्ट-लेखक की इच्छा है कि इस वचन की पूर्त्ति में नवाब साहब भल्लूकों के लिए एक बाड़ा और आराम से सोने तथा रहने के लिए कन्दरायें बनवा दें तो बड़ी अच्छी बात हो। शायद अभी इस शाला में इन चीज़ों की कमी है। उम्मेद है, नवाब साहब इस इच्छा की पूर्त्ति ज़रूर कर देंगे।

महाराजा साहब बनारस एक दिन यह शाला देखने आये थे। देखकर आप ख़ुश हुए और गवर्नर साहब से फ़रमाया कि मैं इसके लिए एक व्याघ्र-युग्म दान देने का श्रेय सम्पादन करूँगा। यह युग्म अब आ भी गया है। उसमें एक नर है, दूसरी मादा। इनका नामकरण भी होगया है। मादाजी को नाम मिला है—मुमताज़ महल और नरजी को शाहेजहाँ। इस नोट के लेखक को नामकरण का यह ढंग पसन्द नहीं। यदि कोई अपने किसी घरेलू जीव-जन्तुओं में से किसी का विक्टोरिया या मेरी और एडवर्ड या जार्ज नाम रक्खे तो नोट-लेखक उस पर हतक़इज़्ज़ती का दावा तो शायद न कर सके, पर एक कड़ी फटकार बताये बिना न रहे।

खैरीगढ़ की महारानी गैंड़े का एक बच्चा और बलरामपुर की रियासत ने "ड्यूक" नाम का एक शेर दे डालने की कृपा की है। राजा, राना, नवाब की तरह की "ड्यूक" एक आदर-सूचक पदवी है। अर्ल, बेरन, मारक्विस आदि भी इसी तरह की विलायती पदवियाँ हैं। वे बड़े बड़े लाटों को मिलती हैं। आशा है, कभी न कभी अन्यान्य पशु भी इस शाला में इन अवशिष्ट पदवियों के अधिकारी हो जायँगे।

हां, पाठकों से इस नोट का लेखक माफ़ी का ख़्वास्तगार है। उसने ऊपर एक भूल की है। कुत्तों, बिल्लियों और मृगाधिपों आदि के लिए नामी नामी राजों और महाराजों के नाम दिये जाने का उसने विरोध किया है। उसकी वह माफ़ी चाहता है। बात यह जान पड़ती है कि इस जन्तुशाला के अधिकारियों ने जीव-जन्तुओं को राज-पद देने का शायद ठेका या इजारा-सा ले रक्खा है। क्योंकि शाला में एक "एडवर्ड" नाम के व्याघ्रराज भी हैं। और जनाबेआली, अलेग्ज़ांडर (सिकन्दर) नाम के एक और अजीब से जानवर देवता भी हैं। एक मोती भी है। मगर रिपोर्ट में न कहीं जवाहर है, न हीरा। यह कमी भी पूरी हो जानी चाहिए।

ऊपर कई नरपालों और नवाबों आदि के उल्लेख से पाठकों पर यह बात प्रकट हुए बिना न रहेगी कि इस जन्तु-संग्रहालय पर उनकी कितनी कृपा और उससे कितना प्रेम है। सर हरकर्ट बटलर तो इसके जन्मदाता-मात्र है, पालक और पोषक इसके यही उदार-हृदय सज्जन है। इन्हीं लोगों पर कुछ बिगड़े दिल आदमी यह लाञ्छन लगाते है कि ये अपनी प्रजा का उत्पीड़न करते हैं—उन्हें प्रेम से नहीं पालते-पोसते। भला जो प्राणिवत्सल जन पशुओं और जीव-जन्तुओं तक को सुख-चैन से रखने के लिए हज़ारों रुपये ख़र्च करते हैं वे क्या नर-रूपधारी अपनी प्रजा का पीड़न कर सकते हैं? ऐसा कदापि सम्भव नहीं। क्योंकि वे तो नर-पाल या नृपाल हैं; पशुपाल थोड़े ही हैं।

राजे, महाराजे ही नहीं और भी अनेक लोग इस शाला के सहायक हैं। वे वहाँ सैर करने के लिए जाते हैं, पशु-पक्षियों के दर्शन करने जाते हैं, जीव-जन्तुओं को खिलाने-पिलाने जाते हैं और वहाँ से जन्मदाता, धनदाता, पशुदाता आदि जनों का जयजयकार करते हुए, शाम को, घड़ी रात बीते, घर वापस आते हैं। पशु-शाला लखनऊ स्टेशन के पासही, बहुत खुली हुई मौक़े की जगह में है।

इस संग्रहालय में कच्छ के समुद्र-तटवर्ती प्रान्त के निवासी दो जङ्गली गधे भी हैं। वे अपना जङ्गलीपन भूल सा गये हैं और अब टमटम में जोते जाते हैं। कुछ ख़ूँख़्वार जङ्गली कुत्ते भी इसमें हैं। वे पेड़ों पर भी चढ़ जाते हैं। इनके सिवा और भी सैकड़ों प्रकार के पशु, पक्षी, जीव-जन्तु इसमें हैं और हर साल नये नये आते जाते हैं। उन सबका परिचय पाने के लिए लखनऊ जाना और जन्तुशाला की स्वयं सैर करना चाहिए। यहाँ एक आध बाघ ऐसा भी है जो अपने रक्षकों से बेहद हिल गया है और उनके हाथ से खाना खाता है।

इस शाला में एक और भी बड़ी मनोरञ्जक और कौतूहल-वर्धक बात होनेवाली है। बावों और बाधिनियों के विवाह-संस्कार—नहीं नहीं गर्भाधान की रस्म अदा की जाने की तैयारियाँ हो रही हैं। पहले तो भावी दम्पतियों की जान-पहचान कराई जायगी। उनमें "कोर्टशिप" होगी; आधानस्थापना का शुभ मुहूर्त पीछे निश्चित होगा। इन गान्धर्व विवाहों की बदौलत, आशा है, अशोक और हर्ष, विक्रमादित्य और भोज तथा सीता, दमयन्ती, यशोधरा और द्रौपदी आदि को भी जन्म लेना पड़े।

नवाबों की नगरी लखनऊ की यह शाला बहुत रुपया ख़र्च कराती है। १९२७ ईसवी में इसे आमदनी तो हुई केवल ६३,६६० रुपये की और ख़र्च हुआ ८५,३८१ रुपया! सो कोई २२ हज़ार रुपये का घाटा रहा। जिसके सहायक अनेक कुबेर—अनेक धनाधिप—उसे भी घाटा! कितने अफ़सोस की बात है। दाल में कहीं कुछ काला तो नहीं?

इस शाला को चलतू रखने के लिए कुछ लोगों ने चन्दे लिखे हैं या लिखे थे। ऊपर जो आमदनी दिखाई गई है उसमें से चन्दे की रक़म केवल ४१,३७२ रुपये है। मिलना चाहिए था इससे बहुत ज़ियादह। पर नहीं मिला। साल हाल के भी चन्दे की रक़म कम आई और पिछले बक़ाये या बक़ायों में से भी केवल—केवल—३,०००) वसूल हुआ। तब जाकर कहीं वह ४१ हज़ार की रक़म पूरी हुई। कहीं यह तो नहीं हुआ कि चन्दा-दाता ख़ुशी से चन्दा न देना चाहते रहे हों; किसी के समझाने, बुझाने, सुलझाने और दबाने से फ़ेहरिस्त पर बड़ी बड़ी रक़में लिख दी हों; पर पीछे देने से हाथ खींच लिया हो या पास रुपया न होने के कारण दे ही न सके हों। बात कुछ कुछ ऐसी ही जान पड़ती है। ये चन्दे ६ वर्ष से भी अधिक हुआ, तब लिखे गये थे। इनमें से १ लाख ६१ हज़ार रुपये के क़रीब पाना बाक़ी है। रिपोर्ट में लिखा है कि एक बहुत बड़े तअल्लुक़ेदार साहब ने अपने चन्दे की क़िस्तें कर दी हैं जिन्हें वे यथासमय भुगता रहे हैं। पर दूसरे साहब अपने चन्दे के हिसाब में एक कौड़ी भी, सन् १९२७ में, नहीं दे सके।

ऊपर जो डेढ़ लाख से भी ऊपर की रक़म बतौर बक़ाये के बताई गई है वह सभी, जान पड़ता है, अवध के तअल्लुक़ेदारों ही से वाजिबुलअदा है। क्योंकि ४१ हज़ार के चन्दे की जो रक़म ऊपर उल्लिखित हुई वह सारी की सारी अवध ही के १० तअल्लुक़ेदारों से वसूल हुई है। रिपोर्ट के साथ एक नक़शा है। उसमें इन तअल्लुक़ेदारों के नाम और उनसे प्राप्त हुआ चन्दा दर्ज है। उनमें से कुछ नाम आदि नीचे दिये जाते हैं—

	रुपया
(१) जहांगीराबाद	३०,०००
(२) कसमण्डा	५,०००
(३) तिलोई	३,०००
(४) कुरवार	१,०००
(५) गौरा-कुशेठी	९४७
(६) कुर्री-सुदौली	५००

बाक़ी के तअल्लुक़ेदारों के दान की रक़में एक को छोड़कर ५०० रुपये से भी कम हैं। एक साहब ने तो सिर्फ़ ५० ही अदा कर पाये हैं। किस पर कितना बक़ाया है, इसका हिसाब रिपोर्ट में नहीं बताया गया। बता दिया जाता तो मामला साफ़ हो जाता।

बेचारे तअल्लुक़ेदार करें तो क्या करें। किस किसके लिए चन्दा दें। स्कूल के लिए दें, कालेज के लिए दें, विश्वविद्यालय के लिए दें, अस्पतालों के लिए दें, तालों के लिए दें—कहाँ तक दें। सलाह, मशविरा, इशारा न मानें तो नहीं बनता, मानें तो पास रुपया नहीं और है भी तो देने का दिल नहीं—

धर्म्म-सनेह उभय मति घेरी।
भै गति साँप छछूँदरि केरी॥

स्नेह, धर्म्म या आज्ञा के वशवर्ती होकर देने का वचन तो दे देते हैं; पीछे उसे उगलते नहीं बनता।

सभ्यता का प्रवाह

[श्रीयुत रघुवीरसिंह]

[आज भारत के सम्मुख एक महान् प्रश्न यह उपस्थित हुआ है कि उसे कौन सी सभ्यता अंगीकार करना चाहिए। क्या उसे अपनी प्राचीन सभ्यता को ही बनाये रखना चाहिए या उसमें नवीन स्थिति के अनुसार कुछ हेर-फेर की आवश्यकता है या बूढ़े भारत को चाहिए कि अपनी सभ्यता को एकबारगी त्याग कर पाश्चात्य सभ्यता को अंगीकार करे। इस समय भारत के हितैषी इन्हीं तीन विचार-धाराओं में बह रहे हैं, परन्तु इनमें आधे से ऊपर वे हैं जो अधिकांश या अल्पांश में पाश्चात्य सभ्यता को ग्रहण करने के पक्षपाती हैं। पाश्चात्य सभ्यता में क्या गुण-दोष हैं, यह सबको विदित है, परन्तु यह सभ्यता कहाँ तक सफल हुई है, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सका है। हां, यह स्पष्ट है कि पिछले विश्वव्यापी योरपीय युद्ध ने पाश्चात्य भौतिक सभ्यता को जड़ से हिला दिया है और योरप के कुछ विद्वान् अब यह विचार करने लगे हैं कि उनकी सभ्यता सफल नहीं हुई है। अतएव इससे पहले कि हम उसे ग्रहण करें, इसके सम्बन्ध में हमें स्वयं योरपीयों के ही मत को जान लेना चाहिए। यहां हम एक अँगरेज़ लेखक के लेख का भावानुवाद देते हैं। उससे पाठकों को मालूम होगा कि पाश्चात्य विद्वान् अपनी पाश्चात्य सभ्यता से कहाँ तक सन्तुष्ट हैं।—लेखक]

ब हम इस भौतिक संसार की ओर दृष्टि-पात करते हैं तब हमें एक विचित्र गति का अनुभव होता है। पृथ्वी घूम रही है, रेल और मोटर भी द्रुत वेग के साथ चले जा रहे हैं और मानव-समाज भी निरन्तर सभ्यता के प्रवाह में बहा जा रहा है। जब हम पृथ्वी की गति की ओर देखते हैं तब हमें मालूम होता है कि वह इस अनन्त आकाश में सूर्य के चारों ओर अपने निश्चित मार्ग पर घूमती चली जा रही है। मोटर को देखिए, उसका इंजिन ही चल रहा है, पर उसका ड्राइवर उसकी गति को ही नहीं निर्धारित करता है, किन्तु वह उसे किसी निश्चित दिशा में ले जा रहा है। रेलगाड़ी भी रात-दिन अपने निश्चित पथ पर दौड़ती चली जाती है। पर मानव-समाज की सभ्यता का प्रवाह किधर बह रहा है? उसकी गति रेलगाड़ी और मोटर की गति से बहुत ही भिन्न है। रेलगाड़ी ज़मीन पर, जहाज़ अगाध समुद्र के वक्षःस्थल पर और आकाश में वायुयान किसी निर्दिष्ट, निश्चित दिशा में वेग के साथ चला जाता है, पर मानव-समाज किसी ध्येय-विशेष की ओर नहीं अग्रसर हो रहा है। जैसे तलैया पर मच्छरों का समूह निष्प्रयोजन मँडराया करता है, उसी तरह मानव-सभ्यता का प्रवाह किसी अनिर्दिष्ट ध्येय की ओर बहा जा रहा है। मधुमक्खियाँ भी ध्येय-रहित एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ती रहती हैं, पर मनुष्य उनसे भी भिन्न है। मनुष्य उन्नति की ओर अग्रसर होता है, पर वह साथ ही साथ प्रतिदिन अपने आचार-विचार, रहन-सहन और अपनी भाषा तक बदलता जाता है। प्रश्न यह है कि क्या मानव-समाज उन्नति के पथ की ओर अग्रसर हो रहा है या वह पतन के उस भीषण कगार की ओर द्रुत वेग से जा रहा है, जहां से तुरन्त गिर कर वह पुनः अपनी प्रारम्भिक असभ्य दशा को प्राप्त होगा?

इससे पहले कि हम इस महान् प्रश्न का उत्तर देने का प्रयत्न करें। हम इस बात पर विचार करेंगे कि सभ्यता क्या है? एक बार जब यह प्रश्न किसी पन्द्रह वर्षीय बालक से किया गया तब उसने बड़ी आनाकानी तथा विचार के अनन्तर उत्तर दिया कि अस्वाभाविकता के विकास ही को सभ्यता कहते हैं। उत्तर बड़ा ही विचित्र, पर

विचारणीय है। किन्तु हमें इससे प्रयोजन नहीं है। आज-कल सभ्यता का अर्थ वह मानवीय इच्छा लिया जाता है जो निरन्तर मनुष्य को उन्नति की ओर ढकेलती रहती है। मनुष्य को अपनी दशा से कभी सन्तोष नहीं हुआ है; अपनी दशा को उन्नत करना ही उसका ध्येय रहा है। ज्योंही उसे शारीरिक बल प्राप्त हुआ, उसने अपने सुधार के लिए पशुओं पर हाथ साफ़ किया, उन्हें पाला और उनसे अपना काम निकाला। जब इससे भी उसे तृप्ति न हुई तब उसने स्टीम-इंजन का आविष्कार किया, जिससे उसने रेलगाड़ी खिंचवाई। आज-कल तो वह मोटर और वायुयान में बैठा घूमता है, तो भी आत्मदशा से सन्तोष नहीं है।

इस मानव-चंचलता तथा आत्म-दशा के प्रति असंतोष के फल-स्वरूप क्या क्या उन्नति हुई है, सो सारे संसार के सम्मुख है। मनुष्य के आदिम गुहा-निवासस्थानो का आधुनिक होटलो से मुक़ाबला कौन करेगा, जिनमे पानी के नल, बिजली की बत्तियां तथा पंखे आदि ऐश्वर्य की सब वस्तुएँ सुसज्जित हैं। मनुष्य के जीवन मे निरन्तर हेर-फेर, सुधार तथा उत्तरोत्तर उन्नति ही होती गई है। देखती हुई आँखों के रहते कोई मनुष्य पुनः अपनी प्राचीन असभ्य दशा को प्राप्त करने के लिए इच्छुक न होगा। पर आश्चर्य यह है कि इतने सुधारों तथा उन्नति के होने पर भी सन् १९२७ के हेमन्त-ऋतु में ब्रिटिश एसोसिएशन के सम्मुख एक विज्ञान-वेत्ता यह कह बैठा कि 'दक्षिण-अफ़्रीका का एक असभ्य योरप के सभ्य पुरुष से बहुत ज़्यादा सुखी है (अर्थात् उसका मानव-जीवन अधिक सफल हुआ है।)

इस कथन का अर्थ क्या है? क्या इस कथन से उसका यह मतलब है कि हम अपनी सभ्यता के आविष्कारों को नष्ट कर सुख की साँस लेकर प्रसन्नतापूर्वक पुनः स्वाभाविक, सरल, असभ्य जीवन को अंगीकार कर लें? नहीं। वह विज्ञान-वेत्ता मूर्ख नहीं है, वह तो विद्वान्, दूरदर्शी, गम्भीर-विचार-शील पुरुष है और सभ्यता की उसने जो समालोचना की है उसका मतलब केवल इतना ही है कि हम अपने जीवन के कुछ प्रश्नों के हल करने में बहुत से कठिन प्रश्न उठा रहे हैं। हम जीवन को सुख से बिताने की तदबीर सोच रहे है, पर जीवन ही को सुखकारी बनाने का प्रयत्न नहीं कर रहे हैं। सभ्यता का प्रवाह बढ़ा चला जा रहा है, पर उसका निर्दिष्ट ध्येय कुछ भी नहीं है।

सभ्य समाज के ध्येय-रहित जीवन का एक अच्छा नमूना यह देखिए। आज भी—जब कि शान्ति-स्थापन हुए ९ वर्ष बीत चुके हैं—योरप उस भीषण विश्वव्यापी युद्ध के प्रचण्ड प्रतिफल से डगमगा रहा है—उस महान् युद्ध के प्रभाव से जिसमें विजयी तथा पराजित दोनों को समान दण्ड मिला। उस युद्ध मे करोड़ों नवयुवकों का बलिदान हो गया, करोड़ो युवक घायल हुए और असंख्य द्रव्य का नाश हुआ। क्या हम यह कह सकते हैं कि उस भीषण युद्ध के फल-स्वरूप संसार युद्ध से विमुख हो गया है और निस्सन्देह शान्ति के पथ का अनुसरण करने के लिए वेग के साथ उधर अग्रसर हो रहा है? क्या हम यह नहीं जानते है कि वे लाखो पुरुष जिनकी उस भीषण-समर-ज्वाला में आहुति हो गई, अपने उद्देश में—युद्ध जीतने में—कितना सफल हुए थे? और वे पुरुष जिन्होंने पुनः शान्ति स्थापित की कितना असफल हुए। यह स्पष्ट है कि शान्ति-स्थापन की चेष्टा असफल हुई और मृत वीरों के साथ निर्दयतापूर्वक विश्वासघात किया गया, पर उससे स्पष्टतर यह बात है कि युद्ध किसी भी प्रश्न को हल न कर सका।

हमें यह मालूम है कि प्रत्येक राष्ट्र के अच्छे तथा महान् पुरुष युद्ध को घृणा तथा भय की दृष्टि से देखते है और संसार के विद्वानों का यह मत है कि अगर भविष्य में महान् राष्ट्रों में कोई युद्ध हुआ तो सभ्यता का पूर्ण नाश हो जायगा। फिर भी यह कैसी बात है कि कोई भी निश्चयपूर्वक यह नहीं कह सकता है कि मानव-जीवन का प्रवाह युद्ध से विमुख हो शान्ति की ओर बह रहा है? और यद्यपि यह प्रश्न सबके जीवन-मरण का है, तो भी हम साथ साथ बहे जा रहे हैं, क्या यह आश्चर्यजनक नहीं है?

इस प्रश्न का उत्तर ही सारे विषय की जड़ है। यह स्पष्ट है कि हम शान्ति की ओर अग्रसर तो नहीं हो रहे हैं; शायद निरुपाय होकर युद्ध की ओर बहे जा रहे हैं;

क्योंकि 'शान्ति या युद्ध'? इस प्रश्न का उत्तर एक महान् जन-समूह देता है। इस जन-समूह में बहुत से ऐसे हैं जिनके लिए अन्य प्रश्न इससे बहुत ज़्यादा महत्त्व के हैं; और यह सारा जन-समाज इस बात से अनभिज्ञ है कि क्योंकर शान्ति स्थापित की जा सकती है।

प्रजातन्त्र-शासन के सिद्धान्त के पक्षवालों ने यह बात मान ली थी कि जो प्रश्न पार्लियामेंट को हल करने पड़ते हैं उन पर प्रत्येक मतदाता अपना मत देने से पहले विचार कर लेता है। उन्होंने यह भी मान लिया था कि कोई मनुष्य अपने स्वार्थ का विचार न करेगा, कोई वर्ग अपने हानि-लाभ की परवा न करेगा, और राष्ट्र की भलाई देखकर ही तथा समग्र संसार की मुक्ति के लिए निःस्वार्थ-रूप से सब मनुष्य अपना अपना मत देंगे।

किन्तु राज्य-शासन की इस नूतन शैली की परीक्षा एक ऐसे समय में की गई जब प्रजा अशिक्षित थी और जब मानव-सभ्यता का ध्येय निश्चित नहीं किया गया था। मत देने का अधिकार ऐसे पुरुषों के हाथ में दिया गया जो मूर्ख भी थे और जिन्होंने मानव-जाति के भविष्य का कुछ भी विचार न किया था। जैसे किसी रेलगाड़ी के यात्री स्टेशन पर मिल कर यह विचार करें, यह तय करें कि उनमें से किसको इंजिन चलाना चाहिए, या डाक्टरी तथा हिसाब-खर्च के विषय के ज्ञाता हुए बिना जैसे कोई डाक्टर या बैंक का मैनेजर बना दिया जाय, वैसे ही शासन के सम्बन्ध में मत देने का यह अधिकार देना हुआ।

प्रजातन्त्र-शासन की इस नवीन पद्धति में कुछ ऐसी महत्ता तथा प्रशंसाजनक उच्चता थी कि किसी ने भी उसके दोषों का विचार न किया। स्वच्छन्द शासन को पहले मौक़ा दिया गया था और वह विफल हुआ था, अतः उसे बुरा ठहराया था। स्वच्छन्द राजतन्त्र सभ्यता के प्रश्न को हल न कर सके; अतः अब सिर्फ़ एक ही चारा था, जो एक महान् सफल उपाय दिखाई देता था—वह था प्रजातन्त्र-शासन का। इसके सामने समस्त संसार को झुकना पड़ा और आज भी झुकना पड़ रहा है। सारे पश्चिमी देशों मे प्रजा ने आवाज़ उठाई, बेचारे राजाओं को सत्ता का त्याग करना पड़ा। अब इसने पूर्वी देशों को भी अपने अधिकार में लेना आरम्भ किया है।

पर अब हमें भासित होने लगा है कि यद्यपि इस नवीन पद्धति में कई दोष-गुण हैं, तो भी इसके फलस्वरूप कई भयास्पद स्थल पैदा होगये हैं। हमें अब दिखाई देता है कि एक प्रश्न को हल करने में इस नवीन पद्धति ने एक नवीन झगड़ा पैदा किया है। प्रत्येक राजनीतिज्ञ की अपील बहुधा मनुष्य की निकृष्ट लालसाओं को तृप्त करती है; वह शायद ही उच्च, निःस्वार्थ भावों को प्रकट करता है।

अगर हम सभ्यता पर विचार करेंगे तो हमें यह स्पष्ट दिखाई देगा कि इस सारे गोलमाल तथा दुःख का कारण ध्येय का अभाव तथा अनिर्णयता है। प्रजातन्त्र-शासन के विफल होने का कारण यह है कि यद्यपि मानव-समाज ने अपनी उन्नति के लिए निरन्तर यत्न किया है, तो भी उसने यह स्थिर नहीं किया कि उसका ध्येय क्या है; वह किस बात से अपने परिश्रम की पूर्णाहुति समझता है। उसने यह भी तय नहीं किया है कि वह किस ओर अग्रसर होना चाहता है। राजनीतिज्ञों की सब चालें इस इरादे से होती हैं कि किसी तरह पुरानी दशा में कुछ इधर-उधर फेरफार कर अपना काम निकाल लें। वे किन्हीं नवीन विचारों का निर्माण नहीं करते; वे कोई ऐसी तदबीर नहीं सोच निकालते जिससे एकबारगी सब दोषों का सुधार कर समाज का एक नवीन आधार पर निर्माण किया जा सके। हम किस ओर अग्रसर हो रहे हैं या हम आगे क्यों बढ़े जा रहे हैं ये प्रश्न उनको नहीं सताते। उन्नति ही उनका ध्येय है। उन्नति ही उनका फल हो जाता है। यदि हम आगे बढ़ते ही चले जायँ—चाहे वह ध्येय-रहित ही क्यों न हो, तो हमारा कर्तव्य पूर्ण होगया।

हम सभ्यता के बुरे प्रभावों पर दृष्टि नहीं डालते। हमारे अस्पतालों में कई मनुष्य ऐसे रोगों से पीड़ित हैं जिनसे वे सर्वदा के लिए कुरूप या लँगड़े-लूले हो जाते हैं। हमारे जेलों में समाज के कट्टर द्रोहियों का अड्डा लगा हुआ है। और मैली-कुचैली तथा अँधेरी गलियों में ऐसे हज़ारों स्त्री-पुरुष पशुओं के समान रहते हैं जो अपने जीवन से उकता गये हैं। श्रमजीवियों तथा धनिकों में सदैव होनेवाले झगड़ों पर हम ध्यान नहीं देते हैं; हमारे

धर्म में दिन प्रतिदिन फ़िरक़े बढ़ते चले जाते हैं। लंदन के नाट्य-मंच की भी आज ऐसी बुरी दशा है, जैसी स्टुअर्टों के शासन-काल के बाद कभी न हुई थी। समाज के प्रत्येक वर्ग के मनुष्यों को आज-कल हलचल की इतनी आवश्यकता होगई है कि उसका परिणाम दुःख-जनक हो रहा है, फिर भी हम उधर दृष्टिपात नहीं करते। मदिरापान तथा जुआ में आँख बंदकर पानी के समान द्रव्य बहाया जा रहा है, पर उसकी कोई परवा नहीं करता। पुनः ज्यों ज्यों समय बीतता जाता है, त्यों त्यों भावी युद्ध की विकराल छाया संसार के रंग-मंच पर स्पष्टतर होती जा रही है, पर उसको कोई देखता भी नहीं है। इन सब बातों का ख़याल न कर हम इस बात का गौरव करते हैं कि 'आज हम सभ्य होगये हैं' और असभ्य जातियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं।

यह बात स्पष्ट है कि जहाँ तक मानव-समाज अपना ध्येय स्थिर न कर लेगा, वहाँ तक यह गोलमाल, दुखदर्द की भयंकर पीड़ा, तथा युद्ध-जनक सब भयंकर आपत्तियाँ चिरकाल तक समाज को सताती रहेंगी। यदि हम यह चाहते हैं कि हम पुनः असभ्य न होजायँ या ध्येय-रहित घूमते घूमते किसी कगार पर से एकाएक गिरकर सदा के लिए विनष्ट न हो जायँ, हमें सभ्यता के लिए अपने आचरण का एक निर्विवाद नियम ढूँढ़कर बनाना होगा। हमें यह निश्चित करना होगा कि मानव-सुख क्या है और तब निर्भयतापूर्वक हमें अपने जीवन के नियम उस पर निर्धारित करने होंगे।

उदाहरणार्थ इस बात पर कभी दो मत नहीं हो सकते कि रोग मनुष्य के सुख का पक्का वैरी है। यह बात भी सर्वसम्मत है कि जो कोई रोग फैलाता है वह मानव-जाति का महान् द्रोही है अतः दण्डनीय है। तब क्या कारण है जो हम इस बात पर क्यों नहीं सहमत होते कि युद्ध भी मानव-सुख का बाधक है? तब हम इस बात पर सर्वसम्मत क्यों नहीं होते कि स्वार्थपरता भी चोरी के समान एक महान् अपराध है, और जैसे शीतला एक भयंकर रोग है वैसे जुआ भी एक महान् कुकर्म और पाप है?

अगर हम यह निश्चय करें कि मानव-सुख स्वास्थ्य, सुशासन, शिक्षा और सदाचार के नियमों के पालन पर निर्भर है तो क्या ये हमारे जीवन में सुदशा का संचार नहीं कर सकते हैं, और उन कुभावों का विनाश नहीं कर सकते हैं जिनसे सभ्य देशों में भी रोग, दारिद्र्य, अज्ञान तथा दुराचार अधिक मात्रा में पाये जाते हैं? क्या यह हमारे जीवन का एक महान् ध्येय नहीं हो सकता है? क्या इससे हम अपने जीवन को एक निश्चित मार्ग पर नहीं लगा सकते हैं?

अगर यह बात इतनी सरल है तो फिर इतना गड़बड़ तथा सब ओर ऐसा अन्धेर क्यों फैला हुआ है? यह अन्धेर अगर हटाया न गया तो न मालूम किस दिन एक भीषण सामाजिक क्रान्ति वा एक महान् युद्ध-ज्वाला मानव-समाज में पैदा कर सकता है।

आइए, हम फिर अपने मुख्य प्रजातन्त्र-शासन-विषय पर ही विचार करें। क्या यह उस प्राचीन अँगरेज़ी कहावत "Many cooks spoil the broth" का एक अच्छा उदाहरण नहीं है? जो प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है उसकी कोई परवा नहीं करता है। सभ्यता के प्रवाह के मार्ग को एक महान् समाज निर्धारित करता है। यह समाज न तो मूर्ख है, न दुष्ट है, पर इसे अपने उत्तरदायित्व का कुछ भी ध्यान नहीं है, और सभ्यता के प्रश्न पर कुछ भी विचार नहीं करता है। इस समाज के प्रत्येक व्यक्ति को तो अपनी अपनी पड़ी है। कोई यह सोचता है कि अपनी क्षुधा-निवारण क्योंकर की जा सकती है, तो दूसरे को यह चिन्ता है कि कोयले की दर कब घटेगी या कैसे घटाई जा सकती है। किसी को यह उत्सुकता है कि आज थियेटर में कौन सा नाटक खेला जा रहा है या सिनेमा में कौन सी फ़िल्म दिखाई जारही है। बहुत से माई के लाल तो यही सोचते रहते हैं कि अगले रविवार को क्या करना चाहिए या आगामी छुट्टियों में कहाँ की सैर करनी चाहिए। कुछ ऐसे भी हैं जो यह सोचते रहते हैं कि कैसे एक अच्छा घर कम किराये पर भाड़े में लिया जा सकता है। अगर कोई विज्ञान-वेत्ता अपना काम करते करते यह सोचने लगे कि सुदूर देशों से व्यापार कैसे होता है तो क्या यह शक्य है कि उसका स्वयं काम सफल होगा? यदि किसी क्रिकेट तथा फ़ुटबाल के खिलाड़ी को अपने घर का झंझट ऐसा सताता है कि खेलते समय भी उसके

मस्तिष्क में वही बातें घूमा करें तो यह कैसे हो सकता है कि वह अच्छी तरह खेल सकेगा ? किसी भी कार्य को करने में चित व ध्यान की एकाग्रता की बड़ी आवश्यकता है। इस एकाग्रता के बिना यह असम्भव है कि कोई महान्, कठिन कार्य सफलतापूर्वक समाप्त किया जा सके।

यही कारण है कि इस प्रजातन्त्र-शासन ने कुछ प्रश्नों को सुलझाने में कई प्रश्नों को उठा कर खड़ा किया है। इसी कारण आज समाज में एक विचित्र हलचल तथा अशान्ति मची हुई है और इसका परिणाम पीड़ाजनक हुआ है। शासन के सञ्चालकों की संख्या बहुत बढ़ गई है। अगर उनमें कुछ अपने अपने विषय के विशेषज्ञ हैं तो उनके साथ अयोग्य पुरुषों का इतना समूह है कि वे कुछ भी नहीं कर सकते। सभ्यता के प्रवाह के मार्ग को कोई योग्य पुरुष नहीं निर्धारित करता है। प्रत्येक पुरुष को सञ्चालन का अधिकार है, अतः वे सब उसे अपने इच्छानुसार भिन्न भिन्न दिशाओं में ले जाना चाहते है।

आधुनिक दशा को देखकर यह स्वीकार करना पड़ता है कि आधुनिक सभ्यता ने राज्यसञ्चालन की बागडोर कई अयोग्य पुरुषों के हाथ में देकर एक महान् भूल की है। इससे हमारा यह मतलब नहीं है कि हम स्वच्छन्द एकतन्त्र-शासन के अनुकूल है और पुनः कोई ऐसा विशेष कारण नहीं दिखाई देता जिससे मजबूर होकर पुनः उस प्राचीन प्रथा को ग्रहण करें। पर श्रेष्ठ जनों के राज्य-शासन का अगर ठीक अर्थ देखा जाय तो यह होगा कि मानव-समाज के सबसे योग्य तथा विद्वान् पुरुषों के हाथ में इस प्रवाह-सञ्चालन का कार्य देना चाहिए, जिससे वे इस विकट प्रश्न को सुलझा सकें। हमें यह बात सुन कर आश्चर्य होगा और अपनी कल्पना-शक्ति का आश्रय लेकर हम यह सोचना चाहते है कि अगर किसी राष्ट्र के विज्ञान, व्यापार तथा आचार-विचार के विज्ञ महान् पुरुषों की सभाओं-द्वारा चुने हुए राष्ट्र के योग्यतम तथा महान् पुरुषों की समिति के हाथ में राष्ट्र-शासन का कार्य ५ वर्ष के लिए सौंप दिया जाय तो क्या होगा ? क्या वह राष्ट्र अन्य राष्ट्रों से अधिक उन्नत न होगा ? क्या इस तरह वह राष्ट्र मानव-समाज की उन्नति के लिए एक उच्च पथ न निकाल सकेगा ?

हमें यह पूर्णतया मालूम है कि यह व्यावहारिक राजनीति से बहुत ही भिन्न है। पर क्या इसलिए इस पर विचार ही न किया जाय ? क्या यह इस योग्य नहीं है कि इस पर विचार न किया जाय ? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जितना उत्तर-दायित्व आज मनुष्यों के कंधों पर है, उतना संसार के इतिहास में किसी भी समय न था *।

श्रीकान्त

(श्रीयुत शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय)

[अनुवादक, श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय]

दूसरा परिच्छेद

मैं ने देखा है, कोई-कोई बात ऐसी होती है जिसे ज़िन्दगी भर भूला नहीं जा सकता। जभी स्मरण हो आता है तभी उसके शब्द कानों में गूंज उठते हैं। पियारी के अन्तिम वाक्य भी इसी तरह के थे। आज भी उनकी गूंज मैं जैसे सुन पाता हूँ। इस बात का परिचय बचपन से ही अनेक बार उसने दिया था कि वह कितनी बड़ी संयमी है। उसके ऊपर इतने दिनों की इतनी बड़ी यह सांसारिक शिक्षा ! उस दफ़े मेरे बिदा होने के समय किसी तरह वहा से भाग जाकर उसने आत्मरक्षा की थी; किन्तु अबकी बिदा के समय किसी तरह वह अपने को सँभाल न सकी, नौकर-चाकरों के सामने ही वह रो पड़ी।

रुँधे हुए स्वर से उसने कह डाला—देखो, मैं मूर्ख नहीं हूँ, मैं जानती हूँ कि अपने पाप का भारी दण्ड मुझे

* My magzine में प्रकाशित एक अँगरेज़ी लेख का भावानुवाद—लेखक

भोगना ही पड़ेगा। सो भी मैं कहती हूँ, हमारा हिन्दू-समाज बड़ा ही निष्ठुर है, बड़ा ही निर्दय है! इसे भी एक दिन इसका दण्ड भोगना ही पड़ेगा! भगवान् इसे इस पाप का दण्ड देंगे—अवश्य ही देंगे!

यही उसके ये अन्तिम वाक्य थे जो अब तक मेरे कानों में गूंजा करते हैं।

समाज को इतना बड़ा शाप पियारी ने क्यों दिया, सो वही जाने और उसके अन्तर्यामी जानें। मैं भी न जानता होऊँ, यह बात नहीं है, किन्तु उस समय मेरे मुँह से कोई बात न निकली, मैं चुप रह गया।

बूढ़े दरबान ने गाड़ी का दरवाज़ा खोलकर मेरे मुँह की ओर देखा, मैं गाड़ी पर चढ़ने के लिए पैर बढ़ाने का उद्योग कर रहा था। पियारी ने आँसू और हँसी मिली हुई दृष्टि से मेरी ओर देखकर कहा—कहाँ जाते हो—अब शायद फिर भेंट न हो—एक भिक्षा दोगे?

मैंने कहा—दूँगा।

पियारी ने कहा—भगवान् न करें, लेकिन तुम्हारी जीवन-यात्रा का जो ढंग है, उससे—अच्छा, चाहे जहाँ रहो, ऐसे अवसर पर मुझे ख़बर दोगे? शरमाओगे तो नहीं?

"ना, शरमाऊँगा नहीं—ख़बर दूँगा," कह कर धीरे-धीरे मैं गाड़ी पर सवार होगया। पियारी ने आज पीछे-पीछे आकर अपने आँचल से पोंछ कर मेरे पैरों की धूल मस्तक से लगा ली।

"अजी, सुनते हो?"

सिर उठाकर देखा, पियारी अपने होठों के कम्पन को प्राणपण से दबा कर कुछ कहने की चेष्टा कर रही है। हम दोनों की आँखें चार होते ही उसकी आँखों से फिर आँसू गिरने लगे। उसने अस्पष्ट रुँधे हुए स्वर में धीरे-धीरे कहा—अच्छा, अगर इतनी दूर न जाओ तो क्या हो? रहने दो, न जाओ!

चुपचाप उधर से आँखे फेर लीं। गाड़ीवान ने गाड़ी हांक दी। चाबुक के शपाशप शब्द और पहियों की घरघराहट से वह तीसरे पहर का समय मुखरित हो उठा। किन्तु इन सब शब्दों को दबाकर एक अवरुद्ध कण्ठ का अस्पष्ट रुदन ही मेरे कानों में गूंज रहा था।

तीसरा परिच्छेद

पाँच-छः दिन बाद एक दिन सवेरे एक स्टील-ट्रङ्क और एक बिस्तर भर साथ लिये कलकत्ते के कोयलाघाट में आकर मैं उपस्थित हुआ।

गाड़ी से उतरते ही एक ख़ाकी रङ्ग का कुर्ता पहने कुली ने आकर बिस्तर और ट्रंक मेरे हाथ से एक तरह से छीन लिया और पलक न लगते-लगते वह न जाने कहाँ ग़ायब हो गया। खोजते-खोजते आँखों में आँसू न आने तक उसका कहीं पता न लगा। गाड़ी पर आते समय मैंने देखा था, जेटी और बड़ी सड़क के बीच जितनी जगह थी उसमें भिन्न-भिन्न रङ्गों के पदार्थ जमा थे। लाल, काला, ख़ाकी, गेरुआ तरह-तरह के रङ्ग देख पड़ते थे। उस समय कुछ कोहरा भी पड़ रहा था। जान पड़ा, शायद बछड़ों के झुंड बँधे है, बाहर चालान जाने-वाला है।

किन्तु पास आकर ध्यान से देखा तो जान पड़ा, चालान ज़रूर जायगा, लेकिन बछड़ों का नहीं, आदमियों का जायगा। गठरी-मोटरी लेकर, स्त्री-पुत्र वग़ैरह का हाथ पकड़ कर रात भर इसी तरह ओस में ये लोग पड़े रहे हैं, इसलिए कि तड़के सबसे पहले जहाज़ पर कुछ अच्छी जगह पा जायँगे। अतएव किसकी मजाल है कि बाद को आकर इन्हें नांघ कर जेटी के द्वार पर पहुँच सके। थोड़ी देर बाद यह दल जब सजग होकर उठ खड़ा हुआ, तब मैंने देखा, काबुल के उत्तर से कन्या-कुमारी के छोर तक जितनी जातियाँ रहती है, उनमें से कोई भी इस कोयला-घाट में अपना प्रतिनिधि भेजना नहीं भूली।

इस भीड़ में सभी हैं। काली-काली बनयाइनें पहने कुछ चीनी भी मौजूद है। मैं भी डेक का यात्री था, अर्थात् उस दर्जे का यात्री, जिसके नीचे और दर्जा नहीं होता। सुतराम् मुझे भी इन लोगों को परास्त करके—अर्थात् धींगामुस्ती करके—अपने लिए बैठने की थोड़ी जगह कर लेनी चाहिए थी। किन्तु इस बात का ख़याल मन में लाते ही मेरे होश गुम हो गये। मगर जब जाना ही होगा और इस जहाज़ के सिवा और कोई गति भी

नहीं है, तब चाहे जिस तरह हो, इन्हीं लोगों के अनुसार काम करना उचित है—यह कह कर जितना ही मैं अपने मन को उत्साहित करने लगा उतना ही वह जैसे और भी हाथ-पैर ढीले कर देने लगा।

जहाज़ कब आकर घाट में लगेगा, यह जहाज़ ही जाने। सहसा आँख उठा कर देखा, इन १४-१५ सौ के लगभग लोगों में न जाने किस समय हल-चल-सी मच गई है। इसी बीच में सब भेड़ों के झुंड की तरह दल बाध कर खड़े हो गये थे।

एक पछाहीं से मैंने पूछा—भैया, सब जने अच्छी तरह तो मज़े से बैठे थे; एकाएक यह क़तार बना कर खड़े क्यों हो गये?

उसने कहा—डागदरी होगी।

मैंने कहा—डागदरी क्या चीज़ है भैया?

उस आदमी ने पीछे से आये हुए एक धक्के को सँभाल कर खीझ के साथ कहा—अरे पिलेग की डागदरी।

बात और भी दुर्बोध्य हो पड़ी। किन्तु समझूँ चाहे न समझूँ, इतने आदमियों के लिए जो आवश्यक है, वह मुझे भी स्वीकार ही करना होगा। किन्तु किस कौशल से अपने को आदमियों की इस क़तार में ठूँस दूँ, यह एक महासमस्या हो उठी।

कहीं कुछ भी फांक है या नहीं, यह खोजते-खोजते देखा, बहुत दूर पर कुछ खिदिरपुर के मुसलमान संकुचित-भाव से सिमटे हुए खड़े थे। यह मैंने अपने देश अथवा विदेश मे सर्वत्र देखा है कि जो लज्जा की बात है उसमें बङ्गाली लज्जित ही होते हैं। भारत की अन्यान्य जातियों की तरह निस्संकोच हो कर वे धक्कमधक्का या मारपीट नहीं कर सकते। इस तरह खड़े होने को ही एक प्रकार की हीनता समझ कर लज्जा से उनका सिर नीचा हो रहा था।

ये मुसलमान रंगून में दरज़ी का काम करते हैं—अनेक बार वहाँ से यहाँ आ-जा चुके हैं। मेरे पूछने पर उन्होंने बतलाया कि बर्मा में अभी तक प्लेग की बीमारी नहीं है, इसी से यह इतनी सावधानी है। डाकृर जांच करके जब पास कर देगा तभी जहाज़ पर चढ़ने को मिलेगा। अर्थात् रंगून जाने के लिए जो लोग तैयार है वे प्लेग के रोगी तो नहीं हैं, इसकी जाँच पहले होना ज़रूरी है। अँगरेज़ी राज्य में डाकृरों का प्रबल प्रताप है। सुना है, क़साईख़ाने के यात्रियों (पशुओं) तक को जिबह होने का अधिकार पाने के लिए इनका मुँह ताकना पड़ता है। किन्तु अवस्था की दृष्टि से रंगून के यात्रियों के साथ क़साईख़ाने के यात्रियों का इतना बड़ा सादृश्य था, यह बात उस समय शायद किसी ने न सोची होगी?

क्रमशः 'पिलेग की डागदरी' निकट आ पहुँची। साहब डाक्टर मय अपने चपरासियों के देख पड़ा। उस क़तारबन्दी की हालत मे अच्छी तरह गरदन घुमाकर देखने का सुयोग न था, तथापि आगे की लाइन मे खड़े हुए यात्रियों की परीक्षा का जो नमूना नज़र आया उससे बेहद चिन्ता हो आई। शरीर का नीचे का हिस्सा नंगा करके देखने से डरनेवाला कायर अवश्य ही एक बङ्गालियों के सिवा और कोई नहीं था; किन्तु सम्मुखवर्ती उन साहसी, वीर पुरुषों को भी उक्त प्रकार की परीक्षा से चौंक चौंक उठते देखकर मेरा हृदय शंका से परिपूर्ण हो उठा।

यह सबको मालूम है कि प्लेग की बीमारी में शरीर के स्थान-विशेष के जोड़ फूल उठते हैं। डाक्टर साहब जिस तरह सहज में, निर्विकार चित्त से उन सब सन्दिग्ध स्थानों में हाथ डाल-डालकर वरम का अनुभव करने लगे उससे काठ के पुतले को भी आपत्ति हुए बिना नहीं रह सकती, मनुष्य की कौन कहे! किन्तु भारतवासियों की सभ्यता बहुत पुरानी है, इसी कारण वे बेचारे एक ही बार चौंककर स्थिर हो जाते थे, और कोई जाति होती तो उस दिन डाक्टर साहब के हाथ को तोड़ डाले बिना कभी न मानती।

ख़ैर, वह चाहे जो हो, पास होना जब एक ज़रूरी काम है, तब और उपाय ही क्या है! यथासमय आँखें मूँदकर, सब अंग संकुचित करके, जान पर खेलकर डाक्टर के हाथ में मैंने अपने को सौंप दिया। पास भी हो गया।

अब इसके बाद जहाज़ पर चढ़ने की बारी आई। किन्तु डेक के यात्रियों की यह सवार होने की क्रिया किस तरह सम्पन्न होती है, इसकी धारणा वही कर सकता है

जो कभी इस दर्जे में सवार हो चुका है। बाहर के आदमी का इस विषय की धारणा करना असाध्य है। हाँ, कल-कारखानों में दाँतवाले पहिये की क्रिया अगर देख रक्खी हो तो अवश्य कुछ-कुछ समझ में आ सकता है। दाँतवाला पहिया जैसे सामने के खिंचाव और पीछे के ठेले से आगे बढ़ता है वैसे ही हमारी यह काबुली-पंजाबी माड़वारी-मदरासी-मराठा-बङ्गाली-चीना-पछाँही-उड़िया आदि जातियों के आदमियों से सुसंगठित विपुलवाहिनी (सेना) केवल परस्पर के आकर्षण-विकर्षण के वेग से, बिना जाने ही, स्थल से जहाज़ के डेक पर चढ़ आई, और उसकी वह गति कहीं पर नहीं रुक रही। सामने ही देखा, एक गढ़े के मुँह में सीढ़ी लगी हुई है। जहाज़ को खोल अथवा नीचे के खण्ड में जाने की वही राह है। बँधे हुए नाले का मुँह खोल देने से बरसात का जमा हुआ जल जैसे बड़े वेग से नीचे गिरता है, ठीक वैसे ही यह यात्रियों का दल स्थान प्राप्त करने के लिए मरने-जीने का कुछ ख़याल न करके उसी राह से नीचे उतरने लगा।

मुझे जहा तक स्मरण आता है, मेरी नीचे जाने की इच्छा भी नहीं थी, और न मैं अपने पैरों चलकर ही नीचे गया। क्षण भर के लिए जैसे मैं बेहोश हो गया था। कोई इसमें संदेह प्रकट करे तो शायद मैं क़सम खाकर इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकता। मगर होश आने पर देखता क्या हूँ, उसी खोल के भीतर बहुत दूर पर एक कोने में अकेला खड़ा हुआ हूँ। नीचे देखा, इसी बीच में जादू के खेल की तरह पल ही भर में लोगों ने अपने अपने कंबल बिछाकर बक्स-पिटारे वग़ैरह की लाइन बनाकर एक निर्दिष्ट स्थान बना लिया है और बेखटके बैठकर परस्पर एक दूसरे का परिचय प्राप्त कर रहे हैं।

इतनी देर बाद वही नम्बर का बिल्ला लगाये हुए मेरा कुली आकर दिखाई दिया और बोला—आपका बक्स और बिस्तर ऊपर रख आया हूँ। अगर कहिए तो नीचे ले आऊँ।

मैंने कहा—नहीं, नीचे लाने की ज़रूरत नहीं है। बल्कि किसी तरह मुझे भी यहाँ से निकाल कर ऊपर ले चलो।

कारण, दूसरों के बिछौने पर पैर न रखकर, लोगों में हाथापाई की सम्भावना उत्पन्न किये बिना, चल सकूँ, ऐसी ज़रा सी भी जगह मुझे देख नहीं पड़ती थी। बरसात में ऊपर डेक पर भीगूँ, वह भी अच्छा; लेकिन यहा अब एक घड़ी भी ठहरना कठिन था।

कुली ज़्यादह मज़दूरी के लोभ से बहुत कोशिश करके बहस-मुबाहसे के बाद लोगों के कंबल-शतरंजी वग़ैरह बिस्तरों को ज़रा-ज़रा उलट-उलट कर मुझे साथ लिये ऊपर किसी तरह पहुँचा और मेरा सामान मुझे दिखाकर इनाम लेकर चला गया।

यहाँ भी वही दृश्य था—कहीं बिछौना बिछाने की ज़रा सी भी जगह नहीं थी। इसलिए लाचार होकर अपने ट्रङ्क पर ही अपने बैठने की जगह निकाल कर निविष्ट चित्त से माता भागीरथी के दोनों किनारों की महिमा निरखने लगा।

स्टीमर उस समय चलने लगा था। बहुत देर से प्यास लगी हुई थी। दो घंटे से जो कुछ अपने सिर बीत रही थी, उससे जिनका हृदय सूख न उठे, ऐसे कठिन हृदय के आदमी संसार में थोड़े ही होंगे। साथ के यात्रियों में शायद कोई बङ्गाली कहीं देख पड़े तो पानी पीने का कुछ उपाय हो, यह सोच कर मैं फिर नीचे उतरा। कारण, मेरे पास न कोई गिलास था और न कोई लोटा ही।

नीचे उतरने के उसी गढ़े के पास पहुँचते ही एक ऐसा कोलाहल सुन पड़ा, जिसके साथ किसी शब्द की तुलना करूँ, ऐसी अभिज्ञता या जानकारी मुझे नहीं है। गोशाला के छप्पर में आग लगने से एक तरह की आवाज़ उठने की बात अवश्य कही जाती है; किन्तु वह भी इस तुमुल कोलाहल की समता नहीं कर सकती। इस कोलाहल के अनुरूप कोलाहल के लिए जितनी बड़ी गोशाला की ज़रूरत है उतनी बड़ी गोशाला महाभारत के ज़माने में राजा विराट के यहाँ रही हो तो रही हो, लेकिन इस कलिकाल में तो उसकी कल्पना करना भी कठिन है।

भयपूर्ण हृदय से दो-एक सीढ़ियाँ उतरकर नीचे झाँक कर देखा, हर एक यात्री ने अपना national या

जातीय संगीत गाना शुरू कर दिया है। काबुल से ब्रह्मपुत्र तक और कन्याकुमारी से चीन की सरहद तक जितने प्रकार के स्वर-ब्रह्म हैं, उन सबका अनुशीलन जहाज़ के इस बन्द खोल के भीतर बाजों के साथ एक साथ किया जा रहा था। यह महासंगीत सुनने का सौभाग्य शायद ही कभी प्राप्त होता है। मैंने वहाँ खड़े-खड़े साथ इज़्ज़त और अदब के यह स्वीकार कर लिया कि संगीत ही ललित कलाओं में सर्वश्रेष्ठ है।

किन्तु सबसे बढ़कर विस्मय यह है कि इतने अधिक संगीत-विशारद यहाँ एकत्र कैसे हो गये!

मैं सहसा यह निश्चय न कर सका कि नीचे उतरना चाहिए या नहीं। सुना है, अँगरेज़-महाकवि शेक्सपियर ने एक जगह कहा है कि जो मनुष्य संगीत सुनकर मुग्ध नहीं होता वह ख़ून तक कर सकता है। किन्तु कदाचित् उन्हें ऐसे संगीत की ख़बर न थी, जिसे मिनट भर सुनने से ही मनुष्य के सिर पर ख़ून सवार हो जाता है। यह संगीत ऐसा ही था।

जहाज़ का खोल देवी वीणापाणि का पीठस्थान है या नहीं, यह मैं नहीं जानता। अगर न होता तो काबुली भी गाना गाते हैं, यह कौन सोच सकता है!

एक तरफ़ यह अद्‌भुत लीला चल रही थी और मैं मुँह बाये विस्मय के साथ तमाशा देख रहा था। एकाएक देख पड़ा, एक आदमी उसके पास ही कुछ दूर पर खड़ा प्राणपण से हाथ का इशारा करके मेरी दृष्टि अपनी ओर आकृष्ट करने की चेष्टा कर रहा है।

बड़े कष्ट से, बहुत लोगों की लाल आंखें देखता और कड़ी बातें सुनता हुआ मैं जाकर उस आदमी के पास पहुँचा। मुझे ब्राह्मण जानकर उसने हाथ जोड़े और रंगून का प्रसिद्ध नंद मिस्त्री कहकर अपना परिचय दिया। उसके पास ही एक विगत-यौवना, स्थूलांगी स्त्री बैठी हुई थी, जो बराबर एकटक मेरी ही ओर ताक रही थी।

मैं उसके मुँह की ओर देखते ही सन्नाटे में आ गया! किसी मनुष्य की इतनी बड़ी भाटे की तरह गोल-गोल आंखें और इतनी फैली हुई भारी भौंहें मैंने इससे पहले कभी नहीं देखी थीं।

नंद मिस्त्री ने उस स्त्री का परिचय देते हुए कहा—बाबू साहब, यह मेरी जो—

बात पूरी न होने पाई, वह स्त्री बीच ही में फुफकार मार कर गरज उठी—जोरू है! मेरे साथ सात भांवर फिरने वाले भतार कहते हैं, जोरू है! ख़बरदार, कहे देती हूँ मिस्तरी, हर एक के आगे झूठ बोलकर मुझे बद-नाम न करो।

मैं तो विस्मय के मारे हतबुद्धि-सा होगया।

नंद मिस्त्री अप्रतिभ होकर कहने लगा—आहा! ख़फ़ा क्यों होती है टगर? जोरू और कहते किसे हैं? बीस बरस से—

टगर अब की बेहद ख़फ़ा होकर कहने लगी—बीस बरस होने से क्या होता है! जलेनसीब! जाति-वैष्णव* की लड़की मैं कैवर्त† की जोरू होऊँगी! क्यों, किसलिए? बीस बरस से तुम्हारे साथ रहती ज़रूर हूँ, लेकिन किसी दिन तुम्हें रसोई में हाथ लगाने दिया है भला? यह बात कोई कह ही नहीं सकता कि मैंने किसी और का छुआ खाया है! टगर वैष्णवी मर जायगी, मगर अपनी जाति न नष्ट होने देगी!

यह कहकर वह जाति-वैष्णव की लड़की जातिके गर्व से मेरी ओर देख कर अपनी भांटे की तरह गोल-गोल आंखें घुमाने लगी।

नन्द मिस्त्री लज्जित होकर बार-बार कहने लगा—देखा बाबूजी, देख लिया, अब भी इसे अपनी जाति का घमण्ड है! देखा आपने! मैं हूँ, सो सहे लेता हूँ, और कोई होता—

किन्तु बीस बरस की आशनाईवाली जोरू के मुँह की ओर एकाएक नज़र पड़ते ही मिस्त्री अपनी बात पूरी न कर सका।

मै किसी बात का उत्तर न देकर मिस्त्री से एक गिलास मांगकर वहां से खिसक आया। ऊपर आकर

---

*बंगाल में एक वैष्णव-जाति ही है, उसे जाति-वैष्णव कहते है। अन्य जाति के जो वैष्णव होते हैं, वे जाति-वैष्णव नहीं कहलाते।

†कैवर्त भी एक जाति होती है।

इस जाति-वैष्णवी की बातें यादकर मैं अपनी हँसी को किसी तरह रोक न सका।

किन्तु वैसे ही ख़याल आया कि यह तो एक साधारण अशिक्षित स्त्री है। देहातों और शहरों में क्या ऐसे पढ़े-लिखे मर्द नहीं हैं, जिनके द्वारा ऐसी ही हास्यकर बातें आज भी नित्य होती रहती हैं ? ऐसे हज़ारों पुरुष हैं, जो पढ़े-लिखे समझदार होकर भी केवल खाने-पीने के बारे में छुआ-छूत बचाकर पाप के आक्रमण से अपने को बचा हुआ समझते हैं, अन्य प्रकार के अनाचार को अनाचार ही नहीं मानते। हाँ, इस देश के मर्दों को ऐसा कहते या करते देखकर हँसी नहीं आती, केवल किसी स्त्री को ऐसा कहते या करते देखकर हँसी आती है।

आज शाम से ही आकाश में कुछ कुछ बादल जमा हो रहे थे। रात को एक बजे के बाद मामूली पानी बरसा और हवा चली, जिससे कुछ देर जहाज़ खूब हिला-डुला। दूसरे दिन सबेरे से ही खूब शिष्ट-शान्त-भाव से जहाज़ चलने लगा।

जिसे समुद्री बीमारी कहते हैं, वह मुझे नहीं हुई। जान पड़ता है, लड़कपन में ही नाव की यात्रा अधिक करने के कारण यह व्याधि मुझे छुटकारा दे गई थी। अतएव क़य होने के झंझट से मैं एक-दम बच गया।

किन्तु सपरिवार नंद मिस्त्री की क्या दशा हुई, किस तरह उन दोनों की रात बीती, यह जानने के लिए मैं सबेरे ही नीचे के दर्जे में उनके पास आकर उपस्थित हुआ। कल जो लोग गा रहे थे, उनमें से अधिकांश पट लेटे हुए मुझे देख पड़े। समझ गया, रात की परेशानी दूर करके अभी तक ये संगीत के लिए तैयार नहीं हो सके।

नंद मिस्त्री और उसकी बीस बरस की जोरू, दोनों गंभीर भाव से मुँह बनाये बैठे थे। मुझे देखकर दोनों ने हाथ जोड़े।

उनके मुख के भाव से जान पड़ा, थोड़ी देर पहले दोनों में कुछ झपट ज़रूर हो गई है।

मैंने पूछा—रात को कैसा हाल रहा मिस्त्री ?

नन्द ने कहा—अच्छा ही रहा।

उसकी आशना गरज उठी—अच्छा ख़ाक रहा। मैया रे मैया, कैसी आफ़त थी !

मैंने कुछ उद्विग्न होकर पूछा—क्या हुआ जी ?

नन्द मिस्त्री ने मेरे मुख की ओर देखकर, एक जम्हाई लेकर, दो बार चुटकी बजाकर अन्त में कहा—ऐसी कोई बात नहीं हुई बाबूजी। आपने कलकत्ते में गलियों के मोड़ पर भुना हुआ 'साढ़े बत्तिस भाजा' बिकते कभी देखा है ? देखा होगा तो हमारी कल रात की दशा का ठीक अनुभव कर पावेंगे। साढ़े बत्तिस भाजा बेचने वाला जैसे दोनों को कई बार उछाल कर भुने हुए चावल-दाल-मटर-चना-मसूर-चूड़े वग़ैरह सब अन्नों को एक में मिलाकर एकाकार कर देता है, ठीक वैसे ही देवता की कृपा से हम सब लुढ़क-पुढ़क कर एक में मिल गये थे। अभी तनिक देर हुई, अपने-अपने स्थान को पहचान कर उसमें आकर बैठे हैं।

इसके बाद टगर की ओर देखकर उसने कहा—भैया, भाग्य से जाति-वैष्णव की जाति नहीं जाती, मेरी टगर—

टगर गुस्साये हुए पागल भालू की तरह गरज उठी—फिर ! फिर !—

"ना, अच्छा जाने दो" कहकर नन्द उदासीन भाव धारण कर दूसरी ओर देखने लगा।

साक्षात् गन्दगी की मूर्ति दो काबुली सिर से पैर तक दुनिया भर की गन्दगी लादे हुए अत्यन्त तृप्ति के साथ रोटी-गोश्त खा रहे थे। क्रुद्ध टगर एकटक उन्हीं अभागों की ओर ताकती हुई अपनी बड़ी बड़ी आँखों से आग बरसा रही थी।

नन्द ने अपनी जोरू को लक्ष्य करके प्रश्न किया—तो आज खाना-पीना कुछ न होगा, क्यों ?

टगर ने कहा—मरण है, और क्या ! कैसे होगा, ज़रा सुनूँ तो !

मामला कुछ मेरी समझ में न आया। मैंने कहा—अभी तो सबेरा ही हुआ है। तनिक दिन चढ़ने पर—

नन्द ने मेरे मुँह की ओर देखकर कहा—कलकत्ते से एक हाँड़ी भर रसगुल्ले मैं लेता आया था। जहाज़ में सवार होने के बाद से मैं कहने लगा था, आ टगर, कुछ खा ले, आत्मा को कष्ट न दे। न मानी, रंगून ले जायगी। (टगर से) अब रंगून ले जा !

टगर इस क्रुद्ध अभियोग का स्पष्ट प्रतिवाद न करके, केवल एक बार मेरी ओर देखकर, फिर उन्हीं बदनसीब काबुलियों को अपनी आँखों की आग से जलाने लगी।

मैंने धीरे-धीरे पूछा—रसगुल्ले क्या हुए ?

नन्द ने टगर के उद्देश से कटाक्ष करके कहा—उनका क्या हुआ, कह नहीं सकता। वह देखिए टूटी हांड़ी पड़ी है और वह देखिए बिछौने में सारा रस है। इससे अधिक अगर कुछ जानना चाहें तो इन दोनों हरामज़ादे काबुलियों से पूछिए।

इतना कहकर टगर की दृष्टि का अनुसरण करके वह भी गुस्से की नज़र से उन काबुलियों की ओर देखने लगा।

बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर सिर नीचा करके मैंने कहा—ख़ैर जाने दो उन्हें। साथ में चूड़े तो हैं !

नन्द ने कहा—उनका भी ठिकाना लग गया है। टगर, तनिक बाबू को तो दिखा दे।

टगर ने एक छोटी सी पोटली पैर की ठोकर से दूर हटाकर कहा—तुम्हीं जाकर दिखाओ—

नन्द ने कहा—और चाहे जो कहिए बाबू, इन काबुलियों को नमकहराम नहीं कहा जा सकता ! ये लोग जैसे रसगुल्ले खा जाते हैं वैसेही अपने देश काबुल की रोटी भी बाँध देते हैं बदले में !—इन्हें फेंकना नहीं टगर, रख ले, ठाकुर का भोग मलीदा इनका बन सकता है।

नन्द की यह दिल्लगी सुनकर मैं तो हो-हो करके ज़ोर से हँस पड़ा। किन्तु उसके साथ ही टगर के मुख की ओर देखकर भय के मारे मेरे तो देवता कूच कर गये !

क्रोध के मारे टगर का चेहरा स्याह पड़ गया। मोटे गले से वज्र-कर्कश शब्द से जहाज़ के सब लोगों को चौंकाकर टगर चिल्ला उठी—देखो कहे देती हूँ, जाति के बारे मे कुछ न कहना मिस्तरी। नहीं अच्छा न होगा, यह कहे रखती हूँ—

चीत्कार से चौंककर जिन्होंने इस ओर दृष्टिपात किया उनकी विस्मित दृष्टि के सामने नन्द सङ्कुचित हो उठा। टगर को वह ख़ूब अच्छी तरह जानता था। वह जो एक अनायास मुँह से निकल गई असङ्गत दिल्लगी कर बैठा था उससे टगर अत्यन्त कुपित हो उठी थी। अब उसे किसी तरह शान्त कर देने में ही नन्द की कुशल थी।

नन्द लज्जित होकर चटपट कह उठा—तुझे मेरे सिर की क़सम टगर, गुस्सा न कर। मैंने तो दिल्लगी ही की थी।

टगर ने जैसे सुना ही नहीं। उसने आँखों की पुतलियाँ और भौंहें एक बार दहनी ओर और एक बार बाईं ओर घुमाकर गले को और एक पर्दा ऊपर चढ़ाकर कहना शुरू किया--दिल्लगी काहे की ! जाति-धर्म के बारे में दिल्लगी कैसी ! मुसलमान की रोटी से भगवान् का भोग लगेगा ? तेरे कैवर्त के मुँह मे आग ! तुझे दरकार हो तो उठाकर रख ले, अपने बाप को इसी के पिण्ड देना !

डोर टूटने पर धनुष की तरह सीधे खड़े होकर नन्द ने टगर का झोंटा पकड़ लिया और खींचते हुए कहा—हरामज़ादी, तू बाप-दादे तक पहुँचती है !

टगर भी कमर में धोती का आँचल लपेटती और हाँफती हुई बोली—हरामज़ादे, तू जाति तक पहुँचता है !

इतना कह कर कानों तक पूरा मुँह फैलाकर टगर ने नन्द के हाथ में भरपूर काट खाया। पल भर में ही नन्द मिस्त्री और टगर का मल्ल-युद्ध गहरा हो उठा। देखते ही देखते लोगों की चारों ओर भीड़ जमा हो गई। पछाँहीं लोग समुद्री बीमारी का कष्ट भूल कर ऊँचे स्वर से 'वाह वाह' कहने लगे, पञ्जाबी लोग छी छी करने लगे, उड़िया लोग चिल्लाने लगे, सब मिलाकर एक हलचल मच गई। मै स्तम्भित होकर विवर्ण मुख लिये जहाँ का तहाँ खड़ा रह गया। इतने साधारण कारण से ऐसा निर्लज्जता का नङ्गा नाच भी संसार में सङ्गठित हो सकता है, यह तो मैं कभी कल्पना भी न कर सकता था। किन्तु वहीं जहाज़ भर के हज़ारो यात्रियों के सामने एक बङ्गाली औरत-मर्द के द्वारा होते देखकर मैं तो लज्जा से धरती में गड़ गया।

पास ही एक जौनपुरी दरवान बड़ी ख़ुशी और सन्तोष के साथ यह लीला देख रहा था। उसने मुझे लक्ष्य करके कहा—बाबूजी, बङ्गालिन तो बहुत अच्छी लड़नेवाली है ! हटती ही नहीं !

मैं उसकी ओर आंख उठाकर देख भी नहीं सका। चुपचाप सिर झुकाये किसी तरह भीड़ को ठेलकर ऊपर भाग गया।

१—ऐतिहासिक चर्चा

[श्रीयुत कुँवर शिवनाथसिंह सेंगर]

नवरी सन् १९२८ की 'सरस्वती' में हमारे मित्र पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ ने और जून सन् १९२८ की 'सरस्वती' में पण्डित रामकरण आसोपा ने हमारे सितम्बर और आक्टोबर सन् १९२७ की 'सरस्वती' में प्रकाशित 'कन्नौज के गहरवारों और जोधपुर के राठौरों की सजातीयता' शीर्षक लेख पर टीका-टिप्पणी की है।

रेउजी का यह कथन कि हमने "जोधपुर-नरेशों को राठौर न मानकर गाहड़वाल ही माना है और राठोरों को गाहड़वालों से भिन्न समझा है।" भ्रममूलक ही नहीं, भ्रमोत्पादक भी है। हम क्या मानते है सो हम अपने मूल-लेख में स्पष्ट बता चुके है, जैसे—

(१) "हम जोधपुर के राठौरों को कान्यकुब्जाधिपति महाराज जयचन्द्र के वंशज अतः पूरब के गहरवारों ही की एक शाखा मानते हैं" (सरस्वती १९२७ पृ० १,०५३ कालम १)

(२) "आज तक कोई प्रमाण ऐसा नहीं मिला है जिसके आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सके कि कन्नौज के गाहड़वाल महाराज जयचन्द्र और उनके पूर्वज वास्तव मे राठौर नहीं थे।" (पृ० १,०७९ कालम २)

(३) "पृथ्वीराजरासो आदि में कान्यकुब्जाधिपति महाराज जयचन्द्र के प्राचीन गाहड़वाल (गहरवार) वंश—पुराणों के काश-वंश—के लिए राठौर नाम का प्रयोग हुआ है सो संभवतः यथार्थ ही है, और इसका सर्वप्रथम शुद्ध संस्कृत-रूप चाहे 'राष्ट्रवर' रहा हो चाहे 'राष्ट्रकूट', यह बहुत ही सम्भव है कि इस वंश का राठौर नाम वास्तव में बहुत ही प्राचीन—गाहड़वाल नाम की अपेक्षा भी अधिक प्राचीन और उपर्युक्त राष्ट्र[1] नाम पर से ही बना हुआ हो" (पृ० १,१८४ कालम २)

हमारी समझ में नहीं आता कि हमारे लेख में इन पङ्क्तियों के होते हुए भी मित्रवर रेउजी ने उपर्युक्त निर्मूल आक्षेप क्यों किया।

इसी भाति आसोपाजी ने भी कहीं कहीं सहृदयता को तिलाञ्जलि दे न जाने क्या क्या कह डाला है और अपनी टाँग ऊपर रखने के लिए हमारे लेख और हमारी पुस्तक "शिवनाथभास्कर" से अवतरण देते हुए या हमारे कथन

१—अर्थात् महाराज काश के पुत्र काशिराज के पुत्र राष्ट्र के नाम पर से।

प्रलोभन [श्रीयुत एम० ए० रहमान, चग़ताई
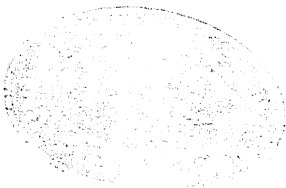
का आशय लिखते हुए बड़ी निरंकुशता और नादिरशाही से काम लिया है और अपनी सुविधा के अनुसार उनमें जहाँ तहा कुछ घटा-बढ़ा कर अर्थ का अनर्थ कर दिया है। जैसे प्राचीन लेखों के अनुसार दक्षिण के राष्ट्रकूटो (रट्टों) को हमने अपने लेख मे "यदुवंशी या दैत्य-वंशी" लिखा है (देखो पृ० १,०४६) और साथ ही इन दोनो ही पक्षों की पुष्टि में जो युक्तियां हमे सूझीं उनका उल्लेख भी किया है। उनके दैत्यवंशी होने की पुष्टि में बहुत कुछ लिखा है तो साथ ही उन्हें यदुवंशी न माननेवालों की युक्ति का भी खण्डन किया है। अपनी सम्मति हमने यही लिखी है कि "दक्षिण के राष्ट्रकूट (रट्ट) वास्तव में किस वंश में थे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता" (पृ० ११७७), तो भी आसोपाजी ने न जाने कैसे, हमारी, इन पंक्तियों से यह निष्कर्ष निकाला है कि "इसका तात्पर्य तो यह जाना जाता है कि आप राठौड़ों को यादववंशी नहीं मानते" (पृ० ६,२० कालम २) और इसी भाँति अर्थ का अनर्थ करके अपनी ऐसी ही और भी कई मनमानी सम्मतियाँ हमारे मत्थे मढ़ने का प्रयत्न किया है और हमने जो कुछ दक्षिण के राष्ट्रकूटों (रट्टो) के विषय में लिखा है उसे प्रायः सभी राठौरो पर घटित बताया है, जैसे—

(१) "हैहयवंशी राजा विज्जल के लेख में राष्ट्रकूटों का 'दितिजकुल' अर्थात् 'दिति से जन्म पाये हुए कुल' में होना लिखा है" (पृ० ६१६ कालम १)। आसोपाजी ने घटा-बढ़ा कर यह 'अवतरण' हमारी ओर से गढ़न्त कर लिया है और दक्षिण के राष्ट्रकूटों (रट्टों) के स्थान पर सभी राष्ट्रकूटों को घसीट लिया है।

(२) "आपने × × × राष्ट्रवंश को दैत्यवंशी ठहराने का यत्न किया है" (पृ० ६१६ कालम १)।

(३) "उक्त कथन की पुष्टि आपने राष्ट्रकूटों को बाणवंशी मान कर की है" (पृ० ६१६ कालम २)।

यहां भी आपने दक्षिण के रट्टों के बदले सभी राठौरो को लपेट में ले कर और हमारे अनुमान-मात्र को हमारा मत बता कर अर्थ का अनर्थ किया है।

(४) "राठौरों के गोत्रोच्चार में शुक्राचार्य को कुल गुरु कहते हैं, जिससे राष्ट्रकूटों का दैत्यवंशी होना पाया जाता है" (पृ० ६२० कालम १)। यह अवतरण भी आसोपाजी ने गढ़न्त करके हमारे मत्थे मढ़ दिया है।

हमने न तो कभी कहीं शुक्राचार्य को दैत्यगुरु कहा है (यद्यपि उनका एक नाम यह भी है) और न यही कहा है कि दैत्यो के अतिरिक्त उनके और कोई शिष्य थे ही नहीं, तो भी पृष्ठ ६२० में आप हमसे पूछते हैं कि— "क्या शुक्राचार्य दैत्यों के सिवा अन्य किसी के गुरु नहीं थे?" उत्तर में निवेदन है कि थे तो अवश्य, परन्तु गहरवार-वंश के कुलगुरु तो वे कभी नहीं थे और अब से प्रायः ३५० वर्ष पूर्व तो कदाचित् सीहाजी के वंशज भी उन्हें अपना कुलगुरु नहीं मानते थे।

आसोपाजी ने यह जानते और मानते हुए भी कि "पादानुध्यात शब्द पुत्र और उत्तराधिकारी के लिए शिलालेखों में देखने में आता है" (पृ० ६२२) कृष्णराज के सिक्के पर के 'महादित्यपादानुध्यात' के आधार पर दक्षिण के रट्टों को सूर्यवंशी बना देना चाहा है, परन्तु कृष्णराज न तो सूर्य का पुत्र था और न उत्तराधिकारी। तब फिर 'महादित्य' कृष्णराज के पिता का विरुद क्यों न माना जाय जैसा कि श्रद्धेय पण्डित गौरीशङ्कर हीराचन्दजी ओझा ने ('माधुरी' नवम्बर १९२७ में) माना है।

पृष्ठ ६२६ में आप कहते है कि "जब आप पुराणों के इतिहास को मानेंगे तब तो आपको यह भी मानना पड़ेगा कि विवस्वान् के पुत्र मनु के इला नाम की कन्या हुई। वही विष्णु के वरदान से पुरुष होगई। उसका नाम सुद्युम्न रक्खा गया। उसके तीन पुत्र हुए; उत्कल, गय और विनत। वही महादेव के शापित वन में जाने से पुनः स्त्री होगई। उसी (इला) में चन्द्र के पुत्र बुध से जो सन्तति हुई वह चन्द्रवंशी कहलाई।" कैसा अच्छा तर्क है! आपकी इस विलक्षण तर्कशैली के अनुसार तो इस उपनाम सुद्युम्न (आपकी 'इला') का प्रतिभास स्त्री से पुरुष या पुरुष से स्त्री होते रहना भी 'मानना पड़ेगा', क्योंकि पुराणों मे यह भी तो कहीं कहीं लिखा मिलता ही है। इसी भांति वैवस्वत मनु की छींक

से उनकी नाक-द्वारा इक्ष्वाकु का उत्पन्न होना, राजा सगर के ६,००० पुत्र होना, राजा युवनाश्व के (उनकी रानी के नहीं !) गर्भ रह कर मान्धाता नाम के पुत्र का उत्पन्न होना, राजा रेवत का लाखों वर्ष तक ब्रह्माजी के पास बैठकर गीत सुनते रहना, इत्यादि इत्यादि अतिशयोक्तियों और असम्भव गपोड़ों को, जो सच्ची ऐतिहासिक वंशावलियों के बीच बीच मे जहाँ तहाँ स्थान पा गये है, बिना पुरातत्त्वानुसन्धान की कसौटी पर कसे, अन्धपरम्परान्यायानुसार, बिना किसी शङ्का या तर्क के—पूर्ण आस्तिकतापूर्वक—निरा कोरा-खरा इतिहास ही मान लेना पड़ेगा। और इस कलियुग में सूर्यवंश और 'चन्द्रवंश' का तो कदाचित् अस्तित्व ही अस्वीकार करने पर बाध्य होना पड़ेगा और तब यह कहना कि अमुक आधुनिक राजकुल सूर्यवंश के अन्तर्गत है या चन्द्रवंश के अन्तर्गत है, निरर्थक और विडम्बना-मात्र ही होगा। तब आप दक्षिण के रट्टों को किस वंश में गिनायेंगे ?

आप कहते हैं कि "पुराणों का आश्रय लिये बिना प्राचीन विषय का कुछ भी ज्ञान नहीं हो सकता। आपने भी तो भागवत का ही प्रमाण देकर वंशावली लिखी है और वह भी तदनुसार नहीं किन्तु उससे विरुद्ध। * * * एक तो इला कन्या को आपने इल पुत्र मान लिया है, दूसरा आप इल को इक्ष्वाकु का पुत्र मानते हैं" (पृ० ६२६)। अपने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास के ज्ञान के लिए पुराणों के सच्चे ऐतिहासिक अंश की अमूल्य उपयोगिता को तो हम भी भलीभाँति जानते और कृतज्ञतापूर्वक मानते हैं, परन्तु आसोपाजी के उपर्युक्त कथन का शेषांश तो आद्योपान्त भ्रममूलक ही प्रतीत होता है। 'भागवत' का प्रमाण तो हमने केवल यह बताने को दिया है कि उस पुराण के अनुसार गहरवार-वंश की परम्परागत-कथन-सम्मत वंशावली में महाराज राष्ट्र का स्थान कहाँ है (देखो पृ० १,१८३)। वहीं हमने उस वंशावली को कुछ अधिक विस्तार के साथ वंशवृक्ष के रूप में दिया है, तहाँ स्पष्ट शब्दों में यह बता दिया है कि वह "पुराणों के अनुसार" संकलित की गई है, अर्थात् किसी एक ही पुराण के आधार पर नहीं। तो भी आप केवल 'भागवत' ही को पकड़कर बैठ रहे है।

इला के कन्या होने और पीछे, एक ही बार नहीं, बार बार स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री हो जाने की असंभव और अप्राकृतिक कहानी कई पुराणों में मिलती है। एक प्राचीन कहानी होने पर भी वह निरी कोरी कहानी ही है। यदि हम 'पुराणमित्येव न साधु सर्वं न चापि काव्यं नवमित्यवद्यम्' इस उपदेशपूर्ण कहावत को ध्यान में रखकर खोज करें तो हमें पुराणों ही मे जहां-तहां कई ऐसे वाक्य सुरक्षित मिल जायँगे जिनसे इस कहानी का खण्डन अपने आप हो जायगा। जैसे 'ब्रह्मपुराण' के ७ वें अध्याय में इला की उत्पत्ति की जो कहानी है उसमे तो वह जन्म ही से कन्या मानी गई है और इल का नाम तक नहीं लिया गया है, परन्तु १०८ वें अध्याय में वह वैवस्वतवंश में जन्मा हुआ इल नाम का राजा (वैवस्वतान्वये जात इलो नाम नरेश्वरः) कहा गया है और पीछे उसका दलबल-सहित मृगया को जाना, सपत्नीक वन में ही बस जाना, हयारूढ़ होकर एक यक्षिणी-द्वारा छल से उमा के शापित वन में जा घुसना, वहाँ इला होकर बुध की स्त्री और पुरूरवा की माता होना, और पीछे पुरूरवा की प्रार्थना पर गौरी-शंभु की कृपा से पुनः पुरुष (इल) हो जाना लिखा है। महाराज इल (सुद्युम्न) इस भाँति महाराज मनु के पुत्र ही प्रमाणित होते हैं। वे वास्तव में वैवस्वत मनु के दस पुत्रों में सबसे बड़े, इक्ष्वाकु से भी, बड़े थे। इसमें 'पद्मपुराण' (सृष्टिखण्ड) के ये श्लोक प्रमाण हैं—

> मनोर्वैवस्वतस्यापि दश पुत्रा महाबलाः ॥७५॥
> इलस्तु प्रथमस्तेषां पुत्रेष्ट्यः समकल्पितः ॥
>
> × × × × ॥७६,७७॥
>
> अभिषिच्य मनुः पूर्वमिलं पुत्रं स धार्मिकम् ॥
> जगाम तपसे भूयः पुष्करं स तपोवनम् ॥७८॥

इन पंक्तियों से प्रकट होता है कि वैवस्वत मनु के दस महाबली पुत्र हुए, उनमें पुत्रेष्टि-यज्ञ के प्रभाव से उत्पन्न इल प्रथम अर्थात् सबसे बड़ा था। जब महाराज मनु तपस्या को गये तब अपने बड़े पुत्र इल ही को

राज्याभिषिक्त कर गये थे। इसके सिवा सभी पौराणिक वंशावलियों में यह इल कई पुत्रों का पिता बताया गया है। 'हरिवंश' और 'ब्रह्मपुराण' में वह केवल 'मनोर्वंशविवर्द्धनः' ही नहीं, 'मनोर्वंशकरः पुत्रः' भी कहा गया है। (उदाहरणार्थ देखो 'विष्णुपुराण' अंश ४) इन सब प्रमाणों से 'चन्द्रवंश' अर्थात् अति प्राचीनकाल के ऐलवंश का महाराज वैवस्वत मनु के वंश अर्थात् सूर्यवंश के अन्तर्गत होना ही सिद्ध होता है। अतः हैहयवंशी यादवों के वे तीनों लेख जिनमें वे सूर्यवंशी बताये गये हैं और जिनका उल्लेख हमने अपने मत की पुष्टि में अपने मूल लेख में किया है, भ्रममूलक कदापि नहीं कहे जा सकते।

महाराज काश के पोत्र और महाराज काशिराज (काशिप) के पुत्र महाराज राष्ट्र और उनके वंश (आधुनिक गहरवार-वंश) का काशी के साथ अति प्राचीन और घनिष्ठ सम्बन्ध बताने के लिए हमने अपने मूल लेख में जो कुछ लिखा है उस पर अविश्वास-सा प्रकट करते हुए हमसे प्रमाण माँगने मे आसोपाजी ने जो अनभिज्ञता दिखाई है उससे हमें वास्तव में बड़ी निराशा हुई है। हमें तो आपके पौराणिक इतिहास और आर्ष ग्रन्थों के पाण्डित्य का बड़ा भरोसा था। काशी के साथ काश-वंश का प्राचीन घनिष्ठ सम्बन्ध तो एक ऐसा मोटा ऐतिहासिक सत्य है जिसका उल्लेख कोशकारों तक ने किया है। उदाहरणार्थ देखो 'वाचस्पत्यकोश' में काशिराज-शब्द की व्याख्या जिसका थोड़ा सा अंश हम यहाँ उद्धृत करते है—

> "काशिराज × × × काशिदेशाधिपे। तद्देशाधिपाश्च कालभेदेन यद्यपि बहवस्तथापि काशिनामकनृपेण तदन्वयेन तत्र काशीपुरीकरणात् तदन्वयजस्यैव तदधिपत्यं प्रथितं तदेतत् हरिवंश ३२ अ० वर्णितं यथा "काशेस्तु काशपो राजन् पुत्रो दीर्घतपास्तथा॥ + +

इसी श्लोकार्द्ध का पाठान्तर कहीं यह मिलता है—"काशस्य काशिपो[1] राजा पुत्रो दीर्घतपास्तथा।" 'दीर्घतमा' के स्थान पर 'दीर्घतपा' की भाँति कहीं कहीं 'काशिप' के बदले 'काश्यप' भी लिखा मिलता है, जो मान्य नहीं है। इस सम्बन्ध में 'विष्णुपुराण' और 'ब्रह्मपुराण' मे जो कुछ लिखा है सो भी द्रष्टव्य है।

'ब्रह्मपुराण' में भी इस श्लोकार्द्ध का पाठ यही दिया हुआ है।

पृष्ठ ६१६ में आसोपाजी लिखते है कि—"राष्ट्रकूटवंश का पता दक्षिण में छठी शताब्दी से प्रथम चलता है, फिर भी राष्ट्रकूट-वंश को बाण-वंश की एक शाखा मान लेना निरा साहस है।" परन्तु हम पूछते हैं कि यदि दक्षिण के राष्ट्रकूट (रट्ट) वंश का पता पांचवीं, चौथी या तीसरी शताब्दी से भी कुछ पूर्व तक चल गया होता तो उससे क्या यह रट्ट-वंश पुराणों मे कहे हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद, बलि और बाण के अति प्राचीन वंश की अपेक्षा अधिक प्राचीन मान लिया जा सकता था? और आठवीं, नवीं और दशवीं शताब्दियों के दक्षिण के बाणवंशी और गङ्गबाणवंशी क्षत्रिय राजाओं के नाम प्राप्त होने से यह अति प्राचीन बाणवंश एक सच्चा ऐतिहासिक क्षत्रिय-वंश और रट्टवंश की श्रीवृद्धि से पीछे तक विद्यमान प्रमाणित होता है तो फिर दक्षिण के रट्ट-वंश का, जिसे हम कन्नौज के गहरवार-वंश और जोधपुर के राठौर-वंश से भिन्न मानते है, बाण-वंश की एक शाखा होना निश्चयपूर्वक असम्भव कैसे कहा जा सकता है?

उक्त लेखक महोदयों के निर्मूल आक्षेपों के सम्बन्ध में हमे केवल इतना ही कहना है।

२—वीरसतसई का एक दोहा

'वीरसतसई' एक नई कविता-पुस्तक है। इस रचना को 'गङ्गावतरण', 'वीणा' और 'पल्लव' जैसी रचनाओं के रहते हुए शीर्षस्थान दिया गया है। इसी से इसकी महत्ता सिद्ध है। यही नहीं, गत वर्ष हिन्दी-सम्मेलन जैसी संस्था ने उसे 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' से पुरस्कृत करके इसके गौरव की और भी अधिक वृद्धि की है। परन्तु पुरस्कार-निर्णायकों ने किस कसौटी से कसकर उसे ऐसा महत्त्व प्रदान किया है, इसका हमें तो पता नहीं है। हाँ, इतना अवश्य अनुमान कर सकते हैं कि उक्त पुस्तक अपने विषय की अद्वितीय होगी। इसकी

१—काशिप = काशिराज।

एक एक पंक्ति में, उसके एक एक भाव में वह सजीवता, वह सौंदर्य और वह आकर्षण होगा, जो मनोवेगों की लहरों का शासन करता है। उसकी एक एक गति पर हृदय में धड़कन का वेग प्रबल होगा, उसकी गति के संवहन के साथ अन्तःकरण की सुप्त वीणा के तार कँप उठेंगे, उनमें ऐसी झनझनाहट पैदा हो जायगी जो एक हृदय से दूसरे हृदय में होती हुई समस्त देश और समस्त जाति के भावक्षेत्र में एक नूतनता और निरालापन पैदा कर देगी। इसके अतिरिक्त उसकी मूर्च्छना भी स्मृतिलोक में ऐसा आघात छोड़ जायगी, जो चिरकाल तक अपने प्रभाव को स्थायी रक्खेगा।

जो पुस्तक हमारे रत्न-भण्डार की एक चुनी हुई सर्वोत्कृष्ट मणि निश्चित की गई है, क्या हम उससे इतनी भी आशा न करें? इसके अतिरिक्त 'वीरसतसई' के नाम से Bardic Poetry का जैसा उत्साहप्रद भाव उदय होता है; इस पुस्तक में जिस शैली, जिस कवित्व और कविता के जिस विकसित रूप की कल्पना करने लगते हैं वह हमारी दलित और दासता-पाश से जकड़ी हुई मुमूर्षु जाति के उच्च भविष्य की एक उज्ज्वल रेखा है। किन्तु हमें यह बतलाते हुए सचमुच निराशा और दुःख होता है कि वीरसतसई हमारी कल्पना से बहुत पीछे है। इसके सात सौ दोहों में क्या विशेषता है, जिसके लिए हमें उसे पढ़ना चाहिए, इसे पूरी पढ़कर भी हम इस बात का निश्चय नहीं कर सके। बीसवीं शताब्दी के जिस युग में और हिन्दी-साहित्य की जिस अवस्था में, वीरसतसई, की रचना हुई है, उससे तो हमें यही कहना पड़ता है कि सौ बरस पहले इसकी रचना हुई होती तो वह समयानुसार कही जा सकती। क्योंकि यदि वह सामयिक रचना होती तो जनता में न सही पढ़े-लिखे समाज में तो उसका प्रचार होता। जिस पुस्तक की धुरन्धर विद्वानों ने प्रशंसा करके उसे सर्वोत्तम बतलाया है, उसका नाम ही कितने लोग जानते हैं—पढ़ने की बात तो पीछे आती है।

उसी सतसई का एक प्रसिद्ध दोहा यहाँ उद्धृत करके हम यह देखेंगे कि इसके भाव कितने मौलिक हैं! दूसरे स्थल से लिये गये भावों की हत्या करने में कवि ने कितनी ख़ूबी दिखाई है? इत्यादि

"जाहु भलै कुरुराज पँह, धारि दूत वर-वेश।
जैयौ भूलि न कहुँ वहाँ, केशव! द्रौपदि केश।"

—वीरसतसई

दोहे का भाव बहुत पुराना और प्रसिद्ध है। उसे एक नहीं अनेक सहृदय कवियों ने गुनगुनाया है। सबसे पहले ऋषिवर वेदव्यासजी ने महाभारत में उसे राकरुण और मर्मस्पर्शी शब्दों में व्यक्त किया। 'वेणी-संहार' में कवि ने उसे स्थान दिया। हमारे सुकवि बाबू मैथिलीशरण गुप्त ने उस पर एक अमर कविता लिख डाली। उसी भाव को वीरसतसईकार ने अपने दोहे में अभिव्यक्त किया है।—पाण्डवों की धर्म भीरुता पर आँसू बहाते हुए शोक-विह्वला पांचाली भगवान् श्रीकृष्ण से कहती है—'जाहु भलैं कुरुराज पहँ, धारि दूत वर-वेश। जैयौ भूलि न कहुँ वहाँ केशव! द्रौपदि-केश।'

सतसई के इस कहने के ढंग में कितना उत्तेजन है? दोहे को सुनकर, संधि की इच्छा से जाने को तैयार कृष्ण के भावों में कितना परिवर्त्तन हो सकता है? तथा दोहे का भाव अपने पूर्ववर्ती कवियों से कितना आगे बढ़ गया है, उसका भाव वहाँ तक मार्मिक हुआ है? यह बात नीचे के उद्धरण देखकर सहज ही अनुमान की जा सकती है।—

"हे श्रीकृष्ण! शत्रु जब संधि की इच्छा प्रकट करें तब, कर्तव्य निश्चित करते समय, दुःशासन के हाथ से खींचे गये मेरे इन बालों को याद रखिएगा। (पाण्डव यदि युद्ध से विमुख होकर दीनभाव से सन्धि करने को तैयार हो जायँगे तो मेरे वृद्ध पिता, मेरे महारथी भाई और महापराक्रमी अभिमन्यु-सहित मेरे पांचों पुत्र कौरवों से युद्ध करेंगे। जब तक दुष्ट दुःशासन के काले हाथ कट कर धूल में लोटते न देख लूँगी तब तक मुझे शान्ति कहाँ?)"

—हिन्दी-महाभारत पृष्ठ १,६६८

"करुणासदन! जब कौरवों से सन्धि तुम करने लगो।
चिन्ता कथा सब पाण्डवों की शान्त हो हरने लगो।

हे नाथ ! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की कथा।
है प्रार्थना, मत भूल जाना याद रखना सर्वथा।"
—केशों की कथा—मैथिलीशरण गुप्त

यहाँ यह न भूलना चाहिए कि सतसई का यह दोहा सम्भवतः सर्वोत्कृष्ट है, तो भी यह अपने पूर्व-वर्ती कवियों के उद्धरणों के सामने बिलकुल फीका पड़ जाता है। इसे गुप्तजी के पद्य के पास रखने से ऐसा मालूम पड़ता है जैसे उसमें जान ही नहीं है। "हे नाथ ! तब इन मलिन मेरे मुक्त केशों की कथा। है प्रार्थना मत भूल जाना याद रखना सर्वथा' के हृदय-स्पर्शी भाव के सामने 'जैयौ भूलि न कहुँ वहाँ, केशव ! द्रौपदि-केश' कितना शिथिल और प्राणहीन है। तथा 'धारि दूतवर-वेश' में 'वर' शब्द कितना असंगत जँचता है। और यदि यह उक्ति द्रौपदी ही की कृष्ण के प्रति है तो 'द्रौपदि-केश' के स्थान पर 'मेरे केश' कहना चाहिए था। क्योंकि सामने खड़ी हुई द्रौपदी कृष्ण से 'मेरे केशों को न भूल जाना।' ही कहेगी, 'द्रौपदी के केशों को न भूल जाना' कहकर सर्वनाम के उपयोग को व्यर्थ नहीं करेगी।

यहाँ हम स्थानाभाव से अधिक न कहेंगे। हां, समय मिलने पर 'वीरसतसई' के अन्य दोहों पर भी प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

१—तमाखू का व्यापार

माखू की खपत संसार में दिन पर दिन बढ़ रही है। वैसे तो सभी देशों में तमाखू पैदा होती है, और हम सरस्वती के भी किसी अङ्क मे इस व्यापार के सम्बन्ध मे पाठकों का ध्यान आकर्षित कर चुके हैं। ब्रिटिश-साम्राज्य में जहाँ जहाँ तमाखू पैदा होती है, उनमें भारतवर्ष का स्थान भी उल्लेखनीय है। भारतवर्ष में प्रायः सभी जगह तमाखू पैदा होती है। बङ्गाल में रङ्गपुर की तमाखू बढ़िया होती है और उसकी खपत रङ्गून में ख़ूब होती है। आज-कल तमाखू से चुरट, सिगरेट और बीड़ी अधिकतर बनती है। रङ्गून के बढ़िया चुरट इसी तमाखू से बनते हैं। ग्वालियर में खाचरौद की तमाखू भी साधारणतः अच्छी है। ग्वालियर, इन्दौर और संयुक्त-प्रान्त के अनेक स्थानों में तमाखू की पैदावार इसी लिए हलके दर्जे की होती है कि हमने उसके बोने और तैयार करने में नई तरकीबों का आश्रय नहीं लिया।

भारतवर्ष में इसकी पैदावार बढ़ाई जाय और सिगरेट और चुरुट भी यहीं बनाये जायँ तो लाखों रुपये की बचत हो सकती है। बीड़ी और सिगरेट की इतनी खपत है कि कुछ ठिकाना नहीं। विदेशों में यूनाइटेड किंगडम में तमाखू की खपत अत्यधिक है। ब्रिटिश-साम्राज्य से ३० प्रति सैकड़ा चुरुट की तमाखू यूनाइटेड किंगडम मे जाती है। पर सिगरेट की तमाखू १० प्रतिसैकड़ा ही साम्राज्य की पूर्ति कर सकी। यूनाइटेड किंगडम में १९१४ में प्रति मनुष्य पीछे २४ पौंड तमाखू की खपत हुई थी, पर १९२७ में यह औसत ३-४ पौंड तक बढ़ गई है। इससे जाना जाता है कि सिगरेट पीने की आदत विलायत में कितनी बढ़ गई है! इतना ही नहीं वहाँ की स्त्रियां भी ख़ूब तेज़ी से सिगरेट पीने लग गई हैं। इसके अलावा १९२६ में बेलजियम में ६·६ पौंड, अमेरिका में ६·०२ पौंड और जर्मनी मे ४ पौंड प्रतिमनुष्य तमाखू के खर्च का औसत है। विलायत में पहले चुरुट का अत्यधि प्रचार था, पर आज-कल चुरुट फ़ैशन के बाहर हो गया और सिगरेट का प्रचार बढ़ गया है—

	प्रतिसैकड़ा	
	१९००	१९२४
सिगरेट	२३·८	५८·५
चुरुट	७१·१	४०·
सिगार	५·१	१·५

विदेश के व्यापारियों की यह राय है कि १९२४ से और भी सिगरेटकी खपत बढ़ गई है। चुरुट की तमाखू की तो अब विलायत में बहुत कम खपत होती है। अकेले यूनाइटेड किंगडम की ही नहीं, सारे योरप की ही ऐसी अवस्था है। जर्मनी में चुरुट की तमाखू की अधिक खपत है, पर अब वहाँ भी सिगरेट की खपत बढ़ रही है।

अमेरिका में चुरुट की तमाखू का अधिक प्रचार नहीं है; बल्कि वहाँ लोग खाते भी हैं। पर आज-कल सिगरेट की भी खपत बढ़ती जा रही है। भारतवर्ष में भी युद्ध के पूर्व एक अरब सिगरेट की खपत होती थी, वहाँ अब ६ अरब ५० करोड़ खपत होने लगी है। इस प्रकार सारे संसार में सिगरेट की खपत बढ़ रही है, पर यूनाइटेड किंगडम में प्रतिमनुष्य की खपत का औसत सबसे अधिक है। अब यह भी देखना चाहिए कि संसार में तमाखू की पैदावार कैसी है। १९०९ से १९१३ तक भारतवर्ष और चीन को छोड़कर तमाखू की वार्षिक पैदावार का अनुमान २ अरब ३० करोड़ ४ लाख पौंड के क़रीब था। १९२० से १९२२ तक पैदावार का औसत २६ अरब ६७ करोड़ ३० लाख पौंड का था। १९२६ में पत्ता तमाखू की खेती ३ अरब ४१ करोड़ ५० लाख पौंड की हुई थी। इसी वर्ष भारतवर्ष और चीन में १ अरब ४८ करोड़ २० लाख पौंड पदावार का अनुमान था। यदि यह पदावार शामिल कर ली जाय तो १९२६ में सारे संसार की तमाखू की पैदावार ४ अरब ९० करोड़ पौंड थी। अमेरिका और ब्रिटिश-साम्राज्य में संसार की आधी तमाखू पैदा होती है। ब्रिटिश-साम्राज्य में तमाखू की पैदावार भारतवर्ष, कनाडा, दक्षिण अफ़्रीका (यूनियन राज्य), रोडेशिया, आस्ट्रेलिया और साइप्रस आदि देशों में होती है। इतनी पैदावार होने पर भी ब्रिटिश-साम्राज्य का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रमुख स्थान नहीं है। कारण, कुछ ऐसे देश हैं, जहाँ अधिक पैदावार होने पर खपत भी सबसे अधिक होती है। भारत-वर्ष और चीन के उदाहरण काफ़ी हैं। १९२५ में ४ अरब ६० करोड़ पौंड में से १ अरब २४ करोड़ पौंड—कोई एक चौथाई संसार की पैदावार—का अन्तर्राष्ट्रीय बाज़ार में आयात हुआ। इसके अतिरिक्त शेष पैदावार दोनों देशों में खप गई। इस प्रकार दिन पर दिन तमाखू की अधिक खपत देखकर कई विदेशी राज्य अपनी पैदावार बढ़ाने में लगे हैं। पर भारतवर्ष में पैदावार बढ़ाने का वस्तुतः कोई भी प्रयत्न नहीं हो रहा है। इस समय यह आवश्यकता है कि हम ऊँची जाति की तमाखू पैदा करने के अलावा सिगरेट और सिगार बनाने के भी कारख़ानें खोलें, जिससे देश के लाखों रुपये बिदेश जाने से बच जायँ।

—जी० एस० पथिक

२—नक़ली सिक्के

१९२६-२७ में केवल बङ्गाल में १६,३४५ नक़ली रुपये, ६७१ अठन्नियां, ३२४ चवन्नियां और ५३ दुअन्नियां पकड़ी गई। अनुमान किया जाता है कि इनके अति-रिक्त १०० सैकड़े ऐसे सिक्कों का व्यवहार हुआ जो नहीं पकड़े जा सके।

यह एक साधारण बात है कि जब कोई कभी दस रुपये का नोट भेजता है तब उसे उसमें कम से कम एक नक़ली भी रुपया मिल जा सकता है। यदि उसे अठन्नी, चवन्नी, दुअन्नी और एकन्नी की आवश्यकता हुई तब तो पूछना ही क्या। अवश्य उनमें दो-चार नक़ली अठन्नियाँ, चवन्नियां, दुअन्नियां या एकन्नियां मिलेंगी। भारतवर्ष में नक़ली सिक्कों का प्रचार है, इसी से बैंकों, ख़ज़ानों अथवा व्यापार की जगहों में बजाये अथवा भले प्रकार देखे-भाले बिना रुपया या रेज़कारी नहीं ली जाती।

साधारण जनता इस ओर उतना अधिक ध्यान नहीं देती। इसका कारण और कुछ नहीं, केवल उनकी लापरवाही अथवा समयाभाव अथवा धैर्य्याभाव हो सकता है। बहुत से ऐसे भी लोग हैं जो देखते ही जान जाते हैं कि सिक्का ख़राब अथवा अच्छा है, पर जो बेचारे भोले-भाले गँवार सिक्का परखना नहीं जानते वे बे-तरह ठगे जाते हैं।

नक़ली सिक्का को चलाना सहज है, इसी लिए साधा-रण लोगों में वे चले जाते हैं, किन्तु बैंक वा ख़ज़ाने में पहुँचते ही उनके दो टुकड़े कर दिये जाते हैं और वहीं से उनका चलना बन्द हो जाता है। पर जाली नोटों को चलाना उतना आसान नहीं, क्योंकि पकड़े जाने पर चलानेवाले को पूर्ण दण्ड मिलता है। इतना होने पर भी जाली नोट हाथों हाथ होते हुए ख़ज़ाने तक पहुँच जाते हैं, जहाँ वे नष्ट कर दिये जाते हैं।

गत तीन वर्षों में ख़ज़ानों, रेलवे-स्टेशनों और टकसालों में पकड़े गये चाँदी के नक़ली सिक्कों की संख्या आगे दी जाती है।

सन्	रुपये	अठन्नी	चवन्नी	दुअन्नी
१९२४-२५—	८४,०६६	४,१२३	६,०६७	२,१०२
१९२५-२६—	८७,२५३	४,३३८	६,१८२	२,११३
१९२६-२७—	१,०२,७९८	५,३१६	५,९१८	२,५५३

गत वर्ष बम्बई, बङ्गाल, विहार और उड़ीसा मे नक़ली रुपये खूब चले। रेलवे-स्टेशनों और ख़ज़ानों मे कटी हुई निकेल की नक़ली रेज़कारियों की संख्या इस प्रकार है—१,५५१ अठन्नियाँ, १५,०५६ चवन्नियाँ, १७,३८५ दुअन्नियाँ और ९,८८३ एकन्नियाँ।

उपर्युक्त संख्याओं से विदित होता है कि दिनोंदिन नक़ली रुपयों, अठन्नियों और दुअन्नियों की संख्या में क्रमशः वृद्धि होती जा रही है और चवन्नियो की संख्या घटती जाती है। आशा की जाती है कि इस वर्ष उनकी संख्या और भी बढ़ेगी।

करेन्सी के एक अफ़सर का कहना है कि नक़ली सिक्के दिल्ली और युक्त-प्रान्त में अधिक चले, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि नक़ली सिक्के वहां अधिक बनाये भी गये। ऐसा विश्वास है कि भारत में प्रचलित नक़ली सिक्कों में अधिकांश बरमा से आये।

नक़ली सिक्को के बनानेवालो ने अधिकतर रुपये ही बनाये, क्योंकि एक रुपया में नौ आने से अधिक की चांदी नहीं होती और एक रुपये का असली मूल्य स्वीकृत मूल्य से कहीं कम होता है। निकेल की रेज़कारियां भी बहुत बनाई गईं, किन्तु कच्चा काम होने के कारण आसानी से पकड़ ली गईं।

गत वर्ष भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों में पकड़े गये नक़ली सिक्को की संख्या—

प्रान्त	रुपये	अठन्नियां	चवन्नियां	दुअन्नियां
मदरास	८,२८६	७७२	१,५७७	५७७
बम्बई	२२,०४२	१,१७९	१,९२४	१,३४८
बङ्गाल	१६,३४५	६७१	३२४	५३
युक्त-प्रान्त	१२,५०६	८१०	२३४	८५
पञ्जाब और उत्तरी पश्चिमी भारत	१७,१८०	६३१	५९८	२०२
बरमा	३,०१०	३२३	३९९	२४
बिहार व उड़ीसा	१०,४३४	४०३	१२३	८
मध्य-प्रदेश	२,९६६	९६	७०	१८
आसाम	१,३८३	९२	२५७	४
अन्य स्थान	८,५९५	३३९	४१९	११०

देश में इन नक़ली सिक्कों के व्यवसाय से जन-साधारण तथा सरकार की बड़ी हानि होती है। सरकार इनके बनानेवालों के यद्यपि पीछे पड़ी रहती है, तो भी इनका धन्धा जारी ही है।

—आर०
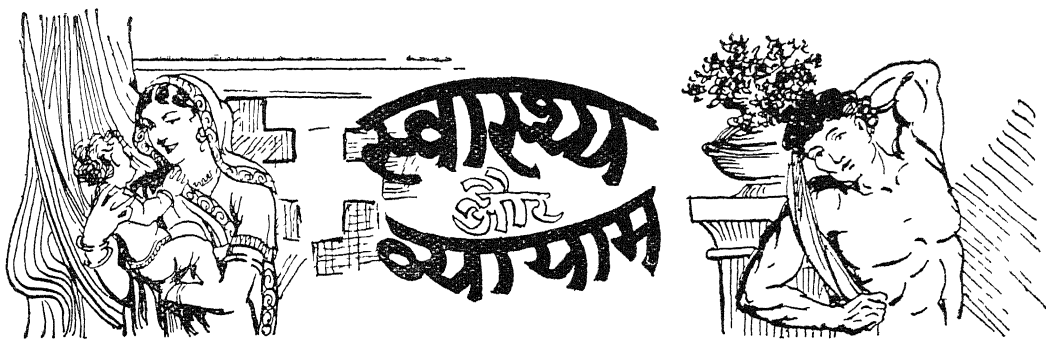
क्या वृद्धावस्था अवश्यम्भावी है ?

[श्रीयुत श्याममनोहर शर्मा]

अनेक विद्वानों का मत है कि विज्ञान की सहायता से वृद्धावस्था को रोक कर जीवन की अवधि बहुत कुछ बढ़ाई जा सकती है। इसमें सन्देह नहीं कि आज-कल के वैज्ञानिकों को वृद्धावस्था के उन सब कारणों की, जिनके द्वारा शरीर में नाना प्रकार के परिवर्तन होकर मनुष्य को मृत्यु की ओर अग्रसर करते हैं, पहले की अपेक्षा अधिक जानकारी हो गई है। किन्तु डाक्टर मेनार्ड का कथन है कि इस जानकारी से कोई विशेष लाभ नहीं है, मनुष्य को वृद्ध होना ही पड़ेगा। कुछ दिन हुए डाक्टरों ने कहा था कि हमारे शरीर के अन्दर जो बड़ी अँतड़ी (Large intestine) है उसके अन्दर टक्सिन (toxin) नामक पदार्थ जम कर हम लोगों को मृत्यु की ओर अग्रसर करता है। यदि शरीर से यह अङ्ग निकाल कर फेंक दिया जाय तो वृद्धावस्था रुक कर जीवन को बढ़ा सकती है। परन्तु केवल टक्सिन ही हमारे जीवन के विनाश का एक-मात्र कारण नहीं है, इसके और भी अनेक कारण हैं। ऐसी दशा में बड़ी आंत को निकाल डालने से ही बुढ़ापे से पिण्ड छूटने की सम्भावना नहीं है।

प्रकृति का नियम है कि पूर्णता को प्राप्त होते ही क्षय आरम्भ हो जाता है। जब तक पूर्णता नहीं आती तब तक तो वृद्धि होती रहती है और पूर्णता के आते ही क्षय होने लगता है। चाहे कोई भी जीव हो, जब उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पूर्ण हो जाते हैं तब उसका क्षय भी आरम्भ हो जाता है। अङ्गों के पूर्ण होने की अवस्था का भार वंश तथा स्वास्थ्य के अनुसार कभी कम और कभी अधिक मात्रा में मालूम पड़ता है किन्तु वह अवश्यम्भावी है।

लोगों की धारणा है कि बुढ़ापे के कारण यदि मालूम हो जायँ तो उसके दूर करने का उपाय किया जा सकता है। बहुत दिनों से इस सम्बन्ध मे तरह तरह के प्रयत्न किये जा रहे है, किन्तु उनसे कोई भी आशाजनक परिणाम निकला नहीं प्रतीत होता। यह समस्या न जाने कितने वैज्ञानिकों के मस्तिष्क में चक्कर काट चुकी है। पहले लोगों का विचार था कि वृद्ध के शरीर में यदि किसी युवा का रक्त प्रविष्ट कर दिया जाय तो उसका शरीर बलवान् हो जाता है। बहुतों ने इसका प्रयोग भी किया है। किन्तु किसी ने उद्योग में सफलता प्राप्त की हो, प्रायः कोई भी नहीं सुना गया। आज-कल एक दूसरी रीति से इस उपाय का अवलम्बन किया जा रहा है। किन्तु इस प्रकार भी रक्त प्रविष्ट करके किसी निर्बल अङ्ग को कोई भी बलवान् नही बना सका।

---

* सङ्कलित

जीव-मात्र का नियम है कि अपने चारों ओर वह जो कुछ सामग्री पाता है, उसे ग्रहण कर लेता है और यथा-सम्भव उसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए उपयुक्त बना कर अवशिष्ट अंश का परित्याग कर देता है। जीवाणुओं की परीक्षा करके देखा गया है कि इन परित्यक्त पदार्थों की मात्रा जितनी ही बढ़ जाती है, उतना ही जीवाणु जराग्रस्त एवं दुर्बल हो जाते हैं। किसी नवीन स्थान पर जाते ही वे फिर ताज़े होकर चलने-फिरने लगते हैं।

डाक्टर मेनार्ड का कथन है कि मानव-शरीर की भी ठीक यही दशा है। शरीर के सब प्रकार के मल स्वाभाविक मार्ग से निकल जाया करते हैं। अङ्ग की दुर्बलता के लिए जब यह कार्य उचित रीति से नहीं होता, मल जब शरीर के भीतर ही रह जाते हैं, तभी शरीर में गड़बड़ हो जाता है। सबसे पहले शरीर में अँगड़ाई मालूम पड़ती है। इस अवस्था मे विश्राम करना और सोना आवश्यक है। छोटी-मोटी शिकायतें केवल इतने ही से दूर हो जाती हैं।

शरीर में कई प्रकार के ऐसे मल होते हैं, जो पूर्ण रूप से नहीं निकल पाते, उनका कुछ अंश शरीर के भीतर ही रह जाता है। अन्त में वही शरीर की भिन्न भिन्न अस्थियों में चिपट जाता है। यही बुढ़ापे का कारण है।

इस सिद्धान्त के प्रचारक हैं ले-दांटेक उनका कथन है कि जराग्रस्त प्राणियों की मांसपेशी में इन सब पदार्थों के चिह्न पाये जाते हैं, किन्तु इससे मासपेशी को कोई अधिक हानि-लाभ नहीं है। मल जब धमनियों में चिपट जाता है और शरीर के किसी भी अङ्ग में रक्त का दौड़ना बन्द हो जाता है, तभी शरीर को अनिष्ट की सम्भावना होती है। इस दशा मे धमनी के दुर्बल होकर फट जाने की आशङ्का रहती है। इस प्रकार के मल जिस किसी के भी शरीर मे एकत्र हो जाते हैं, एकाएक उसके रुग्ण हो जाने की बड़ी आशङ्का रहती है। इसी लिए डाक्टर लोग कहते हैं कि जैसे जैसे हमारी धमनियां वृद्ध होती जाती है, वैसे ही हम भी वृद्ध होते जाते है। इस कारण को दूर करने के निमित्त आज तक किसी भी उपाय का आविष्कार नहीं किया जा सका।

माइक्रोफ़ेगस (Microphages) नाम के कुछ जीवकोष है, जो स्वस्थ जीव-कोषों को खा जाते है। ये प्रायः सदा ही शरीर मे वर्तमान रहते है और शरीर के मूल-वस्तु को ही हानि पहुँचाया करते हैं। इनकी संख्या बढ़ जाने पर अच्छे जीव-कोषों का कम हो जाना स्वाभाविक है। अनेक विद्वानों की सम्मति है कि उस दशा मे ओषधि की सहायता से उनका विनाश कर डालना चाहिए। किन्तु ले-दांटेक का कथन है कि यदि अच्छे कोष अपने को इस प्रकार नष्ट होने दें तो समझना चाहिए कि ये अवश्य निर्बल हो गये है। ऐसी अवस्था आने पर माइक्रोफ़ेगसों के लिए किसी प्रकार की चिन्ता न करके अन्य कोषों को ही सतेज करने का प्रबन्ध करना चाहिए। माइक्रोफ़ेगस तो रहेगे ही, उनका दमन करके ही रखने की आवश्यकता है। अवस्था अधिक होने पर जीव-कोष दुर्बल होकर माइक्रोफ़ेगस के पेट मे जाने लगते है। मादक द्रव्यों के व्यवहार तथा अनेक संक्रामक रोगों मे भी ऐसा ही हुआ करता है।

शरीर के भीतर जितने विष उत्पन्न होते है उनमें से अधिकांश मूत्राशय की सहायता से बाहर निकल जाते है। बहुत अंशों में मूत्राशय की आरोग्यता पर ही शरीर की आरोग्यता निर्भर है। धमनी के समान मूत्राशय भी जैसे जैसे जराग्रस्त होता जाता है, वैसे वैसे हमारा शरीर जीर्ण होता जाता है।

कुछ डाक्टरों का मत है कि किसी भी जन्तु के मूत्राशय का उसी श्रेणी के अन्य जन्तु के शरीर में उपयोग किया जा सकता है। यदि किसी दुर्घटना के कारण मरे हुए युवक का मूत्राशय किसी वृद्ध के शरीर में लगाया जा सके तो बहुत सम्भव है कि उसका बुढ़ापा दूर हो जाय।

माइक्रोफ़ेगस एवं दूषित मूत्राशय के अतिरिक्त बुढ़ापे के और भी बहुत से कारण हैं। परन्तु कोई भी व्यक्ति अपनी अस्थि, धमनी, यकृत्, मस्तिष्क आदि को कहा तक बदल सकता है? ऐसी दशा मे हम लोगों का वृद्ध हो जाना अवश्यम्भावी है।*

कोमल शिक्षा-प्रणाली का रहस्य

र्तमान युग में सामाजिक, राजनैतिक और धर्मनीति में जैसी कुछ स्वाधीनता का उपयोग हम कर रहे हैं उसका प्रचुर प्रभाव शिक्षा-सम्बन्धी आदर्शों और प्रणालियों पर भी पड़े बिना नहीं रह सकता। शिक्षक और अभिभावक दोनों समान रूप से इस बात को अब समझने लगे हैं कि कोमलतर साधनों से बच्चों को शिक्षा दी जानी चाहिए तथा उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और नैसर्गिक क्रियाओं को समुचित प्रकार से सन्तुष्ट करना चाहिए। यह सोचने के बदले कि बच्चों का मन सादी पट्टी के समान है अर्थात् संस्कारहीन है, अब ऐसा विश्वास किया जाता है कि बच्चा एक उन्नतिशील जीवित वस्तु है। पुरानी अन्ध-विश्वासवाली प्रथा अब छोड़ी जा रही है तथा शिक्षा के मार्ग सुलभ और रुचिकर बनाने के लिए कोमल और रोचक रीतियों और साधनों का प्रयोग किया जा रहा है। शिक्षा के पुराने ऊबड़-खाबड़ रास्तों के स्थान पर कोमल शिक्षा-प्रणाली की चिकनी सड़क तैयार की जा रही है।

कोमल शिक्षण-कला और कुछ नहीं है। यह कोमल और मृदुल रीतियों से शिक्षा देने की कला-मात्र है। छात्र के उद्योग को लघुतम करके, कठिनाइयों को दूर करके, और सभा सिखावन को सुखद और रोचक बनाकर विद्याप्राप्ति का मार्ग सरल सुगम ही नहीं, बल्कि चित्ताकर्षक भी बनाया जाना चाहिए। कोमल-शिक्षण-कला का अभीष्ट है कि बच्चों की स्वभाव-सिद्ध क्रियाओं और प्रकृत प्रतिक्रियाओं को काम में लाकर उनका मानस या मन खोल दिया जाय तथा बिना किसी दबाव के उनकी गुप्त शक्तियों का विकास किया जाय। इस कोमल वर्तमान शिक्षण-विज्ञान से कर्कश पुराने शिक्षा-शास्त्र का विरोध है। आज्ञा वा सूचना द्वारा शिक्षा देना और बच्चे की भीतरी शक्तियों को प्रकटित करके शिक्षा देना, दोनों में बहुत अन्तर है। पहले को अँगरेज़ी में 'इंस्ट्रकशन' और दूसरे को 'एडूकेशन' कहते हैं। इन दोनों शब्दों के लिए यथार्थ भेद-सूचक उपयुक्त हिन्दी-शब्द मुझे नहीं मिले। कर्कश शिक्षा-शास्त्र ने कभी इस बात की परवा नहीं की कि जिस विषय को बच्चों के सामने सीखने के लिए रखना है वह सुखकर, रोचक तथा बाल-विकास के विभाग-विशेष के अनुकूल है या नहीं। उद्देश केवल यह कि बालक का मस्तिष्क यथासम्भव अधिक से अधिक विषयों से भर दिया जाय। एक ओर तो बच्चे की बुद्धि को विकसित करने की चेष्टा बहुत कम की जाती थी और दूसरी ओर स्मरण-शक्ति भारी

बोझ से दबाई जाती थी। लाठी या पशुबल का शासन उस समय प्रचलित था। इसलिए उस ज़माने में विद्या सीखना बहुत दुःखद काम था। दैनिक पाठ के लिए कोई भाग नियत कर दिया जाता था और चेले को उसे कंठस्थ करना पड़ता था—कोई चिन्ता नहीं वह उसे समझ कर याद करे या बे-समझे! शिक्षा की ऐसी दुरवस्था योरप के पुनरुद्धार-युग (Renaissance period) तक जारी रही। परन्तु शिक्षा-शास्त्री पेस्टालोजी साहब के समय में धारा फिरी और सुधार शुरू हुआ। शिक्षा-विज्ञानी फ्रोबल साहब ने बच्चों की प्रकृति का अध्ययन करके शिक्षा के क्षेत्र मे किंडरगार्टन (बालोद्यान) नामक शिक्षा-प्रणाली को अस्तित्व प्रदान किया। इस प्रणाली का निर्माण बच्चों की स्वभाव-सिद्ध क्रियाओं पर हुआ है। इसमें दबाववाली रीति के स्थान में बच्चे को फुसलाने-वाली रीति और कर्कश शिक्षा-शास्त्र के स्थान में कोमल शिक्षा-शास्त्र गृहीत हुआ।

"शिक्षा देते समय अभिरुचि को जागृत करना चाहिए।" वर्तमान कोमल शिक्षा-विज्ञान मनोविज्ञान की दृष्टि से इसी सिद्धान्त पर स्थित है। कोई वस्तु रोचक है—इसका मतलब यह है कि ध्यान खींचती है। कोमल-शिक्षा-शास्त्र का विशाल भवन दो खम्भों पर खड़ा है—रुचिस्तम्भ और ध्यानस्तम्भ। बच्चा पाठ पर ध्यान दे, इसलिए रुचि का उत्पन्न किया जाना अपरिहार्य है। शिक्षक को चाहिए कि बालक का ध्यान आकर्षित करने के लिए पाठ को रोचक बनावे, जिसमें बच्चे को पाठ रुचे; ऐसा उद्योग करे कि बच्चा उसे पसन्द करने लगे। इतना होने पर भी शिक्षक को यह याद रखना चाहिए कि इस काम में बच्चे को यह मालूम न होने पावे कि कोई उसका ध्यान खींच रहा है। बच्चे को कोई उद्योग न करना पड़े, पर उसका ध्यान अनिच्छापूर्वक पाठ की ओर खिंच जाय। ऐसा करने के लिए शिक्षक को जानना चाहिए कि उसका मन स्वभावतः किन चीज़ों में लगता है। शिक्षक को उचित है कि बच्चे की उन स्वभावसिद्ध प्रवृत्तियों को काम में लावे जिनको लेकर वह जन्मा है। ये स्वभावसिद्ध प्रवृत्तियाँ मोटी तरह से छः भागों में बाँटी गई है—

(१) अभिनय-प्रवृत्ति, जो कर्म करने में उपयोगी है।

(२) हस्तकौशल-प्रवृत्ति, जो चित्रांकण, रंगसाज़ी और मूर्तिचित्रण के लिए लाभदायक है।

(३) संगीत-प्रवृत्ति, जो गाने-बजाने और नाचने में सहायक है।

(४) हेतु-प्रवृत्ति, जो वस्तुओं के हेतु वा कारण को जानना चाहती है।

(५) विधायक प्रवृत्ति, जिसके द्वारा लड़के खिलौने और घरौंदे बनाते और तोड़ते है।

(६) वाचन-प्रवृत्ति, जिसके द्वारा लड़के बात-चीत करते है।

इन सब चीज़ों में बच्चे की स्वाभाविक रुचि होती है। बच्चों के साथ बातचीत करने से, दृश्यों और अभि-नयों में भाग लेने देने से, गाने-बजाने तथा चित्र खींचने और मूर्ति बनाने के सामान देने से और उनके प्रश्नों का बाल-सुलभ उत्तर बिना उकताये हुए और चिड़चिड़ाये हुए देने से बच्चों का पाठ अधिकांश में रोचक बनाया जा सकता है। प्रोफ़ेसर जेम्स का कथन है कि शिक्षा बच्चों को वस्तुओं-द्वारा, पर्यवेक्षणों-द्वारा और कहानियों-द्वारा अवश्य दी जानी चाहिए।

शिक्षाशास्त्री हरबर्ट साहब की पाँच सीढ़ियों-वाली पढ़ाने की रीति अभिरुचि के ही सिद्धान्त पर निर्धारित की गई है। सभी ऊँची मानसिक शक्तियों की उन्नति ध्यान पर निर्भर करती है। इसलिए छात्रों के ध्यान को उन्नत और वशीभूत करना शिक्षक का अत्यावश्यक कर्तव्य है। कोमल शिक्षा-प्रणाली के पक्षपातियों ने ध्यान आकर्षित करने के लिए 'अभिरुचि' रूप रामबाण महौषध प्राप्त किया है। लेकिन इस अभिरुचि के सिद्धान्त के विरुद्ध, जिसका प्रयोग कोमल शिक्षण-कला में प्रचुरता से किया जाता है, कई आपत्तियाँ है।

सबसे पहले तो हर एक चीज़ में अभिरुचि खोजने से स्वार्थपरता की उत्पत्ति होती है, क्योंकि यथार्थ में अभिरुचि केवल स्वार्थ का रूपान्तर है, और कुछ नहीं है। किन्तु इस आपत्ति में यथार्थता से बढ़ कर भावुकता की गंध आती है। दूसरे, अभिरुचि के सिद्धान्त पर शिक्षा देने से कर्तव्य-पालन की बुद्धि के लिए कोई जगह नहीं रह जाती है। "कर्तव्य के लिए कर्तव्य करना"—

इस अमृतमय उपदेश के लिए छात्र का हृदय बंद हो जाता है। किन्तु कर्तव्यपालन सदा अरोचक ही नहीं होता। हाँ, कभी-कभी हो सकता है। तीसरी बात यह है कि अभिरुचि को सदा काम में लाने से स्कूली शिक्षा के लाभ नष्ट हो जाते हैं। अभिरुचि उत्पन्न करने के लिए शिक्षक का एकपक्षीय उद्योग छात्रों को इच्छापूर्वक ध्यान की आदत लगाने से और स्वयं उद्योग करने से रोकता है। इस भाँति कोमल शिक्षा-प्रणाली-द्वारा शिक्षित लोग कमज़ोर हो जाते है। वे लोग अरोचक और कठिन कामों को नहीं कर सकते। पर जीवन की दौड़ मे ऐसे कामों की अत्यन्त आवश्यकता है। इस आपत्ति का समाधान यह है कि कोई बात रुचिकर बनाकर जब छात्रो के सामने रख दी जाती है और उसके साथ सुखकर सम्बन्धों का स्थापन कर दिया जाता है तब उद्देश की प्राप्ति के लिए छात्र स्वयं उद्योग करते हैं। पढ़ाने के विषय में शिक्षक जो अभिरुचि उत्पन्न कर देता है वह छात्रो की उद्योग-शक्ति को उत्तेजित करने के लिए काफ़ी सिद्ध होती है। किसी प्रकार का अरुचिकर या परिश्रम का काम अभिरुचि के द्वारा सिर्फ़ सहने योग्य बना दिया जाता है। इसलिए अभिरुचि और उद्योग दो विरुद्ध शक्तियाँ नहीं हैं, बल्कि सम्बद्ध और परस्पर सहायक है। उसी उद्देश की प्राप्ति के लिए हम लोग उद्योग करते है जो रुचिकर है।

कर्कश शिक्षा-प्रणाली की अपेक्षा कोमल शिक्षा-प्रणाली से अधिक लाभ है। पहले तो कोमल शिक्षा-प्रणाली विषय को रोचक और सुखदायक बनाकर विकास की नियमानुकूल क्रिया को उन्नत करती है। दूसरे उदासीनता और घृणा की अवस्था की अपेक्षा भावना की सुखदायक अवस्था बुद्धि की क्रियाओं को सहायता पहुँचाने में कहीं बढ़कर है। तीसरे यह छात्र के चित को आनन्द से भर देती है। चौथे इसका असर विद्यार्थी की तन्दुरुस्ती पर बहुत अच्छा पड़ता है। पाँचवीं और सबसे बढ़कर बड़ी बात तो यह है कि इस पद्धति से शिक्षक और छात्रों के बीच सदा मित्र-भाव बना रहता है। वे प्रेम-सूत्र में बँध जाते हैं। इस भाँति नैतिक, शारीरिक, सामाजिक या बौद्धिक, जिस दृष्टि से देखा जाय, इस शिक्षा-प्रणाली से कर्कश शिक्षा-प्रणाली की अपेक्षा बहुत लाभ है। सारांश यह है कि कोमल शिक्षा-प्रणाली शिक्षा देने का अधिक अच्छा और उपयोगी साधन है, क्योंकि यह मानसिक विकास के मनोवैज्ञानिक नियमों को सदा ध्यान में रखती है। यह ज्ञान-प्राप्ति के मार्ग को रोचक, सुगम एवं सुखद बना देती है। जब छात्र-जीवन समाप्त हो जाता है और विद्यालयों से सम्बन्ध टूट जाता है तब भी इस शिक्षा-प्रणाली-द्वारा शिक्षित छात्रो मे विद्या का प्रेम मन्द नहीं पड़ने पाता। इसमे सन्देह नहीं कि यह बहुत बड़ा लाभ है। किन्तु कोमल शिक्षा-विज्ञान का यथार्थ अभिप्राय क्या है, यह भली भाँति समझ कर उसका अनुसरण करना चाहिए। भावों को बिना समझे अक्षरार्थों का ही व्यवहार नहीं करना चाहिए। लकीर का फ़क़ीर होना अच्छा नहीं। नहीं तो जैसा कि प्रोफ़ेसर जेम्स साहब का कथन है कि इस शिक्षा-प्रणाली की स्निग्ध और मधुर वायु (Oxygen तत्त्व) का अभाव हो जायगा और तब कोमल शिक्षा-प्रणाली भविष्य जीवन की कर्कश और भयानक कठिनाइयों का सामना करने के लिए बालक को तैयार नहीं कर सकेगी और सम्भव है कि बालकों को निर्बल संकल्प-वाले मनुष्यों के साँचे में ढाल दे। इस प्रणाली के सिद्धान्त ठीक हैं और यदि इनका व्यवहार नियमित और परिमित रूप से किया जाय जिसमें उद्योग अपना समुचित स्थान पा सके तो शिक्षा-प्रदान के ये सर्वोत्तम साधन निकलेंगे।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उसका अधिकांश पाश्चात्य शिक्षावादियों की सम्मति पर निर्भर है, यह बात कदापि सच नहीं है। पुरानी हिन्दू-सभ्यता के समय में कोमल शिक्षण-कला का रहस्य लोगों को विदित था और उस समय के शिक्षक अपने छात्रों से अनावश्यक कठोर बर्ताव नहीं करते थे। मनुजी ने लिखा है कि शिक्षक को चाहिए कि वह कोमल और मीठे वचनों-द्वारा छात्रों को उपयोगी शिक्षा दे और उन्हें दंड देकर क्षति न पहुँचाये (मनुस्मृति अध्याय २ का १५९ श्लोक)। प्राचीन काल मे, महाराज मनु के समय में, जिस भाँति राजनैतिक शासन मे आज-कल की प्रजासत्ताक और

प्रतिनिधिसत्ताक प्रणालियों का सिर्फ़ बीज ही नहीं पाया जाता, बल्कि ये शासन की पद्धतियाँ जहाँ-तहाँ वास्तव में काम में लाई जाती थीं, उसी भाँति योरप के निवास-विश्वविद्यालय (Residential Universities) जिनका महत्त्व भारत में इतना गाया जाता है और जिनके प्रचार के लिए इतनी आयोजना की जा रही है, प्राचीन हिन्दू-गुरुकुल या विद्यापीठ की छाया-मात्र है। यह सब हो रहा है, परन्तु जब तक ईंट-पत्थरों के विशाल भवनों का ख़याल छोड़ कर नगरों से सुदूर खुले मैदानों और जंगलों में वृक्षों के तले अथवा अनन्त नीलाभ गगन-मंडल के नीचे छात्रों को प्रकृति की गोद में शिक्षा नहीं दी जायगी तब तक शिक्षा का उद्देश पूर्णता को नहीं प्राप्त होगा। आश्चर्य है कि पश्चिम भी अब इस पूर्वी प्राचीन प्रथा का अनुकरण करने लगा है। सुनने में आता है कि पश्चिम में कई ऐसे विद्यालय जंगलों और मैदानों में खोले भी गये हैं।

—दामोदरसहायसिंह

१—प्रतीक्षा

जब नलिनी प्रिय के वियोग में,
अश्रु गिराती है दो-चार।
निज कर से रवि अश्रु पोंछते
द्रुत चल तब प्रेयसि के द्वार।
सखि, मैं तो प्रिय के वियोग में
शतशः अश्रु गिराती हूँ।
अश्रु पोंछना दूर न उनके
दर्शन तक मैं पाती हूँ।

—सोहनलाल द्विवेदी

२—फ़िलासफ़र

फ़िलासफ़र ! फ़िलासफ़र !!, ऊँह सुनते सुनते कान पक गये, लेकिन कहनेवालों की जीभ न थकी। मैं तो अभी तक यह सोचती थी कि सिर्फ़ लड़के ही फ़िलासफ़र होते हैं, लेकिन अब मालूम हुआ कि लड़कियां भी फ़िलासफ़र होती है। नहीं तो भला लोग मुझे यह उपाधि क्यों देते ? और तो और, ऊषा की भी अक़्ल पर पत्थर पड़ गये—वह भी तो 'फ़िलासफ़र' चीख़ने से नहीं चूकती। मुझे देखते ही 'फ़िलासफ़र' 'फ़िलासफ़र' चिल्लाने लगती है। मैं तो बाबा ! तंग आगई इस उपाधि से। समझ मे नहीं आता कि मुझमें वह कौन सी ऐसी विशेषता है, जिसके कारण यह उपाधि मुझे अनायास ही मिल गई। यदि यह विशेषता मुझे आज मालूम हो जाय तो मैं आज ही उसे छोड़ दूँ। लोग उपाधि पाने के लिए तरसते है, किन्तु मैं अपनी इस पाई हुई उपाधि को छोड़ने के लिए व्याकुल हूँ। इसमे आश्चर्य्य की क्या बात है ? फ़िलासफ़र तो पागल होते ही है ! उनकी इच्छायें भी सब ऊटपटांग होती है। मुझे जब सब लोग फ़िलासफ़र कहते है, तब फिर मेरी ऊटपटांग इच्छाओं को सुनकर आश्चर्य्य करना व्यर्थ है। होगा ! इन बातों से क्या लाभ ? यह तो निरर्थक प्रलाप है—इसमे ज़रा-सा भी तत्त्व नहीं है।

अच्छा हा ! तो फिर लोग मुझे फ़िलासफ़र कहते क्यों हैं ? क्या सचमुच मैं फ़िलासफ़र हूँ ? मैंने बहुत से फ़िलासफ़रों को तो देखा नहीं, जो ठीक-ठीक समझ सकूँ कि मैं फ़िलासफ़र हूँ या नहीं। हां। मैंने केवल एक फ़िलासफ़र महाशय को देखा है। उनकी बातो और मेरी बातों मे मुझे तो कोई समानता नहीं दिखलाई पड़ती। फिर लोग मुझे फ़िलासफ़र क्यो कहते है ?

बहुत दिनों की बात है। तब मैं पढ़ती थी। एक फ़िलासफ़र महाशय एक लड़की को पढ़ाने आया करते थे। यह फ़िलासफ़र महाशय भी अद्‌भुत प्रकृति के थे। इनकी शिष्या से इनकी विचित्र बातें रोज़ सुनते सुनते मेरे मन में इन्हे देखने की उत्कण्ठा हुई। एक दिन शाम के समय खेलने न जाकर मै स्कूल के फाटक की तरफ़ घूमने लगी, क्योंकि यही फ़िलासफ़र साहब के आने का समय था। सब लोग तो दिन भर काम करते करते थक जाते हैं और शाम होते ही आराम करना चाहते है, परन्तु मालूम होता है कि फ़िलासफ़रो के लिए ईश्वर ने

यह नियम नहीं बनाया। शायद दिन भर के परिश्रम से फ़िलासफ़र महाशय में दुगुनी स्फूर्ति आ जाती थी, तभी तो दिन का समय छोड़कर शाम को जब कि सूर्य भगवान् भी आराम करने को चल देते है, फ़िलासफ़र महाशय पढ़ाने आते थे। ऊँह! होगा—। अच्छा! तो फिर मैं उधर ही फाटक के सामने थोड़ी दूर पर घूमने लगी, जहा से मैं तो आने जानेवालों को भले प्रकार देख सकती थी, किन्तु मुझे कोई नहीं देख सकता था।

मुझे वहा घूमते-घूमते कोई आधा घण्टा हुआ होगा कि मैंने एक महाशय को फाटक के अन्दर घुसते देखा। मैं ज़रा सावधानी से आगन्तुक की चाल-ढाल देखने लगी। गरमी के दिन थे, तो भी आगन्तुक महाशय अपने कन्धे पर सच्चे काम का एक लाल शाल डाले हुए थे। उनकी बङ्गाली फ़ैशन की पोशाक देखकर मैंने उन्हें कोई बङ्गाली सज्जन समझा और हताश होकर वहाँ से जाने लगी। मैंने समझा कि शायद फ़िलासफ़र महाशय आज किसी समस्या को हल करने मे निमग्न होने के कारण अपनी शिष्या को पढ़ाने के लिए आना भी भूल गये। तत्क्षण मुझे ध्यान आया कि इतनी गरमी में ऐसा गरम शाल धारण करनेवाला कोई साधारण मनुष्य नहीं हो सकता। इसी धारणा से प्रेरित होकर यह निश्चय करने के लिए कि कहीं यही आगन्तुक महाशय तो फ़िलासफ़र नहीं हैं, मैंने फिर एक बार पीछे घूमकर देखा। आगन्तुक महाशय चलते-चलते बीच ही में सड़क पर बैठ गये थे। किताबें उनकी ज़मीन पर पड़ी हुई थीं और वे स्वयं अपनी हथेली पर मुँह रखकर न मालूम क्या आसमान में देख रहे थे। मैने उनकी सौम्य मूर्ति को बड़े ध्यान से देखा। उनकी भौंहें कुछ सिकुड़ी हुई थीं। माथे में अनगिनती बल पड़े हुए थे। उनकी हल्की दाढ़ी भी उन्हीं के समान किसी विचार-धारा मे निमग्न थी, क्योंकि इस समय उसका एक भी बाल नहीं हिलता-डुलता था। अब मुझे पूर्णरूप से विश्वास होगया कि यही आगन्तुक महाशय फ़िलासफ़र साहब है। मैं अब अधिक ध्यान से उनके रङ्ग-ढङ्ग देखने लगी।

थोड़ी देर बाद फ़िलासफ़र महाशय की विचार-धारा टूटी। वे जल्दी से उठे और उन्होंने अपने हाथ में एक चट्टी पैर से निकालकर किताबों के समान पकड़ ली। शायद किताबों के धोखे में ही उन्होंने वह चट्टी उठा ली थी, क्योंकि उनकी किताबें वहां ज़मीन पर ज्यों की त्यों पड़ी थीं और वे जल्दी-जल्दी क़दम उठाये स्कूल की तरफ़ जाने लगे। उनके एक पैर की चट्टी को उनकी चाल पर बेढब ताल देते देखकर मैं अपनी हँसी न रोक सकी। भाग्य अच्छे थे, जो उन्होंने मेरी हँसी नहीं सुन पाई, नहीं तो बहुत सम्भव था कि उनके हाथ की चट्टी ठीक मेरे सिर पर आकर पड़ती। हँसी रोकने के लिए मैंने अपने मुँह में धोती ठूँस ली और रास्ता देखने लगी कि कब फ़िलासफ़र साहब सड़क से हटें और कब मैं जल्दी से बोर्डिंग-हाउस को भागूँ। किन्तु अभी तो कुछ और दृश्य देखने थे।

फ़िलासफ़र महाशय एकाएक फिर रुक गये। अपने कान पर से पेन्सिल उतारकर अपने हाथ की चट्टी पर न मालूम क्या लिखने लग गये। हद हो गई फ़िलासफ़ी की, जिसके कारण इतने विद्वान् होने पर भी फ़िलासफ़र महाशय काग़ज़ और चट्टी में भेद न समझ सके। मुझे ऐसा करते कभी किसी ने न देखा होगा, फिर भी न मालूम क्यों सब लोग मेरे पीछे पड़ गये। सब लोग फ़िलासफ़र, फ़िलासफ़र कहकर व्यर्थ ही मेरा सिर चाटते है। फ़िलासफ़र कुछ बुरा नाम नहीं है, किन्तु जो फ़िलासफ़र हो उसे ही फ़िलासफ़र कह कर सम्बोधन करना चाहिए। सोचने की बात है कि जब मेरे समान लोग फ़िलासफ़र कहलाने लगे तब फिर इन फ़िलासफ़र महाशय के समान लोग क्या कहलायेंगे। हां! अगर मुझमें और इन फ़िलासफ़र महाशय में ज़रा सी भी समानता मालूम हो तो फिर मैं फ़िलासफ़र कहने के लिए किसी को मना नहीं करती।

अच्छा! होगा। ये तो सब व्यर्थ की बातें हैं। असली बात तो रही जाती है। फ़िलासफ़र महाशय की शिष्या अभी तक नहीं आई थीं। इससे वे कमरे में जा कर कुरसी पर बैठ गये और फिर किसी विचार-धारा में बह गये। वे थोड़ी ही देर में अपने ध्यान में इतने निमग्न हो गये कि उन्हें अपनी शिष्या का आना भी नहीं मालूम हुआ। उनकी शिष्या को देखकर मैंने समझा

कि कहीं यह अपने मास्टर साहब के सामने मेरी चोटी न खोल दें। कहीं मुझे बता न दें। मैं जल्दी से सामने से हटने लगी। सूर्य्य भगवान् भी शायद अपनी हँसी छिपाने के लिए बादलों में मुँह छिपा रहे थे। मैंने उधर कुछ विशेष ध्यान नहीं दिया और सीधी बोर्डिंग-हाउस की तरफ़ बढ़ी।

परन्तु यह क्या? मेरा यह क्लास कहाँ से निकल पड़ा। मैं अभी थोड़ी ही दूर गई थी कि मेरी फ़िलासफ़ी की अध्यापिकाजी ने आकर मेरा हाथ पकड़ लिया। हाँ! याद आगया। अभी क्लास में बर्कले और ह्यूम के विषय में बातें हो रही थी। अध्यापिकाजी के मुँह से फ़िलासफ़र शब्द सुन कर शायद मुझे इन फ़िलासफ़र महाशय का ध्यान आ गया था। किन्तु मालूम नहीं, वह दृश्य सब मैंने किस प्रकार देखा। तो क्या यह सच बात नहीं थी? सब स्वप्न था? किन्तु मैं तो सोई नहीं थी, फिर स्वप्न किस प्रकार देखा? सुनती हूँ कि फ़िलासफ़र लोग जागने में ही स्वप्न देखते है। यदि यह मेरा स्वप्न था तो फिर मैं भी फ़िलासफ़र हो गई। हाय! जिस बात की चिढ़ थी वही सामने आई। अब मैं किस मुँह से किसी को मना करूँगी? हाय! अब लोग मुझे भी आधा पागल कहेंगे। कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूँ। अब तो बचाने का कोई उपाय ही नहीं रहा। उन फ़िलासफ़र महाशय की हँसी उड़ा रही थी और कहाँ अब स्वयं हँसी की पात्री हो गई। क्लास की लड़कियाँ सब हँस रही थीं। मैंने दबी हुई नज़र से ऊषा की तरफ़ देखा कि कहीं उसने भी तो पूरा दृश्य नहीं देख लिया। परन्तु भला कभी यह भी सम्भव है कि कोई बात हो जाय और ऊषा उसे न देख ले। वह तो बड़ी बेढब लड़की है। उसका डेस्क मेरे पास ही पड़ा हुआ था। मुझे अपनी तरफ़ देखते देख कर सबकी नज़र बचाती हुई वह मेरे कान मे फुसफुसाने लगी—कहाँ चले थे फ़िलासफ़र साहब?

फिर वही सम्बोधन! सुन कर जी जल गया। पर क्या करती? विवश थी। सारा क्लास मुझ पर हँस रहा था और मुझे सब चुपचाप सहना पड़ रहा था। फ़िलासफ़ी जो न कराये वह थोड़ा। यदि मैं पहले जानती तो इसे कभी भूल कर न लेती। अब तो सब लोग हँसेंगे ही। हँसो! ख़ूब हँसो। मैं तो अपने जीवन की पूरी कथा सुनानेवाली थी, किन्तु अब नहीं सुनाऊँगी, क्योंकि उसके पहले ही परिच्छेद पर सब लोग हँसने लगे। पहले तो केवल स्कूल की लड़कियों के मारे नाक मे दम था, किन्तु अब तो चारों ही ओर से आफ़त आ गई। अच्छी बात है। हँसो ख़ूब हँसो। मेरे जीवन की एक यह बात सुन कर भी यदि कोई शिक्षा ग्रहण नहीं करेगा और फ़िलासफ़ी पढ़ेगा तो फिर मुझे भी हँसने का अवसर मिल जायगा। तब मैं भी ख़ूब हँसूंगी। उतना ही—नहीं। उससे ज़्यादा, कहीं ज़्यादा, जितना कि अब लोग मेरे ऊपर हँस रहे है। कभी गाड़ी नाव पर होती है और कभी नाव गाड़ी पर।

—तेजरानी दीक्षित, बी० ए०

२—श्रीविजयराघवाचार्य्यजी

आज-कल के जन-साधारण में आचार्य्यजी का नाम प्रसिद्ध नहीं है। इसका कारण उनका आज-कल के राजनैतिक क्षेत्र से वृद्धता के कारण अलग रहना ही है। यों तो उनकी देश-सेवा और त्याग महान् है। कांग्रेस की अध्यक्षता ही इसका प्रमाण है। कांग्रेस पुराना है, पर श्रीआचार्य्यजी की लोक-सेवा और भी पुराना है। उन्होंने सन् १८८० ईसवी से ही सार्वजनिक कार्य्यों में हाथ डालना आरम्भ कर दिया था। उस समय आज के बहुत से नेता उत्पन्न भी न हुए थे। उन्होंने सभी विपत्तियों का सामना किया है। डिप्टी कमिश्नर ने उन्हें आजन्म कारावास का दण्ड दिया था, पर हाईकोर्ट से वे छूट गये थे। आचार्य्यजी का युद्ध अनेक डिप्टी कमिश्नरों तथा गवर्नरों से हुआ है। म्युनिसिपैलिटी की मेम्बरी करने को वे गवर्नमेंट-द्वारा अयोग्य ठहराये गये, पर अन्त में बहुत कुछ आन्दोलन के बाद यह आज्ञा वापस ली गई और वे मेंबर हुए।

श्रीआचार्य्यजी ने उस समय राष्ट्रीयता का राग अलापा जिस समय स्वराज्य का नाम लेना भी अपराध माना जाता था। वे अनेक वर्ष मदरास कौंसिल के मेंबर रहे हैं और सदैव जनता का पक्ष लिया है। भारतीय व्यवस्थापक-सभा

(आज-कल की लेजिस्लेटिव एसम्बली) के भी वे सदस्य रहे हैं। आज-कल की तरह उस समय इतने मेंबर न होते थे। भारतीय व्यवस्थापक-सभा के लिए प्रान्तीय व्यवस्थापक-सभायें दो दो, तीन तीन मेंबर निर्वाचित करती थीं। लार्ड हार्डिंज पर बम फेंके जाने के बाद गवर्नमेंट ने कान्सपिरेसी-बिल इंपीरियल कौंसिल में उपस्थित किया था, उसके विरोधियों की सूची में केवल आप ही का नाम है। अन्य सभी देश के नेताओं ने उसका समर्थन किया था।

गवर्नमेंट-द्वारा वर्ष भर में दो बार उपाधियाँ वितरित होती हैं। इधर कई महानुभावों ने उन उपाधियों के वापस करने का साहस दिखाया है। इन उपाधियों का अब भी बड़ा मान है। अनेक सज्जन इनके लिए लालायित रहते हैं। पर श्रीआचार्य्यजी ने ही सबसे प्रथम उपाधि वापस की थी। मदरास-सरकार ने आपको 'दीवान बहादुर' करना चाहा था, पर उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया था। आपने देश की बड़ी सेवा की है और आपका मान भी बहुत है।

श्रीविजयराघवाचार्य्यजी का शरीर लम्बा और सुन्दर है। उनके मस्तक पर सदैव वैष्णवी तिलक शोभित रहता है। वैष्णव-धर्मानुसार उन्होंने सभी सांसारिक आनन्द उठाये हैं। यद्यपि वे ८० वर्ष के लगभग हैं, तो भी उनका शरीर हृष्ट-पुष्ट है। आज भी वे भारत की कल्याण-कामना की चिन्ता में रत रहते हैं। वृद्धावस्था के कारण वे राजनैतिक कार्य्यों में भाग नहीं ले सकते हैं, पर उनका विश्वास है कि वे भारत को स्वतन्त्र देख कर इस लोक से प्रस्थान करेंगे।

श्रीआचार्य्यजी गरम-दल के विचारों के रहे हैं। सूरत के कांग्रेस में नेताओं में फूट हो जाने पर उन्होंने कांग्रेस जाना छोड़ दिया था। कांसपिरेसी-बिल के समय समस्त नेता सरकार की ओर थे, केवल उन्होंने ही अपनी सारी शक्ति, तथा विद्वत्ता उसके विरोध में लगाई थी। उन्होंने उप-प्रस्ताव पर उप-प्रस्ताव उपस्थित किये, जो एक एक करके सभी नामंज़ूर हुए। वोट लेने पर केवल इन्हीं का एक वोट इनके पक्ष में होता था और सब विपक्ष में। आचार्यजी बड़े निर्भीक हैं। लाहौर कांसपिरेसी-केस में स्वर्गीय पण्डित रामभजदत्त चौधरी की ओर से वे सफ़ाई के गवाह हुए। मदुरा के डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट के समक्ष इस प्रश्न पर कि पण्डित रामभजदत्त चौधरी माडरेट हैं, उन्होंने बड़ा सुन्दर उत्तर दिया। उन्होंने कहा, "मुझे नहीं मालूम माडरेट क्या हैं। मुझे कायर और देश-भक्त का अन्तर मालूम है, पर माडरेट की पहचान नहीं है।"

सन् १९१४ में योरपीय युद्ध आरम्भ हुआ। मदरास-प्रान्त के नेशनलिस्ट नेताओं ने श्रीमती एनीबेसेन्ट का साथ दिया। यत्र तत्र होमरूल लीगें स्थापित हुईं। होम-रूल-आन्दोलन प्रबल होता गया। श्रीमती एनीबिसेन्ट अपने दो साथियों के साथ नज़रबन्द हुईं। देश एक प्रबल आन्दोलन से उद्वेलित होने लगा। निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) की धमकी दी जाने लगी। इसी समय स्वर्गवासी मिस्टर मांटेग्यू विलायत से शान्ति स्थापित करने आये। इस बीच में श्रीमान् आचार्य्यजी निरन्तर चुप रहे। लोगों का विचार हो चला कि क्या पुराना वीर देश-भक्त ऐसे गाढ़े समय में साथ न देगा। इसी समय लार्ड पेटलैंड ने उन्हें 'दीवान बहादुर' की उपाधि से अलङ्कृत करना चाहा। न्यू इंडिया ने इसकी समालोचना करते हुए लिखा कि श्रीआचार्य्यजी होमरूलर नहीं हैं, इसी से यह सम्मान मिला है। किन्तु थोड़े ही दिनों बाद लोगों ने आश्चर्य के साथ यह समाचार पढ़ा कि श्री आचार्य्यजी को यह सम्मान पसंद नहीं आया।

एक वर्ष और बीता। रिफ़ार्म स्कीम प्रकाशित होनेवाली थी। दलबन्दी आरम्भ हो चुकी थी। रिफ़ार्म स्कीम के प्रकाशित होने पर श्रीमती एनीबिसेन्ट तथा नरम दल के नेताओं से युद्ध करने के लिए गरमदलवालों ने निश्चय किया। उन्हें एक नेता की खोज हुई। श्रीआचार्य्यजी आगे आये और मदरास के नेशनलिस्टों के अगुआ हुए। श्रीआचार्य्यजी का इन नेताओं पर विश्वास न था परन्तु उन पर सर्वसाधारण का विश्वास देख कर उन्होंने चुप रहना ही उचित समझा था। इसी लिए वे तब तक चुप रहे थे। स्कीम के प्रकाशित होते ही उन्होंने उसकी कड़ी

आलोचना की और उसे व्यर्थ ठहराया। स्पेशल मदरास प्रान्तीय राजनैतिक कानफ़रेंस में इन्होंने स्कीम का ज़ोरों से खण्डन किया और उसे अग्राह्य ठहराया। इस विषय में कानफ़रेंस में बड़ा मतभेद था पर अन्त में उन्हीं की विजय रही। रिफ़ार्म स्कीम पर उनका ही फ़ैसला दिल्ली और बम्बई की कांग्रेसों में मान्य हुआ।

आचार्य्यजी फिर सार्वजनिक-क्षेत्र में आ धमके। समय बीतने पर रौलट एक्ट आया। महात्मा गांधी आगे आये। सत्याग्रह का शपथ तैयार हुआ। हमारे चरितनायक ने महात्माजी से सत्याग्रह-शपथ में 'स्वराज्य' के प्रश्न को भी शामिल करने को कहा। उनके अधिक ज़ोर देने पर भी महात्माजी सहमत न हुए। आचार्य्यजी तिस पर भी सहर्ष कार्य्य करते रहे। कौंसिल के लिए वे फिर खड़े हुए, पर असहयोग-प्रस्ताव के अनुसार कौंसिल का विचार त्याग दिया। दिल्ली-कांग्रेस के सभापतित्व के लिए उनका नाम लिया जाने लगा, पर श्रीआचार्य्यजी लिए महामना मालवीयजी के पक्ष में अपना नाम वापस लेकर अपनी उदारता का अपूर्व परिचय दिया। दो वर्ष बाद सर्वसम्मति से वे नागपुर-कांग्रेस के अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

परम पिता जगदीश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि वह श्रीआचार्य्यजी को चिरजीवी रक्खे और भारत को स्वतन्त्र देखने की उनकी अभिलाषा पूर्ण करे।

—वंशीधर

४—मधुर-मिलन

हृदयेश! तुम्हारे अदृष्ट करों का साङ्केतिक आह्वान मैं अपने हृत्कम्पन में चिरकाल से अनुभव कर रहा था। प्रेम के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कुसुम-केशर-सदृश रागपूर्ण कोमल तन्तुओं-द्वारा मैं आकर्षित हो रहा था, किन्तु मुझे यह ज्ञात न था कि मैं किस ओर खिंचा जा रहा हूँ? आपकी वीणा की मधुर ध्वनि वायु-मण्डल में हो मन्द स्वर से मेरे कानों तक पहुँचती थी, किन्तु मैं यह नहीं जानता था कि वह किस ओर से आ रही है। मेरा हृदय भी नितान्त नीरस न था। प्रेम की अमूर्त पिपासा हृदय को परिप्लावित कर नेत्रों के अश्रु-जल-कणों में बाहर झलक उठती थी। पपीहा की भाँति रट न लगाने में असमर्थ रहा; तथापि मुझे विश्वास था कि मेरे जीवन में भी कोई स्वाति का नक्षत्र आवेगा, किन्तु मुझे यह पता नहीं कि उस पुण्य नक्षत्र का कब उदय होगा और कब और किस ओर से जीवन-धन श्यामघन उठ कर अपनी अमिय-मय वारि-धारा से मेरे संतप्त हृदय की पिपासा का शमन करेंगे। बालक की भांति मैं किसी दूर-देशस्थ गिरि का जागृत स्वप्न देखा करता था। मैं जानता था कि मेरे जीवन में कुछ न्यूनता है, किन्तु उसे निर्दिष्ट करने में असमर्थ था। यद्यपि मैं पूर्णतया यह भी न जानता था कि मेरी किस बात की माग है, तथापि मेरे हृदय की आकार-रहित अप्रस्फुटित चाह मुझे मृग-तृष्णा के मृग की भाति वन वन मे भ्रमाती रही।

एक दिन ज्येष्ठ की दोपहरी मे जब भगवान् अंशु-माली की प्रखर प्रज्वलित रश्मियों के घोर प्रचंड तेज से भयभीत हो सारे जीवधारी अन्धकार की शरण ले रहे थे, मैं आपकी खोज मे घर से निकल पड़ा। चलते चलते एक ऊँचा पहाड़ सम्मुख आ गया। दुर्बल होते हुए भी उस पर चढ़ने का साहस किया।

जीवनघन! यद्यपि तुम मेरे साथ थे, तथापि मुझे यह नहीं ज्ञात हुआ कि तुम्हीं मेरी खोज के अन्तिम ध्येय हो। तुम्हारी सत्ता गुप्त रूप से मुझे प्रभावित कर रही थी, और तुम्हारे ही बल से उस दुरारोह पर्वत पर चढ़ने में समर्थ हुआ; परन्तु अन्त तक पहुँचने से पूर्व मैं अपने हृदय-दौर्बल्य के कारण चेतना-रहित हो धरती पर गिर पड़ा।

जब मैं संज्ञा-शून्य हो सूर्यानल-संतप्त धरातल पर पड़ा था तब तुमने मेरे पास आकर अपने कुसुम-कमनीय-कर-पल्लवों से मेरे श्रम-शीर्ण परिम्लान मुख में दो अञ्जलि जल डाल दिया; मुझको चेतना आगई। मुझे ज्ञात हो गया कि जल को जीवन क्यों कहते हैं?

नेत्र खुलते ही आपके पुण्यदर्शन की सञ्जीवनी-सुधा ने पुनर्जीवन प्रदान किया। मैं सच्चा द्विज बन गया। सारे जीवन का चरम रहस्य हस्तामलकवत् हो गया। मैं अबोध था। मुझे स्वयं अपने हृदय की थाह न थी। अब मुझे बोध आया कि मुझे किस बात की

चाह थी। एक मुहूर्त में युगों के लुप्त-सुप्त संस्कार जागृत होगये। एक क्षण में प्रेम के ढाई अक्षर पढ़ मैं एक मूर्ख से पण्डित बन गया। एक पल में सारे जीवन का सुख केन्द्रीभूत होकर मेरे सम्मुख उपस्थित हो गया; और उसने मुझे रङ्क से राजा बना दिया। तुरन्त ही मैं मर्त्यलोक से अमर-धाम में पहुच गया। एक अलक-पात में सारा संसार और का और प्रतीत होने लगा। मुझे अनन्तता की चाह न रही। उस निमेष के आगे अनन्त का आनन्द तुच्छ हो गया।

इस सम्मोहन-मन्त्र का क्या रहस्य था, वह अपार शक्ति कौन से स्रोत से बह रही थी, यह जानने की इच्छा से मैंने चञ्चल-भाव धारण कर कहा—देव! यह तुमने क्या किया!! मैं तो निर्जल व्रत धारण किये था।

उत्तर मिला कि तुम्हारा व्रत पूर्ण हुआ। तुमको संज्ञा-लाभ कराने के ही अर्थ मैं इस जल को तेरे पीछे लिये आ रहा था; तेरा नेम बड़ा कि मेरा प्रेम? उस समय आपके मुख पर मधुर हास्य था; नेत्रों में दया और प्रेम की सञ्जीवनी प्रभा थी; मृदुल शब्दों में सरस सहृदयता का भाव था।

मैंने कातर दृष्टि से कहा—नाथ! मेरे लिए इतना श्रम? आपकी सुधाञ्जलि ने मेरी भौतिक पिपासा को ही तृप्त नहीं किया, बरन मानसिक पिपासा को भी। मुझे आपके प्रेम का परिचय मिल गया। मैं पूर्ण हो गया। सहृदय-जन का प्रेम यही मेरी चिरकालीन खोज थी, यही मेरी अनन्त चाह थी, यह कह कर मैं रोने लगा। मेरी निर्जला एकादशी सजला बन गई।

गुलाबराय

५—विश्व-विजयी हॉकी के खेलाड़ी

बुड्ढे भारत की ग़ुलाम सन्तान ने हॉकी के खेल में विश्व में अपनी विजय का डंका बजाकर संसार को चकित कर दिया है। इतनी गिरी हुई दशा में भी इसकी जीत पर जीत देखकर सब हैरान हैं। अभी उस दिन २८ जनवरी को पटियाला की विशाल रङ्ग-भूमि में अर्द्धलक्ष जन-समुदाय के सामने भारतीय पहलवान गामा ने संसार के सबसे ज़बर्दस्त और प्रसिद्ध पोलिश पहलवान जेबिस्को को पलक मारते मारते ज़मीन दिखाकर संसार को चकित कर ही दिया था, इधर मार्च, अप्रेल, मई और जून महीनों में भारत के हॉकी के खेलाड़ियों ने सारे योरपीय राष्ट्रों को ऑलिम्पिक टूर्नामेन्ट मे हरा कर विश्व मे अपनी शानदार जीत का डंका बजाया है। योरप को उन्हीं का खेल (हॉकी) खेलना सिखाया है।
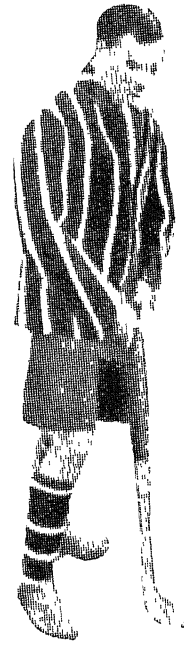
श्रीयुत जयपालसिंह

इस अन्तर्राष्ट्रीय ऑलिम्पिक खेल-समिति की स्थापना भिन्न भिन्न देशों में पारस्परिक प्रेम, भ्रातृभाव और घनिष्ठता बढ़ाने के लिए सन् १८९६ मे हुई थी। उस समय से इसके टूर्नामेंट-द्वारा तरह तरह के खेल खेले जाते हैं। ये हर चौथे वर्ष होते हैं। आख़िरी बार जुलाई सन् १९२४ में पेरिस में हुए थे। उस वर्ष पहले ही पहल भारतवर्ष ने उसमें अपने सात प्रतिनिधि खेलाड़ी भेजे थे और वे सबके सब फिसड्डी रहे। किसी को भी कोई पुरस्कार नहीं मिला। यहा तक कि वे निर्धारित समय के अन्दर भी अपनी दौड़ पूरी न कर सके। केवल एक खेलाड़ी श्रीयुत हिंजे ही नियत समय के अन्दर अपनी दौड़ पूरी कर

भारतवर्ष के लिए आगामी टूर्नामेन्ट में सम्मिलित होने का स्वत्व सुरक्षित रख सके। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि यदि किसी राष्ट्र के सारे प्रतिनिधि ऑलिम्पिक टूर्नामेन्ट के नियमों के अनुसार उचित रूप से और निर्धारित समय में सब बातों को पूरा करने में असमर्थ रहें तो वह राष्ट्र दुबारा आमन्त्रित किये जाने का स्वत्व खो बैठता है।

सभापति हैं, एक अत्यन्त सुन्दर और शानदार ट्रॉफ़ी रक्खी है, जो प्रतिवर्ष उस प्रान्त को दी जायगी जो ऑलिम्पिक टूर्नामेन्टो के लिए भारत में अन्तर्प्रान्तीय खेलों में सबसे ज़्यादा नम्बर पायगा। इस पर अद्भुत कारीगरी की गई है।

जनवरी के अन्त में भारत में अन्तर्प्रान्तीय हॉकी टूर्नामेन्ट कलकत्ते में हुए। इस अवसर पर दूर दूर के

भारतीय टीम

(यह चित्र विलायत जाते समय लिया गया था। इसमें भारतीय ऑलिम्पिक एसोसिएशन के सभापति और उपसभापति का भी चित्र है। श्रीयुत ध्यानचन्द्र दूसरी क़तार में बाईं ओर से पाँचवें हैं)

अतएव इस वर्ष सन् १९२८ में भारतवर्ष के इन अन्तर्राष्ट्रीय खेलों में भाग ले सकने का श्रेय श्रीयुत हिंजे को ही है। जुलाई सन् १९२४ के बाद अन्तर्राष्ट्रीय ऑलिम्पिक टूर्नामेन्ट इस वर्ष सन् १९२८ में आम्सटर्डम में हुए। इस वर्ष भारतवर्ष ने अन्य खेलों के अलावा हॉकी के लिए भी अपने प्रतिनिधि भेजे।

भारतीय खेलाड़ियों का उत्साह बढ़ाने के लिए सर दोराब ताता ने जो भारतीय ऑलिम्पिक समिति के उप-

विख्यात खेलाड़ी खेलने आये थे। बम्बई-प्रान्त अपने प्रतिनिधि नहीं भेज सका था। राजपूताने को दो गोल से हरा कर संयुक्त-प्रान्त सर्वश्रेष्ठ रहा। इन टूर्नामेन्टों में शामिल होने वाले खेलाड़ियों में से तेरह खेलाड़ी छाँटे गये। यह कार्य सुयोग्य और अनुभवी मैनेजर मिस्टर रौज़र ने किया था, जो भारतीय टीम की सब प्रकार से देख-भाल करने के लिए नियुक्त हुए थे। आपने बहुत ही मज़बूत टीम तैयार कर ली। टीम में रांक, पेनीजर और ध्यानचन्द्र के

नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। निस्सन्देह भारतवर्ष में रोक से अच्छा बैक, पेनीजर से अच्छा सेन्टर हाफ़ बैक और ध्यानचन्द्र से अच्छा सेन्टर फ़ारवर्ड कोई नहीं है। ऑलिम्पिक खेलों में योरपीय राष्ट्रों को हराने का श्रेय वैसे तो सारी टीम को ही है, परन्तु इन तीनों को विशेष है। इन तेरह खेलाड़ियों के अलावा एक-दो सज्जन जो उस समय विलायत में थे, इस टीम में ले लिये गये। उनमें श्रीजयपालसिंह का नाम उल्लेखनीय है।

उठाया, यह भारतवर्ष के लिए कलंक की बात है। भारतवर्ष को इस कार्य में अन्य राष्ट्रों से पाठ सीखना चाहिए, अन्य अपने प्रतिनिधियों के लिए सब कुछ न्योछावर कर देते हैं। वे ऐसी हार-जीत को अपने राष्ट्र की हार-जीत समझते हैं। अपने देश में हर प्रकार से अपने युवकों का उत्साह बढ़ाते हैं। पर वाह रे भारतवर्ष, तेरे होनहार लाल तेरा ही मस्तक ऊँचा करने के लिए तो विदेशों में जायँ, तेरे लिए मैदान में जान लड़ा दें

हालैंड में भारतीय टीम

एक-दो मैच बम्बई में खेलकर फ़रवरी के अन्त में भारतीय टीम विलायत के लिए रवाना हुई। जाते समय 'बोम्बे प्रान्तीय टीम' से ऑलिम्पिक टीम हार गई थी, परन्तु इससे वे लोग निराश न हुए। इस हार का कारण रेल का सफ़र था।

भारतीय टीम विलायत तो पहुँच गई, परन्तु उसकी आर्थिक स्थिति प्रारम्भ में शोचनीय रही। विलायतवालों को उसके लिए प्रबन्ध करना पड़ा। भारतवर्ष का मस्तक ऊँचा करनेवाले युवकों ने इस प्रकार आर्थिक कष्ट

और तू उन्हें आर्थिक कष्ट दे। कितनी लज्जा की बात है!

यह तो रही भारत के अमीरों के कर्तव्य की बात। अब देखिए कि यहां के खेलाड़ियों ने अपने अद्भुत और आश्चर्य-पूर्ण खेल से विदेशियों के हृदयों पर कैसा सिक्का जमाया।

सबसे पहले भारतीय टीम इँग्लैंड में खेली। वहाँ लोगों ने उसकी मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। ध्यानचन्द्र के खेल ने तो सबको चकित कर दिया। उसे तो वहाँ के

हॉलेंड और भारतीय टीमों के मध्य फ़ाइनल मैच का एक दृश्य। भारतीय खिलाड़ी गेंद लेने जारहा है

टीम के लौटने पर ऑलिम्पिक और बंबई टीमों के मध्य के मैच का एक दृश्य

लोग बाज़ीगर कहने लगे। टाइम्स आफ़ इंडिया अपने सचित्र संस्करण के एक अंक में इस भारतीय टीम, विशेषकर ध्यानचन्द्र, के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखता है।

"निस्संदेह भारतीय टीम का इँग्लेंड में भारी प्रभाव पड़ रहा है और वहाँ के लोग उसके सम्बन्ध में सर्वोच्च सम्मति रखते हैं। उनका कहना है कि ध्यानचन्द्र हांकी स्टिक से जादू का काम करता है। इसका पासिंग इतना शीघ्र और ठीक होता है कि वे लोग अवश्य ही इस खेल में विश्वविजयी होंगे।"

भारतीय टीम के कप्तान मिस्टर पैनीजर फ़ाइनल मैच की समाप्ति पर मसविदे (Protest) पर हस्ताक्षर कर रहे हैं।

फ़ोक स्टोन में अकेले ध्यानचन्द ने एक मैच में दस गोल किये। उसके बाद दो लगातार मैचों में तेईस गोल किये।

यही पत्र अपने दूसरे अङ्क में लिखता है—

"जहाँ कहीं भी भारतीय टीम खेली है, ध्यानचन्द्र की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की गई है। सबसे ज़्यादा गोल इसी ने किये हैं। इसने विलायतवालों को भारतीय हाँकी का आदर करना सिखाया है। योरप में इस टीम ने पहुँच कर रुचिकर चहल-पहल मचा दी है।"

देखा, भारत की बढ़ती को न देख सकनेवाले कट्टर गोरे पत्र भी किन शब्दों में टीम की प्रशंसा करते हैं। योरप के प्रमुख निर्णायकों ने ध्यानचन्द्र को संसार का सबसे अच्छा खेलाड़ी मान लिया है।

इँग्लेंड को हरा कर भारतीय खेलाड़ी हॉलेंड पहुँचे। वहाँ डच ऑलिम्पिक टीम की उन्होंने बुरी तरह ख़बर ली। जयपालसिंह की भी जो इँग्लेंड में भारतीय टीम में शामिल हुए थे, ख़ूब तारीफ़ रही। आप ही हॉलेंड में भारतीय टीम के कप्तान थे। आगरा टेलीग्राफ़ क्लब से चुने गये मिस्टर मार्टिन्स की भी ख़ूब प्रशंसा हुई। इस खेलाड़ी के सम्बन्ध मे एक गोरा अख़बार लिखता है—ध्यानचन्द्र और मार्टिन्स जैसे फ़ारवर्डों को पाकर यह टीम बहुत ही उच्च कोटि की हो गई है। रिंग में मौक़ा मिलने पर गोल कर देना इन लोगों के लिए आश्चर्य की बात नहीं है।

यहाँ भी ध्यानचन्द्र को संसार का सबसे अच्छा फ़ार्वर्ड माना गया और कहा गया कि आज तक ऐसा खेलाड़ी हुआ ही नहीं।

आख़िर ऑलिम्पिक टूर्नामेन्ट शुरू हुए। भारतीय टीम ने, जैसी आशा थी, उसी शान के साथ योरप की सारी टीमों को पछाड़ दिया। जिस दिन बेल्जियम से मैच हुआ था उस दिन प्रकृति भारतवासियों के सर्वथा विपक्ष में थी। सारा दिन मेंह के बरसते रहने से ज़मीन गीली हो गई थी। तब भी भारतीय टीम ने बेल्जियम की टीम को नौ गोल से हरा कर दर्शकों को चकित कर दिया।

सब राष्ट्रों को हरा देने के बाद आख़िरी मुठभेड़ हॉलेंड से हुई। उस दिन भी भारतीय टीम अपनी पूरी शक्ति में न थी। केवल दो ही फ़ारवर्ड अपनी ठीक जगह पर खेले थे। मिस्टर हैमंड को घुटने में चोट लग जाने के कारण कुछ समय के लिए फ़ील्ड से अलग होना पड़ा था। ऐसी दशा में भी भारतीय वीरों ने हॉलेंड के वीरों को तीन गोलों से हराया। यह विजय एक भारी विजय थी। ३ जून का सचित्र टाइम्स आफ़ इंडिया लिखता है—

'भारतीय टीम ने पूरी शक्ति में न होते हुए भी अंतिम मैच जीत कर ऑलिम्पिक हॉकी में विजय प्राप्त की है। केवल दो ही फ़ारवर्ड अपनी ठीक जगह पर खेले थे। मिस्टर हैमंड को घुटने में चोट लग जाने के कारण कुछ समय के लिए फ़ील्ड से अलग होना पड़ा था, अतएव ऐसी दशा मे भारत की विजय बड़े महत्त्व की है। यह उसके लिए गर्व की बात है कि उस पर एक भी गोल न

हुआ। योरप ने भारतवासियों की इस यात्रा से बहुत कुछ सीखा है।'

पूरे टूर्नामेन्ट में भारत पर एक भी गोल न हुआ और इसने कुल मिलाकर २९ गोल किये। भारत के वीर युवकों ने यह सब कुछ अनुकूल परिस्थिति न होते हुए भी किया। इन लोगों को आर्थिक कष्ट तो था ही, जल-वायु भी इन लोगों के प्रतिकूल था। मौसम ने भी इनका विरोध किया। इतने पर भी पराये देश में जहां इन्हें कोई उत्साह देनेवाला भी न था, इनका विजय प्राप्त करना बड़े गर्व की बात है।

विश्वविजयी खिलाड़ी को दिये गये मेडल का चित्र
(सामने का)

इस प्रकार बूढ़े और ग़ुलाम भारत की कमज़ोर सन्तान अपनी शानदार विश्व-विजय का कर्ण-भेदी डङ्का बजाकर २२ जून को स्वदेश लौटी। जहाज़ से उतरते ही कप्तान पैनीजर को बम्बई के गवर्नर का बधाई का पत्र मिला। वायसराय महोदय पहले ही तार-द्वारा बधाई दे चुके थे। पश्चिम-भारतवर्षीय हॉकी एसोसिएशन के सदस्य और भारतीय हॉकी फ़ेडरेशन के सभापति इनसे मिले। एसोसिएशन ने इनका धूमधाम से स्वागत किया। बम्बई के कार्पोरेशन मेअर ने भी इन खेलाड़ियों का स्वागत किया। सेन्ट रेज़ीनल्ड फ़ोर्ड ने एक भोज दिया। दोपहर को बम्बई-प्रान्तीय टीम से जिससे ये लोग विलायत जाते समय हार गये थे, मैच खेला। दर्शकों की बहुत भारी भीड़ थी। उस एक दिन के टिकट की आय ६,०००) रुपया से ऊपर हुई। इस मैच में भारतीयों ने भी अपने खेलाड़ी बाज़ीगर (ध्यानचन्द्र) को खेलते देखा। खेलता क्या था, कमाल करता था। सारे दर्शकगण हैरान थे और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते थे। पेनीजर और राक ने भी सबको मुग्ध कर लिया था। गोलकीपर एलिन की भी ख़ूब प्रशंसा रही।

यह तो रही विश्व-विजयी खेलाड़ियों के चमत्कार की बात। अब ज़रा इस पर भी विचार कीजिए कि भारतवर्ष ने अपने वीरों के प्रति अपने कर्तव्य का पालन कहाँ तक किया।
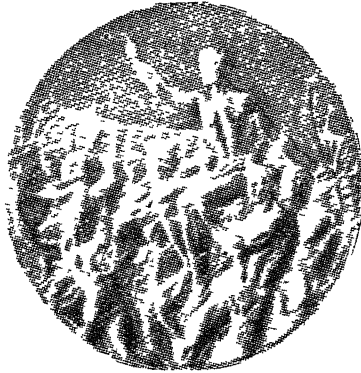
विश्वविजयी खिलाड़ी को दिये गये मेडल का चित्र
(पीछे का)

धनिकों की उदारता और सहृदयता तो ऊपर बताई जा चुकी है। अब देखिए यहां के समाचार-पत्रों ने अपना कर्तव्य कहां तक पालन किया है। इस विजय का वर्णन हिन्दी के समाचार-पत्रों में हुआ, परन्तु इस प्रकार हुआ मानो इस विजय से भारत का कुछ सम्बन्ध ही नहीं था। किसी भी भारतीय पत्र ने इस विजय पर विशेष हर्ष नहीं प्रकट किया। पत्रों का कर्तव्य था कि इस विजय का सचित्र वर्णन देते या इसी हेतु विशेषाङ्क निकालते। यदि यही विजय किसी योरपीय देश में हुई होती तो वे माता के लाल पलकों पर बैठाये जाते। उनका अद्भुत स्वागत होता और सारे देश में धूम मच जाती।

सन् १९२४ के ओलिम्पिक खेलों में जीते हुए अमेरिकन प्रतिनिधियों का वह स्वागत हुआ था जो वहाँ के राष्ट्रपति को भी कभी नसीब नहीं हुआ।

इधर भारत के इन विजयी वीरों का स्वागत केवल हॉकी एसोसिएशन के थोड़े से सदस्यों और कुछ अफ़सरों ने ही किया। यही कारण है कि आज भारत फिसड्डी है। उसकी सन्तान अपने त्यागियों, वीरो और विद्वानों का मान करना ही नहीं जानती। अपने होनहार लालों का उत्साह बढ़ाना सीखा ही नहीं।

—प्रतापचन्द्र जैन

६—वैदिक विज्ञान

सुनते हैं, आधुनिक विज्ञान से सिद्ध है कि चन्द्रमा से हमें जो प्रकाश मिलता है वह स्वयं उसका नहीं, सूर्य्य का है। सूर्य का प्रकाश ही हमें चन्द्रमा-द्वारा प्राप्त होता है।

यही बात वेदों में भी लिखी है। देखिए—

सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वस्तस्य।

(य० वा० सं० १८,४०)

इसका अर्थ है सुन्दर सुखदेनेवाली सूर्य्य की किरणें। उन्हें चन्द्रमा धारण करता है। अर्थात् सूर्य्य की किरणें ही चन्द्रमा में से होकर आती हैं।

आज-कल यह एक चाल-सी पड़ गई है कि लोग प्रत्येक बात को वैज्ञानिक सिद्ध करने के लिए पुराने ग्रन्थों के, विशेपतः धार्म्मिक ग्रन्थों के, वाक्यों को तोड़-मरोड़ कर उनका वैसा ही अर्थ करने लगे हैं और कहने लगे हैं कि यह और वह विज्ञान की बात हमारे धर्म्म-ग्रन्थ में भी लिखी है। ये बातें यद्यपि असत्य नहीं कही जा सकतीं; तो भी इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वर्तमान विज्ञान की उन्नति के युग में ही ये अर्थ सूझे हैं। यह प्रश्न भी हो सकता है कि इससे पहले ये वैज्ञानिक अर्थ क्यों न सूझे थे? शब्द तो वही जो आज हैं। इसका उत्तर वैसा अर्थ करनेवाले चाहे जो दें, परन्तु वेदों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती; क्योंकि अब से हज़ारों और लाखों वर्ष पहले के वेदाचार्य्यों ने भी यत्र-तत्र वेदों के ऐसे ही (वैज्ञानिक) अर्थ किये हैं। इससे सिद्ध है कि वेदों के ये वैज्ञानिक सिद्धान्त उनके अपने हैं। उन्हें कोई देखे या न देखे, वेदों ने ये सिद्धान्त किसी से सीखे नहीं हैं; क्योंकि दुनिया की पुस्तकों में वे सबसे प्राचीन हैं, यह बात प्रमाणों से ऐतिहासिक विद्वान् सिद्ध कर चुके हैं।

इस समय जिस सिद्धान्त पर ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं उसका प्रकाश अब से लाखों वर्ष पहले भी वैसा ही था। जिस मन्त्र के आधार पर यह बात कही जा रही है उसका अर्थ प्रसिद्ध वेदाचार्य्य श्रीयास्क मुनि ने भी अपने 'निरुक्त' में ऐसा ही किया है, अतएव यह शंका किसी को नहीं हो सकती कि आज ही इस मन्त्र का यह अनोखा अर्थ किया जा रहा है।

निरुक्तकार 'गो' शब्द के अभिधेय प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं—"आदित्योऽपि गौरुच्यते:—उतासदः परुषे गवि।" अथाप्यस्यैको रश्मिश्चन्द्रमसं प्रतिदीप्यते, तदनेनोपेक्षितव्यम्। आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति। "सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा गन्धर्वः" इत्यपि निगमो भवति।" अर्थात् 'गो' शब्द का अर्थ आदित्य भी होता है; क्योंकि 'उतासदः परुषे गवि' इस मन्त्र में 'गो' शब्द सूर्य्य के अर्थ में आया है। इसी सम्बन्ध में एक बात यह है कि इसी (आदित्य) की किरणें चन्द्रमा में प्रकाश करती हैं; सो यह बात निरुक्त-शास्त्रियों को अच्छी तरह जाननी चाहिए। मतलब यह कि सूर्य्य के द्वारा ही इस (चन्द्रमा) का प्रकाश होता है—आदित्यतोऽस्य दीप्तिर्भवतीति। इसका वर्णन "सुषुम्णः सूर्य्यरश्मिश्चन्द्रमा" इत्यादि मन्त्र में है।

इस प्रकार निरुक्तकार श्रीयास्क मुनि की व्याख्या से यह बात स्पष्ट और सन्देहरहित सिद्ध हो जाती है कि उक्त मन्त्र का यही सम्प्रदायप्राप्त अर्थ है और उक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त का इसमें प्रतिपादन है।

निरुक्त के प्रसिद्ध टीकाकार श्रीदुर्गाचार्य्य ने भी उक्त मन्त्र का और निरुक्त के इन वाक्यों का यही अर्थ किया है। अर्थ स्पष्ट है और दूसरा अर्थ हो भी नहीं सकता। आपने टीका करते हुए लिखा है—"अम्मयं हि चन्द्रमसो मण्डलं, तत्तेजःसम्बन्धाद्दीप्तिमद् भवति। ततः सर्वा दिशः प्रकाशयति।" अर्थात् चन्द्र-मण्डल जलमय

है। सूर्य्य-प्रकाश के सम्बन्ध से ही यह प्रकाशमान होता है और सब दिशाओं को प्रकाशित करता है।

ध्यान रखना चाहिए कि वेद के उक्त मन्त्र में या निरुक्त की उद्धृत पंक्तियों में कहीं भी इस बात का ज़िक्र नहीं है कि चन्द्रमण्डल जलमय (अम्मय) है। सम्भव है, अन्यत्र कहीं वेदों में इस बात का ज़िक्र आया हो, मैंने नहीं देखा है। यह भी सम्भव है कि चन्द्रमा की रोशनी को शीतल होने के कारण ही श्रीदुर्गाचार्य्य ने उसे जलमय अनुमित कर लिया हो। जो भी हो, विद्वानों को इस पर विचार करना चाहिए।

—किशोरीदास वाजपेयी

७—दिल्ली की चित्र-प्रदर्शिनी

एस्कीमो लोग दो-तीन रेखायें खींचकर हाथी, घोड़ा या मेम्मथ का जीवन्त चित्र बना देते थे। यह बात अविश्वसनीय नहीं होनी चाहिए। किसी अजायबघर में जाने पर इसके अनेक उदाहरण मिल सकते हैं। इस शस्यश्यामला भारतभूमि के अनेक घरों में शंख तथा भित्ति पर सीधे-टेढ़े, पतले-मोटे, फूल-पत्ते और देवी-देवताओं के विचित्र चित्र बनते है।

शिल्प प्राण की वस्तु है। मन का भाव प्रकाशित करने के लिए जिस तरह लेख अपेक्षित है, उसी तरह रेखा भी आवश्यक है। तुली और क़लम दोनों श्रीशारदा देवी की क्रीडन-सामग्री है। एक समय दिल्ली शिल्प के लिए प्रसिद्ध थी—मय दानव का शिल्प-चातुर्य्य कौन नहीं जानता?—परन्तु वर्त्तमान काल में उसके मानसिक शिल्प की सूक्ष्म भाव-धारा लुप्त हो गई है। जिस देश में शिल्प या साहित्य की चर्चा नहीं होती, कवि की वीणा अपने स्वर-झङ्कार से जिस देश की जनता को मुग्ध नहीं करती, जिस देश के वायु-आकाश शिल्पी की तुली से रञ्जित नहीं होते, उस देश को अन्धकार—पाषाण—पुर-समूह समझना चाहिए।

ऐसी दशा मे दिल्ली मे प्रसिद्ध चित्रशिल्पी श्रीयुत शारदाचरण उकील, माननीय एस० आर० दास, राय-बहादुर लाला सुलतानसिंह, दिल्ली के चीफ़ कमिश्नर साहब, अध्यक्ष श्रीसुरेन्द्रकुमार सेन प्रभृति के उद्योग से इस वर्ष शिल्प-प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया गया; और कहते हुए हर्ष होता है कि प्रदर्शिनी के द्वार का उद्घाटन स्वयं कमांडर-इन-चीफ़ महोदय ने किया। ये महोदय, तथा इनकी धर्मपत्नी भी, चित्रकला में सानुराग है।

प्रदर्शिनी की सारी सजावट पूर्वी ढंग की थी। बम्बई, मदरास, बङ्गाल, जयपुर आदि स्थानों से बहुत से चित्र आये थे। परन्तु बङ्गाल के प्रसिद्ध चित्रकारो के चित्र अधिक नहीं थे और जो थे भी वे प्रतियोगिता के लिए नहीं थे।

प्रथम पुरस्कार बङ्गाल के श्रीअश्विनीकुमार राय के 'दधीचि' नामक चित्र पर मिला। इसमें चित्रकार ने ध्यानमग्न मुनि का पूतभाव, उनके वक्षःपञ्जर का तेज-ःपुञ्जभाव सुन्दर रूप से दरसाया है। देवताओं का सौम्यभाव प्रशंसनीय है। परन्तु पार्श्वदृश्य (Back ground) में मेघाच्छन्न करने का कारण समझ में नहीं आया। उनका दूसरा चित्र 'विरही शिव' सुन्दर है, परन्तु पार्श्वदृश्य तुषाराच्छन्न होता तो चित्र का भाव अधिक प्रकाश पा सकता था।

इसके अनन्तर तरुणशिल्पी श्रीयुत रणदाचरण उकील का 'भोजराज-द्वात्रिंशत्पुत्तलिका' का उल्लेख, किया जा सकता है। इस चित्र पर 'Best decorative' कहकर पुरस्कार मिला है। आज-कल योरप में डेकोरेटिव (Decorative Art) शैली के चित्र नहीं बनते। भारत मे भी वरदा के प्रमोद बाबू को छोड़कर इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया है। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि मौलिक चित्र खींचने में रणदा बाबू अद्वितीय हैं। उनके 'वसन्तवधू' नामक चित्र को देखने से यह बात प्रमाणित होती है। इस चित्र को देखकर निम्नलिखित श्लोक स्मरण आता है।

'नेत्राम्बुधाराङ्कितचारुदेहा
वियोगदुःखानतचन्द्रवक्त्रा।
चिरं प्रियध्यानरता सुदीना॥
मुहुः श्वसन्ती पटमञ्जरीयम्'' ॥

अर्थात् पटमञ्जरी विरहयन्त्रणा से अपने चन्द्र-वदन को झुकाकर दीनभाव से बहुत देर तक स्वामी के

चिन्तन में निमग्न होकर बार बार दीर्घ निःश्वास त्याग करती है। इस चित्र में वसन्तरागिनी का रूप दिखाया गया है। इनके 'राधाकृष्ण' 'ताजनिर्माण' इत्यादि चित्र भी अतीव सुन्दर है।

इसके अनन्तर लाहौर के प्रसिद्ध शिल्पी चग़ताईजी के नाम का उल्लेख किया जा सकता है। उनके 'प्रेम-शिखा', 'संहारा रानी', 'आकुलता' प्रभृति चित्र बहुत ही मनोरम थे। 'प्रेमशिखा' चित्र में कवीन्द्र श्रीयुत रवीन्द्र-नाथ ठाकुर के —

"पुष्प जेमन आलोर लागी
नाजने रात काटाय जागी
तेमनी तुमार आशाय आमार
हृदय आछे छेये"

का भाव स्पष्ट है। रूपक-चित्रों के लिए नियत पुरस्कारों में से इस चित्र पर मध्यम पुरस्कार मिला है।

ब्लैक एंड ह्वाइट (Black and White) विभाग में श्रीयुत वरदा उकील के 'मा' नामक सुन्दर चित्र पर पुरस्कार मिला है। इसमें मातृत्व-भाव अक्षुण्ण था। उनका 'सोवतल बाला' नामक चित्र भी मनोरम था।

इस के बाद श्रीमती प्रतिमादेवी-द्वारा अङ्कित 'सर-स्वती' चित्र का उल्लेख होना चाहिए। इस चित्र पर महिलाङ्कित चित्रों में श्रेष्ठ पुरस्कार मिला है। इनके द्वितीय चित्र 'ग्रीष्म' में वैशाख मास की शुष्क भीममूर्त्ति के भाव का समावेश सुचारु रूप से हुआ है।

बम्बई के हलदानकर का 'पवित्रदीप' एवं परानन्दे-कर का 'सांचीस्तूप' बड़े मनोरम रहे। पहले (पवित्र-दीप) पर द्वितीय श्रेष्ठ पुरस्कार मिला और पिछले (सांचीस्तूप) पर श्रेष्ठ तैलरङ्ग कहकर पुरस्कार मिला। स्थापत्य-चित्र-विभाग में श्रेष्ठ रूप से परानन्देकर के चित्र पर पुरस्कार मिला। दोनों ही चित्र अच्छे हुए हैं।

शिल्पगुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के बहुत से नयना-भिराम चित्र आये थे। उनके बनाये चित्र प्रायः सबने देखे हैं, अतएव इस सम्बन्ध में कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाना है। उनके 'मेघदूत' 'बख़्तियार का अनुसरण' 'डाकबँगला' नामक तीन चित्र प्रदर्शिनी में सर्वश्रेष्ठ थे—यह निस्सन्देह कहा जा सकता है। 'मेघदूत' मे व्याकुल कलापी का नर्त्तन इतने सुन्दररूप से चित्रित किया है कि एक बार देखने से विस्मृत नहीं हो सकता। 'बख़्तियार का अनुसरण' में अन्धकार के हृदय को चीरकर अस्पष्ट नौका जिस सुन्दर भाव से अङ्कित की है वह अन्यत्र दृष्टिगोचर नहीं होता। इस चित्र का स्वल्प कलेवर होने से दर्शक पर्य्याप्त आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते।

इसके अनन्तर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का 'योग्य शिष्य' तथा प्रसिद्ध शिल्पी श्रीयुत शारदाचरण उकील के 'ईद का चांद', 'सती के वियोग में', 'समाधि के पास' इत्यादि चित्र अतुलनीय थे। 'ईद का चांद' नामक चित्र में निर्धन के घर का सच्चा चित्र देखा जाता है। ऐसी चित्रकारी सर्वत्र उपलब्ध नहीं। 'सती के वियोग में' और 'समाधि के पास' ये दोनों चित्र रेशम पर हैं। इन दोनो मे वियोग-वेदना मूर्त्तिमती प्रतीयमान है। 'सती-वियोग' देखने से मालूम होता है, मानो पाषाण द्रवीभूत हो रहा है।

श्रीयुत गगनेन्द्र ठाकुर की 'स्वप्न' व 'मायापुरी' नाम की दोनों तसवीरों का अङ्कन-चातुर्य्य प्रशंसनीय है। लाहौर के श्रीसमरेन्द्रनाथ गुप्त का चित्र मनोहर है। दाक्षिणात्य विजयराघवजी के 'अभिसारिका' व 'कुमुदिनी' अच्छे है। सुशील बाबू मूक तथा बधिर हैं, परन्तु उकील बाबू से शिक्षा पाकर एक ही वर्ष में उन्होंने प्रशं-सनीय उन्नति प्राप्त की है।

सुनयना देवी-द्वारा अङ्कित चित्रावली, तथा सुशीला-देवी-द्वारा स्लेट पत्थर पर खुदा हुआ 'नर्त्तकी' चित्र मनोरम है। इसके अतिरिक्त मौडर्न हाईस्कूल—देहली की एक दशवर्षीया बालिका तथा एक अष्टवर्षीय बालक को उनके सुन्दर चित्रों पर पुरस्कार मिले है। स्कूलों के विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करने के लिए यह छात्र-चित्र-विभाग रक्खा गया है—आशा है, भविष्य में स्कूलों के छात्र व छात्रायें अधिक संख्या में अपने अपने चित्र भेजेंगे।

इस प्रदर्शिनी में एक और विभाग था, जिसका मूल्य शिल्पपिपासुओं के लिए बहुत है--वह है प्राचीन—चित्र-समावेश-विभाग। इस विभाग में काश्मीरी रामायण की

चित्रावली विशेष उल्लेखनीय है। ये सब चित्रविद्रोह के अवसर पर एक अशिक्षित सिपाही के हाथ में पड़ गये थे। उसने तसवीरें तो ले लीं, परन्तु लेख फेंक दिये। कुछ दिन बाद किसी पुरुष ने रुपया देकर उससे वे चित्र ले लिये। अब वे सब चित्र पण्डित अमरनाथजी की सम्पत्ति हैं और इनकी संख्या ७५ है। इस चित्रावली में श्रीरामचन्द्रजी के जन्म से प्रारम्भ करके वन-गमन—अयोध्या-राज्याभिषेक—सीताजी का पाताल-प्रवेश—आदि सब कुछ बड़ी विशदता से अङ्कित हुए हैं।

दिल्ली के एक धनी रायबहादुर लाला पारसदास-द्वारा संगृहीत राजपूत व मुग़ल-चित्र दर्शनयोग्य हैं। उनमें से 'झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई', 'सलीम का दरबार', 'दिल्ली की अन्तिम बेगम', 'जिन्नतमहल', 'मुहम्मद तुग़लक' प्रभृति चित्र सुन्दर हैं। इसके अतिरिक्त स्थानीय रईस रायबहादुर लाला राधामोहनजी-द्वारा संगृहीत, अभ्र पर अंकित, प्राचीन चित्रावली आश्चर्यजनक व मनोरम थी।

हर्ष का विषय है कि दिल्ली की प्रथम प्रदर्शिनी में ही सात हज़ार रुपये के चित्र महाराज पटियाला, महाराज बीकानेर, महाराज कपूरथला प्रभृति देशी राजन्यवर्ग तथा सम्भ्रान्त सज्जनों ने ख़रीदे। इस बारे में प्रदर्शिनी के अन्यतम कार्यकर्ता श्रीयुत वरदाचरण उकील का उद्योग व उद्यम प्रशंसनीय है। पहले वर्ष में जिस प्रकार चित्रों का समावेश हुआ था—आशा है उसी प्रकार भविष्य मे प्रतिवर्ष अधिकाधिक उन्नति होती जायगी।

श्रीयुत शारदाचरण उकील के उद्योग से दिल्ली में शिल्पकला की ओर अनुराग जागृत हुआ है। वातावरण में इतना परिवर्त्तन हुआ है कि लोक-रुचि भी कुछ बदली है। तरुण-शिल्पी श्रीयुत शारदाचरण उकील की चित्रावली ने भी उत्तर-भारत मे प्रतिष्ठा प्राप्त की है। गत शिमला-प्रदर्शिनी में इनके अंकित 'श्रीदुर्गा' नामक चित्र पर सर्वश्रेष्ठ पुरस्कार मिला था।

प्राचीन भारत की भावधारा ने शिल्प-द्वारा इतना प्रभाव-विस्तार किया है कि वह वास्तव मे हमारे गौरव का विषय है।*

—कृष्णदत्त भारद्वाज

* भारतवर्ष नामक बँगला पत्र में प्रकाशित एक लेख का अनुवाद।

८—डाक्टर सीज़र ए० रॉनी जैन्वियर

प्रयाग के युइंग क्रिश्चियन कालेज के लोकप्रिय प्रिंसिपल डाक्टर सीज़र ए० रांनी जैन्वियर की मृत्यु का शोक-समाचार प्रान्त के दैनिक पत्रों में प्रकाशित हो चुका है। उन्हीं के विशद चरित्र का कुछ सामान्य परिचय देना इन पङ्क्तियों के लेखक का कर्त्तव्य है। डाक्टर जैन्वियर युइंग कालेज के द्वितीय प्रिंसिपल थे और गत पन्द्रह वर्षों के भीतर, अपने पद पर रहते हुए, उन्होंने क्रिश्चियन कालेज और इस प्रान्त में शिक्षा-विस्तार के लिए जो कुछ किया वह महान् आत्माओं का ही काम है।

डाक्टर जैन्वियर का जन्म ५ जनवरी सन् १८६१ को हुआ था। इनके माता-पिता भारत में मिशनरी थे और इनकी माता छोटे बालकों की शिक्षा के लिए एक छोटा-सा मदरसा चलाती थीं। डाक्टर जैन्वियर ने भी दस वर्ष की आयु तक अपनी प्रारम्भिक शिक्षा इसी मदरसे में पाई। इसके बाद वे अमरीका चले गये और वहां की उच्च शिक्षा समाप्त करने के उपरान्त उन्होंने मिस सूसन रैंकिन से विवाह किया।

सन् १८८७ में डाक्टर जैन्वियर भारतवर्ष मे मिशनरी होकर लौटे और १८६५ में उनकी प्रयाग में नियुक्ति हुई। यहां वे १९०१ तक रहे। इसी बीच में उन्होंने प्रयाग में एक क्रिश्चियन कालेज होने की आवश्यकता का अनुभव किया और अपनी शुभ कल्पना को इस ज़ोरदार ढङ्ग से मिशन के सामने पेश किया कि मिशन को उनका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा।

सन् १९०० के शरद् में क्रिश्चियन कालेज का प्रारम्भ हुआ और डाक्टर युइँग उसके पहले प्रिंसिपल बनाये गये। ये इस पद पर सन् १९१२ तक रहे। इस बीच में डाक्टर जैन्वियर अमरीका में रहे और कालेज के लिए आवश्यक धन इकट्ठा करते रहे। परन्तु जब १९१२ में डाक्टर युइँग की मृत्यु हो गई तब बोर्ड आव् डाइरेक्टर्स के लिखने पर डाक्टर जैन्वियर भारतवर्ष आगये और उन्होंने युइंग किश्चियन कालेज का प्रिंसिपल बनना स्वीकार किया। तब से ३ नवम्बर १९२८ तक वे बराबर प्रिंसिपल रहे।

डाकृर जैन्वियर की मृत्यु एक बड़ी हृदयविदारक और किञ्चित् आश्चर्यजनक घटना है। ३ नवम्बर को ४ बजे कालेज समाप्त होने पर डाकृर जैन्वियर अपना दर्जा पढ़ाकर आफ़िस में गये और दो-चार मिनट के बाद ज़ीने से नीचे उतरे। इस समय तक कालेज के लगभग सब विद्यार्थी और अध्यापक लोग नीचे जा चुके थे और कालेज प्रायः ख़ाली हो गया था। यह दैव-विधान ही था कि जिस ज़ीने से अभी तमाम लड़के उतर चुके थे और जिससे रोज़ सात सौ विद्यार्थी कितनी ही बार चढ़ते उतरते रहे हैं उसी ज़ीने के मध्य में पहुँचते सीढ़ी के बीच के पत्थर का जोड़ खुल गया और डाकृर जैन्वियर भीतर धँस गये। एक क्षण से भी कम शायद वे लटके रहे होंगे; उसके बाद नीचे गिर कर बेहोश होगये। वह हत्यारा पत्थर भी अपनी जगह पर नहीं रह सका और उनके साथ ही उसका भी पतन हुआ। साढ़े पाँच घण्टे की बेहोशी के बाद डाकृर जैन्वियर ने इस लोक से यात्रा की।

संसार के काम किसी के भी बिना रुके नहीं रहते—जैसे-तैसे चलते ही हैं। परन्तु डाकृर जैन्वियर जैसे मनुष्यों की हानि से जो क्षति होती है उसका चिर काल तक अनुभव करना पड़ता है। संयुक्त-प्रान्त और प्रयाग के शिक्षा-कार्य में डाकृर जैन्वियर कितनी बड़ी शक्ति के थे, इसका यदि सामान्य परिचय भी दिया जाय तो लेख चौगुना हो जायगा। उनकी सूझ, उनकी सङ्गठन-शक्ति, उनका साहस और उत्साह तथा उनकी निःस्वार्थता उदाहरणीय बातें हैं। शिक्षा के भिन्न भिन्न विभागों में एक साथ आधे दर्जन से अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण पदों पर रह कर वे सबका असामान्य चारुरूपता से निर्वाह करते थे। अपने धर्म और देश के लिए उन्होंने अपना जीवन उत्सृष्ट कर रक्खा था। लगभग सत्तर वर्ष की आयु में वे मरे। परन्तु उद्यम और अध्यवसाय में वे तीन जवान आदमियों से बाज़ी मारते थे। ऐसे अद्भुत शक्ति और प्रभाववाले व्यक्ति की मृत्यु पर किसे शोक न होगा? परमपिता से प्रार्थना है कि वह उन्हें अपनी शरण में ले।

—रामकृष्ण शुक्ल

९—आयुर्वेद का इतिहास

आयुर्वेद के प्रधानतः दो सम्प्रदाय हैं। उनमें एक धन्वन्तरि-सम्प्रदाय है। इसने आयुर्वेद में शल्यतन्त्र (surgery) में प्रधानता प्राप्त की। और दूसरा भरद्वाज-सम्प्रदाय है। इसने आयुर्वेद में काय-चिकित्सा (medicine) मे प्रधानता प्राप्त की।

धन्वन्तरि काशी के राजा थे। उनका दूसरा नाम देवोदास था। वे तथा उनके प्रधान शिष्य सुश्रुत क्षत्रिय थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि शस्त्र-व्यवसायी क्षत्रियो के लिए शल्यतन्त्र की आलोचना समधिक उपयोगी है। धन्वन्तरि और सुश्रुत-सम्प्रदाय के मूल ग्रन्थ चार हैं—उपधैतवतन्त्र, उरभतन्त्र। सौश्रुततन्त्र और पौष्कलावततन्त्र।

भरद्वाज ब्राह्मण थे। वे पुनर्वसु आत्रेय के अध्यापक थे। आत्रेय ने पञ्चाल-देश की राजधानी काम्पिल्य में आश्रम स्थापन कर अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पराशर, हारीत और क्षारपाणि नामक छः ब्राह्मण शिष्यों को ब्राह्मण-स्वभाव के गुणानुसार आयुर्वेद की काय-चिकित्सा की शिक्षा दी। यही भरद्वाज-सम्प्रदाय व आत्रेय-सम्प्रदाय है। अग्निवेश प्रभृति छओं व्यक्तियों के एक-एक मूल ग्रन्थ थे।

आधुनिक प्रचलित आयुर्वेद-ग्रन्थों के मध्य एक-मात्र चरक-संहिता और सुश्रुत-संहिता ऋषिप्रणीत ग्रन्थ कहकर प्रसिद्ध हैं। वाग्भट्ट, भावमिश्र, चक्रपाणि, वंगसेन प्रभृति के ग्रन्थ संग्रह-मात्र हैं—मूल ग्रन्थ नहीं। निघण्टु, निदान प्रभृति ग्रन्थ आयुर्वेद के एक एक अंश के प्रतिपादक हैं।

अग्निवेश-प्रणीत अग्निवेश-तन्त्र एवं चरककृत पुस्तक दोनो मिलकर चरक-संहिता के नाम से प्रसिद्ध हुई है। चरक-संहिता को केवल अग्निवेश तन्त्र भी नहीं कह सकते, क्योंकि चक्रपाणि, विजयरक्षित, श्रीकण्ठ, शिवदास प्रभृति वैद्य-ग्रन्थकारों ने अग्निवेश-तन्त्र पर जो कुछ लिखा है वह वर्त्तमान चरक-संहिता मे कुछ भी नहीं मिलता। चरक-संहिता के ३० वें अध्याय में एक स्थान पर लिखा है कि 'कपिलमतावलम्बी दृढ़वल ने सप्त दस अध्याय एवं कल्प और सिद्धि स्थान की रचना की'।

इससे यह सिद्ध होता है कि दृढ़वल भी वर्त्तमान चरक-संहिता के बहुत से अंश के रचियता थे।

व्याकरणमहाभाष्य और योगसूत्र के प्रणेता प्रसिद्ध पातञ्जलि मुनि ही का दूसरा नाम चरक था। यह मत सुप्राचीन है। इसी लिए हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि ईसा के पूर्व दूसरी शताब्दी में अग्निवेश-तन्त्र का जीर्णोद्धार कर वर्त्तमान चरक का अधिकांश सङ्कलन हुआ था। इसके बाद "पञ्चनदपुर" में दृढ़वल (तीसरी शताब्दी ?) ने चरक के शेष अंश की रचना की।

सौश्रुत-तन्त्र को ही किसी ने सुश्रुत के नाम से प्रचारित किया। प्राचीन सौश्रुत-तन्त्र एवं वर्त्तमान सुश्रुत-संहिता कदाचित् अभिन्न न हो सकेगीं। इस मूल सुश्रुत-तन्त्र का कहीं कहीं वृद्ध सुश्रुत कहकर उल्लेख किया गया है। टीकाकारों ने वृद्ध सुश्रुत से जिन समस्त पाठों को उद्धृत किया है, वर्त्तमान सुश्रुत-संहिता में वे नहीं मिलते।

सुश्रुत में कुछ भूले है। वे सभी किसी अज्ञात-नामा अनाड़ी शोधक के फल के सिवा और क्या हो सकती हैं। प्रचलित सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्ता कौन है, यह ठीक तरह से नहीं कहा जा सकता। सुश्रुत-टीकाकार उल्लन का कथन है कि नागार्जुन सुश्रुत के प्रतिसंस्कर्ता हैं। प्राचीन इतिहास में बहुत से नागार्जुनों का उल्लेख है। एक रसतन्त्राचार्य है, एक बौद्ध नरपति है, एक माध्यमिक मतप्रवर्तक है। कुछ भी हो, सुश्रुत प्रतिसंस्कर्ता नागार्जुन प्रायः दो हज़ार वर्ष पहले हुए थे। ऐसा मानने के यथेष्ट कारण भी हैं।

चरक और सुश्रुत के प्रतिसंस्कार-द्वारा यही प्रतीत होता है कि दो हज़ार वर्ष पहले आयुर्वेद की नितान्त दुर्दशा उपस्थित थी। इसी से पातञ्जलि और नागार्जुन ने इसका जीर्णोद्धार कर प्रचलित संहिता का संकलन किया। इस प्रतिसंस्कार के बाद केवल संग्रह और टीका का युग रहा।

हम आयुर्वेद के इतिहास को चार भागों में विभक्त कर सकते हैं। (१) दैवयुग—इस युग के ग्रन्थ है ब्रह्म-संहिता, प्रजापति-संहिता, अश्व-संहिता और बलभिल-संहिता। इस युग का कालनिर्णय असम्भव है। कोई कोई इसे आयुर्वेद, ऋग्वेद एवं अथर्ववेद का अङ्ग मानते है।

(१) आर्ष-युग—यह आयुर्वेद का श्रेष्ठ युग है। इस युग मे आयुर्वेद के प्रत्येक अङ्ग पर अनेक ग्रन्थो की रचना हुई थी। आज-कल केवल उनका नाम एवं प्रत्येक की कुछ पंक्तिया टीकाकारो की टीकाओं में मिलती है। सम्भवतः इनका जीर्ण-शेष कुछ हज़ार वर्ष पूर्व विद्यमान था। यहाँ एक तालिका सङ्कलित है।

(क) काय-चिकित्सा-तन्त्र (medicine) :—(१) अग्निवेश (२) भेल (३) जतुकर्ण (४) पराशर (५) चारपाणि (६) हारीत (७) खरनाथ (८) विश्वामित्र (९) अरिन्द्र-संहिता

(ख) शल्य-तन्त्र :—(१०) उपधैतव (११) उरभ (१२) सौश्रुत (१३) पौष्कलावन (१४) वैतरन (१५) भोज (१६) करवीर्य (१७) गोपूर-रचित (१८) भानूकतन्त्र। कायचिकित्सा व शल्यतन्त्रः—(१९) कपिल-तन्त्र (२०) गौतम-तन्त्र

(ग) शालाक्यतन्त्र (aculeate and some other kinds of surgery especially with pointed instruments) (२१) विदेह (२२) निमि (२३) कात्यायन (२४) गार्ग्य (२५) गालव (२६) सात्यकी (२७) शौनक (२८) कराल (२९) चक्षुस्य (३०) कृषात्रेय-तन्त्र

(घ) भूत-विद्यातन्त्रः—भूत-विद्या के किसी ग्रन्थकार का नाम टीकाओं में नहीं पाया जाता। सुश्रुत और वाग्भट्ट ने भूत-विद्या को पृथक् ही माना है। किन्तु चरक ने उन्मादाधिकार के कारण इसका अन्तर्भाव किया है। भूत विद्या अर्थात् भूतों के द्वारा चिकित्सादि करना।

(ङ) कौमारभृत्य तन्त्रकार—(३१) जीवक (३२) पार्वतक और (३३) बन्धक का नाम उल्लन में है। जीवक बौद्ध-इतिहास मे प्रसिद्ध है। इन्होंने बिम्बिसार एवं स्वयं बुद्धदेव की चिकित्सा की थी। पाली-ग्रन्थों मे इनका उल्लेख जीवककुमार भच्च कहकर हुआ है। इनके सिवा (३४) हिरण्याच तन्त्र नामक

एक और भी तन्त्र था, ऐसा लोगों का अनुमान है।

(च) अगदतन्त्र अर्थात् निखिल—स्थावर-जंगम-विष चिकित्साः—(३५) काश्यपतन्त्र एवं (३६) सनक (३७) भट्टायनसंहिता।

(छ) रसायनतन्त्रः—(३८) पतञ्जल (३९) व्याडि (४०) वशिष्ठ (४१) मातव्य (४२) नागार्जुन-तन्त्र

(ज) वाजीकरण-तन्त्र।—पुराने टीकाकारों ने इस विभाग के किसी भी ग्रन्थ का उल्लेख नहीं किया है। इसके ग्रन्थों के नाम प्राचीन टीकाओं और सङ्ग्रहों में मिलते है। इनके अलावा और कितने ही ग्रन्थों के नाम विलुप्त होगये होंगे यह नहीं कहा जा सकता।

आयुर्वेद एवं अश्वायुर्वेद ने भी इसी युग मे सम्यक् पुष्टि लाभ की थी। इस युग का शालिहोत्र एवं पालकाव्य-संहिता उल्लेखनीय है—

इस युग में भारत संसार का विद्या-पीठ था। प्राच्य प्रतीच्य बहुदेश-देशान्तरों से विद्यार्थी भारत आकर विद्या और धर्म को ग्रहण करते थे। इस आर्षयुग के बाद बौद्ध-युग में भी भारतीय संसार में विद्या और धर्म के गुरु रहे। पश्चिम में मिस्र और अरब, ग्रीस एवं रोम प्रभृति पूर्व और उत्तर में तिब्बत, चीन और जापान, दक्षिण में यवद्वीप प्रभृति भारतीय ज्योति से उद्भासित हो रहे थे। इसके सैकड़ों प्रमाण मिलते है

अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे महामहिमान्वित युग का ऐसा शोचनीय परिणाम क्यों हुआ? उत्तर में केवल यही कहा जा सकता है कि सिकन्दर के आक्रमण नन्दवंश-ध्वंस-विप्लव। अशोक-कृत प्रजाक्षय और शकों के आक्रमण आदि के कारण प्रजा की शान्ति दूर होगई। लोगों को विज्ञान-चर्चा का अवसर ही न मिला। सुंग-वंशीय पुष्पमित्र के समय भारत में कुछ शान्ति स्थापित हुई। अग्निवेश-संहिता का फिर संस्कार हुआ। अनेकों का कथन है कि सुश्रुत के दूसरे संस्करण का यही समय है।

इसके बाद शको के आक्रमण से फिर भारत शोचनीय दशा को प्राप्त हुआ। पण्डितों ने विज्ञान-चर्चा का अवसर खो दिया। बाद में कुशानवंशीय कनिष्क ने बहुत से युद्ध कर हिमालय से लेकर विन्ध्य-पर्यन्त एकच्छत्र राज्य स्थापित किया। शान्ति फिर लौटी। इसी समय काश्मीर के दृढ़वल ने चरक-संहिता के शेषांश की रचना की।

क्रमशः हूण और कम्बोजीयगणों ने शतवर्षव्यापी विप्लव की सृष्टि की। विक्रमादित्य के समय पुनः शान्ति स्थापित हुई। विज्ञान और शास्त्रों की आलोचना दूने उत्साह से होने लगी। इस समय से लेकर अनेक शताब्दियों तक भारत में शान्ति रही। इसी दीर्घ शान्ति के समय कालिदास, अमरसिंह, वररुचि, वराहमिहिर, दण्डी, बाण, भवभूति, आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त आदि का प्रादुर्भाव हुआ। भगवान्, शङ्कराचार्य भी इसी समय पैदा हुए। आयुर्वेद की अष्टाङ्ग-संहिता के रचयिता वाग्भट्ट, वृन्द, माधव प्रभृति संग्रहकार एवं जज्जट, गयदास, भास्कर, ब्रह्मदेव प्रभृति व्याख्याकार भी इसी समय हुए। वंगदेशीय चक्रपाणिदत्त और माधवकर एवं सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार भोज राजा ईसा की ग्यारहवीं शताब्दी मे वर्तमान थे। इस युग के बाद ही गज़नी के सर्वध्वंसकारी महमूद का आक्रमण, मुहम्मद गोरी का आक्रमण, चंगेज़खाँ, तैमूर आदि का अत्याचार, मुग़ल-पठानों का युद्ध-विप्लव इत्यादि ने भारतीय विद्या को बहुत दिनों तक निग्रहीत किया। दक्षिण में बुक्का राजाओं के प्रताप से भारतीय-विद्या की पुनः प्रतिष्ठा हुई। सुप्रसिद्ध सायण माधव ने इसी समय वेद की टीका की। अकबरशाह के समय भी शान्ति रही एवं विद्या की उन्नति हुई। इसी समय कान्यकुब्ज में भावमिश्र का प्रादुर्भाव हुआ। अकबर के कुछ समय बाद तक विद्या की चर्चा रही। वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित, एवं कलि-आलङ्कारिक और वैयाकरण जगन्नाथ पण्डित प्रभृति शाहजहाँ के समय में हुए।

औरंगज़ेब के समय में पुनः विद्यालोचना में विघ्न पड़ा। इस विघ्न के दूर होते न होते नादिरशाह, मुहम्मदशाह प्रभृति लुटेरों की संहारलीला का अभिनय आरम्भ हुआ! फिर भारतीय विद्या अपना माथा न उठा सकी।

पुन ब्रिटिश-भारत में शान्ति विराजने पर लोकमान्य तिलक, बंकिम बाबू, राजा राममोहन राय, आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय, जगदीशचन्द्र वसु प्रभृति महात्माओं ने भारत का मुख उज्ज्वल किया। सम्भव है, हमारा भविष्य भी उज्ज्वल हो ! *

सूरजप्रसाद शुक्ल

१०—नादिरशाह का उजड्डपन

नादिरशाह बड़ा ही उजड्ड था। जब वह हिन्दुस्तान मे आया और करनाल के मैदान में महम्मदशाह की सेना को परास्त करके दिल्ली पहुँचा तब दोनों बादशाह एक ही सिंहासन पर बैठे। कथा प्रसिद्ध है कि नादिरशाह को प्यास लगी और उसने महम्मदशाह से कहा कि पानी मँगवा दो। मुग़ल-सम्राटों का आडम्बर प्रसिद्ध ही है। तुरन्त नगाड़ा बजने लगा और ऐसा जान पड़ा कि कोई बड़ा उत्सव होनेवाला है। दस-बारह सेवक किसी के हाथ में रूमाल, किसी के हाथ में ख़ासदान, दो-तीन सेवक एक बड़े चाँदी के थाल में, एक मानिक के कटोरे में जल भरे हुए ऊपर से एक गङ्गा-जमुनी सरपोश से ढाँके निकल आये। नादिर घबराया और उसने पूछा, यह क्या है। महम्मदशाह ने उत्तर दिया कि आपके लिए पानी आ रहा है। नादिर बोला, हम ऐसा पानी नहीं पीते और उसने तुरन्त चिल्ला कर अपने भिश्ती को बुलाया और लोहे का टोप उतार कर उसमें पानी भरवा कर वह पी गया। उसने कहा—यदि हम तुम्हारी भाँति पानी पीते तो ईरान से हिन्दुस्तान न आते।

दूसरे दिन उसे बद्धकोष्ठ हो गया। उसने अपना हाल महम्मदशाह से कहा। तुरन्त अलवीख़ाँ हकीम बुलाया गया। हकीम ने नादिरशाह की नाड़ी देख कर दवाख़ाने के दारोग़ा को गुलकन्द लाने की आज्ञा दी। थोड़ी देर में एक गंगा-जमुनी थाल के ऊपर सुनहले काम का ख़ानपोश पड़ा हुआ दरबार में उपस्थित किया गया। ख़ानपोश उलटने पर एक जड़ाऊ मर्तबान, एक छोटा सा हीरे का चम्मच और रत्ती-माशे समेत एक जड़ाऊ काटा रक्खा था। हकीम यह सोच रहा था कि नादिर को कितना गुलकंद खिलाया जाय। इतने में नादिर ने मर्तबान उठा लिया और दो उँगलियाँ डाल कर सारा गुलकन्द खा गया। उसने कहा, हलवा बहुत अच्छा है और लाओ।

—'ब'

११—दिल्ली के बादशाह महम्मदशाह के प्रधान मंत्री आसिफ़जाह की सूझ-बूझ

इतिहास के पढ़नेवालों ने नादिरशाह का नाम सुना ही होगा, जिसने दिल्ली में "क़त्ल आम" (जनता का वध) कराया था। दिल्ली के लोग त्राहि त्राहि कर रहे थे। महम्मदशाह का प्रधान मन्त्री बूढ़ा आसिफ़जाह नगर की दशा देख कर व्याकुल हो गया और आंखों में आंसू भरे हुए महम्मदशाह के सामने जा कर बोला—श्रीमान् आपके बाप-दादों की प्रजा नष्ट हो गई। बादशाह के भी आंसू निकल आये, परन्तु कर ही क्या सकता था। उदास होकर बोला—

दीदये इबरत कुशा,
कुदरते हक़ रा बबीं।
शामते आमाले मा
सूरते नादिर गिरफ़्॥

अर्थात् शोक की आंखें खोलो और ईश्वर की गति को देखो। हमारे ही पाप नादिर के रूप में परिणत हुए हैं।

दोपहर होते ही नगर में हाहाकार मच गया। कुछ लोग फिर आसिफ़जाह के पास गये। बुड्ढा मन्त्री नंगी तलवार गले में डाले नंगे सिर चुपचाप नादिर के आगे जा कर खड़ा हो गया और रोने लगा। नादिर को भी कुछ दया आ गई। वह बोला—क्या चाहते हो? आसिफ़जाह ने यह शेर पढ़ा।

कसे न मांद कि दीगर ब तेग़े नाज़ कुशी।
मगर ब ज़िन्द कुनी ख़ल्क़ रा व बाज़ कुशी॥

* कविराज गणनाथ सेन की "प्रत्यक्षशरीर" नामक पुस्तक से सङ्कलित।

अर्थात् कोई नहीं बचा जिसे तुम अपने हाव-भाव से मारो।

अब फिर संसार को जिला दो तब उसका वध करो।

नादिरशाह ने लज्जित होकर सिर झुका लिया और तलवार म्यान में रख कर कहा—हमने तुम्हारी उजली दाढ़ी पर दया की! तुरन्त ही ईरानी दूत नगर में दौड़े और शान्ति स्थापित हो गई।

एक दिन महम्मदशाह ने नादिरशाह की दावत की। इसमें एक एक काम एक एक अमीर को सौंपा गया। खाना खाने के पीछे जब चाय आई तब मन्त्री ने एक प्याला भरा। जब देने लगा तब उसने सोचा कि पहले अपने स्वामी को दूँ तो कहीं नादिर बिगड़ जाय और जो नादिर को दूँ तो अपने स्वामी को क्या मुँह दिखाऊँगा। सोचते सोचते उसे एक चाल सूझ गई। उसने महम्मदशाह के हाथ में एक प्याला दे कर कहा कि बादशाह ही बादशाहों को दिया करते हैं। इसका अभिप्राय यह था कि मैं इस योग्य नहीं हूँ। आप ही अपने हाथ से नादिरशाह को दीजिए।

—'अ'

१२—बकरी

पत्रिकाओं में बड़े बड़े विषयों पर लेख लिखे गये, पर बेचारी बकरी को किसी ने भी न पूछा। परन्तु बकरी ही का बच्चा भवानी को बलिदान दिया जाता है। कहा भी है—

अश्वं नैव गजं नैव सिंहं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दद्यात् दैवो दुर्बलघातकः॥

यह तो देव की निन्दा हुई। क्या भवानी ने अपने उपासकों को भावना में बताया था कि हमें बकरी का बच्चा पसन्द है या इस छोटे जीव को भवानी की भेंट करने में आर्यों ने कोई विशेष उपयोगिता देखी थी?

हम थोड़ी सी अँगरेज़ी पढ़कर इस बात के मानने को तैयार नहीं है कि भगवान् ने जब मनुष्य की सृष्टि की तब उसके लिए मेज़-कुरसी, पलँग-मसहरी, लोटा-थाली आदि भी बना दिये थे। जीव बनाकर जीवन की वासना तो दी ही थी। इस जीवन को अच्छी से अच्छी रीति से स्थिर रखने और निबाहने के नियम भी प्रकृति ने बता दिये, जिनका विवरण हमने प्रकृति की नीति* में लिखा है। जीवन के स्थिर रखने और उसके निर्वाह का साधन हमारे पास स्वतंत्र इच्छा-शक्ति और (चेतना-शक्ति) बुद्धि है। यही चेतना-शक्ति उचित प्रयोग करने से हमें बताती है कि हमको क्या करना चाहिए और क्या न करना चाहिए। इसी चेतना-शक्ति से हम यह जानते है कि जिस काम के करने से हानि होती है, उसे न करना चाहिए।

जीवन को स्थिर रखने का मुख्य उपाय भोजन है, जिसकी रीति यह है कि मुँह में खाने की वस्तु रखकर गले के द्वारा पेट में उतार दी जाय। यह पेट-पूजा बड़ी प्रबल है और इसकी महिमा बङ्गाल के प्रसिद्ध उपन्यासकार बाबू बंकिमचन्द्र चटर्जी ने अपने पेट-दर्शन में यों दिखाई है—

ॐ नमो भगवते पेटदेवाय।
त्रिविध पेटपूर्ति परम पुरुषार्थः॥१॥
तीन प्रकार से पेट भरना परम पुरुषार्थ है।

इसी वासना के कारण छोटे बच्चे ईंट पत्थर जो कुछ पाते हैं, मुँह में रख लेते हैं। यही पेट जीवों से अनेक अनिष्ट कर्म कराता है। कुछ जीव अपना पेट भरने को अपने से निर्बल दूसरे जीव को मार डालते हैं, कुछ दूसरों को मारकर उनका भोजन छीन लेते हैं और नहीं मार सकते तो अनेक उपाय से उनको फुसलाकर उनका अन्न उनसे माँग लेते हैं। भोजन दो प्रकार का होता है—एक सामिष दूसरा निरामिष। जिन देशों में खेती नहीं होती, वहाँ के लोग अब तक निरा मांस ही खाते हैं। जिसने अँगरेज़ों का भोजन देखा होगा उसे विदित है कि सेर भर अधकच्चे मांस के साथ एक डबल रोटी दी जाती है, जिसका छिलका उतारने पर उसमें दो तोला भी अन्न नहीं रह जाता और यही रोटी चटनी की भाँति मांस और आलू के साथ खाई जाती है। अमरीका में विशेष करके सुअर खाया जाता है। तीन बरस हुए, हिसाब लगाने से विदित

*यह पुस्तक इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुई है।

हुआ कि संयुक्त-राज्यों में बारह महीने में इतने सुअर कटे थे जिनकी आगे-पीछे एक क़तार बनाई जाती तो पृथिवी की तीन परिधियों के बराबर होती अर्थात् ७५,००० मील लंबी पंक्ति बन जाती। योरप मे अधिकांश गोमांस खाया जाता है। इँग्लिस्तान के इतिहास में लिखा है कि यहां के रहनेवाले रानी एलिज़ाबेथ के समय से पहले नमक की सीझी मछली खाया करते थे। जब ईसवी सन् की सोलहवीं शताब्दी में देश समृद्ध हुआ तब मांस खा खाकर हृष्ट-पुष्ट होगये। आबादी बढ़ने से देश के गाय-बैल का मांस पूरा न पड़ा तब अमरीका से गोमांस लाने का प्रबन्ध किया गया है। अमरीका में घास के बड़े बड़े वन हैं, जिनमें लाखों गाय-बैल फिरा करते हैं। उनके स्वामी घोड़ों पर सवार होकर बड़े बड़े चाबुकों से उनको हांकते हैं। उनको न सानी से प्रयोजन है, न पानी से। कनाडा की राजधानी में समुद्रतट पर बड़ी बड़ी कलें है, जिनमें जीतेजी एक साथ सैकड़ों ढोर हांक दिये जाते है। उन्हीं में उनका मांस कटकर टिन के डिब्बों में भरकर जहाज़ पर लदता और योरप को भेजा जाता है।

यह तो हुई योरप और अमरीका की बात। एशिया में भी अरब आदि देशों में जहा खेती नहीं होती, वहाँ मांस ही खाया जाता है। फलों में बड़ा फल खजूर है।

हमारा देश कृषिप्रधान है। मिस रगोज़िन ने अपनी 'वैदिक इंडिया' में लिखा है कि आचार और धर्म दोनो ने यहाँ मांस खाना बन्द सा करा दिया है, जिसका विशेष कारण यह भी है कि नाना प्रकार के अनाज, फल, कन्द-मूल एक से एक बढ़कर स्वादिष्ट यहां मिल जाते है। तो भी इसमे संदेह नहीं कि आर्यों मे मांस खाना निषिद्ध न था। गोस्वामी तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है कि जब राजा प्रतापभानु ने अपने वैरी कपटमुनि के कहने से ब्राह्मणों के लिए भोजन बनवाया तब उसमें—

विविध मृगन्ह कर आमिष राँधा।
केवल उस दुष्ट ने
तेहि महँ विप्रमांसु खल सांधा॥ •
जिससे भोजन दूषित होगया।

इससे सिद्ध है कि ब्राह्मणों में भी मांस खाना वर्जित न था। अब भी हज़ारो ब्राह्मण मांस खाते हैं और खाते है बकरे का मांस।

प्रश्न यह है कि जीव तो बहुत हैं, बकरा ही क्यों इतना रुचता है?

आर्यराजाओं को शिकार का बड़ा शौक था। यहा तक कि इसे राजाओं का व्यसन (बुरी लत) कहते है। शिकार तो और जन्तुओं का भी होता था, जैसे अरने, बनैले सुअर, सिंह, चीते इत्यादि; परन्तु मुख्य जीव जो शिकार मे मारकर खाया जाता था वह हिरन था, इसी से शिकार को संस्कृत में "मृगया" कहते हैं।

अब आर्यों के एक दूसरे काम पर विचार कीजिए। वनवासी आर्य वन मे आपसे आप उगी वनस्पतियों के बीज जैसे साठी के चावल, फल आदि खाते थे। जब समाज बनकर नगरों में रहने की प्रथा चली तब इन्हीं वस्तुओं को बहुतायत से उपजाने की आवश्यकता हुई। फिर इसी साठी से उत्तरोत्तर उन्नति करके अनेक प्रकार के चावल बन गये। ऐसे ही नरकुल से गन्ना बना और अडूसे से बेला। इसी भांति उन्होंने अपने काम के कुछ पशु भी पालतू बना लिये, जैसे कुत्ता, बिल्ली आदि। इन्हीं पशुओं में से एक बकरी है। हमारा अनुमान यह है कि बकरी जंगली हिरन है। बकरी में हिरन का विचार करने से अब भी हिरन के अनेक गुण देखे जाते है। आर्य हिरन मारते थे और खाते थे। जब नगरों मे बसे तब नित्य के मांस खानेवालों के लिए शिकार एक जंजाल था। उन्होंने इसी हिरन को ठोंक-पीटकर बकरी बना लिया। इस विधि को अँगरेज़ी में कलचर करना कहते है। मादा बकरी का दूध पिया और नर बकरा जिससे खेती आदि का कोई प्रयोजन सिद्ध न होता था, भवानी की भेंट होने और मांस खानेवालों का पेट भरने लगा।

अब हम अपने पूर्वजों की एक मितव्ययिता का उदाहरण देकर इस लेख को समाप्त करते हैं। नगरों मे रहने से पैर सुकुमार होगये और पदत्राण बने। यह पदत्राण पहले चप्पल की भांति होते थे। ऊपर से पैरों मे बांध लिये जाते थे। इसी से इनका उपानह (नह-बाँधना) नाम पड़ा, जिसका अपभ्रंश पनही है। पाठकों

को विदित है कि पुरानी चाल के लोग अब भी घरों में नंगे पैर रहते या खड़ाऊँ पहनते हैं। गावों में जब कोई ढोर मर जाता था तब उसकी लाश चमार उठा ले जाते थे। ऐसे चमार कहीं कहीं गौंटिये कहलाते हैं। गौंटिये उस लाश मे अनेक काम की वस्तुएँ निकालते और उसकी खाल का एक जोड़ा जूता बना कर ढोर के स्वामी को देते थे। यह जूता चमौधा कहलाता था और इसी से बाहर जाने का काम लिया जाता था। शिकार मे मारे हिरनों की खाल का भी जूता बनाया जाता था। परन्तु सबसे अच्छा जूता नरी का बनाया जाता था, जिसको पहिन कर हमारे पूर्वज दरबार में जाते थे। यह नरी क्या है! उसी नर बकरे की खाल जो भवानी की भेंट हो चुका था।

आज-कल हमारे अँगरेज़ी पढ़े बाबुओं के पास बीस जोड़े जूते रहते हैं, जो बहुधा गाय-बैल की खाल के बनाये जाते हैं। इनके लिए कितने पशु कटते हैं, उसका अनुमान पाठकगण आप कर सकते हैं।

—श्रीअवधवासी सीताराम

१३—नहपान और जैन-धर्म

ईसवी सन् से पहले चौथी शताब्दी में सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया था। उस समय से बराबर यूनानी लोग भारत में अपना राज्य जमाने की कोशिश करते रहे और उसमें वे सफल भी हुए थे। समस्त उत्तर पश्चिमी भारत, पञ्जाब, मालवा और गुजरात उन विदेशियों के अधिकार में आ गया था। उन्होंने 'क्षत्रप' नियत किये थे, जो प्रान्तीय गवर्नर के रूप मे थे। अन्त में शकों के बाद वे स्वतन्त्र हो गये थे। यह ईसवी पूर्व पहली या दूसरी शताब्दी की बात है। इसी समय क्षत्रप-वंश में नहपान नामक एक प्रख्यात राजा हुआ था। इसका अस्तित्व ईसवी प्रथम शताब्दी के प्रारम्भ तक माना जाता है। इसकी उपाधि 'महाक्षत्रप' थी। यद्यपि इसका निजी लेख कोई नहीं मिला है, तो भी इसके दामाद ऋषभदात और राजमंत्री के लेखों से इसका कुछ पता चलता है। इसके अतिरिक्त नहपान के इतिहास को जानने के लिए संभवतः कोई सामग्री नहीं है और इससे नहपान के धार्मिक श्रद्धान का भी पता नहीं चलता है। किन्तु जैन-साहित्य में अवश्य नहपान के विषय में कुछ परिचय मिलता है। उसको हम यहाँ विद्वान् पाठकों के समक्ष उपस्थित करते हैं।

नहपान भूमक का उत्तराधिकारी था। भूमक के जो सिक्के मिले हैं, उनमें एक ओर सिंह व धर्मचक्र तथा ब्राह्मी अक्षरों मे लेख अङ्कित मिलता है। ये चिह्न जैनत्व के द्योतक हैं, तथापि इन सिक्कों की भाषा भी प्राकृत थी, जो जैनों में विशेष मान्य है। इन बातों को देखते हुए, हो सकता है कि भूमक को जैन-धर्म से प्रेम हो। जब जैन-मान्यता के अनुसार नहपान जैनधर्मानुयायी प्रकट होता है तब भूमक का जैन-धर्म प्रेमी होना असंभव नहीं है। भूमक के जैनत्व से नहपान-सम्बन्धी जैन-मान्यता विश्वसनीय जँचती है। स्वयं नहपान के सिक्कों में तीन अर्धवृत्तों का चैत्य बना होता है। यह संभवतः जैनों के रत्नत्रय का द्योतक है।* जैनशास्त्रों में नहपान का उल्लेख नहवाण, नरवाहन, नरसेन इत्यादि नामों से हुआ मिलता है। विबुध श्रीधर की 'श्रुतावतारकथा' में† नहपान का उल्लेख नरवाहन नाम से हुआ है। उसे वांमिदेश और वसुंधरा नगरी का राजा लिखा है और बताया है कि उसकी रानी सुरूपा थी; जिसको पुत्रमुख देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ था। इस कारण रानी दुःखी रहती थी। राजश्रेष्ठी सुबुद्धि के कहने पर नरवाहन ने पद्मावती देवी की पूजा की, जिससे उनको पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। उसका नाम पद्म रक्खा गया और राजा ने प्रसन्न होकर कई जैनमंदिर बनवाये। जैन-धर्म प्रभावना के लिए रथ-यात्रायें निकलवाईं। इतिहास से नहपान राजा के पुत्र का होना प्रमाणित नहीं है। मालूम होता है कि अपनी ढलती अवस्था में नहपान ने सुबुद्धि श्रेष्ठी की उक्त सम्मति ग्रहण की थी। यही कारण है कि अन्य स्रोत से उसके पुत्र होने का पता नहीं चलता। पुत्रोत्पत्ति के कुछ वर्ष बाद वसुंधरा नगरी में जैनसंघ का आगमन हुआ। उसमें नरवाहन राजा

* हमारा 'भगवान् महावीर' पृ० २४७-२४८ देखो।
† सिद्धान्तसारादिसंग्रह पृ० ३१६-३१८.

के मित्र मगधनरेश मुनि दशा मे विराजमान थे। उनको देखकर नरवाहन सुबुद्धि श्रेष्ठी-सहित जैन-मुनि होगये। और ये क्रमशः भूतबलि और पुष्पदन्त नाम से प्रसिद्ध हुए। श्रीधरसेनाचार्यजी के निकट इन्होंने शास्त्रज्ञान प्राप्त किया और फिर 'पट्खण्डागम' शास्त्र की रचना करके उसे लिपिबद्ध किया। इस प्रकार जैनागम को सर्वप्रथम लिपिबद्ध करने का श्रेय इन्होंने प्राप्त किया। इनके पहले जैनागम ऋषिवरों की स्मृति में सुरक्षित था। इस समय ऋषियों की स्मृति क्षीण होने से वह प्रायः लुप्त हो चला था। यह है नरवाहन राजा की कथा। शायद नरवाहन राजा को नहपान मानने में आपत्ति की जाय; किन्तु एक प्राचीन पट्टावली में इनका नाम 'नहवाण' रूप में लिखा मिलता है* और यह नहपान के बिलकुल समान है। तिस पर नहपान का समय भी जैनों की उक्त कथा-सम्बन्धी घटना से लगभग ठीक बैठता है और उनका 'भट्टारक' विरुद जैनधर्म में विशेषतर रूढ़ि है। इस अवस्था मे नरवाहन और नहपान क्षत्रप को एक व्यक्ति मानना कुछ अनुचित नहीं दीखता। प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ बाबू काशीप्रसाद जायसवाल† और जैन-इतिहासज्ञ पण्डित नाथूराम प्रेमी इस मत से सहमत है‡। साथ ही यह बात भी ध्यान में लाने योग्य है कि नहपान के अन्तिम जीवन और उसके वंशजो का पता उसके उपलब्ध इतिहास से कुछ भी नहीं चलता। इस अभाव का कारण यही प्रतीत होता है कि नहपान जैनमुनि होगया था और उसका बालक पुत्र राज्याधिकारी हुआ था। एक कम उम्र लड़के के लिए यह संभव नहीं कि वह नहपान की तरह अपने राज्य की श्रीवृद्धि बनाये रखता। इसी कारण नहपान के बाद उसके निकट सम्बन्धी चष्टण ने अपना अधिकार जमा लिया। अतएव उपर्युक्त व्याख्या के आधार से नहपान को जैन-धर्मानुयायी मान लेना ठीक जँचता है। यदि कोई विद्वान् इस व्याख्या के प्रतिकूल प्रमाण प्रकट करें तो हम बड़े आभारी हों और भारतीय इतिहास का भी उपकार हो।

क्षत्रपवंश मे नहपान के बाद हुए राजाओं में रुद्रसिंह का भी जैन-धर्मानुयायी होना संभव है। इसने सन् १८० से १९६ तक राज्य किया था, इसका एक लेख चैत्रशुक्ला पंचमी का भग्नदशा मे जूनागढ़ में मिला है। इस लेख मे "केवलज्ञानसम्प्राप्ताणा" वाक्य आया है। इस कारण बुल्हर आदि विद्वान् इसे जैन-धर्मानुयायी प्रकट करते है।¶ जूनागढ़ का बाबा प्यारा का मठ और संभवतः अपरकोट की गुफाये जैनों की है॥। ये इमारते क्षत्रप रुद्रसिंह अथवा उसके समय से पहले की निर्मित हैं। रुद्रसिंह के जैन होने से नहपान-सम्बन्धी उक्त व्याख्या का समर्थन होता है; क्योंकि इससे क्षत्रप-वंश मे जैन-धर्म की गति प्रमाणित है।

—कामताप्रसाद, जैन.

* जैन-साहित्य संशोधक, भा० अंक ४ पृ० २११।

† 'पाटलिपुत्र'—जैन-साहित्य-संशोधक, भा० १ अंक ४ पृ० २११।

‡ जैन-हितैषी भा० १३ पृ० ५३४।

¶ आर्केलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट आफ वेस्टर्न इंडिया, भा० २ पृ० १४०।

॥ इंडियन ऐंटीक्वेरी, भा० २० पृ०३६३।
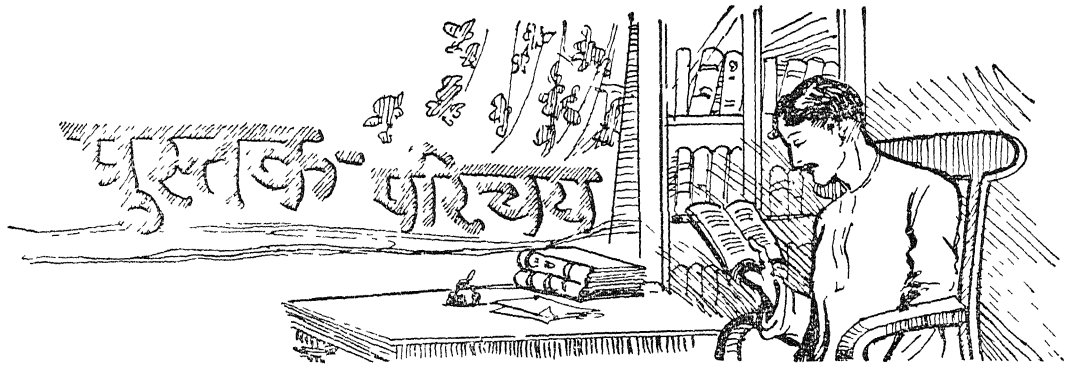
१—**शक्ति**—लेखक श्रीयुत मैथिलीशरण गुप्त, प्रकाशक, साहित्य-सदन, चिरगाँव, झाँसी; पृष्ठ-संख्या ३२, छपाई-कागज़ सुन्दर, मूल्य ।) है।

गुप्तजी के इस नये खण्ड-काव्य का आधार 'सप्तशती' की प्रसिद्ध कथा है। यह वही सप्तशती है जिसकी पूजा आज भी प्रत्येक आस्तिक हिन्दू के घर में होती है। उसी की कथा को गुप्तजी ने अपनी स्वाभाविक मधुर शैली में कविता का रूप दिया है। दैत्यों के अत्याचार और अनाचार से पीड़ित, निर्वासित देवों की प्रार्थना और विलाप को सुनकर भगवान् तथा ब्रह्मा, रुद्र, इन्द्रादि के शरीर से जो ज्योतिर्मय तेज महाशक्ति के रूप में प्रकट हुआ, और फिर जिसने अपनी अमोघ कृपाण से दुष्टों का संहार किया—उसी सिंहवाहिनी 'काली करालवदना' का विजय-कीर्तन अपनी रचना में किया है।

इस पुस्तक में कुल बावन पद्य हैं। मध्य के बीस पद्यों में भगवती दुर्गा और दैत्यराज का युद्ध, शेष में देवों की प्रार्थना और देवी का वरदान आदि वर्णित है।

आरम्भ में त्रस्त देवता कहते हैं
जो निरस्त्र हैं शस्त्र उन्हीं का होता है अभिशाप,
भोगेंगे निज वरदानों के फल सदैव हम आप।

× × × ×

रहे न बांस, बजे न बांसुरी सन्नाटा छा जाय !
फिर क्या हमें—हमारा सुरपुर स्वर्ग रहे या जाय।

हताश देवताओं में भगवान् इन शब्दों में उत्साह संचार करते हैं—"मरे और झंझट से छूटे" यह है हारी बात।

× × × ×

जियो और जूझो जीवन का चिह्न यही, हे तात!
भगवती दुर्गा के आविर्भाव पर दैत्यों की दशा इस प्रकार बताई गई है—

सुरपुर में भी उनके उर में रहा रसातल शीत;
(किन्तु तुरन्त हुए वे प्रस्तुत, हार हो कि हो जीत)

संग्राम में दैत्यों की नीति का निदर्शन स्वभाव के अनुसार किया गया है—

छल हो बल हो या कौशल हो
सब हैं रण में धर्म;
शत्रुनाश के लिए नहीं है
निन्दित कोई कर्म।

ऊपर के अवतरणों में भावों वा विचारों की सुन्दरता के साथ साथ भाषा के मज़ेदार महावरे और पद-लालित्य एक से एक बढ़कर हैं। पुस्तक का उद्देश यद्यपि दो ही पंक्तियों में है, पर यदि वह काम कर जाय तो एक बड़े भारी समाज का अमानुषिकता-पूर्ण अन्धविश्वास दूर हो जाय। वह यह है—

कहाँ दुष्ट-वध और कहाँ यह हत्या, अत्याचार ?

× × × ×

कलुषित करो न पशु-शोणित से, माँ के पैर पखार।
इस रचना के कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते है—
क्षुब्ध हुआ दानव फिर गरजा हुआ धैर्य से त्यक्त।
"'रिपुरूपी तृण के चरने को है यह पशुता व्यक्त।"
मुसकाती ही रही भवानी देख रहे थे भक्त—
"दाँतो मे तृण रख तो तुझको छोड़ूँ समझ अशक्त।"
स्वागतार्थ आई पुरदेवी किये मलिन परिधान,
दीनमुखी, प्यासी सी पीड़ित मुरझी लता समान,
शिशिर-पद्मिनी-सी अति गद्गद पड़े न जो पहचान,
अमरावती पुरी का आहा! ऐसा उलटा ध्यान!

छोड़ गया अधमरी मृगी यह,
कोई नीच निषाद,
उठा लिया गोदी मे उसको,
सुरपति ने सविषाद!

गुप्तजी की यह रचना उनके अनुरूप ही है।

—शम्भूदयाल सक्सेना, 'साहित्यरत्न'

२—अवतार—यह एक फ्रेंच-उपन्यास के बॅगला-अनुवाद का हिन्दी-अनुवाद है। कथा इस प्रकार है—अक्टैभ एक युवक है। वह कौंट ओलाफ़ की परम सुन्दरी प्रियतमा प्रास्कोभि पर मुग्ध हो जाता है। परन्तु वह सती नारी उस पर दया करते हुए भी उसके प्रेम को अस्वीकार कर देती है। अक्टैभ निराश-प्रेम के कारण दुबला होने लगता है। अनेक डाकृर उसकी चिकित्सा करके हार जाते है। इसी समय डाकृर शेरवोनो से उसकी भेंट होती है। शेरवोनो ऐसा-वैसा डाकृर नहीं, वह भारत-भ्रमण कर चुका है; योगियों की सङ्गत कर चुका है, सम्मोहन-विद्या मे निपुण है। एक आत्मा को दूसरे शरीर मे प्रविष्ट करा सकता है। बस वह अक्टैभ की आत्मा को ओलाफ़ के शरीर मे और ओलाफ़ की आत्मा को अक्टैभ के शरीर में प्रविष्ट करा देता है। इतने पर भी सती प्रास्कोभि अक्टैभ को पहचान लेती है और उसके उन्मत्त प्रेम का पुनः तिरस्कार कर देती है। उधर ओलाफ़ की आत्मा अक्टैभ के शरीर मे बहुत घबराती है। दोनों अपने परिवर्तित जीवन से अत्यन्त दुखी होकर शेरवोनो की शरण मे जाते है। शेरवोनो उनकी आत्माओं को उनके वास्तविक निवास मे प्रविष्ट कराता है। ओलाफ़ तो अपना शरीर पाकर ख़ुशी ख़ुशी अपने घर चला जाता है, पर अक्टैभ अपने शरीर मे न आकर स्वर्ग को सिधार जाता है। तब डाकृर शेरवोनो स्वय अपना वृद्ध शरीर त्याग कर युवक अक्टैभ के शरीर मे प्रवेश करता है।

यह कथा भारतवर्ष के लिए नई नहीं है। शरीर-परिवर्तन की इससे भी विचित्र कथाये इस देश मे प्रचलित है। विशेषता इसकी इतनी ही है कि यह एक फ्रेंच-उपन्यासकार की कल्पना है जो सुन्दर और मनोरञ्जक है। अनुवाद मजे का हुआ है। पर कहीं कहीं स्त्रीलिङ्ग और पुँल्लिङ्ग की बड़ी भद्दी भूलें मौजूद है। जैसे—'परन्तु प्रास्कोभि इसमें बिलकुल उदासीन थे। वे जैसे रूपवान् थे उसी प्रकार बुद्धिमान् भी थे। (पृष्ठ २८)। स्मरण रहे कि प्रास्कोभि स्त्रीपात्र है, पुरुष नहीं। इसका सम्पादन श्रीयुत प्रेमचन्दजी ने किया है। पुस्तक का मूल्य ॥) और पृष्ठ-संख्या १२५ है। पता—सरस्वती-प्रेस, मध्यमेश्वर, काशी।

३—भारतोन्नति—लेखक व प्रकाशक श्रीयुत श्याम-सुन्दरदास, कड़ा, प्रयाग। आकार डबल क्राउन, सोलह-पेजी। पृष्ठ-संख्या २६०, मूल्य १), छपाई-कागज़ आदि मामूली है।

इसके लेखक कोई साधु-संन्यासी जान पड़ते है। भारत की वर्तमान दुरवस्था से खिन्न होकर आपने यह पुस्तक लिखी है। हिन्दू-मुसलमान आपस मे लड़ रहे है, गायें मारी जा रही है, रामलीला आदि उत्सव नहीं होने पाते, अकाल और महामारियो की वृद्धि हो रही है, आदि बातें लिखकर आपने अपनी सम्मति दी है कि वर्तमान समय मे देश मे राक्षस-राज्य है, इसी लिए यह सब कुछ हो रहा है। परन्तु इस राक्षस-राज्य को दूर करने का जो उपाय आपने बताया है वह बहुत ही मनोरञ्जक है। आपकी समझ मे भारतवर्ष की अधोगति के कारण है इस देश के पूज्य नेता, नवयुवकों के नवीन विचार, काग्रेस, आर्य्य-समाज, समाचार-पत्र और ऐसे ही अन्य जाग्रति के साधन। इस सम्बन्ध मे आपने जो तर्क उपस्थित

किया है वह तो सुनने के ही लायक है। आपकी राय में आज-कल के लोग कांग्रेस, आर्य्यसमाज और नेताओं आदि के बहकावे में आकर तथा जानबूझ कर भी बाबा लोगों की सेवा नहीं करते, अपनी स्त्रियों और बेटियों को उनके दर्शन करने नहीं आने देते, अपनी सम्पत्ति उनके हवाले नहीं कर देते, उलटा उनसे ग़रीब बनकर रहने को, इन्द्रिय-निग्रह करने को, देश के लिए सत्याग्रह करने को कहते हैं। बस इसी से यह देश रसातल को चला जा रहा है। इसी प्रकार की विचित्र बातें इस पुस्तक में भरी है। संक्षेप में आप यह चाहते है कि जाग्रति के समस्त चिह्न मिट जायँ, अज्ञानता का अन्धकार देश में छा जाय, और साधु-चिह्न-धारी भिखमगों की चैन से कटने लगे। दुःख है कि बाबाजी की यह इच्छा पूरी नहीं हो सकेगी और वर्तमान साधुओं और संन्यासियों को ही अपना सुधार करने के लिए विवश होना पड़ेगा। —श्रीनाथसिंह

४—सीतारामचरितायन–(बाल, अयोध्या, अरण्य, किष्किन्धा और सुन्दर-काण्ड), इमामगञ्ज, (गया) निवासी श्री सीतलसिंहजी गहरवार ने दोहे-चौपाइयों तथा सोरठों में श्रीरामचन्द्रजी का चरित वर्णन किया है। रामचरितमानस के समान ही यह ग्रन्थ भी सात काण्डों में विभक्त है। इसकी कथा रामचरितमानस से भिन्न है। लेखक ने भिन्न भिन्न धर्म-ग्रन्थों से कथाभाग लेकर स्वतन्त्र रूप से इस ग्रन्थ की रचना की है। ठाकुर साहब को अपने इस प्रयत्न में कहां तक सफलता मिली है, इस बात का अनुभव रामभक्त ही कर सकते है। इस पुस्तक का मूल्य १०) रक्खा गया है, जो अधिक है। लेखक से प्राप्य।

५—वृत्तबोधः—इस २६ पृष्ठ की छोटी सी पुस्तक में संस्कृत के पद्यों के लक्षण लिखे गये है। कालिदास के श्रुतबोध के समान इस पुस्तक में भी प्रत्येक छन्द का लक्षण उसी छन्द में लिखा है, जिससे पृथक् उदाहरण देने की आवश्यकता ही न रहे। मूल्य ≡) है। श्रीअगरचन्द भैरोदान सेठिया, जैनशास्त्र-भण्डार लाइब्रेरी, बीकानेर (राजपूताना) से प्राप्य।

६—उत्सर्ग—इस २९ पृष्ठ की छोटी-सी कविता-पुस्तक के लेखक है श्रीयुत व्यथितहृदय "सुमन" और प्रकाशक श्रीयुत राजनारायणसिंहजी बघेल, छावनी—गोपीगंज (बनारस स्टेट)। मूल्य ।) है।

यह पुस्तिका एक खण्ड-काव्य के रूप में लिखी गई है। ४९ पद्यों में समाप्त हुई है। यहा हम इसका एक पद्य उद्धृत करते हैं—

> सूखी है हृद-कलिकायें
> जीवन का भाव अमर है,
> शुभ आशा मलिन निराशा,
> दोनों का कठिन समर है।

७—भौगोलिक कहानियाँ–इस ८६ पृष्ठ की पुस्तक के लेखक है श्रीयुत जगपति चतुर्वेदी और प्रकाशक श्रीयुत रामदयाल अग्रवाल, कटरा, इलाहाबाद। यह पुस्तक सात अध्यायों में विभक्त है। पहले भूगोल के सम्बन्ध में लोगों का ज्ञान कैसा था, योरपवासियों का ध्यान भारतवर्ष की ओर किस प्रकार आकर्षित हुआ, और मार्कोपोलो, पेड्रो, हेनरी, डियाज़, कोलम्बस तथा वास्कोडिगामा जैसे उत्साहशील, अध्यवसायी तथा कष्टसहिष्णु व्यक्तियों ने अपने असीम साहस तथा अध्यवसाय से प्राणपण चेष्टा करके किस प्रकार भिन्न भिन्न देशो का आविष्कार किया, आदि बातें इस पुस्तक में सरल भाषा में लिखी गई हैं। पुस्तक मनोरञ्जक है, भूगोल के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है। मूल्य ॥) है।

८—अहिंसा—यह श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर, का ९० वां ट्रैक्ट है। इसके लेखक हैं हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि श्रीयुत रामचरित उपाध्याय। पुस्तक के आदि में आठ पद्यों में जैन-धर्म के प्रवर्तक भगवान् महावीर का गुण-कीर्तन किया गया है। अन्त में ११ पृष्ठों में लेखक महोदय ने अपने अहिंसा-सम्बन्धी विचारों का प्रतिपादन किया है। मूल्य ~) है।

९—कर्मशिक्षा—संसार कर्मक्षेत्र है। कर्म से ही मानव-जीवन की सार्थकता है। मनुष्य की उन्नति तथा उसके सुख-दुख सब कर्म पर ही निर्भर है। किन्तु इसके गूढ़ तत्त्व को समझना कोई साधारण काम नहीं है। अपने कुटुम्बियों तथा सम्बन्धियों के प्रति मनुष्य का कर्म क्या

है, सामाजिक जीवन में किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए, अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किस प्रकार के कर्म करने से जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त हो सकती है, इन्हीं सब बातों की इस पुस्तक मे विवेचना की गई है। पुस्तक ६१ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इसके लेखक हैं श्रीयुत रामलोचन शर्मा 'कण्टक' और प्रकाशक साहित्य-कार्यालय, लहेरिया सराय, दरभंगा। मूल्य ।) है।

१०—श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी की जीवनी— आर्यसमाज के प्रसिद्ध नेता स्वामी श्रद्धानन्द का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। अपने जीवन-काल मे आर्यसमाज एवं हिन्दू-जाति की उन्होंने जो अनुपम सेवा की है उसके लिए उनका नाम अमर है। उक्त स्वामीजी के किसी भक्त ने ४८ पृष्ठों में उनकी जीवनी लिखी है। यह अर्जुन प्रेस, दिल्ली, से प्रकाशित हुई है। इसका मूल्य ।) है।

११—पातिव्रत-कर्म शिक्षा—इस पुस्तिकाके लेखक हैं श्रीमान् पंडित बद्रीदत्त ज्योतिषी, और प्रकाशक किंग प्रेस, बरेली ; मूल्य ≡) है।

यह पुस्तक ३२ पृष्ठों में समाप्त हुई है। उसमें स्त्रियों के लिए बहुत से उपदेशप्रद भजनों तथा पद्यों का संग्रह किया गया है, जो बहुत साधारण है।

१२—श्रीमद्भगवद्गीता—गीता का यह संस्करण सस्तु-साहित्य-वर्द्धक कार्यालय, अहमदाबाद, से प्रकाशित हुआ है। इसमें ऊपर मोटे देवनागर अक्षरों में गीता के मूल श्लोक दिये गये हैं और नीचे उनका गुजराती-अनुवाद है। छोटे आकार की इस जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ≡) है। काग़ज़ और छपाई सन्तोषजनक है।
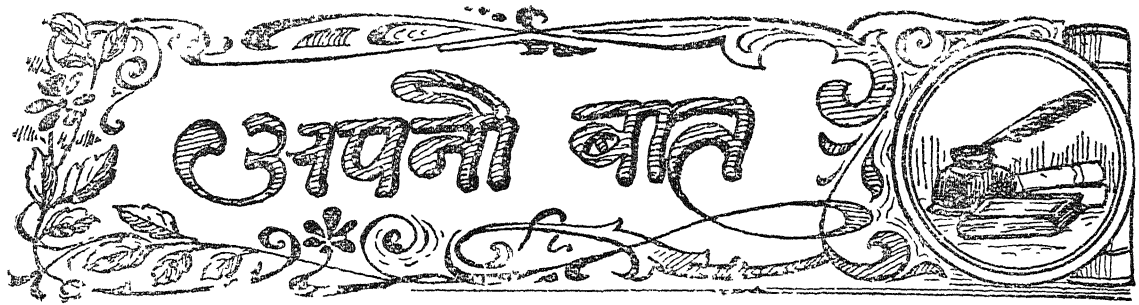
१—इंडियन-ओरियंटल कान्फ़्रेन्स का पाँचवाँ अधिवेशन

गत १६ नवम्बर को इंडियन ओरियंटल कान्फ़्रेन्स का पाँचवाँ अधिवेशन लाहौर में धूमधाम के साथ हो गया। इसके सभापति महामहोपाध्याय पण्डित हरप्रसाद शास्त्री थे। आपने संस्कृत-भाषा के विकास पर एक बहुत ही गम्भीर और विद्वत्ता-पूर्ण भाषण किया। आपका भाषण न केवल भाषा-शास्त्रियों के लिए, बल्कि उन प्रत्येक लोगो के लिए बड़े महत्त्व की वस्तु है जो संस्कृत-भाषा और उसके साहित्य में रुचि रखते हैं। आपके भाषण से संस्कृत-साहित्य के विशाल, विस्तृत एवं अन्धकार से व्याप्त भाण्डार की असंख्य हस्त-लिपियों की छान-बीन की पूरी जानकारी हो जाती है। आपने हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक सभी पुस्तक-संग्रहालयों तथा देशी राज्यों से प्रकाशित होनेवाले तथा पुस्तकालयों में सुरक्षित उन सभी ग्रन्थों का विवेचनात्मक उल्लेख किया है। आपने बताया है कि प्राचीन संस्कृत हस्तलिखित पुस्तकों का एक बहुत बड़ा भाण्डार नेपाल-राज्य में है। सन् १६०७ में वहाँ आपने १६,००० संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ देखे थे। पूरा तिब्बती बौद्ध-साहित्य भी आपके देखने में वहाँ आया था।

इस बात पर शास्त्रीजी ने ज़ोर दिया है कि हमें अपने प्राचीन ग्रन्थों के पाठ पर ही अधिक विश्वास करना चाहिए। योरपीय विद्वानों को अपना गुरु मान कर चलने की हमारी प्रवृत्ति सदैव निर्भ्रान्त नहीं है। आपने यह भी कहा है कि जिन्हें हमारे देश की सभ्यता और संस्कृति का ज्ञान नहीं है, भारतवर्ष की भूमि के साथ जिनका स्पर्श नहीं हुआ, उनकी कही हुई प्रत्येक बात को यों ही मान लेना बुद्धिमानी नहीं है। हमें तर्क-बुद्धि और आलोचनात्मक विवेचन के बाद उनके मतों को स्वीकार करना चाहिए। शास्त्रीजी ने कई बार स्वयं जा जाकर देशी नरेशों को संस्कृत-साहित्य के जीर्णोद्धार के लिए प्रोत्साहित किया तथा उनके द्वारा राष्ट्र की एक महान् सेवा का कार्य किया।

शास्त्रीजी ने संस्कृत-साहित्य और भारतीय संस्कृति की व्यापकता का वर्णन करते हुए बतलाया है कि एक समय उत्तरी, पूर्वी और दक्षिणी एशिया तथा फ़ारस और पूर्वी रोम तक भारतीय संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित हुए थे। साथ ही आपने यह भी कहा है कि अब शिक्षा का माध्यम अँगरेज़ी यही समझ कर बनाई गई है कि संस्कृत और अरबी शिक्षा प्रदान नहीं कर सकतीं। इस समय इनकी अक्षमता को निर्देश करके इन्हें उसी तरह गौण स्थान दिया जाता है, जिस तरह मध्यकाल में योरपीय यूनीवर्सिटियों में लैटिन को दिया गया था। फिर भी संस्कृत के लोप हो जाने की कोई आशंका नहीं है। जिस प्रकार ११ वीं शताब्दी में बहुत कुछ अहिन्दुत्व को उदरस्थ करके संस्कृत में बल-सञ्चय हुआ था, वैसे ही १२ वीं शताब्दी में पाश्चात्य विचारों के संयोग से इसका नवीन रूप हो सकता है, लेकिन यह कौन सा रूप होगा, अभी उस भविष्य की कल्पना करने के लिए बहुत समय है। शास्त्रीजी ने अपने भाषण में बीसवीं शताब्दी की संस्कृति की उन्नति का सिंहावलोकन भी किया है। जो भारतीय संस्कृति को बेकाम की चीज़ समझते हैं, जो संस्कृत-साहित्य के लिए केवल योरपीय विद्वानों को ही प्रमाण मानते है, उन्हें भी शास्त्रीजी के इस भाषण को पढ़ना चाहिए।

२—आचार्य जगदीशचन्द्र वसु

आचार्य जगदीशचन्द्र वसु भारत के एक अमूल्य रत्न हैं। उनके लिए न केवल हमें बल्कि सारे संसार को गर्व है। वे केवल शुष्क वैज्ञानिक ही नहीं हैं, प्रयोगशाला में बैठकर केवल तत्त्वों का विश्लेषण ही नहीं करते, बल्कि वे एक सहृदय कवि हैं—एक गम्भीर दार्शनिक है। वसुधा का परम और चरम सत्य उनके अन्दर प्रादुर्भूत हुआ है। वे प्राच्य और पाश्चात्य संसार की एक पूजनीय सजीव प्रतिमा हैं, उनके श्रीचरणों पर अर्घ्य दान करते समय पूर्व और पश्चिम का अपूर्व सम्मिलन होता है। उन्होंने भारत की प्राचीनता को नवीनता के अन्दर देखा है। यही कारण है कि आज उन्हें उनकी सत्तरवीं वर्षगाँठ के समय सारे संसार से बधाइयां मिल रही हैं।

आचार्य वसु के जन्मदिवस का महोत्सव पहली दिसम्बर को उनके इन्स्टीट्यूट में मनाया गया। यह महोत्सव राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय दोनों ही दृष्टियों से बड़े महत्त्व का था। अनेक मङ्गल-कलश और आम की वन्दनवार के बीच आदि से अन्त तक वह सानन्द सम्पूर्ण हुआ। साथ ही भारतीय संगीत, प्राचीन शिल्पकला, और देशी पौध-पुष्पो से सुसज्जित मंडप में उनके सामने संसार भर की मंगल-कामनाओं के तार और समाचार पढ़े गये।

उस समय वहाँ कलकत्ता के सभी गण्य-मान्य लोग तथा बाहर से भी आये हुए बहुत से सज्जन उपस्थित थे। चीन के शिक्षा-विभाग के मन्त्री ने लिखा था, "आप विज्ञान को आध्यात्मिक सत्य के भीतर लायेंगे, यह देखने के लिए संसार की आँखें आपकी ओर हैं। संपूर्ण एशिया आपके यश का भाग प्राप्त कर रहा है। परमात्मा करे उस जीवन में अनेक जन्म-दिवस आयें, जो जीवन के रहस्य और परम सत्य के अनुसन्धान मे लगा दिया गया है।" इसके उपरान्त नैपाल के महाराज, और प्रायः सभी विश्वविद्यालयों की मंगल-कामना के समाचार और तार पढ़े गये।

आचार्य वसु के जीवन और कार्यों के सामने यह प्रदर्शन कुछ भी नहीं है। उन्होने अपनी सुतीक्ष्ण बुद्धि, अद्भुत धारणाशक्ति और सबसे अधिक विश्व के पदार्थों का निरीक्षण करके जो सिद्धान्त स्थिर किये हैं और उनके द्वारा मानव-समाज के ज्ञान को जो बहुत आगे बढ़ा दिया है और उससे संसार का जितना उपकार हुआ है—उसका ऋण तो किसी प्रकार चुकाया ही नहीं जा सकता। उनकी अमूल्य सेवाओं का पुरस्कार देने की शक्ति भला किस मनुष्य या किस जाति में है। उन्होंने वैज्ञानिक जगत् में जो कुछ किया है उसका वर्णन तो इन थोड़े शब्दो में होना असम्भव है, तथापि हम उन्हीं की उक्ति-द्वारा उसका यहां उल्लेख अवश्य कर देना चाहते हैं। वे कहते है—

"जब इन स्वयं रचित लेखों का मूक साक्ष्य मुझे मिला, और जब मैंने उनमें एकाकार स्वरूप की परछाईं देखी जो संसार की प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है—वह बिन्दु जो प्रकाश की तरङ्गों में लहराता है, वह जीवन जो हमारे संसार की सृष्टि करता है, और वह उत्तप्त प्रकाश सूर्य जो हमारे ऊपर अपनी प्रखर प्रभा को विकीर्ण करता है—ठीक उसी समय पहली बार उस संदेश का एक थोड़ा सा अंश मेरी समझ में आया, जिसको हमारे पूर्व-पुरुष गङ्गा के पवित्र किनारे पर तीस शताब्दी पहले घोषित कर गये थे।

"जो विश्व की परिवर्तनशील विभिन्नता में, केवल एक उसी एक को देखते हैं, शाश्वत सत्य का लेश उन्हीं में है और किसी में नहीं, और किसी में नहीं।"

इससे मालूम हो जाता है कि आचार्य वसु ने विज्ञान के द्वारा त्रस्त संसार को आध्यात्मिक सत्य और अनन्त शान्ति का कैसा अपूर्व मन्त्र दिया है। प्रत्येक वनस्पति में जीवन और अनुभूति की स्थिति साबित करके उन्होने सहानुभूति का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया है।

३—सन्तान-निग्रह और सर शिवस्वामी ऐयर

भारतीय सदाचार की दृष्टि से सन्तान-निग्रह के आजकल के कृत्रिम उपाय भले ही दूषित हों, महात्मा गान्धी जैसे लोकनेता उन्हें भले ही अग्राह्य बताते रहें, तो भी

देश में एक ऐसा दल है जो उन्हें ग्राह्य समझता है और इस दल में भी ऐसे लोग हैं जिनकी बात का वज़न माना जाता है। अभी हाल में बॅगलोर में एक सभा हुई थी। उस सभा में उदार-दल के प्रसिद्ध नेता सर शिवस्वामी ऐयर ने सन्तान-निग्रह के कृत्रिम उपायों के पक्ष में व्याख्यान दिया था। इस सभा के सभापति सर एम० विश्वेश्वर ऐयर थे। मैसूर के दीवान मिरज़ा इस्माइल, सर हाजी इस्माइल सेठ, डाक्टर चन्द्रशेखर, राजसभाभूषण के० चण्डी जैसे प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोग तथा अनेक ऋँगरेज़ पुरुष-महिलायें इस सभा में शामिल हुई थीं। मतलब यह कि अनुभवी विद्वानों और लोकनेताओं की सभा थी। इसके वक्ता सर शिव-स्वामी ऐयर ने अपने भाषण में अनेक महत्त्व-पूर्ण बातें बतलाईं। आपने सन्तान-निग्रह को देश की वर्तमान दुरवस्था के लिए उपयोगी बतलाया। आपका कहना है कि यह बात आर्थिक, वैद्यक, नैतिक, सामाजिक आदि सभी दृष्टियों से सङ्गत है। इसके प्रवर्तन के सम्बन्ध में आपने कहा है—

"यह देश अपरिवर्तनप्रिय है तथा संततिनिग्रह जैसे विषय पर बोलने के लिए बड़े साहस की आवश्यकता है। अमेरिका में आप चाहें जो कर लीजिए पर बोलना मना है, इँग्लेंड में आप चाहे जो कह लीजिए पर करना मना है, फ्रांस में कहना और करना दोनों की स्वतन्त्रता है। इस देश में भाषण की स्वतंत्रता है तथा अमेरिका या इँग्लेंड की तरह सामाजिक या क़ानूनी मनाई भी नहीं है। अतः यहाँ इस विषय के व्यावहारिक ज्ञान का प्रचार अवश्य करना चाहिए।"

जिन लोगों का यह कहना है कि सन्तान-निग्रह के उपाय काम में लाने से दुराचार की वृद्धि होगी उनके आक्षेप का उत्तर सर शिवस्वामी इस प्रकार देते हैं—

"क्या उन सब उपायों का हम त्याग करते हैं जिनका दुरुपयोग हो सकता है? यदि नहीं तो इसी से क्यों मुँह मोड़ें? जो यह कहे जाते हैं कि कृत्रिम उपायों से स्वास्थ्य बिगड़ जाता है उनका कहना बिलकुल झूठ है, बल्कि इनसे स्वास्थ्य सुधरता है। इसमें शारीरिक हानि का भय बिलकुल नहीं है। मदरास में "नियो मैलथुजियन लीग" नाम की संस्था इसी काम के लिए बन गई है इस संस्था-द्वारा इस विषय के ज्ञान का प्रचार भी किया जा रहा है। बात यह है कि बुरा काम करनेवालों को इसका ज्ञान होता ही है। ज्ञान उनको नहीं होता जो इसका सदुपयोग कर सकते हैं और जीवन-रक्षा के लिए ही जिन्हें इसकी आवश्यकता है।"

४—सायमन-कमीशन का बहिष्कार और सरकार की मनोवृत्ति

भारत को स्वराज्य-सम्बन्धी और अधिकार कहाँ तक मिलना चाहिए, इसके लिए साम्राज्य-सरकार ने एक शाही कमीशन नियुक्त किया है। यह कमीशन सर जान सायमन की अध्यक्षता में पूर्व निश्चय के अनुसार गत आक्टोबर में दूसरी बार भारत आकर अपनी जाँच का काम कर रहा है। परन्तु कांग्रेस आदि देश की प्रसिद्ध प्रसिद्ध संस्थाओं ने अपने नेताओं के आदेशानुसार इस कमीशन का बहिष्कार किया है। यही नहीं, इसके बम्बई में जहाज़ पर से उतरने के दिन से अब तक जहाँ जहाँ यह गया है, बहुसंख्या में एकत्र होकर जनता ने इसके प्रति अपना असन्तोष काली झंडियाँ दिखला कर प्रकट किया है। खेद के साथ कहना पड़ता है कि अब तक इस प्रदर्शन के कारण लाहौर और लखनऊ में सरकारी अधिकारियों ने प्रदर्शन करनेवालों के मार्ग में विघ्न ही नहीं डाले, किन्तु उन पर आक्रमण कर नेताओं तक को लाठियों और डंडों से मारा-पीटा भी। ऐसी परिस्थिति में लोग शान्त रहे और शान्ति नहीं भङ्ग होने पाई, इसके लिए जहाँ नेताओं की लोकप्रियता प्रशंसनीय है, वहाँ जन-साधारण का संयम भी। परन्तु इन पुलिस और लोक-नेताओं की मुठभेड़ के सम्बन्ध में एक बात यहाँ कह देना हम उचित समझते हैं। वह यह कि जनता अपने नेताओं की यह अवमानना अधिक दिनों तक नहीं सहन कर सकेगी, एक न एक दिन उसके भी धैर्य का बाँध टूटेगा, उस समय जो बात संघटित होगी वह देश और सरकार दोनों में से किसी के भी हित की न होगी। ऐसे अवसर पर सरकारी अधिकारियों को अधिक धैर्य के साथ काम करना चाहिए। क्योंकि सरकार और प्रजा की

ऐसी मुठभेड़ो से सरकार की अवमानना होती है, उसके प्रति जनता में असन्तोष पैदा होता है, जो राजनीति की दृष्टि से एक विदेशी सरकार के हित का वर्द्धक कभी नहीं हो सकता।

५—खद्दर-प्रचार और श्रीयुत अनिलवरण राय

खद्दर-प्रचार के सम्बन्ध में कोई ८ वर्ष से बड़ा भारी आन्दोलन हो रहा है। महात्मा गान्धी जैसे लोक-नेता इसके व्यापक प्रचार के लिए तन-मन से लगे हुए है। वे खद्दर को स्वराज्य-प्राप्ति का एक-मात्र द्वार तथा विभुक्षित भारतीयों के पेट का प्रधान साधन बताते हैं। महात्माजी के प्रभाव से कांग्रेस जैसी संस्था ने भी इसे अपनाकर अपने सभी सदस्यों को इसका पहनना लाज़िमी कर दिया है। यही नहीं, जितनी छोटी बड़ी अधिकार-प्राप्त लोक-संस्थायें हैं वे भी अपने सदस्यों तथा कर्मचारियों को खद्दर का उपयोग करने को बाध्य करती हैं। इस सारे प्रयत्न के फल-स्वरूप देश के भिन्न भिन्न भागों में खद्दर प्रस्तुत करने के लिए कई एक बड़ी बड़ी संस्थायें उत्साह के साथ काम कर रही है। और यही क्यों, खद्दर के प्रधान प्रचारक स्वयं महात्माजी भी इसकी एक अखिल भारतीय संस्था स्वतन्त्र रूप से अलग चला रहे हैं। परन्तु इतना भारी प्रयत्न होते हुए भी महात्मा गान्धी और कांग्रेस का साहाय्य प्राप्त करके भी खद्दर का न तो वैसा व्यापक प्रचार हुआ और न उससे कोई सुफल ही निकला। उलटा इसके प्रचार से देश का धन ही नष्ट हुआ है, साथ ही अनेक कार्य-कर्ताओं की शक्ति तथा परिश्रम भी व्यर्थ गया है। इस सम्बन्ध मे श्रीयुत अनिलवरण राय ने जो अपने विचार प्रकट किये है उनसे सभी सहमत होंगे। उन्होंने यह बात स्पष्ट शब्दों में कह दी है कि मिलों के कपड़ों के आगे खद्दर कभी नहीं ठहर सकेगा। और क्या आर्थिक दृष्टि से और क्या राजनैतिक दृष्टि से इसका कोई महत्त्व नहीं है। अपने कथन को उन्होंने समुचित प्रमाणों से पुष्ट किया है। वे लिखते हैं—

तीन वर्ष और तीन महीने के भीतर दक्षिण-भारत के प्रसिद्ध 'गान्धी-आश्रम' ने २,४०२ सूत कातनेवालों को ६६,६८१) दिये। यह रक़म प्रतिव्यक्ति ॥=) महीने से भी कम पड़ी। सन् १९२७ में बङ्गाल के 'अभय आश्रम' ने ६,००० सूत कातने वालों को २५,०००) दिये। इनका औसत ।) महीने से भी कम पड़ता है। कम औसत आयवाले भारतीयों को इस क्षुद्र आय से क्या मिला? इस आय-वृद्धि से उनको कितनी सहायता प्राप्त हुई, यह ज़रा सोचने की बात है। और सूत कातनेवालों की आय में जो यह वृद्धि हुई है, इसका एक-मात्र कारण उसका मिल के कपड़े की अपेक्षा कहीं अधिक महँगा बिकना है। नहीं तो यह भी न होती।

खद्दर का यह प्रचार लोगों के चन्दे के धन से हो रहा है। सन् १९२७ के सितम्बर तक अखिल भारतीय सूत कातनेवालों की संस्था ने चर्ख़ों में १६,५४,३७७ रुपये व्यय किये। इस व्यय से गत वर्ष २४ लाख रुपये का कपड़ा तैयार हुआ। और यह लाभ कोई २० लाख रुपये लगाने पर प्राप्त हुआ है।

वास्तव में सभी खद्दर-संस्थायें घाटे पर चल रही हैं। उपर्युक्त अखिल भारतीय सूत कातनेवालों की सभा को गत वर्ष एक लाख रुपये का घाटा रहा।

राय महोदय का उपर्युक्त कथन विचार करने के योग्य है। उन्होंने अङ्क देकर खद्दर के सम्बन्ध में अपनी जो स्पष्ट सम्मति दी है वह उपेक्षणीय नहीं है। यह एक खुला सत्य है कि इस यन्त्र-कला के युग मे हाथ की कारीगरी मुक़ाबले में नहीं ठहर सकती है, शौक़ की चीज़ भले ही बनी रहे। ऐसी दशा में खद्दर का आन्दोलन बन्द कर देना चाहिए और जो देशभक्त युवक इसके प्रचार के कार्य में लगाये गये हैं उन्हे किसी दूसरे उपयोगी कार्य मे लगाना चाहिए। परन्तु यह तो तभी सम्भव होगा जब महात्मा गान्धी इन या ऐसी दूसरी दलीलों के क़ायल हों।

६—सेंधिया नेवीगेशन कम्पनी का सत्कार्य

भारत के हाथ में उसके समुद्री तट तक व्यापार नहीं है। विदेशी जहाज़ी कम्पनियों के हाथ में उसका यह व्यापार भी चला गया है। सौभाग्य की बात है कि कुछ साहसी देशी व्यापारी इस व्यापार में भी हाथ डालना चाहते हैं। उनकी यह प्रवृत्ति स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध मे उनको सुविधायें प्रदान

करने के लिए असेम्बली में एक बिल पेश किया है। यदि वह पास होगया तो वे लोग देशी जहाज़ी कम्पनियाँ खोल कर समुद्रतट के व्यापार में हाथ लगायेंगे। इस ओर उनका कितना अधिक उत्साह है, इसका प्रमाण सेंधिया नेवीगेशन कम्पनी की कार्यवाही है। जहाज़ी काम के लिए भारतीय युवकों को जहाज़ी विद्या सिखलाने के लिए उसने विशेष प्रबन्ध किया है। जहाज़ चलाने के लिए देशी अफ़सरों के अभाव की पूर्ति के लिए यह कम्पनी वास्तव में बड़ा उपयोगी कार्य कर रही है। इस कम्पनी की पिछली साधारण सभा में सभापति की हैसियत से श्रीयुत बालचन्द हीराचन्द ने अपने भाषण में कहा है कि कम्पनी के दस जहाजों में ६० अफ़सर हैं। उनमें ४२ भारतीय हैं। कुछ भारतीय युवकों को वह अपने यहाँ शिक्षा दे रही है, बाद को इन्हें वह नौकरी भी देगी। भारतीय युवकों को जहाजी विद्या सीखने के लिए सरकार ने लघु रूप में जो आयोजन किया है उसमें शिक्षा पानेवाले चार उम्मेदवारों को यह कम्पनी छात्रवृत्ति भी देती है। उनसे यह वादा भी किया गया है कि ट्रेडबोर्ड की परीक्षा पास करने के बाद कम्पनी अपने यहाँ उन्हें नौकरी भी देगी। उसके यहाँ शिक्षा पाये हुए दो व्यक्तियों ने ट्रेड-बोर्ड की परीक्षा पास करके उसके जहाज़ों पर अफ़सर का काम भी किया है। अभी दस उम्मेदवार शिक्षा पा रहे हैं। गत वर्ष उसने अपने छः इंजिनियरों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए इँग्लेंड भेजा था। उसने अपने चार जहाज़ भारतीय इंजिनियरों के हाथ में कर दिये हैं। इस प्रकार वह भारतीयों को जहाज़ी विद्या में निपुण हो जाने की पूरी सुविधा दे रही है। आशा है, कम्पनी का यह उत्साह-जनक प्रयत्न सुफल प्रकट करेगा।

७—ब्रिटिश सरकार और विलायत के उद्योग-धन्धे

कामनसभा में सम्राट् के भाषण पर जो वाद-विवाद हुआ था उसमें एक बड़े मार्के की बात कही गई है। वह यह कि ब्रिटिश गवर्नमेंट ब्रिटेन के उद्योग-धन्धों की रक्षा तथा उनकी उन्नति के लिए दत्तचित्त होकर समुचित प्रयत्न करना चाहती है। इसके लिए एक विशेष विचार-सभा नियुक्त करने का निश्चय किया गया है। यह सभा उन उद्योग-धन्धों की वर्तमान दशा पर विचार करेगी जिनकी रक्षा करना आवश्यक हो गया है, साथ ही उनकी रक्षा के लिए बाहर से आनेवाले तादृश माल पर चुँगी बढ़ाने का निश्चय करेगी। ब्रिटिश गवर्नमेंट का यह कार्य अपने देश की दृष्टि से सर्वथा प्रशंसनीय है। सभी देशों की सरकारें अपने देश के उद्योग-धन्धों की रक्षा एवं उन्नति के लिए ऐसा करती हैं। यदि भारत में स्वराज्य-सरकार की स्थापना होगई होती तो आज भारत में भी यहाँ के दिन प्रतिदिन हीन दशा में परिणत होते जानेवाले उद्योग-धन्धों की रक्षा तथा उन्नति के लिए सभी प्रकार के साधनों का उपयोग होता। उनकी समुन्नति के लिए अन्य देशों की भाँति उन्हें यहाँ की सरकार से आर्थिक सहायता ही नहीं मिलती, किन्तु यहाँ की बनी हुई वस्तुओं का व्यवसाय नष्ट करनेवाली विदेशी चीज़ों पर आवश्यक चुंगी लगा कर देश में इनकी ... बाधा डाली जाती है। परन्तु भारत की वर्तमान दशा में ये सब बातें सम्भव नहीं हैं।

८—मसजिद और बाजे का सवाल

मसजिदों के सामने बाजा बजाने के सम्बन्ध में मुसलमानों और हिन्दुओं की भयङ्कर कलह की बात किसी से छिपी नहीं है। इस बात को लेकर उन दोनों जातियों में खूब सिरफुटौवल हुई है और अब भी हो रही है। प्रायः सभी प्रान्तों के बड़े बड़े नगरों में बाजे के कारण बड़े बड़े भयङ्कर बलवे हुए, कितनों ही की जानें गईं, कितने ही घायल हुए, साथ ही सम्पत्ति भी लुटी और घर भी फूँके गये। मुसलमान कहते हैं कि हमारे धर्म में नमाज़ के समय बाजा बजाना मना है, अतएव हम मसजिद के सामने से किसी को बाजा बजाते हुए नहीं निकलने देंगे। हिन्दू कहते हैं कि तुम यह नई बात कर रहे हो। ए दो दिन की बात होती तो शायद हम मान भी जाते, पर यह तो हक़ का सवाल है। हम सड़क पर से बाजा बजाते हुए सदा निकले हैं। हम अपना यह हक़ कैसे छोड़ सकते हैं? दोनों जातियाँ अपनी अपनी बात पर अड़ गईं, और क्रोध के वशीभूत

हो सिरफुटौवल पर आमादा हो गई, जिसका सिलसिला पिछले दो-तीन वर्ष से अभी तक बराबर जारी है। परन्तु ये उपद्रव यह निर्णय नहीं कर सके कि किसका आग्रह न्यायानुकूल है। दोनो अपने को न्याय के पक्ष में बताते है। सरकार ने भी इस मामले मे वैसी दिलचस्पी नहीं दिखलाई। हाँ, शान्तिरक्षा के नाम पर वह प्रायः हिन्दुओं के बाजे बजाने में अड़चनें डाल देती है। परन्तु सरकार का यह काम न्यायानुकूल नही है। इसका निर्णय हाल मे ही देश के दो हाईकोर्टों ने कर दिया है। इलाहाबाद के हाईकोर्ट ने एक मामले में यह निर्णय किया है कि त्योहार के दिन बाजों को बिलकुल न बजाने का हुक्म निकालना ग़ैर क़ानूनी है। दूसरा निर्णय पंजाब हाईकोर्ट का है। यहाँ के जस्टिस फ़ोर्ड ने यह निर्णय किया है कि सड़क पर से बाजा बजाते हुए निकलना [illegible]क है। आशा है, उच्च न्यायालयों के इस निर्णय का सरकार पर प्रभाव पड़ेगा और वह बाजा बजाना रोकने के लिए क़ानून का दुरुपयोग नहीं करेगी। साथ ही इससे मुसलमान तथा हिन्दू—दोनों के मनोभाव भी बदल जायँगे। यदि ऐसा हो जाय, मुसलमान और हिन्दू बाजे के सवाल को उदारता के साथ आपस मे ही तय कर लेते तो देश एक भयङ्कर व्याधि से मुक्त हो जाता।

९—श्रीमती ऐनी बिसेंट और स्वाधीनता-संघ

नेहरू-रिपोर्ट को सफल बनाने के लिए श्रीमती ऐनी बिसेंट जी-जान से प्रयत्न कर रही है। उनकी सम्मति मे लार्ड बर्केनहेड को इससे अच्छा और उत्तर नहीं हो सकता। कहा जाता है कि कुछ लोगो ने उन्हे इस बात का लाछन लगाया था कि वे सरकार से स्वाधीनता-संघ का दमन करने का आग्रह कर रही है। इसका खण्डन करते हुए श्रीमतीजी ने स्वाधीनता-संघ के सम्बन्ध में निम्नलिखित विचार प्रकट किये है—

प्रश्न यह है कि क्या भारतवर्ष बिना सेना और जङ्गी बेड़े के स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है? औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त कर लेने पर वह सेना पर अधिकार रख सकता है और उसे भारतीय रूप दे सकता है। अफ़ग़ानिस्तान में जो परिवर्तन हो रहे है भारत की दशा से उनकी तुलना कीजिए। औपनिवेशिक स्वराज्य भारत का अन्तिम लक्ष्य नहीं है, पर इसका प्राप्त कर लेना लाभदायक अवश्य है। स्वाधीनता के प्राप्त कर लेने का ही प्रश्न हमारे सामने नहीं है, इसमें उसको सुरक्षित रखना भी सम्मिलित है। यदि नेहरू-रिपोर्ट स्वीकार कर ली जाय तो भारत अपने गृह का स्वामी बन सकता है और स्वराज्य-प्राप्त उपनिवेशों की बराबरी कर सकता है। पूर्ण स्वाधीनता का लक्ष्य बनाने के लिए उसे पूरा अधिकार है। परन्तु यदि यही प्रथम लक्ष्य बना लिया जाय तो प्रश्न यह उठता है कि आख़िर वे करेंगे क्या? उनकी घोषणा एक ऐसी माग है जिसके प्राप्त करने का कोई साधन नही है। यदि सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य की माग को अस्वीकार कर दे तो उन्हे अपने दूसरे लक्ष्य पर विचार करना चाहिए, वह कितना ही कठिन क्यों न हो। जो लोग पूर्ण स्वाधीनता मागते है यदि वे कचहरियों से और कौंसिलो से बाहर रहें और कर देने से इनकार कर दे तो एक बात भी हो सकती है। वास्तविक कठिनाई ब्रिटिश की शक्ति नहीं, भारतीयो की उदासीनता है।

१०—भारतीय प्रजा और उसके अधिकार

नागरिकता के अधिकारो के लिए लोक-नेता जो आन्दोलन कर रहे है उसका हाल अख़बार पढ़नेवालो से नही छिपा है। उनका यह आन्दोलन बहुत कुछ आगे बढ़ आया है और उसका सुफल भी प्रकट हुआ है। अभी हाल मे विलास्पुर, मध्यप्रदेश, की मुङ्गौली तहसील मे जो सभा हुई थी उससे हमारे कथन का बहुत कुछ समर्थन होता है। वह सभा ग्रामीणो की थी। उस तहसील के कोई १७० मौज़ो के प्रतिनिधि उसमें शामिल हुए थे। इनमे हिन्दू, मुसलमान और ईसाई आदि सभी तरह के लोग थे। इस सभा मे किसानो की ओर से वायसराय महोदय की सेवा मे एक प्रार्थना-पत्र भेजा गया है। उस प्रार्थना-पत्र मे किसानों ने जो मागें उपस्थित की है वे इस प्रकार है—

(१) जो लोग गाय, बैल, भैंस आदि जानवरो को ख़रीद कर हत्या करते तथा उन्हे देश से बाहर करते हैं

उनको सज़ा देने का क़ानून बनाया जाय। जब तक सरकार ऐसा क़ानून न बनाये तब तक हस सब पर किसी तरह का लगान न बढ़ाया जाय, बल्कि लगान माफ़ कर दिया जाय। (२) जब जब बन्दोबस्त होता है तब तब लगान बढ़ाया जाता है। अब सरकार लगान न बढ़ाये। (३) बेगार आदि रोकने के लिए ऐसा क़ानून बनाया जाय कि कोई किसी तरह की बेगार आदि न लेसके। अन्त में उपस्थित काश्तकार और जनता ने प्रसन्नतापूर्वक यह भी प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक सरकार उक्त मांगों को पूरी न करेगी तब तक हम अहिंसा-पूर्व्वक शान्ति के साथ मार सहने और जेल जाने को तैयार हैं। भविष्य में हम सरकारी नौकरों, मालगुज़ारों तथा सरकार से असहयोग करेंगे।

११—सायमन कमीशन और पञ्जाब के मुसलमान

स्वराज्य या शासन-सम्बन्धी अधिकार मांगने से नहीं मिलते। यह इसी अनुभव का परिणाम है कि आज देश के अधिकांश हिन्दू-मुसलमान स्वराज्य-सम्बन्धी नेहरू-योजना के पक्ष में हैं और कमीशन का बहिष्कार कर रहे हैं। इस कार्य में मुसलमानों का भी एक समूह हिन्दुओं से मिलकर काम कर रहा है। परन्तु इस सम्बन्ध में मुसलमानों का एक दल विपरीत आचरण भी कर रहा है। उदाहरण के लिए पंजाब के एक ऐसे दल को लीजिए। लाहौर में सायमन-कमीशन के पहुँचने पर जहाँ स्वनामधन्य स्वर्गीय लाला लाजपतराय के नेतृत्व में वहाँ के बड़े बड़े हिन्दू-मुसलमान पुलिस की लाठियाँ खा रहे थे, वहीं मुसलमानों के उस दल ने कमीशन का स्वागत किया और उसके पास अपना डेपुटेशन लेकर गया।

इस दल के लोगों का यह कहना है कि अँगरेज़ों के आने के पूर्व वही इस देश के बादशाह थे, तथा मुसलमान राजभक्त हैं और शाही कमीशन से सहयोग कर रहे हैं, अतएव उनकी माँगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्होंने जो मांगें उपस्थित कीं वे इस प्रकार हैं—

(१) मिन्टो-मार्ले रिफ़ार्म और गवर्नमेंट आफ़ इंडिया के १९१९ के एक्ट के अनुसार सरकार ने हमें व्यवस्थापिका सभाओं के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन का जो अधिकार दिया है वह जन-संख्या के आधार पर होना चाहिए।

(२) पृथक् निर्वाचन के नियम को कोई ठेस न पहुँचने देनी चाहिए।

(३) पञ्जाब को पूरी पूरी प्रान्तीय स्वाधीनता मिलनी चाहिए।

(४) मुसलमानों को वोट देने की शक्ति बढ़ाने के लिए निर्वाचन का दर्जा यथेष्ट रूप से नीचा कर देना चाहिए।

(५) मुसलमानों के घरेलू मुक़द्दमों को तय करने के लिए दक्षिण-भारत की भांति क़ाज़ियों की नियुक्ति होनी चाहिए।

(६) देश की नौकरियों में हमें पूर्ण और यथेष्ट भाग मिलना चाहिए।

(७) पञ्जाब-विश्वविद्यालय का नये सिरे से निर्माण होना चाहिए ताकि उसकी मौजूदा त्रुटियाँ दूर हो जायँ, जिनके कारण मुसलमानों को बहुत तकलीफ़ें उठानी पड़ती हैं।

(८) चेनाब-नदी के पार के—सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान के—लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक पृथक् विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए।

(९) सिन्ध को पूर्ण सुधारों के साथ एक पृथक् प्रान्त बना देना चाहिए।

(१०) सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान को सुधार दिये जाने चाहिए।

(११) केन्द्रीय सरकार का विधान फ़ेडरल ढङ्ग पर होना चाहिए ताकि प्रान्तों को अपनी व्यवस्था करने में पूरी स्वतन्त्रता हो।

(१२) इन बड़ी व्यवस्थापिका सभा में मुसलमान सदस्यों की संख्या कुल की एक तिहाई रहे जैसा कि वर्तमान समय में है।

सायमन साहब ने इस डेपुटेशन के उत्तर में जो कुछ कहा, आशा है, उससे ऐसे दल के मुसलमान कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगे। सायमन साहब ने उन्हें सलाह दी है कि वे अपने को एक महान् देश के नागरिक समझ कर देश की सेवा कर सकते हैं, साथ ही उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया है कि वे इस देश के प्रत्येक भाग में मनुष्य और मनुष्य के बीच में न्याय करने की इच्छा से आये हैं।

Printed and published by K Mittra, at The Indian Press Ltd, Allahabad

उनको सज़ा देने का क़ानून बनाया जाय। जब तक सरकार ऐसा क़ानून न बनाये तब तक हम सब पर किसी तरह का लगान न बढ़ाया जाय, बल्कि लगान माफ़ कर दिया जाय। (२) जब जब बन्दोबस्त होता है तब तब लगान बढ़ाया जाता है। अब सरकार लगान न बढ़ाये। (३) बेगार आदि रोकने के लिए ऐसा क़ानून बनाया जाय कि कोई किसी तरह की बेगार आदि न लेसके। अन्त में उपस्थित काश्तकार और जनता ने प्रसन्नतापूर्वक यह भी प्रस्ताव स्वीकार किया कि जब तक सरकार उक्त माँगों को पूरी न करेगी तब तक हम अहिंसा-पूर्वक शान्ति के साथ मार सहने और जेल जाने को तैयार हैं। भविष्य में हम सरकारी नौकरों, मालगुज़ारों तथा सरकार से असहयोग करेंगे।

११—सायमन कमीशन और पञ्जाब के मुसलमान

स्वराज्य या शासन-सम्बन्धी अधिकार माँगने से नहीं मिलते। यह इसी अनुभव का परिणाम है कि आज देश के अधिकांश हिन्दू-मुसलमान स्वराज्य-सम्बन्धी नेहरू-योजना के पक्ष में है और कमीशन का बहिष्कार कर रहे है। इस कार्य में मुसलमानों का भी एक समूह हिन्दुओं से मिलकर काम कर रहा है। परन्तु इस सम्बन्ध में मुसलमानों का एक दल विपरीत आचरण भी कर रहा है। उदाहरण के लिए पंजाब के एक ऐसे दल को लीजिए। लाहौर में सायमन-कमीशन के पहुँचने पर जहाँ स्वनामधन्य स्वर्गीय लाला लाजपतराय के नेतृत्व मे वहाँ के बड़े बड़े हिन्दू-मुसलमान पुलिस की लाठियाँ खा रहे थे, वहीं मुसलमानों के उस दल ने कमीशन का स्वागत किया और उसके पास अपना डेपुटेशन लेकर गया।

इस दल के लोगों का यह कहना है कि अँगरेज़ों के आने के पूर्व वही इस देश के बादशाह थे, तथा मुसलमान राजभक्त हैं और शाही कमीशन से सहयोग कर रहे हैं, अतएव उनकी माँगों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उन्होंने जो माँगें उपस्थित कीं वे इस प्रकार है—

(१) मिन्टो-मार्ले रिफ़ार्म और गवर्नमेंट आफ़ इंडिया के १९१९ के एक्ट के अनुसार सरकार ने हमें व्यवस्थापिका सभाओं के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन का जो अधिकार दिया है वह जन-संख्या के आधार पर होना चाहिए।

(२) पृथक् निर्वाचन के नियम को कोई ठेस न पहुँचने देनी चाहिए।

(३) पञ्जाब को पूरी पूरी प्रान्तीय स्वाधीनता मिलनी चाहिए।

(४) मुसलमानों को वोट देने की शक्ति बढ़ाने के लिए निर्वाचन का दर्जा यथेष्ट रूप से नीचा कर देना चाहिए।

(५) मुसलमानों के घरेलू मुक़दमों को तय करने के लिए दक्षिण-भारत की भाति क़ाज़ियों की नियुक्ति होनी चाहिए।

(६) देश की नौकरियों मे हमें पूर्ण और यथेष्ट भाग मिलना चाहिए।

(७) पञ्जाब-विश्वविद्यालय का नये सिरे से निर्माण होना चाहिए ताकि उसकी मौजूदा त्रुटियाँ दूर हो जायँ, जिनके कारण मुसलमानो को बहुत तकलीफ़े उठानी पड़ती है।

(८) चेनाब-नदी के पार के—सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान के—लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए एक पृथक् विश्वविद्यालय की स्थापना होनी चाहिए।

(९) सिन्ध को पूर्ण सुधारों के साथ एक पृथक् प्रान्त बना देना चाहिए।

(१०) सीमा-प्रान्त और बलूचिस्तान को सुधार दिये जाने चाहिए।

(११) केन्द्रीय सरकार का विधान फ़ेडरल ढङ्ग पर होना चाहिए ताकि प्रान्तों को अपनी व्यवस्था करने में पूरी स्वतन्त्रता हो।

(१२) इन बड़ी व्यवस्थापिका सभा में मुसलमान सदस्यों की संख्या कुल की एक तिहाई रहे जैसा कि वर्तमान समय में है।

सायमन साहब ने इस डेपुटेशन के उत्तर मे जो कुछ कहा, आशा है, उससे ऐसे दल के मुसलमान कुछ शिक्षा अवश्य ग्रहण करेंगे। सायमन साहब ने उन्हें सलाह दी है कि वे अपने को एक महान् देश के नागरिक समझ कर देश की सेवा कर सकते हैं, साथ ही उन्हें इस बात का विश्वास दिलाया है कि वे इस देश के प्रत्येक भाग में मनुष्य और मनुष्य के बीच में न्याय करने की इच्छा से आये हैं।

Printed and published by K Mittra, at The Indian Press Ltd, Allahabad